॥ भगवती आराधना. ॥

(श्रीशिवाचार्यविरचिता.)

पंडित–सदासुखविरचित–वचनिकासहिता.

प्रकाशक

शेठ माणिकचंद मोतीचंद, आळंद.

शेठ गुलाबचंद रेवचंद, गुंजोटी.



SHRI SANMATI LIBRARY
श्री सन्मति पुस्तकालय
जयपुर.
JAIPUR.

मुद्रक— कल्लाप्पा भरमाप्पा निटवे.

कोल्हापूर–जैनेंद्र प्रेस.

ज्येष्ठ शुद्ध ५ शके १८३१]

[तारीख २४ माहे मे १९०९

किंमत ५ रुपये.

भगवती आराधना.

सिद्धे जयप्पसिद्धे। चउव्विहाराहणाफळं पत्ते ॥
वंदित्ता अरिहंते। वुच्छं आराहणा कमसो ॥ १ ॥
सिद्धाञ्जगत्प्रसिद्धांश्चतुर्विधाराधनाफलं प्राप्तान् ॥
वन्दित्वाऽर्हतो वक्ष्याम्याराधनाः क्रमशः ॥ १ ॥

अर्थ– अहं कहिये मैं जो शिवकोटि नामा मुनि, सो जगतमें प्रसिद्ध अर च्यारी प्रकारकी आराधनाका फलनैं प्राप्त हुवा ऐसे सिद्ध परमेष्ठी, तिन्हैं, अरहंत परमेष्ठी, तिन्हैं वंदना करिकै अनुक्रमतैं आराधना जो हैं, ताही कहूंगो ॥

भावार्थ– यह ग्रंथ आराधनाका स्वरूपकूं साक्षात्करनेवाला है। यातैं जो संसारका परिभ्रमणतैं भयभीत होय, सो पुरुष इस ग्रंथका अर्थनैं धारण करि आराधनामैं नित्यही प्रवर्तन करिकै अर संसारपरिभ्रमणका अभाव करे ऐसा भव्य जीवांका हितनैं हृदयमें

धारणकरि श्रीशिवकोटि नामा मुनीश्वर, इस शास्त्रकी आदिविषैं आराधनाका फलनैं प्राप्त हुवा जे सिद्धपरमेष्ठी और अरहंत परमेष्ठी त्यानैं विघ्नका नाशके अर्थि वंदनाकरि आराधना कहिवाकी प्रतिज्ञा करी है॥ कोऊ प्रश्न करै, जो, परमेष्ठीनैं नमस्कार करिवाकरि विघ्ननाश कैसैं होय? सो उत्तर यह जानना— जो, परमेष्ठीका स्वरूपनैं हृदयमें साक्षात् करि जो भावनमस्कार करे है, ताके शुद्धभावका प्रभावकरि विघ्नको कारण जो अंतरायकर्म तामैं रस जो अनुभाग सो नाशकूं प्राप्त होय है। तातैं विघ्नका नाशके अर्थि परमात्मस्वरूप परमेष्ठीकूं नमस्कार करना उचितही है॥ आगै आराधनानिका नाम वा स्वरूप कहे हैं॥ गाथा—

उज्जोवणमुज्जवणं। णिव्वहणं साहणं च णित्थरणं॥
दंसणणाणचरित्ते-। तवाणमाराहणा भणिया॥ २॥

अर्थ— सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक्तप इनिका जो उद्योतन कहिये उज्वल करना, अर इनिकी पूर्णतामैं उद्यम करना, इनिका निराकुलतातैं निर्वाह करना, इनिका निरतिचार सेवन करना, अर आयुका अंतपर्यंत निर्विघ्न सेवन करि परलोकतांईं लेजावना, ताकूं जिनेंद्र भगवान् आराधना कही है॥ तिनिमैं दर्शनका उद्योतन तौ शंकादिक दोष नही लगाय आप्तका कह्या तत्त्वमें अचल

प्रतीति करना है॥ बहुरि ज्ञानका उद्योतन प्रमाणनयनिकरि निर्णय करि संशय-विपर्यय-अनध्यवसायरहित जानना है ॥ बहुरि चारित्रका उद्योतन निरतिचार मूलगुण-उत्तरगुणनिका धारना है॥ बहुरि तपका उद्योतन असंयमका अभावरूप आत्माकी विशुद्धिता करना है॥ बहुरि जिस मार्गकरि ये दर्शन ज्ञान चारित्र तप आराधना आपकै प्राप्त होय वा अधिकाधिक विशुद्धता होय तिस मार्गमें प्रवर्तना वा आराधनाके धारकनिकी संगति वा मन वचन कायनिकी प्रवृत्ति वा ग्रहण त्याग जैसैं आराधना होय तैसैं करना सो उद्यमन है॥ बहुरि आराधनाका विराधक जे परीषह उपसर्ग वेदनादिक आवता संताभी आकुलतारहित धारना यह निर्वहण जानना॥ बहुरि आराधनाका कारण "जे आप्तके वचनका पठन श्रवण तथा साधु-संगति जिनकरि आराधनाकी विशुद्धिता होय ते कारण" मिलावना यह साधन है॥ बहुरि जिस रीति च्यारी आराधना परलोकतांई आपतैं नहीं छूटे तिस रीति जो आयुका अंततांई प्रवृत्ति करना यह निस्तरण है॥ आगै संक्षेपकरि दोयप्रकार आराधना कहे हैं॥ गाथा—

दुविहा पुण जिणवयणे । भणिया आराहणा समासेण ॥
सम्मत्तम्मि य पढमा । बिदिया य हवे चरित्तम्मि ॥ ३ ॥

अर्थ– बहुरि जिनेंद्रका परमागम जो द्वादशांग, ताके विषैं आराधना संक्षेपकरि दोयप्रकार कही है ॥ एक तौ सम्यक्त्व आराधना; दूजी चारित्र आराधना ॥ आगै संक्षेपकरि दोय आराधना कही, ताका हेतु कहे हैं ॥ गाथा—

दंसणमाराहंते- । ण णाणमाराहियं हवे णियमा ॥
णाणं आराहंते- । ण दंसणं होइ भयणिज्जं ॥ ४ ॥

अर्थ— दर्शन आराधना करता जो पुरुष सो नियमकरि ज्ञान आराधनानैं प्राप्त होय है। अर ज्ञान आराधना करता पुरुषकै दर्शन आराधना होय वा नही होय ॥

भावार्थ— जिस जीवकै सम्यग्दर्शन होय, तिस जीवकै तौ नियमकरि सम्यग्ज्ञान होयही। अर ज्ञान आराधना करै ताकै सम्यग्दर्शन होनेका नियम नाही ॥ आगै सम्यक्त्वविना ज्ञान है सो अज्ञान है ऐसैं कहे हैं ॥ गाथा—

सुद्धणया पुण णाणं । मिच्छादिट्ठिस्स विंति अण्णाणं ॥
तह्मा मिच्छादिट्ठी । णाणस्साराहउं णेव ॥ ५ ॥

अर्थ— बहुरि शुद्धनयके धारक जे भगवान् गणधरदेव ते मिथ्यदृष्टीका ज्ञानकूं अज्ञान कहत हैं। तातैं मिथ्यादृष्टि ज्ञानका आराधक नही है ऐसा जानना ॥ इहां कोई कहै– मिथ्यादृष्टीका ज्ञान सूक्ष्मतत्त्वके जाननेमें मिथ्या कहो सो तौ ठीक। परंतु

घट, पट, स्तंभ, पृथ्वी, पर्वत, जल, अग्नि इत्यादिकानैं तौ मिथ्या नही जाने है। घटकूं घटही कहे है, पटकूं पटही कहे है, पृथ्वीकूं पृथ्वीही कहे है, सो इत्यादि ज्ञान तौ सम्यक् है ॥ ताका उत्तर– जो, मिथ्यादृष्टि घटपटादिकनिकूं घटपटादिकही जाने है, तौभी इनका ज्ञान मिथ्याही है॥ इहां कारण कहा है, जो, घटपटादिकानैं जन्मतैं इंद्रियद्वारकरि याका नाम वा स्वरूप वा क्रिया श्रवण करता आया है वा देखता आया है, सो नामादिक औरतरह कैसैं कहै? परंतु घट पट स्तंभ पृथ्वी पर्वत अग्नि स्त्री पुरुष रत्न सुवर्ण इत्यादि सर्ववस्तुनिविषैं कारणविपरीती स्वरूपविपरीती भेदाभेदविपरीती ये तीन तौ बणिही रहे हैं ॥ सो कारणविपरीती तौ ऐसे जानना, जो ए घटादि रूपी हैं तिनिका कारण ब्रह्माद्वैतवादी कहे है "इनिका कारण एक ब्रह्मही है"। सांख्यमती कहे है "रूपादिकनिका कारण एक नित्य अमूर्तिक प्रकृतिही है"। नैयायिक वैशेषिक कहे है "पृथ्वीका परमाणुनिमैं तौ स्पर्श रस गंध वर्ण ये च्यारि गुण हैं, जलके परमाणुनिमैं गंधविना तीन गुण हैं, अग्नीके परमाणुनिविषैं स्पर्श वर्ण ये दोयही गुण हैं, पवनके परमाणुनिविषैं एक स्पर्शही गुण है, सो इनिका गुण कदाचित् घटै बढै नाही, पृथ्वीके परमाणूनितैं पृथ्वीही उपजै, जलकेतैं जलही उपजै, अग्निकेतैं अग्निही उपजे, पवनकेतैं पवनही उपजै"। तथा बौद्ध "पृथ्वी इत्यादि च्यारि भूत माने हैं, वर्ण गंध

रस स्पर्श ये भूतांका धर्म माने हैं. इनि आठनिका समुदायरूप परमाणु होय है, इनि परमाणुनिकरि कार्य उपजता माने हैं" । तथा चार्वाक "पृथ्वी जल अग्नि पवन ये भूतचतुष्टय इनिकरि जीव पुद्गल घटपटादिककी उत्पत्ति माने हैं अर भूतचतुष्टयका परमाणु विखरि पृथिव्यादिरूप होजाय ताकूं जीवपुद्गलादिका नाश माने हैं"। इत्यादिक तौ कारणमें बहुत प्रकार विपरीतकल्पना करे हैं ॥ तथा स्वरूपमें विपरीत माने हैं, जो, "ये घटपटादि सर्वथा नित्यही हैं वा अनित्यही हैं वा निर्विकल्प हैं वा ये घटपटादि दृष्टिगोचर हैं ते हैंही नांही, ये घटपटादिकके आकार परिणयो ज्ञानही है" इत्यादि वस्तूका स्वरूपमें विपरीत माने हैं ॥ तथा भेदाभेदविपरीत जो "कारणतैं कार्य सर्वथा भिन्नही है तथा अभिन्नही है तथा पृथिव्यादि परमाणु नित्यही हैं इनितैं ये स्कंधादिक उपजे हैं ते भिन्नही हैं तथा गुणीतैं गुण भिन्नही हैं तथा घट पट वन पर्वत पृथ्वी इत्यादि ये ब्रम्हतैं उपजे हैं ते ब्रम्हही हैं" इत्यादि जहां भेद है तहां अभेदकल्पना करे हैं जहां अभेद तहां भेदकल्पना करे हैं इत्यादि वस्तूका स्वरूपमें भेदाभेदविपरीत माने हैं ॥ तातैं मिथ्यादृष्टीका ज्ञान घटपटादिकनैं घटपटादि जाणतोभी तीन विपरीती नही छोडे है, तातैं मिथ्याही है ॥ आगै चारित्र आराधनामैं गर्भित तप आराधना दिखावे हैं ॥ गाथा—

संजममाराहंते- । ण तवं आराहियं हवे णियमा ॥
आराहंतेण तवं । चारित्तं होइ भयणिज्जं ॥ ६ ॥

अर्थ— संयम जो चारित्र ताहि आराधना करता जो जीव सो नियमतैं तप आराधना करी अर तप आराधना करता जीवको चारित्र आराधना होय वा नहीं होय ॥

भावार्थ— कर्मबंध करनेवाली क्रियाका त्याग सो चारित्र है। चारित्र धारण कीया जो जीव सो निश्चयथकी तप धारण करेही है। अर तप धारण करता जीव चारित्र धारै वा नहीं धारै ॥ आगे कहे हैं, जो, अविरतसम्यग्दृष्टीकैभी तपश्चरण महान् उपकारक नहीं होय है ॥ गाथा—

सम्मादिट्ठिस्स वि अवि- । रदस्स ण तवो महागुणो होइ ॥
होदि हु हत्थिह्णाणं । चुंदच्चुदकम्मतत्तस्स ॥ ७ ॥

अर्थ— अविरतसम्यग्दृष्टीकैभी तप महागुणकारी नहीं है। काहेतैं ? अविरत कहिये असंयमभाव है यातैं, अविरतसम्यग्दृष्टीका तपहू हस्तीका स्नानवत् जानना— जैसैं हस्ती स्नान करिकैभी आपकीही सूंडिमैं धूली लेय अपना शरीरपरि क्षेपे है, तैसैं अविरती एक दिन तौ अनशनादिक तप करे है दूसरे दिन असँयमरूप आरंभ

विषय कषाय कुशीलादिकरि आपनैं मलिन करे है, तथा जैसैं माथनीमैं रईकी डोरी एक वोडी खुलती जाय दूजी वोडी वंधती जाय तैसैं जानना ॥ तातैं सम्यक्त्व चारित्र दोऊ मिलेही कल्याणनैं प्राप्त होय है ॥ गाथा—

अहवा चारित्तारा- । हणाए आराहियं हवइ सव्वं ॥
आराहणाए सेसा । चारित्ताराहणा भज्जा ॥ ८ ॥

अर्थ— अथवा चारित्र आराधना होत संता सर्व ज्ञानादिक आराधना आराधित होत हैं। शेष–ज्ञानदर्शनतप आराधना होत संता चारित्र आराधना भजनीय होयभी नहीभी होय ॥ आगै, चारित्र आराधना है सो ज्ञानदर्शन आराधनापूर्वक होय है यह दिखावे हैं ॥ गाथा—

कायव्वमिणमकाय । व्वं इदि णाऊण होइ परिहारो ॥
तं चेव हवइ णाणं । तं चेव य होइ सम्मत्तं ॥ ९ ॥

अर्थ— यह करिवेजोग्य है, यह नही करवेजोग्य है इसप्रकार जाणिकरिही परिहार कहिये त्याग होय है, सोही ज्ञान तथा सम्यक्त्व होत है ॥

भावार्थ— सम्यक् त्याग जो चारित्र सो ज्ञानश्रद्धानविना होय नाही, तातैं श्रद्धानज्ञानपूर्वकही चारित्र जानना ॥ आगै तपका स्वरूप कहे हैं ॥ गाथा—

चरणम्मि तम्मि जो उ- । ज्जमो य आउंजणा य जो होइ ॥
सो चेव जिणेहिं तवो । भणिदो असठं चरित्तस्स ॥ १० ॥

अर्थ--- मायाचाररहित आचरण करता जो जीव, ताकै जो चारित्रमें उद्यम तथा उपयोग लगावना, सोही जिनेंद्र भगवान् तप कह्या है ॥ आगै ज्ञान दर्शन चारित्रका सार कहे हैं ॥ गाथा---

णाणस्स दंसणस्स य । सारो चरणं हवे जहाखादं ॥
चरणस्स तस्स सारो । णिव्वाणमणुत्तरं भणियं ॥ ११ ॥

अर्थ--- ज्ञानदर्शनका सार तो यथाख्यात चारित्र है अर चारित्रका सार सर्वोत्कृष्ट निर्वाण भगवान् कह्या है ॥ गाथा---

चक्खुस्स दंसणस्स य । सारो सप्पादिदोसपरिहरणं ॥
चक्खू होइ णिरत्थं । दट्ठूण विले पडंतस्स ॥ १२ ॥

अर्थ--- नेत्रनिकरि देखनेका सार, सर्प कंटक बिलादिक दोषांको निवारण करि चलना गमन करना है अर नेत्रानिसूं देखिकरि विल खाडेमैं पडता पुरुषके नेत्र निरर्थक है ॥ गाथा---

णिव्वाणस्स य सारो । अव्वाबाहं सुहं अणोवमियं ॥

कायव्वा हु तदट्ठं । आदहिदगवेसिणा चेट्ठा ॥ १३ ॥

अर्थ— निर्वाण पावनेका सार कहा है? जो अव्याबाध कहिये बाधारहित अनौपम्य कहिये उपमारहित अतींद्रिय निराकुलता लक्षण सुखका पावना है। यातैं आत्महितका इच्छक हैं ते निर्वाणकी प्राप्तिके अर्थि चेष्टा करहू ॥ गाथा—

जह्मा चरित्तसारो । भणिया आराहणा पवयणम्मि ॥

सव्वस्स पवयणस्स य । सारो आराहणा तह्मा ॥ १४ ॥

अर्थ— यातैं प्रवचन जो भगवानका आगम ताविषैं चारित्रका सार फल आराधना कही है। तातैं सर्व जिनागमका सार आराधना है ॥ गाथा—

सुचिरमवि णिरदिचारं । विहरित्ता णाणदंसणचरित्ते ॥

मरणे विराधयित्ता । अणंतसंसारिउ दिट्ठो ॥ १५ ॥

अर्थ— चिरकाल कहिये बहोत कालहू अतिचाररहित ज्ञानदर्शनचारित्रविषैं प्रवृत्ति करिकैभी कोई पुरुष मरणकालविषैं च्यारि आराधनाका विनाश करि अनंतसंसारी हुवा भगवान् देख्या। तातैं मरणकालमैं जैसैं आराधना नही बिगडै तैसैं यत्न करना ॥ गाथा—

समिदीसु य गुत्तीसु य । दंसणणाणे य णिरदिचाराणं ॥

आसादणबहुलाणं । उक्कस्सं अंतरं होइ ॥ ३६ ॥

अर्थ— समिति कहिये परमागमकी आज्ञाप्रमाण प्रमादरहित यत्नाचारसूं गमन करना, तथा हित मित निःसंदेह सूत्रकी आज्ञाप्रमाण बोलना, तथा दोषरहित आचारांगका हुकमप्रमाण भोजन करना, तथा प्रमादरहित देखि सोधि शरीरादिक उपकरणका मेलना उठावना, तथा निर्जंतुभूमिविषै यत्नाचारपूर्वक मल मूत्र कफ नासिकामल नखकेशादिकका क्षेपना ये समिति हैं । बहुरि सर्वसावद्ययोग जो पाप-सहित मनवचनकायकी प्रवृत्तिका रोकना ये गुप्ति हैं । बहुरि वस्तुका स्वरूप जैसा है तैसा श्रद्धान करना यह दर्शन है । तथा वस्तुका सत्यार्थस्वरूप संशय विपर्यय अनध्यवसाय जे ज्ञानके दोष तिनकरि रहित वस्तुको यथावत् जानना यह ज्ञान है ॥ सो पंचसमितिविषै तीन गुप्तिविषैं दर्शनविषैं ज्ञानविषैं अतिचाररहित प्रवृत्ति करता जीवकै अर आसादनाबहुल कहिये विराधना वा अतिचारसहित प्रवर्तन करता पुरुषकै उत्कृष्ट अंतर कहिये बडा भारी अंतर है ॥

भावार्थ— गमन करता भूमिका सम्यक् अवलोकन नहीं करना वा पर्वत वन वृक्ष नगर बजार तिर्यक् मनुष्यरूप अवलोकन करता गमन करना इत्यादि ईर्यासमितिके अतिचार है ॥ बहुरि देशकालकै योग्य अयोग्यका विचार नहीं करिकैं बोलना वा

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

पाठन करना ये ज्ञानके अतिचार हैं ॥ सो अतिचाररहित समिनिमैं तथा गुप्तिमैं तथा दर्शनज्ञानमें प्रवर्तन करना यहही कल्याण है ॥ आगै आराधनाका अतिशयरूप फल कहे हैं ॥ गाथा--

दिट्ठा अणादिमिच्छा- । दिट्ठी जह्मा खणेण सिध्दा य ॥
आराहया चरित्त- । स्स तेण आराहणा सारो ॥ १७ ॥

अर्थ— जातैं अनादिमिथ्यादृष्टि जे भद्रणादि राजपुत्र, ते तिसही भवमें त्रसपणानैं प्राप्त भये, ते जिनपादके निकट धर्मश्रवण करि सम्यग्दर्शन अर संयम प्राप्त होय बहोत थोडा कालमें रत्नत्रयकी पूर्णता करि सिध्द भये । तातैं आराधनाही सार है ॥ इहां गाथामैं क्षण शब्दका अर्थ अल्पकाल जानना ॥ आगै इहां कोई यह आशंका करे है- जो, मरणकालमैंही आराधना करणी, शेषकालमैं तपमें वा चारित्रमें काहेकूं खेद करना? ॥ गाथा—

जदि पवयणस्स सारो । मरणे आराहणा हवदि दिट्ठा ॥
किं दाइ सेसकालं । जदिज्जदि तवे चरित्ते य ॥ १८ ॥

अर्थ— जो मरणकालमैं आराधनाही भगवानका आगमका सार है ऐसैं दिष्ट कहिये अंगीकार कह्या तौ अब सर्वकालमें आराधना काहेकूं ग्रहण करवेकूं तपके

विषैं चारित्रविषैं जतन करिये? कोई ऐसी आशंका करै, ताकूं अगली गाथामें दृष्टांतरूप उत्तर करे हैं ॥ गाथा—

आराहणाए कज्जे । परियम्मं सव्वदाहि कायव्वं ॥
परियम्मभाविदस्स हु । सुहसज्जाराहणा होइ ॥ १९ ॥

अर्थ— आराधनाका करवारूप कार्यविषैं सर्वकाल कहिये सदाकाल निरंतर परिकर जो सामग्री सो करना योग्य है। जानैं आराधनाका परिकर अच्छी तरह भावनारूप कीया, ताकै आराधना सुखकरिकै साधिवायोग्य होय है ॥

भावार्थ— आराधनाका परिकर सामग्री संगति सदाकाल करवोजोग्य है। जो सामग्री भावनाकरि राखै तौ आराधना मरणकालमें सहज सुखसूं होय है ॥ आगै दृष्टांत कहे हैं ॥ गाथा—

जह रायकुळपसूउ । जोग्गं णिच्चमवि कुणइ परियम्मं ॥
तो जिदकरणो जुद्धे । कम्मसमत्थो भविस्सदि हि ॥ २० ॥

अर्थ— जैसें राजकुलमें उत्पन्न हुवा जो राजपुत्र सो अपनी इंद्रियाकूं वशी करता आपकै योग्य जो शस्त्रादिकका अभ्यासरूप परिकर वा सुभटादि सामग्री नित्यही अभ्यासरूप वा संचयरूप करतो रहै तौ जुद्धका अवसरमें शत्रूनिपरि प्रहारादिक

करनेमैं समर्थ होय है। अर शत्रूनिका प्रहारतैं आपकी रक्षारूप कर्म ताविषैं समर्थ होत है ॥

भावार्थ— जो राजपुत्र युद्धका अवसरपहलीही शस्त्रविद्या अभ्यासकरि राखी होय, वा युद्धकी सामग्री बलवान् योद्धादिक शस्त्रादिक बनाय राख्या होय, तौ वैरीनिसूं युद्धका अवसरमें विजय पावै। अर जो प्रमादी होय ऐसैं विचारै, जब हमारे उपरि शत्रूनिकी सेना आवैगी, तदि आयुधादिकांको अभ्यास करूंगो वा युद्धका करवाजोग्य सुभट सेवक राखूंगो, तो तत्काल युध्दका अवसरमें कुछ करवा समर्थ नही होय, राज्यभ्रष्ट होय। तातैं पहलीहि योग्यसामग्रीको परिचय करवो श्रेष्ठ है॥ आगै दृष्टांत कहे हैं॥ गाथा—

इय सामण्णं साहू । वि कुणइ णिच्चमवि जोग्गपरियम्मं ॥
तो जिदकरणो मरणे । झाणसमत्थो भविस्सदि हि ॥ २१ ॥

अर्थ— तैसैंही साधु जो है सोभी सामान्य आपका रत्नत्रयकी रक्षाके योग्य परिकर्म कहिये सामग्री नित्यही करै तौ जितेंद्रिय हुवो संतो मरणका अवसरमें धर्मध्यानादिकमें समर्थ होय ॥

भावार्थ— जैसैं राजकुलमें उपज्यो राजपुत्र, सो राजविद्या वा शस्त्रविद्या वा मंत्री

प्रधान सेना गड कोट भंडार पहरी वण्या राखे अर याकी रक्षाको अभ्यास करवो करै, तौ शत्रूनिसूं युद्धका अवसरमें विजय पावै। तैसेंही साधु तथा श्रावक वा अविरत सम्यग्दृष्टि जे हैं तेहू कषायनिका जीतनेका, इंद्रियनिग्रह करनेका, अनशनादितपके वधायवेका, शुद्धभावना भायवेका, सर्वमें समताभाव होनेका, परीषह सहनेका, देहादिकामें ममता घटायवेका शाश्वता अभ्यास करवो करै; तो मरणकालमें रोगादिकतैं वा उपसर्गतैं वा क्षुधादिपरीषहतैं वा देहादि कुटुंबादिका ममत्वतैं रत्नत्रय न बिगाडै अर व्रतकी अखंडता करिकै अर धर्मध्यानादिकतैं कर्मनिकूं जीति विजयकूं प्राप्त होय है॥ गाथा—

जोग्गो भाविदकरणो। सत्तू जेदूण जुद्धरंगम्मि॥
जह सो कुमारमल्लो। रज्जपडायं वला हरदि॥ २२॥

अर्थ— जैसैं शत्रूनिपरि आपका शस्त्र निष्फल न जाय अर वैरीनिका बहोत शस्त्रनिकी वार ठकाय जाय आपकै लगने न देवै अर कुमार अवस्थाहीतैं मल्लविद्याका अभ्यास कीया ऐसा युद्धके योग्य जो राजपुत्र सो युद्धकी रंगभूमिविषैं शत्रूनिनैं जीतिकरिकै बलात्कारतैं राज्यपताका ग्रहण करत है॥ गाथा—

तह भाविदसामण्णो। मिच्छत्तादी रिवू विजेदूण॥

आराहणापडायं । हरइ सुसंथाररंगाम्मि ॥ २३ ॥

अर्थ–– तैसैंही भलेप्रकार अभ्यास कीया है साम्यभाव जानै ऐसा जो मुनि वा श्रावक सो संस्तररूप रंगभूमिविषैं कर्मका उदयकी हजारांवार उकाय, मिथ्यात्व असंयम कषायरूप शत्रूंनिकूं जीतिकरि आराधनारूप पताका ग्रहण करत है ॥ गाथा–

पुव्वमभाविदजोगो । आराधेज्ज मरणे जदि कोई ॥
खणणूय णिही दिट्ठं । तं खु पमाणं ण सव्वत्थ ॥ २४ ॥

अर्थ–– यद्यपि कोई पुरुष मरणका अवसरपहली आराधनाकी सामग्री नही भावना करी, नही अभ्यास करी, तोभी मरणकालमें आराधनाकूं प्राप्त भया देख्या, ऐसैं सकल भव्यनिकूं आराधनाके अभ्यासमें निरुद्यमी रहना योग्य नही। जैसैं कोई पुरुष पृथ्वीकूं खोदै था, सो पृथ्वीमेंतैं निधि कहिये बहोत धन हाथि लग गया, तौ यह दृष्टांत सर्वही स्थानमें प्रमाण नही जानना। धन तौ कुमाया उद्यम कीयाही हाथि आवेगा, कोई कोटि पुरुषांमें एकपुरुषकै पृथ्वी खोदता धन हाथि लग गया तौ साराही उद्यम छोडि बैठे जो ह्याकैभी धन हाथि लग जायगा सो प्रमाण नही, तैसैं कोई मिथ्यात्वी असंयमी अंतकालमें शुभभावकूं प्राप्त होय रत्नत्रय ग्रहणकरि आराधनानैं आराधि कल्याणनैं प्राप्त हुवा तैसैं सर्वहीकूं पूर्वकालमें साधनविना आराधनास-

हित मरण न होय है। तातैं आराधनाकी भावना व्रतसँयमादि साधन सर्वकाल भाय आत्मानैं उज्जल करना जोग्य है॥ इति पीठिकावर्णन समाप्त कीया ॥ आगे सप्तदश-प्रकार मरणनिविषैं पंचप्रकार मरणका वर्णन करनेकी प्रतिज्ञा करे हैं ॥ गाथा—

मरणाणि सत्तरस दे- । सिदाणि तित्थंकरेहि जिणवयणे ॥
तत्थ वि य पंच इह सं- । गहेण मरणाणि वोच्छामि ॥ २५ ॥

अर्थ-- तीर्थंकर देव जे हैं ते परमागमकेविषैं सतरह प्रकार मरणका उपदेश कीया है, तिनि सतरह मरणानिमैंतैं इस भगवती आराधना ग्रंथविषैं संग्रहकरि प्रयोजनभूत पंचप्रकार मरण जानि कहनेकी प्रतिज्ञा करत हैं ॥

भावार्थ— यो जीव अनंतकालसूं जन्ममरण अनंते कीये ते कुमरण कीये, एकवारभी सम्यक्मरण नही किया, सो अब जो एकवारभी सम्यक्मरण जो च्यारि आराधनासहित मरण करै तौ फेरि मरणका पात्र नही होय, तातैं करुणानिधान वीतराग गुरु अब शुभमरणका उपदेश करे हैं ॥ मरणके भेद सतरह हैं— १ आवीचिकामरण, २ तद्भवमरण, ३ अवधिमरण, ४ आद्यंतमरण, ५ वालमरण, ६ पंडितमरण, ७ आसन्नमरण, ८ बालपंडितमरण, ९ सशल्यमरण, १० पलायमरण, ११ वशार्त्तमरण, १२ विप्राणमरण, १३ गृध्रपृष्ठमरण, १४ भक्तप्रत्याख्यान मरण,

१५ इंगिनीमरण, १६ प्रायोपगमनमरण, १७ केवलिमरण; ऐसैं सतरह· इनिका संक्षेप स्वरूप ऐसा—

१ जो आयुका उदय समयसमय आयकरि घटै है सो समयसमयमरण है, यह आवीचि समुद्रमें लहरीकीनांई समयसमय आयुका उदय होय पूर्ण होता जाय सो आवीचिमरण कहिये ॥

२ बहुरि जो वर्त्तमानपर्यायका अभाव होना सो तद्भवमरण है, सो अनंतवार जीवकै हुवा ॥

३ बहुरि जैसा मरण वर्तमानपर्यायका होय तैसाही अगिली पर्यायका होयगा सो अवधिमरण है। याके दोय भेद हैं, तहां जैसा प्रकृति स्थिति अनुभाग वर्तमान आयुका उदय आया, तैसाही आगै आयुका बांधै वा उदय आवै सो सर्वावधिमरण है अर एकदेश बंध उदय होय तौ देशावधिमरण कहिये ॥

४ बहुरि जो वर्तमानपर्यायका स्थिति आदिक जैसा उदय था तैसा अगिली पर्यायका सर्व प्रकारतैं वा एकदेशतैं बंध उदय नही होय सो आद्यंतमरण है ॥

५ पांचवा बालमरण है· सो बाल पंचप्रकार है, अव्यक्तबाल, व्यवहारबाल, दर्शनबाल, ज्ञानबाल, चारित्रबाल· तहां जो धर्म अर्थ काम इनि कार्यनिकूं न

जानै इनिका आचरणकूं समर्थ जाका शरीर न होय, सो अव्यक्तवाल है. जो लौकिक अर शास्त्रका व्यवहारकूं नही जानै तथा वालक कहिये छोटी अवस्था होय सो व्यवहारबाल है. जो स्वपरतत्त्वका श्रद्धानरहित मिथ्यादृष्टि होय सो दर्शनवाल है. वस्तूका यथार्थज्ञानरहित होय सो ज्ञानवाल है. जो चारित्ररहित होय सो चारित्रवाल है. इनि पंचप्रकार वालनिका मरण सो वालमरण है ॥ इहां प्रधानपणें दर्शनवालहीका ग्रहण है, जातैं सम्यग्दृष्टि अन्य च्यारप्रकारका वालपणा होतैभी दर्शनपंडितताका सद्भावतैं पंडितमरणविषैंही गणिये हैं. तहां दर्शनवालका संक्षेपतैं दोयप्रकार मरण कह्या है, एक इच्छाप्रवृत्त दूजा अनिच्छाप्रवृत्त. तहां अग्निकरि, धूमकरि, शस्त्रकरि, विषकरि, जलकरि, पर्वतके तटतैं पडनेकरि, उच्छ्वास रोकनेकरि, अतिशीतल उष्णमें पडनेकरि, रसी सांकल जेवडेनके वंधनकरि, क्षुधाकरि, तृषाकरि, जीभ उपाडनेकरि, विरुध्द आहार सेवनेकरि वाल जो अज्ञानी चाहिकरि मरै सो इच्छाप्रवृत्तवालमरण है अर जो जीवनेका इच्छक होय अर मरै सो अनिच्छाप्रवृत्तवालमरण है ॥ इतने वालमरणनिकरि दुर्गतिगामी वा विषयासक्त वा अज्ञानपटलकरि आच्छादित वा ऋद्धि सात रस गौरवयुक्त जीव मरण करे है । सो ये वालमरण वहुत तीव्रपापकर्मका आस्रवके कारण जन्मजरामरण करनेकूं समर्थ हैं ॥

६ बहुरि पंडितमरण च्यारि प्रकार है· व्यवहारपंडित, सम्यक्त्वपंडित, ज्ञानपंडित चारित्रपंडित· तहां लौकिकशास्त्रका व्यवहारविषैं प्रवीण होय सो व्यवहारपंडित है· सम्यक्त्वसहित होय सो सम्यक्त्वपंडित है· सम्यग्ज्ञानसहित होय सो ज्ञानपंडित है· सम्यक्चारित्रसहित होय सो चारित्रपंडित है· इहां दर्शनज्ञानचारित्रसहित पंडितका ग्रहण है· जातैं व्यवहारपंडित मिथ्यादृष्टिबालमरणमें आगया ॥

७ बहुरि जो मोक्षमार्गमें प्रवर्तनेवाले साधु संघतैं भ्रष्ट होय संघवारै निकलिगया ताकूं आसन्न कहिये है· तिनिमैं पार्श्वस्थ, स्वच्छंद, कुशील, संसक्तभी लेणें· ऐसे पंचप्रकार भ्रष्ट साधुनिका मरण सो आसन्नमरण है ॥

८ बहुरि सम्यग्दृष्टि श्रावकका मरण सो बालपंडितमरण है ॥

९ बहुरि सशल्यमरण दोय प्रकार है· तहां मिथ्यादर्शन माया निदान ए तीन तौ भावशल्य हैं· अर नारक अर पंचस्थावर अर त्रसमें असंज्ञी ए द्रव्यशल्य हैं। तिनिमैं भावशल्यसहितका जो मरण सो सशल्यमरण है ॥

१० बहुरि जो प्रशस्तक्रियाविषैं आलसी होय प्रमादी होय व्रतादिकविषैं शक्तीकूं छिपावै ध्यानादिकतैं दूरि भागै ऐसाका मरण सो पलायमरण है ॥

११ वशार्त्तमरण च्यारि प्रकार है, सो आर्त्तरौद्रध्यानसहित मरण है· तहां पांच

इंद्रियनिके विषयनिके विषैं रागद्वेषसहित मरै सो इंद्रियवशार्तमरण है· सो पांच प्रकार है, तिनिविषैं जो देवमनुष्यतिर्यंचनिकरि तथा अचेतनकृत जे तत वितत घन सुषिर शब्दनिविषैं जो रागी द्वेषी हुवा मरण करै तथा च्यारि प्रकार आहारविषैं रागीद्वेषीका मरण तथा देव मनुष्य तिर्यक् अचेतनसंबंधी सुगंधदुर्गंधविषैं रागीद्वेषीका मरण तथा देव मनुष्य तिर्यक् अचेतनसंबंधी रूपसंस्थानविषैं रागीद्वेषीका मरण तथा देव मनुष्य तिर्यक् वा अचेतनसंबंधी मनोज्ञ अमनोज्ञ स्पर्शविषैं रागीद्वेषीका जो मरण सो इंद्रियवशार्त्तमरण है ॥ तथा वेदनावशार्त्तमरण दोयप्रकारका है· तहां जो शरीरसंबंधी वा मनसंबंधी दुःखमें लीन होय मरै सो दुःखवशार्त्तमरण है तथा जो शारीरमानासिक सुखमें लीन होयकरि मरै, ताकै सातवशार्त्तमरण है ॥ बहुरि कषायवशार्त्तमरण च्यारि प्रकार है· तहां जो बांध्या है रोष जानैं आपविषैं वा परविषैं वा आपपर दोऊनिमें क्रोधी होय मरै, ताकै क्रोधवशार्त्तमरण कहिये· तथा मानवशार्तमरण अष्टप्रकार है· तहां जो मै विख्यातकुलविषैं वा विस्तीर्णकुलविषैं वा उन्नतकुलविषैं उत्पन्न भया हूं याप्रकार चिंतवन करतेका जो मरण, सो कुलमानवशार्तमरण है· तथा हमारे इंद्रिय उज्वल हैं, संपूर्ण शरीर तेजस्वी है, नवीन यौवन है, सकलजनसमूहका चित्तमें हर्ष करनेवाला रूप है इस भावनासहितका मरण सो रूपवशार्तमरण है· तथा मैं वृक्षपर्वता

दिकनिका उपाडनेमें समर्थ हूं, युध्दमें समर्थ हूं, मित्रोंका सहायको हमारै बल है इत्यादि बलका अभिमानसहितका जो मरण, सो बलाभिमानवशार्तमरण है· तथा हमारी बहोत परिवार सेना नगर देशपरि आज्ञा वर्ते है इत्यादि ऐश्वर्यका गर्वसहितका जो मरण सो ऐश्वर्यमानवशार्तमरण है· मै लौकिक वेद समय सिद्धांतशास्त्र पढ्यो हूं यामकार श्रुतका मानकरि उद्धतका मरण सो श्रुतमानवशार्तमरण है· तथा हमारी बुद्धि तीक्ष्ण है, सर्व लौकिक कलाविद्यामें अरोक वर्ते है याप्रकार बुद्धीका मदसहितका जो मरण सो प्रज्ञावशार्तमरण है· तथा हमारै व्यापारादि करता संता सर्वमें लाभ है याप्रकार लाभमानकूं भावना करताका मरण सो लाभवशार्त मरण है· हमारे समान तपश्चरण कोऊ करनेकूं समर्थ नही याप्रकार तपका मानकै वशी होय मरै ताकै तपोमानवशार्तमरण है· बहुरि जो धनविषैं वा अन्य कार्यविषैं करी है अभिलाषा जानैं ताकै जो कपट सो निकृतिनामा माया है· तथा सम्यग्भावनिका आच्छादन करि धर्मका छल करि चोरी इत्यादि दोषनिमें प्रवृत्ति सो उपधिनामा माया है· तथा अर्थविषैं विसंवाद अर आपका हस्तविषैं स्थापन किया द्रव्यका हरणा वा दूषण वा प्रशंसा सो सातिप्रयोगमाया है· तथा अन्यद्रव्यमें अन्यका मिलावना कूडा झूंठा तावडी वा तोला घाटि वाधि देनेलेनेमें रखना वा खोटे धनकूं साचा दिखावना सो प्रणधिमाया है·

तथा आलोचना करता अपने दोष छिपावना सो प्रतिकुंचनमाया है· इत्यादि मायाकै वशी मरण सो मायावशार्त मरण है· बहुरि उपकरणनिविषैं तथा भोजनपानविषैं तथा शरीरविषैं वा निवासस्थानविषैं इच्छा वा मूर्च्छासहितका जो मरण सो लोभवशार्तमरण है· बहुरि हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्रीपुंनपुंसकवेदानिकरि मूढबुद्धीनिका जो मरण सो नोकषायवशार्तमरण है ॥

१२ बहुरि जो अपना व्रतक्रियाचारित्रविषैं उपसर्ग आवै सो सह्याभी न जाय अर भ्रष्ट होनेका भय आवै तब अशक्त भया अन्नपानका त्याग करि मरै सो विप्राणमरण है ॥

१३ बहुरि जो शस्त्रग्रहणकरि मरण होय सो गृध्रपृष्ठमरण है ॥

१४ बहुरि जो अनुक्रमसूं आहार पाणीका यथाविधि त्याग करि मरै सो भक्तप्रत्याख्यानमरण है ॥

१५ बहुरि जो संन्यास करै अर अन्यपासि वैयावृत्त्य न करावै सो इंगिनीमरण है ॥

१६ बहुरि जो प्रायोपगमनसंन्यास करै अर काहूपासि वैयावृत्य न करावै अपना आपभी न करै जैसैं काष्ठका लकडा तथा मृतकशरीर तथा काष्ठपाषाणकी मूर्ति तैसैं

प्रतिमायोग रहै सो प्रायोपगमनमरण है ॥

१७ बहुरि जो केवली मुक्ति प्राप्त होय सो केवलिमरण है ॥

ऐसैं सतरहप्रकार मरण कहे तिनिका संक्षेप ऐसा कीया है, जो, मरण पांच प्रकार है– १ पंडितपंडित, २ पंडित, ३ बालपंडित, ४ बाल, ५ बालबाल. तहां दर्शनज्ञानचारित्रका अतिशयकरि सहित जो केवली भगवानका मरण होय सो तौ पंडितपंडित है. अर रत्नत्रयकी सामान्यताका धारक ऐसा प्रमत्त आदि गुणस्थानवर्ती मुनीनिका मरण सो पंडितमरण है. सम्यग्दृष्टिश्रावकका मरण सो बालपंडितमरण है. अर पूर्वैं च्यारिप्रकार पंडित कहे तिनिमैंसूं एकभी भाव जाकै नांही सो बाल है. अर जो सर्वतैं न्यून होय सो बालबाल है. इनिमें सतरह मरण आगये. तातैं भगवान् तीर्थंकर परमदेव विस्तारकरि सतरह मरण कहे संक्षेपकरि पंचप्रकारकरि कहे हैं ॥ अब पंचप्रकारके नाम कहे हैं ॥ गाथा—

पंडिदपंडिदमरणं । पंडिदयं बालपंडिदं चेव ॥
बालमरणं चउत्थं । पंचमयं बालबालं च ॥ २६ ॥

अर्थ– एक पंडितपंडितमरण, दूजा पंडित, तीसरा बालपंडित, चौथा बाल, पांचवा बालबाल ॥ आगै तीन मरण प्रशंसायोग्य हैं सोही कहे हैं ॥ गाथा–

पंडिदपंडिदमरणं । च पंडिदं वालपंडिदं चेव ॥
एदाणि तिण्णि मरणा- । णि जिणा णिच्चं य संसंति ॥ २७ ॥

अर्थ- जिनेंद्रभगवान् जे हैं ते पंडितपंडितमरण, पंडितमरण, बालपंडितमरण इनि तीन मरणनिकूं नित्यही प्रशंसा करत हैं ॥ आगै ये पांच प्रकार मरण कौनकै होय सो स्वामी कहे हैं गाथा—

पंडिदपंडिदमरणे । खीणकसाया मरंति केवळिणो ॥
विरदाविरदा जीवा । मरंति तदिएण मरणेण ॥ २८ ॥
पाउंपगमणमरणं । भत्तप्पण्णा य इंगिणी चेव ॥
तिविहं पंडिदमरणं । साहुस्स जहुत्तचरियस्स ॥ २९ ॥
अविरदसम्मादिट्ठी । मरंति वालमरणे चउत्थम्मि ॥
मिच्छादिट्ठी य पुणो । पंचमए वालवालम्मि ॥ ३० ॥

अर्थ— क्षीण कहिये नाश हुये हैं कषाय जिनिकै ऐसे भगवान् केवलीका निर्वाणगमन सो पंडितपंडितमरण है। बहुरि विरताविरत जे देशव्रतसहित श्रावक ते सूत्रकी अपेक्षा तृतीयमरण जो बालपंडितमरण ताविषैं मरे हैं। बहुरि आचारांगकी आज्ञाप्रमाण यथोक्तचारित्रके धारक साधुमुनि तिनिकै पंडितमरण होय है, सो पंडितमरण

तीन प्रकार हैं· एक भक्तप्रतिज्ञा, दूजा इंगिनी, तीजा प्रायोपगमन· तिनिमैं भक्तप्रतिज्ञामैं तौ संघसूं वैयावृत्त्य करावै वा आपकी आप करै वा अनुक्रमसूं आहार कषाय देहको त्याग करे है अर इंगिनीमरणमें परकृत वैयावृत्त्य वा आहारपानरहित एकाकी वनमें देहका त्याग करै कदाचित् ऊठना बैठना चालना पसारणा संकोचना सोवना याप्रकार आपकी आप करै परसूं टहल न करावै कदाचित् विनाकराया कोई करै तौ आप मौनी रहै बहुरि प्रायोपगमनविषैं आपका वैयावृत्त्य आपभी न करै परसूंभी नही करावै सूका काष्ठवत् वा मृतककीनांई सर्व कायवचनकी क्रियारहित यावज्जीव त्यागी होय धर्मध्यानसहित मरण करै ये तीन पंडितमरणके भेद हैं, ते आगै विस्तारसहित वर्णन करसीही ॥ बहुरि अविरतसम्यग्दृष्टि व्रतसंयमरहित केवल तत्त्व-निकी श्रद्धाकरि सहित मरै सो बालमरण जानना । बहुरि जाकै सम्यक्त्व व्रत दोऊ नही ऐसा मिथ्यादृष्टि ताकै बालबालमरण है ॥ आगै दर्शनाराधना कौनकै होय सो कहे हैं ॥ गाथा—

तत्थोवसमियसम्मत्तं । खइयं खाउवसमियं वा ॥
आराहंतस्स भवे । सम्मत्ताराहणा पढमा ॥ ३१ ॥

अर्थ— तहां आराधनाविषैं उपशमसम्यक्त्व तथा क्षायिकसम्यक्त्व तथा क्षायोपश-

मिकसम्यक्त्व इनि तीन सम्यक्त्वनिमैं कोई एक सम्यक्त्व आराधन कहिये सेवन करता पुरुषकै प्रथम सम्यक्त्वाराधना होय है ॥ आगै सम्यग्दृष्टि जीवका स्वभाव कहे हैं ॥ गाथा—

सम्मादिट्ठी जीवो । उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहइ ॥
सद्दहइ असब्भावं । अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥ ३२ ॥
सुत्ताउत्तं सम्मं । दरिसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि ॥
सो चेव हवदि मिच्छा- । दिट्ठी जीवो तउपहुदि ॥ ३३ ॥

अर्थ— सम्यग्दृष्टि जीव है सो उपदेश्या जो प्रवचन कहिये जिनागम ताहि श्रद्धान करत है अर आपकै विशेषज्ञान नही होनेतैं तथा आपकूं गुरु जैसा उपदेश दीया तैसाकूं सर्वज्ञकथित मानि गुरूका संबंधतैं असद्भाव कहिये असत्यार्थहू श्रद्धान करत है ॥ बहुरि कोई सम्यग्ज्ञानी सूत्रथकी सत्यार्थ दिखाय जो पदार्थका रूप ताहि हठग्राहतैं वा अभिमानतैं नही ग्रहण करै तौ तिसही कालतैं सो जीव मिथ्यादृष्टि होत है॥

भावार्थ— आपकूं तौ विशेषज्ञान नही था अर गुरु आपनैं असत्यार्थ पदार्थका रूप बतायो तानैं सत्यार्थ परमागमका उपदेश जाणि ग्रहण कीयो सो भगवानका परमागममें श्रद्धाका सद्भावतैं सम्यग्दृष्टिही रह्यो ॥ अर बहुरि सूत्रका अर्थ कोई ज्ञानी

सम्यक् दिखायो अर कही, जो, यो अर्थ पूर्वै समझ्या सो नहीं, अब अविरुद्ध सत्यार्थ ग्रहण करो, अर फेरि अभिमानादिकतैं नहीं ग्रहण करै तौ सूत्रकी अवज्ञातैं उसही कालतैं मिथ्यादृष्टि होत है ॥ अब सूत्र कौनकरिकै कथित है सो कहे हैं ॥ गाथा-

सुत्तं गणहरकहियं । तहेव पत्तेयबुद्धिकहियं च ॥
सुदकेवळिणा कहियं । अभिण्णदसपुव्विकहियं च ॥ ३४ ॥

अर्थ- ए च्यार सूत्रकार परमागममें प्रसिद्ध हैं, इनिके वाक्यनिमें सत्यार्थ पदार्थही प्रगट होय हैं, कदाचित् केवलीकी दिव्यध्वनितैं तफावत नहीं है ॥ सो सूत्र गणधर कहिये च्यारि ज्ञानके धारक अर सात प्रकारकी ऋद्धिनिमैंतैं कोई ऋद्धिके धारक ताका कह्या सूत्र जानना । तथा श्रुतज्ञानावरणका क्षयोपशमतैं परके उपदेशविना आपकी शक्तिका विशेषतैंही ज्ञानसंयमका विधानविषैं जाकै निपुणता प्रवीणता ज्ञायकता होय सो प्रत्येकबुद्धि जानना, सो दूसरा सूत्रकार कह्या । बहुरी जो द्वादशांगका पारगामी (द्वादशांग शास्त्रका ज्ञाता) सो श्रुतकेवली है सो तीसरा सूत्रकार जानना । बहुरि परिपूर्ण दर्शपूर्वका ज्ञाता सो अभिन्नदशपूर्वका धारी चौथा सूत्रकार जानना ॥ आगै इन च्यार प्रकार सूत्रकारनिकी तुल्य और कौनका

वचन ग्रहण करना सो कहे हैं ॥ गाथा---

गिहिदत्थो संविग्गो । अत्थुवदेसे ण संकणिज्जो हु ॥
सो चेव मंदधम्मो । अत्थुवदेसम्मि भयणिज्जो ॥ ३५ ॥

अर्थ— जो गृहीतार्थ कहिये आगमका अर्थकूं प्रमाणनयनिकरि तथा गुरुपरिपाटी-करि तथा शब्दब्रह्मका सेवनकरि तथा स्वानुभवप्रत्यक्षकरि भलैप्रकार सत्यार्थ गृहण कऱ्या होय, बहुरि संसारदेहभोगतैं विरक्त होय, पापतैं भयभीत होय ऐसा सम्यग्ज्ञानी अर वीतरागी अर्थका उपदेशमें नहीं शंका करनेयोग्य है ॥

भावार्थ— ज्ञानी वीतरागीका वाक्य निःशंक ग्रहण करना. अर जो उपदेश-दाता धर्ममें मंद होय, संसारपरिभ्रमणका जाकै भय नाहीं होय सो अर्थका उपदेशविषैं भजनीय कहिये प्रमाण करनेयोग्यभी है अर प्रमाण नहीं करने योग्यभी है. भावार्थ— जो परमागमकी परिपाटीसूं अर्थ मिलिजाय तदि तो प्रमाण करनेयोग्य है अर आगमसूं विरुद्ध हिंसाकी प्रवृत्तिरूप वा रागादिरूप कहै तौ शंका करनेयोग्य है ॥ आगै सम्यक्त्वाराधनाका धारकका स्वरूप कहे हैं ॥ गाथा—

धम्माधम्मागासा- । णि पोग्गळे काळदव्वजीवे य ॥
आणाए सद्दहतो । सम्मत्ताराहउ भणिउ ॥ ३६ ॥

अर्थ— धर्म अधर्म आकाश पुद्गल काल जीव ये छह द्रव्य जे हैं तिन्हैं भगवानका आज्ञाकरि श्रध्दान करतो जीव सम्यक्त्वका आराधक कह्या है॥ औरभी सम्यक्त्वीका कार्य कहे हैं॥ गाथा—

संसारसमावण्णा। य छव्विहा सिद्धिमासिदा जीवा॥
जीवणिकाया एदे। सद्दहिदव्वा हु आणाए॥ ३७॥

अर्थ— पृथ्वी-जल-अग्नि-पवन-वनस्पतिरूप है काय जिनिकै ऐसे पंच स्थावर अर एक त्रस ये छकायके संसारी जीव अर सिद्धि जो अनंतगुण केवलज्ञानादिक त्यानैं प्राप्त भये जे मुक्तजीव ते भगवान् सर्वज्ञकी आज्ञाकरि श्रद्धान करनेयोग्य हैं॥ तथा सम्यग्दृष्टीकूं औरभी पदार्थ श्रध्दान करनेयोग्य हैं तिन्हैं कहे हैं॥ गाथा—

आसवसंवरणिज्जर-। बंधो मोक्खो य पुण्णपावं च॥
तह चेव जिणाणाए। सद्दहिदव्वा अपरिसेसा॥ ३८॥

अर्थ— जिनि भावनिकरि कर्म आत्मामैं आवै ते मिथ्यात्व अविरति कषाय योग ये आस्रव हैं, बहुरि आवते कर्म जिनि भावनिकरि रुकि जाय ते तीन गुप्ति पंच समिति दशलक्षण धर्म बारह भावना बाईस परीषह जीतना अर पंच प्रकार चारित्र पालना ये संवर हैं, बहुरि आत्मप्रदेश अर कर्मप्रदेश परस्पर एकक्षेत्रावगाहरूप होना

सो बंध है, बहुरि आत्माका प्रदेशांथकी एकदेश कर्मका नाश होना झडना सो निर्जरा है, बहुरि आत्माथकी सर्व कर्मप्रदेश छूटि जाना सो मोक्ष है, वांछित सुखकारी वस्तुनैं प्राप्त करै सो पुण्य है, दुःखकारी संयोग मिलावै सो पाप है. ये नव पदार्थ जिनेंद्रकी आज्ञातैं श्रध्दान करनेयोग्य हैं॥ आगे जो सूत्रका एक पद वा एक अक्षरकाभी जो श्रध्दान नहीं करै सो मिथ्यादृष्टि है ऐसैं कहे हैं ॥ गाथा–

पदमक्खरं च एक्कं। पि जो ण रोचेदि सुत्तणिद्दिट्ठं ॥
सेसं रोचंतो वि हु। मिच्छादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ ३९ ॥

अर्थ— जो पुरुष जिनेंद्रसूत्रका कह्या हुवा एक पद तथा एक अक्षरभी श्रध्दान न करै सो और समस्त श्रद्धान करतोहू मिथ्यादृष्टि जानना ॥ आगै मिथ्यादर्शनका स्वभाव कहे हैं ॥ गाथा—

मोहोदएण जीवो। उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि ॥
सद्दहदि असब्भावं। उवइट्ठं अणुवइट्ठं वा ॥ ४० ॥

अर्थ— मोह जो मिथ्यात्व ताका उदयकरिकै यो जीव परमगुरुनिका उपदेश्या हुवाहू प्रवचन जो परमागम ताहि नहीं श्रद्धान करे है अर असत्यार्थ तत्वकूं मिथ्यादृष्टिनिकरि उपदेश्या अथवा नहीं उपदेश्या श्रध्दान करे है ॥ गाथा—

मिच्छत्तं वेयंतो। जीवो विवरीयदंसणो होइ ॥
ण य धम्मं रोचेदि हु। महुरमवि रसं जहा जुरिदो ॥ ४१ ॥

अर्थ— मिथ्यात्व जो दर्शनमोह ताका उदयकूं अनुभव करता जीव सो विपरीत-श्रद्धानी होत है, बहुरि जैसैं ज्वरका रोगीकूं मधुर मिष्ट रस नही रुचै, तैसैं धर्म नही रुचे है; धर्मकथनी धर्मका आचरण आच्छा नही लागे है ॥ आगै अश्रद्धानी जीव बहुत बालबालमरण कीये है सो दिखावे हैं ॥ गाथा—

सुविहियमिमं पवयणं। असद्दहंतेणिमेण जीवेण ॥
बालमरणाणि तीदे। कदाणि काळे अणंताणि ॥ ४२ ॥

अर्थ— भलै प्रकार कह्या हुवाहू भगवानका परमागमकूं नही श्रद्धान करता यह जीव अतीतकाले कहिये गये कालमें अनंते बालबालमरण कीये ॥ इहां गाथामैं बाल शब्द है, ताका अर्थ बालबाल समझना ॥ आगै ज्ञानीकूं यह बुद्धि करनी योग्य है ॥ गाथा—

णिग्गंथं पव्वयणं। इणमेव अणुत्तरं सुपरिसुध्दं ॥
इणमेव मोक्खमग्गो। त्ति मदी कायव्विया तह्मा ॥ ४३ ॥

अर्थ— इहां प्रवचनशब्दकरि निर्ग्रन्थ रत्नत्रय कह्या है, यहही भलैप्रकार शुद्धरागा-

दिरहित केवल आत्माका स्वभाव है, यह रत्नत्रयही निर्ग्रन्थ है, इहां निर्ग्रन्थ कहा? जो ग्रन्थि कहिये संसारकूं रचै दीर्घ करै सो ग्रन्थ मिथ्यात्वादिक, ताका अभाव सो निर्ग्रन्थ है, अर रत्नत्रयही अनुत्तर कहिये सर्वोत्कृष्ट है, यहही मोक्षका मार्ग है, याप्रकार बुद्धि करना योग्य है ॥ आगै सम्यक्त्वके अतीचार कहे हैं ॥ गाथा—

सम्मत्तादीचारा । संका कंखा तहेव विदिगिंछा ॥
परदिट्ठाण पसंसा । अणायदणसेवणा चेव ॥ ४४ ॥

अर्थ— ये पांच सम्यक्त्वके अतीचार कहिये मल दोष हैं ते टालनेयोग्य हैं ॥ शंका कहिये भगवानके वचनामें संशय· कांक्षा कहिये सुंदर आहार स्त्री वस्त्र आभरण गंध माल्यादि विषयनिविषैं आसक्तता आगामी कालमें वांछा· विचिकित्सा कहिये मलिनवस्तूकूं देखि वा दुःखकारी क्षेत्रकालादि देखि वा अशुभकर्मका उदय देखि ग्लानि करना· परदृष्टिप्रशंसा कहिये मिथ्यादृष्टीका तप ज्ञान विद्या क्रिया तिनिकी मनवचनकरि प्रशंसा करना· अनायतनसेवा कहिये मिथ्यात्व बहुरि मिथ्यात्वका धारक बहुरि मिथ्याज्ञान अर मिथ्याज्ञानका धारक बहुरि मिथ्याचारित्र अर मिथ्याचारित्रका धारक ये छप्रकार धर्मके आयतन कहिये स्थान नाहीं, तातैं अनायतन कहिये इनका जो सेवन सो अनायतनसेवन कहिये·

ये पांच अतीचार सम्यग्दृष्टि नहीं लगावै ॥ आगे और सम्यक्त्वके गुण कहे हैं ॥

उवगूहणठिदिकरणं । वच्छल्लपहावणा गुणा भणिदा ॥
सम्मत्तविसोधीए । उवबुंहणकारया चउरो ॥ ४५ ॥

अर्थ—उपगूहन कहिये धर्मविषैं वा धर्मात्माविषैं कोईकै अज्ञानतातैं वा अशक्ततातैं दोष लग्या होय तौ धर्मसूं प्रीति करी दोष आच्छादन करै सो उपगूहन गुण है ॥ भावार्थ- यो जिनेंद्रधर्म अति उज्वल है, अज्ञानी कोऊ यामैं दोष लगावै तौऊ मलिन होय नहीं, तौभी मिथ्यादृष्टिजन ऐसा श्रवण करेंगे तौ धर्मकी निंदा करेंगे- जो, इस धर्ममें कहा है? जे धारे हैं ते खोटेही होय हैं। इसप्रकार धर्ममार्गसूं लोकनिकूं शिथिल करै तौ बडा दोष है, तातैं धर्मात्माके दोष आच्छादन करना सो उपगूहन गुण है ॥ तथा आपकी बडाई न करै अर जैसैं होना भगवान देख्या तैसैं होसी इत्यादिक भवितव्य भावनामैं रत होय सो उपगूहनगुण जानना ॥ बहुरि कोऊ व्रती धर्मात्मा रोगकरि पीडित हुवा तथा आहार पान नहीं मिलवाकरि तथा दुष्टकृत ताडन मारणकरि तथा असहायताकरि वा दुर्भिक्षादिककरि धर्मसूं चलायमान होता होय तौ ताकूं धर्मका उपदेश करि थांभना, जो, हे साधो! आप जिनेंद्रधर्म धार्या है, सो यामैं कष्ट दुःखभी कर्मका उदयकरि आवे है, जो अब व्रतसूं चलायमान होहूगे तोहू कर्म

छांडनेका नही अर दृढ रहोगे तोहू कर्म छांडे नही, तातैं कायर होय धर्मसूं चलायमान होय दोऊ लोक बिगाडना योग्य नही। अर कर्म परलोकमैंभी नहि छांडैगा तातैं अब धर्मतैं चलायमान होनेतैं धर्मकी निंदा होयगी, गुरुकुल लज्जायमान होयगा, अर धर्मकी विराधनातैं अब अनंतानंत कालमैंभी धर्म प्राप्त नही होयगा, अर जो या कहो; हमारै क्षुधावेदना वा तृषावेदना वा रोगवेदना वा सीतउष्णवेदनादिक बहोत है, सो वेदनातैं थंभ्या जाय नही, तौ हो ज्ञानी हो, विचारो- तिर्यंचगतिमैं अनादिकी वेदनाही भुगती तथा नरकगतिकी वेदनानैं विचारो, ऐसी वेदना कैसी है? जो अनंतवार अनंतकाल नही भोगी, अर इहां वेदना कितनीक है? मरणही होयगा मरणतैं कछु अधिक नही, सो एकबार एकदेहमें मरना अवश्यही है, सो अब धैर्य धारण करि आराधनाका शरणतैं मरणभी करो, तो आगै होनहार जे अनंतजन्म-मरण त्यांतैं छूटि जावो, तातैं आराधनाका शरण ग्रहण करो। ऐसी वेदना अनंतवार भोगी इत्यादि उपदेश करि चलतेकूं थांभै, तथा आहार पान देय वैयावृत्य करै, तथा देहकी सेवा करै, हस्तपादादिकका मर्दन करना पूंछना, मल मूत्र कफादिक शरीरके मल उठाय दूरि प्रासुकभूमिमैं क्षेपना, तथा देहका संकोचना पसारना कलोट लिवावना उठावना बैठावना शयन करावना मलमूत्रादिककी बाधा मिटावना निकट रहना रात्रिमैं

जागृत रहना इत्यादि शरीरकी टहल करि, जैसें रोगीका मन चलायमान नहीं होय परमधर्ममें स्थिर होय तैसें सेवा करना ॥ बहुरि तैसैंही व्रती श्रावक तथा अव्रतसम्यग्दृष्टि इनिमैं कोऊप्रकार दुःख आवै तौ तिनिकूंहू धर्मोपदेश देयकरि तथा शरीरमैं रोगादिक होय तौ शरीरकी सेवा करि तथा वस्त्र देनेकरि आहार पान औषध देनेकरि आजीविका देनेकरि धन देनेकरि रहनेका मकान देनेकरि धर्ममें स्थिर करना, सो स्थितीकरण अंग जानना ॥ बहुरि दर्शनज्ञानचारित्रतपके धारक धर्मात्मा पुरुषनिमैं प्रीति करना सो वात्सल्य अंग है, तथा अपने रागादिरहित शुद्ध वीतराग धर्ममय परिणाम तातैं प्रीति करना धारना सो वात्सल्य अंग है ॥ जातैं संसारी जीवनिकी स्त्री पुत्र मित्र कुटुंब धन शरीरादिकमें अत्यंत प्रीति लगि रही है, इनिके अर्थि धर्म बिगाडि हिंसा असत्य परधनहरण कुशील परिग्रह इनिमैं अत्यंत प्रीति करे हैं, रात्रिंदिन देहकूं धोवना खानपान करावना इंद्रिय विषय साधना सोवना इत्यादि शरीरहीका सेवनमें काल व्यतीत करे है, तथा स्त्रीपुत्रमित्रादिकके अर्थि धन उपार्जन करना विदेशमैं धर्मरहितदेशनिमें गमन करना वनसमुद्रनिमें परिभ्रमण करना संग्राममें जावना दुष्टनिकी सेवा करना अभक्ष्यभक्षण करना धर्मतैं द्रोह करना इत्यादिक नरकतिर्यंचगतिके कारणनिमैं वात्सल्यअंगरहित हुवा प्रवर्तें है, तातैं धर्ममें वात्सल्यही

जीवका कल्याण है ॥ बहुरि सम्यग्ज्ञान तप उपदेश तथा पापाचारका त्याग शील ऐसैं प्रकट करै जैसैं जैनीनिका अहिंसाव्रत सत्य शील निर्लोभता विनय ज्ञानाभ्यास दृढता देखि अन्यमार्गीभी प्रशंसा करै, जो, 'मार्ग तौ सत्यार्थ यही है' सो प्रभावना ॥ सो सम्यक्त्वकी शुद्धताके अर्थि उपगूहन स्थितीकरण वात्सल्य अर चौथा प्रभावना ये सम्यक्त्वके वधावनेवाले गुण हैं, सो सम्यग्दर्शनका विनय कहे हैं ॥ गाथा—

अरहंतसिद्धचेइय । सुदे य धम्मे य साधुवग्गे य ॥
आयरियेसूवज्झा- । एसु पवयणे दंसणे चावि ॥ ४६ ॥
भत्ती पूया वण्णज- । णणं च णासणमवण्णवादस्स ॥
आसादणपरिहारो । दंसणविणउ समासेण ॥ ४७ ॥

अर्थ— अरहंत, सिद्ध, अर इनिके चैत्य कहिये प्रतिबिंब, श्रुत जो शास्त्र, धर्म दशलक्षणभाव, साधुसमूह जे रत्नत्रयके साधक, आचार्य जे पंचाचार आप आचरण करें और भव्यजीवानैं आचरण करावै, उपाध्याय जे आप श्रुत पढै अन्य शिष्यानैं पढावैं, प्रवचन जिनेंद्रकी वाणी, अर सम्यग्दर्शन ये दश स्थान कहे तिनिविषैं भक्ति जो इनिके गुणनिमैं अनुराग आनंद उपासना करना तथा पूजा करना, तिनिमैं पूजा दोय प्रकार द्रव्यपूजा भावपूजा, तहां द्रव्यपूजा तो अरहंतादिकके निमित्त जल गंध

अक्षत पुष्पादिकरि अर्घ्यदान करना, अर भावपूजा ऊठि खडा होना, प्रदक्षिणा करना, अंजुली करना, गुणस्तवन करना, तिनके गुण स्मरण करना इत्यादि हैं। बहुरि वर्णजनन, कहिये वर्ण नाम यशका है ताका प्रकट करना, भावार्थ— ज्ञानीजनाकी सभाके मध्य अरहंतादिक जो कहे तिनिके महान् गुणनिका प्रकाश करना। बहुरि अवर्णवाद जो दुष्टजनकरि लगाया दोष अपवादका नाश करना। बहुरि याकी विराधनाका परिहार इत्यादि यह दर्शनविनयका संक्षेप है॥ आगैं सम्यक्त्वका आराधकका स्वरूप कहे हैं॥ गाथा—

सद्दहया पत्तियया। रोचयफासंतया पवयणस्स॥
सयलस्स जे णरा ते। सम्मत्ताराहया होंति॥ ४८॥

अर्थ— जे पुरुष संपूर्ण प्रवचनकूं श्रद्धान करैं, प्रतीति करैं, रुचि करैं, स्पर्शन कहिये अंगीकार करैं ते सम्यक्त्वके आराधक होत हैं॥ गाथा—

एवं दंसणमारा-। हंतो मरणे असंजदो जदि वि कोवि॥
सुविसुद्धतिव्वलेसो। परित्तसंसारिउ होई॥ ४९॥

अर्थ— याप्रकार कोई विशुध्द भई है तीव्र लेश्या जाकी ऐसा असँयमीहू मरणकालमैं दर्शन जो सम्यग्दर्शन ताहि आराधिकरि परीतसंसारी कहिये संसारका अभाव करे

है ॥ भावार्थ– कल्पवासी देवनिमैं तथा उत्तममनुष्यानिमैं अल्प परिभ्रमण करै--बहोत परिभ्रमणका अभाव होय है ॥ आगै सम्यक्त्वाराधनाके तीन प्रकार अर तिनिका फल दोय गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

तिविहा सम्मत्तारा- । हणा य उक्कस्समज्झमजहण्णा ॥
उक्कस्साए सिज्झदि । उक्कस्ससुक्कलेस्साए ॥ ५० ॥
सेसा हुंति भवास- । त्त मज्झिमाए य सुक्कलेस्साए ॥
संखेज्जासंखेज्जा वा । भवा हु सेसा जहण्णाए ॥ ५१ ॥

अर्थ-- सम्यक्त्वआराधना तीन प्रकार है, उत्कृष्ट मध्यम जघन्य । उत्कृष्ट शुक्लेश्यासहित सम्यक्त्वाराधनाकरि निर्वाणनैं प्राप्त होय है। तात्पर्य ऐसा– सो उत्कृष्ट शुक्लेश्या क्षपकश्रेणीमैं क्षीणकषायकै वा सयोगी भगवानकै होय, त्यांकै निर्वाण होयही। बहुरि मध्यम शुक्लेश्यासहित जो सम्यक्त्वाराधनाकरि संसारमें बहोत रहे तो सप्त अष्ट मनुष्य वा कल्पवासी देवका भव धारि निर्वाणनैं प्राप्त होय । मध्यमशुक्लेश्यासहित श्रद्धानी देशव्रती श्रावक वा महाव्रती साधु होय है। सो सात आठ भवसिवाय संसारपरिभ्रमण नही करे है। बहुरि जघन्य शुक्लेश्यासहित जो सम्यक्त्वाराधनाका धारक अविरतसम्यग्दृष्टि ताकै संख्यातभव तथा सम्यक्त्व छूटि

जाय तो असंख्यातभव अवशेष रहे हैं ॥ आगै ये तीन प्रकार सम्यक्त्वाराधनाका स्वामी कहे हैं ॥ गाथा—

उक्कस्सा केवळिणो । मज्झमिया सेससम्मदिट्ठीणं ॥
अविरदसमादिट्ठि- । स्स संकलिठस्स दु जहण्णा ॥ ५२ ॥

अर्थ— उत्कृष्ट सम्यक्त्वाराधना भगवान् केवलीकै होय है। अवशेष जे महाव्रती वा देशव्रती सम्यग्दृष्टीनिकै मध्यम होय है। संक्लेशसहित अविरतसम्यग्दृष्टिकै जघन्य-सम्यक्त्वाराधना होय है ॥ आगै सम्यक्त्वाराधनासहित मरण करै तिनिकी गतिविशेष कहे हैं ॥ गाथा—

वेमाणियणरळोए । सत्तट्ठभवेसु सुक्खमणुभूय ॥
सम्मत्तमणुसरंता । करंति दुक्खक्खयं धीरा ॥ ५३ ॥

अर्थ— सम्यक्त्वाराधनाकूं प्राप्त होते जे धैर्यवान् जीव ते वैमानिकदेवनिके वा उत्तम मनुष्यभवके सप्त अष्ट जन्ममें सुख अनुभवन करिकै संसारका दुःखका अभाव करत हैं ॥ आगै जे सम्यक्त्वतैं भ्रष्ट होय हैं तिनिकी गतिविशेष दिखावे हैं ॥ गाथा—

जे पुण सम्मत्ताउं । पब्भट्ठा ते पमाददोसेण ॥
भामंति दु भव्वा वि हु । संसारमहण्णवे भीमे ॥ ५४ ॥

अर्थ— बहुरि जे जीव सम्यग्दर्शनतैं छूटे चिगे प्रमादादि दोषकरि, ते भव्य हैं तोहू भयानक संसाररूप महासमुद्रमें भ्रमण करत हैं। भावार्थ– भव्य हैं तोहू जो असावधानीतैं सम्यग्दर्शनतैं चिग जाय तो बहुरि सम्यक्त्वका मिलना बहोत दुर्लभ है, जो तीव्र मिथ्यात्व होजाय तो अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र काल त्रसस्थावर योनिमैं परिभ्रमण करे है। कैसा है अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल? जामैं अनंत अवसर्पिणी उत्सर्पिणी व्यतीत होजाय हैं। तातैं सम्यग्दर्शन पाय प्रमादी होय बिगाडना बडाही अनर्थ है॥ आगै सम्यग्दर्शनका लाभका माहात्म्यनैं प्रगट करे हैं॥ गाथा–

संखिज्जमसंखिज्जगुणं । वा संसारमणुसरित्तूणं ॥
दुक्खक्खयं करंते । जे सम्मत्तेणणुसरंति ॥ ५५ ॥
लध्दूण य सम्मत्तं । मुहुत्तकालमवि जे परिवडंति ॥
तेसिमणंताणंता । ण भवंति संसारवासध्दा ॥ ५६ ॥

अर्थ– जे जीव सम्यग्दर्शनका अनुसरण करे हैं, ते संख्यात वा असंख्यात भव संसारपरिभ्रमण करिकै बहुरि दुःखका क्षय करत हैं। बहुरि जे पुरुष अंतर्मुहूर्तकालमात्रभी सम्यक्त्वनैं प्राप्त होय बहुरि सम्यक्त्वतैं पडत हैं, तिनिकैहू

अनंतानंतसंसार वसनेका काल नही होत हैं। भावार्थ- अल्पकालमें संसारका अभाव करत है ॥ इति बालमरणं समाप्तम् ॥

आगे मिथ्यादृष्टि कोऊही आराधनाका आराधक नही यह दिखावे हैं ॥ गाथा-

जो पुण मिच्छादिट्ठी। दढ्ढचरित्तो अदढ्ढचरितो वा ॥
काळं करेज्ज ण हु सो। कस्स वि आराहउ होदि ॥ ५७ ॥

अर्थ— चारित्रमें दृढ होऊ वा चारित्रमें शिथिल होऊ जो मिथ्यादृष्टि मरण करै सो कोईही आराधनाका आराधक नही होत हैं ॥ भावार्थ- मिथ्यादृष्टि व्रतत्यागसहित सावधानीसूं मरण करो वा व्रतत्यागरहित मरण करो वाकै एकहू आराधना नही। मिथ्यादृष्टीका कुमरणही जानना ॥ आगे मिथ्यात्वके कितने प्रकार हैं सो कहे हैं ॥ गाथा-

तं मिच्छत्तं जमस-। द्दहणं तच्चाण होइ अत्थाणं ॥
संसइयमभिगाहियं। अणभिगाहियं च तं तिविहं ॥ ५८ ॥

अर्थ- जो तत्वार्थाका अश्रध्दान सो मिथ्यादर्शन है ॥ सो मिथ्यात्व तीन प्रकार है, एक संशयित, दूजा अतिगृहीत, तीसरा अनभिगृहीत। तहां संशय ज्ञानसहित जो श्रध्दान सो संशयितमिथ्यात्व है। बहुरि परोपदेशकरि ग्रहण कीया

जो मिथ्यात्व सो अभिगृहीत कहिये अर परोपदेशविनाही जो विपरीतश्रद्धान सो अनभिगृहीत है, सो अनादितैं संसारी जीवनिकै है ॥ आगे मिथ्यात्वका माहात्म्य प्रकट करे हैं ॥ गाथा—

जे वि अहिंसादिगुणा । मरणे मिच्छत्तकडुकिदा होंति ॥
ते तस्स कडुगदोद्धिय— । गदं व दुध्दं हवे अफला ॥ ५९ ॥
जह भेसजं विदोसं । आहवह विसेण संजुदं संतं ॥
तह मिच्छत्तविसजुदा । गुणा वि दोसावहा होंति ॥ ६० ॥

अर्थ— जे अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य परिग्रहत्याग गुण ते मरणका अवसरमें मिथ्यात्वकरिकै कटुकतानैं प्राप्त भये ते कडवी तूंबीमें प्राप्त भयो जो दुग्ध ताकीनांई निष्फल होत हैं ॥ भावार्थ- जैसैं दुग्ध मिष्ट है सुगंध है बलकारी है, तथापि कडवी तूंबीमें धर्या हुवा कटुकतानैं प्राप्त होत है। तैसैं अहिंसादिकव्रतहू मिथ्यादृष्टीकै संसारपरिभ्रमणका कारण है तथा निष्फल है ॥ बहुरि दूसरा दृष्टांत कहे हैं- जैसैं औषध महासुंदरगुणसहित रोगापहारीहू विषकरि सँयुक्त हुवा दोषका वहवाहाला होय है, तैसैं मिथ्यात्वसंयुक्त अहिंसादि शीलसँयमादि गुणहू संसारपरिभ्रमणदोषका कारण होय है ॥ औरभी मिथ्यात्वके दोष वहनेका दृष्टांत कहे हैं ॥ गाथा—

दिवसेण जोयणसयं । पि गच्छमाणो सइच्छिदं देसं ॥
अण्णंतो गच्छंतो । जह पुरिसो णेव पाउणइ ॥ ६१ ॥
घणिदं पि संजमी तो । मिच्छादिट्ठी तहा ण पावेइ ॥
इट्ठं णिव्वुइमग्गं । उग्गेण तवेण जुत्तो वि ॥ ६२ ॥

अर्थ--- जैसैं कोई पुरुष एकदिनमें सो योजन गमन करताहू उलटै मारग चालै तौ आपका वांछित देशकूं प्राप्त नही होय है। तैसैंही मिथ्यादृष्टि अतिशय करिकै संयममें प्रवर्ततो संतो उग्र जो तीव्र तपकरि संयुक्त हुवो संतोभी इष्ट ऐसा निर्वाणमार्ग जो मोक्षका उपाय, ताहि नहींही प्राप्त होय है॥

भावार्थ--- जैसैं कोई पुरुषमैं एक दिनमें सो योजन जानेकी शक्ति थी, अर पूर्वदिशामैं एक योजन आपकै प्राप्त होनेयोग्य इष्टस्थान था, परंतु पश्चिमादिशाकूं चाल्या, सो ज्यौं ज्यौं जाय त्यौं त्यौं आपका इष्टस्थान दूरि रहता चल्या जाय; तैसैं कोई पुरुष मोक्षका मार्ग जो सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र त्यांसूं अपूठो बहोत तप व्रत करतोभी मोक्षमार्गकूं नांही प्राप्त होय है॥ जो व्रतशीलतपसंयुक्तही मिथ्यादृष्टि संसारपरिभ्रमण करै, तो जो व्रतादिरहित मिथ्यादृष्टि संसारपरिभ्रमण करै सो तो ठीकही है या दिखावे हैं॥ गाथा–

जस्स पुण मिच्छादिट्ठि-। स्स णत्थि सीळं वदं गुणो चावि ॥
सो मरणे अप्पाणं । किहं ण कुणादि दीहसंसारं ॥ ६३ ॥

अर्थ- जो मिथ्यादृष्टीके मरणका अवसरमें शील नही व्रत नही गुण नही सो आपनै दीर्घसंसारपरिभ्रमणरूप कैसैं नही करै? करैही करै ॥ आगे औरहू मिथ्यात्वजनित दोष कहे हैं ॥ गाथा-

एक्कं पि अक्खरं जो । अरोचमाणो मरेज्ज जिणदिट्ठं ॥
सो वि कुजोणिणिवुड्डो । किं पुण सव्वं अरोचंतो ॥ ६४ ॥

अर्थ- जो जिनेंद्रका उपदेश्या एकहू अक्षर नही रुचि करै, नही प्रीति करै, सोभी कुयोनि जो एकेंद्रियादि तिनिमैं डूबत है; तो सर्व जिनवचन नही रुचि करतो जिनवचनसूं पराङ्मुख कैसैं संसारमें नही डूबै? डूबैही ॥ गाथा—

संखेज्जसांखेज्जा- । णंता वा होंति वालवालम्मि ॥
सेसा भव्वस्स भवा । णंताणंता अभव्वस्स ॥ ६५ ॥

अर्थ— जो भव्यजीव मिथ्यात्वसहित बालबालमरणविषैं मरण करे हैं तिनिकै संख्यात वा असंख्यात वा अनंतभव संसारमें बाकी है अर जे अभव्य हैं तिनिकै अनंतानंत भवपरिभ्रमण होयगा भवका अंत नही होयगा ॥

इति बालबालमरणं समासं ॥ याप्रकार बालमरण तथा बालबालमरण तो कह्या ॥ अब पंडितमरणका वर्णनमें आचार्य कहनेकी प्रतिज्ञा करे हैं ॥ गाथा—

पुव्वं ता वण्णेसिं । भत्तपइण्णं पसत्थमरणेसु ॥
उस्सुण्णं सा चेव हु । सेसाणं वण्णणा पच्छा ॥ ६६ ॥

अर्थ— प्रशस्तमरण जो पंडितमरण ताके विषैं प्रथमही भक्तप्रत्याख्यान नामा मरणकूं कहिसूं । मरणविषैं अतिशयकरि यहही प्रशंसायोग्य है। शेष जे इंगिनीमरण प्रायोपगमनमरण पंडितपंडितमरण पीछै कहियेगा ॥ आगै भक्तप्रतिज्ञमरणके भेद कहे हैं ॥ गाथा—

दुविहं तु भत्तपच्च- । क्खाणं सविचारमध व अविचारं ॥
सविचारमणागाढे । मरणे सपरक्कमस्स हवे ॥ ६७ ॥

अर्थ— भक्तप्रत्याख्यानमरण दोय प्रकार है। एक सविचार दूजा अविचार ॥ जहां मरणका निश्चय नहीं होय बहोत कालमें मरण होणहार होय तहां तो आगे कहेंगे जे चालीस अर्हादिक अधिकार तिनिका विचार जो विकल्प तिनिकरि सहित मरण पराक्रमसहित जो आराधना मरणमें उत्साहसहित जीवताकै होय है ॥ बहुरि अविचार भक्तप्रत्याख्यान अर्हादि चालीस अधिकारका विचाररहित शीघ्र आया जो मरण सो

उत्साहरहितकै होय है ॥ आगै सविचार भक्तप्रत्याख्यानकूं कहे हैं ॥ गाथा-

सविचारभत्तपच्च- । क्खाणस्सिणमो उवक्कमो होइ ॥
तत्थ य सुत्तपदाइं । चत्तालं होंति णेयाई ॥ ६८ ॥

अर्थ--- इहां सविचारभक्तप्रत्याख्यानको आरंभ होय है । तहां सविचारभक्तप्रत्याख्यानमें चालीस अधिकार जाणिवेजोग्य हैं ॥ आगै चालीस अधिकारनिके नाम कहे हैं ॥ गाथा—

अरिहे लिंगे सिक्खा । विणयसमाही य अणियदविहारो ॥
परिणामोवधिजहणो । सिदी य तह भावणाउ य ॥ ६९ ॥
सल्लेहणा दिसा खा- । मणा य अणुसिट्टि परगणे चरिया ॥
मग्गण सुट्ठिय उवसं- । पया य पडिछा य पडिलेहा ॥ ७० ॥
आपुच्छा य पडिच्छ- । णमेक्कस्सालोचणा य गुणदोसा ॥
सेज्जा संथारो वि य । णिज्जवय पयासणा हाणी ॥ ७१ ॥
पच्चक्खाणं खामण । खमणं अणुसिट्टि सारणाकवचे ॥
समदाझाणे लेस्सा । फलं विजहणा य णेयाइं ॥ ७२ ॥

अर्थ— १ अर्ह, २ लिंग, ३ शिक्षा, ४ विनय, ५ समाधि, ६ अनियतविहार, ७

परिणाम, ८ उपधित्याग, ९ श्रिति, १० भावना, ११ सल्लेखना, १२ दिशा, १३ क्षमण, १४ अनुशिष्टि, १५ परगणचर्या, १६ मार्गण, १७ सुस्थित, १८ उपसंपदा, १९ परीक्षा, २० प्रतिलेख, २१ आपृच्छा, २२ प्रतिच्छन्न, २३ आलोचना, २४ गुणदोष, २५ शय्या, २६ संस्तर, २७ निर्यापक, २८ प्रकाशन, २९ हानि, ३० प्रत्याख्यान, ३१ क्षामण, ३२ क्षमण, ३३ अनुशिष्टि, ३४ सारणा, ३५ कवच, ३६ समता, ३७ ध्यान, ३८ लेश्या, ३९ फल, ४० शरीरत्याग. याप्रकार चालीस अधिकार पंडितमरणका भेद जो सविचार-भक्तप्रत्याख्यान ताकेंविषें जानने ॥

इनिका सामान्य अर्थ ऐसा है ॥ जो ऐसा पुरुष सविचार भक्तप्रत्याख्यानकैं योग्य है अर ऐसा योग्य नहीं सो अर्ह अधिकारमें ऐसा वर्णन है ॥ बहुरि आराधना करनेके योग्य लिंगका लिंगाधिकारमें वर्णन है ॥ बहुरि श्रुताध्ययनकी शिक्षा ऐसा शिक्षाधिकारमें वर्णन है ॥ विनय करनेका अधिकार चौथा ॥ मनकी एकता शुद्धोपयोगमें वा शुभोपयोगमें करना यह समाधि अधिकार पांचमा ॥ अनेकक्षेत्रानिमें विहार करना ऐसा अनियतविहार अधिकारमें है ॥ आपकै करनेयोग्य कार्यका है विचार जामैं ऐसा परिणाम अधिकार है ॥ परिग्रहका त्यागका उपधित्याग अधिकार है ॥ शुभभावनिकी निश्रेणीरूप श्रिति अधिकार है ॥ भावनाका

भावना अधिकार है ॥ विषयकषाय क्षीण करनेका सल्लेखना अधिकार है ॥ परलोकको राह दिखावनेहाले आचार्यनिका वर्णन दिशा अधिकारमें है ॥ अपने संघकूं क्षमा ग्रहण कराय अन्यसंघमें जानेका अवसरमें क्षमा ग्रहण करनेका क्षमण अधिकार है ॥ अपने संघके मुनिनिकूं तथा नवीन आचार्यकूं शिक्षाकरि परसंघमें जाय है तहां शिक्षाका वर्णनका अनुशिष्टि अधिकार है ॥ परगणगमनका परगणचर्या अधिकार है ॥ आपकै रत्नत्रयकी शुद्धितासहित समाधिमरण करावनेवाले आचार्यका तलास करना ऐसा मार्गण अधिकार है ॥ परका वा आपका उपकारमें सम्यक् तिष्ठनेका सुस्थित अधिकार है ॥ आचार्यनिकूं प्राप्त होनेरूप उपसंपदा अधिकार है ॥ संघका वा वैयावृत्य करनेवालेका वा आराधना करनेवालेका उत्साह वा आहारमें अभिलाष त्याजनेमें समर्थता असमर्थताका है वर्णन जामैं ऐसा शिक्षा अधिकार है ॥ आराधना होनेका निश्चयके अर्थि निमित्त देखना वा देशकालादिका विचार ऐसा प्रतिलेख अधिकार है ॥ आराधनाकी विक्षेपरहित सिद्धि होसी वा नही होसी हमारै यह मुनि ग्रहणयोग्य है वा नही है ऐसा संघकूं प्रश्न करना सो आपृच्छा अधिकार है ॥ संघका अभिप्रायपूर्वक क्षपकका ग्रहण करना प्रतिच्छन्न अधिकार है ॥ गुरुनिकै आपका अपराध कहना ऐसा आ-

लोचना अधिकार है ॥ गुणदोष दिखावनेरूप गुणदोषाधिकार है ॥ आराधकके योग्य वसतिकाका शय्या अधिकार है ॥ संस्तरका वर्णनरूप संस्तर अधिकार है ॥ आराधकके आराधनामैं सहायरूप निर्यापकनिका वर्णनका निर्यापकाधिकार है ॥ अंतमें आहारका प्रकाशनका प्रकाशन अधिकार है ॥ क्रमतें आहारका त्यागका हानि नामा अधिकार है ॥ त्रिविध आहारका त्यागका प्रत्याख्या- नाधिकार है ॥ आचार्यादि निर्यापकनिकूं क्षमा करावना क्षामण अधिकार है ॥ आप क्षमा करना क्षमण अधिकार है ॥ निर्यापकाचार्य हैं ते संस्तरमैं तिष्ठते क्षपककूं शिक्षा करे, तहां शिक्षाका अनुशिष्टि अधिकार है ॥ दुःखवेदनातैं मोहनैं प्राप्त हुवा वा अचेत हुवाकै चेतना प्रवर्तावना सारणा अधिकार है ॥ जैसैं कवच जो वकतर तातैं सेंकडा बाणानिका निवारण हुई है, तैसैं धर्मोपदेशादि वाक्यनिकरि दुःखनिवारणतारूप कवच अधिकार है ॥ जीवन मरण लाभ अलाभ संयोग वियोग सुखदुःखादिमैं रागद्वेषका निराकरणरूप समता अधिकार है ॥ एकाग्र चित्त रोकनेरूप ध्यानका अधिकार है ॥ लेश्यानिका वर्णनरूप लेश्याधिकार है ॥ आराधनाकरिकै साध्य होय सो फलाधिकार है ॥ आराधकका शरीरका त्यागका देहत्याग अधिकार है ॥ ऐसे भक्तप्रत्याख्यानम- रणमें चालीस अधिकार हैं ॥ तिनिकूं अब भिन्नभिन्न वर्णन करिये हैं ॥ आगैं ऐसा

पुरुष आराधनाकै जोग्य है वा ऐसा जोग्य नहीं है ऐसैं अर्ह नामा अधिकार छ गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

वाहिव्व दुप्पसज्झा । जरा व सामण्णजोगहाणिकरी ॥
उवसग्गा वा देविय- । माणुसतेरच्छिया जस्स ॥ ७३ ॥
अणुलोभा वा सत्तू । चारित्तविणासया हवे जस्स ॥
दुब्भिक्खे वा गाढे । अडवीए विप्पणट्ठो वा ॥ ७४ ॥
चक्खुं व दुब्बलं ज- । स्स होज्ज सोदं व दुब्बलं जस्स ॥
जंघावळपरिहीणो । जो ण समत्थो विहरिदुं वा ॥ ७५ ॥
अण्णम्मि चावि एदा- रिसम्मि आगाढकारणे जादे ॥
अरिहो भत्तपइण्णाए । होदि हु विरदो अविरदो वा ॥ ७६ ॥
उस्सरइ जस्स चिरमवि । सुहेण सामण्णमणदिचारं च ॥
णिज्जावया य सुलहा । दुब्भिक्खभयं च जदि णत्थि ॥ ७७
तस्स ण कप्पदि भत्त- पइण्णमणुवट्ठिदे भये पुरदो ॥
सो मरणं इच्छंतो । होदि हु सामण्णणिव्विण्णो ॥ ७८ ॥

अर्थ— ऐसा पुरुष भक्तप्रत्याख्यानकै योग्य है- जाकै व्याधि दुःखकरिकैहू

दूरि होने समर्थ नही होय। तथा श्रामण्य जो साधुपणाकी प्रवृत्तिकी हानि करनेवाली जाकै जरा आई होय-जिस जरातैं चारित्रधर्म पालवेमैं समर्थ नही होय जराका कहा अर्थ है? जीर्यंते कहिये रूप आयु बलादिक गुण जा अवस्थामैं विनासनैं प्राप्त होजाय सो जरा है। तथा देव मनुष्य तिर्यंच अचेतनकृत उपसर्ग जाकै आया होय, तथा जाकै चारित्रधर्मका विनाश करनेहाला शत्रु कहिये वैरी अनुकूल होय अथवा अनुकूल कहिये कुटुंबादिक बांधव स्नेहतैं वा मिथ्यात्वकी प्रबलतातैं वा अपने भरणपोषणके लोभतैं चारित्रधर्म विनाशनेकूं उद्यमी होय, तथा जगतका नाशका करनेहाला दुर्भिक्ष आजाय, जामैं अन्नपान मिलना कठिन होजाय, तथा महान् वनमें दिशा भूल होय वनके मध्य चल्यो जाय "जहां मार्ग बतावनेवाला कोऊ नही वा जिसतरफ जाय तिसतरफ सैंकडा कोंसां वनही होय" तहां वनमें सन्यासकी योग्यता हैही। तथा नेत्र जाका दुर्बल होजाय जो ईर्यापथादि सोधने समर्थ नही होय। तथा कर्ण इंद्रिय शब्दग्रहणसमर्थ नही होय। तथा जंघा बलरहित होजाय जो विहार करनेकूं वा खडे आहार लेनेकूं समर्थ नही होय। इत्यादि औरहू दृढ कारण होते संते विरत जो साधु वा देशव्रती श्रावक वा अविरत जो अव्रतसम्यग्दृष्टि भक्तप्रत्याख्यानमरणकै अर्ह कहिये योग्य है॥

भावार्थ— एते पूर्वै कहे जे धर्म अर आयु विनशनेके कारण तिनको आवता संता अनंतकालमें फेरि मिलना है दुर्लभ जाका ऐसा धर्मकी रक्षाके अर्थि आराधनामरण अंगीकार करना ॥ देह तौ विनाशीक है, विनसैहीगा, कोटि उपायनिकरि नही रहै, अर अनंतवार धारण करिकरि छोड्या याकी रक्षाकरि कहा? अर यह आराधनामरण जामैं देह मरै अर ज्ञानदर्शनसहित आत्मा नही मरै, ऐसा मरण कदेही नही हुवा, जो आराधनामरण होता तो बहुरि संसारपरिभ्रमण नही करता, तातैं पूर्वोक्त कारण होता आराधनामैं मंदोद्यमी नहीं रहना ॥

बहुरि जाकै बहोत काल सुखकरिकै मुनिपणा निरतिचार चारित्र पालता होय अर आराधनाका प्रवर्त्तक निर्यापकाचार्यभी सुलभ होय अर दुर्भिक्षादिकका भयभी नही होय औरभी असाध्य रोगादिक शरीरमें नाही आया होय तथा औरहू मरणका कारण सन्मुख नही होय ताकूं ॰भक्तप्रत्याख्यान नामा मरण करना योग्य नही ॥ अर जो दशलक्षणधर्म रत्नत्रयधर्म देहसूं आच्छी रीति पालता होय धर्ममें भंग नही दीखता होय अर धर्म सधताहू जो मरण चाहे है अर आहार त्यागिकरि मरण करे है सो रत्नत्रयधर्मसूं विरक्त हुवा ॥ जातैं त्याग व्रत तपसूं पराङ्मुख हुवा जो जैसैंतैसैं मरि जावना मुनिव्रतसूं अपूठाही हुवा । दीर्घ आयु विद्यमान होता अर धर्मसेवन बनता

अर आहारपान आचारांगकी आज्ञाप्रमाण प्राप्त होताभी जो आहारत्याग करि अकालमें मरण करे है सो आत्मघाती है ॥

भावार्थ— धर्म पालताभी भोजन त्यागि संन्यासमरण करे है ताकै कहा सिद्ध होय है ? देहनैं मार्‍या कहा होयगा ? अन्यपर्याय और धारण करेगा। या देहकूं त्याग्या कहा होय? मरण करि व्रत बिगाड्या अर नवा देह और धार्‍या, परंतु कर्ममय कार्मणदेह—अनंतानंतदेह धारण करनेका बीज, सो तौ आहार त्यागि मरि गया नहींही छूटैगा, नवीन नवीन अन्यदेह धारण करेगा। तातैं देहधारण करनेतैं विरक्त भये जे सम्यग्ज्ञानी ते औदारिक देहकूं तौ योग्य आहार देय रक्षा करे हैं अर अष्टकर्ममय कार्मणदेह ताके मारनेमें यत्न करे हैं। जो यो विद्यमान औदारिकदेह है याहीनैं मार्‍या जन्ममरणतैं छूटि जाय, तौ याका मारना तौ सुलभ है। अग्निमें बलि मरि जाय, शस्त्रघातमें मरि जाय, जलमें डुबनेतैं मरि जाय, श्वासके रोकनेतैं, विषभक्षण करनेतैं, पर्वतवृक्षादिकनितैं पडनेतैं, भूमीमैं गडनेतैं, आहारत्याग करनेतैं मरि जाय इस देहकूं मारे कुछभी कल्याण नहीं है ॥ यो दुर्लभ मनुष्यका देह पाय अखंड रत्नत्रयधर्मकी आराधना करि अष्टकर्ममय कार्मणदेहकूं मारना योग्य है ॥ जितने या देहतैं सामायिकादिक आवश्यक

तप व्रत सँयमादिक सधता दीखै तितने रक्षाही करनी ॥

अर जहां धर्म रहता नहीं दीखे तथा अवश्य मरणका कारण अतिवृद्धपणा असाध्यरोग दुष्टनिकृत उपसर्ग आजाय, तहां कायरता छोडि परमधर्मका शरण ग्रहण करि सल्लेखनामरण करना योग्य है ॥ अर आच्छी रीति धर्म सधताहू जो सल्लेखनामरण करि मर्‍यो चाहे सो रत्नत्रयधर्मसूं पराङ्मुखही हुवो आत्मघातकरि संसारपरिभ्रमण करेगा । रत्नत्रयका लाभ ताकै अनंतकालहूमें दुर्लभ होयगा ॥ तातैं कर्मका दीया शुभ अशुभका उदयतैं आत्माकूं भिन्न करि रत्नत्रयाराधना करना उचित है । अर पूर्वोक्त संन्यासके कारण प्राप्त होय तदि संन्यासमरण करनेमें विलंब नहीं करना अर निरंतर समाधिमरण करनेमें वांछा तथा उद्यम राखना श्रेष्ठ है ॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानके चालीस अधिकारनिमें अर्ह नामा पहला अधिकार छ गाथानिमें समाप्त कीया ॥ आगै लिंगाधिकार गाथा बावीसकरि कहे हैं ॥ गाथा–

उस्सग्गियलिंगगद- । स्स लिंगमुस्सग्गियं तयं चेव ॥
अववादियलिंगस्स वि । पसत्थमुवसग्गियं लिंगं ॥ ७९ ॥

अर्थ— जाकै सर्वोत्कृष्ट जो निर्ग्रंथलिंग ताकै तौ औत्सर्गिकलिंगही संन्यासका अवसरमें श्रेष्ठ है अर जाकै अपवादिकलिंग होय ताकैहू औत्सर्गिकलिंग धारण

करना प्रशंसायोग्य है ॥ गाथा—

जस्स वि अव्वभिचारो । दोसो तिट्ठाणिउ विहारम्मि ॥
सो वि हु संथारगदो । गेह्णिज्जोसुग्गियं लिंगं ॥ ८० ॥

अर्थ— जाके विहारविषैं त्रैस्थानिक दोष नही व्यभिचरै सोहू संन्यासकूं प्राप्त हुवा सर्वोत्कृष्ट निर्ग्रन्थलिंग धारण करै ॥ इहां त्रैस्थानिकदोषका विशेष हमारे जाननेमैं नही आया तातैं विशेष नही लिख्या है ॥ गाथा—

आवसथे वा अप्पा- । उग्गे जो वा महद्धिउ हिरिमं ॥
मिच्छजणे सजणे वा । तस्स हु होज्ज अववादियं लिंगं ॥ ८१ ॥

अर्थ— जातैं पूर्वैं भक्तप्रत्याख्यानमरण करनेवालाकी योग्यतामैं सँयमी तथा अव्रती असँयमी गृहस्थकूं वर्णन कीया है, तहां जो अव्रती वा अणुव्रती गृहस्थ भक्तप्रत्याख्यानसंन्यासमरण धारण कीयो चाहै, अर जाकै संन्यासकै योग्य स्थान वसतिका नही होय-अयोग्य होय, अथवा आप गृहस्थ महान् ऋद्धिमान् राजादिक वा मंत्री वा राजश्रेष्ठी होय, वा संन्यास करनेवाला गृहस्थ लज्जावान् होय-जो लज्जा दूरि करनेकूं समर्थ नही होय अथवा जाके स्वजन जे स्त्रीपुत्रादिक मिथ्यादृष्टि होय, ताकूं उत्कृष्टलिंग जो निर्ग्रन्थलिंग होना न बनै, तातैं अपवादलिंग जो उत्कृष्ट

श्रावकका लिंगही होय है॥ आगै इहां लिंगमें च्यार प्रकार भेद हैं सो कहे हैं ॥ गाथा—

आचेलक्कं लोचो । वोसट्टसरीरदा य पडिलिहणं ॥
एसो हु लिंगकप्पो । चदुव्विहो होदि उस्सग्गे ॥ ८२ ॥

अर्थ— इहां उत्सर्गलिंगविषैं च्यार प्रकार हैं ॥ १ आचेलक्य कहिये वस्त्रादिक सर्व परिग्रहका त्याग, अर २ लोच कहिये हस्तकरि केशनिका उपाडना, अर ३ व्युत्सृष्टशरीरता कहिये देहसूं ममत्वका त्याग करि देहमें रहना, ४ प्रतिलेखन कहिये जीवदयाका उपकरण मयूरपिच्छिका राखना ये च्यारि निर्ग्रंथलिंगके चिह्न हैं ॥ भावार्थ— एक तो वस्त्र आभूषण शस्त्र इत्यादिक समस्तपरिग्रहरहितपणा, दूजा लिंग मस्तक मूंछ डाडीके केशनिका लोंच, तीसरा लिंग देहसूं ममतारहितपणा, चौथा लिंग मयूरका पांखांकी पींछी राखना, ये च्यारि मुनिपणाके बाह्यलिंग हैं। इनिमैं एकभी घाटि होय तो मुनिपणा नहीं है, तदि वंदनादिक आदरकै योग्य कैसे होय ॥ आगै जो स्त्रीपर्यायमें संन्यासधारण करनेकी इच्छा करै, ताका लिंग कहे हैं ॥ गाथा—

इत्थी वि य जं लिंगं । दिट्ठं उंसग्गियं च इदरं वा ॥
तं तह होदि हु लिंगं । परियत्तमुवधिं करंतीए ॥ ८३ ॥

अर्थ— बहुरि अल्पपरिग्रहकूं धारती जे स्त्री तिनकैहू औत्सर्गिकलिंग वा अपवादलिंग

दोऊ प्रकार होय है ॥ तहां जो सोलह हस्तप्रमाण एक सुपेद वस्त्र अलपमोलका तातैं पगकी एडीसूं लेय मस्तकपर्यंत सर्व अंगकूं आच्छादन करि अर मयूरपिच्छिका धारण करती अर ईर्यापथमें दृष्टि धारण करती, लज्जा है प्रधान जाकै, सो पुरुषमात्रमें दृष्टि नही धारती, पुरुषनितैं वचनालाप नही करती, अर ग्रामके वा नगरके अति नजीकहू नही अर अतिदूरहू नही ऐसी वसतिकामैं अन्य आर्यिकानिका संघमें वसती, गणिनीकी आज्ञा धारण करती, बहोत उपवासादिक तपश्चरणमें प्रवर्तती श्रावकके घर अयाचिकवृत्तिकरि दोषरहित अंतरायरहित आपके निमित्त नही कीयो जो प्रासुक आहार ताहि एकवार बैठिकरि मौनतैं ग्रहण करती, आहारका अवसरविना गृहस्थनिके घर धर्मकार्यविना नही गमन करती, निरंतर स्वाध्यायधनमें लीन रहती, एकवस्त्रविना तिलतुषमात्रहू परिग्रह नही ग्रहण करती, पूर्व अवस्थासंबंधी कुटुंबादिसूं ममत्वरहित वसती, ऐसी जो स्त्री ताकै जो ए पंचपापनिका "मन वचन काय कृत कारित अनुमोदनातैं" त्याग करि व्रतधारण समितिका पालना सोही आर्यिकाका व्रतरूप औत्सर्गिकलिंग कहिये सर्वोत्कृष्ट लिंग है ॥ स्त्रीपर्यायमें व्रतनिकी याही परिपूर्णता है, तातैं उपचारकरि महव्रत कहिये है ॥ अर निश्चयकरि तो स्त्रीकै अणुव्रतही है, जातैं भगवानका परमागममें स्त्रीनिकै पांच गुणस्थानही कहे हैं—देशव्रतपर्यंतही होय है ॥

बहुरि जो गृहमें वसिकरि, अणुव्रत धारण करि, शील संयम संतोष क्षमादिरूप रहना यह स्त्रीनिकै अपवादलिंग है। सो संस्तरमें दोऊही होय हैं॥ आगै कोऊ कहै, जो, रत्नत्रयकी उत्कृष्ट भावना करिकैही मरण करना, वस्त्रादिरहितलिंग ग्रहणकरि कहा गुण होय है? तातैं लिंगग्रहणमें गुण दिखावे हैं॥ गाथा—

जत्तासाधणचिह्नं। करणं जयपच्चयाद ठिदिकरणं॥
गिहिभावविवेगा वि य। लिंगग्गहणे गुणा होंति॥ ८४॥

अर्थ— यात्रा जो मोक्षके अर्थि गमन, ताका करण जो रत्नत्रयका चिन्हका कारण निर्ग्रंथलिंग है, अथवा यात्रा जो शरीरकी स्थितिका कारण जो भोजन, ताका साधन जो कारण ताका यह निर्ग्रंथलिंग चिन्ह कारण है॥ भावार्थ-- निर्ग्रन्थलिङ्गतैं भोजनहू सुलभ होत है, जातैं गृहस्थवेषकरिकै तिष्ठतो गुणवानहू सर्व लोकांकै अंगीकार करनेयोग्य नही होय है, ताकूं कोऊ भोजनदानहू बाहुल्यताकरि नही देत है, दानभी गृहस्थनैं याचनाविना सुलभ नही अर भोजनविना शरीरकी स्थिति नहि, शरीरकी स्थितिविना रत्नत्रयभावनाकी आधिक्यता नही, रत्नत्रयकी भावनाकी आधिक्यताविना मुक्ति नही, तातैं निर्दोष आहार अयाचिकवृत्तिकरि रत्नत्रयकी प्रवृत्तिके अर्थि ग्रहण करता जो साधु ताकै यह निर्ग्रन्थलिङ्गही प्रधान है॥

बहुरि जगत जो लोक, ताकै निर्ग्रन्थलिङ्ग प्रतीतिका कारण है ॥ जातैं देहादि-
कर्मं ममत्वका त्यागी होयगा सोही यह सर्व परीषह सहनेकूं समर्थ हुवा निर्ग्रंथलिंग
धारैगा, तातैं निर्ग्रंथलिंगही वीतरागी मोक्षका मार्ग है यह प्रतीति करे है ॥ बहुरि यह
निर्ग्रंथलिंग आपका आत्माकी स्थितीकरणका कारण है। जातैं मोक्षके अर्थि सर्वप-
रिग्रहको त्यागि दिगंबर जो मैं ताकै रागकरि कहा प्रयोजन है? तथा द्वेषकरि वा
मानकरि तथा मायाकरि वा लोभकरि मोहकरि शरीरका संस्कारकरणकरि परीषहउप-
सर्गतैं कायर होनेकरि कहा प्रयोजन है? मैं तौ सर्वका त्यागी निर्ग्रंथ हूं ऐसैं आत्माकूं
रत्नत्रयमें स्थिर करना है ॥

बहुरि गृहस्थभावतैं जुदापणाहू निर्ग्रंथलिंगहीतैं होत है। जातैं निर्ग्रंथलिंग धारै
ताकै यह भावना होय, जो, मैं त्यागी होय दुर्गतिका कारण जो क्रोध मान माया
लोभ इनिमैं कैसैं प्रवर्तूं? गृहस्थकीसी क्रिया करूं तौ लोकनिंद्यभी हूं अर दुर्गतिभी
जाऊं! तातैं सँयमरूप प्रवर्तनाही श्रेष्ठ है ॥ याप्रकार निर्ग्रंथलिंगतैं गुण प्रकट होय हैं ॥
आगै औरहू निर्ग्रंथलिंगके गुण कहे हैं ॥ गाथा—

गंथच्चाउं लाघव-। मप्पडिलिहणं च गदभयत्तं च ॥
संसज्जणपरिहारो। परिकम्मविवज्जणा चेव ॥ ८५ ॥

अर्थ— निर्ग्रंथ होय ताकै परिग्रहमें मूर्च्छाही उठि जाय है स्वप्नांमैंभी चाह नही उपजै, तातैं परिग्रहत्याग गुण निर्ग्रंथलिंगतैंही होय, वस्त्रादिसहितकै परिग्रहमें ममता रहैही ॥ बहुरि परिग्रहत्यागीकै आत्माके उपरिसूं सर्व भार उतरि गया यातैं हलकापणा होय है ॥ बहुरि प्रतिलेखन कहिये बहोत सोधना नही होय है, जातैं वस्त्रसहित जो ग्यारह प्रतिमाधारक ताकै वस्त्रादिकनिका बहोत सोधन होय है अर निर्ग्रंथनिकै मयूरपिच्छिकाका शरीरपरि फेरना यहही अल्प प्रतिलेखन है ॥ बहुरि निर्ग्रंथलिंगीकै चित्तको व्याकुलताका कारण जो भय ताकरि रहितपणा होय है, जातैं परिग्रहरहितकै भय काहेका? वस्त्रादिक राखै ताकै भय होय है ॥ बहुरि वस्त्रसहितके वस्त्रमें जूंवा लीखां वा सन्मूर्च्छनजीवका त्याग नही हो सके है, आपकै वा अन्यजीवकै बडी बाधा उपजे है अर निर्ग्रंथलिंगमें जीवांकी उत्पत्तिही नही होय है ॥ बहुरि निर्ग्रंथलिंगमें याचना सीवना प्रक्षालना सुकावना इत्यादि स्वाध्याय ध्यानमें विघ्न करनेवाले दोष नही होत हैं ॥ बहुरि निर्ग्रंथलिंगीकै शीत उष्णता दंशमशकादि सर्व परीषहनिका जीतना होय है, तातैं पूर्वोपार्जितकर्मनिकी बडी निर्जरा होय है, अर रत्नत्रयमार्गमें दृढता होय है, तातैं निर्ग्रंथलिंगही श्रेष्ठ है ॥ आगै औरहू निर्ग्रंथलिंगके गुण कहे हैं ॥

विस्सासकरं रूवं । अणादरो विसयदेहसुक्खेसु ॥

सव्वत्थ अप्पवसदा। परिसह अधिपासणा चेव ॥ ८६ ॥

अर्थ— यह निर्ग्रंथलिंग सर्वकै विश्वासकारी है, जातैं यह निर्ग्रंथता परजीवांका घातकारी नाहीं, जामैं शस्त्रादिग्रहण नाहीं, तथा शरीरका संस्कार नाहीं तातैं कुशील नाहीं ॥ बहुरि विषयांका तथा देहका सुखमैं अनादरता प्रकट होत है ॥ बहुरि सर्व क्षेत्रनिमैं आत्मवशता होत है, जातैं निर्ग्रंथलिंगधारी जहां प्रासुक भूमी देखै तहांही गमन करै वा शयन करै वा आसन करै, जो यह भय नाहीं- जो, मैं इहां गमन करूंगा वा शयन करूंगा तौ हमारा यह वस्तु जाता रहेगा वा लुटि जाऊंगा वा हमारा इस क्षेत्रमें यह कार्य है सो गमन करना वा नहीं करना इत्यादि सर्वक्षेत्रनिमैं पराधीनतारहित होत है ॥ बहुरि शीत उष्ण दंश मशक क्षुधा तृषादि बाईस परीषहनिका सहना होय है ॥ याप्रकार गुण निर्ग्रन्थलिंगहीकै प्रकटै हैं ॥ आगै औरहू नग्नत्वके गुण कहे हैं ॥ गाथा—

जिणपडिरूवं विरिया- । यारो रागादिदोसपरिहरणं ॥
इच्चेवमादिवहुगा । आचेलक्के गुणा होंति ॥ ८७ ॥

अर्थ— यह निर्ग्रंथलिंग साक्षात् जिनेंद्रका प्रतिबिंब है, जातैं जाकूं जिनसदृश होना होय ताका यह निर्ग्रंथलिंग प्रतिबिंब है निमूना है ॥ भावार्थ— जो जाका

अर्थी होय सो तिसरूपके अनुकूलही प्रवर्ते ॥ बहुरि निर्ग्रंथलिंग धान्या जानैं वीर्याचार प्रकट कीया ॥ बहुरि रागादिक दोषका परिहार होय, जातैं शरीरादिकनिमें जाका अनुराग होय तातैं निर्ग्रंथलिंग नही धान्या जाय है ॥ इत्यादि औरभी याचनादीनतारहितपणा बहोतगुण निर्ग्रंथलिंगमें प्रकट होय हैं ॥ आगे वस्त्ररहितताके औरभी गुण प्रकट करे हैं ॥ गाथा—

इय सव्वसमिदकरणो । ठाणासणसयणगमणकिरियासु ॥
णिगिणं गुत्तिमुवगदो । पग्गहिददरं परक्कमदि ॥ ८८ ॥

अर्थ— याप्रकार स्थानमें आसनमें शय्यामैं गमनक्रियामैं सर्व इंद्रिय मर्यादरूप जाके होगये ऐसा पुरुष नग्नतानैं गुप्तीनैं प्राप्त हुवा उत्कृष्ट पराक्रमकूं धारण करे है ॥ भावार्थ— जो निर्ग्रंथलिंग धारण करै ताकै यह विचार होय है, जो, सर्व परिग्रहका त्यागी जो मैं, ताकै शरीरकी ममता करिकै कहा ? अब तपश्चरणमें यत्नकरि कर्मक्षपण करनाही श्रेष्ठ है ॥ आगे कहे हैं, जो अपवादलिंगकूं प्राप्त हुवा ताकैहू अनुक्रमकरिकै शुद्धता होयही है ॥ गाथा—

अववादियलिंगगदो । वि सयं सत्तिं अगूहमाणो य ॥
णिंदणगरहणजुत्तो । सुज्झदि उवधिं परिहरंतो ॥ ८९ ॥

अर्थ— अपवादलिंगनैं प्राप्त हुवा जे श्रावक अथवा श्राविका क्षुल्लक आर्यिका तेहू आपकी शक्तीकूं नही छिपावता निंदा गर्हा करिकैं युक्त परिग्रहकूं त्यागता संता शुद्धताकूं प्राप्त होय हैं ॥

इति लिङ्गाधिकारे आचेलक्यम् ॥ आगैं लिंग नामा अधिकारविषैं लोचका वर्णन पांच गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

केसा संसज्जंति हु । णिप्पडिकारस्स दुप्परिहरा य ॥
सयणादिसु ते जीवा । दिट्ठा आगंतुया य तहा ॥ ९० ॥

अर्थ— जो निष्प्रतीकार कहिये तैलादिसंस्काररहित केश राखै ताकै यूका लिक्षाकी सन्मूर्छनजीवनिकी उत्पत्ति दुःखकरिकैहू निवारी केशनिमैं उत्पत्ति होय है। बहुरि शयनादिकमैं निद्राके वशीभूत हुवाके केशनिमैं प्राप्त हुये जे नहीं जाय है। बहुरि कीडा कीडी मछर मकडी वीछूं कणसला तिनिकी बाधा नही टले है। तातैं केश राखना बडी हिंसाही है॥ तथा औरभी दोष दिखावे हैं॥ गाथा—

जूगाहि य लिक्खाहि य । बाधिज्जंतस्स संकिलेसो य ॥
संघट्टिज्जंति य ते । कंडुयणे तेण सो लोचो ॥ ९१ ॥

अर्थ— जूवा लिक्षाकरिकै बाधानैं प्राप्त भया ताकै बडा संक्लेश उपजे है, सो संक्लेश

अशुभपरिणाम तथा पापास्रवरूप है, याकरि आत्मविराधना होय है, बहुरि बाधा नही सही जाय तदि जो हस्तादिकरि खुजावै तो ते जीव संघट्टनैं प्राप्त होय, तातैं आगमकी आज्ञाप्रमाण उत्कृष्ट दोय महीनामैं, मध्यम तीन महीनामैं, जघन्य च्यार महीनामैं मस्तकके तथा डाढीमूंछनिके केश हस्तके अंगुलीनिकरि उपाडना यहही श्रेष्ठ है, जातैं जो केश राखै तदि तौ पूर्वोक्त दोष आवै, अर जो क्षौर करावै तौ कौडी नही, तथा शूद्रादिककनै बैठना स्पर्शना पराधीन होना यह बडा दोष है, तथा जो पाछिणा कतरणी नकचूटा राखै तो निर्ग्रंथलिंग जगतमें निंद्य होजाय, तथा शस्त्रधारी भयंकर नग्नरूप उसकी कौन प्रतीति करै? तातैं लोचही श्रेष्ठ है ॥ गाथा—

लोचकदे मुंडत्तं । मुंडत्ते होइ णिव्वियारत्तं ॥
तो णिव्वियारकरणो । य गाहिदतरं परक्कमदि ॥ ९२ ॥

अर्थ— लोच करनेमें मुंडन होत है, मुंडनतैं निर्विकारपणा होय, जातैं अंतरंगविकार तो लीलासहित गमन शृंगार कटाक्ष इत्यादिक तिनिका मुंडनतैं अभाव अर बहिरंग विकार शरीरविषैं मलधारण खाजि दाघ इत्यादिक होय हैं, यातैं अंतरंगबहिरंगविकाररहितपणातैं अतिशयरूप रत्नत्रयमें उद्यमरूप होत है ॥ औरभी लोचजनित गुण कहे हैं ॥ गाथा—

अप्पा दमिदो होवे- । ण होइ ण सुहे य संगमुव्वयादि ॥
साधीणदा य णिद्दो- । सदा य देहे य णिम्ममदा ॥ ९३ ॥
आणाखिवदा य होवे- । ण अप्पणो होदि धम्मसद्धा य ॥
उग्गो तवो य होवो । तहेव दुक्खस्स सहणं च ॥ ९४ ॥

अर्थ— लोच जो हस्तकरि केशनिका उपाडनेकरि आपको आत्मा वशीभूत होत है ॥ तथा शरीरसंबंधी सुखमें आसक्ततारहित होत है। जातें देहका सुखमें आसक्त होय ताकै लोच कैसें होय? ॥ बहुरि लोचतैं स्वाधीनता होत है। जातें जो क्षौर करावै तो नाईके वा अन्य करायदेवावालेके आधीनता होत है। अर जो केश राखै तो केशनिमें आसक्तता तथा ऊंडना धोवना सुकावना इत्यादिककरि पराधीनता और संयमका नाश होत है। तातें लोचतैं स्वाधीनता अर संयमकी रक्षा होत है ॥ बहुरि लोचतैं किंचिन्मात्रहू संयमका बिगडना नाहीं याचनाहू नाहीं पराधीनता नाहीं तातें निर्दोष है ॥ बहुरि देहमें निर्ममता जो यह देह हमारा, मैं याका, वा देह सो मैं हूं. सो देह है याप्रकार ममताका अभाव जाकै होय ताकैही लोच होय है ॥ बहुरि लोचकरिकै आपकी धर्ममें श्रद्धा प्रतीति दिखाई जाय है। जो चारित्रधर्ममें श्रद्धा नहीं होय तो एता बडा केशनिके उपाटनेका दुःसह कष्ट कौन आरंभै ॥ बहुरि लोच है सो

कायक्लेशनामा उग्र तप है तथा दुःख सहनाभी होय है, जातैं समभावतैं दुःखका सहना परमनिर्जरा है॥ इति लिंगाधिकारविषैं लोचलिंगका गुण समाप्त कीया ॥

आगै लिंगका व्युत्सृष्टशरीरता कहिये देहसंस्काररहितता नामा तीसरा चिन्ह तीन गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

सिणहाणब्भंगुव्व- । ट्टणाणि णहकेसमंसुसंठप्पं ॥
दंतोट्ठकण्णमुहणा- । सियच्छिभमुहाइसंठप्पं ॥ ९५ ॥
वज्जेदि वंभचारी । गंधं मल्लं च धूववासं च ।
संवाहणपरिमद्दण- । पिणिच्छाणादीणि य विमुत्ता ॥ ९६ ॥
जल्लविलित्तो देहो । लुक्खो लोयकदवियडवीभच्छो ॥
जो रूठणखलोमो । सा गुत्ती वंभचेरस्स ॥ ९७ ॥

अर्थ— जो जिनलिंग धारै ऐसा जो ब्रह्मचारी कहिये अपने आत्मस्वरूपमें चर्या करनेवाला दिगंबर यति सो यावज्जीव स्नान अर अभ्यंग कहिये तैलमर्दन तथा उद्वर्त्तन कहिये उवटना तथा नखकेशनिका संस्कार तथा दंत ओष्ठ कर्ण मुख नासिका नेत्र भ्रकुटी आदिशब्दकरि हस्तचरणादि इनिका संस्कारका त्यागही करे है। जातैं जलकरि देहका प्रक्षालन करना याका नाम स्नान है, सो स्नान सीतलजलकरिकै करिये तदि

तो जलकायजीव तथा त्रसजीव तिनिका घात होय, तथा कर्दमका वालुकाका मर्द-
नतैं वा जलका क्षोभतैं वा जल ऊपरि सिवाल कमोदनीका घातकरि वा जलचर जे
मत्स्यमंडूक जलौकानैं आदि ले त्रसस्थावर जीवांकी विराधनातैं महान् असंयम होय
है ॥ बहुरि जो उष्णजलकरि स्नान करिये तौ भूमीउपरी गमन करते जे कीडी कीडा
मछर मकडी तिनिका तथा बिलादिमैं तिष्ठते जीव तिनिका तथा बालतृणादिकांका
घाततैं महान् असंयम होय है । बहुरि सप्तधातुमय जो देह ताकी स्नानतैं शौचताहू
नही होत है, जैसैं मलका भऱ्या फूटा घडानैं धोवता धोवता मलही स्रवे है; तैसैं यह
शरीरहू धोवता धोवताहू मुखमेतैं लाला कफ, नासिकातैं नासिकामल, नेत्रनितैं नेत्र-
मल, कर्णनितैं कर्णमल वा सर्वशरीरविषैं पसेव तथा मलमूत्र निरंतर स्रवे है, याकी
स्नानकरि शौचता कैसी होय? ॥ बहुरि आत्मा अमूर्तिक अत्यंत पवित्र, ताप्रति स्नान
पहुचेही नहीं, तातैं स्नानतैं अंतरंग बहिरंग दोऊ प्रकार शौचताका अभावतैं तथा
हिंसा राग प्रमाद शृंगार सुख कुशील ताका वधवातैं महान् अनर्थरूप जानि जैनके
दिगंबर स्नानका यावज्जीव त्यागही करे हैं, तिनहीकै ब्रह्मचर्य होय है ॥ बहुरि
वीतरागीनिकै देहसूं ममता नही तथा कामादिवासनारहित तातैं तैलमर्दन सुगंध
उवटना नख केशसंस्कार मुखप्रक्षालन दंत ओठ कर्ण नासिका नेत्र भ्रकुटी

इत्यादिकनिका संस्कारसूं प्रयोजन नाही । जिनूंनें आत्माको उज्वल करनेमें उद्यम कीया तिनिकै विनाशीक देहका संस्कारतें पराङ्मुखता होयही होय, जो देहहीनें आत्मा जाने है सो आत्मविशुद्धतारहित हुवा शरीरकी सेवाहीमें रात्रिंदिन व्यतीत करे हैं, तिनिकै ब्रह्मचर्यहू नाही ॥ बहुरि रागी पुरुषके योग्य सुगंधविलेपन पुष्प धूपवासना जो चंदन अगरु तथा मुखवास जो जायफळ इलायची इत्यादि तथा चरणमर्दन सर्वशरीरमर्दन कुट्टन इत्यादिहू सर्वशरीरका संस्कार ब्रम्हचारी जो जैनका दिगंबर ते त्यागे हैं, जातैं ये शरीरके संस्कार निर्ग्रंथलिंगके योग्य नही, तातें इनिका त्याग करिकै अर पसेवनिकरि व्याप्त तथा लूखो तथा लोंच करनेकरि विकृत बीभत्स ग्लानिरूप दीखता तथा दीर्घ छोटा बडा अर्ध टूट्या नखरोमसहित जो देह धारना सो ब्रह्मचर्यकी रक्षा है ॥

इति लिंगाधिकारविषें व्युत्सृष्टशरीरत्याग नामा गुण समाप्त कीया ॥ आगे लिंगमें प्रतिलेखन कहिये पिच्छिका राखना यह चोथा चिन्ह तीन गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा–

इरियादाणणिखेवे । विवेगठाणे णिसीयणे सयणे ।
उव्वत्तणपरियत्तण- । पसारणाऊंटणामासे ॥ ९८ ॥
पडिलेहणेण पडिले- । हिज्जइ चिण्हं च होइ सयपक्खे ॥

विस्सासियं च लिंगं । संजय पाडिरूवदा चेव ॥ ९९ ॥
रजसेदाणमगहणं । मद्दवसुकुमालदा लहुत्तं च ॥
जत्थेदे पंच गुणा । तं पाडिलिहणं पसंसंति ॥ १०० ॥

अर्थ— गमन आगमनविषैं तथा ज्ञानोपकरण पुस्तक संयमोपकरण पिच्छिका तथा शौचोपकरण कमंडलु इनिका ग्रहण कहिये उठावना निक्षेपण कहिये मेलना तथा मलमूत्रादिका क्षेपना तथा स्नान आसन शयन इनिविषैं पहली नेत्रानिसूं अवलोकन करि मयूरपिच्छिकासूं प्रतिलेखन करना पीछै प्रवर्त्तन करना बहुरि अपने शरीरका उद्वर्तन कहिये सूधा शयन परिवर्तन कहिये पसवाडेकरि शयन बहुरि प्रसारण बहुरि संकोचन बहुरि स्पर्शन इत्यादि क्रियानिविषैं मयूरपिच्छिका जमी ऊपरि तथा शरीर ऊपरि तथा उपकरण ऊपरि फेरिकरि कार्य करना यह यत्नाचारकी परम हद है। तातैं साधूका चालना हालना बैठना ऊठना सोवना संकोचना पसारना पलटना मेलना उठावना सर्व क्रिया पिच्छिकातैं सोधेविना नही होय है। बहुरि आपका पक्ष जो दयाधर्म ताका पालनेका चिन्ह यह मयूरपिच्छिका है। बहुरि मयूरपिच्छिकासहित-पना लोकनिकै प्रतीतिका उपजावनेवाला चिन्ह है, जातैं यह साधु कुंथवादिजीवांकी रक्षाके अर्थि पिच्छिका राखे है सो हमसारिखे बडे जिवनिकूं कैसैं बाधा करै। बहुरि

यह पींछीसहितपना संयमका प्रतिबिंब है, जो साक्षात् सँयमका रूपकूं दिखावे है॥ बहुरि मयूरपिच्छिकामैं पांच गुण हैं सो कहे हैं। एक तो सचित्त अचित्त रज लागै नही, दूजा गुण पसेव लागे नही– जो पसेव लगे तौ सूकिकरि करडी हो जाय तदि जीवनै बाधा करै सो मयूरपिच्छिकाके पसेव लगै ही नही, तीजा गुण मार्दव कहिये कोमलता– जो जीवनिका नेत्रनिमें फिरे तोहू किंचिन्मात्रभी पीडाकारी नाही, चौथा गुण सुकुमालता– जाका स्पर्श अति सुहावना लागै, पांचमा गुण लघुपणा कहिये अत्यंत हलकापणा– जो पींछीके नीचे जीव दबै नाही भिचै नही बोझ नही यह पांच गुण जामैं होय सो प्रतिलेखन, ताकू दयावंत भगवान् प्रशंसा करे हैं॥

इति सविचार भक्तप्रत्याख्यानके चालीस अधिकारनिविषैं लिंगनामा दूजा अधिकार बावीस गाथानिकरि समाप्त कीया॥ आगे शिक्षा नामा अधिकार त्रयोदश गाथानिकरि कहे हैं॥ गाथा—

णिउणं विउलं सुद्धं। णिकाचिदमणुत्तरं च सव्वहिदं॥
जिणवयणं कलुसहरं। अहो व रत्तिं च पठिदव्वं॥ १०१॥

अर्थ— भो आत्मन् यह जिनेंद्र भगवानका वचन दिन रात्रि निरंतर पढना योग्य है। कैसा है जिनवचन? प्रमाणनयके अनुकूल जीवादिक पदार्थ तिनिनैं निरूपण

करे है, तातैं निपुण है। बहुरि प्रमाण नय निक्षेप निरुक्ति अनुयोग इत्यादिविकल्पनिकरि जीवादिपदार्थनिका विस्तारसहित निरूपण करै तातैं विपुल है। बहुरि पूर्वापरविरोधादिकदोषनिकरि रहिततातैं शुद्ध है। बहुरि जो अर्थ प्रकाशै सो कोईप्रकार चलायमान नहीं होय अत्यंतदृढपणातैं निकाचित है। बहुरि जिनवचनतैं और उत्कृष्ट त्रैलोक्यमें कोऊ नांही, तातैं अनुत्तर है। बहुरि सर्वप्राणीनिका हितरूप कोऊका विराधक नाही, तातैं सर्वहित है। बहुरि द्रव्यमल जो ज्ञानावरणादिक अर भावमल जे रागादिक क्रोधादिक तिनिका नाश करनेतैं कलुषहर है। ऐसा जिनेंद्रका वचनही निरंतर पठन पाठन करना उचित है॥ भावार्थ— जिनवचनविना कोऊ सरण नहीं। यातैं सर्वप्रकार हितरूप जानि मनुष्यजन्म जिनागमकी आराधना करिकैही सफल करो॥ आगै जिनागमतैं जे गुण प्रकट होय, तिनिनैं संक्षेपकरि कहे हैं॥ गाथा—

आदहिदपरिण्णाणभा-। वसंवरो णवणवो य संवेगो॥
णिक्कंपदा तवोभा-। वणा य परदेसिगत्तं च॥ २॥

अर्थ— आत्महितका परिज्ञान जिनागमतैं होत है। जातैं अज्ञानी जन इंद्रियजनित सुखहीको हित जानत है। कैसा है इंद्रियजनितसुख? वेदनाका इलाज है, क्षुधाकी वेदना होयगी ताकूं भोजनकी अति चाह उपजेगी, सोही भोजन करनेकूं

सुख मानेगा। अर तृषावेदना पीडा करेगी ताकै जलकी चाह उपजेगी, सोही जल पीवनेमें सुख मानेगा। अर जाकै सीतवेदनाकी पीडा होयगी, सोही रुईके वस्त्रादिक चाहेगा, सोही बहोत वोढनेतैं सुख मानेगा। अर जाकै गर्मी उपजेगी सोही सीतल पवनादि उपचार चाहेगा। अर जाकै कामादि वेदना उपजेगी, सोही दुर्गंध अंगजानित जगन्निंद्य मैथुन चाहेगा। जाकै वेदनापीडाही नाही सो खावना, पीवना, वोढना, पवन लेना, काम सेवना यह प्रकट संक्लेशरूप कार्य नही वांछा करेगा। तातैं अज्ञानी जीव यह इंद्रियजनित सुखदुःखका इलाज मात्र ताहि हित मानि सेवे है। अर सम्यग्ज्ञानी जग या विषयानैं "तृष्णाका वधावनेवाला आकुलताका उपजावनेवाला पराधीनता लिये अल्पकाल थिरताके वहनेवाला तथा भयका वहनेवाला दुर्गतीको ले जानेवाला" जानि परिहारही करे है। अर जो चारित्रमोहका उदयतैं वा शरीरकी शिथिलतातैं वा देशकाल त्यागनेयोग्य नही मिलनेतैं जो इंद्रियविषय भोगे है, सो जगतनैं भोगता दीखो, परंतु अंतरंग अत्यंत उदासीन वरते है, जैसें कोऊ रोगी कडवी औषधी पीवना वा सेकका करना वा गूमडा घावनैं चिरावना कटावना अत्यंत बुरा जाने है, तथापि वेदना रोगकी नही सही जाय, तातैं आदरसूं कडवी औषधी पीवे है, सेक करावे है, दुर्गंध तैलादि लगावे है, परंतु अंतरंगमें या जाने है "जो वह

धन्य दिन कब आवैगा? जा दिनमें औषधी नहीं अंगीकार करूंगा." तैसें सम्यग्ज्ञानी भोगताहू विरक्त जानना। जातैं जिनागमतैंही आत्महितका ज्ञान होय है॥ बहुरि जिनागमका अभ्यासतैं मिथ्यात्व अविरति कषाय योगके अभावतैं भावसंवर होय है॥ बहुरि जिनागमका अभ्यासतैं धर्मके विषैं वा धर्मका फलविषैं तीव्र अनुराग निरंतर वधनेतैं नवीन नवीन संवेग होय है॥ बहुरि जिनागमके अभ्यासतैं रत्नत्रयधर्ममें अत्यंत निष्कंपता होय है, जातैं जिनागमतैं दर्शनज्ञानचारित्र अचल निजरूप जानेगा, सोही धर्ममें निष्कंपतानैं धारण करेगा॥ बहुरि जिनागमतैं स्वपरका भेद जानेगा, सोही कषायमल आत्मातैं दूरि करनेकूं तपश्चरण करैगा, तातैं जिनागमतैंही तपोभावना होत है॥ बहुरि जिनेंद्रका स्याद्वादरूप आगम आच्छीतरह जान्या होय ताहीकै प्रमाणनयनिकरि यथावत् च्यारि अनुयोगनिका उपदेशदायकपणा बने है, तातैं जिनागमतैंही परोपदेशिकता होय है॥ ऐसे जिनागमके सेवनेके गुण कहे॥ आगै आत्महित जाननेतैं कहा होय? सो कहे हैं॥ गाथा—

णाणेण सव्वभावा। जीवाजीवासवादिया तहिया॥
णज्झदि इहपरळोए। अहियं च तहा हियं चेव॥ ३॥

अर्थ— आत्मज्ञानकरिकैही जीव अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा मोक्षरूप सर्व

पदार्थ तथ्य कहिये सत्य जाणिये है तथा इसलोकपरलोकसंबंधी हित अहित जानिये है ॥ आगै आत्महित नहीं जानै ताके दोष दिखावे हैं ॥ गाथा—

आदहिदकयाणं तो । मुज्झदि मूढो समादियदि कम्मं ॥
कम्मणिमित्तं जीवो । परीदि भवसायरमणंतं ॥ ४ ॥

अर्थ— आत्महितकूं नही जानता जो मूढ सो मोहनैं प्राप्त होय है, मोहतैं कर्मबंध होत है, कर्मबंधतैं जीव अनंतसंसारसमुद्रमें परिभ्रमण करत है ॥ आगै आत्महितका जाननेवालेके गुण कहे हैं ॥ गाथा—

जाणंतस्सादहिदं । अहिदणियत्ती हिदप्पवत्ती य ॥
होदि यतो से तम्हा । आदहिदं आगमेदव्वं ॥ ५ ॥

अर्थ— जातैं आत्महित जाननेवालेकी हितमें प्रवृत्ति अहिततैं निवृत्ति होत है, तातैं आत्महित सीखनेयोग्य है ॥ आगै जिनागमतैं अशुभभावनिका संवर जो रोकना, ताहि दिखावे हैं ॥ गाथा—

सज्झायं कुव्वंतो । पंचेंदियसंवुडो तिगुत्तो य ॥
हवदि य एयग्गमणो । विणयेण समाहिदो भिक्खू ॥ ६ ॥

अर्थ— स्वाध्याय करता जो साधु सो पांचूं इंद्रियांका संवररूप होय है। आप स्पर्श

रस गंध रूप शब्द इन पंच प्रकारके विषयनितैं रुके है, तथा मन वचन कायकी तीनू गुप्तिरूप होय है, तथा मनकी एकाग्रतारूप होय है, तथा विनयकरि सहित होय है, तातैं स्वाध्यायहीतैं इंद्रियद्वारै मनवचनकायद्वारै कषायद्वारै आवता कर्म रूके है, यातैं बडा संवर होय है॥ आगै स्वाध्यायतैं नवीन नवीन संवेगकी उत्पत्तीका अनुक्रम कहे हैं॥ गाथा—

जहजह सुदमोगाहदि । आदिसयरसपसरमसुदपुव्वं तु ॥
तहतह पल्हादिज्जादि । णवणवसंवेगसद्धाए ॥ ७ ॥

अर्थ— जैसैं जैसैं श्रुतका अवगाहन करे है अभ्यास करे है अर्थचिंतन करे है, तैसैं तैसैं नवीननवीन धर्मानुरागरूप संवेगकी श्रद्धाकरि आनंदकूं प्राप्त होय है॥ कैसा है श्रुत? पूर्वैं अनंतानंत कालतैं नही श्रवण कीया अर जो कदाचित् कोई पर्यायमें श्रवण कीयाभी तोहू यथार्थ अर्थका श्रद्धान अनुभवन आस्वादन ताका अभावतैं नही श्रवण कीयातुल्यही भया॥ बहुरि कैसा है श्रुत? अतिशयरूप रसका है फैलाव जामैं, जातैं ज्ञान आत्माका निजरूप है—जामैं सकल पदार्थ प्रतिबिंबित होय हैं॥ सो जैसैंजैसैं अनुभव करै, तैसैंतैसैं अज्ञानभावका नाशपूर्वक अपूर्व आनंद उझले है। ऐसा श्रुतका जैसैं जैसैं अभ्यास करे है तैसैं तैसैं नवीन नवीन

धर्मानुराग तथा संसारभोगतैं भयभीतता वधै, यातैं नवीन नवीन संवेगका कारणहू यह जिनेंद्रका परमागमका सेवनही है ॥ और जिनेंद्रका आगमका अभ्यासतैं वा श्रद्धा पूर्वक अनुभवनतैं निष्कंपता जो दृढता धर्ममें अचलताहू होय है सो कहे हैं ॥ गाथा–

आयापायविदू दण्हू । दंसणणाणतवसंजमे ठिच्चा ॥
विहरदि विसुज्झमाणो । जावज्जीवं च णिक्कंपो ॥ ८ ॥

अर्थ– आगमका जाननेवालाही परमागमका अभ्यासतैं रत्नत्रयकी वृद्धि तथा हानीकूं जाने है, अर रत्नत्रयकी हानिवृद्धिकूं जानेगा सोही हानीके कारणनिकूं त्यागता अर वृद्धिके कारणनिकूं अंगीकार करि, विशुद्धतानैं प्राप्त होता संता दर्शनमें ज्ञानमें तपमें संयममें तिष्ठिकरि यावज्जीव निश्चल प्रवर्ते है ॥ भावार्थ– सम्यग्दर्शनकी वृद्धि तौ निःशंकित आदि गुणनिकरि होय है अर दर्शनकी हानि शंका कांक्षादि दोषनिकरि होय है। बहुरि अर्थव्यंजन उभय शुद्धताकरि तथा स्वाध्यायमें निश्चल उपयोग लगावनेकरि ज्ञानकी वृद्धि होय। बहुरि अविनयादिकरि तथा स्वाध्यायमें उद्यम उपयोग छोडनेकरि अपूर्व अर्थका नही ग्रहण करनेकरि ज्ञानकी हानि होय है। बहुरि वीर्यका नही छिपावनेकरि तथा इंद्रियनिके विषयनिकूं जीतनेकरि तपकी वृद्धि होय है। बहुरि शरीरके सुखमें

मत्तताकरि तपकी हानि होय हैं। बहुरि चारित्रकी पचीस भावनाकरि यत्नाचाररूप प्रवृत्तिकरि संयमकी वृद्धि होय है। अर अयत्नाचारीका संयमकी हानि होय है। तातैं भगवानका आगमविना गुणनिकूं वा दोषनिकूंही नही जानै, तदि गुणग्रहण कैसैं करै? अर दोषत्याग कैसैं करै? अर शिक्षामैं आदर कैसैं करै? अर सत्यार्थ आप्त आगम गुरु वा असत्यार्थ आप्त आगम गुरु इनिका भेदही नही जानै, तदि दर्शन-ज्ञानचारित्रतपमें निष्कंप कैसैं होय? तातैं जिनेंद्रका आगमका सेवनहीतैं चार आराधनामैं दृढता उपजी है ॥ आगै सर्व तपनिविषैं स्वाध्यायतपकी प्रधानता दिखावे हैं ॥ गाथा—

बारसवि धम्मि वि तवे। सब्भंतरबाहिरे कुसलदिट्ठे ॥
ण वि अत्थि ण वि य होहदि। सज्झायसमं तवो कम्मि ॥ ९ ॥

अर्थ—प्रवीण पुरुष जे श्रीगणधरदेव तिनिकरि अवलोकन कीया जो बाह्य आभ्यंतर द्वादशप्रकार तप ताके विषैं स्वाध्यायसमान तप कदे नही हुवा, नही होसी, नही होय है॥ भावार्थ— यद्यपि अनशनादिभी तप अर स्वाध्यायभी तप, तथापि स्वाध्यायका बलविना सर्व तप निर्जराका कारण नाही, ज्ञानसहितही तप प्रशंसायोग्य है। बहुरि आत्माकी उज्वलता परमवीतरागता स्वाध्यायका बलहीतैं होय तथा आत्माका अर

मोहरागादि कर्मनिका दोऊनिका उझलना ज्ञानहीमें अनुभवगोचर होय है । अर ज्ञानमें दीखे तदिही सुलझावनेमें प्रवर्ते जो ये तो रागादिक कर्मजनित भाव हैं, अर यो मैं ज्ञानदर्शनमय शुद्ध आत्मा हूं सो ये रागादिक ऐसें दूर होयगा, याप्रकार समझिकरि अनशनादि तप करै ताहीकै कर्म निर्जरा होय है। तातैं स्वाध्यायसमान तप तीन कालमें नही हुवा, नही होयगा, नही होता है ॥ गाथा—

जं अण्णाणी कम्मं । खवेदि भवसयसहस्सकोडीहिं ॥
तं णाणी तिहिं गुत्तो । खवेइ अंतोमुहुत्तेण ॥ १० ॥

अर्थ— सम्यग्ज्ञानरहित जो अज्ञानी सो जा कर्मकूं लक्षभव कोटीभव पर्यंत तपश्चरणकरि क्षिपावै, ता कर्मकूं सम्यग्ज्ञानी तीन गुप्तिरूप हूवो अंतर्मुहूर्तमें क्षिपावे है—नाश करे है ॥ गाथा—

छठ्ठठमदसमदुवा- । लसेहिं अण्णाणियस्स जा सोधी ॥
तत्तो वहुगुणदरिया । होज्ज हु जिमिदस्स णाणिस्स ॥ ११ ॥

अर्थ— अज्ञानीकै वेला तेला तथा च्यार उपवास तथा पांच उपवास इत्यादि तपकरि जो शुध्दिता होय है, तातैं वहुतगुणी शुध्दिता भोजन करताभी सम्यग्ज्ञानी ताकै होय है ॥ भावार्थ— मिथ्याज्ञानी जो तप करे है, सो इस लोकके परलोकके

भोगविषय चाहता करै है वा यश कीर्तन वा लोभ वा मिष्टभोजन वा प्रसिद्धता वास्ते करै है, तातैं वांछासहित जीवकै नवीन नवीन कर्मका बंधही होय, अर सम्यग्दृष्टि भोजन करताभी वांछाके अभावतैं मंदरागद्वेषतैं निर्जराही करै, रागद्वेषके अभावतैं नवीन कर्मबंध नही होय, यह शुद्धता है अर कर्मबंध करै यह अशुद्धता है ॥ आगै स्वाध्यायतैं गुप्ति होना कहै हैं ॥ गाथा–

सज्झायभावणाए । य भाविदा होंति सव्वगुत्तिउं ॥
गुत्तीहिं भाविदाहि य । मरणे आराधउं होदि ॥ १२ ॥

अर्थ– स्वाध्यायभावनाकरिकै, कर्मके आगमनके कारण जे मन वचन कायके व्यापार तिनिंका अभावतैं तीन प्रकारकी गुप्ति होय है। गुप्ति होनेतैं मरणविषैं आराधना निर्विघ्न होय है, तातैं स्वाध्यायही आराधनाका प्रधानकारण है ॥ इहां विशेष ऐसा है, जो स्वाध्यायभावनामैं रत होय सोही परजीवनिकूं उपदेश देनेवाला होय, अन्य कोऊ परकै उपकारमें समर्थ नही ॥ आगै परकूं उपदेशदाता होनेमें कौन गुण प्रकट होय सो कहैं हैं ॥ गाथा–

आदपरसमुद्धारो । आणा वच्छल्लदीवणा भत्ती ॥
होदि परदेसगत्ते । अव्वोच्छित्ती य तित्थस्स ॥ १३ ॥

अर्थ--- पर जे भव्यजन, तिनिकूं सत्यार्थधर्मका उपदेश देनेतैं आपका तथा अन्य श्रोताजनांका संसारतैं भयभीतता होय, परमधर्ममें प्रवर्तनतैं संसारपरिभ्रमणका अभाव होय है। तातैं आपका परका उद्धार जिनवचनका उपदेशतैंही होय है॥ बहुरि जिनेंद्रका आगमका उपदेश आपका अत्माकूं तथा अन्य जीवांकूं करनेतैं भगवान् सर्वज्ञकी आज्ञाका पालना होय है॥ बहुरी जिनेंद्रका धर्मसें अति प्रीति जाकै होय सोही निर्वांछक अभिमानरहित हुवा धर्मोपदेश करे है, तातैं वात्सल्यगुणहू प्रकट होय है॥ बहुरि जाकै जिनेंद्रका धर्मका उपदेश देयकरि धर्मका प्रभाव प्रकट करनेमें उत्साह होय वा आत्मगुण बधावनेकी वांछा होय, ताकै प्रभावना नामा गुण होयही है॥ बहुरि जाकै स्याद्वादरूप परमागममें अति प्रीति होय, ताकै धर्मका उपदेशकपणा होय, तातैं भक्तिगुणहू प्रकट होय है॥ बहुरि परमागमका सत्यार्थ उपदेशकरि धर्मतीर्थकी अव्युच्छित्ति होय है, परिपाटी नहीं टूटे है, सर्वजन धर्मका स्वरूप जानता रहे है वा बहोत कालपर्यंत धर्मका संतान वर्ते है। तातैं आपका अर परका उध्दार अर भगवानकी आज्ञाका पालना तथा वात्सल्य तथा प्रभावना तथा भक्ति तथा धर्मतीर्थकी अव्युच्छित्ति, धर्मोपदेशके दातापणातैं जानि आगमकी आज्ञाप्रमाण धर्मोपदेशमें प्रवर्तन करना यहही परमकल्याण है॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानके चालीस अधिकारानिविषैं शिक्षा नामा तीजा अधिकारका व्याख्यान त्रयोदश गाथासूत्रनिकरि समाप्त कीया ॥ आगै विनय नामा चौथा अधिकार तेईस गाथानिकरि कहे हैं ॥ जातैं लिंगग्रहणके अनंतर ज्ञानकी संपात्ति करिबो योग्य है। अर ज्ञानसंपदाविषैं प्रवर्तता पुरुषकूं विनय आचरण करना योग्य है ॥ सो विनय पंच प्रकार है, ताहि कहे हैं ॥ गाथा—

विणउं पुण पंचविहो। णिद्दिट्ठो णाणदंसणचरित्ते ॥
तवविणउं य चउत्थो। चरिमो उवयारिउं विणउं ॥ १४ ॥

अर्थ— बहुरि विनय पंच प्रकार कह्या है॥ एक ज्ञानविनय। दूजा दर्शनविनय। तीसरा चारित्रविनय। चौथा तपविनय। पांचमा उपचारविनय ॥ आगै ज्ञानविनयके भेद कहे हैं ॥ गाथा—

काळे विणए उवधा-। णे वहुमाणे तहेव णिह्नवणे ॥
वंजण अत्थतदुभउं। विणउं णाणम्मि अट्ठविहो ॥ १५ ॥

अर्थ— संध्याकाल, सूर्यचंद्रादिकका ग्रहणकाल, उल्कापातादिका कालको त्याग करिकैं जो सूत्रका अध्ययन करना, सो काल नाम ज्ञानका विनय है ॥ बहुरि जो श्रुतका वा श्रुतके धारकका स्तवन करना, गुणांमैं अनुराग करना यह विनय नामा ज्ञानविनय

है ॥ बहुरि जितने काल यह सूत्रसिद्धांतशास्त्रश्रवणमें वा पढनेमें समाप्त नही होय, तितनै या वस्तु मै नही भक्षण करूं वा उपवासादि करूं याप्रकार संकल्प करना प्रतिज्ञा करना सो उपधाननामा ज्ञानविनय है ॥ बहुरि अंतरंग बहिरंग उज्वल होयकरि हस्तकी अंजुली जोडिकरि तथा विक्षेपरहितचित्त होयकरि आदरसहित अध्ययन करना यह बहुमान नामा ज्ञानविनय है ॥ बहुरि कोऊके निकटि श्रुतका अध्ययन करिकै अन्यगुरूका नाम न लेना आपका गुरूका नाम नही छिपावना सो अनिह्नव नामा ज्ञानका विनय है ॥ बहुरि शब्दकी शुद्धता करि पढना यह व्यंजन नामा ज्ञानका विनय है ॥ बहुरि गुरुपरिपाटीतैं निर्णयरूप सत्यार्थ अर्थ कहना यह अर्थनामा ज्ञानका विनय है ॥ बहुरि शब्द शुद्ध पढना अर्थ शुद्ध कहना सो उभयशुद्धि नामा ज्ञानका विनय है ॥ ऐसैं ज्ञानके विषैं विनय अष्टप्रकार होत है ॥ आगै दर्शनका विनय कहे हैं गाथा—

उवगूहणमादीया । पुव्वुत्ता तह य भत्तियादिगुणा ॥
संकादिवज्जणं वि य । णेउं सम्मत्तविणउं सो ॥ १६ ॥

अर्थ— जो परका दोष ढांकना तथा अपनी प्रशंसा नही करनी यह उपगूहन गुण है। बहुरि आत्माकूं वा परकूं धर्मविषैं निश्चल करना यह स्थितीकरण गुण है।

बहुरि धर्मात्मामैं वा रत्नत्रयधर्ममें प्रीति करना यह वात्सल्यगुण है। बहुरि पूर्वैं कहे जे अरहंतादिकांमैं भक्ति तथा पूजा तथा अरहंतादिकानिका उज्वल गुणानिका यशका प्रकाशन यह वर्णजनन गुण है। तथा अवर्णवाद जो दुष्टकरि लगाया दोष ताका विनाश करना तथा विराधनाका त्याग इत्यादि पूर्वकथित भक्त्यादिगुणकरि जो प्रभावना करना तथा आप्त आगम पदार्थविषैं शंकाका वर्जना तथा इहलोकपरलोकसंबंधी विषयमें कांक्षा जो वांछा ताका परित्याग करना तथा रोगी दुःखी दरिद्री वृद्ध मलिन चेतन अचेतन पदार्थमें ग्लानिका त्याग करना तथा मिथ्याधर्मीकी प्रशंसा नही करना याप्रकार अष्ट अंगानिकूं दृढ अंगीकार करना यह दर्शनका विनय है॥ आगै च्यारि गाथानिकरि चारित्रविनयकूं कहे हैं॥ गाथा—

इंदियकसायपणिधा-। णं पि य गुत्तीउ चेव समिदीउ॥
एसो चरित्तविणउ। समासदो होइ णायव्वो॥ १७॥
पणिधाणं पि य दुविहं। इंदिय णोइंदियं च बोद्धव्वं॥
सद्दादि इंदियं पुण। कोहादीयं भवे इदरं॥॥ १८॥
सद्दरसरूवगंधे। फासे य मणोहरे य इदरे य॥
जं रागदोसगमणं। पंचविहं होदि पणिधाणं॥ १९॥

णोइंदियपणिधाणं। कोहो माणो तहेव माया य ॥
लोभो य णोकसाया। मणपणिधाणं तु तं वज्जे ॥ १२० ॥

अर्थ— इंद्रिय और कषाय इनिविषैं जो अप्रणिधान कहिये नहीं परिणतिनैं प्राप्त होना तथा मनवचनकायकी प्रवृत्ति रोकनेरूप गुप्ति धारण करना तथा सम्यक् यत्नाचारतैं प्रवृत्तिरूप समिति पालना यह चारित्रका विनय संक्षेपथकी जानना ॥ वहुरि प्रणिधान जो संसारी जीवकी प्रवृत्ति सो दोय प्रकार है, एक इंद्रियद्वारें इंद्रियरूप है, एक मनद्वारें नोइंद्रियरूप है। तहां इंद्रियद्वारें प्रवृत्ति तौ इंद्रियानिके विषय जे शब्दादि तिनिविषैं होय है, मनद्वारें प्रवृत्ति क्रोधादिरूप होय है ॥ वहुरि जो मनोहर अमनोहर ऐसे शब्द रस गंध रूप स्पर्श जे इंद्रियानिके विषय तिनिविषैं मनोहरमें राग करना अमनोहरमें द्वेष करना ये इंद्रियप्रणिधान पंच प्रकार हैं। वहुरि क्रोध मान माया लोभ हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्रीवेद पुरुषवेद नपुंसकवेद इनि कषायनोकषायरूप मनका करना यह नोइंद्रियप्राणिधान है। याप्रकार जे इंद्रियनोइंद्रियप्रणिधान इनका वर्जन करना जीतना यह चारित्रविनय है ॥ भावार्थ— विषयांसूं इंद्रियनिका रोकना कषायनितैं मनका रोकना यह चारित्रका विनय परम कल्याणरूप है ॥ आगें तपोविनयका निरूपण दोय गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

उत्तरगुणउज्जोगो । सम्मं अधिआसणं च सद्धा य ॥
आवस्सयाणमुचिदा- । णमपरिहाणी अणुस्सेउं ॥ २१ ॥
भत्ती तवोधिगम्मि य । तवम्मि य अहीलणा य सेसाणं ॥
एसो तवम्मि विणउं । जहोत्तचारिस्स साहुस्स ॥ २२ ॥

अर्थ— उत्तरगुणनिविषैं उद्यम तथा क्षुधादि परीषहका सम्यक् समभावनिकरि सहना बहुरी तपश्चरणमें श्रद्धान करना बहुरी उचित जे षट् आवश्यक तिनिमैं हीनता नही करना तथा उद्धतताका अभाव करना बहुरी तपाविषैं तथा तपकरी अधिक जे साधु तिनिविषैं भक्ति करना बहुरी तपकरी न्यून होय वा तपश्चरणरहित होय तिनिका तिरस्कार अवज्ञा अपमान नही करना सो तपका विनय है, सो यथोक्त आचारांगकी आज्ञाका प्रमाण आचरण करता साधूकै होय है ॥ आगै उपचारविनय नव गाथानिकरी कहे हैं ॥ गाथा—

काइयवाइयमाणसि- । उं त्ति त्तिविहो दु पंचमो विणउं ॥
सो पुण सव्वो दुविहो । पच्चक्खो चेव परोक्खो ॥ २३ ॥

अर्थ— पंचमविनय जो उपचारविनय सो कायिक कहिये कायसंबंधी वाचिक कहिये वचनसंबंधी मानासिक कहिये मनसंबंधी ऐसा तीन प्रकार है ॥ बहुरि सो तीन

प्रकार विनय प्रत्यक्षपरोक्षकरि दोय दोय प्रकार है ॥ आगै प्रत्यक्ष कायिकविनय च्यारि गाथानिकरि कहे हैं ॥

अब्भुट्ठाणं किदिय- । म्मं णवणं अंजळी य मुंडाणं ॥
पच्चग्गच्छणमेदे । ठिदस्स अणुसाधणं चेव ॥ २४ ॥
णीचं ठाणं णीचं । गमणं णीचं च आसणे सयणं ॥
आसणदाणं उवकर- । णदाणमोगासदाणं च ॥ २५ ॥
पडिरूवकायसंफा- । सणदा पडिरूवकाळकिरिया य ॥
एसणकरणं संथार- । करणमुवकरणपडिलिहणं ॥ २६ ॥
इच्चेयमादिविणर्ओ । जो उवयारो कीरदे सरीरेण ॥
एसो काइयविणर्ओ । जहारिहो साहुवग्गस्मि ॥ २७ ॥

अर्थ— महान् मुनि जो संघमें आवे तदि तो ऊठि खडा होना, तथा सम्मुख गमन करना, पीछै कृतिकर्म जे 'भक्तिवंदनाके पाठ' ते पढना, पीछै नमस्कार करना, वहुरि अंजुलि मस्तक चढावना, वहुरि उनका प्रयाण जो गमन होता पाछे गमन करना, वहुरि गुरुजननिकूं खडा रहता संता अभिमानरहित खडा होना, गुरुजनतैं नीचा आसन करना, जैसैं आपके हस्त पाद श्वासादिकनिकरि गुरुनिकै उपद्रव नही होय तैसैं

बैठना, तथा अग्रभागमें सम्मुख आसनकूं वर्जिकरि वामे पसोडे उद्धततारहित किंचित् मस्तक नमायकरि बैठना, तथा गुरुनिको आसन जो काष्ठपाषाणमय सिंहासन फालक शिलातलपरि बैठता संता आप भूमीविषैं बैठना, बहुरि गमन करते गुरुनिके पीछे चालना वा वामभागमें उद्धततारहित गमन करना, बहुरि जैसें गुरुनिका नाभि-प्रमाण पृथ्वीमें आपका मस्तक होय तैसें शयन करना, तथा जैसें अपने हस्तपादा-दिकनिकरि गुरुनिकै उपद्रव नही होय तैसें शयन करना, तथा आपका अधोअंग-करि गुरुनिका अधोअंगकाभी स्पर्श नही होय तैसें शयन करना, बहुरि गुरुनिका बैठनेका अभिप्राय होता संता साधुजनकै योग्य प्रासुक भूमीका भाग वा शिलाकाष्ठ-मय आसनादिक नेत्रानिसूं अवलोकन करि पश्चात् कोमल मयूरपिच्छिकातैं प्रमार्जन करि समर्पण करना यह आसनदान है, बहुरि ज्ञानका वा संयमका उपकार करनेवाले जे पुस्तक पीछी उपकरण तिनिका ग्रहण करनेकी इच्छा जानिकरि विनयपूर्वक शोधि दोऊ हस्तनितैं सोपना यह उपकरणदान है, अथवा उद्गम उत्पादन इत्यादिदोषरहित आपकूं प्राप्त हुवा जो प्रतिलेखन कहिये पिच्छिका वा पुस्तक तिनिका विनयकरि भेट करना, यह उपकरणदान है, बहुरि शीतपीडित होय ताकूं पवनशीतादिरहित स्थान देना तथा उष्णताकरि पीडित होय तिनिकूं शीतल स्थान देना तथा साधुकै योग्य—दो-

परहित प्रासुक वसतिका देना यह स्थानदान है, बहुरि गुरुजननिका शरीरकै अनुकूल जैसें शरीरकी वेदना पीडा मिटि जाय तैसें स्पर्शन करना, तथा किंचित् निकट होय- करिकै पीछिकातैं तीनवार कायकूं शोधन करिकै आगंतुक जीवनिकी बाधाका परिहार करना, तथा गुरुनिका शरीरके बलके अनुकूल मर्दन करना "जैसें उष्णवेदनासहितकै शीतलता प्रगट होय शीतवेदनासहितकै उष्णता प्रगट होय तैसें" अवस्थाके अनुकूल बलतैं अनुकूल ऋतुकै अनुकूल सेवन करना, बहुरि गुरुजनकी आज्ञाप्रमाण तृण काष्ठ फलकशिलामय शुद्धभूम्यादिविषैं गुरुनिका शयन आसनवास्ते संस्तर करना, तथा उपकरण शोधना, सूर्य अस्त होनेके पहिली तथा प्रातःकाल सूर्यका उदय होता गुरुनिका ज्ञानसंयमका उपकरण शोधना इत्यादि जो शरीरकरिकै यथायोग्य साधुस- मूहनिके विषैं उपचार करना, सो कायसंबंधी उपचारविनय जानना ॥ आगै दोय गाथानिकरि वचनसंबंधी उपचारविनय कहे हैं ॥ गाथा—

पूयावयणं हिदभा- । सणं च मिदभासणं महुरं च ॥
सुत्ताणुवीचिवयणं । अणिठ्ठुरमकक्कसं वयणं ॥ २८ ॥
उवसंतवयणमगहित्थ- । वयणमकिरियमहेलणं वयणं ॥
एसो वाइयविणउ । जहारिहो होदि कायव्वो ॥ २९ ॥

अर्थ— बहुरि जो गुरुनितैं वचनालाप करना सो या प्रकार करना– हे भट्टारक आप जो आज्ञा करी सो आनंदपूर्वक ग्रहण करूं हूं वा हे भगवन् आपका चरणारविंदाकी आज्ञाकरिकै यह कार्य करनेकी इच्छा करत हूं तथा हे स्वामिन आपका वचन प्रमाण है इत्यादि पूजावचन बोलना। तथा गुरुजननिका दोऊ लोकसंबंधी हितरूप विनति करना सो हितभाषण है। बहुरि जितना वचनकरि प्रयोजनरूप अर्थ ग्रहण हो जाय, तितना प्रामाणिक अक्षर गुरुजननिके निकट बोलना, निरर्थक प्रलाप नही करना, यह मितभाषण है। बहुरि कर्णनिकूं प्रिय बोलना वा उदयकालमें जाका फल मिठा होय ऐसा मधुरवचन है। बहुरि सूत्रके अनुकूल बोलना, जिनसूत्रतैं विरुद्धवचन नही बोलना यह अनुवीचिवचन है। बहुरि परचित्तकूं पीडा नही उपजावै ऐसा वचन अनिष्ठुर है। बहुरि परजीवांका मर्मच्छेद करनेवाला नही होय सो अकर्कश वचन है। बहुरि जा वचनके सुननेतैं परिणामको पराहित हो जाय, रागरहित हो जाय, सो उपशांतवचन है। बहुरि मिथ्यादृष्टीनिकै बोलनेयोग्य वा असंयमीके बोलनेयोग्य श्रद्धानरहित रागसहित द्वेषसहित आरंभादिसहित वचन नही बोलने अर श्रध्दान संयम वीतरागतानैं धारण करते वचन बोलने सो अगृहस्थवचन है। बहुरि जो पापरूप छ कर्म जो खेती विणज आरंभ इत्यादिककी क्रियारहित बोलना सो अक्रियवचन है।

बहुरि परका तिरस्कार जा वचनकरि नही होय ऐसा वचन बोलना सो अहेलनावचन है। इत्यादिक निर्दोषवचन गुरुनिके निकट बोलना यह वचनसंबंधी उपचारविनय जानना ॥ आगै मनसंबंधी उपचारविनय कहे हैं ॥ गाथा—

पापविसोत्ति य परिणा- । मवज्जणं पियहिदे य परिणामो ॥
णायव्वो संखेवे- । णेसो माणस्सिउ विणउ ॥ १३० ॥

अर्थ— जा परिणामकरि आपकै पापका प्रवाह आवै ऐसा परिणाम "गुरु जे साधु मुनिजन तिनिमैं" नही करना सो पापविस्रोतिकपरिणामवर्जन है। जो यह गुरु हमारा आचरणमें दोप प्रकट करे है वा हमारा बहोत विनयहू नहीं करे है तथा जैसैं पूर्वकालमें मोतैं संभाषण करते थे, तैसैं अब नही करै, अन्य शिष्यनिकूं विद्या उपदेश करै तैसै हमकूं नही करे है, इत्यादि परिणाममें क्रोधभाव राखना वा यह गुरु हमारा कहा उपकार करे है? हमही घोरतपस्वी हैं इत्यादि अभिमानभाव राखना, तथा गुरुनिका विनयमें आलसी होना, तथा गुरुनिका दोष हेरना निंदा करना, गुरुनितैं प्रतिकूलपरिणाम राखना ये सर्व पापविस्रोत परिणाम हैं। इनिकूं वर्जन कीये मनसंबंधी विनय होय है ॥ बहुरि गुरुनिके गुणानिमैं शिक्षामैं वा वचनमें चारित्रमें अनुरागरूप रहना, गुरुनिके जो प्रिय होय वा गुरुनिका जातैं हित होय तामैं

परिणाम राखना यह संक्षेपकरि मनसंबंधी विनय जानना ॥ आगै कायिक वाचिक मानसिक जे तीन प्रकारके विनय, तिनिके प्रत्यक्ष परोक्ष दोय दोय भेद कहे हैं ॥ गाथा—

इय एसो पच्चक्खो । विणउ पारोक्खिउ वि जो गुरुणो ॥
विरहम्मि विवट्टिज्जइ । आणाणिद्देसचरियाए ॥ १३१ ॥

अर्थ— याप्रकार यह प्रत्यक्षविनय गुरुजन निकट विद्यमान होते होय, तातैं प्रत्यक्षविनय है । बहुरि गुरुनिको परोक्ष होते वा अभाव होते जो गुरुनिकी आज्ञाप्रमाण दर्शनज्ञानचारित्रमें प्रवर्तना सो परोक्षविनय अंगीकार करनेयोग्य है ॥ आगै गुरुनिविषैंही विनय करना अन्यविषैं नही करना, ऐसा नियम नही है, इनिविषैंभी विनय करना सो कहे हैं ॥ गाथा—

राइणि य ऊणराई- । एसू अज्जासु चेव गिहिवग्गे ॥
विणऊ जहारिहो सो । कायव्वो अप्पमत्तेण ॥ ३२ ॥

अर्थ— जाकूं दीक्षा लीये आपतैं एक रात्रिहू अधिक होय सो रात्र्याधिक कहिये ॥ जो रात्रिकरि आपतैं अधिक होय ताकाहू यथायोग्य विनय करै अर आपतैं रात्रिन्यून होय अर जो आपतैं एकदिन पाछेहू दीक्षा लीनी होय ताकूं ऊनरात्रि कहिये ॥ जो रात्रि- ताकाहू यथायोग्य विनय करै, तथा आर्यिकानिका तथा गृहस्थजन जे हैं तिनिकाहू

यथायोग्य विनय करना, विनयमें प्रमादी होना योग्य नही ॥ आगे विनयहीनके दोष दिखावे हैं ॥ गाथा—

विणयेण विप्पहूण- । स्स हवादि सिक्खा णिरत्थिया सव्वा ॥
विणउं सिक्खाए फळं । विणयफळं सव्वकल्लाणं ॥ ३३ ॥

अर्थ— विनयरहितकी सर्व शिक्षा निरर्थक होत है। शिक्षा पायाका फल तौ विनयरूप प्रवर्त्तना है। अर विनयका फल सर्वकल्याण है-स्वर्गलोक अहमिंद्रलोक बहुरि निर्वाण प्राप्त होना यह सर्व विनयहीका फल है॥ आगै तीन गाथानिकरि विनयका माहात्म्य प्रकट करे हैं ॥ गाथा—

विणउं मोक्खद्दारं । विणयादो संजमो तवो णाणं ॥
विणयेणाराहिज्जइ । आयरिउं सव्वसंघो य ॥ ३४ ॥
आयारजिदकप्पगु- । णदीवणा अत्तसोधिणिज्झंझा ॥
अज्जवमद्दवलाघव- । भत्ती पल्हादकरणं च ॥ ३५ ॥
कित्ती मित्ती माण- । स्स भंजणं गुरुजणे य बहुमाणं ॥
तित्थयराणं आणा । गुणाणुमोदो य विणयगुणा ॥ ३६ ॥

अर्थ— यह विनय है सो मोक्षका द्वार है, जो विनयधर्ममें प्रवर्त्या सो मोक्षद्वारमें

प्रवेश कीया। विनयतैं सँयम होय है। विनयतैं तप होय है। विनयतैं ज्ञान होय है। बहुरि विनयतैंही आचार्यौंकूं आराधना होय है। विनयतैंही सर्वसंघकी आराधना होय है, सर्वसंघका विनय करना यहही सर्वसंघकी आराधना है। बहुरि आचार-शास्त्रमें प्ररूपण कीये जे प्रायश्चित्तादि गुण, ताका प्रकाशनहू विनयतैंही होय है। बहुरि आत्मविशुद्धिताहू अभिमानके अभावतैं विनयहीतैं होय है। बहुरि विनयवानकै एकहू संक्लेश कलह नही प्राप्त होय है। विनयवंतकै आर्जवगुण प्रकट होय। विनयवंतकै मार्दव जो कोमलभाव सोहू प्रकट होय है। बहुरि विन-यवान् है सो गुणमें अनुरागरूप भक्तीकूं प्राप्त होय है, अविनयीकै पूज्यपुरुषनिके गुण सुणतैंही अदेखसका भाव उपजे तब भक्ति काहेकी होय? तातैं अभिमानीकै भक्ति नही। बहुरि आचार्यनिमैं समर्पण कीया है सर्व आपा जानै, जो मोकूं तो भगवान् गुरु जैसी आज्ञा करै तैसैं बोलना चालना बैठना सोवना खाना पढना रहना, हमारा आत्मा आचार्यनिके आधीन है, ऐसा गुरुनिकी आज्ञाका विनय करनेवाला ताको लाघव कहिये भाररहितपनाहू होय है। बहुरि विनयवानही गुरुनिकै आनंद करै है, तातैं प्रल्हादकरणहू विनयहीका गुण है॥ बहुरि यह विनयवान् है, उद्धत नही, हटो नही, याप्रकार विनयथकी जगतमैं कीर्ति अर

मैत्री विस्तेरे है। वहुरि जो विनयवंत होय ताका जगत् मित्र होजाय। विनयवानकै दुःख कोऊही नही चाहै। वहुरि विनयवानहीका मानका अभाव होय है। वहुरि गुरु जे ज्ञानकरि अधिक, तपकरि अधिक, चारित्रकरि अधिक, दीक्षाकरि अधिक इनि सर्वनिका विनयवंतही वहोत मान सत्कार स्तवन करे है। विनयधर्मसूं जो अपूठो होय सो उपकारी गुरुजननिका उपकार लोप करि अहंकाररूप हुवा गुरांकी अवज्ञा निंदाही करे है। वहुरि ज्ञानका मूल चारित्रका मूल भगवान् तीर्थंकरदेव विनयही कह्या है। जानैं विनय अंगीकार कीया तानैं तीर्थंकरांकी आज्ञा पालन करी। वहुरि जाकै गुणांमें प्रीति आनंद होयगा सोही गुणवंतनिमें विनय करैगा ॥

भावार्थ— पूर्वै जो पंचप्रकार विनय कह्या सोही मोक्षका द्वार है, सोही संयम है, तथा तप है, ज्ञान है। अर विनयकरिकैही आचार्यनिकी आराधना, सर्व संघकी आराधना, तथा आचारांगके गुणनिका प्रकाश तथा आत्मविशुद्धता वहुरि क्लेशका अभाव अर आर्जव मार्दव लाघव भक्ति प्रल्हादकरण जगतमें कीर्ति सर्वजीवनिसूं मैत्रीभाव तथा मानकषायका भंजन, गुरुजनांमैं बहुमानता तीर्थंकरांकी आज्ञाका पालना, गुणांमैं अनुमोदना इत्यादि अनेक गुण जानि, अभिमान छोडि निरंतर विनयमें प्रवर्तन करो, यहही भगवानकी आज्ञा है, आत्मकल्याणके अर्थीकै विनय-

विना कोऊ कल्याणकारी नाहीं ॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषैं चौथा विनय नामा अधिकार समास कीया ॥ आगै समाधि नामा पांचमा अधिकार दश गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

चित्तं समाहिदं जस्स । होज्ज वज्जियविसोत्तियं वसियं ॥
सो वहदि णिरदिचारं । सामण्णधुरं अपरिसंतो ॥ ३७ ॥

अर्थ— जाका मन अशुभपरिणतिरहित होय तथा जिस पदार्थमें जोडै तिसमेंही तिष्ठै ऐसा आपके वशवर्ती होय, तथा हित अहित जाणता संता सावधान होय, सोही पुरुष रागद्वेषादि उपद्रवरहित तथा क्लेशरहित मुनिनिका चारित्रभार वहिवेकूं समर्थ होय है ॥ जाका मन चलाचल है ताकै चारित्रका पालना नहीं होय है ॥ आगै जाका मन स्थिर नहीं ताके दोष दिखावे हैं ॥ गाथा—

चालणिगयं व उदयं । सामण्णं गलइ अणिहदमणस्स ॥
कायेण य वायाए । जदवि जहुत्तं चरदि भिक्खू ॥ ३८ ॥

अर्थ— जाका मन वशीभूत नहीं सो साधु आचारांगकी आज्ञाप्रमाण यथावत् कायकरिकै वा वचनकरिकै सत्यार्थ चारित्र पाले है, तोहू मनका वशीभूतपणाविना

ताका चारित जैसैं चालिनीमें प्राप्त हुवा जल नहीं ठहरे, तैसैं विनासिजाय है, तातैं मनकी निश्चलताही करना उचित है ॥ आगे मनकूं वश कीयेविना श्रमणपणा मुनिपणा नहीं है, तातैं मनका निग्रहविना जो दोष होय हैं, तिनिकूं पांच गाथानिकरि दिखावे हैं ॥ गाथा—

वादुब्भामो व मणो । परिधावइ अट्टिदं तह समंता ॥
सिग्घं च जाइ दूरं । पि मणो परमाणुदव्वं वा ॥ ३९ ॥
अंधळय बहिर मूगो । व मणो लहुमेव विप्पणासेइ ॥
दुक्खेण पडिणियत्तिदुं । जे गिरिसरिदसोदं वा ॥ ४० ॥
तत्तो दुक्खं पंथे । पाडेदुं दुट्ठुउं जहा अस्सो ॥
वीलणमच्छो व मणो । णिग्घेदुं दुक्करो धाणिदं ॥ ४१ ॥
जस्स य कदेण जीवा । संसारमणंतयं परिभमंति ॥
भीमासुभगइबहुळं । दुक्खसहस्साणि पावित्ता ॥ ४२ ॥
जम्हि य वारिदमेत्ते । सव्वे संसारकारया दोसा ॥
णासंति रागदोसा- । दिया हु सज्जो मणुं[illegible]

अर्थ— जैसैं पवनका भवला[illegible]

पृथ्वीमैं विषयनिमें तथा जलमैं स्थलमें नगरमें ग्राममें पर्वतमें नदीमैं समुद्रमें वनमें आकाशमें दिशामैं धनमें भोजनमें पात्रमें वस्त्रमें मित्रमें शत्रुमें होती वस्तूमें अणहोतीमैं जीवनमें मरणमें हारीमैं जीतीमैं सर्वतरफ अरोक भ्रमे है बहुरि जैसैं परमाणु नामा द्रव्य एकसमयमें चौदह राजू जाय, तैसैं स्वच्छंद यह मनहू दूरक्षेत्रवर्ती निकटक्षेत्रवर्ती सर्वपदार्थनिमें शीघ्रतासूं जाय है ॥ बहुरि जैसैं अंधा देखे नाहीं, बहिरा सुणे नाही, गूंगा बोले नाही, तैसैं यह मनहू कोऊ विषयमें आसक्त हो जाय तदि नेत्रादिक पाचूं इंद्रियांही अन्य निकटवर्ती विषयहूकूं देखे नाही, सुणे नाही, बोले नाही, सूंघे नाही, स्पर्शे नाही, तदि चारित्रमें कैसैं लगैं? ॥ बहुरि जैसैं पर्वततैं पडता नदीका प्रवाह बहुत कष्टकरिकैहू नही रुके है, तैसैं संयमतैं पडता यह मनहू रागद्वेषकामादिकमें चलायमान हुवा बडा कष्ट करिकैहू रोक्या नही रुके है॥ बहुरि जैसा दुष्ट घोडा असवारकूं दुःख जैसैं होय तैसैं विषममार्गमें पटके है, तैसा यह दुष्ट मन यह आत्माकूं अनंतानंत काल दुःख जैसैं होय तैसैं मिथ्यात्व असंयम कषायनिमें पटके है ॥ बहुरि जैसैं वीलण जातीका मत्स्य पकडनेकूं रोकनेकूं असमर्थता है, तैसैं यह बिगड्या हुवा मनहूकूं रोकनेमें असमर्थता है ॥ बहुरि इस दुष्ट मनकी चेष्टाकरिकैही यह जीव अनंतानंत भयानक नरक निगोदादि अशुभगतीकी है बहुलता जामैं ऐसा

संसार तामैं जन्म मरण क्षुधा तृषादि हजारा दुःखनिनैं प्राप्त होता परिभ्रमण करे है ॥ बहुरि या मनकूं स्वाध्याय शुभध्यान द्वादश भावना इनिमें रोकनेतैं ये संसारपरिभ्रमण करावनेवाले रागद्वेषादिक दोष शीघ्रही नाशकूं प्राप्त होय हैं ॥

भावार्थ— यह जीव अनादिकालतैं निगोदहीमें अनंतानंत जन्ममरण कीया अर कदाचित् कोई निगोदतैं निसऱ्या तो पृथ्वीकाय जलकाय अग्निकाय पवनकाय प्रत्येकवनस्पतिकाय तथा बेंइंद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय तिर्यंच कुमानुष्य नरकमें परिभ्रमण करता बहुरि निगोद गया कदाचित् कोई मनुष्य उच्चकुलादि इंद्रियपूर्णतादि सामग्री पावेतो तो ऐठै मनकूं मिथ्यात्व विषय कषाय परिग्रहादिमें लगाय फेरि निगोदवास जाय करे है ॥ कैसी है निगोद? जासैंतैं अनंतानंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल व्यतीत होजाय तोहू निकसना नही होय है ॥ बहुरि कैसीक है? जामैं मन नही, इंद्रिय नही, विषय नही, एक श्वासमें अठारे बार जन्ममरण करना है ॥ तातैं दुःखतैं जो उबऱ्यो चाहो हो तो मनकूं मिथ्यात्वादि हिंसाकषायादि पापनितैं रोकना योग्य है ॥ आगे औरहू कहे हैं ॥ गाथा—

इय दुट्ठयं मणं जो। वारेदि पडिट्ठवेदि य अकंपं ॥
सुहसंकप्पपयारं। च कुणदि सज्झायसण्णिहिदं ॥ ४४ ॥

अर्थ— याप्रकार जो दुष्टमनकूं रोकिकरि श्रद्धानपरिणामादिविषैं निश्चल स्थापन करे है, ताहीकै शुभ संकल्प होय है, सोही आत्मानैं स्वाध्यायमैं तत्पर लीन करे है ॥ गाथा—

जो विसयणिप्पडंतं । मणं णियत्तेदि सह विचारेण ॥
णिग्गिह्णेदि मणं जो । करेदि अदिलज्जियं च मणं ॥ ४५ ॥

अर्थ— जो पुरुष बाह्यविषयकषायनिमें पडतो गमन करतो जो मन, ताहि अध्यात्मभावनाकरिकै तथा द्वादशभावना तथा धर्मध्यान शुक्लध्यानकरिकै रोकत है, सो मनको निग्रह करे है तथा मनको अतिलज्जित करे है ॥ गाथा—

दासं व मणं अवसं । सवसं जो कुणदि तस्स सामण्णं ॥
होदि समाहिदमविसो- । त्तियं च जिणसासणाणुगदं ॥ ४६ ॥

अर्थ— जो जिनेंद्रका आगमका अनुभवनकरि तथा सत्यार्थ आत्मिकसुखका अनुभवकरिकै जो अवश मन ताहि दासीपुत्रकीनाईं स्ववश कहिये आपके वशीभूत करे है, ताकै मुनिपणा पापास्रवरहित जिनशासनके अनुकूल आत्महितमें लीन ऐसा होय है ॥

इति भक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषैं पांचमा समाधि नामा अधिकार

समाप्त कीया ॥ आगे अनियतविहार नामा छट्ठा अधिकार वारह गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

दंसणसोधी ठिदिकर- । णभावणा अदिसयत्थकुसलत्तं ॥
खेत्तपरिमग्गणा वि य । अणियदवासे गुणा होंति ॥ ४७ ॥

अर्थ— जो यतीनिकूं एकस्थानविषैं नही रहना नानादेशमैं विहार करना याका नाम अनियतविहार है। सो अनियतवासमैं एते गुण प्रकट होय हैं ॥ १ दर्शनकी शुद्धता, २ स्थितीकरण, ३ भावना, ४ अतिशयार्थकुशलता, ५ क्षेत्रपरिमार्गणा ॥ भावार्थ— नानादेशविषैं विहार करनेतैं सम्यग्दर्शनकी उज्वलता होय है तथा रत्नत्रयमें शिथिलताका अभाव होय स्थितीकरण गुण होय है। वहुरि धर्ममें वारंवार प्रवृत्ति परिषहसहनरूप भावना होय है तथा अतिशयरूप अर्थमें प्रवीणता होय है तथा संन्यासकै योग्य क्षेत्र जान्या जाय है। तातैं नानादेशमें विहार करनाही कल्याण है॥ आगै दर्शनविशुद्धता गुण कहे हैं ॥ गाथा—

जम्मण अभिणिक्खवणो । णाणुपत्ती य तित्थणिसिधीउ ॥
पस्संतस्स जिणाणं । सुविसुद्धं दंसणं होइ ॥ ४८ ॥

अर्थ— जो नानादेशनिमें विहार करनेतैं जिनेंद्रभगवानका जन्मकल्याणककी

भूमि तथा तपकल्याणकका तथा ज्ञानकल्याणकका तथा समवसरणका स्थान तिनके अवलोकनतैं तथा ध्यानके स्थाननिके अवलोकनतैं निर्मल सम्यग्दर्शन होय है ॥ इति दर्शनविशुद्धिः ॥ आगै नानाक्षेत्रनिमें विहार करनेवाला जो मुनि सो अन्य क्षेत्रनिमें मिलते जे साधु तिनिकै स्थितीकरण गुण प्रकट करे हैं ॥ गाथा—

संवेगं संविगाणं । जणयदि सुविहिदो सुविहिदाणं ॥
जुत्तो आउत्ताणं । विसुध्दलेस्सो सुलेस्साणं ॥ ४९ ॥

अर्थ— उत्तम है चारित्र जिनिका ऐसे साधुनिका नानादेशनिमें विहार करना कैसा है? जो विरागी अन्य साधुजन तिनिकै अतिशयरूप संसारदेहभोगनितैं विरक्तता उपजावे है। जो इनिका सत्यार्थ वीतरागपणा देखि हजारां जन वीतरागताने प्राप्त होय हैं, तो अन्य संयमीनिकै विरक्तता नही वधै कहा? वधैही। बहुरि उत्तमचारित्रके धारीनिकै चारित्रमें अति उत्साह करे है। बहुरि योग्य आचरणके धारीनिकै तपमें युक्त करे हैं। बहुरि उज्वललेश्यानिके धारीनिकै लेश्याकी अतिउज्वलता करे है ॥

भावार्थ— उत्तम चारित्रके धारकनिका नानादेशनिमें विहार होनेतैं जे धर्मात्मा हैं, तिनिकैं तौ धर्ममें अत्यंत तत्परपणा होय है। अर जे चारित्रमें शिथल हैं, ते हैं, तिनिकै धर्ममें अत्यंत चारित्रमें अत्यंत निश्चल होजाय हैं। अर जे धर्मरहित होय तिनिकै धर्ममें अत्यंत चारित्रमें अत्यंत निश्चल होजाय हैं।

उत्साहतैं प्रवृत्ति होजाय है । अर जे अज्ञानी हैं तिनिकूं धर्मका महिमा जान्या जाय है । अर देहमात्रमें अत्यंत विरक्त आचारांगकी आज्ञाप्रमाण छियालीस दोष टालि कदाचित् किंचित् आहार ग्रहण करता तृणकांचनमें समानवुद्धीका धारक ऐसे निर्ग्रंथनिकूं देखि अनेक मिथ्यादृष्टिजनहू कषायविष उठालि परम शांततानैं प्राप्त होय है ॥ आगै नानादेशनिमें विहारके औरहू गुण कहे हैं गाथा–

पियधम्म वज्जभीरु । सुत्तत्थविसारदो असठभावो ॥
संविग्गावेदि परं । साधू णियदं विहरमाणो ॥ १५० ॥

अर्थ— सदाकाल विहार करता जो साधु सो पर जे अन्यलोक तिनकूं धर्मानुरागरूप वीतरागरूप करे है । कैसा है साधु? अत्यंत प्रिय है दशलक्षणधर्म जाकू ऐसा वहुरि पापतैं अत्यंत भयभीत बहुरि सूत्रका अर्थमें प्रवीण बहुरि शठपणारहित ऐसा साधु नानादेशनिमें विहार करता नानादेशके प्राणीनिकूं धर्ममें प्रीतिरूप करेही करे । याप्रकार परजीवनिकूं स्थितीकरण करनेरूप गुण कह्या ॥ आगै नानादेशनिमें विहार करनेतैं आपका आत्माकाहू धर्ममें स्थितीकरण होय है यह दिखावे हैं—

संवेग्गदरे परिसय । पिवधम्मदरे अवज्जभीरुदरे ॥
संयमपिय थिरधम्मो । साहू विहरंतउ होदि ॥ ५१ ॥

अर्थ— नानादेशनिमें विहार करनेतैं अनेक जे संसारदेहभोगनितैं विरक्त तिनिके देखनेतैं तथा प्रिय है धर्म जिनिकूं ऐसे धर्मानुरागीनिके देखनेतैं तथा पापका है भय जिनिकै ऐसे दुराचरणरहित तिनिके देखनेतैं साधु जो संयमी सो आपहू धर्ममें प्रीति-युक्त तथा धर्ममें स्थिर निश्चल अनियतविहार करनेवाला होय है ॥ इति याप्रकार अनियतविहार करनेतैं स्थितीकरण गुण कह्या ॥ आगै नानादेशनिमें विहार करनेतैं परिषहसहनरूप भावना होय है, सो कहे हैं ॥ गाथा—

चरिया छुधा य तण्हा। सीदं उण्हं च भाविदं होदि ॥
सेज्जा वि अपडिवद्धा। य विहरणेणाधियासिया होइ ॥ ५२ ॥

अर्थ— तीक्ष्ण शर्करा पाषाण कांकरी कांटा वा सीत वा उष्ण तथा कर्कशभूमि इनिपरि पादत्राणरहित चरणनिकरि गमन, तथा मार्गका चालना इनकरि उपजी जो वेदना, ताकूं संक्लेशभावरहित सहना यह चर्याभावना कहिये मार्गतैं उपज्या परीषहका समभावकरि सहना ॥ बहुरि पूर्वैं नही कीया है परिचय जिनमें ऐसे देशनिमें विहार तथा तिनि देशनिमें भोजनका नही मिलना तथा अंतराय होना तिनिकरि उपजी जो क्षुधावेदना, ताका संक्लेशरहित सहना, यह क्षुधापरिषहका सहना ॥ बहुरि ग्रीष्मऋतुमें विहारका करना तथा प्रकृतिविरुद्ध आहार करना

तथा उपवासनिका पारणामैं थोरे जलका लाभ होना वा जल नहीं मिलना इत्यादिकरि उपज्या तृषापरीषहका समभावनिकरि सहना ॥ बहुरि शीत उष्णपरीषहका समभावनिकरि सहना ॥ बहुरि कर्कश कठोर कांकरी ठीकरी कंटक कठोर तृण इनिकरि सहित भूमि तथा शीतभूमि तथा उष्णभूमि तथा विषम-नीचउच्चभूमीमें एक पसवाडे संकुचित अंग सोवना याप्रकार शय्याजनित परिषह समभावनिकरि सहना वा शय्या जो वसतिका तामें अप्रतिबद्धा कहिये 'या वसतिका हमारी' याप्रकार ममताभावरहितता ॥ ये सर्वपरिषह सहना नानादेशनिमें विहार करनेतें होय है ॥ इति भावना ॥ याप्रकार अनियतविहारमें भावना गुण कह्या ॥ आगै नाना-देशनिमैं विहार करनेतैं अतिशयरूप अर्थमें प्रवीणता होय है सो दिखावे हैं ॥ गाथा—

णाणादेसे कुसलो । णाणादेसे गदाण सत्थाणं ॥
अभिलाव अत्थकुसलो । होदि पदेसप्पवेसेण ॥ ५३ ॥

अर्थ— नवीननवीन देशनिमें विहार करनेतैं नानादेशनिका आचरण तथा देशनिकी रीति तथा चारित्र पालनेकी योग्यता वा अयोग्यताका जानना होय है ॥ बहुरि नानादेशनिमैं प्राप्त भये जे शास्त्र तिनिमें प्रवीणता होय है ॥ बहुरि नानादेशनिकी भाषा तथा अर्थनिमें प्रवीणता होय है ॥ आगै अतिशयरूप

अर्थमें कुशलता नामा गुण कहे हैं ॥ गाथा—

सुत्तत्थथिरीकरणं। अदिसयिदत्थाण होदि उवलद्धी ॥
आयरियदंसणेण दु। तह्मा सेवेज्ज आयरियं ॥ ५४ ॥

अर्थ— नानादेशनिमें विहार करनेतैं अन्य आचार्यका देखना होय है तथा अन्य आचार्यनिके देखनेतैं उनके मुखतैं सूत्रका अर्थ श्रवण होय तादि अतिशयरूप अर्थकी प्राप्ति होय है ॥ बहुरि पूर्वैं जो अर्थ आप समझि राख्या ताहिभांति अन्य आचार्यनितैं सुननेकरि सूत्रका अर्थमें स्थिरीकरण होय है ॥ बहुरि नानादेशनिमें विहार करनेतैं आचार्यनिका सेवन होय है ॥ आगै अन्यप्रकारकरिकैहू अतिशयरूप अर्थमें कुशलपणा दिखावै हैं ॥ गाथा—

णिक्खवणपवेसादिसु। आयरियाणं वहुप्पयाराणं ॥
सामाचारी कुसलो। पहोदि गणसंपवेसेण ॥ ५५ ॥

अर्थ— बहुतप्रकारके जे आचार्य तिनिके संघमें प्रवेशकरिकै निष्क्रमणप्रवेशादिक जे क्रिया तिनिविषैं सामाचारी प्रवीण होय है ॥ भावार्थ— केईक अन्य साधु आचरण करे तैसैं आपहू करे हैं। केईक जिनसूलकूं गुरूके निकट आच्छीतरह समझि सूलमें कह्या तैसैं जानिकरि करे हैं। केईक आचारका क्रम बहोत देखेहू है अर

जिनसूत्रहू बहोत अवलोकन करे हैं तातैं दोऊके ज्ञाता हैं, तिनिके आचार नानादेशनिमैं विहार करनेतैं जान्या जाय है। सोही कहे हैं॥ सामाचार जो सर्व मुनीनिका समान आचरण ताहि समाचार कहिये हैं। सो समाचार दोय प्रकार, एक संक्षेपरूप एक विस्ताररूप। तिनिमैं संक्षेपसमाचार दशप्रकार है- १ इच्छाकार, २ मिथ्याकार, ३ तथाकार, ४ इच्छानुवृत्ति, ५ आशी, ६ निषिद्धिका, ७ आपृच्छन, ८ प्रतिप्रश्न, ९ आनिमंत्रण, १० संश्रय॥

१ जो साधूकू आपके निमित्त वा अन्य साधूके निमित्त पुस्तककी इच्छा होय वा आतापन योगादिक धारनेकी इच्छा होय तदि आचार्यके निकट विनयसहित याचना करना यह इच्छाकार है॥

२ बहुरि जो मैं दुष्टकर्म किया, जिनसूत्रकी आज्ञाविना किया, सो मिथ्या होहू अब ऐसा दुराचार कदेही नही करूं। याप्रकार मनकी प्रवृत्ति करना सो मिथ्याकार है॥

३ बहुरि आचार्यादिक पूज्यपुरुष तत्त्वार्थका उपदेश करता होय, तहां श्रवण करता जे साधु, ते आदरपूर्वक कहे, जो, भगवद्वचन जो आपके वाक्यतैं अन्यथा नही-तैसैंही है, प्रमाण है, सो तथाकार है॥

४ बहुरि पूर्वे ग्रहण कीया जो अनशन तप तथा आतापनयोग तथा उपकरणादिक

तिनिविषैं आचार्यनिकी इच्छाके अनुकूल प्रवर्तना सो इच्छानुवृत्ति है ॥ भावार्थ— ये आचार्य भगवान् सर्व देशकालके ज्ञाता हैं अर हमारी तथा सर्वसंघके साधुजननिकी प्रकृति संहनन परिणाम जाने हैं, सो इनिकी इच्छाके अनुकूल प्रवर्तना सोही हमारा हित है अर विनयधर्मका लाभ है ॥

५ बहुरि जा पर्वत नदीपुलिन वृक्षके कोटरे गुफा वसतिकादिक स्थानमें एकदिन वा रात्रि वा प्रहर दोय प्रहर तिष्ठिकरि विहार करे तदि आप बोलै— भो, स्थानके स्वामी हो, हम तुमारे स्थानमें इतने काल तिष्ठे अब गमन करे हैं तुह्मारै क्षेमसहित उदय होहू। याप्रकार व्यंतरादिकनिकूं इष्टरूप आशीर्वाद देना पाछै विहार करना सो आशी है ॥

६ बहुरि जा स्थानमें प्रवेश करना होय तहां कहै, जो, भो स्थानके निवासी हो, तुमारी इच्छाकरिकै इहां हम तिष्ठे हैं। याप्रकार व्यंतरादिकनिकी बाधाका दूरी करना सो निषिद्धिका है ॥ ऐसी निषिद्धिका कीये पीछे वसतीका गुफा स्थानादिकमें मुनिकूं तिष्ठनेका भगवानका हुकुम है ॥

७ बहुरि नवीन ग्रंथका आरंभ तथा केशनिका लोंच तथा कायशुद्धिक्रियादिकविषैं आचार्यादि पूज्यपुरुषांकूं प्रश्न करना सो आपृच्छना है ॥

८ बहुरि जो कोऊ महान् कार्य करना होय तदि आचार्यनिनैं विनयकरि पूछि बहुरि पूछना यह प्रतिप्रश्न है ॥

९ बहुरि जो पुस्तक तथा उपकरण पूर्वैं आपकूं दीया जो तुमारा कार्य कर लेहू तदि आप ग्रहण करि पठनादिक्रिया करि लीनी अर फेरिहू वांछा उपजे तदि फेरि गुरुनिकूं जनावना सो आनिमंत्रण है ॥

१० बहुरि विनयसंश्रय, क्षेत्रसंश्रय, मार्गसंश्रय, सुखदुःखसंश्रय, सूत्रसंश्रय ये पांच प्रकार संश्रय हैं। तहां कोऊ परसंघका मुनिकूं आवता देखिकरिकै अर आनंदतैं ऊठिकरिकै अर सप्त पैंड सम्मुख जाय उनकै जोग्य वंदना करि अर आसनका देना इत्यादिकरि मार्गका खेद दूरि करिकै अर रत्नत्रयकी कुशल पूछना यह विनयसंश्रय है ॥ १ ॥ बहुरि जा क्षेत्रमें दुष्ट राजा होय तथा राजाही नही होय तथा देश पापरूप होय तथा पापी जनांकरि व्याप्त होय दीक्षातैं पराङ्मुख होय तथा दुर्भिक्षकरि सहित होय तथा जामैं शीत बहुत होय तथा उष्णताकी बाधा बहोत होय तथा जीवनिकी बाधा बहोत होय ऐसा क्षेत्रकूं छोडिकरि जा क्षेत्रमें बाधारहित संघका निर्वाह होय परिणामकूं सुखदायक होय ऐसा क्षेत्रनिमें निवास करना यह दूसरा क्षेत्रसंश्रय है ॥ २ ॥ बहुरि आगंतुक मुनीनकूं मार्गका आवनेमें जो सुखदुःख उपज्या होय ताकूं

पूछना सो तीसरा मार्गसंश्रय है ॥ ३ ॥ बहुरि जो आगंतुक मुनीनकै मार्गविषैं चोरनिकी बाधा भई होय वा रोगकी बाधा भई होय वा राजाकी बाधा हुई होय वा औरभी तिर्यंच दुष्टमनुष्यादिजनित बाधा हुई होय तिनिकूं आहार औषधि वसतिका इत्यादिकरि तथा शरीरकी टहल सेवाकरि सुख उपजावना तथा सुखमें दुःखमें मै आपका हूं इत्यादि वचनकरि चित्तकूं प्रसन्न करना यह चौथा सुखदुःखसंश्रय है ॥ ४ ॥

आगै पांचमा सूत्रसंश्रय कहे हैं ॥

कोऊ मुनि पूर्वै आपकै गुरुनिके चरणांके निकट समस्त शास्त्र पढि लिया होय बहुरि स्वमतका वा परमतका वा लौकिक अन्य ग्रंथका अर्थ जाननेकी अभिलाषा होय तदि भक्तिपूर्वक आपके गुरुनिकूं नमस्कार करि विनति करै— हे स्वामिन् हमारै आपका चरणारविंदाका प्रसादथकी अन्य दूसरा मुनींद्रका संघकूं देखनेकी आज्ञा होय वांछा वर्तै है, ऐसैं विनयपूर्वक प्रश्न करै, अर जब गुरुनिकी आज्ञा होय जाय, जो, जावो, तदि फेरि अवसर पाय प्रश्न करै, जो, हे भगवन् मोकूं अन्यसंघमें जावनेकी कहा आज्ञा है? तदि दूसरी बारहू गुरु आज्ञा करै जावो, फेरिहू अवसर पाय कितनेक प्रहर दिवस मासका अंतराल करिकै फेरिफेरि प्रश्न करै, अर वारंवार आज्ञा होय तब अन्य एक मुनि वा दोय अन्य मुनि वा बहोत

अन्य मुनिनिकरि सहित गमन करै, एकाकी गमन नही करै। जातैं ऐसा मुनिकै एकविहारिपणा होय है, जाकै श्रुतज्ञान अवधिज्ञान होय सो प्रबल होय, अर वज्रवृषभनाराच वा वज्रनाराच वा नाराच उत्तम तीन संहननका धारक होय अर मनोबलसहित होय, जाका मनकूं देव मनुष्य तिर्यंच घोर उपसर्ग करिकैहू चलायमान नही करिसकै ऐसा होय, बहुरि आत्मभावना वा अनित्यादि द्वादशभावनाका निरंतर भावनेकरि कदाचितहू आर्त्तरौद्ररूप परिणतिकूं नही प्राप्त होय, बहुरि बहुतकालतैं दीक्षित होय, गुरूके निकट निरतिचार चारित्रसेवन कऱ्या होय, क्षुधादि बाईस परीषह सहवाने समर्थ होय, ताकै एकाकी विहार होय है ॥ एते गुणरहित स्वेच्छाचारी पुरुषा एकाकी विहार करना वैरीकाहू मति होहू ॥ जो इतने गुणरहित एकाकी विहार करै तो श्रुतका संतानकी व्युच्छित्ति होय। जातैं स्वेच्छाविहारी हुवा तादि श्रुतकी परिपाटी कहा रही? यथेच्छ प्ररूपण करे है ॥ बहुरि अनवस्थाहू होय है। जातैं एकाकी प्रवर्त्या तादि मुनिधर्मकी खानमें पानमें बोलनेमें विहारमें शयनमें आसनमें मर्यादाहू नही रही ॥ कोऊ कैसैं प्रवर्तैं, कोऊ कैसैं प्रवर्तैं, कोऊ गुरु प्रवर्तक नही रह्या, कोऊकी लज्जा नही रही ॥ बहुरि संयमका नाश होय है, जातैं एकविहारीकै आहार विहार शयन आसनविषैं

प्रवृत्तिकी शुद्धता नहीं होय है ॥ बहुरि जानैं पूर्वोक्तगुणरहित एकाकी विहार किया तानैं जिनेंद्रकी आज्ञाका भंगहू किया॥ बहुरि पूर्वोक्तगुणरहित जो एकाकी विहार किया, सो धर्मकी तथा गुरुकी अपकीर्तिहू करावे है ॥ बहुरि गुणरहित एकविहारी अग्नि-करिकै तथा जलकरिकै तथा विषकरिकै तथा अजीर्णादि रोगकरिकै आर्त्तरौद्रध्याननैं प्राप्त होय, आपका आत्माकाहू नाश करे है, तातैं पूर्वोक्तगुणरहितकूं एकविहारी होना अयोग्य है ॥

बहुरि आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणधर ये पंच प्रधानपुरुष जिस संघमें होय, तिस संघकूं प्राप्त होय ॥ अब आचार्य कैसा होय सो कहे हैं ॥ बहुरि जो संग्रह कहिये शिष्य जे धर्मानुरागी तिनिका ग्रहणमें प्रवीण होय ॥ कैसा है शिष्य? संसारपरिभ्रमणतैं अत्यंत भयभीत होय बहुरि विनाशीक जो देह तातैं अति विरक्त होय बहुरि दुर्गतिके कारण अर अतृप्तिताके करनेवाले तृष्णाके वधावनेवाले जे इंद्रियनिके भोग, तिनिमैं अति उदासीन होय अर संसार देह भोगतैं उपजा संक्लेशरूप अग्निकरि जाका हृदय अत्यंत दग्ध होता होय तादि संसारदेहभोगसंबंधी क्लेशरूप अग्नि बुझायवेकूं अविनाशी पदका आनंदरूप अमृतकूं हेरता होय बहुरि सुननेकी इच्छा वा श्रवणादिक, तिनिकरि जाकी पुण्यरूप उज्वल बुद्धि होय, बहुरि

बुद्धीका प्रभावकरि अच्छी तरह मिथ्यादृष्टीनिका आप्त आगम आचार धर्मनिका दूषण परीक्षा करिकै जानि लीया होय, बहुरि ऐसे धर्मकूं प्राप्त होयकरि अत्यंत हर्षितचित्त होय ॥ कैसा है धर्म? प्रमाणनयस्वरूप युक्तिकरि युक्त होय-प्रमाणनयकरि जामैं बाधा नहीं आवे, बहुरि सर्वज्ञ वीतरागका कह्या हुवा होय, जातैं आपकी रुचिविरचित अल्पज्ञानीका कह्या प्रमाण नहीं, तथा रागीद्वेषीका अभिप्रायही शुद्ध नहीं, तब वाका कह्या वचन कैसैं प्रमाणरूप होय? बहुरि पापका जीतनेवाला होय, बहुरि संसारसमुद्रमें डूबता प्राणीनिकूं हस्तावलंबन देनेवाला होय, बहुरि दयाकरि संयुक्त होय बहुरि स्वर्गमोक्षका सुखका देनेवाला होय ऐसा धर्ममें प्रीतियुक्त होय ॥ सो वीतरागगुणमें प्राप्त होयकरिकै अर प्रार्थना करै, हे स्वामिन मोकूं संसारपरिभ्रमणका निवारण करनेवाली दयामयी दीक्षा देहू ॥ बहुरि परमार्थका अर व्यवहारका जाननेवाला मोहरहित आचार्यहू विनाविचार्‍या दीक्षा नहीं देवे। एते गुणसहित होय ताकूं दीक्षा देवे ॥

ते गुण कोनसे सो कहे हैं- प्रथम तौ उत्तम देशका उपज्या होय। देशका प्रभाव परिणाममें वा संहननमें व्याप्याविना रहे नहीं। तातैं देश शुद्ध होय। बहुरि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीन वर्णकरि श्रेष्ठ होय। बहुरि अंगकरि पूर्ण होय-हीन अंग

अधिक अंग नही होय। बहुरि राजकरि विरुद्ध नही होय, जातैं जो राजाका महामात्यादिक होय अर राजाकी आज्ञाविना दीक्षा लेता होय अर जो वाकू दीक्षा देवै तौ राजकृत उपद्रव संघ उपरि आजाय। जो यह साधु राजाका अपराधी है ॥ बहुरि लोकविरुद्ध नही होय, लोकविरुद्ध जो दुशचारी, चोर, पासी, गरदीन, परउच्छिष्टादि भक्षण करनेवाला, वा खोटे विणज खोटे व्यवहार करनेवाला होय, महा निर्दय होय, खोटी आजीविका करनेवाला, वा परधन खानेवाला, वा ऋणसहित होय वा हत्या करनेवाला, उन्मत्त, जातिकुलका अपराधी, ताकूं दीक्षा देना योग्य नही ॥ जो लोकविरुद्धकूं दीक्षा देवै तौ जगतमें धर्मका बडा अपवाद होय। लौकिकजन ऐसैं निंदै— जो सर्वजगतका पापी ठिग अपराधी इस संघमें वसे है, जा अपराधीकूं कहूंही ठिकाणा नही होय सो दीक्षित दिगंबर होय है, ऐसी धर्मकी महा निंदा होय। तातैं लौकिक अपराध जामैं एकहू नही होय ताकूंही दीक्षा देना उचित है ॥ बहुरि जाकूं स्त्री पुत्र माता पिता कुटुंबादिक दीक्षाकी आज्ञा दे दीनी होय, जातैं जो कुटुंबतैं नही छुट्या अर जाकूं दीक्षा देवै तौ सर्व लोक वैरी होजाय, जो, यह साधु दयारहित हैं जगतका भोला जीवानैं वहकाय लेजाय है अनेक घरके डबोवनेवाले है ॥ कोईकी स्त्री रोवे है, कोईका बालक पुत्र रोवे है, कोईकी माता

रोवे है, कोईका वृद्ध पिता रुदन करे है, ये साधु काहेके हैं, घर खोजे है, जगतका बालकानैं भोला जीवानैं ठिगता फिरे हैं, याप्रकार सर्वलोकनिमैं अवज्ञा हो-जाय। तातैं कुटुंबतैं ममता छुडाय, कुटुंब बांधवांकी राजीतैं दीक्षा लेवै, ताकूंही दीक्षा देना उचित है॥ बहुरि जाका मोह जाता रह्या होय, जातैं जाकै विषयामैं ममता होय ताकूं दीक्षा उचित नही, जो दीक्षा देवै तौ धर्मको वा गुरुको वा संघको अपवादही होय॥ बहुरि जाका शरीरमें श्वेतकुष्ठ तथा मृगी इत्यादिक वडा रोग नही होय, ताकूं दीक्षा उचित है। तातैं आचार्यभगवान् ज्ञाता है, जाकूं जोग्य जाने है अर जाथकी सर्व संघमें धर्मकी वृद्धि अर मोक्षमार्गका प्रवर्तन जाने ताहीकूं दीक्षा देवे है। जातैं जो अयोग्यकूं दीक्षा देकरि उनके संप्रदाय वधावना नही, कुछ चाकरी टहल करावना नही, कुछ जगतकूं वहोत शिष्य दिखाय आडंबर वधावना नही, जाकरि धर्मका मार्गकी वृद्धि होय सो कार्य करना उचित है। तातैं आचार्य होय सो शिष्याका ग्रहण करनेमें तथा उपकार करनेमें समर्थ होय, बहुरि श्रुतज्ञानमें अर चारित्रमें लीन होय, बहुरि पंच प्रकारके आचार आप आचरे अर अन्य शिष्यानैं आचरण करावै ऐसा होय। बहुरि चारित्रमें अतिचारदोष मलरहित होय, जातैं आचार्यहीकै अतिचार लागै, जब संघका अन्य मुनीनकै अतिचारका भय नही रहे है।

बहुरि मनकी दृढताका बलसहित होय। बहुरि गंभीरपणासहित होय। जातैं गंभीर-
पणाविना संघका निर्वाह करवानैं समर्थ नहीं होय। बहुरि बाल वृद्ध शक्त अशक्त
सर्व संघका निर्वाह करवारूप कृपाकरि सहित होय। बहुरि घोर परिषह तथा देवमनु-
ष्यातिर्यंच अचेतनकृत घोर उपसर्ग सहनेकू समर्थ जाका अशोक धैर्यगुण होय इत्यादि
औरहू अनेकगुणसहित आचार्य होय है ॥

बहुरि आगे उपाध्यायके लक्षण कहे हैं ॥ संसारका छेदवाहाला जिनेंद्रकथित
परमागम ताके पढनेमें तथा पढावनेमें जो लीन होय, जाका वचनरूप अमृतका पान-
करि मिथ्यात्व विषयकषायरूप विष विनसि जाय, सो उपाध्याय जानना ॥ बहु आगे
प्रवर्तकका लक्षण कहे हैं ॥ जो जिनधर्मकी प्रभावना करनेवाला अर आहारपानकी
वा शीत उष्णताकी वा दुष्ट मनुष्यातिर्यंचाकी बाधा संघमें नहीं आवे तैसें संघका
विहार वा स्थान करावनेवाला अर जगतकै आदर वा जोग्य वचनका अतिशयकरि
संयुक्त अर संघकी परमशांतता अर धर्मकी वृध्दि ताके योग्य देशकालका जाननेवाला
ऐसा परमोद्यमी प्रवर्तक साधु होय है ॥ आगे स्थविरका लक्षण कहे हैं ॥ मर्यादा
रीत पूर्वला आचार्यातैं चली आई ताकूं जाननेवाला होय; अर गुणाकरि स्थिर होय
ऐसा स्थविर होय है ॥ आगै गणधरका लक्षण कहे हैं ॥ जो संघकी रक्षा करनेमें समर्थ

होय बहोत काल गुरुकुल सेया होव अर पूर्वै कह्या जे आचार्यनिके गुण ते जामैं विद्यमान होय सो गणधर होय है ॥

अब जो पूर्वै वर्णन कीया जो मुनि सो दोय तीन चार मुनीश्वरनिकरि सहित गुरांकी आज्ञातैं अन्य आचार्यनिका संघमें जावै, बहुरि जा संघमें आचार्य उपाध्याय प्रवर्तक स्थविर गणधर होय ता संघमें प्राप्त होय, बहुरि परसंघका आचार्य अपने संघसहित सन्मुख आवता अर 'अभ्युत्तिष्ठ' इत्यादि वाक्य तथा नमस्कार तथा अंगीकार करनेकी इच्छा तथा वात्सल्य इनि कारणनिकरि आचार्यनिनैं प्राप्त होयकरिकै अर आचार्यनिकूं तथा सर्वसंघकूं प्रीतीतैं अवलोकन करि अर भक्तिथकी संघकूं अर संघका अधिपति जे आचार्य तिनिकूं वंदना करिकै बहुरि मार्गमें आवनेका अतीचारका नियम समाप्त करिकै अर औरहू क्रिया करनेयोग्य होय ताही समाप्त करिकै अर सर्व संघकूं वा संघका स्वामीकूं वंदना करिकै अर तादिन तो संघमें विश्राम करे। बहुरि दूसरे दिन वा तीजे दिन संघकी वा संघका स्वामी आचार्यांकी दयाभावमें तथा इंद्रियांका दमवामैं तथा आवश्यकक्रिया करनेमें योग्य अयोग्य क्रियाकूं जानै, बहुरि दूजे दिन वा तीजे दिन आचार्यांनैं प्राप्त होय अर नमस्कार करिकै अर मार्गमें जो उपकरण वा शिष्य प्राप्त हुवा

होय तिनिकूं भेट करिकै अर विनयसंयुक्त होय आपके वांछित होय ताकी विनती करै ॥ बहुरि आचार्य है सोहू नवीन आया मुनिनकी परीक्षा करिकै अर जो गुरुपरिपाटी करिकै शुद्ध होय, तादि तौ संघमें ग्रहण करै। अर जो गुरुकुलशुद्ध नही होय वा आचरणशुद्धि नही होय तौ प्रायश्चित्त यथायोग्य छेद वा उपस्थापनादिक जो नवीन व्रतमें आरोपणादिक करिकै शुध्द होय जावै तादि संघमें ग्रहण करै, औरप्रकार नही करै ॥

बहुरि पाषाणकी शिलासमान, तथा फूटा घडासमान, बकरासमान, मींडासमान, घोडासमान, मांटीसमान, चालिनीसमान, सूवासमान, मछरसमान, मार्जारसमान, सर्पसमान, भैसासमान, ऐसे श्रोता तो उपदेशकै योग्यही नही ॥ बहुरि जो बुद्धिवान् विनयवान् श्रोताकूं विद्यमान् होताभी जो अविनयी वा मंदबुद्धि वा पूर्वे कहे जे शिलासमान सर्पसमान श्रोता तिनिकूं जो मोहकरिकै उपदेश करे सो उपदेशदाता अधम है, सो अधम उपदेशदाता रत्नत्रयरूप जिहाजरहित होय संसारसमुद्रमें डूबे है, ऐसा आगमका उपदेश है। ताहि चिंतवन करि अर आगंतुक मुनीनकूं पूछै, जो, तुमारा पूर्व अवस्थाकी स्थिति स्थान कौन है? अर तप ग्रहण कीये केता काल हुवा? अर तुमारा दीक्षा देनेवाला गुरु कौन है? अर तुम कौन कुलमें उपजे हो? अर तुमारा

नाम कहा है? अर कौन कौन शास्त्र पढे हो? अर कौन कौन आगम गुरांके निकट श्रवण कीये है? अर कौन प्रतिक्रमणादि अंगीकार कीये हैं? अवार आवना कहातैं कौन क्षेत्रतैं भया? अर चतुर्मास कहा व्यतीत किया? इत्यादिक पूछिकरिकै अर संयममें आसनमें गमनमें तीन दिनपर्यंत परीक्षा करिकै गुरुपरिपाटी अर चारित्रकी शुद्धता जानि अंगीकार करे॥ अर गुरुनिकरि अंगीकार किया जो आगंतुक मुनि सोहू आपकी शक्तीकूं गुरुनैं जणाय पाछै गुरुनिकरि व्याख्यान किया जो आगका वांछित श्रुत ताका विनयकरि पढना यह सूत्रसंश्रय है ॥ ५ ॥ ऐसैं संक्षेपथकी ऊधिक समाचार दश प्रकारका कह्या ॥

अब आगे विस्तारसमाचार अनेकभेदरूप है, ताकूं उदाहरणसहित प्रकट करनेकूं कौन समर्थ है? जातैं जो संयमीनिका रात्रिविषैं वा दिवसविषैं जो आचरण करे है, सो जिनेंद्रका कह्या हुवा विस्तारसमाचार जानना ॥ तहां साधु जो है सो आपकी शक्तीके अनुसारि भक्ति करिकै अर निर्वाणकी वांछा करिकै क्रियाकलापका सूत्र तथा आचारांग तथा परमपुरुषानिके पुराण तथा त्रिलोकका वर्णनका शास्त्र तथा सिद्धांत तर्कशास्त्र तथा द्वादशांग अर अंगबाह्य शास्त्र तिनिनैं बडा अनुराग करि पठन करे ॥ बहुरि आचार्यपद कौनकै होय सो कहे हैं– जो दर्शनज्ञानचारित्रका

स्थानक होय, अर सत्पुरुषांके शरणयोग्य होय, तथा महान्‌पणा पराक्रमीपणा गंभीर-पणा धैर्यादिगुणकरि भूषित होय, अर चिरकालका दीक्षित होय, इंद्रियनिका दमने-वाला होय, सिध्दांतकी परिपाटी जाकै प्रकट होय, दयावान् होय, वात्सल्यतासहित होय, शांत होय, जाके कषाय मंद होय, आचार्यपदकै योग्य होय, संघकै मान्य होय एते गुणनिका धारक होय सो प्रायश्चित्तादि शास्त्र पढि अर आचार्यनिकरि दीया आचार्यपदनैं प्राप्त होय है ॥ बहुरि जो पहिली शिष्यपणा आचरण नही करिकै अर आचार्यपणा करनेकूं चाहै सो शिक्षारहित अश्वकीनांई उन्मार्गगामी होत है ॥

भावार्थ— जो बहोत काल गुरुकुल सेया होय अर पूर्वोक्त गुणनिका धारक होय सोही आचार्यपदके योग्य है ॥ अर इनि गुणनिविना उन्मार्गगामीही जानना ॥ बहुरि साधुनिकूं सर्व प्राणीनिमैं मैत्रीभाव करना, सम्यग्दर्शनादि गुणनिके धारकनिमें प्रमोदभाव करना, बहुरि दुःखितजीवनिमें करुणाभाव करना, बहुरि मिथ्यादृष्टि हटग्राही व्यसनी उन्मार्गगामीनिविषैं माध्यस्थ्य कहिये रागद्वेषरहित भाव करना ॥ बहुरि साधुजन हैं ते अरहंतानैं तथा सिध्दानैं तथा आचार्यानैं तथा उपाध्यायानैं तथा जगतका गुरु साधूनिनैं तथा जगतके हितकारक धर्मनैं वंदना करै। अन्यकूं वंदना नही करै ॥ बहुरि छिंक आवे तदि तथा अचानक देहमें पीडा उपजे तदि तथा भय होता

तथा जंभाई आवता तथा इष्टकार्यका आरंभ करता तथा आखडता चिगता तथा शयन करता तथा विस्मय होता इतने कार्यमें आदि जिनेंद्रका स्मरण करना योग्य है ॥

अब आचार्यनिकूं कैसें वंदना करै सो कहे हैं ॥ जा अवसरमें गुरु सुखकरिकै बैठे होय अर संघकी तरफकी कुछ आकुलता नही होय अर सन्मुख होय ता अवसरमें आचार्यनितैं एक हस्तमात्र अंतराल छोडि खडा रहिकरि अर मुखतैं कहे- हे स्वामिन् वंदना करूं हूं ॥ ऐसैं विनति करि अर कतरणीकीनांई आपका अष्ट अंगनिनैं अर भूमिनैं स्पर्शन करिकै अर पींछीसहित अंजली मस्तक चढाय पशूकी अर्धशय्याकीनांई नम्रीभूत होयकरिकै वंदना करै ॥ अर आचार्यहू ऋध्द्यादिकनिका गर्वरहित हुवा संता पींछीसहित अंजली मस्तक चढाय प्रतिवंदना करै ॥ बहुरि जो परके दोष हेरनेवाले तथा सत्यार्थ सम्यग्दर्शनादि गुणनिके अपवाद करनेवाले ऐसे पार्श्वस्थमुनि तपश्चरण करे है तौऊ वंदनेयोग्य नही। तातैं जैनके यति, पार्श्वस्थादि भ्रष्ट मुनि तिनिकूं वंदना नही करे हैं ॥ बहुरि गुरुनिके आगे यथेष्ट तिष्ठना योग्य नही। बहुरि गुरूनिकूं पूछना होय, तदि, तैसैं प्रश्न करै, जैसैं गुरुनिका परिणाममें कोप नही उपजै, तथा तिनिका कह्या वचनकूं अंगीकार करै, अर तामैं तत्पर होय ॥ बहुरि गुरुनिकूं पुस्तकादिका सोपना होय तौ दोऊ हस्तनितैं सोपै अर

जो गुरु आपकूं सोंपै तो विनयसहित दोऊ हस्तनितैं ग्रहण करै ॥

बहुरि मुनीनिकूं समस्तमतमें प्रशंसायोग्य "नमोऽस्तु" याप्रकार नति करना प्रशंसायोग्य है ॥ बहुरि मुनीनिकूं कोऊ नमस्कार करै तब मुनि कहा कहै सो कहे हैं ॥ जो आर्यिका नमस्कार करै तथा उत्कृष्ट श्रावक ग्यारह प्रतिमाधारी ब्रह्मचारी नमस्कार करै तदि ता "कर्मक्षयोऽस्तु ते" तुह्मारे कर्मका नाश होऊ अथवा "समाधिरस्तु" ऐसा कहै, जो तुम्हारे परिणामनिमें परमसमता होऊ ॥ अर जो गृहस्थी नमस्कर करै तौ ताकूं "धर्मवृद्धिरस्तु" अथवा "शुभमस्तु" अथवा "शान्तिरस्तु" जो तुह्मारे धर्मकी वृद्धि होऊ अथवा सातिशय पुण्य होऊ अथवा तुह्मारे कल्याणरूप कार्यनिमें अंतरायका नाश होऊ। अर जो चांडालादिक नमस्कार करै ताकूं "पापक्षयोऽस्तु" तुह्मारे पापका नाश होऊ ऐसा आशीर्वाद देवे है ॥ बहुरि सम्यग्दृष्टि तथा सम्यग्ज्ञानी ऐसे मुनि अन्य श्रेष्ठगुणनिकरि रहितहू होय तौऊ मान्य है पूज्य है। जैसें श्रेष्ठरत्न साणपरि नहि चढ्या तौऊ मोलके योग्यही है बहोत मोल पावेही है॥ बहुरि साधुनिकूं आचार्यनिकरि सहित बोलना योग्य है। अन्य योगीनितैं प्रयोजनके अर्थि बोलना, विनाप्रयोजन वचनालाप नही करना। अर श्रावकजन वा अन्य स्वजन वा मिथ्यादृष्टिजन तिनितैं वचनालाप करै अथवा न करै ॥

भावार्थ— मुनिनिकूं आचार्यनितैं बोलना उचित है अन्य मुनिनितैं प्रयोजनके वशतैं बोलै, विनाप्रयोजन 'जैसैं अन्य भेषी दशपांच भेले होय वचनालाप कीया करे तैसैं' न करै। अर श्रावकनितैं वा मिथ्यादृष्टिजननितैं जो आपका परका हित होता दीखे तौ बोले अर आपका वा परका हित नही होता दीखे तो नही बोले॥ बहुरि कदाचित् कापालिक कपाल राखनेवाले भेषीकी अथवा चांडालादिक वा रजस्वला स्त्री इनिका स्पर्श होजाय तो प्रासुक जल मस्तकपरि ऐसैं नाखै 'जैसैं दंड जलमें प्रवेश करै' तैसैं जल डारि, अर जा दिन उपवास करता संता पंचनमस्कार मंत्र जपे, बहुरि दिनका प्रभातकाल अर अस्तकाल दोऊ कालमें उद्योतका अवसरमें संस्तर जो शय्या आसन उपकरण सोधना अर आवश्यकादिकनिमें प्रवृत्ति करना उचित है॥ बहुरि जो एकाकी आर्यिका प्रश्न करे तो एकाकी मुनि वचन नही बोले। अर जो गणिनीनैं आगे करि अर प्रश्न करे तौ, पूछको उत्तर करे, सो हरेक कोऊ साधु तौ उत्तरही नही करे। अर जो अनेक गुणनिका धारक होय सो उत्तर देवै। बहुरि संयमी आर्यिकानितैं वृथा आलाप कथा नही करे तथा जा स्थानमें आर्यिका होय ता स्थानमें भोजन न करे खडा नही रहे, आसन बैठना नही करे, शयन नही करे, व्याख्यान नही करे॥ बहुरि जो मुनि आपका सम्यक् आचार तथा धर्मका आपका जस चाहै

नहींही तिष्ठै। जाका
सो स्त्रीनिके आवनेके कालमें एकांतमें अकेला कदाचित् नहीं करै? कामकरि
नामही परिणाम बिगाडे तो अंगका देखना तो कहा कहा अनर्थ नहीं करै? कामकरि
भ्रष्टही होय। जातैं यह चिरकालका दीक्षित है, यह आचार्य है, यह वृद्ध है, वा
गुणनिकरि स्थिर है, यह श्रुतका पारगामी है, यह तपस्वी है, याप्रकार कामकै गि-
णती नहीं है। सर्वकूं तत्काल भ्रष्ट करे है। विधवाकूं तथा तपस्विनीकूं तथा कन्याकूं
तथा कुलटाकूं तथा वेश्यादिकनिकूं संग करता साधु क्षणमात्रमें अपवादको स्थान होय
है। यातैं साधुनिकूं स्त्रीमात्रहीका संग अवलोकन वचनालाप उपदेश त्यजना योग्य
है॥ बहुरि जाका अंग निश्चल होय अतिगंभीर होय कोईकरि परिणाम न चलै
तथा समस्त क्षुधादि परिषहका सहनेवाला होय अतिशयरूप जाका ज्ञान चारित्र होय
प्रमाणीक वचन बोलनेवाला होय सो आर्यिकानिका उपदेशक होय है॥ अर
जो येते गुणसमूहरहित कोऊ यातिही संयमी मदका उदयतैं आर्यिकानिकूं उपदेशदाता
होजाय, तो जिनेंद्रकी आज्ञाभंगादि महादोषनिको पात्र होय है॥

बहुरि अब प्रकरण पाय आर्यिकानिहूका समाचार कहे हैं॥ जो आर्यिकाका
समूह लज्जा विनय वैराग्य सम्यक् आचरणकरि भूषित, ते दोय चार दस बीस
इत्यादि सामिल रहे, एकाकी नहीं रहे। अर जो स्थानक गृहस्थसूं मिल्यो हुवो

नही होय तथा गृहस्थांका गृहनितैं अति दूरिहू नही होय अर अति नजीकहू नही होय पापवर्जित शुद्धस्थान होय तैठे वसै । अर परस्पर रक्षा अर अनुकूलताकी वृत्तिमें तत्पर वै वाकी रक्षा करै वै वाकी करै। एकेक वृद्ध आर्यिका सामिल होय मौनकरिकै भिक्षाके अर्थि गृहस्थनिमें उच्चकुलके गृहस्थनिके घरनिप्रति परिभ्रमण करै॥ बहुरि कदाचित् भोजनका अवसरविनाहू अवश्य गृहस्थके घर जावाजोग्य धर्मकार्य होय तौ, गणिनीकी आज्ञातैं दोय तीन च्यार इत्यादि गमन करै, एकाकी गृहस्थके घर नहीही जाय ॥ बहुरि आर्यिका पांच हाथका अंतरकरि आचार्यनिकूं नमस्कार करे, षट् हस्तके अंतराले होयकरि उपाध्यायकूं नमस्कार करे, सप्त हस्तके अंतराले होयकरि साधूनिकूं नमस्कार करे । सो नमस्कार पशुशय्या करिकै करै॥ और कर्मभूमीकी द्रव्यस्त्रीके आदिका तीन संहनन नही होय है, तथा वस्त्रग्रहण करनेतैं चारित्रहू नही होत है । तातैं द्रव्यस्त्रीकै मुक्ति कहना मिथ्या है । अर जो चारित्र होय तो देशचारित्र पंचमगुणस्थानही होय, अर जो व्रतमात्रतैंही मुक्ति होजाय, तो पुरुषांकै नग्नपणा धारण करना वृथा होय, गृहस्थकैभी मुक्ति होजाय, तथा तिर्यंच देशव्रतीकैभी रत्नत्रय होय है, ताकैभी मुक्ति होना होय! तातैं स्त्रीकै मुक्ती नहीही है ॥

बहुरि जो आर्यिका रजस्वला होय तो तीन दिनपर्यंत नीरस भोजन करे वा एकांतरे भोजन करे वा तीन उपवास करे, चौथे दिन स्नान करि अर समीचीन पंच परमगुरूका जाप्य करती शुद्ध होय है ॥ बहुरि आर्यिका गान गीत नहीं करै, तथा रुदन स्नान विलेपनादिकरि रहित होय है, तथा जाति कीर्ति अर उचित आचारसंयुक्त होय है, तथा ज्ञानाभ्यास तथा क्षमा तथा आर्जवगुणसंयुक्त होय है ॥ बहुरि विकाररूप वस्त्र वेष जाकै नहीं होय है अर आपका देहहूमें निःस्पृह होय है। अर पढना पढावना व्याख्यानादि करना ऐसा आर्यिकाका समाचार परमागममें कह्या है ॥

अब औरहू साधूका समाचार कहे हैं ॥ जो मुनीश्वर आपका आवासदेशतैं निकलनेकी इच्छा करै, शीतलस्थानतैं उष्णस्थानमें जाय तथा उष्णस्थानतैं शीतलस्थानमें जाय, तदि पींछीतैं शरीरका प्रमार्जन करना उचित है। तैसैंही प्रवेश करताहू शीत-उष्ण जीवकी बाधा दूरि करनेकूं प्रमार्जन करना उचित है ॥ तथा श्वेत रक्त कृष्ण गुणसहित भूमीविषैं अन्यभूमीका अन्यभूमीमैं प्रवेश करना होय तहां कटिप्रदेशनीचै प्रमार्जन पीछीतैं करना उचित है ॥ तथा जलमें प्रवेश करनेतैं सचित्त अचित्त रज पदादिकविषैं लागि होय, सो जितने काल चरणनितैं न गिरै तितने गमन नहीं करै, जलके समीपही तिष्ठै ॥ बहुरि जो महान् नदीका उतरनेमें वाले तटभागविषैं सिद्धवंद-

नाका पाठपूर्वक सिध्दवंदना करिकै अर प्रतिज्ञा करै– जितने पैले तटकूं नहीं जाऊं तितने मैं सर्व शरीर वा भोजन वा उपकरण त्याग करूं हूं। ऐसैं प्रत्याख्यान जो भोजनादिकनिका त्यागग्रहणकरि अर चित्तकूं सावधान करिकै नावविषें चढै अर परतटमें नावतैं उतरिकरि अतीचार दूरि करनेकूं कायोत्सर्ग करै। ऐसैंही महावनीमें प्रवेश करे तदि आहारादिकका त्याग करै, जो, वनीके पार होजाऊंगा तदि भोजन करूंगा तथा वनीमैंतैं निकले तदि कायोत्सर्ग करै॥

बहुरि भिक्षा जो भोजनके निमित्त गृहांमें प्रवेश करनेका इच्छक होय, तदि पूर्वैंही अवलोकन करै "जो, ऐठें वलध वा मैंसी वा प्रसूतिकूं प्राप्त भई गाय वा दुष्ट मींढा वा दुष्ट श्वान वा भिक्षानैं आये श्रमण मुनि हैं, अक नहीं हैं" जो नहीं होय तो प्रवेश करै। अथवा जिस गृहमें तिर्यंच भयनैं प्राप्त नहीं होय तहां प्रवेश करे। अर जहां तिर्यंच भयभीत होय तो यतीकूं बाधा करै अथवा भयकरिकै भागै तो त्रसस्थावर-जीवनिकूं बाधा करै, तथा तिर्यंच क्लेशनैं प्राप्त होय तथा खाडा गर्त इत्यादिकमें पडै, तौ मरणकूं प्राप्त होय। तातैं जैसैं तिर्यंचनिकै बाधा नहीउपजती जानैं तथा तिर्यंचानितैं आपकै बाधा नहीं होय तैसैं प्रवेश करै॥ बहुरि गृहस्थके घरमें अन्य भिक्षा लेनेवाला नहीं होय वा भिक्षा लेय निकालि आये होय तादि गृहस्थका घरमें प्रवेश करै। अर जो

अन्य भिक्षा लेनेवालाहू होय अर आपहू प्रवेश करै तादि कोई दातार विचारे "बहोत भिक्षुक आगये अब कौनकूं देवै? बहोतकूं देनेकूं हम असमर्थ हैं," या विचारि कोऊकूंभी नही देवै, तादि भोगांतरायकर्मका बंध होवै ॥ तथा अन्य भिक्षा लेनेवाले अनेक भेषधारीहू साधुनिका तिरस्कार करै "जो हम तो आशा करि इस गृहमें आये अर हमारे देनेके मध्य यह कौन आया?" याप्रकार ईर्षा करि तिरस्कार करै हैं। तातैं अन्य भिक्षाचारी नही होय तादि प्रवेश करै॥

बहुरि गृहस्थनिके गृहनिमें अन्य भिक्षाचारी जेठैं स्थिति करि भिक्षा लेवै अथवा जा स्थानमें तिष्ठतेनिकूं गृहस्थ भिक्षा देवै तितना प्रमाण भूमीका भागमें यति प्रवेश करै। बहुरि सकडे द्वारमें बहोत जननिके सामिल होय प्रवेश नही करै अर प्रवेश करै तो शरीरमें पीडा होय अथवा संकुचित अंग हुवा प्रवेश करता देखे तो कोऊ अन्य निकसते प्रवेश करते क्रोध करै वा हास्य करै तथा आपकी विराधना होय, तथा मिथ्यात्वकी आराधना होय तथा द्वारके पसवाडेमें तिष्ठते जीवनिकै पीडा होय आपकै पीडा होय। तथा ऊपरितैं लटकते तिनिकै बाधा करै तातैं ऊपरि नीचै पसवाडेमैं अवलोकन करि बहोत संघट्टरहित प्रवेश करना उचित है॥ बहुरि भूमि जो तत्कालकी लिप्त होय तथा जल सींचनेकरि ओली होय तथा

हरित पत्र फल पुष्पादिकरि व्याप्त होय वा जीवनिके बिल जामें वहोत होय वा गृहस्थजन भोजनवास्ते मंडल चोका करि राख्या होय वा देवतासहित होय वा निकट लोकनिका शयन आसन होय वा मलमूत्रादिकरि व्याप्त होय ऐसी भूमीमें प्रवेश नही करै ॥ इत्यादि समाचारमें कुशलपणा वहोत प्रकारके आचार्यनिका संघमें प्रवेश करनेतें होय है ॥ औरहू योगीश्वरनिकी स्थान भोजन गमन आगमन इत्यादि क्रियाका ज्ञाता होय है ॥ मे गुरुकुलमें वसनेवाला हूं, सूत्रका अर्थका ज्ञाता हूं, मोकूं आचारका क्रम तथा सूत्रका अर्थ अन्यपासि नही जानना बाकी है, याप्रकार अभिमान नही करना, गुरुनिकी शिक्षामें उद्यमी रहनाही उचित है ॥ गाथा—

कंठगदे वि हि पाणे- । हि साहुणा आगमो हु कादव्वो ॥
सुत्तस्स य अत्थस्स य । सामाचारी जह तहेव ॥ ५६ ॥

अर्थ— कंठगतप्राणनिकरि सहितहू साधूकूं आगम पढना सीखना उचित है । जैसें सूत्रका अर्थका सामाचारी होय तैसें आगमकाही आराधन करहू ॥

इति याप्रकार अनियतविहार नामा छठा अधिकारमें अतिशयार्थकुशलपणा च्यारी गाथानिकरि दिखाया ॥ अब क्षेत्रपरिमार्गण जो आराधनाके योग्य क्षेत्रका अवलोकनहू अनियतविहारतें होय सो दिखावे हैं ॥ गाथा—

संजदजणस्स य जहिं । पासुविहारो य सुलभवुत्ती य ॥
तं खेत्तं विहरंतो । णाहिदि सल्लेहणाजोग्गं ॥ ५७ ॥

अर्थ— देशांतरनिमैं विहार करता जो साधु सो जिस देशमें जीवबाधारहित बहोत जल कर्दम हरित अंकुर त्रसरहित क्षेत्रमें मुनिनका प्रासुक विहार जीवबाधारहित गमनके योग्य होय तिस क्षेत्रकूं जानै ॥ बहुरि जा देशमें साधूकू आहार पान मिलना सुलभ होय तथा शीत उष्णादिककी बाधारहित आपके वा परके सल्लेखनाके योग्य क्षेत्र होय ताकूं जानेगा, तातैं अनियतविहार योग्य है ॥ आगै कहे हैं- जो, देशांतरनिमैं विहार करनेहीतैं अनियतविहारी नही होय है, याप्रकारहू होय है, सो कहे हैं गाथा—

वसदीसु य उवधीसु य । गामे णयरे गणे य सण्णिजणे ॥
सव्वत्थ अपडिबद्धो । समासदो अणियदविहारो ॥ ५८ ॥

अर्थ— वसतिकामैं उपकरणमें ग्राममैं नगरमैं संघमें श्रावकनिमें ममताका बंधननैं नही प्राप्त होय ताकै अनियतविहार है ॥ या वसतिकादिक हमारी, मैं याका स्वामी, याप्रकार संकल्परहित सर्व परद्रव्य परक्षेत्र परकाल परभावादिकनिमें नही परिणामकरि बंध्या, ताकै अनियतविहार होय है ॥

इति भक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषैं अनियतविहार नामा छटा अधिकार बारह गाथानिमैं समाप्त कीया ॥ आगै परिणाम नामा सातमा अधिकार आठ गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

अनुपालिदो य दीहो । परियाउ वायणा य मे दिण्णा ॥
णिप्पादिदा य सिस्सा । सेयं खलु अप्पणो कादुं ॥ ५९ ॥

अर्थ— मै वहोत कालपर्यंत पर्यायकीहू पालना करी रक्षा करी । कैसा पर्याय? दर्शन ज्ञान चारित्र तपरूप अर जिनसूत्रके अनुसार परके अर्थि निर्दोष ग्रंथनिका अर्थनिकी वाचना करी । ज्ञानदानहू दिया । बहुरि व्युत्पन्न कहिये ज्ञानकी परम हद्द ताकूं प्राप्त भये ऐसे शिष्यहू उत्पन्न किये । ऐसैं आपका अर परजीवनिका उपकार करि काल व्यतीत कीया । अब आत्माका कल्याण करना उचित ऐसे परिणाम करे ॥ गाथा—

किण्णु अधालिंदविहिं । भत्तपइण्णिंगिणी य परिहारं ॥
पायोवगमण जिणक-। प्पियं विहरामि पडिवण्णो ॥ १६० ॥

अर्थ— जो, कहा करना? भक्तप्रतिज्ञा तथा इंगिनी तथा प्रायोपगमन नामा जिनकल्पित मरणकी विधिनैं प्राप्त होय प्रवर्तन करशुं ॥ गाथा—

एवं विचारयित्ता । सुदिमाहप्पे य आउगे य सदि ॥
अणगूहिदबलविरिउं । कुणदि मदिं भत्तवोसरणे ॥ ६१ ॥

अर्थ— याप्रकार विचार करिकै अर स्मरणका महिमानै होता संता अर आयुकी मर्यादा रहता संता अपना बलवीर्यकूं नही छिपायकरिकै भक्तप्रत्याख्यान जो क्रमकरि आहारका त्याग तामैं बुद्धि करै ॥ भावार्थ— ज्ञानी ऐसा विचार करै, जो मैं बहोत काल देहकी पालनाही करी अर निर्दोष ग्रंथनिका आराधनहू किया अर चारित्रधर्ममें प्रवर्तनेवाले शिष्यहू उत्पन्न कीये । तातैं अब जितनैं मनद्वारै स्मरण जो यादिगीरी सो बणी रही है, तितनैं भक्तप्रतिज्ञा नामा संन्यासमरण, तामैं मोकूं उद्यम करना उचित है, अब विलंबका अवसर नही है, आयु अल्प रहगई है। तातैं अब धीरै धीरै भोजनका त्यागादिकमें जतन करना योग्य है ॥ आगै भक्तप्रत्याख्यानका औरहू कारण कहे हैं गाथा—

पुव्वुत्ताणण्णदरे । सल्लेहणकारणे समुप्पण्णे ॥
तह चेव करिज्ज मदिं । भत्तपइण्णा य णिच्छयदो ॥ ६२ ॥

अर्थ— जैसैं अल्प आयु होता सलेखनामरण करै, तैसैं पूर्वैं कहि आये जे असाध्यरोगादिक भक्तप्रत्याख्यानके कारण, तिनिमैंतैं एकहू कारण उत्पन्न होता, अनुक्रम-

करि भोजनका त्यागरूप भक्तप्रत्याख्यानमरणमेंहू निश्चयतैं बुद्धि करै ॥ आगै आराधना करनेवालेके परिणाम तीन गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

जावइ सुदी ण णस्सदि । जावइ जोगा ण मे पराहीणा ॥
जावइ सद्धा जायादि । इंदियजोगा अपरिहीणा ॥ ६३ ॥
जावइ खेम सुभिक्खं । आयरिया जांव णिज्जवणजोगा ॥
अत्थि तिगारवरहिदा । णाणचरणदंसणविसुध्दा ॥ ६४ ॥
ताव खमं मे कादुं । सरीरणिक्खेवणं विदु पसत्थं ॥
समयपडायाहरणं । भत्तपइण्णं णियमजणणं ॥ ६५ ॥

अर्थ– जो पूर्वकालमें अनुभव कीया जो स्व अर पररूप पदार्थ, ताकूं यादि करना यह स्मृति है। सो स्मृति वस्तूको यथावत् जनावनेवाला मतिज्ञान है। या स्मृतिहीतैं श्रुतज्ञान होय है। अर स्मृतिहीतैं यथावत् चारित्रका पालन होय है। तातैं सर्व व्यवहार परमार्थका मूल स्मृतिही है। सो जेतैं मेरी स्मृति नही बिगडे तितनैं सल्लेखना करनेमें सावधान होय उद्यम करना। तैसैंही विचित्रतपकरि कर्मकी विपुलनिर्जराका करनेका इच्छक जो मैं, ताके शक्तिके घटनेतैं आतापनयोगादिक तप करनेका सामर्थ्य नही बिगडे, तितनै सल्लेखनामैं उद्यमी होना। अथवा जेतैं मेरी मनवचनकायरूप

जोगनिकी प्रवृत्ति पराधीन नही होय तेतैं मोकूं सल्लेखनामैं उद्यमी होना । तथा
जेतैं रत्नत्रय आराधनेकी श्रद्धा दृढप्रतीति बनी रही है तितनैं मोकूं सलेखनामैं
सावधान होना । जातैं प्रबलमोहका उदयकरि कदाचित् श्रद्धान बिगडि जाय तो
फेरि होना दुर्लभ है ॥ बहुरि जेतैं नेत्रादिक इंद्रियनिके देखना श्रवण करना इत्यादि
रूपादिक विषयनिका ग्रहण करनेरूप सामर्थ्य नही बिगडे, तितनैं मोकूं सलेखनामैं
सावधान होना। जातैं इंद्रियनिकै देखने सुननेकी सामर्थ्यही नही रहेगी तदि संयम
रहना कठिन है॥ बहुरि जेतैं स्वचक्रपरचक्रका तथा शरीरसंबंधी व्याधीका तथा मारीका
अभावरूप क्षेम प्रवर्तें है तथा प्रचुरधान्यका उपजनारूप सुभिक्षपणा वर्तें है तितनैं
मोकूं सलेखना करनेका यत्न करना। जातैं क्षेम अर सुभिक्ष नही होय तो निर्यापक
आचार्यनिका मिलना दुर्लभ होय है ॥ बहुरि जैतैं ऋद्धीका गर्वरहित तथा रसका
गर्वरहित तथा सुखका गर्वरहित ज्ञानदर्शनचारित्रकरिकै विशुद्ध ऐसे सलेखनाके कराव-
नेवाले निर्यापकपणाकै योग्य आचार्य सुलभ हैं, तेतैं मोकूं सलेखनामरणमें उद्यमयुक्त
होना श्रेष्ठ है। जातैं जाकै ऋद्धीका गर्व होय सो आपही असंयमतैं नही डरे है, सो
परके असंयमके कारणानैं कैसैं दूरि करेगा? अर जाकै रसरूप भोजन मिलनेतैं गर्व
होय ऐसा रसगर्वका धारक तथा जाकै साताका उदयमें गर्व ऐसे रसगारव सातगारवके

धारक आपके किंचिन्मात्रहू क्लेश सहनेमें असमर्थ सो आराधकका शरीरकी वैयावृत्ति टहल कैसें करेगा? जो आपही रागी सो परकै कैसें वैराग्य प्राप्त करै? तातैं ऋद्धिगारव रसगारव सातगारवरहितही निर्यापक होय है ॥

बहुरि जीवादिक पदार्थनिका याथात्म्य श्रद्धान सो दर्शनशुद्धि, तथा जीवादिपदार्थनिका याथात्म्य जानना सो ज्ञानशुद्धि, तथा रागद्वेषरहित आत्माकी परिणति सो चारित्रशुद्धि, सो दर्शन ज्ञान चारित्र शुद्ध जाकै होय सोही आपका अर परका उपकारक निर्यापक आचार्य होय है। निर्यापकविना रत्नत्रयका निर्वाह होना कठिन है॥ जातैं ऋद्धिगारव रसगारव सातगारवरहित दर्शन ज्ञान चारित्रकरि शुद्धही निर्यापक गुरु होय है। तातैं जितनै हमारी स्मृति नही बिगडे तथा मन वचन काय पराधीन नही होय तथा श्रद्धान न बिगडै तथा इंद्रियहीन नही होय तथा क्षेम सुभिक्ष बण्यो रहे तथा आराधना मरणका सहायक निर्यापक गुरु सुलभ होय तितनै मोकूं पंडिताके प्रशंसायोग्य ऐसा शरीरका निक्षेपण कहिये शरीरका त्यजना युक्त है॥ कैसी रीति शरीर त्यजना? जामैं समय जो धर्म ताकी जीतीकी पताका जैसें ग्रहण होय तैसें आराधनामरण करना॥ बहुरि भोजनका क्रमकरि है त्याग जामैं अर व्रतका उपजावनेवाला ऐसा समाधिमरण अवलंबन करना योग्य है॥ आगै परिणामका

गुणकी महिमा कहे हैं ॥ गाथा—

एवं सदि परिणामो । जस्स दढो होदि णिच्छिदमदिस्स ॥
तिव्वाए वेदणाए । वोच्छिज्जदि जीविदासा से ॥ ६६ ॥

अर्थ— समाधिमरणमें निश्चित है बुद्धि जाकी ताकै तीव्रवेदना होताभी ऐसा दृढ परिणाम होय है, जो जीवनेमें वांछाका अभाव होय जाय है ॥ भावार्थ- जाकै आराधनामरण करनेमें दृढ परिणाम होय है, ताकै तीव्र वेदना होताभी ऐसा परिणाम नही होय है- जो; मरणवेदना बहोत बुरी ! अबै कोई इलाजतैं जीवना होय तो श्रेष्ठ है! ऐसी वांछाहीका अभाव होय है ॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषैं परिणाम नामा सातमां अधिकार पूर्ण भया ॥ आगै उपधित्याग नामा आठमा अधिकार नव गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

संजमसाधणमेत्तं । उवधिं मुत्तूण सेसयं उवधिं ॥
पजहदि विसुद्धलेस्सो । साहू मुत्तिं गवेसंतो ॥ ६७ ॥

अर्थ— जाके लेश्याकी उज्वलता भई ऐसा वीतरागी साधु सो संयमका साधनमात्र जो कमंडलु पींछीविना और संपूर्ण उपधि जो परिग्रह ताका त्याग करे है। कैसा

है साधु ? मोक्ष जो कर्मनितैं छूटना ताहि अवलोकन करे है ॥ गाथा—

अप्पपरियम्म उवधिं । वहुपरियम्मं च दो वि वज्जेइ ॥
सेज्जासंथारादी । उस्सग्गपदं गवेसंतो ॥ ६८ ॥

अर्थ— उत्सर्गपद जो सर्वोत्कृष्ट त्यागपदकूं अवलोकन करता जो साधु, सो जामैं अल्प परिकर्म कहिये जामैं अल्प सोधनादिक अर वंहुपरिकर्म कहिये जामैं बहोत सोधन अवलोकन ऐसी शय्या वा संस्तर इत्यादिक दोऊ उपधिका त्याग करे है ॥ गाथा—

पंचविहं जे सुद्धिं । अपात्रिदूण मरणमुवणमंति ॥
पंचविहं च विवेगं । ते हु समाधिं ण पावंति ॥ ६९ ॥

अर्थ— पंचप्रकारकी जो शुद्धि अर पंचप्रकार जो विवेक ताही नही प्राप्त होय करिकै जे मरणकूं प्राप्त होय हैं, ते समाधिमरणकूं नही पावत हैं ॥ गाथा—

पंचविहं जे सुद्धिं । पत्ता णिखिलेण णिच्छिदमदीया ॥
पंचविहं च विवेगं । ते हु समाधिं परमुवेंति ॥ १७० ॥

अर्थ— जे निश्चितबुद्धि पंचप्रकारकी शुद्धि तथा पंचप्रकारका विवेक, ताहि संमस्तपणाकरि प्राप्त होय हैं, ते सर्वोत्कृष्ट समाधिमरणकूं प्राप्त होय हैं ॥ आगै पंचप्रकार शुद्धि कहा है? सो कहे हैं ॥ गाथा—

आलोचणाए सेज्जा। संथारुवहीण भत्तपाणस्स ॥
वेज्जावच्चकराण य। सुद्धी खलु पंचहा होई ॥ ७१ ॥

अर्थ— आलोचनाशुद्धि, शय्यासंस्तरशुद्धि, उपकरणशुद्धि, भक्तपानशुद्धि, वैयावृत्यकरणशुद्धि ये पंचप्रकारकी शुद्धि है ॥ तहां मायाचार जो मनकी कुटिलता अर असत्यवचन इनिकरि रहित गुरुपैं अपने दोषका जनावना, सो आलोचनाशुद्धि है ॥ स्त्रीनपुंसकतिर्यंचादिरहित निर्दोषस्थानमें शय्या संस्तर करना, सो शय्यासंस्तरशुद्धि है ॥ बहुरि पीछी कमंडलु शरीर पुस्तक इनिमें ममत्वका त्याग, सो उपकरणशुद्धि है ॥ बहुरि उद्गमादि छियालीस दोषरहित याचनारहित अतिगृद्धतारहित निर्दोष भोजनपान करना, सो भक्तपानशुद्धि है ॥ संयमीके योग्य वैयावृत्यका अनुक्रमके जाननेवाले अर परहितमें उद्यमी अर वात्सल्यताके धारक साधुनिका संग मिलना, सो वैयावृत्यकरणशुद्धि है ॥ अथवा औरहू पंच शुद्धि कहे हैं ॥ गाथा—

अहवा दंसणणाणे। चरित्तसुद्धी य विणयसुद्धी य ॥
आवस्सयसुद्धी वि य। पंचवियप्पा हवंति सुद्धी ॥ ७२ ॥

अर्थ— अथवा निःशंकित निःकांक्षित आदिक सम्यक्त्वके गुणनिविषैं जो आत्माका

परिणाम होना, सो दर्शनशुध्दि होय है ॥ बहुरि जो कालाध्ययनादि ज्ञानके विनय-करि ज्ञानकी आराधना, सो ज्ञानशुध्दि है ॥ बहुरि पंचविंशति भावनासहित चारित्र पालना, सो चारित्रशुध्दि है ॥ बहुरि या लोकसंबंधी राज्यसंपदा धनसंपदा भोगसंपदा अर परलोकसंबंधी देवादिकांकी भोगसंपदामैं वांछा नही करना, सो विनयशुध्दि है ॥ बहुरि मनतैं सावद्ययोगतैं निवृत्त होना, तथा जिनेंद्रके गुणानिमैं अनुराग करना, तथा जिनवंदनामैं प्रवर्तना, तथा पूर्वै किया दोषकी निंदा करना, तथा शरीरकी असारता अर उपकाररहितता भावना, सो आवश्यकशुध्दि है ॥ ऐसेहू पंचशुध्दि समाधिमरणका कारण है ॥ आगै पंचप्रकार विवेक कहे हैं ॥ गाथा—

इंदियकसायउवधी- । ण भत्तपाणस्स चावि देहस्स ॥
एस विवेगो भणिदो । पंचविहो दव्वभावगदो ॥ ७३ ॥

अर्थ— इंद्रियविवेक, कषायविवेक, भक्तपानविवेक, उपधिविवेक, देहविवेक ऐसैं पंचप्रकारका विवेक, ताके द्रव्यभावकरि दोय दोय भेद हैं ॥ तहां जो नेत्रादिक इंद्रियनिके विषयनिमें रागद्वेषरूप नही प्रवर्तना, सो इंद्रियविवेक है ॥ तहां जो अनेक-प्रकारके द्रव्य रत्न नगर देश वन वापिका महल मंदिर स्त्री सेना सामंत इत्यादिकनिके अवलोकनमें नही प्रवर्तना सो चक्षुरिंद्रियविवेक द्रव्यथकी जानना ॥ बहुरि इनके

देखनेमैं परिणामहीं नहीं करना, सो भावचक्षुर्विवेक है ॥ बहुरि चेतनके शब्द तथा अचेतन जे वीणा बांसरी मृदंग इत्यादिक अचेतनके शब्द वा राजकथा भोजनकथा स्त्रीकथा देशकथा वा नानाप्रकारके रागके करनेवाले गीत हास्य विनोद शृंगारकथा तथा युद्धका है कथन जामैं तथा कामप्रवर्धिनी जामैं कथा ऐसे काव्यग्रंथ नाटकग्रंथ तथा रागी द्वेषी कामी क्रोधी लोभी ऐसे कुदेव कुगुरु तिनिकी कथा तथा हिंसाके पोषनेवाले जे कुधर्म तिनिकी कथा तथा लोकनिके विषय कषाय कलह अभिमान भोग उपभोगरूप कथाके श्रवणमें नहीं प्रवर्तना तथा वचनसूं नहीं कहना तथा भाव इनिमैं नहीं लगावना सो कर्णेंद्रियविवेक है ॥ बहुरि स्वभावतैंही सुगंध तथा परस्परसं-योगतैं उपज्या सुगंध जिनमें पाइये ऐसे स्त्रीपुरुष चंदन कर्पूर कस्तूरी इत्यादिक द्रव्यनिके गंधग्रहण करनेमें कायवचनकरि नहि प्रवर्तन करना, तथा परिणामकरि अभिलाषा छोडना, सो घ्राणेंद्रियविवेक है ॥ बहुरि नानाप्रकारके भोजनादिक रसनें-द्रियके विषय, तिनिविषैं मन वचन कायकरि नहीं प्रवर्तना सो रसनेंद्रियविवेक है ॥ बहुरि स्त्रीनिके कोमल अंग तथा कोमल शय्या आसन तथा शीतउष्णजलादिक वस्तूनिमैं मनवचनकायकरि स्पर्शनेका अभाव सो स्पर्शनेंद्रियविवेक है ॥ बहुरि ऐसेही अशुभके स्पर्शन स्वादन सूंघन अवलोकन श्रवण इनिमैं मनवचनकायकरि ग्लानिभा-

करे तथा मोकूं उपद्रव मति करो हमारी रक्षा करो मैं दुःखित हूं इत्यादिकवचनकरि नही निवारण करे वा पीछिकादि उपकरणनिकरि नही निवारण करे तथा विचारे— यो शरीर विनाशीक है पर है अचेतन है मेरा स्वरूप नही इत्यादिक स्वरूपका चिंतवन सो शरीरविवेक है ॥ वसतिकासंस्तरमें रागरहित शयन आसन करना सो वसतिकासंस्तरविवेक है ॥ अथवा रागकारी स्थानविषैं शयन आसन नही करना, सो वसतिसंस्तरविवेक है ॥ वहुरि उपकरणमें ममताका अभाव सो उपकरणविवेक है ॥ वहुरि भोजनमें वा जलादिक पीवनेमें अति गृध्दिताका अभाव, सो भक्तपानविवेक है ॥ वहुरि परतैं वैयावृत्य उपकार नही चाहना, सो वैयावृत्यकरणविवेक है ॥ भावार्थ- इंद्रियनिके विषय तथा क्रोधादिक च्यारि कषाय तथा शरीर उपकरण भोजन वसतिकादिकानिमैं ममताभाव त्यागना ताकूं परिग्रहत्याग कहिये हैं ॥ आगै परिग्रहत्यागके क्रमका उपदेश करे हैं ॥ गाथा—

सव्वत्थ दव्वपज्जय- । ममत्तसंगविजदो पणिहिदप्पा ॥
णिप्पणयपेमरागो । उवेज्ज सव्वत्थ समभावं ॥ ७५ ॥

अर्थ— सर्वत्र कहिये सर्व देशमें प्रणिहितात्मा कहिये प्रकर्पताकरि स्थाप्या है वस्तूका यथावत् स्वरूपका ज्ञानमें आतमा जानै ऐसा जो सम्यग्ज्ञानी सो द्रव्य जो

जीवपुद्गलादिक अर पर्याय जो शरीर स्त्री पुत्र मित्रादिक इनिमैं ममतारूप परिणाम सोही जो संग कहिये परिग्रह ताकरि रहित होय, सो आपकै रोगरहितपणा तथा ऋद्धि बल ऐश्वर्यसहितपणा तथा देवपणा चक्रवर्तीपणा अहमिंद्रपणा वा देवादिकनिके भोग स्पर्श रस गंध वर्ण इनिकूं नही वांछै है, बहुरि पर्यायनिविषैं स्नेह तथा प्रीति तथा राग जो आसक्तता ताकरि रहित सर्व द्रव्यपर्यायनिमैं समभाव जो वीतरागता ताही प्राप्त होय है, ताकैही उपधित्याग होय है ॥ भावार्थ– जो सर्ववस्तूका यथावत् स्वरूपका ज्ञाता जो सम्यग्ज्ञानी सो सर्व द्रव्यपर्यायनिमैं ममतारहित होय स्नेह और प्रेम और राग याकै वशी नही होता सर्वमैं समभावकूं प्राप्त होय है ॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषैं उपधित्याग नामा आठमा अधिकार नव गाथानिमैं समाप्त कीया ॥ आगे श्रिति नामा नवमा अधिकार छ गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

जा उवरि उवरि गुणपडि- । वत्ती सा भावदो सिदी होदी ॥
दव्वसिदी णिस्सेणी । सोवाणं आरुहंतस्स ॥ ७६ ॥

अर्थ– जो ज्ञानाभ्यास करनेमैं तथा तपश्चरण करनेमैं जो दिनादिन चढता परिणाम सो द्रव्यश्रिति है। अर जो उपरिउपरि ज्ञान श्रद्धान समभावरूप गुणांकी प्राप्ति, सो

भावश्रिति कहिये ॥ जैसैं ऊंचीभूमीमैं चढते पुरुषकै ऊर्ध्वभूमी चढनेमें अवलंबनरूप पयडीनिकी पंक्ति वा निश्रेणी होत है, भावार्थ– जो सल्लेखना चाहे, सो ज्ञान श्रध्दान समभावादिरूप गुणांकी निरंतर वधवारी होय तैसैं करै, जैसैं कोऊकूं ऊंचे महलपरि चढना होय सो निरंतर पयडीनिकी पंक्तिपरि चढनेका आरंभ करै ॥ सो भावश्रिति कैसैं प्राप्त होय ? गाथा––

सल्लेहणं करंतो । सव्वं सुहलीलदं पयहिदूण ॥
भावसिदिमारुहित्ता । विहरिज्ज सरीरणिव्विणणो ॥ ७७ ॥

अर्थ — सलेखनाकूं करनेवाला पुरुष शरीरतैं विरक्त हुवा सर्व सुखस्वभाव छोडिकरि शुद्धभावनिकी परंपरा ताही प्राप्त होयकरिकै प्रवर्तै ॥ भावार्थ–– ऐसे भावनिकी वधवारी करै, जो, मैं शरीर अनेकवार धारण कीया, तातैं शरीरधारण सुलभ है। अर यह शरीर अशुचि है अर निरंतर पोषता पोषता विगड्या जाय है तथा हजारा उपकार करताभी दुःखही उपजावे है, तातैं कृतघ्न है। अर या शरीरका बडा भार वहना है, याबराबरी कोऊ दुःखदाई भार नाही। तथा यह शरीर रोगानिकी खानि है, निरंतर क्षुधा तृषादिक हजारा वेदनाका उपजावनहारा है। आत्माकूं अत्यंत पराधीन करनेकूं बंदिगृहसमान है। जरामरणकरि व्याप्त है। वियोगादिकरि हजारा संक्लेश उपजावनहारा

है। ऐसा शरीरमें निःस्पृह होय अर आसनमें शयनमें भोजनादिकनिमें सुखरूप स्वभाव छोडिकरि परमवीतरागतारूप आत्मानुभावके सुखके आस्वादनरूप भावनिकी श्रेणी चढना योग्य है ॥ गाथा—

दव्वसिदी भावसिदी। अणिडगवियाणया विजाणंतो ॥
ण हु उड्ढगमणकज्जे। हेट्ठिल्लपदं पसंसंति ॥ ७८ ॥

अर्थ— द्रव्यश्रिति अर भावश्रितीके जाननेवाले ऐसे चारी अनुयोगके ज्ञाता वा चरणानुयोगरूप जो आचारांग ताके ज्ञाता जे साधु ते उर्ध्वगमनरूप कार्यनिमें नीचैपद धारण करनेकूं नहीं प्रशंसा करे है॥ भावार्थ— जैसैं ऊंचे चढनेका इच्छककूं उपरले पैडिपरि पांव धरता प्रशंसाजोग्य है अर ऊंचे चढनेका इच्छक नीचली पैडीपरि पग धरना उचित नांही, तैसैं संसारपरिभ्रमणका अभावरूप अर अनंतज्ञान अनंतदर्शन अनंतसुख अनंतवीर्यका सद्भावरूप जो निर्वाण, ताही प्राप्त होनेका इच्छक पुरुषहूकूं वीतरागभावना तथा दर्शनज्ञानचारित्रकी वृद्धिरूप परिणाममें प्रवर्तन करना उचित है अर सरागभावरूप हीनाचारमें प्रवर्तना अयोग्य है॥ आगै जो भावनिके पडनेकी संगतीका त्याग करनेकूं कहे हैं॥ गाथा—

गणिणा सह संलावो। कज्जं पाडि सेसएहिं साहूहिं ॥

मोणं सो मिच्छजणे। भज्जं सण्णीसु सजणे य ॥ ७९ ॥

अर्थ— साधूकूं आचार्यनितैंही वचनालाप करना उचित है। अन्यसाधुनितैं वचनालाप कोऊ कार्यके वशतैं करना, बहोत संभाषण नहीही करना। जातैं आचार्यनिकरि सहित वचनालाप शुभपरिणामनिका कारण है, तथा संशयादि दोष निराकरण करे है, परमसंवरका कारण है। औरनितैं वचनालाप करनेमें प्रमादी होजाय वा अशुभपरिणाम होजाय तथा अभिमानादि पुष्ट होजाय तथा पाछिली कथामें वा विकथामें प्रवृत्ति होजाय, तातैं अन्यसाधुनितैं कदाचित् प्रयोजन होय तो प्रमाणीक वचनरूप प्रवर्तना, औरप्रकार नही वचनालाप करना। जो अन्यसाधुनितैं वचनालाप करै सो आपसमान जानिकरि सुख दुःख लाभ अलाभ मान अपमानरूप कथा करने लगि जाय, तदि सँयमभाव बिगाडि संसारमें डूबि जाय॥ बहुरि, मिथ्यादृष्टीनिमैं मौनही राखै, जिनकूं अपना हित अहितहीका ज्ञान नही, तिनसूं वचनालाप करि बिगाडही है॥ बहुरि मंदकषायी सुजन जन अर ज्ञानी जन तिनिविषैं जो आपकै तथा परकै धर्मकी वृद्धि जाणै तौ कदाचित् वचनालाप करै वा नही करै॥

भावार्थ— जैसैं अन्यमतके भेषधारी अनेक आपके परिकर करिके सामिल रहे अर परस्पर पूर्वअवस्थाकी वा भोजन करनेकी वा देश ग्राम नगरादिकनिकी वा आपके

सेवक गृहस्थनिकी नाना कथा कह्या करे, तैसैं जैनके दिगंबर सामिल होय परस्पर कथनी नहीं करै तथा एकस्थानमें शय्या आसनहू नही करै । अर जहां बहोत मुनी-नका संघ उतरे है, तहां कोऊ मुनी वृक्षतले कोऊ पर्वतनिके शिखरमें कोऊ गुफानिमैं कोऊ नदीनिके तटविषैं कोऊ वनविषैं कोऊ निराधार चोपट स्थानमें कोऊ वालूनिके टीबेनिमैं कोऊ वसतिकानिमैं कोऊ सूने घर मठ मकाननिमें एकाकी ध्यान स्वाध्या-यादिकनिमैं लीन हुवा तिष्ठे हैं । जहां तिर्यंच तथा असंयमी पुरुष वा स्त्रीनपुंसकनिका आनेजानेका प्रचार नही होय वा इंद्रियनिके विषयनिमें लीन होनेके कारण नही होय तहां तिष्ठे हैं । अर अवसरमें गुरूनिकूं वंदना वा प्रश्न उत्तर वा महान् प्रतिक्रमणादि करनेकूं सामिल होय हैं । वा उपाध्यायनिके निकट श्रुतका अध्ययन करे हैं परस्पर वंदना करे हैं वा कोऊ साधुनिका वैयावृत्यका प्रयोजन होय तो तहां अत्यंत वात्सल्यकरि परमधर्म जाणि जिनेंद्रकी आज्ञा अंगीकार करता मनवचनकायतैं साधुनिकी टहलमें सावधान होय बहोत बुद्धितैं प्रवर्तन करे हैं । जातैं वैयावृत्यही परम तप है परम धर्म है, रत्नत्रयका स्थितीकरण है, मार्गका प्रवर्तना है, सो यामैं उदासीन नही होय हैं ॥ आगै शुभपरिणामका क्रम कहे हैं ॥ गाथा—

सिदिमारुहित्तु कारण- । परिभुत्तं उवाधिमणुवधिं सेज्जं ॥

परिकम्मादि उवहदं । वज्जित्ता विहरदि विदण्हू ॥ १८० ॥

अर्थ— अनुक्रमका जाननेवाला जो ज्ञानी सो भावनिकी शुद्धतारूप श्रेणी जो निसीरणी ताही चढिकरि अर जाका कारण नही रह्या ऐसा जो पुस्तकादि उपकरण तथा अनुपधि जो वैयावृत्यादि करावनेकी इच्छा अर लेपन भुवारनादि आरंभसहित जो शय्या वसतिकादिक तिनिकूं त्यागकरि प्रवर्तन करे है ॥ आगै भावनिकी श्रिति जो चढनेरूप पैडी ताहि प्राप्त होय कहा करै सो कहे हैं ॥ गाथा—

तो पच्छिमम्मि काळे । वीरपुरुससेवियं परमघोरं ॥
भत्तं परिहाणंतो । उवेदि अब्भुद्दजविहारं ॥ ८१ ॥

अर्थ— भावनिकी श्रितिकूं प्राप्त हुवा पाछै आहारकूं त्यागनेके इच्छक जो साधु सो वीरपुरुषनिकरि आचरण कीया परम घोर कहिये अति दुष्कर हरेकसूं नही आचरण कीया जाय ऐसा सम्यग्दर्शनादिकनिमैं विहार करनेकूं प्राप्त होय है ॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषैं श्रिति नामा नवमा अधिकार छ गाथानिकरि समाप्त कीया ॥ आगै भावना नामा दशमा अधिकार अठाईस गाथासूत्रनिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

इत्तिरियं सव्वगणं । विहिणा वित्तिरिय अणुदिसाएदु ॥

जहिदूण संकिलेसं। भावेइ असंकिलेसेण ॥ ८२ ॥

अर्थ— कितने काल सर्व गणकूं विधिकरि समितिरूप प्रवृत्ति देयकरिकै अर संक्लेशभाव छोडिकरि असंक्लेशभावना भावै ऐसा उपदेश करे हैं॥ गाथा—

जावं तु केइ संगा। उदीरया होंति रागदोसाणं ॥
ते वज्जंतो जिणदि हु। रागं दोसं च णिस्संगो ॥ ८३ ॥

अर्थ— जितने केई संग जे परिग्रह हैं ते रागद्वेषके उदीरणा करनेवाले होत हैं, तिनिकूं त्याग करता परिग्रहरहित हुवा राग अर द्वेषनिकूं प्रकट जीते हैं॥ भावार्थ— रागद्वेषकूं उत्कट करनेवाले ए परिग्रह हैं, जो परिग्रहका त्याग कीया सो रागद्वेषनिकूं जीतेही है॥ आगै त्यजनेयोग्य जो संक्लेशभावना ताके भेद कहे हैं॥ गाथा—

कंदप्पदेवकिब्बिस। अभियोगा आसुरी य सम्मोहा ॥
एसा दु संकिलिट्ठा। पंचविहा भावणा भणिदा ॥ ८४ ॥

अर्थ—कंदर्प नामा देवनिमें उत्पन्न करनेवाली कंदर्पभावना, तथा किल्विषदेवनिमें उत्पन्न करनेवाली किल्विष भावना, ऐसीहीं अभियोगदेवनिमें उत्पन्न करनेवाली आभियोग्य भावना, असुरांमैं उत्पन्न करनेवाली आसुरी भावना, सम्मोहदेवनिमें उपजावनेवाली सम्मोही भावना ए पंचप्रकार संक्लेशरूप भावना भगवानकरि कही

है ॥ अब आगै कंदर्पभावनाकूं निरूपण करे हैं   गाथा—

कंदप्प कुक्कु आइ य । चळसीळो णिच्चहासणकहो य ॥
विभ्भाविंतो य परं । कंदप्पं भावणं कुणइ ॥ ८५ ॥

अर्थ— रागभावकी आधिक्यतातैं हास्यसहित भांडपणेका वचन बोलना याका नाम कंदर्प है। बहुरि रागभावकी आधिक्यतासहित हास्य करतो अन्यकूं देखि भांडपणोकी कायकी चेष्टा करना सो कौत्कुच्य है। सो कंदर्प अर कौत्कुच्य दोऊनि-करि जाका शील चलायमान होय ऐसा अर सदाकाल हास्यकथाका कहनेमें उद्यमी होय, अर ऐसी चेष्टा करै- जाकरि अन्यजनाकै आश्चर्य उपजि आवै, ऐसा पुरुष कंदर्पभावना जो है ताहि करे है ॥ भावार्थ— जाका वचनकी प्रवृत्ति भांडपणोनैं लीया नीचमनुष्यकीसी होय अर कायकी चेष्टाहू भांडपणोकी करै अर जाका स्वभाव कामकी उत्कटतासूं बिगड्या हुवा होय अर नित्यही जो वचनादिक प्रवृत्ति करै सो हास्यरूपही करै, अन्यकै विसमय करनेवाली करै, ताकै कांदर्पी भावना होय है ॥ आगै किल्विष भावनाकूं कहे हैं ॥ गाथा—

णाणस्स केवळीणं । धम्मस्साइरियसव्वसाहूणं ॥
माइय अवण्णवादी । खिब्बिसियं भावणं कुणई ॥ ८६ ॥

अर्थ— ज्ञानकी आराधना मायाचारसहित करै तथा सम्यग्ज्ञानकी निंदा करै सो ज्ञानका अवर्णवाद है। केवलीकै कवलाहार कहना तथा क्षुधारोगादिक वेदना बतावना सो केवलीका अवर्णवाद है। साचा धर्ममैं दूषण लगावना सो धर्मका अवर्णवाद है। बहुरि आचार्य साधुजन इनिकै झूटा दूषण लगावना सो आचार्य वा साधुनिका अवर्णवाद है। सो सत्यार्थज्ञानकी अर दशलक्षणरूप धर्मकी अर केवली भगवानकी अर आचारांगकी आज्ञाप्रमाण प्रवर्तनेवाले जे यथोक्त आचारके धारक आचार्य उपाध्याय साधु इनिकूं दूषण मायाचारकरि लगावै ताकै किल्विषभावना होय हैं॥ आगे आभियोग्य भावना कहे हैं॥ गाथा—

मंताभियोगकोदुग- । भुदियम्मं पउंजदे जो दु ॥
इड्ढिरससादहेदुं । अभिउगं भावणं कुणइ ॥ ८७ ॥

अर्थ— जो आपकै ऋद्धि धन संपदाके वास्ते वा मिष्टभोजनके अर्थि वा इंद्रियजनित सुखके अर्थि तथा औरहू जगतमैं मान्यता पूजा सत्कारके अर्थि जो मंत्रयंत्रादिक करै सो अभियोग कर्म है। अर वशीकरण करना सो कौतुक है। अर बालकादिकनिकी रक्षा करनेका मंत्र सो भूतकर्म है। इसप्रकार निंद्यकर्म करता साधु; सो आभियोग्यभावनाकूं प्राप्त होय है॥ आगै आसुरी भावना कहे हैं गाथा—

अणुवंधरोस विग्गह-। संसत्ततवो णिमित्तपडिसेवी ॥
णिक्किवणिराणुतावी। आसुरिअं भावणं कुणदि ॥ ८८ ॥

अर्थ— बंध्या है अन्यभवपर्यंत गमन करनेवाला रोप जानें ऐसा, बहुरि कलहकरि सहित है तप जाकै ऐसा, बहुरि निमित्तज्ञानकरि भोजन वसतिकादि जीविका करनेवाला ऐसा, बहुरि दयारहित निर्दयी ऐसा, बहुरि अति आतापका करनेवाला ऐसा, जो पुरुप सो आसुरी भावना करे है ॥ भावार्थ— जाकै वैर दृढ होय, अर कलहसहित तप होय, अर ज्योतिपादिक निमित्तविद्याकरि जीविका करनेवाला होय, निर्दयी होय, परजीवांकै पीडा करनेवाला होय ताकै आसुरीभावना होय है ॥ आगै संमोहीभावनाकूं कहे हैं ॥ गाथा—

उम्मग्गदेसणो णा-। णदूसणो मग्गविप्पडिवणो य ॥
मोहेण य मोहिंतो। सम्मोहं भावणं कुणइ ॥ ८९ ॥

अर्थ— जो उन्मार्गका उपदेशक होय तथा सम्यग्ज्ञानकै दूपण लगावनेवाला होय, तथा सम्यङ्मार्ग जो सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र तातैं विरुद्ध प्रवर्तनेवाला होय, तथा मिथ्याज्ञानकरि मोही होय, जाकूं स्वरूपपररूपका ज्ञान नही होय, सो सम्मोहीभावनाकूं करे है ॥ भावार्थ— जो ऐसा उपदेशकरि जीवनकूं वहावता होय— जो तत्व-

ज्ञानी होय सो हिंसा करतोहू पापतैं लिप्त नहीं होय है, तथा देवगुरुके निमित्तकरि हुई हिंसाहू पापके अर्थि नहीं होय है, यज्ञमें प्राणीकी हिंसाहू स्वर्गकूं प्राप्त करनेवाली है, तथा मंत्रादिकनितैं मारे हुये जीव स्वर्गकूं प्राप्त होय हैं, तथा गुरूकी आज्ञातैं हिंसादि करनाहू धर्महीं है, ऐसे खोटे मार्गके उपदेश करनेवाला होय, तथा सत्यार्थज्ञानकूं दूषण लगावनेवाला होय, तथा रत्नत्रयधर्मसूं वैर करनेवाला होय, तथा अज्ञानभावसहित होय ताकैं नीचदेवनिमैं उपजनेका कारण संमोहीभावना होय है ॥ आगै जा साधुकै ए पांच भावना होय हैं ताका फलकूं कहे हैं ॥ गाथा—

एदाहि भावणाहि य । विराधउ देवदुग्गदिं लहइ ॥
तत्तो चुदो समाणो । भमिहिदि भवणण्वं परमणंतं ॥ १९० ॥

अर्थ— इति पंचभावनानिकरि जिननैं मुनिधर्मकी विराधना करी ऐसा जो साधु सो कदाचित् परीषह सहनेतैं तथा परिग्रहके त्यागनेतैं तपश्चरण करनेतैं अनशनादि अंगीकार करनेतैं जो देव होय, तो भवनवासी व्यंतरज्योतिषीनिमैं देवदुर्गतिकूं प्राप्त होय है। पाछै देवगतितैं अभिमानसहित चयकरि अनंतसंसारसमुद्रमें त्रसस्थावरादिरूप पर्यायनिमैं जन्ममरण करता अनंतानंतकाल परिभ्रमण करे है । तातैं इनि पंचभावनानिका त्याग कराय अर छठी भावना अंगीकार करनेकी शिक्षा करे हैं ॥ गाथा-

एदा उ पंच वज्जिय । इणमो छट्ठीए विहरदे धीरो ॥
पंचसमिदो त्तिगुत्तो । णिस्संगो सव्वसंगेसु ॥ ९१ ॥

अर्थ— ए पंचभावना वर्जिकरिकै अर साधु है सो छठी भावनामैं प्रवर्तना करै ॥ छठी भावनामैं प्रवर्तन करनेवाला साधु कैसा होय? धीर वीर होय अर पंचसमितिका धारक होय तीन गुप्तिका धारक होय अर सर्वपरिग्रहविपैं संगरहित होय ताकैही छठी भावना होय है ॥ आगै सो छठी भावना कैसी, ताही कहे हैं ॥ गाथा—

तवभावणा य सुदस- । त्तभावणेगत्तभावणे चेव ॥
धिदिवलविभावणा वि य । असंकिलिट्ठा वि पंचविहा ॥ ९२ ॥

अर्थ— संक्लेशरहित जो छट्ठी भावना सो पांच प्रकार है ॥ तपोभावना, श्रुतभावना, सत्त्वभावना, एकत्वभावना, धृतिवलभावना याप्रकार असंक्लिष्टभावना पंचप्रकार जाननी ॥ आगै तपोभावना है सो समाधीका उपाय कैसा है सो कहे हैं ॥ गाथा—

तवभावणाए पंचें- । दियाणि दमिताणि तस्स वसमेंति ॥
इंदियजोगायरिउं । समाधिकरणाणि सो कुणइ ॥ ९३ ॥

अर्थ— तपोभावना जो अनशनादि तपश्चरण, तिनिकरि पांचूं इंद्रियां दमी हुई साधूकै वशीभूत होय हैं । अर इंद्रियनिकूं आपके वशीकरि इंद्रियनिकूं शिक्षा देनेवालाही

साधु रत्नत्रयकी समाधान क्रिया करे है ॥ भावार्थ— तपकरि पांचूं इंद्रियां वशीभूत हुई कामादिविषयनिमें नहीं दौडे है, तब रत्नत्रयमें सावधानी दृढ होय है ॥ आगै तपोभावनारहितकै दोष दिखावे हैं ॥ गाथा—

इंदियसुहसाउलउ । घोरपरीसहपराजिय परज्झो ॥
अकदपरियम्म कीउ । मुज्झदि आराहाणाकाळे ॥ ९४ ॥

अर्थ— जिसने तपका परिकर नहीं किया ऐसा साधु इंद्रियनिके विषयनिके सुखका स्वादका लंपटी सो क्षुधादिक जे घोर परीषह तिनिकरि तिरस्कारकूं प्राप्त हुवा अर याही रत्नत्रयतैं पराङ्मुख हुवा अर क्लीब कहिये विषयांके अर्थि दीन हुवा आराधनाका अवसरमें मोहनैं प्राप्त होय है ॥ विपरीत भावकूं प्राप्त होय चारूं आराधनानिकूं बिगाडे है ॥ आगै इहां दृष्टांत कहे हैं ॥ गाथा—

जोगमकारिजंतो । अस्सो सुहलालिउ चिरं काळं ॥
रणभूमीए वाहि- । ज्जमाणउ जह ण कज्जयरो ॥ ९५ ॥

अर्थ— जैसैं चलन परिभ्रमण उलंघनादिक जोग जाकूं नहीं कराया अर चिरकाल-पर्यंत खानपानादिकके सुखकरि जाका लाड कीया ऐसा जो अश्व कहिये घोडा सो रणभूमीविषैं वाह्या चलाया हुवा कार्य करनेकूं समर्थ नहीं होय है । तैसैंही दृष्टांतपूर्वक

स्वरूपका उपदेश तीन गाथानिमैं कहे हैं ॥ गाथा—

पुव्वमकारिदजोगो । समाधिकामो तहा मरणकाळे ॥
ण भवदि परीसहसहो । विसयसुहे मुच्छिदो जीवो ॥ ९६ ॥
जोगं कारिज्जंतो । अस्सो दुहभाविदो चिरंकाळं ॥
रणभूमीए वाहि- । ज्जमाणउं कुणदि जह कज्जं ॥ ९७ ॥
पुव्वं कारिदजोगो । समाधिकामो तहा मरण काळे ।
होदि हु परीसहसहो । विसयसुहपरंमुहो जीवो ॥ ९८ ॥

अर्थ— तैसैंही पूर्वैं तपश्चरणकरि इंद्रियनिकूं वशी करी नही ऐसा समाधिमरणका इच्छक जो मुनि सोहू विषयनिके सुखमें मूर्छित हुवा परीषह सहनेकूं असमर्थ होय है॥ बहुरि जैसैं चालन भ्रमण उलंघनरूप योगकूं साधन कराया अर चिरकालपर्यंत शीत उष्ण क्षुधा तृषादि दुःखरूप अभ्यास कराया ऐसा अश्व रणभूमीमैं प्रेऱ्या हुवा वैरीनिका विजयरूप कार्यकूं करे है॥ तैसैंही पूर्वैं तपका अभ्यासकरि आपके वशीभूत करे है इंद्रिय जानैं ऐसा समाधिमरणका इच्छक जो मुनि सोहू मरणकालविषैं क्षुधादिपरीषह तथा रोगादिवेदना सहनेकूं समर्थ होय है, अर विषयसुखतैं पराङ्मुख होय है ॥ ऐसैं असंक्लिष्टभावनाके पंचभेदनिविषैं तपोभावना वर्णन करी ॥ अब दोय गाथा-

निकरि श्रुतभावनाकूं कहे हैं ॥ गाथा—

सुदभावणाए णाणं । दंसणतवसंजमं च परिणवइ ॥
तो उवउंगपइण्णं । सुहमच्चविदो समाणेइ ॥ १९९ ॥
जदणाए जोगपडिभा- । विदस्स जिणवयणमणुगदमणस्स ॥
सुदिलोवं कादुं जे । ण चयंति परीसहा ताहे ॥ २०० ॥

अर्थ— सर्वज्ञका प्ररूप्या जो श्रुत ताका अर्थविषैं निरंतर प्रवृत्तिरूप जो भावना तिसकरि श्रुतज्ञानावरणका क्षयोपशम होय है । श्रुतज्ञानावरणका क्षयोपशमकरिकै श्रुतज्ञानकी उत्पत्ति होय है । अर ज्ञानकी उत्पत्तिकरि अवगाढसम्यग्दर्शन होय है। तथा सर्वघातिकर्मकी निर्जराका कारण शुक्लध्याननामा तप होय है । तथा यथाख्यातनामा चारित्र तथा परिपूर्ण इंद्रियसंयम अर प्राणसंयम होय है । तथा पूर्वैं प्रतिज्ञा धारण करी थी, जो, हमारा आत्माकूं दर्शनज्ञानचारित्रमें परिणामनिकी रचनामें प्रवर्तन करहूं । सो उपयोगकी प्रतिज्ञा सुखरूप क्लेशरहित आराधनामैं अचलित परिपूर्ण करे है । तातैं श्रुतमें भावनाही श्रेष्ठ है ॥ बहुरि जिनेंद्र भगवानके वचनमें लीन है मन जाका अर यत्नकरिकैं योग जो तप ताकी भावना करता जो पुरुष ताकी रत्नत्रयमें उद्यमरूप जो स्मृति कहिये स्मरण ताही बिगाडनेकूं परीषह समर्थ

नही होय हैं ॥

भावार्थ— जाकै जिनेंद्रका आगममें निरंतर भावना वर्ते है, ताके तीव्र जे क्षुधा तृषा शीत उष्ण रोगादिक सर्वही परीषह च्यार आराधनानिमैं परिणाम बिगाडनेकूं समर्थ नही होय है, तातैं श्रुतभावनाही निरंतर करहू ॥ ऐसैं असंक्लिष्ट भावनाके पांच भेदनिविषैं दूसरी श्रुतभावना कही ॥ आगै सत्त्वभावना च्यारि गाथानिकरि कहे हैं ॥

देवेहिं तासिदो वि हु । कयावराहो व भीमरूवेहिं ॥
तो सत्तभावणाए । वहइ भरं णिब्भउ सयळं ॥ १ ॥

अर्थ— सत्त्वभावना कहा है? जो आपका अनंतज्ञानदर्शनसुखवीर्यरूप अखंड अविनाशी स्वरूपका अवलंबन करिकै जीवन मरण संयोग वियोगादिक कर्मका कीया परभाव तिननैं विनाशीक जाने है अर कर्मका अभावतैं आपकूं अचल अविनाशी अनंतगुणनिकरि सहित अनंतज्ञानसुखरूप जाने है, ताकै सत्त्वभावना होय है ॥ जो पूर्वजन्ममें वा गृहस्थावस्थामैं आप अपराध कन्या होय तातैं वैरधारण करते भयानकरूपकरि सहित ऐसे देवनिकरि त्रासित किया हुवाहू संयमका भारका भयरहित हुवा निर्वाह करे हे ॥ भावार्थ— जो कोऊ पूर्व अवस्थाका वैरी देवदानव भयानकरूप धारण करि मरणपर्यंत घोर उपसर्ग करिकैं त्रास देवै तौऊ सत्त्वभावनाका धारक

योगी संयमथकी किंचिन्मात्रहू नही चलायमान होय है। जातैं मरण उपसर्गका भयतैं, धर्मतैं चलायमान होजाय तौ फेरि रत्नत्रयका पावना नहीं होय है। तातैं सत्त्वभावनाही परमकल्याण है॥ सोही दिखावे हैं॥ गाथा—

खणणुत्तावणवालण-। वीयणविच्छेयणावरोहत्तं॥
चिंतय दुहं अदीहं। मुज्झदि णो सत्तभाविदो दुक्खे॥ २॥
वालमरणाणि साहू। सुचिंतिदूणप्पणो अणंताणि॥
मरणे समुट्ठिए विहु। णो मुज्झदि भावणाणिरदो॥ ३॥

अर्थ— संसारपरिभ्रमण करता जो मैं, सो, पूर्वैं पृथिवीकायकूं धारण करतो संतो खोदनेकरि तथा वालनेकरि तथा कुचरनेकरि कूटनेकरि फोडनेकरि रगडनेकरि पीसनेकरि खंडखंड करनेकरि दूरितैं पटकनेकरि अत्यंत बाधा वेदनाकूं प्राप्त भया हूं॥ बहुरि जलरूप शरीर धार्‍या तब, तीक्ष्ण जे सूर्यके किरणनिका पतन ताकरि तथा अग्निज्वालाकरि तप्तायमान होनेतैं, तथा पर्वतके तट गुफा दराडादिक ऊंचे स्थानकनितैं अतिवेगकरि कठोरशिलापाषाणभूमीमैं पडनेकरि, तथा आमली लवण क्षारादि विषादिक द्रव्यके मिलावनेकरि, तथा धगधगायमान अग्निके मध्य क्षेपणेकरि, तथा तप्त लोहमय कडाहेमैं वालदनेंकरि, तथा अग्निमय सुवर्णलोहादिक धातुके बुझावनेकरि, तथा वृक्षतैं

शिलाविषैं पडनेतैं, तथा हस्तपादादिककरि मसलनेतैं, तथा तिरणेमैं उद्यमी जे हस्ती घोटक मनुष्य वलध इत्यादिकनिके उदरस्थल हस्तपादादिकनिके घातकरि तथा पीवनेकरि महान् वेदनाकूं प्राप्त भया हूं ॥

बहुरि पवनका शरीर अवलंबन कीया तव, वृक्ष पर्वत पाषाणादिकनिके कठोर स्पर्शनकरि, तथा कठोर शरीरांका घातकरि तथा अन्य पवनके घातकरि, तथा अग्निके स्पर्शनकरि तथा वीजनीनके घातकरि, तथा परस्पर पवनका घाततैं भ्रमण करनेकरि अत्यंत दुःखकूं प्राप्त भया हूं ॥

बहुरि अग्निकायका शरीर धारण कीया तव, वुझावनेकरि, तथा मांटी भस्म वालू रेत इत्यादिकनितैं दावनेकरि, तथा स्थूलजलकी धाराका पडनेकरि, तथा दंडकाष्ठादिकनिकरि ताडनेकरि, तथा लोष्टपाषाणादिकनितैं चूर्ण करनेकरि बहोत दुःखकूं प्राप्त भया हूं ॥

बहुरि फल पुष्प पल्लवादिक जे वनस्पतीका काय अंगीकार कीया, तव, मनुष्य तिर्यंचादिकनिकरि तोडन भक्षण मर्दन पीसन ज्वलनादिकरि अनेक दुःख भोग्या तथा गुल्म लता वृक्षादिकनिकूं करोतीनितैं चीरनेकरि तथा वींधनेकरि, विदारनेकरि, चावनेकरि, रांधनेकरि घसीटनेकरि प्रत्यक्ष दुःख देखि सहे, सो मैं अनंतवार वनस्पतिकाय धारणकरि महान् क्लेशकूं प्राप्त भया हूं ॥

बहुरि कुंथु पिपीलिका लट मकोडा उटकण मांछर डास इत्यादि त्रस हुवा तब मार्गमें तौ रथादिकका चक्रनितैं कटनेतैं दबनेतैं तथा हाथी घोडा गर्दभ बलध इनिके खुरनिकरि कटनेतैं चीथनेतैं दलमलनेतैं महान् दुःख भोग्या, तथा मार्गमें पेट छिंद गया, मस्तक पादादि कटि गया तादि घोर वेदना भुगतनेतैं तथा खुजालनेमें नखनितैं कटनेकरि, तथा जलके प्रवाहतैं वहनेकरि, तथा दावाग्निमें दग्ध होनेकरि, तथा वृक्ष काष्ठ पाषाणादिकनिके पतनकरि, तथा मनुष्यनिके चरणनितैं अवमर्दनकरि, तथा बलवान् जीवनिकरि भक्षण करनेकरि, तथा पक्षीनिकरि चुवनेकरि चिरकालपर्यंत क्लेशकूं प्राप्त भया हूं। तथा गर्दभ उंट भैसा बलध इत्यादि पर्यायकूं प्राप्त हुवा, तब बहोत भारका आरोपणकरि तथा चटनेकरि तथा दृढ बांधनेकरि तथा अत्यंत कर्कश कोरडा चामठी लाठी मूसल इत्यादिकनिके घातनकरि, तथा आहारपानके रोकनेकरि, तथा शीत उष्ण वर्षा पवनादिकनिकी घोरबाधाका प्राप्त होनेकरि, तथा कर्णच्छेदन नासिकाभेदन अग्निकरि वा घण परशी मुद्गर तथा तीक्ष्ण खड्ग छुरी इत्यादिक आयुधनिकरि चिरकाल उपद्रवकूं प्राप्त भया हूं। तथा पग टूटनेकरि अंधा होनेकरि अथवा व्याधि वधनेकरि कर्दम वा खाडेनमें फसनेकरि जीठै तीठै पड्या हुवाकै अंतरंगमें तौ क्षुधा तृषा रोगजनित तीव्र वेदना अर चारानैं दुष्ट व्याघ्र स्याल श्वानादिकनिकरि भक्षण कीया हुवा, तथा काक गीध

इत्यादिक दुष्ट पक्षीनिकरि छेद्या हुवा, तथा काष्ठपाषाणादि बहोत भारके लादनेकरि सिडे हुये जे व्रण तिनिमैं हजारां लाखां कीडे पडनेकरि, पक्षीनिकी तीव्रतर तीक्ष्ण चूंचनिका घातकरि मर्मस्थाननिके मांस उपाडनेकरि, घोरतर वेदनांकूं प्राप्त भया हूं। तहां कोऊ सरणा नही, तथा आपका कोऊ नही, एकाकी तीव्रतर वेदनाकूं भोगता कोनसूं कहूं? कोऊ अपना मित्र हितू नही वा कहनेकी सुननेकी शक्ति है नही ॥

बहुरि जब मैं वनका जीव मृगादिक हुवा वा पक्षी हुवा वा जलचर हुवा तब जबर बलवान् हुवा सोही निर्बलकूं भक्षण करै, तहां कोऊ रक्षक नही, परस्पर भक्षण कीया तथा हिंसक मनुष्य भील चांडाल कपाई हेरि हेरि मारे हैं, नाना आयुध चलावे हैं, रुधिर काटि ले हैं, चीरे हैं, विदारे हैं, कतरे हैं, रांधे हैं, बांधे है तहां कोऊ रक्षा करनेवाला नही, ऐसी घोरतिर्यंचकी वेदना मिथ्यादर्शन अर असंयमका प्रभावकरि अनंतानंतभवनिमैं अनंतवार तीव्र दुःख भोगी ॥

बहुरि मनुष्यभवविषैंहू इंद्रियनिकी विकलतातैं, तथा दरिद्रतातैं, तथा असाध्य व्याधिके आवनेतैं, तथा इष्टके अलाभतैं, अनिष्टका संयोगतैं, तथा इष्टका वियोगतैं, तथा पराधीन दासकर्म करनेतैं, तथा परकरि तिरस्कार होनेतैं, तथा बंदिग्रहमें पडनेतैं, मारपीट होनेतैं, तथा धनकी वांछाकरि नहीकरनेयोग्य दुष्टकर्म करनेकरि अन्यायन्या-

आपदाकूं प्राप्त भया हूं ॥
यका विचाररहित षट्कर्ममें प्रवर्तन करि घोर
बहुरि देवनिका भव धारिकरिकैहू नाना मानसिकदुःखकूं प्राप्त भया हूं। जिस अवस
रमें महान् ऋद्धिके धारक देव वा इंद्रसामानिकादिक देव आवे हैं, तदि हीन देवांनैं
प्रेरणा करे हैं– अरे दूरि जावो, शीघ्र इस स्थानतैं निकसो, अब इहां तुमारे खडे रह
नेका अवसर नांही, प्रभूका आवनेका सिंहासनऊपरि विराजनेका अवसर वर्ते है।
कोऊ कहे है– अरे देव हो, इंद्रके आगमनका ढोल बजावो। कोऊ कहे है– अरे कहा
देखो हो? ध्वजा धारण करो। कोऊ कहे– अरे, देवीका आगमनका अवसर है, अपनी
अपनी सेवामैं सावधान होहू। कोऊ कहे है– अरे, इंद्रके मनोवांछितरूप वाहनरूप
धारण करिकै तिष्ठो। अरे अल्पपुण्यके धारक हो, प्रभुका दासपणानैं विस्मरण हो गये
कहा? जो निश्चल तिष्ठो हो। प्रभूका आगमनका अवसर है, आगैकूं दौडनेमें सावधान
होहू। इत्यादिक देवमहत्तरनिके कठोरतर वचननिके श्रवणकरि घोरदुःखकूं प्राप्त भया हूं ॥
तथा इंद्रनिके देहकी प्रचुरप्रभा ऋद्धि विक्रिया आज्ञा ऐश्वर्य विभव शक्ति परिवार अत्यंत
अद्भुतरूपका धारण करनेवाली पट्टराणी तथा परिवारकी हजारां देवांगना तिनिके
अद्भुतरूप सुगंध शरीरकांति अद्भुत विक्रिया कोट्या अप्सरांनिकरि नृत्यका आखाडा
तिनके देखनेकरि जो अभिलाषरूप अग्निकरि अन्तःकरणमें दग्ध होता घोर दुःखकूं प्राप्त

एयत्तभावणाए । ण कामभोगे गणे सरीरे वा ॥
सज्जइ वेरग्गमणो । फासेदि अणुत्तरं धम्मं ॥ ५ ॥

अर्थ— एकत्वभावनाका स्वरूप याप्रकार जानना– जो जन्म जरा मरण रोग दारिद्र्य वियोग क्षुधा तृषा इत्यादिक "कर्मके उदयतैं उपज्या" जो दुःख, ताहि मै एकला भोगऊं हूं कोऊ दुःखनैं बटावनेकूं समर्थ नांही, तातैं मेरा कोऊ स्वजन नांही कौनमें राग करूं? अर हमारा उपार्जन कीया कर्म, ताविना कोऊ दुःख देनेमें समर्थ नही, तातैं कौनमें द्वेष करूं? सुखदुःख भोगनेमें एकला हूं जन्म्या जब कोऊ हमारी लैर आया नही अर मरणकरि परलोककूं जाऊंगा जब कोऊ शरीर धन पुत्र कलत्रादि गैल जायगा नही। तातैं नरकमें तिर्यंचमें मनुष्यमें देवमें सर्व पर्यायनिमें मै एकला हूं कोऊ मेरा सहायी साथी है नही। हमारा परिणामकरि उपजाया जो कर्म, ताहि भोगतैं अर नवीन उपजावतैं अनंतकाल व्यतीत भया, कौनसूं संबंध करूं? अनादिका एकाकीही हूं। परद्रव्यांमें रागद्वेषरूप संबंध करि अनंतानंत काल परिभ्रमण कीया, एकत्वभावना नही भाई, तातैं अब यह निश्चय किया; मै कोऊका नही कोऊ हमारा नही, तातैं मै एकाकी शुद्धज्ञानरूपही हूं। ऐसैं स्वरूपका एकत्वचिंतन करनाही परमकल्याण है। सोही गाथासूत्रमें एकत्वभावनाका गुण कहे हैं जिस जीवकै एकत्वभावना रचि गई, सो जीव एकत्व-

भावनाभावि करना तथा भोग तथा भोग जो भव तथा शरीरादिकके पदद्रव्याणीमें आसक्तताओंके
नाहीं प्राप्त होय है । ताहि रोगादिकनै प्राप्त हुआ सर्वज्ञकै हूँ जो उसके प्रसन्नतापूर्वक नाश
ताहिकूं प्राप्त होय है ॥ भावार्थ- जाकूं औषध देहू लिया कहूंकादि ताकी परिक्रमा पापत्रय
भावकी ज्ञानस्वरूप और आत्मस्वरूपका ज्ञानपूर्वक ध्यानका कारणभूत कारण तो जो आत्मा
इंद्रिय और मनका इंद्रिय और भोग जो ताका भी हेतु और इंद्रिय और देहू और इंद्रियादिक
विषय इंद्रियादि आत्माका कारणरूप भी नहीं ऐसे ज्ञानरूप प्रवृत्तिरूप होय ऐसे प्रापत भोगरूप,
ऐसी स्तुति करि है ॥ गाथा—

आत्मस्वरूप स्थितरूप । परमात्मस्वरूपमें तथा ॥

जिनवाणीकी मा नहीं । सबकूं हि मा सुविधि ताही ॥ ८ ॥

अर्थ — ऐसो जिनवाणी जिनवाणी जो जिनवाणीके आत्माराधना स्तुति सो अनेकरूपायोंको
मनकालीभी जो ताहा ताही परमात्मस्वरूपका सबकिनी महातोंको नहीं दिवि प्राप्त भाव ऐसे
प्रसिद्धिके जिनकी परमात्मस्वरूपका ताहिकूं प्राप्त होय है ॥ ऐसे होय इति भावना
भावनिवाको आत्मीयत्वादिके परमात्मीयत्वादिके ताका प्राप्त कहै ॥ ऐसे कहे इति कहै स्तुति
तत्त्वाभावनाको ऐसे शास्त्रकी परमात्मस्वरूपका कारणभूतकी आत्मा ॥ ऐसे हूँ आत्माका जो
प्रसिद्ध पड़ित्रो और प्रतिह जो ऐसे समीक्ष ताका तारका भला आत्मा तो प्रतिक्रमणके

है ॥ गाथा—

कसिणा परीसहचमू । अब्भुट्ठइ जइ वि सोवसग्गा वि ॥
दुद्धरपहकरवेगा । भयजणणी अप्पसत्ताणं ॥ ७ ॥
धिदिघणिदवद्धकच्छो । जोधेइ अणाउळो तमव्वाहिउ ॥
धिदिभावणाए सूरो । संपुण्णमणोरहो होइ ॥ ८ ॥

अर्थ- जो च्यारि प्रकारका उपसर्गकरि सहित अर दुर्धर संकटरूप है वेग जिनका अर अल्पपराक्रमीनिकूं भयका देनेवाली ऐसी समस्त क्षुधादिक बाईस परीषहकी सेना ताहीहू धृतिभावनाकरिकै शूर वीर मुनि जीति परिपूर्ण मनोरथका धारी होय है॥ कैसा है सूरमुनि? धैर्यरूप निश्चल वांधी है कमरि जानै, बहुरि कर्मनितैं युद्ध करनेविषैं अनाकुल-आकुलतारहित है, बहुरि बाधारहित है॥ भावार्थ— जो साधु उपसर्ग परीषह आये कायरतारहित जो धैर्य ताका धारी अर आकुलतारहित होय अर परीषह तथा उपसर्गकरि जाका ध्यान सँयम बाध्या नही जाय सोही मुनि घोर उपसर्गानिकूं तथा समस्तपरीषहनिकूं जीतिकरि कर्मका विजयकरि अनाकुल अव्याबाध सुखका पावनारूप मनोरथ ताकी परिपूर्णतानैं प्राप्त होय है॥ गाथा—

एयाए भावणाए । चिरकाळं हि विहरिज्ज सुद्धाए ॥

काऊण अत्तसुद्धिं । दंसणाणणे चरित्ते य ॥ ९ ॥

अर्थ— ये पंचप्रकारकी विशुद्ध जो असंक्लिष्ट भावना, ताके विषैं चिरकाल प्रवर्ते है सो दर्शज्ञानचारित्रमें निरतिचार आत्माकी शुद्धि तानैं प्राप्त होय सल्लेखनाकूं प्राप्त होय है ॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यान नामा मरणके चालीस अधिकारनिविषैं भावना नामा दशमां अधिकार अठाईस गाथानिमैं समाप्त कीया ॥ अब छ्याछठि गाथासूत्रनिकरि सल्लेखना नामा ग्यारमां अधिकार कहे हैं ॥ गाथा—

एवं भावयमाणो । भिक्खू सल्लेहणं उवक्कमइ ॥
णाणाविहेण तवसा । वज्झेणब्भंतरेण तहा ॥ २१० ॥

अर्थ— ऐसैं भावना करता जो साधु, सो नानाप्रकारके बाह्य अर आभ्यंतर तप, ताकरिकै सल्लेखना जो शरीरका अर कषायका कृश करना, ताहि प्रारंभ करे है ॥ अब सल्लेखनाका भेद कहे हैं ॥ गाथा—

सल्लेहणा य दुविहा । अब्भंतरिया य बाहिरा चेव ॥
अब्भंतरा कसाए- । सु बाहिरा होइ हु सरीरे ॥ ११ ॥

अर्थ— सल्लेखना दोय प्रकार है । एक आभ्यंतरसल्लेखना दूजी बाह्यसल्लेखना ॥

तहां जो क्रोध मान माया लोभादि कषायनिका कृश करना सो आभ्यंतरसल्लेखना है अर शरीरका कृश करना सो बाह्यसल्लेखना है ॥ अब बाह्यसल्लेखनाका उपाय कहे हैं—

सव्वे रसे पणीदे । णिज्जूहित्ता दु पत्तलुक्खेण ॥
अण्णदरेणुवधाणे- । ण सल्लिहइ य अप्पयं कमसो ॥ १२ ॥

अर्थ— सर्व जे बलवान् रस, तिननैं त्याग करिकै अर प्राप्त हुवा जो रूक्षभोजन वा औरहू रसादिरहित भोजन, ताकरिकै शरीरकूं अनुक्रमतैं कृश करै ॥ अब शरीरनैं कृश करनेका कारण जो बाह्यतप, ताहि कहे हैं ॥ गाथा—

अणसण अवमोदरियं । चाऊ य रसाण वुत्तिपरिसंखा ॥
कायकिलेसो सेज्जा । य विवित्ता बाहिरतवो सो ॥ १३ ॥

अर्थ— अनशन, अवमोदर्य, रसत्याग, वृत्तिपरिसंख्या, कायक्लेश, विविक्तशय्यासन ऐसैं छप्रकार बाह्य तप कह्या है ॥ अब अनशनतपके भेद कहे हैं ॥ गाथा—

अद्धाणसणं सव्वा- । णसणं दुविहं तु अणसणं भणियं ॥
विहरंतस्स य अद्धा- । णसणं इदरं च चरिमंते ॥ १४ ॥

अर्थ— अद्धा नाम कालका है, सो कालकी मर्यादा करि भोजनका त्याग करना सो अद्धानशन है । अर जो यावज्जीव मरणपर्यंतपर्यायमें भोजनका त्याग करना सो

सर्वानशन है। तहां जितनैं चारित्रमें आच्छी रीति प्रवर्तन रहै, तितनैं अद्धानशन है अर जब आयुका अंत आजाय, तदि सर्वानशन है॥ अब अद्धानशनका भेद कहे हैं॥ गाथा—

होई चउत्थछट्ठ-। ट्ठमादिछम्मासखमणपरियंतो॥
अद्धाणसणविभागो। एसो इच्छाणुपुव्वीए॥ १५॥

अर्थ— जो आपकी इच्छापूर्वक चतुर्थ कहिये एक उपवास षष्ठ कहिये वेलो अष्टम कहिये तेलो इत्यादिक छ महिनाका उपवासपर्यंत मर्यादापूर्वक भोजनका त्यागरूप अद्धानशनका भेद है॥ अब अवमोदर्यतपकूं दिखावे हैं॥ गाथा—

बत्तीसं किर कवला। आहारो कुक्खिपूरणो होइ॥
पुरिसस्स मिहिलिआए। अट्ठावीसं हवे कवला॥ १६॥

अर्थ— पुरुषका आहार बत्तीस ग्रासप्रमाण कुक्षिपूरण करनेवाला होय है अर स्त्रीका अठाईस ग्रासप्रमाण कुक्षिपूरण आहार होय है॥ सो एक हजार चावलमात्र एक ग्रासका प्रमाण आगममें कह्या है, सोही मूलाचार नामा ग्रंथमें वा मूलाचारप्रदीप नामा ग्रंथहूमें स्वाभाविक विकाररहित पुरुषका आहार बत्तीस ग्रासप्रमाण अर स्त्रीका आहार अठाईस ग्रासप्रमाण कह्या है॥ गाथा—

एकुत्तरसेढीए । जावय कवळो वि होदि परिहीणो ॥
अवमोदरियतवो सो । अद्धकवळमेगसित्थं च ॥ १७ ॥

अर्थ—कुक्षिपूरण करनेवाला आहारतैं एक ग्रासकरि ऊन तथा दोय ग्रास घाटि तथा तीन चार ग्रास ऊननैं आदि लेय एक ग्रासपर्यंत एक एक ग्रास हीन तथा अर्ध्दग्रास तथा एक सिक्थ कहिये चावलमात्रही लेना सो अवमोदर्यतप है ॥ इहां एकसिक्थ अथवा अर्ध्दग्रास उपलक्षणपद है । तातैं आहारकी न्यूनता जाननी, औरतरह एक-सिक्थ आदि लेना कैसैं बनै? । अथवा कोऊकै एक ग्रासमात्र लेनेका नियम था अर हस्तमें पहली एक चावलही आगया, तो चावलमात्रही लेवै अधिक नही लेवै, ऐसैंही एकसिक्थमात्र बणै है ॥ जातैं अवमोदर्यतैं भोजनकी लोलुपता घटै है अर निद्राका विजय होय है, अनशनादि तपसूं उपज्या खेदका अभाव होय है, वात-पित्त-कफादिककृत उपद्रव नही होय है, समताभाव प्रकट होय है, कामका विजय होय है, इंद्रियांकी लंपटता छूटै है, तातैं अवमोदर्य तपही परम उपकारक है ॥ अब रसपरित्यागतपकूं कहे हैं ॥ गाथा—

चत्तारि महावियडीउ । होंति णवणीदमज्जमंसमहू ॥
कंखा य संगदप्पा- । संजमकारीउ एदाउ ॥ १८ ॥

अर्थ— नवनीत कहिये लूण्या माखन, मद्य कहिये मदिरा, मांस, मधु कहिये सहत ये च्यारि महाविकृति है। भगवानका परमागमविषैं ये च्यारि महाविकार है–अल्पविकार नांही ॥ तहां नवनीत तो कांक्षा जो अतिगृद्धिता, ताहि करै, सो अतिगृद्धिता कहा? अतिलंपटता वारंवार प्रवृत्ति करे है। अर मद्य जो मदिरा, सो प्रसंग कहिये अगम्यगमन करावे है, जातैं मदिरापान करे ताकै खाद्य, अखाद्य, सेव्य, असेव्य, माता, स्त्री इत्यादिक विचारही नही रहे है। अर मांसभक्षण दर्प करे है। मधु जो सहतभक्षण सो असंयम करे है ॥ तातैं–

आणाभिकंखिणा व-। ज्जभीरुणा तवसमाधिकासेण ॥
ताउ जावज्जीवं। णिज्जूठाउ पुरा चेव ॥ १९ ॥

अर्थ— भगवान् जो सर्वज्ञ ताकी आज्ञा पालनेका इच्छक ऐसा, भव्य सम्यग्दृष्टि, तथा नरकपतनका कारण जो पाप, तातैं भयभीत ऐसा, तथा तप अर समाधिमरणका इच्छक पुरुष ताकूं सलेखनाका कालके पहलीही यावज्जीव नवनीत अर मदिरा अर मांस अर मधु इनका त्याग करना उचित है ॥ भावार्थ– जो पुरुष नवनीत मद्य मांस मधुका त्याग नंही कीया, सो सर्वज्ञकी आज्ञातैं बहिर्मुख है– अपूठा है, अर महापापी है, ताकै नरक पहुचानेवाला पापका भय नाही है, अर ताकै तपकी समाधिमरणकी

इच्छाही नही जाननी, वै पुरुष जैनीही नही। जो जिनधर्मका एकदेशभी अंगीकार करैगा सो जीवनपर्यंत च्यार महाविकृतिका त्याग पहलीही करैगा ॥ अब रसत्यागतपका क्रम कहे हैं ॥ गाथा—

खीरदहिसप्पितेल्लं । गुडाण पत्तेयदो य सव्वेसिं ॥
णिज्जूहणमोगाहिम- । पण्णकुसणलोणमादीणं ॥ २२० ॥

अर्थ— दुग्ध, दधि, घृत, तैल, गुड इनिका प्रत्येक त्याग तथा सर्वरसनिका त्याग सो रसपरित्याग है। तथा पूप, पत्र, शाक, व्यंजन, लवणादिकनिका त्याग, सो रसपरित्याग है ॥ गाथा—

अरसं च अण्णवेला- । कदं च सुद्धोदणं च लुक्खं च ॥
आयंविलमायामो- । दणं च विगडोदणं चेव ॥ २१ ॥

अर्थ— अरसं कहिये स्वादुरहित, तथा अन्यवेलाको कीयो शीतल, तथा शुद्धोदनं कहिये काहूकरि मिल्या नांही, तथा रूक्ष कहिये लूखा, तथा आचाम्ल, तथा आयामोदन कहिये थोडा जलमें चावल, तथा विकृतोदन कहिये अत्यंत पक्व उष्णजलकरि मिल्या, तथा—

इच्चेवमाइ विविहो । णायव्वो हवदि रसपरिच्चाओ ॥

एस तवो कायव्वो । विसेसदो सल्लिहंतेण ॥ २२ ॥

अर्थ— इत्यादिक नानाप्रकारके रसपरित्याग नामा तप जाननेयोग्य होय हैं, सो सल्लेखना करनेवाला जो साधु तिसकूं पूर्वं कह्या इत्यादिक रसपरित्याग नामा तप सो विशेषकरि करनेयोग्य है ॥ ऐसें रसपरित्याग तप कह्या ॥ आगे वृत्तिपरिसंख्यान नामा तपकी निरूपणाके अर्थि च्यार गाथा कहे हैं ॥ गाथा–

गंता पच्चागदं उ- । ज्जविही गोमुत्तियं य पेलवियं ॥
संवुक्कावट्टं पि य । पदंगवीथी य गोयरिया ॥ २३ ॥

अर्थ— वृत्तिपरिसंख्यान नामा तपका करनेवाला केईप्रकारकी प्रतिज्ञा करिकै अर भोजनकूं जाय है । जो, ऐसें मिलेगा तो भोजन करूंगा, ओरप्रकार नही ॥ तहां मार्गकी प्रतिज्ञाकूं कहे हैं— जिस मार्गकरिकै नगर ग्राममें भोजनकूं जाऊंगा, तिसही मार्गकरिकै आऊंगा, जो आवता भिक्षा प्राप्त होयगी तो ग्रहण करूंगा, ओरप्रकार नही । ऐसी प्रतिज्ञा करै ॥ बहुरि जो सरल सूधा मार्गकरिकै भोजनकूं जाऊंगा, जो सरलमार्गमें भोजन प्राप्त होयगा तो ग्रहण करूंगा, अन्यप्रकार नही ॥ तथा गोमूत्रिकाके आकार मोडा खाता भ्रमण करता जो भोजन मिलेगा तो ग्रहण करूंगा, अन्यथा नही ॥ तथा पेलविय कहिये कोई देशानिमें वस्त्रसुवर्णादिकनिका

निक्षेपणके अर्थि वांसके सिंक पत्रादिककरि चौकोर पिटारे करे हैं, ताके आकार भिक्षाके अर्थि भ्रमण करूंगा, जो ऐसैं चतुरस्र परिभ्रमण करता भोजन मिलेगा तो ग्रहण करूंगा, ओरप्रकार नही ॥ तथा संबुकावर्त जो जलशुक्तिकाके आकार परिभ्रमण करूंगा, जो ऐसैं मिलेगा तो भोजन ग्रहण करूंगा, ओरप्रकार नांही ॥ तथा पतंगवीथी जो सूर्यका गमनकीनाई भिक्षाकूं भ्रमण करूंगा, जो ऐसा मार्गमें भोजन मिलेगा तो ग्रहण करूंगा, अन्यप्रकार नांही ॥ ऐसैं गोचरी जो भिक्षाके अर्थि भ्रमणमें प्रतिज्ञा करिकै भोजन करनेका नियम, सो वृत्तिपरिसंख्यान है ॥ तथा–

पाडेगणियंसणभिक्खा। परिमाणं दत्तघासपरिमाणा ॥
पिंडेसणा उ पाणे-। सणा उ जागू य युग्गलया ॥ २४ ॥

अर्थ– एक पाडेमैंही भोजन मिलेगा तो ग्रहण करूं वा दोय पाडेमैं इत्यादिक पाडेनिका प्रमाण करि भोजनग्रहणकी प्रतिज्ञा करै। तथा या गृहका वारिला परिकरकी भूमीमैंही प्रवेश करूंगा, गृहके अभ्यंतर नही प्रवेश करूं ऐसी प्रतिज्ञा करिकै भोजन करै, सो णियंसण नामा परिमाण है ॥ तथा भिक्षाका प्रमाण करै, जो इतना गृहनिमें जाऊं, एकमें तथा दोय च्यारि पांच सात इनिमें भोजन मिले तो ग्रहण करूं, औरमैं नही ॥ तथा दातारका प्रमाण करै, जो, एककरि दीनीही

भिक्षा ग्रहण करूं वा दोयकरि दीनी ग्रहण करूं ॥ तथा ग्रासनिका प्रमाण करि ग्रहण करना ॥ तथा पिंडरूपही ग्रहण करूं वा अपिंडरूपही ग्रहण करूं। इहां पिंड नाम जिस आहारका एकट्ठा पिंड बंधी जाय सो पिंडरूप है अर जिसका पिंड नही बंधे ऐसा बिखऱ्या आहार सो अपिंडभूत है, तिनिकी प्रतिज्ञा करै॥ तथा पाणेसणा जो आर्द्र जो गीला द्रवीभूत बहुतपणाकरिकै जाकूं पीयये सो, तामैं प्रतिज्ञा करै॥ तथा जागू कहिये मेदडी तथा यवागू कहिये एवडी इत्यादिक, तथा चोला मोठ मूंग चणा मसूर इत्यादिक मिलेगा तो भोजन लेवेंगे औरप्रकार नही भक्षण करेंगे॥ तथा—

संसिट्ठफासिहपरिखा। पुफ्फोवहिदं च सुद्धगोवहिदं॥
लेवडमलेवडं पा-। णयं च णिस्सित्थ य ससित्थं॥ २५॥

अर्थ— बहुरि ऐसैं प्रमाण करै, शाक और कुल्माष कुलत्थादिक जे धान्यविशेष ये मिल्या हुवा होय ताकूं संसृष्ट कहिये। सो कबहू ऐसी प्रतिज्ञा करै, जो शाक कुलत्थादिक मिल्याही भक्षण करूं और नही करूं॥ बहुरि भोजनमें दातार भोजन ल्यावे तामैं सर्वतरफ तो शाक होय अर वीचिमैं भात होय, ताकूं फलिह कहिये, सो फलिहकी प्रतिज्ञा करै॥ बहुरि चारूं तरफ तरकारी अर वीचिमैं तिष्ठतो अन्न सो परिखा कहिए, ताकी प्रतिज्ञा करै॥ बहुरि व्यंजन जो तरकारी ताकै वीचि पुष्पांकी-

नांई भात होय, ताकूं पुष्पोपहित कहिये, ताकी प्रतिज्ञा करै ॥ बहुरि मोठ इत्यादिक अन्नकरि मिल्या हुवा शाक व्यंजनादिक सो शुद्धगोवहिद कहिये, ताकी प्रतिज्ञा करै बहुरि हस्तकै लिप जाय सो लेपकारि भोजनकूं लेवड कहिये, ताकी प्रतिज्ञा करै ॥ बहुरि हस्तकै नही लिपै ताकूं अलेवड कहिये, ताकी प्रतिज्ञा करै ॥ बहुरि पीनेकी वस्तु ताकूं पानक कहिये, सो तंदुलसहित होय ताकूं ससिक्थ कहिये अर चांवलरहित मांड इत्यादिकूं सिक्थरहित कहिये ॥ सो ऐसी प्रतिज्ञा करि भोजनके अर्थि गमन करै, सो वृत्तिपरिसंख्यान है ॥ तथा—

पत्तस्स दायगस्स य । अवगाहो बहुविहो ससत्तीए ॥
इच्चेवमादि विविहा । णादव्वा वुत्तिपरिसंखा ॥ २६ ॥

अर्थ— बहुरि सुवर्णका पात्रमें भोजन देनेकूं ल्यावै तो ग्रहण करूंगा, कांसीपात्र पीतलका वा ताम्रका वा रूपाका वा मांटीका पात्रमें भोजन ल्यावै तो ग्रहण करूंगा ओरप्रकार नहीं ग्रहण करूंगा इत्यादि पात्रका नियम करै ॥ बहुरि बाल वृध्द युवा नर स्त्री वा आभरणसहित वा निराभरण इत्यादिक दातारका नियम करै ॥ औरहू, बहुप्रकार आपकी शक्तिप्रमाण इत्यादिक नानाप्रकार अभिप्रायकरि भोजन ग्रहण करै, सो वृत्तिपरिसंख्यान नामा तप जाणवो जोग्य है ॥ अब कायक्लेशनामा तपकूं कहे है—

अणुसूरी पडिसूरी। च उड्ढसूरी तिरीयसूरी य ॥
उब्भामएण गमणं। पडिआगमणं च गंतूण ॥ २७ ॥

अर्थ— सूर्यकूं सन्मुख करि गमन करना, तथा सूर्यकूं पाछै करि गमन करना तथा सूर्य मस्तक उपरि आजाय तदि गमन करना, तथा सूर्यकूं तिर्यक् करि गमन करना, तथा एकग्रामतैं अन्यग्रामप्रति गमन करना, तथा गमन करि आगमन करना, सो यह गमनका खेदजनित कायक्लेश तप है ॥ गाथा—

साधारण सविचारं। सणिरुद्धं तहेव सोसट्टं ॥
समपादमेगपादं। गिध्दूलाणं च ठाणाणि ॥ २८ ॥

अर्थ— स्तंभादिकनिकूं आश्रय करि खडा रहना सो साधारण है, अर गमन पूर्व करि अर पाछै खडा रहना सविचार है, अर निश्चल खडा रहना सन्निरुद्ध है, बहुरि कायसूं ममत्व छोडि तिष्ठना कायोत्सर्ग है, बहुरि समपादकरि खडा रहना समपाद है, बहुरि एकपादकरि तिष्ठना एकपाद है, बहुरि गृध्रका ऊर्ध्वगमनकीनांई बाहू पसारि खडा रहना गृध्रलीन है। इत्यादिक निश्चल अवस्थान कायक्लेश है ॥ तथा—

समपलियंकणिसेज्जा। समपद गोदूहिया य उक्कडिया ॥
मगरमुहहत्थिसुंडी। गोसज्जा अध्दपलियंकं ॥ २९ ॥

अर्थ— सम्यक् पर्यंकनिषद्यासन तथा समपाद स्थानकरि आसन वहुरि गौका दोहनिके आसनकीनांई आसन तथा उत्कटिकासन ऊर्ध्व अंगसंकोच करि आसन बहुरि मकर जो मत्स्य ताका मुखकीनांई पग करि आसन करना सो मकरमुखासन है, हस्तीकी सूंडीकीनांई पादप्रसारण करि आसन करना सो हस्तिशुंडासन है, तथा गौका आसनकीनांई आसन सो गोनिषद्यासन है, तथा गोनिषद्यासनवत् अर्द्धपर्यंकासन है। इत्यादि आसनयोगकरि कायक्लेशतप है॥ तथा—

वीरासणं च दंडा। य उद्धसाई य लगुडसाई य॥
उत्ताणसयणमवह-। त्थियसाई य एगपाससाई य॥ २३०॥

अर्थ— वीरासन तथा दंडासनमें दंडकीनांई शरीरकूं लंबा करि शयन करना है॥ तथा ऊर्ध्वशयनं तथा संकुचित गात्र होय शयन करना सो लकुटशायी है। तथा उत्तानशयन तथा एक पसवाडेतैं शयन करना सो इत्यादिक शयनकरि कायक्लेश है॥

अब्भावगाससयणं। अणिट्ठवणगं अकंडुगं चेव॥
तणफळयसिळाभूमी। सेज्जा तह केसळोचो य॥ ३१॥

अर्थ— बाह्य निरावरण प्रदेशमें शयन करना जाउपरि कोऊ छाया नांही सो अभ्रावकाशशयन है॥ बहुरि निष्ठीवन जो खंखार थूकका नही क्षेपणा सो अनिष्ठीवन

है ॥ तथा खाजि शरीरमें चालै ताका नही खुजालना सो अकंडुकशयन हैं ॥ बहुरि तृण तथा काष्ठकी फडी सो फलक तथा पाषाणमय शिला तथा कोरी भूमी इनि च्यारि प्रकारके संस्तरमें शयन करना ॥ बहुरि केशनिका लोंच करना इत्यादि कायक्लेश तप है ॥ तथा—

अल्लोट्ठणं च रादो । अण्हाणमदंतधोवणं चेव ॥
कायकिळेसो एसो । सीदुण्हादावणादी य ॥ ३२ ॥

अर्थ— रात्रिविषैं जागरणा, बहुरि स्नानका त्याग, अर दंतधोवन कहिये दांतनिका धोवनेका त्याग, तथा शीत उष्ण आतापनादिकका सहना सो कायक्लेश तप है ॥ ऐसैं कायक्लेश तप कह्या, यातैं शरीरमें सुखियास्वभाव मिटे है, तथा परीषह सहनेमें समर्थ होय है, तथा रोगादिक आये कायर नही होय है, आराधनातैं नही चिगे है ॥ आगै विविक्तशयनासनतपका निरूपण करे हैं ॥ गाथा—

जहिं ण विसोत्ति य अत्थि । दु सद्दरसेहिं रूवगंधफासेहिं ॥
सज्झायज्झाणघादो । वा वसदी विवित्ता सा ॥ ३३ ॥

अर्थ— जा वसतिकामैं शब्द रस रूप गंध स्पर्शकरि अशुभपरिणाम नही होय तथा स्वाध्यायका अर शुभध्यानका घात नही होय सो विविक्तवसतिका है ॥

भावार्थ– मुनीश्वरके वसनेयोग्य वसतिका ऐसी होय तामैं वसै, तहां ग्रामके निकट वसतिकामैं एकरात्रि वसै अर नगरबाह्य वसतिका होय तामैं पंचरात्रि वसै अधिककाल वर्षाऋतुविना एक क्षेत्रमें नही वसै ॥ अर जहां रागद्वेषकारी वस्तू देखि परिणाम बिगडि जाय तथा स्वाध्याय ध्यान बिगडि जाय तहां साधूकूं क्षणमात्रहू नही रहना ॥ बहुरि कहे हैं–

वियडाए अवियडाए । समविसमाए वहिं च अंतो वा ॥
इत्थीणउंसयपसु- । वज्जिदाए सीदाए उसिणाए ॥ ३४ ॥

अर्थ— वसतिका उघड्या द्वारनिकी होहू तथा ढक्या द्वारनिकी होहू समभूमिसमन्वित होहू वा जाकी ओधक नीची विषमभूमि होहू तथा शीत उष्णतासहित होऊ वा शीतउष्ण बाधारहित होहू बाह्य प्रकट दीखता मकान होहू वा अभ्यंतर होहू परंतु जामैं स्त्रीनिका तथा नपुंसकनिका तथा पशूनिका आवना जावनाकरि रहित होय सो अंगीकार करै ॥ जिस स्थानमें स्त्री नपुंसक पंचेंद्रियतिर्यंचनिका आर जार होय तिस वसतिकामैं साधुजन नही वसै ॥ और विविक्तवसतिका कैसी होय सो कहे हैं ॥ गाथा–

उग्गमउप्पादणए- । सणाविसुद्धाए अकिरियाए दु ॥
वसदि असंसत्ताए । णिप्पाहुडियाए सेज्जाए ॥ ३५ ॥

अर्थ— जैसैं आहार छियालीस दोषरहित शुद्ध होय सो ग्रहण करे हैं, तैसैं जैनके दिगंबर मुनि छियालीस दोषरहित वसतिका ग्रहण करे हैं। सो वसतिका सोलहप्रकार उद्गमदोष तथा सोलह प्रकारही उत्पादनदोष अर दशप्रकार एषणा दोष अर संयोजना तथा अप्रमाण और धूम अर अंगार ऐसे छियालीस दोषरहित वसतिकामैं प्रमाणीक काल रहे हैं॥ तहां छियालीस दोषनितैं जुदा एक अधःकर्म दोष है, याकूं होतैं साधुपणाही भ्रष्ट होजाय, सो कहे हैं॥

जो वसतिकाके निमित्त वृक्षका छेदना, तथा पाषाणका छेदना अर ल्यावना, तथा ईंटा पकावना भूमी खोदना, तथा पाषाण वालू रेतकरि खाडा भरना, तथा पृथ्वीका कूटना, कादा करना, अग्निकरि लोहकूं तपावना, तथा लोहके कीलेनिकूं करना, तथा करोतनकरि काष्ठपाषाणका चीरना, तथा फरसीकरि छेदना, वसोलेनकरि छीलना इत्यादिक व्यापारकरि छकायका जीवनिकूं बाधा करिकै आप वसतिका उत्पन्न करै तथा अन्यकरि करावै तथा अन्य करै ताकूं भला जाणै सो महानिंद्य अधःकर्म नामा दोष मुनिधर्मकूं मूलतैं नाश करनेवाला है, सो त्यागनेयोग्य है॥ भावार्थ— वसतिका कोऊ देशमें काष्ठकी होय है, कोऊ देशमें पाषाणकी होय है, सो मुनि होय वसतिकाका आरंभ करै करावै करताकूं भला जाणै,

ताका साधुधर्म बिगाडि जाय है ॥

अब उद्गम सोलह दोष हैं, तिनिकूं कहे हैं ॥ जितने दीन अनाथ वा लिंगधारी आवै तिनिके वास्ते या वसतिका करी है, अथवा श्रमण जे निर्ग्रंथमुनि तिनिके वास्ते या वसतिका कराऊं हूं, ऐसें वसतिका मुनीश्वरनिके अर्थि करै करावै करतेकूं भला जाणै, सो उद्देशदोषसहित वसतिका है ॥ १ ॥ जो गृहस्थ आपके निमित्त मकान हवेली महल बनावता होय, तदि विचारै– जो, साधु संयमीभी आयवो करे हैं, सो कितनेक काष्ठ पाषाण ईंट सिवाय मगाय एक वसतिका साधूवास्तैभी बनाय ल्यूं। ऐसें वसतिका बनाय साधूके अर्थि देवै, सो अध्यधिदोष है ॥ २ ॥ बहुरि अपने गृहका बनावनेकूं काष्ठ ईंट पाषाण भेले कीये थे, तिनिमें अल्प काष्ठादिक मुनीकी वसतिकाके निमित्त मगाय मिला देना, सो पूतिदोष है ॥ ३ ॥ बहुरि कोऊ गृह वा वसतिका अन्य पाषंडी वा गृहस्थीनिके निमित्त बनाया था, फेरि विचार भया जो ऐसें बनिजाय तो साधूहू रह्या करै ऐसें संकल्पकरि करी वसतिका मिश्रदोषसहित है ॥ ४ ॥ बहुरि कोऊ मकान आपके निमित्त कीया था अर फेरि विचार भया, यह मकान साधूके अर्थिही है, औरके अर्थि नहीं, सो स्थापितदोष है ॥ ५ ॥ बहुरि जिस दिन साधु मुनि आवैगे तिस दिन वसतिकाकूं सर्वसंस्कार करि सुधारेंगे धवल करेंगे या

विचारि साधु आवे जिस दिन वसतिकानैं भुवारि उज्वल करि देवै, सो प्राभृतकदोष है ॥ अथवा साधु आवे ताकूं कालका विलंब करि अर वसतिका संवारि देना सोहू प्राभृतकदोष है ॥ ६ ॥ बहुरि जिस वसतिकामैं अंधकार बहोत होय तिसमें प्रकाश करनेके अर्थि भींतिनिमैं छिद्र कर दे जाली काटि दे वा ऊपरि आडे फलक काष्ठ उतारि ले वा दीपक जोय दे, सो प्रादुष्कारदोष है ॥ ७ ॥ बहुरि गाय बलध भैंसी इत्यादिक सचित्त द्रव्य देय संयमीके अर्थि वसतिका मोलि लेवै, सो सचित्तक्रीत है ॥ ८ ॥ बहुरि खांड गुड घृतादिक अचित्तद्रव्य देय वसतिका खरीदे, सो अचित्तक्रीत है ॥ ९ ॥ बहुरि व्याज भाडा देय मुनीनिके अर्थि वसतिका ग्रहण करै, सो प्रामिश्र दोष है ॥ १० ॥ बहुरि कोऊ वसतिकाका स्वामीकूं कहे, जो, हाल हमारा मकानजायगामैं तुम तिष्ठो, तुमारा मकान वसतिका मुनिनिकूं रहनेकूं देवो, पीछै साधु विहार करि जायगा तदि तुमारा तुम ग्रहण करियो, ऐसैं बदलि ल्यावै तो वह वसतिका परिवर्तनदोषसहित है ॥ ११ ॥ बहुरि अपनी भींति इत्यादिकके अर्थि कोऊ सामग्री थी, सो अपने गृहतैं संयताकी वसतिकाके अर्थि ल्यावै, सो अभिघटदोषसहित है ॥ १२ ॥ सो दूरितैं अन्यग्रामतैं ल्यावै, सो अनाचरित अर अन्य आचरित ॥ १३ ॥ बहुरि जा वसतिकाका द्वार ईंटनिकरि वा मृत्तिकाकरि वा कांटानिकी वाडिकरि वा कपाटनिकरि

वा पाषाणकरि मूंदि राख्या होय अर पाछे मुनीनिके निमित्त उघाडिकरि देवै, सो स्थगितदोष है वा उद्भिन्नदोष ॥ १४ ॥ बहुरि राजाके मंत्री वा प्रधानपुरुषनिका भय दिखाय अर परकी वसतिका देवै, सो आछेद्यदोपसहित है ॥ १५ ॥ बहुरि वसतिकाका स्वामी असमर्थ है बालक है वा सेवकादिकनिके आधीन है, ताकरि दीनी, सो अनिसृष्टि है वा आप जाका स्वामी नही ताकरि दीनी, सो अनिसृष्टिदोपसहित है ॥ १६ ॥ ऐसे सोलह उद्गमदोष कहे, सो ये सर्व दातारके आश्रय हैं, अर साधु जाणै सो त्याग करैही ॥ अब उत्पादनदोप सोलहप्रकार साधूके आश्रय हैं, सो कहे हैं ॥

जगतमें पंचप्रकारकी धात्री होय हैं ॥ जो बालककूं स्नान करावनेमें वा पूछनेमें धोवनेमें जाका अधिकार होय सो मज्जनधात्री है ॥ १ ॥ अर जो बालककूं आभरण वस्त्रादिक पहरावनेमें कज्जलादिकरि भूषित करनेमें जाका अधिकार होय सो मंडनधात्री है ॥ २ ॥ बहुरि बालककूं ख्याल खिलोनेनिकरि क्रीडा करावनेमें जाका अधिकार होय सो क्रीडनधात्री है ॥ ३ ॥ बहुरि बालककूं स्तनपान करावनेमें वा दुग्धपानादिक करावनेमें जाका अधिकार होय सो पानधात्री है ॥ ४ ॥ बहुरि बालककूं शयन करावनेमें जाका अधिकार होय सो स्वपनधात्री है ॥ ५ ॥ जो श्रावकजन आपके बालकनिसहित साधुनिके निकट आवे, तब साधु श्रावकनिकै

कहे, जो, इनि बालकनिकूं ऐसैं भूषित करो, वा ऐसैं क्रीडा कराया करो, वा ऐसे स्नान कराया करो वा ऐसैं दुग्धपान कराया करो, ऐसैं गृहस्थजननिकूं उपदेश करि गृहस्थनिकूं आपमें रागी करि उनकी दिई वसतिकाकूं ग्रहण करै। सो धात्रीदोषदुष्ट वसतिका है ॥ १ ॥

बहुरि अन्यदेशतैं वा अन्यग्रामतैं वा अन्यनगरतैं गृहस्थनिके संबंधी पुत्री जवाई व्याही सगे भाई कुंटुंबीनिके समंचार ल्यायकरि जो उत्पन्न करि वसतिका, सो दूतकर्मोत्पादिता नामा दोषसहित है ॥ २ ॥

बहुरि अंग उपांग देखनेकरि तथा शरीरमें तिल मसकादिक व्यंजन तिनके देखने-करि तथा शरीरमें स्वस्तिक भृंगार कलश दर्पणादि लक्षणनिके देखनेकरि तथा वस्त्र छत्र आसन इत्यादिक मूंसेनिकरि वा कंटकनिकरि वा शस्त्र अग्नि इत्यादिककरि छिन्न भये होय ताकूं सुनने देखनेकरि तथा भूमीका लुखापना सचिक्कणपना इत्यादिक देखनेकरि तथा शुभ अशुभ स्वप्नके देखने सुननेकरि तथा आकाशमें सूत्र पडते तथा दिशानिके रूप ग्रहनिके आकृतीके देखनेकरि तथा चेतन अचेतनके शब्द श्रवणकरि जो त्रिकालवर्ती सुखदुःख जय पराजय दुर्भिक्ष सुभिक्ष इत्यादिक अष्टनिमित्ततैं जानि-करि गृहस्थनिकूं कहे है, जो, अबतलक इहां ऐसा भया अब आगै ऐसा होयगा वा

वर्तमानकालमें ऐसा होय है इत्यादिक कहिकरि उनतें वसतिकाग्रहण करै, सो निमित्तदोषसहित है ॥ ३ ॥

वहुरि आपका कुल जाति ऐश्वर्य, आपकी महिमा प्रकट करिकै जो वसतिका ग्रहण करै, सो आजीवनदोषसहित है ॥ ४ ॥

वहुरि कोऊ गृहस्थ प्रश्न करे है, भगवन् सर्वही कंगाल वा भेषधारी तिनिकूं भोजनदान देनेमें वा वसतिकादान देनेमें महान् पुण्य उपजे है वा नहीं उपजे है? तदि कहै, जो, देनेका पुण्यही है इत्यादिक गृहस्थके अनुकूल वचन कहि वसतिकाग्रहण करै, सो वनीपकदोषसहित है ॥ ५ ॥

वहुरि अष्टप्रकारकी चिकित्सा जो वैद्यकविद्या ताही करिकै जो वसतिका उत्पन्न करे है, सो विचिकित्सादोषसहित है ॥ ६ ॥

वहुरि ७ क्रोधकरि उपजाई तथा ८ मानकरि तथा ९ मायाकरि तथा १० लोभकरि उपजाई जो वसतिका सो च्यारी कषायदोषसहित हैं ॥ १० ॥

गमन करते वा आवते जे मुनीश्वर तिनिकूं आपका गृहही आश्रय है या वार्तानें दूरितैंही सुनी थी, सोही देखी, इत्यादिक स्तवनकरिकै वसतिका ग्रहण करै सो पूर्वस्तुतिदोषसहित है ॥ ११ ॥

बहुरि जो वसतिकाग्रहण करे, पीछे स्तवन करे सो पश्चात्संस्तुति नामा दोष है ॥१२॥

तथा मंत्रका लालच देय वसतिकाग्रहण करे, सो मंत्रदोषसहित है ॥ १३ ॥

बहुरि विद्याका लालच देय वसतिकाग्रहण करै, सो विद्यादोषसहित है ॥ १४ ॥

बहुरि नेत्रका अंजन वा शरीरसंस्कारका चूर्ण इत्यादिकनिकी आशा लालच देय वसतिकाग्रहण करे, सो चूर्णदोषसहित है ॥ १५ ॥

बहुरि जो अवशका वशीकरणप्रयोग तथा जो जुदा हो रह्या तिनिका संयोगकरण रूप कर्मकरि उपजाई वसतिका सो मूलकर्मदोषसहित है ॥ १६ ॥

ये सोलह दोष पात्र जो साधूके आश्रय हैं, सो जैनके दिगंबर कदाचितही दोषसहितवसतिका नही ग्रहण करै ॥ अब दश एषणादोष कहे हैं ॥ या वसतिका योग्य है वा अयोग्य है याप्रकार जामैं शंका उपजे सो शंकितदोषसहित है ॥ १ ॥ बहुरि तत्कालकी लिप्त होय सो म्रक्षितदोषसहित है ॥ २ ॥ बहुरि जो सचित्त पृथिवी वा जल वा हरितकाय वा बीज वा त्रसनिउपरि स्थापन कीया है पीठ फलकादिक जामैं ऐसी वसतिका निक्षिप्तदोषसहित है ॥ ३ ॥ बहुरि हरितकाय वा कांटा सचित्तमृत्तिका ताकूं दूरि करि वसतिका दे, सो पिहितदोषसहित है ॥ ४ ॥ काष्ठ तथा वस्त्र कंटकानिमें घींसतो जो आगै जावतो पुरुष, ताकरि दिखाई जो वसतिका, सो व्यवहरणदोषसहित है ॥ ५ ॥

बहुरि मृत्यूका सूतकयुक्त तथा मतवाला तथा व्याधिसहित तथा नपुंसक तथा पिशाचगृहीत तथा नग्न इत्यादिकनिकरि दीई वसतिका सो दायकदोषसहित है ॥ ६ ॥ बहुरि स्थावर पिपीलिका उटकण इत्यादिकनिकरि मिली हुई वसतिका सो उन्मिश्रदोषसहित है ॥ ७ ॥ जो आवने जावनेकरि मर्दली नहीं होय सो अपरिणतिदोषसहित है ॥ ८ ॥ बहुरि जो घृत तैल खांड इत्यादिककरि लिप्त होय जाके सूक्ष्म जीव चिपि जाय, सो लिप्तदोषसहित है ॥ ९ ॥ बहुरि जो वसतिका आसनसंस्तरके भोगनेमें तो अल्प आवै अर बहोतका रोकना अंगीकार करना होय, सो परित्यजनदोषसहित है ॥ १० ॥

अब च्यारि दोष और कहे हैं ॥ बहुरि अल्पभूमीमें शय्या आसन होता होय अर अधिकभूमीकूं ग्रहण करना सो प्रमाणातिरेकदोष है ॥ १ ॥ बहुरि जो संयमीके रहनेयोग्य वसतिका भोगीपुरुष वा असंयमी पुरुषनिके बाग बगीचा महल मकानसूं मिली रही होय, सो संयोजनादोषसहित है ॥ २ ॥ बहुरि या वसतिका शीत आताप पवनादिककरि उपद्रित है भली नहीं इत्यादिक निंदा करता जो वसतिकामें वसे सो धूमदोषसहित है ॥ ३ ॥ अर या वसतिका पवन शीत आताप उपद्रवरहित है विस्तीर्ण है सुंदर है इत्यादिक रागभावना करता अति आसक्त होय वसै सो अंगारदोषसहित है ॥ ४ ॥ इत्यादिक छीयालीस दोषरहित जो वसतिका होय, तथा 'अकिरियाए'

कहिये दुष्प्रमार्जनादिक संस्काररहित होय, जामैं दुष्टतातैं पींछी इत्यादिकतैं संस्कार नही भया होय, तथा 'असंसत्ताए' कहिये जीवनिकी उत्पत्तिरहित होय, तथा 'णिप्पाहुडिगाए–निष्प्राघूर्णिकायाम्' कहिये जामैं रागी असंयमीनिकी शय्या आसन नही होय, सो साधूनिकै योग्य विविक्तवसतिका है॥ सो कैसी होय सो कहे हैं–

सुण्णघरगिरिगुहारु-। रुखमूलआगंतुगारदेवकुळं॥
अकुदप्पाभारारा-। मघरादीणि य विवित्ताइं॥ ३६॥

अर्थ— सूंना गृह होय वा गिरीकी गुफा होय तथा वृक्षका मूल होय तथा आगंतुक जो आवनेवाले जावनेवालेनिके विश्रामका मकान होय तथा देवकुल होय तथा शिक्षागृह होय तथा अकृतप्राग्भार कहिये कोईकरि आपके निमित्त कीया नही होय वा बागबगीचेनिके महल मकान होय सो विविक्तवसतिका साधूनिकै रहनेयोग्य होय है। अर जिस वसतिकामैं ये दोष नही होय सो दिखावे हैं॥

कलहो वोलो झंझा। वामोहो संकरो ममत्तिं च॥
झाणज्झयणविघादो। णत्थि विवित्ताए वसदीए॥ ३७॥

अर्थ— या वसतिका हमारी या तुमारी ऐसा कलह जामैं नही होय अन्यजनरहित होय, बहुरि जामैं बोल जो शब्द ताका श्रवणकी बहुलता नही होय, बहुरि

झंझा जो संक्लेश सो शीत उष्ण पवन वर्षा दुष्ट तिर्यंच मनुष्यनिकरि जामैं नहीं होय, बहुरि जामैं व्यामोह जो परिणाम बिगडि जाय ऐसी नहीं होय, बहुरि जामैं असंयमी जनाका संग मिलाप नही होय, बहुरि जामैं ममताभाव जो या वसतिका मेरी ऐसा ममत्व नही उपजै ऐसी होय, बहुरि जामैं ध्यान स्वाध्याय बिगडनेका कारण नही होय, ऐसी एकांतरूप साधुनिकै वसनेयोग्य विविक्तवसतिका कही ॥ गाथा—

इय सल्लीणमुवगदो । सुहप्पवत्तेहिं तत्थ जोगेहिं ॥
पंचसमिदो तिगुत्तो । आदट्ठपरायणो होदि ॥ ३८ ॥

अर्थ— याप्रकार सुखतैं प्रवर्ततैं जे जोग कहिये तप वा ध्यान, तिनकरिकै सल्लीणं कहिये एकाग्रता जो तन्मयता, तानैं जो प्राप्त हुवा, जो पंचसमितिका धारक तथा तीन गुप्तीका धारक जो साधु सो आत्मार्थ जो आत्माका प्रयोजन हित, तामैं तत्पर होय है ॥ भावार्थ— ऐसैं पूर्वोक्त विविक्त शय्यासन नामा तपका धारक जो साधु, सो सुखसूं प्रवर्त्या जो ध्यान, ताकरिकै आपका कल्याण करनेमें लीन होय संवरनिर्जरा करे है ॥ आगै संवरपूर्वक निर्जरा करै ताकी महिमा कहे हैं ॥ गाथा–

जं णिज्जरेदि कम्मं । असंवुडो सुमहदा वि कालेण ॥
तं संवुडो तवस्सी । खवेदि अंतोमुहुत्तेण ॥ ३९ ॥

अर्थ— संवररहित तपस्वी बाह्य तपकरिकै जिनि कर्मनिकूं बहोत कालकरिकै निर्जरा करत है, तिन कर्मनिकूं तीन गुप्ति पंचसमिति दशलक्षण धर्म बारह भावना परीषहका जीतनारूप संवरका धारक तपस्वी अंतर्मुहूर्त कालमें निर्जरा करे है ॥ भावार्थ— नवीन आवते कर्मनिको रोकनेवाला तपस्वी जिस कर्मकूं अंतर्मुहूर्तमें क्षिपावै, तिस कर्मकूं संवररहित तपस्वी असंख्यात वर्ष घोर तप करताहू निर्जरा नही करि सके है ॥

एवमवळायमाणो । भावेमाणो तवेण एदेण ॥
दोसे णिग्घादिंतो । पगाहिददरं परक्कमदि ॥ २४० ॥

अर्थ— याप्रकार तपसूं नही पाछे होते जे साधु ते बाह्य जो तप ताकरिकै दोष जे अशुभपरिणाम ताका घात करते अतिशयरूप पराक्रमनैं प्राप्त होय है ॥ भावार्थ— ऐसैं तपका प्रभावकरि अशुभ मोहजनित परिणाम तिनिका नाश करि आत्माका महान् पराक्रम प्रकट करे है । जाकरि सर्वकर्मका अभाव होय, निर्वाण होवे ॥ आगै निर्जराका अर्थी जो साधु, ताकूं ऐसा तप आचरण करना योग्य है, ऐसैं कहे हैं ॥ गाथा—

सो णाम बाहिरतवो । जेण मणो दुक्कडं ण उट्ठेदि ॥
जेण य सद्धा जायदि । जेण य जोगा ण हायंति ॥ ४१ ॥

अर्थ— बाह्यतप तो वैही प्रशंसायोग्य है, जाकरि मन पापविषैं उद्यमी नही होय

अर जिस तपकरि धर्ममें अर अभ्यंतरतपमें श्रद्धा दृढ होती जाय, सो तप प्रशंसा-योग्य है ॥ अर जिस तपकूं करनेकरि शुभध्यान वा तपमें उत्साह नही घटै, सो तप प्रशंसायोग्य है– आचरण करनेयोग्य है ॥ अब बाह्यतपका गुण कहे हैं ॥ गाथा–

वाहिरतवेण होदि हु । सव्वा सुहसीळता परिच्चत्ता ॥
सल्लिहिदं च सरीरं । ठविदो अप्पा य संवेगे ॥ ४२ ॥

अर्थ— बाह्यतपकरिकै सुखिया रहनेका स्वभावका त्याग होय है अर शरीरकी कृशता होय है अर आत्मा संसारदेहभोगतैं विरक्ततारूप संवेगमें स्थाप्या जाय है। जातैं जाकै देहका सुखमें राग होय है सो आत्मिकसुखका ज्ञानतैं बहिर्मुख हुवा रागभावतैं बंध करे है, देहमें अनुरागीनकै अनशनादितप नही होय है। अर तपका प्रभावतैं शरीर कृश होजाय तब ममता घटिजाय है, वातपित्तकफादिक रोग उपद्रव नही करे हैं, परीषह सहनेमें समर्थ होय है कायरता नही उपजे है अर जाकै पंचपरिवर्तनरूप संसार अर कृतघ्नी देह अर तृष्णाके वधावनेवाले भोग इनिमें विरक्तता उपजे है, ताहिकै बाह्यतप होय है ॥ गाथा—

दंताणि इंदियाणि य। समाधिजोगा य फासिया होंति ॥
अणिगूहिदवीरियदा। जीविदतणहा य वोछिण्णा ४३ ॥

अर्थ— बहुरि बाह्यतपकरिकै पांचूं इंद्रिया विषयनिमें दौडती रुकिजाय है। अर रत्नत्रयसूं तन्मयतारूप जो समाधि ताका संबंध-अंगीकार होय है। अर अपना वीर्य जो पराक्रम सो नही छिपाया जाय है। जातैं जो आपकी शक्ति प्रकट करेगा, सोही बाह्यतपमें उद्यमी होयगा। बहुरि जीवनेमें जो तृष्णा ताका अभाव होय है। जातैं जाकै पर्यायमें अतिलंपटता, ताकै तप नही होय है॥ गाथा—

दुक्खं च भाविदं हो-। दि अपडिवद्धो य देहरससुक्खे ॥
मुसुमूरिया कसाया। विसएसु अणायरो होदि ॥ ४४ ॥

अर्थ— तप करनेकरि क्षुधा तृषादिक दुःख भावित कहिये भोग्या हुवा होय है। जातैं मरणकालमें रोगजनितवेदनादिकनितैं उपज्या दुःखतैं धरमथकी चलायमान नही होय है, पूर्वैं अनेकवार स्ववशी होय तपश्चरणमें क्षुधातृषादिकतैं उपज्या दुःखकूं समभावनितैं जो पुरुष भोगि राख्या होय, सो अंतकालमें कर्मका उदयकरि आया दुःखमें कायरताकूं नही प्राप्त होय, निश्चलज्ञानध्यानमें सावधान होय, तदि समभावके प्रभावतैं बडी निर्जरा होय है। बहुरि देहका सुख अर रस जे इंद्रियविषयनिके सुख यामें प्रतितबद्ध जो आसक्तता, ताहि नही प्राप्त होय है। अर कषाया उन्मर्दित होय हैं नष्ट होय हैं। अर विषयनिमें अनादर होय है। जातैं भोजनका अलाभ होय वा

असुहावणा भोजन मिलै तदि क्रोध उपजे है, अर वहोत लाभ होय वा रसवान भोजनका लाभ होय तदि आपकै अभिमान होय है–जो, हम ऋद्धिवान् हैं, जहां जावे तहां वहोत आदरसहित लाभ होय है। तथा जैसैं मै भिक्षानैं जाऊं हूं तैसैं ये अन्य नही जानै इत्यादिक मायाचार होय है। अर भोजनका लाभ होय वा अतिरसवान् भोजन मिलै तब आसक्तता सो लोभकषाय होय है। अथवा भोजनका अलाभमें क्रोध उपजै, लाभ होय तब मान उपजै औरहू आसक्ततारूप माया लोभ होय है, सो ये च्यारी प्रकार कषाय अनशनादि तप करनेवालेकै नही होय हैं, विषयनिमें अनादर होय है ॥ गाथा—

कदजोगदाददमणं । आहारणिरासदा अगिद्धी य ॥
लाभालाभे समदा । तितिक्खणं बंभचेरस्स ॥ ४५ ॥

अर्थ– बहुरि बाह्यतपकरिकै सर्वत्यागके पाछै होनेयोग्य जो आहारत्यागका जोग जो सल्लेखना सो होय है। बहुरि आहार करनेका जो सुख, ताके त्यागतैं आत्माका दमन जो वशीभूतपना, सो होय है। बहुरि दिनदिनप्रति अनशन रसपरित्यागादिक तप करनेतैं आहारमें निराशता जो वांछारहितपना प्रकट होय है। बहुरि आहारमें गृद्धिता जो लंपटता, ताका अभाव होय है, जातैं भोजनका लंपटीतैं आहार

त्यागादि तप नही होय है। बहुरि आहारका लाभमें हर्ष अर अलाभमें विषादका अभावरूप समता होय है, जातैं जो स्वयमेव मिल्या हुवाहीकूं त्यागै ताकै [illegible]लाके घर नही देवै तामैं मन नही बिगडे है। बहुरि ब्रह्मचर्यव्रतकी रक्षा होय है, जातैं आहारहीका त्यागी ताकै अन्यविषयनिमें अनुराग स्वयमेव छूटै है, वीर्यादिक नष्ट होजाय है, तातैं ब्रह्मचर्यकी रक्षाहू तपहीतैं है ॥ तथा गाथा–

णिद्दाजउ य दढझा- । णदा विमुत्ती य दप्पणिग्घादो ॥
सज्झायजोगणिव्वि- । ग्घदा य सुहदुक्खसमदा य ॥ ४६ ॥

अर्थ– नित्यही भोजन करनेवालेकै वा बहोत भोजन करनेवालेकै वा रसनिसहित भोजन करनेवालेकै वा पवनरहित उपद्रवरहित सुखरूप स्पर्शसहित स्थानमें शयन करनेवालेकै महान् निद्रा उत्पन्न होय है अर निद्राकरिकै परवश होत है, तथा चेतनारहित होय है, प्रमादी होय है, तदि अशुभपरिणामका प्रवाहमें पतन होय है अर रत्नत्रयमें नही प्राप्त होय है। तातैं निद्राका जीतनाही परमकल्याण है अर निद्रा जीतनेतैं ही मुनिधर्म होय है। सो निद्राका जीतना तपश्चरणहीतैं होय है। बहुरि ध्यानमें दृढताहू तपश्चरणविना नही होय है, जातैं जो कदेहू दुःख नही आया सो ध्यानतैं चलिजाय है, तातैं तपश्चरणहीतैं ध्यानमें दृढता होय है।

बहुरि तपश्चरण करनेवालेकैही विशेष त्याग होय है, तातैं तपतैं विमुक्ति होय है। बहुरि असंयमतैं जो दर्प होय है, ताको तपश्चरणकरि निर्घात होय है। बहुरि तपके प्रभावतैं स्वाध्याययोगमें निर्विघ्नता होय है, जातैं तपश्चरण करनेतैं वाचना प्रच्छना अनुप्रेक्षा आम्नाय धर्मोपदेश तथा ध्यानमें विघ्न नही आवे है, जातैं आहारके अर्थि परिभ्रमण करता रहै तो कैसैं स्वाध्याय करै?। बहुरि बहोत भोजन करनेवाला पडिजाय है उठनेकूभी असमर्थ होय है, अर बहोत रसका भोजन करै सो आहारकी गरमीकरि तप्तायमान ऐंठीऊठी पडता गिरता परिभ्रमण करे है। बहुरि अयोग्यवसतिकामैं वसते परके वचन श्रवण करते अर असंयमीनिकरि संभाषण करते कैसैं स्वाध्याय ध्यानकरै? तातैं तपहीतैं स्वाध्याय निर्विघ्न होय है। बहुरि तपश्चरणतैं जो परिणाम समाधि राख्या होय ताकै सुखदुःख आये समता प्रकट होय है॥ तथा गाथा—

आदा कुलं गणो पव-। यणं च सोभाविदं हवदि सव्वं ॥
अलसत्तणं च विजडं। कम्मं च विणिद्धुयं होदि ॥ ४७ ॥

अर्थ— बाह्यतपका प्रभावकरि आपका आत्मा तथा कुल तथा संघ तथा प्रवचन जो धर्म सो शोभा प्रशंसानैं प्राप्त होय है अर आलस्यका त्याग होय है अर संसारका

कारण कर्म निर्मूल होजाय है ॥ गाथा—

वहुगाणं संवेगो। जायदि सोमत्तणं च मिच्छाणं ॥
वग्गो य दीविदो भग-। वदो य अणुपालिदा आणा ॥ ४८ ॥

अर्थ— बाह्यतपका प्रभावकरि बहोत जीवनिकै संसारतैं भय उपजे है। जैसैं एककूं युद्धके अर्थि सज्यो देखि अन्यहू अनेक युद्धमें उद्यमी होय हैं, तैसैं एककूं कर्मका नाश करनेमें उद्यमी देखि अनेक कर्मका नाश करनेमें उद्यमी होय हैं, तथा संसारपतनका भयकूं प्राप्त होय है। बहुरि मिथ्यादृष्टि जननिकैहू सौम्यता उपजे है सन्मुख होजाय हैं। बहुरि मार्ग जो मुक्तीका मार्ग सो प्रकाशकूं प्राप्त होय है वा मुनीका मार्ग दीपे है प्रकट दीखे है। अर भगवानकी आज्ञा पालना होय है। जातैं भगवान् कीया आज्ञा है–जो, तपविना काम निद्रा इंद्रिय विषय कषाय जीत्या नही जाय है, तपहीतैं कामादिक जीतिये हैं, परमनिर्जरा करिये है, तातैं जानैं तप कीया तानैं भगवानकी आज्ञा अंगीकार करी ॥ तथा गाथा—

देहस्स लाघवं णे-। हलूहणं उवसमो तहा परमो ॥
जवणाहारो संतो-। सदा य जहसभवेण गुणा ॥ ४९ ॥

अर्थ— बाह्यतपका प्रभावकरि देहको हलकापणू होजाय है, जातैं देहकी लघु-

नही, वो गृहस्थ है। सो यो अधःकर्मदोष छीयालीस दोषनितैं भिन्न महादोप है ॥ अव इहां कोऊ प्रश्न करै, जो मनवचनकायकरि छकायका जीवनिका घात करि भोजन आप करै अन्यतैं करावै अन्य करतेकूं भला जानै, ताकूं अधःकर्म कह्या, सो मुनि आपका हस्ततैं भोजन करै नही, फेरि ये दोष इहां कैसैं कह्या? ताका उत्तर जो, कह्याविना मंदज्ञानी कैसैं जाणै, जगतमें अन्यमतका भेषी करेभी हैं करावेभी हैं तथा जिनमतमेंभी अनेक भेपी करे हैं कहिकरि करावे हैं, तातैं याकूं महादोप जानै, तादि त्याग करै अर अन्य अधःकर्मसूं आहार लेनेवालेकूं भ्रष्ट जानि धर्ममार्गमें अंगीकार न करै, तातैं भगवान् परमागमसूत्रमें उपदेश कीया है, हम हमारी रुचिविरचित नही कह्या है ॥

अव उद्दिष्टदोष कहे हैं ॥ आजि हमारे गृह कोऊ भेपी गृहस्थी भोजनकूं आवो, सर्वहीके अर्थि द्यूंगा ऐसा उद्देश करिकै कीया जो अन्न, सो उद्देश कहिये ॥ १ ॥ बहुरि आजि हमारे जे कोई पाखंडी भोजनके अर्थि आवेंगे तिनि सर्वनिके अर्थि देऊंगा, ऐसैं विचारिकरि उपजाया भोजन, सो समुद्देश कहिये ॥ २ ॥ तथा आजि हमारे श्रवण तथा कांजिक आहारि तपस्वी रक्तपट परिव्राजकरि भोजनके अर्थि, आवेंगे, तिनि सर्वके अर्थि आहार द्यूंगा, या विचारि कीया

जो अन्न, सो आदेश कहिये ॥ ३ ॥ बहुरि आजि हमारे जे कोऊ साधु निर्ग्रंथ भोजनके अर्थि आवेंगे, तिनि सर्वनिकूं देवेंगे, ऐसें उद्देशकरि कीया जो अन्न सो समादेश कहिये ॥ ४ ॥ ऐसें च्यारि प्रकारका उद्देश्या आहार मुनिकै योग्य नही। जातैं जो भोजन गृहस्थ आपके निमित्त कीया होय अर साधु आजाय तो भोजन देदेवै। अर साधूके निमित्त भोजन करवो योग्य नहीं ॥ १ ॥

बहुरि संयम्यांनैं भोजनके अर्थि आवता देखि आपके निमित्त जे चांवल रांधे थे, तिनिमें दान देनेके अर्थि चांवल और मिलाय दे तथा जल और मिलाय दे, सो अध्यधिदोष है। अथवा जितनें भोजन तयार होय तितनें काल विलंब लगाय दे, सो अध्यधिदोष है ॥ २ ॥

आगे पूतिदोष कहे हैं ॥ जो प्रासुकहू अप्रासुककरि मिल्या होय सो पंचप्रकार पूतिदोष है ॥ रसोई वा चूला नवीन बनाय अर संकल्प करै, जो, जितनें या मकानमें रसोईमें वा चूलेमें भोजन रांधिकरि साधूकूं नही देऊं, तितनें हमहू भोजन नही करै अर अन्यहूकूं नही देवै ऐसेंही उदूखल करिकै तथा कलाई तथा और भोजन तथा सुगंधद्रव्य ये नवीन होय तिनिमें संकल्प करै, जो, पहिली इनिमें संस्कार कीया भोजन साधूके अर्थि देवेंगे, पश्चात् हम औरकूं भोजन करावेंगे वा हम करेंगे। ऐसें सप्रासुक

दोष देखिये हैं ॥ ८ ॥

आगै क्रीततरदोष कहे हैं ॥ जो संयमी भिक्षाके अर्थि आवै तदि आपका सचित्त-द्रव्य वा अचित्तद्रव्य देयकरिकै आहार मोलि ल्याय साधूकूं आहार देवै, सो क्रीततरदोष है ॥ तहां सचित्तद्रव्य तौ गाय भैंसी दासी दासादिक अर अचित्त सोनू रूपो तामो इत्यादिक, वा मंत्र चेटकविद्या परकूं देयकरि भोजन ल्याय मुनिनिकूं आहार-दान देना, सो क्रीततरदोष है ॥ ९ ॥

आगै ऋणदोष कहे हैं, ताकूं प्रामृष्य कहिये हैं ॥ जो मुनि आहारके अर्थि आवै तदि अन्यगृहतैं भोजन उधारा ले आवै, हमारे घरि साधूकूं भोजन देना है, सो एकपात्रप्रमाण भोजन देवो, हम तुमकू एक पात्र भोजन उलटा दे देयेंगे, वा व्याज-सहित सिवाय अधिक दे देवेंगे इत्यादि वृद्धिसहित वा वृद्धिरहित ऋण करि भोजन ल्याय साधूकूं देवै, सो प्रामृष्यदोष है। यातैं दातारकै क्लेश वा खेदादिक होय हैं॥ १० ॥

आगै परावर्तदोष कहे हैं ॥ संयमीनिकूं आहार दान देनेके अर्थि व्रीहि वा कूरिका भात देय अर शालीका भात पाडोसीसूं बदलाय ल्यावै वा मंडकादिक देय शालीका भात पलटि ल्याय, जो संयमीके अर्थि देवै, सो दातारके क्लेशका कारणतैं परावर्त दोष है ॥ ११ ॥

आगे अभिघटदोष कहे हैं ॥ अभिघट दोयप्रकार है, एक देशाभिघट दूजा सर्वाभिघट। जो एकदेशतैं आया जो भोजन, सो देशाभिघट है अर सर्वस्थानतैं आया भोजनादिक, सो सर्वाभिघट है ॥ अब देशाभिघट दोयप्रकार है, एक आछिन्न दूजा अनाछिन्न। तिनिमें आछिन्न तो योग्यकूं कहे हैं, अर अनाछिन्न अयोग्यकूं कहे हैं ॥ तहां जो सरलपंक्तिरूप तिष्ठते जे तीन गृह अथवा सप्तगृह, तिन गृहनितैं आया जो आहार, सो साधूकै लेनेयोग्य है, ताकूं आछिन्न कहे हैं। अर जो सरलपंक्तिविना तिष्ठते जे गृह तिनिका ल्याया भोजन, अनाछिन्न है अयोग्य है। अथवा सप्तगृहतैं अधिक सरलपंक्तिरूपभी होय तो ताका ल्याया भोजन अनाछिन्न है अयोग्य है ॥ बहुरि सर्वाभिघट च्यारि प्रकार है, स्वग्राम परग्राम स्वदेश परदेशतैं आया ॥ तहां जो आप तिष्ठै सो स्वग्राम है, तातैं अन्य सो परग्राम है ॥ तहां जो एक पाडातैं दूसरा पाडामैं ल्याया भोजन तथा अन्यग्रामतैं अन्यग्राममैं ल्याया तथा आपका देशतैं आपका ग्राममें ल्याया वा परदेशतैं आपका नगरमें ग्रामदेशादिकमें आया भोजन, सो सर्वाभिघट दोष है। सो सर्वही मुनीनकै त्यागनेयोग्य है। जातैं साधु भोजन करता होय जिस कालमें कोई लाहनां भाजी वीदडी अपने ग्रामतैं वा अन्यग्रामतैं वा अपने देशतैं वा परदेशतैं ल्याया होय वा आपके सेवक वा पुत्रादिक वा मित्र मोल देय

अथवा स्नेहतैं मोदकादिक भोजन ल्याया होय, सो साधूकै योग्य नही, बहोत ईर्यापथदोष देखिये है ॥ १२ ॥

आगै उद्भिन्नदोष कहे हैं ॥ जो औषध तथा घृत वा शर्करा गुड खांड इत्यादिक वस्तूकै छांदा मांटीका लगि रह्या होय वा चिपडी लगि रही होय वा कोई चिह्नकरि राख्या होय वा नामके अक्षर वा प्रतिबंधकी महोर करि राखी होय ताकूं उघाडिकरि भोजन साधूकूं देवै, सो उद्भिन्नदोषसहित है। जातैं पिपीलिकादिकका प्रवेश होना इत्यादिक दोष आवे हैं ॥ १३ ॥

आगै मालारोहणदोष कहे हैं ॥ जो पूवा लाडू मिश्री घृतादिक वस्तु ऊपरला मकानमें गृहका ऊर्ध्वभागमें धऱ्या होय ताकूं पैडी चढिकरि वा काष्ठमयी नसीरणी इत्यादिकपरि चढिकरि ल्याय साधूकूं देवै, सो मालारोहणदोष है ॥ १४ ॥

आगै आछेद्यदोषकूं कहे हैं ॥ संयमीनिकूं देखिकरि अर राजा वा चौरादिक या कही है, जो, या नगरमें आपका गृहमें आया संयमीकूं भोजन नही करावेगा, ताका द्रव्यकूं हरण करूंगा अथवा ग्रामके वारे निकासि धूंगा, याप्रकार आपके कुटुंबकेनिकूं राजाका भय वा राजके मंत्री वा चौरादिकनिका भय दिखाय अर जो साधूकूं भोजन दान देवै, सो कुटुंबके भयका कारणपणातैं आछेद्यदोषसहित है ॥ १५

आगै अनिसृष्टदोष कहे हैं ॥ इहां अनिसृष्टके दोय भेद, एक ईश्वर एक अनीश्वर। तहां जो घरका मालिक स्वामी होय परंतु रखवालाकरि सहित होय, सो सारक्ष ईश्वर कहिये। जैसैं कोऊ दानकूं देवाकी इच्छा करै, तथापि देवेकूं समर्थ नही होय सेवक मंत्री अमात्य पुरोहितादिक देने नही देवै मनै करै, ताका दीया भोजन ईश्वर नामा अनिसृष्ट दोष है॥ वहुरि एक गृहका स्वामी नही होय अन्य सेवकादिक व्यवहारी परका भोजन देवै, तिसका दीया भोजन सोहू अनीश्वर नामा अनिसृष्ट दोष है॥ १६॥ ऐसे उद्गमदोष सोलहप्रकार गृहस्थके आश्रय हैं, सो मुनीके मार्गको जाननेवाला गृहस्थ ऐसे दोष लगाय भोजन नही देवै अर मुनि जानि लेवै तो, भोजनका अंतराय करि पाछे जाय॥

आगै पात्र जो साधु, ताके आश्रय सोलह उत्पादनदोष हैं, तिनिकूं कहे हैं॥ १ धात्रीदोष, २ दूत, ३ विषग्वृति, ४ निमित्त, ५ इच्छाविभाषण, ६ पूर्वस्तुति ७ पश्चात्स्तुति, ८ क्रोध, ९ मान, १० माया, ११ लोभ, १२ वश्यकर्म, १३ स्वगुणस्तवन, १४ विद्योत्पादन, १५ मंत्रोपजीवन, १६ चूर्णोपजीवन॥

अब धात्रीदोष कहे हैं॥ जगतमें बालककूं धारण पोषण करनेवाली धाय पंचप्रकार है॥ बालककै स्नान करायवेमें वा धोवनेपूछनेमें जाका अधिकार होय, सो मार्जन-

धात्री है। बहुरि बालककूं तिलक अंजन आभरण वस्त्रकरि मंडित करनेका जाका अधिकार होय, सो मंडनधात्री है। बहुरि बालककूं ख्यालखिलनेनिकरि रमावनेमें क्रीडा करावनेमें जाका अधिकार होय, सो क्रीडनधात्री है। बहुरि बालककूं दुग्ध पावनेका वा स्तनपान करावनेमें जाका अधिकार होय, सो क्षीरधात्री है। बहुरि बालककूं निद्रा लिवायवेका जाका अधिकार होय, सो स्वपनधात्री है॥ जो साधूके निकट बालकनिसहित गृहस्थ आवै, तदि साधु ऐसैं कहे— जो, बालककूं ऐसैं स्नान करावो, ताकरि सुखी होय नीरोग होय इत्यादिक बालकके स्नानके अर्थि गृहस्थनिकूं उपदेश करै, तदि गृहस्थ रागी होय दानके अर्थि प्रवर्तै, जो, वै भोजन साधु ग्रहण करै, ताकै स्नानधात्री नामा उत्पादनदोष है॥ तथा बालककूं लेय गृहस्थ आवै तदि बालकके आभरण केश वस्त्र आप संवारने लगि जाय बालककै मंडनका उपदेश करै 'ऐसैं बालककूं भूषित करो' तदि गृहस्थ आपके बालकनिमें साधूनिका अनुराग दयालता जानि महिमा करै अर भक्त हुवो दानमें प्रवर्तै, तिसका दीया भोजन ग्रहण करता जो साधु, ताकै मंडनधात्री नामा उत्पादन दोष है॥ बहुरि बालक आवै तिनतैं आप क्रीडाकी वार्ता करनेलगि जाय वा क्रीडा करावै वा क्रीडानिमित्त उपदेश करे, तदि गृहस्थ अपने बालकनिमें साधूका वडा अनुग्रह जानि भोजन देनेमें सावधान होय, सो भोजन

ग्रहण करता साधूकैं क्रीडनधात्री नामा उत्पादन दोष है ॥ बहुरि बालककूं ऐसैं दुग्ध पाये नीरोग होय बलवान् होय या विधानतैं याकी माताकै बहोत दुग्ध होय इत्यादिक उपदेश देय भोजन करै, ताकै क्षीरधात्री नामा उत्पादन दोष आवै है॥ बहुरि बालककूं आप शयन करावै वा शयन करावनेका उपदेशकरि कीया जो भोजन, सो स्वपन-धात्री नामा उत्पादन दोष है ॥ इहां कोऊ कहै– मुनि ऐसी क्रिया कैसी करै? सो या आशंका नही करनी। जगतमें भेषधारेही कहा होय है, बहोत रागी द्वेषी देखिये हैं, अंतरंगका राग घटना कठिन है। अर जो यो दोष नही प्रकट करै, तौ जाननेमें नही आवै, जगतके लोक धात्रीपणाका उपदेशनैं दयालपणा धर्मात्मापणाही समझा करै। तातैं परमागममें प्रकटकरि दिखाया है ॥ ऐसैं धात्रीदोषतैं स्वाध्यायका विनाश मार्गदूषणादिक दोष देखिये हैं ॥ १ ॥

आगै दूत नामा उत्पादनदोष कहे हैं॥ कोऊ साधु आपके ग्रामतैं अन्यग्राममें प्राप्त होय तथा स्वदेशतैं परदेशमें गमन करता होय तदि गमन करते साधूकूं कोऊ गृहस्थ कहै– हे भट्टारक, हमारा संदेसा ग्रहण करिकै जावो। सो साधु गृहस्थनिके समाचार लेय उनका संबंधी बेटी व्याई बहन सगा हितू मित्र तिनकूं समाचार कहे, सो तदि गृहस्थ आपके संबंधीके समाचार श्रवण करि, जो दानमें प्रवर्तै, ताका दीया भोजन

ग्रहण करे, सो दूतदोष है ॥ २ ॥

आगै निमित्तदोष कहे हैं॥ तिल, मुस इत्यादिक व्यंजन देखि शुभ अशुभ जानिये सो व्यंजन नामा निमित्त है॥ तथा मस्तक ग्रीवा हस्त पादादिक अंगनिकूं देखि पुरुषका शुभ अशुभकूं जाने, सो अंग नामा निमित्त है॥ तथा मनुष्य तिर्यंच वा अचेतनके शब्द अक्षर अनक्षरात्मक जानि त्रिकालसंबंधी शुभ अशुभकूं जाने, सो स्वर नामा निमित्तज्ञान है॥ तथा भूमीका रूक्षपना वा सचिक्कणपना देखि क्षेत्रमें त्रिकालसंबंधी शुभ अशुभ जीति हारी इत्यादिककूं जाने, सो भौम नामा निमित्तज्ञान है ॥ बहुरि वस्त्र शस्त्र आसन छत्रादिक कोऊ कंटक शस्त्रमूखेनिकरि छिद्या होय ताकरि त्रिकालसंबंधी शुभ अशुभकूं जाने, सो छिन्न नामा निमित्त है ॥ बहुरि आकाशमें ग्रहांका उदय अस्तादिक तथा सूत्रादिक तिनकूं देखि त्रिकालसंबंधी शुभाशुभकूं जाने, सो अंतरिक्ष नामा निमित्तज्ञान है॥ तथा शरीरमें स्वस्तिक चमर कलश दर्पणादिक देखि त्रिकालसंबंधी शुभाशुभकूं जाने, सो लक्षण नामा निमित्तज्ञान है ॥ तथा स्वप्न शुभ अशुभ देखि शुभाशुभकूं जाने, सो स्वप्न नामा निमित्तज्ञान है ॥ तथा औरहू भूमि-गर्जन दिग्दाहादिक तिनकरि जानना, सोहू निमित्तज्ञान है ॥ सो अष्टप्रकारके निमित्तज्ञानकरि लोकनिकूं चमत्कारादिक दिखाय जो भोजन उपजावे, सो निमित्त

नामा उत्पादनदोष है ॥ ३ ॥

अब आजीवदोष कहे हैं ॥ माताकी संतति सो जाति है, पिताकी संतति सो कुल है, सो लोकनिमैं आपकी जातिकी शुद्धता वा कुलकी शुद्धता तथा आपकी शिल्पकरि हस्तकी कला चातुर्यता तथा तपश्चरणकी आधिक्यता तथा ऐश्वर्यादिक प्रकट करि अर लोकनितैं उपजाया आहार सो आजीवनदोष है ॥ ४ ॥

अब वनीपकदोष कहे हैं ॥ कोऊ गृहस्थ साधुनिकूं प्रश्न करै जो हे भगवन् श्वाननिकूं तथा कृपणनिकूं तथा कुष्टव्याधि रोगादिककरि पीडित तिनकूं तथा मध्यान्हकालमें कोऊ आपके घरि भोजनकूं आवे ऐसे अतिथीनिकूं तथा भिक्षुकनिकूं तथा ब्राह्मणानिकूं तथा मांसादिक भक्षण करनेवालेनिकूं तथा पाषंडीनिकूं तथा दीक्षाकरि आजीविका करनेवाले-निकूं तथा श्रवणनिकूं कांजिकाहारीनिकूं तथा काकादिकपक्षीनिकूं जो दानादिक दीजिये, ताकरि पुण्य होय है वा नहीं होय सो कहो, ऐसैं दातार पूछै तदि कहै, पुण्य होय है ऐसैं दातारके अनकूल वचन कहे सो वनीपक नामा उत्पादनदोष है ॥ ५ ॥

अब चिकित्सादोष कहे हैं ॥ सो चिकित्सा अष्टप्रकार है ॥ तिनमें जो महिना दो महिना एकवर्षादिकके बालकके इलाज करनेका शास्त्रका जानना, सो बालवैद्य है ॥ १ ॥ ज्वरादिक रोगका निराकरण तथा कंठका उदरका शोधन करना, सो

तनुचिकित्सा है ॥ २ ॥ बहुरि शरीरपरि वृद्धअवस्थातैं होती जो ज्वर लीवली तथा श्वेतकेश ताका निराकरण जातैं होय, सो रसायन है ॥ ३ ॥ बहुरि जो स्थावरजंगमतैं उपज्या विष, ताकी चिकित्सा जो इलाज, सो विषचिकित्सा है ॥ ४ ॥ बहुरि भूतपिशाचादिकनिकी चिकित्सा, सो भूतापनयन है ॥ ५ ॥ बहुरि दुष्टव्रणादिकनिका शोधनेका निमित्त जो क्षारद्रव्य, ताका क्षारतंत्र है ॥ ६ ॥ बहुरि नेत्रका पटल उघाडनेकूं सलाईकरि इलाज करनेकी विद्या, सो शालाकिक है ॥ ७ ॥ तथा तोमरादिक आयुधनितैं उपजी शरीरशल्य तथा हाडनिका खंडनिकी शल्य सो भूमिशल्य, इनि शल्यनिकी दूरि करनेका इलाज, सो शल्य कहे हैं ॥ ८ ॥ ऐसैं अष्टप्रकारका चिकित्साशास्त्रकरि लोकनिका उपकार करि, आहार ग्रहण करै, सो चिकित्सोत्पादनदोष है ॥ ६ ॥

अब क्रोध-मान-माया-लोभजनित च्यारि दोष कहे हैं ॥ जो क्रोधकरि भिक्षाकूं उपजावै, सो क्रोधोत्पादनदोष है ॥ ७ ॥ बहुरि जो गर्व अभिमान करिकै भिक्षा उत्पन्न करै, सो मानोत्पादनदोष है ॥ ८ ॥ बहुरि मायाचार जो कुटिलभाव ताहिकरि जो भिक्षा उत्पन्न करै, सो मायोत्पादनदोष है ॥ ९ ॥ बहुरि लोभ दिखाय करिकै भिक्षा उत्पन्न करै, सो लोभोत्पादनदोष है ॥ १० ॥

अब पूर्वस्तुतिदोष कहे हैं ॥ जो दानका देनेवाला पुरुषकी पहिली कीर्ति करै कैसी सो कहे हैं– तुम दानीनिमें प्रधान हो, राजा यशोधरतुल्य हो, तुमारी कीर्ति लोकमें विख्यात है, इत्यादिक दानके ग्रहणपहिली दातारका स्तवन करे, तथा ऐसें कहै– जो, तुम तो पूर्वे महादानी थे, अब कोन कारणतैं भूलि गये? इत्यादि पूर्वस्तुति दोष है ॥ ११ ॥

बहुरि जो दानग्रहण कीये पश्चात् दातारका स्तवन करै, सो पश्चात्स्तुतिदोष है ॥१२॥

बहुरि दातारकूं कोऊ विद्या देनेकी आशा लगाय, जो भोजन करै, सो विद्योत्पादनदोष है ॥ १३ ॥

बहुरि जो पढनेमात्रहीतैं मंत्र सिद्ध होय ऐसा यंत्र देनेकी दातारकै आशा लगाय जो दानग्रहण करै, सो मंत्रोत्पादनदोष है ॥ १४ ॥

बहुरि नेत्रनिकी निर्मलताका कारण जो अंजन तथा भूषण जो तिलक पत्र वल्ल्यादिकके निमित्त चूर्ण वा शरीरके शोभाका निमित्त जो चूर्ण ताका उपदेश देय भोजन उत्पन्न करै, सो चूर्णोत्पादनदोष है ॥ १५ ॥

बहुरि जो वश नहीं ताका वशीकरण तथा जिनके परिणाममें अपूठपनो हो रह्यो होय, तिनिका मिलाप कराय देना, सो मूलकर्मदोष है ॥ १६ ॥

ये सोलह उत्पादनदोष साधूके आश्रय हैं। इनि दोषनितैं भोजन उपजाय भोजन करै, ताका साधूपना बिगाडिजाय है॥ आगै दश एषणा नामा भोजनके दोष तिनिकूं कहे हैं॥ १ शंकित, २ म्राक्षित, ३ निक्षिप्त, ४ पिहित, ५ व्यवहरण, ६ दायक, ७ उन्मिश्र, ८ अपरिणत, ९ लिप्त, १० परित्यजन. तिनिमैं शंकितदोष कहे हैं॥ भात रोटी दाली खिचडी इत्याकनिकूं अशन कहिये। बहुरि दुग्ध दहि सरबत इत्यादिकनिकूं पान कहिये। बहुरि लड्डूये घेवर इत्यादिकनिकूं खाद्य कहिये। बहुरि इलायची लवंग सुपारी इत्यादिकानिकूं स्वाद्य कहिये। सो ये अशन पान खाद्य स्वाद्य च्यार प्रकारके आहार तिनिमें कोई अवसरमैं कोऊ आहारमें ऐसी शंका उपजै जो, यो आहार भगवानके आगममें साधूकै लेनेयोग्य है अथवा नहीं लेनेयोग्य है? तथा यो आहार अधःकर्मकरि उपज्यो है वा अधःकर्मतैं नहीं उपज्यो है? ऐसी रीति जा आहारमें शंका उपजी आवे अर जो शंकासहित आहारकूं भोजन करै, ताकै शंकितदोष आवे है॥ १॥

बहुरि तैल घृतादिककरि लिप्त जो हस्त वा कलाई वा अन्य पात्र ताकरि दीया जो भोजन, सो म्राक्षितदोष है। जातैं संमूर्छन सूक्ष्म जीव मांखी मांछर चीकणा पात्रकै वा हाथकै लगिजाय, तो जीवता रहे नहीं, तातैं त्याज्य है॥ २॥ बहुरि सचित्त पृथ्वी

जल अग्नि वनस्पति तथा बीज तथा त्रसजीवके उपरि धऱ्या हुवा आहार निक्षिप्तदोष-सहित है ॥ ३ ॥ बहुरि जो भोजन सचित्तकरि ढक्या होय अथवा भाऱ्या जो पाषाण सिला काष्ठ धातुमय मृत्तिकाका पात्र अचित्तहूतैं ढक्या होय, ताकूं उठाय जो भोजन देवै, सो पिहित नामा दोषसहित है ॥ ४ ॥ बहुरि भोजनका दातार अपना वस्त्र जमीपरि लटकि गया होय, ताकूं यत्नाचाररहित खैंच ले अथवा भोजनका पात्र वा चोकी पाटा इत्यादिककूं जमीपरि रगडि खैंच ले घीस ले यत्नाचाररहित ईर्यापथादिकविना जो ग्रहण करै अर भोजन पान इत्यादिक देवै, सो भोजन व्यवहरणदोषसहित है ॥ ५ ॥

अब दायकदोष कहे हैं ॥ इनिका दीया भोजन साधूकै योग्य नही जो— बालककूं सुवाणती होय, तथा मद्यपानलंपट होय, रोगव्याधिकरि व्याप्त होय, मृतकमनुष्यकूं स्मशानमें क्षेपिकरि आया होय अथवा मृतकका सूतकसहित होय, तथा जो नपुंसक होय तथा पिशाचका उपद्रवसहित होय, अर वस्त्ररहित नग्न होय, तथा मलमूत्र मोचन करि आया होय, तथा मूर्छाकूं प्राप्त भया होय, तथा वमन करिकै आया होय, वा रुधिरसहित होय, तथा वेश्या होय वा दासी होय, तथा आर्यिका होय, तथा रक्तपटिकादिक पंच श्रमणिका होय, तथा अंगके मर्दनादिक करती होय, तथा अतिबालक होय वा अतिवृद्ध होय, तथा ग्रास लेती वा कुछ भक्षण करती होय, तथा गर्भवती होय

जाकै पांच महीनाका गर्भका भार होय, तथा चक्षूरहित आंधी होय, तथा भींति वा पडदाके मांहि बैठी होय, तथा उच्चस्थान बैठी होय, तथा नीचा स्थानमें बैठी होय, ऐसा पुरुष होहू वा स्त्री होहू तथा चूल्हा इत्यादिकनिमें सिंधूषण देती होय, तथा मुखका पवनकरि तथा बीजणेकरि अग्निकाष्ठादिकनिका प्रज्वालन वा उद्योतन करता होय, तथा काष्ठादिकनिकूं उत्कर्षण करता होय, तथा भस्मकरि अग्नीकूं ढांकता होय, तथा अग्नीकूं जलादिककरि बुझावता होय तथा औरभी अग्नीके अनेक कार्य करता होय, तथा गोवर मांटी इत्यादिकनिकरि भूमी वा भींतीकूं लीपता होय वा कोऊ स्त्री बालककूं स्तनपान करावती वा बालककूं जमीमैं क्षेपि मेलि आई होय, इत्यादिक औरहू क्रिया करता स्त्री वा पुरुष जो भोजन देवै, तादि वह भोजन दायकदोषसहित है, साधुकै योग्य नही है ॥ ६ ॥

अब उन्मिश्रदोष कहे हैं ॥ जो भोजन पृथ्वी जल हरितकाय पत्र पुष्प फल बीज इत्यादिककरि मिल्या होय, सो उन्मिश्रदोषसहित है ॥ ७ ॥ अब अपरिणत दोष कहे हैं ॥ तिलनिके प्रक्षालनिका जल तथा चावल धोवनेका जल तथा जो जल तप्त होयकरि शीत हुवा होय, तथा चणाके धोवनेका जल तथा तुष धोवनेका जल तथा हरडेका चूर्ण जामैं मिल्या ऐसा जो आपका वर्ण रस गंधकूं नही पलट्या, सो

अपरिणतदोषसहित है ॥ अर जो वर्ण रस गंध इत्यादिक जामैं पलटी गया होय, सो परिणत है, साधूकै लेनेयोग्य है ॥ ८ ॥ अब लिप्तदोष कहे हैं ॥ गेरू तथा हरताल खडी पांडु मेण शिल मांटी तथा कच्चा चून वा चावल वा पत्रशाक अप्रासुक कच्चा जल इनिकरिकै लिप्त जो हस्त वा भजन ताकरि दीया जो भोजन, सो लिप्तदोष-सहित है ॥ ९ ॥ बहुरि परित्यजनदोष कहे हैं ॥ जो हस्तका अथिरपणाकरि तथा छाछि दुग्ध घृतादिकनिकरि झरता अथवा छिद्रसहित हस्तनिकरि जो भोजन बहोत तो गिरजाय अर अल्प ग्रहणमें आवै, ऐसा भोजन त्यक्तदोषसहित है ॥ १० ॥ ऐसे दश भोजनके दोष कहे, ते सावद्य जो हिंसा ताका कारणपणातैं त्यजनेयोग्य हैं ॥

अब संयोजनादोष कहे हैं ॥ शीतलभोजनमें उष्णजल मिलावै तथा उष्णभोजनमें शीतजल मिलावै वा शीतउष्ण जलका परस्पर मिलावना तथा अन्यहू परस्परविरुद्ध वस्तु मिलावै, सो संयोजना नामा दोष है ॥ १ ॥ अब अप्रमाण दोष कहे हैं ॥ साधूकूं आधा उदर तो भोजन तथा व्यंजनकरि पूर्ण करना अर चतुर्थभाग जलकरि पूर्ण करना अर चतुर्थभाग उदरका रीता राखना, सो प्रमाणिक आहार है। अर यातैं जो अधिक भोजन करै, ताकै अप्रमाण नामा दोष है। प्रमाणतैं अधिक आहार करै, ताकै स्वाध्याय नही प्रवर्तत है तथा षट् आवश्यकक्रिया करनेकूं नही

समर्थ होय है, बहुत भोजन करनेतैं ज्वरादिक संताप करे है, निद्रा तथा आलस्यादिक दोष होय है ॥ २ ॥ अब अंगारदोष कहे हैं ॥ अति आसक्ततातैं आहारमें अतिलंपटी होय भोजन करै, ताकै अंगारदोष होय है ॥ ३ ॥ अब धूम दोष कहे हैं ॥ जो भोजनकूं निंदतो मन विगाडतो ग्लानि करतो जो भोजन करै, जो, यो भोजन सुंदर नहीं अनिष्ट है इत्यादिक परिणाममें क्लेश करतो भोजन करै, ताकै धूम नामा दोष होय है ॥४॥ ऐसैं छीयालीस दोष कहे, तिनिकूं टालि दिगंबर साधु भोजन करे हैं ॥

आगै भगवानके परमागममें षट् कारणकरि भोजन करना योग्य कह्या है अर षट्कारणकरि भोजनका त्याग करना कह्या है ॥ सो अब भोजन करनेके षट् कारण कहे हैं– १ क्षुधावेदनाका उपशमके अर्थि, २ योगीश्वरनिकी वैयावृत्यके अर्थि, ३ षट् आवश्यककी पूर्णताके अर्थि, ४ संयमकी स्थितीके अर्थि, ५ प्राणनिकी रक्षाके अर्थि, ६ दशधर्मकी चिंताके अर्थि ॥ मै तीव्रक्षुधावेदनाकरि पीडित हूं वेदनाकरि चारित्र पालनेकूं असमर्थ हूं या वेदनातैं चारित्र विगडि जायगा, तातैं भोजन करना उचित है, ऐसैं विचारि जो भोजन करनेमें प्रवृत्ति करै, सो प्रथमकारण है ॥ १ ॥ बहुरि इस आहारविना योगीनिका वैयावृत्य करनेकूं असमर्थ हैं, यातैं वैयावृत्यकी सिध्दीवास्तै भोजन करे। जातैं संघमें कोऊ मुनि रोगकरि पीडित होय वा संन्याससमरण करता

होय, तो ताकी रात्रिदिन सेवा उपदेश उठावना बैठावना सुवावना इत्यादि क्रिया आहार करेविना बने नही, तातैं वैयावृत्त्यके निमित्त भोजन करना, सो दूसरा कारण है ॥ २ ॥ तथा आहारविना हम षडावश्यकाक्रिया करनेकूं समर्थ नही, तातैं षडावश्यक करनेके अर्थि भोजन करना, सो तीसरा कारण है ॥ ३ ॥ बहुरि हम क्षुधावेदनाकरि षट्कायके जीवनिकी रक्षा करनेकूं असमर्थ हैं, तातैं संयमकी सिध्दीके अर्थि भोजन करना, सो चौथा कारण है ॥ ४ ॥ बहुरि आहारविना दशलक्षणधर्म आचरनेमैं असमर्थ हूं तातैं धर्मचिंतवनके अर्थि भोजन करना पांचमा कारण है ॥ ५ ॥ बहुरि आहारविना दशप्राण रहै नही, मरणही होय, तातैं प्राणरक्षाके अर्थि भोजन करना, सो छट्टा कारण है ॥ ६ ॥ जो ऐसे छ प्रकारके कारणनिकरि भोजन करता साधूके कर्मबंध नही होय है ॥ पुरातन बांधे कर्मकी निर्जराही होय है ॥

अब भोजन त्यागनेके षट्कारण कहे हैं ॥ शरीरमें ऐसी व्याधि उपजि आवै, जाथकी संयमका नाश होजाय, तदि रोगका नाशके अर्थि क्षुधाकी वेदना होतीभी भोजनका त्याग करना ॥ १ ॥ तथा दुष्ट मनुष्य तिर्यंच देव अचेतनकरि कीया जो प्राणनाश करनेवाला उपसर्ग होता भोजनका त्याग करना ॥ २ ॥ बहुरि इंद्रियांकी तथा कामकी उत्कटताके रोकनेकूं तथा ब्रह्मचर्यकी रक्षाके निमित्त भोजनका त्याग

करना ॥ ३ ॥ बहुरि जो आजि आहार ग्रहण करनेकूं जाऊंगा तौ जीवनिकी हिंसा होयगी मार्गमें जीवनिका संचार बहुत है, तातैं जीवदयाके निमित्त भोजनका त्याग करना ॥ ४ ॥ बहुरि बारह प्रकारका तपके निमित्त भोजनका त्याग करना ॥५॥ बहुरि जब साधूकै रोग जरादिककरिकै जर्जरपणो होजाय तदि संन्यासके सिद्धीके अर्थि भोजनका त्याग करना ॥ ६ ॥ ऐसैं छह प्रयोजनकरि भोजनका त्याग करै, इनि छह प्रयोजनविना जैनका यति भोजनकूं नही त्यागत है ॥

बहुरि इतने प्रयोजनवास्ते भोजन नही करै– शरीरमें बल होनेके वास्ते भोजन नही करै। जो मेरा शरीरमें युद्धादिकमें समर्थ, ऐसा बल होहू या विचारि आहार नही करै। तथा मेरी आयु वृद्धीकूं प्राप्त होहू या विचारि आयुकी वृद्धिवास्ते भोजन नही करै । तथा इस भोजनका स्वाद बहोत सुंदर है ऐसैं स्वादके अर्थि भोजन नही करै। तथा शरीरकी पुष्टताके अर्थि तथा शरीरके दीप्तीके अर्थि भोजन नही करै ॥ बहुरि ज्ञानाभ्यासके अर्थि तथा संयमके अर्थि तथा ध्यानके अर्थि भोजन करना साधुनिकूं श्रेष्ठ है ॥ बहुरि मनवचनकायके कृत कारित अनुमोदनाकरि जो भोजन शुद्ध होय तथा उद्गम उत्पाद एषणाके बीयांलीस भेदनिरूप दोष तिनकरि रहित तथा संयोजनारहित तथा प्रमाणसहित अंगार तथा धूमदोष-

रहित भोजन करै ॥ तथा नवधा भक्तिकरिकै दातारका सप्तगुणसहित होय देवै, सो भोजन करै ॥

अब नवधा भक्ति कहे हैं ॥ १ प्रतिग्रह कहिये " तिष्ठ तिष्ठ तिष्ठ " ऐसैं तीनवार कहि खडा राखै ॥ २ उच्चस्थान देवै ॥ ३ चरणनिका प्रमाणीक प्रासुकजलकरि धोवना ॥ तथा ४ पूजा करना ॥ ५ नमस्कार करना ॥ ६ मनःशुद्धि ॥ ७ वचनशुद्धि ॥ ८ कायशुद्धि ॥ ९ भोजनशुद्धि ॥ ऐसैं नवधा भक्ति कही ॥ अब सप्त गुण दातारके कहे हैं ॥ १ दानमें जाकै धर्मका श्रद्धान होय । २ साधूके रत्नत्रयादिक गुण, तिनिमें अनुरागरूप भक्ति होय । ३ दान देनेमें आनंद होय । ४ दानकी शुद्धता अशुद्धताका ज्ञान होय । ५ दान देनेतैं या लोक परलोकसंबंधी भोगाकी अभिलाष जाकै नही होय । ६ क्षमावान् होय । ७ शक्तियुक्त होय । ऐसे ये सप्तगुण दातारके कहे, सो सप्तगुणसहित होय दान देना कल्याणकारी है ॥ बहुरि चतुर्दश मलरहित भोजन अंगीकार करै । सो चौदह मलके नाम कहे हैं ॥ १ नख, २ केश कहिये रोम, ३ जंतु कहिये बेइंद्रियादिक मृतकजीवका शरीर, ४ अस्थि कहिये हाड, ५ कण कहिये जव गोहू इत्यादिकनिका वारला अवयव, ६ कुंड कहिये शल्यादिकनिका अभ्यंतर सूक्ष्म

अवयव, ७ पूति कहिये राधि, ८ चर्म कहिये त्वचा, ९ रुधिर, १० मांस ११ बीज कहिये उगनेके योग्य जव गोहू, १२ फल कहिये आम्र नालेर इत्यादिक, १३ कंद कहिये वेलीके नीचै उगनेका कारण, १४ मूल कहिये नीचै जड, ये चौदह मल हैं ॥ तिनिमें कितने महादोष हैं, कितने अल्पदोष हैं ॥ तिनिमें रुधिर, मांस, हाड, चाम, राधि ये पांच महादोष हैं । तिनितैं सर्व आहारका त्यागहू करना अर प्रायश्चित्तहू ग्रहण करना ॥ बहुरि बेइंद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रियके मृतकशरीर बाल इन दोय मलका आहारमें संयोग होय तौ आहारका त्याग करना ॥ बहुरि नख आहारमें आवे तौ भोजनका त्यागहू करना अर किंचित्प्रायश्चित्तहू करना ॥ बहुरि कण, कुंड, बीज, कंद, फल, मूल ये छ प्रकारके अल्प मल भोजनमैंतैं टालनेयोग्य हैं अर भोजनथकी निकासनेकूं समर्थ नही होय–भोजनतैं न्यारे नही निकलै तौ भोजनका त्याग करै ॥ बहुरि सिद्धभक्ति कीया पाछे जो साधूका शरीरतैं तथा आहार देनेवालेनिके शरीरतैं रुधिर वा राधि झरै–गिरै तो भोजनका त्याग करै ॥ बहुरि जो भोजन एकेंद्रिय जीवनकरि रहित होय, सो प्रासुक है द्रव्यथकी शुद्ध है ॥ बहुरि जो भोजन द्वींद्रियादिक वा त्रींद्रियादिक जीवनिका निर्जीव कलेवरसहित होय, सो दूरथकीही त्यागनेयोग्य है, जातैं वह द्रव्यही अशुद्ध है ॥

बहुरि प्रासुक शुद्धहू भोजन साधूके निमित्त कीया होय, सो द्रव्यतैंही अशुध्द है ग्रहण करनेयोग्य नही ॥

अब कोऊ कहै– जो, पर जो गृहस्थ, तिनिके अर्थि कीया आहार साधूके शुध्द कैसा? सो आगममें दृष्टांत है, सो कहे हैं– जैसैं मत्स्याके निमित्त कीया जो मदका जल, ताकरिके मत्स्य जे मछ, तेही मदकूं प्राप्त होय हैं, मींडके मदकूं प्राप्त नही होय । जातैं जा जलविषैं मछ, ता जलमेंही मींडके वसे हैं, तथापि मींडके मदकूं प्राप्त नही होय । तैसैं गृहस्थ आपके निमित्त कीया भोजन, तिसकरिकै साधु दोषकूं प्राप्त नहीं होय है अर गृहस्थ आपके निमित्त करेही है। गृहस्थ आहारदान देय साधूनिके गुणनिमें अत्यंत भक्तियुक्त होय स्वर्गगामी होय है तथा संयमभावमें अनुरागका प्रभावकरि आप संयमकूं प्राप्त होय है अर पाछे कर्म काटि निर्वाणकूं प्राप्त होय है ॥ अर मिथ्यादृष्टिहू साधूकूं दान देनेके प्रभावकरि भोगभूमीकूं प्राप्त होय है ॥ बहुरि द्रव्य जो आहार ताकूं जाणिकरि त्यागग्रहणमें प्रवर्तन तथा क्षेत्र जलसहित है वा जलादिरहित है तथा काल शीत उष्ण वर्षादिकरूप जाणिकरि तथा भाव जो आपका परिणाममें श्रध्दा तथा उत्साह तथा आपका शरीरका बल तथा आपका वीर्य जो संहनन जानिकरिकै अर जैसैं आचारांगमें उपदेश कीया तैसैं अशनसमिति पालन

करै। औरप्रकार करै तौ वात पित्त कफादिकनिकी उत्पत्ति होजाय तब संयम पालनेकूं असमर्थ होजाय, तातैं "जैसैं वात पित्त कफादिक रोग नही वधै तैसैं" प्रमाणिक आहारमें प्रवृत्ति करना योग्य है ॥

बहुरि तीन घडी दिन चढि जाय तीहपाछे तीन घडी दिन वाकी रहै तीहपहली साधुनिका भोजनका काल है ॥ तिनमें तीन मुहूर्तमें भिक्षाका काल सो जघन्य आचरण है। मध्यम दोय मूहूर्तका है। एक मुहूर्तका काल उत्कृष्ट आचरण है ॥ मध्याह्न कालमें दोय घडी वाकी रहै तदि यत्नतैं स्वाध्यायकूं समेटिकरिकै अर देववंदना करिकै अर भिक्षाकी वेला जानिकरिकै अर कमंडल पींछीका ग्रहण करिकै अर कायकी स्थितीके अर्थि आपके आश्रयतैं धीरेधीरे निकलै अर कोमल पींछिकातैं सोध्या है अंगका आगला पाछला भाग जिनिनैं ऐसे साधु मार्गमें नही अति उतावल गमन करते अर अतिविलंबतैं गमन नही करते अर मार्गमें वचनालापरहित वन नगर ग्राम स्त्री पुरुष आभरण वस्त्र बागबगीचे महल मकान नही अवलोकन करते पंचसमिति तीन गुप्ति मूलगुण संयम शीलादिकनिकी रक्षा करते मार्गमें गमन करै ॥ बहुरि संसार देह भोगानितैं वीतरागता भावते धर्मध्यान चिंतवन करते अथवा द्वादशभावना भावते जिनेंद्रकी आज्ञा पालते विहार करै ॥ बहुरि स्वेच्छाप्रवृत्ति

मिथ्यात्वकी आराधना तथा आपका नाश तथा संयमकी विराधना होती होय सो कारण दूरितैंही त्याग करे हैं ॥ बहुरि दिगंबर साधु आहारके अर्थि गमन करे तदि परिणाममें दातारका विचार न करै, जो, मोकूं कोन देवेगा? अथवा कैसा मिलेगा? तथा दातारकी कहा परीक्षा है? तथा आहारका विचार नही करै, जो, शीघ्रतासूं मिलिजाय तो भला है, अथवा शीतलभोजनका लाभ होय हमारे उपवासादिकानिकी दाह है, शीतल जल मिलै तो भला है, वा उष्ण मिले तौ भला है, हम शींतकरि पीडित है । वा मिष्टरसका अभिलाष वा चिरपरा खाटा साचिक्कण दुग्ध दही घृत पक्वान्न इत्यादिक आहारका संकल्परूप अभिलाष दिगंबर मुनीश्वर नही करे हैं, मार्गमें धर्म-भावना आत्मभावना करते गमन करे हैं ॥ आचारांगकी आज्ञाकरिकै देशकी प्रवृत्ति-का ज्ञाता, तथा कालकी प्रवृत्तीका ज्ञाता, लाभमें अलाभमें मानमें अपमानमें सम-भावरूप है मनकी वृत्ति जाकी अर लोकनिंद्यकुलतैं छोडिकरिकै उत्तमकुलानिकी गृहमें चंद्रमाकीनाई धनाढ्य घरमेंहू प्रवेश करै, अर निर्धननिके घरमेंहू प्रवेश करते परिणा-ममें ऐसा संकल्प नही करै– जो, ये तो धनवाननिके गृह हैं, ये निर्धननिके गृह हैं । गृहनिकी पंक्तिरूप क्रमकरिकै गृहनिमें प्रवेश करै, दीननिके गृह होय अनाथनिके गृह होय तहां प्रवेश नही करै ॥ बहुरि जहां दान वटता होय ऐसी दानशाला तथा

विवाह जहां होय, तथा यज्ञादिक जहां होय, तथा मृतकका सूतकादिक होय, तथा रुदन गीत गान वादित्र कलह विसंवाद वहोत जननिका संघट्ट जहां होय, तहां गमन नही करै। कपाट जुड राख्या होय, तहां कपाट खोलि प्रवेश नही करै। तथा कोऊ मनै करै, तहां प्रवेश नही करै ॥

बहुरि गृहनिमें तहांतांई प्रवेश करे, जहांतांई गृहस्थानिका कोऊ भेषी अन्य गृहस्थीनिकै आनेकी अटक नही होय ॥ बहुरि अंगणमें जाय खडे नही रहे। आशीर्वादादिक मुखतैं नही कहे। हाथकी समस्या नही करै। उदरकी कृशता नही दिखावे। मुखकी विवर्णता नही करै। हुंकारादिका सैन (संज्ञा) समस्या नही करै, पडिगाहे तो खडे रहे, नही पडिगाहे तो निकसि अन्य गृहनिमें प्रवेश करै। अर विधिपूर्वक प्रतिग्रह कीया योग्य पृथ्वीतलमें तिष्ठे, तहां आप खडा रहे सो भूमि तथा दातार खडा रहै सो भूमि तथा भोजनका पातकी भूमि जंतुरहित देखि अर त्रसजीवादिकरहित होय तहां पगनिकूं च्यार अंगुल अंतराल करि खडा छिद्ररहित दोऊ हस्तकी अंजुलि करि तिष्ठे। बहुरि सिद्धभक्ति करेपाछे निर्दोष प्रासुक अन्न विधिकरि दीया आहार क्षुधाकी हानीके अर्थि भोजन करै ॥ तहां रससहित वा नीरसताकूं स्वाद छोडि गोचरादि पंचविधिकरि भोजन करै। तहां जैसैं गौ घासकूं

देनेवाला जो पुरुष वा स्त्रीका यौवन रूप आभरण वस्त्रकूं अवलोकन नहीं करै, तैसैं साधूहू आहार देनेवाला पुरुष वा स्त्रीका यौवन रूप आभरण वस्त्रकूं रागकरि नही देखे भोजनसूं प्रयोजन है, तथा जैसैं गौ वनमें जाय तहां घास तृणादिक चरनेका उद्यम करै है, वनकी शोभाकूं नही देखे है, तैसैं साधूहू जिस गृहमें भोजन करै, तिस घरकी शोभा पात्रादिककूं रागभावतैं नही अवलोकन करै, सो गोचरी वृत्ति है ॥ ३ ॥ बहुरि जैसैं कोऊ वणिक् गाडी रत्नादिककरि भरी नही चाले, तदि घृतादिकसूं वांगिकरि आपका वांछितस्थान लेजाय, तैसैं मुनीश्वरहू गुणरत्ननिकरि भरी जो देहरूप गाडी सो नही चाले, तदि योग्य आहार देय निर्वाणपत्तन पहुचावे, सो अक्षम्रक्षणवृत्ति है ॥ २ ॥ बहुरि जैसैं भंडारमें अग्नि लगिजाय, तदि जैसैंतैसैं अग्नि बुझायकरि भंडारके मालकी रक्षा करै, तैसैं गुणरत्ननिका भऱ्या जो साधूका शरीररूप भंडार, तामैं क्षुधादिक अग्नि लागि ताकूं रसनीरस भोजनतैं बुझाय गुणरत्ननिकी रक्षा करना, सो उदराग्निप्रशमन है ॥ ३ ॥ बहुरि जैसैं कोऊके घरमें खाडा होय ताहि पाषाण धूलीसूं भरि बरोबरी करै, तैसैं साधूहू उदररूप खाडाकूं जैसातैसा आहारसंपूर्ण करना, सो गर्तपूरण है ॥ ४ ॥ बहुरि जैसैं भौरा (भ्रमर) पुष्पकूं बाधा नही करता पुष्पका गंध ग्रहण करे है, तैसैं साधूहू दातारकूं किंचिन्मात्र बाधा

नही उपजावता भोजन ग्रहण करै, ताका भ्रामरीवृत्तिकरि भोजन जानना ॥ ५ ॥

तथा भोजन करनेकूं परिभ्रमण करते जे साधु, ते वत्तीस अंतरायका अत्यंत त्याग करै ॥ ते वत्तीस अंतरायनिके नाम कहे हैं ॥ आहारके निमित्त गमन करते वा तिष्ठते जे मुनीश्वर, तिनके उपरि काकपक्षी वा औरहू पक्षी वीट करे तो काक नामा भोजनका अंतराय है ॥ १ ॥ गमन करते साधूका पगकै अमेध्य जो विष्ठामल लागिजाय तो अमेध्य नामा अंतराय है ॥ २ ॥ साधूकै वमन होजाय तो छर्दि नामा अंतराय है ॥ ३ ॥ कोऊ जो मुनीकूं गमन करतेकूं मार्गमें रोक देवै, सो रोधन नामा अंतराय है ॥ ४ ॥ आपका वा अन्यका रुधिर वा राधि वहता देखे, सो रुधिर नामा अंतराय है ५ दुःखशोकादिक करिकै जो साधूकै अश्रुपात आजाय अथवा निकटवर्ती लोकनिका मरणादिक करिकै अतिरोदन विलाप श्रवण करे तो अश्रुपात नामा अंतराय है ॥ ६ ॥ तथा जानू जो गोडे तिनितैं नीचै स्पर्श होजाय तो जान्वधःपरामर्श अंतराय है ॥ ७ ॥ जानू जो गोडे इनितैं अधिक उलंघन होजाय तो जानूपरिव्यतिक्रम नामा दोष है ॥ ८ ॥ नाभीतैं नीचो मस्तक करि कोऊ छोटे द्वारमें प्रवेश करे तो नाभ्यधोनिर्गमन नामा अंतराय है ॥ ९ ॥ जिस वस्तूका त्याग होय, सो भक्षणमें आजाय तो स्वप्रत्याख्यातसेवन नामा अंतराय है ॥ १० ॥ आपके अग्रभागविषैं कोऊ प्राणीकूं मारि नाखै

तो जीववध नामा अंतराय है ॥ ११ ॥ काकादिक पक्षी ग्रास लेजाय भोजन करता सो काकादिपिंडहरण नामा अंतराय है ॥ १२ ॥ भोजन करता साधूका हस्ततैं ग्रासका पतन होजाय ग्रास गिरि जाय, सो पिंडपतन अंतराय है ॥ १३ ॥ हस्तके विषैं द्वींद्रियादिक जीव आय करिकै मर जाय, सो पाणिजंतुवध अंतराय है। जातैं तस भोजनमें वा सचिक्कणमें मक्षिका मछर इत्यादिक पडिकरि मरणही करे है ॥ १४ ॥ मृतक पंचेंद्रियका शरीरका देखना, मांसदर्शन नामा अंतराय है ॥ १५ ॥ साधूकूं मनुष्य देव तिर्यंचनिकरि कीया उपसर्ग आजाय सो उपसर्ग नामा अंतराय है ॥ १६ ॥

साधूके दोऊ चरणनिके बीचि होय पंचेंद्रिय जीव मूंसा मींडका इत्यादिक गमन करि जाय सो पंचेंद्रियगमन अंतराय है ॥ १७ ॥ भोजन देनेवालेनिके हस्ततैं भाजन गिरि पडे सो भाजनसंपात अंतराय है ॥ १८ ॥ जो साधूके शरीरतैं रोगादिकके वशतैं मल निकलि आवै, सो उच्चार अंतराय है ॥ १९ ॥ जो साधूके मूत्रका स्राव होजाय सो प्रस्रवण अंतराय है ॥ २० ॥ भिक्षापरिभ्रमण करता जो साधूका भूलि चांडालादिकका गृहमें प्रवेश होजाय, सो अभोज्यगेहप्रवेश नामा अंतराय है ॥ २१ ॥ साधूका मूर्छादिककरि पतन होजाय, सो पतन अंतराय है ॥ २२ ॥ साधू बैठि जाय सो उपवेशन अंतराय है ॥ २३ ॥ श्वानादिक जीव काटि खाय सो दष्ट नामा अंतराय है ॥ २४ ॥

सिद्धभक्ति कऱ्या पाछे जो साधूका हस्तकरिकै भूमीका स्पर्श होय, सो भूमिस्पर्श अंतराय है ॥ २५ ॥ कफ थूक इत्यादिक नाखि देवे, सो निष्ठीवन अंतराय है ॥ २६ ॥ साधूका उदरतैं कृमीका निर्गमन कहिये निकसना होय, सो कृमिनिर्गमन अंतराय है ॥ २७ ॥ साधू हस्तकरिकै किंचित् परकी वस्तु लोभकरि ग्रहण करे, सो अदत्त अंतराय है ॥ २८ ॥ खड्गादिक शस्त्रकरि साधूका कोऊ घात करै वा अन्यका घात करै, सो शस्त्रप्रहार नामा अंतराय है ॥ २९ ॥ ग्राममैं अग्नि लगिजाय, सो ग्रामदाह अंतराय है ॥ ३० ॥ पगाकरिकै कोऊ वस्तु ग्रहण होजाय, सो पादग्रहण अंतराय है ॥ ३१ ॥ हस्तकरिकै किंचित् वस्तु ग्रहण होय सो हस्तग्रहण अंतराय है ॥ ३२ ॥ ये भोजनके त्यागके कारण बत्तीस अंतराय कहे, तैसेही औरहू चांडालादिकनिका स्पर्श कलह इष्टमरण साधर्मिकसंन्यासपतन प्रधानपुरुषनिका मरण भोजनका त्यागके कारण हैं ॥ औरहू राजाका भय तथा लोकनिंदादिक अंतराय कहे, सो जैनधर्मके धारक साधूनिकै भोजनका त्याग तथा आधा भोजन कीया अल्प कीया एक ग्रास लिया वा ग्रास नही लिया होय अर जो अंतराय होय तो भोजनका त्यागही करै, उसदिन फेरि ग्रासादिक नही ग्रहण करै ॥ ऐसा आचारांगकी आज्ञाप्रमाण शुद्ध भोजन पान तथा प्रमाणिक हलको रसादिरहित रूक्ष भोजन करि बाह्यतप नित्यही

अंगीकार करै ॥ तथा औरहू शरीरसल्लेखनाके अर्थि तपका उपदेश करे हैं ॥ गाथा—

उल्लीणोल्लीणेहि य । अह पुण एक्कंतवड्ढमाणेहिं ॥
सल्लिहइ मुणी देहं । आहारविहिं पयणुगिंतो ॥ २५१ ॥

अर्थ— वर्धमान हीयमान ऐसे तप अथवा एकांतकरि दिनप्रति वर्धमान ऐसे अनशनादि तप, तिनिकरि आहारकी विधिकूं अल्प करता जो मुनि, सो देहकूं सल्लिखति कहिये कृश करे है ॥ गाथा—

अणुपुव्वेणाहारं । संवट्टंतो य सल्लिहइ देहं ॥
दिवसग्गाहिएण तवे- । ण चावि सल्लेहणं कुणइ ॥ ५२ ॥

अर्थ— अनुक्रमकरि आहारकूं संवररूप करता साधु देहकूं कृश करे है ॥ वहुरि दिनदिनप्रति ग्रहण कीया जो तप, ताकरिकैहू सल्लेखना करै ॥ भावार्थ— कोई दिनमें अनशनतप, कोई दिनमें अवमोदर्य, कोई दिनमें रसपरित्याग इत्यादिक तपनिकरि शरीरकूं कृश करे है ॥ गाथा—

विविहाहि एसणाहि य । अवग्गहेहि विविहेहि उग्गेहि ॥
संजममविराहिंतो । जहाबलं सल्लिहदि देहं ॥ ५३ ॥

अर्थ— नानाप्रकारके जे भोजनरसवर्जन, अल्प आहार, आचाम्ल इत्यादिकनि-

करि तथा नानाप्रकारके उत्कट जे वृत्तिपरिसंख्यानादिक, तिनिकरिकैं संयमकी विराधना नही करता जो साधु, सो यथाशक्ति देहकूं कृश करे है ॥ भावार्थ— जैसैं इंद्रियसंयम अर प्राणसंयम नही बिगडे तैसैं, यथाशक्ति शरीरकूं कृश करे है ॥ गाथा—

सदि आउगे सदि बळे। जाउं विविधाउं भिक्खु पडिमाउं ॥
ताउं वि ण बाहंते। जहावळं सल्लिहंतस्स ॥ ५४ ॥

अर्थ— आयुकूं विद्यमान होता तथा देहमें बल विद्यमान होता आपकी शक्तिप्रमाण सल्लेखना करता जो साधु, ताका नानाप्रकारका साधूका धर्म सोहू बाधाकूं नही प्राप्त होय है ॥ भावार्थ— आपका बलप्रमाण शरीरकूं तपकरि कृश करता साधु बाधाकूं नही प्राप्त होय है। बलहीन होय अर तप अधिक करे तो शुभध्यानका भंग होय अर संक्लेशकी आधिक्यता होय, तातैं यथाशक्ति तप करि शरीरकूं कृश करना श्रेष्ठ है॥ गाथा

सल्लेहणा सरीरे। तवोगुणविही अणेगहा भणिदा ॥
आयंविलं महेसी। तत्थ दु उक्कस्सयं विंति ॥ ५५ ॥

अर्थ— शरीरकी सल्लेखनाके निमित्त अनेकप्रकार तपोगुणकी विधि कही, तिन अनेकप्रकार तपरूप गुणकी विधीविषैं भगवान गणधर देव आचाम्लकूं उत्कृष्ट तप कहे हैं ॥ सो आचाम्ल कहा? सो कहे हैं ॥ गाथा—

छट्ठट्ठमदसमदुवा- । लसेहि भत्तेहि विदियअट्ठेहिं ॥
मिदलहुगं आहारं । करेदि आयंबिलं बहुसो ॥ ५६ ॥

अर्थ— जाण्या है अर्थ कहिये पदार्थ जिनिनैं ऐसे भगवान् हैं, ते, वेला तेला चोला पंचोपवासरूप भोजनके त्याग, तिनिकरि प्रमाणिक अल्प ऐसा आहारकूं आचाम्ल कहिये । सो बहुतप्रकारकरि करै ॥ भावार्थ— अल्प आहारकूं आचाम्ल कह्या है ॥ अब भक्तप्रत्याख्यानका कितना काल है, सो कहे हैं ॥ गाथा—

उक्कस्सएण भत्त- । प्पइण्णकाळो जिणेहि णिद्दिट्ठो ॥
काळं हि संपहुत्ते । बारिसवरिसाणि पुण्णाणि ॥ ५७ ॥

अर्थ— भक्तप्रत्याख्यानका उत्कृष्टकालका प्रमाण बहुतकाल होय तो पूर्ण द्वादश वर्षका है, ऐसैं जिनेंद्रभगवान् कह्या है ॥ भावार्थ— भक्तप्रत्याख्यानमरणका आरंभ करे तो उत्कृष्ट आयूका बारा बरस प्रमाण बाकी रहे, तैं करे हैं ॥ गाथा—

जोगेहि विचित्तेहिं दु । खवेइ संवच्छराणि चत्तारि ॥
वियडीणि य जूहित्ता । चत्तारि पुणो वि सोसेइ ॥ ५८ ॥

अर्थ— विचित्र कहिये नानाप्रकारके कायक्लेशादिक योग तिनिकरि च्यारि संवत्सर कहिये च्यारि वर्ष पूर्ण करे । बहुरि च्यारि वर्ष विकृति जे रस, तिननैं त्याग-

करिकै शरीरकूं कृश करै ॥ गाथा--

आयंबिळणिव्विंयडी-। हिं दोण्णि आयंबिळेण एक्कं च ॥
अध्दं आदिविगट्ठे-। हि तदो अध्दं विगट्ठेहिं ॥ ५९ ॥

अर्थ— आचाम्ल जो अल्प आहार तथा नीरसभोजनकरि दोय वर्ष पूर्ण करे। बहुरि एक वर्ष आचाम्ल जो अल्पभोजन, ताकरि पूर्ण करे। बहुरि अर्धवर्ष अति उत्कृष्ट नहि ऐसा तप करि पूर्ण करे। भावार्थ— भक्तप्रत्याख्यानमरणका उत्कृष्ट काल द्वादश वर्षका भगवान् कह्या। तिनमें च्यार वर्ष तो विचित्र जो नाना प्रकारका अनशन अवमोदर्यादिक वा सर्वतोभद्र, एकावली, द्विकावली, रत्नावली, सिंहावलोकनादिक तप करि पूर्ण करे। बहुरि च्यारि वर्ष रसपरित्याग नामा तप, ताकरि पूर्ण करे। बहुरि दोय वर्षमें कदे अल्पभोजन कदे नीरसभोजन ऐसे दोय वर्ष पूर्ण करे। बहुरि एक वर्ष अल्प आहार करि पूर्ण करे। बहुरि छ महिना बहोत उत्कृष्ट नही ऐसा अनुत्कृष्ट तप करि पूर्ण करे। बहुरि छ महिना सर्वोत्कृष्ट तप करि पूर्ण करे ॥ ऐसैं भक्तप्रत्याख्यानका उत्कृष्ट द्वादश वर्षप्रमाण जाका काल होय, सो ऐसैं परिपूर्ण करे। आगै और विशेष कहे हैं ॥ गाथा—

भत्तं खेत्तं काळं। धादुं च पडुच्च तह तवं कुज्जा ॥

वादो पित्तो सिंभो। व जहा खोभं ण उवखाइ ॥ २६० ॥

अर्थ— भत्तू कहिये शाकसहित आहार वा मोठ तथा चणा इत्यादिक वा शाक-व्यंजनरहित आहार, बहुरि क्षेत्र जलरहित तथा कोऊ जलसहित, बहुरि काल कहिये शीतकाल उष्णकाल वा वर्षाकाल, बहुरि धातु कहिये शरीरकी प्रकृति, ऐसे भोजन क्षेत्र काल शरीरकी प्रकृति इनिकूं आश्रयकरी विचारिकारि ऐसें तप करे, जैसैं वात्त पित कफ शरीरमें क्षोभकूं प्राप्त नही होय, ऐसैं शरीरकी सल्लेखना करे ॥ भावार्थ— इहां कहनेका प्रयोजन यह है, जो तपकी विधि तो अनेकप्रकार कहीही है, परंतु ज्ञानी मुनि देश काल आपका शरीरका स्वभाव भोजन सर्वकूं विचारि, ऐसैं तपके मार्गमें प्रवर्ते, "जैसैं रोग न बधै, त्रिदोष प्रकोपकूं प्राप्त नही होय, तपमें दिनदिन उत्साह बधता रहे, स्वाध्याय ध्यान आवश्यकक्रियामैं परिणाम नही बिगडे, संक्लेश नही बधै, तैसैं तप करना उचित है" ऐसैं शरीरसल्लेखना कहिकरि अब अभ्यंतरसल्लेखनाका क्रम कहे हैं ॥

एवं सरीरसल्ले- । हणाविहं बहुविहं पि फासेंतो ॥
अज्झवसाणविसुध्दिं । खणमवि खवउं ण मुंचेज्ज ॥ ६१ ॥

अर्थ— ऐसैं शरीरसल्लेखनाकी विधि बहुतप्रकार करताहू साधु सो परिणामनिकी उज्वलता क्षणमात्रहू नही छांडत है ॥ भावार्थ— परिणाममें संक्लेश बधिजाय तो बाह्य-

तप करना निरर्थक है। जैसैं परिणाम उज्वल होते जाय तैसैं बाह्यतप करै। बाह्यतप तो अभ्यंतरकषाय तथा विषयानुराग घटि वीतरागता बधनेवास्ते है॥ अभ्यंतर शुद्धताका अभाव होता जे दोष होय, ते दिखावे हैं॥ गाथा—

अज्झवसाणविसुद्धी- । ए वज्जिदा जे तवं विगट्ठं पि ॥
कुव्वंति बहिल्लेसा । ण होइ सा केवळा सुद्धी ॥ ६२ ॥

अर्थ- जे साधु अध्यवसान जे परिणाम तिनकी विशुद्धताकरि रहित उत्कृष्टहू तप करे है, तौहू बाह्य पूजासत्कारादिकमें स्थापी है चित्तकी वृत्ति जिननें ऐसे केवलशुद्धि ताकूं नही प्राप्त होत हैं, उनकै दोषनितैं मिली हुई शुद्धता होय है॥ आगै केवलशुद्धता कौनकै होय है सो कहे हैं॥ गाथा-

अविगट्ठं पि तवं जो । करेइ सुविसुद्धसुक्कलेस्साई ॥
अज्झवसाणविसुद्धी । कसायसल्लेहणा भणिदा ॥ ६३ ॥

अर्थ- परिणामनिकी उज्वलतासहित ऐसा जो वहोत शुद्ध शुक्लेश्याका धारक साधु सो अनुत्कृष्ट तप करताहू केवल शुद्धताकूं प्राप्त होय है॥ भावार्थ- जिनका परिणाम कषायरागादिकमलकरि रहित है, ते अल्प तप करतेहू आत्माकी दोषरहित शुद्धि ताकूं प्राप्त होय हैं॥ इहां शरीरसल्लेखनाकूं वर्णन करी, अब कषायसल्लेखनाका

अर शुभकर्मका फलकूं विरस करे हैं अर मनकेविषैं मलिनता करे हैं अर हृदयकूं कठोर करे हैं अर प्राणीनिका घात करावे हैं अर वचनकी असत्यमें प्रवृत्ति करावे हैं अर वडे पूज्य गुणनिहूकूं उल्लंघन करावे हैं अर यशरूप धनका नाश करे हैं, परका अपवाद करावे हैं अर महानहू गुणनिकूं आच्छादन करे हैं अर मैत्रीपणाकूं मूलतैं उखाले हैं अर किया हूवाहू उपकारकूं भुलावे हैं विस्मरण करावे हैं अर अपकारका अध्ययन करावे हैं–पढावे हैं अर महान् नरकरूप खाडेमें पटकत हैं अर दुःखरूप भवनमें डबोवे हैं ऐसैं कषाय उपज्या हुवा अनेक अनर्थनिकूं वहे है ॥ अर कषायनिका परिहार जाकै होय ताकै रागद्वेषकी उत्पत्ति शाम्यतानैं प्राप्त होय हैं ॥ आगै रागद्वेषकी प्रशांति करनेका उपाय कहे हैं ॥ गाथा—

जावंतु केइ संगा । उदीरया होंति रागदोसाणं ॥
ते वज्जंतो जिणदि हु । रागं दोसं च णिस्संगो ॥ ६९ ॥

अर्थ— जेते केई परिग्रह रागद्वेषके उत्पन्न करनेवाले हैं, तिन परिग्रहनिकूं वर्जन्न करता पुरुष निःसंग हुवा रागद्वेषनिकूं जीततही है ॥ भावार्थ— जे जे परिग्रह आपकै रागद्वेष उपजावै, तिनकूं त्यागै सो रागद्वेषकूं जीतेही ॥ अब आगै कहे हैं,

जो, उपज्या हुवा कषाय अग्नि महान् अनर्थ करे है, तातैं कषाय अग्निकूं बुझावनाही
श्रेष्ठ है, ऐसैं तीन गाथा कहे हैं ॥ गाथा—

पडिचोदणासहणवा-। यखुभिदपडिवयणइंधणइद्धो ॥
चंडो हु कसायग्गी। सहसा संपज्जलिज्जो हि ॥ २७० ॥
जलिदो हु कसायग्गी। चरित्तसारं दहेज्ज कसिणं पि ॥
सम्मत्तं पि विराधिय। अणंतसंसारियं कुज्जा ॥ २७१ ॥
तह्मा हु कसायग्गी। पावं उप्पज्जमाणयं चेव ॥
इच्छामिच्छादुक्कड-। वंदणसलिलेण वेज्जाहि ॥ ७२ ॥

अर्थ— खोटे वचनकी जो प्रेरणा, ताका जो नही सहना, सोही जो पवन, ताक-
रिकैं क्षोभकूं प्राप्त हुवा अर प्रतिवचनरूप इंधनकरिकै वर्धित हुवा जो प्रचंड कषायरूप अग्नि
सो शीघ्रही प्रज्वलित होत है। जातैं कषायकूं अग्नि कही सो अग्नि पवनकरि सिलगे
है, सो इहां दुष्टताके वचनकूं नही सहना सोही कषायरूप अग्नीकै जगायवेकूं पवन
है। अर अग्नि इंधनकरि वधे है अर कषाय अग्नि परस्पर वचनानिके उत्तरप्रत्युत्तर
तिनकरि वधे है। ऐसैं प्रज्वलित हुवा कषाय अग्नि समस्तचारित्ररूप सारधनका
विनाश करिकै अर सम्यक्त्वका विनाश करिकै अर या जीवकूं अनंतसंसारका परिभ्र

वर्णन करे हैं ॥ गाथा—

अज्झवसाणविसुद्धी । कसायकलुसीकदस्स णत्थित्ति ॥
अज्झवसाणविसुद्धी । कसायसल्लेहणा भणिदा ॥ ६४ ॥

अर्थ— कषायनिकरि मलिन है परिणाम जिनिका तिनिके परिणामनिकी उज्वलता नही होय है, तातैं कषायका कृश करना–मंद करना, सो परिणामनिकी उज्वलता है॥ अब कषायनिका कृश करनेविषैं उपाय जो क्षमादिक, तिनकूं कहे हैं ॥ गाथा—

कोहं खमाए माणं । च मद्दवेण अज्जवेण मायं च ॥
संतोसेण य लोहं । जिणदु खु चत्तारि वि कसाए ॥ ६५ ॥

अर्थ— क्रोधकूं उत्तमक्षमाकरिकैं, अर मानकूं मार्दवकरिकै, अर मायाकषायकूं आर्जवकरिकै, अर लोभकूं संतोषकरिकै ऐसैं च्यारि कषायनिकूं जीतहु ॥ अब आगै कहे हैं, जे कषायनिके उपजनेका मूलकारण, तिनहीका त्याग करना योग्य है ॥

कोहस्स य माणस्स य । मायालोहाण सो ण एदि वसं ॥
जो ताण कसायाणं । उप्पत्तिं चेव वज्जेइ ॥ ६६ ॥

अर्थ— जो इनि कषायनिकी उत्पत्तीहीकूं नाश करै, सो इन क्रोध मान माया लोभरूप कषायके वशी नही होय है ॥ गाथा—

तं वत्थुं मोत्तव्वं । जं पडि उप्पज्जए कसायग्गी ॥
तं वत्थुमल्लिएज्जो । जत्थोवसमो कसायाणं ॥ ६७ ॥

अर्थ— जातैं कषायरूप अग्नि उपजै, सो वस्तुहीं त्याग करनेयोग्य है। अर जिस वस्तूतैं कषायनिका उपशम होजाय, सो संचय करनेयोग्य है ॥ गाथा—

जइ कहव कसायग्गी । समुट्ठिदो होज्ज विज्झवेदव्वो ॥
रागद्दोसुप्पत्ती । विज्झादि हु परिहरंतस्स ॥ ६८ ॥

अर्थ- जो कदाचित् कषायरूप अग्नि प्रज्वलित होय तो कषायसूं उपजे दोष, तिनिकी भावनाकरि कषाय अग्निकूं बुझावना योग्य है ॥ सो कहे हैं, हमारे हृदयमें उपजा कषायरूप अग्नि नीचपुरुषकी संगतीकीनांई हृदयकूं दग्ध करे है ॥ बहुरि जैसें अशुभ अंगोपांगनामकर्म मुखकूं विरूप करे तैसें कषाय मुखकूं विरूप भयंकररूप करे हैं ॥ बहुरि जैसें धूली नेत्रनिमें रक्तता करै, तैसें कषाय नेत्रनिमें रक्तता करे हैं अर पवनकीनांई शरीरकूं कंपायमान करे हैं अर मदिरापानकीनांई विचाररहित वचन कहावे हैं अर पिशाचकीनांई विचाररहित चेष्टा करावे हैं अर ज्ञानरूप दिव्यनेत्रकूं मलिन करे हैं अर दर्शनरूप कल्पवृक्षका वनकूं मूलतैं उपाडे हैं अर चारित्ररूप सरोवरकूं शोषण करे हैं अर तपरूप पल्लवकूं भस्म करे हैं अर अशुभप्रकृतिरूप वेलीकूं स्थिर करे हैं

मणमें लीन करे है ॥ तातैं पापरूप जो कषाय अग्नि, सो उपजतेकूंही इच्छाकार तथा मिथ्याकार तथा वंदनारूप जलकरि शीघ्रही बुझावना श्रेष्ठ है। जातैं जाकूं कषाय मंद करनेका होय, सो यथायोग्य इच्छाकारादिककरि कषायकूं उपशम करे है ॥ हे भगवान् आपकी शिक्षा इच्छा करूं हूं ऐसी प्रार्थना गुर्वादिकनिकूं करना सो इच्छाकार है ॥ हमारा दुष्कृत--दुष्टताका करना मिथ्या होहू--झूठा होहू चूकिकरि कीया अब आगै ऐसा दुष्टकार्य नही करूंगा, ऐसैं मनकी शुध्दतासहित कहना, सो मिथ्यादुष्कृत; ताकूं मिथ्याकार जानना ॥ तुह्मारे अर्थि हमारा नमस्कार होहू ऐसैं पूज्यपुरुषनिके गुण हृदयमें धारि, भावविशुध्दताकरि नमस्कार करना, सो वंदना है ॥ आगै, नोकषायादिकनिकूंभी कृश करना श्रेष्ठ है, सो कहे हैं ॥ गाथा–

तह चेव णोकसाया। सल्लिहियव्वा परेणुवसमेण ॥
सण्णाउं गारवाणि य। तह लेस्साउं य असुहाउं ॥ ७३ ॥

अर्थ– तैसेही हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीपुरुषनपुंसक वेद ये नोकषाय इनिकूं परम उपशमभावकरि क्षीण करना योग्य है ॥ बहुरि आहारकी वांछा सो आहारसंज्ञा अर भयकी वांछा सो भयसंज्ञा अर मैथुनकी वांछा सो मैथुनसंज्ञा अर परिग्रहकी वांछा सो परिग्रहसंज्ञा ये च्यारी संज्ञा क्षीण करना योग्य है ॥

बहुरि ऋद्धीका गर्व तथा रसवानभोजन मिलनेका गर्व तथा साता जो सुख रहै ताका गर्व ऐसे तीन गारव इनको कृश करना योग्य है ।। बहुरि अशुभ तीन लेश्याका त्याग करना योग्य है ।। गाथा–

परिवड्ढिदोवधाणो । विगडसिराहारुपासुलिकडाडो ॥
सल्लिहिदतणुसरीरो । अज्झप्परदो हवदि णिच्चं ॥ ७४ ॥

अर्थ– बहुरि सल्लेखनाका करनेवाला कैसाक है? वधता है नियम त्याग जाका, बहुरि तपकरि प्रकट हुवा है नसां पसवाडाका हाड नेत्रांका कटाक्षस्थान जाका, अर भलैप्रकार कृश कीया है शरीर जानैं ऐसाहू सासता आत्मध्यानमें लीन रहै ॥ गाथा–

एवं कदपरिधम्मो सब्भंतरवाहिरम्मि सल्लिहणे ॥
संसारमोक्खवुद्धी । सव्वुवरिल्लं तवं कुणादि ॥ ७५ ॥

अर्थ— ऐसैं अभ्यंतरसल्लेखना अर बाह्यसल्लेखना ताके विषैं बांध्या है परिकर जानैं अर संसारतैं छूटनेकी है बुध्दि जाकै ऐसा साधु सो सर्वोत्कृष्ट तपकूं करे है ॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषैं सल्लेखना नामा ग्यारमा अधिकार छासठि गाथानिकरि समास कीया ॥ आगै दिशा नामा अधिकार पंच गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा–

वोढुं गिलादि देहं । पव्वोढव्वमिणमसुइभारोत्ति ॥
तो दुक्खभारभीदो । कदपरियम्मो गणमुवेदि ॥ ७६ ॥

अर्थ— देहकूं धारण करनेमें नही है हर्ष जाकै, यो शरीर अशुचिका भारमय है अर त्यागनेयोग्य है तातैं दुःखका भारतैं भयभीत हुवा ऐसा, अर कीया है समाधिमरणका परिकर जानै एसा जो साधु, सो संघ जो मुनीश्वरनिका समुदाय, ताहि समाधिमरण करनेकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा—

सल्लेहणं करंतो । जदि आयरिउ हवेज्ज तो तेण ॥
ताए वि अवत्थाए । चिंतेदव्वं गणस्स हियं ॥ ७७ ॥

अर्थ— अर जो सल्लेखनाकूं करनेकूं उद्यमी आचार्य होय, तो सल्लेखनाका अवसरविषैं आचार्यकूं संघका हित चिंतवन करना योग्य है ॥ भावार्थ— जो सल्लेखना करनेमें उद्यमी सामान्य साधु होय, सो तो संघमें जो आचार्य तिनकूं प्राप्त होय समाधिमरणके निमित्त विनति करै, अर जो संघका स्वामी आचार्य होय सल्लेखनाका अवसरमें सल्लेखना कर्यो चाहै, सो तिस अवसरमें संघका हित जो आगैकूं अव्युच्छिन्न चारित्रधर्मकी परिपाटी बहोतकाल चलीजाय तैसैं चिंतवन करै ॥ गाथा—

कालं संभाविता । सव्वगणमणुदिसं च वाहरिय ॥

सोमतिहिकरणणक्खं-। त्तविलग्गे मंगलोगासे ॥ ७८ ॥
गच्छाणुपाळणत्थं । आहोइय अत्तगुणसमं भिक्खू ॥
तो तम्मि गणविसग्गं । अप्पकहाए कुणदि धीरो ॥ ७९ ॥
अव्वोच्छित्तिणिमित्तं । सव्वगुणसमोयरं तयं णच्चा ॥
अणुजाणेदि दिसंसे । एस दिसा वोत्ति वोधिव्वा ॥ २८० ॥

अर्थ— संघका अधिपति जो आचार्य सो आपका आयुकी स्थितिका काल विचारिकरिकै अर पाछै सर्वसंघकूं अर अणुदिस कहिये आपके पाछे आचार्य होनेयोग्य ताहूकूं बुलायकरिकै अर सौम्य तिथि करण नक्षत्र योग्य लग्नरूप कालमें तथा मंगलरूप स्थानमें वै धीर वीर आचार्य सो गण जो संघ, ताकी पालना जो रत्नत्रयकी रक्षा, ताके अर्थि आपकेसे गुणनिका धारक जो साधु, ताकेविषैं अल्प वचनालाप करिकै संघको अर्पण करै ॥ कौन प्रयोजनवास्ते कैसैं करै सो कहे हैं— धर्मतीर्थकी व्युच्छित्तीके अभावके निमित्त सर्वगुणसंयुक्त आचार्यपदवीकै योग्य जाणिकरि अर सर्वसंघको आज्ञा करै—अब तुम सबनिके ये आचार्य हैं ऐसैं कहै ॥

भावार्थ— सर्वसंघका स्वामी आचार्य जब सल्लेखना करै तब धर्मकी परिपाटीकी प्रवृत्तिकै अर्थि आपसारिसा गुणनिके धारक जो आचार्यपदकै योग्य

तिसविषैं संघनैं स्थापना करै। भला अवसरमें सर्वसंघकूं बुलाय कहै, जो अब तक तो तुम जे रत्नत्रयके आराधक साधु तिनिमें दीक्षा शिक्षारूप प्रवृत्ति हमने करी, अब सर्व संघ इनि आचार्यनिकी आज्ञाप्रमाण प्रवर्तन करो, ये तुमारे आचार्य हैं, हम सर्व संघतैं क्षमा ग्रहण करावे हैं ॥

अब आचार्यपद कौनकूं होय है, सो सूत्रके अनुसारि कहिये हैं ॥ जो साधु बडो कुल जो राजाको वा महान् श्रेष्ठीको वा उत्तम जगतके राज्यकैं मान्य ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यकुलमें उत्पन्न भया होय, अर रूपका धारक होय, जाका उच्च आचरण जगतमें प्रसिद्ध होय, गृहाचारमेंभी कदे हीन आचरण व्यवहार नहीं किया होय, अर संसारका भोगानैं छोडि देहभोगानितैं अतिविरक्त होय, अर लौकिक अर परमार्थ दोऊनिका ज्ञाता होय, अर महान् बुद्धीका धारक होय, अर महान् तपका धारक होय, जाकासा तप संघमें अन्यमुनीश्वरांसूं न बणिसके, अर चिरकालका दीक्षित होय, बहोत काल गुरुकुल सेवन कीया होय, अर वचनका महान् अतिशयकरि सहित होय–जिनके वचनश्रवणमात्रहीकरिकैं अनेक जीवनिकैं धर्ममें दृढ प्रतीति होजाय अर सर्वजीवांकी आत्महितमें प्रवृत्ति होजाय, बहुरि सिद्धांतरूप समुद्रका पारगामी होय, अर इंद्रियनिकै दमनेवाला होय, इहलोक परलोक

संबंधी भोगाभिलाषरहित होय, धीर होय–उपसर्ग परीपह आये चलायमान नही होय,
जातैं जो आचार्यही चलायमान होजाय तब संघ भ्रष्ट होजाय, वहुरि स्वमत अर
परमतका जाननेवाला होय, जाकूं स्वमतका अर परमतका ज्ञान नहीं होय सो परके
प्रश्नादिककरि धर्मकूं स्थापन करनेकूं असमर्थ होजाय तदि धर्मका लोप होजाय,
वहुरि गंभीर होय, तत्वका ज्ञानी होय, तथा धर्मकी प्रभावना करनेका जाका
स्वभाव होय, वहुरि गुरुनिके निकट प्रायश्चित्तसूत्र पढ्या होय, तथा आगें आचा-
र्यनिके छत्तीस गुण वर्णन करेंगे तिनकरि सहित होय, तथा सर्वसंघ पहलीही जानता
होय जो ये भगवान् आगें आचार्य होनेयोग्य हैं–सर्वसंघका अधिपतिपना ये करेंगे,
इत्यादिकगुणसहितकै आचार्यपणा होय है ॥ येते गुणविना जो आचार्यपणा करै,
तो धर्मतीर्थका लोप होजाय, उन्मार्गकी प्रवृत्ति होजाय, सर्वसंघ स्वेच्छाचारी होजाय,
सूत्रकी आचारकी परिपाटी टूटि जाय, तातैं गुणसहितकैही आचार्यपणा योग्य है।

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषैं आचार्यपणा छोडि
अन्य योग्य साधूकूं आचार्यपणा देना ऐसा दिशा नामा वारमां अधिकार पांच गाथा-
निकरि समाप्त कीया ॥ आगैं क्षमण नामा तेरमां अधिकार तीन गाथानिकरि
कहे हैं ॥ गाथा—

आमंतेऊण गणे। गच्छह्मि य गणिं ठवेदूण ॥
तिविहेण खमावेदि हु। सवालवुड्ढाउळं गच्छं ॥ ८१ ॥

अर्थ- संघके विषैं सर्व संघकूं तथा नवीन आचार्यकूं बुलायकरिके अर नवीन आचार्यकूं संघके विषैं स्थापन करिके अर बाल वृद्ध मुनिसहित जो संघ ताकूं मनवचनकायकरिकै क्षमा ग्रहण करावै ॥ गाथा-

जं दीहकाळसंवा-। सदाए ममकारणेहरागेण ॥
कडुगफरिसं च भणिया। तमहं सव्वं खमावेमि ॥ ८२ ॥

अर्थ— भो मुनीश्वरहो! जो संघमें बहुतकाल वसनेकरि अथवा ममत्व स्नेह राग करिकै जो मै कटुक भाषण कीया होय तथा कठोर जो कह्या होय सो सर्व हम क्षमाग्रहण करावे हैं॥ गाथा—

वंदिय णिसुढिय पडिदो। तादारं सव्ववच्छलं ताहिं ॥
धम्मायरियं णिययं। खामेवि गणो वि तिविहेण ॥ ८३ ॥

अर्थ- आचार्य क्षमाग्रहण करावे तादि सर्वसंघहू संकुचित अंग होय चरणारविंदामें पडि अर वंदना करिकै अर संसारतैं रक्षा करनेवाले अर सर्वसंघमें है वात्सल्यता जाकी ऐसा धर्मका आचार्य ताहि मनवचनकायकरि क्षमा ग्रहण करावै ॥

मज्जाररसिदसरिसो- । वमं तमं मा हु काहिसि विहारं ॥
मा णासेहिसि दोण्णि वि । अप्पाणं चेव गच्छं च ॥ ८८ ॥

अर्थ— भो साधो ! जैसा मार्जारका शब्द पूर्वै अतितीव्र अर पाछै क्रमकरि मंद होता जाय तथा सुननेवालेनिकूं अति बुरा लागै, तैसी रत्नत्रयमें प्रवृति पूर्वै अतिशयवती अर पाछै क्रमकरि मंद होवै तथा जगतमें निंद्य होवै तैसा तुमकूं प्रवर्तन नहीं करना । ऐसी प्रवृत्ति करि आपका वा संघका अथवा दोऊनिका नाश मति करिये ॥ गाथा-

जो सघरं पि पलित्तं । णेच्छदि विज्झदिदुमलसदोसेण ॥
किह सो सद्दहिदव्वो । परघरदाहं पसामेदुं ॥ ८९ ॥

अर्थ— जो पुरुष दग्ध होता जो आपका गृह ताकूं आलस्यका दोषकरिकै बुझावनेकूं नहीं वांछा करै, सो दग्ध होता परका गृहकूं बुझायवेकूं उद्यम करे है, ऐसा श्रद्धान कैसा कीया जाय? तातैं भो संघाधिपते! तुमारैताई ऐसैं प्रवर्तना योग्य है याप्रकार कहे हैं-

वज्जेहि चयणकप्पं । सगपरपक्खे तहा विरोधं च ॥
वादं असमाहिकरं । विसग्गिभूदे कसाए य ॥ २९० ॥

अर्थ— भो मुने! दर्शनज्ञानचारित्रमें अतीचार होय सो वर्जन करना योग्य है बहुरि स्वपक्ष जे धर्मात्माजन अर परपक्ष जे मिथ्यादृष्टिजन, तिनिमैं विरोधकूं वर्जन करना योग्य है। तथा जैसैं परिणामकी समाधानी वीतरागता छूटिजाय तैसैं विवाद वर्जना योग्य है। बहुरि विषसमान तथा अग्निसमान कषाय वर्जना योग्य है। जातैं क्रोधादिक कषाय आपकूं अर परकूं मारनेकूं विषरूप हैं अर आपके अर परके हृदयमें दाह उपजावनेकूं अग्निसमान हैं, तातैं कषाय वर्जनाही श्रेष्ठ है॥ गाथा—

णाणह्मि दंसणह्मि य। चरणह्मि य तीसु समयसारेसु॥
ण य सक्कोदि ठवेदुं। गणमप्पाणं किध गणी सो॥ ९१॥

अर्थ— समय जो सिद्धांत ताका सारभूत अथवा समय जो आतमा ताका सारभूत स्वरूप जो तीन दर्शन ज्ञान चारित्र तिनविषैं जो आपके आत्माकूं स्थापन करनेकूं अशक्त है तथा गण जो संघ ताकूं रत्नत्रयमें स्थापन करनेकूं असमर्थ है, सो कैसैं गणका धारी आचार्य होय? नहीं होय॥ गाथा—

णाणह्मि दंसणह्मि य। चरणह्मि य तीसु समयसारेसु॥
सक्कोदि जो ठवेदुं। गणमप्पाणं गणधणी सो॥ ९२॥

अर्थ— सिद्धांतका सारभूत जे ज्ञान दर्शन चारित्र तिन तीननिविषैं जो आपकूं

अर गणकूं स्थापन करनेकूं समर्थ है, सो गणका धारण पालन करनेवाला गणधर कहिये आचार्य है ॥ गाथा–

पिंडं उवधिं सेज्जं । उग्गमउप्पादणेसणादीहिं ॥
चारित्तरक्खणट्ठं । सोधिंतो होदि सुचरित्तो ॥ ९३ ॥
पिंडं उवधिं सेज्जं । अविसोहिय जो दु भुंजमाणो हु ॥
मूलट्ठाणं पत्तो । मूलोत्ति य समणपोल्लो सो ॥ ९४ ॥

अर्थ– आहार और उपकरण और शय्या कहिये वसतिका इनिकूं उद्गम उत्पादन एषणादिक दोषरहित चारित्रकी रक्षाके निमित्त शुध्द ग्रहण करता जो साधु सो सुंदर निर्दोष चारित्रका धारक सुचरित्र होय है ॥ वहुरि जो साधु पिंड कहिये भोजन अर उपकरण अर शय्याकूं नही शुध्द करिकै जो भोजन करे है, सो मूलस्थान नामा दोषकूं प्राप्त होय है अर मूलतैंही श्रमणपदकरिकै हीन है ॥ गाथा–

एसा गणहरमेए । आयारत्थाण वण्णिया सुत्ते ॥
लोगसुहाणुरदाणं । अप्पच्छंदो जहिच्छाए ॥ ९५ ॥

अर्थ– यथोक्त आचारमें तिष्ठते जे साधु तिनिकूं भगवानके सूत्रविषैं या गणधर-मर्यादा कही । अर जे लौकिकसुखमें आसक्त हैं, तिनिकै अपनी इच्छाकरि आत्म-

च्छंद है-स्वेच्छाचारीपणा है, जिनकै मिष्टभोजनमैं आसक्तना तथा कोमलशय्या तथा कोमल आसन तिनिमैं शयन करना बैठना मनोज्ञवसतिकामैं वसना ऐसे विषयनिका रागीकै गणधरसूत्रकी मर्यादा नहीं रहे है-सूत्रबाह्य स्वेच्छाचारी भ्रष्ट है ॥ गाथा-

सीदावेदि विहारं । सुहसीळगुणेहि जो अवुद्धीउ ॥

सो णवरिलिंगधारी । संजमसारेण णिस्सारो ॥ ९६ ॥

अर्थ— जो बुद्धिरहित साधु सुखियास्वभावरूप गुणनिकरि चारित्रमें प्रवृत्तिकूं मंद करे है, सो साधु केवल लिंगधारी है, अर इंद्रियसंयम अर प्राणसंयमरूप सारकरिकै रहित-निस्सार है ॥ भावार्थ- जो इंद्रियांको लंपटी चारित्रमें मंद प्रवर्तै, सो केवल लिंगधारी भेषी है ॥ गाथा-

पिंडं उवधिं सेज्जा । मविसोधिय जो खु भुंजमाणो दु ॥

मूलट्ठाणं पत्तो । वालोत्ति पणो समणवालो ॥ ९७ ॥

अर्थ— भोजन और उपकरण और शय्या इनिकी शुद्धताविना जो भोजन करता साधु सो मूलस्थान नामा दोषकूं प्राप्त हुवा जो वह अज्ञानी साधु सो श्रमणबाल है ॥

कुळगामणयररज्जं । पयहिय तेसु कुणइ ममत्तिं जो ॥

सो णवरिलिंगधारी । संजमसारेण णिस्सारो ॥ ९८ ॥

अर्थ— जो कुल ग्राम नगर राज्यकूं छोडिकरिकै साधु होय फेरि नगर राज्य कुल ग्राममें ममता करे है- जो मेरा राज्य है मेरा कुल मेरा नगर ऐसी ममता करे है, सो केवल लिंगधारी भेषधारी है, सारभूत संयमकरि रहित निःसार है ॥ गाथा-

अपरिस्साई सम्मं । समपस्सी होहि सव्वकज्जेसु ॥
संरक्ख सचक्खुं पि व । सबालवुड्ढाऊलं गच्छं ॥ ९९ ॥

अर्थ— भो गणके पति हो ! तुम भलै प्रकारकरि अपरिश्रावी होहू । जातैं सर्वही साधु तुमकूं गुरु जाणि विश्वास करि अपने अपराध प्रकट करि कहे हैं । सो कोई कालमैंहू तुमारा वचनकरि कोईका अपराध विख्यात मति करहू! योही अपरिश्रावी गुण है ॥ बहुरि सर्व संघका कार्यमें समदर्शी होहू । बहुरि बालवृध्दादिकसहित जो यो मुनिनिको संघ, ताकी आपका नेत्रकी जैसें रक्षा करिये तैसें रक्षा करहू ॥।

णिवदिविहूणं खेत्तं । णिवदी वा जत्थ दुट्ठउ होज्ज ॥
पव्वज्जा च ण लब्भइ । संजमघादो व तं वज्जे ॥ ३०० ॥

अर्थ— भो गणधर हो, ऐसे क्षेत्रमें संघका विहार मति करावो, जा क्षेत्रमें नृपति नही होय सो क्षेत्र त्यागो अर जहां राजा दुष्ट होय सो क्षेत्र संघका विहारयोग्य नही बहुरि जहां दीक्षा नही प्राप्त होय बहुरि जहां संजमका घात होजाय—संजम नही पालि

सकै ऐसा क्षेत्रमें विहार मति करो ॥

ऐसैं अनुशिष्टि नामा चौदहवा अधिकारविषैं गणी जो नवीन आचार्य ताकूं शिक्षा सोलह गाथानिकरि कही ॥ अब गण जो संघ ताकूं आठ गाथानिकरि शिक्षा करे हैं ॥

कुणह अपमादमाव- । स्साएसु संजमतवोविधाणेसु ॥
णिस्सारे माणुस्से । दुल्लहवोहिं वियाणित्ता ॥ १ ॥

अर्थ— भो मुनीश्वर हो, विनाशीक अर अशुचिपणाकरिकै साररहित यो मनुष्यजन्म तामैं बोधि जो रत्नत्रयका प्राप्त होना सो दुर्लभ जानिकरिकै अर षट् आवश्यकक्रियानिविषैं तथा संयम और तपके विधान तिनमें प्रमाद मति करहू-अप्रमादी होहु । फेरि संयम मिलना कठिन है ॥ गाथा—

समिदा पंचसु समिदिसु । सव्वदा जिणवयणमणुगदमदीया ॥
तिहिं गारवेहिं रहिदा । होह तिगुत्ता य दंडेसु ॥ २ ॥

अर्थ— पंचसमितीविषैं सर्वकाल सावधान होहू । तथा जिनेंद्रके वचननिके अनुकूल बुद्धि करहू । तीन गारव जे रसनिकरि सहित भोजन करनेका गर्व तथा साता रहनेका गर्व तथा ऋद्धीका गर्व ऐसे तीन प्रकार गारवका त्याग करहू । तथा अशुभ मनवचनकायकी प्रवृत्तिरूप जे तीन दंड, तिनमें गुप्तीकूं प्राप्त होहू ॥ गाथा—

सण्णा उ कसाए वि य । अट्टं रुद्दं च परिहरह णिच्चं ॥
दुट्ठाणि इंदियाणि य । जुत्ता सव्वप्पणो जिणह ॥ ३ ॥

अर्थ— आहारकी वांछा, भयके कारणनितें छिपनेकी इच्छा सो भयकी वांछा, मैथुनकी वांछा, परिग्रहकी वांछा ये च्यारि संज्ञा अर क्रोध, मान, माया, लोभ ये च्यारि कषाय अर च्यारि प्रकार आर्तध्यान अर च्यारि प्रकार रौद्रध्यान इनिकूं नित्यही परित्याग करहू । बहुरि दुष्ट जे पंच इंद्रिय इनिकूं सर्वप्रकार आपकी शक्तिकरि ज्ञानकरि वा तपकरि वा शुभभावनाकरि युक्त हुवा जीतहू ॥ गाथा—

धण्णा हु ते मणुस्सा । जेते विसयाउलम्मि लोयम्मि ॥
विहरंति विगदसंगा । णिराउला णाणचरणजुदा ॥ ४ ॥

अर्थ— पांच इंद्रियनिके विषयनिकी चाहना करिकै आकुलताकूं प्राप्त हुवो जो यो लोक, तिसकेविषैं जे सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रकरि संयुक्त भये अर विषयनिकी चाहना-रहित निराकुल अर संघ जो परिग्रह ताकरि रहित हुवा प्रवर्ते हैं, ते मनुष्य जगतमें धन्य हैं ॥ भावार्थ— सर्व लोक विषयांकी चाहकरि आकुल हैं, अर जिनके विषयांकी चाह नही रही, चाहरहित आत्मिकसुखका स्वादी परमसमताभावतें काल व्यतीत करे हैं, ते धन्य पुरुष हैं ॥ गाथा—

सुस्सूसया गुरूणं । चेदियभत्ता य विणयजुत्ता य ॥
सज्झाये आउत्ता । गुरुपवयणवच्छला होह ॥ ५ ॥

अर्थ— भो मुनयः ! गुरु जो रत्नत्रयादिगुणनिकरि महान् ऐसे गुरुनिका सेवनेमें अनरागी होहू। तथा चैत्य जे अरहंतनिके प्रतिबिंब, तिनविषैं भक्तिकूं प्राप्त होहू। बहुरि सदा विनययुक्त होहू। बहुरि स्वाध्यायमें निरंतर युक्त होहू। बहुरि गुरु कहिये त्रैलोक्यमें महान् जो प्रवचन कहिये स्याद्वादरूप सर्वज्ञका प्रकाश्या परमागम, तामें प्रीतियुक्त होहू ॥ गाथा—

दुस्सहपरीसहेहिं । गामवचीकंटएहि तिक्खेहिं ॥
अभिभूदा वि हु संता । मा धम्मधुरं पमुच्चेह ॥ ६ ॥

अर्थ— भो साधुजन हो ! क्षुधादिक दुःसह जे बाईस परीषह बहुरि तीक्ष्ण ऐसे ग्राम्य जे दुष्ट तिनके वचनरूप कंटक तिनकरिकै तिरस्कृत हुवा पीडित हुवाहू वीतरागतारूप धर्मकी धुरा ताहि मति छोडियो ॥ गाथा—

तित्थयरो चदुणाणी । सुरमहिदो सिज्झिदव्वयधुवम्मि ॥
अणिगूहिदबलविरिओ । तवोविधाणम्मि उज्जमदि ॥ ७ ॥

अर्थ— जाकै निश्चित सिद्धि होनहार अर मति श्रुत अवधि मनःपर्ययज्ञानका

धा। अर गर्भ जन्म तप कल्याणकनिविषैं च्यार प्रकारके देव तिनिकरि पूजाकूं प्राप्त हुवा ऐसाहू तीर्थंकर देव आपकी शक्तीकूं नहीं छिपावता तपका विधानमें उद्यम करे हैं। तो अन्यजननिकूं तपमें उद्यम नहीं करना कहा? अपि तु करनाही, सोही कहे हैं—

किं पुणु अवसेसाणं। दुक्खक्खयकारणाय साहूणं ॥
होइ ण उज्जमिदव्वं। सपच्चवायम्मि लोयम्मि ॥ ८ ॥

अर्थ— जो निश्चित सिद्धि जिनके होनहार ऐसे तीर्थंकरही तपमें उद्यम करै तो अन्य जे साधु तिनिनैं विनाशसहित लोकमें दुःखका नाश करनेके अर्थि तपविषैं जतन नहीं करना कहा? अपि तु तपमें उद्यमी होनाही श्रेष्ठ है॥ आगै वैयावृत्त्य छव्वीस गाथानिकरि कहिये हैं॥ गाथा—

सत्तीए भत्तीए। विज्जावच्चुज्जुदा सदा होह ॥
आणाए णिज्जरित्ति य। सबालवुड्ढाउले गच्छे ॥ ९ ॥

अर्थ— भो मनुयः! बालमुनि तथा वृद्धमुनि रोगी मुनि नीरोगमुनि इत्यादिकनिकरि व्याप्त जो गच्छा कहिये संघ तामैं संपूर्ण सामर्थ्यकरिकै अर भक्तिकरिकै सदाकाल वैयावत्त्यमें उद्यमी होहू, या जिनेंद्रकी आज्ञा है अर यातैं कर्मकी निर्जरा है, तातैं आपकी शक्तिप्रमाण धर्मानुरागकरिकै सर्व संघके साधूनिका वैयावृत्त्य जो टहल सेवा

तामैं सावधान होहू ॥ अब वैयावृत्य कौन कौन प्रकार करै सो कहे हैं ॥ गाथा—

सेज्जागासणिसेज्जा । उवधी पडिलेहणा उवग्गाहिहे ॥
आहारोसहवायण- । विकिंचणुव्वत्तणादीया ॥ ३१० ॥
अध्दाणतेणसावेय- । रायणदीरोहकासिवेउमे ॥
वेज्जावच्चं वुत्तं । संगहणारक्खणो वेदं ॥ ११ ॥

अर्थ— शय्याका अवकाशका प्रभात काल तथा आथणका काल दोऊ अवसरमें नेत्रनिकरि देखि अर पाछै मयूरपीछिकासूं प्रतिलेखन करिकै अर अशक्तमुनीनिका रोगीनिका तथा वृद्धनिका शयन करनेके अर्थि शोधन करना बहुरि बैठनेका स्थानककूं तथा कमंडल पीछी पुस्तककूं दोऊ अवसरमें सोधि देना बहुरि आहारकरि तथा शुध्द औषधकरि शुद्ध ग्रंथनिकी वांचना स्वाध्यायकरि तथा मलमूत्र कफादिकनिकै दूरि करनेकरि तथा एक पसवाडेतैं दूजे पसवाडेकरि शयन करावनेकरि तथा उठावना शयन करावना मार्ग चलावना इत्यादिकनिकरि वैयावृत्य करै॥ बहुरि कोऊ साधु मार्गका खेदसहित होय ताका पादमर्दनादिकरि वैयावृत्य करै तथा कोऊ साधूकै चोरनकरि तथा भील म्लेछादिकनिकरि तथा दुष्ट राजाकरि तथा श्वापद जे दुष्ट तिर्यंच तिनकरि तथा नदीके रोधकरि तथा मरिकरि तथा दुर्भिक्षकालकरि रोगकरि इत्यादिकनिका उपद्रवकरि

परिणाममें कायरता आय गई होय तो धैर्य देनेकरि आपके सामिल ग्रहण करि तथा रक्षा करि धर्मोपदेश देनेकरि इत्यादिकनिकरि जैसें साधूका परिणाम दृढ होजाय दुःख मिटि जाय तैसैं शरीरकी सेवादिक करि वैयावृत्य करै ॥ भो मुने ! इहां आहारपान सुलभ है, तथा राजादिकनिका उपद्रव नही है, चोरादिकनिकी बाधा नही है, हम तुमारी सेवामें सावधान हैं, अब कायरता मति करो, तुम हमारे सामिल रहो, हम तुमारे हैं, आज्ञा करोगे तीप्रमाण आपकी सेवामें सावधान हैं इत्यादिक कहना जो कोऊ साधु धर्मसूं चलायमान होय ताका स्थितीकरण करना सो सर्व वैयावृत्य है ॥ अब आगै जो समर्थ होय वैयावृत्य नही करे, ताके दोष दोय गाथानिकरि दिखावे हैं ॥ गाथा—

अणगूहिदबळविरिर्ड । वेज्जावच्चं जिणोवदेसेण ॥
जदि ण करोदि समत्थो । संतो सो होदि णिध्धम्मो ॥ १२ ॥
तित्थयराणा कोर्ड । सुदधम्मविराहणा अणायारो ॥
अप्पा परो य वयणं । तेण णिज्जूहिदं होदिं ॥ १३ ॥

अर्थ— जो आपका बल वीर्य नही छिपायकरिकै अर जिनेंद्रका उपदेशका क्रमकरि वैयावृत्य नही करे है-समर्थ होयकरिकेंहू साधूनिका वैयावृत्यसूं पराङ्मुख होय है, सो धर्मरहित निर्धर्मा है-धर्मबाह्य है ॥ बहुरि जो पूज्यपुरुषांका वैयावृत्य नही कीया,

सो तीर्थंकरदेवकी आज्ञा भंग करी, तथा श्रुतकरि उपदेश्या धर्मकी विराधना करी तथा वैयावृत्य नही करनेतैं आचार बिगडि जाय तातैं अनाचार प्रकट कीया ॥ बहुरि वैयावृत्यतपसूं पराङ्मुख हुवा तादि आत्महित बिगड्या तातैं आत्माकूं त्याग्या तथा साधूका आपदाहूमैं उपकार नही कस्या, तदि मुनिसमूहकाहू त्यागही भया ॥ बहुरि श्रुतकी आज्ञा वैयावृत्य करनेकी थी, ताके लोपनेतैं प्रवचन परमागमकाहू त्यागही भया ॥ ऐसैं जिनिकै वैयावृत्य नही तिनकै एकहू धर्म रह्या नही ॥ अब आगैं वैयावृत्य करनेविषैं जे गुण होय हैं, तिनकूं दोय गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

गुणपरिणामो सध्दा । वच्छल्लं भत्तिपत्तलंभो य ॥
संधाणं तव पूया । अव्वुच्छित्ती समाधी य ॥ १४ ॥
आणा संजमसाखि- । ल्लदा य दाणं च अविदिगिंछा य ॥
वेज्जावच्चस्स गुणा । य भावणा कज्जपुण्णाणि ॥ १५ ॥

अर्थ— वैयावृत्त्य करनेतैं येते गुण प्रकट होय हैं ॥ १ साधूनिके गुणनिमैं परिणाम, २ श्रध्दान, ३ वात्सल्य, ४ भक्ति, ५ पात्रलाभ, ६ संधान जो रत्नत्रयतैं जोड, ७ तप, ८ पूजा, ९ धर्मतीर्थकी अव्युच्छित्ति, १० समाधि, ११ तीर्थंकरनिकी आज्ञाका धारना, १२ संयमकी सहायता, १३ दान, १४ निर्विचिकित्सा, १५ प्रभावना, १६

कार्यपूर्णता येते वैयावृत्य करनेतैं गुण प्रकट होय हैं ॥ सो कैसैं होय हैं? यातैं इन गुणनिकी उत्पत्तिकूं भिन्न भिन्न कहे हैं ॥ तिनिमें अत्र गुणपरिणाम नामा गुण कैसैं होय; सो कहे हैं ॥ गाथा–

मोहग्गिणादिमहदा । घोरमहावेयणाए फुट्टंतो ॥ डज्झदि हु धगधगंतो । ससुरासुरमाणुसो लोउ ॥ १६ ॥ एदम्मि णवरि मुणिणो । णाणजलोवग्गहेण विज्झविदे ॥ डाहुम्मुक्का होंति हु । दमेण णिव्वेदणा चेव ॥ १७ ॥ णिग्गहिदिंदियदारा । समाहिदा समिदसव्वचेट्ठांगा ॥ धण्णा णिरावयक्खा । तवसा विधुणंति कम्मरयं ॥ १८ ॥ इय दढगुणपरिणामो । वेज्जावच्चं करोदि साहुस्स ॥ वेज्जावच्चेण तवो । गुणपरिणामो कउ होदि ॥ १९ ॥

अर्थ— सर्व जीवनिके ज्ञानादिक गुणनिकूं भस्म करनेतैं अतिमहान् जो मोहरूप अग्नि सो सर्व देव अर मनुष्यलोक ताकूं दग्ध करत है। कैसाक है लोक? चाहकी दाहरूप जो घोर महावेदना, ताकरिकै प्रकट धगधगायमान हुवा वले है ॥ ऐसैं मोहरूप अग्निकरि दग्ध होता जो लोक ताके, विषैंएक ए दिगंबरमुनि हैं ते ज्ञानरूप जलकरि मोह अग्निकूं बुझाय अर रागद्वेषरूप आतापकूं दमिकरिकै अर दाहरहित हुये संते वेदनारहित सुखी होत हैं ॥ बहुरि निग्रह कीये हैं इंद्रियद्वार जिनिनैं ऐसे,

अर रत्नत्रयमें सावधान है चित्त जिनिका ऐसे अर जिनकी सर्व चेष्टा अर सर्व अंगकी प्रवृत्ति समितिरूप होगई ऐसे, बहुरि आपकी जगतमें विख्याततता अर पूज्यता अर भोजनादिकका लाभ इनिकूं नही चाहता धन्य योगीश्वर तप करिकै कर्मरजकूं उडावे हैं—नाश करे हैं ॥ भावार्थ— जिनकै मनोज्ञविषयनिमें राग नही अर अमनोज्ञमें द्वेष नही यहही इंद्रियनिका रोकना अर रत्नत्रयमें चित्तकी सावधानी अर शरीरकी प्रवृत्ति यत्नाचारपूर्वक होय अर इहलोकपरलोकसंबंधी वांछारहित तेही साधू जगतमें धन्य हैं, तेही कर्मरजकूं तपकरि नष्ट करे हैं ॥ यापकार साधूनिके गुणनिमें अनुरागरूप दृढ परिणाम करिकै वैयावृत्त्य करे हैं, वैयावृत्त्य करनेकरिही आपकैहू तपरूप गुणनिमें परिणाम होय है ॥ भावार्थ— पूज्यपुरुषनिके गुणनिमें जाकै अनुराग होय, ताहीतैं वैयावृत्त्य बणे है। जाकै गुणनिमें अनुराग नही, ताकै वैयावृत्यहू नही बणे है। तातैं वैयावृत्त्य करनेतैं गुणपरिणाम होय है ॥ अब वैयावृत्त्यतैं श्रध्दान नामा गुण होय, सो कहे हैं ॥ गाथा—

जहजह गुणपरिणामो। तहतह आरुहइ धम्मगुणसेढिं ॥
वड्ढदि जिणवरमग्गे। णवणवसंवेगसद्धा त्ति ॥ ३२० ॥

अर्थ— जैसैं जैसैं गुणनिमें परिणाम होय, तैसैं तैसैं धर्मरूप गुणकी श्रेणीकूं चढत

है अर जिनेंद्रका मार्गमें नवीन नवीन धर्मानुराग अर संसारदेहभोगतें विरक्तारूप श्रद्धान वधत है ॥ जातें गुणनिमें अनुराग होय तदि श्रद्धान दृढ होयही अर रुचि वधै तदि वात्सल्यगुण होय, सो कहे हैं–

सद्धाए वड्ढियाए । वच्छल्लं भावदो उवक्कमदि ॥
तो तिव्वधम्मराउं । सव्वजगसुहावहो होइ ॥ २१ ॥

अर्थ— श्रद्धानके वधनेकरि भावनिमें वात्सल्य जो धर्मानुराग सो आरंभनैं प्राप्त होय है, अर जो धर्ममें अनुराग है सोही जगतके सुखकी प्राप्ति करनेवाला है। जातैं धर्मानुरागतैं इंद्रपणा अहमिंद्रपणा होय है अर अनंतसुखरूप निर्वाण होय है ॥ अब वैयावृत्यतैं भक्तिगुण होय है, सो कहे हैं ॥ गाथा–

अरहंतसिद्धभत्ती । गुरुभत्ती सव्वसाहुभत्ती य ॥
आसेविदा समग्गा । विमला वरधम्मभत्ती य ॥ २२ ॥

अर्थ— अरहंतभक्ति तथा सिध्दभक्ति अर आचार्य–उपाध्याय–सर्वसाधुभक्ति अर निर्मलधर्ममें भक्ति ये संपूर्ण वैयावृत्यकरि होय हैं। जातैं रत्नत्रयका धारकनिकी वैयावृत्य करी सो सर्वधर्मके नायकनिकी भक्ति करी ॥ अब भक्तीका माहात्म्य कहे हैं।

संवेगजणिदकरणा । णिस्सल्ला मंदरुव्व णिक्कंपा ॥

सो, अनागत अर अतीत अर वर्तमानरूप तीन कालके अरहंत और सिध्द और साधु और धर्म ये सर्व पूजे। जातैं भगवानकी आज्ञा वैयावृत्य करनेकी है। जिसनैं वैयावृत्य करी, तिसनैं सर्व धर्म आदर्‍या ॥ अब वैयावृत्य करनेतैं धर्मकी अव्युच्छित्ति दिखावे हैं ॥ गाथा-

आयरियधारणाए। सव्वो संघो वि धारिओ होइ ॥
संघस्स धारणाए। अव्वोच्छित्ती कया होई ॥ २८ ॥

अर्थ— जो वैयावृत्य करि आचार्यकूं धारण कीया, सो सर्व संघको धारण कीया अर संघका धारण करिकै रत्नत्रयधर्मकी अव्युच्छित्ति करी ॥ गाथा-

साहुस्स धारणाए। वि होइ तह चेव धारिओ संघो ॥
साहू चेव हि संघो। ण हु संघो साहुविदिरित्तो ॥ २९ ॥

अर्थ— अर साधूके धारणतैं सर्व संघका धारण होय है। जातैं साधूही संघ है। साधूसूं जुदा संघ नहीं है। तातैं जो साधूका वैयावृत्य करि साधूकूं रत्नत्रयमें धारण कीया, सो सर्वसंघकूं धार्‍या ॥ गाथा--

गुणपरिणामादीहि य। अणुत्तरविहाहि विहरमाणेण ॥
जा सिध्दिसुहसमाधी। सा वि य उग्गहिया होइ ॥ ३३० ॥

अर्थ— गुणपरिणाम श्रद्धा वात्सल्य भक्ति पात्रलाभ पूजा तीर्थकी अव्युच्छित्ति इत्यादिक सर्वोत्कृष्ट विधिकरि प्रवर्तता जो साधु सो निर्वाणका सुखकी एकता अंगीकार करी, ये पूर्वोक्त गुणपरिणामादिक निर्वाणका सुखमें लीन होनेहीके उपाय अंगीकार कीये ॥ गाथा—

अणुपालिदा य आणा । संजमजोगा य पालिदा होंति ॥
णिग्गहियाणि कसायें- । दियाणि साखिल्लदा य कदा ॥ ३१ ॥

अर्थ— वैयावृत्य करनेवाला भगवानकी आज्ञा पाली अर आपका अर परका संयम तथा शुभध्यानकी रक्षा करी। बहुरि आपका अर परका कषाय अर इंद्रियांनिका निग्रह कीया अर धर्मकी सहायता करी ॥ गाथा—

अदिसयदाणं दत्तं । णिव्विदिगिंछा य दरिसिदा होइ ॥
पवयणपभावणा वि य । णिव्वूढं संघकज्जं च ॥ ३२ ॥

अर्थ— जो वैयावृत्य करि रत्नत्रयकी रक्षा करी, सो अतिशयरूप दान दीया, अर निर्विचिकित्सा नामा सम्यक्त्वका गुण प्रकट दिखाया, अर जिनेंद्रका धर्मकी तथा आगमकी प्रभावना प्रकट करी, अर संघका कार्यका निर्वाह किया ॥ भावार्थ— जो रोगादिककरि पीडित साधूका रत्नत्रयकी रक्षा करी, सो सर्व दान दीया, रत्नत्रयस-

जस्स दढा जिणभत्ती । तस्स भयं णत्थि संसारे ॥ २३ ॥

अर्थ— संसारके परिभ्रमणका जो भय, ताकरि उपजी है प्रवृत्ति जामैं ऐसी, अर मायाचारशल्य तथा मिथ्यात्वशल्य तथा भोगवांछारूप निदानशल्य इनिकरि रहित ऐसी, अर मेरुकीनांई निष्कंप निश्चल ऐसी, जिनेंद्र भगवानकी जाकै दृढभक्ति है; ताके संसारमें भय नहीही है ॥ भावार्थ— भक्ति तौ वाही प्रशंसा करनेयोग्य है— जामें मायाचार नहीं होय, अर परमात्माकूं सत्यार्थरूप जाणिकरिकै होय, अर भोग-वांछाकरि रहित होय, अर संसारपरिभ्रमणका भयकरि उपजी होय, अर निश्चल होय ऐसी भक्ति जाकै होय, ताकै संसारपरिभ्रमणका अभावही होय है ॥ अब वैयावृत्यतैं पात्रलाभ गुण कहे हैं ॥ गाथा—

पंचमहव्वयजुत्तो । णिग्गहिदकसायवेदणो दंतो ॥
लब्भदि हु पत्तभूदो । णाणसुदरयणाणिधिभूदो ॥ २४ ॥

अर्थ— पंचमहाव्रतनिकरि युक्त अर निग्रह करी है कषाय वेदना जानैं ऐसा, रागद्वेषनिका दमनेवाला, अर नाना श्रुतज्ञानरूप रत्ननिका निधान ऐसा पात्रका लाभ वैयावृत्त्य करिकैही होय ॥ गाथा—

दंसणणाणे तवसं- । जमे य संधाणदा कदा होदि ॥

तो तेण सिध्दिमग्गे । ठविदो अप्पा परो चेव ॥ २५ ॥

अर्थ— जो पुरुष रत्नत्रयका धारककी वैयावृत्य करे है, सो दर्शन ज्ञान तप संयमथकी अपना जोड बांधे है, तिस जोडकरिके आपका आत्माकूं अर पर जो अन्य साधु दोऊनिकूं निर्वाणका मार्गमें स्थापन कीया ॥ भावार्थ- रत्नत्रयका धारकमें प्रीतिसहित वैयावृत्य करै सो आपकूं रत्नत्रयमें स्थाप्या अर जिस रोगीका वैयावृत्य कीया ताकूं रत्नत्रयमें स्थापन कीया । तातें मोक्षमार्गमें आपकूं अर परकूं स्थापन कीया ॥ अब वैयावृत्यतें तप गुणकूं कहे हैं ॥ गाथा-

वेज्जावच्चकरो पुण । अणुत्तरं तवसमाधिमारूढो ॥

पप्फोडिंतो विहरदि । बहुभवबाधाकरं कम्मं ॥ २६ ॥

अर्थ— बहुरि वैयावृत्य करनेवाला साधु सर्वोत्कृष्ट तपमें एकाग्रताकूं प्राप्त हुवा कहा करे है? जो कर्म बहोत भवनिमें बाधा करनेवाला, ताहि नाश करता संता प्रवर्ते है ॥ अब वैयावृत्यकरि पूजा नामा गुणकूं कहे हैं ॥ गाथा-

जिणसिद्धसाहुधम्मा । अणागदातीदवट्टमाणगदा ॥

तिविहेण सुद्धमदिणा । सव्वे अभिपूयिया होंति ॥ २७ ॥

अर्थ— जो शुध्दबुध्दीका धारक साधु मुनीनकी वैयावृत्य मनवचनकायकरि करी

मान दान नही। अर जाकै अशुचिकी ग्लानि नही होय ताहीसूं वैयावृत्य होय है। त्याग करना धन खरचना सुगम है अर धर्मात्माका जीर्ण रोगसहित देहकी ग्लानिरहित सेवा करना दुर्लभ है। अर धर्मकी प्रभावनाभी याही है, जो, धर्मात्माका टहल करना। ताहीका हृदयमें धर्मका प्रभाव प्रकट हुया है, जो वैयावृत्य करे है। अर संघका कार्यभी यहही है। सो निर्विघ्न रत्नत्रय धारण करना, सो वैयावृत्यके करनेवालेका सर्व उपकार है॥ गाथा—

गुणपरिणामादीहि य। विज्जावच्चुज्जुदो समज्जेदि॥
तित्थयरणामकम्मं। तिलोगसंखोभयं पुण्णं॥ ३३॥

अर्थ— वैयावृत्ययुक्त जो पुरुष सो गुणपरिणामादिक जे वर्णन कीये, तिनकरिकै त्रैलोक्यमें आनंदको कारण ऐसो तीर्थंकर नामा पुण्यकर्म संचय करे है॥ गाथा—

एदे गुणा महल्ला। वेज्जावच्चजुदस्स वहुया य॥
अप्पट्ठिदो हु जायदि। सज्झायं चेव कुव्वंतो॥ ३४॥

अर्थ— वैयावृत्य करनेमें उद्यमी ताके येते बहोत महान् गुण प्रकट योय हैं॥ स्वाध्याय करनेवाला तो आत्मप्रयोजनही साधे है अर वैयावृत्य करनेवाला आपका अर परका दोऊका उद्धार करे है॥ ऐसे अनुशिष्टि अधिकारमें छवीस गाथानिकरि

धानी छोडेगो सो ब्रह्मचर्यकी रक्षा नही करेगो विघडेहीगो गाथा–

सव्वत्तो वि विमुत्तो । साहू सव्वत्थ होदि अप्पवसो ॥
सो चेव होदि अज्जा- । उ अणुचरंतो अणप्पवसो ॥ ३४० ॥

अर्थ— जो साधु सर्व गृह धन धान्य स्त्री पुत्र भोजन भाजन नगर ग्रामादिकहूतैं न्यारा हुवा है अर सर्वत्र देशकालमें स्वाधीन है ऐसाहू साधु आर्जिकाकी संगति करता पराधीन होय है–विषयकषायनिके आधीन होय भ्रष्ट होय है ॥ गाथा–

खेळपडिदमप्पाणं । ण तरदि जह मच्छिया विमोचेदुं ॥
अज्जाणुचरो ण तरदि । तह अप्पाणं विमोचेदुं ॥ ४१ ॥

अर्थ— जैसैं कफविषैं पडी जो मक्षिका सो आपकूं कफमेंतैं छुडावनेकूं असमर्थ है, तैसैं आर्जिकाकी संगति करता साधु आपकूं कामादिकनितैं रागादिकनितैं निकासनेकूं नही समर्थ होय है ॥ गाथा–

साहुस्स णत्थि ळोए । अज्जासरिसी खु वंधणे उवमा ॥
चम्मेण सह उवेदो । ण य सरिजो जोणिकसिलेसो ॥ ४२ ॥

अर्थ— लोककेविषैं साधूकूं बांधनेकूं आर्यिकासमान कोऊ उपमा नाहीं, जैसैं चर्मकरि कीया जो बंधन तासमान और बंधन नही ॥

ज्योतिष्कादिकविद्याका करनेवाला होय, बहुरि राजादिकनिकी सेवामैं तत्पर होय, मूर्ख होय, मंत्र तंत्र यंत्रादिक विद्या करनेमें तत्पर होय ते निर्ग्रंथलिंगका धारकहू भ्रष्टाचारी संसक्त हैं ॥

अब अपगतसंज्ञकूं कहे हैं, ताकूं अवसन्नहू कहे हैं ॥ जे सम्यग्ज्ञानादिक संज्ञाकरिकै नष्ट होय, ते अपगतसंज्ञ हैं ॥ जे चारित्रकरि रहित होय, जिनवचनका ज्ञानकरि रहित होय, सांसारिक सुखमें आसक्त होय, ते अपगतसंज्ञ हैं ॥

अब मृगचारीकूं कहे हैं ॥ मृग जे वनके पशु तिनिकीनाई स्वेच्छाचारी होय, पापका करनेवाला होय, जैनमार्गकूं दूषण देनेवाला होय, आचार्यादिकनिके उपदेश-रहित एकाकी परिभ्रमण करता होय, धैर्यरहित होय, तपका मार्गतैं पराङ्मुख होय, जिनसूत्रादिकमें अविनयी ते मृगचारी हैं ॥

ऐसे ये पंचप्रकारके भ्रष्ट मुनि दर्शन ज्ञान चारित्र तप विनय इनितैं अत्यंतदूरिवर्ती, गुणनिके धारकनिके छिद्र हेरनेमें तत्पर ऐसे पार्श्वस्थादिक वंदना प्रशंसा संगति करनेयोग्यही नहीं हैं। इनिकूं शास्त्रादिकविद्याका लोभकरि वा रागकरि भयकरि कदाचित् वंदना विनयादिक नहीं करना ॥ जे इनि भ्रष्ट मुनीनिकी संगति करे हैं तेहू पार्श्वस्थादिकपणानैं प्राप्त होय हैं ॥ सो तन्मयता कैसी होय, ताका क्रम कहे हैं ॥

मूलाचारप्रदीपकतैं लिखे हैं ॥ १ पार्श्वस्थ, २ कुशील, ३ संसक्त, ४ अपगतसंज्ञ, ५ मृगचारी ये भ्रष्टमुनीनकी पांच जाति हैं। इनिमें भेद तो दिगंबरमुनिका अर दर्शन ज्ञान चारित्रकरि रहितपणा जानना ॥ तिनमें ताकी वसतिकामें राग होय, वा वसतिका मठ मकान एक जायगा आपका बांधि राख्या होय, अर जाकै बहोत मोह शरीरादिकनिमें ममता होय, अर कुमार्गगामी होय, उपकरणनिका रात्रिदिन संग्रह करनेमें उद्यमी होय, भावनिकी विशुद्धतारहित होय, संयमीजननितें दूर तिष्ठता होय, दुष्ट होय, असंयमीनिकी संगति करनेवाला होय, इंद्रियनिकूं जीतनेकूं असमर्थ होय, कषाय जीतनेकूं असमर्थ होय, द्रव्यलिंगका धारण करनेवाला रत्नत्रयकरिकै रहित ते पार्श्वस्थमुनि हैं; स्तुति नमस्कार करनेयोग्य नही हैं, ऐसैं जिनेंद्रदेवनें कह्या है॥

अब कुशीलका लक्षण कहे हैं ॥ जिनका कुत्सित निंद्य शील कहिये स्वभाव होय सो कुशील जानना ॥ जिनका आचरण निंद्य होय, स्वभाव जिनका निंद्य होय, क्रोधादिककरि व्याप्त जाका मन होय, व्रत शील गुणनिकरि रहित होय, धर्मका अपयश करनेवाला होय, संघका अपवाद करनेवाला होय, तिनकूं कुशील कहे ॥

अब संसक्तकूं कहिये हैं ॥ जे दुर्बुद्धि असंयमीनिका गुणमें आसक्त होय, अर आहारमें जाकै अतिगृद्धिता लंपटता होय, अर भोजनकी लंपटताकरिकै वैद्यविद्या

ऐसैं आठ गाथानिकरि आर्यिकाकी संगतिका वर्जन कह्या ॥ अब जैसा आ-र्यिकाकी संगतिका निषेध कीया, तैसा, औरहू भ्रष्ट मुनीनकी संगतिका त्याग करना योग्य है ॥ गाथा–

अण्णं पि तहा वत्थुं । जं जं साहुस्स बंधणं कुणइ ॥
तं तं परिहरह तदो । होहदि दढसंजदा तुह्मे ॥ ४३ ॥

अर्थ— जैसी आर्यिकाकी संगति बंधकू कारण जानि त्याग करना उचित है, तैसैं औरहू जो जो वस्तु साधुकै कर्मका बंधन करै, सो सो त्याग करो, तातैं तुमारै दृढसंजमीपणा हो है ॥ गाथा–

पासत्थादी पणयं । णिच्चं वज्जेह सव्वधा तुह्मे ॥
हंदि हु मेलणदोसे- । ण होइ पुरिसस्स तम्मयदा ॥ ४४ ॥

अर्थ— भो मुनीश्वर हो! थे पार्श्वस्थादिक पंचप्रकार भ्रष्ट मुनि हैं तिनकी संगति नित्यही सर्वथा वर्जन करो। जो पार्श्वस्थादिकनिकी संगति नहिं त्यागै है, तो पाछै तन्मयता होय जाय है। जातैं संगतिका दोषकरिकै पुरुषकै तन्मयता होय है

इस ग्रंथमें पार्श्वस्थादिक पंचप्रकारके भ्रष्ट मुनिनका कथन अठाईस गाथामें आगै अनुशिष्टि अधिकारमें वर्णन करेंगे, तथापि इहां जाननेके अर्थि मूलाचारग्रंथतैं तथा

लज्जं तदो वि हिंसं। पारंभं णिव्विसंकदं चेव ॥
पियधम्मो वि कमे-। णारुहंतओ तम्मओ होइ ॥ ४५ ॥

अर्थ— जाकूं धर्म अत्यंत प्रिय होय ऐसाहू साधु जो पार्श्वस्थादिकनिका संग करै, तदि प्रथम तौ हीनाचारमें प्रवर्तनेकी आपकै लज्जा थी, सो हीनाचारीकी संगतिकरि लज्जा नष्ट होय। पाछै जो आपकै असंयमभावमें ग्लानि थी "जो मैं निंद्यकर्म कैसें करूं?" सोहू लज्जा गये पाछै ग्लानिहू नष्ट होय है। पाछै चारित्रमोहका उदयतैं परवश हुवा आरंभ पापादिकनिमें निःशंक प्रवर्तता पार्श्वस्थादिकनिमें तन्मयतानैं प्राप्त होय है ॥ गाथा—

संविग्गस्स वि संस-। ग्गीए पीदी तदो य वीसंभो ॥
सदि वीसंभे य रदी। होय रदीए वि तम्मयदा ॥ ४६ ॥

अर्थ— जो संसारपरिभ्रमणतैं अत्यंत भयभीत होय, ताकैहू पार्श्वस्थादिकनिका संसर्गकरिकै प्रीति होय है। अर प्रीतितैं विश्वास होय है। अर विश्वासतैं आसक्तता रति होय है। अर रतितैं पार्श्वस्थादिकनिसूं तन्मयतानैं प्राप्त होय है ॥ अत्र दुर्जनसंगति त्यागनेयोग्य है, ताकूं दृष्टांतकरि जणावे हैं ॥ गाथा—

जदि भाविज्जदि गंधे-। ण मट्टिया सुरभिणा व इदरेण ॥

किह जोएण ण होज्जो । परगुणपरिभाविउं पुरिसो ॥ ४७ ॥

अर्थ— जो मृत्तिका जो मांटी ताकैहू सुगंध वा दुर्गंधकी भावना करिये तौ मृत्तिकाहू संयोगकरि सुगंध दुर्गंध होय है। तौ चेतनमनुष्य संगातिकरिकै परके गुणनिकरि भावनारूप कैसें नहीं होय? ॥ गाथा—

जो जारिसी य मेत्ती । करेइ सो होइ तारिसो चेव ॥
वासिज्जइ छुरिया सा- । रिया वि कणयादिसंगेण ॥ ४८ ॥

अर्थ— जो जैसी मित्रता करै सो तैसाही होय। जैसी लोहमयहू छुरी कनकादिकका संगकरिकै वासनाकूं प्राप्त होय है—कनककी कहावै है ॥ गाथा—

दुज्जणसंसग्गीए । पयहदि णिययं गुणं खु सुजणो वि ॥
सीयळभावं उदयं । जह पहयदि अग्गिजोएण ॥ ४९ ॥

अर्थ— दुर्जनकी संगतिकरिकै सुजनहू आपका गुणकूं त्यागत है। जैसें शीतल है स्वभाव जाका ऐसाहू जल अग्निका संयोगकरिकै आपका शीतलस्वभावनैं छोडि तप्ततानैं प्राप्त होय है। गाथा—

सुजणो वि होइ लहुउं । दुज्जणसम्मीलणायदोसेण ॥
माला वि मोल्लगरुया । होदि लहू मडयसंसिट्ठा ॥ ३५० ॥

अर्थ— सुजनहू दुर्जनका मिलाप सोही जो दोष ताकरिकै हलको होत है। जैसी बहुमोल्यकी पुष्पमालाहू मृतकका संश्लेषकरि लघु होय है॥ गाथा—

दुज्जणसंसग्गीए। संकिज्जादि संजदो वि दोसेण॥
पाणागारे दुद्धं। पियंतउ वंभणो चैव॥ ५१॥

अर्थ— दुर्जनकी संगतिकरिकै लोकनिनैं संयमीकूंहू दोषनिकरि सहित शंका करिये है। जैसैं कलालका घरमें दुग्धपान करताहू ब्राह्मण ताको लोक मदिरा पीनेकी शंका करे हैं॥ गाथा—

परदोसगहणलिच्छो। परिवादरहो जणो हु उस्सूणं॥
दोसट्ठाणं परिहर-। ह तेण जणजंपणोगासं॥ ५२॥

अर्थ— लोक है सो स्वभावहीतैं परके दोष ग्रहणमें वांछावान है अर अत्यंत परकी निंदामें आसक्त है, ता कारणकरिकै, दुर्जनकी संगति करोगे तो लोक तुमारी निंदा करनेको अवकाश पावेंगे। तातैं लोकनिंदाका अवकाश अर दोषनिका स्थानक ऐसा दुर्जन जे पापी मिथ्यादृष्टिजन तिनकी संगतिको त्याग करो॥ गाथा—

आदिसंजदो वि दुज्जण-। कएण दोसेण पाउणइ दोसं॥
जह घूदकए दोसे। हंसो वहिउं अपावो वि॥ ५३॥

अर्थ— अतिसंयमीहू साधू दुर्जन जे मिथ्यादृष्टि तिनकी संगति करिकै उपज्या दोष ताकरिकै दोषकूं प्राप्त होय है। जैसा निर्दोषहू हंस अपराधी घूघूकी संगतिकारि नाशकूं प्राप्त भया ॥ गाथा—

दुज्जणसंसग्गीए। विभाविदो सुयणमज्झयारम्मि ॥
ण रमदि रमदि य दुज्जण-। मज्झे वेरग्गमवहाय ॥ ५४ ॥

अर्थ— दुर्जनकी संगतिकरि भावनाकूं प्राप्त हुवा साधु सुजन जे उत्तम पुरुष तिनके मध्य नही रमे है। वैराग्यकूं त्यागिकरि दुष्टनिके मध्य रमे है ॥ अब सुजनकी संगतिकरिकै गुण होय, तिनिकूं कहे हैं ॥ गाथा—

जहदि य णिययं दोसं। पि दुज्जणो सुयणवइयरगुणेण ॥
जह मेरुमल्लियंतो। कवो वि णिययं छविं जहइ ॥ ५५ ॥

अर्थ— सज्जनका मिलापकरिकै दुष्टहू आपका दोषकूं त्यागत है। जैसैं मेरूका शिखरकूं प्राप्त भया काकपक्षी सो अपनी कृष्णप्रभाकूं त्यागत है ॥ गाथा—

कुसुममसुगंधमवि जह। देवयसेसत्ति कीरदे सीसे ॥
तह सुयणमज्झवासी। वि दुज्जणो पूइउं होइ ॥ ५६ ॥

अर्थ— जैसैं सुगंधरहितहू पुष्प देवताकी आसिकाको जाणि मस्तकविषैं चढाइये है,

तैसैं सुजनांके मध्य वास करतो दुर्जनहू पूज्य होय है—आदरवेजोग्य होय है ॥ भावार्थ यद्यपि कोऊ द्रव्यसंयमी है—भावसंयमरहित है अर दुःखमें कायर है, तथापि संसारतैं भयभीत एसे साधनिकी संगतितैं वचनकायका निमित्तसूं आस्रवनिरोध करेही है। यद्यपि धर्ममें राग नही होय तथापि भयकरिकै अभिमानकरिकै लज्जाकरिकै पापक्रियामें प्रवृत्ति नहीही करे है अर संगतितैं सर्वके आदर करनेयोग्य होयही है॥ गाथा—

संविग्गाणं मज्झे । अप्पियधम्मो वि कायरो वि णरो ॥
उज्जमदि करणचरणे । भावणभयमाणलज्जाहिं ॥ ५७ ॥

अर्थ— जाकूं धर्म प्रिय नही अर दुःखपरीषहतैं अत्यंत कायर ऐसाहू पुरुष, संसारतैं भयभीत ऐसे संयमीनिके मध्य वास करता वारंवार धर्मकी प्रभावना श्रवणकरिकै, भयकरिकै, अभिमानकरिकै, लज्जाकरिकै चारित्रमें उद्यमी होयही है ॥ गाथा—

संविग्गो वि य संवि- । ग्गदरो संविग्गमज्झयारम्मि ॥
होइ जह गंधजुत्ती । पयडिसुरभिदव्वसंजोए ॥ ५८ ॥

अर्थ— अर जो आप संविग्न होय संसारदेहभोगनितैं विरक्त होय अर वीतरागीनिके मध्य रहै, सो साधुपुरुष अत्यंत संविग्नतर होय है—अत्यंत वीतरागी होय है ॥ जैसैं जो प्रकृतिहीसूं सुगंधद्रव्य होय अर फेरि बहोत सुगंधद्रव्यनिका संयोग मिलै तदि

अत्यंत सुगंध होजाय, तैसैं जानना ॥ गाथा—

पासत्थसदसहस्सा- । दो वि सुसीलो वरं खु एक्को वि ॥
जं संसिदस्स सीळं । दंसणणाणचरणाणि वड्ढंति ॥ ५९ ॥

अर्थ— चारित्ररहित ज्ञानदर्शनरहित ऐसे भ्रष्ट मुनीनिका जो लक्ष कोटि तिनितैं सुशील जो उत्तम आचारका धारण करनेवाला एकही श्रेष्ठ है। जातैं सुशील जो भावलिंगी, ताका आश्रयकरि शील दर्शन ज्ञान चारित्र वृद्धीकूं प्राप्त होय हैं ॥ भावार्थ- जिनतैं सत्यार्थधर्म प्रवर्तै, सो एकही श्रेष्ठ है। जिनतैं सत्यार्थधर्म नष्ट होय, विपरीतमार्ग प्रवर्तै, ऐसे लक्ष कोटीहू श्रेष्ठ नही ॥ गाथा—

संजदजणावमाणं । पि वरं दुज्जणकदादु पूयादो ॥
सीळविणासं दुज्जण- । संसग्गी कुणदि ण दु इदरं ॥ ३६० ॥

अर्थ— कोऊ या कहै, जो, सत्यार्थ संयमी तो हमारा आदरही नही करै, अर पार्श्वस्थ मुनि बडा आदर करै प्रीति करै, ताकूं कहे हैं— दुर्जनकरिकै करी जो पूजा, तातैं संयमीजननिकरि कीया अपमान श्रेष्ठ है ॥ जातैं दुर्जनकी संगति ज्ञानदर्शनरूप आत्माका स्वभाव ताहि नाश करे है। अर संयमीनिकी संगति ज्ञानदर्शनादिक आत्माका स्वभावकूं प्रकट करे है, उज्वल करे है ॥ गाथा—

आसयवसेण एवं । पुरिसा दोसं गुणं च पावंति ॥
तह्मा पसत्थगुणमे- । व आसयं अल्लिएज्जाह ॥ ६१ ॥

अर्थ— याप्रकार आश्रयका वशकरिकैं पुरुष जे हैं ते गुण अर दोषकूं प्राप्त होय हैं। तातैं श्रेष्ठगुणका धारक साधुजन तिनका आश्रयही करो, अधम पार्श्वस्थादि भ्रष्टमुनीनिकी संगति मति करो ॥ गाथा—

पत्थं हि दयाणिट्ठं । पि भणइ साहुस्स सगणवासिस्स ॥
कडुगं व ओसहं तं । महुरविवागं हवदि तस्स ॥ ६२ ॥

अर्थ— जो मनकूं अनिष्टभी लागै अर परिपाककालमें जाका फल मीठा होय ऐसी पथ्यशिक्षा अपने गणमें वसनेवालेकूं कहैं, वा शिक्षा ताकैं जैसैं कडवी औषध रोगीकूं परिपाककालमें मिष्टफल देवै, तैसें उदयकालमें भली जानना ॥ कोऊ या कहै, परकूं अनिष्ट कहनेकरि आपकै कहा प्रयोजन? ऐसैं उदासीन नहीं होना । आपका सामर्थ्यमाफिक धर्मानुरागकरिकैं परका उपकारमैंही प्रवर्तना श्रेष्ठ है ॥ गाथा—

पत्थं हि दयाणिट्ठं । पि भण्णमाणं णरेण घेतव्वं ॥
पेल्लेदूण विछूडं । वालस्स घदं व तं खु हिदं ॥ ६३ ॥

अर्थ— जो पथ्य होय परिपाककालमें जाका फल मीठा होय अर वर्तमानमें

मनकूं कडवानी होय, तौ ऐसी कही हुई शिक्षा पुरुषनैं ग्रहण करवो जोग्य है। कैसी है उत्तमपुरुषनिकी शिक्षा? जैसैं बालककूं जबरीतैं दाबिकरिकै दुग्धघृतादिकका पावना, तैसैं है ॥

ऐसैं अनुशिष्टि अधिकारमें अकईस गाथानिकरि पार्श्वस्थादिक दुष्टमुनीनिकी संगति त्याग करनेकी शिक्षा करी ॥ अब आपकी प्रशंसा अर परकी निंदा करनेका त्यागकी शिक्षा सोलह गाथानिमैं करे हैं ॥ गाथा—

अप्पपसंसं परिहर- । ह सदा मा होह जसविणासपरा ॥
अप्पाणं थोवंतो । तणलहुउं होदि हु जणम्मि ॥ ६४ ॥

अर्थ— भो मुने आपकी प्रशंसाका सदाकाल त्याग करो । आपकी प्रशंसाकरि अपने यशका विनाश करनेवाला मति होहू । आपकी बडाई स्तुति करते पुरुष लोककेविषैं तृणबरोबरि लघु होय हैं, सुजनके मध्य नीचे होय है ॥ गाथा—

संता वि गुणा कत्थिं- । तयस्स णस्संति कंजिए व सुरा ॥
सो चेव हवदि दोसो । जं सोत्थोएदि अप्पाणं ॥ ६५ ॥

अर्थ— विद्यमानहू गुण आपके मुखतैं कहनेवाले पुरुषका गुण नष्ट होय हैं। जैसैं कांजीकरि सुरा मदिरा वा दुग्ध फटि जाय ॥ जामैं कोई दोष नहीं होय, ताहू योंही

बडा दोष है, जो आपकी प्रशंसा करना आपकी बडाई आपके मुखतैं करनी यासमान और दोष नही ॥ गाथा—

संता वि गुणा अकहं- । तयस्स पुरिसस्स ण वि य णस्संति ॥
अकहंतस्स वि जह गह- । वइणो जगस्सुदो तेजो ॥ ६६ ॥

अर्थ— आपकी प्रशंसा नही करने पुरुषका विद्यमान गुण नाशकूं नही प्राप्त होत हैं। जैसैं आपकी प्रशंसा नही करताहू सूर्यका तेज जगतमें विख्यात होय है, तैसे जगतमें गुग विख्यात होय हैं॥ गाथा—

ण य जायंति असंता । गुणा वि कत्थितयस्स पुरिसस्स ॥
धंति हु महिलायंतो । वि पंडवो पंडवो चेव ॥ ६७ ॥

अर्थ— अपनी प्रशंसा करनेवाला पुरुषके अविद्यमान गुण विद्यमान नही होय हैं। जातैं जामैं गुणही नही अर आपके झूठे गुण कहता फिरेगा, ताकै कहतैं अनहोते गुण कहातैं आवैगे? जैसैं अतिशयकरिकैं स्त्रीकीनांई शृंगार हाव भाव विलास विभ्रम करताहू नपुंसक है सो तौ नपुंसकही है, नपुंसक स्त्रीकीनांई आचरण करता स्त्री नही हो जायगा—नपुंसकही रहेगा ॥ गाथा—

संतं सगुणं कित्ति- । ज्जंतं सुजणो जणम्मि सोढूण ॥

लज्जदि किहि पुणु सयमे- । व अप्पगुणाकित्तणं कुज्जा ॥ ६८ ॥

अर्थ— सज्जन पुरुषनिका यो स्वभाव है, जो विद्यमानहू आपका गुण कोऊ कीर्तन करै प्रशंसा करै तदि लोकांके मध्य सुजनपुरुष लज्जाकूं प्राप्त होत है, तो बहुरि आपही आपका गुणकीर्तन कैसैं करै? कदाचित् नहीही करै ॥ आपका गुणकीर्तन नही करै, तामैं गुण होय हैं, सो दिखावे हैं ॥ गाथा—

अविकत्थंतो अगुणो । वि होइ सगुणो व सुजणमज्झम्मि ॥
सो चेव होदि हु गुणो । जं अप्पाणं ण थोएइ ॥ ६९ ॥

अर्थ— जो गुणरहितहू होय अर आपके गुणकी प्रशंसा स्वजनाके मध्य नही करै, तौ सत्पुरुषनिके मध्य गुणसहित होत है। सोही प्रकट गुण जानना, जो आपका स्तवन नही करै ॥ भावार्थ— जो आपमें गुण एकभी नही होय अर जो अपनी बढाई नही करना, सोही बडा गुण जानना ॥ गाथा—

वायाए जं कहणं । गुणाण तं णासणं हवदि तेसिं ॥
होंति दु चरिदेण गुणा- । ण कहणमुब्भासणं तेसिं ॥ ३७० ॥

अर्थ— जो वचनकरि गुणनिका कहना, सो तिन गुणनिका नाश करना है। अर जो वचनकरि तो अपना गुण नही कहे अर आचरणकरि कहना सो गुणनिका

प्रकट करना जानना ॥ भावार्थ- उत्तम पुरुष आपके गुण मुखतें प्रकट नही कहे अर गुणरूप आचरण करना ताकरि आपआप विनाकह्याही जगतमें प्रकट होय है ॥ अब जो आचरणकरि गुणका प्रकाशन, ताकी महिमा कहे हैं ॥ गाथा-

वायाए अकहंता । सयणे य कहंतया चरित्तेहिं ॥
सगुणे पुरिसा पुरिसा- । ण होंति उवरिम्मि लोगम्मि ॥ ७१ ॥

अर्थ— जे पुरुष स्वजनांमें अपने गुण वचनकरि नही कहे अर आचरणकरि कहे, ते पुरुष लोकमें पुरुषनिके उपरि होय हैं ॥ गाथा-

सगुणम्मि जणे सगुणो । वि होइ लहुगो वि कत्थिंतो ॥
सगुणो वा अकहिंतो । वायाए होइ अगुणेसु ॥ ७२ ॥

अर्थ— गुणवान् जननिमें गुणवान् पुरुष आपका गुण वचनकरि कहे, तो लघु होय है-छोटो होय है । अर अपना गुण आप वचनकरि प्रशंसा नही करतो निर्गुणनिमेंहू आप गुणवान होय है ॥ गाथा-

चरिएहिं कत्थमाणो । सगुणं सगुणेसु सोभदे सगुणो ॥
वायाए वि कहिंतो । अगुणो व जणम्मि अगुणम्मि ॥ ७३ ॥

अर्थ— गुणसहित पुरुष गुणवंतनिमें आचरणकरि गुण प्रकट कहता सोहे है अर

वचनकरि अपनी बडाई करता नहीं सोभे है । जैसैं निर्गुणपुरुषनिमें निर्गुणपुरुष आपका गुणनिकूं कहता सोहै ॥ गाथा-

सगणे व परगणे वा । परपरिवादं च मा करिज्जाह ॥
अच्चासादणविरदा । होह सदावज्जभीरू य ॥ ७४ ॥

अर्थ— अपने संघमें वा परसंघमें परका परिवाद जो परका अपवाद निंदा मति करो । अत्यासादना जो परकी विराधना, तातैं विरक्त होहू अर सदाकाल पापतैं भयभीत होहू ॥ अब परकी निंदा करनेतैं जे दोष उपजे हैं, तिनिकूं कहे हैं ॥ गाथा-

आयासवेरभयदु- । क्खसोगलहुगत्तणाणि य करेइ ॥
परणिंदा वि हु पावा । दोहग्गकरी सुयणवेसा ॥ ७५ ॥

अर्थ— खेद, वैर, भय, दुःख, शोक, लघुपणा इत्यादिक दोषनिनैं या परनिंदा उत्पन्न करेही । तथा परनिंदा पापरूपिणी है अर दौर्भाग्य करनेवाली परनिंदा है । अर या परनिंदा सुजनमें द्वेष करनेवाली है ॥ गाथा-

किच्चा परस्स णिंदं । जो अप्पाणं उवेज्ज पिच्छेज्ज ॥
सो इच्छदि आरोग्गं । परम्मि कडुउसहे पीए ॥ ७६ ॥

अर्थ— जो पुरुष परकी निंदा करिकै आपकूं गुणवानपणामें स्थाप्या चाहे है, सो

नेत्र आनंदके अश्रुपातकरि भरि आवै ॥ गाथा–

भगवं अणुग्गहो मे । जं तु सदेहो व पालिदा अह्मे ॥
सारणवारणपडिचो- । दणाउ धण्णा हु पावंति ॥ ८२ ॥

अर्थ— हे भगवन् हमारे उपरि आपका बडा अनुग्रह है, जो हमकूं देहकीनाई पालना कीए। जगतमें धन्य पुरुष हैं ते गुरुनितैं सारण वारण प्रतिचोदनानिकूं प्राप्त होत हैं। सारण तौ पूर्वै पाये रत्नत्रयादिकगुणानिकी रक्षा अर वारण–रत्नत्रयादिक गुणनिमैं अतीचारादिक विघ्न आवै तिनकूं टालना, अर प्रतिचोदना कहिये भो मुने ऐसैं करहू ऐसैं मति करहू याप्रकार प्रेरणाकरि रत्नत्रयादिक गुणनिका वधावना अर दोषनिकूं टारि आत्माको उज्वल करना, ऐसैं सारण वारण प्रतिचोदना गुरुनितैं कोऊ धन्यपुरुषनिकूं प्राप्त होय हैं ॥ गाथा–

अह्मे वि खमावेमो । जं अण्णाणप्पमादरागेहिं ॥
पडिलोमिदा य आणा । हिदोवदेसं करित्ताणं ॥ ८३ ॥

अर्थ— हे भगवन्? हमहू क्षमा ग्रहण करावे हैं। जो हितरूप उपदेश करते जे आप, तिनकी आज्ञा "अज्ञान वा प्रमाद वा रागभाव, तिनकरि अपूठा होय" लोप करी होय ॥ भावार्थ– हे भगवन् आप तो करुणावान् होय हमकूं हितरूप

उपदेश कीया, अर हम अज्ञानी प्रमादी रागी आपका उपदेशकूं नहीं ग्रहण कीया, सो यह हमारा बडा दोष ताहि हमहू आपतैं क्षमा ग्रहण करावे हैं। हमारा उद्धार आपकी करुणादृष्टिहीतैं होय, और शरण नहींही है॥ गाथा–

सहिदयसकण्णया मो। कदा सचक्खूपलद्धसिद्धिपहा॥
तुह्म वियोगेण पुणो। णट्ठदिसाउं भविस्सामो॥ ८४॥

अर्थ— हे भगवन्! आपके चरणारविंदके प्रसादनैं हमकूं मनसहित कीये, कर्णसहित कीये, नेत्रसहित कीये अर पाया है निर्वाणका मार्ग जिननैं ऐसे कीये। अब आपके वियोगतैं नष्ट भई है दिशा जिनकै ऐसे होवैंगे॥ भावार्थ– हे भगवन्! हम असंज्ञीकीनांई हित अहित, मार्ग अमार्ग, धर्म अधर्मकूं नहीं जानते थे, सो आपके चरणारविंदके आश्रयकरि हम हमारा हित अहित, मार्ग अमार्ग, धर्म अधर्म जान्या, तातैं आप हमकूं हृदयसहित कीये॥ बहुरि हम अनादिके बधिरकीनांई हित अहित नहीं सुन्या था, सो आपके प्रसादतैंहित अहित श्रवण करिकै हित अहित जान्या, तातैं आप हमकूं कर्णसहित कीये॥ बहुरि हे भगवन्! हम अनादि स्वपरका स्वरूप नहीं देखनेतैं अंधसमान थे, सो आपके चरणारविंदके प्रसादतैं सर्वपदार्थनिका स्वरूप देख्या, तातैं आप हमकूं ज्ञाननेत्रसहित कीये॥ अर हे

भगवन्! जैसें कोऊ मार्ग भूलि विषमवनीमैं नष्ट होय परिभ्रमण करै तैसैं हमहू हमारा हित जो निर्वाण, ताका मार्ग भूलि अनंतानंतकालतैं भ्रष्ट होय परिभ्रमण करते थे, तिनकूं आप निर्वाणका मार्गमें ऐसैं लगाय दिया--जातैं खेदरहित निर्वाणपुरकूं जाय पहुचेंगे ॥ ऐसा सर्वोत्कृष्ट उपकार आप हमारा किया, अब आपका वियोगका दिन आय पहुंचा! सो आपके वियोगकरि हमारै दसूं दिशा शून्य भई-अंधकार भया! ॥ गाथा-

सव्वजयजीवहिदए । थेरे सव्वजगजीवणाथम्मि ॥
पवसंते य मरिंते । देसा किर सुण्णया होंति ॥ ८५ ॥

अर्थ-- संपूर्ण जगतके जीवनिके हितरूप, अर संपूर्ण तप ज्ञान संयम चारित्रकी आधिक्यतातैं वृद्धरूप, अर सर्व जगतके जीवनिके नाथ ऐसे आचार्य मृत्यूकूं प्रवेश करते संते सर्व देश निश्चयथकी शून्यही होत हैं ॥ गाथा-

सव्वजयजीवहिदए । थेरे सव्वजगजीवणाथम्मि ॥
पविसंते य मरंते । होदि हु देसंधयारो त्थ ॥ ८६ ॥

अर्थ-- हे भगवन्! सर्व जगतके जीवनिके हितू अर ज्ञानादिकनिकरि वृद्ध अर सर्वजगतके जीवनिके नाथ आचार्य मरणकूं प्रवेश करते संते सर्वदेश अंधकाररूप

होय है ॥ भावार्थ– हे भगवन्‌ ! आपसदृश ज्ञानके सूर्य अस्तताकूं प्राप्त भये, तब देश अंधकाररूपही भासे है ॥ गाथा–

सीलड्ढगुणड्ढेहिं दु । बहुस्सुदेहिं अवरोवतावीहिं ॥
पवसंते य मरंते- । हिं य देसाउ खंडिया होंति ॥ ८७ ॥

अर्थ— शीलकरि सहित तथा ज्ञानादिकगुणनिकरि सहित तथा बहुश्रुतज्ञानकरि सहित अर परजीवनिकै ताप नही करनेवाले ऐसे आचार्य मरणकूं प्रवेश कीया तदि देश खंडित भये ॥ गाथा–

सव्वस्स दायगाणं । समसुहदुक्खाण णिप्पकंपाणं ॥
दुक्खं खु विसहिदुं जे । चिरप्पवासो वरगुरूणं ॥ ८८ ॥

अर्थ— संपूर्ण दर्शनज्ञानचारित्रतपके दातार, अर समान है सुखदुःख जिनकै, अर उपसर्गपरीषहनिकरि अकंप निश्चल ऐसे श्रेष्ठ गुरूनिका चिरकाल वियोग सहना बडाही दुःख है ! ॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानसन्यासमरणके चालीस अधिकारनिमें अनुशिष्टि नामा चोदमां अधिकार एकसो पांच गाथासूत्रनिकरि पूर्ण कीया ॥ आगै परगणचर्या नामा पंद्रमां अधिकार सतरह गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा–

एवं आउच्छित्ता । सगणं अब्भुज्जदं परिहरंतो ॥
आराधणाणिमित्तं । परगणगमणे मदिं कुणदि ॥ ८९ ॥

अर्थ— ऐसें आपके संघकूं पूछिकरिकै अर रत्नत्रयमें उद्यमी जो आचार्य सो आपकै आराधनामरण करनेके निमित्त अन्यसंघमें गमन करनेमें बुद्धीकूं करै ॥ अब कोऊ या शंका करै– जो, अपना संघकूं छोडि परसंघमें कोन प्रयोजनके अर्थि प्रवेश करे हैं? ऐसी शंका होतें, अब आपके संघमें रहें येते दोष आवे हैं तिनिकूं कहे हैं ॥

सगणे आणाकोवो । परुसं कलहपरिदावणादी य ॥
णिब्भयसिणेहकोलुणि- । य झाणविग्घो य असमाधी ॥ ९० ॥
उड्डा-ह कए थेए । कालहिया खुद्दया खएसेहा ॥
आणाकोवं गणिणो । करिज्जतो होदि असमाधी ॥ ९१ ॥

अर्थ— आपके संघमें रहे तो आज्ञाकोप कठोरवचन कलह परितापन निर्भयता स्नेह कारुण्य ध्यानविघ्न असमाधि येते दोष होय ॥ तथा स्थविरमुनि अयश करनेवाला होवै, क्षुद्रमुनि कलह करनेवाले होवै, मार्गके नही जाननेवाले कठोर होजाय आचार्यकी आज्ञा लोप करै, आज्ञालोपतें असमाधी होय परिणाम विगडि जाय ॥ भावार्थ– आपके संघमें रहे तादि जो आप अशक्त होय कोऊकूं आज्ञा करै अर आज्ञा नही

मानै तो परिणाममैं कोप होजाय। तथा जे चूकिर चाल, तिनमैं अपना जानि कठोर वचन प्रवर्तिजाय। तथा आपकोऊकूं हितमें प्रेरणा करै अर नही गिणै तौ कलह परिणाममें उपजावै। तथा कोऊ संघमें दोषसहित प्रवर्तै, तो आपको जाणि आपकै संताप उपजि आवै। तथा रोगसूं आपका परिणाम बिगडि जाय, तो अयोग्य आचरणमेंभी निर्भय होजाय। तथा मरणका अवसरमें आपकै स्नेह उपजि आवै। तथा कोऊकूं दुःखी देखै तो करुणा उपजि आवै। ध्यानमें विघ्नभी होय है। तथा आप शिथिल होय संघकूं शिक्षा नही करै तौ वृद्धमुनि अयश करै। अर जो असमर्थ होय शिक्षा करै तौ क्षुद्र अज्ञानी कलह करनेवाले होजाय। बहुरि अज्ञानी आज्ञाका लोप करै, तदि कोप होजाय, कोपतैं सावधानी बिगडिजाय। यातैं स्वगणमें रहनेतैं येते दोष जानि मरण नजीक आवै तदि परसंघमें प्रवेश करना श्रेष्ठ है॥ गाथा—

परगणवासी य पुणो। अव्वावारो गणी हवदि तेसु॥
णत्थि य असमाधाणं। आणाकोवम्मि वि कदम्मि॥ ९२॥

अर्थ— बहुरि जो आचार्य परसंघमें वास करै, सो शिक्षादिक व्यापारकरि रहित होय है। अर कोऊ आज्ञा नहीभी मानै, ताहू आपके परिणाममें असमाधान नही होय है॥ भावार्थ— जो आचार्य आपका संघहू छोडि परसंघमें जाय, सो कोऊकूं

आज्ञा नही करै। अर जो कोऊकूं किंचित् कार्य कहै अर करदेवै तो बडा उपकार मानै। अर आपका वचन कठोर निकलैही नही। जो हमारा धर्म जानि उपकार वैयावृत्त्य बनै जितना करे हैं वे धन्य हैं। अर हम परसंघमें कोऊकूं संताप उपजावने आये नही, हमारा कल्याण करने आये हैं। ऐसा विचारि परगणमें जायगा ताकै कषायका मंदपणा चारित्रका दृढपणा ममत्वका अभाव अर परका किंचित् उपकारहूकूं बहोत बडा मानना इत्यादिक गुण प्रकट होय हैं। ऐसैं आज्ञाकोपदोष कह्या ॥ अब द्वितीय दोष जो कठोरवचन बोलना, ताहि कहे हैं ॥ गाथा–

खुद्दे थेरे सेहे। असंवुडे दट्ठु कुणइ वा फरुसं ॥
ममकारेण भणिज्जो। भणिज्ज वा तेहि परुसेण ॥ ९३ ॥

अर्थ— गुणनिकरि हीन ऐसे क्षुद्र जे हैं तिनही, तथा तपकरि वृद्ध ऐसे स्थविर जे हैं तिनही, तथा अमार्गज्ञ जे रत्नत्रयके नही जाननेवाले तिनही असंयमरूप प्रवर्तते देखि ममकार जो ममता "ये हमारे शिष्य हैं संघके हैं" ऐसैं अयोग्य कैसें प्रवर्तत हैं या विचारि कठोर वचन आपका निकलै, करडा वचन तिरस्कारके वचन कहिवेमें प्रवृत्ति होजाय। अथवा संघके अज्ञानी क्षुद्रादिक आपकूं निंद्यवचन कहले अर आप कठोर बोले तो समाधि बिगडि जाय अर पैला

आपकूं निंदा करै अर आपका परिणाम बिगडै तौ समाधिमरण बिगडि जाय। तातैं आपके संघनैं छोडि परसंघमें गमन करनाही श्रेष्ठ है॥ गाथा—

पडिचोदणासहणदा। ण होज्ज गणिणो वि तेहि सह कळहो॥
परिदावणादिदोसा। य होज्ज गणिणो व तेसिं वा॥ ९४॥

अर्थ— प्रतिचोदना जो गुरुनिकी शिक्षा, ताका नहीं सहनेकरि आचार्यका क्षुद्रादिकनिकरि सहित कलह होय, तदि आचार्यके परिणाममें संतापादिदोष होय हैं। वा क्षुद्र जे अज्ञानी तिनकैहू संतापादिक परिणाममें होय हैं॥ गाथा—

कलहपरिदावणादी। दोसे य अमाउले करंतेसु॥
गणिणो हवेज्ज सगणे। ममत्तदोसेण असमाधी॥ ९५॥

अर्थ— कदाचित् संघमें कोऊ मुनिका किंचित् कलह परितापनादिक परस्पर हो-जाय तो आचार्यकै आपका संघमें ममत्वका दोषकरिकै ध्यान बिगडि असमाधान होय है॥ भावार्थ- यद्यपि मुनीनिका मार्गहि ऐसा, जो, संघमें ईर्षा विसंवाद कलहादिक कदाचितहू नहीं होय है, तथापि जीवनकै कर्म बलवान् है! कोऊ अज्ञानीनिकै विसंवाद उपजि आवै, तदि जो आचार्य समर्थ होय तो तत्काल मेटि प्रायश्चित्तादिक देय शुद्ध करै अर रोगादिककरि वा संन्यासका अवसरमें आचार्य असमर्थ

होजाय अर कोऊके विसंवाद होजाय तो ताकूं श्रवणकरि वा देखिकरि अपने जानि ममत्वका दोषकरि परिणाममें कलुषता होजाय तो समाधिमरण बिगडि जाय। तातैं परसंघमें जाय अर अन्यसंघके आचार्यके निकटि जाय साधुपणा अंगीकार करि अर आराधनासहित देहत्याग करना श्रेष्ठ है॥ अब परितापनादि दोषकूं कहे हैं॥ गाथा—

रोगादंकादीहि य। सगणे परिदावणादिपत्तेसु॥
गणिणो हवेज्ज दुक्खं। असमाधी वा सिणेहो वा॥ ९६॥

अर्थ— आपका शिष्य रोग जो अल्पव्याधि आतंक जो महाव्याधि इनिकरि परितापनैं प्राप्त होजाय तो आचार्यकै दुःख होजाय वा असमाधि होजाय वा स्नेह होजाइ॥ भावार्थ- आचार्य आपके संघमें रहे अर संघमें मुनीश्वरनिकै रोगादिक पीडा उपजि आवै अर कदाचित् ममत्वसूं आपकै संघकी त्रकको दुःख होय वा स्नेह होजाय, तदि समाधिमरण बिगाडि जाय, तो फेरि संसारमें डूबि जाय! तातैं अंतकालमें अपना संघ छोडि अन्यसंघप्रति विहार करना उचित है॥ गाथा—

तण्हादिएसु सहणि-। ज्जेसु वि सगणम्मि णिब्भओ संतो॥
जाएज्ज वसेएज्ज व। अकप्पियं किंपि वीसत्थो॥ ९७॥

अर्थ— अर कदाचित् सहनेयोग्यहू क्षुधातृषादिक परीषह होता संता आपका

संघमें विश्वासरूप हूवो भयलज्जारहित हूवो अयोग्यवस्तु याचना करै वा अयोग्य सेवन करै तो परलोक बिगडिही जाय! ॥ भावार्थ- परसंघमें जाय रहै तदि महान् घोर परीषह आवताभी लज्जाकरिकै भयकरिकै अयोग्यवस्तूका नामभी बोलै नही, याचनाका अर सेवनेका तो लेशही नही उपजै अर परिणामभी अति गाढ पकडै अर भयभी लज्जाभी बहोत रहै, जो, मै मेरा गुरुकुल अर धर्म दोऊकूं निंद्य कैसैं कराऊं!! अर अयोग्यका सेवनेवाला जो समझेंगे, तो मोकूं अधर्मी पापी मायाचारी जाणि सर्व निरादर करदेंगे। अर अपना संघमें लज्जाभय रहे नही, तातैं परसंघमें विहार करना उचित है॥ गाथा-

वुड्ढे सयंकवड्ढिय। वाले अज्जाउ तह अणाहाउं ॥
पासंतस्स सिणेहो। हवेज्ज अच्चंतिय विउगो ॥ ९८ ॥

अर्थ— वृद्धमुनीश्वरनिनैं तथा धर्मानुरागरूप जो आपकी गादी तामैं धर्मरूप करि वधाये ऐसे बालमुनि तथा औरहू संघकू सेवनेवाले धर्मानुरागमें लीन ऐसी आर्यिका वा श्रावक जे आपके आधीनही धर्मसेवन करते व्रत पालते तिनकूं देखता जो आचार्य ताकै मरणके अवसरमें अत्यंत वियोग होनेतैं स्नेह उपजि आवै तो समाधि बिगडि जाय। तातैंहू परगणचर्या श्रेष्ठ है॥ अब कारुण्यदोष कहे हैं॥ गाथा-

खुड्डा य खुड्डियाउं । अज्जाउं वि य करेज्ज कोलुणियं ॥
तो हुज्ज झाणविग्घो । असमाधी वा गणधरस्स ॥ ९९ ॥

अर्थ— और संघमें सर्वही धर्मानुरागी आवे हैं, सेवन करे हैं, उपासना करे हैं। तिनमें कोऊ क्षुद्र बालक वा क्षुल्लक श्रावक वा श्राविका वा आर्यिका गुरुनिका अत्यंत वियोग देखि रुदन कर तो आचार्यकै शुभध्यानमें विघ्न होय असमाधि कहिये सावधानी बिगडि जाय तो बडा अनर्थ होय। तातै परसंघमें गमन करना उचितही है॥

भत्ते वा पाणे वा । सुस्सूसाए व सिस्सवग्गम्मि ॥
कुव्वंतम्मि पमादं । असमाधी होज्ज गणवदिणो ॥ ४०० ॥

अर्थ— अथवा भोजनमें वा पानमें शिष्य जे साधु वा श्रावक शुश्रूषा करिवेमैं जो प्रमाद करै तो आचार्यका परिणाम बिगडि जाय, जो, मै एताकालतांई इनका बडा उपकार कीया अर अब हमारा अंतकाल, तामैं जो किंचित् टहल वैयावृत्य तिनमैं प्रमादी होगये, हमारा उपकार विस्मरण होगये! ऐसा परिणाम कदाचित् होजाय तो समाधिमरण बिगडि जाय। अर परके संघमें थोडाहू उपकार करै, ताका बहोत अंगीकार करै, तातैं अपना संघ छोडि परसंघमें विहार करना योग्य है ॥ गाथा—

एदे दोसा गणिणो । विसेसदो होंति सगणवासिस्स ॥

भिक्खुस्सवि तारिसस्स। य होंति पाएण ते दोसा ॥ १ ॥

अर्थ — एते जे आज्ञाकोपादिक दोष कहे ते अपने संघमें रहनेवाले आचार्यनिकै आवे हैं। तथा आचार्यसारिखे अन्यहू प्रधानमुनि जे उपाध्याय प्रवर्तक तिनकै बाहुल्यपणाकरिकै आवे हैं। तातैं प्रधान जे मुनि आचार्य उपाध्याय प्रवर्तकादिक तिनकूं अपना संघ छोडि परसंघमें विहार करना श्रेष्ठ है ॥ गाथा–

एदे सव्वे दोसा। ण हुंति परगणणिवासिणो गणिणो ॥
तह्मा सगणं पयहिय। वच्चदि सो परगणं समाधीए ॥ २ ॥

अर्थ — परसंघमें वसनेवाले जे आचार्य ताकै ये पूर्वोक्त दोष नही प्राप्त होय हैं। तातैं समाधिमरणके अर्थि आपका संघकूं त्यागकरिकै अर परसंघमें गमन करै ॥ गाथा–

संते सगणे अह्मं। रोचेदूणागदो गणमिमोत्ति ॥
सव्वादरसत्तीए। भत्तीए वट्टइ गणो से ॥ ३ ॥

अर्थ — अन्यसंघमें सन्न्यास करनेकूं जाय तब सर्व संघके मुनि विचार करै, जो, ये आपका संघको विद्यमान होता भी आपके संघकूं त्यागि अन्य संघमें रुचि करि आये हैं, ऐसैं विचारि सर्व आदरकरिकै शक्तिकरिकै भक्तिकरिकै सर्व संघ ताके वैयावृत्यमें प्रवर्ते है ॥ गाथा–

गहिदत्था चरणत्था । पत्थेहूणागदस्स खवयस्स ॥
सव्वादरेण जुत्ता । णिज्जवगो होदि आयरिउ ॥ ४ ॥

अर्थ— गृहीतार्थ कहिये सम्यग्ज्ञानी अर चारित्रमें तिष्ठता ऐसा आचार्यहू आया जो परसंघका मुनि ताकूं प्रार्थना करिकै बडा आदरकरि युक्त सन्न्यास करायवेकूं निर्यापक होय हैं ॥ भावार्थ—सन्न्यासवासतै अन्यसंघमें जाय सो अन्यसंघका आचार्य इनकूं बडी प्रार्थनातैं ग्रहण करि अर बहोत आदरसहित आगंतुक मुनिका सम्यक् आराधना करायवेकूं निर्यापक होय है—संसारतैं पार करनेवाला होय है। कैसा है अन्य संघका आचार्य? गृहीतार्थ कहिये स्याद्वादरूप जिनेंद्रका आगमकरि स्वतत्त्व अर परतत्त्व तिनकूं आच्छाशीत जानि लीया है, अज्ञानीकै गुरुपणा बने नहीं। बहुरि चारित्रमें आच्छीतरह तिष्ठतो होय, जो आपही भ्रष्टाचारी होय ताकै निर्यापकाचार्यपणो बने नहीं ॥ गाथा—

संवेगवज्जभीरु- । स्स पादमूलम्मि तस्स वहिरंतो ॥
जिणवयणसव्वसार- । स्स होदि आराधउ तादि ॥ ५ ॥

अर्थ— संसारपरिभ्रमणतैं भयकरि युक्त होय अर पापतैं अत्यंत भयवान् होय ऐसे गुरूके चरणके निकटि जाय अर जिनेंद्रके वचनरूप सर्वसारको आराधक होय है ॥

भावार्थ– जाकै संसारका तथा पापका भय होय तिसही गुरूके निकट आराधनामरण होय है। अर जाकै पापका भय नही संसारमें पतनका भय नही ऐसा पापी गुरूके निकट काहेका आराधनामरण? वाके संगतैं तो आराधना बिगडै ॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारविषैं सतरह गाथानिकरि परगणचर्या नामा पंद्रमां अधिकार समाप्त कीया॥ अब आगै निर्दोष निर्यापकाचार्यका हेरनेका वर्णनरूप मार्गणा नामा अधिकार सतरह गाथानिकरि कहे हैं॥ गाथा–

पंचछसत्तजोयण-। सदाणि तत्तोहियाणि वा गंतू॥
विज्जावगमणे सदि। समाहिकामो अणुस्सादं ॥ ६ ॥

अर्थ— समाधिमरणकी इच्छा करनेवाला जो साधु सो शास्त्रकरि कह्या हुवा जो निर्यापकगुरु तिनिकूं प्राप्त होनेकूं पांचसै छसै सातसै वा इनितैंहू अधिक योजनपर्यंत हेरै–तलास करै॥ भावार्थ– कोऊ या आसंका करै, जो, कोऊ अवसरमें ऐसे गुरु वा संघ दुसरा नही मिलै तो कहा करै? तातैं कह्या है, जो, समाधिमरण करनेका वांछक होइ सो दूरिक्षेत्रहूमैं तलास करि संसारतैं पार करनेवाले गुरूनिका शरणही ग्रहण करै॥ सोही कालका नियम कहे हैं॥ गाथा–

एक्कं व दो व तिण्णि व। बारस वरिसाणि वा अपरिदंतो ॥

णिज्जवयमणुस्सादं । गवेसदि समाधिकामो दु ॥ ७ ॥

अर्थ — समाधिमरण करनेका इच्छक जो साधु सो भगवानका आगममें कहे जे निर्यापकके गुण आचारवानादिक आगे इस ग्रंथमें वर्णन करेंगे तिन गुणनिके धारक गुरूकूं एक वर्ष वा दोय वर्ष वा तीन वर्ष वा द्वादश वर्षपर्यंत खेदरहित हूवा सातसैं योजनतांई ढूंढे हेरै अवलोकन करे ॥ भावार्थ— वडी आयु अर वडी बुद्धीके धारक जे मुनि आयुमें बारहवर्ष बाकी रहे जानि ले तदिहीतैं निर्यापक गुरूका तलासमें रहे विहार करै अर घाटि आयु होय तो जैसें अवसर देखे तैसें आपके संघकूं त्यागि परसंघमें जाय गुरुनिका शरण ग्रहण करै ॥ आगे निर्यापक गुरुनिके अवलोकनके अर्थि आपका संघका स्वामीपणा त्यागि विहार करै, ताका अनुक्रम कहे हैं ॥ गाथा—

गच्छेज्ज एगरादि य । पडिमाअज्झयणपुच्छणाकुसलो ॥
थंडिल्लो संभोगि य । अप्पडिवद्धो य सव्वत्थ ॥ ८ ॥

अर्थ— एकरात्रि प्रतिमायोग धारण करि गमन करै, मूलसूत्रमें तो ऐसा अर्थ दीखे है अर टीकाकार और अर्थ लिख्या है ॥ अब इस गाथाका अर्थ टीकाकारकृत लिखिये है—एकरात्रि भिक्षु प्रतिमा कहा तीन उपवास करिकै अर चौथी रात्रिविषैं ग्रामनगरादिकके बहिर्देशादिमें वा स्मशानभूमीविषैं पूर्वसन्मुख वा उत्तरदिशाकै सन्मुख

अथवा जिनप्रतिमा जिनमंदिरकै सन्मुख होयकरिकै, अर दोऊ चरणनिकै च्यार अंगुलप्रमाण अंतर समपाद खडा होयकरिकै, अर नासिकाका अग्रभागविषै दृष्टि स्थापन करिकै, कायतैं ममता छोडिकारिकै तिष्ठै। कैसा हुवा तिष्ठै? सावधान है चित्त जामैं, च्यार प्रकारके उपसर्ग सहनेवाले कदाचित् चलायमान नही होवे अर पतन नही करै, ऐसे कायोत्सर्गकरि युक्त जितनै सूर्योदय नही होय तितनै तिष्ठै। पश्चात् स्वाध्याय करि बहुरि दोय कोश गमन करि बहुरि गोचरी जो भोजन ताके अर्थि वसतीमैं जाय वा दूर मार्ग होय तो प्रहर वा च्यार घडी तिष्ठिकरि मंगलाचरण करि भोजनकूं जाय। ऐसैं स्वाध्यायकुशलता कही॥ संयमी तथा आर्जिका तथा श्रावक इत्यादिकानैं देखि भोजनकूं जाय अर भोजन करि कायसोधन जो मलादिकनिका दूरीकरण ताके अर्थि स्थंडिल जो चौडा शुध्द मकान देखि वसै। आगै प्रातःकाल गमन करि मार्गके ग्राम नगर तथा यति तथा गृहस्थनिका सत्कार तिनमैं कोठैहू नही बंधननैं प्राप्त हुवा निर्यापकगुरूके अवलोकनके अर्थि विहार करै॥ गाथा–

आलोचणापरिणदो। सम्मं संपत्थिदो गुरुसयासे॥
जदि अंतरा हु असुहो। हवेज्ज आराहउं होइ॥ ९॥

अर्थ– हमारै मनवचनकायकरिकै जो रत्नत्रयमें दोष अतीचार लागे हैं ते सर्व

ऐसा कीया है संकल्प जानै सो आलोचनाप-
गुरुनिकूं जणाऊंगा वीनती करूंगा ऐसा कीया है संकल्प जानै सो आलोचनाप-
रिणत कहिये, सो आलोचनापरिणत साधु गुरुनिकूं आलोचना करनेकूं प्रयाण करै अर
जो मार्गहीमैं अपकी जिव्हाबंध होजाय थकिजाय तोहू आराधक होगया ॥ भावार्थ-
जो आराधनामरणवास्तै परसंघके गुरुनिके अर्थि विहार करता जो साधु ताकै
रोगादिककरि मार्गमें जिव्हाबंध होजाय तो इनिका परिणामनितैं तो आलोचना
करि लीनी। सो जिव्हाबंध होताभी सो साधु आराधनाका धारकही जानना ॥

आलोचणापरिणदो। सम्मं संपत्थिदो गुरुसयासे ॥
जदि अंतरम्मि काळं। करेदि आराधउं होइ ॥ ४१० ॥

अर्थ— आपका अपराध कहनेमैं स्थापित किया है चित्त जानै ऐसा साधु सो गुरुनिके निकट जावनेकूं प्रयाण कीया अर जो गुरूके निकट पहुंचे नहीं अर मार्गहीमें मरण करै तोहू साधु आराधकही होय है ॥ गाथा-

आळोचणापरिणदो। सम्मं संपत्थिदो गुरुसयासे ॥
जदि आयरिउं असुहो। हवेज्ज आराधउं होइ ॥ ११ ॥

अर्थ— सम्यक् आलोचनारूप परिणया अर गुरुनिके निकट जावनेकूं प्रयाण कीया अर गुरु जो आचार्य ताकी जिव्हाबंध होजाय तोहू क्षपक जो आराधनाके

अर्थि आलोचना करनेकूं उद्यमी ऐसा साधु ताकै आराधना होय है ॥ गाथा–

आलोचणापरिणदो । संम्मं संपत्थिदो गुरुसयासे ॥
जदि आयरिंडे काळं । करेज्ज आराधर्उ होइ ॥ १२ ॥

अर्थ— सम्यक् आलोचनारूप परिणया अर गुरुनिके निकट प्रयाण कीया अर जो आचार्य काल करि जाय–मरणकूं प्राप्त होय, तोहू साधु आराधक होय है ॥ कोऊ कहै, जो आलोचनाहू नही करी अर गुरुनिका दीया प्रायश्चित्तहू ग्रहण नहीं किया, अब याकै आराधनाका ग्रहण कैसैं होय? सो कहे हैं ॥ गाथा–

सल्लं उद्धरिदुमणो । संवेगुवेगतिव्वसध्दार्उ ॥
जं जादि सुध्दिहेदुं । सो तेणाराधर्उ होइ ॥ १३ ॥

अर्थ— जातैं संवेग तथा निर्वेद तथा तीव्रश्रध्दानका धारक अर शल्यकूं उध्दार करनेका है मन जाका ऐसा यति सो आपके व्रतनिके मध्य शल्य तथा परिणामनिकी शल्य ताहि दूरि करी अर अपने आत्माकी शुध्दताके अर्थि निर्यापक आचार्यनिके निकट जावनेकूं गमन करे है ॥ अर जो मार्गमें अपनी जिव्हा बंध होजाय तथा मरण होजाय, अथवा जिह गुरुनिके निकट जाय तिन गुरुनिका मरण होजाय, वा जिव्हा बंध होजाय तोहू आपका परिणाम तो अपने भावनिकी शुध्दता करने-

हीमें उद्यमी रह्या, तातैं आराधकही होय है ॥ भावार्थ— जिस साधूकै संसारपरिभ्रमणका भय, सो तो संवेग तथा शरीरकी अशुचिताकूं असारताकूं दुःखदातृता ताकूं अवलोकन करिकै तथा इंद्रियविषयनिके सुखके अर्थि तृप्तीका कर्ता तथा तृष्णाका वधावनेकी निमित्त ताकूं देखिकरि उद्वेगपरिणामकरि सहित तथा रत्नत्रयकी आराधनामैं तीव्र श्रद्धानसंयुक्त होयकरिके अर जो आपका भावनिकी शल्य दूरि करनेकूं गुरुनिके निकट जानेकूं प्रयाण कीया, ताकै तो तिसही कालतैं आराधनाही जाननी ॥ अब निर्यापकगुरुनिका हेरनेके अर्थि जो गमन करे है, ताकै कौन कौन गुण प्रकट होय है, सो दिखावे हैं ॥ गाथा—

आयारजीदकप्पगु- । णदीवणा अत्तसोधिणिज्झंझा ॥
अज्जवमद्दवलाघव- । तुट्ठी पल्हादणं च गुणा ॥ १४ ॥

अर्थ— परसंघमें जावनेतैं आचारजितकल्प नामा जो आचारांगका अंग ताका प्रकाशन होय है । जातैं आचारांगकी परसंघमें जानेकी आज्ञा है तथा परसंघमें जावनेतैं आत्माकी शुद्धता होय है । बहुरि जो संक्लेशसहित होय, सो दूरि संघमें जावनेकूं नही इच्छा करत है, तातैं संक्लेशका अभाव होना गुण प्रकट होय है । बहुरि अपने दोष प्रकट करनेकूं परसंघमें जाय है, तातैं मायाचारके अभावतैं आर्जवगुण प्रकट होय है । बहुरि

अभिमान जाका नष्ट होजायगा ताहीकै परसंघमें जाय विनयपूर्वक आलोचना करि प्रायश्चित्त ग्रहण करना होय है, तातैं मानकषायके अभावतैं मार्दवगुण प्रकट होय है। बहुरि शरीरमें त्यागबुद्धिकरिकैही लाघवगुण प्रकट होय है, जातैं जाकै शरीरमें तीव्र ममता होय ताकै हलकापणा कैसैं होय? शरीरादिकनिमें ममता सोही बडा भार है, पराधीनता है, तातैं त्यागबुद्धिकरिकैही लाघवगुण होय है। बहुरि जगतका उद्धारका निर्यापक गुरूका संयोग होजाय, तदि आपकूं कृतार्थ माने है, तातैं तुष्टि जो आनंद नामा गुण सो प्रकट होय है। बहुरि आपका अर परका दोऊनिका उपकारकरिकै अर काल व्यतीत होय तातैं प्रल्हादन जो हृदयका सुख सोहू प्रकट होय है। येते गुण परसंघमें गमनकरि प्रकट होय हैं॥ ऐसैं गुरुनिका अवलोकनके अर्थि आवता जो साधु, ताकूं देखि अर संघका वसनेवाला मुनि कहा करै, सो कहे हैं॥

आएसं एज्जंतं। अब्भुट्ठिंति सहसा हु दट्ठूण॥
आणासंगहवच्छ-। ल्लदाए चरणे य से णादुं॥ १५॥

अर्थ— आवता जो पाहुणा मुनि ताहि देखिकरिकै अर संघमें वसनेवाले मुनि शीघ्रही ऊठि खडा होय हैं। काहेकूं खडा होय हैं? जिनेंद्रकी आज्ञा पालनेकूं अर रत्नत्रयके धारकका संग्रह करनेकूं अर रत्नत्रयके धारकनिमें वात्सल्यता करनेकूं आये

जे पाहुणे मनि, ताके चरित्र जाननेकूं अंगीकार करै ॥ भावार्थ– पाहुणा मुनीकूं आवता देखिकरिकै अर संघके वसनेवाले मुनि शीघ्रही ऊठि खडा होय हैं, जातैं रत्नत्रयके धारकनिका विनय करना या भगवानकी आज्ञा है, तथा रत्नत्रयमें संग्रहकी वांछा है तथा प्रीति है, तातैं खडा होय महाविनयवात्सल्यतासहित प्रवर्तन करैही, अर ताके चारित्रकी परीक्षा करनेकूं संघमें ग्रहण करैही ॥ अब संघमें अंगीकार करि कहा करै? सो कहे हैं ॥ गाथा–

आगंतुगवत्थव्वा । पडिलेहाहिं तु अण्णमण्णाहिं ॥
अण्णोणचरणकरणं । जाणणहेदुं परिक्खंति ॥ १६ ॥

अर्थ— नवीन आये मुनि अर संघमें वसनेवाले मुनि परस्पर भूम्यादिकनिके सोधनेकरि परस्पर जाननेकूं चरण जो समिति अर गुप्ति तिनिकी परीक्षा करै। अर करण जो षट् आवश्यक तिनिकी परीक्षा करै ॥ कहा कहा परीक्षा करै, सो कहे हैं ॥

आवस्सयठाणादिसु । पडिलेहणवयणगहणणिक्खेवे ॥
सज्झाये य विहारे । भिक्खग्गहणे परिच्छंति ॥ १७ ॥

अर्थ— सामायिक स्तव वंदना प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान कायोत्सर्ग इनि षट् आवश्यकनिके मध्य स्थिति रहनेमें, तथा शरीर उपकरण भूम्यादिकनिके नेत्रनिकरि

तथा मयूरपिच्छिकाकरि सोधनेमें परीक्षा करै। तथा वचनके बोलनेमें, उपकरण जे शरीर पुस्तक पींछी कमंडलु इनके ग्रहण करनेमें वा स्थापनेमें परस्पर चारित्रकी परीक्षा करै। तथा स्वाध्याय करनेमें, मार्गमें विहार करनेमें, तथा भोजन ग्रहण करनेमें आगंतुक मुनिकी अर संघमें वसनेवाले मुनिनिकी परस्पर परीक्षा करै ॥

भावार्थ– सामायिकादिक आवश्यक भावसहित करे हैं अथवा भावविशुद्धिताविना द्रव्यांही करे हैं अथवा सामायिकमें शिरोनति तथा आवर्त सूत्रकी आज्ञाप्रमाण करे हैं अक प्रमादी हुवा करे हैं? सो परस्पर परीक्षा करै ॥ बहुरि सर्व पापरूप प्रवृत्तिका त्यागमें तथा पंचपरमेष्ठीका स्तवनवंदनामैं आपके व्रतनिमें लागे अतीचार तिनकी निंदामैं तथा गुरुनिकी शिक्षागर्हामैं तथा देहसूं ममता छोडनेमें इनिके भावनिमें उत्साह है वा नही है? अथवा आवश्यकीनमैं उद्यमी हैं अक प्रमादी हैं? सो परीक्षा करै ॥ बहुरि ये शीघ्रतासूं भूमि वा शरीर उपकरण इनिकूं सोधे हैं अक दयारूप होय-करि सोधे हैं तथा पीछिकासूं सोधनेमें ये परस्परविरोधी जीवानैं एकठा मिलापरूप करे हैं तथा आहार ग्रहण करतेनिकूं निराकरण करे हैं अथवा आपके निवासमें तिष्ठतेनिकूं चलायमान करे हैं अथवा आपके अंडे ग्रहण करिकै गमन करतेनिकूं झाडे हैं फटकारे हैं भुवारे हैं दूरि करे हैं अक दयावान् होय इनिकूं पीडा नही उपजावता

यत्नाचाररूप होय आपकूं टालिकरि प्रवर्तें हैं, ऐसैं प्रतिलेखनमें परीक्षा करे हैं ॥

बहुरि ये साधु परजीवनिकी निंदा आपकी प्रशंसामैं लीन ऐसा वचन बोले हैं, अक परनिंदाका अपने प्रशंसाका नही बोले हैं। अथवा आरंभपरिग्रहमें प्रवर्तावनेवाले वचन बोले हैं, तथा असंयमीकै बोलनेके बोले हैं, तथा मिथ्यात्वका करनेवाला वचन बोले हैं, तथा कठोर वचन अभिमानके वचन बोले हैं, अक ऐसे वचन नही बोले हैं, सूत्रकी आज्ञाप्रमाण बोले हैं, विनयसहित प्रामाणिक बोले हैं, सो ऐसैं वचनके बोलनेमें परस्पर परीक्षा करै ॥ बहुरि शरीरादिक मेलनेमैं तथा उठावनेमें यत्नाचारसहित ग्रहणानिक्षेप करे हैं, अक प्रमादी हुवा करे हैं, सो परीक्षा करै ॥ बहुरि स्वाध्याय कालशुद्धतासहित तथा विनयसहित तथा अक्षरमात्रा हीनाधिकरहित करे हैं, अक सदोष करे हैं? सो परीक्षा करै ॥ बहुरि मलमूत्रादिकनिका क्षेपण दूरि भूमीमैं तथा जंतुरहित छिद्ररहित सम तथा विरोधरहित भूमीमैं तथा मार्गमें गमन करते लोकनिकी दृष्टीकै अगोचर ऐसी शुद्धभूमीमैं शरीरका मल क्षेपे हैं, अक अयोग्यस्थानहूमें क्षेपे हैं? ऐसैं परस्पर परीक्षा करै ॥

बहुरि विहार करनेमें च्यार हाथ प्रमाण भूमीका सोधना, तथा जलकर्दमहरित अंकुरसाहित भूमीमैं गमनका टालना, तथा मलमूत्र जीवजंतु कंटकादिकनिकूं

दूरिहीतैं त्यागना, तथा स्त्री और तिर्यंच असंयमी इत्यादिकनिके स्पर्शनकूं टालि-करि गमन करना, तथा नगर ग्राम वन महल मकान वृक्ष इत्यादिकनिकी शोभाकूं रागकरि नहीं देखना इत्यादिक निर्दोष गमन करे हैं अरु दोषसहित गमन करे हैं ऐसैं परस्पर परीक्षा करै॥ बहुरि आहारके अर्थि परिभ्रमण तथा दोषरहित भक्षण ऐसे भोजनमेंहू परस्पर परीक्षा करे हैं॥ जातैं आगंतुक जो साधु सो गुरुनिकूं प्राप्त होय विनयसहित वीनती करे है, हे भगवन्! संघमें रहनेकी आज्ञाके देनेकरि मैं अनुग्रह करनेयोग्य हूं ऐसी वीनती करै। तदि समाचारका ज्ञाता आचार्यहू संघमें रहनेकी आज्ञा देवै॥ सोही कहे हैं॥ गाथा–

आएसस्स तिरत्तं। णियमा संघाडउं दु दादव्वो॥
सेज्जा संथारो वि य। जइ वि असंभोइउं होज्ज॥ १८॥

अर्थ— जो साथि आचरण करनेयोग्य नहीहू होय, तोहू आया जो पाहुणा मुनि ताकूं तीन रात्रिपर्यंत संघमें रहनेकी आज्ञा देना योग्य है, तथा वसतिका संस्तर देना योग्य है। परीक्षाविनाभी बाह्य शुद्धमुद्रा देखि योग्य आचरणके धारक होय तिनकूं संघदान देनाही उचित है॥ आगे तीन दिनपाछै गुरु कहा करै? सो कहे हैं॥

तेण परं अवियाणिय। ण होदि संघाडउं दु दादव्वो॥

सेज्जा संथारो वि य । गणिणा अविजुत्तजोगिस्स ॥ १९ ॥

अर्थ— अर जो शुध्द आचरणका धारकहू होय अर परीक्षा तीन दिनमें नही भई होय तो तीन दिन उपरांति शुद्ध आचरण जानेविना आचार्य जो है तानै आगंतुक नवीन मुनीकूं संघमें रहनेकूं नही आज्ञा देवै । अर वसतिका वा नजीक संस्तरहू नही देवै ॥ भावार्थ– शुद्ध आचारका धारकहू होय अर तीन दिनमें परीक्षा नही होय, तो तीन दिनपाछे संघबाह्य होनेकी आज्ञा देवै । अर आगंतुक साधूहू गुरुनिकी आज्ञा मस्तक चढाय संघबाहिर होजाय । फेरि परीक्षा करि शुद्ध जाणि संघमें ग्रहण करै ॥ अर जो परीक्षा कीयेविना नवीन आगंतुकमुनीकी संगति रहे तो कहा दोष आवै? सो कहे हैं ॥ गाथा–

उग्गमउप्पादणए- । सणासु सोधी ण विज्जदे तस्स ॥
अणगारमणाळोइय । दोसं संभुज्जमाणस्स ॥ ४२० ॥

अर्थ— जा साधूका गुणदोष नही अवलोकन किया ताके सामिल आचरण करता जो आचार्य सो आपहू दोषसहित होय है । अथवा जो मुनि अपने दोषनिकी आलोचना नही करी अथवा शुद्ध नही हुवा ऐसा साधूकूं संग्रह करे, ताके उद्गम उत्पादन एषणादिकनिमें शुद्धता नही होत है॥ भावार्थ– जो साधु अपने अपराध दूरिकरि शुद्ध नही

हुवा ताकरि सहित भोजन करत हैं, तिनकैहू उद्गमादिदोषनिमें शुद्धता नहीं होय है ॥

विणएणुवक्कमित्ता। उवसंपज्जइ दिवा व रादो वा ॥
दीवेदि कारणं पि य। विणएण उवट्ठिदो संतो ॥ २१ ॥

अर्थ— विनयथकी संघकूं प्राप्त होयकरिकै अर जो दोष लाग्या होय तिनकूं रात्रिमैं वा दिनमैं वा दोषनिका कारण परिणाममें उद्दीपन करि प्रकट करि विनयसहित संघमें तिष्ठै

उवादो तद्दिवसं। विस्सामित्ता गणिं उवट्ठादि ॥
उध्दरिदुमणो सल्लं। विदिए तदिए व दिवसम्मि ॥ २२ ॥

अर्थ— आगंतुक जो साधु सो मार्गादिककरि खेदित हुवा संता तिस दिनमें तो संघमेंही विश्राम करै अर दूसरे दिन अथवा तीसरे दिन आपकी शल्य उद्धार करनेका है मन जाका ऐसा शल्य उखालनेकूं आचार्यकूं प्राप्त होय है ॥ भावार्थ— पहले दिन संघमें तिष्ठिकरि दूसरे दिन अथवा तीसरे दिन शल्य उद्धार करनेकूं गुरुनिके चरणनिके निकट जाय ॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषैं गुरुनिका सम्यक् अवलोकन करना है जामैं ऐसा मार्गण नामा सोलमा अधिकार सतरह गाथानिकरि पूर्ण कीया ॥ अब आगै सुस्थित नामा सतरहवा अधिकार निवै गाथानिमैं वर्णन करे हैं

॥ तामैं आचार्य कैसाक उपासना करनेयोग्य है, सो कहे हैं ॥ गाथा–

आयारवं च आधा- । रवं च ववहारवं पकुव्वो य ॥
आयावायविदंसी । तहेव उप्पालगो चेव ॥ २३ ॥
अपरिस्साई णिव्वा- । वई य णिज्जावई पहिदकित्ती ॥
णिज्जवणगुणोवेदो । एरिसई होदि आयरिई ॥ २४ ॥

अर्थ— आचारवान् आधारवान् व्यवहारवान् प्रकर्त्ता आयापायविदर्शी अवपीडक अपरिस्रावी निर्वापक ये जे अष्टगुण तिनकरिकै निर्यापकपणाकी विख्यात है कीर्ति जाकी अर निर्यापकके गुणनिका ज्ञाता ऐसो आचार्य होय, ताको शरण सन्यासका अवसरमें ग्रहण करै ॥ भावार्थ– निर्यापकगुरु जो सन्यासके अर्थि ग्रहण करिये, सो अष्टगुणनिका धारक करिये । इसका संक्षेप ऐसा– दर्शनाचार ज्ञानाचार चारित्राचार तपआचार वीर्याचार ये जे पंच आचार तिनका धारक आचार्य, सो आचारवान् कहिये ॥ वहुरि अंगादिक श्रुतका धारक, सो आधारवान कहिये, जातैं श्रुतज्ञानका अवलंबनविना आपकूं अर शिष्यनिकूं रत्नत्रयमें धारण करनेकूं असमर्थ होय है ॥ वहुरि प्रायश्चित्तसूत्रका पारगामी होय, सो व्यवहारवान् है ॥ वहुरि सर्वसंघका वेयावृत्य करनेकूं समर्थ होय, सो प्रकर्त्ता है ॥ वहुरि हानिवृद्धि दिखाय देनेमें समर्थ, सो आयापाय-

विदर्शी है ॥ बहुरि जो आपका प्रभावकरि अर भय देय अंतरंगकी शल्य निकासनेमें समर्थ होय, सो अवपीडक है ॥ बहुरि शिष्यनिकी आलोचना सुनि कोऊकूं प्रकट नही करना, सो अपरिस्रावी है ॥ बहुरि जैसैंतैसैं उपाय करिकै शिष्यनिके अंतपर्यंत आराधनाकी पूर्णता करि संसारतैं पार करना, सो निर्वापकगुणका धारक है ॥ अब आचारवान् गुणका व्याख्यान ग्यारह गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

आयारं पंचविहं । चरदि चरावेदि जो णिरदिचारं ॥
उवदिसदि य आचारं । एसो आयारवं णाम ॥ २५ ॥

अर्थ— जीवादिक तत्त्वनिमें श्रद्धानपरिणति, सो दर्शनाचार है। आत्मतत्त्वादिकनिमैं जाननेरूप प्रवृत्ति, सो ज्ञानाचार है। हिंसादिक पंचपापनितैं निवृत्त होना सो चारित्राचार है। द्वादशप्रकार तपमें प्रवृत्ति करना, सो तपआचार है। परीषहादिक सहनेमें अपनी शक्तीका नही छिपावना, सो वीर्याचार है। ऐसें पंचप्रकारका आचार अतीचाररहित आप आचरण करै अर अन्यशिष्यनिकूं आचरण करावै अर उपदेश करै, सो आचार्य आचारवान् है ॥ अब औरहू प्रकार आचारवान्पणा कहे हैं

दहविहठिदिकप्पे वा । हवेज्ज जो सुट्ठिदो सदायरिउं ॥
आयारवं खु एसो । पवयणमादासु आवुत्तो ॥ २६ ॥

अर्थ— जो दशप्रकारका स्थितिकल्प आचारांगमैं कह्या हुवा, ताविषैं सदाकाल तिष्ठता जो आचार्य, सो आचारवान् होय है। तथा पंचसमिति तीन गुप्ति ये जे अष्ट प्रवचनमातृका तिनविषैं युक्त होय, सो आचारवान् है॥ अब कह्या जो दशप्रकारका स्थितिकल्प, ताका नाम कहे हैं॥ गाथा—

आचेलक्कुद्देसिय- । सेज्जाहररायपिंडपरियम्मे ॥
वदजेट्ठपडिक्कमणे । मासं पज्जो सवणकप्पो ॥ २७ ॥

अर्थ— १ आचेलक्य, २ अनौद्देशिक, ३ शय्यागृहत्याग, ४ राजपिंडत्याग, ५ कृति-कर्म कहिये वंदनादिक करनेमें उद्यम, ६ व्रत, ७ ज्येष्ठ, ८ प्रतिक्रमण, ९ मास, १० पर्या ऐसें श्रमणकल्प दशप्रकार है॥

चेल जो वस्त्र ताका जो त्याग ताकूं आचेलक्य कहिये हैं॥ जहां वस्त्रका त्याग हुवा, तहां सकलपरिग्रहका त्याग जानना॥ वस्त्रहग्रण करनेमें साधूका संयमका नाश होय है। वस्त्रकै पसेव लागै तथा रज लागै, तदि पसेवनितैं उपजनेवाले तथा रजोमलमें उपजनेवाले त्रसजीवनिकी उत्पत्ति वस्त्रमें होय है॥ बहुरि उस वस्त्रका ग्रहण करै तादि वस्त्रमें उपजे जीव दबनेतैं, मसलनेतैं, उठनेतैं नाशनैं प्राप्त होय है॥ बहुरि वस्त्रकूं न्यारा करि धरिये तोहू वस्त्रके जीवनिका नाश होय, तथा बैठनेमें, शयन

करनेमें, फाटनेमें, बांधनेमें, वेढनेमें, धोवनेमें, सुकावनेमें, तावडेमें जीवनका घाततैं महान् असंयम होय है ॥ तथा वस्त्रमें उपरले मांछर, पतंग, कीडी, कीडा, उटकण, जूंवा इत्यादिक अनेक जीव आश्रय आय करे हैं ॥ बहुरि वस्त्रका आच्छीरीति सोधनहू नही होय है, तथा मलिनवस्तु रुधिर मलादिक आपका शरीरसंबंधी वा अन्यजीवांसंबंधी वस्त्रकै लिप्त होजाय, अर धोवे तौ असंयम होय अर नही धोवै तौ देखनेवालेनिको ग्लानीका कारण होवै, विपरीत स्वांग रुधिरकरि लिप्त शिकारीसदृश दीखै ॥ बहुरि रुधिरमलादिक वस्त्रकै लग्या रहजाय तो मक्षिका कीडी मांछर इत्यादिक जीव आय लगै अर मक्षिकादिकांनैं दूरि करे तो असंयम तथा उनकै अंतराय प्रकट होवै तथा वस्त्र कोऊ आपका हरण कर ले तो क्रोध उपजै तथा लज्जा उपजै अर वस्त्र नही होय तब नगरग्रामादिकनिमें जावनेकूं असमर्थ होय तथा वस्त्र फटिजाय तथा कोऊ लेजाय तो याचना करै! दीनता करै! महींन सुंदर उज्वल वस्त्र मिलै तो अभिमान उपजे अर मोठा मलिन छोटा मिलै तो हीनता दीनता परिणाममें उपजै ॥ बहुरि वन पर्वत इत्यादिक निर्जनस्थानमें भय उपजै "मति कोऊ हमारा वस्त्र खोसि लेवै" बहुरि वस्त्रका लाभविषैं हर्ष अर अलाभविषैं विषाद उपजैही ॥

बहुरि दूजे पुरुषकूं देखि भय उपजै, अथवा वृक्ष गुफा वसातिकामैं छिपि रह्यो चाहै,

तथा चौरादिकनिके भयतैं मोमकारेकैं तेलकरिकैं तथा गोवर इत्यादिकतैं वस्त्रनैं मलिन करि राखे, तहां मायाचार नामा दोप प्रकट होय ॥ तथा मोमका संयोगतैं अप्रमाण त्रसजीवनिकी उत्पत्ति होय तथा तेल पसेव गोवर इत्यादिकके संयोगतैं जीवनिकी विराधना प्रकट होय है ॥ अर वस्त्र पुराणा दीखे तदि दातारका विचार तथा दुर्ध्यान लोभपरिणाम प्रकट होयही। तथा वस्त्र पवनादिककरि हालै तहां स्वाध्याय ध्यानका भंग होय, तथा आगंतुकजीव वींछू कीडा लट कानखजूरा सर्प इत्यादिक आय प्रवेश करे तो ऊठि खडा होना, अधोवस्त्र दूरि करना, झडकावना, फटकारना इत्यादिककरि दुर्ध्यान वा असंयम प्रकट होय है ॥ तथा वस्त्र काटेतैं फटि जाय तथा शयन करतेका वनके बिलके जीव फाडि जाय काटि जाय तो परिणाम विषादी होयही जाय ॥ वहुरि सींवना, समेटना, उतारना, खोलना, मेलना इत्यादिक सर्व आरंभ तथा संग्रह प्रकट होय हैं ॥ वहुरि वस्त्रधारण करै ताकै परीषह सहनेमें असमर्थता होय है तथा वर्षाका अवसरमें भीजि जाय अर निचोवे तौ असंयम होय, पहऱ्या रहै तो अधोवस्त्रमें जीवनिकी उत्पत्ति होय तथा वेदना इत्यादिक दोष आवै, तथा शीतऋतुमैं मोटा जाडा नवीन वस्त्रकी चाहना होवै अर ग्रीष्मऋतुमैं कोमल महीनवस्त्रकी वांछा करैही ॥ वहुरि जो अन्यपुरुषकूं मार्गमें आवताजावताहू देखै, तो, ताका विश्वास नहीं करै ॥

बहुरि वस्त्रका त्याग कीया तातैं सर्व शरीरसूं ममत्व त्याग्या, सर्वभयरहित हुवा अर शीत उष्ण डांस मांछर मक्षिकादिकनिका कीया उपसर्ग सहना अंगीकार किया, अर केवल ध्यानस्वाध्यायहीका अवलंबन ग्रहण कीया ॥ बहुरि जो वस्त्र त्याग कीया सो सर्वही त्याग कीया, देहका सुखियापणाका त्याग कीया, जिनेंद्रकी आज्ञा अंगीकार करी, अपमाण आपकी शक्तीकूं प्रकट करी, सर्व दशलक्षणधर्म अंगीकार किया, हीनता दीनता याचकताका अभाव किया। तातैं आचेलक्यही श्रेष्ठ है ॥ औरहू दशप्रकारका स्थितिकल्प आचारांगसूत्रकी आज्ञाप्रमाण जानना ॥ १ ॥

आपके निमित्त किया भोजनका त्याग, सो अनौद्देशिक ॥ २ ॥ जहां भोगी स्त्रीपुरुषनिका क्रीडा करनेका मकान, सो शय्यागृह। तामैं जानेका त्याग, सो शय्यागृहत्याग ॥ ३ ॥ बहुरि राजादिक भोगी पुरुषनिके जीमनेयोग्य जो गरिष्ट सुगंध आहार, ताका त्याग, सो राजपिंडत्याग ॥ ४ ॥ वंदना करनेमें उद्यम, सो कृतिकर्म ॥ ५ ॥ बहुरि अठाईस मूलगुण चौराशी लाख उत्तरगुणनिका धारना, सो व्रत ॥ ६ ॥ बहुरि पूर्वैं दोष कीये, तिनका निराकरणके अर्थि प्रतिक्रमण ॥ ७ ॥ बहुरि तप संयम पंचाचार दीक्षादिककरि अधिक होय, तिनकूं ज्येष्ठ मानिये, बडा मानिये, सो ज्येष्ठ है ॥ ८ ॥ बहुरि मासमासमें वंदन करना, सो मास है ॥ ९ ॥

अर दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, ऐर्यापथिक, सांवत्सरिक, उत्तमार्थ ऐसा सप्तप्रकार प्रतिक्रमण करना, सो प्रतिक्रमण है ॥ वहुरि वर्षाकालमें च्यारि मास-विषैं एकस्थानमें रहना पर्या है ॥ १० ॥ इनिका विशेष वहुज्ञानी होय सो आगमके अनुसार जाणि विशेष निश्चय करो ॥ वहुरि इस ग्रंथकी टीकाका कर्त्ता श्वेतांवर है, इसही गाथाके अर्थमें वस्त्र पात्र कंवलादिक पोषे हैं, कहे हैं, तातैं प्रमाणरूप नाही है सो वहुज्ञानी विचारि शुद्ध सर्वज्ञकी आज्ञाकै अनुकूल श्रद्धान करो ॥ गाथा-

एदेसु दससु णिच्चं । समाहिदो णिच्चवज्जभीरू य ॥
खवयस्स विसुद्धं तो । जहुत्तचरियं उवदिएदि ॥ २८ ॥

अर्थ— ये जे दशप्रकार स्थितिकल्प तिनिविषैं नित्यही सावधान अर पापतैं भयभीत ऐसा आचार्य सो सल्लेखना करनेकूं आया जो क्षपक ताकूं शास्त्रोक्त शुद्धचर्या है ताही देत है ॥ भावार्थ- ऐसैं दशप्रकारका स्थितिकल्पमें सावधान अर पापतैं भयभीत जो आचार्य होय सो क्षपककूं यथावत् आचारांगकी आज्ञाप्रमाण आचरण करावै ॥

पंचविहे आयारे । समुज्जदो सव्वसामिदिचेट्ठाउ ॥
सो उज्जमेदि खवयं । पंचविहे सुद्ध आयारे ॥ २९ ॥

अर्थ— जो आचार्य दर्शनाचार ज्ञानाचार चारित्राचार तपआचार वीर्याचार ये

पंचप्रकारके आचार, तिनमैं आप उद्यमी होय, अर जाकी चेष्टा कहिये सकलप्रवृत्ति सो समितिरूप होय, यत्नाचाररूप होय, सोही आचार्य क्षपककूं पांच प्रकारका आचारमें उद्यम करावै—प्रवृत्ति करावै ॥ अर जो आपही हीनाचारी होय, सो अन्य शिष्यनहूकूं शुद्ध आचारमें प्रवर्तावनेकूं असमर्थ होय है, तातैं आचारवान् गुरुहीका शरण ग्रहण करना श्रेष्ठ है॥ जो गुरु आचारवान् नहीं होय, तो एते दोष प्रकट होय हैं॥

सेज्जोवधिसंथारे। भत्तं पाणं च चयणकप्पगदो ॥ उवकप्पिज्ज असुध्दं। पडिचरए वा असंविग्गो ॥ ४३० ॥ सल्लेहणं पयासे- । ज्ज गंधमल्लं च समणुजाणिज्ज ॥ अप्पाउग्गं च कथं। करिज्ज सइरं व जंपिज्ज ॥३१॥ ण करेज्ज सारणं वा- । रणं च खवयस्स चयणकप्पगदो ॥ उड्ढेज्ज वा महल्लं। खवयस्स वि किंचणारंभं ॥ ३२ ॥

अर्थ— पंचाचारतैं रहित जो आचार्य, सो संन्यास करनेमैं उद्यमी जो क्षपक ताकै अयोग्य जो उद्गमादि दोषसहित अशुद्ध ऐसी वसतिका तथा उपकरण तथा संस्तर तथा भोजन तथा पान ग्रहण कराय दे, अशुद्ध मिलाय दे। जातैं जाकै सदोषवस्तूमैं आपहीकै ग्लानि नहीं, सो अन्यकै असंयम करनेवाली सामग्री युक्त कर दे ॥ बहुरि जिनकै कर्मबंध होनेका भय नहीं, असंयममें प्रवर्तनका भय

नही संसारमें डूबनेका भय नही ऐसे भ्रष्ट वैयावृत्यके करनेवालेका संयोग कर देवै ॥ वहुरि लोकांमें सल्लेखना विख्यात कर दे, तथा गंध माल्य अयोग्य ग्रहण कराय दे, तथा क्षपकके निकट अयोग्य कथा करनेमें प्रवर्ते, तथा यथेच्छ सूत्रविरुद्ध वचन कहि दें, तथा रत्नत्रयमें प्रवृत्ति नही कराय सके, तथा नष्ट होते रत्नत्रयकी रक्षा नही करि सकै, तथा औरहू क्षपककै अयोग्य जिनसूत्रतैं अपूठो अत्यंत निंद्य कल्पना करै ॥ तातैं पंचाचारका धारक जो आचारवान् गुरु, तिनके निकटही प्रवर्तना श्रेष्ठ है ॥ पंचाचारकरि हीनकी संगतिहूतैं धर्म विगडि संसारपरिभ्रमण करे हैं ॥

आयारत्थो पुण से । दोसे सव्वे वि ते विवज्जेदि ॥
तह्मा आयारत्थो । णिज्जवउ होदि आयरिउ ॥ ३३ ॥

अर्थ— वहुरि जो पंचप्रकारका आचारमें कुशल होय सो पूर्वें कहे जे सर्व दोष तिनका अभाव करे है, क्षपककूं एकहू दोषकरि लिप्त नही होने दे है, तातैं आचारवान्ही निर्यापक गुरु होय है, अन्यकै निर्यापकगुरुपणा नही वणि सके है ॥

ऐसैं सुस्थित नामा सतरमां अधिकारमें ग्यारह गाथानिकरि निर्यापकाचार्यका आचारवान् गुण वर्णन किया ॥ इहां पंचाचारका वर्णन किया चाहिये, परंतु ग्रंथकी विस्तीर्णता होनेके भयतैं इहां नही लिख्या है, जे विशेष जाननेके इच्छक हैं, ते

मूलाचार ग्रंथतैं जानह्नू ॥ अब निर्यापक आचार्यका दूसरा आधारवान् नामा गुण, ताहि उगणीस गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा–

चोद्दसदसणवपुव्वी । महामदी सायरो व गंभीरो ॥
कप्पववहारधारी । होदि हु आधारवं णाम ॥ ३५ ॥

अर्थ— जो चौदह पूर्वका धारी तथा दशपूर्वका धारी तथा नवपूर्वका धारी होय, बहुरि महाबुद्धिमान् होय, अर समुद्रकीनांई गंभीर होय, कल्पव्यवहारका जाननेवाला होय, सो आचार्य आधारवान् गुणका धारक होय॥ भावार्थ– श्रुतज्ञानका जाके परिपूर्ण सामर्थ्य होय अथवा कालमाफिक तौ च्यारूं अनुयोगका जाके ज्ञान होय ऐसाही ज्ञानी आचार्य क्षपककूं अवलंबन करनेयोग्य है ॥ गाथा–

णासेज्ज अगिहिदत्थो । चउरंगं तस्स लोगसारंगं ॥
णट्ठम्मि य चउरंगे । ण उ सुलहं होइ चउरंगं ॥ ३६ ॥

अर्थ— बहुरि जो अगृहीतार्थ कहिये जिनसूत्रका ज्ञानरहित जो गुरु ताके निकट वसै, तो साधूका दर्शन ज्ञान चारित्र तप यहही चतुरंग, ताका नाश कर देवै॥ कैसाक है चतुरंग? लोक जो षद् (?) तिनमें सारभूत अंग है। अर चतुरंग विनशिजाय तो बहुरि चतुरंग पावना सुलभ नहीं है॥ कोऊ या कहै– जो, अगृहीतार्थ जो

ज्ञानरहित गुरु, सो क्षपकका चतुरंग जो सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र समक्तप कैसैं नाश करै? सो कहे हैं ॥ गाथा–

संसारसायरम्मि य । अणंतवहुतिवदुक्खसलिलम्मि ॥ संसरमाणो दुक्खे- । ण लहदि जीवो मणुस्सत्तं ॥ ३७ ॥ तह चेव देसकुलजा- । इरूवमारोग्ग- माउगं वुद्धिं ॥ सवणं गहणं सद्धा । य संजमो दुल्लहो लोये ॥ ३८ ॥ एवमवि दुल्लहपरं- । परेण लध्दूण संजमं खवर्ड ॥ ण लहिज्ज सुदी संवे- । गकरी अवहुस्सुयसयासे ॥ ३९ ॥

अर्थ— अनंत अर बहुत तीव्र ऐसा दुःखरूप जलका भऱ्या जो संसाररूप समुद्र, तामैं अनंतानंतकालतैं परिभ्रमण करता जो जीव, सो बडा दुःखकरिकै मनुष्यजन्मकूं प्राप्त होय है ॥ अर मनुष्यजन्महू पावे तौ, तहां जैसैं मनुष्यजन्म दुर्लभ, तैसैं उत्तम- देश पावना दुर्लभ है! अर कदाचित् उत्तम देशहू पावै तोहू उत्तम कुल उत्तम जाति पावना बहोत दुर्लभ है! अर उत्तम कुलजातिहू पावै तो तहां सुंदर रूप, रोगरहित शरीर, दीर्घ आयु, निर्मलबुद्धि पावना दुर्लभ है ॥ बहुरि कदाचित् तीक्ष्णबुद्धिहू पावै तोहू सर्वज्ञवीतरागका कह्या धर्मका श्रवण दुर्लभ, अर कदाचित् धर्मश्रवणहू होय तो ग्रहण करना तथा श्रद्धान होना अतिदुर्लभ है, अर श्रद्धानभी होय तो संयम धारना

अत्यंतही दुर्लभ है ॥ बहुरि ऐसे दुर्लभताकी परंपराकरिकै पाया जो संयम, ताही अल्पज्ञानीके निकट वसनेवाला जो क्षपक कहिये मुनि सो धर्मानुराग करनेवाला उपदेशकूं नही प्राप्त होय है ॥ ऐसी श्रुति जो उपदेश, ताही नही पावै, ताकै कहा होय? सो कहे हैं ॥ गाथा–

सम्मं सुदिमलहंतो । दीहध्दं मुत्तिमुवगमित्ता वि ॥
परिवडइ मरणकाळे । अकडाधारस्स पासम्मि ॥ ४४० ॥

अर्थ— जिनसूत्रका आधाररहित अज्ञानी जो आचार्य ताके निकट रहनेवाला जो साधु सो सत्यार्थ श्रुतका उपदेशकूं नही प्राप्त होता मुक्तीका मार्गकूं अति दूरि जानि कठिन जानि मरणकालमें रत्नत्रयसूं पतन करे है ॥ गाथा–

सक्का वंसी छेत्तुं । तत्तो उक्कड्डिउं पुणो दुक्खं ॥
इय संजयस्स वि मणो । विसयेसु कड्डिकं दुक्खं ॥ ४१ ॥

अर्थ— जैसें वांसकी शल्य छेदवेकूं समर्थ होना सुलभ है अर अंगसें चुभी हुईका निकासना बडा कष्टतें होय है, तैसें संयमीके विषयनिका त्याग करना तो सुलभ है अर विषयनिमें उरग्या मनकूं विषयनितें निकासना बडे दुःखतैं होय है ॥ गाथा–

आहारमऊ जीवो । आहारेण य विराधिदो संतो ॥

अट्टदुहट्टो जीवो । ण रमदि णाणे चरित्ते य ॥ ४२ ॥
सुदिपाणएण अणुसि- । ट्ठिभोयणेण य पुणो उवग्गहिदो ॥
तण्हाछुहाकलिंतो । वि होदि झाणे अवाखित्तो ॥ ४३ ॥

अर्थ— सर्वही संसारी जीव आहारमय हैं, आहारतें जीवे हैं, आहारहीकी निरंतर वांछा करे हैं । अर जब रोगके वशतें वा त्याग करनेतें आहार छूटि जाय वा घटि जाय, तब आर्त्तध्यानकरिकें दुःखकरि पीडित हुवा संता ज्ञानमें तथा चारित्रमें नही रमे है ॥ अर जो जिनसूत्रका आधारका धारक जो गुरु सो श्रुतिरूप पानकरिकें अर शिक्षारूप भोजनकरिकें साधूका उपकार करे तो क्षुधाकी तथा तृषाकी पीडाकरिकें सहितहू साधु ध्यानके विषें विक्षेपकरि रहित होत है ॥ भावार्थ– क्षुधातृषादिककी वेदनासहित साधूकूं शास्त्रार्थका श्रवणरूप पानकरि अर आत्मज्ञानकी शिक्षारूप भोजनकरि ज्ञानवान् गुरुही वेदनारहित करे, अज्ञानीके सामर्थ्य नांही ॥ गाथा–

पढमेण व दोवेण व । वाहिज्जंतस्स तस्स खवयस्स ॥ ण कुणदि
उवदेसादी । समाधिकरणं अगिहिदत्थो ॥ ४४ ॥ सो तेण वि उज्झंतो ।
पप्पं भावस्स भेदमप्पुसुदो ॥ कलुणं कोलुणियं वा । जायणाकिमिणत्तणं
कुणइ ॥ ४५ ॥ उक्कूवेज्ज व सहसा । पिएज्ज असमाधिपाणयं चावि ॥

गच्छेज्ज व मिच्छत्तं । मरिज्ज असमाधिमरणेण ॥ ४६ ॥ संथारपदोसं वा । णिब्भच्छज्जंति उं णिगच्छेज्ज ॥ कुवंते उड्डाहो । णिज्जुब्भंते विकिं-वंते वा ॥ ४७ ॥

अर्थ— अगृहीतार्थ जो श्रुतका अवलंबनरहित आचार्य सो क्षुधाकरि व्याधित क्षपककूं वा तृषाकरि व्याधित पीडित क्षपककूं समाधानी करनेवाला उपदेश करनेकूं नही समर्थ होय है ॥ तदि क्षुधा वा तृषाकरि पीडित जो क्षपक सो संयमरूप भावका नाशकूं प्राप्त होयकरिकै अर रुदन करै, जसैं श्रवण करनेवालेकै करुणा उपजि आवै, तथा क्षुधा तृषाकी पीडाकरिकै जाचना करने लगि जाय, तथा दीनता करै, तथा वेदनाकरिकै पुकारने लगिजाय ॥ अथवा शीघ्रही असमाधिपान जो भावांकी असमाधानी वा च्यार आराधनाका नाश करना सोही पान करै अथवा मिथ्यात्वकूं प्राप्त होय है अर असमाधि मरण जो मिथ्यादृष्टीका बालबालमरण ताकरि मरे है ॥ तथा कोऊ वेदनाकरिकै संस्तरकूं वैरकरि दूषण लगाव, वा संस्तरतैं निकली भागै तथा रुदन कर, अर जो संघबाहिर निकलि जाय तो धर्मका अपयश करै निंदा करै ॥ येते दोष अगृहीतार्थ गुरुकी संगतितैं प्रकट होय हैं, तातैं श्रुतज्ञानका धारक जो आचार्य होय, ताहीका आश्रय करना योग्य है ॥ अर जो गृहीतार्थ गुरु होय तो

कहा करै? सो कहे हैं॥ गाथा—

गिहिदत्थो पुण खवय-। स्स कुणदि विधिणा समाधिकरणाणि ॥
कण्णाहुदीहिं उवगा-। हिदो य पज्जलइ झाणग्गि ॥ ४८ ॥

अर्थ— बहुरि जो गुरु गृहीतार्थ होय सो संस्तर करनेमें उद्यमी अर क्षुधातृषाकरि पीडित ऐसे क्षपककी विधिकरिकै समाधान क्रिया करै, "जैसैं क्षपककै वेदनाका उपशम होय परम शांतता होजाय तैसैं यत्न करै" बहुरि जैसैं घृतादिकनिकी आहुतिकरि अग्नि प्रज्वलित होय, तैसैं कर्णनिमें जो धर्मका उपदेशरूप आहुति ऐसी देवै, जाकरि ध्यानरूप अग्नि प्रज्वलित होजाय॥ भावार्थ— श्रुतका धारक गुरुका ऐसा धर्मोपदेशरूप कर्णनिमें जाप देनेकी महिमा है सो तत्काल क्षुधा तृषा रोगादिकनितैं उपजी वेदना मेटि धर्मध्यान शुक्लध्यानकूं प्रकट करे है॥ गृहीतार्थ गुरु और कहा करै? सो कहे हैं॥ गाथा—

खवयस्स इच्छसंपा-। दणेण देहपडिकम्मकरणेण ॥
अण्णेहिं वा उवाएहिं। सो हु समाहिं कुणइ तस्स ॥ ४९ ॥

अर्थ— गृहीतार्थ आचार्य कहा करै, सो कहे हैं॥ वेदनाकरिकै दुःखित जो क्षपक, ताके वांछित करनेकरिकै, तथा देहकी बाधा जैसैं मिटि जाय तैसैं हस्त पाद

मस्तक इत्यादिकनिका दावना स्पर्शना इत्यादिक करिकैं, अन्यहू मिष्टवचन उपकरण-दान प्रासुक संयोगादि करिकै, तथा पूर्वे जे अनेक साधु घोर परीषह सहिकरिकै आत्मकल्याणकूं प्राप्त भये तिनकी कथा कहनेकरिकैं, तथा देहसूं भिन्न आत्माका अनुभव करावनेकरिकैं, क्षपकका परिणामकूं वेदनातैं न्यारो करि रत्नत्रयमें सावधान करे है ॥ गाथा—

णिज्जूढं पि य पासिय। मा भीही देइ होदि आसासो ॥
संधेइ समाहिं पि य। वारेइ असंपुडगिरं च ॥ ४५० ॥

अर्थ— बहुरि अन्य वैयावृत्यके करनेवाले तिनकरि रहित देखिकरिकै निर्यापक गुरु कहे हैं, भो साधो! तुम ऐसा भय मति करो, जो मोकूं परीषहनितैं चलायमान देखिकरिकै ये सर्व संघके मुनि हमारा त्याग कर्या है! हम सर्वप्रकारकरिकै तुमारा सेवन करनेमें उद्यमी हैं, हम तुमकूं नही त्यजन करेंगे, ऐसा अभयदान देवै ॥ अर वारंवार धैर्य देय आश्वासन करै, भो मुने! संसारमें परिभ्रमण करता प्राणी कौन दुःख नही भोगे? अर नहीं भोगेंगे? तातैं जो अब धैर्य धारनेका अवसर है, कर्म रस देय शीघ्र निर्जरैगा, आकुलता करि कर्मका बंधकूं दृढ मति करहू ॥ बहुरि वारंवार मिष्ट उपदेश देय रत्नत्रयतैं जोड दे हैं ॥ बहुरि क्षपककूं वेदनाकरिकै आकुल देखि

कोऊ अज्ञानी असंवररूप वचन कह्या होय, तो ताहि निवारण करै, जो, तुमकूं ऐसें अवज्ञा नही करना! जो, ये धन्य हैं महान् हैं, जिनकै सर्व आहारादिक त्यागि आराधनामैं परम उत्साह वर्ते है ॥ गाथा—

जाणदि पासुयदव्वं । उवकप्पेदुं तहा उदिण्णाणं ॥
जाणइ पडिकारं वा- । दपित्तसिंभाण गीदत्थो ॥ ५१ ॥

अर्थ— बहुरि गृहीतार्थ गुरु कैसाक है? उत्कटतानैं प्राप्त भई जो क्षुधा तृषादिक वेदना, ताका नाश करनेमें समर्थ ऐसा प्रासुकद्रव्यनिका संयोगनिकूं जाने है, तातैं वेदना मिटिजाय अर संयम त्याग बिगडे नही ॥ तथा जिन इलाजनितैं वातापित्तकफजनित वेदना नाशकूं प्राप्त होय ऐसे मुनींकै योग्य द्रव्य क्षेत्र काल भाव ज्ञानवान् गुरुही जाने है ॥ गाथा—

अहव सुइपाणयं से । तहेव अणुसिट्टिभोयणं देइ ॥
तण्हाछुहाकिलंतो । वि होदि झाणे अविक्खित्तो ॥ ५२ ॥

अर्थ— अथवा श्रुतिरूप तो पान अर शिक्षारूप भोजन ऐसा देवै, जातैं क्षुधातृषाकरि पीडितहू साधू ध्यानमें विक्षेपरहित क्लेशरहित होजाय ॥ गाथा—

गीदत्थपादमूले । होंति गुणा एवमादिया वहुगा ॥

ण य होइ संकिलेसो । ण चावि उप्पज्जदि विवत्ती ॥ ५३ ॥

अर्थ— बहुश्रुतीका चरणांके निकट पूर्वै पंच गाथानिकरि कहे जे बहुत प्रकारके गुण औरहू अनेक गुण प्रकट होय हैं ॥ बहुरि संक्लेशपरिणाम नही होय है अर रत्नत्रयमें विपत्तिहू नही होय है, तातैं श्रुतज्ञानका आधारसहित आधारवान् गुरुकाही शरण ग्रहण करना श्रेष्ठ है ॥

ऐसैं सुस्थित अधिकारमें आचार्यनिका आधारवान् नामा दूसरा गुण उगणीस गाथानिकरि कह्या ॥ अब निर्यापकाचार्यका व्यवहार नामा तीसरा गुण सात गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा–

पंचविहं ववहारं । जो जाणइ तच्चदो सवित्थारं ॥
वहुसो य दिट्ठकप्प- । ठ्ठवणो ववहारवं होइ ॥ ५४ ॥

अर्थ— जो पंचप्रकार जो व्यवहार कहिये प्रायश्चित्त ताहि तत्त्वथकी जाणै विस्तारसहित जाणै अर बहुतवार आचार्यनिके निकट प्रायश्चित्त देना देख्या होय तथा आप प्रायश्चित्त दीया होय, सो व्यवहारवान् होय ॥ अब पंचप्रकारके व्यवहार हैं, तिनके नाम कहे हैं ॥ गाथा–

आगमसुदआणाधा- । रया य जीदो य हुंति ववहारा ॥

एएसिं वित्थारा । परूवणा सुत्तणिद्दिट्ठा ॥ ५५ ॥

अर्थ— १ आगम, २ श्रुत, ३ आज्ञा, ४ धारणा, ५ जित ये पंचप्रकारके व्यवहारसूत्र कहिये प्रायश्चित्तसूत्र हैं, इनकी विस्तारसहित प्ररूपणा पुरातनसूत्रनिमें कही है। सर्वजनांका अग्रभागमें प्रायश्चित्त कहनेयोग्य नही है ॥ प्रायश्चित्तग्रंथ जो आचार्यहोनेयोग्य तिनहीकूं पढावे हैं, औरनके पढनेकी योग्यता नही है, तातैं प्रायश्चित्तके ग्रंथ जुदेही हैं ॥ कोऊ कहे, जो व्यवहावान् आचार्य, सो अन्यमुनीश्वरनिकरि आलोचना कीया जो अपराध, ताका प्रायश्चित्त कैसें देत है? तातैं प्रायश्चित्त देनेका अनुक्रम कहे हैं ॥ गाथा—

दव्वं खेत्तं काळं । भावं करणपरिणाममुच्छाहं ॥
संहणणं परियायं । आगमपुरिसं च विण्णाय ॥ ५६ ॥
मोत्तूण रागदोसे । ववहारं पट्ठवेइ सो तस्स ॥
ववहारकरणकुसलो । जिणवयणविसारदो धीरो ॥ ५७ ॥

अर्थ— जो प्रायश्चित्त देनेमें प्रवीण होय, अर जिनागमका ज्ञाता होय, अर महाधीर होय, बुद्धिवान् होय ऐसा प्रायश्चित्त देनेवाला आचार्य; सो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, क्रिया, परिणाम, उत्साह, संहनन, पर्याय जो दीक्षाका काल, आगम

जो शास्त्रज्ञान अर पुरुष इनका स्वरूप अच्छीतरह जाणिकरिकै अर रागद्वेषकूं छांडि-करिकै अर क्षपक जो मुनि ताकूं प्रायश्चित्तमें स्थापन करै ॥

भावार्थ— जामें ऐसी प्रवीणता होय, जो ऐसें प्रायश्चित्त देनेतें याके परिणाम उज्वल होयगा, अर दोषका अभाव होयगा, व्रतनिमें दृढता होयगी, सो प्रायश्चित्त दे ॥ बहुरि जाकूं आगमका ज्ञान नही होय, ताकै प्रायश्चित्त देना नही संभवै, तातैं सूत्रका रहस्यका जाननेवाला होय बहुरि जाकूं आहारादिकमें योग्य अयोग्यका ज्ञान होय, सो द्रव्यका स्वभावनें जानि प्रायश्चित्त देवै ॥ तथा इस क्षेत्रमें ऐसा प्राय-श्चित्तका निर्वाह होयगा, इस क्षेत्रमें नही होयगा ऐसें क्षेत्रकूं जाणै। अथवा इस क्षेत्रमें जल बहुत है, इसमें अल्प है, वा इस क्षेत्रमें वात पित्त कफकी आधिक्यता है, इस क्षेत्रमें हीनता है, इसमें समता है, वा शीतउष्णताकी आधिक्यता हीनता पहि-चानता होय, अथवा इस क्षेत्रमें धर्मके धारकनिकी तथा मिथ्यादृष्टीनिकी मंदता अधिकता जाणि ऐसा प्रायश्चित्त देवै, ताकरि वीतरागभाव वधै, धर्ममें दृढता होय॥ बहुरि शीतकाल वर्षाकाल उष्णकाल तथा उत्सर्पिणी अवसर्पिणीके तृतीय चतुर्थ पंचम कालकूं जाणि ऐसें प्रायश्चित्त देवै, जैसें निर्वाह होय व्रत शुद्ध होजाय ॥

बहुरि प्रायश्चित्तक्रियामें परिणाम या मुनिका कैसा है ऐसें समझि प्रायश्चित्त देवै।

जातैं परिणाम कलुषित नही होहै ॥ बहुरि तपश्चरणमें याकै तीव्र उत्साह है वा मंद है तींका ज्ञाता होय ॥ बहुरि संहनन जो शरीरका बल, ताकूं जाणि प्रायश्चित्त देवै। जो, यह निर्बल है, वा बलवान् है? ऐसा निर्णय करि, जैसैं तपश्चरण दिनादिन वधै तैसैं करै ॥ तथा दीक्षाका कालकूं जानैं, जो यह नवीन दीक्षित है वा बहोत कालका दीक्षित है? सहनशील है वा कायर है? अथवा बालक अवस्था अथवा युवा अथवा वृद्ध अवस्था इनिकूं समझि प्रायश्चित्त देवै ॥ बहुरि यह आगमका ज्ञाता बहुश्रुती है, यह अल्पज्ञानी है ऐसैं क्षपकका आगमबल जानता होय ॥ बहुरि यह पुरुषार्थी है, वा मंदोद्यमी है ऐसैं जाननेवाला होय अर रागद्वेषरहित होय धैर्यवान् होय सोही प्रायश्चित्त देय उज्वल करै ॥ जो द्रव्यक्षेत्रादिकका तो ज्ञाता नही होय अर प्रायश्चित्त देवै, ताकै दोष प्रकट होय हैं, सो कहे हैं ॥ गाथा—

ववहारमयाणंतो । ववहरणिज्जं च ववहरंतो खु ॥
उस्सीयदि भवपंके । अयसं कम्मं च आदियदि ॥ ५८ ॥

अर्थ— जो गुरुनिके निकट प्रायश्चित्तसूत्र तो शब्दथकी अर अर्थथकी पढ्या नही होय अर औरनिकूं अतीचार दूरी करनेके अर्थि प्रायश्चित्त देत है, सो संसाररूप कर्दममें डूबे है, अर अपयशकूं प्राप्त होय है, अर प्रायश्चित्तसूत्र जानेविना वृथा आचार्यपणाका

गर्वकरि जो प्रायश्चित्त देवे है, सो उन्मार्गका उपदेश करिकै अर सम्यङ्मार्गका नाश करिकै मिथ्यादृष्टि होय तीव्रकर्मका बंधकूं प्राप्त होय है ॥

भावार्थ— ये प्रायश्चित्त ग्रंथ हैं ते रहस्य कहावे हैं अथवा इनिकूं सूरिमंत्र कहिये हैं। सो ये प्रायश्चित्तग्रंथ कोऊ महान् मुनि पूर्वे कहे जे आचार्यपणाका गुण तिनका धारक होय तिनहींकूं पढावे अर अन्यसंघमें रहनेवाले अनेकमुनि तिनकूं नही पढावै, तो कैसे गुणनिके धारक प्रायश्चित्तग्रंथ पढनेयोग्य हैं सो कहे हैं ॥ जो बडा कुलमें उपजा होय, अर व्यवहारपरमार्थका ज्ञाता होय, अर कोऊ कालहूमैं आपके मूलगुणनिमें अतिचारदोष नही लगाया होय, अर च्यार अनुयोगरूप समुद्रका पारगामी होय, अर महान् धैर्यवान् होय, बलवान् होय, परीषहनिके जीतनेमें समर्थ होय, अर जाकूं देवहू उपसर्गादिककरि चलायमान करनेकूं समर्थ नही होय, अर जाकी वक्तृत्वशक्ति बडी होय, वादीप्रतिवादीनिके जीतनेमें समर्थ होय, विषयनितैं अत्यंत विरक्त होय, बहोत काल गुरुकुल सेवन कीया होय, बहोत कालका दीक्षित होय, अर जाकी आचार्यपदकी योग्यता सर्व संघमें विख्यात होय इत्यादिक अनेकगुणनिका धारक आचार्यपदके योग्य होय, ताकूं प्रायश्चित्तग्रंथ पढावे हैं ॥ अर प्रायश्चित्तग्रंथ गुरुनितैं भली भांति जाण्या होय, सोही प्रायश्चित्त देय अन्यकूं शुद्ध करे है ॥ अर

जो येते गुणनिविना तथा प्रायश्चित्तके ग्रंथ जाण्याविना प्रायश्चित्त देवे है, सो आप तो उन्मार्गका उपदेशतैं संसारमें डूबि अनंतकाल परिभ्रमण करे है अर अन्यकूं शुद्ध नहीं करे है मिथ्या उपदेश करि डबोवे है॥ तातैं गुणरहित होय प्रायश्चित्त देनेमें उद्यमी नहीं होना, सोही दृष्टांत कहे हैं ॥ गाथा–

जह ण करेदि तिगिंछं । वाधिस्स तिगिंछउ अणिम्मादो ॥
ववहारमयाणंतो । ण सोधिकामो विसुज्झेइ ॥ ५९ ॥

अर्थ— जैसैं मूढ वैद्य है सो कोऊ रोगकरि पीडितपुरुषका इलाज करनेमें समर्थ नहीं होय है, तैसैं प्रायश्चित्तसूत्रका नहीं जाननेवाला अर वृथा आचार्यपणाका गर्वकरि अतीचारादिकनिकी शुद्धता करनेका इच्छक कदाचित् क्षपक जो मुनि ताकै शुद्ध नहीं करे है ॥ भावार्थ- जैसैं अज्ञानी वैद्य रोगीका विपरीत इलाजकरि रोगीकै रोगकी वृद्धि करे है अथवा प्राणरहित करे है अर आपका यश अर परलोक बिगाडे है, तैसैंही अज्ञानीकै प्रायश्चित्त देनेमें अधिकारीपणाका फल जानना ॥ गाथा–

तह्मा णिव्विसिदव्वं । ववहारविदो हु पादमूलम्मि ॥
तत्थ हु विज्जाचरणं । समाधिसोधी य णियमेण ॥ ४६० ॥

अर्थ— तातैं प्रायश्चित्तके ज्ञाता जे आचार्य, तिनके चरणांके निकट तिष्ठना योग्य

है। जातैं तिनके निकट ज्ञान तथा चारित्र तथा समाधिमरण तथा आत्माकी विशुद्धि नियमकरि होय है ॥

ऐसैं सुस्थित अधिकारमें निर्यापक जो आचार्यका व्यवहारवान् नामा तीसरा गुण सात गाथानिकरि कह्या अब कर्त्ता नामा चौथा गुण च्यारि गाथानिकरि कहे हैं ॥

जो णिक्खवणपवेसे। सेज्जासंथारउवधिसंभोगे ॥ ठाणणिसेज्जोगासे।
तु वट्टणविकिंचणाहारे ॥ ६१ ॥ अब्भुज्जदचरियाए। उवकरणमणुत्तरं
पि कुव्वंतो ॥ सवादरसत्तीए। वट्टइ परमाए भत्तीए ॥ ६२ ॥ इय अप्पप-
रिस्समममगणि-। त्ता खवयस्स सव्वपडिचरणे ॥ वट्टंतो आयरिउ।
पकुव्वउ णाम सो होइ ॥ ६३ ॥

अर्थ— जो आचार्य इतने स्थानविषैं क्षपकका उपकार करे है; वसतिकातैं बाहिर निकलनेमें, तथा बाहिरतैं मांहि प्रवेश करनेमें, तथा शय्या वसतिकाके सोधनेमें, तथा संस्तर सोधनेमें तथा उपकरण सोधनेमें, तथा खडे रहनेमें, तथा बैठनेमें, तथा शरीरका मल दूरि करनेमें, तथा आहार करनेमें बडी उद्यमरूप सेवा करिकैं, हस्तावलंबनादिकरिकैं, तथा सर्व प्रकार आदरकरिकैं, शक्तिकरिकैं, तथा परम भक्तिकरिकैं, आपका परिश्रम नही गिणिकरिकैं क्षपकका संपूर्ण वैयावृत्त्यमें वर्तमान जो आचार्य, सो

प्रकर्ता नाम गुणका धारक होय है ॥

भावार्थ— सो निर्यापकाचार्य कर्ता नाम गुणका धारक होय है ॥ जो संघमें कोऊ साधु बाल होय, कोऊ वृद्ध होय, कोऊ वेदनारोगसहित होय, कोऊ संन्यासमें लीन होय, तो तहां जिनकूं वैयावृत्त्यमें युक्त कीये, ते तो सेवा करेंही, परंतु आप आचार्य अपने शरीरतैंहू सेवा करे है ॥ अशक्त होय ताका उठावना, बैठावना, मलमूत्र करावना, धोवना, पूछना, कफ नासिकामल मूत्रपुरीष रुधिरादि इनिकूं क्षपकका शरीरतैं वा स्थानकतैं उठाय प्रासुकभूमीमैं क्षेपना, तथा हस्तपादमर्दन करना, दावना, सवारना, समेटना, पसारना शिक्षा करना इत्यादिक सर्वप्रकारकरिकै क्षपककी सेवामैं आदरकरिकैं, भक्तिकरिकै, शक्तिकरिकै वैयावत्त्य करे है ॥ तिनकूं देखि सर्वसंघके मुनि क्षपककी सेवामैं सावधान होय हैं— अहो धन्य हैं! ये गुरु भगवान् परमेष्ठी करुणानिधान! जिनकै धर्मात्मामैं ऐसा वात्सल्य है! हम निंद्य हैं, जो हम आलसी होय रहे हैं, हमकू होतेंभी गुरु सेवा करे हैं यह हमारा प्रमादीपणा हमारे बंधका कारण है। ऐसैं चिंतवन करि सर्व संघ वैयावृत्त्यमें सावधान होय है ॥ गाथा—

खवउ किलासिदंगो। परिचरयगुणेण णिव्वुदिं लहदि ॥
तह्मा णिव्विसिदव्वं। खवएण पकुव्वयसयासे ॥ ६४ ॥

अर्थ— जातैं ग्लानरूप पीडारूप है शरीर जाका ऐसाहू क्षपक परिचारक जे वैयावृत्त्य करनेवाला तिनकी परिचर्या जो सेवारूप गुणकरिकै वेदनारहित सुखी होय है अर वेदना नही व्यापै तदि शुभध्यान शुभभावनामैं लीन होय आत्मकल्याण करे है तातैं प्रकर्तागुणसहित गुरुनिके निकटही साधूकूं देहका त्याग करना श्रेष्ठ है ॥

ऐसैं सुस्थित नामा अधिकारमें निर्यापकगुरुनिके अष्टप्रकारके गुणनिमैं प्रकर्ता नामा गुण च्यारि गाथानिकरि समाप्त कीया ॥ अब अपायोपायविदर्शी नामा पांचमों गुण पंद्रह गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा–

खवयस्स तीरपत्त-। स्स वि गुरुगा होंति रागदोसा हु ॥
तह्मा छुहादिएहिं। खवयस्स विसोत्तिया होइ ॥ ६५ ॥

अर्थ— तीर कहिये संसारका अंत अथवा वर्तमान मनुष्यपर्यायका अंत ताहिकूं प्राप्त हुवा जो क्षपक ताकै क्षुधा तृषा रोग वेदनादिककरिकै रागद्वेष तीव्र होय हैं अर रागद्वेषकी तीव्रतातैं क्षपकके परिणाम चलायमान होय हैं–अशुभपरिणाम होय हैं ॥

थोलाइदूण पुव्वं। तप्पडिवक्खं पुणो वि आवण्णो ॥
खवउं तं तह आलो-। चेदुं लज्जेज्ज गारविदो ॥ ६६ ॥

अर्थ— दीक्षा लीनी तादिननैं आदि करिकै अर आजतांई रत्नत्रयके अतीचार

लाग्या होसी, सो सर्व निवेदन करशूं-गुरुनिकूं जणावशूं ऐसैं पूर्व प्रतिज्ञा करिकैहू पश्चात् प्रतिपक्षी जो अभिमान भयादिक ताकूं प्राप्त होयकरिकै अर यथावत् आलोचना करनेकूं लज्जावान् होय वा गौरवसहित होय यथावत् आलोचना करनेमें लज्जाकूं प्राप्त होय आलोचना न करै ॥ गाथा-

तो सो हीलणभीरू । पूयाकामो ठवण इत्तो य ॥
णिज्जूहणभीरू वि य । खवउ वि ण दोसमाळावे ॥ ६७ ॥

अर्थ— पश्चात् लज्जावान् होय चिंतवन करै, जो, गुरु मेरा अपराध जाणसी तो मेरी अवज्ञा करदेसी ऐसैं हीलणभीरु होय तथा जो यो मोकूं ऐसा अपराधी जाणसी तो वंदना सत्कार ऊठि खडा होना इत्यादिक नही करसी ऐसैं पूजाका इच्छक होय तथा मोकूं अपराधी जाणसी तो मेरा त्याग करसी संघबाहिर करसी ॥ ऐसैं आपकूं सुंदर चारित्रके धारण करनेवालेनिमैं स्थापनेका इच्छक होयकरिकै अर जो मुनि अपना दोष गुरुनिकूं नही कहे तो गुरु कहा करै? सो कहे हैं ॥ गाथा-

तस्स अवाउपावावि- । दंसी खवयस्स उघपणवउ ॥
आलोचंतस्स अणु- । ज्जुग्गस्स दसेइ गुणदोसे ॥ ६८ ॥

अर्थ— जो क्षपक यथावत् आलोचना नही करै तो अपायोपायविदर्शी जो गुरु

सो सामान्यप्ररूपण करता संता मायाचारसहित आलोचना करनेवालेकूं गुणदोष दिखावे हैं ॥ भावार्थ– अपाय नाम रत्नत्रयका विनाश अर उपाय नाम रत्नत्रयका लाभ दोऊनिकूं प्रकट दिखावे है, सो अपायोपायविदर्शी गुरु है ॥ सो गुरु संक्षेपतैंही ऐसा उपदेश करै, जातैं क्षपककूं हृदयमें ऐसैं प्रकट दीखि आवै जो मायाचारी होय आलोचना करै ताकै एते दोष प्रकट होय हैं ॥ अर मायाचाररहित सरल होय आलोचना करै ताकै एते गुण प्रकट होय हैं ॥ सोही कहे हैं ॥ गाथा–

दुक्खेण लहइ जीवो । संसारमहण्णवम्मि सामण्णं ॥
तं संजमं खु अबुहो । णासेइ ससल्लमरणेण ॥ ६९ ॥

अर्थ— भो मुने? यो जीव अनादिको संसारसमुद्रमें परिभ्रमण करतो बडा दुःखकरिकै मुनिपणा पावे है । सो अज्ञानी शल्यसहित मरणकरिकै संयमका नाश करे है मुनिपणा बिगाडे है, सो ऐसा दुर्लभसंयमकूं बिगाडना बडा अनर्थ है ॥ गाथा–

जह णाम दव्वसल्लो । अणुध्दुदे वेदणाद्दिदो होदि ॥
तह भिक्खू वि ससल्लो । तिव्वं दुहिदो भउव्विग्गो ॥ ४७० ॥

अर्थ— जैसैं द्रव्यशल्य जो कंटक सली पगमें लगी हुई जो नहीं निकाशै, तो वेदनाकरि पीडित होय है । तैसैं जो साधु भावनिकी शल्य आलोचना करि नहीं

निकासै, तो संसारमें तीव्रदुःखित होय है ॥ तथा मेरी कोन गति होयगी? मैं व्रत बिगाड्या है! ऐसा भयकरि उद्वेगरूपहू रहे है ॥ तथा गाथा—

कंटकसल्लेण जहा । वेधाणी चम्मखीलणालीयं ॥
रप्फइ य जालगत्ता- । गदो य पादो सडदि पच्छा ॥ ७१ ॥
एवं तु भावसल्लं । लज्जागारवभएहिं पडिवद्धं ॥
अप्पं पि अणुध्दरियं । वदसीलगुणे विणासेइ ॥ ७२ ॥

अर्थ— जैसें कंटक अथवा वांस इत्यादिककी शल्यकरिकै वेध्या है जो पग, तामैंसूं जो शल्य नही निकसै, तो चाम तथा नसके जालनिकूं वेधिकरि अर पगमें नाना छिद्र होय अर दुर्गंध राधि रुधिर पैदा होय पग गलिजाय है–सिडिजाय है, तैसें जो भावनिकी शल्य लज्जाकरिकैं तथा अभिमानकरिकै तथा प्रायश्चित्तके भयकरिकैं नही निकाले है, सो, आपका अपराधनैं छिपावतो जो साधु, सो आपके व्रत शील गुण सर्वका नाश करे है ॥ पश्चात् कहा करै सो कहे हैं ॥ गाथा–

तो भद्दवोधिलाभो । अणंतकाळं भवण्णवे भीमे ॥
जम्मणमरणावत्ते । जोणिसहस्साउळे भमइ ॥ ७३ ॥
तत्थ य काळमणंतं । घोरमहावेदणासु जोणीसु ॥

पच्चंतो पच्चंतो । दुक्खसहस्साइं पप्पेदे ॥ ७४ ॥

अर्थ— पश्चात् भ्रष्ट हुवा है रत्नत्रयका लाभ जाके ऐसा मुनि अनंतकालपर्यंत संसारसमुद्रमें परिभ्रमण करे है ॥ कैसाक है संसारसमुद्र? अतिभयानक है अर जन्ममरणरूपही है भवण जामें बहुरि चौरासी लक्ष योनिस्थानकरि व्याप्त है ॥ तहां अनंतकालपर्यंत घोर महावेदनारूप योनीनिमें पचतो पचतो हजारां दुःखांकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा—

तं ण खमं खु पमादा । मुहुत्तमवि अत्थिदुं ससल्लेण ॥
आयरियपादमूळे । उद्धरिदव्वं हवदि सल्लं ॥ ७५ ॥

अर्थ— तातैं एकमुहूर्तमात्रहू प्रमादथकी शल्यकरि सहित तिष्ठवेकूं असमर्थ ऐसो क्षपक है सो आचार्यनिकी चरणारविंदनिके निकट शल्य दूरि करनेयोग्य होय है ॥

तह्मा जिणवयणरई । जाइजरामरणदुक्खवित्तत्था ॥
अज्जवमद्दवसंप- । ण्णा भयलज्जा उ मोत्तूण ॥ ७६ ॥
उप्पाडित्ता धीरा । मूलमसेसं पुणब्भवलयाए ॥
संवेगजणियकरणा । तरंति भवसायरमणंतं ॥ ७७ ॥

अर्थ— तातैं जिनेंद्रका वचनमें है रुचि जिनकै ऐसे, अर जन्मजरामरणतैं भयभीत

ऐसे, अर आर्जव जो सरलता अर मार्दव जो कोमलपरिणाम तिनकरि सहित ऐसे, अर धीर वीर ऐसे, अर संसारपरिभ्रमणके भयतैं उपजी है आत्माके हित करनेमें प्रवृत्ति जिनकै ऐसे क्षपक हैं ते गुरुनिका दीया प्रायश्चित्तका भयकूं तथा लज्जाकूं त्यागिकरिकै अर संसारमें वारंवार उत्पत्ति होना सोही जो वेली ताका मूल जो भावनिमें शल्य ताहि उपाडिकरिकै अर अनंतानंतसंसाररूप समुद्रकूं तिरे हैं ॥ भावार्थ– जो भगवानका वचनांमैं श्रध्दान करिकै अर अनंतसंसारपरिभ्रमणके भयतैं अपने भावनिमें शल्य होय सो गुरुनिके निकटि आलोचनाकरि अर निर्भय हुवा प्रायश्चित्त ग्रहण करि रत्नत्रयकूं उज्वल करे है, सो संसारकी वेली जो मायाचारादि शल्यकूं उखाली अर अनंतसंसारसमुद्रकूं तिरिकरिकै निर्वाणका पात्र होय है ॥ गाथा–

इय जह दोसे ण गुणे । ण गुरू आलोचणाए दंसेइ ॥
ण णियत्तइ सो तत्तो । खवउं ण गुणे य परिणमइ ॥ ७८ ॥
तह्मा खवएणाउं- । पायविदंसिस्स पायमूलम्मि ॥
अप्पा णिव्विसिदव्वो । धुआ दु आराहणा तत्थ ॥ ७९ ॥

अर्थ— जो याप्रकार आपके दोष गुरुनिकूं प्रकट कहना, सो आलोचना, ताके करनेमें गुणका प्रकट होना अर आलोचना नहीं करनेमें दोषका प्रकट होना जो गुरु

नही दिखावे तो क्षपक दोषनितैं पराङ्मुख नही होय अर गुणनिमें नही परिणमैं। तातैं क्षपकनैं अपायोपायविदर्शी गुणके धारक जे आचार्य तिनके चरणनिके निकट आपकूं स्थापन करना योग्य है। जातैं अपायोपायविदर्शी गुणके धारक गुरुनिके निकट निश्चयथकी आराधना होय है॥

ऐसैं सुस्थित नामा अधिकारविषैं निर्यापकाचार्यके अष्टगुणनिमैं अपायोपायविदर्शी नामा पांचमा गुण पंद्रह गाथानिमैं समाप्त कीया॥ अब आगैं निर्यापकाचार्यका अवपीडक नामा छट्ठा गुण बारह गाथानिकरि कहे हैं॥ गाथा—

आळोचणगुणदोसे। कोई सम्मं पि य ण विज्जंतो॥
तिव्वेहि गारवादिहि। सम्मं णाळोचए खवउ॥ ४८०॥
णिध्दं महुरं हिदयं-। गमं च पल्हादणिज्जमेगंते॥
तो पल्हावेदव्वो। खवउ सो पण्णवं तेण॥ ८१॥

अर्थ— ऐसैं आलोचनाके गुण अर दोष आचार्यकरि सत्यार्थ दिखाये हुयेहू कोऊ क्षपक तीव्र गारवकरिकै तथा लज्जाभयादिककरिकै सत्यार्थ आलोचना नही करै, तो बुध्दिवान जो आचार्य, सो एकांतस्थानकविषैं क्षपककूं शिक्षा करै॥ कैसीक शिक्षा करै? स्नेहकी भरी, तथा कर्णनिकूं मिष्ट, तथा जो हृदयमें प्रवेश करिजाय, तथा आनंद

बहोत कठिनतातैं पाया जो रत्नत्रय, ताके
करनेवाली ऐसी शिक्षा करै ॥ भो मुने! लज्जा तथा भयकूं प्राप्त मति होहू।
अतीचारनिकी आलोचना करनेमें सावधान होहू। कहा लज्जा है? वात्स-
मातापितासमान जो गुरु, तिनके निकट अपने दोष कहनेमें अर धर्मकी
ल्यगुणका धारक जो गुरु सो आपके शिष्यके दोष जगतमें प्रकट करिकै कर्मबंध नहीं
निंदा नहीं करावै है। तथा परका अपवाद कराय नीचगोत्रका कारण रत्नत्रयकी शुद्धि
करै है। तातैं आलोचना करनेमें लज्जा मति करो। तथा जैसैं तुमारे अनुकूल प्राय-
होयगी अर तपश्चरणका निर्वाह होयगा, तैसैं द्रव्य क्षेत्र काल भावके आलोचना करहू॥ गाथा—
श्चित्त तुमकूं दिया जायगा। तातैं भयकूं त्यागि सत्यार्थ

णिध्दं महुरं हिदयं-। गमं च पल्हादणिज्जमेगंते ॥

कोइ दु पणविज्जं। तउं वि णाळोचए सम्मं ॥ ८२ ॥

अर्थ— कोऊ क्षपक ऐसा होय है, जो आचार्यनिकरिकै एकांतमें स्नेहरूप तथा
मधुर तथा हृदयमें प्रवेशकरि आनंद करनेवाला ऐसा वचनकरिकै समझाया हुवाहू
सत्यार्थ आलोचना नहीं करै तो अवपीडक गुणका धारक कहा करै? सो कहे हैं ॥

तो उप्पीलेदव्वा। खवयस्सोपीलएण दोसा से ॥

वामेइ मंससमुदरम-। वि गदं सीहो जह सियाळं ॥ ८३ ॥

अर्थ-- मिष्टवचननितैं समझाया हुवाहू क्षपक मायाचार छोडि सत्यार्थ आलोचना नही करै तो अवपीडकगुणका धारक जो आचार्य सो क्षपकका दोषानैं जबरीतैं भयतैं बाहिर निकालैही ॥ जैसैं सिंह आपका तेजकी जो त्रास ताकरिकैं स्यालका उदरमें प्राप्त हुवोभी मांस तत्काल वमन करावे है, जातैं सिंहकूं देखतप्रमाण स्यालका खाया हुवा मांसकूं तत्काल उगले है। तैसैं तेजस्वी अवपीडकगुणका धारक आचार्य जा अवसरमें क्षपककूं पूछे है, जो, हे मुने! ये दोष ऐसेही हैं, सत्यार्थ कहो। तादि तत्काल भयवान् होय मायाशल्य निकालिकरिकै सत्यार्थ आलोचना करे है॥ अर नहीं करै तो ताका अवपीडक गुरु तिरस्कारहू करे है- हे मुने! हमारा संघतैं निकसि जाहू। हमकरिकैं तुमारै कहा प्रयोजन है? जो अपने शरीरकै लग्या हुवा मल धोया चाहेगा, सो निर्मल जलके भरे सरोवरकूं प्राप्त होयगा। तथा जो महान् रोगकरि दब्या हुवा जो रोगी अपना रोग दूरी कस्या चाहेगा, सो प्रवीण वैद्यकूं प्राप्त होयगा ॥ तैसैंही जो रत्नत्रयरूप परमधर्मका अतीचार दूरिकरि उज्वलता चाहैगा, सो गुरुजनका आश्रय करेगा ॥ तुमारै रत्नत्रयकी शुद्धिता करनेमें आदर नही है, तातैं या मुनिपणाके व्रत धारण करनेकी विडंबना करि कहा साध्य है? अर केवल च्यार प्रकारका आहारका त्यागमात्र तो सल्लेखना, ताकरि कहा साध्य है? कर्मका संवर

अर निर्जरा तो कषायसल्लेखनाके आधीन है। जातैं कषायका अभावविना बाह्यक्रिया निष्फल है, तातैं कषायनिग्रह करनाही श्रेष्ठ है ॥

बहुरि कषायनिमेंहू मायाकषाय अतिनिंद्य है, तिर्यंचगतिकूं प्राप्त करनेमें समर्थ है तो मायाचार नही त्यागया सो संसारसमुद्रमें प्रवेश कीया। कैसा है संसारसमुद्र? जामैंतैं अनंतानंतकालहूमें निकलना कठिन है! अर तुमारा वस्त्रमात्रके त्याग करने-करिकें निर्ग्रंथपणाका अभिमान वृथा है! जातैं वस्त्ररहित नग्न अर शीत उष्णादिक परीष-हके सहनेवाले तो तिर्यंचहू जगतमें बहोत हैं॥ चतुर्दशप्रकार अभ्यंतरपरिग्रहका त्यागतैंही निर्ग्रंथपणा तिष्ठे है अर अभ्यंतरपरिग्रहके त्यागके अर्थिही दशप्रकारका बाह्यपरिग्रहका त्याग करिये है ॥ बहुरि जीवद्रव्य अर पुद्गलद्रव्य दोऊनिकी निकटता-तैंही कर्मका बंध नही है। जातैं कषायसहित रागी द्वेषी आत्माको परिणाम होय तादि बंध होय है, तातैं बंधका कारण कषायही है ॥ बहुरि अतीचारसहित दर्शनज्ञानचारित्र मुक्तीका उपाय नही है, निरतिचारही मोक्षका मार्ग है, सो तुमारे श्रवणमें नही आया कहा? अर दर्शनज्ञानचारित्रकी निरतिचारता गुरुनिकरि उपदेशा प्रायश्चित्तका आचर-णविना होय नही है ॥ अर गुरुहू आलोचना कियेविना प्रायश्चित्त नही देवे है। तातैं भो मुने! तुम दूरभव्य हो, अथवा अभव्य हो ॥ जो निकटभव्य होते, तो ऐसे माया-

शल्य कैसे राखते? तातैं मायाचारी जो तुम, सो मुनिजनाकै वंदनायोग्य नही हो । अर जाकै लाभमें अर अलाभमें अर निंदामैं स्तवनमें समानचित्त होय सो श्रमण वंदनेयोग्य है ॥ अर तुमारा ऐसा भाव है– जो हमारे दोष आलोचना करेंगे तो हमकूं निंदेंगे, प्रशंसा नही करेंगे । ऐसा अभिप्रायतैं आलोचना यथावत् नही करो हो, सो तुमारै श्रमणपणाहू नही है । तदि कैसे वंदवेजोग्य होहुंगे? वंदनाकरनेयोग्य नही हैं । इत्यादिक वचननितैं पीडा करि दोषनिकूं बाहिर निकासै ॥ ऐसैं अवपीडकगुरुका शरण ग्रहण करना योग्य है ॥ अब अवपीडक गुरु कैसा होय, सो कहे हैं ॥ गाथा–

ओजस्सी तेजस्सी । वच्चस्सी पहिदकित्तियायरिउ ॥
सीहाणुउ य भणिउ । जिणेहि उप्पीलउ णाम ॥ ८४ ॥

अर्थ— जो बलवान् होय, जाकै परीषह उपसर्गमें कायरता नही होय; बहुरि प्रतापवान् होय, जाका वचनादिक कोऊ उलंघन करनेमें समर्थ नही होय; बहुरि प्रभाववान् होय, जाकूं देखतप्रमाण दोषसहित साधु कांपने लगि जाय तथा बडे बडे विद्याके धारक नम्रीभूत होजाय; बहुरि जाकी जगतमें कीर्ति विख्यात होय, जाकी कीर्ति सुणताप्रमाण जाके गुणनिका श्रद्धान दृढ होजाय, सर्व जगतमें विनादेख्याही जाका वचन दूरदेशहीतैं सर्व प्रमाण करै; बहुरि सिंहकीनांई निर्भय होय; ताकूं

जिनेंद्र भगवान् अवपीडक नाम कहे हैं ॥ अब आगे कहे हैं, जो हितू होय सो जैसें हित होता जाने तैसी प्रवृत्ति करि हितमें युक्त करि दे ॥ गाथा—

पेल्लेदूण रडंतं । पि जहा बालं मुहं विदारित्ता ॥
पज्जेइ घदं मादा । तस्सेव हिदं विचिंतंती ॥ ८५ ॥
तह आयरिउ वि अणु- । ज्जयस्स खवयस्स दोसणीहरणं ॥
कुणदि हिदं से पच्छा । होहिदि कदुउंसहं वत्ति ॥ ८६ ॥

अर्थ— जैसें बालकका हितनैं चिंतवन करती जो माता सो रुदन करताहू बालककूं दाबिकरिकैं अर बालकका मुख फाडिकरिकैं अर घृतदुग्धादिक पान करावे है, तैसें शिष्यका हितनैं चिंतवन करता आचार्यहू मायाचारसहितहू क्षपकका मायाशल्य नामा दोष ताकूं बलात्कार करि दूरि करे है ॥ सो दोष दूरि करना, ताकै कडवी औषधिकीनाई पश्चात् हित करे है ॥ अर जो गुरु शिष्यका दोष देखिकरिकैंहू तिरस्कार नही करे है अर केवल मिष्टवचनही कहे है, सो गुरु भला नही जानना—ठिग है ॥ गाथा—

जिब्भाए वि लिहंतो । ण भद्दउ जत्थ सारणा णत्थि ॥
पाएण वि ताडिंतो । स भद्दउ जत्थ सारणा अत्थि ॥ ८७ ॥

अर्थ— जो गुरु जिव्हाकरिकैं मिष्टहू बोले है अर जाकै दोषनितैं शिष्यनिकूं

निवारण करना नही है, सो गुरु सुंदर नही है। अर जो चरणकरि ताडनाहू करे है अर जाक शिष्यनिकूं दोषनितैं रोकना निवारण करना विद्यमान है, सो गुरु भला है सुंदर है ॥ गाथा—

सुलहा ळोगे आद- । ट्ठचिंतगा परहिदम्मि मुक्कधुरा ॥
आदट्ठं व परट्ठं । चिंतंता दुल्लहा ळोए ॥ ८८ ॥

अर्थ— जे आपका हितरूप प्रयोजनतैं तो चिंतवन करै अर परके हित करनेमें आलसी ऐसे मनुष्य या जगतमें सुलभ हैं बहोत ह। अर जे आपका प्रयोजनकी-नांई अन्यजीवका प्रयोजनकी चितामैं उद्यमी हैं, ते पुरुष या लोकमें दुर्लभ हैं विरले हैं॥

आदट्ठमेव चिंते- । दुमुट्ठिदा जे परट्ठमवि लोगे ॥
कडुयपरुसेहि साहें- । ति ते हु अतिदल्लहा ळोए ॥ ८९ ॥

अर्थ— इस लोकमें जे आपका प्रयोजन करनेमें उद्यमवंत हैं अर अन्यका प्रयोजनहू कटु वचनकरिकैहू तथा कठोर वचनकरिकैहू सिद्ध करे हैं, ते पुरुष लोकमें अतिदुर्लभ हैं ॥ गाथा—

खवयस्स जइण दोसे । उग्गलेइ सुहमे व इदरे वा ॥
ण णियत्तइ सो तत्तो । खवउं ण गुणे य परिणमइ ॥ ४९० ॥

अर्थ— जो आचार्य क्षपककूं कठोर वचनादिककरि मायाचारादिक सूक्ष्म दोष वा स्थूल दोष नही उगलावे–नही वमन करावै, तो क्षपक सूक्ष्मस्थूल दोषनितैं निराला नही होवै अर गुणनिमैं नही प्रवृत्ति करै ॥ तातैं अवपीडक गुणका धारक आचार्यही दोषनितैं छुडाय गुणनिमें प्रवर्तन करावे हैं ॥ गाथा–

तह्मा गणिणा उप्पी- । लणेण खवयस्स सव्व दोसा दु ॥
ते उग्गालेदव्वा । तस्सेव हिदं तया चेव ॥ ९१ ॥

अर्थ— तातैं अवपीडन गुणका धारक जो आचार्य तानैं क्षपकका संपूर्ण दोष उगलावनेयोग्य हैं। जातैं दोष वमन कराय देना, सोही क्षपकका हित है ॥

ऐसैं सुस्थित नामा अधिकारविषैं निर्यापक आचार्यके अष्टगुणनिविषैं अवपीडक नामा छट्टा गुण बारह गाथानिकरि समाप्त कीया ॥ अब अपरिस्रावी नामा सातमां गुण दश गाथानिकरि वर्णन करे हैं ॥ गाथा–

लोहेण पीदमुदयं । व जस्स आलोचिदा अदीचारा ॥
ण परिस्सवंति अण्ण- । त्तो से अपरिस्सउ होदि ॥ ९२ ॥

अर्थ— जैसैं तप्तायमान जो लोह, ताकरि पीया जल बाहिर नही दीखे है, तैसैं जाके क्षपककरि आलोचना कीये दोष अतीचार अन्यमुनीश्वरनिमें नही प्रकट होय

सो आचार्य अपरिस्राव गुणका धारक होय है ॥ भावार्थ— शिष्यनिकरि कह्या दोष जो आचार्य बाहिर प्रकट करि कोऊकूं नहीं जगावै, सो अपरिस्राव गुणका धारक आचार्य होय है ॥ जो दोष होय ताकूं गुरुही जाणै अर दूजा कहनेवाला जाणै, तीसरा नहीं जाणै, यही बडा गुण है ॥ गाथा—

दंसणणाणदिचारे । वदादिचारे तवादिचारे य ॥ देसच्चाए विविहे । सव्वच्चाए य आवण्णो ॥ ९३ ॥ आयरियाणं वीसत्थ- । दाए भिक्खू कहेदि सग- दोसे ॥ कोई पुण णिध्दम्मो । अण्णेसि कहेदि ते दोसे ॥ ९४ ॥ तेण रहस्सं भिंदं- । तएण साहू तदो य परिचत्तो ॥ अप्पा गणो य संघो । मिच्छत्ताराधणा चेव ॥ ९५ ॥

अर्थ— कोऊ साधु दर्शनमें अतीचार प्राप्त भया होय अथवा ज्ञानमें अतिचार तथा व्रतनिमें अतिचार तथा तपमें अतिचार तथा एकदेशत्यागमें अतिचार तथा सर्व-त्यागमें अतिचार जाकै लाग्या होय ऐसा जो मुनि, सो आचार्यनिका विश्वास करिकै अपने दोष प्रकट करिकै कहै— जो, ये भगवान् गुरु परमदयालु संसारमें शरण, इनकूं दोष कहना उचित है, या विचारि एकांतमें गुरुनिकूं सर्व दोष निवेदन करै ॥ तहां कोऊ जिनप्रणीत धर्मतैं पराङ्मुख ऐसा अधर्मी अचार्यनिमें अधम ते शिष्यके कहे

दोष अन्यलोकनिकं अन्यमुनीनकूं कहै--प्रकट करै, जो, यानैं ऐसा अपराध किया है। तो वह रहस्यका भेदनेवाला कहिये. आलोचना कीया दोषकं प्रकाश करनेवाला जो अधम आचार्य, तानैं क्षपकका त्याग किया। जातैं क्षपक आपका दोषका प्रकाश होनेतैं लज्जावान् होय दुःखित होय है, वा आत्मघात करे है, वा क्रोधी होय रत्नत्रयकूं त्यागत है। तथा आचार्य अपने आत्माका त्याग कीया, अर गणका त्याग कीया तथा संघका त्याग हुवा तथा मिथ्यात्वकी आराधना होय है॥ भावार्थ-- जो आचार्य होय अर शिष्यका दोष प्रकट किया, सो शिष्यका त्याग किया वा अपने आत्माका त्याग किया वा गणका त्याग किया वा संघका त्याग किया वा मिथ्यात्वकी आराधना करी॥ साधुका त्याग कैसा हुवा सो कहे हैं॥ गाथा--

लज्जाए गारवेण य। कोई दोसे परस्स कहिदम्मि॥
विप्परिणमिज्जउ धा-। वेज्ज व गच्छेज्ज वाध मिच्छत्तं॥ १६॥

अर्थ-- अपने दोष प्रकट होता संता परके अर्थि कहता संता कोऊ साधु लज्जाकरिकै वा गारवकरिकै विपरिणामी होजाय-जुदा होजाय। यह गुरु मोकूं प्रिय नही जो मेरा गुरु होय तो हमारा दोष कैसैं कहै? यह गुरु हमारा वाल्हा प्राण है ऐसें जो, सोचा, सो या भावना आजि नष्ट भई! अथवा दोष प्रकट करनेकरिकै संघतैं अन्य

संघमें प्रवेश करै अथवा रत्नत्रयका त्याग करै ॥ अब आत्मपरित्यागकूं कहे हैं ॥

कोई रहस्सभेदे । कदे पदोसं गदो तमायरियं ॥
उद्दावेज्ज व गच्छं । भिंदिज्ज व होज्ज पडिणीउ ॥ ९७ ॥

अर्थ— कोऊ साधु आपका रहस्यका भेद होता प्रद्वेष जो वैर तानैं प्राप्त होय आचार्यकूं मारण करे, कोऊ संघमें भेद करै। अहो मुनिजनहो सुनहू, धर्मस्नेहरहित ऐसे गुरुकरि कहा साध्य है? जेसैं हमारा अपराध प्रकट करि जगतमें हमकूं दूषित किया, तैसैं तुमकूंहू दूषित करेगा। याप्रकार प्रत्यनीक कहिये वैरी होजाय ॥ अब गणत्याग कैसैं करै सो कहे हैं ॥ गाथा—

जह धरिसिदो इमो तह । अह्मं पि करिज्ज धरिसणामिमोत्ति ॥
सव्वो वि गणो विप्परि- । णमिज्ज छंडेज्ज वायरियं ॥ ९८ ॥

अर्थ— जैसैं ई क्षपककूं दूषित करि तिरस्काररूप किया, तैसैं हमकोहू तिरस्कार करेगा! ऐसैं सर्व गण आचार्यतैं भिन्न होजाय वा आचार्यका त्याग करै ॥ अब संघहू त्यक्त होय है सो कहे हैं ॥ गाथा—

तह चेव पवयणं स- । व्वमेव विप्परिणयं भवे तस्स ॥
तो सेदि सावहारं । करेज्ज णिज्जूहणं चावि ॥ ९९ ॥

अर्थ— तैसैंही प्रवचन जो सर्व च्यार प्रकारका संघ वा रत्नत्रय तिनतैं विरुद्धपरिणतिकूं प्राप्त होय तो आचार्यका त्याग करै तथा आचार्यपणा बिगाड दे ॥ अब मिथ्यात्वकी आराधनाका प्रतिपादनके अर्थि कहे हैं ॥ गाथा—

जदि धरिसणमेरिसयं । करेदि सिस्सस्स चेव आयरिउं ॥
धिद्धी अपुट्ठधम्मा । समणोत्ति भणेज्ज मिच्छजणो ॥ ५०० ॥

अर्थ— जो आचार्य शिष्यकी ऐसी अवज्ञा करै, ऐसा अपवाद करै, तातैं धर्मकी पुष्टतारहित ये मुनि, तिनकूं धिक्कार होहू! धिकार होहू!! ऐसैं मिथ्यादृष्टिजन कहे हैं ॥

इच्चेवमादिदोसा । ण होंति गुरुणो रहस्सधारिस्स ॥
पुट्ठे व अपुट्ठे वा । अपरिस्साइस्स धीरस्स ॥ १ ॥

अर्थ— जो पूछेतैंहू शिष्यके कहे दोष न कहै अर नहीं पूछेतैंहू आलोचनामैं कह्या दोष नही कहै ऐसा रहस्य जो गुप्तीका धारक आचार्य, ताकै इत्यादिक पूर्वैं कहे दोष नही होय हैं ॥

ऐसैं सुस्थित नामा अधिकारविषैं निर्यापकाचार्यके अष्टगुणनिविषैं अपरिस्रावी नामा सातमां गुण दश गाथानिमैं समाप्त कीया ॥ आगै निर्यापक नामा अष्टमां गुण द्वादश गाथानिकरि कहे हैं ॥

संथारभत्तपाणे । अमणुण्णे वा चिरंमि कीरंते ॥ पडिचरणपमाएण य । सेहाणमसंवुडगिराहिं ॥ २ ॥ सीदण्हछुहातण्हा । किलामिदो तिव्ववेदणा-ए व ॥ कुविदो हवेज्ज खवउ । मेरं वा भेत्तुमिच्छेज्ज ॥ ३ ॥ णिज्जव-एण तदो से । चित्तं खवयस्स णिव्ववेदव्वं ॥ अक्खोभेण खमाए । जुत्तेण पणट्ठमाणेण ॥ ४ ॥

अर्थ— जो वैयावृत्यके टहलके करनेवाले जे परिचारक तिनका प्रमादकरिकै संस्तर अमनोज्ञ हुवा होय तथा, भोजन पान अमनोज्ञ हुवा होय, तथा संस्तरादिक करनेमें विलंब कीया होय तिनकरिकै, तथा शिष्यनिका संवररहित वचनकरिकै, तथा शीत उष्ण क्षुधा तृषादिककी बाधाकरिकै, तथा तीव्र रोगादिककी वेदनाकरिकै, जो क्षपक कोपकूं प्राप्त होय जाय, तथा व्रतनिकी मर्यादा तथा संन्यासमें त्याग होय तिनकी मर्यादा भंग करनेकी इच्छा करै तादि क्षोभ जो आकुलता ताकरिकै रहित अर क्षमायुक्त अर मानरहित ऐसा निर्यापक आचार्य है सो क्षपकका मनकूं प्रशांत करै–वेदनारहित करै, व्रतनिमें दृढ करै, मर्यादाका भंगतैं उपज्या पापतैं भयरूप करै, सो निर्यापकगु-णका धारक आचार्य होय है ॥ ऐसा आचार्य होय सो रक्षा करै सो कहे हैं ॥ गाथा–

अंगसुदे य वहुविधे । णोअंगसुदे य वहुविधवियप्पे ॥

रदणकरंडयभूदो- । खीणो अणिर्उगकरणम्मि ॥ ५ ॥

अर्थ— जो बहुतप्रकार अंगश्रुत तथा बहुतप्रकार नोअंगश्रुत इनमें रत्न मेलनेके पिटारेतुल्य होय—जैसें पिटारेमें रत्न जिसतरह धारण करै तिसतरै धऱ्या रहै घटै बधै नही, तैसें जिनका आत्मा अंगादिक श्रुतज्ञाननैं धारण कीया, तैसाका तैसा हीनता अधिकतारहित धारण करै, ऐसा निर्यापकगुणका धारी होय है ॥ बहुरि अनुयोग जे सत् संख्या क्षेत्र स्पर्शन काल अंतर भाव अल्पबहुत्व इन अनुयोगनिकरि जीवादिक-तत्त्वनिके जाननेमें कुशल होय, प्रवीण होय, सोही क्षपककूं निर्विघ्न संसारस-मुद्रके पार करै ॥

अब इहां अंग नामा श्रुतज्ञान तथा अंगबाह्यश्रुतज्ञानका स्वरूप जाननेयोग्य है। तातैं श्रीगोमटसार नाम ग्रंथ तामैं जो ज्ञानमार्गणाका वर्णन श्रीनेमिचंद्रसिध्दांतचक्रवर्त्ती परमागमके अनुकल कीया, तहांतैं किंचिन्मात्र कथन इहां प्रकरण जानि हमारा उपयोगकी शुध्दताके अर्थि करिये है ॥ सर्व ज्ञानमार्गणाका वर्णन कीये, ग्रंथ बहुत होजाय । तातैं एकदेश श्रुतभावनाके अर्थि वर्णन करिये है ॥

ज्ञानके भेद पांच हैं ॥ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान ये पंचप्रकारके सम्यग्ज्ञान हैं, जातैं ये पांचूंही ज्ञान पदार्थका स्वरूपकूं जैसा है तैसैंतैं

न्यून नही जाने हैं अर अधिकहू नही जाने हैं, जैसाका तैसा जाने हैं ॥ यद्यपि सामान्यसंग्रहरूप द्रव्यार्थिकनयका आश्रयकरि ज्ञान एकरूपही है, तथापि विशेष-अपेक्षाकरि पर्यायार्थिकनयकूं आश्रय करिकै ज्ञानके पंच भेद कहिये हैं ॥ तिनमैं मति श्रुत अवधि मनःपर्यय ये च्यारी ज्ञान तो क्षायोपशमिक हैं। जातैं मतिज्ञानादिकनिका आवरण तथा वीर्यांतरायकर्मका जे सर्वघातिस्पर्धक तिनका तो उदयाभाव क्षय है, जो, आत्माका सर्वगुणनैं घातै, सो सर्वघातिस्पर्धक, तिनका तो उदयरूप होय रस नही देना यहही क्षय है ॥ अर जे उदयावलीमैं नही आये ऐसे जे सर्वघातिस्पर्धक तिनका सत्तामैं अवस्थितरूप रहना, सोही उपशम। ऐसा क्षय अर उपशम अर देशघातिस्पर्धकनिका उदय, तातैं क्षायोपशमिक कहिये। सो सर्वघातिस्पर्धकनिका क्षयोपशम होजाय तदि मतिज्ञानावरणादिकनिका देशघातिस्पर्धकनिका उदय विद्यमान होतेहू ज्ञानकी उत्पत्तीका अभाव नही होय। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान इनि च्यारि ज्ञाननिमैं जिस ज्ञानका आवरण नामा कर्मका सर्वघातिस्पर्धकनिका क्षयोपशम होजाय सोही ज्ञान प्रकट होय है। तातैं ये च्यारूं ज्ञान क्षायोपशमिक हैं। अर सर्वज्ञानावरणका अत्यंत क्षय होनेतैं उपजे है, तातैं केवलज्ञान क्षायिक है ॥

अब मिथ्याज्ञानकी उत्पत्ति तथा कारण अर स्वरूप अर स्वामी अर भेद तिनकूं कहे हैं ॥ जो मतिज्ञान अर श्रुतज्ञान अर अवधिज्ञान ये तीनूंही ज्ञान मिथ्यात्वका उदयसहित तथा अनंतानुबंधी क्रोधका वा मानका वा मायाका वा लोभका उदयसहित जो जीव, ताकै कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान विभंगज्ञान ये विपरीत होय हैं ॥ जैसैं कडवी तूंबीमें प्राप्त हुवा मिष्ट दुग्ध जहररूप परिणमे है, तैसें मति-श्रुत-अवधि-ज्ञानावरणके क्षयोपशमतैं उपजे जे मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान ते मिथ्यात्व अर अनंतानुबंधीका उदयकूं अनुभव करता मिथ्यादृष्टि जीवकै कुमति-कुश्रुत-विभंगरूप विपरीत होत है ॥ सो इन तीनप्रकार ज्ञानका विशेष स्वरूप ऐसैं जानना- जा जीवकै परका उपदेशविनाही तैलकर्पूरादिक परस्पर संयोगतैं उपजी मारणशक्तिसहित विष बणायवेमें बुद्धि प्रवर्ते, सो कुमतिज्ञान है। तथा सिंहव्याघ्रादिकके पकडनेकूं ऐसा काष्ठमय यंत्र बनावे- जाके अभ्यंतर तो बकरादिक जीवकूं दिखावे अर तामें पाद स्थापन करताहू कपाट जुडि जाय, ऐसी जातीका यंत्र बणायवेमें जाकै निपुणता होय उपदेशविनाही बुद्धि उपजे, सोही कुमतिज्ञान है। तथा जाकै मत्स्य कासवा मूंसा इत्यादिक पकडनेके अर्थि काष्ठादिककरि रच्या कूट बनावनेमें बुद्धि होय, तथा तीतर हरिणादिकके पकडनेकूं जाल पींजरा, तथा उंट हस्ती इत्यादिक पकडनेकूं खाडेनिमें बंधन रचना, तथा

पक्षीनिके पकडनेकूं दीर्घ वासनिके ल्हासा इत्यादिक, तथा गृहमें रहनेवाले हिरणादिकनिके सींगनिमें अन्य हिरणादिकनिकूं पकडनेकूं सूतकी पासी फंदा रचनेमें उपदेशविनाही जाकी बुद्धि प्रवर्तै, सो कुमतिज्ञान है। तथा अन्यजीवनिको ठिगनेकूं, परका धन राख मेलनेकूं, तथा परकी स्त्री हरनेकूं, परजीवनिको मारनेकूं, धनके चोरनेकूं, तथा अन्य भोले जीवनिकी आजीविका तथा जमी जायगा मकान खोसि लेनेमैं, तथा अन्यका अपमान करनेमें, तथा न्यायमें साचा होय ताकूं झूटा कर देनेमें, तथा झूटेकूं साचा करनेमें, तथा परकै दूषण लगाय देनेमें, तथा धर्मात्माकूं चोरी अन्यायीरूप दोष लगाय देनेमें, तथा कुदेवमें मूढजीवांकी देवत्वबुद्धि कराय देनेमें, तथा पाखंडीनिकूं पुजाय देनेमें, तथा आप व्यसनी पापी होय जगतमें पूजा प्रशंसा आपकी करा लेनेमें इत्यादिक हिंसा झूट कुशील परधनहरण परिग्रह बधावनरूप पापनिमें जाकै परका उपदेशविनाही बुद्धि उपजै, सो सर्व कुमतिज्ञान है ॥ तथा औरहू पृथ्वी जल अग्नि पवन वनस्पति त्रस इनि छकायके जीवनिका घात करि सांसारिक अनेक यंत्र अनेक क्रिया अनेक रागकारी वस्तूके उपजावनेमें जाकै उपदेशविनाही बुद्धि उपजै, सो कुमतिज्ञान है ॥ तथा ग्रामनगरादिककूं दग्ध करनेको तथा सर्व देशग्रामनिवासी जीवनिका तथा परकी सेनाका विध्वंस करनेका उपायभूत शस्त्र अग्नि विषादिक

उत्पन्न करनेकी जाकै बुद्धि प्रकट होय, सो सर्व कुमतिज्ञान है ॥

अर जो परके उपदेशतैं बुद्धि उपजै, सो कुश्रुतज्ञान है ॥ बहुरि चौरनिका शास्त्र, तथा कोटपालपणाका शास्त्र, तथा जामैं कौरवपांडवसंबंधी तथा पंचपांडवनिकै एक द्रौपदी भार्या कहना अर पंचभर्तारीकूं सती कहना, तथा संग्राम युद्धका कथन जामैं ऐसा भारत तथा रामरावणादिकनिकूं वानर राक्षसजाति अर वानरराक्षसनिका युद्धादिकरूप रामायण, तथा मिथ्यादर्शनदूषित सर्वथैकांतवादीनिकी स्वेच्छाकरि कल्पित कथानिकी रचना, तथा हिंसायज्ञादिक गृहस्थकर्मका वर्णन, तथा त्रिदंडधारण जटाधारणादि तपकी प्रशंसा, तथा षोडशपदार्थ षट्पदार्थ भावना विधिनियोगका कथन, तथा भूतचतुष्टयतैं जीवका उपजना, तथा पचीस तत्त्व कहना, तथा ब्रम्हाद्वैत विज्ञानाद्वैत तथा सर्वशून्यत्वादिक तथा नास्तिकताके प्रवर्तक खोटे शास्त्रनिमैं अभ्यास सो सर्व कुश्रुतज्ञान जानना ॥

बहुरि मिथ्यादर्शनकरिकै कलंकित जीवकै अवधिज्ञानावरण अर वीर्यांतरायका क्षयोपशमतैं उत्पन्न हुवा अर द्रव्य क्षेत्र काल भावकी मर्यादाकूं आश्रय कीया अर रूपी द्रव्य है विषय जाका ऐसा विभंगज्ञान है ॥ तथा आप्त आगम पदार्थनिविषैं विपरीत ग्रहण करनेवाला विभंगज्ञान जानना ॥ सो यो विभंगज्ञान मनुष्यगति अर

तिर्यंचगतिमें तो तीव्र कायक्लेश तप अर द्रव्यसंयमकरिकै उपजे है, तातैं गुणप्रत्यय है ॥ अर देवनारकीनकै भवप्रत्यय है, जातैं देवनिका वा नारकीनिका जो भव धारेगा; ताकै अवधिज्ञान होयहीगा । सो मिथ्यादृष्टीनिका कु अवधि कहावे है, ताहीको विभंगज्ञान कहिये है ॥ सो विभंगज्ञान मिथ्यात्वादि कर्मबंधका बीज है-कारण है ॥ तथा कोऊकै नरकादिकगतिमें पूर्वजन्मका उपजाया जो पापकर्म, ताका फल तीव्र दुःखकी वेदना, ताकरिकै जीवकै ऐसा चिंतवन होय "जो मैं पूर्वजन्ममें हिंसादिक घोर पाप सेवन कीया तथा सप्तव्यसन सेवन कीया, ताका फल नरकमें प्रत्यक्ष पाया!" ऐसैं पापकूं निंदता जीवकै सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानादिककाहू कारण जानना ॥ ऐसैं तीन कुज्ञानका सामान्यस्वरूप कह्या ॥

अब मतिज्ञानका स्वरूप अर भेद कहे हैं ॥ यो मतिज्ञान है सो इंद्रियद्वारैं जाने है। इंद्रियनिविना नाही जाने है। अर इंद्रिय है सो स्थूलपदार्थकूं जानै, सूक्ष्मकूं नही जानै, अर वर्तमानकालवर्तीकूं जानै अर जो वर्तमान नही ताकूं नही जानै, अर अपने योग्य देशमें तिष्ठतेकूं जानै, दूरि क्षेत्रमें तिष्ठतेकूं नही जानै, अर अपने विषयकूं जानै, अन्य इंद्रियनिके विषयकूं अन्य इंद्रिय नही जानै, जैसैं शब्दकूं नेत्र इंद्रिय नही जानै ॥ इनि इंद्रियनिकै स्थूल जे स्पर्शादिक विषय तिनिका

जानपना जानना। अर सूक्ष्म अर अंतरित अर दूरवर्ती जे परमाण्वादिक नरक स्वर्ग मेरुपर्वतादिकनिके जाननेमें शक्तीका अभाव है ॥ अर यो मतिज्ञान स्पर्शन रसन घ्राण नेत्र कर्ण इनि पंच इंद्रियनिकरि उपजे है, तथा मनकारिहू मतिज्ञान उपजे है। ऐसैं पाच इंद्रिय छठा मनके द्वारैं होय मतिज्ञान उपजे है ॥ इनिका विशेष ऐसा–

जो इंद्रिय अर इंद्रियके ग्रहणयोग्य विषय इनिका संयोग होताही जो वस्तूकी सत्तामात्रका ग्रहण, सो दर्शन है। जैसें दृष्टि पडताही वस्तूका प्रकाशमात्र निर्विकल्प ग्रहणमें आया, सो चक्षुर्दर्शन है। ऐसैंही कर्णादिक च्यारी इंद्रियद्वारैं सामान्य विकल्परहित ग्रहण होय, सो अचक्षुर्दर्शन है। अर ताकै लगताही जो देख्या हुवा पदार्थका वर्ण संस्थानादिक विशेष ग्रहणमें आवै, सो अवग्रह नामा मतिज्ञान होय है॥

भावार्थ– इंद्रिय अर पदार्थ इनिका संबंध होताही जो सत्तामात्रका ग्रहण, सो दर्शन है। अर पाछै पदार्थका रंग आकारादिकका ग्रहण, सो अवग्रह नामा मतिज्ञान है। जैसें ग्रहणमें आया जो यह श्वेत है ऐसें श्वेतरूप जाण्या पदार्थमें विशेष जाणवाकी इच्छा जो यह श्वेत है सो बुगलांकी पंक्ति होसी ऐसैं जो अवग्रहमें आया जो श्वेतपदार्थ ताहीमें विशेष जो बुगलांकी पंक्ति जाननेकी इच्छा अथवा

ध्वजा देखी थी तिनमैं ध्वजा जाननेकी इच्छा, सो ईहा नामा मतिज्ञानका दूसरा भेद है। अथवा जो या श्वेत दीखे है सो ध्वजानिकी पंक्ति होसी ऐसैं जो वस्तु होय तामैं ताहीका जो ज्ञान होना सो ईहा नामा मतिज्ञानका दूसरा भेद है॥ ऐसैंही शब्दादिकनिमैं अन्य इंद्रियद्वारैंहू ईहा होय है॥

बहुरि जामैं ईहा उपजी थी, ताहीका निर्णय दृढ होना याका नाम अवाय है॥ जैसैं बुगलांकी पंक्तीमैं ईहा नामा ज्ञान हुवो छो अर बहुरि पांखनिका ऊंचानीचादिक करनेकरि निश्चय होय जो या बुगलांकी पंक्तीही है ऐसैं निर्णयरूप अवाय नामा तीसरा मतिज्ञानका भेद है॥

बहुरि जाका निर्णय होगया, तामैं वारंवार प्रवृत्ति करिकै ऐसा निर्णय हुवा, जो 'कालांतरमैं विस्मरण नही होय,' सो धारणा नामा मतिज्ञानका चौथा भेद है॥

अथवा पदार्थका अर इंद्रियका संबंध होताही सत्तामात्रका ग्रहण, सो तो दर्शन है, अर ताकै लगताही यो पुरुष है ऐसा ग्रहण होय, सो अवग्रह है॥ अर पुरुषका विशेषरूप जानना हुवा तामैं परिणाम हुवा जो 'यह पुरुष दक्षिणका है अक उत्तरका है?' ऐसा संशय उपजता संता, संशयको दूरि करनेके निमित्त यो दक्षिणी होसी ऐसा ज्ञानका उपजना सो ईहा है॥ बहुरि वेषभाषादिककरि यथावत् निर्णय हुवा जो

दृक्षिणीही है, सो अवाय जनना ॥ बहुरि कालांतरमें नही भूलना, सो धारणा है ॥

सो ये अवग्रहादिक बारह बारह प्रकार होय हैं ॥ जहां बहोतका अवग्रह होय; जैसैं बहोत गायनिमैं कोऊ धोली है, कोऊ काली है, कोऊ खांडी, कोऊ मूंडी इनिका ग्रहण, सो बहु अवग्रहादिक है ॥ अर सेनामैं हस्ती घोडा ऊंट बलध मनुष्य इत्यादिक अनेकजातिका अवग्रहादिक होय, सो बहुविध है ॥ शीघ्रतातैं पडता जो जलका प्रवाहादिक, ताका ग्रहण, सो क्षिप्रग्रहण है ॥ बहुरि जलमें मग्न जो हस्ती इत्यादिक ताका ग्रहण, सो अनिःसृतग्रहण है ॥ बहुरि वचनतैं कह्याविना अभिप्रायतैं जानि लेना, सो अनुक्तग्रहण है ॥ बहुरि बहोत काल जैसाका तैसा निश्चल ग्रहण होय, सो ध्रुवग्रहण है ॥ बहुरि अल्पका ग्रहण तथा एकका ग्रहण सो अल्पग्रहण है ॥ बहुरि एकप्रकारका घोडा ऊंट बलध मनुष्यादिकनिमें एकजातिहीका ग्रहण, सो एकविधग्रहण है ॥ बहुरि मंद गमन करता अश्वादिकनिका ग्रहण, सो अक्षिप्रग्रहण है ॥ बहुरि प्रकट बाह्य निकल्याका ग्रहण, सो निःसृतग्रहण है ॥ बहुरि यो घट है ऐसैं कह्या हुवाका ग्रहण, सो उक्तग्रहण है ॥ बहुरि क्षणमात्र स्थिति रहता जो बीजली इत्यादिकका ग्रहण, सो अध्रुवग्रहण है ॥ ऐसैं अवग्रह बारहप्रकार कह्या, तैसैंही बारह बारह प्रकार ईहा अवाय धारणा होय हैं, ते सब मिलि एक इंद्रियद्वारैं अडतालीस भेद भये, तब

पांचूं इंद्रिय छठा मन इन छहूनिसूं गुणे २८८ भेद अर्थावग्रहके जानने ॥ जातैं नेत्रादिक इंद्रियनिका विषय है सो तो अर्थ है, ताके बहु आदिक विशेषण हैं, इनि बहु इत्यादिक विशेषणकरि सहित सो अर्थ कहिये वस्तू, ताकै अवग्रह ईहा अवाय धारणा ऐसा संबंध जोडि दोयसे अठ्यासी भेद जानिये ॥

बहुरि व्यंजन कहिये अव्यक्त जो शब्दादिक ताका अवग्रहही होय है, ईहादिक नही होय हैं, ऐसा नियम है। जैसैं नवा मांटीका सरावाविषैं जलका कण क्षेपिये तहां दोय तीन आदि कणांकरि सींच्या जेतैं आला नही होय तेतैं तो अव्यक्त है, सो व्यंजन है। बहुरि सोही सरावा फेरि फेरि सींच्या हुवा मंद मंद आला होय तब व्यक्त है। तैसैंही श्रोत्रादिक इंद्रियनिका अवग्रहविषैं ग्रहणयोग्य जे शब्दादिस्वरूप परिणया पुद्गलस्कंध, ते दोय तीन आदि समयनिमैं ग्रह्या हुवा जेतैं व्यक्तग्रहण नही होय, तेतैं तौ व्यंजनावग्रह है। बहुरि फेरि फेरि तिनका ग्रहण होय तब व्यक्त होय, तब अर्थावग्रह होय है। ऐसैं व्यक्तग्रहणतैं पहलै तो व्यंजनावग्रह कहिये। बहुरि व्यक्तग्रहणकूं अर्थावग्रह कहिये। यातैं अव्यक्तग्रहणरूप जो व्यंजनावग्रह, तातैं ईहादिक नही होय है ऐसैं जानना। बहुरि नेत्र इंद्रिय अर मन इंद्रिय दोऊनिकरि व्यंजनावग्रह नही होय है। जातैं नेत्र इंद्रिय अर मन इंद्रिय ये दोऊ अप्राप्यकारी हैं—ये पदार्थतैं

भिडिकरि स्पर्शन करि नाहि जाने हैं—दूरिहीतैं जाने हैं। जातैं नेत्र इंद्रिय है सो विनास्पर्श्यां सन्मुख आया अर निकट प्राप्त हुवा अर बाह्य सूर्य चंद्रमा दीपकादिकरि प्रकट किया ऐसा पदार्थकूं जाने है। अर मन है सोहू विनास्पर्श्यां दूरि तिष्ठता पदार्थकूं विचारमें ले है। यातैं इनि दोऊ इंद्रियनिकै व्यंजनावग्रह नांही होय है। ऐसैं व्यंजनका अवग्रहही होय अर च्यारि इंद्रियनिकरिही होय। तातैं च्यारि इंद्रियनिकरि बहु बहुविधादिक बारह भेदकूं गुणिये तब अठतालीस भेद होय हैं। बहुरि पूर्वे कहे अर्थावग्रहके दोयसे अठ्यासी भेद अर व्यंजनावग्रहके अठतालीस भेद दोऊ मिलिकरि तीनसो छत्तीस भेद मतिज्ञानके होय हैं ॥

बहुरि जो जलके बारे हस्तीकी सूंडीकूं देखिकरि जलमें मग्न जो हस्ती ताका जानना, सो अनिःसृत नामा मतिज्ञान है ॥ अथवा साध्यतैं अविनाभावका नियमका निश्चयरूप जो साधन, तातैं साध्यका विज्ञान होना, सो अनुमान है ॥ सो अनुमानहू अनिःसृत नामा मतिज्ञानहीमें गर्भित है। जातैं साध्य जो हस्ती, ताविना सूंडी नही होनेका नियमरूप है निश्चय जाका, ऐसो साधन जो सूंडी, तामें साध्य जो हस्ती, ताका जानना, सो अनुमानप्रमाण मतिज्ञानही है ॥ बहुरि कोई स्त्रीका मुखका ग्रहणके कालहीमें अन्यवस्तुरूप जो चंद्रमा ताका ग्रहण होना, जातैं मुखका

सदृशपणातैं चंद्रमाका स्मरण होना 'जो चंद्रमासमान मुख है' ऐसा प्रत्यभिज्ञान होय है ॥ अथवा वनमें गोसदृश गवयकूं ग्रहण करि गौका स्मरण होना 'जो, गोसदृश गवय है' ऐसा प्रत्यभिज्ञान होय है ॥ तथा जैसैं रसोईमें अग्नि होतैंही धूम उपज्या देख्या अर जलका ह्रदमें अग्निका अभाव है तामैं धूमहू नही देख्या, तैसैं सर्वदेश सर्वकालसंबंधीपणाकरि अग्निकै अर धूमकै अन्यथानुपपत्तिरूप कहिये 'अग्निविना धूम नहीही होय' ऐसा अविनाभावसंबंधका ज्ञान, सो तर्क नामा मतिज्ञान है ॥ ऐसैं अनुमान स्मृति प्रत्यभिज्ञान तर्क ये च्यारी मतिज्ञानका भेद जो अनिःसृत ताके विषय हैं—केवल परोक्ष हैं। जातैं अनिःसृतमतिज्ञानके भेद जे अनुमान स्मृति प्रत्यभीज्ञान तर्क ये च्यारी एकदेशहू विशदता जो निर्मलता ताके अभावतैं परोक्षही हैं ॥ बहुरि शेष जे स्पर्शनादि इंद्रिय अर मन इनिका व्यापारतैं उपजे जे बहु इत्यादिक हैं विषय जिनका ऐसे मतिज्ञान, ते एकदेशनिर्मलतातैं सांव्यवहारिकप्रत्यक्ष कहिये हैं। ते सर्व मतिज्ञान सम्यक् हैं अर प्रमाण हैं ॥

अब श्रुतज्ञानका स्वरूप कहे हैं ॥ प्रथम तो मतिज्ञानावरणकर्मका क्षयोपशमतैं मतिज्ञान उपजे है अर पाछै मतिज्ञानकरि ग्रहण कीया पदार्थका अवलंबन करिकै अर अन्य अर्थकूं जाणै श्रुतज्ञानावरणके क्षयोपशमतैं, सो श्रुतज्ञान है ॥ मतिज्ञानकी

प्रवृत्तिका अभावकूं होता श्रुतज्ञानहूकी प्रवृत्तिका अभाव है ऐसा नियम है ॥ अब इहां श्रुतज्ञानके प्रकरणविषैं श्रुतज्ञान दोयप्रकार है, एक अक्षरस्वरूप अर दूजा अक्षररहित ॥ तिनमैं ककारादिक तो अक्षर, अर विभक्त्यंत पद, अर परस्पर अपेक्षासहित पदनिका निरपेक्षसमुदाय सो वाक्य है । सो अक्षर पद अर वाक्य इनितैं उपज्या जो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान, सो तो प्रधान है मुख्य है । जातैं देना ग्रहण करना शास्त्रनिका अध्ययन इत्यादिक संपूर्णव्यवहारका कारण तो अक्षरात्मक श्रुतज्ञानही है ॥ अर अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान लिंगचिन्हतैं उपज्या एकेंद्रियादिक पंचेंद्रियपर्यंत जीवनिविषैं होय है, तोहू व्यवहारका प्रवर्तावनेमें प्रधान नाहीं, तातैं अप्रधान है ॥ बहुरि जैसैं जीव विद्यमान है ऐसा शब्दका ज्ञान तो कर्णेंद्रियकरि उपज्या मतिज्ञान है अर या मतिज्ञानतैं 'जीव विद्यमान है' ऐसैं शब्दकरि कहनेमें आया जो जीवका अस्तित्व ताकूं होता जो वाच्यवाचकका संबंधका संकेतका जोडपूर्वक जो ज्ञान उपजे है, सो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है ॥ अथवा कोऊ घट ऐसा दोय अक्षर कह्या सो घट ये दोय अक्षरका जानना सो कर्णेंद्रियद्वारैं उपज्या मतिज्ञान है अर घटशब्दरूप मतिज्ञानतैं जलका धारन करनेवाला घटका आकार ज्ञानमें प्रकट होजाना सो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है ॥

बहुरि पवन देहकै लाग्या तादि पवनका शीतस्पर्शका जानना सो तो स्पर्शन इंद्रियद्वारै मतिज्ञान है अर पवनका शीतस्पर्शरूप ज्ञानतैं जो वातप्रकृतिवालाकै 'यह अमनोज्ञ है विकारकारी है' ऐसा ज्ञान होना, सो अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। इहां श्रुतज्ञान अक्षरात्मक अर अनक्षरात्मक कह्या। तिनमें अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानके भेदमें पर्याय पर्यायसमास है लक्षण जाका सो सर्वजघन्य ज्ञानमें आदि लेय आ-पका उत्कृष्ट पर्यंत असंख्यातलोकमात्र ज्ञानके भेद हैं। अर ते असंख्यातलोकमात्र भेद कैसे हैं? असंख्यातलोकमात्र वार षट्स्थानवृद्धिकरि वर्धित हैं। अर अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है सो एक घाटि एकट्ठी प्रमाण जे अपुनरुक्त अक्षर तानैं आश्रय करि संख्यातभेदरूप है, सो एक घाटि एकट्ठीके अक्षरनिका प्रमाण ऐसा जानना—१८, ४४, ६७, ४४०, ७३७०, ९५५१६, १५ ॥

अब श्रुतज्ञानके वीस भेद कहे हैं—१ पर्याय, २ पर्यायसमास, ३ अक्षर, ४ अक्षर-समास, ५ पद, ६ पदसमास, ७ संघात, ८ संघातसमास, ९ प्रतिपत्तिक, १० प्रतिप-त्तिकसमास, ११ अनुयोग, १२ अनुयोगसमास, १३ प्राभृतप्राभृतक, प्राभृतकप्राभृत-कसमास, १५ प्राभृत, प्राभृतसमास, १७ वस्तु, १८ वस्तुसमास, १९ पूर्व, २० पूर्व-समास ऐसे श्रुतज्ञानके वीस भेद जानने ॥ तिनमें सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकके

उत्पन्न हुवाकै प्रथमसमयमें आवरणरहित सर्वजघन्य शक्तिरूप पर्याय नामा श्रुतज्ञान होय है॥ सो पर्यायज्ञानकै आवरण नहीं, जो पर्यायज्ञानकैहू आवरण होय तो संपूर्णज्ञानका अभाव होजाय, तदि आत्माका अभाव होय। तातैं पर्यायज्ञानसूं सिवाय घटिवानैं ठिकाना नहीं, तातैं पर्यायज्ञान निरावरण जानना। सो सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तककै जन्मका प्रथमसमयमें सर्वजघन्य स्पर्शनेंद्रियजनित मतिज्ञानपूर्वक लब्ध्यक्षर है दूसरा नाम जाका ऐसा जघन्यपर्याय नामा श्रुतज्ञान होय है। लब्धि नाम श्रुतज्ञानावरणका क्षयोपशमका है अथवा अर्थग्रहणकी शक्तिकूं लब्धि कहिये। लब्धिकरि जो विनाशरहित सो लब्ध्यक्षर, इतना ज्ञानका क्षयोपशम सदाकाल रहे है। सो सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तक निगोदियाका जो पर्याय नामा ज्ञान, ताके जाननेकी शक्तीका अविभागपरिच्छेद कितना है सो कहे हैं॥

द्विरूपवर्गधाराविषैं दोयका वर्ग ४। अर दूसरा स्थान १६। तीजा वर्गस्थान २५६। चौथा वर्गस्थान पणट्ठी ६५५३६। पांचमां वर्गस्थान वादाल ४२९४९६७२९६। छट्ठा वर्गस्थान एकट्ठी १८४४६७४४०७३७०९५५११६१६ ऐसैं परस्पर गुणनरूप अनंतानंत वर्गस्थान गये जीवराशीका प्रमाण उपजे है। बहुरि ताके उपरि अनंतानंत वर्गस्थान गये पुद्गलराशीका प्रमाण उपजे है। बहुरि ताके उपरि अनंतानंत वर्गस्थान गये

कालका समयकी राशि उपजे है। बहुरि ताके उपरि अनंतानंत वर्गस्थान गये आकाशके प्रदेशांकी श्रेणीका प्रमाण उपजे है। बहुरि ताके उपरि अनंतानंत वर्गस्थान गये धर्म अधर्म द्रव्यके अगुरुलघु नामा गुणका अविभागप्रतिच्छेद उपजे है। बहुरि ताके उपरि अनंतानंत वर्गस्थान गये एक जीवका अगुरुलघुगुणका अविभागप्रतिच्छेद उपजे है। बहुरि ताके उपरि अनंतानंत वर्गस्थान गये सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकका जघन्यज्ञान जो पर्यायज्ञान ताका अविभागप्रतिच्छेद उपजे है। यातैं सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकका सर्वतैं जघन्यज्ञानकै जाननेकी शक्तिरूप अनंतानंत अविभागप्रतिच्छेद है। तिनके उपरि द्वितीयादिक भेद षड्गुणी वृध्दिकरि वर्धित हैं॥ १ अनंतभागवृध्दि, २ असंख्यातभागवृध्दि, ३ संख्यातभागवृद्धि ४ संख्यातगुणवृद्धि, ५ असंख्यातगुणवृद्धि, ६ अनंतगुणवृद्धि, ऐसैं असंख्यातलोकप्रमाण षट्स्थानवृद्धिरूप असंख्यातलोकप्रमाण पर्यायसमासज्ञानके भेद होय हैं॥ सो इनि षट्स्थानवृध्दीका स्वरूप गोमटसार नाम ग्रंथमें संदृष्टिसहित विशेषकरिकै कह्या है। तथापि संक्षेपकरिकै इहांहू कहिये हैं॥

जो अनंतानंत वर्गस्थान गये जो सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तकका पर्याय नामा ज्ञानका शक्तिका अंशरूप जो अविभागप्रतिच्छेद अनंतानंत कह्या, ताकै जीवराशिप्-

माण अनंतका भाग देय जो लब्ध आवै तिनकूं पर्यायज्ञानका परिमाणमें मिलाइये। सो जितना अविभागप्रतिच्छेद हुवा सो पर्यायसमासज्ञानका प्रथमभेदका अविभागप्रतिच्छेदका प्रमाण होय है। ऐसें याकै फेरि जीवराशिप्रमाण अनंतका भाग देयदेय मिलाता जाइए, सो पर्यायसमासज्ञानका दूजा तीजा इत्यादिक भेद होय है। सो याका क्रम ऐसा- जो अनंतका भाग देयकरि वधावै सो अनंतभागवृद्धि है, सो सूच्यंगुलका असंख्यातवा भागप्रमाण अनंतभागवृध्दि होजाय, तदि फेरि एकवार असंख्यातभागवृध्दि होय। बहुरि सूच्यंगुलके असंख्यातभागप्रमाण अनंतभागवृध्दि होजाय, तदि फेरि एकवार असंख्यातभागवृध्दि होय, ऐसैं सूच्यंगुलके असंख्यातवे भागवार अनंतभागवृध्दि होय, तब एकवार असंख्यातभागवृध्दि होतैं होतैं असंख्यातभागवृध्दिहू सूच्यंगुलके असंख्यातभागवार होजाय, तदि बहुरि सूच्यंगुलके असंख्यातभागवार अनंतभागवृद्धि होय, फेरि एकवार संख्यातभागवृद्धि होय। ऐसैं करते करते सूच्यंगुलका असंख्यातभागवार संख्यातभागवृद्धि होजाय, तदि फेरि सूच्यंगुलकै असंख्यातवा भागवार अनंतवारवृद्धि होय तब तो एकवार असंख्यातभागवृद्धि होय। ऐसैं सूच्यंगुलकै असंख्यातभागवार असंख्यातभागवृद्धि होय तदि एकवार संख्यातभागवृद्धि होय। ऐसैं सूच्यंगुलकै असंख्यातवै भागप्रमाण संख्यातभागवृद्धि

होय अर एकवार संख्यातगुणवृद्धि होय ॥

बहुरि जैसैं इतने पलटे लागि एकवार संख्यातगुणवृद्धि भई, तैसैं सूच्यंगुलके असंख्यातभाग वार संख्यातगुणवृद्धि होजाय, तदि पाछला सर्व पलटा लागि एकवार असंख्यातगुणवृद्धि होय। ऐसैं सूच्यंगुलके असंख्यातवै भागप्रमाण असंख्यातगुणवृद्धि होजाय; तदि पाछला कह्या सर्व पलटा लागि एकवार अनंतगुणवृद्धि होय है। सो यो अनंतगुणवृद्धिरूप स्थान है सो दूसरा षट्स्थानमें जाननो ॥ बहुरि याके ऊपरि सूच्यंगुलका असंख्यातभागवार अनंतभागवृद्धि होय, तदि एकवार असंख्यातभागवृद्धि होय। इत्यादि असंख्यातलोकमात्र षट्स्थानवृद्धि होय है। सो ये सर्व भेद अनक्षरात्मक जो पर्यायसमासज्ञानके भेद जानने ॥

अब आगै अक्षररूप जो श्रुतज्ञान, ताही प्ररूपण करे हैं ॥ असंख्यातलोकप्रमाण जे षट्स्थान, तिनके मध्य जो अंतका षट्स्थान, ताका जितना अविभागप्रतिच्छेद है सो पर्यायसमासज्ञानका सर्वोत्कृष्ट भेद है। अर पर्यासमासज्ञानतैं अनंतगुण अर्थाक्षरज्ञान है ॥ अक्षर तीनप्रकार होय है- १ लब्ध्यक्षर, २ निर्वृत्यक्षर, ३ स्थापनाक्षर। तिनमें पर्यायज्ञानावरणनैं आदि लेय श्रुतकेवलज्ञानावरणपर्यंत क्षयोपशमतैं उपजी जो आत्माकी अर्थग्रहण करनेकी शक्ति, सो लब्धि कहिये, भावेंद्रिय है तींरूप जो

अक्षर सो लब्ध्यक्षर है। तातैं लब्ध्यक्षरकै अक्षरज्ञानकी उत्पत्तीको हेतूपणो है॥ बहुरि कंठ ओष्ठ ताल्वादिक जे स्थान तिनका स्पर्शनादिक जे करणरूप प्रयत्न, तिनकरि निर्वर्त्यमान कहिये उत्पन्न भया है स्वरूप जाका ऐसा अकारादिक तो स्वर अर ककारादिक व्यंजनरूप तो मूलवर्ण अर मूलवर्णनिका संयोगादिकका संस्थान, सो निर्वृत्यक्षर है॥ बहुरि पुस्तकनिमैं अनेकदेशका अनुकूलपणाकरि लिख्या जो संस्थान सो स्थापनाक्षर है॥ ऐसैं एक अक्षरका श्रवणतैं उपज्या जो अर्थज्ञान सो एकाक्षर श्रुतज्ञान है, ऐसैं जिनेंद्रभगवाननैं कह्या है॥ अब शास्त्रके विषयका प्रमाण कहे हैं। सो इहां गोमटसारोक्त गाथाभी लिखिये हैं॥ गाथा—

पण्णवणिज्जा भावा। अणंतभागो दु अणभिलप्पाणं॥
पण्णवणिज्जाणं पुण। अणंतभागो दु सुदणिबध्दो॥ १॥

अर्थ— अनभिलाप्यानां कहिये वचनगोचर नांही–केवल ज्ञानहीके गोचर जे भाव कहिये जीवादिक अर्थ, तिनके अनंतवा भागमात्र जीवादिक अर्थ, ते प्रज्ञापनीयाः कहिये तीर्थंकरकी सातिशय दिव्यध्वनिकरि कहनेमें आवे ऐसे हैं। बहुरि तीर्थंकरकी दिव्यध्वनिकरि पदार्थ कहनेमें आवे हैं तिनके अनंतवाभागमात्र द्वादशांगश्रुतविषैं व्याख्यान कीजिये है। जो श्रुतकेवलीकूंभी गोचर नाही ऐसा पदार्थ कहनेकी शक्ति

दिव्यध्वनिविषैं पाइये है। बहुरि जो दिव्यध्वनिकरिभी न कह्या जाय, तिस अर्थ जाननेकी शक्ति केवलज्ञानविषैं पाइये है, ऐसा जानना॥ आगे दोय गाथानिकरि अक्षरसमासकूं प्ररूपे है॥ गाथा—

एयक्खरादु उवरिं। एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो॥
संखेज्जे खलु उंठे। पदणामं होदि सुदणामं॥ २॥

अर्थ— एक अक्षरतैं उपज्या जो ज्ञान ताके ऊपरि पूर्वोक्त षट्स्थानपतित वृद्धिका अनुक्रमविना एकेक अक्षर बधता दोय अक्षर तीन अक्षर च्यारि अक्षर इत्यादि एक घाटि पदका अक्षरपर्यंत अर अक्षरसमुदायका सुननेकरि उपजे ऐसे अक्षरसमासके भेद संख्याते जानने। ते स्थान भेद दोय घाटि पदके अक्षर जेते होहि तितने हैं। बहुरि इसके अनंतरि उत्कृष्ट अक्षरसमासविषैं एक अक्षर बधतैं पद नामा श्रुतज्ञान होय है॥

सोलस सय चउतीसा। कोडी तियसीदिलक्खयं चेव॥
सत्तसहस्सट्ठसया। अट्ठासीदी य पदवण्णा॥ ३॥

अर्थ— पद तीनप्रकार है, १ अर्थपद, २ प्रमाणपद, ३ मध्यमपद। तहां जितना अक्षरसमूहकरि विवक्षित अर्थ जानिये, सो तो अर्थपद कहिये। जैसैं कह्या कि, "गामभ्याज शुक्लां दण्डेन" इहां इस शब्दके ए च्यारि पद हैं, गां अभ्याज शुक्लां

दंडेन, ए चारि पद भये, अर्थ याका यहू– जो गायकूं घेरि सुपेदको दंड करी । ऐसेंही कह्या कि, " अग्निमानय " इहां दोय पद भये– अग्निं । आनय । अर्थ यहू– जो अग्नीको ल्याव । ऐसें विवक्षित अर्थके अर्थि एक दोय आदिक अक्षरनिका समूह, ताकूं अर्थपद कहिये ॥ वहुरि प्रमाण जो संख्या, तीहनैं लीये जो अक्षरसमूह ताको प्रमाणपद कहिये । जैसें अनुष्टुप् छन्दके च्यारि पद । तहां एक पदके आठ अक्षर होय । नमः श्रीवर्ध्दमानाय । यहू एक पद भया । याका अर्थ– यहू जो श्रीवर्ध्दमानस्वामीके अर्थि नमस्कार होहू । ऐसें प्रमाणपद जानना ॥ वहुरि सोलासे चौतीस कोडि, तियासी लाख, सात हजार, आठसे अठ्यासी १६३४,८३,०७,८८८ ॥ गाथाविषैं कहे अपुनरुक्त अक्षर तिनका समूह सो मध्यमपद कहिये ॥ जो अक्षर एकवार आगया सो फेरि दूसरा नही आवे, ताको अपुनरुक्त कहिये है ॥ इनिविषैं अर्थपद अर प्रमाणपद तो हीन अधिक अक्षरनिका प्रमाण लीये लोकव्यवहारकरि ग्रहण कीये है । तातैं लोकोत्तरपरमागमविषैं गाथाविषैं कही जो संख्या, तिंहविषैं वर्तमान जो मध्यमपद, ताहीका ग्रहण जानना ॥ आगैं संघात नामा श्रुतज्ञाननकूं प्ररूपे हैं ॥

एयपदादो उवरिं । एगेगेणख्खरेण वट्टंतो ॥
संखेज्जसहस्सपदे । वट्टे संघाद णाम सुदं ॥ ४ ॥

अर्थ— एकपदके ऊपरि एक एक अक्षर वधतैं वधतैं एकपदका अक्षर प्रमाणपदसमासके भेद भये पदज्ञान दूणा भया। बहुरि इसतैं एकएक अक्षर वधतैं पदका अक्षर प्रमाणपदसमासके भेद भये पदज्ञान तिगुणा भया। ऐसैंही एक एक अक्षरकी वधवारी लीये पदका अक्षर प्रमाणपदसमासज्ञानके भेद होत संते चोगुणा पंचगुणा आदि संख्यात हजारकरि गुण्या हुवा पदका प्रमाणमें एक अक्षर घटाइये तहांपर्यंत पदसमासके भेद जानने। पदसमासज्ञानका उत्कृष्ट भेदविषैं सोही एक अक्षर मिलाये संघात नामा श्रुतज्ञान होहै। सो च्यारि गतिविषैं एक गतिके स्वरूपका निरूपण करनहारे जे मध्यपद, तिनका समूहरूप संघात नामा श्रुत, ताके सुननेतैं जो अर्थज्ञान भया ताको संघातश्रुतज्ञान कहिये ॥ आगै प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञानका स्वरूपकूं कहे हैं ॥

एक्कदरगदिणिरूवय। संघादसुदादुवरि पुव्वं व ॥
वण्णं संखेज्जे सं-। घादे सहंमि पडिवत्ती ॥ ५ ॥

अर्थ— एकगतिका निरूपण करनहारा जो संघात नामा श्रुत, ताके उपरि पूर्वोक्तप्रकारकरि एकएक अक्षरकी वधवारी लीये एक एक पदकी वृध्दिकरि संख्यात हजार पदका समूहरूप संघातश्रुत होय है। बहुरि इसही अनुक्रमतैं संख्यात हजार संघातश्रुत होय। तिनमैंसूं एक अक्षर घटाइये तहांपर्यंत संघातसमासके भेद

जानने । बहुरि अंतका संघातसमास श्रुतज्ञानका उत्कृष्टभेदनिपैं वह अक्षर मिलाइये, तब प्रतिपत्तिक नामा श्रुतज्ञान होहै । सो नारकादिक च्यारिगतिका स्वरूप विस्तारपणैं निरूपण करनहारा जो प्रतिपत्तिक नामा ग्रंथ ताके सुननेतैं जो अर्थज्ञान भया, ताको प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञान कहिये ॥ आगै अनुयोग श्रुतज्ञान कहिये ॥ आगै अनुयोग श्रुतज्ञान प्ररूपे हैं ॥ गाथा–

चउगइसरूवरूवय । पडिवत्तीदो दु उवरि पुव्वं वा ॥
वण्णे संखेज्जे पडि । वत्ती उड्ढम्मि अणियोगं ॥ ६ ॥

अर्थ— च्यारि गतिके स्वरूपका निरूपण करन हारा प्रतिपत्तिक श्रुत, ताके उपरि प्रत्येक एक एक अक्षरकी वृद्धि लीये संख्यात हजार पदनिका समुदायरूप संख्यात हजार संघात अर संख्यात हजार संघातनिका समूह प्रतिपत्तिक, सो ऐसे प्रतिपत्तिका संख्यातसहस्र होय, तिनविपैं एक अक्षर घटाइये तहांपर्यंत प्रतिपत्तिक समास श्रुतज्ञानके भेद भये । बहुरि तिसका अंतभेदनिपैं वह एक अक्षर मिलाये अनुयोग नामा श्रुतज्ञान भया, सो चौदह मार्गणाके स्वरूपका प्रतिपादक अनुयोग नामा श्रुत, ताके सुननेतैं जो अर्थज्ञान भया, ताको अनुयोग श्रुतज्ञान कहिये ॥ आगै प्राभृतकप्राभृतकको दोय गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा–

चोद्दसमग्गणसंजुद । अणियोगादुवरि वड्ढिदे वण्गे ॥
चउ एदी अणियोगे । दुगवारं पाहुडं होदि ॥ ७ ॥

अर्थ— चोदह मार्गणाकरि संयुक्त जो अनुयोग, ताके उपरि प्रत्येक एक एक अक्षरकी वृद्धिकरि संयुक्त पदसंघात प्रतिपत्तिक इनकी पूर्वोक्त अनुक्रमतैं वृध्दि होतैं च्यारि आदि अनुयोगनिकी वृद्धिविषै एक अक्षर घटाइये तहांपर्यंत अनुयोगसमासके भेद भये । बहुरि तिसका अंतभेदविषै वह एक अक्षर मिलाये प्राभृतकप्राभृतक नामा श्रुतज्ञान होहै ॥ गाथा—

अहियारो पाहुडयं । एयट्ठो पाहुडस्स अहियारो ॥
पाहुडपाहुडणामं । होदित्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥ ८ ॥

अर्थ— आगै कहियेगा जो वस्तु नामा श्रुतज्ञान ताका जो एक अधिकार ताहीका नाम प्राभृतक कहिये । बहुरि जो उस प्राभृतकका एक अधिकार ताका नाम प्राभृतक-प्राभृतक कहिये, ऐसा जिनदेवनें कह्या है ॥ आगै प्राभृतकका स्वरूप कहे हैं गाथा-

दुगवार पाहुडादो । उवरिं वण्णे कमेण चउवीसे ॥
दुगवार पाहुडे से । उड्ढे खलु होदि पाहुडयं ॥ ९ ॥

अर्थ— द्विकवार प्राभृत जो प्राभृतकप्राभृतक ताके ऊपरि पूर्वोक्त अनुक्रमतैं एकएक

अक्षरकी वृद्धि लीये चोवीस प्राभृतकप्राभृतकनिकी वृद्धिविषें एक अक्षर घटाइये तहांपर्यंत प्राभृतकप्राभृतकसमासके भेद जानने । बहुरि ताका अंतभेदविषें वह एक अक्षर मिलाये प्राभृतक नामा श्रुतज्ञान होहै ॥ भावार्थ- एकएक प्राभृतक नामा अधिकारविषें चोवीस चोवीस प्राभृतकप्राभृतक नामा अधिकार होहैं ॥ आगै वस्तुनामा श्रुतज्ञानकूं प्ररूपे हैं ॥ गाथा-

वीसं वीसं पाहुड । अहियारे एक वत्थु अहियारे ॥
एक्केक्कवण्णवड्ढी । कमेण सव्वत्थ णायव्वा ॥ १० ॥

अर्थ— तिंह प्राभृतकके ऊपरि पूर्वोक्त अनुक्रमतैं एकेक अक्षरकी वृध्दितैं पदादिककी वृध्दिकरि संयक्त वीस प्राभृतककी वृध्दि होत संतै वामैं एक अक्षर घटाइये तहांपर्यंत प्राभृतकसमासके भेद जानने । बहुरि ताका अंतभेदविषैं वह एक अक्षर मिलाइये वस्तु नामा अधिकार होहै ॥ भावार्थ- पूर्वसंबंधी एकेक वस्तुनामा अधिकारविषैं वीस वीस प्राभृतक पाइये हैं। बहुरि सर्वत्र अक्षरसमासका प्रथमभेदतैं लगाय पूर्वसमासका उत्कृष्ट भेदपर्यंत अनुक्रमतैं एकएक अक्षरका बढना बहुरि पदका बढना बहुरि संघातका बढना इत्यादि परिपाटीकरि यथासंभव वृध्दि सबनिविषैं जाननी ॥ आगे तीन गाथानिकरि पूर्व नामा श्रुतज्ञानको कहे हैं ॥ गाथा-

दसचोद्दसट्ठ अट्ठा- । रसयं वारं च वार सोळं च ॥
वीसं तीसं पण्णा- । रसं च दसं चदुसु वत्थूणं ॥ ११ ॥

अर्थ— तींह वस्तुश्रुतके उपरि एकएक अक्षरकी वृध्दि लीये अनुक्रमतैं पदादिक वृध्दिकरि संयुक्त क्रमतैं दश आदि वस्तुनिकी वृद्धि होत संते उनमेंसूं एकएक अक्षर घटावनेपर्यंत वस्तुसमासके भेद जानने ॥ बहुरि तिनके अंतभेदनिविषैं एकेक अक्षर मिलाये चोदह पूर्व नामा श्रुतज्ञान होय ॥ तहां आगे कहिये है उत्पाद नामा पूर्व आदि चोदह पूर्व तिनविषैं अनुक्रमतैं दस, चोदह, आठ, अठारह, बारह, सोलह, वीस, तीस, पंद्रह, दस, दस, दस, दस वस्तु नामा अधिकार पाइये है ॥ गाथा—

उप्पाहपुव्वमग्गा । णियविरियपवादत्थियपवादे य ॥ १२ ॥
णाणासच्चपवादे । आदाकम्मप्पवादे य ॥
पच्चक्खाणे विज्जा- । णुवादकल्लाणपाणवादे य ॥
किरियाविसालपुव्वे । कमसो थ तिलोयविंदुसारो य ॥ १३ ॥

अर्थ— चोदह पूर्वनिके नाम अनुक्रमतैं ऐसैं जानने ॥ १ उत्पाद, २ अग्रायणीय ३ वीर्यप्रवाद, ४ अस्तिनास्तिप्रवाद, ५ ज्ञानप्रवाद, ६ सत्यप्रवाद, ७ आत्मप्रवाद, ८ कर्मप्रवाद, ९ प्रत्याख्यान, १० विद्यानुवाद, ११ कल्याणवाद, १२ प्राणवाद, १३

क्रियाविशाल, १४ त्रिलोकबिंदुसार ये चोदह पूर्वके नाम जानने । इनके लक्षण आगै कहेंगे ॥ इहां ऐसैं जानना- पूर्वोक्त वस्तुश्रुतज्ञानके उपरि क्रमतैं एकएक अक्षरकी वृध्दि लीयें पदादिककी वृध्दि होतें दश वस्तुप्रमाणमेंसूं एक अक्षर घटाइये तहांपर्यंत वस्तुसमासज्ञानके भेद हैं, ताके अंत भेदविषैं वह एक अक्षर मिलाइये उत्पादपूर्व नामा श्रुतज्ञान हो है ॥

बहुरि उत्पादपूर्वश्रुतज्ञानके उपरि एकएक अक्षरकी वृध्दि लीये पदादिककी वृध्दि-संयुक्त चोदह वस्तु होय, तामैं एक अक्षर घटाइये तहांपर्यंत उत्पादपूर्वसमासके भेद जानने ॥ ताके अंतभेदविषैं वह एक अक्षर वधे अग्रायणीयपूर्व नामा श्रुतज्ञान होहै । ऐसैंही क्रमतैं आगै आगै आठ आदि वस्तुनिकी वृध्दि होतैं तहां एक अक्षर घटावने-पर्यंत तिसतिस पूर्वसमासके भेद जानने । तिसतिसका अंतभेदविषैं सो सो एक अक्षर मिलाये वीर्यप्रवाद आदि पूर्व नामा श्रुतज्ञान होहै ॥ अंतका त्रिलोकबिंदुसार नामा पूर्व आगै ताका समासके भेद नाहीं हैं, जातैं याके आगै श्रुतज्ञानके भेदका अभाव है ॥ आगै चोदह पूर्वनिविषैं वस्तु नामा अधिकारनिकी वा प्राभृत नामा अधिकार-निकी संख्या कहे हैं ॥ गाथा—

पणणवदिसया वत्थू । पाहुडया तियसहस्स णवयसया ॥

एदेसु चोदसेसु । पुवेसु हवंति मिलिदाणि ॥ १४ ॥

अर्थ— ये जो उत्पाद आदि तिलोकबिंदुसारपर्यंत चोदह पूर्व तिनिविषैं मिलाये हुये दश आदि वस्तु नामा अधिकार सर्व एकसो पिच्याणवै होहैं १९५ ॥ बहुरि एकएक वस्तुविषैं वीस वीस प्राभृतक हैं । तातैं सर्व प्राभृतक नामा अधिकार तीन हजार नवसो ३९०० जानने ॥ आगै पूर्वैं कहे जे श्रुतज्ञानके वीस भेद तिनका उपसंहार दोय गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

अत्थक्खरं च पदसं- । घादं पडिवत्तियाणियोगं च ॥
दुगवार पाहुडं च य । पाहुडयं वत्थुपुव्व च ॥ १५ ॥
कम्मवणुत्तरवड्डिय । ताण समासा य अक्खरगदाणि ॥
णाणवियप्पे वीसं । गंथे वारसय चोदसयं ॥ १६ ॥

अर्थ— अर्थाक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्तिक, अनुयोग, प्राभृतकप्राभृतक, प्राभृतक, वस्तु, पूर्व ये नव भेद बहुरि एकएक अक्षरकी वृद्धि आदि यथासंभव वृद्धि लीये इनही अक्षरादिकनिके समास तिनकरि नव भेद अक्षरसमास, पदसमास, संघातसमास, प्रतिपत्तिकसमास ऐसैं समासशब्द लगाये नव भेद भये । ऐसैं सर्व मिलि अठारह भेद अक्षरात्मक द्रव्यश्रुतके हैं । अर ज्ञानकी अपेक्षा इनिही द्रव्यश्रुत-

निके सुननेतैं जो ज्ञान भया सो उस ज्ञानकेभी अठारह १८ भेद कहिये ॥

बहुरि अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानके पर्याय अर पर्यायसमास ये दोय भेद मिलाये सर्व श्रुतज्ञानके वीस भेद भये ॥ बहुरि ग्रंथ जो शास्त्र ताकी विवक्षा करिये तो आचारांगादिक द्वादश अंग अर उत्पाद आदि चोदह पूर्व अर चकारतैं सामायिकादिक चोदह प्रकीर्णक तिनिस्वरूप द्रव्यश्रुत जानना, ताके सुननेतैं जो ज्ञान भया सो भावश्रुत जानना ॥ पुद्गलद्रव्यस्वरूप अक्षरपदादिकमय तो द्रव्यश्रुत है, ताके सुननेतैं जो श्रुतज्ञानका पर्यायरूप ज्ञान भया, सो भावश्रुत है ॥ अत्र जे पर्याय आदिभेद कहे तिनि शब्दनिकी निरुक्ति व्याकरण अनुसार कहिये हैं ॥

'परीयन्ते' कहिये सर्व जाकरि व्याप्त है सो पर्याय कहिये । पर्यायज्ञानविना कोऊ जीव नाही । केवलज्ञानीनिकैहू पर्यायज्ञान संभवे है । जैसैं किसीकै कोटि धन पाइये है, तो वाकै एक धन तो सहजही वामैं आया, तैसैं महाज्ञानविषैं स्तोकज्ञान गर्भित जानना ॥ बहुरि 'अक्ष' कहिये कर्ण इंद्रिय ताको अपना स्वरूपको 'राति' कहिये ज्ञानद्वारकरि दे है, तातैं अक्षर कहिये ॥ बहुरि 'पद्यते' कहिये जाकरि आत्मा अर्थकूं प्राप्त होय, ताकूं पद कहिये ॥ बहुरि 'सं' कहिये संक्षेपतैं 'हन्यते-गम्यते' कहिये जानिये एक गतिका स्वरूप जिहकरि सो संघात कहिये ॥ बहुरि 'प्रतिपद्यंते' कहिये विस्तारतैं जा-

निये हैं च्यारि गति जाकरि सो प्रतिपत्तिक कहिये, नामसंज्ञाविषैं कप्रत्ययतैं प्रतिपत्तिक कहिये है ॥ बहुरि 'अनु' कहिये गुणस्थाननिके अनुसारि युज्यन्ते कहिये संबंधरूप जीव जाविषैं कहिये हैं सो अनुयोग कहिये ॥ बहुरि प्रकर्षेण कहिये नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव अथवा निर्देश स्वामित्व, साधन अधिकरण, स्थिति, विधान, अथवा सत, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अंतर, भाव, अल्पबहुत्व इत्यादि विशेषकरि प्राभृतं कहिये परिपूर्ण होइ ऐसा जो वस्तुका अधिकार सो प्राभृत कहिये अर जाकी प्राभृत संज्ञा होय सो प्राभृतक कहिये ॥ बहुरि प्राभृतकका जो अधिकार सो प्राभृतक-प्राभृतक कहिये ॥ बहुरि 'वसंति' कहिये पूर्वरूप समुद्रका अर्थ जिसविषैं एकदेशपनैं पाइये सो पूर्वका अधिकार वस्तु कहिये ॥ बहुरि 'पूरयति' कहिये शास्त्रके अर्थकूं पोषै सो पूर्व कहिये ॥ ऐसैं दश भेदनिकी निरुक्ति कही ॥ बहुरि 'सं' कहिये संग्रहकरि पर्याय आदि पूर्वपर्यंत भेदनिकूं अंगीकार करि 'अस्यन्ते' कहिये प्राप्त करिये भेद करिये ते समास कहिये। पर्यायज्ञानतैं जे पीछै भेद तिनको पर्यायसमास कहिये। अक्षरज्ञानतैं जे पीछै भेद ते अक्षरसमास कहिये। ऐसैंही दस भेद जानने। ऐसैं पूर्व चोदह अर वस्तु एकसौ पिच्याणवै अर प्राभृतक तीन हजार नवसै अर प्राभृतकप्राभृतक तरेणवै हजार छसै अर अनुयोग तीन लाख चहोत्तरि हजार

च्यारिसै अर प्रतिपत्तिक अर संघात अर पद ए क्रमतैं संख्यात हजार गुणे अर एकपदके अक्षर सोलहसै चोतीस कोडी तियासी लाख सात हजार आठसै अठ्यासी अर समस्त श्रुतके अक्षर एक घाटि एकट्ठीप्रमाण इनको पदके अक्षरनिका भाग दीये जो लब्ध राशि होइ सो द्वादशांगके पदनिका प्रमाण जानना ॥ अब शेष अक्षर रहे ते अंगबाह्य श्रुतके जानने । तहां प्रथम द्वादशांगके पदनिकी संख्या कहे हैं ॥

बारुत्तरसयकोडी । तेसीदी तह य होंति लक्खाणं ॥
अट्ठावण्णसहस्सा । पंचेव पदाण अंगाणं ॥ १६ ॥

अर्थ—एकसो बारह कोडी, तियासी लाख, अठावन हजार, पांच ११२,८३,५८,००५ पद सर्व द्वादशांगके जानने ॥ 'अंग्यते' कहिये मध्यमपदनिकरि जो लखिये सो अंग कहिये अथवा सर्व श्रुतका जो एकएक आचारांगादिकरूप अवयव सो अंग कहिये । ऐसी अंग शब्दकी निरुक्ति है ॥ आगै जो अंगबाह्य प्रकीर्णक तिनके अक्षरनिकी संख्या कहे हैं ॥ गाथा—

अडकोडि एयलक्खा । अट्ठसहस्सा य एयसदिगं च ॥
पण्णत्तरि वण्णाउं । पइणइयाणं पमाणं तु ॥ १७ ॥

अर्थ— बहुरि सामायिकादिक प्रकीर्णक तिनके अक्षर आठ कोडी, एक लाख,

आठ हजार, एकसौ पिचहत्तर ८०१०८१७५ जानने ॥ आगै इस अर्थके निर्णय करनेके निमित्त च्यारि गाथानिकी प्रक्रिया कहे हैं ॥ गाथा–

तेतीस विंजणाइं । सत्तावीसा सरा तहा भणिया ॥
चत्तारि य जोगवहा । चउसट्ठी मूलवण्णा उं ॥ १८ ॥

अर्थ–उं कहिये हो भव्य! तेतीस तो व्यंजनाक्षर हैं। आधी मात्रा जाकी बोलनेके कालविषैं होय, ताको व्यंजन कहिये ॥ क् ख् ग् घ् ङ्। च् छ् ज् झ् ञ् । ट् ठ् ड् ढ् ण्। त् थ् द् ध् न्। प् फ् ब् भ् म्। य् र् ल् व्। श् ष् स् ह्। ये तेतीस व्यंजनाक्षर हैं ॥ अ। इ। उ। ऋ। ऌ। ए। ऐ। ओ। औ। ये नव अक्षर इनि एकएकके ह्रस्व दीर्घ प्लुत तीन भेदनिकरि गुणे सत्ताईस हो हैं ॥ अ आ आ ३। इ ई ई ३। उ ऊ ऊ ३। ऋ ॠ ॠ ३। ऌ ॡ ॡ ३। ए ए ए ३। ऐ ऐ ऐ ३। ओ ओ ओ ३। औ औ औ ३। ये सत्ताईस स्वर हैं ॥ जाकी एक मात्रा होइ ताको ह्रस्व कहिये, जाकी दोय मात्रा होइ ताको दीर्घ कहिये, जाकी तीन मात्रा होइ ताको प्लुत कहिये ॥ बहुरि च्यारि योगवह अक्षर हैं। अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय हैं ॥ ये चौसठी मूल अक्षर अनादिनिधन परमागमविषैं प्रसिध्द हैं॥ "सिध्दो वर्णसमाम्नायः" इतिवचनात् ॥ व्यज्यंते कहिये अर्थ जिनकरि प्रकट करिये ते व्यंजन कहिये। स्वर-

न्ति कहिये अर्थकूं कहे ते स्वर कहिये । योगं कहिये अक्षरके संयोगकूं वहन्ति कहिये प्राप्त होय, ते योगवह कहिये । मूल कहिये और-अक्षरके संयोगरहित अर संयोगी अक्षर उपजनेको कारण ये चौसठि मूलवर्ण हैं । इस अर्थकरि ये द्वितीयादि अक्षरके संयोगरहित चौसठि अक्षर हैं । इनिविषैं दोय आदि अक्षर मिलै संयोगी होहैं । जैसें ककार व्यंजन अकार स्वर मिलिकरि क ऐसा अक्षर होहे । आकारके मिलनेतें का ऐसा अक्षर होहै । इत्यादिक संयोगी अक्षर उपजनेको कारण ये चौसठि श्रुतज्ञानके मूल अक्षर जानने ॥ इहां प्रश्न- जो, व्याकरणविषैं ए ऐ ओ औ इनिको ऱ्हस्व नही कहे है, इहां येभी ऱ्हस्व कैसे कहे? ताका समाधान- संस्कृतभाषाविषैं ए ऐ ओ औ ऱ्हस्वरूप नाहीं हैं, तातैं न कहे । प्राकृतभाषाविषैं वा देशांतरकी भाषाविषैं ए ऐ ओ औ ए अक्षरभी ऱ्हस्व होहैं, तातैं इहां कहे हैं, बहुरि एक दीर्घ ऌकार संस्कृतभाषाविषैं नाहीं है, तथापि अनुकरणविषैं देशांतरकी भाषाविषैं होहै, तातैं इहां कह्या है ॥ गाथा-

चउसट्ठि पदं विरलिय । दुगं च दाऊण संगुणं किच्चा ॥
रूऊणं च कए पुण । सुदणाणस्सक्खरा होंति ॥ १९ ॥

अर्थ— मूलाक्षरप्रमाण चौसठि स्थान तिनका विरलन करिये बरोबरि पंक्तिरूप एक

एक जुदाजुदा चोसठि जायगा मांडिये, तहां एकएकके स्थाननिकी दोयका अंक दोयका अंक मांडिये, पीछे उनके परस्पर गुणन करिये। दोय दूनो च्यारि, च्यारि दूनो आठ ऐसे चौसठिपर्यंत गुणन कीये जो एकट्ठि प्रमाण आवै तामैं एक घटाइये इतने अक्षर सर्वद्रव्यश्रुतके जानने, ते ये अक्षर अपुनरुक्त जानने। अर जो वाक्यका अर्थकी प्रतीतीके निमित्त उनही कहे अक्षरनिको वारंवार कहे तो उनका किछू संख्या-का नियम है नांही। तिन अपुनरुक्त अक्षरनिका प्रमाण कितना सो कहे हैं॥ गाथा-

एकठ्ठ च च य छस्स। त्तयं च च य सुण सत्त तिय सत्ता॥
सुण्णं णव पण पंच य। एक्कं छक्केक्कगो य पणगं च॥ २०॥

अर्थ— एक आठ च्यारि च्यारि छह सात च्यारि च्यारि शून्य तीन सात बिंदु नव पंच पंच एक छह एक पंच इतने क्रमतैं अंक लिखे जो प्रमाण होय, तितने अक्षर सर्व श्रुतके जानने॥ १८४४६७४४०३७०९५५१६१५ इतने अक्षर हैं॥ द्विरूपवर्गधाराका छठ्ठा वर्गस्थान एकठ्ठीप्रमाण है। तामैं एक घटाये ऐसे एक आदि पंचपर्यंत वीस अंकरूप प्रमाण होहै॥ बहुरि इहां विशेष कहिये हैं— एक अक्षर, एकसंयोगी, द्विसं-योगी, त्रिसंयोगी आदि चौसठिसंयोगीपर्यंत जानने। तिनकीउत्पत्तीका अनुक्रम दिखाइये हैं॥

कहे मूलवर्ण चौसठि, तिनकौं बरोबरि पंक्तिकरि लिखिये। बहुरि तहां केवल कवर्णविषैं तो एक प्रत्येकभंगही है, द्विसंयोगी आदि नांही है। बहुरि खवर्णसहितविषैं प्रत्येकभंग एक द्विसंयोगी एक ऐसें दोय भंग हैं। बहुरि गवर्णसहितविषैं प्रत्येकभंग एक द्विसंयोगी दोय त्रिसंयोगी एक ऐसें च्यारि भंग हैं। बहुरि घवर्णसहितविषैं प्रत्येकभंग एक, द्विसंयोगी तीन, त्रिसंयोगी तीन, चतुःसंयोगी एक ऐसे आठ भंग हैं। बहुरि ङवर्णविषैं प्रत्येकभंग एक, द्विसंयोगी च्यारि, त्रिसंयोगी छह, चतुःसंयोगी च्यारि, पंचसंयोगी एक ऐसे सोलह भंग हैं। बहुरि चवर्णसहितविषैं प्रत्येकभंग एक, द्वि-त्रि-चतुः-पञ्च-षट् सँयोगी क्रमतैं पांच दस दस पांच एक ऐसे बत्तीस भंग हैं। बहुरि छवर्णसहितविषैं प्रत्येक-द्वि-त्रि-चतुः-पंच-षट्-सप्तसँयोगी भंग क्रमतैं एक छह पंद्रह वीस पंद्रह छह एक ऐसे चौसठि भंग हैं। बहुरि जवर्णसहितविषैं प्रत्येक-द्वि-त्रि-चतुः-पञ्च-षट्-सप्त-अष्टसँयोगी भंग क्रमतैं एक सात इकईस पैंतीस पैंतीस इकईस सात एक ऐसे एकसो अठाईस भंग हैं। बहुरि झवर्णसहितविषैं प्रत्येक द्वि-त्रि-चतुःपंच-षट्-सप्त-अष्ट-नवसँयोगी भंग क्रमतैं एक आठ अठाईस छप्पन सत्तरि छप्पन अठाईस आठ एक ऐसे दोयसे छप्पन भंग है। बहुरि ञवर्णसहितविषैं प्रत्येक-द्वि-त्रि-चतुःपंच-षट्-सप्त-अष्ट-नव-दशसँयोगी भंग क्रमतैं एक नव छत्तीस चौरासी

एकसो छव्वीस एकसो छव्वीस चोरासी छत्तीस नव एक ऐसे पांचसै बारह भंग हैं। इसही अनुक्रमकरि चोसठि स्थाननिविषैं प्रत्येक आदि भंग पूर्वपूर्वस्थानतैं उत्तरोत्तर स्थानविषैं दूणे दूणे होहैं। इहां प्रत्येक आदि भंगनिका स्वरूप कहा सो कहिये हैं-जुदे ग्रहणरूप प्रत्येक भंग हैं, सो एकही प्रकार है। जैसैं दशवा ञ्वर्णकी विवक्षाविषैं ञ्वर्णको जुदा ग्रहण करिये, यहु एकही प्रत्येक भंगका विधान जानना ॥ बहुरि दोय तीन आदि अक्षरनिके संयोगतैं जे भंग होंहि, तिनको द्विसंयोगी त्रिसंयोगी आदि कहिये, ते अनेकप्रकार होहैं ॥ जैसैं दशवा ञ्वर्णकी विवक्षाविषैं दोय अक्षरनिका संयोग क्ञ्। ख्ञ्। ग्ञ्। घ्ञ्। ङ्ञ्। चञ्। छ्ञ्। ज्ञ्। झ्ञ्। नवप्रकार होहै। बहुरि तीन अक्षरनिका संयोग क्ख्ञ्। क्ग्ञ्। क्घ्ञ्। क्ङ्ञ्। क्च्ञ्। क्छ्ञ्। क्ज्ञ्। क्झ्ञ्। ख्ग्ञ्। ख्घ्ञ्। ख्ङ्ञ्। ख्च्ञ्। ख्छ्ञ्। ख्ज्ञ्। ख्झ्ञ्। ग्घ्ञ्। ग्ङ्ञ्। ग्च्ञ्। ग्छ्ञ्। ग्ज्ञ्। ग्झ्ञ्। घ्ङ्ञ्। घ्च्ञ्। घ्छ्ञ्। घ्ज्ञ्। घ्झ्ञ्। ङ्च्ञ्।

क्	ख्	ग्	घ्	ङ्	च्	छ्	ज्	झ्	ञ्	०००६४ पर्यंत.
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	प्रत्येक भंगी.
जोड १	१	२	३	४	५	६	७	८	९	द्विसंयोगी.
	जोड २	१	३	६	१०	१५	२१	२८	३६	त्रिसंयोगी.
		जोड ४	१	४	१०	२०	३५	५६	८४	चतुःसंयोगी.
			जोड ८	१	५	१५	३५	७०	१२६	पंचसंयोगी.
				जोड १६	१	६	२१	५६	१२६	षट्संयोगी.
					जोड ३२	१	७	२८	८४	सप्तसंयोगी.
						जोड ६४	१	८	३६	अष्टसंयोगी.
							जोड १२८	१	९	नवसंयोगी.
								जोड २५६	१	दशसंयोगी.
									जोड ५१२	०००००

ङ्छ्ञ् । ङ्जञ् । ङ्झञ् । चछ्ञ् । चजञ् । चझञ् । छजञ् । छझञ् । जझञ् । ऐसे छत्तीस प्रकार होहैं । ऐसैंही अन्य जानने ॥ बहुरि जितनेकी विवक्षा होय तितना संयोगी भंग एकहीप्रकार होवै । जैसैं दश अक्षरनिकी विवक्षाविषैं दशअक्षरनिका संयोगरूप दशसंयोगी भंग एकही होवै । ऐसैं भंगनिका स्वरूप जानना ॥ गाथा–

पत्तेयभंगमेगं । बेसंजोगं विरूवपदमेत्तं ॥
तियसंयोगादियमा- । रूवाहियवारहीणपदसंकलिदं ॥ २१ ॥

अर्थ— विवक्षितस्थानविषैं सर्वत्र प्रत्येकभंग एकएकही है । बहुरि द्विसंयोगी भंग एक घाटि गच्छप्रमाण है । इहां जेथवां स्थान विवक्षित होय तिहांप्रमाण गच्छ जानना । बहुरि त्रिसंयोगी आदिनिका क्रमतैं एक अधिकवार हीन गच्छाका संकलन घनमात्र-प्रमाण है ॥ भावार्थ– यहु जो त्रिसंयोगी चतुःसंयोगी आदिविषैं एकवार दोयवार आदि संकलन करना बहुरि जेतीवार संकलन होय तातैं एक अधिक प्रमाणको विवक्षित गच्छमें घटाये अवशेष जेता प्रमाण रहै तितनेका तहां संकलन करना ॥ जैसैं दसवा स्थानकी विवक्षाविषैं त्रिसंयोगी भंग ल्यावनेको एकवार संकलन अर एकवारका प्रमाण एंक तातैं एक अधिक दोयसो गच्छ दशमें घटाये आठ होय । ऐसैं आठका एकवार संकलन घनमात्र तहां त्रिसंयोगी भंग जानने ॥ ऐसैंही अन्यत्र

जानना ॥ सो इनका ल्यावनेका विधान करणसूत्रनितैं श्रीगोमटसारजीमें है। सो इहां लिखे कथन वधिजाय, तातैं नही लिखे है ॥ गाथा-

मज्झिमपदक्खरवहि। दवणा ते अंगपुव्वगपदाणि ॥
सेसक्खरसंखाउ। पइणइयाणं पमाणं तु ॥ २२ ॥

अर्थ-- एक घाटि एकट्ठी प्रमाण समस्त श्रुतके अक्षर कहे तिनको परमागमविषैं प्रसिध्द जो मध्यमपद, ताके अक्षरनिका प्रमाण सोलासै चौतीस कोडी तियासी लाख सात हजार आठसै अठ्यासी, ताका भाग दीये जो पदनिका प्रमाण आवै तितने तौ अंगपूर्वसंबंधी मध्यमपद जानने। बहुरि अवशेष जे अक्षर रहे, ते प्रकीर्णकोंके जानने। सो एकसो बारह कोडी तियासी लाख अठावन हजार पांच, इतने तो अंगप्रविष्ट श्रुतका पदनिका परिमाण आया। अवशेष आठ कोडी एक लाख आठ हजार एकसो पिचहत्तरी अक्षर रहे, ते अंगबाह्य प्रकीर्णकोंके जानने। ऐसे अंगप्राविष्ट अंगबाह्य दोयप्रकार श्रुतके पदनिका वा अक्षरनिका प्रमाण जानहू ॥ आगे श्रीमाधवचंद्र त्रैविद्यदेव तरह गाथानिकरि अंगपूर्वनिके पदनिकी संख्या प्ररूपे हैं ॥

आयारे सूदयडे। ठाणे समवायणामगे अंगे ॥
तत्तो विक्खायपण-। त्तीए णाहस्स धम्मकहा ॥ २३ ॥

अर्थ— द्रव्यश्रुत अपेक्षा सार्थक निरुक्ति लीये अंगपूर्वनिके पदनिकी संख्या कहिये हैं, जातैं भावश्रुतविषैं निरुक्त्यादि संभवै नाहीं ॥ तहां द्वादश अंगनिविषैं प्रथमही आचारांग है, जातैं परमागम जो है सो मोक्षका निमित्त है, याहीतैं मोक्षाभिलाषी याको आदरे है। तहां मोक्षके कारण संवर निर्जरा तिनका कारण पंचाचारादिक सकलचारित्र है, तातैं तिस चारित्रका प्रतिपादक शास्त्र पहले कहना सिध्द भया। तिहिं कारणतैं च्यार ज्ञान सप्तऋध्दीके धारक गणधरदेवनिकरि तीर्थंकरके मुखकमलतैं उत्पन्न जो सर्वभाषामय दिव्यध्वनि, ताके सुननेतैं जो अर्थावधारण किया, तिनिकरि शिष्यप्रतिशिष्यनिके अनुग्रहनिमित्त द्वादशांग श्रुतरूप रचना करी, तिहिंविषैं पहले आचारांग कह्या। सो आचरन्ति कहिये समस्तपणैं मोक्षमार्गको आराधे हैं याकरि सो आचार, तिंह आचारांगविषैं ऐसा कथन है— जो; कैसैं चलिये, कैसैं खडे रहिये, कैसैं बैठिये, कैसैं सोइये, कैसैं बोलिये, कैसैं खाइये, कैसैं पाप न बंधे इत्यादि गणधरप्रश्नके अनुसारि यत्नतैं चलिये, यत्नतैं खडे रहिये, यत्नतैं बैठिये, यत्नतैं सोइये, यत्नतैं बोलिये, यत्नतैं खाइये, ऐसैं पापकर्म न बंधे इत्यादि उत्तरवचन लीये मुनीश्वरनिका समस्त आचरण इस आचारांगविषैं वर्णन कीजिये है ॥

बहुरि 'सूत्रयाति' कहिये संक्षेपपणैं अर्थकूं सूचै कहै ऐसा जो परमगम, सो

सूत्र, ताके अर्थि कृतं कहिये कारणभूतज्ञानका विनय आदि निर्विघ्न अध्ययन आदि क्रियाविशेष सो जिसविषैं वर्णन कीजिये, अथवा सूत्रकरि कीया धर्मक्रियारूप वा स्वमतपरमतका स्वरूप क्रियाविशेष सो जिसविषैं वर्णन कीजिये, सो सूत्रकृत नामा दूसरा अंग है ॥

बहुरि 'तिष्ठन्ति' कहिये एक आदि एकेक बधता स्थान जिसविषैं पाइये सो स्थान नामा तीसरा अंग है ॥ तहां ऐसा वर्णन है– संग्रहनयकरि आत्मा एक है, व्यवहारनयकरि संसारी अर मुक्त दोयभेदसंयुक्त है, बहुरि उत्पाद व्यय ध्रौव्य इनि तीन लक्षणनिकरि संयुक्त है, बहुरि कर्मके वशतैं च्यारि गतिविषैं भ्रमे है, तातैं चतुःसंक्रमणयुक्त है, औपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक औदयिक पारिणामिक भेदकरि पंचस्वभावकरि प्रधान है, बहुरि पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर ऊर्ध्व अधः भेदकरि छगमनकरि संयुक्त है, संसारी जीव विग्रहगतिविषैं विदिशाविषैं गमन न करै, श्रेणीबद्ध छहू दिशाविषैं गमन करे है, बहुरि स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्ति नास्ति, स्यादवक्तव्य, स्यादस्ति अवक्तव्य, स्यान्नास्त्यवक्तव्य, स्यादस्ति नास्त्यवक्तव्य इत्यादि सप्तभंगीविषैं उपयुक्त है, बहुरि आठ प्रकार कर्मका आस्रवकरि संयुक्त है, बहुरि जीव अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा मोक्ष पुण्य पाप ये नव पदार्थ हैं विषय

जाके ऐसा नवार्थ है, बहुरि पृथ्वी अप् तेज वायु प्रत्येकवनस्पति साधारणवनस्पति बेइंद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय भेदतैं दशस्थान कहे इत्यादि जीवकूं प्ररूपे है, बहुरि पुद्गल सामान्यअपेक्षा एक है विशेषकरि अणुस्कंधके भेदतैं दोयप्रकार हैं इत्यादि पुद्गलको प्ररूपे है, ऐसैं एकनैं आदि देकरि एकएक वधता स्थान इस अंगविषैं वर्णिये हैं ॥

बहुरि 'सम्' कहिये समानताकरि 'अवेयन्ते' कहिये जीवादिक पदार्थ जिसविषैं जानिये, सो समवायांग चौथा जानना ॥ इसविषैं द्रव्य क्षेत्र काल भाव अपेक्षा समानता प्ररूपे है। तहां द्रव्यकरि धर्मास्तिकायकरि अधर्मास्तिकाय समान है, संसारी जीवनिकरि संसारी जीव समान हैं, मुक्तजीवनिकरि मुक्तजीव समान हैं, इत्यादि द्रव्यकरि समवाय है। बहुरि क्षेत्रकरि प्रथमनरकका प्रथमपाथडेका सीमंत नामा इंद्रक बिल अर अढाई द्वीपरूप मनुष्यक्षेत्र अर प्रथमस्वर्गप्रकार प्रथमपटलका ऋजु नामा इंद्रक विमान अर सिध्दशिला अर सिध्दक्षेत्र ये समान हैं, बहुरि सातवा नरकका अवधिस्थान नामा इंद्रक बिल अर जंबूद्वीप अर सर्वार्थसिध्दिविमान ये समान हैं, इत्यादि क्षेत्रसमवाय हैं। बहुरि कालकरि एकसमय एकसमयकरि समान है, आवली आवलीसमान है, प्रथमपृथ्वीके नारकी भवनवासी व्यंतर इनकी जघन्य

आयु समान है, बहुरि सातवीं पृथ्वीके नारकी सर्वार्थसिद्धीके देव इनिकी उत्कृष्ट आयु समान है, इत्यादि कालसमवाय है। बहुरि भावकरि केवलज्ञान केवलदर्शन समान है इत्यादि भावसमवाय है। ऐसैं इत्यादिक समानता इस अंगविषैं वर्णिये है ॥

बहुरि 'वि' कहिये विशेषकरि बहुतप्रकार 'आख्या' कहिये गणधरदेवके कीये प्रश्न 'प्रज्ञाप्यन्ते' कहिये जानिये जिसविषैं ऐसा व्याख्याप्रज्ञप्ति नामा पांचवा अंग जानना ॥ इसविषैं ऐसा कथन है– जीव अस्ति है की जीव नास्ति है, कि जीव एक है कि जीव अनेक है, कि जीव नित्य है कि जीव अनित्य है, कि जीव वक्तव्य है कि जीव अवक्तव्य है? कि इत्यादि साठि हजार प्रश्न गणधरदेव तीर्थंकरके निकट कीये, तिनका वर्णन इस अंगविषैं है ॥

बहुरि 'नाथ' कहिये तीन लोकका स्वामी तीर्थंकर परमभट्टारक तिनके धर्मकी कथा जिसविषैं होय ऐसा नाथधर्मकथा नामा छट्ठा अंग जानना ॥ इसविषैं जीवादिक पदार्थनिका स्वभाव वर्णिये है॥ बहुरि घातिया कर्मके नाशतैं उत्पन्न भया केवलज्ञान उसहीके साथि तीर्थंकर नामा पुण्यप्रकृतिके उदयतैं जाकै महिमा प्रकट भया ऐसा तीर्थंकरकै पूर्वाह्न मध्याह्न अपराह्न अर्धरात्रि इनि च्यारि कालनिविषैं छहछह घडीपर्यंत बारह सभाके मध्य सहजही दिव्यध्वनि होहै, बहुरि गणधर इंद्र

चक्रवर्ती इनके प्रश्न करनेतैं औरकालविषैंभी दिव्यध्वनि होहै, ऐसा दिव्यध्वनि निकटवर्ती श्रोतृजननिको उत्तम क्षमा आदि दशप्रकार वा रत्नत्रयस्वरूप धर्म कहे हैं, इत्यादिक इस अंगविषैं कथन है ॥ अथवा इसही छट्ठा अंगका दूसरा नाम ज्ञातृधर्मकथा हैं। सो याका यहू अर्थ है– ज्ञाता जो गणधरदेव, जाननेकी इच्छा है जाकी ताका प्रश्नके अनुसारि उत्तररूप जो धर्मकथा ताको ज्ञातृधर्मकथा कहिये। जे अस्ति नास्ति इत्यादिकरूप प्रश्न गणधर कीये, तिनका उत्तर इस अंगविषैं वर्णिये है। अथवा ज्ञाता जे तीर्थंकर गणधर इंद्र चक्रवर्त्यादिक तिनकी धर्मसंबंधी कथा इसविषैं पाइये है, तातैं भी ज्ञातृधर्मकथा ऐसा नामका धारी छट्ठा अंग जानना ॥ गाथा–

तो वासयअज्झयणे। अंतयडे णुत्तरोववाददसे ॥
पण्हाणं वायरणे। विवायसुत्ते य पदसंखा ॥ २४ ॥

अर्थ— बहुरि तहां पीछे 'उपासन्ते' कहिये आहारादि दानकरि वा पूजनादिकरि संघको सेवै ऐसे जु श्रावक तिनकूं उपासक कहिये, ते 'अधीयन्ते' कहिये पढै, सो उपासकाध्ययन नामा सातवा अंग है। इसविषैं दर्शनिक, व्रतिक, सामायिक, प्रोषधोपवास, सचित्तविरति, रात्रिभक्तव्रत, ब्रह्मचर्य, आरंभनिवृत्ति, परिग्रहनिवृत्ति,

अनुमतिविरति, उद्दिष्टविरति ये गृहस्थकी ग्यारह प्रतिमा वा व्रत शील आचार क्रिया मंत्रादिक इनका विस्तारकरि प्ररूपण है ॥ बहुरि एकेक तीर्थंकरका तीर्थकालविषैं दश दश मुनीश्वर तीव्र च्यारि प्रकारका उपसर्ग सहि इंद्रादिककरि हुई पूजा आदि प्रातिहार्यरूप प्रभावना पाइ पापकर्म नाश करि संसारका जो अंत तिसही करत भये तिनको 'अन्तकृत' कहिये, तिनका कथन जिस अंगमें होय तींको 'अन्तकृद्दशाङ्ग' आठवा अंग कहिये। तहां वर्धमानस्वामीके वारे नमि मतंग, सोमिल, रामपुत्र, सुदर्शन, यमलिक, वलिक, विष्कंबिल, पालंबष्ट, पुत ये दश भये। ऐसेही वृषभादिक एकेक तीर्थंकरके वारे दशदश अन्तकृत केवली होहैं, तिनकी कथा इस अंगविषैं है ॥

बहुरि उपपाद है प्रयोजन जिनका ऐसे औपपादिक कहिये। बहुरि अनुत्तर कहिये विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित, सर्वार्थसिद्धि इनि विमाननिविषैं जे औपपादिक होहि उपजै तिनको अनुत्तरौपपादिक कहिये। सो एकेक तीर्थंकरके वारे दश दश महामुनि दारुण उपसर्ग सहिकरि बडी पूजा पाय समाधिकरि प्राण छोडि विजयादिक अनुत्तरविमाननिविषैं उपजे, तिनकी कथा जिस अंगमें होय, सो अनुत्तरौपपादिकदशांग नामा नवमा अंग जानना। तहां श्रीवर्धमानस्वामीके

वारे ऋजुदास, धन्य, सुनक्षत्र, कार्तिकेय, नंद, नंदन, शालिभद्र, अभय, वारिषेण,
चिलातीपुत्र ये दश भये। ऐसेही दशदश अन्य तीर्थंकरके समयभी भये हैं,
तिन सवनिका कथन इस अंगविषैं है ॥

वहुरि प्रश्न कहिये पूछनहारा पुरुष जो पूछे सो 'व्याक्रियन्ते' कहिये प्रकट
करिये जिसविषैं जो प्रश्नव्याकरण नामा अंग दशवा जानना। इसविषैं जो कोई
पूछनेवाला गई वस्तु वा मूंठीकी वस्तु वा चिंता वा धन धान्य लाभ अलाभ
सुख दुःख जीवना मरना जीती हारी इत्यादिक प्रश्न पूछे अतीत-अनागत-वर्त-
मानकालसंबंधी ताको यथार्थ कहनेका उपायरूप व्याख्यान इस अंगविषैं हैं।
अथवा शिष्यका प्रश्नके अनुसारि आक्षेपिणी विक्षेपिणी संवेगिनी निर्वेजनी ये
च्यारि कथा प्रश्नव्याकरणांगविषैं प्रकट कीजिये हैं। तहां तीर्थंकरादिकका चरित्ररूप
प्रथमानुयोग, लोकका वर्णनरूप करणानुयोग, श्रावक-मुनिधर्मका कथनरूप चर-
णानुयोग, पञ्चास्तिकायादिकका कथनरूप द्रव्यानुयोग इनका कथन परमतकी
शंका दूरिकरि करिये सो आक्षेपिणी कथा। वहुरि प्रमाणनयरूप युक्ति तींहिकरि
न्यायके वलतैं सर्वथैकान्तवादी आदि परमतनिकरि कह्या जो अर्थ ताका खंडन
करना सो विक्षेपिणी कथा। वहुरि रत्नत्रयधर्म अर तीर्थंकरादिक पदकी ईश्वरता

वा ज्ञान-सुख-वीर्यादिकरूप धर्मका फल ताके अनुरागको कारण सो संवेजनी कथा। बहुरि संसारदेहभोगके रागतैं जीव नारकादिकविषैं दारिद्र अपमान पीडा दुःख भोगवे है इत्यादिक विराग होनेको कारणभूत जो कथन, सो निर्वेजनी कथा कहिये। सो ऐसोभी कथा प्रश्नव्याकरणांगविषैं पाइये है॥

बहुरि विपाक जो कर्मका उदय ताको 'सूत्रयति' कहिये कहै सो विपाकसूत्र नामा ग्यारवा अंग जानना। इसविषैं कर्मनिका फल देनेरूप जो परिणमन सोही उदय कहिये, ताका तीव्र-मंद-मध्यम अनुभागकरि द्रव्य क्षेत्र काल भाव अपेक्षा वर्णन पाइये है॥ ऐसैं आचारनैं आदि देयकरि विपाकसूत्रपर्यंत ग्यारह अंग तिनके पदनिकी संख्या कहिये हैं॥ गाथा—

अट्ठारस छत्तीसं। वादाळं अडक्दी अडवि छप्पण्णं॥
सत्तरि अट्ठावीसं। चउदाळं सोलस सहस्सा॥ २४॥
इगि दुग पंचेयारं। तिवीस दु तिणउदि लक्ख तुरियादि॥
चुलसीदि लक्खमेया। कोडीयं विवागसुत्तम्हि॥ २५॥

अर्थ— प्रथमगाथाविषैं अठारह आदि हजार कहे। बहुरि दूसरी गाथाविषैं चौथा अंग आदि अंगनिविषैं एकादिक लाखसहित हजार कहे। अर विपाकसूत्रका

जुदा वर्णन कीया ॥ अब इन गाथानिके अनुसारि एकादश अंगनिके पदनिकी संख्या कहिये हैं ॥ आचारांगविषैं पद अठारह हजार १८०००। सूत्रकृतांगविषैं छत्तीस हजार ३६०००। स्थानांगविषैं वियालीस हजार ४२०००। समवायांगविषैं एक लाख अर आठकी कृति चौसठि हजार १६४०००। व्याख्याप्रज्ञप्ति अंगविषैं दोय लाख अठाईस हजार २२८०००। ज्ञातृधर्मकथा अंगविषैं पांच लाख छप्पन हजार ५५६०००। उपासकाध्ययन अंगविषैं ग्यारह लाख सत्तरि हजार ११७००००। अंतकृद्दशांगविषैं तेईस लाख अठाईस हजार २३२८०००। अनुत्तरोपपादिकदशांगविषैं ब्याणवे लाख चवालीस हजार ९२४४०००। प्रश्नव्याकरणांगविषैं तिराणवे लाख सोलह हजार ९३१६०००। विपाकसूत्र अंगविषैं एक कोडी चउरासी लाख १८४००००० । ऐसैं एकादश अंगनिविषैं पदनिकी संख्या जाननी ॥ गाथा–

वा य ण न र नो ना नं। एयारंगे जुदी हु वादम्मि ॥
क न ज त ज म ता न न मं। ज न क न ज य सी म बाहिरे वण्णा ॥ २६ ॥

अर्थ— इहां वा आगै अक्षरसंज्ञाकरि अंगनिको कहे हैं ॥ 'कटपयपुरस्थवर्णैः' इत्यादि सूत्र कह्या है, तिसहीतैं अक्षरसंख्याकरि अंक जानना ॥ ककारादिक नव अक्षरनिकरि एक दोय आदि क्रमतैं नव अंक जानने, टकारादिक नव अक्षरनि-

करि नव अंक जानने, पकारादिक पंच अक्षरनिकरि पांच अंक जानने, यकारादिक आठ अक्षरनिकरि आठ अंक जानने, ञकार ङकार नकार इनकरि बिंदी जानिये ॥ सो इहां 'वा य ण न र नो ना नं' इन अक्षरनिकरि च्यारि एक पांच बिंदी दोय बिंदी बिंदी बिंदी ये अंक जानने। ताके च्यारि कोडि पंद्रह लाख दोय हजार ४, १५, ०२, ००० पद सर्व एकादश अंगनिका जोड दीये भये॥ बहुरि दृष्टिवाद नामा बारवा अंगविषैं 'क न ज त ज म ता न न मं' कहिये एक बिंदी आठ छह पांच छह बिंदी बिंदी पांच इन अंकनिकरि एकसो आठ कोडि अडसठि लाख छप्पन हजार पांच पद हैं १०८, ६८, ५६, ००५॥ सो दृष्टि कहिये मिथ्यादर्शन तिनका है अनुवाद कहिये निराकरण जिसविषैं ऐसा दृष्टिवाद नामा अंग बारवा जानना। तहां मिथ्यादर्शनसंबंधी कुवाद तीनसै तरेसठि हैं। तिनविषैं कौत्कल कण्ठी विधि कौशिक हरि श्मश्रुम अंभ पिक रोमश हारीत मुंड आश्वलायन इत्यादि ये क्रियावादी हैं, सो इनके एकसौ असी १८० कुवाद हैं॥ बहुरि मरीचि कपिल उलूक गार्ग्य व्याघ्रभूति वाडलि माठर मौद्गलायन इत्यादि अक्रियावादी हैं, तिनके चौरासी ८४ कुवाद हैं॥ बहुरि साकल्य वाल्क कलि कुथुति साति सुग्री नारायण कठ माध्यान्दिन मौद पैप्पलाद बादरायण स्विष्टक्य दैतिकायिन वसुजैमिन्य

इत्यादि ये अज्ञानवादी हैं, इनके सदुसठि ६७ कुवाद हैं ॥ बहुरि वासिष्ठ पाराशर जतुकर्ण वाल्मीकि रोमहर्षणि सत्य दत्त व्यास एलापुत्र उपमन्य ऐंद्रदत्त अगस्ति इत्यादि ये विनयवादी हैं, इनके बत्तीस ३२ कुवाद हैं ॥ सब मिलाये तीनसै तरेसठि कुवाद भये, इनिका वर्णन भावाधिकारविषैं कहे हैं ॥ इहां प्रवृत्तिविषैं इन कुवादनिके जे अधिकारी तिनका नाम कहे हैं ॥ बहुरि अंगबाह्य जो सामायिकादिक तिनविषैं 'ज न क न ज य सी म' कहिये आठ बिंदी एक बिंदी आठ एक सात पांच अंक, तिनके आठ कोडी एक लाख आठ हजार एकसो पिचहत्तरि ८, ०१, ०८, १७५ अक्षर जानने ॥ गाथा–

चंदरविजंबूदीव य । दीवसमुद्द य वियाहपण्णत्ती ॥
परियम्मं पंचविहं । सुत्तं पढमाणियोगमदो ॥ २७ ॥
पुव्वं जळथळमाया । आगासपरूपगयमिमा पंच ॥
भेदा हु चूलियाए । तेसु पमाणं इमं कमसो ॥ २८ ॥

अर्थ— दृष्टिवाद नामा बारवा अंग ताके पंच अधिकार हैं। परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत चूलिका ये पंच अधिकार हैं। तिनिविषैं 'परितः' कहिये सर्वांगतैं 'कर्माणि' कहिये जिनतैं गुणकार भागहारादिरूप गणित होय ऐसे करणसूत्र ते

जिसविषैं पाइये, सो परिकर्म कहिये। सो परिकर्म पांचप्रकार है। चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, व्याख्याप्रज्ञप्ति ॥ तहां, चंद्रप्रज्ञप्ति चंद्रमाका विमान, आयु, परिवार, ऋद्धि, गमन, विशेष वृद्धि हानि सारा आधा चौथाई ग्रहण इत्यादि प्ररूपे है। बहुरि सूर्यप्रज्ञप्ति सूर्यका आयु, मंडल, परिवार, वृद्धि, गमनका परिमाण, ग्रहण इत्यादि प्ररूपे हैं। बहुरि जंबूदीपप्रज्ञप्ति जंबूद्वीपसंबंधी मेरुगिरि, कुलाचल, ह्रद, क्षेत्र, वेदी, वन, खंड, व्यंतरनिके मंदिर नदी इत्यादि प्ररूपे है। बहुरि द्वीपसागरप्रज्ञप्ति असंख्यातद्वीपसमुद्रसंबंधी स्वरूप वा तहां तिष्ठते ज्योतिषी व्यंतर भवनवासीनिके आवास वा तहां अकृत्रिमाजिनमंदिर तिनको प्ररूपे है। बहुरि व्याख्याप्रज्ञप्ति रूपी अरूपी जीव अजीवपदार्थ तिनिका वा भव्य अभव्यादि प्रमाणकरि निरूपण करे है। ऐसे परिकर्मके पंच भेद हैं ॥

बहुरि 'सूत्रयति' कहिये मिथ्यादर्शनके भेदनिकूं सूचै—बतावै, ताको सूत्र कहिये। तिसविषैं जीव अबंधकही है, अकर्ता है, निर्गुण है, अभोक्ता है, स्वप्रकाशकही है, परप्रकाशकही है, अस्तिरूपही है नास्तिरूपही है इत्यादिक क्रियावाद अक्रियावाद अज्ञानवाद विनयवाद तिनके तीनसे तरेसठि भेद तिनका पूर्वपक्षनैं करि वर्णन करिये है ॥ बहुरि प्रथम कहिये मिथ्यादृष्टि अव्रती विशेषज्ञानरहित ताको उपदेश देनेनिमित्त

जो प्रवृत्त भया अनुयोग कहिये अधिकार, सो प्रथमानुयोग कहिये। तींहिविषैं चौवीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नव बलिभद्र, नव नारायण, नव प्रतिनारायण इनि तरेसठि शलाकापुरुषनिका पुराणवर्णन कीजिये है ॥ बहुरि पूर्वगत चौदहप्रकार सो आगे विस्तारनैं लीये कहेंगे ॥ बहुरि चूलिकाके पंच भेद– जलगता, स्थलगता, मायागता, रूपगता, आकाशगता ये पंच भेद ॥ तिनिविषैं जलगता चूलिका तो जलका स्तंभन करना, जलविषैं गमन करना, अग्निका स्तंभन करना, अग्निका भक्षण करना, अग्निविषैं प्रवेश करना इत्यादि क्रियाके कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरणादि प्ररूपे है ॥ बहुरि स्थलगता चूलिका मेरुपर्वत भूमि इत्यादिविषैं प्रवेश करना शीघ्र गमन करना इत्यादिक्रियाके कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरणादि प्ररूपे है ॥ बहुरि मायागता चूलिका मायामय इंद्रजालविक्रियाके कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरणादि प्ररूपे है ॥ बहुरि रूपगता चूलिका सिंह हाथी घोडा वृषभ हरिण इत्यादि नाना-प्रकार रूप पलटिकरि धरना, ताके कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरणादि प्ररूपे है वा चित्राम काठलेपादिकका लक्षण प्ररूपे है वा धातु रस रसायन इनिकूं प्ररूपे है ॥ बहुरि आकाशगता चूलिका आकाशविषैं गमनादिकको कारणभूत मंत्र यंत्र तंत्रादि प्ररूपे है ॥ ऐसे चूलिकाके पंच भेद जानने ॥ ये चंद्रप्रज्ञप्ति आदिदेकरि

भेद कहे, तिनके पदनिका प्रमाण आगे कहिये हैं, ते, हे भव्य! तू जानि ॥ गाथा—

ग त न म म न गं गो र म। म र ग त ज व गा त नो न नं ज ज लक्खा ॥
म न न न ध म म न नो न न। ना मं र न ध ज ध रा न न जलादी ॥२९॥
या ज क ना मे ना न न। भेदाणि पदाणि होंति परियम्मे ॥
का न व धि वा च ना न न। भेसो पुण चूलियाजोगो ॥३०॥

अर्थ— इहां 'कटपयपुरस्थवर्णैः' इत्यादि सूत्रोक्तविधानतैं अक्षरसंज्ञाकरि अंक कहे हैं ॥ सो अंकनिकरि जो प्रमाण भया सो इहां कहिये हैं ॥ एकएक अक्षरतैं एकएक अंक जाणि लेना, सो 'गतनमनोननं' कहिये ३६०५००० छत्तीस लाख पांच हजार पद चंद्रप्रज्ञप्तिविषैं हैं। बहुरि 'मनगनोननं' कहिये ५०३००० पांच लाख तीन हजार पद सूर्यप्रज्ञप्तिविषैं हैं। बहुरि 'गोरमनोननं' कहिये ३२५००० तीन लाख पचीस हजार पद जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिविषैं हैं ॥ बहुरि 'मरगतनोननं' कहिये ५२३६००० बावन लाख छत्तीस हजार पद द्वीपसागरप्रज्ञप्तिविषैं हैं। बहुरि 'जवगातनोननं' कहिये ८४३६००० चौरासी लाख छत्तीस हजार पद व्याख्याप्रज्ञप्तिविषैं हैं। बहुरि 'जजलक्खा' कहिये ८८००००० अठ्यासी लाख पद सूत्र नामा भेदविषैं हैं। बहुरि 'मननन' कहिये ५००० पांच हजार पद प्रथमानुयोगविषैं हैं। बहुरि 'धममननोननननामं' कहिये ९५५०००००५

पिचाणवै कोडी पचास लाख पांच पद पूर्वगतविषैं हैं। चौदह पूर्वनिके इतने पद हैं॥ बहुरि 'रनधजधरानन' कहिये २०९८९२०० दोय कोडी नव लाख निवासी हजार दोयसे पद जलगता आदि नामा चूलिका तिनविषैं एकएकके इतने इतने पद जानने॥ जलगता २०९८९२००। स्थलगता २०९८९२००। मायागता २०९८९२००। आकाशगता २०९८९२००। रूपगता २०९८९२००। ऐसैं जानना। बहुरि 'याजकनामेनाननं' कहिये १८१०५००० एक कोडि इक्यासी लाख पांच हजार पद चंद्रप्रज्ञप्ति आदि पांच प्रकार परिकर्मका जोड दीये होहैं। बहुरि 'कानवाधिवाचनाननं' कहिये १०४९४६००० दस कोडि गुणचास लाख छियालीस हजार पद पांच प्रकार चूलिकाके जोड दीये होहैं॥ इहां गकारतैं तीनका अंक, तकारतैं छहका अंक, मकारतैं पांचका अंक, रकारतैं दोयका अंक, नकारतैं बिंदी इत्यादी अक्षरसंज्ञाकरि अंक कहे हैं। ककारतैं लेय गकार तीसरा अक्षर है, तातैं तीनका अंक कह्या। बहुरि टकारतैं तकार छट्टा अक्षर है, तातैं छहका अंक कह्या। पकारतैं मकार पांचवां अक्षर है, तातैं पंचका अंक कह्या। यकारतैं रकार दूसरा अक्षर है, तातैं दोयका अंक कह्या। नकारतैं बिंदी कहीही है। इत्यादी इहां अक्षरसंज्ञातैं अंक जानने॥ गाथा—

पण्णठ्ठदाल पणतीं। स तीस पण्णसपणतेरसवं॥

णऊदी दु दालपुव्वे । पणवण्णा तेरससयाइं ॥ ३१ ॥
छस्सयपण्णासाइं । चउसयपण्णासछस्सयपणवीसा ॥
विहिलिखिएहिं दुगुणिदा । पंचमरूऊण छजुदा छट्ठे ॥ ३२ ॥

अर्थ— उत्पाद आदि चौदह पूर्वनिविषें पदनिकी संख्या कहिये हैं ॥ तहां वस्तूका उत्पाद व्यय ध्रौव्य आदि अनेक धर्म, तिनका पूरक, सो उत्पाद नामा प्रथम पूर्व है। इसविषैं जीवादिवस्तुनिका नानाप्रकार नयविवक्षाकरि क्रमवर्ती युगपत् अनेकधर्मकरि भये जे उत्पाद व्यय ध्रौव्य ते तीनूं तीन काल अपेक्षा नव धर्म भये। सो उन धर्मरूप परणया वस्तु सोभी नवप्रकार हो है- १ उपज्या, २ उपजे है, ३ उपजेगा। १ नष्ट भया, २ नष्ट हो है, ३ नष्ट होयगा। १ स्थिर भया, २ स्थिर है, ३ स्थिर होयगा। ऐसैं नवप्रकार द्रव्य भया। इन एकएकका नवनव उत्पन्नपना आदि धर्म जानने। ऐसैं इक्यासी भेद लीये द्रव्य ताका वर्णन है। याके दोय लाखतैं पचासको गुणिये ऐसा एक कोडि १०००००० पद जानने ॥ १

बहुरि अग्र कहिये द्वादशांगविषैं प्रधानभूत जो वस्तु ताका अयन कहिये ज्ञान सोही है प्रयोजन जाका ऐसा अग्रायणीय नामा दूसरा पूर्व है। इसविषैं सातसै सुनय अर दुर्णय तिनका अर सप्त तत्त्व नव पदार्थ षड्द्रव्य इत्यादिकका वर्णन है। याके

दाय लाखतैं अठतालीसको गुणिये ऐसे छिनवै लाख ९६००००० पद हैं ॥ २ ॥

बहुरि वीर्य कहिये जीवादिवस्तूकी शक्ति-सामर्थ्य ताका है अनुप्रवाद कहिये वर्णन जिसविषैं ऐसा वीर्यानुवाद नामा तीसरा पूर्व है। इसविषैं आत्माका वीर्य, परका वीर्य, दोऊका वीर्य, क्षेत्रवीर्य, कालवीर्य, भाववीर्य, तपोवीर्य इत्यादि द्रव्य-गुणपर्यायनिकी शक्तिरूप वीर्य, तिसका व्याख्यान है। याके दोय लाखतैं पैंतीसको गुणिये ऐसे सत्तरि लाख ७०००००० पद हैं ॥ ३ ॥

बहुरि अस्ति नास्ति आदि जे धर्म, तिनका है प्रवाद कहिये प्ररूपण इसविषैं ऐसा अस्तिनास्तिप्रवाद नामा चौथा पूर्व है। इसविषैं जीवादि वस्तु अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि संयुक्त हैं, तातैं 'स्यात् अस्ति' है। बहुरि परके द्रव्य क्षेत्र काल भावविषैं यहू नाही है, तातैं 'स्यान्नास्ति' है। बहुरि अनुक्रमतैं स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावकी अपेक्षा 'स्यादस्ति नास्ति' है। बहुरि युगपत् स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावकी अपेक्षा द्रव्य कहनेमैं न आवै, तातैं 'स्यादवक्तव्य है'। बहुरि स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावकरि द्रव्य 'अस्तिरूप' है। बहुरि युगपत् स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावकरि कहनेमैं न आवै, तातैं 'स्यादस्त्यवक्तव्य' है। बहुरि परद्रव्यक्षेत्रकालभावकरि द्रव्य 'नास्तिरूप' है। बहुरि युगपत् स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावकरि द्रव्य कहनेमैं न आवै तातैं 'स्यान्नास्त्यवक्तव्य' है

बहुरि अनुक्रमतैं स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभाव–अपेक्षा द्रव्य 'अस्तिनास्तिरूप' है। अर युगपत् स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावकी अपेक्षा अवक्तव्य है, तातैं 'स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्य' है। ऐसैं जिसप्रकार अस्तिनास्ति अपेक्षा सप्त भेद कहे, तैसैं एकानेकधर्मकी अपेक्षा सप्तभंग होहैं। अभेदअपेक्षा स्यात् एक है, भेद अपेक्षा स्यादनेक है, क्रमतैं भेदाभेदापेक्षया स्यादेकानेक है, युगपत् अभेदभेदापेक्षया अवक्तव्य है, अभेदअपेक्षा वा युगपत् अभेदभेदअपेक्षा स्यादेकावक्तव्य है, भेद अपेक्षा वा युगपत् अभेदभेदअपेक्षा स्यादनेकावक्तव्य है, क्रमतैं अभेदभेदअपेक्षा वा युगपत् स्यादेकानेकावक्तव्य है। ऐसेही नित्यानित्यादि दै अनंतधर्मनिके सप्त भंग हैं॥ तहां प्रत्येक भंग तीन अस्ति, नास्ति, अवक्तव्य। अर द्विसंयोगी भंग तीन अस्तिनास्ति, अस्त्यवक्तव्य, नास्त्यवक्तव्य,। अर त्रिसंयोगी भंग एक अस्तिनास्त्यवक्तव्य। इन सप्तभंगनिका समुदाय सो सप्तभंगी। सो प्रश्नके वशतैं एकही वस्तूविषैं अविरोधपने संभवती नानाप्रकार नयनिकी मुख्यता गौणताकरि प्ररूपण कीजिये है। इहां सर्वथा नियमरूप एकांतका अभाव लीये 'कथंचित्' ऐसा है अर्थ जाका सो 'स्यात्' शब्द जानना। इस अंगके दोय लाखतैं तीसकूं गुणिये सो साठि लाख ६०००००० पद हैं॥ ४॥

बहुरि ज्ञाननिका है प्रवाद कहिये प्ररूपण इसविषैं ऐसा ज्ञानप्रवाद नामा

पाचवां पूर्व है। इसविषैं मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल ये पंच सम्यग्ज्ञान अर कुमति कुश्रुत विभंग ये तीन कुज्ञान इनका स्वरूप वा संख्या वा विषय वा फल इत्याद्यपेक्षा प्रमाण अप्रमाणतारूप भेदवर्णन कीजिये है। याके दोय लाखतैं पचासकूं गुणे कोडि होई, तिनमैंसूं एक घटाइये ऐसे एक घाटि कोडि ९९९९९९९ पद हैं॥ गाथाविषैं पंचमरूऊण ऐसा कह्या है, तातैं पांचवां अंगमें एक घटाया अन्य संख्या गाथाअनुसारि कहियेही है॥ ५॥

बहुरि सत्यका है प्रवाद कहिये प्ररूपण इसविषैं ऐसा सत्यप्रवाद नामा छट्टा पूर्व है। इसविषैं वचनगुप्ति बहुरि वचनसंस्कारके कारण बहुरि वचनके प्रयोग बहुरि बारहप्रकार भाषा बहुरि बोलनेवाले जीवोंके भेद बहुरि बहुतप्रकार मृषावचन बहुरि दशप्रकार सत्यवचन इत्यादि वर्णन है। तहां असत्य न बोलना वा मौन धरना सो वचनगुप्ति कहिये। बहुरि वचनसंस्कारके कारण दोय, एक तौ स्थान, एक प्रयत्न। तहां जिन स्थानकनितैं अक्षर बोले जाय ते स्थान आठ हैं- हृदय, कंठ, मस्तक, जिव्हाका मूल, दंत, नासिका, तालु, ओष्ठ। जैसैं- अकार, कवर्ग, हकार, विसर्ग इनका कंठस्थान है। ऐसैं अक्षरनिके स्थान जानने। बहुरि जिसप्रकार अक्षर कहे जाय ते प्रयत्न पांच हैं- स्पृष्टता, ईषत्स्पृष्टता, विवृतता। ईषद्विवृतता, संवृतता, तहां अंगका

अंगतैं स्पर्श भये अक्षर बोलिये सो स्पृष्टता। किछू थोरासा स्पर्श भये बोलिये सो ईषत्स्पृष्टता। अंगको उघाडि बोलिये सो विवृतता। किछू थोरासा उघाडि बोलिये सो ईषद्विवृतता। अंगको अंगतैं ढाकि बोलिये सो संवृतता। जैसैं पकारादिक ओष्ठसूं ओष्ठका स्पर्श भयेही उच्चार होइ, ऐसे प्रयत्न जानने॥ बहुरिवचनप्रयोग दोयप्रकार, शिष्टरूप भला वचन, दुष्टरूप बुरा वचन॥ बहुरि भाषा बारहप्रकार। तहां इसनैं ऐसैं किया ऐसा अनिष्टवचन कहना सो अभ्याख्यान कहिये। बहुरि जातैं परस्पर विरोध होइ सो कलहवचन। बहुरि परका दोष प्रकट करना सो पैशून्यवचन। बहुरि धर्म अर्थ काम मोक्षका संबंधरहित वचन सो असंबंधरूप प्रलापवचन। बहुरि इंद्रियविषयनिविषैं रतिका उपजावनहारा वचन सो रतिवचन। बहुरि विषयनिविषैं अरतिका उपजावनहारा वचन सो अरतिवचन। बहुरि परिग्रहका उपजावनेकी राखनेकी आसक्तताका कारण वचन सो उपधिवचन। बहुरि व्यवहारविषैं ठिगनेरूप वचन सो निकृतिवचन। बहुरि तपज्ञानादिकविषैं अविनयका कारण वचन सो अप्रणतिवचन। बहुरि चोरीका कारणभूत वचन सो मोषवचन। बहुरि भले मार्गका उपदेशरूप वचन सो सम्यग्दर्शनवचन। बहुरि मिथ्यामार्गके उपदेशरूप वचन सो मिथ्यादर्शनवचन। ऐसैं बारह भाषा हैं। बहुरि बेइंद्रियादि संज्ञीपर्यंत

वचन बोलनेवाले वक्तानिके भेद हैं। बहुरि द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकरि मृषा जो असत्यवचन सो बहुतप्रकार है। बहुरि जनपद आदि दशप्रकार सत्यवचन ऐसा कथन इस पूर्वविषैं है। याके दोय लाखतैं पचासको गुणिये अर 'छजुदा छट्ठे' इस वचनकरि छह मिलाइये ऐसे एक कोडि छह १००००००६ पद हैं ॥ ६ ॥

बहुरि आत्माका प्रवाद कहिये प्ररूपण इसविषैं ऐसा आत्मप्रवाद नामा सातवां पूर्व है। इसविषैं श्लोक है— जीवो कत्ता य वत्ता य। पाणी भोत्ता य पुग्गलो ॥ वेदो विण्णु सयंभू य। सरीरी तह माणवो ॥ १ ॥ सत्ता जंतू य माणी य। मायी जोगी य संकुडो ॥ असंकुडो य खेत्तण्हू। अंतरप्पा तहेव य ॥ २ ॥ इत्यादि आत्मस्वरूपका कथन है ॥ इनका अर्थ लिखिये है— जीवति कहिये जीवे है, व्यवहारकरि दशप्राणनिकों अर निश्चयकरि ज्ञानदर्शनसम्यक्त्वरूप चैतन्यप्राणनिको धारे है अर पूर्वै जीया आगै जीवेगा, तातैं आत्माको जीव कहिये। बहुरि व्यवहारकरि शुभाशुभकर्मकूं अर निश्चयकरि चैतन्यपर्यायकूं करे है, तातैं कर्ता कहिये। बहुरि व्यवहारकरि सत्य असत्य वचन बोले है, तातैं वक्ता है, निश्चयकरि वक्ता नाहीं है। बहुरि दोऊ नयनिकरि जे प्राण कहे ते याकै पाइये हैं, तातैं प्राणी कहिये। बहुरि व्यवहारकरि शुभाशुभकर्मके फलकूं अर निश्चयकरि निजस्वरूपकूं भोगवे है, तातैं भोक्ता कहिये। बहुरि व्यवहारकरि कर्म-

नोकर्मरूप पुद्गलनिको पूरे है अर गाले है, तातैं पुद्गल कहिये, निश्चयकरि आत्मा पुद्गल है नाही। बहुरि दोऊ नयनिकरि लोकालोकसंबंधी त्रिकालवर्त्ती सर्वज्ञेयकूं वेत्ति कहिये जाने है, तातैं वेद कहिये। बहुरि व्यवहारकरि अपने देहकूं वा केवलसमुद्घातकरि सर्व लोककूं अर निश्चयकरि ज्ञानतैं सर्व लोकालोककूं वेष्टि कहिये व्यापे है, तातैं विष्णु कहिये। बहुरि यद्यपि व्यवहारकरि कर्मके वशतैं संसारविषैं परिणवे है, तथापि निश्चयकरि स्वयं आपही आपविषैं ज्ञानदर्शनस्वरूपहीकरि भवति कहिये परिणवे है, तातैं स्वयम्भू कहिये। बहुरि व्यवहारकरि औदारिकादिक शरीर याकै हैं, तातैं शरीरी कहिये, निश्चयकरि शरीरी नाही है। बहुरि व्यवहारकरि मनुष्यादिपर्याय-रूप परिणवे है, तातैं मानव कहिये। उपलक्षणतैं नारकी वा तिर्यंच वा देव कहिये। निश्चयकरि मनु कहिये ज्ञान तींहविषैं भवः कहिये सत्तारूप है तातैं मानव कहिये। बहुरि व्यवहारकरि कुटुंबमित्रादि परिग्रहविषैं सजति कहिये आसक्त होइ प्रवर्तै है तातैं सक्त कहिये, निश्चयकरि सक्त नाही है। बहुरि व्यवहारकरि संसारविषैं नानायोनिविषैं जायते कहिये उपजे है, तातैं जंतु कहिये, निश्चयकरि जंतु नाही हैं। बहुरि व्यवहारकरि मान कहिये अहंकार सो याकै है, तातैं मानी कहिये, निश्चयकरि मानी नाही है। बहुरि व्यवहारकरि माया जो कपटाई याकै है, तातैं

मायी कहिये, निश्चयकरि मायी नाही है। बहुरि व्यवहारकरि मनवचनकायकी क्रियारूप योग याकै है, तातैं योगी कहिये, निश्चयकरि योगी नाही है। बहुरि व्यवहारकरि सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहनाकरि प्रदेशनिको संकोचे है, तातैं संकुट है। बहुरि केवलसमुद्घातकरि सर्व लोककूं व्यापे है तातैं असंकुट है। निश्चयकरि प्रदेशनिका संकोच विस्ताररहित किंचित् ऊन चरमशरीरप्रमाण है। तातैं संकुट असंकुट नाही है। बहुरि दोऊ नयनिकरि क्षेत्र जो लोकालोक ताहि ज्ञः कहिये जाने है, तातैं क्षेत्रज्ञ कहिये। बहुरि व्यवहारकरि अष्टकर्मनिके अभ्यंतर प्रवर्ते है अर निश्चयकरि चैतन्यस्वभावके अभ्यंतर प्रवर्ते है, तातैं अन्तरात्मा कहिये। चकारतैं व्यवहारकरि कर्मनोकर्मरूप मूर्तिकद्रव्यके संबंधतैं मूर्तिक है, निश्चयकरि अमूर्तिक है। इत्यादि आत्माके स्वभाव जानने, इनका व्याख्यान इस पूर्वविषैं है। याके दोय लाखतैं तेरहसेकों गुणिये ऐसे छव्वीस कोडि २६००००००० पद हैं॥ ७॥

बहुरि कर्मका है प्रवाद कहिये प्ररूपण इसविषैं ऐसा कर्मप्रवाद नामा आठवा पूर्व है। इसविषैं मूलप्रकृति उत्तरप्रकृति उत्तरोत्तरप्रकृतिरूप भेद लीये बंध उदय उदीरणा सत्तारूप अवस्थाकों धरे ज्ञानावरणादिक कर्म तिनके स्वरूपको वा समवधान ईर्यापथ

तपस्या आधाकर्म इत्यादि क्रियारूप कर्मनिको प्ररूपिये है। याके दोय लाखतैं निवैको गुणिये ऐसे एक कोडि असी लाख १८०००:०० पद हैं ॥ ८ ॥

बहुरि प्रत्याख्यायते कहिये निषेधिये है पाप याकरि ऐसा प्रत्याख्यान नामा नवमां पूर्व है। इसविषैं नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव अपेक्षा जीवनिका संहनन वा बल इत्यादिकके अनुसारिकरि कालमर्यादा लिये वा यावज्जीव प्रत्याख्यान कहिये सकल पापसहितवस्तूका त्याग उपवासकी विधि ताकी भावना पंच समिति तीन गुप्ति इत्यादि वर्णन कीजिये है। याके दोय लाखतैं बियालीसको गुणिये ऐसे चौरासी लाख ८४००००० पद हैं ॥ ९ ॥

बहुरि विद्यानिका है अनुवाद कहिये अनुक्रमतैं वर्णन इसविषैं ऐसा विद्यानुवाद नामा दशवां पूर्व है ॥ इसविषैं सातसैं अंगुष्ठप्रसेन आदि अल्पविद्या अर पांचसैं रोहिणी आदि महाविद्या तिनका स्वरूप सामर्थ्य साधनभूत मंत्र यंत्र पूजा विधान सिद्ध भये पीछै उन विद्यानिका फल बहुरि अंतरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, स्वप्न, लक्षण, व्यंजन, छिन्न ये आठ महानिमित्त इत्यादि प्ररूपे हैं। याके दोय लाखतैं पचावनको गुणिये ऐसे एक कोडि दश लाख ११०००००० पद हैं ॥१०॥

बहुरि कल्याणनिका है वाद कहिये प्ररूपण इसविषैं ऐसा कल्याणवाद नामा

ग्यारवा पूर्व है । इसविषै तीर्थंकर चक्रवर्ती बलिभद्र नारायण प्रतिनारायण इनके गर्भ आदि कल्याण कहिये महा उत्सव बहुरि तिनके कारणभूत षोडश भावना तपश्चरणादिक क्रिया बहुरि चंद्रमा सूर्य ग्रह नक्षत्र इनका गमन विशेष ग्रहण शकुन फल इत्यादि वर्णन कीजिये है । याके दोय लाखतें तेरहसेंको गुणिये ऐसे छब्बीस कोडी २६००००००० पद हैं ॥ ११ ॥

बहुरि प्राणनिका है वाद कहिये प्ररूपण इसविषै ऐसा प्राणवाद नामा बारवां पूर्व है । इसविषै चिकित्सा आदि आठ प्रकार वैद्यक अर भूतादिक व्याधि दूरि करनेको कारण मंत्रादिक वा विष दूरि करनहारा जो जांगलिक नाका कर्म वा 'इला पिंगला सुषुमणा' इत्यादि स्वरोदयरूप बहुतप्रकार श्वासोच्छ्वासका भेद बहुरि दशप्राणनिको उपकारी वा अनुपकारी वस्तु गत्यादिकके अनुसारि वर्णन कीजिये है । याके दोय लाखतें छसै पचासको गुणिये ऐसे तेरह कोडि १३०००००००० पद हैं ॥ १२ ॥

बहुरि क्रियाकरि विशाल कहिये विस्तीर्ण शोभायमान ऐसा क्रियाविशाल नामा तेरहवां पूर्व है । इसविषै संगीतशास्त्र, छन्दोऽलङ्कारादि शास्त्र, बहत्तरि कला, चौसठि स्त्रीका गुण, शिल्प आदि चातुर्यता, गर्भाधान आदि चौरासी क्रिया

सम्यग्दर्शन आदि एकसो आठ क्रिया, देववंदना आदि पचीस क्रिया और नित्यनैमित्तिक क्रिया इत्यादिक प्ररूपे हैं ॥ याके दोय लाखतैं च्यारिसैं पचासको गुणिये ऐसे नव कोडी ९००००००० पद हैं ॥ १३ ॥

बहुरि त्रिलोकनिका बिंदु कहिये अवयव अर सार सो प्ररूपिये है याविषैं ऐसा त्रिलोकबिंदुसार नामा चौदहवां पूर्व है। इसविषैं तीन लोकका स्वरूप, अर छवीस परिकर्म, आठ व्यवहार, च्यारि बीज इत्यादि गणित, अर मोक्षका स्वरूप, मोक्षका कारणभूत क्रिया, मोक्षका सुख इत्यादि वर्णन कीजिये हैं। याके दोय लाखतैं छसैं पचीसको गुणिये ऐसे बारह कोडि पचीस लाख १२५०००००० पद हैं ॥ १४ ॥ ऐसैं चौदह पूर्वनिके पदनिकी संख्या कही। इहां दोय लाखका गुणकारक विधान करि गाथाविषैं संख्या कही थी, तातैं टीकाविषैंभी तैसैंही कही है ॥ गाथा—

सामायियचउवीस- । त्थवं तिहा वंदणापडिक्कमणं ॥
वेणायियं किदिकम्मं । दसवेयाळं च उत्तरज्झयणं ॥ ३३ ॥
कप्पववहारकप्पा- । कप्पियमहकप्पियं च पुंडरियं ॥
महपुंडरियणिसेहिण- । मिदि चोद्दसमंगबाहिरयं ॥ ३४ ॥

अर्थ—बहुरि प्रकीर्णक नामा अंगबाह्य द्रव्यश्रुत सो चौदह प्रकार है। सामा-

यिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्त-राध्ययन, कल्प्यव्यवहार, कल्प्याकल्प्य, महाकल्प्य, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, निषिद्धिका। तहां 'सम्' कहिये एकत्वपनेकरि 'आयः' कहिये आगमन परद्रव्यनितैं निर्वृत्ति होय उपयोगकी आत्माविषैं प्रवृत्ति यहु मैं ज्ञाता द्रष्टा हौं ऐसैं आत्माविषैं उपयोग सो सामायिक कहिये। जातैं एकही आत्मा सो जाननेयोग्य है, तातैं ज्ञेय है। अर जाननहारा है, तातैं ज्ञायक है, तातैं आपको ज्ञाता द्रष्टा अनुभवे है। अथवा 'सम' कहिये रागद्वेषरहित मध्यस्थ आत्मा, तिसविषैं 'आयः' कहिये उपयोगकी प्रवृत्ति सो समाय कहिये, समाय है प्रयोजन जाका सो सामायिक कहिये। नित्यनैमित्तिकरूप क्रियाविशेष तिस सामायिकका प्रतिपादकशास्त्र सो भी सामायिक कहिये। सो नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भेदकरि सामायिक छहप्रकार है॥

तहां इष्टानिष्ट नामविषैं रागद्वेष न करना, अथवा किसी वस्तूका सामा-यिक ऐसा नाम धरना, सो नामसामायिक है। बहुरि मनोहर वा अमनोहर जो स्त्रीपुरुषादिकका आकार लीये काठ लेप चित्रामादि रूप स्थापना तिनाविषैं रागद्वेष न करना, अथवा किसी वस्तूविषैं यहू सामायिक है ऐसी स्थापना

करि स्थाप्या हुवा वस्तु सो स्थापनासामायिक है। बहुरि इष्ट अनिष्ट चेतन अचेतन द्रव्यविषैं रागद्वेष न करना, अथवा जो सामायिकशास्त्रको जाने है अर वाका उपयोग सामायिकविषैं नाही है, सो जीव वा उस सामायिकशास्त्र जाननेवालेका शरीरादिक सो द्रव्यसामायिक है। बहुरि ग्राम नगर वन आदि इष्ट अनिष्ट क्षेत्र, तिनविषैं रागद्वेष न करना सो क्षेत्रसामायिक है। बहुरि वसंत आदि ऋतु अर शुक्लपक्ष कृष्णपक्ष दिन वार नक्षत्र इत्यादि इष्ट अनिष्ट कालके विशेषनिविषैं रागद्वेष न करना, सो कालसामायिक है। बहुरि भाव जो जीवादिकतत्वविषैं उपयोगरूप पर्याय ताकी मिथ्यात्व कषायरूप संक्लेशपनाकी निवृत्ति अथवा सामायिकशास्त्रको जाने है अर उसहीविषैं उपयोग जाका है, सो जीव अथवा सामायिकपर्यायरूप परिणमन सो भावसामायिक है। ऐसैं सामायिक नामा प्रकीर्णक कह्या है ॥

बहुरि जिसकालविषैं जिनका प्रवर्तन होई, तिसकालविषैं तिनही चोवीस तीर्थंकरनिका नाम स्थापना द्रव्य भावका आश्रयकरि पञ्चकल्याण चौतीस अतिशय आठ प्रातिहार्य परम औदारिकदिव्यशरीर समवसरण सभा धर्मोपदेश देना इत्यादिक तीर्थंकरपनेकी महिमाका स्तवन, सो चतुर्विंशतिस्तव कहिये ताका प्रतिपादक शास्त्र सो चतुर्विंशतिस्तव नामा प्रकीर्णक है ॥

बहुरि एकतीर्थंकरका अवलंबन करि प्रतिमा चैत्यालय इत्यादिककी स्तुति सो वंदना कहिये। याका प्रतिपादकशास्त्र सो वंदनाप्रकीर्णक कहिये ॥

बहुरि प्रतिक्रम्यते कहिये प्रमादकरि कीया दैवसिक आदि दोषनिराकरण याकरि कीजिये, सो प्रतिक्रमण कहिये। सो प्रतिक्रमण सातप्रकार है- दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक, ऐर्यापथिक, उत्तमार्थ। तहां संध्यासमय दिनविषैं कीया दोष जाकरि निवारिये, सो दैवसिक है। बहुरि प्रभातसमय रात्रिविषैं कीया दोष जाकरि निवारिये, सो रात्रिक है। बहुरि पंद्रहवै दिन पक्षविषैं कीया दोष जाकरि निवारिये, सो पाक्षिक कहिये। बहुरि चौथे महिने च्यारि मासविषैं कीये दोष जाकरि निवारिये सो चातुर्मासिक कहिये। बहुरि बरसवै दिन एकवर्षविषैं कीये दोष जाकरि निवारिये, सो सांवत्सरिक कहिये। बहुरि गमन करते निपज्या दोष जाकरि निवारिये सो ऐर्यापथिक कहिये। बहुरि सर्वपर्यायसंबंधी दोष जाकरि निवारिये सो उत्तमार्थ है। ऐसैं सातप्रकार प्रतिक्रमण जानना। सो भरतादि क्षेत्र अर दुःषमा आदि काल छह संहननकरि संयुक्त स्थिर वा अस्थिर पुरुषनिके भेद, तिनकी अपेक्षा प्रतिक्रमणका प्रतिपादक शास्त्र सो प्रतिक्रमण नामा प्रकीर्णक कहिये ॥

बहुरि विनय है प्रयोजन याका सो वैनयिक नामा प्रकीर्णक कहिये। इसविषैं

ज्ञानदर्शनचारित्रतप उपचारसंबंधी पंचप्रकार विनयके विधानका प्ररूपण है ॥

बहुरि कृति कहिये क्रिया, ताका कर्म कहिये विधान, इसविषैं प्ररूपिये हैं, सो कृतिकर्म नामा प्रकीर्णक कहिये। इसविषैं अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु आदि नवदेवतानिकी वंदनाके निमित्त आप आधीन होना, सो आत्माधीनता। अर गृध्रभ्रमणरूप तीन प्रदक्षिणा अर पृथ्वीतैं अंग लगाय दोय नमस्कार अर शिर नमाय च्यारि नमस्कार अर हाथ जोडि फेरनेरूप बारह आवर्त इत्यादि नित्यनैमित्तिक क्रियाका विधान निरूपिये है ॥

बहुरि विशेषरूप जे काल, ते विकाल कहिये, तिनको होते जो होय, सो वैकालिक, सो दश वैकालिक इसविषैं प्ररूपिये है ऐसा दशवैकालिक नामा प्रकीर्णक है। इसविषैं मुनिका आचार अर आहारकी शुद्धता अर लक्षण प्ररूपिये है ॥

बहुरि उत्तर जिसविषैं अधीयन्ते कहिये पढिये, सो उत्तराध्ययन नामा प्रकीर्णक है। इसविषैं च्यारिप्रकार उपसर्ग बाईस परीषह इनिके सहनेका विधान वा तिनका फल अर इस प्रश्नका यहू उत्तर ऐसैं उत्तरविधान प्ररूपिये हैं ॥

बहुरि कल्प्य कहिये योग्य आचरण सो व्यवन्हियते अस्मिन् कहिये प्रवृत्तिरूप कीजिए है याविषैं ऐसा कल्प्यव्यवहार नामा प्रकीर्णक है। इसविषैं मुनीश्वरनिके

योग्य आचरणका विधान अर अयोग्यका सेवन होतैं प्रायश्चित्त प्ररूपिये है ॥

बहुरि कल्प्य कहिये योग्य अर अकल्प्य कहिये अयोग्य प्ररूपिये है याविषैं ऐसा कल्प्याकल्प्य नामा प्रकीर्णक है। इसविषैं द्रव्य क्षेत्र काल भावनिकी अपेक्षा साधूनिको 'यहु योग्य है यहु अयोग्य है' ऐसा भेद प्ररूपिये है ॥

बहुरि महते कहिये महान् पुरुषनिकै कल्प्य कहिये योग्य ऐसा आचरण इसविषैं वर्णिये है सो महाकल्प्य नामा प्रकीर्णक है। इसविषैं जिनकल्पी महामुनीनिकै उत्कृष्ट संहननयोग्य द्रव्य क्षेत्र काल भावविषैं प्रवर्तते तिनकै प्रतिमायोग वा आतापन अभ्रावकाश वृक्षतलरूप त्रिकालयोग इत्यादि आचरण प्ररूपिये है। अर स्थविरकल्पीनिका दीक्षा शिक्षा संघका पोषण यथायोग्य शरीरका समाधान सो आत्मसंस्कार सल्लेखना उत्तमार्थ स्थानकूं प्राप्ति उत्तम अराधना इनका विशेष प्ररूपिये है ॥

बहुरि पुण्डरीक नामा प्रकीर्णक भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी कल्पवासी इनविषैं उपजनेको कारण ऐसे दानपूजातपश्चरण अकामनिर्जरा सम्यक्त्व सँयम इत्यादि विधान प्ररूपे है। वा तहां उपजनेतैं जो विभवादि पाइये तिसही प्ररूपे है ॥

बहुरि महान् जो पुण्डरीक नामा प्रकीर्णक है, सो महर्द्धिक जे इंद्र प्रतीन्द्र अहमिन्द्रादिक तिनविषैं उपजनेको कारण ऐसे विशेष तपश्चरणादि तिनको प्ररूपे है ॥

बहुरि निषेधनं कहिये प्रमादकरि कीया दोषका निराकरण, सो निषिद्धि कहिये संज्ञाविषैं कप्रत्ययकरि निषिद्धिका नाम भया । ऐसा निषिद्धिका नाम प्रकीर्णक प्राय- श्चित्तशास्त्र है। इसविषैं प्रमादतैं किया दोषकी विशुद्धताके निमित्त अनेकप्रकार प्राय- श्चित्त प्ररूपीये है । याका निसीतिका ऐसाभी नाम है ॥ ऐसैं अंगबाह्य श्रुतज्ञान चोदहप्रकार कह्या, याके अक्षरनिका प्रमाण पूर्वैं कह्याही है ॥ आगे श्रुतज्ञानकी महिमा कहे हैं ॥ गाथा—

सुदकेवळं च णाणं। दोणि वि सरिसाणि होंति ओहादो ॥
सुदणाणं तु परोक्खं। पच्चक्खं केवळं णाणं ॥ ३४ ॥

अर्थ— श्रुतज्ञान अर केवलज्ञान दोऊ समस्तवस्तुनिके द्रव्य गुण पर्याय जाननेकी अपेक्षा समान हैं। इतना विशेष श्रुतज्ञान परोक्ष है अर केवलज्ञान प्रत्यक्ष है॥ भावार्थ— जैसैं केवलज्ञानका अपरिमित विषय है, तैसैं श्रुतज्ञानकाभी अपरिमित विषय है—शास्त्रतैं सबनिको जाननेकी शक्ति है, परंतु शास्त्रज्ञान सर्वोत्कृष्टहू होइ तोभी सर्वपदार्थनिविषैं परोक्ष कहिये अविशद अस्पष्टही जाने है । जातैं अमूर्तिक- पदार्थनिविषैं वा सूक्ष्म अर्थपर्यायनिविषैं वा अन्य सूक्ष्म अंशनिविषैं विशदताकरि प्रवृत्ति श्रुतज्ञानकीही होहै । बहुरि जे मूर्तिक व्यंजनपर्याय वा अन्य स्थूल अंश इस

ज्ञानको विषय हैं, तिनविषैंभी अवधिज्ञानादिककीनांई प्रत्यक्षरूप न प्रवर्ते हैं, तातैं श्रुतज्ञान परोक्ष है । बहुरि केवलज्ञान प्रत्यक्ष कहिये विशद स्पष्टरूप मूर्तिक अमूर्तिक पदार्थ सूक्ष्म स्थूल पर्याय तिनविषैं प्रवर्तें है । जातैं समस्त आवरण अर वीर्यांतरायके क्षयतैं प्रकट होय है, तातैं प्रत्यक्ष है । अक्ष कहिये आत्मा, तींप्रति निश्चित होय कोई परद्रव्यकी अपेक्षा नही चाहै, सो प्रत्यक्ष कहिये, प्रत्यक्षका लक्षण विशद है–स्पष्ट है, जहां अपने विषयके जाननेमें कसर न होय ताको विशद वा स्पष्ट कहिये । बहुरि उपात्त अनुपात्तरूप परद्रव्यकी सापेक्षको लीये जो होइ सो परोक्ष कहिये, याका लक्षण अविशद अस्पष्ट जानना । मन नेत्र अनुपात्त हैं, जातैं नेत्र अर मन पदार्थको स्पर्शे नही हैं दूरि–तिष्ठतेहीकूं जाने हैं, अर अन्य स्पर्शन रसन घ्राण कर्ण ये च्यारि इंद्रिय अपने विषयकूं स्पर्शकरि जाने हैं, यातैं च्यारि इंद्रिय उपात्त हैं। ऐसा श्रुतज्ञान केवलज्ञानविषैं प्रत्यक्षपरोक्षलक्षणभेदतैं भेद है। बहुरि विषय अपेक्षा समानता है ॥ ऐसैं श्रुतज्ञानका स्वरूप संक्षेपतैं वर्णन कीया ॥

अवधिज्ञानका संक्षेपकथन ऐसा– जो द्रव्य क्षेत्र काल भावकी मर्यादा करिकै अर रूपी जो पुद्गल ताकूं प्रत्यक्ष जानै सो अवधिज्ञान है। मतिश्रुतकेवलज्ञानकीनांई अप्रमाण द्रव्य गुण पर्याय याका विषय नाही है। सो अवधिज्ञान एक तो भवही

जाको कारण सो तो भवप्रत्यय अवधिज्ञान है। अर सम्यग्दर्शनादि गुणानिकरि जो उपजै, सो गुणप्रत्यय है। तहां देवानिकै तथा नारकीनिकै तथा तीर्थंकरनिकै सर्व आत्माके प्रदेशनिकै, ऊपरि तिष्ठता जो अवधिज्ञानावरण तथा वीर्यांतराय नामा कर्म, तिनका क्षयोपशमतैं उत्पन्न होय है। जातैं जो देवका भव तथा नारकीका भव तथा तीर्थंकरका भव पावैगा, ताकै आपआपके क्षयोपशमप्रमाण बहुत अर अल्प अवधिज्ञान होयहीगा। तातैं इनिके अवधिज्ञानकूं भवही कारण है, तातैं भव-प्रत्यय अवधिज्ञान कह्या है। अर गुणप्रत्यय अवधिज्ञान पर्याप्त मनुष्यनिकै तथा संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्त तिर्यंचनिकै सम्यग्दर्शनादिक गुण तथा तपश्चरणादिकनिकरि जो नाभीके ऊपरि शंख पद्म स्वस्तिक झष कलशादिक शुभचिन्हनिकरि सहित जे आत्माके प्रदेश, तिन उपरि तिष्ठता जो अवधिज्ञानावरण अर वीर्यांतराय नामा कर्म ताके क्षयोपशमतैं उत्पन्न होय है। जातैं देवनारकीनिकै सम्यग्दर्शनादि गुण कोऊकै होतेहू गुणनिकी अपेक्षा नाही, तातैं भवप्रत्ययही जानना। अर मनुष्य तिर्यंचनिकै भवकी अपेक्षा नही गुणनिहीकी अपेक्षा है। बहुरि गुणप्रत्यय अवधिज्ञान छप्रकार है— अनुगामि, अननुगामि, अवस्थित, अनवस्थित, वर्द्धमान, हीयमान ॥

जो अवधिज्ञान आपका उत्पन्न करनेवाला जीवकी साथि गमन करै, सो अनुगामि

कहिये। सो अनुगामि तीन प्रकार है– क्षेत्रानुगामि, भवामिगामि, उभयानुगामि। तिनविषैं जा भरतादिक क्षेत्रमें उपज्या अर तातैं अन्य विदेहादि क्षेत्रमें विहार करता जीवकी साथि गमन करै अर मरणकरि अन्यभवकूं जाय तहां गमन नहीं करै, सो क्षेत्रानुगामि अवधिज्ञान है। अर जा भवमें उत्पन्न भया तातैं अन्य देवादिकनिके भवमें गमन करता जीवकी साथि गमन करै, सो भवानुगामि है। अर जा भवमें अर जा क्षेत्रमें अवधिज्ञान उपज्या तातैं अन्य जे भरत ऐरावत विदेहादिक क्षेत्र अर देवमनुष्यादिक भवमें गमन करता जीवकी साथि गमन करै, सो उभयानुगामि है। ऐसैं अनुगामि अवधि तीन प्रकारकरि कही ॥ अब जो अवधिज्ञान आपका उत्पन्न करनेवाला स्वामी जीव, ताकी साथि गमन नहीं करै, सो अननुगामीहू तीनप्रकार है। जो अन्यक्षेत्रमें जीवकी साथि नहीं जाय जा क्षेत्रमें उत्पन्न भया, ता क्षेत्रमेंही विनशि जाय, अन्य भवकूं जावो वा मति जावो, सो क्षेत्राननुगामि अवधिज्ञान है। अर जो अवधिज्ञान अन्यभवमें साथि नही जाय, जा भवमें उपज्या ताहीमैं विनशि जाय, अन्यक्षेत्रमें लैरै जाहु वा मति जाहु, सो भवाननुगामि कहिये। अर जो अवधिज्ञान अन्यक्षेत्रमेंहू साथि गमन नही करै अर अन्यभवहूमें नही गमन करै सो उभयाननुगामी कहिये ॥

अर जो अवधिज्ञान सूर्यमंडलकीनांई हानिवृद्धिकरि रहित एकप्रकार तिष्ठै सो अवस्थित नामा अवधिज्ञान है ॥ अर जो अवधिज्ञान कोऊ कालमें वधै, कोऊ कालमें घटै, कोऊ कालमें जैसेका तैसें रहै सो अनवस्थित नामा अवधिज्ञान है ॥ अर जो अवधिज्ञान शुक्लपक्षका चंद्रमाका मंडलकीनांई आपका उत्कृष्टपर्यंत वधै, सो वर्धमान अवधिज्ञान है ॥ अर जो कृष्णपक्षका चंद्रमंडलकीनांई आपका क्षयपर्यंत घटै, सो हीयमान है ॥

भावार्थ—जो अवधिज्ञानावरणका क्षयोपशमतें उपज्या था, सो सम्यग्दर्शनादिक विशुद्धपरिणामतें आवरणका क्षयोपशमके वधनेतें वधता वधता आपका उत्कृष्टस्थानपर्यंत वधै सो वर्धमान है अर जा दिन उपज्या, ता दिनतें संक्लेशपरिणामनिके वधनेतें घटता घटता आपका नाशपर्यंत घटै, सो हीयमान है। ऐसे छह भेद कहे ॥ बहुरि सामान्यकरि अवधिज्ञान तीनप्रकार है। एक देशावधि, दूजा परमावधि, तीजा सर्वावधि । तिनमें पूर्वै कह्या जो भवप्रत्यय अवधिज्ञान, सो नियमकरि देशावधिही है, जातें देवनिकै वा नरकीनिकै गृहस्थतीर्थंकरनिकै परमावधि सर्वावधि नही संभवे है । नियमथकी परमावधि सर्वावधि गुणप्रत्ययही है । अर महाव्रती चरमशरीरी तद्भवमोक्षगामी वज्रवृषभनाराचसंहननका धारी मनुष्य, ताकैही परमावधि सर्वावधि

होय है। अर देशावधि देव नारकी मनुष्य तिर्यंच तथा संयमी असंयमीकैभी होय है। परंतु देशावधीका उत्कृष्ट भेद मनुष्यमहाव्रतीहीकै होय, अन्य तीन गतीनिमैं तथा असंयमीकै नही होय है॥ बहुरि प्रतिपाती तथा अप्रतिपाती देशावधिही है। परमावधि सर्वावधिका छूटना नही है, इनका धारक निर्वाणही गमन करे, तातैं अप्रतिपातीही है। देशावधिमें अर परमावधिमें अपने अपने जघन्यद्रव्यक्षेत्रकाल-भावनैं आदि लेय आपके उत्कृष्टपर्यंत असंख्यात लोकपर्यंत विकल्प है। अर द्रव्य-क्षेत्रकालभावकी नियमरूप सीमानैं लीया रूपी जो पुद्गलद्रव्य ताकूं तथा कर्मपुद्गलसहित संसारी जीवद्रव्य ताकूं प्रत्यक्ष जाने है। अर सर्वावधिज्ञानमैं जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद नही है, अवस्थित एकरूप हानिवृद्धिरहित सर्वोत्कृष्ट विशुद्धतासहित जाने है। अर इन अवधिज्ञानका विषयभूत द्रव्य क्षेत्र काल भावनिके द्वारैं विशेषस्वरूप गोमटसारादि ग्रंथनितैं जानना॥

बहुरि मनःपर्ययज्ञान दोयप्रकार है– एक ऋजुमतिमनःपर्यय, दूसरा विपुलमतिमनःपर्यय॥ वीर्यांतराय तथा मनःपर्ययज्ञानावरणका तो क्षयोपशम अर अंगोपांग नाम कर्मका अवलंबनतैं जो परका मनका संबंधकारिकै अर जो रूपीपदार्थको प्रत्यक्ष जाननेमें प्रवर्तै सो मनःपर्ययज्ञान है॥ सरलमनकरि चिंतवन कीया अर्थको जाने,

सरलवचनकरि कह्या अर्थकूं जानै, सरलकायकरि कीया अर्थकूं जानै, तथा मनकरि अर्थकूं प्रकट चिंतवन कीया वा धर्मादियुक्त वचन उच्चारण कीया तथा अंगोपांगकूं निपातन कीया, खैंच्या, पसाऱ्या इत्यादिककरिकै अर लगताही समयमें चिंतवन कीया वा बहोत कालपीछे चिंतवन कीया, जामैं कहा विकल्प कीया? कहा कह्या? कहा कायकरि कीया? अथवा विस्मरण होनेकरि बहुरि चिंतवन करनेकूं असमर्थ हुवा ऐसा अर्थकूं ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानवाला पूछेतैं वा विनापूछेतैं जानै— जो, ई पुरुष ऐसा चिंतवन कीया, वा ऐसैं कह्या वा कायकरि ऐसैं कीया, ताकूं प्रत्यक्ष जानै, सो ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान है ॥ आपका वा परका चिंतवन, जीवित, मरण, सुख, दुःख, लाभ अलाभादिकनिनैं जाने है। जघन्य तो आपका वा अन्यजीवनिका दोय तीन भव जाने है अर उत्कृष्टतैं सप्त अष्ट भव गत्यागत्यादिकनिकरि जानै। क्षेत्रथकी जघन्य सात आठ कोशकी जानै, उत्कृष्ट सात आठ योजनमांहि जानै, वाहिर नहीं जानै ॥

अर विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान, सरल मनोवचनकाय तथा वक्रमनोवचनकायकरि चिंतवन कीया तथा कह्या तथा कायकरि कीया जो अर्थ आपकै वा अन्यकै चिंतवन वा जीवन मरण लाभ अलाभ सुखदुःखादिक चिंतवन कीया वा करे है वा करेगा, तिस सर्वकूं जानै। जघन्य तो सात आठ भव अर उत्कृष्ट असंख्यात भव अर जघन्य

तो सात आठ योजन उत्कृष्ट मानुषोत्तरपर्वतमांहि आपका विषय रूपीपदार्थकूं जाने है। अर श्रीगोमटसारजीमैं ऐसैं कह्या है, जो, उत्कृष्ट पैंतालीस लाख योजन चौडा लंबा ऊंचो क्षेत्रमें तिष्ठता आपका विषय जो रूपीपदार्थ ताहि जानै॥ बहुरि केवलज्ञान अनंतपर्याय भूतभविष्यद्वर्तमान त्रिकालसंबंधी संपूर्ण द्रव्यगुणपर्यायानिकी परिणतिसहित मूर्तिक अमूर्तिक सर्वद्रव्यानिकूं जानै है॥

ऐसैं ज्ञानका स्वरूप श्रीगोमटसार नामा ग्रंथमें कह्या, ताका संक्षेप अपना अर अन्यजीवानिका उद्धारके अर्थि प्रकरण पाय वर्णन कीया॥ अब निर्यापक आचार्यका निर्वापक गुण कहे हैं॥ गाथा—

वत्ता कत्ता च मुणी । विचित्तसुदधारउ विचित्तकहो ॥
तह य अपायविदण्हू । मइसंपण्णो महाभागो ॥ ५०६ ॥

अर्थ—बहुरि निर्वापक गुरु कैसाक होय? वक्ता कहिये परका हृदयमें अर्थप्रवेश कराय देनेका सामर्थ्यरूप वक्तृत्व नामा गुणका धारक होय। बहुरि विनय अर वैयावृत्त्यका कर्ता होय। बहुरि विचित्रश्रुतका धारक होय। बहुरि प्रथमानुयोग अर करणानुयोग अर चरणानुयोग अर द्रव्यानुयोग इन च्यारि अनुयोगके अनुकूल जे विचित्र कथा, तिनका निरूपण करनेवाला है सामर्थ्य जाका ऐसा होय

बहुरि रत्नत्रयका अतीचारका जाननेवाला होय । बहुरि स्वाभाविक बुद्धिकरि संयुक्त होय । बहुरि महाभाग कहिये स्ववश होय ॥ गाथा—

पगदे णिस्सेसं गा- । हुगं च आहरणहेदुजुत्तं च ॥
अणुसासेइ सुविहिदो । कुविदं स णिव्ववेमाणो ॥ ७ ॥
णिद्धं महुरगभीरं । मणप्पसादणकरं सवणकंतं ॥
देइ कहं णिव्ववर्ड । सइसंमंणाहरणहेदुं ॥ ८ ॥

अर्थ—निर्वापक गुरु और कहा करे है? पूर्वैं संन्यास प्रारंभ कीया ताविषैं दृष्टांत हेतुकरि युक्त समस्तत्यागसंयमकूं ग्रहण करावता शिक्षा करै । अर जो क्षपक कुपित भया होय तो ताकूं उपशमभावनैं प्राप्त करता ऐसी शिक्षा देवै, जातैं पूर्वैं व्रत संयम नियम धारण करनेकी प्रतिज्ञा करी थी, ताका स्मरण प्रकट होजाय । सो कैसीरीति कथाका उपदेश देवै, सो कहे हैं— प्रियवचनकी बाहुल्यताकरि तो स्नेहरूप होय । बहुरि कठोरतारहिततातैं मधुर होय । अर अर्थकी दृढताकरि गंभीर होय । बहुरि मनकूं आल्हाद करनेवाली होय । बहुरि कर्णनिकूं सुख देनेवाली होय । ऐसी संयमकी स्मृति करावनेवाली शिक्षा करै ॥ गाथा—

जह पक्खुहिदुम्मीए । पोदं रदणभरिदं समुद्दम्मि ॥

णिज्जवउ धारेदि हु । जिदकरणो बुद्धिसंपण्णो ॥ ९ ॥
तह संजमगुणभरिदं । परिसहउम्मीहि खुभिदमाइद्धं ॥
णिज्जवउ धारेदि हु । महुरेहिं हिदोवदेसेहिं ॥ ५१० ॥

अर्थ--जैसैं अत्यंत क्षोभनैं प्राप्त भई है तरंग जिनमें ऐसा जो समुद्र, ताकेविषैं रत्ननिकरि भरी जो जिहाज, ताही निर्वापक जो खेवटिया, सोही धारण करै । कैसा है निर्वापक? जीती है इंद्रिय जानैं । बहुरि कैसा है? बुद्धिकरि संयुक्त है । अर जैसैं इंद्रियनिका जीतनेवाला अर बुद्धिसंयुक्त ऐसा खेवटिया चलायमान समुद्रमें डूबती रत्ननिकी भरी जिहाजकी रक्षा करै; तैसैं निर्यापकाचार्यहु संयमगुणकरि भरी हुई ऐसी जो तपस्वीरूपी जिहाज, सो परीषहरूप लहऱ्यांकरि क्षोभकूं प्राप्त भई, ताकूं मिष्ट अर हितरूप उपदेशनिकरि धारण करै-रक्षा करे है ॥ भावार्थ--क्षुधातृषादिक परीषहादि-करि चलायमान होता जो साधु, ताही निर्यापक गुरुनिका उपदेशही रक्षा करै॥ गाथा-

धिदिवलकरमादहिदं । महुरं कण्णाहुदिं जदि ण देइ ॥
सिद्धिसुहमावहंती । चत्ता आराहणा होइ ॥ ११ ॥

अर्थ--जो धैर्यरूप बलका करनेवाली अर आत्माका हितरूप अर मधुर अर निर्वाणके सुखकूं प्राप्त करनेवाली ऐसी कर्णनिमैं आहुति निर्वापक गुरु नही देवै, तो

आराधना छूटि जाय । तातैं परमहितका उपदेशक अर जैसैं तैसैं अनेकविघ्ननितैं रक्षा करि क्षपकरूप जिहाजकूं संसारसमुद्रके पार करि देवै ऐसा निर्यापकगुरुहीका आश्रय करना श्रेष्ठ है । अब कथनका उपसंहार करै हैं ॥ गाथा--

इय णिव्ववउ खवय- ॥ स्स होइ णिज्जावउ सदायरिउ ॥
होइ य कित्ती पधिदा । एदेहिं गुणेहिं जुत्तस्स ॥ १२ ॥

अर्थ--ऐसैं निर्वापकगुणकरि सहित जो आचार्य, सो क्षपककै सदाकाल निर्यापकाचार्यपणाकरिकै उपकारी होय है, जातैं येते आचारवानादिक गुण तिनकरि सहित होय ताकीही कीर्ति जगतमें विख्यात होय है । गाथा--

इय अट्ठगुणोवेदो । किसिणं आराहणं उवविधेदि ॥
खवगो वि तं भयवदी । उवगूहिद जादसंवेगो ॥ १३ ॥

अर्थ--ऐसैं आचारवान्, आधारवान्, व्यवहारवान्, प्रकर्ता, अपायोपायविदर्शी अवपीडक, अपरिस्रावी, निर्वापक ये अष्टगुण तिनकरि सहित आचार्य होइ सो समस्त आराधनाकूं प्राप्त करै । अर क्षपकहू ऐसे गुरुनिके प्रसादतैं उपज्या है संसारतैं भय जाकै सो भगवती कहिये सकलबाधा निवारण करनेतैं महातपोवती जो आराधना ताकूं आलिंगन करै है ॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषैं निवै गाथासूत्रनिकरि सुस्थित नामा सतरमां अधिकार समाप्त कीया ॥ आगें उपसंपदा नामा अठारमा अधिकार छ गाथानिकरि वर्णन करे हैं । गाथा—

एवं परिमग्गित्ता । णिज्जवयगुणेहि जुत्तमायरियं ॥
उवसंपज्जइ विज्जा- । चरणसमग्गो तगो साहू ॥ १४ ॥

अर्थ—ऐसें ज्ञानचारित्रका धारक जो क्षपक मुनि, सो येते निर्यापकाचार्यनिके गुणकरि सहित जो गुरु तिनकों अवलोकन करिकैं अर तिनकी निकटताकूं प्राप्त होवै ॥ गाथा—

तियरणसव्वावस्सय- । पडिपुण्णं किरिय तस्स किरियम्मं ॥
विणयेणमंजलिकदो । वाइयवसभं इमं भणदि ॥ १५ ॥

अर्थ— आचार्यकी निकटताकूं प्राप्त होयकरिकै अर पाछै मनोवचनकायकरि षडावश्यकक्रिया परिपूर्ण करिकै बहुरि कृतिकर्म जो गुरुनिका स्तवन करिकै बहुरि दोऊ हस्त जोरि अंजुली करिकै आचार्य श्रेष्ठ ताही ऐसी विनति करै—

तुब्भेत्थ वारसंगसु- । दपारया सवणसंघणिज्जवया ॥
तुब्भं खु पादमूले । उज्जोवज्जामि सामण्णं ॥ १६ ॥

अर्थ-- हे भगवन्! आप द्वादशांग श्रुतके पारगामी हो अर श्रमणसंघके उद्धार करनेवाले हो। यातैं आपके चरणारविंदोंके निकट मुनिपणाकूं उज्वल करस्यूं ॥ गाथा-

पव्वज्जादी सव्वं । कादूणालोयणं सुपरिसुद्धं ॥
दंसणणाणचरित्तो । णिस्सल्लो विहरिदुं इच्छं ॥ १७ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! जा दिनतैं हम दीक्षा ग्रहण करी, ता दिनकूं आदि ले आजिताईं भलेप्रकार शुद्ध जो आलोचना, ताहिकरिकै अर दर्शनज्ञानचारित्रविषैं निःशल्य होय प्रवर्तन करनेकी इच्छा करूं हूं ॥ गाथा-

एवं कदे णिसग्गे । तेण सुविहिदेण वायउ भणइ ॥
अणगार उत्तमट्ठं । साहेह तुमं अविग्घेण ॥ १८ ॥

अर्थ-- सुविहित जो क्षपक ताकूं ऐसैं त्याग करनेमें उद्यमी होता संता वाचक जो आचार्य सो कहै- हे अनगार कहिये हे मुने! तुम निर्विघ्नताकरि उत्तम अर्थ जो च्यारि आराधना, ताका साधन करो ॥ गाथा-

धण्णो सि तुमं सुजस । एरिसउं जस्स णिच्छउं जाउं ॥
संसारदुक्खमहणी । घेत्तुं आराहणपडायं ॥ १९ ॥

अर्थ— हे मुने! तुम धन्य हो। जाकै संसारके दुःखका नाश करनेवाली

आराधनारूप पताका ग्रहण करनेकूं ऐसा निश्चय उपजा ॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके च्यालीस अधिकारनिविषैं छ गाथानिकरि उपसंपदा नामा अठारमां अधिकार समाप्त हुवा ॥ अब आगै परीक्षा नामा उगणीसमां अधिकार दोय गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

अच्छाहि ताव सुविहिद। वीसत्थो मा य होहि उव्वादो ॥
पडिचारएहिं समं जा। इणमट्ठं संपहारेमो ॥ २० ॥

अर्थ— हे मुने? तितनैक विश्वासरूप तिष्ठो, व्याकुलचित्त मति होहु। जितनै हम वैयावृत्यके करनेवालेनिकरि या प्रयोजनकूं निश्चयकरि लेवै, तितनैं धैर्य राखहू ॥ गाथा—

तो तस्स उत्तमट्ठे। करणुच्छाहं पडिच्छादि विदण्हू ॥
खीरोदणदव्वुग्गह-। दुगुंछणाए समाधीए ॥ २१ ॥

अर्थ— तींठापाछै मार्गका जाननेवाला आचार्य जो है, सो क्षपककै रत्नत्रयकी आराधनाका करनेमैं उत्साहकी परीक्षा करै, जो, याकै आराधना करनेमैं उत्साह है की नहीं है? तथा क्षीर ओदनादिक जे मनोज्ञ आहार तामैं लोलुपता है, की ग्लानि है? ऐसैं परीक्षा करै ॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानके चालीस अधिकारनिविषैं परीक्षा नामा उगणीसमां अधिकार दोय गाथानिमैं समाप्त कीया ॥ २१ ॥ आगै प्रतिलेखन नामा वीसमां अधिकार दोय गाथानिकरि कहै हैं ॥ गाथा—

खवयस्सुवसंपण्ण- । स्स तस्स आराधणा अविक्खेवं ॥
दिव्वेण णिमित्तेण य । पडिलेहदि अप्पमत्तो सो ॥ २२ ॥

अर्थ—बहुरि आचार्य जो है सो आराधना करनेके निमित्त आया जो क्षपक ताकी आराधना निर्विघ्न होनेके अर्थि दिव्य जो निमित्तज्ञान ताकरि सावधान हुवा अवलोकन करै-जो, या क्षपककै आराधना निर्विघ्न होनी है अक नहीं होनी है? ऐसा निमित्तज्ञानसूं अवलोकन करै ॥ और कहा देखै सो कहै हैं—

रज्जं खेत्तं अधिवदि । गणमप्पाणं च पडिलिहित्ताणं ॥
गुणसाधयं पडिच्छदि । अप्पडिलेहाए बहुदोसा ॥ २३ ॥

अर्थ—राज्यकूं अवलोकन करै, जो, राजा धर्मका सहायी है अक द्वेषी है अक मध्यस्थ है? तथा राजाका मंत्री दुष्ट है अक शिष्ट है? जो, राजा वा राजाका मंत्री दुष्ट होय; तो संघकूं उपसर्ग आय करै, प्रभावना भंग करै, साधूजनांकै दूषण लगाय दे, तातैं राजा वा राजाका मंत्री जहां न्यायमार्गी होय वा

जाका राज्यमें दुष्टजन कोईका धर्म नही विगाडि सकै, सर्ववर्णाश्रमका प्रतिपालक होय, तहां सल्लेखना करै। तथा जा क्षेत्रमें अति शीत अति उष्ण अतिवर्षाकी बाधा नही होय, तथा विकलत्रयजीवनिकी जा क्षेत्रमें बहुत बाधा नही होय, तथा वातपित्तरोगादिककी प्रचुर बाधा नही होय, तथा भोजनपान सुलभ होय, जामें धर्मात्मा जन रक्षक होय, ऐसे क्षेत्रमें संन्यास करै। तथा अधिपति जो देशराज्यका स्वामी ताकूं अवलोकन करै। तथा संघकूं अवलोकन करै, जो, संघमें वैयावृत्य करनेमें उत्साह है अक मंद है?। तथा आपका सामर्थ्य अवसर देखै। तथा सम्यग्दर्शनादिक गुणनिका साधक जो क्षपक ताकूं अवलोकन करै— जो, यह साधु क्षुधा तृषा सहनेमें समर्थ है अक नही है? देहमें सुख चाहे है, अक निरंतर भोजन चाहे है, की नानातपश्चरणकरि देहका सुखका त्यागी है? ऐसें परिक्षा करि संन्यास करावै। अर इतनी योग्यता विनाविचाऱ्या करावै, तो बहुत दोष आवै। जातैं क्षपक परिषह सहनेमें कायर होय पुकारने लगिजाय तथा अयोग्य मनोवचनकायकी प्रवृत्ति करै तो धर्मकी निंदा होय अर अन्य साधु धर्ममें शिथिल होजाय। तातैं क्षपकका परिणामादिक अवलोकन करैही। बहुरि राज्यक्षेत्रादिक योग्य नही होय तो अन्यक्षेत्रमें सल्लेखना करावै। अर जो अयोग्यमें करावे अर राज्यको

उपद्रव होय तो क्षपकके क्लेश उपजै तथा संघमें उपद्रव आजाय। तातैं परीक्षावान् आचार्य सर्व योग्यता देखि आराधनाका आरंभ करावै॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानके चालीस अधिकारनिविषैं प्रतिलेखन नामा वीसमा अधिकार दोय गाथानिमैं समाप्त कीया॥ अब आपृच्छा नामा अधिकार एक गाथाकरि कहे हैं॥ गाथा–

पडिचरए आपुच्छिय। तेहिं णिसिट्ठं पडिच्छदे खवयं॥
तेसिमणापुच्छाए। असमाधी होज्ज तिण्हं पि॥ २४॥

अर्थ— आचार्य जो संघका अधिपति, सो यद्यपि सर्वसंघपरि जाकी आज्ञा है, तथापि बडा कार्य संघमें पूछेही है, प्रधान मुनीनकूं पूछेविना नही करै। आचार्य संघकूं कहा पूछै सो कहे हैं– जे संघमें वैयावृत्य करने जोग्य धर्मानुरागी वात्सल्यताके धारक तिनिकूं ऐसैं पूछै, भो साधुजनहो! सुनहू– रत्नत्रयकी आराधना करनेमें अपनी सहायतानैं चाहता पाहुणा मुनि आपका संघकूं त्यागि अपनेपासि आया है, सो अब इस पाहुणे मुनीका आयाकूं उपकार करना योग्य है अक नही है सो कहो? अर वैयावृत्त्यसमान कोऊ तप नही, उपकार नही, दान नही, वैयावृत्त्य तीर्थंकरनामनैं कारण है, अर यो विनाशीक देह रत्नत्रयका

धारकनिकी वैयावृत्य करिकैही सफल है, अर पात्रका लाभ बडे भाग्यतैंही होय है, तातैं आत्महितनै इच्छा करते जे आया तिनकूं अब कहा उचित है? ऐसैं संघमें प्रधान मुनि वा वैयावृत्य करनेमें उद्यमी मुनि तिनकूं पूछै ॥ अर संघके मुनि अंगीकार करै अर कहै– हे भगवन्! हे कृपानिधान! हे परमवत्सलताके धारक! हे स्वामिन्? आपकी आज्ञा हमारे सर्व कल्याणकी करनेवाली है। हम मन वचन कायकरिकै सर्वप्रकार आराधना करायवेमें सावधान हैं। आपका प्रसादविना हमारै पात्रका लाभ होना दुर्लभ है। आपके चरणारविंदके प्रसादतैं हम क्षपकका वैयावृत्य करि हमारा जन्म सफल करेंगे, आत्माकूं उज्वल करेंगे, परमनिर्जरा करेंगे, अर जैसैं धर्मकी प्रभावना अर संघकी प्रभावना गुरुनिकी प्रभावना होयगी तैसैं करेंगे। ऐसैं संघके प्रधानमुनि अंगीकार करै, तदि क्षपककूं आराधनाके निमित्त ग्रहण करै ॥

अर जो संघकूं विनापूछै ग्रहण करै तो क्षपककै अर आचार्यकै अर संघकै संक्लेश होय समाधानी विगाडिजाय ॥ कैसैं सो कहे हैं– जब वैयावृत्यका प्रयोजन पडै तदि साधु तो ऐसैं कहे– हम इसकूं ग्रहण कीया नही, हम हमारे ध्यानस्वाध्यायमें प्रवर्तैं? अक इनकूं धर्मश्रवण करावै? अक इनका शरीरका टहल करै? कहा हमारेही भरोसे है? अक संघमें हमही हैं? वहोत साधु वैयावृत्य करनेवाले हैंही। ऐसैं वैयावृत्यमें

उद्यमी नही होय तदि क्षपकका परिणामनिमैं संक्लेश उपजै। अर गुरुकैही संक्लेश उपजै, जो मै परसंघमेंतैं आया धर्मात्मा साधु ताकूं अंगीकार कीया अब याका उपकारमें मेरा कोऊ सहायी नहीं, कैसैं यह कार्य पार पडेगा? ऐसैं आचार्यकाहू परिणाम बिगडै। बहुरि संघके परिचारक मुनिहूकै संक्लेश उपजै, जो बहुतजनकरि साध्य कार्य है, गुरु हमकूं पूछाहू नहीं, अवार हमारा बल अबल देख्या नहीं, देशकाल विचाऱ्या नहीं, दुर्धर कार्य आरंभ्या है! ॥ ऐसैं क्षपकका तथा आचार्यका तथा संघका परिणाम बिगडि जाय, तातैं आपृच्छा करना श्रेष्ठ है ॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानके चालीस अधिकारनिविषैं अपृच्छा नामा एकवीसमां अधिकार एक गाथामैं समाप्त कीया ॥ आगै प्रतीच्छन नामा बाईसमां अधिकार तीन गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा--

एगो संथारगदो। जजइ सरीरं जिणोवएसेण ॥
एगो सल्लिहदि मुणी। उग्गेहि तवोविधाणेहिं ॥ २५ ॥
तदिउं णाणुण्णादो। जजमाणस्स हु हवेज्ज वाघादो ॥
पडिदेसु दोसु तीसु व। समाधिकरणाणि हायंति ॥ २६ ॥
तह्मा पडिचरयाणं। सम्मदमेयं पडिच्छदे खवयं ॥

भणदि य तं आयरिउं । खवयं गच्छस्स मज्झम्मि ॥ २७ ॥

अर्थ——एक मुनि तो संस्तरकूं प्राप्त होय जिनेंद्रका उपदेश करिकै शरीरको यत्नाचारपूर्वक आराधनामैं युक्त करै। एक मुनि उग्रतपके विधानकरि शरीरकूं कृश करै। अर तीजा मुनिकी आज्ञा नही, जातैं तीन मुनि सल्लेखना करै तो वैयावृत्य करनेवालेको व्याघात होजाय। जातैं दोयतैं सिवायकी टहल बनना कठिण है। दोय तीन संस्तरमें पडिजाय तो समाधानताका कारण बिगडि जाय। तातैं वैयावृत्य करनेवाले मुनीनकै एक क्षपकही इष्ट है–एकहीकूं अंगीकार करै। जातैं एकका ग्रहण टहल करनेवालेनिकै मान्य है ॥ आचार्य है सो संघके मध्य क्षपककूं ऐसैं कहे हैं सो आगै कहिसी ॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानके चालीस अधिकारानिविषैं प्रतीच्छन नामा बाईसमां अधिकार तीन गाथानिकरि समास कीया ॥ आगै आलोना नामा तेईसमा अधिकार गुणतालीस गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा–

फासेहिं तं चरित्तं । सव्वं सुहसीलयं पहियदूण ॥
सव्वं परीसहचमुं । अधियासंतो धिदिवळेण ॥ २८ ॥

अर्थ— हे मुने! तुम धैर्यका बलकरिकै, संपूर्ण जो सुखियास्वभाव ताकूं त्यागि-

करिकै अर संपूर्ण परिषहनिकी सेनाकूं स्पर्शता संता, चारित्रकूं अंगीकार करहू ॥

भावार्थ— सुखियास्वभाव त्यागेविना मनोज्ञ आहारमें लंपटी होजाय तथा उद्गमादिदोषनिका त्याग न करि सकै तथा अयोग्य उपकरणादिक ग्रहण करै। तातैं सुखियास्वभाव त्यागि अर परीषहके सहनेमें समर्थ होय चारित्र धारण करना उचित है ॥ गाथा—

सद्दे रूवे गंधे। रसे य फासे य णिज्जणाहि तुमं ॥
सव्वेसु कसाएसु य। णिग्गहपरमो सदा होहि ॥ २९ ॥

अर्थ— हे साधो! तुम शब्द रूप गंध रस स्पर्श ये जे पांच इंद्रियनिके विषय तिनविषैं रागभावका विजय करो ॥ बहुरि सर्व जे क्रोध मान माया लोभ कषाय तिनविषैं उत्तमक्षमादिककरि निग्रहमें सदाकाल तत्पर होहू ॥ विषयकषायनिकूं जीति कहा कर्तव्य है, सो कहे हैं ॥ गाथा—

जेदूण कसाए इं-। दियाणि सव्वं य गारवं हत्ता ॥
तो मलिदरागदोसो। करेहि आलोचणासुद्धी ॥ ५३० ॥

अर्थ— हे मुने! कषाय अर इंद्रिय इनकूं नष्ट करिकै, अर संपूर्ण जो गारव ताहि हणिकरिकै, अर पाछै रागद्वेषरहित हुवा संता आलोचनाकी शुद्धता करहू ॥

भावार्थ— रागद्वेष असत्यवचनका कारण है। तातैं आलोचनाकी शुद्धता बिगडी जाय। जातैं रागभावतैं तो आपमैं तिष्ठतेहू दोष नहीं देखे है अर द्वेषभावतैं परके गुण नहीं ग्रहण करे है। तातैं रागद्वेषनिका त्याग करनेतैंही आलोचनाकी शुद्धता होय है॥ हमारे रत्नत्रय निरतिचार है। तातैं अब गुरुनिकूं कहा निवेदन करूं ऐसा मानना योग्य नहीं ऐसैं कहे हैं॥ गाथा—

छत्तीसगुणसमण्णो- । गदेण वि अवस्समेव कायव्वा ॥
परसक्खिया विसोधी । सुट्ठु वि ववहारकुसळेण ॥ ३१ ॥

अर्थ— छत्तीस गुणनिके धारक अर व्यवहारमें प्रवीण ऐसाहू आचार्य आपके रत्नत्रयकी शुद्धता, पर जो अन्यमुनि ताकी साक्षीतैंही करे है॥ भावार्थ— जो बारह प्रकार तप, षट् आवश्यक, पंच आचार, दशलक्षण धर्म, तीन गुप्ति इन छत्तीस गुणनिके धारक तथा व्यवहार जो प्रायश्चित्तग्रंथ तिनमें प्रवीण ऐसाहू आचार्य आपके रत्नत्रयमें लगे अतीचारनिकूं अन्यसाधुनिकी साक्षीविना स्वयमेवही प्रायश्चित्तादिक ग्रहण करि शुद्ध नहीं करे है, परकी साक्षीतैंही प्रायश्चित्तादिक ग्रहण करि शुद्ध करे है। गाथा—

आयारमादिया अ- । ट्ठगुणा दसविधो य ठिदिकप्पो ॥
बारस तव छावस्सय । छत्तीसगुणा मुणेयव्वा ॥ ३२ ॥

अर्थ--आचारवानादिक पूर्वोक्त अष्टगुण, अर दशप्रकार स्थितिकल्प, अर द्वादशप्रकार तप, अर षट् आवश्यक ऐसे छत्तीस गुण आचार्यनिके कहे हैं। अथवा अन्यग्रंथनिमें पंच समिति तीन गुप्तिरूप अष्ट प्रवचनमातृका, अर दशलक्षणधर्म, अथवा दशप्रकार पूर्वै स्थितिकल्प वर्णन कीया सो, बहुरि द्वादशप्रकार तप, अर षट् आवश्यक ऐसे आचार्यनिके छत्तीस गुण कहे हैं, सो जानने ॥ गाथा–

सव्वे वि तिण्णसंगा। तित्थयरा केवळी अणंतजिणा ॥
छदुमत्थस्स विसोधिं। दीसंति सदा गुरुसयासे ॥ ३३ ॥

अर्थ—सर्वही तीर्थंकर तथा सामान्यकेवली तथा अनंतसंसारके जीतनहारे अर संग जो परिग्रह तातैं पार उतर गये ऐसे आचार्य उपाध्याय साधु गणधरादिक जे हैं, ते छद्मस्थकी शुद्धता गुरुनिके निकटही दीखाई है। यातैं परकी साक्षीविना अतिचारनिकी शुद्धता नही होय है॥ सोही दृष्टांतकरि दिखावे हैं॥ गाथा–

जह कुसलो वि य वेज्जो। अण्णस्स कहेदि आदुरो रोगं ॥
वेज्जस्स तस्स सोच्चा। सो वि य पडिकम्ममारभइ ॥ ३४ ॥

अर्थ--जैसैं कुशलहू वैद्य जदि आप आतुर कहिये रोगी होय तदि अन्यवैद्यके अर्थि आपका रोगकूं कहे-जणावै अर सोहू वैद्य ताका रोगकूं सुणिकरि रोगका इला-

जकूं करे ॥ भावार्थ— जब वैद्यकै रोग उपजै तब अन्यवैद्यनें बुलायकरि कहे ' हमारै ऐसा रोग उपजा है ' तुम याकूं जाणिकरि प्रतीकार करो । तब अन्यवैद्य रोगीवैद्यका रोगकूं समझि इलाज करे है ॥ गाथा—

एवं जाणंतेण वि । पायच्छित्तविधिमप्पणो सव्वं ॥
कायव्वादपरविसो- । धणाए परसक्खिगा सोधी ॥ ३५ ॥

अर्थ— ऐसैं आपकै संपूर्णप्रायश्चित्तकी विधि जाणताहू साधु आपकी अर परकी शुद्धताकै अर्थि पर जो अन्य आचार्यादिक तिनकी साक्षीतैंही अपने व्रतनिकी शुद्धता करे है ॥ गाथा—

तह्मा पव्वज्जादी । दंसणणाणचरणादिचारो जो ॥
तं सव्वं आळोचे- । हि णिरवसेसं पणिहिदप्पा ॥ ३६ ॥

अर्थ— तातैं सावधानचित्त होयकरिकै अर जो दीक्षा ग्रहण करी ता दिनकूं आदि करिकै अर दर्शन ज्ञान चारित्रमें जो अतीचार लाग्या होय सो संपूर्ण प्रत्येक आलोचना करे ॥ गाथा—

काइयवाइयमाणसि- । यसेवणा दुप्पउंगसंभूदा ॥
जइ अत्थि अदीचारं । तं आळोचेहि णिस्सेसं ॥ ३७ ॥

अर्थ— जो दुष्टप्रयोगतैं उपज्या कायवचनमन इनतैं जो व्रतनिमैं विराधना उपजी होय सो अतीचार है। सो सर्व मनवचनकायकरि उपज्या दोष गुरुनिके समीप आलोचना करै-जणावै-प्रकट करै ॥ गाथा-

अमुगम्मि इदो काळे। देसे अमुगत्थ अमुगभावेण ॥
जं जह णिसेविदं तं। जेण य सह सव्वमाळोचे ॥ ३८ ॥

अर्थ— यातैं जा कालमैं, जा देशमैं, जा भावकरिकै, जाकरि सहित, जिस दोषका सेवन भया होय, सो सर्व आलोचना करै ॥ गाथा-

आळोचणा हु दुविहा। उंघेण य होदि पदविभागी य
उंघेण मूलपत्त-। स्स पयविभागी य इदरस्स ॥ ३९ ॥

अर्थ— आलोचनाहू दोयप्रकार है। एक तो ओघ कहिये सामान्यकरिकै अर दूजी पदविभागी कहिये विशेषकरिकै। तिनमैं जाकै मूलसूंही दीक्षा गई ऐसा मूलप्रायश्चित्तकूं प्राप्त होयगा, ताकै तो सामान्यकरिकैही आलोचना होय है। अर मूलधर्म जाका नहीं बिगड्या ताके पदविभागी आलोचना है ॥ अब दोऊ प्रकारकी आलोचनाका स्वरूप कहे हैं ॥ गाथा-

उंघेणालोचेदि हु। अपरिमिदावराधि सव्वघादी वा ॥

अज्जोपाए इत्थं । सामण्णमहं खु तुच्छोत्ति ॥ ५४० ॥

अर्थ— जा मुनिकै अप्रमाण अपराध लग्या होय वा सर्वरत्नत्रयको घातक अपराध लाग्यो होय, सो ऐसें आलोचना करै– हे भगवन्! आजिथकी मै मुनिपणो इच्छा करूं हूं। मै आजितांई श्रमणपणाकरि तुच्छ हूं–स्वल्प हूं–रहित हूं। अब आजितैं आपके प्रमादतैं नवीन दीक्षाव्रत ग्रहण कर्‍यो चाहूं हूं॥ भावार्थ— जाकै मिथ्यात्वग्रहण भया होय वा मूलगुण बिगडि गया होय, तो संक्षेपथकी सामान्य आलोचना करि गुरुकी आज्ञाप्रमाण प्रायश्चित्त ग्रहण करै॥ अब विशेष आलोचनाकूं कहे हैं॥

पव्वज्जादी सव्वं । कमेण जं जत्थ जेण भावेण ॥
पडिसेविदं तहा तं । आलोचिंतो पदविभागी ॥ ४१ ॥

अर्थ— दीक्षाकूं आदि लेयकरिकै जो सर्व क्षेत्रकालमें जा भावकरिकै जिस अनुक्रमकरिकै जो दोष सेवन कीया होय, सो तैसैंही आलोचना करै, सो पदविभागी आलोचना है॥ अब शल्यका निराकरण करनेमें गुण, अर शल्यसहित रहवेमें दोष दिखावे हैं॥ गाथा–

जह कंटएण विद्धो । सव्वंगे वेदणादुदो होदि ॥
तह्मि दु समुद्धिदे सो । णिस्सल्लो णिव्वुदो होदि ॥ ४२ ॥

एवमणुध्दुददोसो । माइल्लो तेण दुक्खिदो होई ॥
सो चेव वंतदोसो । सुविसुद्धो णिव्वुदो होई ॥ ४३ ॥

अर्थ— जैसें कंटककरि वेध्या हुवा पुरुष सर्व अंगमें वेदनाकरिकै उपद्रुत होय है, दुःखी होय है, अर सो कंटक काढि नाखतां संतां शल्यरहित सुखी होय है । तैसें व्रतसंयमादिकनिका नही दूरि कऱ्या है दोष जानैं ऐसा मायाचारी पुरुषहू ता दोषरूप शल्यकरि दुःखित होय है, सोही पुरुष जो गुरुनिके निकट आलोचना करि दोषनिकूं वमन करै-उगलै, तो विशुद्ध हुवा सुखी होय है ॥ गाथा—

मिच्छादंसणसल्लं । मायासल्लं णिदाणसल्लं च ॥
अहवा सल्लं दुविहं । दव्वे भावे य वोधव्वं ॥ ४४ ॥

अर्थ— शल्य तीनप्रकार है । एक मिथ्यादर्शनशल्य, दूजा मायाचारशल्य, तीजा आगामी वांछारूप निदानशल्य । अथवा द्रव्यशल्य अर भावशल्य दोयप्रकारशल्य है ॥

तिविहं तु भावसल्लं । दंसणणाणं चरित्तजोगे य ॥
सच्चित्ते य अचित्ते । य मिस्सए चावि दव्वह्मि ॥ ४५ ॥

अर्थ— तहां तीनप्रकार भावशल्य है । तिनमें शंकाकांक्षादि दोष लगावना, सो तो दर्शनशल्य है । अर अकालमें तथा विनयरहित श्रुतका अध्ययन करना, सो ज्ञान-

शल्य है। अर समितिगुप्तिमें अनादर करना, सो चारित्रशल्य है॥ अर द्रव्यशल्यहू
तीनप्रकार है। दासीदासादिकनिकी सचित्तद्रव्यशल्य है। सुवर्णादिसंबंधी अचित्तद्रव्य-
शल्य है। ग्रामनगरादिसंबंधी मिश्रद्रव्यशल्य है॥ अब भावशल्यकूं नही दूरि करनेमें
दोष दिखावे हैं॥ गाथा—

एक्कमवि भावसल्लं। अणुद्धरित्ताण जो कुणइ कालं॥
लज्जाए गारवेण य। ण सो हु आराधओ होइ॥ ४६॥

अर्थ— जो साधु लज्जाकरिकै वा गारवकरिकै एकहू भावशल्यकूं दूरी कियेविना
जो मरण करे है, सो मुनि आराधक नही होय है॥ गाथा—

कल्ले परे व परदो। काहं दंसणचरित्तसोधित्ति॥
इय संकप्पमदीया। गयं पि कालं ण याणंति॥ ४७॥

अर्थ— दर्शन तथा चारित्रमें अतीचार लग्या ताकूं कालि आलोचना करि
गुरुनिका दीया प्रायश्चित्त ग्रहण करि शुद्ध करूंगा, तथा परसूं करूंगा, तथा आगले
दिन करूंगा, ऐसें संकल्प करती है बुद्धि जिनकी ते साधु बहोत काल चल्या जाय
है ताकूं नही जाने हैं॥ तातें अतीचार लागे ता कालमें विलंब नही करना, शी-
घ्रही गुरुनिके निकट जाय आलोचना करि दोषके अनुकूल गुरुनिका दीया प्राय-

श्चित्त ग्रहण करि शुध्द करना योग्य है ॥ गाथा-

रागद्दोसाभिहदा । ससल्लमरणं मरंति जे मूढा ॥

ते दुक्खसल्लबहुले । भमंति संसारकंतारे ॥ ४८ ॥

अर्थ— जे रागद्वेषकरिकै पीडित ऐसे मूढ मुनि शल्यकरिकै सहित मरण करे हैं, ते दुःखशल्यका भऱ्या हुवा संसारवनविषैं परिभ्रमण करे हैं ॥ गाथा-

तिविहं पि भावसल्लं । समुध्दरित्ताण जो कुणदि काळं ॥

पव्वज्जादी सव्वं । स होइ आराधओ मरणे ॥ ४९ ॥

अर्थ— जो दीक्षा ग्रहण कीया तादिननैं आदि करिकै जो तीनप्रकारकी भावशल्यकूं काटिकरिकै अर जो मरण करे है, ताकै मरणमें आराधना होय है ॥ गाथा-

जे गारवेहिं रहिदा । णिस्सल्ला दंसणे चरित्ते य ॥

विहरंति मुत्तसंगा । खवेंति ते सव्वदुक्खाणि ॥ ५५० ॥

अर्थ— जे तीन गारवकरि रहित अर तीन शल्यरहित अर परिग्रहमें मूर्छारहित होयकरिकै दर्शन-ज्ञान-चारित्रमें विहार करे हैं-प्रवृत्ति करे हैं, ते संसारके सर्व दुःखनिका क्षय करे हैं ॥ गाथा-

तं एवं जाणंतो । महत्तयं लाभयं सुविहिदाणं ॥

दंसणचरित्तसुध्दो । णिस्सल्लो विहर तं धीर ॥ ५१ ॥

अर्थ— हे मुने ! हे धीर! संयमनीकै ऐसैं महान् लाभ जानते जे तुम, सो दर्शन-ज्ञान-चारित्रकरि शुद्ध शल्यरहित हुवा मार्गमें प्रवर्तन करो ॥ गाथा-

तह्मा सतूलमूलं । अविछ्रूदमविप्पुदं अणुव्विग्गो ॥
णिम्मोहियमणिगूढं । सम्मं आळोचए सव्वं ॥ ५२ ॥

अर्थ— जातैं शल्यसहित मरणमें दोप अर निःशल्यमरणमें सर्वकर्मनिका अभाव करिकै जन्ममरणरहित अनंतसुखकूं प्राप्त होना है, तातैं निरवशेप अर विस्मरणतारहित अर शीघ्रतासहित उद्वेगरहित मूढतारहित संपूर्ण सत्यार्थ आलोचना करो ॥ भावार्थ- आलोचना ऐसैं नही करे जो, कोऊ दोप कहे, कोऊ नहीं कहे, वा भूले नही, विलंब करे नही, परिणाममें उद्वेग करे नही, कोऊ दोप छिपावै नही, मिथ्याभावरहित सत्यार्थ आलोचना करै ॥ गाथा-

जह वाळो जंपंतो । कज्जमकज्जं व उज्जुअं भणइ ।
तह आळोचेदव्वं । मायामोसं च मुत्तूण ॥ ५३ ॥

अर्थ— जैसैं बालक बोलता संता कार्य होहू वा अकार्य होहू सरलही कहत है, तैसैं धर्मात्मा साधूहू मायाचार तथा झूठकूं त्यागिकरिकै गुरुनिकूं सत्यही जणावै ॥

दंसणणाणचारित्ते। कादूणालोचणं सुपरिसुद्धं ॥
णिस्सल्लो कदसुद्धी। कमेण सल्लेहणं कुणसु ॥ ५४ ॥

अर्थ— भो मुने! दर्शनज्ञानचारित्रसंबंधी शुद्ध आलोचना करिकै अर माया-शल्यरहित होयकरिकै करी है भावनिकी शुध्दता जानै ऐसा गुरुनिका कह्या प्रायश्चित्त ग्रहण करिकै अर सूत्रोक्त क्रमकरिकै सल्लेखना करो ॥ गाथा-

तो सो एवं भणिउं। अब्भुज्जदमरणणिच्छिदमदीउ ॥
सव्वंगजादहासो। पीदीए पुलइयसरीरो ॥ ५५ ॥
पाचीणोदीचिमुहो। चेदियहुत्तो व कुणदि एगंते ॥
आलोचणपत्तीयं। काउस्सग्गं अणाबाधे ॥ ५६ ॥

अर्थ— ऐसैं गुरुनिकरि शिक्षित कीया हुवा अर समाधिमरणमें निश्चयरूप है बुद्धि जाकी अर सर्व अंगनिमें उत्पन्न हुवा है हर्ष जाकै अर रोमांचित है शरीर जाका अर पूर्वदिशाकै सन्मुख अथवा उत्तरकै सन्मुख अथवा चैत्य जो जिनप्रतिबिंब ताकै सन्मुख होय एकांतविषैं लोकनिका आवनेजावनेरहित स्थानविषैं आलोचनाके निमित्त कायोत्सर्ग करै ॥ गाथा-

एवं खु वोसरित्ता। देहे वि उवेदि णिम्ममत्तं सो ॥

णिम्ममदा णिस्संगो । णिस्सल्लो जाइ एयत्तं ॥ ५७ ॥

अर्थ— ऐसें आलोचनाके अर्थि एकांतमें पूर्वके सन्मुख वा उत्तरकै सन्मुख वा जिनप्रतिमा जिनमंदिरके सन्मुख होय अर निर्विघ्न आलोचना होनेकूं कायोत्सर्ग करिकै देहसूं ममता त्यागिकरिकै अर निर्ममत्वपणानैं प्राप्त होय पाछै निर्ममत्वपणाकरिकै परिग्रहरहित हुवा संता शल्यरहित एकांतस्थानमें गमन करै ॥ गाथा–

तो एयत्तमुवगदो । सरेदि सवे कदे सगे दोसे ॥
आयरियपादमूले । उप्पाडिस्सामि सल्लत्ति ॥ ५८ ॥

अर्थ— ऐसैं एकांतकूं प्राप्त होय अर एकत्वभावनानैं प्राप्त होय अर सर्व कीये हुये दोष तिनकूं स्मरण करै-चिंतवन करै । सो एकत्वभावनानैं कैसैं प्राप्त होय सो कहे हैं । मै आतमा निरतिचार दर्शनज्ञानचारित्ररूप हौं; यो शरीर मोतैं भिन्न है कृतघ्न है, मेरा उपकारी नाही, क्षुधा तृषा शीत उष्ण रोग व्याधि उपज्याय मेरै दुःख करनेका निमित्त है अर अवश्य विनाशीक है; ऐसैं शरीरका विनाश होनेतैं मेरा कहा विनसैगा? अब याकूं कृश करना योग्य है; अर जो यो शरीर स्वच्छंद सुखिया होय जायगो तो प्रमाद अर काम अर निद्रा अर विषयतृष्णा उपजायकरिकै मेरा नाश करैगा तातैं अब देहसूं ममता त्यागि अर गुरुनिका दीया प्रायश्चित्त ग्रहण करिकै

मेरा रूपको शुद्ध करनेकूं आचार्यनिके चरणनिके निकटभागविषैं शल्यकूं उपाडि मेरा रूपकूं उज्वल करूंगा ॥ गाथा–

इय उजुभावमुवगदो । सव्वे दोसा सरित्तु तिख्खुत्तो ॥
लेसाहिं विसुज्झंतो । उवेदि सल्लं समुद्धरिदुं ॥ ५९ ॥

अर्थ— ऐसें सरलभावकूं प्राप्त हुवा जो क्षपक सो संपूर्णदोषनिकूं तीनवार स्मरण करिकै अर लेश्याकरिकै उज्वल होता संता शल्यनिकूं उखालनेकूं गुरुनिकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा–

आलोयणादिया पुण । होइ पसत्थे य सुद्धभावस्स ॥
पुव्वण्हे अवरण्हे । च सोमतिहिरिख्खवेलाए ॥ ५६० ॥

अर्थ— बहुरि शुद्धभाका धारक जो क्षपक, ताकै पूर्वाण्हकालविषैं तथा अपराण्ह कालविषैं तथा सौम्य तिथि नक्षत्र वेलाविषैं आलोचनादिक होय है ॥ गाथा–

णिप्पत्तकंटइल्लं । विज्जुहदं सुक्करुख्खकडुदड्ढं ॥
सुण्णघररुद्ददेवल- । पत्थररासिट्टियापुंजं ॥ ६१ ॥
तणपत्तकट्ठछारिय । असुचिमसाणं च भग्गपडिदं वा ॥
रुद्दाणं खुद्दाणं । अधिउत्ताणं च ठाणाणि ॥ ६२ ॥

अण्णं च एवमादी । य अप्पसत्थं हवेज्ज जं ठाणं ।
आळोचणं ण पडिच्छदि । तत्थ गणी से अविग्घत्थं ॥ ६३ ॥

अर्थ—आचार्य जो है सो ऐसैं अप्रशस्तस्थानविषैं आलोचनाकूं ग्रहण न करै जहां पत्ररहित वृक्ष होय, तथा कांटेनिका वृक्ष होय, तथा बिजलीकरि हन्या होय, तथा सूका वृक्ष होय, तथा कडुकवृक्ष होय, तथा अग्निकरि दग्ध वृक्ष होय, तथा सूनां गृह होय, तथा रुद्रदेवका स्थान होय, तथा पत्थरनिका ढेर होय, तथा ईंटनिका पुंज होय, तथा तृण, सूका पान, सूका कांठका जहां पुंज होय, तथा भस्मका ढेर होय, तथा अशुचि श्मशान होय, तथा जहां फूटा वांसणा काठी करी ठीकऱ्यांका पुंज होय, तथा जहां रौद्रजननिका स्थान होय वा नीचनिके स्थान होय औरहू इत्यादिक अप्रशस्त स्थान होय, तहां आचार्य आलोचनश्रवण नहीं करै । क्षपककै निर्विघ्नताके अर्थि अशुभ स्थाननिकूं त्यागि शुभस्थानमें आलोचना ग्रहण करै, अब कोनसे स्थानमें आलोचना करै सो कहे हैं ॥ गाथा—

अरहंतसिद्धसागर । पउमसरं खीरपुप्फफलभरियं ॥
उज्जाणभवणतोरण- । पासादं णागजक्खघरं ॥ ६४ ॥
अण्णं च एवमादिं । तु सुप्पसत्थं हवेज्ज जं ठाणं ॥

आलोयणं पडिच्छदि । तत्थ गणी से अविग्घत्थं ॥ ६५ ॥

अर्थ— अरहंतका मंदिर होय वा सिद्धनिका मंदिर होय, अथवा जिन पर्वतादिकनिमैं अरहंतसिद्धनिकी प्रतिमा होय, तथा समुद्रका समीप होय, कमलनिका सरोवरकी समीपता होय, तथा क्षीरवृक्ष होय, पुष्पफलनिकरि संयुक्त ऐसा वृक्षकी निकटता होय, तथा उद्यान जो वन-बागनिके महल होय, तोरणद्वारनिका धारक महल होय, नागकुमारदेवनिका तथा यक्ष देवनिका स्थानक होय, औरहू इत्यादिक सुंदर स्थान होय, तिन स्थानकनिविषैं आचार्य क्षपककै निर्विघ्न आराधना होनेके अर्थि अलोचना ग्रहण करै ॥ सो आचार्य ऐसैं तिष्ठता आलोचना ग्रहण करै, सो कहै हैं ॥ गाथा—

पाचीणोदीचिमुहो । आयदणमुहो व सुहाणिसण्णो दु ॥
आलोचणं पडिच्छदि । एक्को एक्कस्स विहरम्मि ॥ ६६ ॥

अर्थ—आचार्यहू आलोचनाके श्रवणके अवसरमें पूर्वसन्मुख वा उत्तरसन्मुख अथवा जिनमंदिरके सन्मुख सुखतैं तिष्ठता एकाकी एकांतस्थानविषैं एक जो क्षपक ताकी अलोचना श्रवण करै। जातैं सूर्यकीनांई पापतिमिरका अभाव करि क्षपकका शुद्धपरिणामनिका उदय चाहै, तातैं पूर्वसन्मुख अर विदेहक्षेत्रमें तिष्ठते तीर्थ-

करनिका ध्यानके अर्थि उत्तरदिशाके सन्मुख अथवा भावनिकी उत्तर कहिये सर्वोत्कृष्टता ताके अर्थि उत्तरसन्मुख अर अशुभपरिणामनिका अभावके अर्थि जिनमंदिरके सन्मुख अथवा कर्मवैरीके जीतनेकूं जिनमंदिर वा जिनप्रतिमाके सन्मुख होय आलोचना ग्रहण करे है। तथा एकांतमें एक गुरु सुननेवाला अर एक क्षपक कहनेवालाहीकै शुद्ध आलोचना होय। अर तीसरा और होय तो लज्जाकरि अभिमानकरि परिणाम देऊनिका विगडिजाय। तातैं तीसरा नही योग्य है ॥ गाथा--

काढूण य किरियम्मं। पडिलेहण अंजलीकरणसुद्धो ॥
अलोचेदि सुविहिदो। सव्वे दोसे य मोत्तूण ॥ ६७ ॥

अर्थ— सुविहित जो साधु सो पिच्छिकासहित हस्तांजलिकरि शुद्ध होय अर गुरुनिकूं वंदना करिकै अर आलोचनाके आगे कहेंगे जे दश दोष तिनकूं त्यागिकरिकै आलोचना करै ॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषैं आलोचना नामा तेईसमा अधिकार गुणतालीस गाथानिकरि समास कीया ॥ आगै आलोचनाके गुणदोषनिका अवलोकन नामा चोईसमां अधिकार अडसठि गाथासूत्रनिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

आकंपिय अणुमाणिय । जं दिट्ठं वादरं च सुहुमं च ॥
छण्णं सद्दाउलयं । वहुजण अव्वत्त तस्सेवी ॥ ६८ ॥

अर्थ— आकंपित, अनुमानित, दृष्ट, बादर, सूक्ष्म, छन्न, शब्दाकुलित, बहुजन, अव्यक्त, तत्सेवी येते दश आलोचनाके दोष हैं॥ अब आकंपितदोषकूं छ गाथानिकरि कहे हैं॥ गाथा——

भत्तेण व पाणेण व । उवकरणेण किरिकम्मकरणेण ॥
अणुकंपेऊण गणी । करेइ आलोचणं कोई ॥ ६९ ॥

अर्थ—— भोजनकरिकै वा पानकरिकै वा उपकरणकरिकै तथा कृतिकर्म जो वंदना ताकरिकै गणी जो आचार्य ताकै आपमैं अनुकंपा उपजाय कोऊ आलोचना करै, ताकै आकंपित दोष है॥ गाथा——

आलोचिदं असेसं । होहिदि काहिदि अणुग्गहं मेत्ति ॥
इय आलोचंतस्स हु । पढमो आलोचणा दोसो ॥ ५७० ॥

अर्थ— आलोचना करनेवाला कोऊ साधु मनविषैं चिंतवन करै— जो, हमारे उपरि गुरु अनुग्रह करसी तो सर्व आलोचना होसी । ऐसैं चिंतवन करि आलोचना करै, ताकै प्रथम जो आकंपित नामा दोष होय है॥ सो दृष्टांतकरिकै कहे हैं॥ गाथा—

केदूण विसं पुरिसो । पिएज्ज जह कोइ जीवदत्थीउ ॥
मण्णंतो हिदमहिदं । तधिमा सल्लुध्दरणसोधी ॥ ७१ ॥

अर्थ— जैसैं आपके जीवनेका अर्थी कोई पुरुष विषकूं नवा वणायकरिकै विष पीवै तैसैं अज्ञानी जीव अहितकूं हित मानता आपके दोष दूरि करनेकूं मायाचारसहित आलोचना करि दोष दूरि कीया चाहत है ॥ भावार्थ— जीवनेकैतांई विष वणाय भक्षण करेगा सो तो शीघ्र मरैहीगा, तैसैं जो मायाचारादि दोष दूरि करनेके अर्थि कपटसहित जो आलोचना करैगा, सो तो अधिकाधिक दोषनिकरि लिप्तही होयगा, शुध्द नही होयगा ॥ अथवा—

वण्णरसगंधजुत्तं । किंपाकफलं जहा दुहविवागं ॥
पच्छा णिच्छयकडुयं । तधिमा सल्लुध्दरणसोधी ॥ ७२ ॥

अर्थ— जैसैं किंपाकफल वर्ण जो रूप ताकरिकै सुंदर, अर रस जो आस्वाद ताकरिकैहू सुंदर, अर गंधहू सुंदर, परंतु परिपाककालमें महादुःखरूप मरण करनेवाला है— भोगे पश्चात् निश्चयकरि कटुक है । तैसैं आकंपितदोपसाहित आलोचनाका करना है, सोहू बाह्य तो आपकूं वा अन्यकूं प्रकट दीखे जो शल्यका उद्धार करि व्रत शुद्ध कीया, परंतु मायाचारकरि महान् कर्मबंधन करि आत्माकूं संसारमें डबोवे है ॥ अथवा—

किमिरागकंवलस्स व । सोधी जदुरागवत्थसोधी व ॥
अवि सा हवेज्ज किहई । ण इमा सल्लुद्धरणसुद्धी ॥ ७३ ॥

अर्थ—क्रिमिका रंगकरि युक्त जो कंबल अथवा लाखका रंगसंयुक्त रोमका वस्त्र वा रेसमका वस्त्र ताकूं जलादिककरि बहुत धोएहू उज्वल नही होय है। तैसें आकंपित दोषसहित करी हुई आलोचना शल्यका उद्धार करि रत्नत्रयकी शुद्धता नही करे है॥ ऐसें आलोचनाका आकंपित नामा प्रथमदोष वर्णन कीया ॥ अब अनुमानित नामा द्वितीयदोष छ गाथानिकरि वर्णन करे हैं ॥ गाथा—

धीरपुरिसचिण्णाइं। पवददि अदिधम्मिउ व सव्वाइं ॥ धण्णा ते भगवंता। कुव्वंति तवं विकट्टं जे ॥ ७४ ॥ थामापहारपास-। त्थदाए सुहसीळदाए देहेसु ॥ वददि णिहीणो हु अहं। जं ण समत्थो अणसणस्स ॥ ७५ ॥ जाणह य मज्झथामं। अंगाणं दुवलदा अणारोगं ॥ णेव समत्थो य अहं। तवं विकट्टं पि कादुं जे ॥ ७६ ॥ आळोचेमि य सव्वं। जइ मे पच्छा अणुग्गहं कुणह ॥ तुब्भ सिरीए इत्थं। सोधी जह णित्थरिज्झामि ॥ ॥ ७७ ॥ अणुमाणेदूण गुरुं। एवं आळोचणं तदो पच्छा ॥ कुणइ ससल्लं सो से। बिदिउ आळोचणादोसो ॥ ७८ ॥

अर्थ— गुरुनिसूं वीनती करै जणावै, हे भगवन्! या अवसरमें धीरपुरुषनिकरि आचरण कीये ऐसे सकल उत्कृष्ट तप करे हैं, ते अतिधर्मात्मा हैं, ते जगतमें धन्य हैं, ते महिमावान् हैं ॥ अर मै तो हीन हूं, बलका हीनपणातैं अनशनतप करनेमें समर्थ नही, ऐसैं देहमें सुखियापणाका स्वभावकरिकै तथा पार्श्वस्थपणाकरिकै गुरुनिकूं अपनी हीनता जणावै ॥ बहुरि कहै, हमारा बल तथा अंगनिका दुर्बल अर रोगीपणा आप श्रीगुरु जाणे हैं! जाकरिकै मै उत्कृष्ट तप करनेकूं समर्थ नही हूं ॥ आप जो अनुग्रह करसी तो पाछै मैहू सर्व आलोचना करस्यूं। हे भगवन्! मै आपकी कृपारूप लक्ष्मी-करिकै हमारा जैसैं निस्तार होय तैसैं शुद्धता कऱ्यो चाहूं हूं ॥ ऐसैं गुरुनिकूं अनुमान कराय अर पाछै जो शल्यसहित मुनि आलोचना करै, ताकै दूसरा अनुमानित नामा आलोचनामैं दोष आवे है ॥ गाथा—

गुणकारिउँत्ति भुंजइ । जहा सुहत्थी अपच्छमाहारं ॥
पच्छा विवायकडुगं । तधिमा सल्लुध्दरणसोधी ॥ ७९ ॥

अर्थ— जैसैं कोऊ रोगी सुखका अर्थी हुवा संता परिपाकमें अति कडवा ऐसा अपथ्य आहारकूं गुणका करनेवाला मानि भोजन करै, ताके समान या अनुमानित दोषसहित शल्योध्दरण-शुध्दता जाननी। यातैं कर्मबंध ही होय, आत्माकी शुध्दता

नहीं होय ॥ ऐसैं आलोचनाका अनुमानित नामा दूसरा दोष कह्या ॥ अब दृष्ट नामा तीसरा दोष कहे हैं ॥ गाथा–

जं होदि अण्णादिट्ठं । तं आलोचेदि गुरुसयासम्मि ॥
अणादिट्ठं गूहंतो । माइल्लो होदि णायव्वो ॥ ५८० ॥

अर्थ—जो अन्यकरि देख्या दोष होय सो तो गुरुनिके निकट आलोचना करै, अर जो अन्यकरि अदृष्ट होय सो गोप्य करतो साधु मायाचारी होय है, ताकै दृष्ट नामा दोष होय है ॥ गाथा–

दिट्ठं च अदिट्ठं वा । जदि ण कहेइ परमेण विणयेण ॥
आयरियपायमूले । तदिउं आलोचणादोसो ॥ ८१ ॥

अर्थ—जो कोऊकरि देख्या हुवा वा नहीं देख्या हुवा दोष आचार्यनिके चरणनिके निकट परमविनयकरिकै नहीं कहै, सो तीसरा आलोचनाका दोष है ॥ गाथा–

जह वालुयाए अवडो । पूरदि उक्कीरमाणउं चेव ॥
तह कम्मादाणकरी । इमा हु सल्लुद्धरणसोधी ॥ ८२ ॥

अर्थ—जैसैं वालू रेतकी टीवेमें खोद्या जो खाडा सो वालू रेत काढतां काढतां चोगिरदकी वालूकरि खाडा भरिजाय है, तैसैं अन्यकरि अवलोकन कीया दोषकी

शुद्धता करता जो साधु ताकै मायाचारकरिकै कर्मग्रहण करनेवाली शल्योद्धरण शुद्धता होय है ॥ भावार्थ- जो अन्यकरि देख्या गया तातैं आलोचना करी; कोऊ नही देखता नही जाणता तो छिपाय जाता प्रकट नही करता योंही जो महान् मायाचार ताकरिकै अधिक अधिक कर्मकरि आत्माकूं बांधे है ॥ ऐसैं दृष्ट नामा तीसरा आलोचनाका दोष कह्या ॥ अब बादर नामा आलोचनाका चोथा दोषकूं तीन गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा-

बादरमालोचेंतो । जत्तो जत्तो वदादु पडिभग्गो ॥
सुहुमं पच्छादिंतो । जिणवयणपरंमुहो होई ॥ ८३ ॥

अर्थ—जिन जिन दोषनितैं व्रतनितैं नष्ट होजाय-भग्न होजाय, तिन तिन स्थूलदोषनिकूं गुरुनिके निकट आलोचना करै, अर सूक्ष्मदोषनिकूं छिपावै, सो साधु जिनेंद्रका वचनतैं पराङ्मुख होय है, ताकै बादर नामा दोष होय है ॥ गाथा-

सुहुमं च बादरं वा । जइ ण कहेज्ज विणएण सगुरूणं ॥
आलोचणाए दोसो । एसो हु चउत्थओ होई ॥ ८४ ॥

अर्थ—सूक्ष्म दोष होहू वा बादर दोष होहू जो विनयकरि आपके गुरुनिकूं नहीं कहै, ताकै आलोचनाका चतुर्थ दोष होय है ॥ अब याका दृष्टांत कहे हैं-

जह कंसियभिंगारो । अंतो णीलमइलो वहिं चोक्खो ॥
अंतो ससल्लदोसा । तधिमा सल्लुद्धरणसोधी ॥ ८५ ॥

अर्थ—जैसैं कांसीका भृंगार जो झारी सो अंतः कहिये अभ्यंतर तो नील है मलिन है अर बाहिर उज्वल है, तैसैं जो सूक्ष्म दोष छिपायकरि बादर दोष कहै, तींको आत्मा मायाचारकरि मांही तो मलिन है अर बाह्य व्रतादिकनिकी उज्वलता करि जगतकूं वा आचार्यादिकनिकै दिखावनेकूं उज्वल है ॥ ऐसैं शल्यसहित आलोचना करे है, ताकै बादरदोषसहित शल्योद्धरण-शुद्धता जाननी ॥ ऐसैं आलोचनाका बादर नामा चौथा दोष कह्या ॥ अब सूक्ष्म नामा पांचमां दोष च्यारि गाथानि करि जणावे हैं ॥ गाथा—

चंकमणे य ट्ठाणे । णिसेज्ज उव्वट्टणोवकरणे य ॥
उल्लामाससरूखे । य गब्भिणीवालवच्छाए ॥ ८६ ॥
इय जो दोसं लहुगं । सगमालोचेदि गूहदे थूलं ॥
भयमयमायाहिदवो । जिणवयणपरंमुहो होई ॥ ८७ ॥

अर्थ— जो मार्गमें बहुत गमनकरि चित्तमें व्याकुलता भई होय ताकरि ईर्यापथके सोधनेमें कुछ असावधानी भई होय, तथा स्थानमें, आसनमें, शयनमें, पसवाडेनके

उलटपलट करनेमें जो मयूरपींछीतैं प्रमार्जन जो सोधन तामैं सावधानी नहीं रही होय, तथा कोई जलतैं आर्द्र होगया जो शरीर ताका स्पर्शन कीया होय, तथा सचित्तधूलिपरि शयन आसन स्थान कीया होय, तथा गर्भिणीका दीया भोजन लिया होय, तथा बालस्त्रीका दीया भोजन कीया होय, इत्यादिक प्रमादसूं उपजे जे स्वल्पदोष, तिनकूं तो गुरुनिके निकटि जाय आलोचना करै 'जो, यातैं हमारी महिमा होयगी' जो, ऐसे ऐसे सूक्ष्मदोषनिहूकूं आलोचना करे है। अर जो महान् बडे दोष व्रतनिमैं, सम्यक्त्वादिकनिमैं लाग्या होय तिनकूं बहुत बडे प्रायश्चित्तके भयतैं छिपावै, तथा मदकरि छिपावै जो ऐसे दोष कहेंगे तो हमारा उच्चपणा घटि जायगा तथा स्वभावहीकरि मायाचारकरि छिपावै, सो जिनेंद्रका वचनतैं पराङ्मुख होय है ॥ गाथा–

सुहुमं च वादरं वा । जइ ण कहेज्ज विणयेण सगुरूणं ॥
आलोयणाए दोसो । पंचमउ गुरुसयासे से ॥ ८८ ॥

अर्थ— जो भय मद माया छोडिकरिकै अर जो सूक्ष्मदोष अथवा स्थूलदोष गुरुनिकूं निकट होत संतहू आपके गुरुनिकूं विनयसहित नही कहे हैं, ताके सूक्ष्म नामा पांचमो आलोचनाको दोष होय है ॥ अब या दोषका दृष्टांत कहे हैं ॥ गाथा–

रसपीदयं च कडयं । अहवा कवडुक्कडं जहा कडयं ॥

अहवा जदुपूरिदयं । तधिमा सल्लुद्धरणसोधी ॥ ८९ ॥

अर्थ-- जैसैं कोऊ लोहका तथा तामाका कडा कहिये कंकण जाके ऊपरि कोऊ रस लगाय पीत करि दीया, तथा सोनेका मुलमा करि सुवर्णका वारे दिखाया, तथा ऊपरि सोनेका पत्र लगाइ अभ्यंतर तामा दाबि दीया, अथवा जामैं लाख भरि दीई ऐसा कडा मोलकूं नहीं पावेगा, तैसैं समयाचारसहित बडे दोषनिकूं छिपाय सूक्ष्म दोषनिकी आलोचना करनेवालेकै परमार्थ बिगडि जाय है। तातैं मायासहित शल्योद्धरणशुद्धता जाननी ॥ ऐसैं आलोचनाका पांचमां सूक्ष्मदोष कह्या ॥ अब छन्न नामा आलोचनाका छट्ठा दोष छ गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा-

जदि मूलगुणे उत्तर- । गुणे य कस्सइ विराहणा होज्ज ॥
पढमे बिदिए तादिए । चउत्थए पंचमे च वदे ॥ ५९० ॥
को तस्स दिज्जदि तवो । केण उवाएण वा हवदि सुध्दो ॥
इय पच्छण्णं पुच्छदि । पायच्छित्तं करिस्सात्ति ॥ ९१ ॥
इय पच्छण्णं पुच्छिय । साधू जो कुणइ अप्पणो सुध्दिं ॥
तो सो जिणेहिं उत्तो । छट्ठो आळोचणादोसो ॥ ९२ ॥

अर्थ— कोऊ साधूकै दोष लाग्या होय तदि आपके परिणाममें विचार करै, जो,

गुरुनिकूं ऐसैं पूछि प्रायश्चित्त करस्यूं ताकै छन्न नामा दोष होय है ॥ कहा पूछै सो कहे हैं ॥ हे स्वामिन्! कोऊ साधूकै मूलगुणमें दोष लाग्या होय तथा उत्तरगुणनिमें जाकै दोष लाग्या होय, ताकी शुध्दता कैसैं होय? तथा जाकै अहिंसा व्रतमें दोष लाग्या होय, तथा सत्यव्रतमें, तथा अचौर्यव्रतमें, तथा ब्रह्मचर्यव्रतमें, तथा परिग्रहत्यागव्रतमें जो अतीचार लाग्या होय, ताकी शुध्दता कैसैं होय? ताको कोनसा तप दीजिये? कोन उपायकरि ताकी शुध्दता होय? ऐसैं पूछोंगा तिनके बीचि हमारा दोषहू बीचिमैं पूछोंगा अर जो प्रायश्चित्त कहैंगे सो प्रायश्चित्त करूंगा। ऐसैं विचार करि अर प्रच्छन्न गुरुनिकूं पूछिकरिकै जो आपकी शुध्दता करे है, ताकै जिनेंद्र भगवान् छन्न नामा छट्ठा आलोचनाका दोष कह्या है ॥ ताका दृष्टांत कहे हैं–

> धादो हवेज्ज अण्णो। जदि अण्णम्मि जिमिदम्मि संतम्मि ॥
> तो परववदेसकदा। सोधी अण्णं पि सोधिज्ज ॥ ९३ ॥

अर्थ— जो अन्यकूं भोजन करता संता अन्यपुरुष तृप्त होय तो परका नामकरि शुद्धता अन्यकूं शुद्ध करै ॥ भावार्थ— जैसैं भोजन तो अन्यपुरुष करै अर आप तृप्त होजाय तो परका नामकी शुद्धतातैं आप शुद्ध होय! सो या बात होय नही ॥ औरहू दृष्टांत कहे हैं–

तवसंजमम्मि अण्णे- । ण कदे जदि सुग्गदिं लहदि अण्णो ॥
तो परववदेसकदा । सोधी अण्णं पि सोधिज्ज ॥ ९४ ॥

अर्थ— जो तपःसंयम तो अन्य करै अर शुभगति अन्य पावे, तो परका व्यपदेशकरि करी आलोचना अन्यकूं शुद्ध करै। सो कबहूही नहीं होय है ॥ औरके नामतैं अपनी शुद्धता कस्यो चाहै सो कहा करे है? गाथा—

मयतण्हादो उदयं । इच्छइ चंदपरिवेसणा कूरं ॥
सो जो इच्छइ सोधी । अकहंतो अप्पणो दोसे ॥ ९५ ॥

अर्थ— जो गुरुनिकूं आपके दोष तो नहीं कहे अर आपकै शुद्धता चाहे है, सो कहा करे है? मृगतृष्णातैं जल चाहे है, अर चंद्रमाका कुंडालातैं भोजन चाहे है॥ ऐसैं आलोचनाका छन्न नामा छट्ठा दोष वर्णन कीया ॥ अब शब्दाकुलित नामा सातमां दोष तीन गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

पक्खियचाउम्मासिय- । संवच्छरिएसु सोधिकाळेसु ॥
बहुजणसद्दाउळए । कहेदि दोसे जहिच्छाए ॥ ९६ ॥
इय अव्वत्तं जइ सा- । वेंतो दोसे कहेइ सगुरूणं ॥
आळोचणाए दोसो । सत्तमउ से गुरुसयासे ॥ ९७ ॥

अर्थ—जा अवसरमें पक्षका प्रतिक्रमण तथा चातुर्मासिक प्रतिक्रमण तथा एक वर्षसंबंधी सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करिकै अर अपने अपने पक्षका तथा च्यार महीनाका तथा वर्षदिनका लाग्या हुवा दोषकी शुद्धता करनेका कालविषैं संघका सकलमुनीश्वर प्रतिक्रमण करनेकूं गुरुनिके निकट भेले होय प्रतिक्रमणपाठ पढ़ता होइ, ता अवसरमें कोऊ मुनि आपकाहू दोष यथेच्छ आपके गुरुनिकूं जैसैं यथावत् प्रकट नही होय तैसैं श्रवण करावै, ताकै अव्यक्त नामा आलोचनाका सातमा दोष आवे है ॥ भावार्थ—अनेक मुनीश्वरनिका प्रतिक्रमणपाठका शब्द होय रह्या, तामैं कोऊ आपकाहू दोष कहै, ताकै शब्दाकुलित नामा दोष आवे है ॥ गाथा—

अरहट्टघडीसरिसी । अहवा चुंदच्चुदोवमा होई ॥
भिण्णघाडिसरिच्छा वा । इमा हु सल्लुद्धरणसुद्धी ॥ ९८ ॥

अर्थ—जैसैं अरहट्टकी घडी एकतरफ रीती होय अर दूजीतरफ बहुरि भरी जाय है, तथा धईकी मांथणीमें रईकी डोरी एकतरफ खुले है अर दूजी तरफ बंधती जाय है, तथा फूटा घडामैं जैसैं एकतरफ जल भरे है अर दूजीतरफ निकलि जाय है, तैसैं एकतरफ आलोचना करे है अर दूजीतरफ मायाचार करिकै कर्मका बंध करे है, ऐसी या शब्दाकुलितदोषसहित शल्योध्दरणशुध्दता है॥ ऐसैं शब्दाकुलित नामा

आलोचनाका सप्तम दोष कह्या ॥ अब बहुजन नामा दोष पांच गाथानिकरि कहे हैं।

आइरियपायमूले । दु उवगदो वंदिऊण तिविहेण ॥ कोई आलोचेज्ज हु ।
सव्वे दोसे जहापत्ते ॥ ९९ ॥ तो दंसणचरणधा- । रएहिं सुत्तत्थमुव्वहंतेहिं ॥
पवयणकुसलेहिं तवो । जहारिहं तेहिं से दिण्णो ॥ ६०० ॥ णवमंमि
य जं वुत्ते । भणिदं कप्पे तहेव ववहारे ॥ अंगेसु सेसएसु य । पइण्णए
चावि तं दिण्णं ॥ १ ॥ तेसिं असद्दहंतो । आइरियाणं पुणो वि अण्णाणं ॥
जइ पुच्छइ सो आलो- । चणाए दोसो हु अट्ठमओ ॥ २ ॥

अर्थ— कोऊ मुनि आचार्यनिके चरणारविंदनिकूं मन वचन कायकरि वंदना करिकै अर जैसैं आपकै दोष प्राप्त भये, तैसैं सर्व दोषनिनैं आलोचना करै, तादि दर्शनचारित्रके धारक अर सूत्रके अर्थकूं धारण करनेवाले अर प्रायश्चित्तमें प्रवीण ऐसैं आचार्य तिननैं यथायोग्य तप दीया "कैसाक तप दीया? जो नवमां प्रत्याख्यान नामा पूर्वमें कह्या तथा कल्पव्यवहारसूत्रमें कह्या तथा अन्य अंगनिमें तथा प्रकीर्णकमें जो भगवान कह्या, तैसा प्रायश्चित्त शिष्यकूं दीया" तिन प्रायश्चित्त देनेवाले गुरुनिका नहीं श्रद्धान करता अन्य अन्य आचार्यगुरुनिकूं पूछै "जो, इस अपराधका कहा प्रायश्चित्त है?" सो बहुजन नामा आलोचनाका अष्टम दोष है ॥ गाथा—

करनेयोग्य जो समस्त दोष हैं तिन सर्वकूं ये जाने हैं, ऐसैं विचारि आपसारिसा कोऊ सदोष मुनि ताकूं आलोचना करै, सो भगवानका प्रवचनतैं प्रतिकुद्ध कहिये प्रातिकूल ऐसो तत्सेवी नामा आलोचनाका दशमां दोष है ॥ गाथा–

जह कोइ लोहिदकदं । वत्थं धोवेज्ज लोहिदेणेव ॥
ण य तं होदि विसुद्धं । तधिमा सल्लुद्धरणसोधी ॥ ६१० ॥

अर्थ— जैसैं कोऊ पुरुष रुधिरतैं लिप्त जो वस्त्र ताकूं रुधिरहीतैं धोय उज्वल कीया चाहै, सो रुधिरतैं रुधिर उज्वल नही होय, निर्मलजलतैं धोयेही उज्वल होय, तैसैं कोऊ साधु आप दोषनिकरि सहित अन्य सदोप मुनीकूं आलोचना करि आपकै शल्योद्धरणशुद्धता चाहे है, सो कदाचित् शुद्ध नही होयगा, मायाचारादिक दोष तथा सूत्रकी आज्ञा उलंघनादिक महादोषनिकरि लिप्तही होयगा, तातैं वीतरागगुरुनिकी शिक्षा ग्रहण करि निर्दोष आचार्य तिनकूं अपना दोष सरलचित्त होय जनावना योग्य है ॥ गाथा–

पवयणणिण्हवयाणं । जह दुक्कडपावयं करिंताणं ॥
सिद्धिगमणमदिदूरं । तधिमा सल्लुद्धरणसोधी ॥ ११ ॥

अर्थ— जैसैं प्रवचनकूं छिपावनेवाला भगवानकी आज्ञाकूं लोप करनेवाला

दुष्करपाप करनेवाला तिनकै निर्वाणगमन अति दूरि है, तैसैं सदोष मुनीकूं आलोचना करनेवालेकै शल्योद्धरणशुद्धि अति दूरि है ॥ ऐसैं आलोचनाका तत्सेवी नामा दशमा दोष पांचगाथानिकरि कह्या ॥ गाथा–

सो दस वि तदो दोसे । भयमायामोसमाणलज्जाउं ॥
णिज्जूहिय संसुद्धो । करोदि आलोचणं विधिणा ॥ १२ ॥

अर्थ— तातैं क्षपक ये दश दोष तिनकूं त्यागिकरिकै तथा भय मायाचार असत्य अभिमान लज्जा इनकूं त्यागिकरिकै अर दोषरहित शुद्ध हुवा संता विधिकरि आलोचना करै ॥ भावार्थ– दश आलोचनाके दोष कहे, ते तो आत्माकूं मलिन करनेवाले जानि त्यागेही। अर जाकै प्रायश्चित्तका भय होय, तथा दोष कहनेमें लज्जा होय, तथा मायाचारकरि हृदय जाका मलिन होय, तथा असत्यवादी होय, अर अभिमानी होय, ताकै भावशुद्धता होय नही अर द्रव्यशुद्धताहू होय नही अर धर्मानुरागहू नहीं, ताकै रत्नत्रयमें उज्वलता कहांतैं होय? तातैं भय माया असत्य अभिमान लज्जा इत्यादिक औरहू दोष त्यागिकरिकै विधिपूर्वक आलोचना करहू ॥ अब आलोचनाकी विधि कहा सो कहे हैं ॥ गाथा–

णट्टचलवलिदगिहिभा- । सम्मूगडद्दुरसरं च मोत्तूण ॥

आळोचेदि विणीदो । ससमं गुरुणो अहिमुहत्थो ॥ १३ ॥

अर्थ— हस्तका नचावना, तथा भ्रकुटीका विक्षेप करना, तथा शरीरकूं बलसहित वक्र करना, तथा गूंगेकीनांई सैन समस्या हूंहूंकार करना, तथा गृहस्थनिकेसे असँयमरूप वचन बोलना, तथा घर्घरस्वरसे बोलना, तथा दर्दुर जो मींडकेकीनाई उद्धत परके शब्दकूं दाबिकरि बोलना इत्यादिक वचनके दोषनिकूं त्यागिकरिकै अर अंजुली जोडि मस्तक नमाय महाविनयसंयुक्त होय गुरुनिकै सन्मुख होय आलोचना करै। अर अति उतावल नहीं करै, अर अतिविलंबतैं नहीं करै, स्पष्ट आलोचना करै॥ सोही आगै कहे हैं—

पुढविदयागणिपवणे। य वीयपत्ते यणंतकाए य॥ विगतिगचदुपंचेंदिय-। सत्तारंभे यणेयविहे ॥ १४ ॥ पिंडोवधिसेज्जाए। गिहिपत्तणिसेज्जवाकुसे-लिंगे ॥ तेणिक्काइभत्ते। मेहूणपरिग्गहे मोसे ॥ १५ ॥ णाणे दंसणत-वी-। रिये य मणवयणकायजोगेहिं ॥ कदकारिदेऽणुमोदे। आदपरपउ-गकरणे य ॥ १६ ॥ अद्धाणरोहगे जण-। वए य रादो दिवाऽसिवे ऊँमे ॥ दप्पादिसमावण्णे। उद्दरादि कमं अभिंदंतो ॥१७॥ इय पयविभागियाए। व ओधियाए व सल्लमुद्धरिय ॥ सव्वगुणसोधिकंखी। गुरूवएसं समाचरइ ॥

अर्थ— मृत्तिका, पापाण, पर्वतनिकी छणी, वालू, रेत, लवण, अभ्रक इत्या-

दिक अनेक प्रकारकी पृथ्वीका खोदना, कुचरना, वालना, कूटना, फोडना इत्यादिक पृथ्वीकी विराधनामैं कोऊ दोष लाग्या होय। तथा जल, पाला वोसका जल, गडे तथा नदी, तलाव, वर्षादिकनितैं उपज्या जो जल, तिनके पीवनेकरि, तथा स्नानकरि, अवगाहनकरि, तिरणेकरि, मर्दनकरि, हस्तपादादिकनितैं विलोडनकरि, जलकायकी विराधना होय है, इनकी विराधनानिमैं कोऊ दोष लाग्या होय। तथा अग्नि, ज्वाला, प्रदीपक, अंगारा इत्यादिक अग्निकायके जीव, तिनपरि जलका क्षेपना, तथा पाषाण, मांटी, वालू इत्यादिककरि दाबना, तथा काष्ठादिककरि कूटना, वघेरना इत्यादिकनिकरि अग्निकायिक जीवनिकी विराधना होय है, इनकी विराधनामैं कोऊ दोष लाग्या होय। तथा झंझापवन अर मंडलिक जो वभूल्या अर वीझणाका पवन इत्यादिक जो पवन, तिनमैं प्रवृत्तिकरि जो दोष लाग्या होय। तथा वनस्पतीमैं प्रत्येक, साधारण, बीज, फल, पत्र, पुष्पादिकनिका जो छेदन, मर्दन, भंजन, स्पर्शन, भक्षण इत्यादिकनिकरि विराधना होय है, इनकी विराधनामैं कोऊ दोष लाग्या होय। तथा द्वींद्रियादिक त्रसजीवनिका मारण, ताडन, छेदन, बंधन इत्यादिकनिकरि कोऊ दोष लाग्या होय। बहुरि पिंड जो भोजन करनेमैं कोऊ दोष मल अंतरायकरि लाग्या होय। तथा अयोग्य उपकरण ग्रहण करनेकरि दोष लाग्या

होय। तथा सेज्जा जो वसतिका, सो सदोष ग्रहण करी होय। तथा गृहस्थनिके भाजन मांटीके, कांसी, पीतल, ताम्र, सुवर्ण, रूप्यमय तिनमें रागद्वेष होनेकरि तथा पतनादिककरि दोष लाग्या होय। तथा गृहस्थनिकै योग्य पीठ, फलक, चोकी, पाटा, खाट, पर्यंक, सिंहासनादिकनिके बैठने स्पर्शनेकरि दोष लाग्या होय। तथा कुश जो स्नान, उद्धर्तन गात्रप्रक्षालनादिककरि दोष लाग्या होय। तथा कासन विकारादिककरि दोष लाग्या होय। तथा लिंगवि-इच्छाकरि दोष लाग्या होय। तथा परके धनके ग्रहण करनेकी लाग्या होय। तथा रात्रिभोजनमें रागसहित चिंतवनादिककरि दोष लाग्या होय। तथा स्त्रीनिका अवलोकनादिककरि ब्रह्मचर्यका घातादिकरि दोष लाग्या होय। तथा परिग्रहका चिंतवन करनेकरि तथा झूंठवचन बोलनेकरि दोष लाग्या होय। तथा ज्ञानदर्शनतपवीर्यनिविषैं मनवचनकाय–कृतकारितअनुमोदनाकरि दोष लाग्या होय। तथा आपके परके प्रयोगकरि दोष लाग्या होय "जो, इस सम्यग्ज्ञानकरि कहा साध्य है? स्वर्गमोक्षका देनेवाला सम्यक्चारित्रही है, सो चारित्र आचरण करनेयोग्य है, ऐसैं मनकरि ज्ञानकी अवज्ञा करी होय"। तथा सम्यग्ज्ञानकूं मिथ्या कह देना, ऐसैं वचनकरि अवज्ञा करी होय। तथा सम्यग्ज्ञानका कथनमें मुखकी विवर्णताकरि आपकी अरुचिका प्रकाशन तथा मस्तक हलायकरि 'ऐसैं नहीं'

इत्यादिक ज्ञानकी अवज्ञा करी होय तथा अविनयादिक कीया होय। तथा दर्शनमें शंकादिक दोष लगाया होय। तथा तपमें अनादर कीया होय "जो, तप करनेमें कहा है? आत्मविशुद्धताही कल्याणकारी है" तथा वीर्यका छिपावना, परीषह सहनेमें कायरताकरि मनवचनकाय—कृतकारितअनुमोदनाकरि आपहीतें वा शिथिलाचारीनिकी संगतीतें जो दोष लाग्या होय। बहुरि कोऊ देशमें परचक्रके उपद्रवकरि मार्ग रुकि गया होय नीसरनेकूं असमर्थ होय संक्लेशरूप भिक्षाग्रहण करी होय तथा अयोग्यवस्तूका सेवन कीया होय। तथा रात्रीमैं कोऊ अतीचार लाग्या होय। तथा दिवसमें अतीचार लाग्या होय तथा दर्पादिककरि दोष लाग्या होय। तिनि सर्वका अनुक्रमकूं नही उलंघन करता जो क्षपक, सो गुरुनिके समीप विनयसहित प्रकट करै॥

ऐसैं पदविभागिकया कहिये विस्ताररूप आलोचना करिकै तथा ओघिकया कहिये संक्षेप आलोचना करिकै अंतर्गत मायाशल्यकूं उखालिकरिकै अर सर्व दर्शनज्ञानचारित्र तथा मूलगुण उत्तरगुणनिकी शुध्दताका इच्छक जो क्षपक, सो गुरुनिका दीया प्रायाश्चित्त ग्रहण करे है॥ अब आलोचनाके गुण कहे हैं॥ गाथा—

कदपावो वि मणुस्सो। आळोचियणिंदउ गुरुसयासे॥
होदि अचिरेण लहुउ। उरुहियभरोव्व भारवहो॥ १९॥

अर्थ— जैसैं कोऊ बहुतभारका वहनेवाला पुरुष आपके देहथकी भार उतारि शीघ्रही अत्यंत हलका होय है-सुखित होय है-भाररहित होय है, तैसैं पूर्वै कीया है असंयमादिककरि पाप जानैं ऐसा पापका करनेवाला मनुष्यहू गुरुनिके निकट अपने दोष प्रकट करता शीघ्रही पापका भारकरि रहित हलका होय है ॥ अर जो आलोचना करि भाव शुद्ध नही करे है, ताके दोष दिखावे हैं ॥ गाथा-

सुबहुस्सुदा वि संता । जे मूढा सीलसंजमगुणेसु ॥
ण उवेंति भावसुद्धिं । ते दुक्खणिहेळणा होंति ॥ ६२० ॥

अर्थ— जे बहुतशास्त्रनिके पारगामीहू हैं अर शील संयम व्रत मूलगुणादिकनिमैं भावनिकी शुद्धताकूं नही प्राप्त होय हैं, ते मोही मूढ संसारमें नानादुःखनिकरि तिरस्कारकूं प्राप्त होय हैं ॥ अब क्षपककी आलोचना होय चुके, तदि गुरुकूं कहा करना योग्य है सो कहे हैं ॥ गाथा-

आळोयणं सुणित्ता । तिक्खुत्तो भिक्खुणो उवाएण ॥
जदि उज्जगोत्ति णज्जइ । जहाकदं पट्ठवेदव्व ॥ २१ ॥

अर्थ— क्षपककी आलोचना श्रवणकरिकै अर उपायकरि तीनवार पूछिकरिकै जो सरलभावरूप जाणै- जो, आलोचना मायाचाररहित सरलपरिणामनितैं भई जाणि

लेवै, तादि 'जैसैं कीये पापकी विशुद्धता होजाय तैसैं' प्रायश्चित्त देय शुद्धतामैं स्थापन करना योग्य है ॥ भावार्थ— तीनवार पूछनेतैं परिणामनिकी सरलताका तथा वक्रताका निर्णय होजाय है ॥ गाथा—

आदुरसल्ले मोसे । मोले गररायकज्ज तिक्खुत्तो ॥
आळोचणाए वक्काए । उज्जगाए आहरणे ॥ २२ ॥

अर्थ— जैसैं आतुर जो रोगी ताकूं वैद्य तीनवार पूछा करै, 'भो भद्रपरिणामी तुम कहा भोजन कीया? तथा कौन आचरण कीया? तथा तुमारे रोगकी प्रवृत्ति किसरीति है? वेदना कैसैं कैसैं व्यापे है? सो सरलपरिणामतैं सत्य कहो' ऐसैं तीनवार पूछा करि चुकै, तादि ताका रोगकी उत्पत्तीका तथा रोगका इलाज करावनेका परिणाम जानेजाय है ॥ बहुरि शरीरमैं कोऊ शल्य लाग्या होय, ताकूंहू तीनवार पूच्छा करै 'तुमारै शल्य कौन ठोर है? कैसी वेदना दे है? कोण कारणतैं है? सो शल्यकूं तीनवार पूछै संभाले, जदि शल्यका स्थानका निर्णय होजाय, तदि निकासनेका उपाय होय है ॥ बहुरि कोऊ वचनमें सत्य असत्यका निर्णय करना होय, तहांहू अवसर पाय तीनवार पूच्छा होय है ॥ बहुरि वस्तूका मोलहू तीनवार पूछा जाय है ॥ बहुरि विषभक्षण कीया होय, सोहू तीनवार पूछनेयोग्य है ॥

बहुरि राजाकी आज्ञाहू तीनवार पूछिये है 'हे स्वामिन्! जो आप या कार्यके करनेमें ऐसी आज्ञा करी, सो ऐसेंही करना? आपके अवलोकनमें विचारमें आज्ञा अक कैसें हैं?' ऐसें राजका बडा कार्यमें तथा अल्पकार्यमें तीनवार पृच्छा करनेका मार्ग है॥ आलोचनाकी सरलतावक्रतामैंहू ये दृष्टांत तीनवार पूछनेमें हैं॥ गाथा–

पडिसेवणादिचारे। जदि णो जंपदि जधाकमं सव्वे॥
ण किरिंति तउ सुद्धिं। आगमववहारिणो तस्स॥ २३॥

अर्थ—प्रतिसेवा जो द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि व्रतनिमें विराधना करी दोप लाग्या होय, तिन समस्तकूं यथाक्रमकरि नहीं कहे तो आगमव्यवहारी जो प्रायश्चित्तके जाननेवाला आचार्य सो क्षपककै शुद्ध नहीं करै॥ भावार्थ—जो क्षपक यथावत् आलोचना नही करै ताकूं आचार्यहू प्रायश्चित्त देय शुद्ध नही करे है॥ गाथा–

पडिसेवणादिचारे। जदि आजंपदि जहाकमं सव्वे॥
कुव्वंति तउ सोधिं। आगमववहारिणो तस्स॥ २४॥

अर्थ—जो व्रतनिकी विराधनाके सर्व अतीचार यथाक्रम आलोचना करै, तो आगमव्यवहारका जाननेवाला आचार्य क्षपककूं प्रायश्चित्त देय शुद्ध करै॥ गाथा–

सम्मं खवणाळो-। चिदम्मि छेदसुदजाणगो गणी सो॥

तो आगममीमंसं। करेदि सुत्ते य अत्थे य ॥ २५ ॥

अर्थ—क्षपक जो मुनि, सो, जो सम्यक् आलोचना करै, तो प्रायश्चित्तसूत्रका ज्ञाता जो आचार्य, सो सूत्रमें अर्थमें आगममें विचार करै "जो, ऐसा अपराधका ऐसा प्रायश्चित्त देना? सो जैसा परिणामनिकरि जैसा दोष लगाया होय तैसा प्रायश्चित्त देना तथा अब इस मुनीका परिणाम दोषसूं अतिभयभीत है वा मंदभयवान् है?" सोहू विचार करि प्रायश्चित्त ऐसा देवै, जो आगामी कालमें बहुरि दोष लगनेका मार्गमें नहीं ही प्रवर्तन करै अर प्रायश्चित्त लेनाहू ताका सफल है, जो आपका हजार खंडहू होजाय, तोहू फेरि वै दोष नहीं लगावै। अर जाका पैलीही ऐसा अभिप्राय है, "जो, बहुरि दोष लगि जायगा, तो बहुरि प्रायश्चित्त ग्रहण करि ल्यूंगा" ऐसा खोटा अभिप्रायहालाकै कदाचित् शुद्धता नहीं होय है॥ गाथा—

पडिसेवादो हाणी। वड्ढी वा होइ पावकम्मस्स ॥
परिणामेण दु जाद-। स्स तत्थ तिव्वा व मंदा वा ॥ २६ ॥

अर्थ— प्रतिसेवा जो व्रतनिमैं विराधना, तातैं उपज्या जो पापकर्म, ताकी कोऊ मुनिकै तो पश्चात्तापादिकरूप जो परिणाम, ताकरि तीव्रहानि वा मंदहानि विशुद्धताके प्रभावकरि होय है। जो, हाय! बडा अनर्थ है! मैं पापी कहा अनर्थ कीया?

जो ऐसैं व्रतनिकूं मलिन कीये! ऐसैं वारंवार आपकूं निंदता व्रतनिमैं उज्वलताकी इच्छा करता पुरुष पापकर्मकी तीव्र निर्जरा वा मंद निर्जरा परिणामनिके अनुकूल करे है। अर कोऊ साधु व्रतनिमैं दोष लगाय प्रमादी हुवा तिष्ठै है, जो, कहा हमहीनैं दोष लगाया है? प्रायश्चित्त ले लेवेंगे, सबहीकै दोष लागे हैं! वा दोष कीया तामैं किंचित् राग करे है, ताकै मलिनपरिणामनिकरि पापकर्मकी तीव्र वृद्धि वा मंद वृद्धि होय हैं॥ गाथा—

सावज्जसंकिलिट्ठो। गालेइ गुणे णवं च आदियदि॥
पुव्वकदं च दढं सो। दुग्गदिभयवंधणं कुणदि॥ २७॥

अर्थ— कोऊ मुनि दोष उपजायकरिकैहू बहुरि पापकर्मकरि संक्लेशरूप हुवा अपने गुणनिकूं नष्ट करे है अर नवीन कर्मबंध करे है अर पूर्वै कीया कर्मकूं ऐसा दृढ करे है 'जो दुर्गतिमैं भय अर बंधन करे है'॥ गाथा—

पडिसेवित्ता कोई। पच्छत्तावेण डज्झमाणमणो॥
संवेगजणिदकरणो। देसं घाएज्ज सव्वं वा॥ २८॥

अर्थ— कोऊ मुनि संयममें दोष लगायकरिकै अर पश्चात्तापकरि दग्ध हुवा है मन जाका—'जो, हाय! मै पापी बहुत निंद्यकर्म किया! अब संसारमें डूबि जास्यूं!

कोऊ दूजा मेरा सहायी है नही!' ऐसैं संसारपरिभ्रमणका भयरूप है परिणाम जाका, सो पूर्वै कीया दोष, तातैं उपज्या जो पापकर्म, ताका एकदेश घात करे है। अर जो विशुद्धता बधिजाय तो सर्वपापका नाश करे है। अर मध्यमपरिणामनितैं मंद वा तीव्र निर्जरा करे है ॥ गाथा—

तो णच्चा सुत्तविदू। णालियधमउव्व तस्स परिणामं ॥
जावइएण विसुज्झदि। तावदियं देदि जिदकरणो ॥ २९ ॥

अर्थ— जैसैं नालिका धमन जो न्यार्‍या अथवा सुवर्णकार सो जितने तावमें मैल दूरि होय, शुद्ध सुवर्ण न्यारा होजाय, तितना ताप देय सुवर्णकूं शुद्ध करे है, तैसैं सूत्रका जाननेवाला अर जीते हैं इंद्रिय अर मन जानैं ऐसा आचार्यहू क्षपकका तीव्र मंदपरिणामकूं जानिकरि, जितना प्रायश्चित्तकरि परिणाम उज्वल होजाय अर पूर्वकृत कर्म निर्जरी जाय, अर आगानैं फेरि दोष नही लागै ऐसा प्रायश्चित्त देय शुद्ध करे है

आउव्वेदसमत्ती। तिगिंछिदे मदिविसारदो वेज्जो ॥
रोगादंकाभिहदं। जह णिरुजं आदुरं कुणई ॥ ६३० ॥
एवं पवयणसार-। सुयपारउ सो चरित्तसोधीए ॥
पायच्छित्तविदण्हू। कुणइ विसुद्धं तयं खवयं ॥ ३१ ॥

अर्थ— जैसैं जाण्या है समस्त आयुर्वेद कहिये वैद्यविद्या जानै अर चिकित्सामें शुद्धिकरिकै निपुण ऐसा वैद्य सो रोगकी पीडाकरिकै घात्या जो रोगी ताकूं रोगरहित करै है, तैसैं प्रवचनमें सार जो श्रुतका पारगामी अर प्रायश्चित्तसूत्रका ज्ञाता जो आचार्य, सो चारित्रकी शुद्धताकरिकै तिस क्षपककूं शुद्ध करै है ॥ गाथा—

एदारिसम्मि थेरे । असदि गणत्थे तहा य उवज्झाए ॥
होदि पवत्ती थेरो । गणधरवसहो य होइ जदणाए ॥ ३२ ॥
सो कदसामाचारी । सोइज्झं कदट्ठुं विधिणा गुरुसयासे ॥
विहरदि सुविसुद्धप्पा । अब्भुज्जदचरणगुणकंखी ॥ ३३ ॥

अर्थ— यते गुणनिका धारक आचार्य संघमें नहीं होय तथा उपाध्याय नहीं होय, तो स्थविर जो बहुतकालका दीक्षित मुनि तथा गणधरवृषभ कहिये नवीन आचार्य यत्नकरिकै प्रवर्तन करनेवाला होय है ॥ अर कीया है सामाचार कहिये मुनिनिका सम्यक् आचार जानैं ऐसा अर विशुद्ध है आत्मा जाका अर उदयरूप चारित्रगुणका इच्छक ऐसा क्षपक है सो आपकी शुद्धता करनेकूं गुरुनिके निकट विधिपूर्वक प्रवर्तन करै ॥ गाथा—

एवं वासारत्ते । फासेदूण विविधं तवोकम्मं ॥

संथारं पडिवज्जादि । हेमंते सुहविहारम्मि ॥ ३४ ॥

अर्थ-- ऐसें वर्षाऋतुतिषैं नानाप्रकार तपकरिकै अर सुखरूप है प्रवृत्ति जामैं ऐसा शीतकालमें संन्यासके अर्थि संस्तर जो वसतिका ताहि ग्रहण करै ॥ भावार्थ- अचानक मरण जिनकै आवै, तिनकै तो आगे कहेंगे जे अविचारभक्तप्रत्याख्यान तथा इंगिनीमरण तथा प्रायोपगमन मरण होय हैं, अर जो असाध्य जरा रोगादिक तथा इंद्रियनिकी शिथिलता तथा जंघाका बलकी हीनता तथा नेत्रनिकी मंदता तथा आहारपानकी दुर्लभता इत्यादिक कारणनिकरि जो सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरण करै, सो शीत ऋतुमें संस्तर ग्रहण करै। जातैं, शीत ऋतुमें अनशनादिक तप सुखसाध्य होय है ॥ गाथा-

सव्वपरियाइयस्स य । पडिक्कमित्तु गुरुणो णिउंगेण ॥
सव्वं समारुहित्ता । गुणसंभारं य विहरिज्ज ॥ ३५ ॥

अर्थ--- सकलपर्यायमें जो ज्ञानदर्शनचारित्रमें अतीचार लाग्या होय, तिननैं गुरुनिका नियोगकरि दूरि करिकै सकलगुणनिका समूहकूं अंगीकार करि प्रवृत्ति करै॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यान नामा मरणके चालीस अधिकारनिविषैं आलोचनाका गुणदोष नामा चोईसमां अधिकार अडसठि गाथानिकरि समाप्त कीया ॥ अब आगे

शय्या नामा पचीसमां अधिकार सात गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

गंधव्वणट्टजट्टा । सचक्कजंतग्गिकम्मफरुसे य ॥
णत्तियरजयापाडहि । य डोंवणडरायमग्गे य ॥ ३६ ॥
चारणकोट्टयकल्ला- । लकरकचे पुप्फोदयसमीवे य ॥
एवंविधवसधीए । होज्ज समाधीएवाघादो ॥ ३७ ॥

अर्थ—ऐसी वसतिका अंगीकार करनेयोग्य नही है। जहां गंधर्व जे गान करनेवालेनका स्थान होय तथा नृत्य करनेवालेनिका समीप होय तथा जहा हस्ती बंधते होय तथा अश्वशाला जहां घोडे बंधते होय तथा जहां तैलके घाणे चलते होय तथा कुंभकारका गृह होय तथा जंत्र जे अन्य घाणा तथा अग्निके कर्म तथा ओर कठोर कर्म जहां प्रवर्तता होय तथा धोबीनके स्थान होय तथा वादित्र वजावनेवालेनिका तथा डूंबनिका तथा नटनिका स्थान होय तथा राजमार्गके समीप होय तथा चारण कोट्टक कलाल जो मदिरा करनेवाला तथा करोतनितैं काठ विदारते खातीनके समीप तथा पुष्पवाडी तथा तलाव बावडी जलके निवाणके समीप जे वसतिका होय, तिनमें वसनेतैं क्षपकका शुभध्यान बिगाडि जाय है, तातैं ऐसी वसतिका नही योग्य ॥ तो कैसी वसतिकामैं कैसैं तिष्ठै सो कहे हैं ॥ गाथा—

पंचिंदियप्पयारो । मणसंखोभकरो जहिं णत्थि ॥
चिट्ठदि तहिं तिगुत्तो । झाणेण सुहप्पवत्तेण ॥ ३८ ॥

अर्थ— जा वसतिकामैं मनकै क्षोभ करनेवाला पांचूं इंद्रियनिका विषयनिमैं प्रचार नही होय, ता वसतिकामैं मनवचनकायकी गुप्तिरूप हुवा सुखतैं प्रवर्त्या जो धर्मध्यान शुक्लध्यान ताकरि सहित तिष्ठै ॥ गाथा—

उग्गमउप्पादणए- । सणाविसुद्धाए अकिरियाए दु ॥
वसइ असंसत्ताए । णिप्पाहुडियाए सेज्जाए ॥ ३९ ॥

अर्थ— आपके निमित्त नही बनाई होय अर आप कहिकरि याचनादिककरि नही उत्पादन करी होय, वसतिकाके छियालीस दोष पूर्वैं कही आये तिनकरि रहित होय, लीपना बुवारना सुपेद करना धोवना द्वार खोलना उघाडना इत्यादिक दोषनिकरि रहित होय, बहुरि आगंतुक अर वासत्व्य जीवनिकरि रहित होय, जामैं जीवनिके बिल तथा घुसाला छत्ता इत्यादिक नही होय, तथा आगंतुक कीडा कीडे सर्पादिक जीवनिकी बाधारहित होय, बहुरि जामैं प्रतिलेखनकरि सोधनेमें कठिनता नही होय ॥ बहुरि कैसी होय सो कहे हैं—

सुहणिक्खवणपवेसण- । घणा उ अवियड अणंधयारा उ ॥

दो तिण्णि वि वसधीउ । घित्तवाउ विसालाउ ॥ ६४० ॥
घणकुड्डे सकवाडे । गामबहिं बालवुड्ढगणजोगे ॥
उज्जाणघरे गिरिकं । दरे गुहाए व सुण्णघरे ॥ ४१ ॥
आगंतुघरादीसु वि- । कडएहिं य चिलिणिलीहि कायव्वो ॥
खवयस्सुच्छाकारो । धम्मसवणमंडवादी य ॥ ४२ ॥

अर्थ— सुखकरि है निकलना प्रवेश करना जामैं, अर घना कहिये दृढ होय, अर जाका द्वार ढक्या होय, अर जामैं अंधकार नही होय, अर विस्तीर्ण होय ऐसी दोय तीन वसतिका ग्रहण करनेयोग्य है ॥ बहुरि जाकी दृढ भिंती होय, बहुरि कपाटसहित होय, बहुरि ग्रामके बाह्य होय, बहुरि बाल वृद्ध मुनिनिके निकलने प्रवेश करनेयोग्य होय तथा उद्यान जो बाग ताके महल मकान होय, वा पर्वतनकी गुफा होय, तथा सुनां गृह होय, जाकूं छांडि रहनेवाले निकसि गये होय, तथा आवनेजावनेवालोंके रहनेके निमित्त होय, सो वसतिका ग्रहण करनेयोग्य है। तथा ऐसी वसतिकाको लाभ नही होय तो क्षपककै स्थिति रहनेके निमित्त तृणादिककरिकै धर्मश्रवणमंडपादिक करने योग्य है—

भावार्थ— जा वसतिकामैं ऊंचे नीचे पत्थर पडे तिनकरि मार्ग विषम होय, तथा खाडे पाषाण वृंत कंटकनिकरि जाका मार्ग विषम होय, तामैं क्षपकका तथा अन्य

मुनिनिका निकसना प्रवेश करना बाधाकारी होय तथा संयम बिगडि जाय, तातैं जामैं निकसने प्रवेश करनेमें क्षपककै वा वैयावृत्य करनेवालेनिकै तथा औरहू सूक्ष्म-बादरजीवनिकै बाधा नही होय ऐसी होय। बहुरि जिनकै दृढपणा भूमीमें वा भींतीमें नही तिस वसतिकामैं जीवनिकै बाधा उपजै तथा वसनेवालेनिकै बाधा निपजै, तातैं दृढ चाहिये। बहुरि जाका द्वार उघड्या होय तो शीत पवनादिकका प्रवेशकरि हाड-चाममात्र है शरीर जाका ऐसा क्षपककै दुःसह दुःख होय अर शरीरका मलका त्यागहू गुप्तस्थानबिना कैसा किया जाय? अर मिथ्यादृष्टि मार्गमें गमन करतेहू नजीक आय जाय वा अयोग्य असंयमरूप वार्ता करनेलगि जाय, तातैं जाका द्वार ढक्या होय ऐसीही वसतिका श्रेष्ठ है। बहुरि उद्योतविना क्षपकका संस्तर तथा उपकरणका शोधन नहीं होय अर [illegible] [illegible] सुचाणनामैं जीवदया नहीं बनै तथा वैयावृत्त्य करनेवालेनिकै क्रिया नहीं बनै, तातैं अंधकाररहितही वसतिका श्रेष्ठ है। बहुरि सर्व मुनीनिकै तथा धर्मात्मा श्रावकनिकै वंदनायोग्य होय, तातैं विस्तीर्ण होय। ऐसैंही औरहू वसतिकाके पूर्वोक्त विशेषणनिकरि योग्य वसतिका ग्रहण करै॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानवर्णनके चालीस अधिकारनिमें शय्या नामा पचीसमां अधिकार सात गाथानिकरि समाप्त कीया॥ आगैं संस्तर नामा छब्बीसमां अधिकार

सात गाथानिकरि कहे हैं॥ गाथा-

पुढवी सिलामई वा। फळयमई तणमई य संथारो ॥
होदि समाधिणिमित्तं। उत्तरसिर अहव पुव्वसिरो ॥ ४३ ॥

अर्थ— शुद्ध पृथ्वी, तथा पाषाणकी शिलारूप, तथा काष्ठका फलकमय, तथा तृणमय ऐसैं समाधिमरणके निमित्त पूर्वदिशामैं मस्तक होय तथा उत्तरदिशामैं मस्तक होय तैसैं च्यारिप्रकारके संस्तर कहे सो ग्रहण करे हैं॥ भावार्थ— शुद्धभूमिऊपरि तथा शिला ऊपरि तथा काष्ठकी फडी तथा तृण इन ऊपरि पूर्वदिशामैं वा उत्तरदिशामैं मस्तक करि संस्तर करै, इनि च्यारिसिवाय और संस्तर साधूकै उचित नही॥ अब भूमिसंस्तर कैसाक होय सो कहे हैं॥ गाथा-

अघसे समे असुसिरे। अतिसुइ अविले य अप्पपाणे य ॥
असणिद्धे घणगुत्ते। उज्जोए भूमिसंथारो ॥ ४४ ॥

अर्थ— जो भूमि अवर्ष होय-जामैं सोवनेतैं खांडा नही पडिजाय, बहुरि नीची ऊंची बाधाकारक नही होय-सम होय, अर असुषिर कहिये छिद्ररहित होय, तथा अतिशुचि होय, तथा बिलादिकरहित होय, तथा निर्जंतु होय, तथा सचिक्कणतारहित होय, तथा दृढ होय, गुप्त होय, तथा उद्योतरूप होय-अंध-

काररूप होय तो संयम नही पलै, ऐसा भूमिमय संस्तर होय ॥ भावार्थ- केवल भूमिरूपही शय्या होय, भूमिऊपरि अन्य बिछावना उगैरे नही होय ॥ आगै शिलामय संस्तर कहे हैं ॥ गाथा-

विद्धत्थो य अफुडिदो । णिक्कंपो सव्वदो असंसत्तो ॥

समपुट्ठो उज्जोवे । सिलामई होइ संथारो ॥ ४५ ॥

अर्थ— जो शिला अग्निदाहकरि तथा टांचीनिकरि तथा घर्षणादिकरि विध्वस्त होय, मर्दित होय, तथा फूटी नही होय, तथा निष्कंप होय डगडगावै नही, तथा सर्व तरफतैं जीवरहित होय, तथा जाका पृष्ठ कहिये उपरला भाग सम होय—उंचानीचा नही होय, तथा उद्योतमय होय, ऐसा शिलामय संस्तर होय है ॥ अब फलकमय संस्तरकूं कहे हैं ॥ गाथा-

भूमिसमरुंदलहुउ । अकुक्कुचोऽकंप अप्पमाणो य ॥

अच्छिद्दो य अफुडिदो । लण्हो वि य फलयसंथारो ॥ ४६ ॥

अर्थ—भूमीमैं लग्या होय-भूमीसूं उंचा नही होय, चोडा विस्तीर्ण होय, लघु होय, वक्रतारहित सरल होय, निष्कंप होय—डगडगावै नही, आपका शरीरप्रमाण होय, छिद्ररहित होय, फांटरहित होय, कोमल होय, ऐसा काष्ठका फलकमय संस्तर होय है ॥

अब तृणमय संस्तरकूं कहे हैं ॥ गाथा–

णिस्सधी य अपोल्लो । णिरुवहदो समधिआसि णिज्जंतू ॥
सुहपडिलेहो मउउं । तणसंथारो हवे चरिमो ॥ ४७ ॥

अर्थ—संधिरहित होय, छिद्ररहित होय, जाका चूर्ण नही होय ऐसा निरुपहत होय, कोमल जाका स्पर्श होय, तथा जंतुरहित होय, सुखकरि सोधनेमें आवै ऐसा होय, तथा कोमल होय, ऐसा अंत्यका तृणमय संस्तर होय है ॥ गाथा–

जुत्तो पमाणरइउं । उभयकालपडिलेहणासुद्धो ॥
विधिविहिदो संथारो । आरोहवो तिगुत्तेण ॥ ४८ ॥

अर्थ— योग्य होय, तथा प्रमाणसमन्वित होय– अनि अल्प नही होय अति महान् नही होय, अर प्रातःकालमें अर सूर्यका अस्तकालमें प्रतिलेखनकरि सोधनेमें आजाय ऐसा होय, अर शास्त्रोक्तविधिकरि रच्या होय ऐसा संस्तरविषैं मनवचनकायकी गुप्तिकरि सहित आरोहण करै ॥ गाथा–

णिसिदित्ता अप्पाणं । सव्वगुणसमण्णिदम्मि णिज्जवए ॥
संथारम्मि णिसण्णो । विहरहि सल्लेहउं विहिणा ॥ ४९ ॥

अर्थ— सकलगुणनिकरि सहित जो निर्यापकाचार्य तिनके शरणविषैं आत्माकूं

स्थापन करिकै अर सल्लेखना करनेमें उद्यमी जो क्षपक सो संस्तरमें तिष्ठता विधिकरिकै शरीरसल्लेखना अर कषायसल्लेखना तिनमैं प्रवृत्ति करै ॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिमैं संस्तर नामा छव्वीसमां अधिकार सात गाथानिकरि समाप्त कीया ॥ अब निर्यापक नामा सत्ताईसमां अधिकार बीयालीस गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

पियधम्मा दढधम्मा । संविग्गावज्जभीरुणो धीरा ॥
छंदण्हू पच्चइया । पच्चक्खाणम्मि य विदण्हू ॥ ६५० ॥
कप्पाकप्पे कुसला । समाधिकरणुज्जुदा सुदरहस्सा ॥
गीदत्था भयवंतो । अडदालीसं तु णिज्जवया ॥ ५१ ॥

अर्थ— क्षपककी वैयावृत्त्य करनेमें उद्यमी जे निर्यापक तिनके गुण कहे हैं ॥ जिनकूं धर्म प्रिय होय, जातें सम्यक्चारित्र है सो धर्म है, जिनकूं धर्मही प्रिय नहीं होयगा सो क्षपककी धर्ममें दृढ रुचि कैसें करावे? । बहुरि दृढधर्मा कहिये धर्ममें स्थिर होय, जे चारित्रमें दृढ नहीं होय, ते क्षपकका संयम बिगाड दे । जिनका परिणाम पंचपरिवर्तनरूप संसारका चिंतवनकरि संसारपरिभ्रमणतैं भयवान् होय । बहुरि परीषहके सहनेमें समर्थ तातैं धीर होय, जातें परीषह सहनेमें असमर्थ होय,

ते संयमका निर्वाह करनेमें समर्थ नही होय हैं। बहुरि क्षपकके कहेविनाही अंगकी चेष्टाकरि ताका अभिप्रायकूं जाननेमें समर्थ होय। बहुरि जे प्रतीतिके होय, देवनिकृत उपसर्गादिकनितैंभी जिनका परिणाम चलायमान नही होय। बहुरि प्रत्याख्यान जो त्यागका मार्ग, ताका क्रमनैं जाननेवाला होय। बहुरि इस देशमें इस कालमें या योग्य है वा अयोग्य है ऐसैं भोजन पान गमन आगमन इत्यादिकनिमैं योग्य अयोग्यके जाननेवाले होय। बहुरि क्षपकके चित्तकी समाधानी करनेमें उद्यमी होय। बहुरि श्रवण कीये हैं प्रायश्चित्तग्रंथ जिननैं ऐसे होय। बहुरि अनेकांतरूप जिनेंद्रका आगम गुरुनिके प्रसादतैं आच्छीतरह अनुभव करि आत्मतत्वपरतत्वके जाननेवाले होय। बहुरि आपका अर परका उद्धार करनेमें समर्थ होय। ऐसे अडतालीस मुनि निर्यापकगुणके धारक क्षपकके उपकारमें सावधान होय हैं॥ अब अडतालीसमुनि कैसैं कैसैं उपकार करै, सो कहे हैं॥ गाथा–

आमस्सणपरिमस्सण- । चंकमणसयणणिसीदणे ठाणे ॥
उव्वट्टणपरियट्टण- । पसारणाउंट्टणादीसु ॥ ५२ ॥
संजदकमेण खवय- । स्स देहकिरियासु णिच्चमाउत्ता ॥
चतुरो समाधिकामा । उलग्गंता पडिचरंति ॥ ५३ ॥

अर्थ—शरीरका एकदेशका स्पर्शन, ताहि आमर्शन कहिये। बहुरि समस्तशरीरका हस्तकरिकै स्पर्शन, सो परिमर्शन कहिये। ऐठी ऊंठी गमन, ताहि चंक्रमण कहिये। बहुरि शयन कहिये सोवना। अर निषद्या कहिये बैठना। अर स्थान कहिये खडा रहना। अर उद्वर्तन कहिये कलेटे लेनां। परिवर्तन कहिये पलटना। अर प्रमारण कहिये हस्तपादादिकका पसारना। अर आकुंचन कहिये समेटना। इत्यादिक क्षपकका देहकी क्रिया, तिनविषैं 'जैसें संयम नही विनसै तैसैं' संयमका क्रमकरिकै नित्यही उद्यमयुक्त अर क्षपककै समाधान करनेके इच्छक ऐसे च्यार मुनि उपासना जो सेवा ताहि करता प्रतिचारक कहिये टहल करनेवाले होय हैं॥ भावार्थ— अठतालीस निर्यापक कहे, तिनिमैं च्यारि मुनि तौ भक्तिसहित विनयसहित क्षपकका देहकी सेवा तामैं निरंतर सावधान रहे हैं। स्पर्शन करे हैं, दाबे हैं, उठावना बैठावना खडा करना हस्तपादादिक समेटना प्रसारना इत्यादिक अनेक देहकी सेवा तामैं 'संयम नही बिगडे तैसैं' सावधान रहे हैं॥ गाथा—

भत्तित्थरायजणवद-। कंदप्पत्थणडणट्ठियकहाउ॥
वज्जित्ता विकहाउं। अज्झप्पविराधणकरीउं॥ ५४॥
अखलिदममिडिदमव्वा- इद्धमणुच्चमविलंविदममंदं॥

कतमामिच्छामेलिद- । मणत्थहीणं अपुणरुत्तं ॥ ५५ ॥
णिद्धं महुरं हिदयं- । गमं च पल्हादणिज्जपत्थं च ॥
चत्तारि जणा धम्मं । कहंति णिच्चं विचित्तकहा ॥ ५६ ॥

अर्थ— बहुरि च्यारि मुनि धर्मकथा कहनेके अधिकारमें प्रवर्ते हैं ॥ कैसैं प्रवर्ते सो कहे हैं ॥ भोजनकथा, तथा स्त्रीकथा, तथा राजकथा, तथा देशकथा, तथा रागकी उत्कटतातें हास्यतें मिल्या जो अप्रशस्त वचनका प्रयोग सो कंदर्पकथा, तथा धनोपार्जन करनेसंबंधी अर्थकथा, तथा नटनिकी कथा, तथा नर्तकीनिकी कथा इत्यादिक ऐसे ये अध्यात्म जो आत्मानुभवन ताकै विराधना करनेवाली विकथा हैं तिनकूं त्यागकरिकैं, अर धीर वीर च्यारि मुनि क्षपककूं नानाप्रकार कथा कहै ॥ सो कैसैं कहे हैं- जो कहै सो अस्खलित कहे, 'अशुद्धशब्दका उच्चारण सो शब्दस्खलन है अर विपरीत अर्थका निरूपण सो अर्थस्खलन है' सो जो कथा कहै, सो शब्द अर्थकी विपरीततारहित कहै। बहुरि जो कहै सो दोय तीनवार नहीं कहै। बहुरि प्रत्यक्ष अनुमानादिककरि जामें बाधा नहीं आवे तैसैं कहै। अर अतिउच्चस्वरकरि नहीं कहै। अतिविलंब करताहू नहीं कहै। अर अतिमंदहू नहीं कहै। कर्णनिकूं मनोहर जैसैं होय तैसैं कहै। मिथ्यात्वका मिलापरहित कहै। अर अर्थरहित नहीं कहै,

अर्थ लीया होय सो कहै। अर अपुनरुक्त कहै कह्या हुवाकूंही वारंवार नही कहै। अर स्नेहरूप कहै अर मिष्ट कहै। अर हृदयमें प्रवेश करिजाय ऐसा कहै। सुख देनेवाला होय सो कहै। अर परिपाककालमैं पथ्य होय ऐसा कहै। ऐसैं नित्यही धर्मरूप नानाप्रकार कथा कहै॥ कैसी कथा कहै सो कहे हैं॥ गाथा—

खवयस्स कहेदव्वा। दु सा कहा जं सुणित्तु सो खवउं॥
जहिय विसुत्तियभावं। गच्छादि संवेगणिव्वेगं॥ ५७॥

अर्थ—क्षपककूं सो कथा कहनेयोग्य है, जिस कथाकूं श्रवण करिकै अशुभपरिणामनिकूं त्यागकरिकै संसारतैं भयकूं प्राप्त होय अर देहभोगनितैं वैराग्यकूं प्राप्त होय॥ गाथा—

अक्खेवणी य संवे-। गणी य णिव्वेयणी य खवयस्स॥
या उग्गा होंति कहा। ण कहा विक्खेवणी जोग्गा॥ ५९॥

अर्थ—आक्षेपिणी कथा, संवेजनी कथा, निर्वेदिनी कथा ये तीन कथा क्षपकके श्रवणयोग्य हैं। अर विक्षेपिणी कथा समाधिमरणके अवसरमें श्रवण करनेयोग्य नही है॥ अब इन च्यारि कथानिका स्वरूप कहे हैं॥ गाथा—

अक्खेविणी कहा सा। विज्जाचरण उवदिस्सदे जत्थ॥
ससमयपरसमयगदा। कहा दु विक्खेविणी णाम॥ ५९॥

संवेयणी पुण कहा। णाणचरित्ततववीरियइड्ढिगदा ॥
णिव्वेयणी पुण कहा। सरीरभोगे भउव्वेए ॥ ६० ॥

अर्थ— जामैं मतिज्ञानादिकनिका तथा सामायिकादिक चारित्रका स्वरूप वर्णन कीया होय सो आक्षेपिणी कथा है ॥ १ ॥ अर जामैं स्वमतपरमतका आश्रय करि वस्तूका निर्णय कीया सो विक्षेपिणी कथा है ॥ सर्वथा नित्यही वस्तु है, सर्वथा क्षणिकही है, एकही है, तथा अनेकही है, अथवा सत्ही है वा असत् ही है, तथा विज्ञानमात्रही है वा शून्यही है, इत्यादिक परसमयकूं पूर्वपक्षकरिकै अर प्रत्यक्ष अनुमान अर आगम इनिकरि सर्वथैकांतपक्षमें दोष दिखायकरिकै 'कथंचिन्नित्य, कथंचिदानित्य, कथंचिदेक, कथंचिदनेक, कथंचित्सत्, कथंचिदसत्' इत्यादिक अनेकांतरूप स्वसमयकी प्ररूपणा जामैं होय सो विक्षेपिणी कथा है ॥ २ ॥ ज्ञान चारित्र तप वीर्य भावना इनिकरि उपजी शक्तीकी संपदा ताका निरूपण जामैं होय, सो संवेजनी कथा है ॥ ३ ॥ बहुरि संसार शरीर अर भोग इनमैं विरक्तता करावनेवाली निर्वेदिनी कथा है ॥ संसारपरिभ्रमणरूप तामैं जन्मना अर मरना ऐसैं त्रसस्थावरयोनीमैं जन्ममरण करतैं अनंतानंतकाल व्यतीत भये। अर शरीर महा अशुचि, रसादिकसप्तधातुमय मलमूत्रादिकका भऱ्या हुवा, माताका रुधिर पिताका वीर्यतैं उपज्या, महादुर्गंध अशुचि आहारकरि

वर्धित हुवा, अशुचिस्थानतैं निकल्या, महामलिन, क्षुधातृषादिकमहाव्याधिसंयुक्त, रोगनका स्थान, पोषतां पोषतां नष्ट होजाय, महाकृतघ्न ऐसा शरीर ज्ञानीनिकै राग करनेयोग्य नहीं। अर भोगतृष्णाके वंधावनहारे, दुर्गतिकूं प्राप्त करनेवाले, अतृप्तिताके कारण, महादुःखरूप इनमें राग करना नरकतिर्यंचमें परिभ्रमणका कारणतातैं आत्महितके इच्छकनिकूं भोगनिका त्याग करि परमवीतरागताकूं प्राप्त होना श्रेष्ठ है॥ ऐसें संसारदेहभोगनिका सत्यार्थस्वरूप दिखाय आत्माकूं परमवीतरागरूप करनेवाली निर्वेदिनी कथा है॥ ४॥ तातैं समाधिमरणके अवसरमें विक्षेपिणी कथाविना तीन कथा करै॥ अर जो विक्षेपिणी कथा करै, तौ कहा दोष आवै, सो कहे हैं॥ गाथा—

विक्खेवणी अणुरत्त-। स्स आउगं जदि हवेज्ज पक्खीणं॥
होज्ज असमाधिमरणं। अप्पागमियस्स खवयस्स॥ ६१॥

अर्थ—जो विक्षेपिणी कथामें अनुरागी क्षपकका आयु पूर्ण होजाय, तो अल्प आगमका धारक जो क्षपक, ताकै असावधानताकरि समाधिमरण बिगाडि असमाधिमरण होय है॥ अब कोऊ या जानैगा, जो, अल्पश्रुतज्ञानका धारककूं तो विक्षेपिणी कथा योग्य नहीं, परंतु बहुश्रुतके धारककूं तो योग्य होयगी॥ तातैं कहे हैं—बहुश्रुत आगमके जाननेवालेकूंभी मरणका अवसरमें विक्षेपिणी कथा अयोग्य है॥

आगममाहप्पगदो । वि कहा विक्खेवणी अपाउग्गा ॥
अब्भुज्जदम्मि मरणे । तस्स वि एदं अणायदणं ॥ ६२ ॥

अर्थ— आगमके माहात्म्यकूं प्राप्त हुवा ऐसा जो बहुश्रुती साधु तहाकूं मरण निकट आवता विक्षेपिणी कथा अत्यंत अयुक्त है। जातैं विक्षेपिणी कथा रत्नत्रयधारकका अनायतन है-मरणकालमें आधारयोग्य नहीं है ॥ गाथा—

अब्भुज्जदम्मि मरणे । संथारत्थस्स चरमवेलाए ॥
तिविहं पि कहिंति कहं । तिदंडपरिमोडया तह्मा ॥ ६३ ॥

अर्थ— मरण निकट होता संता संस्तरमें तिष्ठता जो क्षपक ताकूं अंतकालमें संवेजिनी निर्वेदिनी आक्षेपिणी ये तीनप्रकारकी कथा अशुभमनवचनकायतैं छुडा-वनेवाली कहै ॥ भावार्थ- क्षपककूं ऐसी कथा कहै, जाकूं सुनतैंही अशुभमन-वचनकायकी प्रवृत्ति छूटी शुद्धप्रवृत्तिमैं लीन होजाय ॥ गाथा—

जुत्तस्स तवधुराए । अब्भुज्जदमरणवेणुसीसम्मि ॥
तह ते कधिंति धीरा । जह सो आराधउ होदि ॥ ६४ ॥

अर्थ— समीप जो मरणरूप वांस ताका मस्तकविषैं तपका भारकरि युक्त जो क्षपक, ताकूं निर्यापक च्यार मुनि महा धीर वीर ऐसैं कथा कहै जैसैं ताकूं श्रवण

करि आराधनामैं लीन होजाय ' ॥ गाथा–

चत्तारि जणा भत्तं । उवकप्पेंति अगिलाणए पाउग्गं ॥
छंदियमवगददोसं । अमाइणो लद्धिसंपण्णा ॥ ६५ ॥

अर्थ— लब्धिकरि संयुक्त अर मायाचाररहित ऐसे च्यारि मुनि ग्लानिरहित क्षपककै इष्ट तथा क्षपककै योग्य तथा उद्गमादिकदोषरहित भोजनकूं कल्पना करै ॥

चत्तारि जणा पाणय- । मुवकप्पंति अगिलाणए पाउग्गं ॥
छंदियमवगददोसं । अमाइणो लद्धिसंपण्णा ॥ ६६ ॥

अर्थ—लब्धिकरि संयुक्त अर मायाचाररहित ऐसे च्यारि मुनि क्षपककै इष्ट उद्गमादिदोषरहित अर योग्य ऐसा पानक जो पीवनेयोग्य ताहि ग्लानिरहित उपकल्पना करै ॥ गाथा–

चत्तारि जणा रक्खं- । ति दवियमुवकप्पियं तयं तेहिं ॥
अगिलाए अप्पमत्ता । खवयस्स समाधिमिच्छंति ॥ ६७ ॥

अर्थ—बहुरि च्यारि मुनिनिकरि उपकल्पित किया जो द्रव्य, जो आहारपान ताहि च्यारि मुनि प्रमादरहित हुवा संता ग्लानिरहित रक्षा करै । अर क्षपककै समाधिमरणकी इच्छा करै ॥ अब इहां कोऊ प्रश्न करै, जो च्यारि मुनि आहारकूं कैसैं कल्पना

करै? अर पानकूं कैसैं कल्पना करै? अर उपकल्पना कीये जे भोजनपान तिनकी रक्षा कैसैं करै? सो विस्तारसहित कह्या चाहिये ॥ अर उपकल्पना शब्द तीन गाथानिमैं कह्या, ताका स्पष्टार्थ कहा? सोहू लिख्या चाहिये ॥ ताका उत्तर– जो, ए कथन इस ग्रंथमें संक्षेपकरि इतनाही लिख्या है, विशेप लिख्या नहि, अर अन्यग्रंथनितैं हमारे जानिवेमें आया नही, अबार हमारे जाननेमें श्रीवट्टकेरस्वामिकृत मूलाचार ग्रंथ तथा श्रीवीरनंदिसिद्धांतचक्रिकरि प्ररूप्या जो आचारसारग्रंथ तथा श्रीसकलकीर्ति-कृत मूलाचारप्रदीपक ग्रंथ तथा श्रीचामुण्डरायकृत चारित्रसारग्रंथ ये मुनीश्वरनिके आचारके प्रधानग्रंथ हैं, तिनमैं ऐसा विशेप लिख्या नही, सामान्य अडतालीस मुनि वैयावृत्य करनेके अधिकारी लिख्या है। सो विशेप भगवानका परमागमका हुकमविना लिख्या जाय नहीं। अर इस ग्रंथकी टीका करनेवाला उपकल्पयन्ति का आनयन्ति ऐसा अर्थ लिख्या है, सो प्रमाणरूप नही। अर कछु विशेप लिख्या नही। अर कोऊ या कहै, जो आहार लियावते होयगे तो या रचना आगमसूं मिले नही, मुनीश्वर अयाचिकवृत्तिका धारक, जिनकै वस्त्र नही, पात्र नही, वै भोजन कैसैं याचना करै? अर कोन पात्रमें मार्गमें कैसैं ल्यावै? सो संभवे नहि, परमागमसूं मिले नहि, भोजन ल्यावना राखना बने नही, जो भोजन ल्यावना होय तो छियालीस दोप टळे नही।

तातैं जैसैं भगवान् सर्वज्ञ देख्या है, सो प्रमाण है। जो गाथामैं अक्षर छा तिनका अर्थ तो हमारा ज्ञानमें आया तेता लिखि दिया। अब विशेष बहुज्ञानी होय सो परमागमके अनुकूल समझि निश्चय करो। आगमका हुकमविना शिवाय हम लिखनेमें समर्थ नहि। इस ग्रंथमें संक्षेप कथन होय अर अन्यग्रंथनिमें विशेष जाननेमें आवता तो इहां लिखि देते॥ अब अन्य निर्यापक कहा करै सो लिखे हैं॥ गाथा—

काइयमादी सव्वं। चत्तारि पदिट्ठवंति खवयस्स॥
पडिलेहंति य उवधो। काले सेज्जुवधिसंथारं॥ ६८॥

अर्थ— च्यारि मुनि क्षपकका कायिकादिक जे सर्व मलमूत्र तिनकूं प्रासुकभूमीमैं क्षेपण करे है। अर प्रभातकालमें तथा दिन अस्त होनेका कालमें वसतिका उपकरण तथा संस्तर शोधन करे हैं॥ गाथा—

खवयस्स घरदुवारं। सारक्खंति जणा दु चत्तारि॥
चत्तारि समोसरण-। दुवारं रक्खंति जदणाए॥ ६९॥

अर्थ— च्यारि मुनि क्षपककी वसतिकाका द्वारकी रक्षा करे हैं। जो असंयमी जन तथा दुर्बुद्धिजन क्षपकके परिणामनिमें क्षोभ करनेकूं क्षपकके निकट नही जायसके, बाहिरही महान् मिष्टवचन धर्मोपदेशादिककरि स्तंभन करि ले अर शांत

परिणाम कर दे अर आराधनामरणमें भक्ति उपजाय दे ऐसैं तिष्ठे हैं। बहुरि च्यारि मुनि सभाका द्वारकी यत्नकरिकै रक्षा करे हैं, सभास्थानमें तिष्ठे हैं। आराधनामरण सुनिकरि आये हुये अनेक लोकनितैं धर्मकथा करि ले हैं ॥ गाथा—

जिदणिद्दा तल्लिच्छा। रादो जग्गंति तह य चत्तारि ॥
चत्तारि गवेसंति दु। खेत्ते देसे पवत्तीउ ॥ ६७० ॥

अर्थ— जीती है निद्रा जिननैं अर निद्रा जीतनेके इच्छक ऐसे च्यारि मुनि रात्रिविषैं जागृत रहे हैं। बहुरि च्यारि मुनि क्षेत्रमें तथा तिसदेशमें क्षेमकुशलरूप प्रवृत्तिकूं परीक्षा करे हैं अवलोकन करे हैं, जो, आराधनामैं विघ्न नही हो सकै ॥

बाहिं असद्दवडियं। कहंति चदुरो चदुविहकहाउ ॥
ससमयपरसमयविदू। परिसाए समोसढाए दु ॥ ७१ ॥

अर्थ— बहुरि क्षपकका आवासतैं बाहिर जा स्थानतैं क्षपकके कर्णनिमें शब्द नही आवैं तितने दूरि स्थानमें तिष्ठते अर स्वमत अर परमतके जाननेवाले सभाविषैं आवते जे अनेक लोक तिनकूं आक्षेपिणी विक्षेपिणी संवेजनी निर्वेजनी च्यारप्रकार धर्मकथा कहे हैं, अर क्षपकके निकट पहुंचने नही दे हैं। जातैं अनेक कषायसहित जीव क्षपकके निकट अयोग्यवचन अयोग्यकथा वृथा बकवाद करि क्षपकका परिणाम

मरणकालमें बिगाड दे, तातैं स्वमत-परमतके जाननेवाले वचनकलासहित च्यारि ज्ञानी मुनि अनेक आवते मनुष्यनिकूं धर्मकथाकरि संतुष्ट करे हैं ॥ गाथा—

वादी चत्तारि जणा । सीहाणुग तह अणेयसत्थविदू ॥

धम्मकहियाण रक्खा- । हेदुं विहरंति परिसाए ॥ ७२ ॥

अर्थ— बहुरि सिंहसमान निर्भय अर अनेक स्वमतपरमतके शास्त्रनिके जानने-वाले वादविद्या करनेवाले च्यारि मुनि धर्मकथा करनेवाले मुनीश्वरनिकी रक्षाके अर्थि सभाविषें प्रवर्तन करे हैं। जिनका सहायकरि कोऊ एकांती धर्मकथाका छेद तथा संशयादिक नहीं उपजाय सकै ॥ गथा—

एवं महाणुभावा । पग्गहिदाए समाधिजदणाए ॥

तं णिज्जवंति खवयं । अडयाळीसं पि णिज्जवया ॥ ७३ ॥

अर्थ— ऐसे च्यारि मुनि तो क्षपककूं उठावना बैठावना सुवावना हस्तपादादिक समेटना प्रसारना जैसैं संयममें दोष नहीं लागै तैसैं शरीरकी सेवाके अधिकारी रहे हैं। यद्यपि आपका सामर्थ्य होय तदितक आपका आपही उठना बैठना फिरना सर्व कार्य करे हैं, अन्यतैं नहीं करावे हैं, तथापि जो अशक्त होजाय तो अन्य च्यारि मुनिनकै शरीरकी टहल करनेका अधिकार है ॥

बहुरि च्यारि मुनिनकै धर्मश्रवण करावनेका अधिकार है। बहुरि च्यारि मुनि आचारांगमें जैसैं भगवान् आज्ञा करी है तैसैं क्षपकके भोजनके अधिकारी हैं। अर च्यारि मुनि पानके अधिकारी हैं। च्यारि मुनि रक्षाके अधिकारी हैं। च्यारि मुनि शरीरके मल दूरि करनेके अधिकारी हैं। च्यारि मुनि क्षपककी वसतिकाके द्वारके अधिकारी हैं, जो अनेकलोक क्षपकके परिणामनिमें क्षोभ न करिसकै। च्यारि मुनि अनेक लोक आराधनामरण सुनिकरि आवै, तिनके संबोधनमें सावधान हुये सभामें तिष्ठे हैं। च्यारि मुनि रात्रीकूं जागते तिष्ठे हैं। च्यारि मुनि देशकी प्रवृत्ति देखनेके अधिकारी हैं। च्यारि मुनि बाहिरही आयेगयेतैं कथा करिलेनेके अधिकारी हैं। च्यारि मुनि वादके अधिकारी हैं। ऐसैं महान् है प्रभाव जिनिका ऐसे अठतालीस निर्यापक मुनि ते यत्नकरिकै ग्रहण करी जो समाधि ताकरिकै क्षपककूं संसारके पार करे हैं। येते गुणनिसहित निर्यापक अडतालीस वर्णन कीये, तिनका नियमही नही जानना ॥ भरत ऐरावत क्षेत्रमें कालकी विचित्रतातैं जैसा अवसरमें जैसी विधि मिलि जाय जितने गुणनिके धारक होय वा जितने होय तितनेही ग्रहण करने। पंचमकालमें सांचा श्रद्धानी सुंदर आचारके धारी धर्मानुरागीनिका संग मिलिजाय सोही अतिश्रेष्ठ है। इस विषमकलिकालमें धर्मानुरागी श्रद्धानी अतिदुर्लभ हैं। तातैं

दोय च्यारि जितने मिलिजाय तितने धर्मानुराग्यांका संगकरि धर्मध्यानसहित ममता-रहित परमात्मस्वरूपसूं मन लगाय समाधिमरण करना श्रेष्ठ है ॥ सोही कहे हैं ॥ गाथा-

जो जारिसउ काळो । भरहैरावदेसु होइ वासेसु ॥
ते तारिसया तदिया । चोद्दालीसं पि णिज्जवया ॥ ७४ ॥
एवं चदुरो चदुरो । परिहावेदव्वा य जदणाए ॥
कालम्मि संकिलिट्ठ- । म्मि जाव चत्तारि साधुत्ति ॥ ७५ ॥

अर्थ— भरत ऐरावत क्षेत्रनिविषैं जो जैसा काल होय ता कालमें तैसे कालके अनुसार जघन्यगुणनिके धारक जिस अवसरमाफिक जिनमें गुणनिकी कमी नही ऐसे चोवालीसही निर्यापक होय । तथा चालीस छत्तीस बत्तीस ऐसे या संक्लेशरूप कालमें घटतैं घटतैं च्यारि मुनीश्वरतांई समाधिमरण करावनेवाले निर्यापक मुनि होय हैं । चतुर्थ-कालकेसे द्वादशांगके धारक तथा आचारवानादिक अनेक गुणनिके धारक कहां प्राप्त होय? तातैं जिनकै श्रद्धानज्ञान दृढ होय, पापाचारसूं भयभीत होय, धर्मानुरागी होय, ते निर्यापक ग्रहण करने । उत्कृष्ट तो अठतालीस कहे, मध्यम चवालीसकूं आदि लेय च्यारि मुनीश्वरनितांई कहे ॥ अब जघन्यका नियम कहे हैं ॥ गाथा—

णिज्जावया य दोण्णि वि । होंति जहण्णेण काळसंसयणा ॥

एक्को णिज्जावयर्उ । ण होइ कइया वि जिणसुत्ते ॥ ७६ ॥

अर्थ— कालका आश्रय कहिये प्रभाव तातैं जघन्य दोयही निर्यापक होय हैं। जिनसूत्रमें एक निर्यापक कदाचित् नही होय है॥ याहीका पाठांतर कहे हैं॥ गाथा-

काळाणुसारिणो दो। भरहेरावदभवा जहण्णेण ॥
णिज्जावया य जइणो। घेतव्वा गुणमहल्ला दु ॥ ७७ ॥

अर्थ— कालके अनुसार भरत ऐरावतमें उपजे दोयही निर्यापक मुनि महान् गुणनिके धारक जघन्यकरि ग्रहण करनेयोग्य हैं॥ एक निर्यापक होय तो कहा दोष आवै सो कहे हैं॥ गाथा—

एगो जइ णिज्जवर्उ। अप्पा चत्तो परो पवयणं च ॥
वसणमसमाधिमरणं। उड्डाहो दुग्गदी चावि ॥ ७८ ॥

अर्थ— जो एक निर्यापक क्षपककी वैयावृत्य करनेवाला होय, तो आपका त्याग होय नाश होय, तथा पर जो क्षपक ताका नाश होय, तथा धर्मका नाश होय, तथा व्यसन जो दुःख ताकी प्राप्ति होय, तथा असमाधिमरण होय, तथा धर्मका अपयश होय, अर दुर्गति दोय, तातैं एक मुनि समाधिमरणमें वैयावृत्य करनेमें नही ग्रहण कीया है॥ अब एक मुनि निर्यापक होवे तो दोष कहे, ते कैसे

कैसे होय, सो कहे हैं गाथा—

खवयपडिजग्गणाए। भिक्खग्गहणादि अकुणमाणेण॥
अप्पा चत्तो तव्विव-। रीदे खवउ हवइ चत्तो॥ ७९॥

अर्थ— जो एक निर्यापक होय तब क्षपकका कार्य जो वैयावृत्य टहल, तामैं उद्यमी होता संता आपका भिक्षा नही ग्रहण करनेतैं तथा निद्रा नही लेनेतैं तथा कायमलका नही निराकरणतैं, निर्यापककै बडी पीडा होय है। जातैं संस्तरमें तिष्ठता साधूकी सेवा करे तदि आपकै भोजनके अर्थि जाना तथा निद्रा लेना तथा मलमोचन करना इत्यादिक कार्य नही संभवै, तदि आपका त्याग नाशही हुवा, अर जो क्षपककूं एकला छोडि जो भिक्षाकूं जाय तथा निद्रा लेवै वा मलमोचन करै तो क्षपकका नाश होय है। क्षीणशरीर मरणके सन्मुख जो क्षपक ताका वैयावृत्यविना त्यागही होय है। गाथा—

खवयस्स अप्पणो वा। चाए चत्तो हु होइ जइ धम्मो॥
णाणस्स य उच्छेदो। पवयणचाउ कउ होइ॥ ८०॥

अर्थ—बहुरि कोऊ या कहे, क्षपककी रक्षाके अर्थि आपका त्याग करना तथा आत्मरक्षाके अर्थि क्षपकका त्याग करनेमें कहा दोष? तो क्षपकका त्याग होता वा आपका त्याग होता यतीका धर्मका त्याग होय है। जातैं देहका आधारतैं मुनिका

धर्म पालिये है अर अकालमें संक्लेशतैं देह त्याग्या तब देहकै आधार धर्म छा ताका त्याग भया। अर आगानै ज्ञानका विच्छेद भया अर क्षपककी लैरही निर्यापक मस्या! तदि ज्ञानका उपदेश कौन करै? अर ज्ञानका उपदेश गया तदि प्रवचन जो आगम ताका नाश होय है। अर क्षपककूं त्याग्या जब क्षपककै मरण बिगाडि दुर्गति होय तथा धर्मका नाश होय। तातैं दोऊका त्यागमें बडा दोष है। अब एक मुनि वैयावृत्य करनेवाला होय तो क्षपककै व्यसन जो दुःख होय है, ताहि कहे हैं॥ गाथा—

चायम्मि कीरमाणे। वसणं खवयस्स अप्पणो चावि॥
खवयस्स अप्पणो वा। चायम्मि हवेज्ज असमाधी॥ ८१॥

अर्थ—जो निर्यापक क्षपककूं छोडि आहारकूं जाय वा निद्रा लेवै तो क्षपककै दूसराविना दुःख होय, अर जो आहारादिक नहीं करै तो आपकै दुःख वा नाश होय। अर जो क्षपकका त्याग करै, तो क्षपककै धर्मोपदेशविना असमाधिमरण होय, अर आप भोजनादिक नहीं करै तो भोजनविना संक्लेशतैं आपकै असमाधिमरण होय॥ अब उड्डाहदोषकूं कहे हैं॥ गाथा—

सेवेज्ज वा अकप्पं। कुज्जा वा जायणाइ उड्डाहं।
तण्हाछुधादिभग्गो। खवर्ड सुण्णम्मि णिज्जवए॥ ८२॥

अर्थ—जो निर्यापक एकला होय अर भोजनादिकूं जाय तदि निर्यापकरहित क्षपक क्षुधातृषादिक वेदनाकरिकै भय हुवा अयोग्यवस्तूका सेवन करै वा याचनादिक करै, तो धर्मका बडा अपयश होय ॥ अब निर्यापकरहितकै दुर्गति होय ऐसा दोष कहे हैं ॥ गाथा—

असमाधिणा च काळं । करिज्ज जो सुण्णगम्मि णिज्जवए ॥
गच्छेज्ज तउ खवउं । दुग्गदि असमाधिमरणेण ॥ ८३ ॥

अर्थ— निर्यापकरहित मुनि, ताका कदाचित् वेदनादिक करिकै परिणाम बिगडि जाय, तदि कोन स्तंभन करै? तदि क्षपकका असमाधिमरणतैं दुर्गति होय। यातैं एकनिर्यापकका निषेध है। अर लौकिकजनामैंभी देखिये है मांदगीसहित पुरुषकी एकसूं टहल नही बणि सके है, तातैं दोय निर्यापकसूं घाटि नही होय है ॥

सल्लेहणं सुणित्ता । जुत्ताचारेण णिज्जवेजंतं ॥
सव्वेहिं वि गंतव्वं । जादिहिं इदरत्थ भयणिज्जं ॥ ८४ ॥

अर्थ— योग्य आचरणका धारक आचार्यकरि कराई जो सलेखना, ताहि सुनिकरि संपूर्ण मुनीश्वरांनैं क्षपकके निकट जावना योग्य है। अर मंदचारित्रका धारक आचार्यकरि कराई सलेखना सुनिकरि मुनीश्वर क्षपकके निकट जाय वा नही

जाय, जानेका नियम नहीं। अर योग्य आचरणका धारकनिकरि कराई सल्लेखनाके धारक क्षपकके निकट जावना उचितही है॥ बहुरि आराधनाके धारकनिका भक्तिपूर्वकदर्शन आत्माकै आराधनाका कारण है॥ गाथा–

सल्लेहणाए मूळं। जो वच्चइ तिव्वभत्तिराएण॥
भोत्तूण य देवसुखं। सो पावदि उत्तमं ठाणं॥ ८५॥

अर्थ— जो साधु वा श्रावक तीव्रभक्तीका रागकरिकै सल्लेखना करनेवालेके चरणारविंदाके निकट गमन करे है, सो देवनिका सुख भोगिकरिकै अर उत्तमस्थान जो निर्वाण, ताहि प्राप्त होय है॥ गाथा–

एगम्मि भवग्गहणे। समाधिमरणेण जो मदो जीवो॥
ण हु सो हिंडादि वहुसो। सत्तट्ठभवे पमुत्तूण॥ ८६॥

अर्थ— जो जीव एक भवमें समाधिमरणकरि मरे है, सो जीव सात आठ भवनैं छोडि बहुत संसारपरिभ्रमण नहीं करे है॥ भावार्थ– एकवारहू समाधिमरण होजाय तो सात आठ भवसिवाय संसारभ्रमण नहीं करे है॥ गाथा–

सोदूण उत्तमट्ठ-। स्स साधणं तिव्वभत्तिसंजुत्तो॥
जदि णोवयादि का उ-। त्तमट्ठमरणम्मि से भत्ती॥ ८७॥

भोजनादिककी कथा करनेयोग्य नही है । क्षपकके समीप आलोचनाहू प्रशस्तही करनेयोग्य है ॥ गाथा–

पच्चख्खाणपडिक्कमणो- । वदेसणिउंगतिविहवोसरणो ॥
पट्ठवणापुच्छाए । उवसंपण्णो पमाणं से ॥ ९१ ॥

अर्थ— प्रत्याख्यान कहिये आगामी त्यागमें, तथा प्रतिक्रमण कहिये पूर्वै दोष कीये तिनके दूरि करनेमें, तथा उपदेशके नियोगमें, तथा तीनप्रकारके आहारके त्याग करनेमें, प्रायश्चित्तके पूछनेमें, जो निर्यापकगुरु कहे, सो प्रमाणरूप अंगीकार करना योग्य है ॥ गाथा–

तेल्लकसायादीहि य । वहुसो गंडूसया दु घेतवा ॥
जिब्भाकण्णाण वलं । होहिदि तुंडं च सेविसदं ॥ ९२ ॥

अर्थ— बहुरि जब आहार त्यागनेका अवसर आजाय, तदि क्षपककूं तैल तथा कषायला द्रव्यनिके क्वाथकरि बहुतवार गंडूषा कहिये कुरला करावनेयोग्य हैं । तैलके कुरलेनितैं तथा कषायले द्रव्यनिके कुरलेनितैं क्षपककै जिव्हाबल नही घटे, वचनकी शक्ति घटे नही, तथा कर्णनितैं श्रवण करनेकी शक्ति घटे नही, मुखकी निर्मलता बणी रहे, तदि धर्मश्रवणमें धर्मकथामैं शक्ति घटे नही । यातैं तैलकषायनिके कुरले करावने ॥

जाय, जानेका नियम नही। अर योग्य आचरणका धारकनिकरि कराई सल्लेखनाके धारक क्षपकके निकट जावना उचितही है॥ वहुरि आराधनाके धारकनिका भक्तिपूर्वकदर्शन आत्माकै आराधनाका कारण है॥ गाथा–

सल्लेहणाए मूळं। जो वच्चइ तिव्वभत्तिराएण॥
भोत्तूण य देवसुखं। सो पावदि उत्तमं ठाणं॥ ८५॥

अर्थ— जो साधु वा श्रावक तीव्रभक्तीका रागकरिकै सल्लेखना करनेवालेके चरणारविंदाके निकट गमन करे है, सो देवनिका सुख भोगिकरिकै अर उत्तमस्थान जो निर्वाण, ताहि प्राप्त होय है॥ गाथा–

एगम्मि भवग्गहणे। समाधिमरणेण जो मदो जीवो॥
ण हु सो हिंडादि वहुसो। सत्तट्ठभवे पमुत्तूण॥ ८६॥

अर्थ— जो जीव एक भवमें समाधिमरणकरि मरे है, सो जीव सात आठ भवनैं छोडि बहुत संसारपरिभ्रमण नही करे है॥ भावार्थ– एकवारहू समाधिमरण होजाय तो सात आठ भवसिवाय संसारभ्रमण नही करे है॥ गाथा–

सोदूण उत्तमट्ठ-। स्स साधणं तिव्वभत्तिसंजुत्तो॥
ज्ञदि णोवयादि का डु-। त्तमट्ठमरणम्मि से भत्ती॥ ८७॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषैं निर्यापक नामा सत्ताईसमां अधिकार बियालीस गाथानिकरि समाप्त कीया ॥ अब प्रकाशन नामा अठाईसमां अधिकार छ गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा-

दव्वपयासमकिच्चा । जइ कीरइ तस्स तिविहवोसरणं ॥
कह्मि वि भत्तविसेस- म्मि उस्सुउ होज्ज सो खवउ ॥ ९३ ॥
तह्मा तिविहं वोसरि- । हिदित्ति उक्कस्सयाणि दव्वाणि ॥
सोसित्ता पविआरिय । चरिमाहारं पयासेज्ज ॥ ९४ ॥

अर्थ—अब आगानैं क्षपककी आयु अल्प रहिजाय तदि क्षपक कहे, मोकूं अब तीन आहारका तो त्याग कराय द्यो । तब आचार्य कहे, बहोत ठीक है, तुमारे आहारका त्यागका अवसर आगया, तदि आहारका त्याग करावनेका अवसर होय तहां पहली आहारका प्रकाशनकरि दिखायकरि त्याग करावे । द्रव्य जो आहार ताका प्रकाशन कीयेविना जो क्षपककै तीन आहार जो अशन खाद्य स्वाद्यका त्याग करावे अर क्षपक कोऊ भोजनके वस्तूमैं वांछासहित हो जाय तो व्याकुलतानैं प्राप्त होय, तातैं पहिलीही विचारै, जो यो तीनप्रकार आहार त्याग करसी, तातैं उत्कृष्टद्रव्यनिका संस्कार करिकै अर विचार करिकै पाछै जलका प्रकाश करि दिखावे ॥ गाथा—

पासित्तु कोइ तादी । तीरं पत्तस्सिमेहिं किं मित्ति ॥
वेरग्गमणुप्पत्तो । संवेगपरायणो होई ॥ ९५ ॥
आसादित्ता कोई । तीरं पत्तस्सिमेहिं कि मित्ति ॥
वेरग्गमणुप्पतो । संवेगपरायणो होई ॥ ९६ ॥
देसं भोच्चा हा हा ! । तीरं पतस्सिमेहिं किं मित्ति ॥
वेरग्गमणुप्पतो । संवेगपरायणो होई ॥ ९७ ॥
सव्वं भोच्चा धिध्दी । तीरं पत्तस्सिमेहिं किं मित्ति ॥
वेरग्गमणुप्पत्तो । संवेगपरायणो होई ॥ ९८ ॥

अर्थ—कोऊ मुनि भोजनकूं देखिकरिकैही चिंतवन करे, जो आयूका अंतकूं प्राप्त भया जो मैं, ताकै इन आहारनिकरि कहा प्रयोजन है? ऐसैं वैराग्यकूं प्राप्त भया संसारतैं भयवान् होय है। बहुरि कोऊ मुनि आहारकूं आस्वादन करिकै अर विचार करै, अहो! आयुके अंतकूं प्राप्त भया जो मैं, ताकै इनि आहारनिकरि कहा साध्य है? ऐसैं वैराग्यकूं प्राप्त भया संसारपरिभ्रमणतैं भयवान् होय है। कोऊ मुनि भोजनका किंचित् ग्रास भोगिकरिकै अर विचारै, हाय हाय! बडा अनर्थ है! आयूका अंतकूं प्राप्त भया जो मैं, ताकै इनि आहारनिकी लंपटताकरि

अर्थ— जो उत्तमार्थका साधन जो समाधिमरण ताहि श्रवण करिकै अर तीव्र भक्तिसंयुक्त हुवो संतो समाधिमरण करनेवालेके निकट नही जाय, ताकै उत्तमार्थमरणमें काहेकी भक्ति? कुछभी नही ॥ गाथा—

जस्स पुण उत्तमट्ठम- । रणम्मि भत्ती ण विज्जदे तस्स ॥
किह उत्तमट्ठमरणं । संपज्जदि मरणकालम्मि ॥ ८८ ॥

अर्थ— जाके उत्तमार्थमरणमें भक्ति नही हुई, ताकै मरणकालमें उत्तमार्थमरण कैसैं प्राप्त होय? नही प्राप्त होय है ॥ गाथा—

सद्दवदीण ण पासं । अहियदुमसंपुडाण दादव्वं ॥ [1]
तेसिं असंपुडगिरा- । हिं होज्ज खवयस्स असमाधी ॥ ८९ ॥

[1] सद्दवदि गं इत्यपि पाठः

अर्थ— कलकलाट शब्दके करनेवाले झूंठवचनरूप डुमकरि असंवररूप ऐसे वृथा वकवाद करनेवालेनिकूं क्षपकके समीप नही जाने देना योग्य है। तिनके संवररहित वचनकरि क्षपककै समाधानी जो सावधानी सो विगडिजाय है ॥ गाथा—

भत्तादीणं तत्ती । गीदत्थे हिं वि ण तत्थ कादव्वा ॥
आलोचणा वि हु पस- । त्थमेव कादव्विया तत्थ ॥ ९० ॥

अर्थ— गृहीतार्थ ऐसे ज्ञानी मुनि तिनकूंभी क्षपकका समीपभागविषैं प्रसंग पायभी

भोजनादिककी कथा करनेयोग्य नही है । क्षपकके समीप आलोचनादू प्रशस्तही करनेयोग्य है ॥ गाथा—

पच्चक्खाणपडिक्कमणो- । वदेसणिउंगातितिहत्रोसरणो ।
पट्ठवणापुच्छाए । उत्रसंपणणो पमाणं से ॥ ९१ ॥

अर्थ— प्रत्याख्यान कहिये आगामी त्यागमें, तथा प्रतिक्रमण कहिये पूर्वे दोष कीये तिनके दूरि करनेमें, तथा उपदेशके नियोगमें, तथा तीनप्रकारके आहारके त्याग करनेमें, प्रायश्चित्तके पूछनेमें, जो निर्यापकगुरु कहे, सो प्रमाणरूप अंगीकार करना योग्य है ॥ गाथा—

तेल्लकसायादीहि य । वहुसो गंडूसया दु घेतव्वा ॥
जिब्भाकण्णाण वलं । होहिदि तुंडं च सेविसदं ॥ ९२ ॥

अर्थ— वहुरि जब आहार त्यागनेका अवसर आजाय, तदि क्षपककूं तैल तथा कषायला द्रव्यनिके क्वाथकरि वहुतवार गंडूषा कहिये कुरला करावनेयोग्य हैं । तैलके कुरलेनितैं तथा कषायले द्रव्यनिके कुरलेनितैं क्षपककै जिव्हाबल नही घटे, वचनकी शक्ति घटे नही, तथा कर्णनितैं श्रवण करनेकी शक्ति घटे नही, मुखकी निर्मलता बणी रहे, तदि धर्मश्रवणमें धर्मकथामें शक्ति घटे नही । यातैं तैलकषायनिके कुरले [illegible]

कहा प्रयोजन है? ऐसें वैराग्यकूं प्राप्त भया संसारपरिभ्रमणतैं भयकूं प्राप्त होय है ॥ कोऊ सकल आहारकूं भोगिकरि विचार करै, धिक्कार होऊ! धिक्कार होऊ! आयूका अंतकूं प्राप्त भया जो मैं, ताकै इनि आहारनिकरि कहा साध्य है? ॥ इहां विशेष चिंतवन करे है— जो, हे आत्मन्! संसारपरिभ्रमण करता जो तूं सो इतना आहार ग्रहण कीया, जो एकेकपर्यायसंबंधी ग्रहण करिये तो सर्व लोकमें नही मावै! अर एता जल पीया, सो अनंतसमुद्र भरिजाय! अब अंतकालमें आहारपानका लोलुपी होय किंचिन्मात्र आहारपानतैं कैसें तृप्तताकूं प्राप्त होयगा? अब या लोलुपताकूं त्यागि ध्यानरूप अमृतकरि वेदना बुझावना योग्य है। अनंतकालमें अनंतवार इंद्रियविषय पाया तोहू दाह नही मिटी! देवनिके भोग अर भोगभूमीके भोग निरंतर असंख्यातकालपर्यंत भोगे, तिनकरिही चाहरूप दाह नही मिटी! तो मनुष्यजन्मसंबंधी किंचित् विषय अर किंचिन्मात्र काल भोगनेमें आवनेयोग्य इनितैं चाह कैसें मिटैगी? कैसी है आहारकी तृष्णा? ज्यूं ज्यूं आहार ग्रहण करै, त्यौं त्यौं दाहकूं वधावे है!। अर हे आत्मन्! अनंतानंतकाल एकेंद्रियमें रसना इंद्रिय नही पाई? खाटा मीठा रस जिव्हाविना कौंनकरि आस्वादन करिये? अर सदाकाल क्षुधातृषाकरि पीडितही रह्या। अर बेइंद्रियादिक तिर्यंचयोनीमें कदे उदरभरी भोजनही नही मिल्या! सदा रातिदिन भोजनवास्ते धरती सूंघता फिऱ्या

अर नरकधरामें भोजनहीं मिल्या नही! तातैं अनंतानंतकाल क्षुधा तृषा भोगता व्यतीत भया! अब अल्पभोजनसूं कैसी तृप्ति होयगी? तातैं आहारकी गृद्धिता जो लंपटता, ताकरि यह समाधिमरणका अवसर अनंतानंतसंसारके दुःखका छेदनहारा ताकूं निगोडि संसारमें अनंतानंतकालपर्यंत तीव्र क्षुधातृषावेदनाकरि संयुक्त दुर्गतिका दुःख ग्रहण करना योग्य नही। अनंतकाल कर्मके वशी होय बहोत वेदना भोगि। अब स्वाधीन समभावनिकरि जो एकवारहू सहूंगा, तो बहुरि वेदनाको पात्र नही होहूंगा। तातैं अब मेरै या आहारकरि पूरी पडो। ऐसैं वैराग्यकूं प्राप्त हुवा संसारपरिभ्रमणतैं भयभीत होय है ॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषैं प्रकाशन नामा अठाईसमां अधिकार छ गाथानिकरि समाप्त कीया॥ अब आगै क्रमकरिकै आहारकी हानि नामा गुणतीसमां अधिकार पांच गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

कोई तमादयित्ता। मणुण्णरसवेदणाए संगिद्धो ॥
तं चेववणुंधेज्जहु। सव्वं देसं व गिद्धीए ॥ ६९ ॥
तत्थ अवाउवायं। दंसेदि विसेसदो उवदिसंतो ॥
उद्धरिदु मणोसल्लं। सुहुमं सणिव्ववेमाणो ॥ ७०० ॥

अर्थ— कोऊ मुनिकी आयु अल्प रहि जाय अर तीन आहारका त्यागका अवसर आजाय तदि त्याग करावनेकूं आहार करावे है, तिनमें कोऊ मुनि आहारकूं आस्वादन करिकै अर मनोज्ञरसका अनुभव करिकै गृद्धिरूप हुवा मूर्छित हुवा आस्वादन कीया सर्व आहारमें तथा ताका एकदेशमें लंपटताकरि अति आसक्ततानैं प्राप्त होजाय तो आचार्य ताकूं आहारकी लंपटतातैं इंद्रियसंयमका नाश होना अर असंयमभावका प्रकट होना दिखावे, जो, हे मुने! भोजनकी लंपटताकरि इंद्रियसंयम बिगाडो हो! अर असंयम ग्रहण करो हो! सो बडा अनर्थ करो हो! जिव्हाइंद्रियका स्वाद क्षणमात्रका है, अर आयूका अंतभी आय गया है, सो अब रसना इंद्रियका विषयमें लोलुपी होय इंद्रलोक अहमिंद्रलोक तथा अनंतसुखरूप निर्वाणका लाभ जातैं होय ऐसा संयमकूं बिगाडि नरकतिर्यंचगतिकूं सन्मुख होना योग्य नहीं! मरण तो अवश्य होसीही, या लोकमें धर्मकी गुरुकुलकी निंदा होयगी, परलोकमें दुर्गतिके दुःख प्राप्त होयगे! तातैं इंद्रियनिकी लंपटता त्यागि संयममें सावधान होहू। ऐसैं सूक्ष्म मनकी शल्य उखालनेकूं सम्यक् उपशमभावनैं प्राप्त करै॥ गाथा—

सुच्चा सल्लं मणत्थं। उद्धरदि असेसमप्पमादेण॥
वेरग्गमणुप्पत्तो। संवेगपरायणो खवउ॥ १॥

अर्थ— ऐसैं आचार्यनितैं वैराग्यकथानैं श्रवणकरिकै अर अनर्थक समस्त शल्य है ताहि प्रमादरहित होयकरिकै अर उद्धरति कहिये उखालत है। पश्चात् वैराग्यनैं प्राप्त हुवा जो क्षपक सो संसार भोग शरीरनितैं अत्यंत विरक्त होय है ॥ गाथा–

अणुसज्जमाणए पुण । समाधिकामस्स सव्वमुवहरिय ॥
एक्केक्कं हावितो । ठवेदि पोराणआहारे ॥ २ ॥
अणुपुव्वेण य ठविदे । संवट्टेदूण सव्वमाहारं ॥
पाणयपरिक्कमेण दु । पच्छा भावेदि अप्पाणं ॥ ३ ॥

अर्थ-- आहारमें अनुरागवान् जो क्षपक ताकै समाधिमरण करावनेके इच्छक जे परमदयाल गुरु सो ऐसैं सत्यार्थ उपदेश करि एकेक आहारसूं ममत्व छुडायकरिकै अर पुरातन आहार जो लालसारहित नीरस आहार तामैंहू चाहना नही ऐसैं आहारतैं विरक्ततामैं स्थापन करे, पाछै अनुक्रमकरिकै सर्व आहारकी अभिलाषाकूं संकोच करिकै अर पानक जो पीवनेयोग्य जलादिक तामैं क्षपककूं स्थापन करे अर पश्चात् सर्व आहारादिककी अभिलाषारहित हुवा संता शुद्ध ज्ञानानंद अविनाशी अखंड ज्ञाता द्रष्टा अपना आत्मा ताही भावना करै ॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषैं हानि नामा गुणतीसमां

अधिकार पंच गाथानिकरि समाप्त कीया ॥ अब तीन आहारका त्यागरूप प्रत्याख्यान नामा तीसमां अधिकार दश गाथानिकरि कहे हैं ॥ अब तिनमें पान आहारके भेद कहे हैं ॥ गाथा—

सच्छं वहलं लेवड-। मलेवडं च ससित्थयमसित्थं ॥
छव्विहपाणयमेयं। पाणयपरिकम्मपाउग्गं ॥ ४ ॥

अर्थ— स्वच्छ कहिये उष्णजल तथा आमलीका जल, वहल कहिये धई इत्यादिक, लेवड कहिये हस्तकै लगै ऐसा, अलेवड कहिये हस्तकै लिपै नहीं ऐसा पतला, ससिक्थ कहिये भातसहित मांड, असिक्थ कहिये चांवलरहित मांड पानक नामा परिकर्मके जोग्य यह छह प्रकार आगममें पान वर्णन किया है ॥ गाथा—

आयंबिलेण सिंभं। खीयदि पित्तं च उवसमं जादि ॥
वादस्स रक्खणट्ठं। एत्थ पयत्तं खु कादव्वं ॥ ५ ॥

अर्थ— आचाम्लकरिकै कफ नाशकूं प्राप्त होय है, अर पित्त उपशमतानैं प्राप्त होय है, अर वायूकी रक्षा होय है। तातैं आचाम्लमें प्रयत्न करना योग्य है ॥

तो पाणएण परिभा-। वियस्स उदरमलसोधणत्थाए ॥
मधुरं पज्जेदव्वो। मंदं च विरेयणं खवउ ॥ ६ ॥

अर्थ— तींठापाछै पानक जो पीवनेयोग्य आहार, ताकरि साधनरूप कीया जो क्षपक, ताके उदरमलके शोधनके अर्थि मधुरवस्तु पावनेयोग्य है। अर मंदमंद उदरथकी मलका विरेचन करना योग्य है ॥ गाथा–

आणाहवत्थियादी- । हिं चावि कादव्वमुदरसोधणयं ॥
वेदणमुप्पादेज्ज हु । करिसं अच्छं तयं उअरे ॥ ७ ॥

अर्थ—उदरमें तिष्ठता जो मल, सो वेदना उत्पन्न करे है, तातैं अनुवासनादि करिकै क्षपकके उदरमलकूं निराकरण करना योग्य है ॥ अनुवासनादिक कोई मलविरेचन करनेकी विधि है, सो वैद्यादिकनितैं जानी जाय, हम जानी नाहीं हैं ॥ अब कीया है उदरशोधन जाका ऐसा जो क्षपक, ताकै योग्य निर्यापकगुरुका व्यापार दिखावे हैं ॥ गाथा–

जावज्जीवं सव्वा- । हारं तिविहं च वोसरिहिदित्ति ॥
णिज्जवर्उ आयरिर्उ । संघस्स णिवेदणं कुज्जा ॥ ८ ॥

अर्थ–अब निर्यापक आचार्य सर्व संघकूं ऐसैं निवेदन करै–जणावै, जो, भो सर्व संघके साधू हो ! अब यह क्षपक यावज्जीव तीनप्रकारके आहारका त्याग करे है॥ गाथा–

खामेदि तुह्म खवर्उ । त्ति कुंचर्उ तस्स चेव खवगस्स ॥

दावेदव्वो णेदू-। ण सव्वसंघस्स वसधीसु ॥ ९ ॥

अर्थ—भो मुनीश्वरहो! जलपानादिकविना तीन आहारका त्यागकूं करता जो क्षपक, सो सर्व संघके साधुजन जे तुम, तिनिनैं क्षमाग्रहण करावे है। याप्रकार कहि सर्वसंघकी वसतिकामैं क्षपककी पिच्छिका लेयकरि दिखावना योग्य है॥ भावार्थ—निर्यापकाचार्य क्षपककी पींछी लेय सर्व संघके मुनिनकूं दिखावे, जो क्षपक तीन आहारका त्याग करि अर सर्व संघनें क्षमा करावे है॥ गाथा—

आराधणपत्तीयं। खवयस्स व णिरुवसग्गपत्तीयं॥
काउसग्गो संघे-। ण होइ सव्वेण कादव्वो॥ ७१० ॥

अर्थ—सर्व संघके साधुनिनैं क्षपककै आराधनाकी प्राप्तीके अर्थि अर उपसर्गरहितताके अर्थि कायोत्सर्ग करना योग्य है। जो, या क्षपककै उपसर्ग मति होहू अर निर्विघ्न आराधना प्राप्त होऊ ऐसा अभिप्रायकरि सर्वसंघ कायोत्सर्ग करै॥ गाथा—

खवयं पच्चक्खावे-। ति तदो सव्वं चदुव्विधाहारं॥
संघसमवायमज्झे। सागारं गुरुणियोगेण॥ ११ ॥
अहवा समाधिहेदुं। कायव्वो पाणयस्स आहारो॥
तो पाणयं पि पच्छा। वोसरिदव्वं जहाकाले॥ १२ ॥

अर्थ—तींठापाछै क्षपक गुरुकी आज्ञाकरिकै सर्व च्यारिप्रकारका आहार संघका समुदायका मध्य त्याग करै अथवा समाधि जो सावधानी ताके हेतु पानक आहार तो करना योग्य है अर अन्य तीन आहार त्यागनेयोग्य हैं। पाछै यथाकालमें पान आहारभी त्यागना योग्य है ॥ गाथा—

जं पाणयपरियम्मं-। मि पाणयं छांव्वह समक्खादं ॥
तं से ताहे कप्पदि। तिविहाहारस्स वोसरणे ॥ १३ ॥

अर्थ— जो पानका परिकर्ममें पहली छहप्रकारका पान कह्यो, सो क्षपककै तीनप्रकार आहारके त्यागका अवसरमें ग्रहण करनेयोग्य है ॥ भावार्थ— जब क्षपक तीनप्रकार आहारका त्याग करिजाय तदि छप्रकार पीवनेयोग्य जो पहली कह्या तिनमैंतैं कोई पान पीवनेयोग्य है ॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानके चालीस अधिकारनिविषैं प्रत्याख्यान नामा तीसमां अधिकार दशगाथानिमैं समाप्त कीया ॥ अब क्षामण नामा इकतीसमां अधिकार च्यारि गाथानिकरि कह्या है ॥ गाथा—

तो आयरियउवज्झा-। यसिस्से साधम्मिए कुलगणे य ॥
जो होज्ज कसाउं से। सव्वं तिविहेण खामेदि ॥ १४ ॥

अर्थ— प्रत्याख्यान जो तीनप्रकारके आहारका त्याग ताकूं कीयापाछैं आचार्यनिविषैं तथा उपाध्यायनिविषैं शिष्यनिविषैं सधर्मीनिविषैं कुलविषैं गण जो संघ ताविषैं जो कषाय होय तीं सर्वहीनैं मनवचनकायकरिकै क्षमा ग्रहण करावै–निराकरण करावै ॥ गाथा–

अब्भहिदजादहासो। मत्थम्मि कदंजलीकदपणामो ॥
खामेइ सव्वसंघं। संवेगं संजणेमाणो ॥ १५ ॥

अर्थ—उत्पन्न हुवा है चित्तमें हर्ष जाकै, अर कीया है मस्तकविषैं अंजुली जानैं, अर कीया है नमस्कार जानैं ऐसा क्षपक सर्व संघकै धर्मानुराग उपजावता क्षमा ग्रहण करावै ॥ भावार्थ—अब क्षपक नमस्कार करि हस्तांजुलि मस्तक चढाय सर्व संघसूं क्षमा करावै ॥ गाथा–

मणवयणकायजोगे-। हिं पुराकदकारिदे अणुमदे वा ॥
सव्वे अवराधपदे। एस खमावेमि णिस्सल्लो ॥ १६ ॥

अर्थ—मनवचनकायकरिकै जो दोष मैं पूर्वैं कऱ्या होय, कराया होय, करताकूं भला जान्या होय, तिन सर्व अपराधनिनैं मैं शल्यरहित हुवो क्षमा करावूं हूं–माफ करावूं हूं ॥ गाथा–

अम्मापिदुसरिसो मे । खमदु खु जगसीयळो जगाधारो ॥
अहमवि खमामि सुद्धो । गुणसंघायस्स संघस्स ॥ १७ ॥

अर्थ— जगतके प्राणीनिके संसारपरिभ्रमणका आताप ताके हरनेतें अतिशीतल अर निकटभव्यनके आधार अथवा संसारसमुद्रमें डूबते प्राणीनिकूं हस्तावलंबन देनेवाला अर मातापितासमान रक्षा करनेवाला अर शिक्षा करनेवाला ऐसा संघ हमारेविषें क्षमा करहू। अर मैंहू मनवचनकायतें शुद्ध होय सम्यग्दर्शनादिक गुणनिका समूह जो संघ तामैं क्षमा करूं हूं॥ भावार्थ- मातापितासमान अर जगतकूं शीतल अर जगतकै आधार ऐसा संघ हमारेविषैं क्षमा ग्रहण करो ! अर गुणनिका समूह जो संघ तामैं शुद्ध हुवो मैंहू क्षमा करूं हूं॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषैं क्षामण नामा इकतीसमां अधिकार च्यारि गाथानिमैं समाप्त कीया॥ अब क्षपण नामा बत्तीसमां अधिकार छह गाथानिकरि कहे हैं॥ गाथा–

संघो गुणसंघाओ । संघो य विमोचओ य कम्माणं ॥
दंसणणाणचरित्ते । संघायंतो हवे संघो ॥ १८ ॥

अर्थ— संघ है सो गुणनिका समूह है, संघ है सो कर्मनिका नाश करनेवाला है,

दर्शनज्ञानचारित्रनैं एकठ्ठा करै, समूहरूप करै, सो संघ होत है ॥ गाथा—

इय खामिय वेरग्गं । अणुत्तरं तवसमाधिमारूढो ॥
पप्फोडंतो विहरदि । बहुभवबाधाकरं कम्मं ॥ १९ ॥

अर्थ— ऐसैं क्षमा ग्रहण करिकै अर सर्वोत्कृष्ट वैराग्य अर सर्वोत्कृष्ट तपमैं समाधानीकूं प्राप्त हुवा जो क्षपक, सो बहुत भवनिमैं बाधा करनेवाला कर्मकूं निर्जरा करता संता प्रवर्ते है ॥ गाथा—

वट्टंति अपरिदंता । दिवा य रादो व सव्वपरिकम्मे ॥
पडिचरया गुणधरया । कम्मरयं णिज्जरेमाणा ॥

अर्थ— बहुरि गुणनिके धारक अर कर्मरजकी निर्जरा करते जे निर्यापकाचार्य, ते क्षपकका रात्रिमैं दिनमें सर्व परिकर्म जो सेवन, तामैं खेदरहित हुवा निरंतर प्रवर्ते हैं ॥

जं बद्धमसंखेज्जा- । हि रयं भवसदसहस्सकोडीहिं ॥
सम्मत्तुप्पत्तीए । खवेइ तं एयसमयेण ॥ २१ ॥
एयसमयेण विधुणदि । उवउत्तो बहुभवज्जियं कम्मं ॥
अण्णयरम्मि य जोगे । पच्चक्खाणे विसेसेण ॥ २२ ॥
एवं पडिकमणाए । काउसग्गे य विणयसज्झाए ॥

अणुपेहासु य जुत्तो । संथारगउ धुणदि कम्मं ॥ २३ ॥

अर्थ-- जो कर्म असंख्यातकोटि भवनिकरि बंध कीया सो कर्मरज सम्यक्त्वकी उत्पत्तीविषैं ज्ञानी एक समयमें क्षिपावे है, निर्जरा करे है ॥ बहुरि अन्यतपमें वा च्यारिप्रकारका आहारका त्यागमें उपयुक्त हुवा जो क्षपक सो बहुतभवनिकरि उपार्जन कीया जो कर्म, सो एकसमयमें क्षिपावे है । ऐसैं प्रतिक्रमणमें, कायोत्सर्गमें, विनयमें, स्वाध्यायमें, बारह अनुप्रेक्षामैं युक्त जो संस्तरनैं प्राप्त हुवा जो क्षपक, सो कर्मकी निर्जरा करे है ॥

इति सविचार भक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषैं क्षपण नामा बत्तीसमां अधिकार छह गाथानिकरि समाप्त कीया ॥ अब अनुशिष्टि नामा तेतीसमां अधिकार सातसैं सत्तरि गाथानिकरि कहे हैं ॥ तामैं च्यारि गाथानिमैं सामान्याशिक्षा कहे हैं ॥ गाथा—

णिज्जवया आइरिया । संथारत्थस्स दिंति अणुसिट्ठिं ॥
संवेगं णिव्वेगं जणंतया । कण्णजावं से ॥ २४ ॥

अर्थ—निर्यापक आचार्य हैं ते क्षपककूं जिनसूत्रकी आज्ञाप्रमाण अनुशिष्टि जो शिक्षा ताहि देवे हैं अर संसारतैं भय अर वैराग्य उपजावता क्षपकके अर्थि कर्णनिमैं जाप देहैं ॥ सो वह कर्णजाप कहा है, सो कहे हैं ॥ गाथा—

णिस्सल्लो कदसुद्धी । विज्जावच्चकरवसधिसंथारं ॥
उवधिं च सोधयित्ता । सल्लेहणमोकुण इदाणिं ॥ २५ ॥

अर्थ— भो मुने! अब तत्त्वनिका श्रद्धान करिकै अर सरलता करिकै अर भोगनिमैं निःस्पृहता करिकै मिथ्यामायानिदान-शल्यरहित होहू। अर रत्नत्रयकी शुद्धता करि कृतशुद्धि होहू। अर निःशल्य अर कृतशुद्धि ऐसा हुवा वैयावृत्त्य करनेवालेनिकूं अर वसतिका तथा उपकरणनिकूं शोधिकरिकै अर सल्लेखनाकूं करहू॥ भावार्थ– उपदेश करे हैं, जो, भो मुने! शल्यरहित होय अर रत्नत्रयमें शुद्ध होय अर हृदयमें ऐसा चिंतवन करो, 'मेरे वैयावृत्त्य करनेवाले संयमके साधक हैं अक संयमके बिगाड-नेवाले हैं?' ऐसैंही वसतिका तथा उपकरणनिमैंभी चिंतवन करो, जो, 'या वसतिका तथा उपकरण संयम उज्वल करनेवाले हैं अक संयम मलिन करनेवाले हैं?' ऐसा निर्णय करि बाह्य अभ्यंतरकी शुद्धता करि सल्लेखना करहू॥ गाथा–

मिच्छत्तस्स य वमणं। सम्मत्ते भावणा परा भत्ती॥
भावणमोक्काररदिं। णाणुवजुत्तो सदा कुणह ॥ २६ ॥

अर्थ— भो मुने! मिथ्यात्वका वमन करो, अर सम्यक्त्वमें वारंवार भावना करो, अर पंचपरमेष्ठीके गुणनिमैं अनुरागरूप परम भक्ति करहू, बहुरि पंच परमगुरु-

निकूं नमस्काररूप जो भावणमोकार तामैं रति करहू— जो 'नमस्तस्मै' इत्यादिक शब्दका उच्चारण करना, तथा मस्तक नमावना, अंजुली जोडि खडा रहना ये द्रव्यनमस्कार है अर पंचपरमगुरुनिका गुणनिमैं अनुराग करि आत्माकी नम्रता सो भावनमस्कार है, तामैं रति करहू, बहुरि ज्ञानोपयोगरूप निरंतर प्रवृत्ति करहू ॥

पंचमहव्वयरक्खं । कोहचउक्कस्स णिग्गहं परमं ॥
दुद्दंतिंदियविजयं । दुविहतवे उज्जमं तह य ॥ २७ ॥

अर्थ— भो मुने! पंचमहाव्रतकी रक्षा करहू। अर क्रोधचतुष्कको परम निग्रह करो। दुर्दम जे इंद्रिय तिनको विजय करो। तथा दोयप्रकारका तपमैं उद्यम करो ॥ अब मिथ्यात्वका वमन ग्यारह गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

संसारमूलहेदुं । मिच्छत्तं सव्वधा विवज्जेहि ॥
बुद्धी गुणण्णिदं पि हु । मिच्छत्तं मोहिदं कुणइ ॥ २८ ॥

अर्थ— संसारपरिभ्रमणका मूलकारण जो मिथ्यात्व, ताही सर्वप्रकारकरि मनवचनकायकरिकै वर्जन करो। गुणनिकरि सहितहू बुद्धीकूं मिथ्यात्व जो है, सो मोहित करे है ॥ गाथा—

परिहर तं मिच्छत्तं । सम्मत्ताराहणाए दढचित्तो ॥

होहि णमोकारम्मि य। णाणवदभावणासु धिया ॥ २९ ॥
मयतण्हियाउ उदय-। त्ति मया मण्णंति जह सतण्हयगा ॥
तह य णरा वि असब्भू-। दं सब्भूदंति मोहेण ॥ ७३० ॥

अर्थ— हे मुने! मिथ्यात्वको त्याग करहु अर सम्यक्त्वाराधनामैं तथा पंचनमस्कार करनेमें तथा ज्ञानभावनामैं व्रतभावनामैं बुद्धिकरिकै दृढचित्त होहू। इस मिथ्यात्वतैं समस्तपदार्थनिकूं विपरीत ग्रहण करे है। जैसैं जलकी तृष्णासहित जे मृग कहिये वनका जीव, ते मृगतृष्णानिकूं जल मानत हैं, तैसैं संसारी जीव मोहकरिकै असत्यार्थहूकूं सत्यार्थ माने है ॥ गाथा—

मिच्छत्तमोहणादो। धत्तूरयमोहणं वरं होई ॥
वड्ढेदि जम्ममरणं। दंसणमोहो दु ण दु इदरं ॥ ३१ ॥

अर्थ— मिथ्यात्वतैं उपज्या जो मोह, तातैं, धत्तूरतैं उपज्या मोह अति भला है। जैसैं दर्शनमोहका उदय अनंतानंत जन्ममरण वधावै, तैसैं धत्तूर नहीं वधावै। धत्तूरा खाय हुवा तो अल्पकाल उन्मत्त करे है अर मिथ्यादर्शन अनंतानंतभवपर्यंत अचेत करिकरि मारे है! तातैं जन्ममरणके दुःखनितैं भयभीत होय सो मिथ्यादर्शनका त्याग करे है ॥ अब इहां कोऊ कहै— मिथ्यात्वका त्याग तो पहलीही करि मुनिव्रत धाऱ्या

है, बहुरि मिथ्यात्वका त्यागका उपदेशका कहा प्रयोजन है? ताका उत्तर कहे है—

जीवो अणादिकाळं। पवत्तमिच्छत्तभाविदो संतो ॥
ण रमेज्ज हु सम्मत्ते। एत्थ पयत्तं खु कादव्वं ॥ ३२ ॥

अर्थ— अनादिकालका प्रवर्त्या जो मिथ्यात्व ताहि अनुभवनरूप कीया संता जीव सम्यक्त्वमें नहीं रमे है, तातैं इस सम्यक्त्वहीमैं प्रयत्न करना योग्य है॥ भावार्थ– जैसैं कोऊ बिलमें बहोत कालका वसनेवाला सर्प निवारण किया हुवाहू बिलमें प्रवेश करेही है–रोक्या हुवाहू नही रुके है, तैसैं संसारी जीवनिके हृदयरूप बिलमें अनादिका वसनेवाला जो मिथ्यात्वसर्प सो वारंवार रोक्या हुवाहू नही रुके है--प्रवेश करेही है, तातैं अव्रती होहू वा व्रती श्रावक होहू वा मुनीश्वर होहू मिथ्यात्वका अभावकी अर सम्यक्त्वकी दृढताकी भावना निरंतर करवोही करे॥ गाथा—

अग्गिविसकिण्हसप्पा-। दिया य दोसं ण तं करेजण्हू ॥
जं कुणदि महादोसं। तिव्वं जीवस्स मिच्छत्तं ॥ ३३ ॥
अग्गिविसकिण्हसप्पा-। दिया दु दोसं करंति एयभवे ॥
मिच्छत्तं पुण दोसं। करेदि भवकोडिकोडीसु ॥ ३४ ॥

अर्थ— जीवके जो तीव्र दोष मिथ्यात्व करे है सो महादोष अग्नि विष कृष्णसर्पा-

तह मिच्छत्तकडुइदे । जीवे तवणाणचरणविरियाणि ॥
णासंति वंतमिच्छ- । त्तम्मि सफळाणि जायंति ॥ ३८ ॥

अर्थ—जैसैं अशुद्ध कहिये गिरसहित कडवी तूंबीमैं धारण कीया दुग्ध कटुक होय है अर गिरि काटि शुद्ध कीई जो तूंबी तामैं धारण कीया दुग्ध मधुर रहे है अर सुगंध रहे हैं; तैसैं मिथ्यात्वकरिकै कटुक जो जीव, ताविषैं ग्रहण कीये जे तप ज्ञान चारित्र वीर्य ते नाशकूं प्राप्त होय हैं, अर जा जीवका मिथ्यात्व नष्ट होगया, ता जीवविषैं तप ज्ञान चारित्र वीर्य सफल होय हैं॥ अब नव गाथानिकरि सम्यक्त्वकी शिक्षा करे हैं ॥ गाथा—

मा कासि तं पमादं । सम्मत्ते सव्वदुक्खणासयरे ॥
सम्मत्तं खु पइट्ठा । णाणचरणवीरियतवाणं ॥ ३९ ॥

अर्थ— हे मुने! सर्व सांसारिकदुःखका नाश करनेवाला जो सम्यग्दर्शन, ताके धारण करनेमें प्रमादी मति होहू—आलसी मति होहू। सम्यग्दर्शन जैसैं उज्वल होय, दृढ होय, तैसैं निरंतर उद्यम करो। जातैं ज्ञान चारित्र तप वीर्यका सम्यग्दर्शन आधार है। सम्यक्त्वविना ज्ञान चारित्र तप वीर्य एकहू नही होय है॥ गाथा—

णगरस्स जह दुवारं । मुहस्स चक्खु तरुस्स जह मुळं ॥

तह जाण सुसम्मत्तं । णाणचरणवीरियतवाणं ॥ ४० ॥

अर्थ— जैसैं नगरमें प्रवेश करनेका कारण द्वार है–द्वाराविना नगरमें कैसैं प्रवेश होय? तैसैं ज्ञान चारित्र तप वीर्य इनमें प्रवेश करनेका द्वार सम्यक्त्व है। ज्ञानचारित्रादि आत्माके अनंतगुण सम्यक्त्वद्वारै जीवकै प्रवेश करै है, सम्यग्दर्शनविना ज्ञान चारित्र तप वीर्य आत्माकै नहीं होय हैं। जैसैं मुखकी शोभा नेत्रनिकरि है, तैसैं ज्ञान चारित्र तप वीर्य सम्यग्दर्शनकरि भूषित होय हैं। जैसैं वृक्षकै मूल है, तैसैं ज्ञानादिकनिका सम्यग्दर्शन मूल है ॥ गाथा—

भावाणुरागपेमा- । णुरागमज्जाणुरागरत्तो व ।
धम्माणुरागरत्तो । य होहि जिणसासणे णिच्चं ॥ ४१ ॥
दंसणभट्ठो भट्ठो । दंसणभट्ठस्स णत्थि णिव्वाणं ॥
सिज्झंति चरियभट्ठा । दंसणभट्ठा ण सिज्झंति ॥ ४२ ॥

अर्थ— इस जगतमें लोक परपदार्थनिमैं अनुरागरूप हैं, तथा स्नेहीलोकनिमें प्रेमानुरागरूप है, तथा अष्टमदनिकरि अनुरागरूप है, अनादिका मोही हुवा परमें अनुराग करै है। सो अब जिनशासनविषैं प्रवर्तो हो, तो परपदार्थनिमैं राग त्यागि परमधर्म जो रत्नत्रयरूप अपना स्वभावरूप धर्म, तामैं नित्यही अनुरागी होहू ॥ बहुरि

दिक नही करे हैं ॥ अग्नि विष सर्पादिक तो एकभवविषैं दोष करे है–दुःख देय मारे हैं, अर मिथ्यात्व है सो भवनिकी कोटाकोटी, वा असंख्यातभव अनंतभवपर्यंत दोष करे हैं–मारे है ॥

भावार्थ–– यो जीव मिथ्यात्वका प्रभावकरि अनंतभवनिमें अग्निमें बलिकरिकै मऱ्या है, अनंतवार विषकरिकै मऱ्या है, अनंतवार कृष्णसर्पादिकनिके डसनेतैं मऱ्या है, अनंतवार सिंहव्याघ्रादिकनिकरि विदाऱ्या गया है, अनेकवार दुष्टमनुष्यनिकरि हण्या गया है, अनेकवार शस्त्रनितैं विदाऱ्या गया है, अनंतवार जलमें डूबिडूबि मऱ्या है, अनंतवार नदीनिके प्रवाहमें वहिकरि मऱ्या है, अनंतवार पर्वततैं पतनकरि मऱ्या है, अनेकवार कूपादिकनिमें पडिकरि मऱ्या है, अनंतवार क्षुधावेदनाकरि मऱ्या है, अनंतवार तृषावेदनाकरि मऱ्या है, अनंतवार रोगनिकी तीव्र वेदना भोगता भोगता मऱ्या है, अनंतवार दारिद्रका दुःखकरि पीडित हुवा मऱ्या है, अनंतवार बंदीगृहमें पऱ्या हुवा मऱ्या है, अनंतवार ताडन मारण विदारण छेदनकरि मऱ्या है; अनंतवार शीतवेदना तथा उष्णवेदना भयवेदनातैं मऱ्या है, अनंतवार अंग गलिगलि मऱ्या है, अनंतवार खाया गया है, रांध्या गया है, छेद्या गया है, भेद्या गया है, बहोत कहा कहिये! सकलदुःखनिका मूल एक मिथ्यात्व है! सर्वसंसारके दुःख एक

मिथ्यादर्शनके प्रभावकरि होय हैं!! ॥ गाथा–

मिच्छत्तसल्लविद्धा । तिव्वाउ वेदणाउ वेदंति ॥
विसलित्तकंडविद्धा । जह पुरिसा णिप्पडीकारा ॥ ३५ ॥

अर्थ— जैसैं विषकरिकै लिप्त जो बाण, ताकरि वेधे जे पुरुष, तिनका इलाज नहीं–मरयाही जाय है! तैसैं मिथ्यात्वशल्यकरि वेध्या पुरुषहू तीव्र वेदना निगोदमें तथा नरकतिर्यंचमैं अनंतानंतकाल अनुभवै है! इलाज निकलनेका नहीं पहुंचे है !! गाथा–

अच्छीणि संघसिरिणो । मिच्छत्तणिकाचणेण पडिदाइं ॥
काळगदो वि य संतो । जादो सो दीहसंसारे ॥ ३६ ॥

अर्थ— जैसैं संघश्री नामा कोई पुरुषका मिथ्यात्वकी तीव्रताकरि दोऊ नेत्र आय पडे! अर पाछै अंध होय तीव्रवेदना भोगतो मरणकरि अनंतसंसारमें परिभ्रमण करनेवालो हुवो ॥ कोऊ कहे— एक मिथ्यात्व हमारे है, तो होहू । मै दुर्धरचारित्र धारण करता हूं। सो चारित्र मोकूं संसारके दुःखतैं निकासनेकूं समर्थ है। ऐसी आशंका करे है। सो मति करहू ऐसैं दिखावे हैं ॥ गाथा—

कडुगम्मि अणिवलिद- । म्मि दुद्धिए कडुगमेव जह खीरं ॥
होदि णिहिदं तु णिवलि- । यम्मि य मधुरं सूगंधं च ॥ ३७ ॥

जो दर्शनकरि भ्रष्ट है, सो भ्रष्ट है। जातैं सम्यग्दर्शनरहितकै अनंतानंतकालहूमें निर्वाण नहीं होय है। अर जो चारित्रकरि भ्रष्ट है, रहित है, अर जाका सम्यग्दर्शन नही छूट्या ताकै थोरा कालमें निर्वाण होसी। अर जाका सम्यग्दर्शन छूटि गया सो अनंतकालहूमें सिध्द नही होयगा ॥ गाथा—

दंसणभट्टो भट्टो। ण हु भट्टो होइ चरणभट्टो दु ॥
दंसणममुयंतस्स हु। परिवडणं णत्थि संसारे ॥ ४३ ॥

अर्थ— सम्यग्दर्शनकरि भ्रष्ट है सो भ्रष्ट है, चारित्रकरिकै भ्रष्ट सो भ्रष्ट नही है। सम्यग्दर्शन जाका नही छूट्या ताका संसारमें पतन नही होय है॥ भावार्थ— कर्मका तीव्र उदयकरि जाका चारित्रव्रत बिघडीभी जाय अर श्रद्धान नही बिगडे, तो संसारपरिभ्रमण नही करै, तीसरे भव चारित्र ग्रहणकरि निर्वाणकूं प्राप्त होजाय है। अर जाका सम्यक्त्व छूटि गया, सो तो अनंतसंसारीही होय है॥ गाथा—

सुध्दे सम्मत्ते अवि-। रदो वि अज्जेदि तित्थयरणामं ॥
जादो दु सेणिगो आ-। गमेसि अरहो अविरदो वि ॥ ४४ ॥

अर्थ—सम्यक्त्व शुद्ध होता संता व्रतरहितहू पुरुष तीर्थंकरनामकर्मका उपार्जन करे है। व्रतरहितहू श्रेणिकराजा सम्यक्त्वके प्रभावतें आगामी कालमें अरहंत होसी॥ गाथा—

कल्लाणपरंपरयं । लहंति जीवा विसुद्धसम्मत्ता ॥
सम्मद्दंसणरयणं । णग्घादि ससुरासुरो लोउ ॥ ४५ ॥

अर्थ— निर्मल है सम्यग्दर्शन जाका ऐसे जीव कल्याणरूप इंद्रपणो, चक्रीपणो, अहमिंद्रपणो, तीर्थंकरपणो प्राप्त होय हैं। सुर असुरसहित सर्व लोक मौल्यपणाकरि दीयेहू सम्यग्दर्शनरत्न नहीं प्राप्त होय है ॥ भावार्थ- सम्यग्दर्शनरत्नका मोल संपूर्ण सुर असुरसहित लोकहू नहीं है ॥ गाथा—

सम्मत्तस्स य लंभो । तेलोक्कस्स य हवेज्ज जो लंभो ॥
सम्मद्दंसणलंभो । वरं खु तेलोक्कलंभादो ॥ ४६ ॥
लध्दूण य तेलोक्कं । परिवडदि परिमिदेण कालेण ॥
लध्दूण य सम्मत्तं । अक्खयसोक्खं लहदि मोक्खं ॥ ४७ ॥

अर्थ—एक तो सम्यक्त्वका लाभ, दूजा त्रैलोक्यका लाभ, तिनमैं त्रैलोक्यका लाभतैंहू सम्यग्दर्शनका लाभ श्रेष्ठ है ॥ धरणेंद्रपणाका लाभ, नरेंद्रपणाका लाभ, देवेंद्रपणाका लाभ ताहि प्राप्त करिकैहू जीवका प्रमाणीककालमैं पतन होयही है। त्रैलोक्यका राज्यहू पाय राज्यतैं छूटि मरणकरि चतुर्गतिमैं परिभ्रमण करैही है। अर सम्यक्त्वकूं प्राप्त होय, सो चतुर्गतिसंसारमैं जन्ममरण नहीं करे है—अविनाशी सुखकूं

प्राप्त होय है। तातैं सम्यक्त्वका लाभसमान त्रैलोक्यका लाभहू श्रेष्ठ नहीं ॥ ऐसैं नव-गाथानिकरि सम्यक्त्वका महिमा वर्णन कीया ॥ अब नवगाथानिकरि जिनेंद्रादिक-निकी भक्तिका महिमा कहै हैं ॥ गाथा–

अरहंतसिद्धचेदिय- । पवयणआयरियसव्वसाहूसु ॥
तिव्वं करेदि भत्ती । णिव्विदिगिच्छेण भावेण ॥ ४८ ॥

अर्थ— हे आत्मकल्याणके अर्थी हो! अरहंत सिद्ध अर चैत्य कहिये अरहंतसिद्धनिके प्रतिबिंब अर प्रवचन कहिये जिनेंद्रका प्ररूप्या परमागम अर आचार्य अर सर्व साधु इनिविषैं विचिकित्सा जो भावनिकी मलिनता ताकरि रहित–भावनिकी शुद्धताकरिकै अर तीव्र भक्तीकूं करो ॥ गाथा–

संवेगजणिदकरणा । णिस्सल्ला मंदरुव्व णिक्कंपा ॥
जस्स दढा जिणभत्ती । तस्स भयं णत्थि संसारे ॥ ४९ ॥

अर्थ— जिस पुरुषकै जिनेंद्रभगवानमें भक्ती दृढ है, तिस पुरुषकै संसारविषैं भय नहीं। कैसीक है भक्ति? संसारके परिभ्रमणतैं भयभीत जीवनिकै उपजै है, जे मूढ संसारमें राच रहे तिनकै भक्ती नहीं उपजै है। तातैं सम्यग्ज्ञानकरि पायो है आत्मलाभ जानै, बहुरि मिथ्यात्व मायाचार निदान तीन शल्यकरि रहित, बहुरि मेरुगिरिकी-

नांई चलायमान नही; ऐसी जिनभक्ति जाकै भई, ताकै संसारका अभावही भया ॥
भावार्थ– जिनेंद्रका स्वभाव रागादिकरहित शुद्ध आत्माका स्वभाव है। जो अरहंतकूं जाण्या, सो अपने शुधात्मस्वरूपकूं जाण्या अर शुद्ध आत्माकूं जाण्या सो अरहंतकूं जाण्या। जो अरहंतका स्वरूपका अनुभव सो आत्माका अनुभव। जो अरहंतका स्वरूपमें स्थिर रहना सो शुध्द आत्मस्वरूपमें स्थिर रहना है। तातैं आत्मस्वरूपका श्रद्धान अर आत्मस्वरूपका ज्ञान अर आत्मस्वरूपमें स्थिति ये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र हैं ते साक्षान्मोक्षमार्ग हैं। तातैं जाकै जिनभक्ति, ताकै बहुरि संसारपरिभ्रमण नहीही है यह निश्चय है॥ गाथा–

एया वि सा समत्था। जिणभत्ती दुग्गइं णिवारेदुं ॥
पुण्णाणि य पूरेदुं। आसिद्धि परंपरसुहाणं ॥ ७५० ॥

अर्थ— एकही सो जिनेंद्रभगवानकी भक्ति दुर्गतिनिवारण करनेकूं समर्थ है, अर सिद्धिपर्यंत सुखानिके कारण जे पुण्यप्रकृति अथवा शुद्धभाव तिनकूं परिपूर्ण करनेकूं समर्थ है, तातैं जिनभक्तिहीकूं प्राप्त होहू। सो यह भक्ति अभ्यंतर अर बाह्य दोयप्रकार है। तिनमैं जो परमात्माका शुद्ध निर्विकार जो ज्ञानदर्शनस्वभाव तामैं आपका आत्मानैं ऐसा लीन करै, जो भेद नही दीखै–साक्षात् परमात्मस्वभावका अनुभवनमें

वीएण विणा सस्सं । इच्छदि सो वासमब्भएण विणा ॥
आराधणमिच्छंतो । आराधणभत्तिमकरंतो ॥ ५४ ॥

अर्थ——जो पुरुष आराधनाका धारक जो पंच परमगुरु तामैं भक्ति नही करे है, अर आपकै आराधना चाहे है, सो बीजविना धान्यकी इच्छा करे है अर बादले-विना वर्षा चाहे है ॥ गाथा–

विधिणा कदस्स सस्स- । स्स जहा णिप्पादयं हवदि वासं ॥
तह अरहादियभत्ती । णाणचरणदंसणतवाणं ॥ ५५ ॥

अर्थ— जैसैं विधिकरिकै कीया जो धान्य ताका उत्पन्न करनेवाली वर्षा होत है, वर्षाविना धान्य नही उपजै, तैसैं अरहंतादिकनिकी भक्ति जीवकै ज्ञान चारित्र दर्शन तप गुणके उपजावनेवाली होय है–अरहंतादिकनिकी भक्तिविना दर्शन ज्ञान चारित्र तपकी उत्पत्ति नही होय है ॥ गाथा–

वंदणभत्तीमत्ते- । ण चेव मिहिलाहिवो पउम्मरहो ॥
देविंदपाडिहेरं । पत्तो जादो गणधरो य ॥ ५६ ॥

अर्थ— मिथिला नगरका अधिपति जो पद्मरथ नामा राजा, सो अरहंतादिकनिकी वंदनामैं अनुरागमात्रकरिकैं देवेंद्रसूं प्रातिहार्यनिकूं प्राप्त होतो भयो अर गणधर होत

भयो ।। ऐसैं अरहंतादिकनिकी भक्ति नवगाथानिमें कही ॥ अब पंचनमस्कारका उपदेश छह गाथानिकरि करे हैं ॥ गाथा--

आराधणापुरस्सर- । मणण्णहिदर्उ विसुद्धलेस्सार्उ ॥
संसारस्स खयकरं । मा मोचीर्उ णमोकारं ॥ ५७ ॥

अर्थ-- भो मुने! अन्य विषय-कषाय-शरीरादिकतैं मनकूं निकालि अर एकाग्रमन हुवा संता अर लेश्याकी उज्वलता जो कषायनिकी मंदता ताकूं प्राप्त हुवा संता आराधनामैं अग्रेसर अर संसारका नाश करनेवाला ऐसा पंचनमस्कारमंत्र मति छांडो-निरंतर चिंतवन करो ॥ भावार्थ- पंचनमस्कारका स्वरूपमें लीनता है, सो कषायकी मंदताका अर आराधनाका प्रधानकारण है। तातैं संसारका नाश करनेवाला पंचनमस्कारमंत्रका स्मरण जाप्य एक क्षणहू मति विस्मरण होहू ॥ गाथा-

अरहंतणमोक्कारो । एक्को वि हविज्ज जो मरणकाले ॥
सो जिणवयणे दिट्ठो । संसारुच्छेदणसमत्थो ॥ ५८ ॥

अर्थ-- जो मरणका अवसरविषैं एक अरहंतनमस्कारही संसारको छेदनेमें समर्थ है, ऐसैं जिनेंद्रका वचनमें दिखाया है ॥ गाथा--

जे भावणमोक्कारे- । ण विणा सम्मत्तणाणचरणतवा ॥

लीन होजाय सो तो अभ्यंतरभक्ति कहिये। अर परमात्माका कह्या दशलक्षणधर्म तथा जीवदयाधर्ममें प्रीति करना तथा रागादिकनिका विजयरूप जिनेंद्रकी आज्ञाप्रमाण प्रवृत्ति करना सो बाह्यभक्ति है ॥ गाथा–

तह सिद्धचेदिए पव-। यणे य आयरियसव्वसाधूसु ॥
भत्ती होदि समत्था। संसारुच्छेदणे तिव्वा ॥ ५१ ॥

अर्थ — जैसें अरहंतभक्तीकूं कल्याणकारिणी कही; तैसें सिद्धभगवानमें तथा अरहंतके प्रतिबिंबमें तथा सर्वजीवनका उपकारक स्याद्वादरूप जिनेंद्रका परमागममें तथा आचार्य उपाध्यायनिमें तथा सर्वसाधुनिमें तीव्र भक्ति है सो संसारका छेदनेमें समर्थ है। जातें इनिका गुणनिमें अनुराग है सो आत्मगुणानिमें अनुराग है, आत्मगुणनिमें अनुराग है सो परमेष्ठीके गुणनिमें अनुराग है। सो वीतरागस्वभावसूं पूर्व अवस्थामें अनुराग साक्षाद्वीतरागरूप आत्माकूं करे है ॥ कोऊ कहै अनुराग तो बंधका कारण है, इहां पंचपरमेष्ठीमें अनुराग मोक्षका कारण कैसें? सो यो अनुराग विषयकषायादिक वा शरीर धन बांधवादिक परवस्तुमें अनुराग होय तैसें नहीं है, जो बंध करै। इनिका अनुराग तो सकल परवस्तुनितें रागका अभाव कराय वीतरागरूप निजभावमें स्थिति करादेनेवाला है। सो जितनैं आप अर परमात्मा दोय दृष्टिमें आवे

है, तितनैं परमात्मामैं अनुराग कहिये हैं; अर जब ध्याता ध्यान ध्येयकी एकता होजाय है, तब दूसरा दीखैही नही है, अनुराग कोनसूं करै? ॥ गाथा—

विज्जा वि भत्तिवंत- । स्स सिद्धिमुवयादि होदि सफला य ॥
किह पुण णिव्वुदिवीजं । सिज्झहादि अभत्तिमंतस्स ॥ ५२ ॥

अर्थ— भक्तिसहित पुरुषकै विद्याहू सिद्धताकूं प्राप्त होय है अर भक्तिवानकीही विद्या सफल होय है। जातैं विद्याका फल परमात्मस्वरूपमें भक्तिही जाननी अर परमात्मा जो शुद्धात्मा तामैं भक्तिरहितकै निर्वाणका वीज जो रत्नत्रय सो कैसैं सिद्धीनैं प्राप्त होय? नही होय ॥ गाथा—

तेसिं आराहणणा- । यगाण ण करेज्ज जो णरो भत्तिं ॥
धत्तिं पि संजमं तो । सालिं सो ऊसरे ववदि ॥ ५३ ॥

अर्थ— जो पुरुष आराधनाके नायक जे अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु इनिविषैं भक्तीकूं नही प्राप्त होय है, सो अतिशयकरिकै संयमधारण करतोहू ऊषरक्षेत्र जो खारडी भूमि तिसमें शालि वोवै है। जैसैं खारडी भूमीमैं कोऊ बीज वोवै ताकै बीजका नाश होय फलप्राप्ति नही होय है, तैसैं अतिशयकरि संयम पालन करताहू अरहंतादिकनिमैं भक्तिविना मिथ्यादृष्टिही है, मोक्षफल कहातैं प्राप्त होयगा? ॥ गाथा—

ण हु ते होंति समत्था । संसारुच्छेदणं कादुं ॥ ५९ ॥

अर्थ— भावनमस्कारविना ये सम्यक्त्व ज्ञान चारित्र तप संसारके छेदन करनेमें समर्थ नही होत हैं ॥ अब कोऊ या आशंका करै जो पंचनमस्कारमंत्रही संसारका नाश करनेमें समर्थ है, तो सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र इनिकूं मोक्षमार्ग कहे, सो कहना विरुद्ध होयगा ॥ ताका उत्तर—

चदुरंगाए सेणा- । ए णायगो जह पवत्तउं होदि ॥

तह भावणमोक्कारो । मरणे तवणाणचरणाणं ॥ ६० ॥

अर्थ— जैसैं चतुरंगसेनाको नायक प्रवर्तक होत है, नायकविना सेना कुछ करनेमें समर्थ नही; तैसैं मरणका अवसरमें भावनमस्कार है, सो तप ज्ञान चारित्रका प्रवर्तक है। भावनमस्कारविना ज्ञान दर्शन चारित तपकी प्रवृत्ति नही होय है ॥ गाथा—

आराहणापडायं । गेण्हंतस्स हु करो णमोक्कारो ॥

मल्लस्स जयपडायं । जह हत्थो घित्तुकामस्स ॥ ६१ ॥

अर्थ— आराधनापताकाकूं ग्रहण करता पुरुषकै यो पंचनमस्कारमंत्र हस्त है। जैसैं जय जो जीती ताकी ध्वजाकूं ग्रहण करनेका इच्छक जो मल्ल जो जोद्धा ताकै हस्त है, हस्तविना ध्वजाग्रहण नही होय, तैसैं पंचनमस्कारका शरणविना आराधनाहू ग्रहण

नही होय है ॥ गाथा--

अण्णाणी वि य गोवो । आराधित्ता मदो णमोक्कारं ॥ १ गोपः

चंपाए सेट्ठिकुले । जादो पत्तो य सामण्णं ॥ ६२ ॥

अर्थ— अज्ञानी ऐसाहू ग्वाल पंचनमस्कारनैं आराधनाकरि अर मरण कीया, सो पंचनमस्कारका प्रभावतैं चंपानगरीमैं श्रेष्ठीका कुलमें जन्म पाय बहुरि मुनिपणानैं प्राप्त होत हुवो । यातैं पंचनमस्कारसमान जगतमें जीवको उपकारक अन्य नही है ॥ ऐसैं पंचनमस्कारका प्रभाव गाथा छहकरि कह्या ॥ अब सोलह गाथानिमैं ज्ञानोपयोगका वर्णन करे हैं ॥ गाथा–

णाणोवउँगरहिदे- । ण ण सक्को चित्तणिग्गहो काउं ॥

णाणं अंकुसभूदं । मत्तस्स हु चित्तहत्थिस्स ॥ ६३ ॥

अर्थ— ज्ञानोपयोगरहित जो जीव सो चित्तका निग्रह करनेकूं नही समर्थ होत है। चित्तरूप मदोन्मत्त हस्तीकै वश करनेमें ज्ञानका अभ्यास अंकुशसमान है ॥

विज्जा जहा पिसायं । सुठ्ठुवउत्ता करेदि पुरिसवसं ॥

णाणं हिदयपिसायं । सुठ्ठुवउत्तं तह करेदि ॥ ६४ ॥

अर्थ— जैसैं भलेप्रकार प्रयुक्त जो विद्या सो पिशाचनैं पुरुषकै वशि करे है; तैसैं

भलेप्रकार आराधना किया ज्ञान हृदयरूप पिशाचकूं वशीभूत करे है ॥ गाथा–

उवसमइ किण्हसप्पो । जह मंतेण विधिणा पउत्तेण ॥
तह हिदयकिण्हसप्पो । सुट्ठुवउत्तेण णाणेण ॥ ६५ ॥

अर्थ— जैसें विधिकरि आराधन कीया मंत्रकरि कृष्णसर्प उपशमतानैं प्राप्त होय, तैसें आच्छीरीति आराधन कीया ज्ञानहू मनरूप कृष्णसर्पकूं उपशम करे है ॥ गाथा–

आरण्णउ वि मत्तो । हत्थी णियमिज्जदे वरत्ताए ॥
जह तह णियमिज्जदि सो । णाणवरत्ताए मणहत्थी ॥ ६६ ॥

अर्थ— जैसें वरत्रा जो गजबंधनी ताकरिकै मदोन्मत्त वनका हस्ती बंधननैं प्राप्त करिये; तैसें ज्ञानरूप वरत्राकरिकै मनरूप हस्ती वशीभूत करिये है ॥ गाथा–

जह मक्कडउ खणमवि । मज्झत्थो अच्छिदुं ण सक्केइ ॥
तह खणमवि मज्झत्थो । विसएहिं विणा ण होदि मणो ॥ ६७ ॥

अर्थ— जैसें मर्कट जो वानर सो क्षणमात्रहू निर्विकार तिष्ठनेकूं नही समर्थ है; तैसें विषयनिविना मनहू निर्विकार क्षणमात्रहू तिष्ठवेकूं नही समर्थ है ॥ गाथा–

तह्मा सो उड्डहणो । मणमक्कडउ जिणोवएसेण ॥
रामेदव्वो णियदं । तो सो दोसं ण काहिदि से ॥ ६८ ॥

अर्थ— तातैं ऐठी उंठी उल्लंघनमें तत्पर ऐसा जो मनरूप मर्कट है, तानैं जिनेंद्रका उपदेशविषैं निश्चित रमावना योग्य है-जिनेंद्रका आगममें रमनेतैं मनमर्कट क्षपककै दोष नही करे है ॥ गाथा—

तह्मा णाणुवर्ओगो । खवयस्स विसेसंउ सदा भणिदो ॥
जह विंधणोवर्ओगो । चंदयवेज्झं करिंतस्स ॥ ६९ ॥

अर्थ— तातैं क्षपककूं विशेषतैं ज्ञानोपयोग वर्णन कीया, भावार्थ- जैसैं चंद्रकवेधकूं रूप सदाकाल प्रवर्तना योग्य है-जैसैं चंद्रकवेधनैं करता पुरुषकै व्यधानोपयोग वेधना पुरुष अपना उपयोग वेधनेमें लगाया रहे है; तैसैं कर्मकूं वेधता पुरुषहू जैसैं कर्म अर आत्मा दोऊ भिन्न होजाय तैसैं भेदविज्ञानरूप उपयोगकूं दृढ राखे है ॥ गाथा—

णाणपदीवो पज्जल- । इ जस्स हियए वि सुद्धलेसस्स ॥
जिणदिट्ठमोक्खमग्गे । पणासणभयं ण तस्सत्थि ॥ ७७० ॥

अर्थ— जिस विशुद्धलेश्याका धारकपुरुषका हृदयमें ज्ञानरूप दीपक प्रज्वलित होय है, तिस पुरुषकै जिनेंद्रका देख्या जो मोक्षका मार्ग, तामें विनाशका भय नही है। जिस मार्गमें अंधकार होय, तिस मार्गमें विनाशका भय होय है। जिस रत्नत्रय मार्गमें श्रुतज्ञानरूप दीपककरि यथावत् स्वपरपदार्थनिका प्रकाश होरह्या, तहां विनश-

उपयुक्त हुवा संता देहकूं त्यागिकरि स्वर्गविषैं पंचनमस्कारमंत्रके प्रभावकरि महर्द्धिक देव होता हुवा ॥ गाथा—

ण य तम्मि देसयाले । सव्वो बारसविधो सुदक्खंधो ॥
सक्को अणुचिंतेदुं । बलिणा वि समत्थचित्तेण ॥ ७७ ॥
एक्कम्मि वि जम्मि पदे । संवेगं वीदरागमग्गम्मि ॥
गच्छदि णरो अभिक्खं । तं मरणंते ण मोत्तव्वं ॥ ७८ ॥

अर्थ— अत्यंत बलवान् अर समर्थ है चित्त जाका ऐसाहू पुरुष मरणका देशकालविषैं सर्व द्वादशप्रकारका श्रुतज्ञान है सो चिंतवन करनेकूं समर्थ नही है। तातैं मरणका अवसरमें ऐसा कोऊ एक पदमें संवेग कहिये अनुरागकूं प्राप्त होहू जा पदतैं यो नर वीतरागमार्गमैं प्राप्त होय। सो पद मरणका अवसरमें निरंतर नही छोडना योग्य है॥ ऐसैं ज्ञानोपयोग सोलह गाथानिकरि कह्या ॥ अब अहिंसा महाव्रतका उपदेश सैंतालीस गाथानिकरि कहे हैं॥ गाथा—

परिहर छज्जीवणिका- । यवहं मणवयणकायजोगेहिं ॥
जावज्जीवं कदका- रिदाणुमोदेहिं उवजुत्तो ॥ ७९ ॥

अर्थ— भो मुने! समितिमैं मनवचनकाय—कृतकारितानुमोदनाकरिकै उपयुक्त हुवा

संता मरणपर्यंत छकायके जीवनिका वध जो हिंसा ताहि त्याग करो ॥ गाथा—

जह ते ण पियं दुक्खं । तहेव तेसिं पि जाण जीवाणं ॥
एवं णच्चा अप्पो- । वमिउं जीवेसु होहि सदा ॥ ७८० ॥

अर्थ— जैसैं तोकूं दुःख प्रिय नही है, तैसैंही तिन छकायके जीवनिकै जानहू। ऐसैं जानि सदाकाल सर्वजीवनिकूं आपसमान मानिकरि जीवनिमैं आपसमान प्रवृत्ति करहू ॥ गाथा—

तण्हाछुहादिपरिदा- । विदो वि जीवाण घादणं किच्चा ॥
पडियारं कादुं जे । मा तं चिंतेसु लभसु सुदिं ॥ ८१ ॥

अर्थ— भो मुनीश्वर तृषा तथा क्षुधादिकरि संतापित हुये संतेहू जीवनिके घातकरि इलाज मति चिंतवन करो। अर ऐसैं स्मरणकूं प्राप्त होहू–जो, मैं अनंतानंतकाल हिंसाके प्रभावकरि बहुतकालपर्यंत क्षुधा तृषा भोगि! अब या कहा वेदना है? वेदनाका नाश करनेवाला संयमभाव हमारा हृदयमें निर्विघ्न तिष्ठो ॥ गाथा—

रदिअरदिहरिसभयउ- । स्सुगत्तदीणत्तणादिजुत्तो वि ॥
भोगपरिभोगहेदुं । मा हु विचिंतेहि जीववहं ॥ ८२ ॥

अर्थ—मनोज्ञविषयनिमैं प्रीति सो रति, अर अमनोज्ञविषयनिमैं विमुखता सो अरति,

नेका भय नही ॥ गाथा–

णाणुज्जोवोज्जोवो । णाणुज्जोवस्स णत्थि पडिघादो ॥
दीवेइ खेत्तमप्पं । सूरो णाणं जगमसेसं ॥ ७१ ॥

अर्थ— ज्ञानरूप उद्योत है सो अतिशयकारी उद्योत है, जातैं अन्य दीपकादिकनिका उद्योतका तो रुकना है तथा नाश है अर ज्ञानरूप उद्योतकूं कोऊ रोकनेकूं समर्थ नही तथा नाशहू नही कोऊ हरिसके नही। बहुरि सूर्य तो अल्पक्षेत्रमें उद्योत करे है अर ज्ञानरूप उद्योत मूर्त्त अमूर्त्त सर्व लोक अलोककूं उद्योत करे है। तातैं ज्ञानोद्योत सर्वोत्कृष्ट है ॥ गाथा–

णाणं पयासउ सो- । धउ तवो संजमो य गुत्तिपरो ॥
तिण्हं पि समाउगे । मोक्खो जिणसासणे दिट्ठो ॥ ७२ ॥

अर्थ— ज्ञान है सो सर्वपदार्थनिका प्रकाशक है, बहुरि तप है सो सुवर्णतैं कीटिकाकीनांई आत्मातैं कर्ममलकूं दूरिकरि आत्माका शोधक है, संयम है सो नवीन आवते कर्मकूं रोकनेकूं तत्पर है यातैं संवर है, तीननका संयोग होतैं मोक्ष होय है, ऐसैं जिनशासनमें दिखाया है ॥ गाथा–

णाणं करणविहूणं । लिंगग्गहणं च दंसणविहूणं ॥

संजमहीणो य तवो । जो कुणदि णिरत्थयं कुणदि ॥ ७३ ॥

अर्थ— चारित्ररहित तो ज्ञान अर सम्यग्दर्शनरहित लिंग जो दीक्षाका ग्रहण करना अर इंद्रियसंयम अर प्राणसंयमरहित तपश्चरण जो करे है, सो निरर्थक करे है ॥

णाणुज्जोएण विणा । जो इच्छदि मोक्खमग्गमुवगंतुं ॥
गंतं कडिल्लमिच्छदि । अंधलयो अंधयारम्मि ॥ ७४ ॥

अर्थ— जो पुरुष ज्ञानका उद्योतविना चारित्रतपरूप मोक्षमार्गमें गमन कीया चाहे है, सो अंध होय अर महा अंधकारमें–अतिदुर्गमस्थानमें गमन कीया चाहे है ॥

जइदा खंडसिलोगे- । ण जमो मरणादु फेडिदो राया ॥
पत्तो य ससामण्णं । किं पुण जिणउत्तसुत्तेण ॥ ७५ ॥

अर्थ— जो देखो! यम नामा राजा खंड श्लोकका स्वाध्याय करनेतैंही मरणतैं भयभीत होय श्रमणपणो जो मुनिपणो ताही प्राप्त होतो हुवो, तो जिनेंद्रकथित सूत्र अध्ययन करनेवालेका तो कहा कहना ॥ गाथा–

दढसुप्पो सूलहदो । पंचणमोक्कारमित्तसुदणाणे ॥
उवजुत्तो कालगदो । देवो जाओ महड्ढीओ ॥ ७६ ॥

अर्थ— शूलीऊपरि वेंध्या जो दृढशूर्प नामा चोर, सो पंचनमस्कारमात्र श्रुतज्ञानमें

अर हर्ष, भय, उत्सुकपणा, दीनपणादिकरि युक्तहू तुम भोगपरिभोगनिके अर्थि जीव-निका वध मति चिंतवन करो ॥ गाथा-

मधुकरिसमज्जियमहुं । व संजमं थोव थोव संगलियं ॥
तेलोक्कसव्वसारं । णो वा पूरेहि मा जहसु ॥ ८३ ॥

अर्थ—हे मुने! मधुमक्षिकाकरि संचय कीया मधुकीनांई थोरा थोरा कर संचय कीया जो संयम ताहि त्रैलोक्यका सर्व सार जानि परिपूर्ण करो। यथाख्यातसंयमकूं प्राप्त होना सोही संयमकी पूर्णता है। अर जो पूर्ण नही करो तो धारण कीया तित-नाकूं मति छांडो ॥ गाथा-

दुक्खेण लभदि माणु- । स्सजादिमदिसवणदंसणचरित्तं ॥
दुक्खज्जियसामण्णं । मा जहसु तणं व अगणंतो ॥ ८४ ॥

अर्थ—यो जीव अनादिकालका निगोदहीमें वास किया है, अर कदाचित् अनंता-नंतकालमें कोई जीव निगोदतैं निकलै तो पृथ्वीकाय जलकाय अग्निकाय पवनकाय प्रत्येकवनस्पतिकायविषैं प्राप्त होय तो संख्यात असंख्यातकाल परिभ्रमण करि बहुरि निगोदहीमें वास जाय करे है। कैसाक है निगोदवास? अनंतानंतकालहूमें जातैं निकसना नही होय है। बहुरि कदाचित् अनंतानंतकालमें निकलै तो बहुरि पृथिव्या-

दिकनिमैं एक दोय संख्यात असंख्यात जन्म पाय बहुरि निगोदवास करे है। । ऐसैं अनंतानंतकाल तो एकेंद्रियहीमें वास करे है। त्रसपर्याय पावना दुर्लभ है। अर कदाचित् त्रसपर्याय पावे तो विकलचतुष्कमें परिभ्रमण करि बहुरि निगोदवास करे है। । बहुरि निकले तो पंचेंद्रियतिर्यंचमें घोर पाप करि नरकादिक दुर्गतिमैं प्राप्त होय है। मनुष्यजन्म पावना अतिदुर्लभ है। अर मनुष्यजन्महू पावै तो उत्तमजाति, उत्तमकुल, नीरोगशरीर, दीर्घायु, धनाढ्यता, सुन्दरबुद्धि, धर्मश्रवण, दर्शनज्ञान-चारित्र ये उत्तरोत्तर अत्यंत दुर्लभ अनंतानंतकालकूं दुःखकरिकै प्राप्त होय है। तामैंहू दुःखकरिकै पाया जो श्रमणपणा ताकूं तृणकीनांई अवज्ञा करता मति छांडहु ॥ गाथा—

तेलोक्कजीविदादो । वरेहि एक्कदरगत्ति देवेहिं ॥
भणिदो को तेलोक्कं । वरिज्ज संजीविदं मुच्चा ॥ ८५ ॥

अर्थ— कोऊ देव कहै, जो, एक तो त्रैलोक्यका राज्य अर दूसरा आपका जीवित, अर इनि दोऊनिमें एक ग्रहण करो, तो आपका जीवित छोडि त्रैलोक्यका राज्यकूं न ग्रहण करै है ॥ गाथा—

जं एवं तेलोक्कं । णग्घदि सव्वस्स जीविदं तह्मा ॥
जीविदघादो जीव- । स्स होदि तेलोक्कघादसमो ॥ ८६ ॥

अर्थ— जातैं सर्वप्राणीनिकै जीवनेका मोल त्रैलोक्यहू नही है, तातैं जीवका जीवनेका घात है सो त्रैलोक्यके घातसमान है ॥ गाथा—

णत्थि अणूदो अप्पं। आयासादो अणूणयं णत्थि ॥
जह तह जाण महल्लं। ण वयमहिंसासमं अत्थि ॥ ८७ ॥

अर्थ— जैसैं अणु जो परमाणु, तातैं कोऊ अल्पप्रमाण नही है अर आकाशतैं अन्य महत्प्रमाण नही है, तैसैं अहिंसासमान महान् व्रत नही है ॥ गाथा—

जह पव्वएसु मेरू। उच्चाउ होइ सव्वलोयम्मि ॥
तह जाणसु उच्चायं। सीलेसु वदेसु य अहिंसा ॥ ८८ ॥

अर्थ— जैसैं सर्व लोकविषैं पर्वतनिमैं मेरु उच्च है; तैसैं सर्व शीलनिमैं व्रतनिमैं अहिंसा नामा व्रत ऊंचो है ॥ गाथा—

सव्वो वि जहायासे। लोगो भूमीए सव्वदीवुदधी ॥
तह जाण अहिंसाए। वदगुणसीलाणि तिट्ठंति ॥ ८९ ॥

अर्थ— जैसैं आकाशविषैं सर्व लोक तिष्ठे है अर भूमीविषैं सर्व द्वीपसमुद्र तिष्ठे हैं, तैसैं अहिंसाविषैं सर्व व्रत गुण शील तिष्ठे हैं। ऐसैं तुम जानहू ॥ गाथा—

कुव्वंतस्स वि जत्तं। तुंबेण विणा ण ठंति जह अरया ॥

अरएहिं विणा य जहा । णट्ठं णेमी दु चक्कस्स ॥ ७९० ॥

तह जाण अहिंसाए । विणा ण सीलाणि ठंति सव्वाणि ॥

तिस्सेव रख्खणट्ठं । सीलाणि वदीव सस्सस्स ॥ ९१ ॥

अर्थ— जैसें रथका चक्र जो पह्या ताविषैं यत्न करतेहू तुंब जो नाहि ताविना आरा नही तिष्ठे है, अर जैसें आराविना चक्रके नेमि जो पूटी सो नष्ट होजाय है, तैसैंही अहिंसाधर्मविना समस्त शील नही तिष्ठे है। अहिंसाव्रतकी रक्षाके अर्थि धान्यके वाडीकीनांई शील तिष्ठे है ॥ गाथा–

सीळं वदं गुणो वा । णाणं णिस्संगदा सुहच्चाउं ॥

जीवे हिंसंतस्स हु । सव्वे वि णिरत्थया होंति ॥ ९२ ॥

अर्थ—जीवनिकी हिंसा करनेवाला पुरुषके शील तथा व्रत तथा गुण वा ज्ञानाभ्यास तथा निःसंगता तथा सुखत्याग सर्वही गुण निरर्थक होत हैं ॥ गाथा–

सव्वेसिमासमाणं । हिदयं गब्भो हु सव्वसत्थाणं ॥

सव्वेसि वदगुणाणं । पिंडो सारो अहिंसा हु ॥ ९३ ॥

अर्थ—यो अहिंसाधर्म सर्व आश्रमनिका हृदय है; सर्वशास्त्रनिका रहस्य है, गर्भ है, सर्वव्रतगुणनिका सारभूत पिंड है ॥ गाथा—

जम्हा असच्चवयणा- । दिएहिं दुक्खं परस्स होदित्ति ॥
तप्परिहारो तम्हा । सव्वे वि गुणा अहिंसाए ॥ ९४ ॥

अर्थ—जातैं असत्यवचन, परधनहरण, कुशीलसेवन, परिग्रहमें आसक्तता, इनिकरि परजीवांकै दुःख जो हिंसा सो होय है। तातैं असत्यवचनादिक सर्वपापनिका त्याग है, सो सर्व अहिंसाहीका गुण है॥ गाथा—

गोवंभणित्थिवधमे- । त्तणियत्ती जदि भवे परमधम्मो ॥
परमो धम्मो किह सो । ण होइ जा सव्वभूददया ॥ ९५ ॥

अर्थ—जो अन्य एकांती जन गो-ब्राह्मण-स्त्रीमात्रकीही हिंसाका त्यागकूं परमधर्म कहे हैं, तो सर्वप्राणीमात्रकी दया तो परमधर्म कैसें नही होय? ॥ गाथा—

सव्वे वि य संबंधा । पत्ता सव्वेण सव्वजीवेहिं ॥
तो मारंतो जीवो । संबंधी चेव मारेइ ॥ ९६ ॥

अर्थ—जगतके सकल जीव हैं, ते सर्वजीवनिकरि सर्वसंबंधनिकूं प्राप्त भये हैं, तातैं अन्यजीवनिकूं मारता जो जीव, सो समस्त आपके संबंधीनिकूं मारत है॥ भावार्थ—संसारमें परिभ्रमण करते जीवकै सकलजीवनिसूं पिताका पुत्रका भ्राताका माताका स्त्रीका पुत्रीका भगिनीका अनेक संबंध भये हैं। अब इहां कोई जीवकूं कोई

जीव मारे है, सो आपके अनेक संबंधीनिकूं मारे है। तातैं जीवनिकी हिंसा समस्त अपने संबंधीनिकी हिंसा है॥ गाथा–

जीववहो अप्पवहो। जीवदया होइ अप्पणो हु दया॥
विसकंटवो व हिंसा। परिहरिदव्वा तदो होदि॥ ९७॥

अर्थ-- जीवनिका घात है सो आपका घात है अर जीवनिकी दया है सो आपकी दया है। जातैं जो कोऊ परजीवकूं एकवार मारेगा, सो आप अनंतवार परजीवनिकरिकै मार्‍या जायगा! अर जो अन्यजीवकी एकवारहु दया करेगा, सो आप अनंतवार मरणतैं रहित होयगा। तातैं विषका कंटककीनाईं हिंसाका परित्याग करना योग्य है॥ गाथा–

मारणसीलो कुणदि हु। जीवाणं रक्खसुव्व उ-वेगं॥
संबंधिया वि ण य वि-। स्संभं मारितए जंति॥ ९८॥

अर्थ--- परजीवनिकूं मारनेका है स्वभाव जाका ऐसा हिंसकजीव प्राणीनिकै राक्षसकीनाईं उद्वेग करनेवाला होय है। हिंसा करनेवाला जीव आपके संबंधी जे माता पिता भ्राता तिनकैहू विश्वासयोग्य नहीं होय है॥ गाथा–

वधबंधरोधधणहर-। णजादणाउं य वेरमिह चेव॥

णिव्विसयमभोजित्तं। जीवे मारंतउ लभदि ॥ ९९ ॥

अर्थ— वध कहिये मरण, बंध कहिये बंधन, रोध कहिये बंदिगृहमें रुकना अर धनहरण अर शरीरजनितवेदना, समस्तजीवनिलैं वैरीपणा अर विषयरहितपणो अर भोजनरहितपणो ये सर्व दुःख जीवनिके मारनेवाले हिंसककै होय हैं ॥ गाथा—

रुट्ठो परं वधित्ता। सयं पि कालेण मरइ जत्तेण ॥
हदघादयाण णत्थि वि-। सेसो मुत्तूण तं कालं ॥ ८०० ॥

अर्थ— क्रोधी जीव है सो अन्यकूं यत्नथकी मारिकरिकै अर आपहू कालकरिकै मरणकूं प्राप्त होय है। मारनेवालेकै अर मरनेवालेकै एक थोरा कालहीका अंतर है और अंतर नहीं ॥ भावार्थ— जाकूं मारिलिया वह पहली मर्या अर मारनेवाला दो दिन पाछै मर्या और अंतर नहीं, मारनेवालाभी मर्याविना तो नहीं रहेगा! ॥

अप्पायुगरोगिदया। विरूवदा विगलदा अबलदा य ॥
दुम्मेहवण्णरसगं-। धदा य से होइ परलोये ॥ २ ॥

अर्थ— हिंसकजीवकै परलोकविषैं अल्प आयु अर रोगीपणा अर विरूपपणा अर विकलपणा अर निर्बलपणा अर दुर्बुद्धिपणा अर खोटा वर्ण, खोटा रस, खोटा गंधसहितपणा अनेकजन्मपर्यंत होय है ॥ गाथा—

मारेदि एयमवि जो । जीवं सो बहुसु जम्मकोडीसु ॥
अवसो मारिज्जंतो । मरदि विधाणेहिं वहुएहिं ॥ २ ॥

अर्थ-- जो एकजीवकूं मारे है, सो बहुतकोटि जन्मविषैं परवश हुवा नानाप्रकारके विधाननिकरि मार्‍या हुवा मरे है ॥ गाथा-

जावइयाइं दुखाइं । होंति लोयम्मि चदुगदिगदाइं ॥
सव्वाणि ताणि हिंसा- । फळाणि जीवस्स जाणाहि ॥ ३ ॥

अर्थ--- या लोकमें च्यारि गतिनिमें जितनें दुःख होत हैं, तितने सर्व दुःख जीवकै एक हिंसाका फल जानहु ॥ गाथा----

हिंसादो अविरमणं । वहपरिणामो व होइ हिंसा हु ॥
तह्मा पमत्तजोगो । पाणव्ववरोवर्ड णिच्चं ॥ ४ ॥

अर्थ-- जो हिंसातैं विरक्त होय त्याग न करना सोहू हिंसा, अर जीवनिके घातका परिणाम सोहू हिंसा होत है। जातैं जीवका घात होहू वा मति होहू जाकै मनवचनकायका योग यत्नाचाररहित प्रमादरूप है, ताकै निरंतर हिंसाही है। तातैं प्रमत्तयोग है सो नित्यही प्राणव्यपरोपक कहिये प्राणीनिका हिंसकही है ॥ गाथा-

पादोसिय अधिकरणिय । काइयपरिदावणादिवादा य ॥

एए पंच पउगा। किरियाउ होंति हिंसाए ॥ ५ ॥
तिहिं चदुहिं पंचहिं वा। कमेण हिंसा समप्पदि हु ताहिं ॥
बंधो वि सिया सरिसो। जइ सरिसो काइयपदोसो ॥ ६ ॥

अर्थ-- परकै इष्ट जो स्त्री, धन, वस्त्र आभरण, सुंदर भवन तिनके हरणेके अर्थि जो कोप करना, सो प्राद्वेषिकी क्रिया है। हिंसाका उपकरण जो शस्त्र, ताका समागम करना, सो अधिकरिणिकी क्रिया है। बहुरि दुष्टतारूप कायका प्रवर्तावना, सो कायिकी क्रिया है। दुःखकी उत्पत्तीके निमित्त जो क्रिया, सो पारितापिकी क्रिया है। बहुरि जो आयु इंद्रिय बलका वियोग करनेवाली क्रिया, सो प्राणातिपातिकी क्रिया है। ये पंचप्रकारके प्रयोग हैं, ते हिंसाकी क्रिया होत हैं। सो ये क्रिया मन-वचन-कायकरिकै, अर क्रोध-मान-माया-लोभकरिकै, तथा स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु श्रोत्र ये पंच इंद्रिय इनिकरिकै होत हैं। जातैं ये पांच क्रिया मनकरिहू होय हैं, वचनकरिहू होय हैं, कायकरिहू होय हैं, तथा क्रोधके वशीभूततावकरि होय हैं, तथा मान माया-लोभके वशीभूतपणाकरि होय हैं, तथा स्पर्शनादिक इंद्रियनिके वशीभूतपणाकरि होय हैं। तहां जो जैसा मन वचन काय, क्रोध मान माया लोभ, स्पर्शनादिक इंद्रिय जैसा मंदतीव्रादिपरिणतिकरि सहित होय तैसा सदृश-विसदृश बंध होय है ॥

वीसं पल तिण्णि मोदय । पण्णरह पला तहेव चत्तारि ॥
वारह पलिया पंच दु । तेसिं पि समो हवे वंधो ॥ ७ ॥
वीसं पलिया पंचे- । त्थ मोदया चारि पंच दस पलिया ॥
तिण्णि दु तेसिं पि समो । हवे वंधो ॥ ८ ॥

इस गाथाका अर्थ हमारि समझिमें नही आया, तातैं नही लिख्या है ॥ गाथा—

जीवगदमजीवगदं । समासउ होदि दुविहमधियरणं ॥
अठ्ठुत्तरसवभेवं । पढमं विदियं चदुब्भेदं ॥ ९ ॥

अर्थ— हिंसाका अधिकरण कहिये आधार संक्षेपतैं दोयप्रकार होय है । एक जीवगत एक अजीवगत । तहां जीवगत आधारके एकसो आठ भेद हैं । अर अजीवगत आधारके च्यारि भेद हैं ॥ अब जीवगत आधारके एकसो आठ भेद कहे हैं ॥ गाथा—

संरंभसमारंभा- । रंभजोगेहिं तह कसाएहिं ॥
कदकारिदाणुमोदे- । हिं तहा गुणिदा पढमभेदा ॥ ८१० ॥
संरंभो संकप्पो । परिदावकरो हवे समारंभो ॥
आरंभो उद्दवउ । सव्वनयाणं विसुद्धाणं ॥ ११ ॥

अर्थ— प्रमादी पुरुषके प्राणीनिका प्राणका अभाव करनेमें यत्न करना, सो

संरंभ कहिये । बहुरि हिंसादिक क्रियाका कारणनिका संयोग मिलावना वा हिंसाके उपकरण संचय करना सो समारंभ कहिये । बहुरि हिंसाकी क्रियाका कारण जो संचय कीया ताका आद्य जो प्रारंभ, ताहि आरंभ कहिये । इनिकूं मन-वचन-कायकरिकै तथा कृत-कारित-अनुमोदनाकरिकै बहुरि क्रोध-मान-माया-लोभकरिकै गुणिये तदि जीवाधिकरणके एकसो आठ भेद होत हैं ॥ १ क्रोधकृत कायसंरंभ, २ मानकृत काय-संरंभ, ३ मायाकृत कायसंरंभ, ४ लोभकृत कायसंरंभ, ५ क्रोधकारित कायसंरंभ, ६ मानकारित कायसंरंभ, ७ मायाकारित कायसंरंभ, ८ लोभकारित कायसंरंभ, ९ क्रोधानुमत कायसंरंभ, १० मानानुमत कायसंरंभ, ११ मायानुमत कायसंरंभ, १२ लोभानुमत कायसंरंभ, १३ क्रोधकृत वचनसंरंभ, १४ मानकृत वचनसंरंभ, १५ माया-कृत वचनसंरंभ, १६ लोभकृत वचनसंरंभ, १७ क्रोधकारित वचनसंरंभ, १८ मानका-रित वचनसंरंभ, १९ मायाकारित वचनसंरंभ, २० लोभकारित वचनसंरंभ, २१ क्रोधानुमत वचनसंरंभ, २२ मानानुमत वचनसंरंभ, २३ मायानुमत वचनसंरंभ, २४ लोभानुमत वचनसंरंभ, २५ क्रोधकृत मनःसंरंभ, २६ मानकृत मनःसंरंभ, २७ मायाकृत मनःसंरंभ, २८ लोभकृत मनःसंरंभ, २९ क्रोधकारित मनःसंरंभ, ३० मान-कारित मनःसंरंभ, ३१ मायाकारित मनःसंरंभ, ३२ लोभकारित मनःसंरंभ, ३३

क्रोधानुमत मनःसंरंभ, ३४ मानानुमत मनःसंरंभ, ३५ मायानुमत मनःसंरंभ, ३६ लोभानुमत मनःसंरंभ· ऐसे क्रोध-मान-माया-लोभ कषायके वशीभूत मन-वचन-कायकरि संरंभ करनेतैं, करावनेतैं, अनुमोदना करनेतैं संरंभ छत्तीसप्रकार है। ऐसेंही समारंभ छत्तीस प्रकार है। अर आरंभ छत्तीस प्रकार हैं। ऐसे जीवाधिकरणके एकसो आठ भेद हैं॥ संरंभ तो हिंसाका संकल्प है, अर समारंभ है, सो परिताप करनेवाला है, आरंभ है सो अहिंसादिक सर्व उज्वल व्रतनिका दमनेवाला है॥ अब अजीवाधिकरणके च्यारि भेदनिकूं कहे हैं॥ गाथा–

णिक्खेवो णिव्वत्ती। तहा य संजोयणा णिसग्गो य॥
कमसो चदुदुगदुगतिय-। भेदा भेदा हु विदियस्स॥ १२॥

अर्थ— १ निक्षेप, २ निर्वर्तना, ३ संयोजना, ४ निसर्ग। तहां जो निक्षेपण करिये धरिये सो निक्षेप है, निपजाइये सो निर्वर्तना है, मिलावना सो संयोजना है, बहुरि जो निसर्जन करिये–प्रवर्ताइये सो निसर्ग है॥ तिनमें निक्षेप च्यारिप्रकार है। निर्वर्तना दोयप्रकार है। संयोजना दोयप्रकार है। निसर्ग तीनप्रकार है। ऐसें दूसरा जो अजीवाधिकरण ताके ये भेद हैं॥ अब निक्षेपके च्यारि भेदनिकूं कहे हैं॥

सहसाणाहोइयदु-। प्पमज्जिद अपच्चुवेक्खणिक्खेवो॥

मूलगुणनिर्वर्तना, एक उत्तरगुणनिर्वर्तना, तहां मूल पंचप्रकार शरीर वचन मन उच्छ्वास निश्वासका निपजावना। अर उत्तर काष्ठपुस्त चित्रकर्मादिक निपजावना। ऐसें कह्या है ॥ अब संयोजना अधिकरण तथा निसर्गाधिकरणकूं कहे हैं ॥ गाथा—

संजोयणमुवकरणा- । णं च तहा पाणभोयणाणं च ॥
दुट्ठणिसिट्ठा मणवचि- । काया भेदा णिसग्गस्स ॥ १९ ॥

अर्थ— संयोजना कहिये संयोग दोयप्रकार है। एक तो शीतस्पर्शरूप जो पुस्तक तथा कमंडलु तिनकूं तावडाकरि तप्त जो पीछिका ताकरि पूछना सोधना इत्यादिक उपकरणसंयोजना है। बहुरि दूजा पान जो जलादिक तिनका अन्यपानमें मिलावना तथा भोजनमें मिलावना तथा भोजनकूं पानमें मिलावना वा अन्यभोजनमें मिलावना, सो भक्तपानसंयोजना है ॥

बहुरि निसर्गाधिकरण तीनप्रकार है। दुष्टप्रकार कायका प्रवर्तन करना, सो कायनिसर्गाधिकरण है। दुष्टप्रकार वचनका प्रवर्तन करना सो वाग्निसर्गाधिकरण है। दुष्टप्रकार मनका प्रवर्तन करना सो मनोनिसर्गाधिकरण है ॥ भावार्थ- जीव अजीव दोऊ द्रव्यके आश्रयकरि कर्मका आगमन होय है, तिनके भावनिके विशेष ये कहे हैं ॥ अब अहिंसाधर्मकी रक्षाका उपाय कहे हैं ॥ गाथा—

क्रोधानुमत मनःसंरंभ, ३४ मानानुमत मनःसंरंभ, ३५ मायानुमत मनःसंरंभ, ३६ लोभानुमत मनःसंरंभ- ऐसे क्रोध-मान-माया-लोभ कषायकै वशीभूत मन-वचन-कायकरि संरंभ करनेतैं, करावनेतैं, अनुमोदना करनेतैं संरंभ छत्तीसप्रकार है। ऐसैंही समारंभ छत्तीस प्रकार है। अर आरंभ छत्तीस प्रकार हैं। ऐसे जीवाधिकरणके एकसो आठ भेद हैं॥ संरंभ तो हिंसाका संकल्प है, अर समारंभ है, सो परिताप करनेवाला है, आरंभ है सो अहिंसादिक सर्व उज्वल व्रतनिका दमनेवाला है॥ अब अजीवाधिकरणके च्यारि भेदनिकूं कहे हैं॥ गाथा-

णिक्खेवो णिव्वत्ती। तहा य संजोयणा णिसग्गो य॥
कमसो चदुदुगदुगतिय-। भेदा भेदा हु बिदियस्स॥ १२॥

अर्थ— १ निक्षेप, २ निर्वर्तना, ३ संयोजना, ४ निसर्ग। तहां जो निक्षेपण करिये धरिये सो निक्षेप है, निपजाइये सो निर्वर्तना है, मिलावना सो संयोजना है, बहुरि जो निसर्जन करिये-प्रवर्ताइये सो निसर्ग है॥ तिनमें निक्षेप च्यारिप्रकार है। निर्वर्तना दोयप्रकार है। संयोजना दोयप्रकार है। निसर्ग तीनप्रकार है। ऐसैं दूसरा जो अजीवाधिकरण ताके ये भेद हैं॥ अब निक्षेपके च्यारि भेदनिकूं कहे हैं॥

सहसाणाहोइयदु-। प्पमज्जिद अपच्चुवेखुणिक्खेवो॥

जं जीवणिकायवहे- । ण विणा इंदियकयं सुहं णत्थि ॥
तह्मि सुहे णिस्संगो । तह्मा सो रक्खदि अहिंसा ॥ १५ ॥

अर्थ— जातैं छकायके जीवनिकी हिंसाविना इंद्रियजनित सुख नहीं होय है, तातैं इंद्रियजनित सुखमें आसक्ततारहित होय, सो अहिंसाधर्मकी रक्षा करे है ॥ बहुरि जाकूं इंद्रियनिके भोगनिमैं सुख दीखे है, सो आत्मिकसुखका लेशहू नहीं जान्या, तातैं बहिरात्मा है—मिथ्यादृष्टि है। जाकै आत्महिंसाहीका त्याग नहीं, ताकै परजीवनिकी दयाका लेशहू नहीं जानना। जाकै आपकी दया ताकै परकी दया। अर जानैं विषयकषायनिकरि आपका ज्ञानदर्शनभावका घात कीया अर नरकादिकनिमैं आत्माकूं अनंतानंतवार मरणपणानैं प्राप्त कीया ऐसा आत्मघातीकै कदाचित् छह कायके जीवनिकी दया नहींही जाननी। जातैं भगवानका ऐसा हुकम है, जो आपकै रागद्वेषादिकनिकी उत्पत्ति सो हिंसा है अर रागादिकनिकी अनुत्पत्ति सो अहिंसा है ॥

जीवो कसायबहुलो । संतो जीवाण घायणं कुणइ ॥
सो जीववहं परिहर- इ सया जो णिज्जियकसाउ ॥ १६ ॥

अर्थ— जो जीव कषायनिकी आधिक्यतासहित तिष्ठै है, सो जीव प्राणीनिका घात करे है। अर जो कषायनिका जीतनेवाला है, सो सदाकाल जीवनिकी हिंसाका

परित्याग करे है। अर जो कषायनिसहित प्रवर्तना है, सो आपके आत्माका घात करना है। अर जो उत्तमक्षमादिरूप कषायरहित प्रवर्तना है, सो आपका आत्माकी रक्षा है-इस लोकमेंहू रक्षा है अर आगामी कालमेंहू अनंतानंत जन्ममरणतैं आपकी रक्षा करना है॥ गाथा—

आदाणे णिक्खेवे। वोसरणे ठाणगमणसयणेसु॥
सव्वत्थ अप्पमत्तो। दयावरो होइ हु अहिंसा॥ १७॥

अर्थ— कमंडलु पींछी पुस्तकके ग्रहण करनेमें, तथा मेलनेमें, तथा शरीरके मेलने उठावनेमें तथा खडे रहनेमें, गमन करनेमें, शयनमें, पसारनेमें, समेटनेमें, उलटपलट होनेमें संपूर्णक्रियामैं जो जीवदयासहित यत्नाचारकरि प्रवर्ते है; सो जीव अहिंसक होय है॥

काएसु णिरारंभो। फासुगभोजिम्मि णाणरइयम्मि॥
मणवयणकायगुत्ति-। म्मि होइ सयला अहिंसा दु॥ १८॥

अर्थ— जो षट्कायके जीवनिमैं तो आरंभरहित है, अर जो छींयालीस दोष तथा बत्तीस अंतराय चौदा मल पूर्वै कहि आये तिनकूं टालिकरि गृहस्थके घरि नवधा भक्तिकरि दीया हुवा अयाचिकवृत्तिकरिकै गृद्धिता जो लंपटता ताकरि रहित मौनावलंबी एकदिनमें एकवार अथवा वेला तेला पंचोपवास पक्षके मासके उपवासनिके पारणे

देहोव दुप्पउत्तो । तहोवकरणं च णिव्वत्ती ॥ १२ ॥

अर्थ— १ सहसानिक्षेपाधिकरण, २ अनाभोगनिक्षेपाधिकरण, ३ दुःप्रमृष्टनिक्षेपाधिकरण, ४ अप्रत्यवेक्षितनिक्षेपाधिकरण ऐसे निक्षेपके च्यारि भेद हैं। तिनिमें निक्षिप्यते कहिये क्षेपिये स्थापिये सो निक्षेप कहिये। तहां भयादिककरिकै वा अन्यकार्य करनेकी उतावलिकरिकै जो शीघ्रतातैं पुस्तक कमंडलु शरीर तथा शरीरका मलादिक क्षेपिये सो सहसानिक्षेपाधिकरण है ॥ बहुरि शीघ्रता नहीं होताहू "इहां जीव है वा नही है" ऐसा विचारही नहीं करै अर अवलोकनविनाही पुस्तक कमंडलु शरीरसंबंधी मलादिक निक्षेपण करिये तथा वस्तु जहां धरी चाहिये तहां नहीं धरना जैसैं तैसैं अनेक जायगा धरना सो अनाभोगनिक्षेपाधिकरण है ॥ बहुरि जो दुष्टताकरि वा यत्नाचाररहितपणाकरि जो उपकरण शरीरादिकका क्षेपना सो दुष्प्रमृष्टनिक्षेपाधिकरण है ॥ बहुरि विनादेख्या वस्तूका निक्षेपण करना स्थापन करना सो अप्रत्यवेक्षितनिक्षेपाधिकरण है ॥ ऐसैं च्यारिप्रकार निक्षेप कह्या ॥ अब दोयप्रकार निर्वर्तना कहे हैं— निपजाइये सो निर्वर्तना है। शरीरतैं कुचेष्टा उपजावना सो देहदुःप्रयुक्त है। अर हिंसाके उपकरण शस्त्रादिककी रचना करना सो उपकरणनिर्वर्तना है ॥ बहुरि सर्वार्थसिद्धिजीमैं पूज्यपादस्वामी ऐसैं कह्या है— जो, निर्वर्तना अधिकरण दोयप्रकार है। एक

मूलगुणनिर्वर्तना, एक उत्तरगुणनिर्वर्तना, तहां मूल पंचप्रकार शरीर वचन मन उच्छ्वास निश्वासका निपजावना। अर उत्तर काष्ठपुस्त चित्रकर्मादिक निपजावना। ऐसें कह्या है॥ अब संयोजना अधिकरण तथा निसर्गाधिकरणकूं कहे हैं॥ गाथा–

संजोयणमुवकरणा-। णं च तहा पाणभोयणाणं च॥
दुट्ठणिसिट्ठा मणवचि-। काया भेदा णिसग्गस्स॥ १४॥

अर्थ— संयोजना कहिये संयोग दोयप्रकार है। एक तो शीतस्पर्शरूप जो पुस्तक तथा कमंडलु तिनकूं तावडाकरि तप्त जो पीछिका ताकरि पूछना सोधना इत्यादिक उपकरणसंयोजना है। बहुरि दूजा पान जो जलादिक तिनका अन्यपानमें मिलावना तथा भोजनमें मिलावना तथा भोजनकूं पानमें मिलावना वा अन्यभोजनमें मिलावना, सो भक्तपानसंयोजना है॥

बहुरि निसर्गाधिकरण तीनप्रकार है। दुष्टप्रकार कायका प्रवर्तन करना, सो कायनिसर्गाधिकरण है। दुष्टप्रकार वचनका प्रवर्तन करना सो वाङ्निसर्गाधिकरण है। दुष्टप्रकार मनका प्रवर्तन करना सो मनोनिसर्गाधिकरण है॥ भावार्थ- जीव अजीव दोऊ द्रव्यके आश्रयकरि कर्मका आगमन होय है, तिनके भावनिके विशेष ये कहे हैं॥ अब अहिंसाधर्मकी रक्षाका उपाय कहे हैं॥ गाथा–

इंद्रियनिकूं निग्रह करता, खारा अलूणा ठंडा ताता रसवान् वा नीरस जो दातार साधूके अर्थि नही कीया ऐसा प्रासुकभोजन करे है, अर ज्ञानाभ्यासमें सदाकाल रत है, अर मन वचन कायका चलायमानपणाकरि रहित तीनगुप्तिरूप रहे है, तिस साधूकै परिपूर्ण अहिंसाव्रत होय है ॥ गाथा—

आरंभे जीववहो । अप्पासुगसेवणे य अणुमोदो ॥
आरंभादीसु मणो । णाणरदीए विणा चरइ ॥ १९ ॥

अर्थ— जो साधुकै आरंभमें तो जीवनिका घात होय है, अर अप्रासुकद्रव्यके सेवनेमें अनुमोदना रहे है, अर आरंभ करनेमें मन रहे है, सो ज्ञानमें लीनताविना आचरण करे है ॥ जो भगवानका परमागमका शरण ग्रहण करता तौ ऐसी मलिन औली प्रवृत्ति नही करता, ऐसी प्रवृत्ति करनेवाला साधु अज्ञानतैं संसारपरिभ्रमण करेगा ॥

तम्हा इहपरलोए । दुक्खाणि सदा अणिच्छमाणेण ॥
उवउंगो कायव्वो । जीवदयाए सया मुणिणो ॥ ८२० ॥

अर्थ— तातैं इसलोकमें तथा परलोकमें दुःखनिकूं नही इच्छा करता जो मुनि, तानैं जीवनिकी दयाविषैं सदाकाल उपयोग करवो जोग्य है ॥ जीवनिकी दया है सोही धर्म है; यातैं साधुजन कदाचित् प्रमादी नही होय हैं, सदा यत्नाचाररूपही प्रवर्तन करे हैं ॥

पाणो वि पाडिहेरं । पत्तो छूडो वि सुंसुमारहदे ॥
एगेण एक्कदिवस- । कदेण हिंसावदगुणेण ॥ २१ ॥

अर्थ— शिशुमार नामा न्हदविषैं मारनेकूं क्षेप्या ऐसा चांडालहू एक दिनका कीया जो अहिंसाव्रत नामा एक गुण ताकरिकै देवनिका कीया सिंहासनादिक प्रातिहार्यनिकूं प्राप्त हूवा! तो और उत्तम आचारका धारक यावज्जीव अहिंसा नामा व्रत पालै ताका प्रभाव कौन कहनेकूं समर्थ है? ॥

ऐसैं अनुशिष्टि नामा तेतीसमा महा अधिकारमें अहिंसाव्रतका उपदेश वर्णन कीया॥ अब सत्यमहाव्रतकूं तीस गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

परिहर असंतवयणं । सव्वं पि चदुविधं पयत्तेण ॥
धत्तं पि संजमिंतो । भासादोसेण लिप्पदि हु ॥ २२ ॥

अर्थ— भो मुने! च्यारिप्रकारका संपूर्ण 'असत्' जो अशोभन बुरा खोटा ऐसा वचनका प्रयत्नकरि त्याग करहू। जातैं अतिशयकरि संयमकूं प्राप्त होताहू साधु च्यारिप्रकारको दुष्टभाषाकरिकै दोषनितैं अत्यंत लिप्त होय है ॥ आगै च्यारिप्रकारका असत्यवचनकूं कहे हैं ॥ गाथा—

पढमं असंतवयणं । संभूदत्थस्स होदि पडिसेहो ॥

णत्थि णरस्स अकाळे । मच्चुत्ति जधेवमादीयं ॥ २३ ॥

अर्थ— जो विद्यमान पदार्थका प्रतिषेध करना सो प्रथम असत्य है। जैसैं कर्मभूमीका मनुष्यकै अकालमें मृत्यूका निषेध करना इत्यादिक प्रथम असत्य है॥ भावार्थ— देव नारकी तथा भोगभूमीका मनुष्य तिर्यंच इनिकैं तो आयूका बीचमें भंग नही होय है। जितनी आयूकी स्थिति बांधिकरि उपज्या तितनी आयु भोगि चुक्याही मरण होय है। अर कर्मभूमीका मनुष्य तथा तिर्यंचनिकी आयु बाह्यनिमित्तका वशथकी छिदिजाय है। सोही गोमट्टसार ग्रंथमें कह्या है॥ गाथा— विसवेयणरत्तक्खय-। भयसत्थग्गहणसंकिलेसेहिं ॥ उस्सासाहाराणं । णिरोहदो छिज्जदे आऊ ॥ १ ॥ अर्थ— विषभक्षणकरि तथा मारण, ताडन, छेदन, बंधनरूप वेदनाकरि तथा रोगजनितवेदनाकरि, तथा देहथकी रुधिरका नाश होनेकरि, तथा मनुष्य तिर्यंच दुष्टदेव वा अचेतन वज्रपातादिकनितैं उपज्या भयकरिकैं, तथा शस्त्रके घातकरि, तथा अग्नि पवन जल कलह विसंवाद इत्यादिजनित संक्लेशकरि, तथा श्वासोच्छ्वासका रुकनेकरि, तथा आहारपानादिकका निरोधकरि आयुका छेदन होय है—नाश होय है, आयुकी दीर्घ स्थितिभी होय तो इतने बाह्यनिमित्तनितैं छिदि जाय है॥

कितनेक लोक ऐसैं कहे हैं— आयुका स्थितिबंध कीया, सो नही छिदे है॥ तिनकूं

उत्तर कहे हैं– जो, आयु नहीही छिदता तो विषभक्षणतैं कोन पराङ्मुख होता? अर उखाल विषपरि किस वास्ते देते? अर शस्त्रका घाततैं भय कौनवास्ते करते? अर सर्प हस्ती सिंह दुष्टमनुष्यादिकनिकूं दूरिहीतैं कैसैं परिहार करते? अर नदी समुद्र कूप वापिका तथा अग्नीकी ज्वालामैं पतनतैं कौन भयभीत होता? जो आयु पूर्ण हुवा-विना तो मरणही नही तो रोगादिकका इलाज काहेकूं करते? तातैं यह निश्चय जाणहू– जो आयुका घातका बाह्यनिमित्त मिलि जाय, तो तत्काल आयुका घात होयही जाय, ईमैं संशय नही है। बहुरि आयुकर्मकीनांई अन्यकर्मभी जो बाह्यनिमित्त परिपूर्ण मिलि जाय, तो उदय होयही जाय। नींब भक्षण करेगा ताकै तत्काल असातावेदनीय उदय आवे है, मिश्री इत्यादिक इष्टवस्तु भक्षण करै ताकै सातावेदनीय उदय आवेही है। तथा वस्त्रादिक आडे आजाय चक्षुद्वारै मतिज्ञान रुकि जाय, कर्णमैं डाटा देवै तो कर्णद्वारै मतिज्ञान रुकि जाय, ऐसैंही अन्यइंद्रियनिके द्वारै ज्ञान रुकेहा है। विषादिकद्रव्यतैं श्रुतज्ञान रुकिजाय है। भेसिको दही लशुन खलि इत्यादिक द्रव्यके भक्षणतैं निद्राकी तीव्रता होयही है। कुदेव कुधर्म कुशास्त्रकी उपासनातैं मिथ्यात्वकर्मका उदय आवेही है। कषायनिके कारण मिले कषायनिकी उदीरणा होवेही है। पुरुषका शरीरकूं तथा स्त्रीका शरीरकूं स्पर्शनदर्शनादिककरि वेदकी उदीर-

णातैं कामकी वेदना प्रज्वलित होयही है। अरतिकर्मकूं इष्टवियोग, शोककर्मकूं सुपुत्रादिकका मरण इत्यादिक कर्मका उदय उदीरणादिकनिकूं करेही है॥

तातैं ऐसा तात्पर्य जानना- इस जीवकै अनादिका कर्मसंतान चल्या आवे है, अर समयसमय नवीनवीन बंध होय है, अर समयसमय पुरातनकर्म रस देयदेय निर्जरै है। सो जैसा बाह्य द्रव्य क्षेत्र काल भाव मिलि जाय, तैसा उदयमें आजाय, तथा उदीरणा होय उत्कट रस देवै। अर जो कोऊ या कहै 'कर्म करेगा सो होयगा' तो कर्म तो या जीवकै सर्वही पापपुण्यरूप सत्तामैं मोजूद तिष्ठै है। जैसाजैसा बाह्यनिमित्त प्रबल मिलेगा, तैसातैसा उदय आवेगा, अर जो बाह्यनिमित्त कर्मका उदयकूं कारण नहीं होय तो, दीक्षा लेना, शिक्षा देना, तपश्चरण करना, सत्संगति करना, वाणिज्यव्यवहार करना, राजसेवादिक करना, खेती करना, औषधिसेवन करना इत्यादिक सर्वव्यवहारका लोप होजाय; तातैं ऐसैं भगवानका परमागमसूं निश्चय करना "जो आयुकर्मका परमाणु तो साठि वरसपर्यंत समयसमय उदय आवाजोग्य निषेकनिमैं वांटानैं प्राप्त भया होय अर बीचिमैं वीसवर्षकी अवस्थाहीमैं जो विषशस्त्रादिकका निमित्त मिलिजाय तो चालीस वर्षपर्यंत जो कर्मका निषेक समयसमय निर्जरता सो अंतर्मुहूर्तमें उदीरणानैं प्राप्त होय इकट्ठा नाशनैं प्राप्त होय, सो अकालमरण

है" जातैं निर्जराका अवसर तो निषेकनिका समयसमयमें था, अर सर्व चालीस वर्षमें निर्जरतेका अंतर्मुहूर्तमें निर्जरानैं प्राप्त हुवा, तातैं अकालमरण है, सो बाह्य निमित्त मिले कर्मभूमीके मनुष्य तिर्यंचनिकै अकालमृत्यु होय है, अर कोऊ ताका निषेध करै तो सत्यार्थका निषेध करना नामा पहला असत्य जानना ॥ गाथा—

अहवा सयबुद्धीए। पडिसेधो खेत्तकाळभावेहिं ॥
अविचारिय णत्थि इहं। घडोत्ति जह एवमादीयं ॥ २९ ॥

अर्थ— अथवा द्रव्य क्षेत्र काल भावनिकरि विनाविचारया आपकी बुद्धिकरिकै वस्तूका निषेध करिये सो प्रथम असत्य है। जैसैं द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावनिकरि विनाविचारे कहना, जो, 'इहां घट नहीं है' इत्यादिककीनांई ॥ भावार्थ— वस्तूका निषेध तथा विधि जो है सो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षातैं होत है। वस्तूका सर्वथा निषेध नहीं, सर्वथा विधि नहीं। जो वस्तु है सो अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षा अस्तिरूप है अर परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षा नास्तिरूप है। जो परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षाहू अपना अस्तित्व होय, तौ पर अर आप एक होजाय, अर जो अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षाहू नास्तिरूप होय, तौ वस्तूका अभाव होजाय। जैसैं घट अपने द्रव्यकी अपेक्षा अस्तिरूप है अर अन्यघटनिकी अपेक्षा

नास्तिरूप है; आप जा क्षेत्रमें तिष्ठै है, ता क्षेत्रमें अस्तिरूप है अर अन्यघटनिका क्षेत्रमें नास्तिरूप है; आप जा कालमें है, ता कालमें अस्तिरूप है अर अन्यकालमें नास्तिरूप है; जो घट जिसस्वभावकरि तिष्ठै है, तिसस्वभावकरि अस्तिरूप है अर अन्यघटादिकनिके स्वभावकरि नास्तिरूप है ॥ गाथा—

जं असभूदुब्भावण-। मेदं विदियं असंतवयणं तु ॥
अत्थि सुराणमकाळे। मच्चुत्ति जहेवमादीयं ॥ २५ ॥

अर्थ— जो असद्भूतका प्रकट करना सो द्वितीय असत्यवचन है। जैसैं, देवनिकै अकालमें मृत्यु होय है इत्यादिक कहना ॥ भावार्थ—देवनिकी आयुकी स्थिति जितनी बांधि होइ, तितनी पूर्ण हुवा मृत्यु होय है। अर कोऊ देवनिकी आयु छिदि अर अकालमें मृत्यु कहे, तो यह असत्का प्रकट करनेरूप दूसरा असत्य कह्या ॥ गाथा—

अहवा जं उब्भावे-। दि असंतं खित्तकालभावेहिं ॥
अविचारिय अत्थि इहं। घडोत्ति जह एवमादीयं ॥ २६ ॥

अर्थ— अथवा जो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावनिकरि विना विचार्‍या अविद्यमानवस्तूकूं प्रकट करना, सो दूसरा असत्यवचन है। जैसैं द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावनिकरि विनास-भइया इहां घट है ऐसैं कहना इत्यादिककीनांई औरहू बहुतप्रकार असत्य जानना ॥

तदियं असंतवयणं । संतं जं कुणदि अण्णजादीयं ॥
अविचारित्ता गोणं । अस्सोत्ति जहेवमादीयं ॥ २७ ॥

अर्थ— जो विद्यमानवस्तूकूं अन्यजातिरूप कहना, सो तीसरा असत्यवचन है। जैसैं विनाविचार्‍या गौ जो वलध ताकूं अश्व कहना इत्यादिक जानना ॥ अब चतुर्थ असत्यवचनकूं कहे हैं ॥ गाथा–

जं वा गरहिदवयणं । जं वा सावज्जसंजुदं वयणं ॥
जं वा अप्पियवयणं । असंतवयणं चउत्थं च ॥ २८ ॥

अर्थ— जो गर्हितवचन होय अर जो सावद्यसंयुक्त वचन होय अर जो अप्रियवचन होय, सो चतुर्थ असत्यवचन है ॥ अब गर्हितवचनका स्वरूप कहे हैं ॥ गाथा–

कक्कसवयणं णिट्ठुर- । वयणं पेसुण्णहासवयणं च ॥
जं किं चि विप्पलावं । गरहिदवयणं समासेण ॥ २९ ॥

अर्थ— इहां गर्हितवचनका संक्षेप कहे हैं। कर्कशवचन, तथा निष्ठुरवचन, पैशून्यवचन, हास्यवचन औरभी जो वाचालपणाकरिकै प्रलाप सो गर्हितवचन है। तिनिमैं तूं मूर्ख है! तूं वलध है! तूं ठांठा है! रे मूढ, तूं किंचितहू नही जानै! इत्यादिक संतापका उपजावनहारा जो वचन, सो कर्कशवचन है। बहुरि जो ऐसैं कहे, मै तोकूं मारि

नाखिस्यूं! तेरा मस्तक छेदन करस्यूं! तेरा नाक काटिस्यूं! तेरा नेत्र उपाडि लेस्यूं! तेरा बहोत बुरी ताडनाकरि वेहवाल करस्यूं तथा करावस्यूं! इत्यादिक निष्ठुरवचनकी जाति है। बहुरि परके दोष पूठि पाछै झूंटे सांचे प्रकट करवो तथा जिस वचनतैं परका जीवितधनादिकका नाश होजाय वा जगतमें निंद्य होजाय, कलंक चढिजाय, अपवाद होजाय सो सर्व पैशून्य नामा गर्हित वचन है। बहुरि जो हास्यनैं लीया वचन तथा भंडवचन तथा आपकै परकै कुशीलमैं राग उपजावनहारा वचन तथा सर्वसभानिवासीनिका परिणाम रागभावकी उत्कटतानैं प्राप्त हो जाय जिसवचनतैं, सो हास्यवचन है। बहुरि जो वृथा वकवादनैं लीया प्रयोजनरहित जैसैंतैसैं विचाररहित अतिवाचालतानैं लीया जो वचन सो विप्रलाप नामा गर्हितवचन है ॥ अब सावद्यवचन कहे हैं ॥ गाथा—

जत्तो पाणवधादी। दोसा जायंति सावज्जवयणं तं ॥
अविचारित्ता थेणं। थेणुत्ति जहेवमादीयं ॥ ८३० ॥

अर्थ— जिस वचनकरि प्राणीनिका घात होजाय, देशमें उपद्रव होजाय, देश लुटि जाय, देशका अधिपतिनिकै महावैर प्रकट होजाय तथा जा वचनकरि वनमें अग्नि लगि जाय, गांव वलि जाय, घरमें अग्नि लगिजाय वा कलह विसंवाद प्रकट होजाय तथा युद्ध होय, मारना मरना प्रकट होजाय वा छह कायका जीवनिका

घात होजाय; महा आरंभसें प्रवृत्ति होजाय, सो संपूर्ण सावद्यवचन है। जैसें विनाविचार्‍या कोई पुरुषकूं यो 'चोर है चोर है' इत्यादिक कहना सो सावद्यवचन है ॥ अब अप्रियवचनका स्वरूपकूं कहे हैं ॥ गाथा—

फरुसं कडुयं वयणं । वेरं कलहं च जं भयं कुणई ॥
उत्तासणं च हीलण- । मप्पियवयणं समासेण ॥ ३१ ॥

अर्थ— जो वचन परुष कहिये कठोर होइ, बहुरि कर्णनिकूं तथा मनकूं कटुक होय, तथा जिस वचनतैं बडा वैर होजाय–जो बहुतजन्मतांईहू नही छूटै बहुरि जा वचनतैं तत्काल कलह प्रकट होजाय, जाथकी दुर्वचन प्रकट होय, मारामारी प्रकट होय, सो कलहकारी वचन है। बहुरि जा वचनकरि परजीवनिकै भय उपजि आवै, बहुरि जा वचनकरि मरणतैंहू अधिक क्लेश होजाय, सुणिकरि विषभक्षण करि मरिजाय, शस्त्रघात करि मरिजाय, जलमें डूबि मरिजाय ऐसा उत्त्रासनवचन है। बहुरि जिस वचनतैं तिरस्कार होजाय, अपमान होजाय, ये सर्व संक्षेपथकी अप्रियवचनके भेद हैं॥ जातैं कर्कश, कटुक, परुष, निष्ठुर, परकोपिनी, मध्यकृशा, अभिमानिनी, अनयंकरी, छेदंकरी, भूतवधंकरी ये दशप्रकारकी महानिंद्य पापके करनेवाली भाषा त्यागनेयोग्य है ॥ तिनमैं जो, "तूं मूर्ख है! वलध है! ढोर है! रे मूर्ख, तूं

कछूही समझै नही! पशुसमान है!" इत्यादिक संतापका उपजावनेवाली कर्कश-भाषा है ॥ १ ॥ बहुरि तूं कुजाति है, नीचजाति है, अधर्मी है, महापापी है, स्पर्शन करनेयोग्यहू नही इत्यादिक उद्वेग करनेवाली जो भाषा, सो कटुकभाषा है ॥ २ ॥ बहुरि तूं अनेक देशदुष्ट है, तूं आचारतैं पराङ्मुख है, भ्रष्टाचारी है इत्यादिक मर्मकूं छेदनेवाली परुषभाषा है ॥ ३ ॥ मैं तोकूं मारि नाखिस्यूं! थारो मस्तक काटिस्यूं! थारो नाक काटिस्यूं! थारै डाह देस्यूं! इत्यादिक निष्ठुर भाषा है ॥ ४ ॥ बहुरि कहै, जो, रे निर्लज्ज! तेरा कहा तप है? रे कुशील! तेरै काहेका शील? तूं रागी है, तूं हंसनेजोग्य है, जगन्निंद्य है, तूं अभक्ष्यभक्षण करनेवाला, तेरा नाम लीयां सर्व कुल लज्जित होय है! इत्यादिक कोप करानेवाली जो भाषा, सो परकोपिनी भाषा है ॥ ५ ॥ जिस निष्ठुरवाणीकरि हाडांका मध्यभाग छेद्या जाय, सुणतप्रमाण हाडनिकी शक्ति नष्ट हो जाय, सो मध्यकृशा भाषा है ॥ ६ ॥ बहुरि लोकमें अपने गुण प्रकट करना अर परके दोष भाषण करना अर कुल जाति रूप बल ऐश्वर्य विज्ञानादिकका मद लीये जो वचन बोलना, सो अभिमानिनी भाषा है ॥ ७ ॥ बहुरि शीलखंडन करनेवाली अर विद्वेष करनेवाली भाषा, सो अनयंकरा भाषा है ॥ ८ ॥ बहुरि जो वीर्य शीलगुणादिकनिके निर्मूल करनेवाली अर असद्भूत कहिये

असत्यदोष प्रकट करनेवाली छेदंकरी भाषा है ॥ ९ ॥ बहुरि जिसवाणीकरि प्राणीनिकै अशुभवेदना वा प्राणनिका नाश होजाय, सो सर्व अनिष्ट करनेवाली भूतवधंकरी भाषा है ॥ १० ॥ ऐसैं दशप्रकारकी भाषा प्राणनिको अंत होतैंहू नही बोलनेयोग्य है, सर्वपापनिकी खनि है, अर परकूं दुःख देनेवाली है, तातैं ज्ञानीनिकै त्यागनेयोग्य है ॥

बहुरि स्त्रीनिके शृंगार हावभाव विलास विभ्रमरूप क्रीडा व्यभिचारादिकनिकी कथा, कामको जगावनेवाली, ब्रह्मचर्यका नाश करनेवाली स्त्रीनिकी कथा, तथा भोजनपानमें राग करावनेवाली भोजनकथा, तथा रौद्रकर्मतैं उपजी रौद्रध्यानके करावनेवाली राजकथा, तथा चोरनिकी कथा, तथा मिथ्यादृष्टि कुलिंगीनिकी कथा, तथा धन उपार्जन करनेकी कथा, तथा वैरी दुष्टनिका तिरस्कार करनेकी कथा, तथा वेद स्मृति इत्यादिक हिंसाके प्रेरक कुशास्त्रनिकी कथा सर्वथा करनेजोग्य नही, श्रवण करनेजोग्य नही, महान् पापास्रवका करनेवाली अप्रियभाषा है, सो त्यागनेयोग्य है ॥ अब च्यारिप्रकारके असत्यवचनकूं त्यागरूप कहे हैं ॥ गाथा–

हासभयलोभकोह- । प्पदोसयादिहिं तुमे पयत्तेण ॥
एयं असंतवयणं । परिहरिदव्वं विसेसेण ॥ ३२ ॥

अर्थ— भो ज्ञानी हो! हास्यकरि, भयकरि, लोभकरि, क्रोधकरि, द्वेषकरिकैं ए

च्यारिप्रकार असत्यवचन तुम मति कहो; विशेष यत्नकरि इनका त्याग करहु ॥ अब सत्य बोलनेकूं प्रेरणा करे हैं ॥ गाथा–

तव्विवरीदं सच्चं । कज्जे काळे मिदं सविसए य ॥
भत्तादिकहारहियं । भणाहि तं चेव हि सुणाहि ॥ ३३ ॥

अर्थ–भो मुने! तुमारे कोऊ ज्ञानचारित्रादिककी शिक्षारूप कार्य होय, तथा आवश्यकके कालविना कोऊ धर्मका अवसर होय तुमारे ज्ञानका कोऊ विषय होय, तो तिस अवसरमें सत्यवचनकूं कहो। कैसाक है सत्यवचन? पूर्वैं कहे जे च्यारिप्रकारके असत्य, तातैं अपूठा है। अर भोजनकथा, राजकथा, स्त्रीकथा, देशकथा इत्यादिक विकथाकरि रहित वचन होय, ताहि तुम प्रयोजनके वशतैं कहो। अर विकथादिकरहित सत्यही श्रवण करो। धर्मरहित असत्य निष्प्रयोजन वचन मति कहो। अर कदाचितहीं श्रवण मति करो ॥ गाथा–

जळचंदणससिमुत्ता- । चंदमणी तह णरस्स णिव्वाणं ॥
ण करंति कुणइ जह अ- । त्थजुयं हिदमधुरमिदवयणं ॥ ३४ ॥

अर्थ— जैसैं या जीवकूं हितरूप अर अर्थसंयुक्त मिष्टवचन सुख करे है–निराकुल, सांसारिक आतापके दुःखरहित करे है, तैसैं जल, चंदन, चंद्रमा, मोतीनका हार, चंद्र-

कांतमणि अन्तर्गत आताप हरि सुख नही करे है ॥ भावार्थ- जलचंदनादिकनिकूं आतापहारी कहे हैं, परंतु जैसें सत्यवचन आताप हरें; तैसें नही हरे हैं ॥ गाथा-

अण्णस्स अप्पणो वा । वि धम्मिए विड्ढवंतए कज्जे ॥
जं पि अपुच्छिज्जंतो । अण्णेहि य पुच्छिदे जंप ॥ ३५ ॥

अर्थ— भो मुने! जो बोलेविना अन्य जीवनिका वा आपका धर्मरूप कार्य विनशता होय तो विनापूछेही बोलना उचित है। अर अन्यकार्यनिमें कोऊ पूछे तो बोलना सोहू अन्यका आपका हित होता जानें तो बोले, बोलनेमें धर्म मलिन होजाय तो नहीही बोले ॥ गाथा-

सच्चं वदंति रिसउ । रिसीहि विहिदा उ सव्वविज्जाउ ॥
मेच्छस्स वि सिज्झंति य । विज्जाउ सच्चवादिस्स ॥ ३६ ॥

अर्थ— ऋषि जे यति हैं ते सत्यही कहत हैं, ऋषिनिकरि कही सर्व विद्या सत्य बोलनेवाला म्लेछहूकै सिद्ध होय हैं ॥ भावार्थ- जिस विद्याका देनेवालाहू सत्यवादी होय अर ग्रहण करनेवालाहू सत्यवादी होय, तो वा विद्यासिद्धि होयही, यामें संशय नही ॥

ण डहदि अग्गी सच्चे- । ण णरं खु जळं च तं ण वुडेदि ॥
सच्चबळियं खु पुरिसं । ण वहदि तिक्खा गिरिणदी वि ॥ ३७ ॥

अर्थ— सत्यका प्रभावकरि मनुष्यनैं अग्नि दग्ध नही करे है, जल नही डबोय सके है, सत्यकरि जो पुरुष बलवान् है ताहि तीव्रवेगसहित पर्वततैं पडती नदीहू वहाय नही सके है ॥ गाथा—

सच्चेण देवदाउ । णवंति पुरिसस्स होंति य वसम्मि ॥
सच्चेण य गहगहिदं । मोयिंति करिंति रक्खं च ॥ ३८ ॥

अर्थ— सत्यका प्रभावकरि पुरुषकूं देवता नमस्कार करत हैं, सत्यकरिकै पुरुषके देवता वशीभूत होय हैं, सत्यही पिशाचकरि ग्रहण कीया पुरुषकूं छुडावत है, सत्यही पुरुषकी रक्षा करत है ॥ गाथा—

माया व होइ विस्सस- । णिज्जो पुज्जो गुरुव्व लोगस्स ॥
पुरिसो हु सच्चवाई । होदि हु सुणिउल्लउ वि पिउ ॥ ३९ ॥

अर्थ— सत्यवादी पुरुष लोकनिके माताकीनांई विश्वास करनेयोग्य होय है, गुरुकी नांई पूज्य होय है, निजबांधवनिकीनांई प्रिय होय है ॥ गाथा—

सच्चं अवगददोसं । उत्तूण जणस्स मज्झयारम्मि ॥
पीदिं पावदि परमं । जसं च जगविस्सुदं लहई ॥ ८४० ॥

अर्थ— दोषनिकरि रहित सत्य कहिकरिकै लोकनिके मध्य उत्कृष्ट प्रीतीकूं प्राप्त

होय है, अर जगतमें विख्यात ऐसा जसकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा–

सच्चं हि तवो सच्च- । म्मि संजमो तह य सेसया वि गुणा ॥
सच्चं णिबंधणं हिय । गुणाणमुदधीव मच्छाणं ॥ ४१ ॥

अर्थ— सत्यही परमतप है, सत्यहीमें संयम तथा अन्य समस्तगुण वसे हैं। जैसें मत्स्यानिकै वसनेका आधार समुद्र है, तैसें संपूर्ण गुणनिके वसनेकूं आधार सत्य है ॥

सच्चेण जगे होदि प- । माणं अण्णो गुणो जदि वि से णत्थि ॥
अदिसंजदो य मोसे- । ण होदि पुरिसो सुतणलहुउ ॥ ४२ ॥

अर्थ— जो अन्यगुणरहितहू होइ तोहू सत्यकरिकै जगतमें पुरुष प्रमाण करनेयोग्य होय है। अर मृषा जो असत्य ताकरिकै, अतिसंयमीहू लोकनिमें तृणसमान लघु होय है॥

होदु सिहंडी व जडी । मुंडी वा णग्गउ व चीरधरो ॥
जदि भणदि अलियवयणं । विलंवणा तस्स सा सवा ॥ ४३ ॥

अर्थ— शिखावान् होहू वा जटा धारण करहू वा मूंडा होहू नग्न रहो वा अनेक वस्त्र धारण करहू जो असत्यवचन बोले है, तो ताकी सर्व बाह्यक्रिया विडंबनारूप है ॥ गाथा–

जह परमण्णस्स विसं । विणासयं जह व जोव्वणस्स जरा ॥
तह जाण अहिंसादी- । गुणाण य विणासयमसच्चं ॥ ४४ ॥

अर्थ— जैसैं उत्कृष्ट भोजनकूं विष विनाश करे है, विषका मिलावनेकरि मिष्टहू भोजन विषरूप होय है, तथा जैसैं जरा यौवनका नाश करे है; तैसैं असत्य अहिंसादिक सर्वगुणनिका नाश करनेवाला जानहू ॥ गाथा—

मादाए वि य वेसो । पुरिसो अलिएण होइ एक्केण ॥
किं पुण अवसेसाणं । ण होइ अलिएण सत्तुव ॥ ४५ ॥

अर्थ— यो पुरुष एक असत्यकरिकै माताकैहू द्वेष जो अविश्वास करनेयोग्य होय है, तो असत्यकरिकै अन्यलोकनिकै शत्रुकीनांई द्वेष करनेयोग्य नहीं होय है कहा? होयही है ॥ गाथा—

अलियं सकिंपि भणियं । घादं कुणादि वहुगाण सच्चाणं ॥
अदिसंकिदो य सयमवि । होदि आलियभासणो पुरिसो ॥ ४६ ॥

अर्थ— एकवारहू असत्य भण्या हुवा बहुत सत्यवचननिको नाश करे है। अर झूंठ वचन बोलनेवाला पुरुष आपहू अतिशंकित होय है ॥ गाथा—

अप्पच्चउ अकित्ती । झंझारादिकलहवेरभयसोगा ॥
वधबंधभेदधणणा- । सा वि य मोसम्मि सण्णिहिदा ॥ ४७ ॥

अर्थ— असत्यवचनके एते दोष निकट वसे हैं। अप्रतीति होय है, झूंठेकी कोऊ-

हीकै प्रतीति नही आवे है। तथा अकीर्ति होय है, जातैं झूंठेका जगतमें अपवादही होय है। बहुरि असत्यवचन होतैं आपकै तथा अन्यजीवनिकै संक्लेश होय है। तथा झूंठमें सबकै अरति होय है। बहुरि झूंठ बोलनेतैं कलह तथा वैर तथा भय तथा शोक प्रकट होय हैं। तथा झूंठा बोलनेवाला वध जो मरण, बंधन जो नानाप्रकारका दुःखरूप बंदीगृहमैं बंधनकूं प्राप्त होय है। बहुरि असत्यकरि मित्रादिकनिकै प्रतीतीमैं भेद होय तब प्रीतिभंग होयही। बहुरि असत्यवचनतैं धनका नाश होय है। इत्यादिक बहुत दोष आवे हैं॥ गाथा–

पापस्सासवदारं। असच्चवयणं भणंति हु जिणिंदा॥
हिदयेण अपावो वि हु। मोसेण गदो वसू णिरयं॥ ४८॥

अर्थ— जिनेंद्र भगवान् असत्यवचनकूं पाप आवनेका द्वार कहे हैं। देखहू! हृदयमैं पापकरि रहितहू वसु नामा राजा झूंठ वचनकरिकै नरकगमन करतो हुवो॥ गाथा–

परलोगम्मि वि दोसा। ते चेव हवंति आलियवादिस्स॥
मोसादीए दोसे। जत्तेण वि परिहरंतस्स॥ ४९॥

अर्थ— मोस जो चोरी इत्यादिक दोषनिकूं यत्नकरिकै परिहार जो त्याग, ताहि करताहू असत्यवादीकै जे पूर्वैं दोष कहे, ते परलोकहूमैं प्राप्त होय हैं॥ गाथा–

इहलोइयपरलोइय- । दोसा जे होंति अलियवयणस्स ॥
कक्कसवयणादीण वि । दोसा ते चेव णादव्वा ॥ ८५० ॥

अर्थ— इस जन्मविषैं अर परजन्मविषैं जे दोष असत्यवादीकै होय हैं, ते सर्वही दोष कर्कशवचनादिक बोलनेवालेहूको होय हैं, ऐसैं जानना ॥ गाथा—

एदेसिं दोसाणं । मुक्को होदि अलियादिवचिदोसे ॥
परिहरमाणो साधू । तव्विवरीदे य लभदि गुणे ॥ ५१ ॥

अर्थ— असत्यवचनादिकदोषनिनैं त्याग करतो जो साधु, सो जो ये असत्यवचन के दोष कहे, तिनकरि रहित होय है। अर इन दोषनितैं विपरीत जे गुण तिनकूं प्राप्त होय है॥ ऐसैं अनुशिष्टि नामा महा अधिकारविषैं सत्यमहाव्रतकी शिक्षा तीस गाथानिमैं वर्णन करी ॥ अब अचौर्य नामा व्रतका उपदेश चोईस गाथानिमैं वर्णन करे हैं ॥ गाथा—

मा कुणसु तुमं बुद्धी । बहुमप्पं वा परादयं घित्तुं ॥
दंतंतरसोधणयं । कलिंचमित्तं पि अविदिण्णं ॥ ५२ ॥

अर्थ— भो साधो! विनादीया परका अल्पद्रव्य वा बहुतद्रव्य दंतानिकी संधीके सोधनेका तृणमात्रहीका ग्रहण करनेमें बुद्धि मति करहु ॥ भावार्थ— परका विनादीया अल्पवस्तु वा बहुतवस्तु लेनेमें परिणाम स्वपनामैंहू मति करो ॥ गाथा—

जह मक्कडउ धादो । वि फळं दट्ठूण लोहिदं तस्स ॥
दूरत्थस्स वि डेवदि । घित्तूण वि जइ विछंडोदि ॥ ५४ ॥
एवं जं जं पस्सदि । दव्वं अहिलसदि पाविदुं तं तं ॥
सव्वजगेण वि जीवो । लोभाइट्ठो ण तिप्पेदि ॥ ५४ ॥

अर्थ— जैसैं धाप्या हुवाहू मर्कट कहिये वानर सो दूरि तिष्ठता वृक्षकेहू रक्त कहिये लाल पक्या हुवा फलकूं देखिकरिकै ग्रहण करनेकूं दौडै है। यद्यपि ग्रहणकरिकै छांडत है–भक्षण नहीं करे है, तोहू पक्वफलकूं देखि ग्रहण कीयेविना नही रह्या जाय है, तैसैंही लोभाविष्ट जो लोभी जीव सोहू जिसजिस वस्तूकूं देखे है, सुणे है, ताहि ग्रहण करनेकूं प्राप्त होनेकूं अभिलाष करे है। अर सर्व जगत् प्राप्त होजाय तो ताकरिकैहू तृप्ति नहीं होय है ॥ भावार्थ– जैसैं वानरका ऐसा स्वभाव है, जो धापिकरिकैं सुखसूं तिष्ठताहू कोई अन्यवृक्षका पक्या हुवा फल दूरितैंहू देखै, तो दौडिकरिकै तोड्याविना नहीं रहै। खाया नही जाय तोहू वृक्षथकी तोडिही नाखै। तैसैं संसारी लोभी जीव धनसंपदाकरि भऱ्या हुवाहू अन्यका अन्यायधनहू ग्रहण करनेमें बडा उद्यम करे है। यद्यापि आपकै जो धनसंपदा मोजूद है, ताहि भोगनेकूं समर्थ नही है; अर अवस्थाहू गलि गयी है अर भोगनेकूं सामग्रीहू बहोत है, तथा आपके भोगनेवाला

स्त्रीपुत्रादिककाहू मरण होगया है अर इंद्रियांहू अपने अपने विषय ग्रहण करनेमेंही असमर्थ होगई हैं! तथापि न्याय्य अन्याय्य परिग्रह ग्रहण करनेमेंही तथा दिनदिन वधावनेमेंही जतन करे हैं! अर अनेक वस्तुनिका संग्रहही कीया चाहे है! तृप्ति नही होय है ॥ गाथा—

जह मारुओ पवड्ढइ । खणेण वित्थरइ अब्भयं च जहा ॥
जीवस्स तहा लोभो । मंदो वि खणेण वित्थरइ ॥ ५५ ॥

अर्थ— जैसें मंदहू पवन एक क्षणमात्रकरि ऐसा वधे है सो सर्व आकाशमें विस्तर जाय, तैसें मंदहू लोभ ऐसा वधे है जो क्षणमात्रमें सर्वजगतकी संपदाके ग्रहण करनेमें व्याप्त होजाय ॥ अब लोभ वधै तादि कहा दोष होय है, सो कहे हैं ॥ गाथा—

लोभे पवाड्ढिदे पुण । कज्जाकज्जं णरो ण चिंतेदि ॥
तो अप्पणो वि मरणं । अगणिंतो साहसं कुणदि ॥ ५६ ॥

अर्थ— बहुरि यो नर लोभको वधता संता 'यह करनेयोग्य है, यह नही करनेयोग्य है' याप्रकार कार्य अकार्यकं नही चिंतवन करे है। ततः कहिये युक्त अयुक्तका विचारका अभावतैं आपका मरणहूकूं नही गिणता महान् साहस करत है—चोरी करत है ॥

भावार्थ— लोभ वधै तादि युक्त अयुक्तका विचार नष्ट होजाय है, यो विचार नही करै,

जो "मैं कौन हूं? मेरा कुल कौन है? मेरा मातापितादिकनिकी कहा प्रतिष्ठा है? इस मनुष्यजन्ममें यो अवसर पाय मोकूं कहा कार्य करना उचित है? अर पापपुण्यका कहा फल है? वा मैं लोभी होय कोन गतिकूं प्राप्त होऊंगा! तथा जाका जस है, ताका जीवन सफल है. मैं अन्याय्य परका धन ग्रहणकरिकै महा अपवाद कलंक अर जगतमें धिक्कार धिक्कार पाय नरकमें प्राप्त हूंगा!" इत्यादिक विचार नही करे है। अर लोभी हुवा परधनहरणादिक करि ऐसा कर्म करे है, जाकरि इस लोकहीमें "बंदिगृह सेवना, नासिकाछेदन, सर्वस्वहरण, शूलारोपण, हस्तादिकछेदन" तीव्र दंडनैं प्राप्त होय, मरण-करि नरकधरामैं नानाप्रकारके वचनके अगोचर ऐसे असंख्यातकालपर्यंत दुःख भोगि बहुरि अनंतानंतकालपर्यंत त्रासस्थावरमैं घोर दुःख भोगता अनंतानंत जन्ममरण करता परिभ्रमण करे है ॥ गाथा–

सव्वो उवाहिदबुद्धी । पुरिसो अत्थे हिदे य सव्वो वि ॥
सत्तिप्पहारविद्धो । व होदि हिदयम्मि अदिदुहिदो ॥ ५७ ॥
अत्थम्मि हिदे पुरिसो । उम्मत्तो विगदचेयणो होई ॥
मरादि य हक्कारकिदो । अत्थो जीवं खु पुरिसस्स ॥ ५८ ॥

अर्थ— सर्वही लोक अर्थ जो धन तामैं स्थापी है बुद्धि जानै ऐसा है, सो

धनकूं कोऊकरि हरते संते जैसैं हृदयमें शक्ति नामा आयुधका प्रहारकरि वेध्या पुरुषकीनांई अतिदुःखित होय है। बहुरि धनकूं हरता संता पुरुष उन्मत्त होय है, बावला हुवा बकवाद करे है। वस्त्रादिकनिकी सुधि नहीं रहे है, तथा चेतना जो ज्ञानचेतना ताकरि रहित होय है, तथा हाय हाय करता महादुःखकरिकै मरण करे है, तातैं या पुरुषका धन है सो जीव है। जानैं अन्यका धन हर्‍या तानैं प्राण हर्‍या! प्राणहरणतैंहू धनहरणका तथा जीविकाहरणका दुःख बहोत होय है॥ गाथा—

अडईगिरिदरिसागर-। जुद्धाणि अटंति अत्थलोभादो॥
पियबंधवे वि जीवं। पि णरा पयहंति धणहेदुं॥ ५९॥
अत्थे संतह्मि सुहं। जीवदि सकलत्तपुत्तसंबंधी॥
अत्थं हरमाणेण य। हिदं हवदि जीविदं तेसिं॥ ८६०॥

अर्थ— ये मनुष्य धनके अर्थि महान् भयंकर सिंह व्याघ्र गज सर्पादिकनिकी भरी हुई वनीमैं प्रवेश करे है, तथा पर्वतनिकी भयंकर गुफानिमैं प्रवेश करे है, तथा महाभयंकर समुद्र तथा शस्त्रांका संपातकरि जहां अनेक जोद्धानिके तथा हस्ती घोडे-निके रुधिरके प्रवाहकरि अतिविषम जहां शस्त्रनिकरि अंधकार हो रह्या ऐसा विषम संग्रामस्थानमें प्रवेश करे है! अपने प्राणनितैं प्यारे स्त्री पुत्र मित्र बांधवनिकूं छोडिकरि

तथा अपने जीवनेकीहू आशा छोडिकरि वनी पर्वत गुफा नदी समुद्र संग्राम इत्यादिकनिमैं प्रवेश करे है। जातैं धन होता संता स्त्रीपुत्रादिक कुटुंबसहित सुख जैसैं होय तैसैं जीवे है। ऐसैं महाक्लेशकरि उत्पन्न करिये ऐसे धनकूं जो चोरे है-लूटे है, सो महापापी परधनकूं हरनेवाला पुरुष अन्यजीवनिका सर्व कुटुंबसहितका प्राण हऱ्या ॥ भावार्थ— जिस महावनींमैं तथा पर्वतादिकमें कोऊ जावनेकूं समर्थ नही तिस विषमस्थानमें कोऊ धन देनेवाला होय तो अपने प्यारे स्त्रीपुत्रादिकनिकूं त्यागिकरि भयंकर स्थानमें प्रवेश करे है! अपने बालक तथा स्त्री तथा वृद्ध मातापितादिकनिकूं छोडि सैंकडा कोसापरैं जहां अपना जातिकुलदेशका कोऊ दीखे नही ऐसा धर्मरहित म्लेंछदेशनिमैं धनके अर्थि वीस वर्ष पचीस वर्ष वसे है! जो कोऊप्रकार महान् कुटुंबवास्ते धन कुमाय लेजाऊं। तथा सर्व प्यारे कुटुंबके मनुष्य तथा स्त्रीपुत्रादिक धनकी आशा करि आपके भर्त्ताकूं पुत्रकूं पिताकूं परदेशमें गमन करावे है! ऐसा धनकूं चोरनेवाला महान् दुष्टका पापकूं कौन वर्णन करिसकै? वै सर्व कुटुंबका प्राण हरनेहूतैं अधिक पापाचरण कीया-ग्रहण कीया ॥ गाथा—

चोरस्स णत्थि हियए। दया च लज्जा दमो व विस्सासो ॥
चोरस्स अत्थहेदुं। णत्थि अकादव्वयं किंपि ॥ ६१ ॥

अर्थ— चोरका हृदयमें दया नही है, जो दया होय तो ऐसा महान् वात कैसें करै? चोरकै लज्जा नही है, जो लज्जा होय तो ऐसा जगतकै निंद्यकर्म कैसें करै? चोरकै इंद्रियां वशीभूत नही, इंद्रियां वशी होय तो आपके घातका कारण महानिंद्य-कर्म कैसें करै? चोरका विश्वास नही है, ऐसा घोरकर्म करै ताका कैसें विश्वास होय? चोरकै ऐसा जगतमैं नही करनेजोग्य कोऊही अधर्मकर्म विद्यमान नही है, ताहि धनके अर्थि चोर नही करै! ॥ गाथा—

लोगम्मि अत्थि पक्खो। अवरद्धंतस्स अण्णमवराधं॥
णीयल्लया वि पक्खे। ण होंति चोरिक्कसीलस्स॥ ६२॥
अण्णं अवरद्धंत-। स्स दिंति णियए घरम्मि उंगासं॥
माया वि य उंगासं। ण देइ चोरिक्कसीलस्स॥ ६३॥

अर्थ— हिंसादिक अन्य अपराधकूं करनेवाला पुरुषका लोकमैं कोऊ पक्ष करनेवाला होय है। अर चोरीका है स्वभाव जाका ऐसा चोरका माता स्त्री पिता पुत्र बांधवादिक कोऊही पक्ष करनेवाला नही होय है। बहुरि अन्य कोऊ अपराध कीया होय, ताकूं तो कोऊ हितवान् मित्र बांधवादिक अपने गृहमें रहनेकूं अवकाश दे है। अर चोरी करनेवालेकूं अपनी माताहू अवकाश नही दे है॥ गाथा—

परदव्वहरणमेदं । आसवदारं वुवेंति पावस्स ॥
सोगरियवाहपरदा- । रिएहि चोरो हु पापदरो ॥ ६४ ॥

अर्थ— शिकारीनितैं तथा वधिकनितैं तथा परस्त्रीके लंपटीनितैंहू परधन हरण करनेका पाप अधिकतर है। अर परद्रव्यका हरण कैसाक है? पापके आवनेकूं आस्रवद्वार कहे हैं ॥ गाथा–

सयणं मित्तं आसय- । मल्लीणं पि य महल्लए दोसे ॥
पाडेदि चोरियाए । अयसे दुक्खम्मि य महल्ले ॥ ६५ ॥

अर्थ— चोरी करता जो चोर, सो अपने स्वजनाकूं मित्राकूं समीप तिष्ठतेकूं स्थानकूं महान् दोषनिमैं पटकत है। तथा अपजसमें तथा महान् दुःखमें पटकत है ॥ भावार्थ— चोरी करनेवालेका सर्व हितू व्यवहारी कुटुंबी पाडोसी महान दोषमें अपजसमें दुःखमें पडत है ॥ गाथा–

वंधवधजादणाउं । छायाघादपरिभवभयं सोयं ॥
पावदि चोरो सयमवि । मरणं सव्वस्सहरणं वा ॥ ६६ ॥

अर्थ— चोरी करनेवाला पुरुष बेडी सांकल खोडेनिके बंधन तथा नानाप्रकारकी ताडना तथा तीव्र वेदनाकूं प्राप्त होय है। तथा छाया जो शरीरकी कांति सोहू चोरकी

बिगाडि जाय है। जगतमें तिरस्कारकूं प्राप्त होय है। चोर निरंतर भयकूं प्राप्त होय है। शोककूं प्राप्त होय है। स्वयमेव मरणकूं प्राप्त होय है। तथा सर्व धन राजादिकनि-करि चोरका हर्‍या जाय है॥ गाथा—

णिच्चं दिवा य रत्तिं। च संकमाणो ण णिद्दमुवलभदि॥
तेणं तउं समंता। उव्विग्गमउं व पिच्छंतो॥ ६७॥

अर्थ— चोर है सो उद्वेगनैं प्राप्त हुवा मृगकीनांई सर्वतरफ अवलोकन करता नित्य कहिये सासता शंका करता दिन वा रात्रिविषैं निद्राकूं नहीं प्राप्त होय है॥ गाथा—

उंदुरकदं पि सद्दं। सुच्चा परिवेवमाणसंव्वगो॥
सहसा समुत्थिदो भय-। उव्विग्गो धावदि खलंतो॥ ६८॥

अर्थ— चोर पुरुष उंदुर जो मूंसा ताकाहू शब्द श्रवणकरिकै अर कंपायमान है सर्व अंग जाका ऐसा शीघ्रही भयकरि उद्वेगकूं प्राप्त हुवा पडता गिरता दोडे है॥ भावार्थ— चोरकै निरंतर भय रहे है मति कोऊ जाण जावो! मति कोऊ पकड ल्यो मति कोऊ पकडनेकूं आया होय! ऐसा भयभीत हुवा मूसेके शब्द सुणिकरिहू बेहोष हुवा भागे है गिरे है॥

धत्तिं पि संजमिंतो। घित्तूण किलिंबमेत्तमविदिण्णं॥
होदि हु तणं व लहुउं। अप्पच्चइउं य चोरो व॥ ६९॥

अर्थ— अतिशयकरिकैं संयम पालतोहू साधु विनादीया तृणमात्रहू ग्रहणकरिकै तृणवत् लघु होय है अर चोरकीनांई प्रतीतिरहित होय है ॥ भावार्थ- अत्यंत संयम पालतोहू साधु जो एक तृणभी विनादीयो ग्रहण करै तो तृणहूतैं अधिक निरादरयोग्य होय, जातैं संयमी तो अचौर्यादिक व्रतथकी पूज्य है अर जब विनादीया ग्रहण कीया तब चोरतैं अधिकही भया ॥ गाथा—

परळोगम्मि य चोरो। करेदि णिरयम्मि अप्पणो वसधिं ॥
तिव्वाउ वेयणाउ। अणुभवदि हि तत्थ सुचिरं पि ॥ ८७० ॥

अर्थ— बहुरि चोरी करनेवाला पुरुष परलोकमैंहू आपकी वसति नरकमें करे है। तिन नरकनिमैं चिरकालपर्यंत तीव्र वेदनानिकूं अनुभवे है ॥ गाथा—

तिरियगदीए वि तहा। चोरो पाउणदि तिव्वदुक्खाणि ॥
पापेण णीयजोणी-। सु चेव संसरइ सुचिरं पि ॥ ७१ ॥

अर्थ— जैसैं चोर नरकगतिमैं तीव्र दुःख पावे है, तैसैंही तिर्यंचगतिहूमैं तीव्र दुःखनिनैं प्राप्त होय है। अर चोरी करनेवाला बहोत असंख्यातकालपर्यंत नीचयोनी जो कूंकर सूकर गर्दभ महिषादिक तथा विकलत्रयादिकनिकी योनिनिमैं बाहुल्यपणाकरि परिभ्रमण करे है ॥ गाथा—

माणुसभवे वि अत्था। हिदा व अहिदा व तस्स णस्संति ॥
ण य से धणमुवधीयदि। सयं च उल्लडदि धणादो ॥ ७२ ॥

अर्थ— बहुरि चोर कदाचित् मनुष्यभवकूं पावै, तो मनुष्यभवकूमैं ताका धन कोऊ-करि हऱ्या हुवा वा विनाहऱ्या नाशकूं प्राप्त होय है। अर ताका धन संचयकूं प्राप्त नही होय। अर जहां धन होय, तहांतैं आप स्वयमेव दूरि निकसि जाय है! चोरी करनेका बडा घोर दुःख होना अनेकजन्मनिमैं ऐसा फल है ॥ गाथा—

परदव्वहरणबुद्धी। सिरिभूदी णयरमज्झयारम्मि ॥
होदूण हदो पहदो। पत्तो सो दीहसंसारं ॥ ७३ ॥

अर्थ— परका धन हरनेकी है बुद्धि जाकी ऐसा श्रीभूति नामा राजाका पुरोहित सो नगरके मांहिंही नानावेदनाकरि ताडित तथा प्रहत कहिये नाना त्रासनितैं मरिकरिकै दीर्घ संसारपरिभ्रमणनैं प्राप्त होत भयो ॥ गाथा—

एदे सव्वे दोसा। ण हुंति परदव्वहरणविरदस्स ॥
तव्विवरीदा य गुणा। होंति सदा दत्तभोइस्स ॥ ७४ ॥

अर्थ— अर जो परद्रव्यहरणका त्यागी है ताकै एते सकलही दोष नही होय हैं। जो परका दीया हुवा भोगै ताकै पूर्वैं जो चोरके दोष कहे तिनतैं उलटे गुणही सदा होत हैं ॥

देविंदरायगहवइ- । देवदसाहम्मिउग्गहं तह्मा ॥
उग्गहविधिणा दिण्णं । गेण्ह सुसामण्णसाहणयं ॥ ७५ ॥

अर्थ— तातैं देवेंद्र राजा गृहपति साधर्मीदेवतानिका परिग्रह अवग्रह कहिये देने-योग्य विधिकरिकै दीयाहू मुनिपणाकै योग्य, ज्ञान अर संयमका साधन होय सो गृहण करहू ॥ भावार्थ- जो ग्रहण करो, सो विधिकरि दीया गृहण करहू । अर दीया हुयाहूमैं जिसतैं सम्यग्ज्ञान बधै तथा संयम वृद्धीकूं प्राप्त होय, सोही ग्रहण करो । संयमकूं मलिन करनेवाला कोटि आग्रहतैं दिया हुवाहू ग्रहण मति करो ॥

ऐसैं अनुशिष्टि नामा महाधिकारविषैं अचौर्यमहाव्रतका वर्णन चोईस गाथानिमैं कह्या ॥ अब दोयसै इकतालीस गाथानिमैं ब्रह्मचर्य नामा महाव्रतका वर्णन करे हैं ॥ तिनमैं पांच गाथानिमैं सामान्यब्रह्मचर्यकूं उपदेशे हैं ॥ गाथा—

रक्खाहि वंभचेरं । अबंभं दसविधं तु वज्जित्ता ॥
णिच्चं वि अप्पमत्तो । पंचविधे इत्थिवेरग्गे ॥ ७६ ॥

अर्थ— भो मुने! दशप्रकारका अब्रह्मकूं वर्जनकरिकै अर ब्रह्मचर्यकी रक्षा करहू । अर पंचप्रकारकरिकै स्त्रीनितैं वैराग्य होनेविषैं नित्यही प्रमादी मति होहू ॥ अब सो ब्रह्मचर्य पालनेयोग्य कहा है सो कहे हैं ॥ गाथा—

जीवो बंभा जीव- । म्मि चेव चरिया हवेज्ज जा जदिणो ॥
तं जाण बंभचेरं । विमुक्कपरदेहतित्तिस्स ॥ ७७ ॥

अर्थ— ज्ञानदर्शनादिरूपकरि जो वृद्धीकूं प्राप्त होय, सो ब्रह्म है। सो इहां जीवकूं ब्रह्म कहिये है। सो पर जो देह, तामैं प्रवृत्तिकरि रहित जो यति, ताकी जो जीवमें चर्या प्रवृत्ति सो ब्रह्मचर्य है॥ भावार्थ— जीवकूं ब्रह्म कहिये हैं, ब्रह्म नाम जीवका है। सो अपने अर परके शरीरादिकनिमें प्रवृत्तिकूं त्यागिकरिकै अर शुद्धज्ञान-शुद्धदर्शनादिक स्वभावरूप जो आपका आत्मा, तामैं जो चर्या कहिये प्रवृत्ति, ताहि ब्रह्मचर्य कहिये हैं। अनादिकी पर वस्तु जो अपना परका शरीर तथा धनधान्यक्षेत्रकुटुंबादिकनिमें आत्माकी प्रवृत्ति लगिरही है अर जब परमें प्रवृत्ति छूटि अपना जानन-देखनभाव है तामैं प्रवृत्ति करना सोही ब्रह्मचर्य है। तातैं अन्य जो देहादिक तामैं ममत्व त्यागि जैनका यति होवै जो आत्मा तामैं प्रवृत्ति करे हैं। परके शरीरमें मनवचनकायकरि प्रवृत्तिका त्याग जाकै होय, ताकै ब्रह्मचर्य होय है॥ दशप्रकारका अब्रह्मका त्यागतैं दशप्रकार ब्रह्मचर्य होय है। तातैं अब्रह्मचर्यके दश भेदनिकूं कहे हैं॥

इत्थिविसयाभिलासो । वत्थिविमोक्खो य पणिदरससेवा ॥
संसत्तदव्वसेवा । तदिंदियालोयणं चेव ॥ ७८ ॥

सक्कारो संकारो । अदीदसुमरणमणागदभिलासो ॥
इट्ठविसयसेवा वि य । अव्वंभं दसविहं एदं ॥ ७९ ॥
एवं विसग्गिभूदं । अव्वंभं दसविहं पि णादव्वं ॥
आवादे मधुरंमिव । होदि विवागे य कडुयदरं ॥ ८८० ॥

अर्थ— स्त्रीसंवंधी जे इंद्रियविषय, तिनिका अभिलाष सो स्त्रीविषयाभिलाष है। स्त्रीनिके सुंदर नेत्र, मुख, ग्रीवा, वाहू, कुच, उदर, नितंव, तथा आभरण, वस्त्र, हावभाव, विलास, विभ्रम इत्यादिकके देखनेमें अभिलाष; तथा तिनके सुंदर मिष्टवचन, तथा शृंगाररसके भरे सुंदरगीत सुननेमें अभिलाष; तथा स्त्रीनिके कोमल अंगके स्पर्शन करनेमें अभिलाष; तथा अधररसका पान करनेमें अभिलाष; तथा स्त्रीनिके मुखादिकनितैं उपज्या गंध, तथा अतर फुलेल इत्यादिककरि जो उपज्या गंध, ताके सूंघनेमें अभिलाष इत्यादिक स्त्रीसंवंधी पंच इंद्रियनिका विषयमें अभिलाष सो स्त्रीविषयाभिलाष नामा प्रथम अब्रह्म है। जातैं स्त्रीका देखना भोगना इत्यादिक विषय तो भोगांतराय नामा कर्मका क्षयोपशमके आधीन है, आपके आधीन नही है। परंतु स्त्रीनिके देखनेस्पर्शनेका अभिलापही ब्रह्मचर्य नामा व्रतका नाश करि अब्रह्म नामा दोषकूं प्रकट करि दुर्गतिका कारण कर्मवंध करे है ॥ १ ॥

बहुरि कामकरि विकारी पुरुषकै जो वीर्यका मोचन होना सो वस्तिविमोक्ष नामा अब्रह्म है ॥ २ ॥

बहुरि कामविकारके उपजावनेवाले जे पुष्टरस तथा मद करनेवाली वस्तु जिनके भक्षण करनेतैं कामोद्दीपन होजाय वा अतिलंपटता वधिजाय सो प्रणीतरससेवन नामा अब्रह्म है। जातैं स्त्रीसंगविनाही इन पुष्टरसनिका भोजन ब्रम्हचर्यका घात तो करेही है, याकूं वृष्याहारसेवनहू कहे हैं ॥ ३ ॥

बहुरि स्त्रीनिकरि तथा कामीपुरुषनिकरि संसक्त कहिये संबंधनैं प्राप्त हुवा शय्या तथा आसन महल मकान बाग तथा कामीनिके पहरनेजोग्य विकाररूप वस्त्राभरण तिनकूं जो सेवना, सो संसक्तद्रव्यसेवन नामा अब्रम्ह है ॥ ४ ॥

बहुरि साक्षात् स्त्रीनिका रागभावकरि प्रीतिपरिणामकरि अवलोकन करना, सो इंद्रियावलोकन नामा अब्रह्म है ॥ ५ ॥

बहुरि स्त्रीनिका सत्कार आदर वचनालाप रागभावतैं करना, सो सत्कार नामा अब्रह्म है ॥ ६ ॥

बहुरि अपने शरीरका गंधपुष्पादिकनिकरि तथा स्नान उद्वर्तनादिककरि संस्कार करना, सो संस्कार नामा अब्रह्म है ॥ ७ ॥

बहुरि पूर्वे जो भोग भोग्या वा श्रवण कीया देख्या तिनका यादि करना, सो अतीतस्मरण नामा अब्रह्म है ॥ ८ ॥

बहुरि आगामी कालमें कामभोग क्रीडा शृंगारादिकका अभिलाप, सो अनागताभिलाप नामा अब्रह्म है ॥ ९ ॥

बहुरि मर्यादरहित यथेच्छ विषयनिका सेवन जो निरर्गल जावना, आवना, बोलना, बैठना, खाना, पीना, रात्रि संचरण करना, यथेच्छ जोग्यअजोग्यका विचाररहित संगति करना, अजोग्यद्रव्यका सेवन, अजोग्यक्षेत्रमें जाना, आना, सोवना, बैठना इत्यादि मर्यादरहित प्रवर्तना, सो इष्टविषयसेवन नामा अब्रह्म है ॥ १० ॥

ऐसें ये दशप्रकारका अब्रह्म जीवकूं अचेत करि धर्मरहित करि ऐसा घाते है, जो, बहुरि अनंतानंतकालमें सचेत नही होय सकै! यातें अब्रह्मकूं विषरूप कह्या है। बहुरि आत्माकै संतापका कारण है, तथा दर्शन ज्ञान चारित्रकूं दग्ध करि मूलतें नाश करनेवाला है। तातैं अब्रह्म अग्निसमान है॥ ऐसें अब्रम्हकूं विषरूप तथा अग्निरूप जानना योग्य है॥ कैसाक है दशप्रकारका अब्रह्म? आवता तो अज्ञानी जीवनिकूं मिष्ट दीखे है, अर उदयकालमें अतिकटुक है॥ अब कामतैं विरक्त होनेका उपाय कहे हैं॥ गाथा—

कामकदा इत्थिकदा । दोसा असुचित्तु बुड्ढसेवा य ॥
संसग्गयदोसा वि य । करिंति इत्थीसु वेरग्गं ॥ ८१ ॥

अर्थ— या जीवकै जे दोष कामविकारतैं उपजे हैं; तथा स्त्रीनिकरि कीये दोष होय हैं, तथा शरीरकी अशुचिताजनित दोष हैं, तथा वृद्धसेवाकरि जे गुण होय हैं, तथा स्त्रीनिकी संगतिकरि जे दोष होय हैं, ते चिंतवन कीये हुये स्त्रीनिमैं वैराग्य उपजावे हैं ॥ अब या जीवकै उत्पन्न हुवा जो परिणाममैं कामका विकार, सो कहा कहा दोष करे है, तिन कामकृतदोषनिकूं पंचावन गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

जावइया किर दोसा । इहपरलोए दुहावहा होंति ॥
सव्वे वि आवहदि ते । मेहुणसण्णा मणुस्सस्स ॥ ८२ ॥

अर्थ— इस लोकविषैं तथा परलोकविषैं दुःखके करनेवाले जितने दोष हैं, तिन सर्व दोषनिकूं मनुष्यकी एक मैथुनकी अभिलाषा प्राप्त करे हैं ॥ गाथा—

सोयदि विलवदि परित- । प्पदी य कामादुरो विसीदयादि ॥
रत्तिं दिवा य णिद्दं । ण लहदि पज्झादि विमणो य ॥ ८३ ॥

अर्थ— कामकरिकै पीडित पुरुष शोच करत है, विलाप करत है, परितापकूं प्राप्त होय है, विषाद करत है, रात्रिविषैं दिनविषैं निद्राकूं नही लेत है अर विम-

नरक हुवा उणमणा हुवा चिंतवन करे है ॥ गाथा—

सयणे जणे य सयणा-। सणे य गामे घरे वरणे वा ॥
कामपिसायग्गहिदो। ण रमदि तह भोयणादीसु ॥ ८४ ॥

अर्थ—कामपिशाचकरिकै गृहीत जो पुरुष, सो स्वजन जे आपके स्त्री पुत्र-कुटुंबादिक तिनमैं नही रमे है, तथा अन्यजननिमैं तथा शयनमें तथा ग्राममें तथा गृहमें तथा वनमैं तथा भोजन पान वस्त्र आभरण राग रंग महल मकान द्रव्यका उपार्जनमें तथा राजसेवा तथा धनसंपदा लेन देन धरनेमेलनेमैं कोऊ रचनामैंहू नही रमे है। जातैं जिस स्त्री वा पुरुष नपुंसकादिक कोऊमैं दर्शन स्पर्शन क्रीडन-रूप राग बंध्या होय, तासूं मिलैही थिरता पावै। कामपिशाचकी या जाति है! जो, कोई नीच दासी वा वेश्या वा चांडाली भीलणी इत्यादिक कोऊ नीचस्त्रीसूं स्नेह लाग्या होय तथा कोऊ नीच अधम विजातीय दासकर्म करनेवाला अभक्ष्य-भक्षी दासीपुत्र वा घोडेका चाकर तथा चारण भाट डूंब इत्यादिकमैं जिसमें स्नेह बंध्या होय तो ताका संयोग हुवाही जक परैगी! अनेक रूपवती कुलवती वस्त्रा-भरणसहित आपकी विवाहितस्त्रीनिका संयोग तथा सुबुद्धिपुत्रनिका संयोग विष-समान भासेगा! तातैं कामसमान अन्यपिशाच नही है ॥ गाथा—

कामादुरस्स गच्छदि । खणो वि संवच्छरो व पुरिसस्स ॥
सीदंति य अंगाइं । होदि अ उक्कंठिउं पुरिसो ॥ ८५ ॥

अर्थ—आपका स्नेहीका संबंधरहित जो कामातुरपुरुष. ताकै क्षणमात्रहू संवत्सर-बराबर होजाय है। अर सर्व अंग वेदनाकूं प्राप्त होय है। अर मन ऐसा उत्कंठित होय है, जाकूं दूसरा दीखैही नही । वारंवार परिणाम उसकी वोडीही लग्या रहै, अन्य भोजन शयन स्त्रीपुत्रादिकनिमैं रचै नही ताकूं उत्कंठा कहिये है, सो सर्व कामातुरकै होय है ॥ गाथा—

पाणिदलधरिदगंडो । बहुसो चिंतेदि किंपि दीणमुहो ॥
सीदे वि णिव्वादिज्जइ । वेवदि य अकारणे अंगं ॥ ८६ ॥

अर्थ—कामातुर पुरुष अपने हस्ततलपरि धऱ्या है गंडस्थल जानै अर दीन है मुख जाका ऐसा बहुतवार क्योंहू चिंतवन करै है, अर शीतकालहूमैं पसीनेकूं प्राप्त होय है, अर कामीका अंग जो शरीर सो कारणविनाही कंपायमान होय है ॥

कामुम्मत्तो संतो । अंतो डज्झइ य कामचिंताए ॥
पीदो व कलकलो सो । अरदग्गिजाले जलंतम्मि ८७

अर्थ— कामकरि उन्मत्त हुवा संता पुरुष कामकी चिंताकरिकै अंतरंगमें दग्ध

होय है। जैसैं कोऊ गाल्या तामा ताहि पीय अंतरंग–हृदयमें दग्ध होय है–मूर्छित होय है, तैसैं कामी अपने वांछित जो स्त्रीका संगम वा पुरुषका संगम नहीं पाय-करिकै वलती जो अंतरंगमें आर्तिरूप अग्नीकी ज्वाला ताविषैं वले है ॥ गाथा—

कामादुरो णरो पुण। कामिज्जंते जणे दु अलहंते ॥
घत्तदि मरिदुं वहुधा। मरुप्पवादादिकरणेहिं ॥ ८८ ॥

अर्थ— बहुरि कामातुर जो जीव सो आपके वांछित जासूं प्रीतिकरि बंधननैं प्राप्त हुवा ऐसा कोऊ स्त्री तथा पुरुष जो आपसूं पराङ्मुख होजाय वा हजारां दीनता करताहू आपसैं प्रीति छोडि दे अथवा और कोऊ धनवान् रूपवान् ऐश्वर्यवान् तामैं आसक्त होजाय अर आपसूं प्रीति संकोच ले तथा आपका निर्धनपणाकरि वृद्धपणाकरि आपकूं नहीं गिणे, तो बहुतप्रकार जे पर्वततैं गिरना, तथा समुद्रमें पडना, तथा अग्निमें प्रवेश करना, तथा भींतिनिकरि स्तंभनिकरि मस्तक फोडि मर जाना, तथा वनमें प्रवेशकरि जाना, तथा पाशी कंठमें नाखि मर जाना, तथा शस्त्रघातकरि मरना, तथा विषभक्षणादिकनितैं मरिजाना इत्यादि-ककरि मरणमें प्रवर्तत है। ॥ भावार्थ— अंतर्गत जो कोऊ स्त्रीमैं वा पुरुष वा नपुंसकमें रागभाव सो काम है। सो कामभाव जब प्रकट होय है, तब अपने

घरमें आपकी देवांगनासमान अर अतिस्नेहकी भरी अनेक स्त्री तथा आज्ञाकारी महागुणवंत पुत्र तथा वांछितकार्यके साधनेवाले सेवकजन तिनमैं द्वेष करे है। अर जिसमें मन आसक्त भया तिसकूं वारंवार चिंतवन करे हैं! अर जो आपका वांछितजन नहीं दीखे, तब सर्वकुटुंब शून्य दीखै है, दसूंदिशा शून्य दीखे हैं! अपना रहनेका महल मंदिर वनसमान तथा मसानसमान दीखे है! अर सर्व कुटुंब अपने हितकी कहै सो विषसमान दीखे हैं! ॥ गाथा-

संकप्पंडयजादे- । ण रागदोसचलजमलजीहेण ॥
विसयबिलवासिणारादे- । मुहेण चिंतादिरोसेण ॥ ८९ ॥
कामभुजयेण दट्ठा । लज्जाणिम्मोगदप्पदाढेण ॥
णस्संति णरा अवसा । अणेयदुक्खावहविसेण ॥ ९० ॥

अर्थ— कामसर्पकरिकै डस्या मनुष्य परवश हुवा नाशकूं प्राप्त होय है। कैसाक है कामरूप सर्प? सर्प तौ अंडेतैं उपजे है, अर कामरूप सर्प मनका संकल्प सोही जो अंडा ताकरि उपजे है, परिणामनिके संकल्पविना नहीं उपजे है। बहुरि सर्पकै चलायमान दोय जिव्हा होय हैं अर कामरूप सर्पकै रागद्वेषरूप चलायमान जुगल जिव्हा होय है। बहुरि सर्प तो बिलमें वसे है अर कामसर्प विषयरूप बिलमें वसनेवाला है।

क/317 23513

बहुरि सर्पके तो मुख होत है, अर कामरूप सर्पके रति जो आसक्तता सोही मुख ताकरि पुरुषका मर्मकूं काटनेवाला है। बहुरि सर्पके रोष होय है, कामरूप सर्पके चिंतारूप रोष है। बहुरि सर्प कांचली छोडे है, अर कामरूप सर्प लज्जारूप कांचली छोडे है। बहुरि सर्पकै डाढ होय है, अर कामरूप सर्पके रूपका मद तथा धनका शृंगारादिकनिका मद सोही तीक्ष्ण दाढ है। अर सर्पके अनेक दुःखनिका वहना भोगना सोही विष है। ऐसें कामरूप सर्पकरि डस्या हुवा जीव आपके ज्ञानदर्शनादिकका नाश करि पराधीन हुवा नाशकूं प्राप्त होय है! नरकनिगोदकूं प्राप्त होय है! ॥

आसीविसेण अवरु- । द्धस्स वि वेगा हवंति सत्तेव ॥
दस होंति पुणो वेगा । कामभुयंगावरुद्धस्स ॥ ९१ ॥

अर्थ— सर्पनिमें प्रधान जो आशीविषजातिका सर्प ताकरि डस्या पुरुषके तो सात वेग होय हैं, अर कामरूप सर्पकरि डस्या हुवा पुरुषकै दश वेग होय हैं ॥ ते दश वेग कैसे हैं सो कहे हैं ॥ गाथा—

पढमे सोयदि वेगे । दट्ठुं तं इच्छदे विदियवेगे ॥
णिस्ससदि तदियवेगे । आरुहदि जुरो चउरथम्मि ॥ ९२ ॥
डज्झदि पंचमवेगे । अंगं छट्ठे ण रोचदे भत्तं ॥

मुच्छिज्जदि सत्तमए । उम्मत्तो होइ अट्ठमए ॥ ९३ ॥

णवमे ण किंचि जाणदि । दसमे पाणेहि मुच्चदि मदंधो ॥

संकप्पवसेण पुणो । वेगा तिव्वा य मंदा वा ॥ ९४ ॥

अर्थ— कामके प्रथमवेगविषैं शोच करत है, जाकूं देख्या था तथा श्रवण कीया था, ताका वारंवार चिंतवन करे है । अर द्वितीयवेगविषैं देखनेकी अति इच्छा उपजै जो देख्याविना परिणाम अति आकुल व्याकुल होय है । अर तृतीयवेग चढै ताविषैं दीर्घनिश्वास पटके है । अर चतुर्थवेगविषैं शरीरमें ज्वर उत्पन्न होय है । अर पंचमवेगविषैं अंग दग्ध होनेलगिजाय है । अर छट्ठा वेगविषैं भोजन नहीं रुचे है । अर सातमां वेगविषैं मूर्छाकूं प्राप्त होय है । अर अष्टमवेगविषैं उन्मत्त होय है । नवमां वेगविषैं ज्ञानरहित होय है । दशमां वेगविषैं मदकरि अंध हुवा प्राणनिकरि रहित होय है ! ॥ बहुरि संकल्पका वशकरिकै ये दशवेग कोऊकै तीव्र होय हैं, कोऊकै मंद होय हैं, जैसा रागका तीव्रपणा मंदपणा होय तिसप्रमाण वेग चढे है ॥ गाथा—

जेट्ठामूले जोण्हे । सूरो विमले णहम्मि मज्झण्हे ॥

ण डहदि तह जह पुरिसं । दहदि विवड्ढंतउ कामो ॥ ९५ ॥

अर्थ— जैसैं ज्येष्ठमासका शुक्लपक्षमें निर्मल आकाशमें मध्याह्नकालमें जो सूर्यहू

आतापकरि दग्ध नही करै, तैसैं वधता हुवा काम पुरुषकूं दग्ध करे है– आताप करे है ॥ गाथा–

सूरग्गी दहदि दिवा । रत्तिं च दिवा य डहइ कामग्गी ॥
सूरस्स अत्थि उच्छा- । गारो कामग्गिणो णत्थि ॥ ९६ ॥
विज्झादि य सूरग्गी । जलादिएहिं ण तहा हु कामग्गी ॥
सूरग्गी दहइ तयं । अब्भंतरबाहिरं इदरो ॥ ९७ ॥

अर्थ— सूर्यकी अग्नि तो दिवसहीमें दग्ध करे है–आताप करे है, अर काम अग्नि दिवसमें तथा रात्रिमैं सदाकाल दग्ध करे है। बहुरि सूर्यकी आतापकूं रोकनेवाला पदार्थ तो छत्रादिक बहोत है, अर काम अग्निकी आतापकूं रोकनेवाली लोकमें वस्तु नहीं है। बहुरि सूर्यकी आताप तो जलयंत्रादिककरि बुझि जाय है, अर कामकी आताप नहीं बुझि है। बहुरि सूर्यकी अग्नि तो शरीरहीकूं दग्ध करे है, अर कामरूप अग्नि अभ्यंतर आत्माके ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, शील, संयमादिक तिनकूं दग्ध करे है अर बाह्यभी शरीरकूं इंद्रियनिकूं यशकूं व्यवहारकूं पूज्यपणा कुलवंतणा तथा धनवंतपणाका नाश करे है ॥ गाथा–

जादिकुलं संवासं । धम्मं णियबंधवम्मि अगणिंतो ॥

कुणदि अकज्जं पुरिसो। मेहुणसण्णाए सम्मूढो ॥ ९८ ॥

अर्थ—मैथुनकी इच्छाके विषैं मोही जो पुरुष सो आपकी जातीकूं नही गिणे है, कुलकूं नही गिणे है, जिनकी संगति रहै तिनकूं नही गिणे है, तथा धर्मकूं कुटुंबकेनिकूं नही गिणता, नही करने योग्य अकार्यकूं करे है ॥

भावार्थ— जो कामके वशीभूत है सो अपना उत्तमकुल उत्तम जातिकूं तो जलांजलि दीनी! सो प्रत्यक्ष देखिये है। कामीके ऐसा विचारही नही है, जो, या स्त्री कोन जाति है? वा चांडाली है! तथा चांडाल भील म्लेंछ अधमाधम जो जगतमें देखि जे तिनतें रमनेवाली अर मद्यमांसके खावनेवाली वेश्या है वा दासी तथा कुलटा है इत्यादिक नीचजाति नीच आचार ताकी ग्लानिरहित अति आसक्त हुवा ताका मुखकी लाला पीवे है! तथा अधम अंगनिकूं स्पर्शें है! चाटे है! कामीके जातिकुलका विचार नष्ट होय है। चांडाल तथा म्लेंछनिकी उच्छिष्ट भक्षण करनेवालीके सामिल अखाद्य खाय है! मद्य पीवे है ॥

कामांधकी जातिकुलकी रक्षा कोऊ देखी नही, सुनी नही। तथा उत्तम कुल उत्तमजातिका ऐसा मार्ग है—जो, अपनी विवाहितस्त्रीका संगम करे है अर अन्य स्त्रीकूं माता बहण पुत्रीतुल्य जानि कदाचित् रागभावसूं अवलोकन करना भी

अपना दोऊ लोक नष्ट होना माने है। अर जब कामांध होय है तब माताकूं सेवन करे है! भगिनीकूं सेवे है! पुत्रीमैं आसक्त होय है! पुत्रकी स्त्रीमैं आसक्त होय है! तथा औरहू अपने कुटुंबकी तथा तपस्विनी गुराणी तथा कन्या कुमारी सबमैं आसक्त होय कुलभ्रष्ट होय है, धर्मभ्रष्ट होय है, लज्जारहित होय है। तथा तैसैंही कोऊ पुरुषमैं रागसंयुक्त होय तादि ऐसा विचार नही करे है— जो यो पुरुष नीच है, तथा चोर है ज्वारी है, वा व्यभिचारी है वा प्रतिष्ठारहित है, याकी संगतितैं मेरा सर्व आपा बिगडि जायगा। सो कामकरिकै अंधकै विचारही नही है। ऐसैं तो जातिकुलका नहीं गिणना कह्या ॥

बहुरि कामी पुरुष जिनके साथि आप वसे है, तिनहूकूं नही देखे है, जो, मै नीचकर्म करूंगा तो मेरे सर्व साथी लज्जित होयगे, तथा मेरा इतना बडा घोरकर्म प्रगट होयगा जब बांधवनिकूं तथा कुटुंबीनिकूं तथा स्वामीकूं सेवकनिकूं धर्मात्मा-जननिकूं तथा पुत्रनिकूं तथा पाडोसीनिकूं कैसैं मुख दिखाऊंगा? तथा तिनके बीचि बैठि कैसैं सुंदर बात करूंगा? ऐसा विचार कामोन्मत्तका जाता रहे है॥ कामी महानिर्लज्ज है। बहुरि कामी धर्मकूं नही गिणे है, जो, मेरा अणुव्रत महाव्रत तप शील सर्व नष्ट हो जायगा तथा सर्वलोकनिमैं मै धर्मात्मा कहाऊं हूं, जो; अब

मेरा कुशीलपणा प्रगट होयगा तो सर्व त्यागीनिका तथा धर्मबुद्धीनिका अपवाद होयगा ऐसा विचार नही करे है॥ बहुरि आपके बांधवनिकूं नही गिणे है। कामकी वांछाकरि मूढ है ताकै करनेयोग्य अर नही करनेयोग्यका विचारही नही है॥ गाथा—

कामपिसायग्गहिदो। हिदमहिदं वा ण अप्पणो मुणदि॥
होइ पिसायग्गहिदो। व सदा पुरिसो अणप्पवसो॥ ९९॥

अर्थ— कामरूप पिशाचकरि ग्रहण कीया पुरुष आपका हित अर अहितकूं नही जाने है। पिशाचगृहीत पुरुषकीनांई सर्वकालविषै आपके वशी नही रहे है॥ गाथा—

णीचो व णरो वहुगं। पि कदं कुलपुत्तउ वि ण गणेदि॥
कामुम्मत्तो लज्जा-। लुउ वि तह होदि णिल्लज्जो॥ १००॥

अर्थ— कामकरि उन्मत्त ऐसा कुलवंतहू पुरुष परके कीये वहुतहू उपकार नीचपुरुषकीनांई नही गिणे है॥ भावार्थ— नीचपुरुषकै चाहे जितना उपकार करो, नीचपुरुष परके उपकारकूं नही गिणे है, तैसैं कामकै वशीभूत पुरुषहू परके बहोत उपकारकूं लोप दे है। बहुरि लज्जावान् मनुष्यहू कामकै वशीभूत हुवा निर्लज्ज होय है॥ गाथा—

कामी सुसंजदाणं। विरुसदि चोरो व जग्गमाणाणं॥

पिच्छदि कामग्घत्थो । हिदं भणंते वि सत्तू व ॥ १ ॥

अर्थ— जैसैं जाग्रता पुरुषमें चौर रोस करे है, तैसैं कामी पुरुष सुंदर संयमीनिमैं रोस करे है। कामीकूं शीलवान् त्यागी पुरुष महावैरी दीखे है। वहुरि कामकरिकै व्याप्त पुरुष आपके हितकी कहनेवालेकूं शत्रुकीनांई देखे है ॥ गाथा—

आयरियउवज्झाए। कुलगणसंघस्स होइ पडिणीउ ॥
कामकलिणा हु घत्थो। धम्मियभावं य पहिदूण ॥ २ ॥

अर्थ— कामकरि मलिन पुरुष धर्मात्मापणाकूं छोडिकरिकै अर आचार्य उपाध्याय कुलगणसंघतैं अपूठा होय है ॥ गाथा—

कामग्घत्थो पुरिसो। तिळोयसारं जहदि सुदलाभं ॥
तेळोक्कपूइदं पि य। माहप्पं जहदि विसयंधो ॥ ३ ॥

अर्थ— कामकरि ग्रस्या पुरुष त्रैलोक्यमें सार ऐसा श्रुतज्ञानका लाभकूं त्यागे है ॥ भावार्थ— जिस पुरुषकै कामपिशाच लाग्या, ताकै पठन-पाठन-धर्मश्रवणतैं पराङ्मुखता होय है। अर जो पूर्व अवस्थामैं श्रुतग्रहण कऱ्या होय, सो नष्ट होय है। वहुरि विषयनिकरि अंधा पुरुष त्रैलोक्यकरिकै पूजित ऐसा अपना महान्पणा त्यागे है ॥

तह विसयामिसघत्थो। तणं व तवचरणदंसणं जहइ ॥

विसयामिसगिद्धस्स हु । णत्थि अकायव्वयं किंचि ॥ ४ ॥

अर्थ— तैसैंही जो विषयरूप मांसकरि ग्रस्या लंपटीपुरुष तपश्चरणकूं तथा सम्यग्दर्शनकूं त्यागत है। विषयरूप मांसमैं लंपटीकै किंचिन्मात्रहू नही करनेयोग्य नही है—संपूर्ण अकृत्य करे है॥ गाथा—

अरहंतसिद्धआयरिय- । उवज्झायसव्वसाहुवग्गाणं ॥
कुणदि अवण्णं णिच्चं । कामुम्मत्तो विगयवेसो ॥ ५ ॥

अर्थ— कामकरि उन्मत्तपुरुष ताका वेष विकाररूप होय है। बहुरि अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्वसाधूनिके समूहका सर्वकालविषैं अवर्णवाद करे है—झूंटे दोष पंचपरमेष्ठीकै प्रकाशै है—निंदा करे है। कामीपुरुषबराबरी कोऊ पातकी है नही ॥

अजसमणत्थं दुक्खं । इहलोए दुग्गदी य परलोए ॥
संसारं पि अणंतं । ण मुणदि विसयामिसे गिद्धो ॥ ६ ॥

अर्थ— विषयरूप मांसमैं जाकै तीव्र लंपटता है सो पुरुष इसलोकमें अपना अपयश होता नही जाने है, तथा अनर्थ होता नही जाने है, तथा राजका दंडजनित तथा अपवादजनित तथा धनका नाश होनेतैं तथा प्राणनिका घात इत्यादिकनितैं उपजता दुःख नही जाने है, परलोकमैं नरकादिकदुर्गतिमैं अपना जाना नही जाने है, तथा

अनंतानंतकाल संसारमें परिभ्रमण होय ताहि नहीं जाने है ॥ गाथा–

णीचं पि विसयहेदुं । सेवदि उच्चो वि विसयलुद्धमदी ॥
वहुगं पि य अवमाणं । विसयंधो सहइ माणी वि ॥ ७ ॥

अर्थ— विषयनिमैं लुब्धबुद्धि कहिये विषयनिका लोभी कुल धन ऐश्वर्य ज्ञान तप त्यागकरि जगतमें उच्च है तोहू विषयनिकेतांई नीच स्त्री नीच पुरुषकी सेवा करे है, पादमर्दन करे है, निरंतर वाका मुख देखै, जो, हमसै कोऊप्रकार प्रसन्न रहे। अर कामीपुरुष नीचस्त्रीपुरुषनितैं हस्त जोरे है अर मुखतैं दीनताके वचन कहे है, जो "मै तुमारा आज्ञाकारी सेवक हूं एक तुमारी कृपादृष्टीकी अभिलाषा मेरै निरंतर रहे है, कहा करूं? मै तुमारा संगमविना प्राण धारनेकूं असमर्थ हूं अर तुमारे द्वारे पड्या हूं तुमारी ममत्वदृष्टितैं मेरा जीवन जानहू" इत्यादिक वचननिकरि हीनता भाषे है। अर जो वै आज्ञा करै ताही करे है, शरीरकी चाकरी करि अपना धन्यभाग्य माने है। अर आपका घरमें जो सुंदरवस्तु होय, सो सर्व दे है, अपना सर्व धन दे है। अर वै ग्रहण करै तब आपकूं कृतकृत्य माने है। बहुरि महा अभिमानीहू विषयनिकरि आंधा अपना बहुत अपमान सहै है। तथा ताडना दुर्वचनादिकनिका लाभकूं महान् लाभ माने है! कामांधबरोबरी जगतमें कोऊ अंध हैही नहीं ॥ गाथा–

णीचं पि कुणदि कम्मं। कुलपुत्तदुगंछियं विगदमाणो ॥

वारत्तुउ वि कुकम्मं। अकासि जह लंघियाहेउं ॥ ८ ॥

अर्थ— विषयवांछाकरि अंधपुरुष मानरहित हुवा कुलवंतनिकरि निंदनीक उच्छिष्ट-भोजनादिक सोहू अपने प्रीतिके पात्र जो स्त्री तथा पुरुष तिनकरि भक्षण कीयाकूं भक्षण करि आपका धन्यभाग्य माने है। जैसैं अकुलीन स्त्रीके निमित्त कोऊ वारत्रक नामा यति नीचकर्म करतो हुवो ॥ गाथा–

सूरो तिक्खो मुक्खो। वि होइ वसिउं जणस्स सधणस्स ॥

विसयामिसम्मि गिद्धो। माणं रोसं च मुत्तूण ॥ ९ ॥

अर्थ— शूर, वीर, तथा कोऊका कह्या नहीं सहि सके ऐसा तीक्ष्ण कहिये क्रोधी तथा मुख्य कहिये सर्व लोकनिमैं प्रधान ऐसा पुरुषहू विषयरूप मांसका लंपटी हुवा संता मान अर रोष दोऊकूं छांडिकरिकैं धनवानजनके वशी होत है॥ भावार्थ– विषयाभिलाषीविना अपना अभिमान छोडि धनवानका दुर्वचन तथा अपमान कौन सहै? विषयानिके वशतैं धनका लोभी होय सर्व सहे है॥ गाथा–

माणी वि असरिसस्स वि। चडुयम्मं कुणदि णिच्चमविलज्जो ॥

मादापिदरे दासो। वायाए परस्स कामंतो ॥ ११० ॥

अर्थ— कामकी इच्छासंयुक्त मानीहू पुरुष असदृश जो अधम नीच आपकी बराबरी नही ऐसा कोऊ पुरुषका तथा स्त्रीका निर्लज्ज हुवा हजारां चाटुकार कहिये कुसामद्यां नित्यही करे है। वचनकरि कहे है, तुम हमारे पिता हो, तुम हमारी माता हो, तुम स्वामी हो, मै तुमारे गृहमें दास हुवा रहूं, मेरे प्राण तुमारी कृपादृष्टितें रहेंगे, मै आपका सरणा लीया, मेरा तिरस्कार करो वा सत्कार करो, मेरै और कुछ चाह नही, एक तुमारी सांची प्रीतिही चाहूंहूं। ऐसें आपका आत्मानें पराधीन करता अधमचेष्टाकूं प्राप्त होय है ॥

इहां इतना और जानना— जो, कोऊ जानेगा, मैथुनसेवनहीकूं काम कह्या है। मैथुनसेवन करना सोही कामविषय नही जानना, जो कोऊका रूपके देखनेमें तथा अंगके स्पर्शनमें तथा नेत्रसूं नेत्र मिलनेमें तथा रागवचन सुननेमें एक आसन एकशयन बैठनेसोवनेमें जो तीव्र आसक्ततांकरि परके वशीभूत होना सो सर्व कामकी तीव्रताका प्रभाव जानना। जो कामके वशीभूत है, ताकै इसलोकमें तो यश उपार्जन करना अर स्वाधीन रहना दोऊ नही होय है अर परलोकके अर्थि हितरूप ऐसा धर्मसेवन सामायिक स्वाध्याय शुभध्यान शुभभावना शुभसंगति वीतरागतादिक सर्व कल्याणरूप कार्यतैं पराङ्मुखता होय है ॥ गाथा—

वयणपडिवत्तिकुसल- । त्तणं पि णासइ णरस्स कामिस्स ॥
सत्थप्पहदा तिक्खा । वि मदी मंदा तहा हवदि ॥ ११ ॥

अर्थ— कामी पुरुषका वचन बोलनेविषैं प्रवीणपणा नष्ट होय है, ये वचन बोलनेके ये वचन नही बोलनेके, तथा 'हमारा पदस्थ ऐसा इसका पदस्थ ऐसा' अर अनेक जन सुननेवाले कहा कहेंगे ! मै इतना बडा पदस्थधारी ! अन्य नीचजन भांडजन तिनकेसे वचन कैसैं कहूंहू? ऐसा विचारही जाता रहे है । बहुरि अनेकशास्त्रनिके ज्ञानकरि तथा लौकिकव्यवहारज्ञानकरि संवारीहू बुद्धि मंद होय है, नष्ट होय है ॥

होदि सचक्खू वि अच- । क्खु व वधिरो वा वि होइ सुणमाणो ॥
दुठ्ठकरेणुयमत्तो । वणहत्थी चेव सम्मूढो ॥ १२ ॥

अर्थ— कामोन्मत्त पुरुष नेत्रनिकरि सहित है तोहू अंधकीनांई नही देखे है ! अर कर्णनिकरि सहित है तोहू नही सुणत है ! जैसैं कपटकी हथणीमैं आसक्त वनका हाथी ताकीनांई मूढ होय है ॥ भावार्थ—जैसैं मदकरि मतवाला हस्ती कपटकी हथनीमैं आसक्त होय अपना खाडेमें पडना वधबंधननिकूं प्राप्त होना नही जाने है, तैसैं कामकरि मतवाला पुरुष नेत्रनिसूं प्रकट देखै है जो "कामी पुरुष मास्या जाय है, प्रकट अपवादकूं प्राप्त होय है, राजकरि तीव्र दंड पावे है, शरीरकरि नष्ट होजाय है, धनरहित होय है, पूज्यपणा

बडापणा प्रतिष्ठा सर्व बिगडिजाय है, नीचस्त्री अर नीचपुरुषनिसूं दीनता करनी पडे है, ऐसैं अनेककी अवस्था आप प्रत्यक्ष देखी है अर देखे है " तथापि या जाने है, जगत् बुद्धिरहित मूर्ख है! समझिसहित विषयसेवन नही करि जाने है? तातैं तिनकै आपदा आवे है। हम ऐसी बुद्धिसूं प्रवर्ते है, सो हमारै क्लेश नही आवै। बहुरि आपकूं जगत् दुराचारी जाने है, तथापि ऐसा माने है, हमारा दुराचार कोऊ जाने नाही। ऐसैं कामकरि अंधके सुशाकीनांई अंधेरा है, देखता संताहू नही देखे है। बहुरि कामकरि उन्मत्त अन्य अनेकपुरुषनिके अनेकदुःख श्रवण करे है, तथा कामीनिका नरकगमन श्रवण करे है, तोहू आपकै दुःख होना नही जाने है, बधिरकीनांई आचरण करे है ॥ गाथा—

सलिलणिवुड्डो य णरो। वुज्झंतो विगदचेयणो होइ ॥
दख्खो वि होइ मंदो। विसयपिसाउंवहदचित्तो ॥ १३ ॥

अर्थ— जैसैं जलमैं डूब्या अर प्रवाहकरि वहता पुरुष चेतनारहित होय है, तैसैं सर्वकार्यनिमैं प्रवीण ऐसा पुरुषभी विषयरूप पिशाचकरि जाका चित्त नष्ट हुवा, सो सर्वकार्यनिमैं मंद होय है—मूढ होय है ॥ गाथा—

वारसवासाणि वि सं-। वसित्तु कामादुरो ण याणीय ॥

पादंगुट्ठमसंतं । गणियाए गोरसंदीवो ॥ १४ ॥

अर्थ-- गोरसंदीप नामा कामी बारह बरसपर्यंत गणिकाकै सामिल वसिकरिकैहू गणिकाका पगमें अंगुष्ठ नही था सो जाण्या नही! भावार्थ- कामकरि अंधकूं चेत नही रह्या । जो, इस वेश्याका पगकै अंगुष्ठ है की नही है ॥ गाथा-

सीदं उण्हं तण्हं । छुदं च दुस्सेज्जभत्तपंथसमं ॥
सुकुमारो वि य कामी । सहइ वहइ भारमाधिगतयं ॥ १५ ॥

अर्थ-- कोमल अंगका धारकहू कामी पुरुष आपका वांछित जो स्त्री तथा पुरुष ताका संगमके अर्थि अपना घरका सुखकारी महल वस्त्र पर्यंक सुंदरस्त्री पांचूं इंद्रियनिका भोग छांडिकरिकै अर परके द्वारे भूमीमैं धूलीमैं पत्थरनिमैं पडता हुवा आपका उच्चपणाकूं नही जानता अत्यंत विषयकी आशाकरिकै शीतऋतुकी रात्रिविषैं शीतवेदना सहे है, तथा ग्रीष्मऋतुका आताप सहे है, तृषा सहे है, क्षुधा सहे है, खोटी शय्या खोटा भोजन अंगीकार करे है, मार्गका खेद सहे है, अर अधिकसूं अधिक भार वहे है, सुकुमार अंगका धारकहू कामांध आपकी वेदना नही गिणे है ॥ गाथा-

गायदि णच्चदि धावदि । कसइ ववदि लवदि तह मलेइ णरो ॥
तूणेइ वुणइ जाचइ । कुलम्मि जादो वि विसयवसो ॥ १६ ॥

सेवदि णिवादि रक्खदि । गोमहिसिमजाविर्यं हयं हत्थिं ॥
ववहरदि कुणदि सिप्पं । सिणेहपासेण दढवद्धो ॥ १७ ॥

अर्थ—विषयाके वशीभूत हुवा उच्चकुलमें जन्याहू पुरुष कहा कहा करे है? जिसमें प्रीति लागी ऐसा स्त्रीपुरुषके आगे बैठ्या हुवा नीचजनकीनांई गावे है, नाचे है, जो कार्य होय ताके अर्थि दौडे है, खोदे है, वावे है, लूणे है, मर्दन करे है, सीवे है, वणे है, याचना करे है। तथा स्नेहपाशकरि बंध्या हुवा और कहा करे है? सेवा करे है, साथि देशांतरमें निकलि जाय है, अपने स्नेहीकी गाई भैसी अजा छेली तथा अवि कहिये भेड तथा घोडा तथा हाथी इनकी रक्षा करे है, विणज करे है, तथा शिल्प करे है, तथा स्नेहका मार्या उत्तमकुलसंबंधी उत्तमजीविका तथा धनसंपदाकूं त्यागिकरि अपना स्नेहीकी साथि नीचकर्मकरि जीविका करि जीवे है, तथा भिक्षा मांगता फिरे है ॥ गाथा—

वेढेइ विसयहेदुं । कलत्तपासेहिं दुव्विमोएहिं ॥
कोसेण कोसियारु- । व्व दुम्मदी णिच्च अप्पाणं ॥ १८ ॥

अर्थ— जैसें कोशकार नामा रेशमकी लट सो आपके मुखमैंसूं तांत काढि आपहीकूं बांधे है, तैसें दुर्बुद्धि जीव विषयनिके अर्थि स्त्रीरूप पाशीकरि आपकूं नित्यही

वेष्टन करे है-वेढे है। कैसीक है स्त्रीरूप पाशी? जो दुःखकरिकैंहू नहीं छूटे है॥

रागो दोसो मोहो। कसायपेसुण्णसंकिलेसो य॥
ईसा हिंसा मोसम-। सूया तेणिक्ककलहो य॥ ११९॥
जंपणपरिभवणियप-। रिवादरिपुरोगसोगधणणासो॥
विसयाउलम्मि सुलभा। सव्वे दुक्खावहा दोसा॥ १२०॥

अर्थ— विषयनिकी वांछाकरि आकुल जो पुरुष तामैं, दुःखके करनेवाले येते सर्व दोष प्रकट होय हैं, ते दोष कौन कौन हैं सो कहे हैं- राग, तथा द्वेष, तथा मोह, तथा कषाय, तथा पैशुन्य, तथा संक्लेश, तथा परके गुणनिकूं नहीं सहिसकना सो ईर्षा है, तथा हिंसा, तथा झूंठ, तथा असूया कहिये गुणनिमैं दोषनिका आरोपण करना, तथा चोरी, तथा कलह, तथा वृथा वकवाद, तथा तिरस्कार, तथा कपट, तथा अपवाद इत्यादिक हजारां दोष कामी पुरुषमें प्रकट होय जाय हैं, अर अनेक लोक विनाकारण वैरी होजाय हैं, अर रोग, तथा शोक, तथा धनका नाश येते सर्व दोष कामकै वशीभूत पुरुषकै प्रकट होय हैं। सो इनका विस्तार लिख्या वहोत कथनी होजाय, प्रत्यक्ष अपने अपने ज्ञानमें प्रकट दीखे हैं॥ गाथा—

अवि य वहो जीवाणं। मेहुणसेवाए होदि वहुगाणं॥

तिळणाळीए तत्ता- । सळापवेसो व जोणीए ॥ २१ ॥

अर्थ— जैसैं तिलांकी नालीमैं संतप्त लोहकी सलाईके प्रवेशकरि तिलनिका घात होय है, तैसैं मैथुनसेवनकरि योनिस्थानमें बहुत बादरनिगोदिया जीवनिका तथा त्रसजीवनिका नाश होय है ॥ गाथा—

कामुम्मत्तो महिलं । गम्मागम्मं पुणो अविपणाय ॥
सुलहं दुलहं इच्छिय- । मणिच्छियं चावि पत्थेदि ॥ २२ ॥

अर्थ— बहुरि कामकरि उन्मत्त पुरुष या स्त्री योग्य है वा अयोग्य है, या सुलभ है या दुर्लभ है, या मोकूं वांछे है वा नही वांछे है इत्यादिकज्ञानरहित हुवा प्रार्थना करे है-प्रीतिके अर्थि याचना करे है ॥ गाथा—

दट्ठूण परकलत्तं । किह दा पत्थेइ णिग्घिणो जीवो ॥
ण य तत्थ किं पि सुक्खं । पावदि पावं च अज्जेदि ॥ २३ ॥
आहट्टिदूण चिरमवि । परस्स महिलं लभित्तु दुक्खेण ॥
उव्वेगमवीसत्थं । अणिव्वुदं तारिसं चेव ॥ २४ ॥
कहमवि तमंधयारे । संपत्तो जत्थ तत्थ वा देसे ॥
किं पावदि रइसुक्खं । भीदो तुरिदो वि उव्वावो ॥ २५ ॥

अर्थ— प्रथम तो यो कामांध जीव परकी स्त्रीकूं देखिकरि निर्लज्ज हुवा कैसैं वांछा करत है? परकी स्त्रीकी वांछामैं कछूहू सुखकूं नहीं प्राप्त होय है, केवल पापही संचय करे है ॥ भावार्थ– अन्यस्त्रीकूं देखि अभिलाष कीया परकी स्त्री आपकै कैसैं आवेगी? नहीं आवै अर केवल पापबंधही होयगा ॥ बहुरि कदाचित् बहुतकाल अभिलाष करता करता दुःखकरिकै परकी स्त्रीकूं पायकरिकैहू उद्वेग जो भय तथा अविश्वास अर तृप्तिरहितपणातैं जैसैं परस्त्रीका लाभ नहीं हुवा तदि वांछाका मार्या दुःखी था, तैसैंही तृप्तिविना दुःखीही रहे है ॥ बहुतकाल तरसता तरसता वांछा करता करता कदाचित् परस्त्रीका मिलापभी होय, तोहू विश्वास नहीं आवै, मति कदाचित् मेरा तिरस्कार कर दे! तथा अन्यलोकनिका बडा भय रहे है, काहूहीका विश्वास नहीं करे है, मति कोऊ देख ले वा जाण जाय तो मार्या जाऊं! आपा बिगडि जाय इत्यादिक भय रहे है ॥ बहुरि कांऊ बडा कष्टकरिकै कोऊ शून्य घरमें वा वनमें अंधकारका अवसरमें परकी स्त्रीका संगम हुवा तो तहां भयसहित 'मति कोऊ पाछै पाछै आवता होय' ऐसैं कंपायमान हुवा अर कठोरभूमिविषैं जहां अंग उपांग दीखे नहीं ऐसा स्थानमें अंधेरी रात्रिमैं कोऊ गलीमैं मकानमें व्याकुलचित्त हुवा वचन बोलनेमेंहू भयभीत हुवा कदाचित् शीघ्रतातैं कामसेवन करे है। सो ऐसैं भयसहित पुरुष रतिका सुखकूं कैसैं

प्राप्त होय? उद्वेग भय अर अतृप्तता सदाकाल रहे है ॥ गाथा-

परमहिलं सेवंतो । वेरं वधवंधकलहधणणासं ॥
पावदि रायकुलादो । तिस्से णीयल्लयादो वा ॥ २६ ॥

अर्थ— परकी स्त्रीकूं सेवन करनेवालेका सर्व लोक वैरी होय है। वहुरि राजाके पुरुषनितैं तथा तिस स्त्रीके कुटुंबीनितैं नानाप्रकारका ताडन मारण बंधन कलह अर धनका नाश अर अपवाद तिनकूं अवश्य प्राप्त होय है ॥ गाथा-

जदि दा जणेइ मेहुण-। सेवा पावं सदारम्मि ॥
अदितिव्वं कह पावं । ण होज्ज परदारसेविस्स ॥ २७ ॥

अर्थ— जो हाल आपकी स्त्रीविषैंही जो मैथुनसेवन पाप उपजावे है, तो परकी स्त्रीका सेवनतैं अति तीव्र पाप कैसैं नही होय? ॥ इहां कोऊकै ऐसी आशंका उपजै, जो, कामसेवनतैं आपकी स्त्रीमैं वा परकी स्त्रीमैं पाप तो दोऊनिमैं बरोबरिही होयगा सो ऐसैं नहीं जानना। जातैं, अपनी स्त्रीका सेवन तो ऐसा है जो पूर्वोपार्जित कर्म जाका संगम करि दीया तिस स्त्रीनैं कर्मका उदयतैं तथा मंदरागतैं भोगे है तातैं मंदरागतैं उपज्या मंदही बंध है। अर परकी स्त्रीमैं अतितीव्र रागका संकल्पकरि आसक्त होय है, आपकी स्त्रीका तो संयोग करै तबही अल्पराग होय है। अर

परकी स्त्रीकीमांहि रात्रि अर दिन कोऊ अवसरहूमैं आसक्तता नही छूटै है, अर रात्रिदिन दुर्ध्यानही बण्यो रहे है अर तृप्तता नही आवे है। अर जामैं ऐसा तीव्र परिणाम उपजे है, जो परस्त्रीकेताई आप मर जाय अर पैलानैं मारि नाखे है वा अन्य दुष्टनिनै धन देय वाका भर्तापुत्रादिकानैं मराय नाखे है! वा जगतमें अपना अपजस नही गिने है, जातिकुल भ्रष्ट होना नही गिने है! तथा बंदिगृहमें पडना, तथा सर्व धनका नष्ट होना, तथा नाक-कान-लिंगछेदनादिक इसलोकमें नाना दंड होइ ताहि नही गिने है! लज्जा सर्व छोडि दे है, धर्मभ्रष्ट होजाय है, कुल छोडि नीचकुलकै सामिल होय खानपान करे है, आपका पदस्थ तथा उच्चपणा पंडितपणा तपस्वीपणा लोकमान्यपणा पूज्यपणा सर्व बिगाडे है अर नरक जावनेका भय नही करे है। तातैं परस्त्रीमैं जो आसक्त तिस पुरुषकै जो तीव्रपरिणामकरि पापबंध होय, तैसैं पापबंध कोऊही पापीकै नही होय है॥

कर्मबंध तो परिणामनिके आधीन है। अर जाकै इस लोकका बिगडना अर परलोकमें नरक जाना दोऊ तो भलाही होहू, परंतु परकी स्त्रीका संगम मेरै होहू ऐसा तीव्र परिणाम होय, तिससमान अधम कोऊ हैही नाही॥ बहुरि अन्यपुरुषकी स्त्रीकूं अन्यपुरुष सेवन करै, तब जातिकुलकी मर्याद गई। माता औरजाति रही, पिता

औरजाति रह्या, तब सर्व कुळ भ्रष्ट होय सर्व धर्म नष्ट होय है। तातैं परस्त्रीकूं अंगीकार करनेसमान और पापकर्म नहीं है। जातैं परस्त्रीके सेवनेमें अदत्तादान नामा तो चोरीका पाप आवे है अर मायाचार अर झूंठ अर हिंसा अर शीलभंग अर अन्यायप्रवर्तन अर तीव्रराग अर क्रोधादिक कषाय अर विषयनिकी तीव्रता अर अतिआसक्तता अर अतिनिर्लज्जता अर निरंतर दुर्ध्यानता इत्यादिक महान् अनर्थनितैं नरकनिगोदका कारण तीव्रकर्मबंध करे है ॥ गाथा—

माया धूदा भज्जा- । भगिणीसु परेण विप्पियम्मि कदे ॥
जह दुक्खमप्पणो हो- । इ तहा अण्णस्स वि णरस्स ॥ २८ ॥
एवं परजणदुक्खे । णिरवेक्खो दुक्खवीयमज्जेदि ॥
णीचागोदं इत्थी- । णउंसवेदं च अतितिव्वं ॥ २९ ॥

अर्थ— जैसैं अपनी माता तथा पुत्री तथा अपनी वहण तथा अपनी स्त्री इनतैं कोऊ अन्यपुरुष दुराचार करै तदि आपकै दुःख होय है, तैसैं अन्यपुरुषकी माता पुत्री भार्या भगिनीसूं व्यभिचार कीया अन्यपुरुषकैहू दुःख होय है। ऐसैं अन्यजनकै दुःख होनेका जाकै विचार नहीं ऐसा अन्यजनके दुःखमें निरपेक्ष जो कामांध सो दुःखका कारण जो अतितीव्र असतावेदनी नामा कर्म तथा नीचगोत्र नामा कर्म तथा स्त्रीवेद

तथा नपुंसकवेद नामा कर्म ताका संचय करे है ॥ गाथा—

जमणिच्छंती महिलं । अवसं परिभुंजदे जहिच्छाए ॥
तह य किलिस्सइ जं सो । तं से परदारगमणफलं ॥ ९३० ॥

अर्थ— जो कोई स्त्री नही इच्छा करती अवश हुई यथेच्छ जबरदस्तीतैं कोऊ पुरुष सेवन करै, तदि सो स्त्री अतिक्लेशनैं प्राप्त होय, सो सर्व पूर्वजन्ममें परस्त्री सेवन करी, ताका फल है ॥ गाथा—

महिलावेसविलंबी । जं णीचं कुणदि कम्मयं पुरिसो ॥
तह वि ण पूरइ इच्छा । तं से परदारगमणफलं ॥ ३१ ॥

अर्थ— जो कोऊ पुरुष स्त्रीका वेषनैं अवलंबन करि नीचकर्म करे है, तोहू कामकी इच्छा पूर्ण नही होय है! कामकी दाहकी मार्याही वले है-तृप्तता नही आवे है! सो सर्व परस्त्रीमैं गमन करनेका फल जानहू ॥ गाथा—

भज्जा भगिणी मादा । सुदा य बहुएसु भवसयसहस्सेसु ॥
अयसायासकरीउ । होंति विसीला य णिच्चं से ॥ ३२ ॥

अर्थ— परकी स्त्रीमैं लंपटी पुरूष नरकनिगोदमें परिभ्रमण करि कदाचित् मनुष्य-भवकूं प्राप्त होय तो, तहां स्त्री तथा बहण तथा माता तथा पुत्री कुशीलिनी तथा

अयश करनेवाली तथा खेद करनेवाली प्राप्त होय है। सो ऐसें कोट्यां भवपर्यंत जो स्त्री माता वहण पुत्री पावै तो व्यभिचारिणीही पावै–शीलवती नही प्राप्त होय है ॥

होइ सयं पि विसीलो । पुरिसो अदिदुब्भगो परभवेसु ॥
पावइ वधवंधादी । कलहं णिच्चं अदोसो वि ॥ ३३ ॥

अर्थ— परकी स्त्रीमैं लंपटी पुरुप सो कुशीलका प्रभावतैं अन्यभवनिविपैंहू आप कुशीलोही होय तथा अतिदुर्भाग्य होइ तथा निर्दोपीभी मारण बंधन कलहकूं नित्यही प्राप्त होय है ॥ गाथा–

इहलोए वि महल्लं । दोसं कामस्स वसगदो पत्तो ॥
कालगदो वि य पच्छा । कडारपिंगो गदो णिरयं ॥ ३४ ॥

अर्थ— कामकै वशी हुवो जो कडारपिंग नामा मंत्रीका पुत्र सो इस लोकमें महान् दुःखकूं प्राप्त हुवो अर पश्चात् मरणकरिकै नरककूं प्राप्त हुवो ॥ गाथा–

एदे सव्वे दोसा । ण होंति पुरिसस्स बंभचारिस्स ॥
तव्विवरीया य गुणा । हवंति बहुगा विरागिस्स ॥ ३५ ॥

अर्थ— वहुरि ब्रह्मचारी पुरुपकै ये सर्व दोप–पूर्वै कहे ते–नही होय हैं। कामतैं विरक्त जो शीलवान् पूरुष, ताकै दोपनितैं अपूठे वहुत गुण होय हैं ॥ गाथा–

कामग्गिणा धगधगं- । तेण हु डज्झंतयं जगं सव्वं ॥
पिच्छइ पिच्छयभूदो । सीदीभूदो व गदरागो ॥ ३६ ॥

अर्थ— धगधगायमान जो कामाग्नि ताकरिकै दग्ध होता सर्व जगतकूं देखि अर गया है राग जाका ऐसा त्यागी पुरुष शांतरूप सुखी हुवा संता तिष्ठे है अर साक्षीभूत हुवा देखे है ॥

ऐसें (अनुशिष्टि अधिकारके) ब्रह्मचर्य नामा महा अधिकारविषैं पचवन गाथानिमैं कामकृत दोष कहे ॥ अब पैंसठि गाथानिमैं स्त्रीकृत दोषनिकूं कहे हैं ॥ गाथा—

महिला कुळं सवासं । पदिं सुदं मादरं च पिदरं च ॥
विसयंधा अगणंती । दुक्खसमुद्दंमि पाडेइ ॥ ३७ ॥

अर्थ— विषयनिकरि अंध जो स्त्री सो अपना कुल नही गिणे है, जो, 'मै कोन कुलमें उपजी हूं? कुमार्ग चलूंगी तो सर्व कुल कलंकित होय जायगा! ऐसा विचार नही करे है'। बहुरि सहवासी जे कुटुंबके (जन) तिनकी अवज्ञा नही गिणे है। बहुरि मेरा भर्ताकी जगतमें बडी प्रतिष्ठा है, मै कुमार्ग चलूंगी तो मेरा भर्तारकी प्रतिष्ठा बिगडी जायगी, ऐसा विचार नही करे है। बहुरि मेरा पुत्र महा ऐश्वर्यवान् है, सर्व-लोकमें मान्य है—पूज्य है, जो मै अकृत्य करूंगी तो मेरा पुत्र महंतपुरुषनिमैं कैसें

मुख दिखायवेगा! ऐसा अनर्थसूं नही शंका करे है। बहुरि मेरी माता तथा पिता लज्जित होय कृष्णमुख होय हृदयमें अतिदग्ध होय आर्तध्यानतैं मरण करेंगे! मोकूं निंद्यकर्म करतैं समस्त कुटुंबके संताप उपजैगा, व्यभिचारिणी दुष्टिणी ऐसा विचार नही करती सर्व कुटुंबकूं दुःखके समुद्रमें पटकत है ॥ गाथा–

माणुण्णयस्स पुरिस- । द्दुमस्स णीचो वि आरुहदि सीसं ॥
महिलाणिस्सेणीए । णिस्सेणीए व दीहदुमं ॥ ३८ ॥

अर्थ— जैसैं निःश्रेणी जो निसीरणी ताकरिकै ऊंचा वृक्षके उपरि चढि जाना होय है, तैसैं स्त्रीरूप निसीरणीकरिकै, मानकरि ऊंचा जो पुरुषरूप वृक्ष ताका मस्तकविषैं नीचपुरुष चढै है ॥ भावार्थ– अभिमानकरिकै महान उच्चभी पुरुष सो कुशीलिनी स्त्रीके निमित्ततैं अधमपुरुषनिकरिहू तिरस्कार करनेयोग्य होय है। कुशीलिनी माता बहण पुत्रीके निमित्ततैं जगतके नीचपुरुषहू धिकार धिकार करे हैं ॥

पव्वदमित्ता माणा । पुंसाणं होंति कुलवलधणेहिं ॥
वलिएहि य अक्खोहा । गिरीव लोगप्पयासा य ॥ ३९ ॥
ते तारिसया माणा- । उ मत्थिज्जंति दुट्ठमहिलाहिं ॥
जह अंकुसेण णिस्सा- । दिज्जइ हत्थी अदिबलो वि ॥ ९४० ॥

अर्थ— इस जगतमें पुरुषनिकै "उच्चकुलमें उपजनेकरि; तथा शरीरके बलकरि; अथवा राज्य, सेना, सुभट, परिकरके लोक तिनके बलकरि; तथा धन, संपदा, आजीविकादिकनिकरि" पर्वतसमान बडा अभिमान होय है! कैसाक है अभिमान? जे बडे बलवंतनिकरिहू जिनमैं क्षोभ नहीं उपजै, पर्वतसमान सर्व जगतके लोकनिकै प्रगट प्रकाशमें आ रह्या है ऐसाहू अभिमान दुष्टस्त्रीनिके संयोगकरिकै मथ्या जाय है, बिगाडिजाय है! जैसैं अतिबलवानहू हस्ती अंकुशकरिकै बैठाणिये है ॥

भावार्थ—पर्वतसमानहू महान् कठोर अभिमानी पुरुष व्यभिचारिणी स्त्रीका संगकरि अभिमानरहित होय दीन रंक दासनिकीनांईं आचरण करे है ॥ गाथा—

आसीय महाजुद्धा। इत्थीहेदुं जणम्मि वहुगाणि ॥
भयजणणाणि जणाणं। भारहरामायणादीणि ॥ ४१ ॥

अर्थ—बहुरि इस जगतमेंहू स्त्रीनिके निमित्तही लोकनिकूं भयका उपजावनेवाला भारत रामायणादिक बहुतवार महान् युद्ध होते भये ॥ गाथा—

महिलासु णत्थि वीसं-। भो पणयपरिचयकदण्णदा णेहो ॥
लहुमेव परगममणा। ताउ सकुलं पि य जहंति ॥ ४२ ॥

अर्थ— स्त्रीनिविषैं विश्वास, तथा स्नेह, तथा परिचय, तथा कृतज्ञता कहिये कीये

उपकारका नहीं भूलना, तथा स्नेह (मैत्री) येते नहीही हैं। जातैं याका परपुरुषमें चित्त गया पाछै विश्वास रहै नहीं, परिचय रहै नहीं, कीये उपकार लोपे दे, स्नेहका भंग करै, तथा आपका कुशल जो भला होना ताही शीघ्रही त्याग करे है॥ गाथा—

पुरिसस्स दु वीसंभं। करेवि महिला वहुप्पयारेहिं ॥
महिला वीसंभेदुं। वहुप्पयारेहि वि ण सक्का ॥ ४३ ॥

अर्थ— इनि स्त्रीनिका ऐसा बुद्धीका सामर्थ्य है, जो, पुरुषकूं बहुतप्रकारकरि विश्वास प्रतीति अपनी कराइ दे, झूंठीकूं सांची प्रतीति कराइ दे, जाकूं पुरुष वारंवार अनुभई-परिचय कीई ऐसीहू सांचके मांहि झूंठकी प्रतीति कराइ दे, अर स्त्रीकूं विश्वास करावनेका कोऊ पुरुषका सामर्थ्य नही है॥ गाथा—

अदिलहुयगे वि दोसे। कवम्मि सुकदस्सहस्समगणंती ॥
पइ अप्पाणं च कुलं। धणं च णासंति महिलाउ ॥ ४४ ॥

अर्थ— अति अल्प दोषकूं होतेहू हजारां उपकार नही गिणती ये स्त्री अपने भर्ताकूं मार ले है, तथा आप मरिजाय है, तथा कुलका नाश करे है, तथा धनका नाश करे है॥ गाथा —

आसीविसो व कुविदो। ताउ दूरेण अणादि अप्पाउं ॥
रुठ्ठो चंडो राया। व ताउ कुव्वंति कुलवादं ॥ ४५ ॥

अर्थ— ए दुष्टस्त्री कैसीक है? क्रोधकूं प्राप्त हुवा आशीविषजातीका सर्पकीनांई आत्माकूं दूरीहीतैं नष्ट करे है। अर रोषकूं प्राप्त हुवा क्रोधी राजाकीनांई कुलका घात करे है ॥ गाथा—

अकदम्मि य अवराधे। ताउ वीसत्थमिच्छमाणीउ ॥
कुव्वंति वहं पदिणो। सुदस्स ससुरस्स पिदुणो वा ॥ ४६ ॥

अर्थ— अपनी स्वच्छंदप्रवृत्तीकूं इच्छा करती जे स्त्री ते विना अपराधही आपका भर्त्ताकूं मारत है, तथा पुत्रकूं मारै, तथा सुसराकूं मारै, तथा पिताकूं मारे है ॥ भावार्थ— या स्त्रीकी यथेच्छ स्वच्छंदप्रवृत्तीकूं रोकै ताकै मारैही ॥ गाथा—

सक्कारं उवकारं। गुणो व सुहलालणं च णेहो वा ॥
महुरवयणं च महिला। परगदहिदया ण चिंतेइ ॥ ४७ ॥

अर्थ— व्यभिचारिणी स्त्री होय ताकी ऐसी रीति है, जो, आपका भर्त्ता बहुत सन्मान सत्कार करै, तथा वस्त्र आभरण धन भोजन दान देयकरि बहुत उपकार करै, तथा आपका भर्त्ता कुलवान् होय, रूपवान् होय, यौवनवान् होय, शीलवान्

विनयवान्, गुणवान् होय, तथा आपका सुखरूप लाड करतो होय, तथा आपमें बहुत स्नेह धारतो होय, तथा मिष्टवचन बोलतो होय एते अपने पतीके गुण नही चिंतवन करे है परपुरुषमें रक्त ऐसी स्त्री एते गुणानिका धारक तथा इतने उपकार करनेवालाहू पतिकूं माखाही चाहै अर मारै इसमें संशय नही ॥ गाथा–

साकेदपुराधिवदी । देवरदी रज्जसुक्खपब्भट्ठो ॥
पंगुळहेदुं छूढो । णदीए रत्ताए देवीए ॥ ४८ ॥

अर्थ— देखहू! साकेतपुरका स्वामी देवरति नामा राजा रक्ता नामा स्त्रीके निमित्त राज्य त्यागि देशांतरनैं गमन करता राज्यसुखसूं रहित हुवा, ताकूं रक्ता नामा राणी पांगुलाके निमित्त नदीके मांहि वहाइ दीया! ॥ गाथा–

ईसालुयाए गोववदीए । गामउडधूयया चेव ॥
सीसं छिण्णं पहदो । पासे भल्लेण सीहबलो ॥ ४९ ॥

अर्थ— कोऊ सिंहबल नामा ताकी गोपवती नामा स्त्री सो ग्रामकूटकी पुत्री जो आपकी सोकि ताका मस्तक छेद्या बहुरि शक्ति नामा आयुधकरि सिंहबल नामा भर्ताकूं हणत भई ॥ गाथा–

वीरमदीए सूलगद- । चोरदिट्ठोट्ठियाए वाणियउ ॥

पहदो दत्तो य तहा । छिण्णो उट्ठोत्ति आलविदो ॥ १५० ॥

अर्थ— सूलीउपरि चढ्या चोर ताकरि खंडन कीया है ओष्ठ जाका ऐसी वीरमती नामा दुष्ट स्त्री, सो आपका भर्त्ता जो वणिक्पुत्र ताही हत्यो! अर घोषणा करी– जो, मेरा भर्त्तानैं ओष्ठच्छेद किया है! यातैं दुष्टस्त्री जो अनर्थ करै ऐसा अनर्थ जगतमैं कोऊ नही करे है ॥ गाथा–

वग्घविसचोरअग्गी । जलमत्तगयकिण्हसप्पसत्तूसु ॥
सो वीसंभं गच्छदि । वीसंभं जो महिलियासु ॥ ५१ ॥

अर्थ— जो पुरुष स्त्रीनिमैं विश्वास करे है; सो व्याघ्रमें, विषमें, चोरमें, अग्निमें, जलमें, मदोन्मत्तहस्तीमें, कृष्णसर्पमें, शत्रूनिमें विश्वास करे है ॥ गाथा–

वग्घादीया एदे । दोसं ण णरस्स तं करेजण्हू ॥
जं कुणइ महादोसं । दुट्ठा महिला मणुस्सस्स ॥ ५२ ॥

अर्थ— मनुष्यकै जो महादोष दुष्ट स्त्री करे है; सो महादोष पुरुषकै व्याघ्र, विष, चोर, अग्नि, जल, मदोन्मत्त हस्ती, कृष्णसर्प, शत्रु जे हैं ते नही करे हैं ॥ गाथा–

पाउसकालणदीउ- । व्व ताउ णिच्चं पि कलुसहिदयाउ ॥
धणहरणकदमदीउ । चोरोव्व सकज्जगुरुयाउ ॥ ५३ ॥

अर्थ— ये स्त्री कैसीक हैं? जैसैं वर्षाकालकी नदी अभ्यंतर मलिन होय हैं, तैसैं इनका चित्त राग द्वेष मोह ईर्षा अर असूया कहिये परके गुण नही देखि सकना अर मायाचार इत्यादिक दोषनिकरि निरंतर मलिन हैं। बहुरि जैसैं चोरकी बुद्धि परका धन हरनेमैं है, तैसैं स्त्रीकी बुद्धिहू मधुरवचनकरिकै तथा रतिक्रीडाकरि तथा अनुकूल प्रवृत्तिकरिकै पुरुषका धन हरण करनेमें उद्यमी है अर अपने कार्य करनेमें प्रधान है ॥ गाथा—

रोगो दारिद्दं वा । जरा व ण उवेइ जाव पुरिसस्स ॥
ताव पिर्उ होदि णरो । कुलपुत्तीए वि महिलाए ॥ ५४ ॥

अर्थ— जितनैं; रोग, दारिद्र्य, जरा पुरुषकूं नही प्राप्त होय; तितनैंही कुलमें उपजी ऐसीहू स्त्रीकूं पुरुष प्रिय है ॥ भावार्थ— कुलवंतीहू स्त्री रोगी दरिद्री वृद्ध भर्ताकूं नही चाहे है ॥ गाथा—

जुण्णो व दरिद्दो वा । रोगी सो चेव होइ से वेसो ॥
णिप्पीलिर्उ व उच्छू । माला य मिला पगदगंधा ॥ ५५ ॥

अर्थ—जैसैं जिस अवसरमें अपना भर्ता युवान था, तथा धनवान् था, तथा नीरोग था, तिस अवसरमें जो आपकूं प्रिय था; तैसें वृद्ध तथा दरिद्री तथा रोगी हुवा

सोही आपका भर्त्ता द्वेष करवाजोग्य अप्रिय होत है। जैसें रसका भख्या सांठा तथा प्रफुल्लित उज्वल सुगंध पुष्पमाला अतिरागतैं आदरनेयोग्य होय है, अर जाका रस काढि लीया ऐसा सांठा तथा मलिन हुई गंधरहित माला आदरनेयोग्य नही होय है, तैसैंही वृद्ध तथा दरिद्र तथा रोगी पुरुष आदरनेयोग्य नही होय है॥ गाथा–

महिला पुरिसमकण्णा-। ए चेव वंचेइ णियडिकवडेहिं॥
महिला पुण पुरिसकदं। जाणइ कवडं अवण्णाए॥ ५६॥

अर्थ— स्त्रीका ऐसा सामर्थ्य है, जो सहजही मायाचार कपट करिकै अर पुरुषकूं ठिगत है। अर अपना कपटकूं पुरुष नही जानि सकै है। बहुरि पुरुषका कीया कपटकूं या स्त्री सहजही जाणे है– जामैं कुछ जतन नहीही करै अर सहज जाणि जाय॥ भावार्थ– स्त्रीकी बुद्धि कपट करनेमें ऐसी प्रवीण है, जो, हजारां कपट करले अर ताके कपटकूं बहोत जतनकरिकै पुरुष नहीं जाणि सकै है। अर पुरुषका कीया कपटकूं सहज जाणि ले है–कपट जाननेमें स्त्रीकी बुद्धिकी बडी तीक्ष्णता है॥ गाथा–

जह जह मण्णेइ णरो। तह तह परिभवइ तं णरं महिळा॥
जह जह कामेइ णरो। तह तह पुरिसं विमाणेइ॥ ५७॥

अर्थ— पुरुष जैसें जैसें स्त्रीका सन्मान करे है, तैसें तैसें या स्त्री पुरुषका

तिरस्कार करे है। अर पुरुष जैसैं जैसैं याकूं कामके अर्थि चाहे है, तैसैं तैसैं या पुरुषका अपमान करे है॥ गाथा–

मत्तो गर्उव णिच्चं । पि ताउ मदविंभलाउ महिलाउं ॥
दासे व सगे पुरिसे । किंपि य ण गिणंति महिळाउं ॥ ५८ ॥

अर्थ— मदोन्मत्त हस्तीकीनांई रूपका मदकरि तथा यौवनका मदकरि तथा धनका मदकरि तथा वस्त्र आभरणशृंगारका मदकरिकै ये स्त्रियां जब विह्वल होय हैं, निरंतर अचेत होय हैं, तब आपका दासीपुत्रमें अर अपना भर्त्तारमें किंचितहू विशेष नही जाने हैं!॥ भावार्थ– मदकी भरी हुई स्त्री ऐसा विचार नही करे है, जो, मेरा भर्त्ता कुलवान् पूज्य जगतमें प्रसिद्ध मेरा स्वामी है, अर यो महा अधम नीचबुद्धि मेरी दासीका पुत्र है, मै याकी स्वामिनी हूं ऐसा कामांधके विचार कहां होय है?॥ गाथा–

अणिहुदपरगदहिदया। तार्उ वग्घीव दुट्ठहिदयार्उ ॥
पुरिसस्स ताव सत्तू। व सदा पावं विचिंतंति ॥ ५९ ॥

अर्थ— जैसैं व्याघ्री विना अपराधही मारनेकूं दुष्टहृदयकूं धारे है, तैसैं अरोक है परपुरुषमें गया चित्त जाका ऐसी दुष्टस्त्रीहू विना अपराधहीं मारनेकूं व्याघ्रीकीनांई

दुष्टहृदया हैं! बहुरि ते कुशीली स्त्री शत्रूकीनांई पुरुषका अशुभही सदाकाल चिंतवन करे है ॥ गाथा-

संझा व णरेसु सदा। ताउ होंति खणमेत्तरायाउ ॥
वादो व महिलियाणं। हिदयं अदिचंचलं णिच्चं ॥ ९६० ॥

अर्थ— ये स्त्री पुरुषनिमें सर्वकालविषैं संध्याका रागकीनांई अल्पकाल रागकूं धारे हैं। इनिका बहुत वध्या हुवाहू अनुराग एक क्षणमें जाता रहे है। स्त्रीका अन्यपुरुषमें चित्त जाय तब आपका बहुतकालका उपकारी स्नेही तामैं बहुतहू अपना रागभावकूं संध्याका रागकीनांई क्षणमात्रमें त्यागे हैं। बहुरि पवनकीनांई नित्यही इनका हृदय अतिचंचल है, एक पुरुषमें नही स्थिर रहे है ॥ गाथा-

जावइयाइं तणाइं। वीचीउ वालुगा व रोमाइं ॥
लोए हविज्ज तत्तो। महिलाचिंताइं बहुगाइं ॥ ६१ ॥

अर्थ— लोकविषैं जितने तृण हैं, तथा समुद्रमें जितने लहरी हैं, तथा वालू रेतके जितने कण हैं, तथा जितने लोकमें रोम हैं-बाल हैं, तितनेहू स्त्रीके परिणामनिके दुष्टविकल्प अधिक हैं ॥ गाथा-

आगासभूमिउदधी-। जलमेरूवाउणो वि परिमाणं ॥

माउं सक्कं ण पुणो । सक्का इत्थीण चित्ताइं ॥ ६२ ॥

अर्थ— आकाशका तथा भूमीका तथा समुद्रके जलका तथा मेरूका तथा पवनकाहू परिमाण करिये है. परंतु स्त्रीनिके मनके दुष्ट विकल्पनिका परिमाण नहीं किया जाय है! ॥ गाथा—

चिट्ठंति जहा ण चिरं । विज्जुज्जळवुब्बुउं व उक्का वा ॥
तह ण चिरं महिळाए । एक्के पुरिसे हवदि पीदी ॥ ६३ ॥

अर्थ— जैसैं बीजली तथा जलका बुद्बुद तथा उल्कापात बहुतकाल नहीं तिष्ठे हैं, तैसैं एकपुरुषविषैं स्त्रीकी प्रीतीहू बहुतकाल नहीं तिष्ठे है, स्त्रीका चित्तका राग अनेकपुरुषनिमैं गमन करे है ॥ गाथा—

परिमाणू वि कहं चि वि । आगच्छेज्ज गहणं मणुस्सस्स ॥
ण य सक्का घेतुं जे । चित्तं महिलाए अदिसण्हं ॥ ६४ ॥

अर्थ— मनुष्यकैं कदाचित् कोईप्रकार अतिसूक्ष्महू परमाणु ग्रहणमें आजाय, परंतु अतिसूक्ष्म जो स्त्रीका परिणाम सो ग्रहण करनेकूं नहीं समर्थ होइ है ॥ गाथा—

कुविदो व कण्हसप्पो । दुट्ठो सीहो गउं मदगलो वा ॥
सक्को हवेज्ज घेत्तुं । ण य चित्तं दुट्ठमहिळाए ॥ ६५ ॥

अर्थ— क्रोधकूं प्राप्त हुवा दुष्टसर्प तथा कृष्णसिंह तथा मदकरि व्याप्त हस्ती एते तो ग्रहण करनेकूं समर्थ होइये हैं, परंतु दुष्ट स्त्रीनिका चित्त आपके वशी करनेकूं समर्थ नहीं होइए हैं ॥ गाथा—

सक्का हविज्ज दट्ठुं । विज्जुज्जोएण रूवमच्छिम्मि ॥
ण य महिळाए चित्तं । सक्का अदिचंचळं णादुं ॥ ६६ ॥

अर्थ— आपका नेत्र आपकूं नहीं दीखे है, तोहू बीजलीके उद्योतकरि आपके नेत्रनिका रूपहू देखनेकूं समर्थ होइए है। परंतु स्त्रीका अतिचंचल चित्त जाननेकूं नहीं समर्थ होइए है ॥ गाथा—

अणुवत्तणाइ गुणवय- । णेहिं य चित्तं हरंति पुरिसस्स ॥
मादा व जाव ताउ । रत्तं पुरिसं ण याणंति ॥ ६७ ॥

अर्थ— जितनैं पुरुषका चित्त आपमें आसक्त हुवा नहीं जानै, तितनैं माताकी-नांई अनुकूल प्रवर्तन करिकै तथा गुणसहित वचन करिकै पुरुषका चित्तकूं हरे है ॥ कौन कौन प्रकारकरि पुरुषका चित्तकूं हरे हैं, सो कहे हैं ॥ गाथा—

अलिएहि हसियवयणे- । हिं अलियरुयणेहि अलियसवएहिं ॥
पुरिसस्स चलं चित्तं । हरंति कवडाउ महिलाउ ॥ ६८ ॥

महिला पुरिसं वयणे- । हि हरदि य हणादि य पावहिदयेण ॥
वयणे अमयं चिट्ठदि । हियए य विसं महिलियाए ॥ ६९ ॥
तो जाणिऊण रत्तं । पुरिसं चम्मट्ठिमंसपरिसेसं ॥
उड्डाहंति वधंति य । वडिसामिसलग्गमच्छं व ॥ १७०

अर्थ— झूंठे हास्यके वचनकरिकै, तथा झूठे रुदनकरिकै, तथा झूठे सोगनकरिकै, कपटतैं ये स्त्रियां पुरुषका चंचलचित्तकूं हरे हैं–आपके वशी करे हैं। बहुरि ये स्त्री वचनकरिकै तो पुरुषका मनकूं हरे है, अर पापरूप हृदयकरि पुरुषकूं हणे है–मारे है। जातैं स्त्रीनिका वचनमें अमृत वसे है अर हृदयमें महान् विष है। जितनैं पुरुषकूं आपमें आसक्त नहीं जानै तितनैं अनुकूल प्रवर्तन तथा अत्यंत विनयादिककरि पुरुषके आधीन प्रवर्ते है अर पश्चात् पुरुषकूं आपमें आसक्त जाणिकरिकै अर पुरुषकूं चाम हाड मांसहीका फूतला ज्ञानरहित जानिकरि अपमान करे है। अर जैसैं वडिस जो लोहका वक्र कीला तामैं उरग्या जो मत्स्य ताकीनांई पुरुषकूं बांधत है ॥ भावार्थ— पुरुषकूं जितनैं आपमैं आसक्त हुवा नही जानै, तितनैं अनेक असत्यादिककरि आपमैं आसक्त करै अर जब आपमैं रक्त हुवा जानैं तदि अवज्ञा करि दे है ॥

उदये य वहिज्ज सिला । अग्गी ण डहेज्ज सीदलो होज्ज ॥

ण य महिलाण कदाई । उज्जुयभावो णरेसु हवे ॥ ७१ ॥

उज्जुयभावम्मि अस- । त्तयम्मि किध होदि तासु वीसंभो ॥

वीसंभम्मि असंते । का होज्ज रदी महिलियासु ॥ ७२ ॥

अर्थ— कदाचित् पाषाणकी शिला जलविषैं तिरै, तथा अग्नि शीतल होय दग्ध नही करै, ऐसे नही होनेके कार्यहू कदाचित् होय तोहू स्त्रियनिका भाव तो पुरुषनिमें कदाचित् सरल नही होय है अर सरलभाव नही होता संता स्त्रियनिमें विश्वास कैसैं होय? अर विश्वास जो प्रतीति नही होता संता स्त्रियनिमें रति जो प्रीति तथा आसक्ति सो कैसैं होय? गाथा—

गच्छेज्ज समुद्दस्स वि । पारं पुरिसो तरित्तु उंघवलो ॥

मायाजळमहिलोदधि- । पारं ण य सक्कदे गंतुं ॥ ७३ ॥

अर्थ— महापराक्रमी पुरुष भुजानितैं तिरिकरिकै समुद्रका पारकूंभी प्राप्त होत है, परंतु मायाचाररूप जलकां भऱ्या जो स्त्रीरूप समुद्र ताके पारकूं गमन करनेकूं महाबलवानहू नही समर्थ होतं है ॥ गाथा—

रदणाउळा सवग्घा । व गुहा गाहाउळा व रम्मणदी ॥

मधुरा रमणिज्जा वि य । सठा य महिळा सदोसा य ॥ ७४ ॥

अर्थ— जैसी रत्नसहित व्याघ्रकी गुफा अर ग्राहकरि व्याप्त रमणीक नदी है, तैसी वचनकरि मधुर अर रूपकरि रमणीक दीखे है, तोहू आपाका ज्ञानरहित महामूर्ख है अर दोषनिकरि सहित है ॥ भावार्थ— जैसी मिष्टजलकरि भरीहू नदी दुष्टजीवनिकी भरी स्पर्शनयोग्य नहीं है, तेसी मधुरवचनकरि युक्तहू दुष्ट स्त्री अंगीकार करनेयोग्य नही है ॥ जैसी रत्ननिकरि भरीहू व्याघ्रकी गुफा रमनेयोग्य नहीं, तैसी वस्त्र आभरण रूप हावभावादिककरि रमणीकहू कुशीलिनी स्त्री आदरनेयोग्य नहीं है ॥ गाथा—

दिट्ठं पि ण सब्भावं । पडिवज्जदि णियडिमेव उड्डेदि ॥
गोधाणुलुक्कमित्थी । करेदि पुरिसस्स कुलजा पि ॥ ७५ ॥

अर्थ— यह स्त्री कैसीक है? जिनकूं वारंवार दिखाया हुवाहू अर उपदेश्या हुवाहू सत्यार्थभाव नहीं अंगीकार करे है। अर मायाचार छलकूं विना उपदेश्या स्वयमेवही प्राप्त होय है ॥ भावार्थ— स्त्रीकै ऐसाही कोऊ कुमतिज्ञानका बल है, जो, धर्मनैं लीया न्यायमार्गरूप दोऊ लोकमें हितकारी ऐसी विद्या नानायत्नकरि शिखायाहू नहीं आवे है। अर छल करना, कपट करना, ठिगना, परका कपट जानि लेना, अनेक वचनकी कला करि मोहित करि लेना, धन हरि लेना, मारि लेना, अपना अपराध छिपावना, परकै दूषण लगाय देना इत्यादिक विनासिखाया हृदयमें

वसे है ॥ बहुरि जैसें गोह नामा जीव जिस मकानकूं पगकरि पकडि लिया, ताकूं अपनें अंगका टूक होजाय तोहू जाकूं पकड्या ताकूं नहीं छांडे है, तैसें कुलवंतीहू स्त्री अपना हटकूं नहीं छांडे है, जो हट ग्रहण करै तिसकूं कोटि उपायतैंहू नहीं छांडे है ॥

पुरिसं वधमुवणेदि । त्ति होदि वहुगा णिरुत्तिवादम्मि ॥
दोसे संघादि त्ति य । होइ य इत्थी मणुस्सस्स ॥ ७६ ॥

अर्थ— निरुक्तिवाद जो शब्दका अर्थ तामैं ऐसा भाव जानना, जो 'पुरुषकूं वध जो मरण ताहि प्राप्त करै' तातैं याकूं 'वधू' कहिये है। बहुरि 'मनुष्यके दोषनिनैं सङ्घातयति कहिये इकठे करै ताकूं स्त्री कहिये है ॥ भावार्थ— स्त्रीनिकी संगतितैं पुरुषमें अनेकदोषनिका संचय होय है, तातैं स्त्री है ॥ गाथा—

तारिसउ णत्थि अरी । णरस्स अण्णो त्ति वुच्चदे णारी ॥
पुरिसं सदा पमत्तं । कुणदित्ति य वुच्चदे पमदा ॥ ७७ ॥

अर्थ— मनुष्यकै स्त्रीसमान और अरि कहिये वैरी नहीं है, तातैं याकूं नारी कहिये है। बहुरि पुरुषकूं प्रमादी करै है, तातैं याकूं प्रमदा कहिये है ॥ गाथा—

गलए लायदि पुरिस- । स्स अणत्थं जेण तेण विलया सा ॥
जोजेदि णरं दुक्खे । ण तेण जुवदी य जोसा य ॥ ७८ ॥

अर्थ— पुरुषके कंठविषैं अनर्थनिकूं लयति कहिये लीन करै तातैं स्त्रीकूं विलया कहिये । बहुरि नरकूं दुःखकरिकै योजयति कहिये युक्त करै, तातैं याकूं युवति कहिये तथा योषा कहिये ॥ गाथा–

अवलेत्ति होदि जं से । ण दढं हिदयम्मि धिदिवळं अत्थि ॥
कुम्मरणोपायं जं । जणयदि तो वुच्चदि कुमारी ॥ ७९ ॥

अर्थ— स्त्रीनिके प्रसंगतैं पुरुषनिके हृदयविषैं धैर्यका बल नष्ट होय है, तातैं याकूं अबला कहिये है । बहुरि पुरुषनिके कुमरणको उपाय उत्पन्न करै, तातैं याकूं कुमारी कहिये है ॥ गाथा–

आलं जणेदि पुरिस- । स्स महल्लं जेण तेण महिला सा ॥
एवं महिलाणामा- । णि होंति असुभाणि सव्वाणि ॥ ८० ॥

अर्थ— पुरुषनिकै महान् अनर्थ उपजावे है, तातैं याकूं महिला कहिये है । ऐसैं स्त्रीके जितने नाम हैं, तितने संपूर्ण अशुभ हैं, नामही दोषनिकी घोषणा करे हैं ॥

णिलउ कलीए अलिय- । स्स आलउ अविणयस्स आवासो ॥
आयासस्सावसधी । महिला मूळं च कलहस्स ॥ ८१ ॥
सोगस्स सरी वेर- । स्स खणी णिवहो वि होइ कोहस्स ॥

णिचउ णियडीणं आ- । सवो य महिला अकित्तीए ॥ ८२ ॥

अर्थ— जितनी जगतमें कलह, सो स्त्रीके निमित्ततैं होय है, तातैं स्त्री है सो कलहका स्थान है। तथा सकल असत्य यामैं वसे है, तातैं या स्त्री असत्यका स्थान है। बहुरि या स्त्री अविनयका आवास है, यामैं रागी पुरुष पिताकी उपाध्यायकी शिक्षा नहीं ग्रहण करे है, तातैं अविनयका स्थान है। बहुरि खेदकूं अवकाश देनेवाली है। बहुरि कलहका मूल है, इसविना कलहकी उत्पत्ति होय नहीं। बहुरि शोककी नदी है। अर वैरकी खानि है। क्रोधका पुंज है। बहुरि मायाचारका समूह है। बहुरि अकीर्तीका आश्रय है। गाथा—

णासो अत्थस्स खउ । देहस्स य दुग्गदीए मग्गो य ॥
आवाहो य अणत्थ- । स्स होइ पहवो य दोसाणं ॥ ८३ ॥

अर्थ— स्त्री है सो अर्थका नाश करनेवाली है, जातैं जितना धन उपार्जन करै है तितना स्त्रीके मार्ग होय नष्ट होय है, बहुरि स्त्रीनिका रागतैं देहकाहू नाश होय है। बहुरि स्त्रीही नरक--तिर्यंचगति जावनेका मार्ग है। बहुरि अनर्थरूप जल आवनेका धोरा हैं। बहुरि दोषनिकूं उत्पन्न करनेवाली है ॥ गाथा—

महिला विग्घो धम्म- । स्स होदि परिहो य मोक्खमग्गस्स ॥

दुक्खाण य उप्पत्ती । महिला सुक्खाण य विवत्ती ॥ ८४ ॥

अर्थ-- स्त्री है सो धर्ममें विघ्न है अर मोक्षमार्गकै आगल है, दुःखनिकी उत्पत्तिभूमि है, सुखनिकूं नाश करनेकूं विपत्ति है ॥ गाथा--

पासो व बंधिदुं जे । छित्तुं महिला असी व पुरिसस्स ॥
सेल्लं व विंधिदुं जे । पंको व णिमज्जिदुं महिला ॥ ८५ ॥
सूलो इव भित्तुं जे । होइ पवोदुं तहा गिरिणदी व ॥
पुरिसस्स खुप्पिदुं क- । द्दमो व मच्चू व मरिदुं जे ॥ ८६ ॥
अग्गी वि य डहिदुं जे । मदो व पुरिसस्स मुज्झिदुं महिला ॥
महिला णिकत्तिदुं कर- । कचो व कंडू व पउलेदुं ॥ ८७ ॥
फड्डेदुं परसू वा । होदि तहा मुग्गरो व ताडेदुं ॥
अवहणणं पि य चुण्णे- । दुं जे महिला मणुस्सस्स ॥ ८८ ॥

अर्थ-- ये स्त्री कैसीक है? पुरुषकूं बांधनेकूं पाश है, अर छेदनेकूं खड्गकीनांई है, अर भेदवेकूं वहाला-शल्यकीनांई है, अर डबोइवेकूं महान् कर्दम है, अर भेदवेकूं शूल है, अर परिणामके वहाइवेकूं पर्वततैं उतरती नदीकीनांई है, मांहि पैसि जानेकूं तथा गडिवेकूं अंध कर्दमकीनांई है, मारनेकूं मृत्युकीनांई है, वहुरि दग्ध करनेकूं अग्नि-

कीनांई है, पुरुषकूं मूढ करनेकूं मदिराकीनांई है, चीरवेकूं करोंतकीनांई है, खुजालवेकूं खाजीकीनांई है, फाडिवेकूं फरसीकीनांई है, तथा ताडन करनेकूं मुद्गरकीनांई है, चूर्ण करिवेकूं पीसनीकीनांई है, ऐसें पुरुषकै दुःख उपजावनवाली स्त्री है ॥ गाथा—

चंदो हविज्ज उण्हो । सीदो सूरो वि घट्टमागासं ॥

ण य होज्जमदोसा भ- । द्दिया वि कुळबाळिया महिला ॥ ८९ ॥

अर्थ— कदाचित् चंद्रमा उष्ण होजाय, अर सूर्य शीतल होजाय, अर आकाश कठोर होजाय, तोहू कुलवंती स्त्रीहू दोषरहित नही होय है अर सरलपरिणामकूं नही धरे है॥गाथा

एए अण्णे य बहू । दोसे महिलाकदे विचिंतयदो ॥

महिलाहि तो वि चित्तं । उव्वियदि विसग्गिसरिसीहिं ॥ ९० ॥

वग्घादीणं दोसे । णच्चा परिहरदि ते जहा पुरिसो ॥

तह महिलाणं दोसे । दट्ठुं महिलाउ परिहरइ ॥ ९१ ॥

अर्थ— स्त्रीनिकरि कीये येते दोष तथा अन्यहू बहुत दोष, तिननैं चिंतवन करता पुरुषका चित्त इनि स्त्रियनितैं उद्वेगरूप होय है—पराङ्मुख होय है। कैसीक है ये स्त्री? विषसमान तो अचेत करनेवाली तथा मारनेवाली है, अर अग्निसमान अंतरंगमें दाह करनेवाली अर आत्माका ज्ञान दर्शन चारित्रकूं दग्ध करनेवाली है ॥ जैसैं पुरुष व्या-

घ्रादिक दुष्ट तिर्यंचनिके कीये दोष जानि व्याघ्रादिकांकी संगतितैं दूरिही भागि तिष्ठे है, तैसैं स्त्रियनिके दोषनिकूं देखि महान पुरुष इनका दूरिहीतैं त्याग करे है ॥ गाथा–

महिलाणं जे दोसा। ते पुरिसाणं पि होंति णीयाणं ॥
तत्तो अहियदरा वा। तेसिं वलसत्तिजुत्ताणं ॥ ९३ ॥

अर्थ— जे दोष स्त्रीनिके पूर्वे कहे, ते सर्व दोष नीचपुरुषनिकैहू होय हैं, अथवा बलकी शक्तिकरि युक्त जे पुरुष तिनकै स्त्रीनितैंहू अधिक दोष होय हैं ॥ भावार्थ– कितने पुरुषनिका तो परिणामही नपुंसकनितैं अधिक नीच है, नित्यही भंड वचन बोलनेवाले अतिहास्यके स्वभावके धारक हैं, रात्रिदिन कामकी तीव्रताकूं धारे हैं, तथा पुरुषपणामैंहू कितने ऐसे हैं "जे स्त्रीकेसे आभरण, केशभार, दंतनिके मषी, कज्जल कुंकुमादिक हावभाव विलास विभ्रम गान स्पर्शन वचनकूं धारण करिकै अर आपकूं धन्य माने है! स्त्रीनिकीनांई अंगकी चेष्टा केशनिका संस्कार करे हैं, ते पुरुषपर्यायमेंहू नीच आचरणके धारक तिनिकी संगतिकूं व्यभिचारिणी स्त्रीका संगकीनांई त्याग करि उच्च आचरण करना योग्य है ॥ गाथा–

जह सीळरक्खयाणं। पुरिसाणं णिंदिदा उ महिळाउं ॥
तह सीळरक्खियाणं। महिळाणं णिंदिदा पुरिसा ॥ ९३ ॥

अर्थ— जैसैं शीलकी रक्षा करनेवाले पुरुषनिकै स्त्री निंदनेयोग्य है, तैसैं अपना शीलकी रक्षा करनेवाली धर्मात्मा स्त्रियां तिनकै पूरुषनिका संग निंदनेयोग्य है। जे कुलवंती शीलवंती धर्मात्मा स्त्री हैं, तिनिकूं पुरुषनिकी संगति तथा कुशीलिनी स्त्रीनिकी संगति सर्वथा त्यागनेयोग्य है ॥ गाथा—

किं पुण गुणसहिदाउ । इत्थीउ अत्थि वित्थरजसाउ ॥
णरलोयदेवदाउ । देवेहि वि वंदणिज्जाउ ॥ ९४ ॥

तित्थयरचक्कधरवा- । सुदेवबलदेवगणधरवराणं ॥
जणणीउ महिलाउ । सुरणरपवरेहि महियाउ ॥ ९५ ॥

अर्थ— बहुरि शीलादिक गुणनिकरि सहित अर विस्तारनैं प्राप्त हुवा है यश जिनका अर मनुष्यलोकमें देवतासमान अर देवनिकरि वंदनीक ऐसी स्त्री लोकमें नही हैं कहा? अपि तु हैंही ॥ तीर्थंकर, चक्रधर, वासुदेव, बलदेव, गणधर इनकूं उत्पन्न करनेवाली इनकी माता—देवमनुष्यानिमैं प्रधान तिनकरि वंदनीक—ऐसी स्त्रियांभी जगतमैं होतही हैं ॥ गाथा—

एकपदिव्वइकण्णा । वयाणि धारिंति कित्ति महिलाउ ॥
वेधव्वतिव्वदुक्खं । आजीवं णेति काउ वि ॥ ९६ ॥

अर्थ— कितनी स्त्रियां एकपतिका व्रतकरि सहित अणुव्रतनिनैं धारण करे हैं अर विधवापणाका तीव्रदुःख जीवै जितनैं नहीं प्राप्त होय हैं ॥ गाथा—

सीलवदीउ सुच्चं- । ति महियले पत्तपाडिहेराउ ॥
सावाणुग्गहसम्म- । त्थाउ वि य काउ वि महिळाउ ॥ ९७ ॥

अर्थ— इस लोकमें शीलव्रतकूं धारती पृथ्वीविषैं देवनिकरि सिंहासनादिक प्रातिहार्यनिकूं शीलके प्रभावकरि प्राप्त भई अर शापमें अनुग्रहमें है शक्ति जिनकी ऐसीहू कितनेक स्त्री पृथ्वीतलमें हैंही ॥ गाथा—

उघेण ण वूढाउ । जळंतघोरग्गिणा ण दग्धाउ ॥
सप्पेहिं सावदेहिं य । परिहरिदाउ य काउ वि ॥ ९८ ॥

सव्वगुणसमग्गाणं । साहूणं पुरिसपवरसीहाणं ॥
चरिमाणं जणणित्तं । पत्ता उ हवंति काउ वि ॥ ९९ ॥

अर्थ— लोकमें कितनी शीलवतीनिकूं शीलके प्रभावकरि प्रबलजल वहायवेकूं समर्थ नहीं होय है । अर प्रज्वलित होती घोर अग्नि नहीं दग्ध करिसके है । अर सर्प तथा सिंह व्याघ्रादिक दुष्टजीव दूरिहीतैं छांडि जाय हैं ऐसीहू स्त्रियां हैंही ॥ अर जे सर्वगुणसमूहके धारक साधु तिनकी तथा पुरुषनिमें प्रधान चरमशरीरी तिनकी

मातापणाकूं धारण करती कितनी स्त्रियां जगतमें होयही हैं ॥ भावार्थ– जगतमें ऐसी स्त्रियां होय हैं, जिनकूं देव वंदना करे हैं, सम्यग्दर्शनके धारण करनेवाली एकजन्म बीचि धारण करि तीसरे जन्म निर्वाण गमन करनेवाली महान् साहसके धरनेवाली जगतके पूज्य महासती धर्मकी मूर्ति वीतरागरूपिणी तिनकी महिमा कोटिजिव्हानितैं कोटिवर्ष वर्णन करनेकूं समर्थ कोऊ नही है ॥ गाथा–

मोहोदएण जीवो । सव्वो दुस्सीलमइलिदो होइ ॥
सो पुण सव्वो महिला- । पुरिसाणं होइ सामण्णो ॥ १००० ॥
तह्मा सा पण्णवणा । पउरा महिळाण होदि अधिकिच्चा ॥
सीलवदीउ भणिदे । दोसे किह णाम पावंति ॥ २१ ॥

अर्थ–– सर्वही जो जीव सो मोहका उदयकरि कुशीलकरि मलिन होय है. सो मोहका उदय स्त्रीनिकै अर पुरुषनिकै सामान्य होय है. तातैं या कथनी बहुतप्रकार स्त्रीनिकूं आश्रयकरिकै होत है. अर जो शीलव्रत धारण करनेवाली स्त्रियां हैं तिनकै पूर्वं कहे जे दोष ते कैसैं प्राप्त होय? जे मोहकै वशीभूत हैं तिन स्त्रीपुरुषनिकै ये सर्व दोष जानने, मोहरहित कदाचित् दोषनिकूं नही प्राप्त होय हैं ॥

ऐसैं ब्रह्मचर्य नामा महाव्रतका वर्णनमें स्त्रीकृतदोषनिका पैंसठि गाथानिमें

वर्णन कीया ॥ अब ब्रह्मचर्यव्रतके कथनविषैं अडसठि गाथानिमैं अशुचित्वका वर्णन करे हैं ॥ गाथा—

देहस्स वीयणिप्प- ॥ त्तिखेत्तआहारजम्मवुड्ढीउं ॥
अवयवणिग्गम असुइ ॥ पेच्छसु वाधी य अधुवत्तं ॥ २ ॥

अर्थ—देहके विषैं वीतरागताका कारण ग्यारह अधिकार ज्ञानी शीलवान् तिनकूं जानने योग्य हैं ॥ इस देहका वीज कहा है, सो जानना ॥ १ ॥ तथा देहकी उत्पत्ति कैसी, सो जान्या चाहिये ॥ २ ॥ तथा देहकी उत्पत्तीका क्षेत्र जानना, जो, या देहकी कहां उत्पत्ति होय है? ॥ ३ ॥ वहुरि देहका आहार कहा है? ॥ ४ ॥ तथा देहका जन्म कैसैं होय? ॥ ५ ॥ तथा देह वृद्धीकूं कैसैं प्राप्त होय? ॥ ६ ॥ तथा देहके अवयवांका निर्गमन कहिये प्रकट होना ॥ ७ ॥ तथा देहका मध्यतैं मल निकलना ॥ ८ ॥ तथा देहमैं अशुचिता ॥ ९ ॥ तथा देहमें व्याधि ॥ १० ॥ तथा देहका अध्रुवपणा ॥ ११ ॥ ये ग्यारह अधिकार चिंतवन करना ॥ तिनमैं वीजकूं तीन गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

देहस्स सुक्कसोणिय- । असुईपरिणामकारणं जह्मा ॥
देहो वि होइ असुई । अमेज्झघदपूरउं व तदो ॥ ३ ॥

अर्थ— जातैं देहकी उत्पत्तीका कारण महा अशुचि माताका रुधिर पिताका वीर्य है, जैसैं मलिनवस्तूका कीया जो घेवर सोहू मलिनही होय है, तैसैं अशुचिबीजतैं देहहू अशुचिही उपजे है ॥ गाथा—

दट्ठुं पि अमेज्झं पि व। विहिंसणिज्जं कुदो पुणो होज्ज ॥
उंजिंघिदुमालध्दुं। परिभोत्तुं वा वि तं वीयं ॥ ४ ॥

अर्थ— जो देखतैंही विष्ठाकीनांई ग्लानीकै योग्य है, तो ऐसा मलिन माताका रुधिर पिताका वीर्य सो सूंघिवेकूं आलिंगन करवेकूं अर भोगिवेकूं कैसैं समर्थ होइये?

समिदकदो घदपुण्णो। सुज्झदि सुद्धत्तणेण समिदस्स ॥
असुचिम्मि तम्मि वीये। कह देहो सो हवे सुद्धो ॥ ५ ॥

अर्थ— जैसैं समित जो गोहूंकी कणिका ताका कीया जो घेवर सो गोहांकी कणिकका शुद्धपणातैं घेवरहू शुद्धही होय है अर अशुचि जो माताका रुधिर पिताका वीर्य तातैं उपजा देह कैसैं शुद्ध होय? मलिनतैं उपज्या महामलिनही होय ॥ ऐसैं तो देहका बीज कह्या ॥ अब शरीरकी उत्पत्तीका क्रमकूं पांच गाथानिकरि निरूपण करे है ॥ गाथा—

कललगदं दसरत्तं। अच्छदि कलुसीकदं च दसरत्तं ॥ थिरभूदं दसरत्तं।

अच्छदि गब्भम्मि तं वीयं ॥ ६ ॥ तत्तो मासं बुब्बुद- । भूदं अच्छदि
पुणो वि घणभूदं ॥ जायदि मासेण तदो । य मंसपेसी य मासेण ॥७॥
मासेण पंच पुलगा । तत्तो हुंति हु पुणो वि मासेण ॥ अंगाणि
उवंगाणि य । णरस्स जायंति गब्भम्मि ॥ ८ ॥ मासम्मि सत्तमे त- ।
स्स होदि चम्मणहरोमणिप्पत्ती ॥ फुंदणमट्ठममासे । णवमे दसमे य
णिग्गमणं ॥ ९ ॥ सव्वासु अवत्थासु वि । कललादीयाणि ताणि
सव्वाणि ॥ असुईणि अमेज्झाणि य । विहिंसणिज्जाणि णिच्चं पि ॥ ११०॥

अर्थ— गर्भमें तिष्ठता जो मिल्या हुवा माताका रुधिर अर पिताका वीर्य, सो दश रात्रिपर्यंत तो हालता हुवा तिष्ठै है अर दश दिन गया पाछै काला होय दश रात्रि तिष्ठै है अर वीस दिन पाछै दस दिनमें थिर होय तिष्ठै है—हलन चलन नहीं करै ॥ ऐसैं एक मास तो व्यतीत होय पाछै दूजे मासविषैं बुद्‌बुदारूप होय तिष्ठै है, तीजे मासविषैं वै बुद्‌बुद घन कहिये कठोरतानैं प्राप्त भया तिष्ठै है, बहुरि चौथे मास-विषैं मांसकी पेशी मांसकी डली होय तिष्ठै है ॥ बहुरि पांचमां महीनामैं पंच पुलक उस मांसकी डलीमैं निकसे है, एक मस्तकका आकार अर दोय हस्तनका अर दोय पगनिका ऐसे पंच अंकुर होय हैं. बहुरि छठे मासविषैं मनुष्यके अंग उपांग प्रकट

हैं, तिनमें दोय पग दोय बाहू एक नितंब एक पूठि एक हृदय एक मस्तक ये तो आठ अंग हैं, अर अंगनिमैं नेत्र नासिका कर्ण मुख ओठ अंगुळी इत्यादिकनिकी उपांग संज्ञा है, सो छठे महीनेमें अंग उपांग गर्भविषैं प्रकट होय हैं ॥ अर सप्तम मासविषैं मनुष्यका चाम, तथा नख, तथा रोम जे बाल, तिनकी उत्पत्ति होय है, अर अष्टम मासविषैं गर्भमें किंचित् चलन करे है—हाले है, अर नवमां मासविषैं तथा दशमां मासविषैं उदरवारैं निर्गमन होय है ॥ ऐसैं जिस दिन गर्भमें माताका रुधिर पिताका वीर्य स्थिति रह्या, तिस दिनतैं कललादिक जे सकल व्यवस्था तिनविषैं महामलिनवस्तुकीनांई अशुचि नित्यही ग्लानियोग्यही रह्या! ऐसैं या देहकी उत्पत्तिहू महा अशुचिही कही ॥ अब जहां यो देह उपज्यो उस देहके क्षेत्रकूं तीन गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा–

आमासयम्मि पक्का- । सयस्स उवरिं अमेज्झमज्झम्मि ॥
वत्थिपडलावछण्णो । अच्छइ गब्भो हु णवमासं ॥ ११ ॥

अर्थ— भक्षण कीया जो भोजन सो उदरकी अग्निकरि अपक्व होहै, ताकूं आम कहिये, ताके रहनेका स्थान ताहि आमाशय कहिये, अर जो भोजन उदरकी अग्निकरि पकि गया ताकूं पक्व कहिये, सो पक्व आहार जो मल ताके रहनेका स्थानकूं

पक्वाशय कहिये है, सो आमका रहनेका स्थानविषैं अर पक्व जो मल ताका स्थानके उपरि पक्व अपक्व जो विष्ठा ताके बीचि वस्तिपटल जो मांसरुधिरकरि व्याप्त जो जालकासा आकार ताके मांहि नव महीनापर्यंत गर्भमें तिष्ठत है ॥ गाथा—

वमियाअमेज्झमज्झे । मासंमि समक्खमच्छिदो पुरिसो ॥
होहिदि विहंसणिज्जो । जदि वि सयाणियल्लउं होज्ज ॥१२ ॥
किह पुण णवदसमासे । उसिदो वमिए अमेज्झमज्झम्मि ॥
होज्ज ण विहिंसणिज्जो । जदि वि सयाणियल्लउं होज्ज ॥ १३ ॥

अर्थ— वमन अर विष्ठा इनके मध्य एक महिनामात्रहू कोईकूं प्रत्यक्ष तिष्ठता देखै तो यद्यपि आपका निज बंधु होइ तोहू ग्लानि करनेयोग्य होय है, बहुरि जो नव महिना तथा दश महिना पर्यंत वमन अर विष्ठाके मध्य तिष्ठ्या पुरुष ग्लानियोग्य कैसैं नही होय? यद्यपि आपको घणो प्रिय हितू बांधवही होहू सुग्या करनेयोग्य होयही है ॥ ऐसें तीन गाथानिकरि क्षेत्रकी अशुचिता वर्णन करी ॥ अब जिस आहारकरि देह वृद्धीकूं प्राप्त हुवा, तिस आहारकूं पांच गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

दंतेहि चविदं वी- । लणं च सिंभेण मेलिदं संतं ॥
मायाहारियमण्णं । जुत्तं पित्तेण कडुयेण ॥ १४ ॥

वमियाअमेज्झसरिसं । वादविउजिदरसं खलं गब्भे ॥
आहारेदि समंता । उवरिं विप्पंतयं णिच्चं ॥ १५ ॥
तो सत्तमम्मि मासे । उप्पलणालसरिसी हवइ णाही ॥
तत्तो पभूदि माए । वमियं आहरदि णाहीए ॥ १६ ॥

अर्थ— गर्भविषैं तिष्ठता मनुष्य काहेका आहार करे है, सो कहे हैं ॥ माताकरि भक्षण कीया जो अन्न सो प्रथम तो दंतानिकरि चर्वण कीया, बहुरि वीलनं कहिये सूक्ष्म कीया, बहुरि कफकरि मिल्या, बहुरि कडवा पित्तकरि संयुक्त हुवा, वमन कीया जो मलिन मल ताके सदृश हुवा, बहुरि गर्भमें पवनकरिकै खलभाग अर रसभाग जुदा कीया सो सर्वतरफतें उपरितें झरता-पडता जो बूंद ताही नित्यही गर्भमें तिष्ठता जन आहार करे है ॥ बहुरि छ महिनापाछै सप्तम मासविषैं कमलकी नालीसदृश नाभी होय है सो नाभीकी नालीकरि महान् मलिन वमन अर अपक्क मल ताहि आहार करे है ॥ गाथा—

वमियं व अमेज्झं वा । आहरिदं वा सकिं पि ससमक्खं ॥
होदि हु विहिंसणिज्जो । जदि वि य णीयल्लउ होज्ज ॥ १७ ॥
किह पुण णवदसमासे । आहारेदूण तं णरो वमियं ॥

होज्ज ण विहिंसणिज्जो । जदि वि य णीयल्लउं होज्ज ॥ १८ ॥

अर्थ— जो आपका निजबंधुभी होय अर जो एकवारहू आपके प्रत्यक्ष वमन वा अमेध्य जो विष्ठा ताही भक्षण करै तो ग्लानिकै योग्य होजाय आदरिवेयोग्य नही रहै, तो जो नव महीना वा दशमहीनापर्यंत वमनकूं आहार करै सो कैसैं ग्लानियोग्य नही होय? यद्यपि अपना निजबंधु होय तोहू ग्लानियोग्यही है ॥ ऐसैं आहारकी अशुचिता वर्णन करी ॥ अब शरीरके जन्मकूं दोय गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

असुचिं अपेच्छणिज्जं । दुग्गंधं मुत्तसोणियदुवारं ॥
वोत्तुं पि लज्जणिज्जं । पोट्टमुहं जम्मभूमी से ॥ १९ ॥
जदि दा व विहिंसिज्जइ । वत्थीयमुहं परस्स आलध्दुं ॥
कह सो विहिंसणिज्जो । ण होज्ज सल्लीढपोट्टमुहो ॥ १०२० ॥

अर्थ— जो उदरका मुख है सो इस देहकी जन्मभूमि है, सो कैसाक है उदरका मुख? महान् अशुचि है, बहुरि देखनेयोग्य नही है, बहुरि दुर्गंध है, बहुरि मूत्र अर रुधिर इनके निकलनेका द्वार है, बहुरि मुखतैं नाम लेनेमें बडी लज्जा उपजी है, ऐसा उदरका मुख जन्मभूमीहू महान् अशुचि है! जो हाल अन्य कोऊकी वस्तिमुख जो रुधिरमांसका भऱ्या जालकीनांई प्राणीकूं आच्छादन करनेवाली थैली सो स्पर्शनेतैं

देखनेतैंही महाग्लानि आवै, तो आलिंगन कीया जो योनिमुख तथा जरायुपटलमें वसता कैसैं ग्लानियोग्य नहीं होय? ॥ ऐसैं जन्मभूमीकी अशुचिता कही ॥ अब शरीरकी वृद्धीकूं च्यारि गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

वालो विहिसंणिज्जा- । णि कुणदि तह चेव लज्जणिज्जाणि ॥ मेज्झामेज्झं कज्जा- । कज्जं किं चि वि अयाणंतो ॥ २१ ॥ अण्णस्स अप्पणो वा । सिंहाणयखेलमुत्तपुरिसाणि ॥ चम्मट्ठिवसापूया- । दीणि य तुंडे सगे छुभदि ॥ २३ ॥ जंकिंचि खादि जंकिं- । चि कुणदि जंकिंचि जंपदि अलज्जो ॥ जंकिंचि जत्थ तत्थ वि । वोसरादि अयाणगो वालो ॥ २४ ॥ वालत्तणे कदं स- । व्वमेव जदि णाम संभरेज्ज तदो ॥ अप्पाणं पि य गच्छे । णिव्वेदं किं पुण परम्मि ॥ २४ ॥

अर्थ— यो मनुष्य बाल्य अवस्थाके विषैं "यो वस्तु शुचि है, यो अशुचि है, तथा यो कार्य करनेयोग्य है, यो कार्य करनेयोग्य नहीं है," ऐसैं किंचिन्मात्रहू नहीं जानता महानिंद्य ग्लानियोग्य कर्म करे है! अर महालज्जनीय कर्म करे है! सो बाल्य अवस्थामैं कहा कहा निंद्यकर्म करे है सो कहे हैं— अन्यका तथा आपका नासिकाका मल, तथा कफ, तथा मूत्र, तथा विष्ठा, तथा चाम, तथा हाड, तथा नसा, तथा राधि इत्यादिक

महानिंद्य वस्तु अपने मुखविषैं क्षेपे है! बाल्य अवस्थामैं अज्ञानी बाल खाद्य तथा अखाद्य खाय है, बोलनेयोग्य वा अयोग्यका विचाररहित वचन बोले है, योग्य तथा अयोग्यका ज्ञानरहित कार्य करे है, बहुरि निर्लज्ज हुवा जीठै तीठै शुचि अशुचि स्थानमें मलमूत्र छोडे है, बहुत कहा कहिये? जो बाल्यपणामैं आपविषैं आप जो सर्व कीया ताकूं जो स्मरणहू करै तो वैराग्यकूं प्राप्त होजाय, परविषैं वर्त्ते है ताका तो कहा कहना! ॥ ऐसैं देहकी वृद्धीमैं अशुचिता दिखाई ॥ अब देहके अवयवनिकूं चौदह गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा–

कुणिमकुडी कुणिमेहि य । भरिदा कुणिमं च सवदि सव्वत्तो ॥
भाणं व अमिज्झमयं । अमिज्झभरिदं सरीरमिणं ॥ २५ ॥

अर्थ— यो देह कुथित जो मलिनवस्तु ताकी कुटी है, तथा मलिनवस्तुहीकरि भरी है, तथा सर्वतरफ सर्वद्वारनितैं वा सर्वशरीरके अंग–उपांगनितैं सिड्या दुर्गंध महामलिन मल ताकूं निरंतर स्रवे है–झरे है, तथा मलका भऱ्या मलका भाजनकीनांई यो शरीर मलकरि भऱ्यो है अर मलमयही है ॥ अब शरीरके अवयवनिकूं तेरह गाथानिकरि जणावे है गाथा–

अट्ठीणि होंति तिण्णि दु । सदाणि भरिदाणि कुणिममज्झाए ॥ सव्वम्मि

चेव देहे संधीणि हवंति तावदिया ॥ २६ ॥ ण्हारूण णवलदाइं । सिरासदाणिं हवंति सत्ते व । देहम्मि मंसपेसी- । ण होंति पंचेव य सदाणि ॥ २७ ॥ चत्तारि सिराजाला- । णि होंति सोलसय कंडराणि तहा । छच्चेव सिराकुच्चा । देहे दो मंसरज्जू य ॥२८॥ सत्त तयाउ काले-। जयाणि सत्तेव होंति देहम्मि ॥ देहम्मि रोमकोडी- । ण होंति असीदी सदसहस्सा ॥ २९ ॥ पक्कामयासयत्था । य अंतगुंजाउ सोलस हवंति ॥ कुणिमस्स आसया स- । त्त होंति देहे मणुस्सस्स ॥ १०३० ॥ थूणा उ तिण्णि देह- । म्मि होंति सत्तुत्तरं च मम्मसदं ॥ णव होंति वणमुहाइं । णिच्चं कुणिमं सवंताइं ॥ ३१ ॥ देहम्मि मत्थुलिंगं । अंजलिमित्तं सय- प्पमाणेण ॥ अंजलिमेत्तो मेदो । उंजो वि य तत्तिउ चेव ॥ ३२ ॥ तिण्णि य वसंजलीउ । छच्चेव य अंजलीउ पित्तस्स ॥ सिंभो पित्तस- माणो । लोहिदमद्धाढयं हवदि ॥ ३३ ॥ मुत्तं आढयमेत्तं । उच्चारस्स य हवंति छप्पत्था ॥ वीसं णहाणि दंता । वत्तीसं होंति पगदीए ॥३४॥ किमिणो व वणो भरिदं । सरीरियं किमिकुलेहि वहुगेहिं ॥ सव्वं देहं अफ्फुं- । दिऊण वादा ठिदा पंच ॥ ३५ ॥ एवं सव्वे देह- । म्मि अव-

अर व्रणांमैंसूं रस झरने लगिजाय, तो बहुतहू प्रिय जो स्त्री ताहि देखनेकूंहू मनुष्य इच्छा नहीं करे है ॥

ऐसें तेरह गाथानिमैं शरीरके अत्यंत अशुचि अवयवनिकूं दिखाये ॥ अब देहतैं मैलका निर्गमन तीन गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

कण्णेसु कण्णगूथो । जायदि अच्छीसु चिक्कणंसूणि ॥
णासागूथो सिंघा- । णयं च णासापुडेसु तहा ॥ १०३९ ॥
खेलो पित्तो सिंभो । वमिया जिब्भामळो य दंतमळो ॥
लाळा जायदि तुंड- । म्मि मुत्तपुरिससुक्कमुदरत्थं ॥ १०४० ॥
सेदो जायदि सिलेसो । व चिक्कणो सव्वरोमकूवेसु ॥
जायंति जूवलिक्खा । छप्पदियाउ य सेदेण ॥ ४१ ॥

अर्थ— इस देहमें जे कर्ण हैं तिनविषैं कर्णगूथ उपजे हैं। अर नेत्रनिमैं नेत्रमल अर अश्रु उपजे है। अर नासिकाके पुटनिमैं सिंघाणक जो नासिकाका मल उपजे है। बहुरि मुखविषैं खंखार, तथा पित्त, तथा कफ, तथा वमन, तथा जिन्हाका मल, तथा दंतमल, तथा लाला उत्पन्न होय है। अर अधोद्वारनिमैं मूत्र, तथा मल, तथा वीर्य उत्पन्न होय है, बहुरि सर्व रोमनिके निकलनेके छिद्र तिनमेंतैं सचिक्कण पसेव

निकले हैं। बहुरि पसेवकरि यूका, तथा लिक्षा, तथा चर्मयूका उत्पन्न होय हैं॥
भावार्थ— पसेवनितैं जूं तथा लीख तथा चमजूं उत्पन्न होय हैं॥ ऐसैं तीन गाथानि-करि निर्गमन कह्या॥ अब अशुचिता दश गाथानिकरि कहे हैं॥ गाथा—

विट्ठापुणो भिण्णो। व घडो कुणिमं समंतदो गलइ॥
पूदिं गालो किमिणो। व वणो पूदिं च वादि सदा॥ ४२॥

अर्थ— जैसैं विष्ठाका भर्‍या फूटा घडा सर्वतरफतैं दुर्गंध मलकूं स्रवे है; तैसैं शरीरहू सर्वतरफतैं निरंतर मल स्रवे है, बहुरि जैसैं कृमिनिका भर्‍या व्रण सो दुर्गंध राधिकूं स्रवे है, तैसैं या शरीरकूं जानहू॥ गाथा—

इंगालो धोव्वंतो। ण हु सुज्झदि जहा पयत्तेण॥
सव्वेहि समुद्देहिं। सुज्झदि देहो ण धुव्वंतो॥ ४३॥

अर्थ— जैसैं कोइलाकूं सर्व समुद्रके जलकरि बडे यत्नकरि धोवताहू उज्वल नहीं होय है— मांहीतैं शामता निकली है, तैसैं देहकूं बहोत जलादिकतैं धोयेहू मांहीतैं [illegible] मलही निकले है॥ गाथा—

सिण्हाणभंगुव-। ट्टणेहि मुहदंत अच्छिधुवणेहिं॥
णिच्चं पि धोवमाणो। वादि सदा पूदियं देहो॥ ४४॥

अर्थ— स्नान, तथा अतर फुलेल, तथा उवटणा तिनकरिकै, तथा मुख दंत नेत्रनिके धोवनेकरिकै, तथा नित्यही स्नानादिकनिमैं धोया हुवाहू देह दुर्गंधही सदा वमे है ॥ भावार्थ— चंदन कर्पूर अतर फुलेल वारंवार लगावतेंहू तथा वारंवार धोवतेंहू यो देह अपनी दुर्गंधता नही छांडे है। अपने संसर्गतैं अन्य सुगंधद्रव्यनिकूंहू दुर्गंध करे है ॥ गाथा–

पाहाणधादु अंजण- । पुढवितयाछल्लिवल्लिमूलेहिं ॥
मुहकेसवासतंबो- । लगंधमल्लेहिं धूवेहिं ॥ ४५ ॥
अभिभूददुब्भिगंधं । परिभुज्जदि मोहिएहि परदेहं ॥
खज्जादि पूयइ मंसं । जुत्तं जह कडुगभंडेण ॥ ४६ ॥

अर्थ— पाषाण जो रत्न, तथा सुवर्ण, तथा अंजन, तथा मृत्तिका, तथा सुगंध त्वचा, छालि, तथा वेली, तथा मूल जो जड, तथा मुखकूं सुगंध करनेवाले द्रव्य, तथा केशनिकूं सुगंध करनेवाले. तांबूल गंध माल्य धूप, तिनकरि दूरि कीया है दुर्गंध जाका ऐसा परके देहकूं मूढजन अति आसक्त हुवा भोगे है ॥ जैसैं कटुक भांड जे मिरच हिंगु इत्यादिककरि संस्काररूप कीया जो महादुर्गंध मांस ताहि भक्षण करे है ॥ भावार्थ– जैसैं महादुर्गंध मांसकूं हिंग मिरच इत्यादिकनितैं सुधारि अर लोलपी पापी

भक्षण करे है, तैसैं नीचपुरुष अन्यके दुर्गंधमलिनशरीरकूं आभरण वस्त्र सुगंधादिकनितैं सुधारि भोगता आपकूं धन्य माने है ॥ गाथा–

अब्भंगादीहिं विणा । सभावदो चेव जदि सरीरमिमं ॥
सोभेज्ज मोरदेहु- । व्व होज्ज तो णाम से सोभा ॥ ४७ ॥

अर्थ— जो मयूर नामा पक्षीका देहकीनांई स्नान उद्वर्तन तेल फुलेलविना स्वभावतैंही जो यो शरीर शोभावान् होय, तादि तो शोभा सांची होय। अर जो स्वयं मलिन दुर्गंध, तो परकृत काहीकी शोभा? ॥ गाथा–

जादि दा विहिंसदि णरो । आलध्दुं पडिदमप्पणो खेलं ॥
कध दा णिपिवेज्ज वुहो । महिलामुहजायकुणिमजलं ॥ ४८ ॥

अर्थ— जो अपना कफ पड्या हुवाकूं आप स्पर्श करनेकूं बडी ग्लानि करे है, तो अब स्त्रीका मुखकी लालका दुर्गंध बुरा जल कामी कैसैं पीवै! ॥ गाथा–

अंतो वहिं च मज्झे । व कोइ सारो सरीरगे णत्थि ॥
एरंडगो व देहो । णिस्सारो सव्वहिं चेव ॥ ४९ ॥

अर्थ— जैसैं एरंडकी लकडीमैं कहूंही सार नही है, तैसैं इस मनुष्यके देहमें मांहि बाहिर मध्यमें सर्व शरीरमें कठेही सार नही है ॥ गाथा–

चमरीवालं खग्गिवि- । साणं गयदंतसप्पमणिगादी ॥
दिट्ठो सारो ण य अ- । त्थि कोइ सारो मणुस्सदेहम्मि ॥ १०५० ॥

अर्थ--- चमरीगायके वाल, गेंडाके सिंग, हस्तीका दंत, सर्पके मणि इत्यादिक देहके अंग कोऊ कार्यके साधनेतैं सारहू है। परंतु मनुष्यके देहमैं तौ कोऊ वस्तु साररूप नही है ॥ गाथा—

छगलं मुत्तं दुध्दं । गोणीए रोयणा य गोणस्स ॥
सुचिया दिट्ठा ण य अ- । त्थि किंचि सुचि मणुयदेहम्मि ॥ ५१ ॥

अर्थ--- बकरेका मूत्र, गायका दुग्ध, वलधका गोरोचन लौकिकमैं शुचिहू देखिये है। परंतु मनुष्यदेहविषैं तौ किंचितहू शुचि नही है॥ ऐसैं देहमें अशुचिता दश गाथानिकरि दिखाइ ॥ अब तीन गाथानिकरि देहमैं व्याधि दिखावे है ॥ गाथा—

वाइयपित्तियसिंभिय- । रोगा तण्हा छुहा समादी य ॥
णिच्चं तवंति देहं । अद्दहिदजलं व जह अग्गी ॥ ५२ ॥

अर्थ--- जैसैं चूलाऊपरि तिष्ठता पात्रमें जलकूं अग्नि ओटावे है तपावे है; तैसैं वात पित्त कफ रोग तथा क्षुधा तृषा तथा अन्य जो खेद ते देहकूं नित्यही तप्तायमान करे है ॥

जदि दा रोगा एक- । म्मि चेव अच्छिम्मि होंति छण्णउदी ॥

सव्वम्मि चेव देहे । होदव्वं कदिहि रोगेहिं ॥ ५३ ॥

पंचेव य कोडीउ । अट्टासट्ठिं तहेव लक्खाइं ॥

णव णवदिं च सहस्सा । पंचसया होंति चुलसीदी ॥ ५४ ॥

अर्थ— जो एक नेत्रविषैं छिनिवै रोग होत हैं, तो संपूर्ण देहविषैं कितने रोग होने-जोग्य होय? पांच कोडी अडसठि लाख निन्याणवै हजार पांचसै चोरासी रोग देहमैं उपजनेजोग्य हैं ॥ ऐसैं तीन गाथानिमैं रोगका वर्णन कीया ॥ अब देहकी अध्रुवता ग्यारह गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

पीणत्थणिंदुवदणा । जा पुव्वं णयणदइदिआ आसे ॥

सा चेव होदि संकुडि- । दंगी यिरसा य परिजुण्णा ॥ ५५ ॥

अर्थ— इस शरीरका स्वरूप देखहू! जो स्त्री पूर्वैं यौवन अवस्थामैं पीनस्तनी कहिये जाका कुच पुष्ट था, अर चंद्रमावत् आनंदकारी जाका मुख था, अर नेत्रनिकूं अतिवल्लभ थी, जाका स्पर्शनतैं तथा अवलोकनतैं तृप्ति नहीं आवै थी, सोहीं स्त्री वृद्ध अवस्थामैं तथा रोगकी अवस्थामैं तथा दारिद्र्य शोकादिककरि दुःख अवस्थामैं कैसी भई है? जाका सर्व अंग संकुचित अर श्रृंगारहास्यादिक रसरहित विरस तथा कामरसरहित अत्यंत जीर्ण कुटीकीनांई दीखे है ॥ गाथा—

जा सव्वसुंदरंगी । सविलासा पढमजोव्वणे कंता ॥
सा चेव मुदा संती । होदि हु विरसा य वीभच्छा ॥ ५६ ॥

अर्थ— जो स्त्री प्रथमयौवनमें सर्व सुंदर अंगका धारनेवाली थी, अर अनेकविलाससहित थी, अर मनोहर थी, सोही स्त्री मृतक हुई संती अतिविरस दीखे है अर अति भयानक दीखे है ॥ ऐसैं दोय गाथानिकरि शरीरकी तथा शरीरकी कांतियौवनकी अध्रुवता कही ॥ अब संयोगहूकी अध्रुवता दोय गाथानिकरि दिखावे है ॥ गाथा—

मरदि सयं वा पुव्वं । सा वा पुव्वं मरिज्जसे कंता ॥
जीवंतस्स व सा जी- । वंती य हरेज्ज वलिएहिं ॥ ५७ ॥
सा वा हवे विरत्ता । महिला अण्णेण सह पलाएज्ज ॥
अपलायंती व तहा । करेज्ज से वेमणस्साणि ॥ ५८ ॥

अर्थ— बहुरि जो मनकूं आह्लादकारी स्नेहकी भरी रूपवान् विनयवान् यौवनवान् स्त्रीकूं छांडि पहली आप मरण करै तो मरणका अवसरमें महान् दुःख उपजे है! जो, हाय हाय! या स्त्री मोविना कैसैं जन्म पूरा करेगी? अर मुझविना याका वांछित कार्य कोन साधेगा? अर मोकूं ऐसा संजोग मिलना अब अनेकजन्मनिमैंहू नहीं! ऐसैं आर्तध्यान करता दुर्गतिमैं जाय पडे है ॥ बहुरि जो स्त्रीका मरण पहली होवै तो,

आप वाका गुण स्मरण करता वियोगका दुःखकरि अत्यंत तसायमान होता राति अर दिन शोकमें जलता विलाप करे है! हाय! उस वल्लभाकूं कहा देखूं! मेरा कोन सहायी रह्या? सब कुटुंबमें मेरा कोऊ नही! मेरा दुःखसुख कोनकूं कहूं? दसूं दिशा शून्य दीखे हैं, मेरा ऐश्वर्यका सुख कोनकोनकूं आवै? मेरा यश सुनि कोन हर्षित होय? मेरेमांहि दुःख देखि कोनकूं दरद आवै? जगतमैं कोऊ मेरा रह्या नही! पुत्रबांधवादिक मेरा धनका ग्राहक हैं, मेरा कोऊ नही, मैं असहाय हूं, मेरा आभरण वस्त्रादिक देखि कोन राजी होय? मेरी शय्या मेरा आसन महल मकान वस्त्र आभरणके भोगनेमें कोऊ सहायी साथी नही, मेरी सहचरी जो मोकूं एक घडी आया नही देखती तो अतिव्याकुल मृगीकीनांई धैर्यधारण नही करती, अब मोकूं कोन यादि करै? अर मेरा अभिप्रायकूं कोन पूछै? अर कदाचित् निर्धनता होय तथा रोग आवै तो मेरा दुःखमें कोन पूछनेवाला? कोऊ दीखे नही! सर्व घर भऱ्या है, तोऊ स्त्रीविना ऊजाड है! ग्राम नगर शून्य दीखे है! इत्यादिक संक्लेशपरिणामकरि दुर्ध्यानकूं प्राप्त होय महादुःखतैं मरणकरि दुर्गति जाय है॥ बहुरि आपभी जीवे है अर जीवती स्त्रीकूं कोऊ बलवान् दुष्ट राजा वा म्लेंछ चोर भील जबरीतैं खोसि लेजाय, तो एता बडा दुःख अर दुर्ध्यान होय है, जो, कोऊ वचनद्वारै

कहनेकूं समर्थ नही– यो दुःख मरण करनेतैंहू अधिक है ॥ वहुरि कदाचित् आपकी स्त्री आपमैं विरक्त होय अन्यकी लैर ऊठि जाय तो वडा दुःख है! वहुरि जो अन्यपुरुषमें आसक्त होजाय तो वडा दुःख है! वहुरि जो आपकी आज्ञाबारै प्रवर्तै तो दुःख होय है! वहुरि दुष्टनी होय तथा कलहकारिणी होय तथा कटुकवचन वोलनेवाली तथा निर्दयपरिणाम धारण करनेवाली इत्यादिक दुःख देनेवाली होय तो रातिदिनमैं एक घडीहू समता नही आवै, कौनकूं कहूं? कहां जाऊं? जिसकूं कहूं सो हास्य करै, वा वडी दीनता है! इत्यादिक दुःख स्त्रीके निमित्ततैं होय है ॥ अत्र शरीरको अध्रुवपणे कहे हैं ॥ गाथा–

रूवाणि कट्ठकम्मा- । दियाणि चिट्ठंति सारवेंतस्स ॥
घणिदं पि सारवेंत- । स्स ठादि ण चिरं सरीरमिमं ॥ ५९ ॥

अर्थ— काष्ठपापाणमयरूप तो संवाऱ्या हुवा बहुतकाल तिष्ठै है अर यो मनुष्यशरीरकूं अत्यंतसंस्कार करताहू चिरकालपर्यंत नही तिष्ठै है ॥ गाथा–

मेघहिमफेणउक्का । संझाजळवुवुदोवमणुगाणं ॥
इंदियजोवणमदिरू- । वतेववलवीरियमणिच्चं ॥ १०६० ॥

अर्थ— मनुष्यानिका इंद्रिय यौवन मति रूप तेज वल वीर्य ये सर्व मेघ तथा वांसका

जल तथा फेण (फेन-जाग) तथा बीजली तथा संध्याकी रक्तता तथा जलका बुद-बुदाकीनाई अनित्य हैं-विनाशीक है ॥ गाथा—

साधुं पडिलाहेदुं । गदस्स सुरयस्स अग्गमहिसीए ॥
णट्ठं सदीए अंगं । कोढेण जहा मुहुत्तेण ॥ ६१ ॥

अर्थ— साधूका आहारदानकै अर्थि गया जो सुरत नामा राजा ताकी सती नामा पट्टराणीका कोडकरिकै एकमुहूर्तमें अंग नष्ट हुवो ॥ गाथा—

वज्झो य णिज्जमाणो । जह पियइ सुरं च खाइ तंबोलं ॥
कालेण य णिज्जंता । विसए सेवंति तह मूढा ॥ ६२ ॥

अर्थ— जैसैं कोईकूं मारणेकूं लेजाय अर वह पुरुष मदिरा पीवै ! अर तांबूल भक्षण करै! तैसैं कालकरिकै ले गये मूढ—जिनकै भय नही लज्जा नही ते विषयसेवन करे हैं ॥

वग्घपरद्धो लग्गो । मूले य जहा ससप्पबिलपडिदो ॥
पडिदमधुबिंदुचक्खण- । रदिउं मूलम्मि छिज्जंते ॥ ६३ ॥
तह चेव मच्चुवग्घप- । रद्धो बहुदुक्खसप्पबहुलम्मि ॥
संसारबिळे पडिदो । आसामूलम्मि संलग्गो ॥ ६४ ॥
बहुविग्घमूसएहिं । आसामूलम्मि तम्मि छिज्जंते ॥

लेहदि तह वि अलज्जो । अप्पसुहं विसयमधुविंदुं ॥ ६५ ॥

अर्थ— जैसैं निर्जन वनमैं महादरिद्री कोऊ पुरुष व्याघ्रका भयकरिकै भाग्यो, सो एक अंधकारसहित अर सर्पनिकरि तथा अजगरसहित एक कूप छो तामैं पड्यो! सो कूपमांहि एक वृक्ष छो, सो ताकी जड भींतीमैं छी, सो यो पुरुष उस जडकूं पकडि अनाधार लटकै, अर नीचै अजगर मुख फाडि राख्यो! तथा सर्प मुख फाडि राख्यो! जो, यो पुरुष पडै तो भक्षण करां, अर जिस जडकूं अवलंबन करि निराधार लटकै छा, तिस जडकूं धोला अर काला दोय मूंसा काटनेका उद्यम करने लग्या, अर ताहि अवसरमैं इसकूं जड पकरि लटकनेतैं वृक्ष कांप्या, सो वृक्षमें मधुमक्षिकाका छत्ता छा, सो मक्षिका उडिकरि इसका देहकै आइ लागि! सो ताकी घोरवेदना भोगता कूवामैं लटकि रह्या! सो याका ऊंचा मुख छा, तामैं मधुछात्तातैं सहतकी एक बूंद आय पडी, सो सहतकी बूंदकूं आस्वादनकरि सर्वदुःख भूलि गया! तिस अवसरमें आकाशमें एक विद्याधर विमानमें बैठ्या जाय छा, सो या पुरुषका दुःख देखि अति दयावान् होय आकाशमैंतैं उतरि कूवाके उपरि आय इस पुरुषकूं कह्या— जो, हे भद्र! मेरा हस्त ग्रहण करी, मै तोकूं विमानमें बैठाय बहोत धन देय तेरे वांछितस्थान प्राप्त करूंगा, अब ढील मति करो, जिस जडकूं

पकडि लटको हो जिसके आधार जीवो हो, सो जड संपूर्ण कटि गई है, अर बाकी नही रही है, सो जड टूटि अर तुम पडोगे! अर नीचे अंधकूपमें अजगर मुख फाड्या बैठ्या है सो निगलि जायगा! तातैं शीघ्रही हस्त ग्रहण करो। तब ऐसैं वचन सुणि कूपमें लटकता पुरुष बोल्या– या एकबूंद सहतकी लटकि रही है, सो याका आस्वादन करि तुमारा हस्तग्रहण करूंगा। तब विद्याधर करुणावान् होई बहुरि कह्या– अरे निर्लज्ज मूर्ख! इतना बडा दुःख सहे! अर मरणकूं नही देखे है! सो या बूंदमें कहा स्वाद है? जड कट गई है, गिरनेकी तयारी है, अर या बूंदहू लटकतीही दीखे है, अर तेरे मुखमें नही आवेगी, अर तू पडि अजगरके मुखमें जाय नष्ट होयगा! ऐसैं वारंवार कहतेहू मूढ याही कहे– अब बूंद आजाय है अर आस्वादन करिकै तुमारा विमानमें बैठि चलूंगा। ऐसैं सहतकी बूंदकी आशा करि कालका विलंब करि रह्या, इतनेमें वृक्षकी जड कटि गई! सो टूटि पडिकरि अजगरका मूखमें प्रवेश कीया! तैसैं संसारी मिथ्यादृष्टि जीवहू संसाररूप वनमें परिभ्रमण करता पर्यायरूप अंधकूपमें पड्या! तामैं अजगर समान तो निगोद है, अर चतुर्गतिस्थानीय सर्प हैं, अर वृक्षकी जडसमान याकी आयु है, अर रात्रिदिन जाय है सोही काले धोले मूंसेनिकरि आयुरूप जडका कटना है, अर

मोहकी माक्षिकासमान कुटुंबादिकनिके तथा क्षुधातृषाके दुःख हैं, अर सहतकी बूंदसमान विषयनिका सुख है, अर विद्याधरसमान दयावान् विनाकारण बांधव यह निर्ग्रन्थ गुरु है, सो वारंवार उपदेश करे है, परंतु सहतकी बूंदकी आशासमान विषयनिकी तृष्णाकरि संसारमें डूबे है निगोदमें जाय पडे है! ॥ इनि तीन गाथानिका भाव लिख्या ॥ ऐसैं अध्रुवपणा कह्या ॥ अब अशुचिपणा च्यारि गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा–

वालो अमेज्झलित्तो । अमेज्झमज्झम्मि चेव जह रमदि ॥
तह रमदि णरो मूढो । महिलामेज्झे सयममेज्झो ॥ ६६ ॥

अर्थ— जैसैं अज्ञानी बालक मलकरि लिप्त मलविषैंही रमे है तैसैं मूढ मनुष्य आप अत्यंत मलिन हुवा संता अनेक अशुचिताकरि भर्या जो स्त्रीका शरीर तिसविषैं रमे है, ज्ञानीके रमनेयोग्य नही है ॥ गाथा–

कुणिमरसकुणिमगंधं । सेवंतो महिलियाए कुणमकुडी ॥
जं होंति सोचयत्ता । एदं हासावहं तेसिं ॥ ६७ ॥

अर्थ— अशुचि मल रुधिरादिक है रस जामैं अर अशुचि है गंध जामैं ऐसा अत्यंत अशुचि जो स्त्रीका शरीर ताहि सेवन करि अर आप शुचि होय है, आपकूं उज्वल

माने हैं, तिनका शुचिपणा जगतमें हास्यका वहनेवाला है। ऐसा मलिन देहमें आसक्त होय आपकूं उज्वल माने है, सो जगतमें हास्य करनेयोग्य है ॥ गाथा—

एवं एदे अत्थे। देहे चिंतंतयस्स पुरिसस्स ॥
परदेहं परिभोत्तुं। इच्छा किह होज्ज सघिणस्स ॥ ६८ ॥

अर्थ—ऐसैं देहविषैं येते मलादिक अर्थ तिनकूं चिंतवन करतो अर देहमें ग्लानि-सहित जो पुरुष सो अन्य जो स्त्रीपुरुषका देह ताहि भोगवेकूं कैसैं इच्छा करै? ॥

एदे अत्थे सम्मं। देहे पेच्छंतउ णरो सघिणो ॥
ससरीरे वि विरज्जइ। किं पुण अण्णस्स देहम्मि ॥ १०६९ ॥

अर्थ—एते अर्थ देहमें सत्य देखतो पुरुष ग्लानिसहित होय है, तदि आपका शरीरहीमें विरक्त होय है, तदि अन्यका देहमें कैसैं रागी होई? ॥ ऐसैं अशुचिता वर्णन करी ॥ अब वृद्धसेवा नामा ब्रह्मचर्यका अधिकार ताहि पनरा गाथानिकरि कहे हैं ॥

थेरा वा तरुणा वा। वुड्ढा सीलेहिं होंति वुड्ढेहिं ॥
थेरा वा तरुणा वा। तरुणा सीलेहिं होंति तरुणेहिं ॥ १०७० ॥

अर्थ—अवस्थाकरिकैं वृद्ध होहू वा तरुण होहू, वृद्धीनैं प्राप्त भये जे शील कहिये क्षमा मार्दव आर्जव शौच सत्य संयम तप त्याग आकिञ्चन्य ब्रह्मचर्य इनि गुणनिकी

वृद्धिकरि वृद्ध होत है। बहुरि अवस्थाकरि वृद्ध होहू वा तरुण होहू, तरुणशील जो हास्य तथा कामकी आधिक्यता तथा कषायनिकी प्रबलता तथा भोजनादिक कथामैं राग ताकरि पुरुष तरुण होय है ॥ गाथा–

जह जह वयपरिणामो। तह तह णस्सदि णरस्स बलरूवं ॥
मंदा य हवदि कामर-। दिदप्पकीडा य लोभो य ॥ ७१ ॥

अर्थ— जैसैं जैसैं अवस्थाका परिणमन होय है, तैसैं तैसैं मनुष्यका बल तथा रूप विनसता जाय है अर काम तथा रति तथा दर्प जो मद तथा क्रीडा तथा लोभ मंदताकूं प्राप्त होय है ॥ भावार्थ— बाल्य अवस्था तथा यौवन अवस्था जैसैं जैसैं व्यतीत होय तैसैं तैसैं शरीरके बलका तथा रूपका नाश होयही है अर अवस्था वृद्ध होय तदि कामकी तथा आसक्तताकी तथा मद तथा कौतुक क्रीडा तथा लोभ स्वयमेवही घटै, तथा सामर्थ्य घटनेतैं घटैही है, लोकनितैं लज्जा आवैही है ॥ गाथा–

खोभेइ पत्थरो जह। दहे पडंतो पसण्णमवि पंकं ॥
खोभेइ तहा मोहं। पसण्णमवि तरुणसंसग्गी ॥ ७२ ॥

अर्थ— जैसैं जलका न्हदमैं पडतो जो पत्थर, सो जलमैं प्रशांत हो रह्याहू कर्दमकूं 'क्षोभयति' कहिये जलमैं ऊंचा करि जलकूं कर्दमकरि मलिन करे है, तैसैं

तरुणपुरुषकी संगाति प्रशांत हुवाहू मोहकूं उदय करे है ॥ भावार्थ– जैसें स्वच्छहू जलका द्रहमारे पत्थरके पडनेतें मलिन होय है, तैसें तरुणकी संगतितें उज्वलपरिणामभी कामादिककरि मलिन होय है ॥ गाथा–

कलुसीकदं पि उदयं । अच्छं जह होइ कदकजोएण ॥
कलुसो वि तहा मोहो । उवसमदि हु वुड्ढसेवाए ॥ ७३ ॥

अर्थ— जैसें कर्दमकरि मलिनभी जल कतकफलके संयोगतें स्वच्छ उज्वल होय है, अर कर्दम नीचें दबि जाय है; तैसें आत्माका ज्ञानपरिणामकूं मलिन करता जो मोह सो वृद्धपुरुषनिकी संगतितें तत्काल दबिजाय है, ज्ञानपरिणाम उज्वल होय है, तातें जे गुणनिकरि वृद्ध हैं तिनकी संगातिही जीवका कल्याण है ॥ गाथा–

लीणो त्रि मट्टियाए । उदीरादि जलासएण जह गंधो ॥
लीणो उदीरादि णरे । मोहो तरुणासएण तहा ॥ ७४ ॥

अर्थ— जैसें मृत्तिका जो मांटी ताके विषें लीन जो गंध सो जलका मिलापकरि उदयकूं प्राप्त होय है, तैसेंही तरुणका आश्रयकरि मोह तीव्र उदयकूं प्राप्त होय है ॥ भावार्थ– जैसें मांटीमें दब्या हुवा गंध जलके पडनेतें प्रगट होय है; तैसें तरुण पुरुष तथा कामी रागी द्वेषीकी संगतितें काम राग द्वेष प्रकट होय हैं ॥ गाथा–

संतो वि मट्टियाए। गंधो लीणो हवदि जळेण विणा ॥
जह तह गोट्ठीए विणा। णरस्स लीणो हवदि मोहो ॥ ७५ ॥

अर्थ— जैसें मृत्तिकामैं विद्यमानहू गंध जलविना मांटीमैं लीनही रहे है, तैसें तरुणकी गोष्ठीविना मनुष्यका मोह लीनही रहे है-बाहिर प्रकट नही होय है ॥ गाथा-

तरुणो वि वुड्ढसीळो। होदि णरो वुड्ढसंसिर्उ अचिरा ॥
लज्जासंकासाणा-। वमाणभयधम्मवुद्धीहिं ॥ ७६ ॥

अर्थ— वृद्धपुरुषनिकी संगतिकरिकै तरुणपुरुषहू शीघ्रही लज्जाकरिकै तथा शंकाकरिकै तथा मानकरिकै तथा अपमानकरिकै तथा धर्मबुद्धिकरिकै वृद्धशील कहिये उत्तमपुरुषनिकेसे स्वभावकूं धारण करे है ॥ गाथा-

वुड्ढो वि तरुणसीळो। होइ णरो तरुणसंसिर्उ अचिरा ॥
वीसंभणिव्विसंको। समोहणिज्जो य पयडीए ॥ ७७ ॥

अर्थ— तरुणपुरुषनिकी संगतिकरिकै वृद्धपुरुषहू शीघ्रही विश्वासकरिकै तथा निर्विशंकताकरिकै तथा स्वभावहीसूं मोहसहित वर्तनाकरिकै तरुणपुरुषकासा अधमस्वभाव हास्य कौतुक काम कोपादिकरूप स्वभावकूं धारण करे है ॥ गाथा-

सुंडयसंसग्गीए। जह पादुमसुंडर्उ भिलसादि सुरं ॥

विसए वि तहा पयडी- । ए संमोहो तरुणगोट्ठीए ॥ ७८ ॥

अर्थ— जैसैं मद्यपान जिनका कुलहूमें नहीं ऐसैं अशौंड जे हैं तेहू मद्य पीवनेवालेकी संगतिकरि मदिरा पीवनेका अभिलाष करे हैं, तैसैं स्वभावकरिकैंही संसारी मोहसहित वर्ते हैं, बहुरि जे तरुण इंद्रियविषयनिकरि विकल तिनकी संगतिकरिकै उत्तमपुरुष त्यागी पुरुषहू विषयनिकी वांछा करनेमें प्रवर्ते हैं ॥ गाथा–

तरुणेहि सह वसंतो । चलिंदिउ चलमणो य वीसत्थो ॥
अचिरेण सइरचारी । पावदि महिलाकयं दोसं ॥ ७९ ॥

अर्थ— जो पुरुष तरुणपुरुषनिकी संगतिमें वसे है, ताकी इंद्रियां चलायमान होयही हैं अर मनहू अनेकरागद्वेषनिके विकल्पनिकरि चलायमान होय है अर भयलज्जारहित हुवा विश्वासकूं प्राप्त होय है तथा थोरे कालमें स्वेच्छाचारी होय पूर्वे स्त्रीकृत दोष कहे तिनकूं प्राप्त होयही है ॥ गाथा–

पुरिसस्स अप्पसत्थो । भावो तिहिं कारणेहिं संभवइ ॥
विहरम्मि अंधयारे । कुसीलसेवाए समक्खं ॥ १०८० ॥

अर्थ— पुरुषका परिणाम तीन कारणनिकरि अप्रशस्त होय है खोटे होय है, एक तो एकाकी स्त्रीनिमें रहनेतैं अर अंधकारमें गमनादिकतैं अर कुशीलनिकी

संगतितैं प्रत्यक्ष विगडे है ॥ गाथा—

पासिय सुच्चा व सुरं । पिज्जंतं सुंडर्उ भिलसदि जहा ॥
विसए य तह समोहो । पासिय सुच्चा व अभिलसदि ॥ ८१ ॥

अर्थ— जैसैं मद्यपानी मद्यकूं पीवते देखिकरिकै तथा श्रवणकरिकै मद्य पीवनेकूं अभिलाष करे है, तैसैं मोही पुरुष विषयनिकूं देखिकरिकै तथा कामभोगरूप हास्य इत्यादिक विषयनिकूं श्रवणकरिकै विषयनिमैं अभिलाष करे है ॥ गाथा—

जादो खु चारुदत्तो । गोट्ठीदोसेण तह विणीदो वि ॥
गणियासत्तो मज्जा- । सत्तो कुलदूसर्उ य तहा ॥ ८२ ॥

अर्थ— तथा महाविनयवानहू चारुदत्त नामा श्रेष्ठी संगतिके दोषकरि गणिकामैं आसक्त हुवो! तथा मद्यमैं आसक्त हुवो!! अर कुलको दूषक हुवो॥ गाथा—

तरुणस्स वि वेरग्गं । पल्हाविज्जदि णरस्स वुड्ढेहिं ॥
पल्हाविज्जइ य डुही । वि जहा वच्छस्स फरिसेण ॥ ८३ ॥

अर्थ— ज्ञान विनय तपकरिकैं वृद्धपुरुष जे हैं, ते तरुण पुरुषहूकै वैराग्य उत्पन्न करे हैं। जैसैं वत्सका स्पर्श गायकूं झरता है दुग्ध जाकै ऐसी करिये है ॥ भावार्थ— जैसैं वाछडेका स्पर्शकरि गऊकै दुग्ध उतरि आवे है, तैसैं ज्ञानवान् विनयवान्

तपस्वीनका संगकरि तरुणहूकै वैराग्य उत्पन्न होय है ॥ गाथा—

परिहरइ तरुणगोट्ठी । विसं व वुड्ढाउळे य आयदणे ॥
जो वसइ कुणइ गुरुणि- । देसं सो णित्थरदि वंभं ॥ ८४ ॥

अर्थ— जो पुरुष तरुण जो विषयनिमें आसक्त तिनकी संगति तो विषकीनांई आत्माके गुणनिकूं घात करनेवाली जानिकरि छांडे हैं अर ज्ञान विनय शील तपकरि वृद्ध हैं तिनके स्थानकमें वसे हैं, सो गुरुनिकी आज्ञा पाले हैं अर सोही ब्रम्हचर्य नामा व्रतका निस्तार करे है-निर्वाह करे हैं ॥ भावार्थ— जिनकै, तरुण विषयानुरागी-निकै सामिल वसना अर तरुणनितैं गोष्ठी करना बणि रह्या है, तिनका ब्रह्मचर्य बिगडिजाय है, अर जिनकै, ज्ञान वैराग्यके धारकनिकै सामिल वसना है, तिनकै शुद्धब्रह्मचर्य रहे हैं ॥

ऐसैं ब्रह्मचर्य नामा अधिकारविषैं वृद्धसेवा पनरह गाथानिकरि कही ॥ अब बाईस गाथानिमैं स्त्रीका संसर्ग जो संगति, तातैं जे दोष उपजे हैं तिनकूं कहे हैं ॥ गाथा—

आलोयणेण हिदयं । पचलदि पुरिसस्स अप्पसारस्स ॥ पेच्छंतयस्स
वहुसो । इत्थीथणजहणवदणाणि ॥ ८५ ॥ लज्जं तदो विहंसं । परिचय-
मध णिव्विसंकिदं चेव ॥ लज्जालुउ कमेणा- । रुहंतउ होदि वीसत्थो ८६

वीसत्थदाए पुरिसो । वीसंभं महिळियासु उवयादि ॥ वीसंभाउ पणउ । पणयादु रदी हवदि पच्छा ॥ ८७ ॥ उल्लावसमुल्लावे- । हिं चावि अल्लि- यणपेच्छणेहिं तहा ॥ महिलासु सइरचारि- । स्स मणो अचिरेण खुभ्भादि हु ॥ ८८ ॥ ठिदिगदिविलासविब्भम- । हासचेट्ठिदकडक्खदिट्ठीहिं ॥ लीला- जुदिरदिसम्भे- । लणोवयारेहिं इत्थीणं ॥ ८९ ॥ हासोवहासकीडा- । रहस्सवीसत्थजंपिएहिं तहा ॥ लज्जामज्जादीणं । मेरं पुरिसो अदिक्कमदि ॥१०९०॥

अर्थ— अल्पधैर्यका धारक जे मोही पुरुष तिनकै स्त्रीके स्तन तथा जघन तथा मुख इनका देखनेकरि मन अत्यंत चलायमान होय है, अर चलायमान हुवापाछै लज्जा नष्ट होय है, अर लज्जाकूं गयापाछै तिस स्त्रीका देखना तथा समीप जावना तथा हसना इत्यादिक स्त्रीनिमैं परिचयकूं प्राप्त होय है, अर स्त्रीनिमैं परिचय हुवापाछै या शंका मनमें नही रहे है– जो, याकरि सहित मोकूं कोऊ देखेंगे तो कहा कहेंगे? ऐसैं लज्जावानहू पुरुष क्रमतैं निःशंक होय विश्वासकूं प्राप्त होय है; जो; या स्त्रीका मेरेमांहि अत्यंत प्रेम है मेरा याका हित ममत्वकी वार्ता दूजे ठिकाणै जाय नही ऐसा विश्वास उपजे है, ऐसैं अपने मनके विश्वासतैं स्त्रीमैं विश्वासनैं प्राप्त होय है, अर ज्यूं विश्वास बधे त्यूं विश्वासतैं स्नेह बधे है अर स्नेहतैं रति जो आसक्तता सो बधे है,

अर आसक्ततापाछै परस्पर वचनालाप प्रवर्तै है, तथा वारंवार मिलना तथा वारंवार देखना तिनकरि स्त्रीमैं स्वेच्छाचारी पुरुषको मन शीघ्रही क्षोभकूं प्राप्त होय है, देख्याविना वचनालाप कियाविना एकांतमें मिल्याविना मनकूं जक नही पडे है, बहुरि स्त्रीनिके स्थिति रहना तथा गमन करना तथा नेत्रनिके विलास तथा भ्रकुटीनिके विभ्रम तथा हास्य चेष्टा तथा कटाक्षदृष्टि तथा क्रीडा तथा शरीरकी कांति तथा रति तथा मिलाप तथा हास्य उपहास क्रीडा एकांतमें विश्वासरूप वचनालापकरि पुरुष लज्जा कुलमर्यादकी सीमा उलंघन करे है ॥

ठाणगदिपेच्छिदुल्ला- । वादी सव्वासिमेव इत्थीणं ॥
सविलासा चेव सदा । पुरिसस्स मणोहरा होंति ॥ ९१ ॥

अर्थ— सर्वही स्त्रीका विलासकरि सहित स्थान गति अवलोकन वचनालाप सदा पुरुषका मनकूं हरेही है ॥ गाथा—

संसग्गीए पुरिस- । स्स अप्पसारस्स लद्धपसरस्स ॥
अग्गिसमीपे व घयं । मणो हु लहुमेव हि विलाइ ॥ ९२ ॥

अर्थ— अल्प है धैर्यका बल जाका अर स्त्रीनिमैं कीया है परिचय जानैं ऐसा पुरुषका मन स्त्रीनिका संसर्गकरिकै अग्नीके समीप घृतकीनांई नरम होइ वहजाय है ॥

संसग्गीसम्मूढो । मेहुणसहिदो मणो हु दुम्मेरो ॥
पुव्वावरमगणंतो । लंघिज्ज सुसीळपायारं ॥ ९३ ॥

अर्थ— यो प्राणीनिको मन जिस कालमें स्त्रीनिका संसर्गकरि मूढ होय है अथवा मोही होय है तथा मैथुनकी वांछासहित होय है तथा मर्यादरहित होय है, तिसकाल पूर्वापर नहीं गिणतो सुंदर शीलरूप कोट ताहि उलंघन करत है ॥ गाथा-

इंदियकसायसण्णा- । गारवगरुका सभावदो सव्वे ॥
संसग्गिलद्धपसर- । स्स ते उदीरंति अचिरेण ॥ ९४ ॥

अर्थ— स्त्रीनिका संसर्गविषैं पाया है प्रसार कहिये फैलाव जानैं ऐसा पुरुषकैं स्वभावहीतैं विनायत्नहीतैं सर्व इंद्रिय कषाय संज्ञा गौरव शीघ्रही उत्कटतानैं प्राप्त होय है ॥ भावार्थ- जो पुरुष स्त्रीनिमैं प्रचार करै, ताके पांचूं इंद्रियां विषयनिमैं अतितीव्रताकूं प्राप्त होय हैं, क्रोध मान माया लोभ कषाय प्रबलताकूं प्राप्त होय हैं, बहुरि आहार भय मैथुन परिग्रह ये च्यारि प्रकारके संज्ञाकी प्रबलता होय है, तथा ऋद्धिगौरव रसगौरव सातगौरवकरि सहित होय है, तातैं स्त्रीनिका संसर्ग करना बडा अनर्थ है॥

मादं सुदं च भगिणी । एगंते आसियं च तस्स मणो ॥
खुब्भइ पारस्स सहसा । किं पुण सेसासु महिलासु ॥ ९५ ॥

अर्थ— एकांतमें माता पुत्री बहण इनिकूंहू अवलोकन करता पुरुषका मन शीघ्रही क्षोभनैं प्राप्त होय है, तो अन्य स्त्रीनिमैं चलायमान होय ताका तो कहा आश्चर्य है?

जुण्णं पोच्चळमइळं। रोगियवीभस्सदंसणविरूवं॥
मेहुणपडिगं पत्थे-। दि मणो तिरियं व खु णरस्स॥ ९६॥

अर्थ— तीव्र कामके परिणामतैं जीर्ण जो वृध्दा स्त्री ताकूं कामीका मन प्रार्थना करे है, बहुरि जो निस्सार होय मलिन होय तथा रोगिणी होय तथा जाकूं देखताही भय आवै ऐसी भयानक होय तथा कुरूप होय तथा तिर्यंचणी होय ऐसीहू स्त्रीकूं कामी पुरुष वांछा करे है! ॥ गाथा—

दिठ्ठाणुभूदसुदविस-। याणं अभिलाससुमरणं सव्वं॥
एसो वि होइ महिला-। संसग्गी इत्थिविरहम्मि॥ ९८॥

अर्थ— जो स्त्री नहीहू होय, तोहू स्त्रीनिमैं कीया संसर्ग कैसाक है? जा थकी पूर्वैं देखे सुने अनुभव कीये जे विषय तिनका अभिलाष तथा स्मरण चिंतवन हृदयमें निरंतर बणेही रहे है—स्त्रीसंबंधी विषयवासना जाय नही है॥ गाथा—

थेरो वहुस्सुदो वा। पच्चइउं तह गणी तवस्सी वि॥
अचिरेण लभदि दोसं। महिलावग्गम्मि वीसत्थो॥ ९८॥

अर्थ— जो पुरुष स्त्रीनिके समूहमें विश्वास करे है सो वृध्द होहू तथा बहुश्रुती होहू तथा बहुतप्रतीतिका पात्र प्रमाणभूत होहू तथा संघका अधिपति सर्व लोकनिमें मान्य पूज्य गणी होहू तथा तपस्वी होहू तोहू स्त्रीनिकी संगतितैं थोरा कालमें अपवाद अजस दुराचारकूं प्राप्त होयहीगा, जो स्त्रीनिकी संगति तथा स्त्रीनिसूं वचनालाप करैगा; ताकी प्रतिष्ठा बिगडि जायगी, धर्मभ्रष्ट होजायगा, ज्ञानादिक सर्वगुण भ्रष्ट होय संसारमें डूबि जायगा ॥ गाथा–

किं पुण तरुणा अवहु- । स्सुदा य सइरा य विगदवेसा य ॥
महिलासंसग्गीए । णट्ठा अचिरा ण हो होंति ॥ ९९ ॥

अर्थ— जो वृद्ध तपस्वी ज्ञानवान्ही स्त्रीके संसर्गकरि भ्रष्ट हो जाय! तो तरुण अर श्रुतका ज्ञानरहित तथा स्वेच्छाचारी तथा विकाररूप आभरण भेष वस्त्रादिकके धारण करनेवाले स्त्रीनिकी संगतिकरि तथा स्त्रीनितैं वचनालापकरि नही नष्ट होयगे कहा? भो लोक हो? स्त्रीनितैं किंचितहू संसर्ग राखेगा तिनकूं नष्ट भयेही जानहू ॥

सगडो हु जइणिगाए । संसग्गीए दु चरणपब्भट्ठो ॥
गणियासंसग्गीए । य कूपचारो तहा णट्ठो ॥ ११०० ॥

अर्थ— संकट नामा मुनि जयिणिका नामा ब्राह्मणीकी संसर्गकरि चारित्रतैं भ्रष्ट

हुवो अर कूपचार नामा मुनि वेश्याका संसर्गकरि नष्ट होत भयो ॥ गाथा—

रुद्दो पारासरो। सच्चइ रायरिसि देवउत्तो य ॥
महिलारूवालोगे। णट्ठा संसत्तदिट्ठीए ॥ १ ॥

अर्थ— रुद्र, तथा पाराशर, तथा सात्यकी, तथा राजर्षि, तथा देवपुत्र एते महान् ऋषि स्त्रीके रूप देखनेमें आसक्त जो दृष्टि ताकरि नष्ट होते भये ॥ गाथा—

जो महिलासंसग्गं। विसं व दट्ठूण परिहरइ णिच्चं ॥
णित्थरइ बंभचेरं। जावज्जीवं अकंपं सो ॥ २ ॥

अर्थ— जो पुरुष स्त्रीका संसर्ग विषकीनाई देखिकरिकै नित्यही त्याग करे है, सो निष्कम्प हुवा यावज्जीव ब्रह्मचर्यका निर्वाह करे है ॥ भावार्थ— स्त्रीमात्रका संसर्ग त्यागैगा, ताकै निश्चल ब्रह्मचर्य होवेगा अर जो स्त्रीकी संगति स्त्रीतैं वचनालाप तथा अवलोकन करैगा ताका ब्रह्मचर्य नष्ट होयहीगा ॥ गाथा—

सव्वम्मि इत्थिवग्ग-। म्मि अप्पमत्तो सदा अवीसत्थो ॥
बंभं णित्थरदि वदं। चरित्तमूलं चरणसारं ॥ ३ ॥

अर्थ— जो पुरुष संपूर्णस्त्रीनिके समूहमें प्रमादरहित है अर सदाकाल स्त्रीनिका विश्वास नही करै है—दूरिही रहे है, सो पुरुष चारित्रका मूल आचरणमें सार ऐसा

ब्रह्मचर्यव्रतका निस्तार करे है ॥ गाथा—

किं मे जंपदि किं मे । पस्सदि अप्पणो कहं च वट्टामि ॥

इदि जो सदाणुपिरुखइ । सो दढबंभव्वदो होदि ॥ ४ ॥

अर्थ— जाके निरंतर ऐसा भय रहे है, जो मैं स्त्रीसूं वचनालाप करूंगा तथा रागतैं देखूंगा, तो ये अन्यलोक मोकूं कहा कहेंगे! कहा देखेंगे! मोकूं कैसैं वर्तेंगे? मोकूं अत्यंत नीच अधम पापिष्ठ कहेंगे देखेंगे वर्तेंगे! याप्रकार जिनके हृदयमें सदाकाल ऐसा चिंतवन रहे है; ते पुरुष दृढ ब्रह्मचर्यके धारक होय हैं ॥ गाथा—

मज्झण्हतिक्खसूरं । व इत्थिरूवं ण पासदि चिरं जो ॥

खिप्पंपडिसंहरदी । दिट्ठिं सो णित्थरइ बंभं ॥ ५ ॥

एवं चिय महिलाए । सद्दे रूवे तहेव संफासे ॥

ण चिरं जस्स दु सज्जइ । मणं खु सो णित्थरइ बंभं ॥ ६ ॥

अर्थ— जो पुरुष मध्यान्हकालका तीक्ष्णसूर्यकीनाई स्त्रीका रूपकूं ठहरि रागरूप हुवा नही देखे है, दृष्टीकूं पडलाप्रमाण शीघ्रही संकोचि ले है—मुद्रित कर ले है, सो ब्रह्मचर्यका निस्तार करे है। बहुरि ऐसेही स्त्रीके शब्द सुननेमें तथा रूप देखनेमें तथा स्पर्श करनेमें जाका मन चिरकाल नही ठहरे है—लगेही नही है, सो पुरुष ब्रह्मचर्यव्रतका

निर्वाह करे है ॥ ऐसैं ब्रह्मचर्य नामा महा अधिकारमें स्त्रीसंसर्गके करनेतैं जे दोष होय हैं, तिनका वर्णन बाईस गाथानिमैं कह्या ॥ अब स्त्रीनिके वशी नही होय हैं, तिनकी महिमाका दश गाथानिकरि उपदेश करे हैं ॥

इहपरलोगे जदि दे । मेहुणविस्सुत्तिया हवेजणहू ॥
तो होहि तमुवउत्तो । पंचविहे इत्थिवेरग्गे ॥ ७ ॥

अर्थ— हे आत्मन्! इसलोकसंबंधी तथा परलोकमें जो तुमारै मैथुनमें परिणाम होय–ब्रह्मचर्यमें पापके उदयतैं नही तिष्ठै; तो तुम स्त्रीकृत दोष, तथा मैथुनकृत दोष, तथा संसर्गकृत दोष, तथा शरीरकी अशुचिता, तथा वृद्धसेवा ये पंचप्रकार स्त्रीनिमैं विरक्त करनेके कारण कहे तिनमें उपयुक्त होहू, तातैं तुमारा परिणाम कामवासनातैं छूटि ब्रह्मचर्यमें दृढ होय है ॥ गाथा–

उदयम्मि जाय वड्ढिय । उदयेण ण लिप्पए जहा पउमं ॥
तह विसएहि ण लिप्पइ । साहू विसएसु उसिर्उ वि ॥ ८ ॥

अर्थ— जैसैं जलविषैं उपज्या अर जलमें वृद्धीकूं प्राप्त हुवा जो कमल, सो जलकरिकैं नही लिप्त होय है, तैसैं साधु जो है, सो विषयनिमें वर्तताहू विषयनिकरि नही लिप्त होत है ॥ भावार्थ— यद्यपि कमल जलमें उपजे है अर जलमेंही

वृद्धीनैं प्राप्त होय है, तोहू कमलमें ऐसी सचिक्कणता गुण है जातैं कमलमें जल चिपैही नही, तैसैं उत्तम साधुजननिकै भेदविज्ञानका प्रभावतैं वीतरागता ऐसी प्रकट होय है सो सर्वविषयनिकूं जाणे है अर लीनता तथा आसक्ततार्कूं प्राप्त नही होय है ॥

उग्गाहिंतस्सुदधिं । अच्छेरमणोल्लणं जह जळेण ॥
तह विसयजळमणोल्लण- । मच्छेरं विसयजलहिम्मि ॥ ९ ॥

अर्थ— जैसैं कोऊ समुद्रकूं अवगाहन करै अर ताकै समुद्रके जलकरिकै आर्द्रपणा नही होय–नही भींजै सो बडा आश्चर्य है, तैसैं विषयरूप समुद्रमें वास करता कोऊ पुरुष विषयरूप जलकरि नही लिप्त होय सो बडा आश्चर्य है ॥ भावार्थ— वीतरागभेद-विज्ञानका ऐसा महिमा है, जो, जो त्रैलोक्य पांचूं इंद्रियनिका विषयमय है, तोहू साधुजन तामैं लिप्त नही होय है ॥ गाथा–

मायागहणे वहुदो- । ससावए अलियदुमगणे भीमे ॥
असुइतणिल्ले साहू । ण विप्पणस्संति इत्थिवणे ॥ १११० ॥

अर्थ— यो स्त्रीरूप वन मायाचारकरि गहन है–जामैं प्रवेश नही दीखै, बहुरि बहुत जे ईर्षा चपलता पिशुनता इत्यादिक दोष तेही जे दुष्टजीव तिंनकरि व्याप्त है, बहुरि झूंठरूप जामैं वृक्षनिके समूह हैं, बहुरि इसलोकमैंहू भयानक अर

परलोकमैंहू भयानक अर अशुचितारूप तृणांनिकरि व्याप्त ऐसे स्त्रीरूपवनमें साधुजन आपा भूलि नष्ट नहीं होय हैं॥

सिंगारतरंगाए। विलासवेगाए जोव्वणजलाए॥
विहसियफेणाए मुणि। णारिणईए ण उब्भंति॥ ११ ॥

अर्थ— या नारीरूप नदी शृंगाररूप है तरंग जामैं अर विलासरूप है वेग जामैं अर यौवनरूप है जल जामैं अर मंदहास है झग जामैं ऐसी नारीरूप नदीमैं मुनीश्वर नहीं डूबे हैं। या नारीरूप नदी उत्तममुनिनके चित्तकूं नहीं वहाय सके है॥ गाथा—

ते अदिसूरा जे विला- ससलिलमदिचवलरदिवेगं॥
जोव्वणणइमुत्तिण्णा। ण य गहिया इत्थिगाहेहिं॥ १२ ॥

अर्थ— जगतमें ते अतिशूर वीर हैं, जो यौवनरूप नदीकूं पार उतर गये अर यौवनरूप नदीमैं स्त्रीरूप महाग्राह कहिये मत्स्य तिनकरि नहीं ग्रहण कीये गये। कैसीक है यौवनरूप नदी? विलासरूप है जल जामैं, अर अतिचपल रतिरूप है वेग जामैं॥ भावार्थ— जे यौवनरूप नदीकूं तिरि पार होगे, ते धन्य हैं। इस यौवनन-दीमैं स्त्रीरूप मत्स्यकरि कोन बचे हैं? जे स्त्रीमैं नहीं रचे, तेही धन्य हैं॥ गाथा—

महिलावाहविमुक्का। विलासपुंखा कडक्खदिट्ठिसरा॥

जं ण वधंति सदा विस- । यवणचरं सो हवइ धण्णो ॥ १३ ॥

अर्थ— नारीरूप पारधीकरि छोड्या अर विलासरूप है पांख जाकै ऐसे कटाक्षदृष्टिरूप बाण जिनकूं विषयरूप वनमैं प्रवर्ततेकूं सर्वकालमैं नही घाते हैं, ते धन्य हैं॥ भावार्थ— इस विषयरूप वनमें जो नारीनिके कटाक्षबाणकरि नही घात्या गया, सो धन्य है॥

विब्बोगतिक्खदंतो । विलासखंधो कडक्खदिट्ठिणहो ॥
परिहरदि जोव्वणवणे । जमित्थिवग्घो तगो धण्णो ॥ १४ ॥

अर्थ— नानाप्रकारके भ्रकुटीके विभ्रमही हैं तीक्ष्ण दंत जाकै अर नेत्रानिके विलासही हैं स्कंध जाकै अर कटाक्षदृष्टीही है नख जाकै ऐसा स्त्रीरूप व्याघ्र जाकूं यौवनरूप वनमें नही घात कीया, सो धन्य है॥ गाथा—

तेलोक्काडविदहणो । कामग्गी विसयरुक्खपज्जलिउ ॥
जोव्वणतणिल्लचारी । जं ण डहइ सो हवइ धण्णो ॥ १५ ॥

अर्थ— त्रैलोक्यरूप वनकूं दग्ध करता अर विषयरूप वृक्षनिकरि प्रज्वालित ऐसा कामरूप अग्नि है सो जिस यौवनरूप तृणनिमैं गमन करते पुरुषकूं नही जाले है, सो पुरुष धन्य है॥ भावार्थ— कामरूप अग्नि जाकूं यौवन अवस्थामें दग्ध नही कीया सो पुरुष धन्य है॥ गाथा—

विसयसमुद्दं जोव्वण- । सलिलं हसियगइप्पोख्खिउम्मीयं ॥
धण्णा समुत्तरंति हु । महिलामयरेहिं अच्छित्ता ॥ १६ ॥

अर्थ— यो विषयरूप समुद्र है तामैं यौवनरूपी जल है अर स्त्रीनिके हास्य तथा गमन अर अवलोकन येही जामैं लहरी हैं सो ऐसा विषयरूप समुद्रकूं जे स्त्रीरूप मगर—मत्स्यनिकरि नहीं स्पर्शन कीये—नहीं ग्रहण कीये समुद्रकूं तिरत हैं, ते धन्य हैं ॥ भावार्थ- विषयरूप समुद्रमें स्त्रीरूप मगर मत्स्य वसे हैं, सो ऐसे समुद्रकूं स्त्रीरूप मत्स्यसूं जे टलि अर पार उतर गये, ते धन्य हैं ॥

ऐसैं अनुशिष्टि नामा महा अधिकारविषैं ब्रम्हचर्यका वर्णन दोयसै इकतालीस गाथामैं समाप्त कीया ॥ अब परिग्रहत्याग नामा व्रतकूं सडसठि गाथानिकरि कहे हैं ॥

अब्भंतरवाहिरए । सव्वे गंथे तुमं विवज्जेही ॥
कदकारिदाणुमोदे- । हिं कायमणवयणजोगेहिं ॥ १७ ॥

अर्थ— हे आत्मन्! अभ्यंतर अर बाह्य जे सर्व परिग्रह तिननैं मनवचनकाय-कृतकारितअनुमोदनाकरि तुम त्याग करहू ॥ गाथा-

मिच्छत्तवेदरागा । तहेव हस्सादिया य छद्दोसा ॥
चत्तारि तह कसाया । चोद्दस अब्भंतरा गंथा ॥ १८ ॥

अर्थ— वस्तूका यथावत् श्रद्धानका अभाव, सो मिथ्यात्व ॥ १ ॥ अर स्त्रीका विषयमें, अर पुरुषका स्पर्शनादिविषयमें, अर नपुंसकका अंगादिकनिके स्पर्शमें, तथा स्त्रीपुरुष दोऊके मध्य रमनेमें, जो रागकरि आसक्तता, ये तीन वेद हैं ॥ ३ ॥ तथा हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा ये छह नोकषाय ॥ ६ ॥ अर क्रोध, मान, माया, लोभ ये च्यारि कषाय ॥ ४ ॥ ऐसे ये चौदह अभ्यंतरपरिग्रह हैं ॥ गाथा—

बाहिरसंगा खेत्तं । वत्थुं धणधण्णकुप्पभंडाणि ॥
दुपयचउप्पयजाणा- । णि चेव सयणासणे य तहा ॥ १९ ॥

अर्थ— धान्य उत्पन्न होनेका क्षेत्र ॥ १ ॥ अर जायगा रहनेयोग्य तथा अन्य मकान तिनकूं वास्तु कहिये ॥ २ ॥ बहुरि सोना, रूपा, रुपया, महोर इत्यादिकनिकूं धन कहिये ॥ ३ ॥ बहुरि चावल तथा गोहूं जव इत्यादिक धान्य होय हैं ॥ ४ ॥ बहुरि वस्त्रादिक कुप्य हैं ॥ ५ ॥ बहुरि कुंकुम, कर्पूर, मिरच, हिंग्वादिक भांड हैं ॥ ६ ॥ दासी दास तथा अन्य सेवकनिका समूह सो द्विपद हैं ॥ ७ ॥ बहुरि हस्ती घोडा बलध इत्यादिक चतुष्पद हैं ॥ ८ ॥ बहुरि पालखी विमान इत्यादिक यान हैं ॥ ९ ॥ बहुरि शय्या पर्यंकादिक अर सिंहासनादिक आसन ॥ १० ॥ ये दशप्रकार बाह्यग्रंथ हैं ॥ बाह्यपरिग्रहका परित्यागविना आत्माके दर्शन ज्ञान चारित्र वीर्य अव्याबाधसुख इत्या-

दिक गुणनिके घात करनेवाला मोहमलका अभाव नही होय है, ऐसैं दृष्टांतकरि कहे हैं॥

जह कुंडउ ण सक्का । सोधेदुं तंदुळस्स सतुसस्स ॥
तह जीवस्स ण सक्कं । मोहमळं संगसत्तस्स ॥ ११२० ॥

अर्थ— जैसैं तुससहित जो तंदुल, ताका कुंड जो अंतरमल, सो दूरि करनेकूं नही समर्थ होइए है; तैसैं बाह्यपरिग्रहमें आसक्त जो जीव सो आपके अभ्यंतर जो मोहमल ताके दूरि करनेकूं नही समर्थ होइए हैं ॥ भावार्थ-- चांवलनिका उपरला तुस पहली दूरि होजाय, तदि तो मांहिली लालीहू दूरि होसके है। अर जाका तुसही दूरि नही होय ताकी लाली मेटनेकूं कोन समर्थ है? जैसैं जानैं बाह्यपरिग्रहही नही त्याग्या, ताका अभ्यंतर आत्मा उज्वल कदाचित्‌ही नही होय है ॥ गाथा-

रागो लोभो मोहो । सण्णाउ गारवाणि य उदिण्णा ॥
तो तइया घेत्तुं जे । गंथे वुध्दी णरो कुणइ ॥ २१ ॥

अर्थ-- परद्रव्यमें आसक्तता, सो राग है। परिग्रहकी इच्छा, सो लोभ है। परवस्तूमैं ममत्व, सो मोह है। हमारै यो वस्तु सुखकारी है ऐसा इच्छारूप जो परिणाम, सो संज्ञा है। पर्यायसंबंधी बडापनाका अभिमान धरना, सो गौरव है। जिस अवसरमें राग लोभ मोह संज्ञा गौरव ये उत्कटतानैं प्राप्त होय हैं, तिस अवसरमें यो मनुष्य परि-

संगणिमित्तं ईसा- । सूयासल्लाणि जायंति ॥ २६ ॥

अर्थ— परिग्रहके निमित्त तीव्र इक्षा (इच्छा) उपजे है, तथा परिग्रह धारण करेगा ताकै बडा गौरव वडा गर्व होय है, तथा परिग्रहके निमित्त परका दोषनिका प्रकाश करे है--चुगली करे है, तथा परके निमित्त कलह करे है, तथा धनके अर्थि कठोरवचन कहे है, तथा निष्ठुरवचन कहे है, तथा परिग्रहके निमित्त विवाद करे है, परिग्रहके निमित्त ईर्षा करे है, तथा असूया-अदेखसका भाव करे है यो पुरुष इसके अर्थि दे है, मेरे अर्थि नही दे है तथा इस कार्यमें याकै तो भला हुवा अर मेरे नही हुवा याका नाम ईर्षा है ॥ तथा अन्य धनवानकूं नहीं देखि सकना याका नाम असूया है ॥ येते सर्व दोष परिग्रहमें आसक्तपुरुषके जानने ॥ गाथा—

कोधो माणो माया । लोभो हासरइअरादिभयसोगा ॥

संगणिमित्तं जायइ । दुगुंछ तह रादिभत्तं च ॥ २७ ॥

अर्थ— परिग्रहके निमित्त चाऱ्यों कषाय प्रबल होय हैं ॥ कोई ऋण मांगने आवै तो बडा क्रोध उपजे है, तथा कोऊ धनाढ्य आपकूं कुछ नही देवै तो वासूं बडा क्रोध उपजै, जो, आप जबर होय तदि अन्यका धन बलात्कार हरनेकूं बडा क्रोध करे है, तथा आपका कोई धन हरण करे तो ताऊपरि बडा क्रोध करे है, कोऊ आपका

धनकूं खरच करावै ताऊपरि बडा क्रोध करे है, धनके वास्तै ऐसा क्रोध करे है परकूं विना अपराध नाना मार मारे है-प्राणरहित करे है आप मरि जाय है! परिग्रहके निमित्त आपका मरना नही देखे है, ऐसे अनेकप्रकार परिग्रहके निमित्त क्रोध करे है। तथा धन पाय आपकूं ऊंचा जाने है, जगतकूं रंकसमान देखे है, आप परिग्रहका बडा अभिमान करे है, आपकूं इंद्रसमान जाने है, धनका अभिमानकरि धर्मात्माका तिरस्कार करे है, माता पिता गुरु उपाध्यायका अविनय करे है, जगतकूं तृणसमान देखे है, परिग्रहका मदकरि अंधसमान होजाय है, तातैं परिग्रहतैं बडा अनर्थरूप अभिमान होय है। बहुरि परिग्रहके मायाचार बहुत करे है, परिग्रहवासतैं नानाप्रकार छल करे है, जगतमें परिगृहतैं निमित्त बडी ठिगाठिगी लगी रही है, परिग्रहवास्तै पाखंडरूप भेष धारण करे है, तातैं परिग्रह मायाचारका निवास है बहुरि परिग्रहवानकी तृष्णा नही मिटे है, सौसूं हजारसूं लक्षतैं कोटीकोटीनतैं राजापणा चक्रीपणा अधिकाधिकही वांछा करे है, संग्रह करताकरता नही धापे है, महा आरंभ विस्तारे है, जगतकूं ठिग्या चाहे है, नही करनेका कार्य करे है, इत्यादिक परिग्रहतैं लोभकी आधिक्यता होय है॥ परिग्रहवास्तै आप हास्यका पात्र बणि जाय है, लज्जा छांडि दे है। बहुरि अति आसक्तताकूं प्राप्त होय है। अर परिग्रह बिगडि जाय तदि अत्यंत अरति जो मरणसूं

अधिकपीडा ताकूं प्राप्त होय है। अर परिग्रहधारीकै निरंतर भय रहे है 'मति कोऊ हर ले' तथा राजाका तथा चोरका तथा दुष्टनिका तथा दायियादारनिका परिग्रहधारीकै शाश्वत भय रहे है। तथा परिग्रह नष्ट होय जाय तो महाशोक उपजे है, धन नष्ट होनेहालेकै जैसा शोक होय है तैसा काहूकै नही होय है, अर परिग्रहका धारी है सो परिग्रह जहां नही दीखै ऐसे दरिद्री पुरुषनिमैं तथा दरिद्रीनिके गृहकुंटुबमैं महाग्लानि करे है। तथा परिग्रहका धारक रात्रिभोजनादिक सकलपाप अंगीकार करे है। परिग्रहका लोलपी खाद्य अखाद्य जोग्य-अजोग्यमें विचारही नही करे है। गाथा-

गंथो भयं णराणं। सहोदरा एयलच्छया जं ते ॥
अण्णोण्णं मारेदुं। अत्थणिमित्तं मदिमकासी ॥ २८ ॥

अर्थ— मनुष्यनिकै परिग्रह है सो भय है-भयका कारण है, यातैं, जातैं एकलछनगरमें एकउदरतैं उपजे भाई धनके अर्थि परस्पर मारनेमें बुद्धि करत भये, तातैं जाकै परिग्रह है ताकै निश्चयतैं भय जानहू ॥ गाथा-

अत्थणिमित्तमदिभयं। जादं चोराण एक्कमेक्केहिं ॥
मज्जे मंसे य विसं। संजोइय मारिदा जं ते ॥ २९ ॥

अर्थ— धनके निमित्त-चोरानिकै अति भय उत्पन्न-होतो भयो। अर धनके अर्थिही

परस्पर मद्यमें मांसमें विष संयुक्त करि परस्पर मारे गये ॥ गाथा—

संगो महाभयं जं । विहेडिदो सावएण संतेण ॥
पुत्तेण चेव अत्थे । हिदम्मि णिहिदेल्लए साहू ॥ ११३० ॥

अर्थ— जातैं परिग्रह महाभय है, इस परिग्रहतैं महान धर्मात्माकाभी परिणाम बिगडे है। देखो! जमीमैं मेल्या हुवा धन आपका पुत्र काढि लेगया, तदि सत्पुरुषहू श्रावककै ऐसी शंका उपजी, जो मेरा जमीमैं धऱ्या धनकूं साधु जाने था, सो कदाचित् इनका परिणाम बिगाडि धन हऱ्या होय! ऐसा विचारि साधूकूं बाधारूप कीया ॥

याका ऐसा संबंध है— कोऊ एक शुद्धचारित्रका धारक मुनीश्वर एक नगरके बाह्य वन छो तामैं वर्षाऋतुमें च्यारि महिनाको जोग धारण करि तिष्ठे, तिस अवसरमें उस नगरका एक श्रावक मुनीश्वरांकी वंदना करिकै विचार कीया, जो "मेरा बडा भाग्यतैं च्यारि महिना साधूका संगम हुवा" अब मैं ऐसैं करूं, जो, च्यारि महीना मेरै साधुनिकी सेवा अर धर्मश्रवणहीसैं व्यतीत होय ऐसा विच्यारि अर अपना विसनीक पूत पुत्रका भयकरि अपना घरका सारभूत जो धन, सो एक कलशमें मेलि अर जहां मुनीश्वर तिष्ठै छा तहां ल्याय भूमीनैं खोदि धरि दीया, अर आप निर्भय हुवा साधूके निकटि धर्मश्रवण करि च्यारि महीना साधुसेवातैं व्यतीत कीया। परंतु जिस अवसरमें

घरथकी धनका कलश ल्याय मुनीश्वरांका आश्रममें गाडै छो, तिस अवसरमें आपका व्यसनी पुत्र छिप्यो हुवो देखै छो, सो कोइक दिन पिता तो नगरमें भोजनकूं गयो अर पछांसूं धनका कलश जमींमेतैं निकासि ले गयो!

अब चतुर्मास पूरा हुवा, मुनि विहार करि गया, अर श्रावकहू तिनकूं कितनी दूरि पोंचाय वंदनाभक्ती करि नगरमें पाछो आयो, तदि विचारी, जो "धनका कलश अब घरि ले चलूं" सो जिस मकानमें गाड्या छा वहां आय देखै तो कलश नही! तदि परिणाममें किंचित् व्याकुल होय विचार कीया, मेरा धनका कलश कोन ले गया? इहां वनमें कोऊही देखनेवाला नही छा, एक दिगंबर साधुही छा, तातैं अब चालि उनकूं पूंछना, ऐसा विचार करि आपका पुत्रकूं लारै लेय मुनिश्वरनिके निकटि जाय पहुंच्या, तदि मुनि जाणि लीनी जो "यो सेट धनका भऱ्या कलशवास्तै आया है"। परंतु साधूका कहनेका मार्ग नही! प्राण जाउं परंतु साधु सदोपवचन नही कहै। तदि श्रेष्ठी कही, हे भगवन्! आप गमन करते हो, परंतु एक मै कथा कहूं हूं सो श्रवण करते जावो, तदि मुनीश्वरां कही, थे कथा कहो, हम श्रवण करे है। तदि एक कथा श्रेष्ठी कही तदि ताका उत्तररूप एक कथा साधु कही, वहुरि एक कथा सेठ कही, अर एक कथा साधु कही, ऐसैं आठ कथा श्रेष्ठी कही अर आठ कथा साधु कही सो

सोलह कथाका नाम आगै दोय गाथानिमैं नाममात्र वर्णन करसी ॥

सो ऐसैं प्रकट तो दोऊ कहि सकै नही, अर श्रेष्ठी तो ऐसैं कहे, जो, हे स्वामिन्! वै तो एता उपकार कीया अर दूजा वाका अपकार करै! सो जो उपकारीकै अपकार करना जोग्य है कहा? तब साधु कहै, उपकारीका अपकार करना जोग्य नही। परंतु मेरी कथा सुनहु। सो एक कथा साधु कहे, तामैं ऐसा भाव कहै, जो, विनासमझ्या अपराधरहितकूं दूषण लगाना जोग्य है कहा?। तदि श्रेष्ठी कहै, विनासमझ्या दूषण लगावना जोग्य नही। ऐसैं दोऊनिकी सोलह कथा होय चुकी, तदि पुत्र पितासैं कही, हे पिता, यो धनका कलश मै ले गयो, सो यो तुम ग्रहण करो! इस धनबरोबरी कोऊ परिणाम बिगाडनेवाला नही है! धिक्कार होहू या धनकूं! जाके निमित्ततैं तुमसारिखे महाश्रद्धानी व्रती श्रावकनिका परिणाम चालि गया! जो ऐसा विचार नही उपज्या– जो, "ऐसे धर्मात्मा दिगंबर, जिनके निकट च्यारि महीना धर्मश्रवण करि भलैप्रकार निश्चय करि लीया! यो मेरा धनका कलश कैसैं लेजाय? जिनकै इंद्रलोक अहमिंद्रलोककी संपादामैं विषकी बुद्धि प्रवर्ते है! अर अपना देहहूमें ममता नही, सो परधनमें ममता कैसैं करै? हे पिता! अब यह धनका कलश तुम ग्रहण करो, मै तो अब दिगंबरदीक्षा धारण करूंगा! तब श्रेष्ठीहू धनका निमि-

तसूं अपना परिणामका श्रद्धानका मलिनपणा जाणि परिग्रहतैं विरक्त होय दीक्षा धारण करता हुवा। तातैं परिग्रह है सो धर्मकी श्रद्धाकूं क्षणमात्रमें विगाडे है ॥

दूउ बंभण वग्घो। लोउ हत्थी य तह रायसुयं ॥
पहियणरो वि य राया। सुवण्णरयणस्स अक्खाणं ॥ ३१ ॥
वण्णरणउळो वेज्जो। वसहो तावस तहेव रुक्खाणं ॥
रुक्खसिवणीडुंडुह। मेदज्ज मुणिस्स अक्खाणं ॥ ३२ ॥

अर्थ— १ दूत, २ ब्राम्हण, ३ व्याघ्र, ४ लोक, ५ हस्ती, ६ राजपुत्र, ७ पथिक, ८ राजा इनसंबंधी आठ कथा अर १ वानर, २ नकुल, ३ वैद्य, ४ वृषभ, ५ तापस, ६ वृक्ष, ७ सिवणी, ८ सर्प ये आठ कथा ऐसें सोलह कथा परस्पर होत भई. ते प्रथमानुयोगके ग्रंथनितैं जाननी ॥ गाथा—

सीदुण्हादववादं। वरिसं तण्हा छुहा समं पच्छं ॥
दुस्सेज्जं दुब्भत्तं। सहइ वहइ भारमवि गरुयं ॥ ३३ ॥
गायदि णच्चदि धावइ। कसइ ववइ लवदि तह मलेदि णरो ॥
तुण्णोदि वुणइ जाचइ। कुलम्मि जादो वि गंथत्थी ॥ ३४ ॥

अर्थ— परिग्रहका अर्थी शीतकी वेदना, तथा उष्णकी वेदना, तथा आताप जो

तावडाकी तथा पवनकी वेदना, तथा वर्षाकी वेदना, तथा तृष्णाकी वेदना, तथा क्षुधाकी वेदना नानादुःखरूप भोगे है॥ बहुरि परिग्रहका अर्थी खेद भुगते है, परिग्रहवास्तैं महान् श्रम करे है, तथा परिग्रहका लोभी धनाढ्य लोकनिका बाह्य अंगणमें पडा रहे है। तथा लोभी हुवा दुर्भक्त जो खोटा नीरसभोजन करे है। तथा अन्यके द्वारे निरादरसूं दीया भोजन ग्रहण करे है। अर धनका लोभी हुवा बहुत भार वहे है॥ बहुरि उच्चकुलमें उपज्याहू पुरुष परिग्रहका लोभी धनके अर्थि आपका कुलनैं तथा जातिनैं तथा धर्मनैं पदस्थानै—पूज्यपणानैं नहीं गिणतो नीचपुरुषनिके करनेजोग्य महानीचकर्म करे है॥ ते नीचकर्म कोन कोन हैं सो कहे हैं—गावे है, तथा नाचे है, तथा आगाकूं दोडे है, तथा खेती करे है, तथा वाहे है, तथा लूणे है, तथा पादमर्दनादिक करे है, तथा सीवे है, तथा वणे है, तथा याचना करे है इत्यादि नीचकर्म लोभीविना कोन करै?॥ गाथा—

सेवइ णियादि रक्खइ। गोमहिसिमजाविर्यं हयं हत्थि॥
ववहरादि कुणदि सिप्पं। अहो य रत्ती य गयणिद्दो॥ ३५॥

अर्थ— बहुरि धनके अर्थि अधमपुरुषनिकी सेवा करे है, परिग्रहके निमित्त देशबाहिर निकलि जाय है, तथा धनके अर्थि गायनिकी तथा भैसी तथा छयाली तथा

मींढा तथा घोडा तथा हाथीनिकी रक्षा करे है, चाकरी करे है, तथा पशूनिका व्यवहार करे है तथा दिनरात्रिमें शिल्पकर्म करे है, रात्रिकूं निद्राहू नही लेवे है ॥ गाथा–

आउधवासस्स उरं । देइ रणमुहम्मि गंथलोभाउ ॥
मगरादिभीमसावद- । बहुलं अदिगच्छदि समुद्दं ॥ ३६ ॥

अर्थ— परिग्रहका लोभतें संग्रामविषें आयुधांकी वर्षाके सन्मुख अपना हृदय देत है! अर परिग्रहकी वांछातें मगरमत्स्यादिकरि भयानक अर बहुत हैं दुष्टजीव जामें ऐसे समुद्रमें प्रवेश करे है!॥ गाथा–

जदि सो तत्थ मरिज्जो । गंथो भोगाय कस्स ते होज्ज ॥
महिलाविहिंसणिज्जो । लूसिददेहो व सो होज्ज ॥ ३७ ॥

अर्थ— जो कदाचित् धनका लोभी रणविषैं तथा समुद्रविषैं मरिजाय तो परिग्रह तथा भोग कौनकै होय? तथा रणमें जावनेतैं तथा समुद्रमें प्रवेश करनेतैं देह लूखो होजाय तथा विरूप होजाय तो स्त्रीनिकै ग्लानि करनेयोग्य होजाय तदि धनपरिग्रहका कहा सुख होय? गाथा–

गंथणिमित्तमदीदि य । गुहाउ भीमाउ तह य अडवीउ ॥
गंथणिमित्तं कम्मं । कुणइ अकादव्वयं पि णरो ॥ ३८ ॥

अर्थ— ग्रंथके निमित्त भयानक गुफामैं प्रवेश करे है तथा भयानकवनीमैं प्रवेश करे है! तथा ग्रंथके निमित्त यो नर नही करनेयोग्यहू कर्म करे है ॥ गाथा–

सूरो तिक्खो मुक्खो। वि होइ वसिउं जणस्स सधणस्स ॥
माणी वि सहइ गंथणि-। मित्तं वहुयं पि अवमाणं ॥ ३९ ॥

अर्थ— परिग्रहके निमित्त शूर वीर तथा तीक्ष्ण कहिये 'काहूकी नही सहिसके' ऐसा स्वभावका तीखा तथा मूर्खहू धनसंयुक्तपुरुषकै वशीभूत होय है, तथा अभिमानीहू परिग्रहके निमित्त महान् अपमानकूं सहे है ॥ गाथा—

गंथणिमित्तं घोरं। परितावं पाविदूण कंपिल्ले ॥
लल्लकं संपत्तो। णिरयं पिण्णागगंधो खु ॥ ११४० ॥

अर्थ— कांपिल्यनगरविषैं पिण्याकगंध नामा पुरुष परिग्रहके अर्थि महान् संताप पायकरिकै अर लल्लक नाम नरककूं प्राप्त भयो ॥ गाथा–

एवं चेट्ठंतस्स वि। संसयिदो चेव गंथलाहो खु ॥
ण य संचीयदि गंथो। सुइरेण वि मंदभागस्स ॥ ४१ ॥

अर्थ— ऐसैं नानाप्रकार उद्यम नानाप्रकार नीचप्रवृत्ति करताहू पुरुषकै परिग्रहका लाभ संशयरूप है–लाभ होय तथा नही होय! नीचप्रवृत्ति करता लाभ होयही ऐसा

नियम नही है। जातैं मन्दभाग्य पुरुषकै बहुतकाल घोर उद्यम करिकैहू संचय तथा लाभ नही होय है ॥ गाथा—

जदि वि कहंचिय गंथा। संचीएज्जण्हु तह वि से णत्थि ॥
तित्ती गंथेहि सया। लोभो लाभेण वड्ढदि खु ॥ ४२ ॥

अर्थ— जो कदाचित् परिग्रहका संचयहू होय, तोहू ताकै तृप्तिता परिग्रहकरि नही होय है, जातैं लाभकरिकै लोभ सदा वृद्धिकूंही प्राप्त होय है, जैसैं जैसैं धनका लाभ होय तैसैं तैसैं लोभ वृद्धिकूं प्राप्त होय है॥ गाथा—

जह इंधणेहि अग्गी। लवणसमुद्दो णदीसहस्सेहिं ॥
तह जीवस्स ण तित्ती। अत्थि तिळोगे वि लद्धम्मि ॥ ४३ ॥

अर्थ— जैसैं इंधनकरि अग्नि तृप्त नही होय अर हजारां नदीनिकरि समुद्र तृप्त नही होय; तैसैं संसारी जीव त्रैलोक्यका लाभ होय तोहू तृप्त नही होय है ॥ गाथा—

पडहत्थस्स ण तित्ती। आसीय महाधणस्स लुद्धस्स ॥
संगेसु मुच्छिदमदी। जादो सो दीहसंसारी ॥ ४४ ॥

अर्थ— महाधनका धनी अर महालोभी ऐसा पटहस्त नामा वाणिक ताकै बहुत धनतैंहू तृप्ति नही हुई; सो परिग्रहमें महाममतारूप बुद्धिको धारि अनंतसंसारी होतो

हुवो! तातैं परिग्रहसमान तृष्णा बधावनेवाला और कोऊ नही है ॥ गाथा—

तित्तीए असंतीए। हाहाभूदस्स घण्णचितस्स ॥
किं तत्थ होज्ज सुक्खं। सदा वि पंपाए गहिदस्स ॥ ४५ ॥

अर्थ— अर परिग्रहतैं तृप्ति नही आवै तादि हाय हाय करतो अर लंपटी है चित्त जाका अर सदाकाल तृष्णाकरि ग्रहण कीयो पकड्यो ऐसा लोभीकै परिग्रहमैं सुख होत है कहा? नहीही सुख होत है ॥ गाथा—

हम्मदि मारिज्जदि वा। वज्झदि रुंभदि य अणवराधो वि ॥
आमिसहेदुं घण्णो। खज्जादि पक्खीहि जह पक्खी ॥ ४६ ॥

अर्थ— जैसैं मांसके निमित्त लंपटी हुवा जो पक्षी सो कोऊ अन्य मांसकूं ले जावता पक्षीकूं देखि वाकू मारे है, खाय जाय है; तैसैं अपराधरहितहू धनाढ्य पुरुषकूं धनका अर्थी दुष्ट राजा, दाइयादार भाई, तथा चोर, तथा दुष्ट कोटपाल, तथा दुष्ट आपका कुटुंबी विनाकारणही मारे है! तथा हणे है, तथा बांधे है, रोके है। ऐसा विचार नही करे है, जो, विनाअपराध याकूं कैसैं मारूं हूं? धन खोशनेमैं लुटनेमें जिनका परिणाम, तिन निर्दयीनिकै काहेकी दया? तातैं परिग्रहका निमित्ततैं हनना, मारना, बंधना, रुकना सर्व दुःख सहना होय है ॥ गाथा—

मादुपिदुपुत्तदारे- । सु वि पुरिसो ण उवयाइ वीसंभं ॥
गंथणिमित्तं जग्गइ । रक्खंतो सव्वरत्तीए ॥ ४७ ॥

अर्थ— यो पुरुष परिग्रहके निमित्त माताकेविषैं, तथा पितामैं, तथा पुत्रमें, तथा स्त्रीमैं विश्वास नही करे है ॥ यद्यपि ये माता पिता पुत्र स्त्री विश्वास करनेयोग्य हैं, तथापि सर्वरात्रि परिग्रहकी रक्षा करता जाग्रत रहे है ॥ गाथा–

सव्वं पि संकमाणो । गामे णगरे घरे व रण्णे वा ॥
आधारमग्गणपरो । अणप्पवसिउ सदा होई ॥ ४८ ॥

अर्थ— परिग्रहधारी पुरुष सर्वलोकनितैं शंकाकूं प्राप्त हुवा ग्राममें, नगरमें, तथा गृहमें, तथा वनमें, आधार हेरनेमें तत्पर सदा अनात्मवश होय है ॥ भावार्थ– परिग्रहका धारी भयवान हुवा सर्व जायगां आपकी रक्षा करनेवाला कोऊका सहाय कोऊका आश्रय निरंतर चाहता पराधीन होय है ॥ गाथा

गंथपडियासलुद्धो । धीराचरियं विवित्तमावसहं ॥
णिच्छदि वहुजणमज्झे । वसदि य सागारिउ वसए ॥ ४९ ॥

अर्थ— जो परिग्रहका लोभी है, सो धीरपुरुषनिकरि आचरण कीया ऐसा एकांतस्थान नही इच्छा करे है, बहुतजननिके मध्य गृहस्थनिके गृह तिनमैं वसे है ॥ गाथा–

सोणदू किंचि सद्दं । सग्गंथो होइ उट्ठिदो सहसा ॥
सव्वत्तो पिच्छंतो । परिमसदि पलादि मुज्झदि य ॥ ११५० ॥
तेणभएणारोहइ । तरुं गिरिं उप्पहेण व पलादि ॥
पविसदि य दहं दुग्गं । जीवाण वहं करेमाणो ॥ ५१ ॥
तह वि य चोराचारभ- । डा वा गंथं हरेज्ज अवसस्स ॥
गेण्हेज्ज दायिया वा । रायाणो वा विलुंपिज्ज ॥ ५२ ॥

अर्थ— परिग्रहसहित जो पुरुष सो किंचिन्मात्रहू शब्द श्रवणकरिकै अर शीघ्रही ऊठि सर्वदिशामें अवलोकन करतो अपना द्रव्यकूं स्पर्शन करे है, तथा लेय भागे है, तथा अज्ञान हुवा मोह जो बेखबरी ताही प्राप्त होय है ॥ बहुरि चोरका भयकरिकै वृक्षकूं आरोहण करे है, पर्वत ऊपरि भयतें चढि जाय है, तथा चोर लुटेरेनिके भयतें उत्पथमार्ग होय भागे है, तथा जलका द्रहमें पडे है, तथा महान् विषमस्थानमें जाय है, कोऊ आपकूं भागतेकूं रोकै तिन जीवनिकूं मारता भाग जाय है ॥ ऐसें भयवान् हुवा दौडे है तोहू चोर तथा प्रबल योद्धा ताकूं वशीभूत करि पकडि अर धनहरण करे है, अथवा दायियादार जे भाईबंध ते धन हरण करे हैं, तथा राजा लूटि ले है, ताका दुःखकूं कोन कहने समर्थ है? गाथा—

संगणिमित्तं कुद्धो । कलहं वोलं करिज्ज वेरं वा ॥
पहणेज्ज व मारिज्ज व । मारिजेज्ज व तह य कामिज्ज ॥ ५३ ॥
अहवा होइ विणासो । गंथस्स जलग्गिमूसयादीहिं ॥
णट्ठे गंथे य पुणो । तिव्वं पुरिसो लहदि दुक्खं ॥ ५४ ॥

अर्थ— परिग्रहके निमित्त क्रोधी होय है, कलह करे है, तथा विवाद करे है, वैर करे है, हणे है-ताडन करे है, तथा मारे है, तथा परकरिकै मारिये है ॥ अथवा जलकरिकै अग्निकरिकै मूषादिककरिकै परिग्रह नष्ट होय तब पुरुष तीव्र दुःखकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा-

सोयइ विलवइ कंदइ । णट्ठे गंथम्मि होइ य विसण्णो ॥
पज्झादि णिवाइज्जइ । वेवइ उक्कंठिउ होइ ॥ ५५ ॥

अर्थ— परिग्रह नष्ट होता संता शोच करे है, तथा विलाप करे है, पुकार करे है, विषादी होय है, चिंता करे है, संतापकूं प्राप्त होय है, कंपायमान होय है, तथा उत्कंठित होय है ॥ गाथा-

डज्झदि अंतो पुरिसो । अप्पीये णट्ठयम्मि गंथम्मि ॥
वाया वि य अक्खिप्पइ । बुद्धी वि य होइ से मूढा ॥ ५६ ॥

अर्थ— आपका अल्पहू परिग्रहका नाश होता संता अंतःकरणमें दाहकूं प्राप्त होय है, वचनहू नष्ट होय है, अर वाकी बुद्धीहू मूढ होय है ॥ गाथा—

उम्मत्तो होइ णरो। णट्ठे गंथे गहोवसिट्ठो वा ॥
चेट्ठदि मरुप्पवादा-। दिएहि बहुधा णरो मरिदुं ॥ ५७ ॥

अर्थ— जैसैं पिशाचकरि गृहीत पुरुष उन्मत्त होय है-आपा भूलिजाय है, तैसैं परिग्रहका नाश होय तब पुरुष उन्मत्त होय जाय है, तथा पर्वतादिकतैं पतन करि अपना बहुतप्रकारकरि मरिवेकूं चेष्टा करे है ॥ गाथा—

चेलादीया संगा। संसज्जंति विविहेहिं जंतूहिं ॥
आगंतुगा वि जंतू। हवंति गंथेसु सण्णिहिदा ॥ ५८ ॥

अर्थ— वस्त्रादिक परिग्रह हैं ते नानाप्रकारके जूवा उटकणादिकका संसर्गकरि सहित होत हैं, बहुरि वस्त्रादिकपरिग्रहमें उपरिले तथा भूमिपरि विचरते कीडी कीडा मछर डांस मकडी कानखजूऱ्या इत्यादिक अनेक आगंतुक जीव प्राप्त होय हैं॥ गाथा—

आदाणे णिक्खेवे। पसारणे चावि तेसि गंथाणं ॥
उक्कस्सणे च कसणे। फंसणपप्फोडणे चेव ॥ ५९ ॥
छेदणबंधणवेढण-। आदावणधोवणादिकिरियासु ॥

संघट्टणपरिदावण- । हणणादी होइ जीवाणं ॥ ११६० ॥
जदि वि विविंचदि जंतू । दोसा ते चेव होंति से लग्गा ॥
होदि यि विविंचणे वि हु । तज्जोणिविउंजणा णिययं ॥ ६१ ॥

अर्थ— वस्त्रादिक परिग्रह ग्रहण करनेमें, तथा स्थापन करनेमें, तथा पसारणेमें, तथा उत्कर्षण कहिये ऐंठी ऊंठी खीचनेमें, तथा बांधनेमें, छोडनेमें, तथा हलावनेमें, तथा छेदनेमें, तथा वेढनेमें, वोढनेमें, तावडेमें सुकावनेमें तथा धोवनादिक्रियानिमें जीवनिका संघट्टन तथा परितापन तथा हनन जो मारण सो प्रकट होय है ॥ अर यद्यपि वस्त्रादिकातैं जीव निराकरण करिये तोहू तेही दोष लगे हैं । जातैं तिन जीवनिके दूरि करनेमैंभी तिन जीवनका अपने योनिस्थानके छूटनेतैं मरण होय है । तातैं परिग्रही निश्चयतैं जीवनिकी विराधनाही करे है ॥ ऐसैं अचित्तपरिग्रहके दोष कहिकरिकै अब सचित्तपरिग्रहके दोष कहे हैं ॥ गाथा–

सच्चित्ता पुण गंथा । वधंति जीवे सयं च दुक्खंति ॥
पावं च तण्णिमित्तं । परिगिण्हंतस्स से होइ ॥ ६२ ॥

अर्थ— सचित्त जे दासी दास गोमहिष्यादिक परिग्रह हैं, ते जीवनिनैं मारे हैं– घाते हैं, तथा आपहू दुःखकूं प्राप्त होय हैं, तथा खेती इत्यादिक आरंभमें युक्त कीये हुये

महापाप करे हैं, तातैं सचित्तपरिग्रह ग्रहण करतेकै तिनके निमित्ततैं पापही होय है ॥

इंदियमयं सरीरं । गंथे गिण्हदि य देहसुक्खत्थं ॥
इंदियसुहाभिलासो । गंथग्गहणेण तो सिध्दो ॥ ६३ ॥

अर्थ-- जातैं यो शरीर इंद्रियमय है–इंद्रियनितैं शरीर जुदा नहीं, अर ग्रंथ जो परिग्रह ग्रहण करे है, सो शरीरका सुखके निमित्त करे है, तातैं परिग्रह ग्रहण करनेतैं इंद्रियनिका सुखका अभिलाष सिद्ध भया, सो इंद्रियजनितसुखका आभिलाष कर्मबंधको निमित्त है, तातैं मोक्षाभिलाषीकूं परिग्रहका त्यागही उचित है ॥ गाथा–

गंथस्स गहणरक्खण- । सारवणाणि णिययं करेमाणो ॥
विक्खित्तमणो झाणं । उवेदि कहमुक्कसज्झाउं ॥ ६४ ॥

अर्थ-- परिग्रही पुरुष त्याग्या है स्वाध्याय जानैं ऐसा स्वाध्यायरहित हुवा परिग्रहकी रक्षा तथा परिग्रहका ग्रहण तथा परिग्रहका संवारना ऐसैं नित्यही परिग्रहमें लीनताकरि विक्षिप्त है मन जाका सो कैसैं शुभध्यान करै? गाथा–

गंथेसु घडिदहिदउ । होइ दरिद्दो भवेसु वहुगेसु ॥
होदि कुणंतो णिच्चं । कम्मं आहारहेदुम्मि ॥ ६५ ॥

अर्थ— जाका चित्त परिग्रहमें आसक्त है, सो बहुतभवपर्यंत दरिद्री हुवा आहारके

अर्थि बहुत नीचकर्म करता भ्रमण करे है ॥ गाथा–

विविहाउ जायणाउं । पावदि परभवगदो वि धणहेदुं ॥
लुद्धो पंपागहिदो । हाहाभूदो किलिस्सदि य ॥ ६६ ॥

अर्थ— परिग्रहमें आसक्त पुरुष परभवमें धनके निमित्त नानाप्रकार पीडाकूं प्राप्त होय है, अर लोभी हुवो आशाकै आधीन हाय हाय करतो क्लेशकूं प्राप्त होय है ॥

एदेसिं दोसाणं । मुच्चइ गंथजहणेण सव्वेसिं ॥
तव्विवरीया य गुणा । लभदि य गंथस्स जहणेण ॥ ६७ ॥

अर्थ— अर परिग्रहका त्याग करिकै येते सर्व दोष त्यागत है अर इनि दोषनितैं औंळे गुणनिकूं धारण करे है–प्राप्त होय है ॥ गाथा–

गंथच्चाउ इंदिय- । णिवारणे अंकुसो व हत्थिस्स ॥
णयरस्स खाइया वि व । इंदियगुत्ती असंगत्तं ॥ ६८ ॥

अर्थ— जैसैं हस्तीकूं उत्पथमार्गतैं रोकनेकूं अंकुश है, तैसैं इंद्रियनिकूं विषयनितैं रोकनेकूं परिग्रहत्याग नामा व्रत समर्थ है। जैसैं नगरकी रक्षाके अर्थि खाई है, तैसैं इंद्रियनिकूं रागभावतैं तथा कामभावतैं रोकनेकूं एक परिग्रहरहितपणाही समर्थ है ॥

सप्पबहुळम्मि रण्णे । अमंतविज्जोसहो जहा पुरिसो ॥

होइ दढमप्पमत्तो । तह णिग्गंथो वि विसएसु ॥ ६९ ॥

अर्थ— जैसैं सर्प हैं बहुत जामैं ऐसे वनविषैं मंत्ररहित विद्यारहित औषधरहित जो पुरुष सो अत्यंत अप्रमादी-सावधान हुवा वसे है, तैसैं क्षायिकसम्यक्त्व केवलज्ञान यथाख्यातचारित्ररूप जे मंत्र-विद्या-औषधरहित निर्ग्रंथहू रागादिकसर्पनिकरि व्याप्त जो विषयरूप वन तामैं प्रमादी हुवा नहीं वसे है-सावधानही रहे है ॥ गाथा-

रागो हवे मणुण्णे । विसंए दोसो य होइ अमणुण्णे॥ १ गंथे इत्यपि पाठभेदः ॥

गंथच्चाएण पुणो । रागद्दोसा हवे चत्ता ॥ ११७० ॥

अर्थ— मनोज्ञविषयमें राग होय है अर अमनोज्ञमें द्वेष होय है, अर मनोज्ञ अमनोज्ञ दोऊ प्रकारका परिग्रहका त्याग करिकै रागद्वेषका त्याग होय है ॥ भावार्थ-कर्मबंधका मूलकारण राग अर द्वेष है अर रागद्वेषका कारण परिग्रह है, जहां परिग्रहका त्याग भया, तहां संसारपरिभ्रमणका कारण रागद्वेषका अभाव होय है, तातैं परिग्रहका त्यागही संसारका अभावका कारण जानहू ॥ गाथा-

सीदुण्हदंसमसया- । दियाण दिण्णो परीसहाण उरो ॥

सीदादिणिवारणए । गंथे णियमं जहंतेण ॥ ७१ ॥

अर्थ— शीत उष्णादिक वेदनाकूं निराकरण करनेवारे जे वस्त्रादिक परिग्रह तिनकूं

त्याग करतो पुरुष, शीत उष्ण दंशमशकादिक वेदनारूप परीषह सहनेकूं अपना हृदयकूं दीया ॥ भावार्थ- जानैं नग्नपना धार्‍या, तानैं सकलपरीषह सहना अंगीकार कीया ॥

जह्मा णिग्गंथो सो । वादादवसीददंसमसयाणं ॥
सहदि य विविधा वाधा । तेण सदेहे अणादरदा ॥ ७२ ॥

अर्थ— जातैं ये निर्ग्रंथ पवन तथा आताप तथा शीत तथा दंशमशकनिकरि कीई नानाप्रकारकी बाधा सहे है, ता कारणकरि इनूनैं अपना देहविषैंहू अनादरता अंगीकार करी ॥ गाथा–

संगपरिमग्गणादी । णिस्संगे णत्थि सव्वविक्खेवा ॥
झाणज्झेणाणि तउं । तस्स अविग्घेण वच्चंति ॥ ७३ ॥

अर्थ- परिग्रहका लाभकूं हेरना, तथा धनवानकूं अवलोकना, तथा याचना करना, दीन मन करना, तथा धनकी रक्षा करना, नष्ट होनेका भय करना इत्यादिक सर्वविक्षेप परिग्रहका त्यागीकै नही होय हैं। अर विक्षेप नही होय तादि निर्विघ्नताकरि ध्यान तथा स्वाध्यायमें निरंतर प्रवृत्ति होय है। तातैं सर्वतपनिमें प्रधान जे ध्यानस्वाध्याय तिनमें प्रवर्तन करनेका उपाय एक परिग्रहका त्यागही है ॥ गाथा–

गंथच्चाएण पुणो । भावविसुध्दी वि दीविदा होइ ॥

ण हु संगघढिदबुध्दी । संगे जहिदुं कुणदि बुध्दी ॥ ७४ ॥

अर्थ— बहुरि परिग्रहका त्यागकरिकै भावनिकी विशुद्धता दीपे है, परिग्रहमें आसक्त है बुद्धि जाकी ऐसा पुरुष परिग्रह त्यागनेमें बुद्धि नहीं करे है ॥ गाथा—

णिस्संगो चेव सदा । कसायसल्लेहणं कुणदि भिक्खू ॥
संगा दु उदीरेंति । कसाय अग्गी व कट्ठाणि ॥ ७५ ॥

अर्थ— परिग्रहरहितहू साधु सदाकाल कषायनिकूं कृश करे है, परिग्रहका धारीकै कषायनिकी तीव्रताही होय है। जैसैं काष्ठ अग्नीकूं वधावे है, तैसैं परिग्रह कषायनिकूं उत्कट करेही है ॥ गाथा—

सव्वत्थ होइ लहुगो । रूवं विस्सासियं हवइ तस्स ॥
गुरुगो हि संगसत्तो । संकिज्जइ चावि सव्वत्थ ॥ ७६ ॥

अर्थ— परिग्रहरहित जो साधु ताकै गमनमें तथा आगमनमें सर्व जायगां भाररहित–स्वाधीनता होय है। तथा निर्ग्रंथरूपभी सर्वकै विश्वास करनेजोग्य होय है ॥ बहुरि परिग्रहमें आसक्त जो साधु ताकै बडा भार है, अर परिग्रहका धारक सर्व जगतमैं शंका करनेजोग्य होय है ॥ गाथा—

सव्वत्थ अप्पवसिओ । णिस्संगो णिब्भओ य सव्वत्थ ॥

होदि य णिप्परियम्मो । णिप्पडिकम्मो य सव्वत्थ ॥ ७७ ॥

अर्थ— बहुरि परिग्रहरहित जो साधु सो सर्व ग्राममें नगरमें वनमें स्वाधीन रहे है। अर सर्व अवसरमें सर्व स्थाननिमें निर्भय रहे है। अर सर्व कालमें व्यापाररहित प्रवृत्तिरहित होय है ! अर इस कार्यकूं तो मैं कीया अर यह कार्य मेरे करना है इत्यादिक सर्व विकल्परहित परिग्रहका त्यागी होय है ॥ गाथा—

भारक्कंतो पुरिसो । भारं उंरुहिय णिव्वुडे होइ ॥
जह तह पयहिय गंथे । णिस्संगो णिव्वुडे होइ ॥ ७८ ॥

अर्थ— जैसें भारकरि दव्या पुरुष भारकूं उतारिकरि सुखी होय है, तैसें संगरहित साधुहू परिग्रहका भार उतारि सुखी होय है ॥ गाथा—

तह्मा सव्वे संगे । अणागए वट्टमाणए तीदे ॥
तं सव्वत्थ णिवारे- । हि करणकारावणाणुमोदेहिं ॥ ७९ ॥

अर्थ— तातैं, भो ज्ञानी हो! तुम आगै होयगे तथा वर्तमान तथा होय गये ऐसे संपूर्ण परिग्रहनिकूं कृत-कारित-अनुमोदनाकरि निराकरण करो! जो परिग्रह गया ताकूं यादि मति करो अर आगैकूं वांछा मति करहू, अर वर्तमान हैं तिनमें राग मति करो ॥

जावंतु केइ संगा । विराधया तिविहकाळसंभूदा ॥

तेहिं तिविहेण विरदो। विमुत्तसंगो जह सरीरं ॥ ११८० ॥

अर्थ— भो कल्याणके अर्थी हो! इस जीवकै तीन कालमें उपजे जितने केई संग रत्नत्रयके विनाशक हैं, तिनतैं मन-वचन-काय करिकै विरक्त होय संगतैं रहित हुवा शरीरकूं त्यागो ॥ भावार्थ– जो रत्नत्रयकी विराधना करनेवाला परिग्रह है, ताका मन-वचन-कायकरि पहली त्याग करो, पाछै अवसर पाय देहका ममतारहित हुवा त्याग करो, परिग्रहीकै देहतैं ममता नहीं घटै है ॥

एवं कदकरणिज्जो। तिकाळतिविहेण चेव सव्वत्थ ॥
आसं तण्हं संगं। छिंद ममत्तिं च मुच्छं च ॥ ८१ ॥

अर्थ— ऐसैं कीया है करनेजोग्य जानैं ऐसा जो तुम, सो तीन कालमें मन-वचन-कायकरिकै सर्व परपदार्थनिमें आशा तथा तृष्णा तथा संग तथा ममत्व तथा मूर्च्छानिका त्याग करो ॥ गाथा

सव्वग्गंथविमुक्को। सीदीभूदो पसण्णचित्तो य ॥
जं पावइ पीइसुहं। ण चक्कवट्टी वि तं लहदि ॥ ८२ ॥
रागविवागसतण्हा-। इगिध्दिअवितिरित्त चक्कवट्टिसुहं ॥
णिस्संगणिव्वुइसुह-। स्स कहं अग्घइ अणंतभागं पि ॥ ८३ ॥

अर्थ— इस जगतमें जो पुरुष सर्वसंगरहित है अर तृष्णाकी आतापकरि रहित जाका चित्त शीतल है अर लोभकी मलिनतारहित जाका उज्वल चित्त है ऐसा पुरुष जो प्रीति अर सुखकूं प्राप्त होय है, सो सुख अर प्रीतीकूं चक्रवर्तीहू नही प्राप्त होय है। जातैं चक्रवर्तीका सुख तो रागका उदयतैं उपज्या है, जो तीव्र राग नही होय तो अति वेखबरी हुवा अतिनिंद्य विषयनिमें कैसें रमै? वहुरि तृष्णासहित है- जिनतैं चाहकी दाह नही मिटै है, वहुरि अतिगृध्रिता जो अतिलंपटता ताकरि सहित है, जातैं भोगनिमें उलग्या आपका आपाकूं नही सुलझाय सकै है, वहुरि ये भोग भोगे हुवेहू तृप्ति नही करै। तातैं पराधीनतारहित रागादिककी आतापरहित जो निस्संगनिकै निराकुलतारूप आत्मिकसुख है ताका अनंतवा भागहू चक्रवर्तीकै सुख नही है ॥

ऐसें अनुशिष्टि नामा महाअधिकारविषैं महाव्रतनिका अधिकारविषैं परिग्रहत्याग नामा महाव्रतका वर्णन समाप्त कीया ॥ अब महाव्रतनिकी सार्थक संज्ञा कहे हैं ॥

साहंति जं महत्थं। आयरिदाइं च जं महल्लेहिं ॥
जं च महल्लाइ सयं। तदो महव्वदाइं हवे ताइं ॥ ८४ ॥

अर्थ— जातैं ये पंचपापनिका त्याग महान अर्थ जो निर्वाणके अनंतज्ञानादि

गुण तिनकूं सिद्ध करे हैं, तातैं इनकूं महाव्रत कहिये हैं। बहुरि महान् जे तीर्थंकर चक्रवर्ती गणधरादिक तिनकरि आचरण कीये हैं, तातैंभी महाव्रत कहिये हैं। बहुरि ये पंचमहाव्रत स्वयमेव महान् हैं, तातैं ये महाव्रत हैं॥ गाथा-

तेसिं चेव वदाणं। रक्खट्ठं रादिभोयणणियत्ती॥
अट्ठप्पवयणमादा-। उ भावणाउ य सव्वाउ॥ ८५॥

अर्थ— तिन महाव्रतनिकी रक्षाके अर्थि रात्रिभोजनका त्याग तथा अष्टप्रवचनमातृकाका धारण करना, तथा संपूर्ण भावनानिकूं भावना करना श्रेष्ठ है॥ सो अष्टप्रवचनमातृका तो पंचसमिति तथा तीन गुप्तीकूं कहिये हैं, सो आगै इहांही वर्णन करसी। तथा पांच महाव्रतनिकी पचीस भावना हू आगै इस ग्रंथमें कहसी॥

तेसिं पंचण्हं पि य। अंहयाणमाव्वज्जणं व संका वा॥
आदविवत्ती य हवे। रादीभत्तप्पसंगम्मि॥ ८६॥

अर्थ— रात्रिभोजनका प्रसंग होता ते पंचमहाव्रत हैं तिनका तो नाश होय है अर शंका होय है अर आत्मविपत्ति होय है॥ भावार्थ- यद्यपि रात्रिभोजन तो जैनी अव्रतीहू नही करे है, तथापि ऐसैं त्यागका उपदेश करि जन्मांतरानिमेंहू आकांक्षा नही होय ऐसैं विरक्तता करावे है, जो रात्रिभोजन करैगा, ताकै अहिंसादिक

एकहू व्रत नही रहैगा, अर शंका रात्रि रहवोही करै, अर रात्रिनैं स्थाणु कंटकादिकरि आपका नाशहू होयही है, तातैं रात्रिभोजन तो त्यागनेजोग्यही है ॥ गाथा—

अण्हयदारो विरमण- । रयस्स गुत्तीउ होंति तिण्णेव ॥
चेट्ठिदुकामस्स पुणो । समिदीउ पंच दिट्ठाउ ॥ ८७ ॥

अर्थ— बाह्यचेष्टारहित प्रवृत्तिरहित जो साधु ताकै तो तीन गुप्ति होय हैं। बहुरि गमन, आगमन, शयन, आसन, आहार, निहार, विहार इत्यादिक प्रवृत्ति करनेका इच्छक साधूकै पंचसमिति भगवान् दिखाई हैं-कही हैं॥ अब मनकी गुप्ति तथा वचनगुप्तीकूं कहे हैं॥ गाथा—

जा रागादिणियत्ती । मणस्स जाणाहि तं मणोगुत्ती ॥
अलियादिणियत्ती वा । मोणं वा होइ वचिगुत्ती ॥ ८८ ॥

अर्थ— जो मनका राग द्वेष मोहादिक भावनितैं रहित होना सो मनोगुप्ति जानहु। बहुरि असत्यादिकवचननिमैं वचनकी प्रवृत्तिरहित होना तथा मौनरूप रहना सो वचनगुप्ति है॥ आगै कायगुप्तीकूं कहे हैं॥ गाथा—

कायकिरियाणियत्ती । काउस्सग्गो सरीरगे गुत्ती ॥
हिंसादिणियत्ती वा । सरीरगुत्ती हवदि दिट्ठा ॥ ८९ ॥

अर्थ— देहकी हलनचलनादि क्रियातैं निवृत्ति होना, सो कायगुप्ति है; अथवा कायमें ममता त्यागि कायोत्सर्ग करना, सो कायगुप्ति है; अथवा हिंसादिकनितैं निवृत्ति होना, सो कायगुप्ति है ॥ गाथा—

छेत्तस्स वई णयर- । स्स खाइया अहव होइ पायारो ॥
तह पावस्स णिरोधे । ताउ गुत्तीउ साहुस्स ॥ ११९० ॥

अर्थ— जैसैं क्षेत्रकी रक्षाके अर्थि क्षेत्रकै वाडी होय है, तथा नगरकी रक्षाके अर्थि खाई अथवा प्राकार कहिये कोट होय है; तैसैं साधूकै पापके रोकनेविषैं तीन गुप्ति परम उपाय है ॥ गाथा—

तह्मा तिविहे वि तुमं । मणवचिकायप्पउगम्मि ॥
होहि सुसमाहिदमदी । णिरंतरं झाणसज्झाए ॥ ९१ ॥

अर्थ— तातैं भो ज्ञानी जन हो! तुम मनवचनकायकी प्रवृत्ति रोकनेकूं ध्यान तथा स्वध्यायमें मनवचनकायकरिकै निरंतर भलैप्रकार सावधानबुद्धिरूप होहू ॥

अब पंचसमितिका निरूपणविषैं ईर्यासमितिका निरूपणके अर्थि कहे हैं ॥ गाथा—

मग्गुज्जोवपउगा- । लंबणसुद्धीहि इरियदो मुणिणो ॥
सुत्ताणुवीचिभणिदा । इरियासमिदी पवयणम्मि ॥ ९२ ॥

अर्थ— आचारांगसूत्रके अनुसारकरि जो मार्गशुद्धि, तथा उद्योतशुद्धि, तथा उययोगशुद्धि, तथा आलंबनशुद्धि ऐसैं च्यार प्रकारकी शुद्धताकरिकै गमन करता जो मुनि ताकै भगवानका सिद्धांतमें इर्यासमिति कही है ॥

तहां मार्गशुद्धता तो ऐसैं जाननी— जा मार्गमें बहुत त्रस नही होय, तथा बीज अंकुर हरित तृण पत्र जल कर्दमादिरहित होय, तथा गाडा गाडी हाथी घोडा वलध मनुष्यादिक बहुत जामैं गमन करि गये होय, अर अनेकमनुष्यादिकनिकी जा मार्गमें गमनागमनकी प्रवृत्ति होय, तथा जामैं उन्मत्त पुरुष तथा स्त्री तथा दुष्ट तिर्यंच मार्ग रोके नही खडे होय, ऐसे मार्गमें गमन करै ॥

बहुरि रात्रीमैं गमन नही करैं, तथा दीपकचंद्रमादिकनिका उद्योतकरिकै संयमीनिका गमन नही होय है, तातैं सूर्यका उद्योतकरि मार्ग स्पष्ट दीखने लगिजाय तादि च्यारि हाथप्रमाण जमीकूं दूरिहीतैं अवलोकन करि गमन करना। तथा सूत्रकी आज्ञाप्रमाण अभ्यंतर तो ज्ञानका उद्योत अर बाह्यसूर्यका उद्योतकरि गमन करै, सो उद्योतशुद्धता जाननी

बहुरि निर्दयतारहित धर्मध्यान चिंतवन करता, द्वादश भावना भावता, आहारका लाभ, स्वादादिककूं नही चिंतवन करता, तथा अभिमानादिक दोषरहित गमन करै, ताकै उपयोगशुद्धतासहित गमन जानना ॥

बहुरि गुरुवंदना, तथा तीर्थवंदना, तथा चैत्यवंदना, तथा यतीश्वरनिकी वंदनाके अर्थि गमन करे है; तथा अपूर्वशास्त्रका श्रवणके अर्थि, तथा संयमध्यानके योग्य क्षेत्र अवलोकनके अर्थि, तथा धर्मात्मा साधूकी वैयावृत्त्यके अर्थि, तथा मुनीकूं एकस्थान नहीं रहना तातैं अन्य धर्मरूप प्रदेशनिमैं विहार करनेके अर्थि, तथा आहार नीहारके अर्थि गमन करै; अर वन वृक्ष कूवा बावडी नदी तलाव ग्राम नगर महल मकान बाग इत्यादिकके अवलोकनके अर्थि कदाचित् गमन नहीं करे है, ताकै अवलंबनशुद्धि होय है ॥

बहुरि सूत्रके अनुसार गमन करे है, अतिविलंबतैं गमन नहीं करे है, अर अतिशीघ्र गमन नहीं करे है, बहुरि भयरहित तथा विस्मयरहित क्रीडाविलासरहित तथा उलंघना उछलना दोडना इत्यादिकदोषरहित गमन करै, तथा लंबायमान भुजाकरि गमन करै तथा चपलतारहित ऊर्ध्व तिर्यक् अवलोकनरहित गमन करै, बहुरि कंपायमान होता जो पाषाण ईंट काष्ठ तिनऊपरि पग देय गमन नहीं करै, विनासोध्या विनाविचार्‍या पग नहीं धरै, तथा मार्गमें गमन करते कोऊसूं वचनालाप नहीं करै, अर जो कदाचित् बोलनेकाही अवसर आजाय तो खडारहिकरिकै अर थोरे अक्षरनकरिकै धर्मका अवलंबनसहित वचन कहे, बहुरि तुस भुस आला-गोवर तथा मलमूत्र तृणानिका

समूह तथा पाषाण काष्ठफलक दूरहितैं टारै, तथा गौ बलध कूंकश गाडी घोडा हाथी भैसा मींढा गधा इत्यादिक अनेकतिर्यचानिकूं टालिकरिकै गमन करनेमें प्रवीण होय ताकै ईर्यासमिति होय है ॥ अब भाषा समितिको वर्णन करै हैं ॥ गाथा—

सच्चमसच्चं मोसं । अलियादीदोसवज्जणमवज्जं ॥
वदमाणस्सणुवीची । भासासमिदी हवइ सुद्धा ॥ ९३ ॥

अर्थ— लोकविषैं वचन च्यारिप्रकार हैं। सत्य, असत्य, उभय, अनुभय। तिनमें असत्य अर उभय इनि दोयवचनकूं त्यागि अर सत्य अर अनुभय इनि दोयप्रकार वचनकूं सूत्रके अनुकूल बोलता पुरुषकै शुद्ध भाषासमिति होय है ॥ कैसाक हैं सत्यवचन अर अनुभयवचन? असत्यादिकदोषरहित हैं, तातैं दोय वचनही श्रेष्ठ हैं ॥

भावार्थ— सांचे समीचीन वचनकूं सत्य कहिये हैं। अर असम्यक् बुरा वचन ताकूं मृषा कहिये वा असत्य कहिये हैं। अर जामैं सांच अर झूंठ दोऊ होय ताकूं सत्यमृषा कहिये हैं वा उभय कहिये हैं। अर जामैं सत्यहू नहीं अर असत्यहू नहीं ताकूं अनुभय कहिये अथवा असत्यमृषा कहिये ॥

अब प्रकरण पाय च्यारि प्रकारका वचनकूं संक्षेपकरि कहिये हैं ॥ प्राणीका दोऊ लोकसंबंधी हितनैं वांछा करता खोटे अभिप्रायरहित सत्य कहो वा असत्य कहो

उस वचनकूं सत्य कहिये हैं। अर प्राणीका अहितकूं चाहता जाका खोटा परिणाम होय, सो सत्य कहो वा असत्य कहो, ताकूं असत्यही कहिये हैं। अथवा घटकूं घट कहना सत्य है। अर मृगतृष्णाकूं जल कहना असत्य है। बहुरि कुंडिकाकूं घट कहना उभयवचन है, जैसें जलधारणादिक क्रिया घटमें प्रवर्ते तैसें कुंडिकामैंहू प्रवर्ते है तातें अर्थक्रियाका करनेतें तो सत्य है, जैसें जलका धारण स्नान पानादिक क्रिया घटतें होय तैसें कुंडिकाहूतें होय है, तातें तो सत्य है, अर घटकी आकृति तथा नामादिक नहीं प्रवर्तै तातें असत्य है, ऐसें कुंडिकाकूं घट कहना सत्य असत्य दोऊरूपपणातें उभयवचन है। बहुरि जामें सत्य असत्य दोऊ नहीं तिस वचनकूं अनुभय कहिये ॥ सो सत्यका स्वरूप अर अनुभयवचनका स्वरूप सूत्रकार आपही कहसी। तातें इहां विशेष नहीं लिख्या है ॥ अब सत्यवचनका दशभेद कहे हैं ॥ गाथा—

जणवदसंमदिठयणा-। णामेरूवे पडुच्चसच्चे य ॥
संभावणववहारे। भावेणोपम्मसच्चेण ॥ ९४ ॥

अर्थ— १ जनपदसत्य, २ संमतसत्य, ३ स्थापनासत्य, ४ नामसत्य, ५ रूपसत्य, ६ प्रतीत्यसत्य, ७ संभावनासत्य, ८ व्यवहारसत्य, ९ भावसत्य, १० उपमासत्य ऐसें दशप्रकार सत्यवचन भगवान् कहे हैं ॥

१ तिनमें जो अनेकदेशनिमैं जिसजिस देशके वसनेवाले व्यवहारी लोक, तिनका जो वचन, ताकूं जनपदसत्य कहिये हैं ॥ जैसें रांधे चावलनिकूं महाराष्ट्रदेशमें 'भातु' कहे हैं, कोऊ 'भेटु' कहे हैं, आंध्रदेशमें 'वंटकमु' कहे हैं वा 'कूंड' कहे हैं, कर्णाटदेशमें 'कूलु' कहे हैं, द्रविडदेशमें 'चौंरु' कहे हैं, मालवमें वा गुजराथमें 'चोखा' कहे हैं । सो ऐसें देशकी भाषाकरि वस्तूकूं कहना, सो जनपदसत्य है ॥ जनपद नाम देशका है, अथवा आर्य अनार्य जे नानाप्रकार देश तिनमें जो धर्म अर्थ काम मोक्षादिकका स्वरूपका उपायका उपदेश करनेवाला वचन 'जैसें धर्म दयास्वरूपही है' तथा राजा राणा इत्यादिक वचन सो सर्व जनपदसत्य है ॥

२ बहुरि जो वचन सर्वलोकमें मान्य होय ताकूं संमतसत्य कहिये हैं । जैसैं कमल पृथ्वी जल पवन बीज इत्यादिक अनेककारणनितैं उपज्या है, तोहू ताकूं सर्वलोक पंकज कहे हैं, कमल केवल पंक जो कर्दम ताहीतैं तो नहीं उपज्या है, तोहू पंकज कहना संमतसत्य है। अथवा राजाकी पट्टराणी मनुष्यिणी है तोहू सर्वलोक ताकूं देवी कहे हैं, सो संमतसत्यही है ॥

३ बहुरि अन्यवस्तूका धर्म अन्य जो तद्रूप अथवा अतद्रूप तामें आरोपण करिये स्थापना करिये, सो स्थापनासत्य है । जैसें धातुपाषाणका प्रतिबिंबमें अथवा अक्षतादि-

कनिमैं ये चंद्रप्रभस्वामी है ऐसैं मुख्यवस्तूका स्थापन करना, सो स्थापनासत्य है ॥

४ बहुरि जो शब्दका अर्थरूप तो नही होय अर जैसा नाम कहे तैसा तामैं गुणहू नही होय, तामैं व्यवहारकी प्रसिद्धताके अर्थि लौकिकजनाकरि कीया सो नामसत्य है। जैसैं कोऊकूं देवदत्त कह्या तथा जिनदत्त कह्या, जिनादिक ताकूं दीया नही तोऊ ताकूं जिनदत्त कहे हैं। अथवा मनुष्यकूं इंद्रराज कहै, तथा चंद्र सूर्य कहै, तथा चतुर्भुज कहै, सो नामसत्य है ॥

५ बहुरि जगतमें नेत्रनिका व्यवहारकी आधिक्यता है, तातैं पुद्गलका रूप गुणकी प्रधानताकरि जो वचन कहना, सो रूपसत्य है। जैसैं हंसनिकी पंक्तीमैं हंसनिका रस रुधिर चूंच पग रक्त है तोऊ श्वेत कहना सो रूपसत्य है ॥

६ बहुरि कोऊ पदार्थकी अपेक्षाकरिकै अन्यस्वरूप कहना; जैसैं कायरकी अपेक्षा कोऊकूं शूर वीर कह्या, मंदज्ञानीकी अपेक्षा कोऊकूं ज्ञानी कह्या, दीर्घकी अपेक्षा कोऊकूं न्हस्व कह्या सो सर्व प्रतीत्यसत्य है ॥

७ बहुरि असंभवका परिहारपूर्वक वस्तूका धर्मकी विधि है लक्षण जाका ऐसी संभावना करिकै जो वचन, सो संभावनासत्य है। जैसैं इंद्र एक तर्जनी अंगुलीकरि मेरूकूं उखालनेकूं समर्थ है अथवा इंद्र जंबूद्वीपकूं पलट दे ऐसैं कहना, सो इंद्रमें मेरूकूं

अंगुलीकरि उठावनेकी अर जंबूद्वीपकूं पलट देनेकी शक्तीका अभाव नही है– ऐसैं करनेका सामर्थ्य है, तथापि ऐसी क्रिया कदे करी नही अर करेगा नही, परंतु सामर्थ्य हैही, सो क्रियाकी अपेक्षाविना जो वस्तूका सामर्थ्य कहना, सो संभावनासत्य है ॥

८ बहुरि नैगमनयकूं प्रधानकरि कहना, जैसैं कोऊ पुरुष पाणी भरै था तथा अग्नि वाले छा, ताकूं कोऊ पूछि तुम कहा करो हो? तब कही– भात पकावां हां, सो इहां हाल चावलही धरे है, इनकूं भात कहना सो व्यवहारसत्य है ॥

९ बहुरि अतींद्रिय अर्थविषैं भगवानका परमागममें कह्या जो विधिनिषेध, तींका संकल्परूप परिणामकूं भाव कहिये हैं, ताकै आश्रय जो वचन, सो भावसत्य है। जैसैं शुष्क कहिये सूका अर पक्क कहिये अग्नीमें पकाया तथा ताता कीया तथा आमली लवण जामैं मिलाय दीया बहुरि चाकी पत्थरादिकनितैं पीस्या वाट्या तथा जंत्रमें पेल्या ऐसा द्रव्य प्रासुक है, ताके सेवनेमें पापबंध नही है, ऐसैं पापका त्यागरूप प्रासुकद्रव्य सर्वज्ञ भगवान् कह्या है। ऐसैं प्रासुकही द्रव्यमें सूक्ष्मप्राणी आय पडे अर इंद्रियनिके गोचर नही, तिनमें सर्वज्ञप्रणीत आगमकी प्रमाणतातैं शुद्ध जानना, सो भावसत्य है ॥

१० बहुरि जाकी गिणती नही करि जाय ऐसे प्रमाणकूं पल्य जो खाडा ताकी

उपमा करि कहिये, सो उपमासत्य है। जैसैं याका आयु कल्पप्रमाण हैं। तथा ग्रीष्म अग्नि है ऐसैं कहना उपमासत्य है॥

ऐसैं सत्यके दश भेद कहे, सो भाषासमितिका धारक सत्य कहे हैं॥ गाथा—

तव्विवरीदं मोसं। तं उभयं जत्थ सच्चमोसं तं॥
तव्विवरीया भासा। असच्चमोसा हवदि दिट्ठा॥ ९५॥

अर्थ— जो वचन दशप्रकारका सत्यवचनतैं विपरीत कहिये उलटा हैं, सो मृषावचन कहिये असत्यवचन है। अर जामैं सत्य असत्य दोऊ सो उभयभाषा है- जैसैं कमंडलकूं घट कहना, जातैं घटकीनाईं जलधारण स्नानपानादिक अर्थक्रिया करे है, तातैं तो सत्य है, अर घटका आकार तथा नामादिक नही तातैं असत्य है। ऐसैं उभयवचन कह्या। अर जामैं सत्य अर असत्य दोऊ नही, ऐसे वचनकूं अनुभयवचन कह्या है। जैसैं कोऊ कही 'मोकूं क्यूं प्रतिभासे हैं?' इहां सामान्यकरिकै अर्थ प्रतिभास्या है, सो अपनी अर्थक्रियाकारी जो विशेषनिर्णय ताका अभावतैं सत्य ऐसैं नही कह्या जाय अर सामान्यप्रतिभासमें आयाही, तातैं ताकूं असत्यहू नही कह्या जाय, तातैं अनुभयवचनकी जाति जुदीही है॥ अब आमंत्रणादी अनुभयवचनके नव भेद कहे हैं॥ गाथा—

आमंतणि आणवणी । जायणि संपुच्छणी य पण्णवणी ॥
पच्चक्खाणी भासा । भासा इच्छाणुलोमा य ॥ ९६ ॥
संसयवयणी य तहा । असच्चमोसा य अट्ठमी भासा ॥
णवमी अणक्खरगदा । असच्चमोसा हवदि णेया ॥ ९७ ॥

अर्थ— १ आमंत्रणी, २ आज्ञापनी, ३ याचिनी, ४ सम्पृच्छनी, ५ प्रज्ञापनी, ६ प्रत्याख्यानी, ७ इच्छानुलोमवचनी, ८ संशयवचनी, ९ अनक्षरात्मिका ऐसैं नवप्रकार अनुभयवचन है ॥

कोऊ पुरुष अन्यकार्यमें आसक्त था, ताकूं सन्मुख करनेकूं हे देवदत्त इत्यादि वचन सो आमंत्रणी भाषा है ॥ १ ॥ मै तुमकूं आज्ञा करूं हूं सो आज्ञापनी भाषा है ॥ २ ॥ मै एक याचना करूं हूं इत्यादि याचनी भाषा है ॥ ३ ॥ मै एक आपकूं पूछुं हूं सो आपृच्छनी भाषा है ॥ ४ ॥ मै एक आपकूं जणाऊं हूं सो प्रज्ञापनी भाषा है ॥ ५ ॥ मै एक त्याग करूं हूं इत्यादि प्रत्याख्यानी भाषा है ॥ ६ ॥ जैसी आपकी इच्छा है तैसैं मोकूं करना ऐसैं इच्छानुलोमवचनी है ॥७॥ या बुगलांकी पंक्ति है अकि ध्वजा है? इत्यादि संशयवचनी भाषा है ॥८॥ अर बेइंद्रियकी तथा त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चनिकी तथा बालककी अक्षररहित जो भाषा सो अनक्षरी भाषा है

ये नवप्रकारकी भाषा श्रवण करनेवालेनिकै सामान्यकरिकै तो अर्थका एक अंशका जनावनेतैं तो प्रकट अर विशेष अर्थका प्रकट करनेके अभावतैं अप्रकट ऐसी अनुभय-भाषा है। सो यामैं विशेष अर्थ तो प्रकट नहीं हुवा, तातैं तो सत्य कैसैं कह्या जाय? अर सामान्य अर्थके प्रकट करनेतैं असत्य कैसैं कह्या जाय? तातैं अनुभयपणा जानना। अर लोकमें औरहू अनेकप्रकार अनुभयभाषा हैं। सो ये नवप्रकार कहे वचनमेंही गर्भित हैं॥ कोऊ प्रश्न करे, जो, तिर्यंचनिकी अनक्षरात्मकभाषामैं सामान्य अर्थका अंश जनावनेका अभावतैं अनुभयवचन कैसैं कह्या? ताकूं उत्तर करे हैं— जो, द्वीन्द्रियादिक अनक्षरभाषाकूं बोलनेवाला जीव ताके वचनके श्रवण करिकै तिनका सुखदुःख प्रकरणादिकका अवलंबन करिकै हर्षविषादादिक अभिप्रायकूं जान्या जाय है, तातैं सामान्य अर्थका जनावनेतैं अनक्षरात्मक वचनहू अनुभयवचन है॥ इहां कोऊ प्रश्न करै, जो, केवलीकी दिव्यध्वनिकै सत्यवचन अर अनुभयवचनपणा कैसैं संभवै? ताका उत्तर ऐसा है— जो भगवानकी दिव्यध्वनिकै उत्पत्तिविषैं तो अनक्षरात्मकपणाकरिकैं श्रोताजननिके कर्णप्रदेशकी प्राप्तीका समयपर्यंत तो अनुभय-भाषापणाकी सिद्धि है अर ताके अनंतर श्रोताजनाका अभिप्रायका अर्थनिमैं संश-यादिकका निराकरण करिकै सम्यग्ज्ञानका उपजावनेकरि सत्यवचनकी सिद्धि है॥

ऐसैं पंचसमितिविषैं भाषासमितिका वर्णन कीया ॥ गाथा—

उग्गमउप्पादणए- । सणाहि पिंडमुवधिं च सेज्जं च ॥
सोधिंतस्स य मुणिणो । विसुज्झदे एसणासमिदी ॥ ९८ ॥

अर्थ— आहार और उपधि कहिये उपकरण और वसतिका इनकूं उद्गम उत्पादन एषणा इनि दोषनिकरि रहित इनकूं सोधन करता मुनिकै एषणासमिति शुद्ध होय है ॥ भावार्थ- उद्गम उत्पादन एषणा दोषरहित शुध्द आहार और उपकरण अर वसतिकाकूं जो मुनि ग्रहण करे है, ताकै शुद्ध एषणासमिति होय है ॥ गाथा—

सहसाणाहोइयदु- । प्पमज्जियअपच्चुवेसणा दोसे ॥
परिहरमाणस्स हवे । समिदी आदाणणिक्खेवा ॥ ९९ ॥

अर्थ— येते आदाननिक्षेपणाके दोष टारि जो शरीरका तथा उपकरणादिकका उठावना मेलना करे है, ताकै आदाननिक्षेपणा समिति होय है ॥ जो शीघ्रतासूं शरीरादिककूं उठावै मेलै पसारै संकोचै, ताकै सहसानिक्षेपदोष है ॥ बहुरि नेत्रनिसूं देखेविना तथा कोमल पीछिकातैं सोधेविना उठावना मेलना, सो अनाभोगितदोष है ॥ बहुरि अनादरतैं सोधना मन विनालगाये लोकनिकूं अपनी शुद्धता दिखावनेकूं तथा आचारमात्र समझि जीवदयाकरि रहित होय सोधना, सो दुष्पमार्जित-

दोष है ॥ बहुरि वस्तुकूं बहोत काल गयेपीछे सोधना— जामैं जीवनिका निवास होय जावै तदि सोधै तथा साधुकूं प्रभातकाल अर अपराण्हकाल दोय कालमैं संस्तर उपकरण सोधनेकी आज्ञा है तहां प्रमादी होय काल व्यतीत भये सोधना, सो अप्रत्युपेक्षणदोष है ॥ इनि दोषनिकूं टारि शरीर पुस्तकादिक उपकरणका उठावना मेलना प्रमादरहित यत्नाचारतैं करै ताकै आदाननिक्षेपणासमिति होय है ॥ गाथा—

एदेण चेव पदिट्ठा- । वणसमिदी वि वण्णिया होई ॥
वोसरिणिज्जं दव्वं । थंडिल्ले वोसरंतस्स ॥ १२०० ॥

अर्थ— इस आदाननिक्षेपणा समितीका वर्णनकरिकैंही प्रतिष्ठापना नामा समितीका वर्णन होय है। सो स्थंडिलभूमि जो निर्जंतु प्रासुक छिद्ररहित उद्योतरूप क्षेत्रमें मल, मूत्र, कफ, केश, नखनिकूं क्षेपण करते मुनिकै प्रतिष्ठापना समिति होय है ॥

एदाहिं सदा जुत्तो । समिदीहिं जगम्मि विहरमाणो दु ॥
हिंसादीहिं ण लिप्पइ । जीवणिकायाउळे साहू ॥ १ ॥
पउमणिपत्तं व जहा । उदएण ण लिप्पदि सिणेहगुणजुत्तं ॥
तह समिदीहिं ण लिप्पइ । साहू काएसु इरियंतो ॥ २ ॥

अर्थ— याप्रकार जे पंचसमिति तिनकरिकै जगतमैं प्रवर्तन करते जे साधु ते

छकायके जीवनिकरि व्याप्त जो लोक, तामैं हिंसादिकपापनिकरि नही लिपे है ॥ जैसैं सचिक्कणतागुणसहित जो कमलिनीका पत्र, सो जलमें रहताहू जलकरि लिप्त नही होय है, तैसैं पंचसमितिकूं पालन करता साधु जीवनिकरि व्याप्तहू लोकमें प्रवर्तन करताहू हिंसादिक पापनिकरि नही लिपे है ॥ गाथा–

सरवासे वि पडंते। जह दढकवचो ण विज्झदि सरेहिं ॥
तह समिदीहिं ण लिप्पइ। साहू काएसु इरियंतो ॥ ३ ॥

अर्थ— जैसैं रणके अंगणमें दृढ वकतर धारण करता पुरुष बाणनिकी वर्षा होताभी बाणनिकरि नही भेद्या जाय है, तैसैं समिति धारण करिकै साधूहू छकायके जीवनिकरि व्याप्त लोकमें प्रवर्तन करताहू पापकरि लिप्त नही होय है ॥ गाथा–

जत्थेव चरइ वालो। परिहारण्हू वि चरइ तत्थेव ॥
वज्झदि पुण सो वालो। परिहारण्हू वि मुच्चइ सो ॥ ४ ॥
तह्मा चेट्ठिदुकामो। जइया तइया भवाहि तं समिदो ॥
समिदो हु अण्णमण्णं ॥ णादियदि खवेदि पोराणं ॥ ५ ॥

अर्थ— जिस क्षेत्रमें, वा विहारमें, तथा आहारपानमें, तथा इंद्रियद्वारै श्रवण करनेमें, अवलोकनमें, तथा भोजनके आस्वादनमें यत्नाचारी रागी द्वेषी हुवा अज्ञानी

प्रवर्ते है, तिसहीमैं यत्नाचारी रागद्वेषरहित हुवा सम्यग्ज्ञानी प्रवर्तन करे है। तिनमैं अज्ञानी तो कर्मबंधकूं प्राप्त होय है अर ज्ञानी निर्जरा करे है। तातैं जिस कालमें गमनकी इच्छा होय तथा वचन बोलनेकी तथा आहार पान शयन आसनकी तथा मेलने-उठावनेकी इच्छा होय, तिस कालमें समितिरूप होय परमयत्नाचारतैं प्रवर्तन करहू। समितिरूप प्रवर्तता यत्नाचारी ज्ञानी नवीन नवीन कर्म नहीं ग्रहण करे है अर पुरातन बांध्या कर्मकी निर्जरा करे हैं॥ गाथा—

एयाउं अट्ठपवयण-। मादाउं णाणदंसणचरित्तं॥
रक्खंति सदा मुणिणो। मादा पुत्तं व पयदाउं॥ ६॥

अर्थ— ऐसैं पंचसमिति तथा तीन गुप्तिस्वरूप जे ये अष्टप्रवचनमातृका, ते मुनीश्वरनिके दर्शनज्ञानचारित्रनिकूं सदाकाल रक्षा करे हैं। जैसैं जतनकूं धारती माता पुत्रकी रक्षा करे है, तैसैं साधूका रत्नत्रयकी रक्षा करनेवाली अष्टप्रवचनमातृका जाननी॥ त्रयोदशप्रकार अखंडचारित्रकूं आराधना करता साधूकै एकेक व्रतकी रक्षाके अर्थि पांच पांच भावना परमागमविषैं कही हैं॥ तातैं अब अहिंसाव्रतकी पांच भावना कहे हैं॥ गाथा—

एसणणिक्खेवादा-। णिरियासमिदी तहा मणोगुत्ती॥

आलोयभोयणं चिय । अहिंसाए भावणा होंति ॥ ७ ॥

अर्थ— पूर्वै आहारकी विधि जैसैं वर्णन कीनी, तैसैं छीयालीस दोष अर बतीस अंतराय अर चोदह मल तिनकरि रहित शुद्ध आहार ग्रहण करना, सो एषणासमिति है। तथा यत्नाचारसहित शरीर तथा उपकरणनिका उठावना मेलना, सो आदाननिक्षेपणासमिति है। बहुरि निर्जंतु भूमीविषैं ईर्यापथ शोधता गमन करना, सो ईर्यासमिति है। बहुरि मनकूं अशुभध्यानतैं रोकि शुभध्यानमें लगावना, सो मनोगुप्ति है। बहुरि दिवसमें नेत्रनितैं अवलोकन करि पानभोजन करना, सो आलोकितपानभोजन है॥ जो साधु अहिंसामहाव्रतकूं धारण करि व्रतकी रक्षा कीया चाहै; सो, भोजनका अवसरमें तो एषणासमिति, अर शरीरादिकनिका उठावनेमेलनेका अवसरमें आदाननिक्षेपणासमिति, अर गमनका अवसरमें ईर्यासमिति, अर मनोगुप्ति अर आलोकितपानभोजन इनि पंचभावनानिकूं निरंतर विस्मरण नही करना ॥ अब सत्यमहाव्रतकी पंच भावना कहे हैं ॥ गाथा—

कोधभयलोभहस्सप- । दिण्णा अणुवीचिभासणं चेव ॥
विदियस्स भावणाउं । वदस्स पंचेव ता होंति ॥ ८ ॥

अर्थ— जो सत्यमहाव्रत धारण करै, ताकूं क्रोधका तथा भयका तथा लोभका तथा

हास्यका तो त्याग करना, अर सूत्रके अनुकूल वचन बोलना योग्य है ॥ आगे अचौर्यव्रतकी पांच भावना कहे हैं ॥ गाथा—

अणणुण्णादग्गहणं । असंगबुद्धी अणुण्णवित्ता वि ॥
एदावंति य उग्गह- । जायणमध उग्गहाणुस्स ॥ ९ ॥
वज्जणमणणुण्णादो । गिहप्पवेयस्स गोयरादीसु ॥
उग्गहजायणमणुवी- । चीए तह भावणा तइये ॥ १२१० ॥

अर्थ— कमंडलु पींछी पुस्तकादिक साधर्मीनिकूं जणायाविना—आज्ञाविना नही ग्रहण करना, तथा आज्ञाकरिकैहू ग्रहण कीये जे उपकरणादिक तिनमें आसक्तताका अभाव, तथा ग्रहण करनेयोग्यमेंहू जितनातैं प्रयोजन तितना मात्र याचना करना, तथा ग्रहण करनेयोग्यमें ग्रहण करनेकी बुद्धि करना अथवा विनाजणाया साधर्मीनिके उपकरणादिकनिका ग्रहण नही करना, तथा गोचरीका अवसरमेंहू गृहस्थकी आज्ञा-विना गृहस्थके घरमें प्रवेश नही करना, सूत्रके अनुकूल वस्तूका ग्रहण करना, ये अचौर्यव्रतकी पंच भावना हैं ॥ अब ब्रह्मचर्यव्रतकी पंच भावनाकूं कहे हैं ॥ गाथा—

महिलालोयणपुव्वरदि- । सरणं संसत्तवसहिविकहाहिं ॥
पणिदरसेहि य विरदी । य भावणा पंच बंभस्स ॥ ११ ॥

र्थ— ब्रह्मचर्यव्रतकी पांच भावना हैं। तिनमें स्त्रीनिके स्तन-जघन-वदनकूं ावकरि देखनेका त्याग, तथा अपनी असँयम अवस्थामें जे कामभोगादिक कीये थे तिनका स्मरण-चिंतवन करनेका त्याग, तथा स्त्रीनिका संसर्ग तथा ाकरि सेये स्थान आसन वसतिकानिका त्याग, तथा जिनवचननिकरि स्त्रीनिका भोगरूप चातुर्यताका प्रकट करना होय ऐसी विकथानिका त्याग, तथा ी उत्कटताका करनेवाला रसकारी भोजनका त्याग करना, ये ब्रह्मचर्यव्रतकी ावना भावनेयोग्य हैं॥ अब परिग्रहत्यागव्रतकी पंच भावना कहे हैं गाथा—

अपरिग्गहस्स मुणिणो। सद्दप्फरिसरसरूवगंधेसु॥
रागद्दोसादीणं। परिहारो भावणा होंति॥ १२॥

अर्थ— परिग्रहका त्यागी साधूके शब्द स्पर्श रस रूप गंध जे पंच इंद्रियनिके ा तिनमें सुंदरमें रागका त्याग करना अर अमनोज्ञमें द्वेषका त्याग करना, ारिग्रहत्याग महाव्रतकी पंचभावना हैं॥ अब भावनाका महिमा कहे हैं॥ गाथा—

ण करेदि भावणाभा-। विदो हु पीडं वदाण सव्वेसिं॥
साधू पासुत्तो समु-। हदो व किमिदाणि वेदंतो॥ १३॥

अर्थ— एकएक व्रतकी पंच पंच भावना भावता साधु शयन करताहू तथा

मूर्छाकूं प्राप्त भयाहू समस्तव्रतनिकूं पीडा नही करे हैं, तो साक्षात् भावना भावताको व्रत कैसैं मलिन होय? व्रतनिकी उज्वलताही होय ॥ गाथा–

एदाहि भावणाहि दु । तह्मा भावेहि अप्पमत्तो तं ॥
अच्छिद्दाणि अखंडा- । णि ते भविस्संति हु वदाणि ॥ १४ ॥

अर्थ–– तातैं भो मुने! इनि पचीस भावनानिकूं प्रमादरहित भये निरंतर भावना करो । तुमारै छिद्ररहित निरंतर अखंडव्रत पूर्ण होयगे ॥ अब निःशल्य कहिये शल्यरहितकै व्रत होय हैं, तातैं माया मिथ्या निदान ये तीन प्रकारकी शल्य निराकरण करो, ऐसैं कहे हैं ॥ गाथा–

णिस्सल्लस्सेव पुणो । महवदाइं हवंति सव्वाइं ॥
वदमुवहम्मइ तीहिं । दु णिदाणमिच्छत्तमायाहिं ॥ १५ ॥

अर्थ— जातैं शल्यरहितकैही सकल महाव्रत होय है अर निदान मिथ्यात्व माया ये तीन शल्य व्रतनिका घात करे हैं, तातैं निःशल्य होना योग्य है ॥ अब सतरि गाथानिकरि निदानशल्यकूं कहे हैं ॥ गाथा–

तत्थ णिदाणं तिविहं । होइ पसत्थापसत्थभोगकदं ॥
तिविहं पि तं णिदाणं । परिपंथो सिद्धिमग्गस्स ॥ १६ ॥

अर्थ— तिन तीन शल्यनिमें निदान शल्य तीनप्रकार है। एक प्रशस्तनिदान, दूजा अप्रशस्तनिदान, तीजा भोगकृतनिदान। ऐसैं तीन प्रकारकाही निदान निर्वाणका मार्ग जो रत्नत्रय, तामैं विघ्न है-रत्नत्रयका विनाशकरनेवाला है॥ अब प्रशस्तनिदानका निरूपण करे हैं॥ गाथा—

संजमहेदुं पुरिस-। त्तबलवीरियसंहणणबुद्धी॥
सावयवंधुकुलादी-। णि णिदाणं होदि हु पसत्थं॥ १७॥

अर्थ— जो संजम धारनेके अर्थि अन्यजन्ममें पुरुषार्थ, उत्साह अर शरीरतैं उपज्या बल, अर वीर्यांतरायके क्षयोपशमतैं उपज्या वीर्य, अर वज्रवृषभनाराच जो उत्तमसंहनन, अर उत्तम बुद्धि, अर श्रावकधर्म, अर धर्ममें सहायी बंधुजन, वा बंधुजनका अभाव, तथा निर्वाणकै योग्य निर्मलकुलादिकनिकी चाह करना, सो प्रशस्तनिदान होत है॥ भावार्थ— जाकै ऐसी वांछा, जो, कोऊप्रकार मेरै श्रावकधर्मकी प्राप्ति होहू, तथा पुरुषार्थ बल वीर्य संहनन ऐसा मेरै होय जाथकी मेरी संजममें शीघ्रही प्रवृत्ति होजाय ऐसी वांछा करना, सो प्रशस्तनिदान है॥ अब अप्रशस्तनिदानकूं कहे हैं॥

माणेण जाइकुलरू-। वमादि आइरियगणधरजिणत्तं॥
सोभग्गाणादेज्जं। पत्थंतो अप्पसत्थं तु॥ १८॥

अर्थ— बहुरि जो अभिमानकरिकै उत्तमजाति, उत्तमकुल, उत्तमरूप, उत्तमबुद्धि, तथा आचार्यपणा, तथा गणधरपणा, तथा तीर्थंकरपणा तथा सौभाग्य, तथा आज्ञा, तथा आदरकी प्रार्थना करै; ताकै अप्रशस्तनिदान होत है ॥ गाथा—

कुद्धो वि अप्पसत्थं । मरणे पत्थेइ परवधादीयं ॥
जह उग्गसेणघादे । कदं णिदाणं वसिट्ठेण ॥ १९ ॥

अर्थ— जो मरणकालमें क्रोधी होय अर परका मारणादिककी वांछा करै है, ताकै अप्रशस्तनिदान होत है। जैसैं वसिष्ठ नामा मुनि उग्रसेन राजाकूं मारनेके अर्थि निदान कीया ॥ अब भोगकृतनिदानका निरूपण करै हैं ॥ गाथा—

देवियमाणुसभोगे । णारिस्सरसिट्ठिसत्थवाहादी ॥
केसवचक्कधरत्तं । पत्थिंते होदि भोगकदं ॥ १२२० ॥

अर्थ— देवनिका भोग, तथा मनुष्यका भोग, तथा नारीनिका ईश्वरपणा, तथा श्रेष्ठीपणा, तथा संघका-जातिकुलका अधिपतिपणा, तथा केशवपणा, तथा चक्रवर्तीपणाकूं प्रार्थना करै; ताकै भोगकृतनिदान होत है ॥ गाथा—

संजमसिहरारूढो । घोरतवपरक्कमो तिगुत्तो वि ॥
पकरेज्ज जइ णिदाणं । सो वि य वड्ढेइ दीहसंसारं ॥ २१ ॥

अर्थ— जो संयमके शिखरऊपरि चढ्या होय, तथा घोरतप घोरपराक्रमका धारक होय, तथा तीन गुप्तीका धारक होय, ऐसा उत्कृष्टचारित्रका धारकहू साधु कदाचित् निदान करै, तो दीर्घसंसारकी वृद्धि करै! बहुतकाल संसारपरिभ्रमण करै! तदि अल्पचारित्रका धारक निदान करै तो बहुतकाल संसारभ्रमण नहीं करै कहा? करैही करै ॥

जो अप्पसुक्खहेदुं। कुणइ णिदाणमविगणिय परमसुहं ॥
सो कागणिए विक्के। इ मणी वहुकोडिसयमोल्लं ॥ २२ ॥

अर्थ— जो इंद्रियजनित अल्पसुखके निमित्त आत्मिक-अतींद्रिय-निर्वाणके सुखकूं अवज्ञा करिकै अर निदान करे है, सो बहुतकोटि धन है मोल जाका ऐसी मणीकूं एक कौडीमैं वा एक दमडीमैं बेचे है! ॥ भावार्थ— शुद्धसंयम धारण करनेतैं आत्मिक अतींद्रिय-निर्वाणका सुख होय है अर कोऊ दुर्बुद्धीकूं प्राप्त होय भोगनिमैं निदान करि विषयांके निमित्त संयम बिगाडे है, सो कोटिधन है मोल जाका ऐसी मणीकूं कौडी एकमें वा दमडीमैं वेंचे है ॥ गाथा—

सो भिंदइ लोहत्थं। णावं भिंदइ मणिं च सुत्तत्थं ॥
छारकदे गोसीरं। डहदि णिदाणं खु जो कुणदि ॥ २३ ॥

अर्थ— जो धर्मात्मा होय निदान करे है, सो अनेक रत्नांकी भरी 'समुद्रमें

गमन करती' नावकूं लोहके अर्थि भेदे है। तथा सूतके अर्थि मणिमय हारकूं तोडे है। तथा भस्मके निमित्त गोसीर नाम दुर्लभचंदनकूं दग्ध करे है। ॥ गाथा—

कोढीसंतं लध्दुण। डहई उच्छुं रसायणं एसो ॥
जो सामण्णं णासे-। इ भोगहेदुं णिदाणेण ॥ २४ ॥

अर्थ— जो परमरसायनरूप मुनिपणाकूं भोगांके निमित्त निदानकरिकै नाश करे है, सो पुरुष जैसैं कोऊ कोढामनुष्य रसायनरूप इक्षुरस प्राप्त होय ताकूं टोलत है, तैसैं जानना। ॥ गाथा—

पुरिसत्तादिणिदाणं। पि मोक्खकामा मुणी ण इच्छंति ॥
जं पुरिसत्ताइमर्ड। भवो भवमर्ड य संसारो ॥ २५ ॥

अर्थ— मोक्षके इच्छक मुनि पुरुषलिंग तथा उत्तमसंहननादिक पावनेकाहू निदान नही करे हैं। जातैं पुरुषलिंग पुरुषार्थ संहननादिक सर्व भव है, अर भवमय संसार है, तातैं जो पुरुष लिंगसंहननादिककी वांछाकरि निदान करे है; सो संसारकीही चाहना करी। तातैं वीतरागमुनि पुरुषार्थादिकनिहूकी वांछा नहीं करे है॥ अब सम्यग्ज्ञानी कहा वांछा करे है, सो कहे हैं॥ गाथा—

दुक्खक्खयकम्मक्खय-। समाधिमरणं च बोधिलाभो य ॥

एयं पत्थेदव्वं । ण पत्थणीयं तउ अण्णं ॥ २६ ॥

अर्थ— हमारैं शरीरधारणादिक जन्ममरणादिक तथा क्षुधा तृष्णा काम रागादिक जे दुःख, तिनिका क्षय होहू। बहुरि अनादिका आत्माकूं पराधीन करनेवाला मोहनीयादिक कर्मका क्षय होहू। तथा रत्नत्रयसहित मरण होहू। तथा बोधि जो रत्नत्रयका लाभ हमारै होहू। सम्यग्दृष्टीकै इतनी प्रार्थना करनेयोग्य है। इनतैं अन्य इस भव परभवमें प्रार्थना करनेयोग्य नही है ॥ गाथा—

पुरिसत्तादीणि पुणो । संजमलाभो य होइ परळोए ॥
आराधयस्स णियमा । तदत्थमकदे णिदाणे वि ॥ २७ ॥

अर्थ— बहुरि आराधनाकूं आराधते मनुष्यकै पुरुषार्थादिकके अर्थि नही निदान करतेभी नियमथकी परलोकमें पुरुषलिंगादिक अर संयमका लाभ होयही है ॥ गाथा—

माणस्स भंजणत्थं । चिंतेदव्वो सरीरणिव्वेदो ॥
दोसा माणस्स तहा । तहेव संसारणिव्वेदो ॥ २८ ॥

अर्थ— बहुरि मानका भंजनके अर्थि शरीरतैं वैराग्यचिंतवन करना योग्य है। अर समस्तदोष मानहीतैं हैं, तातैं इस पंचपरिवर्तनरूप संसारपरिभ्रमण करना सो मानहीका दोष है ॥ अब कुलका अभिमानका अभावके अर्थि उपाय कहे हैं ॥

कालमणंतं णिच्चा- । गोदो होदूण लहइ सगिमुच्चं ॥
जोणिं इदरसलागं । ताउ वि गदा अणंताउ ॥ २९ ॥

अर्थ— संसारपरिभ्रमण करता जो संसारी जीव, सो अनंतकालपर्यंत अनंतवार नीचगोत्रका धारक होयकरिकैं एकवार उच्चगोत्र धारत है। ऐसैं अनंतवार नीचयोनि धारण करै, तदि एकवार उच्चयोनि धारण करै। बहुरि अनंतवार नीचयोनि धारण करै, तदि एकवार उच्चयोनि धारण करै। ऐसैं करते करतेहू अनंतवार उच्चयोनीका धारकहू होगया। ऐसैं नीचा उंचा अनादिका होता आवे है। इतना विशेष है— नीचयोनि अनंत पावै तदि एक उच्चयोनि पावै है। तातैं कुलका अभिमान करना वृथा है॥

उच्चासु व णीचासु व । जोणीसु ण तस्स अत्थि जीवस्स ॥
वुड्ढी वा हाणी वा । सव्वत्थ वि तित्तिउ चेव ॥ १२३० ॥

अर्थ— उच्चयोनीमैं वा नीचयोनीमैं कोऊ योनीमैं प्राप्त होहू, जीवकी वृद्धि वा हानि होय नहीं। सर्व योनीनिमैं असंख्यातप्रदेशीही रहे है॥ गाथा—

णीचो वि होइ उच्चो । उच्चो णीचत्तणं पुण उवेई ॥
जीवाणं खु कुलाइं । पधियस्स व विस्समंताणं ॥ ३१ ॥

अर्थ— नीचयोनि जे कूकर सूकर चांडालादिकनिकी योनीकूं प्राप्त होय। बहुरि

उच्च देव मनुष्य ब्राह्मणक्षत्रियादिकनिकी योनीकूं प्राप्त होय है। बहुरि उच्चकुलकूं प्राप्त होय बहुरि नीचकुलकूं प्राप्त होय है। जैसैं मार्गमें गमन करता पथिक एकेक विश्रामस्थानकं छोडि अन्यस्थानकूं प्राप्त होय है। बहुरि ताकूंभी त्यागि अन्यस्थानकूं प्राप्त होय है। तैसैं जीवका नीचउच्चकुलमें परिभ्रमण जानना ॥ गाथा-

वहुसो वि लद्धविजढे। को उच्चत्तम्मि विंभमो णाम ॥
वहुसो वि लद्धविजढे। णीचत्ते चावि किं दुक्खं ॥ ३२ ॥

अर्थ-- जिस उच्चकुलकूं बहुतवार प्राप्त होय होय त्याग कीया, अब तिस उच्चःकुलके पावनेमें कहा विस्मय है? अर जिस नीचकुलकूं बहुतवार प्राप्त होय छोड्या तिस नीचकुलके पावनेमें कहा दुःख है? ॥ गाथा-

उच्चत्तणे वि पीदी। संकप्पवसेण होइ जीवस्स ॥
णीचत्तणे य दुक्खं। तह होइ कसायवहुलस्स ॥ ३३ ॥

अर्थ— इस तीव्र मानादिक कषायके धारक जीवकै उच्चपणामैंभी संकल्पका वशकरिकैं प्रीति आनंद होय है, जो "मै उच्चकुलमें उपज्या हूं तथा पूज्या हूं उच्च हूं"। अर नीचपणामैंहू तैसैंही संकल्पका वशतैं दुःख होय है, जो "हाय! मै इन लोकनितैं नीचा हूं"। ऐसैं नीचउच्चपणाहू कषायी जीवकैं संकल्पके वशतैं होय है। अर

निश्चयकरि देखिये तो आत्मा नीचाऊंचा है नही। अभिमानतैं आपकूं नीचाऊंचा माने है॥

उच्चत्तणं व जो णी- । चत्तं पिच्छेज्ज भावदो तस्स ॥
उच्चत्तणे व णीच- । त्तणे वि पीदी ण किं होज्ज ॥ ३४ ॥

अर्थ— जो जीव उच्चपणाकीनांई नीचपणाकूं भावनितैं देखे है, ताकै उच्चपणामैं तथा नीचपणामैं दोऊमैं सुख होत है। जाकै, उच्चनीचपणा दोऊही आत्मातैं भिन्न-कर्मके कीये हुये चिंतवनमें आवे हैं, ताकै आपका नीचापणा देखि दुःख नही उपजे है, आपकै निर्धनपणा अकुलीनपणा तथा आदरका अभाव देखिकरिकैभी आनंदरूपही रहे है ॥

णीचत्तणं व जो उ- । च्चत्तं पेच्छेज्ज भावदो तस्स ॥
णीचत्तणे वि उच्च- । त्तणे वि दुक्खं ण किं होज्ज ॥ ३५ ॥

अर्थ-- जो जीव उच्चपणाकूं नीचपणाकीनांई भावनितैं देखै, ताकै नीचत्व उच्चत्व दोऊही अवस्थामैं दुःख नही होय है कहा? होयही है। उच्चनीचपणाका सुखदुःख तो भावनिके संकल्पतैं है, औरप्रकार नही है॥ गाथा-

तम्हा ण उच्चणीच- । त्तणाइ पीदिं करंति दुक्खं वा ॥
संकप्पो से पीदिं । करेदि दुक्खं च जीवस्स ॥ ३६ ॥

अर्थ— तातैं जीवकै उच्चपणा प्रीति नही करे है अर नीचपणा दुःख नही

करे है। सुख अर दुःख जीवके संकल्प करे हैं ॥ भावार्थ— नीचपणाका दुःख अर उच्चपणाका सुख संकल्पके वशतैं होय है ॥ गाथा—

कुणदि य माणो णिच्चा- । गोदं पुरिसं भवेसु वहुएसु ॥
पत्ता हु णीचजोणी । वहुसो माणेण लच्छिमदी ॥ ३७ ॥

अर्थ— मानकषाय इस जीवकूं बहुतभवनिमैं नीचगोत्र जो चांडाल भीलादिकनिके कुलमें तथा ग्रामसूकर कूकरादिक अधमतिर्यंचनिमैं तथा नारकीनिमैं वारंवार उत्पन्न करे है। जैसी लक्ष्मीमती ब्राह्मणी मानकषायकरिकै बहुतवार नीचयोनीनिकूं प्राप्त होती भई ॥ गाथा—

पूयावमाणरूवावि- । रूवं सुभगत्तदुब्भगत्तं च ॥
आणाणाणा य तहा । विधिणा तेणेव पडिसेज्ज ॥ ३८ ॥

अर्थ— पूज्यपणा अपमान रूप विरूप सौभाग्य दुर्भाग्य आज्ञा अनाज्ञा तैसी विधिकरिकैही निषेध करनेजोग्य है ॥ भावार्थ—आपकै पूज्यपणाका अभिमान तथा अपमानपणाका दुःख, तथा रूपका आनंद अर विरूपपणाका दुःख, तथा सौभाग्यपणाका अभिमान तथा दुर्भाग्यपणाका दुःख, अर आज्ञा आपकी प्रवर्तै ताका सुख तथा आज्ञा आपकी नही मानै ताका दुःख इत्यादिक अभिमानजनित संकल्पके वशतैं होय

है। वस्तुत्वकरि कछूहू नहीं, तातैं वस्तूका सत्यार्थरूप समझी निषेध करना योग्य है॥

इच्चेवमादि अविचिं-। तयदो माणो हवेज्ज पुरिसस्स॥
एदे सम्मं अत्थे। पस्सदो णो होइ माणो हु॥ ३९

अर्थ— इत्यादिक दोष नहीं चिंतवन करता पुरुषकै अभिमान होय है। अर एते पदार्थनिकूं सत्यार्थ अवलोकन करता पुरुषकै मान नहीं होय है॥ गाथा—

जइदा उच्चत्तादिणि-। दाणं संसारवड्ढणं होदि॥
कह दीहं ण करिस्सदि। संसारं परवधणिदाणं॥ १२४०॥

अर्थ— जो उच्चगोत्रादिकरूप जो अपना उच्चपणाका निदान करनाही संसारका वधावनेवाला होय है, तो परजीवनिका घात करनेका निदान दीर्घसंसार कैसैं नहीं करसी?॥

आयरियत्तादिणिदा-। णे नि कदे णत्थि तस्स तम्मि भवे॥
धणिदं पि संजमंत-। स्स सिज्झणं माणदोसेण॥ ४१॥

अर्थ— आचार्यत्वादिकपदका निदान करताभी ताकै तिस भवमें अतिशयकरिकै संयम धारण करताकैहू मानका दोषकरिकैं आचार्यादिपणा सिद्ध नहीं होय है। जातैं आचार्यादिकपदस्थकी चाहनाभी मानकषायकी तीव्रतातैं होय है, तातैं जाकै अभिमानकी तीव्रता, ताकै सिद्धि होना बहुतजन्महूमैं दुर्लभ है॥ अब जो जीव भोगनिमैं

दोष चिंतवन करे है, ताकै भोगनिमैं वांछारूप निदान नही होय है ॥ गाथा—

भोगा चिंतेदव्वा । किंपागफलोवमा कडुविवागा ॥
महुरा च भुंजमाणा । पच्छा वहुदुक्खभयपउरा ॥ ४२ ॥

अर्थ— ये इंद्रियनिके भोग किंपाकफलकीनांई भोगनेमें मिष्ट हैं अर परिपाक अतिकडवा है। कैसेक हैं भोग? बहुतदुःख अर भय तिनकरिकैं प्रचंड हैं ॥ गाथा—

भोगणिदाणेण य सा- । मण्णं भोगत्थमेव होइ कदं ॥
साहालंगो जह अ- । त्थिदो वणे को वि भोगत्थं ॥ ४३ ॥

अर्थ— भोगनिका निदानकरिकै जो श्रमणपणा धारण करना है, ताकै मुनिपणा भोगनिके अर्थिही करना भया! कर्मका क्षयके निमित्त नही होय है। भोगनिमें राग करिकै जाका चित्त व्याकुल है, ताकै नवीन कर्मका प्रवाह आवे है, निर्जरा तो अतिदूरिही है ॥ जैसैं वनमें कोऊ साहालंग नामा तपस्वी भोगनिके अर्थि निदान कीया, इसकी कोई कथा है, सो आगमतैं जाननी ॥ गाथा—

आवडणत्थं जह उ- । सरणं मेसस्स होइ मेलादो ॥
सणिदाणबंभचेरं । अबंभत्थं तहा होइ ॥ ४४ ॥

अर्थ— जैसैं मेष जो मींढो ताकै अन्यमींढातैं दूरि जाना है—उलटे पांवकरि बहुत पाछा

जावना है, सो परस्पर मस्तकका अधिक अभिघातके अर्थि है, तैसैं निदानसहित ब्रह्मचर्य धारण करना है सो अब्रह्मके आर्थ होय है। जातैं अनंतभव संसारमें परिभ्रमण करेगा ॥

जह वाणिया य पणियं। लाभत्थं विक्किणंति लोभेण ॥
भोगाण पणियभूदो। सणिदाणो होइ तह धम्मो ॥ ४५ ॥

अर्थ— जैसैं वणिक् लाभके अर्थि पण्य जो किराणा ताहि बेचे है, तैसैं निदानसहित चारित्रादिक धर्म धरना भोगनिके लोभकरिकै अंगीकार करना है! परमार्थके अर्थि नही है॥

सपरिग्गहस्स अब्बं-। भचारिणो अविरदस्स से मणसा ॥
कायेण सीलवहणं। होदि हु णडसमणरूवं वा ॥ ४६ ॥

अर्थ— जो अभ्यंतरवेदतैं उपज्या रागभाव सोही परिग्रह तिसकरि सहित है, तथा मनकरि कुशीलका वांछक तातैं अब्रह्मचारी है, तथा इंद्रियजनित सुखका वांछक तातैं अव्रती है। जाका अभ्यंतर आत्मा तौ ऐसा है अर कायकरिकै शीलधारण करे है मुनिव्रत धारे है, तथा परिग्रह ग्रहण नही करे है—नग्न रहे है, पींछी कमंडलु धारे है, कायोत्सर्ग करे है, दुर्धरतप करे है, सो नटश्रमणरूप है। जैसैं स्वांग ल्यावनेवाला नट अनेकस्वांग ल्यावै तिनमें कोऊ जैनके साधूकाहू स्वांग ल्यावै, परंतु स्वांग ल्याये साधु नही होय है, तैसैं अभ्यंतर वीतरागताविना अभिमान भोग विषयका वांछक मुनिकेहू

नटकासा स्वांगही होय है ॥ गाथा—

रोगं इच्छेज जहा । पडियारसुहस्स कारणा कोई ॥
तह अप्पणेसदि दुक्खं । सणिदाणो भोगतण्हाए ॥ ४७ ॥

अर्थ— जैसैं कोऊ नीरोग होयकरिकै अर इलाजका सुखके अर्थि रोगकूं वांछा करै, तैसैं भोगनिकी तृष्णाकरि निदानसहित पुरुष आगामी कालमें बहुत दुःखकूं इच्छा करे है, हरे है! ॥ गाथा—

खंधेण आसणत्थं । वहेज्ज गरुगं सिलं जहा कोई ॥
तह भोगत्थं होदि हु । संजमवहणं णिदाणेण ॥ ४८ ॥

अर्थ— जैसैं कोऊ पुरुष आपकै आसनके अर्थि बहुत भारी पाषाणकी शिला अपने स्कंधऊपरि लिये फिरै, जो "मोकूं जहां बैठना होगा, तहां शिला बिछाय बैठूंगा"। तैसैं भोगनिके अर्थि निदान करिकै संयम धारना होय है ॥ गाथा—

भोगोपभोगसुक्खं । जं जं दुक्खं च भोगणासम्मि ॥
एदेसु भोगणासे । जादं दुक्खं पडिविसिट्ठं ॥ ४९ ॥

अर्थ— संसारमें भोगोपभोगकी प्राप्तितैं जितनें जितनें सुख होय है अर भोगोपभोगके नाशतैं जितनें जितनें दुःख होय हैं, तिनमें भोगनिकी प्राप्तिके सुखतैं भोगनिके

नाशतैं उपज्या दुःख अत्यंत अधिक है ॥ भावार्थ—भोगोपभोगका नाश होय है तदि भोगनिके संयोगमें जो सुख भाया तातैं बहुतगुणां दुःख उपजे है ॥ गाथा—

देहे छुधादिमहिदे। चले य सत्तस्स होज्ज किह सुक्खं ॥
दुक्खस्स य पडियारो। रहस्सणं चेव सुक्खं खु ॥ १२५० ॥

अर्थ— क्षुधा तृषादिककी बाधाकरि पीडित अर चलायमान विनाशिक जो देह ताकेविषैं प्राणीके सुख कैसैं होय? नही होय। ये इंद्रियजनितसुख हैं ते क्षुधा तृषा काम रागादिकजनित दुःखकूं थोरे काल अल्प करनेवाले हैं, अर पाछै अधिक वेदना वधावे हैं ॥ भावार्थ- ये इंद्रियजनित सुख हैं ते सुख नही हैं-सुखाभास हैं-मोही जीवनकूं सुखसे दीखे हैं। जैसैं जाकै शीतकी पीडा होय, सो अग्नीतैं तापनकूं सुख माने है, अर जाकै गरमीकी बाधा होय, सो शीतलपवनकूं सुख माने है; अर वातादिकजनितवेदना जाकै होय, सो अग्नीका सेककूं अर दुर्गंध तैलका मर्दनकूं सुख माने है; अर जाकै खाजीकी वेदना होय, सो खुजावनेकूं सुख माने है; तैसैं इंद्रियजनित विषयानुरागकी पीडाका दुःख नही सह्या जाय तदि विषयनिकूं चाहे है। तथा क्षुधावेदनाकी पीडाका मार्‍या भोजन चाहे है तृषाकी वेदनाकरि पीडित शीतलजलकूं चाहे है। खावना पीवना वोढना ये सुख नही हैं, वेदनाके इलाज हैं। सोहू भोगनिके भोग-

नेतैं वेदना थोरे काल किंचित् मंद होय है, बहुरि अधिक अधिक वेदना उपजावे है। सुख तो सो है, जहां वेदनाही नही उपजै, सुख तो निराकुलताळक्षण ज्ञानानंद है। अर जो इंद्रियनिके विषयद्वारैभी जो सुख है, सोहू इंद्रियजनितज्ञानद्वारैंभी जानना। ज्ञानविना कहूही सुख हैही नही। तातें भोगनिकूं वेदनाका इलाजमात्र जानि भोगनिका निदान त्यागि निर्वांछक हुवा परमधर्म सेवन करो! जातैं फेरि वेदनाही नहीं होय॥

जह कोढिल्लो अग्गिं। तप्पंतो णेव उवसमं लभदि॥
तह भोगे भुंजंतो। खणं पि णो उवसमं लभदि॥ ५१॥

अर्थ— जैसें कोडी पुरुष अग्निकरि तप्तायमान होता संताहू उपशमनाकूं नही प्राप्त होय है, रुधिर उमले है, ताकरि अधिक अधिक अग्नीके सेकमें वांछा उपजे है। तैसें संसारी जीव भोगनिकूं भोगताहू क्षणमात्रहू भोगनिकी चाहनारूप दाहतें उपशमताने नहीही प्राप्त होय है। ज्यूं ज्यूं भोगे है, त्यूं त्यूं अधिक अधिक तृष्णा बधती जाय है॥ गाथा —

सुक्खं अणाविक्खित्ता। बाधादि दुक्खमणुगं पि जह पुरिसं॥
तह अणपिक्खिय दुक्खं। णत्थि सुहं णाम लोगम्मि॥ ५२॥

अर्थ— जैसैं अणुमात्रहू दुःख सुखकी नहीं अपेक्षाकरिकै बाधा करे है, तैसें लोकमें दुःखकी अपेक्षा नहीं करिकै काऊ सुख हैही नही॥ भावार्थ— दुःख तो सुखविनाही

होय है। अर सुख दुःखविना हैही नही। क्षुधातृषाजनित दुःख जाकै पहली होयगा, ताकै भोजनपान सुख करैगा। विनाक्षुधाकी वेदना तथा तृषाकी वेदनाविना भोजनपान सुख करैगा नही। मिष्टरस तथा लवणादिक रस तिनकी चाहनारूप दुःख जाकै उपजेगा सोही मिष्टरसकूं भक्षण करि सुख मानेगा। अर जाकै मिष्टरसकी आकांक्षा अंतरंगमें पित्तवातादिकजनित नही उपजी, ताकूं मिष्टरसका नामभी नही सुहावैगा। सूर्यका कठोर आतापकरि तप्तायमान होयगा, ताकूं शीतल छाया शीतल पवनकरि सुख होयगा। शीतकरि जाका शरीर संकुचित होयगा, ताकूं सूर्यका आताप तथा अग्निका तापन सुखरूप होय है। स्थान आसनतैं उपज्या खेद जाकै होयगा, सो शयनमें सुख मानेगा। जाका चरणहस्तादिकनिमें फूटणी तथा वेदना उपजेगी, सो दबाया चाहेगा। जाकै चरणनितैं गमन करनेमें दुःख व्यापै, ताकै पालकी इत्यादिकउपरि चढना सुख होयगा। जाकै विरूपपणाका दुःख होयगा, सो आभरणनिका दुःखकारी बंधनकूं सुख मानैगा, तथा सुंदरवस्त्रनितैं सुख मानेगा। जाकै दुर्गंधादिकजनित दुःख, ताकै चंदन अगुरादिकनिमें सुख दीखै है। जाकै कामवेदनाजनित दुःख होय ताकै मैथुनरूप महासंक्लेशकर्ममें सुख होय है। तातैं बहुत कहनेकरि कहा? जितने इंद्रियजनित सुख हैं, ते पूर्वैं दुःख उपजै तदि किंचिन्मात्र थोरे काल जिनि

विषयनितैं दुःख उपशमै, ताकूं जीव सुख माने है, सो सुख है नहीं अतिदुःखही है! सुख तौ जाकै वेदनाही नहीं अर निराकुलतालक्षण संपूर्णपदार्थनिकूं एककालमें जानना है। अर इंद्रियजनित सुख तो परिपाकमें अति आतापके उपजावनेवाले वेदनाकी त्रासतें सुख भासे है। जैसैं कोढी अग्निकरि तप्तायमान होता अग्नीतें सुख माने है, अर अग्नीतें तपनेमें अधिक अधिक अभिलाप करे है, तैसें कामादिकवेदना-पीडित पुरुषहू अति आतुर हुवा स्त्रीनिके संगमादिकविषयनिमें रचे है॥ गाथा-

कंछुं कंडुयमाणो। सुहाभिमाणं करोदि जह दुक्खे॥
दुक्खे सुहाभिमाणं। मेहुणआदीहिं कुणदि तहा॥ ५३॥

अर्थ— जैसें खाजिरोगसहित पुरुष खाजीकूं खुजावतां दुःखमें सुख माने है, तैसें कामी पुरुष मैथुनादि कामचेष्टाकरि दुःखमें सुख माने है॥ गाथा-

घोसादकीय जह किमि। खत्तो मधुरित्ति मण्णदि वराउ॥
तह दुक्खं वेदंतो। मण्णइ सुक्खं जणो कामी॥ ५४॥

अर्थ— जैसें कृमि कहिये लट कडवी तोऱ्यां तथा विषके फुल तिनकूं भक्षण करता जहरहीकूं मधुर माने है, तैसें दीन ऐसा कामी जन प्रत्यक्ष शरीरादिकदुःखनिकूं अनुभव करता कामकी वेदनाका मान्या सुख माने है॥ गाथा-

सुट्ठु वि मग्गिज्जंतो । कत्थ वि कयलीए णत्थि जह सारो ॥
तह णत्थि सुहं मग्गि- । ज्जंतं भोगेसु अप्पं पि ॥ ५५ ॥

अर्थ-- जैसैं बहुत चोकसतैं हेरिये तोहू केलीके स्तंभमें कहांहू सार नहीं निकसे है, तैसैं भोगनिमैं अल्पहू सुख नहीं है ॥ गाथा-

ण लहादि जह लेहंतो । सुक्खल्लयमट्ठियं रसं सुणहो ॥
सो सगतालुगरुहिरं । लेहंतो मण्णए सुक्खं ॥ ५६ ॥
महिलादिभोगसेवी । ण लहइ किंचि वि सुहं तहा पुरिसो ॥
सो मण्णदे वराउ । सगकायपरिस्समं सुक्खं ॥ ५७ ॥

अर्थ-- जैसैं श्वान सूके हाडकूं आस्वादन करता हाडथकी रसकूं नहीं प्राप्त होय है, तिस हाडनिकी कोरतैं अपना तालवा गुलाफा फाटि रुधिर निकले है ताकूं हाडमैंतैं निकस्या मानि भ्रमतैं सुख माने है! तैसैं स्त्रीके भोगनिकूं सेवन करता कामी किंचि-न्मात्रहू सुखकूं नहीं प्राप्त होय है! सो कामकी पीडातैं वराक हुवा दीन हुवा अपना कायका परिश्रमकूंही सुख माने है ॥

तह अप्पं भोगसुहं । जह धावंतस्स अहिदवेगस्स ॥
गिम्हे उण्हे तत्त- । स्स होज्ज छायासुहं अप्पं ॥ ५८ ॥

अर्थ- जैसें अति उष्ण ग्रीष्मकालमें नही ठह्र्या है वेग जाका ऐसा दौडता पुरुषकै मार्गमें कोऊ एक वृक्षादिकको छायामें दोडतां अल्पकाल सुख होइ है, तैसें कर्मकरि महादुःखरूप संसारमें परिभ्रमण करते पुरुषके भोगनिका सुखहू अति अल्पकाल है ॥

अधवा अप्पं आसा-। ससुहं सरिदाए उप्पियंतस्स ॥
भूमीछिक्कंगुट्ठ-। स्स उब्भमाणस्स होदि सो तेण ॥ ५९ ॥

अर्थ-- अथवा जैसें नदीके मध्य वडे जोरके प्रवाहकरि वहता अर डूबता पुरुषका भूमीमें अंगुष्ठ स्पर्श होनेका अति अल्पकाल आश्वासनरूप सुख है, जो में थंभ्या जीया ऐसा एक पलकमात्र भूमीका अंगुष्ठके स्पर्शनतें आश्वास है फेरि वहिकरि मरण करे है; तैसें संसारी जीव कर्मजनित त्रासकरि वहता कोऊ किंचिन्मात्र विषय धन परिवार इत्यादिकका संबंध मिलता आश्वास माने है, पाछै वहता निगोदकूं जाय प्राप्त होय है॥

दीसइ जळं व मयत-। ण्हिया हु जह वणमयस्स तिसिदस्स ॥
भोगा सुहं व दीसं-। ति तह य रागेण तिसियस्स ॥ १२६० ॥

अर्थ— जैसें वनमें तृषाकरि पीडित जो वनका मृग, ताकूं दूरि तिष्ठता मृगतृष्णा नामा घास सो जल दीखे है; सो जल जानि दोडे है तहां जल नही! तदि आगानें तथा अन्य दिशामें मृगतृष्णा दीखै, तदि उसकी तरफ दौडे, तदि वहांभी जल नही

दीखै! आगानैं वा अन्यदिशामैं मृगतृष्णा नामा घास दीखै, तदि उसमांहू दोडै, वहांभी नहीं दीखै! तदि अन्यवोडी ऐसैं दोडता दोडता तृष्णाका मार्‍या प्राणरहित होय है; तैसैं तीव्ररागकरि तृष्णाकूं प्राप्त हुवा संसारी पुरुषहू भोगनिकूं सुख मानैहै! सुख है नही! ऐसैं भोगनिमैं अतितृष्णाकरि मरणनैं प्राप्त होय नरकनिगोदकूं जाय प्राप्त होय है॥

वग्घो सुखेज्ज मदयं । अवयासेऊण जह मसाणम्मि ॥
तह कुणिमदेहसंफा- । सणेण अवुहा सुहायंति ॥ ६१ ॥

अर्थ— जैसैं स्मशानभूमीमैं मृतककूं आस्वादनकरि व्याघ्र कूकरा स्याली सुखी होत हैं, तैसैं स्त्रीनिके अशुचि अंगकूं स्पर्शन करिकै अज्ञानी विषयांध सुखी होय हैं॥

जावंति केइ भोगा । भुत्ता सव्वे अणंतखुत्तो ते ॥
को णाम तत्थ भोगे । सु विंभउ लद्धविजढेसु ॥ ६२ ॥

अर्थ— हे आत्मन्! जितने केई भोग हैं, तितने सर्वही तुम अनंतवार भोग लीए अब अनंतवार भोगे अर छोडे! तिनकी प्राप्तीमैं कहा विस्मय है? ॥ गाथा—

जहजह भुंजइ भोगे । तहतह भोगेसु वड्ढदे तण्हा ॥
अग्गी व इंधणाइं । तण्हं दीवंति से भोगा ॥ ६३ ॥

अर्थ— संसारी जीव जैसैं जैसैं भोगनिकूं भोगे हैं, तैसैं तैसैं भोगनिमैं तृष्णा वधे

है । जैसैं इंधन अग्नीकूं वधावे है, तैसैं भोग जीवके तृष्णाकूं वधावे हैं ॥ गाथा–

जीवस्स णत्थि तित्ती । चिरं पि भोएहि भुंजमाणेहिं ॥
तित्तीए विणा चित्तं । उव्वूरं उव्वुदं होइ ॥ ६४ ॥

अर्थ— इस जीवकै चिरकाल भोगनेमें आये जे भोग, तिनकरि तृप्ति नही होय है । अर तृप्तिविना चित्त उद्वेगरूप तथा उज्या हुवा रहे है ॥ गाथा–

जह इंधणेहि अग्गी । जह व समुद्दो णदीसहस्सेहिं ॥
तह जीवा ण हु सक्का । तिप्पेदुं कामभोगेहिं ॥ ६५ ॥

अर्थ— जैसैं इंधननिकरि अग्नि नही तृप्त होत है, तथा हजारां लाखां नदीनिके प्रवाहकरि समुद्र तृप्त नही होत है, तैसैं कामभोगनिकरि संसारी जीवहू तृप्त होनेकूं नही समर्थ होइये है ॥ गाथा–

देविंदचक्कवट्टी । य वासुदेवा य भोगभूमीया ॥
भोगेहिं ण तिप्पंति हु । तिप्पदि भोगेसु किह अप्पणो ॥ ६६ ॥

अर्थ— देवनिके इंद्र, तथा चक्रवर्ती, तथा नारायण प्रतिनारायण, तथा भोगभूमियां सागरांकी तथा पल्यनिकी तथा पूर्वनिकी आयुपर्यंत अप्रमाण जगतके सारभूत भोग भोगे, तिनतैं तृप्त नही भये; तो अन्यसंसारीनिकै अल्प भोग तिनकूं अलपकाल

भोगि कैसी तृप्ति होयगी ? ॥ गाथा—

संपत्तिविपत्तीसु य । अज्जणरक्खणपरिग्गहादीसु ॥
भोगत्थं होदि णरो । उद्धुयचित्तो य घण्णो य ॥ ६७ ॥

अर्थ— संपदामैं तथा आपदामैं धनका उपार्जनमैं तथा रक्षणमैं तथा संचय करनेमैं तथा आदिशब्दकरि खरच करनेमैं देनेमैं भोगनेमैं सर्व लोकके परिग्रहमैं आपके परिग्रहमैं तथा परके परिग्रहमैं संसारी जीव भोगनिके अर्थि चलचित्त होय है। तथा आपदा आवै तदि भोगनिके वियोगतैं परिणाम अत्यंत क्लेशित होय है, निरंतर उत्कंठा[1] लगि रहे है। अर संपदा आवै तदि भोगनिमैं ऐसा लीन होय है जो अचेत होजाय है। तातैं जाकै भोगनिकी इच्छा है, तिससमान कोऊ जगतमैं क्लेशित नहीं है ॥ गाथा—

उद्धुयमणस्स ण सुहं । सुहेण य विणा कुदो हवदि पीदी ॥
पीदीए ण विणा रदी । उद्धुयचित्तस्स घण्णस्स ॥ ६८ ॥

अर्थ— जाका चल चित है ताकै सुख नहीं है, अर सुखविना प्रीति कैसी होय ? अर प्रीतिविना रति जो आसक्तता सो नहीं होय। जाकूं उत्कंठारूप डाकिनी ग्रहण कीया, ताके कोठैहू कोई अवसरमैंहू परिणाम थिरताकूं नहीं पावे है ॥ गाथा—

जो पुण इच्छदि रमिदुं । अज्झप्पसुहम्मि णिव्वुदिकरम्मि ॥

[1] उत्कण्ठावान्

कुणदु रदिं उवसंतो। अज्झप्पसमा हु णत्थि रदी ॥ ६९ ॥

अर्थ— जो वीतरागी निर्वाणसुखमें रत हुवा सो निर्वाणका करनेवाला अध्यात्म-सुखमें मंदकषायी हुवा रति करो। अध्यात्मसमान रति जो सुख सो है नही ॥ गाथा—

अप्पायत्ता अज्झ-। प्परदी भोगरमणं परायत्तं ॥
भोगरदीए चइदो। होदि ण अज्झप्परमणेण ॥ १२७० ॥

अर्थ— अध्यात्मरति तो स्वाधीन है, इसमें परद्रव्यकी अपेक्षा नही है। अर भोगनिमें रमण पराधीन है। जातैं परद्रव्यका आलंबनाविना भोग नही होत है। बहुरि भोगरतितैं तो छुटै है अर अध्यात्मरतितैं नही चिगे है। जातैं भोगनिमें अनेक विघ्न आवे हैं अर अध्यात्मरति विघ्नका नाश करनेवाली है ॥ गाथा—

भोगरदीए णासो। णियदो विग्घा य होंति अदिवहुगा ॥
अज्झप्परदीए सु-। भाविदाए ण णासो ण विग्घो वा ॥ ७१ ॥

अर्थ— भोगनिमें रति जो सुख सो नाशसहित है अर भोगनिमें विघ्न निश्चयतैं आवेही है। अर भलैप्रकार अनुभव कीया जो अध्यात्मसुख तिसविषैं विघ्न नही है अर ताका नाशहू नही है ॥ अब इंद्रियजनितसुखनिका शत्रुपणा दिखावे हैं ॥ गाथा—

दुक्खं उप्पादिंता। पुरिसा पुरिसस्स होंति जदि सत्तू ॥

अदिदुक्खं कदमाणा । भोगा सत्तू किह ण होंति ॥ ७२ ॥

अर्थ— जो जगतमें पुरुषकै दुःख उपजावनेवाले पुरुष हैं, ते शत्रु होय हैं; तो अतिदुःखका उपजावनेवाला भोग कैसैं शत्रु नहीं होय? ॥ गाथा—

इहइं परलोए वा । सत्तू मित्तत्तणं पुणमुवेंति ॥
इहइं परलोए वा । सदा वि दुक्खावहा भोया ॥ ७३ ॥

अर्थ— बहुरि शत्रु हैं ते तो इस लोकमें वा परलोकमें मित्रपणाकूं प्राप्त होय हैं। अर भोग हैं ते इस लोकमें तथा परलोकमें सदाकाल दुःखका वहनेवालेही होय हैं ॥

एगम्मि चेव देहे । करिज्ज दुक्खं ण वा करिज्ज अरी ॥
भोगा से पुण दुक्खं । करांति भवकोडिकोडीसु ॥ ७४ ॥

अर्थ— वैरी है सो एकही देहविषैं दुःख करै तथा नहीं करै, अर ये भोग इस जीवकै कोटाकोटी भवनिमें तथा असंख्यात अनंतभवनिमें दुःख करे हैं। तातैं भोगतैं उत्पन्न होय जे दोष तिनकूं जाणि भोगनिके अर्थि निदान मति करो ॥

महुमेव पिच्छदि जहा । तडिउं लंबो ण पिच्छदि पपादं ॥
तह सणिदाणो भोगे । पिच्छदि ण दु दीहसंसारं ॥ ७५ ॥

अर्थ— जैसैं कोऊ तटमें लूमता पुरुष ऊपरि मधुछत्ताहीकूं देखे है, अर अपना

पतनकूं नही देखे है। तैसैं निदानसहित पुरुष भोगनिहीकूं देखे है, अपना पतन होय दीर्घकाल संसारमें परिभ्रमण होना नही देखे है ॥ गाथा-

जालस्स जहा अंते । रमंति मच्छा भयं अयाणंता ॥
तह संगादिसु जीवा । रमंति संसारमगणंता ॥ ७६ ॥

अर्थ— जैसैं मत्स्य आपके भयकूं नही जानता धीवरके पसारे जालमें रमत है; तैसैं संसारी जीव आपका संसारमें परिभ्रमण नही गिणता परिग्रहादिकमें रमत है ॥ देवलोकादिकनिकैहू वस्त्र अलंकार भोजनादिक दुःख निराकरण करनेकूं नही सामर्थ्य है, ऐसैं कहे हैं ॥ गाथा-

दुक्खेण देवमाणुस- । भोगे लध्दूण चावि परिवडिदो ॥
णियदमदींदि कुजोणी । जीवो सघरं पउत्थो वा ॥ ७७ ॥

अर्थ— कोऊ वडे दुःखकरिकैं देवनिके मानुषनिके भोगनिकूं पायकरिकैहू पर्यायतैं छूटि नियमतैं कुयोनीनिकूं प्राप्त होय है! जैसैं प्रवासी अपने घरकूं प्राप्त होय है ॥

जीवस्स कुजोणिगद- । स्स तस्स दुक्खाणि वेदयंतस्स ॥
किं ते करंति भोगा । मदो व वेज्जो मरंतस्स ॥ ७८ ॥

अर्थ— कुयोनीकूं प्राप्त भया अर कुयोनिनिमैं दुःखनिकूं भोगता जीवकै इंद्रियनिके

भोग कहा करै? कुयोनीमैं पडतेकै अर दुःख भोगतेकै इंद्रियनिके भोग सहायी शरण होय नही हैं। जैसैं मरण करते जीवकै, पूर्वकालमें मरणकीया जो वैद्य, सो रक्षक नही होय है॥ भावार्थ- जो वैद्य मरि गया, सो कहांतैं आवैगा? अर मरते जीवकी रक्षा तथा रोगका अभाव कैसैं करेगा? तैसैं भोगे हुये भोग नरकतिर्यंचमें दुःख भोगते जीवकै कैसे सहायी होयगे?॥ गाथा-

जह सुत्तवद्ध सउणो। दूरं पि गदो पुणो वि एदि तहिं॥
तह संसारमदीदि हु। दूरं पि गदो णिदाणगदो॥ ७१॥

अर्थ— जैसैं दीर्घसूत्रतैं बद्ध पक्षी दूर गया हुवाहू बहुरि उसही स्थानकूं प्राप्त होय है; जातैं उडि चल्या तो कहा भया? पग तो सूतकी डोरीतैं बंध्या है, जाय नही सकेगा; तैसैं निदान करनेवाला अतिदूर स्वर्गादिकमें महर्द्धिकदेवनिमैं प्राप्त भयाहू संसारहीमैं परिभ्रमण करेगा-देव लोक जायकरिकैहू निदानके प्रभावतैं एकेंद्रियतिर्यंचमैं तथा पंचेंद्रियतिर्यंचनिमैं तथा मनुष्यनिमैं आय पापसंचयादिक करि नरकनिगोदादिकनिमैं दीर्घकाल परिभ्रमण करेगा॥ गाथा-

दाऊण जहा अत्थं। रोधणमुक्को सुहं घरे वसइ॥
पत्ते समये य पुणो। रुंभइ तह चेव धारणिउं॥ १२८०॥

तह सामण्णं किच्चा । किलेसमुक्कं सुहं वसइ सग्गे ॥
संसारमेव गच्छदि । तत्तो य चुदो णिदाणकदो ॥ ८१ ॥

अर्थ— जैसैं ऋणसहित पुरुष परके बंदीगृहमें पड्या हुवा धन देयकरिकै अर कितनेक दिनका करार करिकै बंदिगृहतैं छूटि सुखरूप हुवा अपने घरमें वसे है, बहुरि करार पूरा होनेके अवसरमें जाका धन वृद्धिसहित लीया होय सो फेरि बंदिगृहमें रोके है; तैसैं साधुपणा धारणकरिकै अर निदान करे है, सो कितनेक काल स्वर्गविषैं क्लेशरहित सुख भोगता वसे है, बहुरि आयु पूर्ण भये स्वर्गतैं चयकरिकै संसारहीकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा—

संभूदो वि णिदाणे- । ण देवसुक्खं च चक्कहरसुक्खं ॥
पत्तो तत्तो य चुदो । उववण्णो णिरयवासम्मि ॥ ८२ ॥

अर्थ— संभूत नामा मुनि निदानकरिकै देवनिके सुख भोगि बहुरि चक्रीपणाका सुख भोगि अर पाछै मरण करि नरकमें जाय उपज्या है ॥ इहां ऐसा जानना— जो मुनिपणामैं तथा देशव्रतीपणामैं मंदकषायके प्रभावतैं तथा तपश्चरणके प्रभावतैं स्वर्गलोकमें उपजावनेवाला तथा अहमिंद्रलोकमें उत्पन्न करनेवाला शुभकर्म बांध्या होय अर पाछै निदान करै, तो नीच भवनत्रिकादिक अधमदेवनिमें जाय उपजै ॥

जाकै पुण्य अधिक होय अर अल्पपुण्यका फलकेजोग्य निदान करै तो अल्पपुण्य-वाला देव मनुष्य जाय उपजै। अर अधिकपुण्यका देवनिमैं तथा मनुष्यनिमैं उपजा चाहै तो नहीं उपजै ॥ निदानतैं अल्प मिलै, अधिक नहीं मिलै। जैसैं जाके निकट बहुतमोलकी वस्तु होय अर अल्पधनमैं बेचै तो अल्प धन मिलि जाय अर अल्पमोलकी वस्तूकूं अधिकधनमैं बेचै तो अधिकधन नहीं मिलै है ॥ जो मुनिश्रावकका धर्म साक्षात् स्वर्गमोक्षका देनेवाला धारण करि भोगनिमैं निदान करि बिगाडै है, सो एक कौडीमैं चिंतामणिरत्न बेचै है? अथवा इंधनके अर्थि कल्पवृक्षकूं काटै है। भोगनिके अर्थि निदान करनेबराबरि कोऊ जगतमैं अनर्थ है नहीं। नारायणादिकहू निदानतैंही परिभ्रमण करे हैं ॥ गाथा—

णच्चा दुरंतमध्दुव- । मत्ताणमतप्पयं अविस्सामं ॥
भोगसुहं तो तह्मा । विरदो मोक्खे मदिं कुज्जा ॥ ८२ ॥

अर्थ— कैसेक हैं भोग? दुःखरूप है फल जाका ऐसा अर अस्थिर अर रक्षा करनेकूं समर्थ नहीं अर अतृप्तिताका करनेवाला अर विश्रामरहित अंतसहित ऐसे भोगनिकूं जानिकरिकै अर ज्ञानी जन भोगनिके सुखतैं विरक्त होय अर मोक्षमैं बुद्धि करै ॥

अणिदाणो य मुणिवरो । दंसणणाणचरणं विसोधेई ॥

तो सुद्धणाणचरणो । तवसा कम्मक्खयं कुणइ ॥ ८४ ॥

अर्थ— जो मुनिवर निदानरहित है, सो दर्शनज्ञानचारित्रकूं शुद्ध करे है। अर दर्शनज्ञानचारित्र शुद्ध जाकै होय, सो ध्यान नामा तपकरि कर्मका क्षय करे है ॥

इच्चेवमेदमविचिं- । तयदो होज्ज हु णिदाणकरणमदी ॥
इच्चेवं पस्संतो । ण हु होदि णिदाणकरणमदी ॥ ८५ ॥

अर्थ— ऐसैं पूर्वोक्तप्रकार निदानदोषनिकूं नही चिंतवन करते पुरुषकै निदान करनेमें बुद्धि होय है; अर निदानकूं विषसमान अनंतदुःखनिका करनेवाला जो भावनितैं देखे है, ताकै निदान करनेमें बुद्धि नही होय है ॥

ऐसैं सत्तरि गाथानिमैं निदानशल्यका वर्णन कीया ॥ अब मायाशल्यकूं दोय गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

मायासल्लस्सालो- । चणाधियारम्मि वण्णिदा दोसा ॥
मिच्छत्तसल्लदोसा । य पुव्वमुववण्णिया सव्वे ॥ ८६ ॥

अर्थ— मायाशल्यतैं उपजे दोष पूर्वैं आलोचना नामा अधिकारमें वर्णन कीये अर मिथ्याशल्यके दोषहू सर्व पूर्वैं वर्णन कीये। तातैं माया मिथ्या निदान तीनप्रकारकी शल्य हृदयथकी निकासहु ॥ गाथा—

पब्भट्ठबोधिलाभा । मायासल्लेण आसि पूदिमुहीं ॥
दासी सागरदत्त- । स्स पुफ्फदंता हु विरदा वि ॥ ८७ ॥

अर्थ— पुष्पदंता नामा आर्यिका शल्यकरि भ्रष्ट भया है रत्नत्रयका लाभ जाकै ऐसी मायाचारका पापकरि सागरदत्त नामा वणिककै महादुर्गंधदेहकूं धरनेवाली पूतिमुखी नामा दासी होती भई! देखहू! कहां देवलोकका देनेवाला आर्यिकाका व्रत अर कहां वणिकके घर दुर्गंधदासी होना! मायाशल्य महान् अनर्थ करनेवाला है ॥ ऐसैं मायाशल्यतैं उपजे दोष कहे ॥ अब मिथ्याशल्यकृत दोष एकगाथामैं कहे हैं ॥

मिच्छत्तसल्लदोसा । पियधम्मो साधुवच्छलो संतो ॥
बहुदुक्खे संसारे । सुचिरं परिहिंडिउ मरीची ॥ ८८ ॥

अर्थ— अतिवल्लभ है धर्म जाकूं अर साधुपुरुषनिमैं प्रीतियुक्त हुवा संताहू मरीची एक मिथ्यात्वशल्यके दोषतैं बहुत दुःखरूप संसारमैं बहुत असंख्यातकालपर्यंत परिभ्रमण करता हुवा ॥ ऐसैं मिथ्यात्वशल्यका वर्णन कीया ॥ अब ऐसे साधुसमूह निर्वाणपुरीकूं प्रवेश करे हैं, सो कहे हैं ॥ गाथा—

इय पव्वजाभंडिं । समिदिवइल्लं तिगुत्तिदिढचक्कं ॥
रादियभोयण उद्धं । सम्मत्तक्खं सुणाणधुरं ॥ ८९ ॥

वदभंडभरिदमारुहि- । दसाधसत्थेण पच्छिदो समयं ॥
णिव्वाणभंडहेदुं । सिद्धिपुरिं साधुवाणियउं ॥ १२९० ॥
आयरियसत्थवाहे- । ण णिच्चुज्जुत्तेण सारविज्जंतो ॥
सो साहुवग्गसत्थो । संसारमहाडविं तरइ ॥ ९१ ॥
तो भावणादिजुत्तो । रक्खदि तं साधुसत्थमाउत्तं ॥
इंदियचोरेहिं तो । कसायवहुसावदेहिं च ॥ ९२ ॥

अर्थ— ऐसैं दीक्षारूप गाडीमैं चढिकरिकै अर साधूनिका समूहसहित जो निर्वाणपुरीप्रति गमन करै है, सो साधुरूप वणिक् संसाररूप वनीके पार उतरे है ॥ कैसी है संसाररूप गाडी? जाकै समितिरूप तो बलध है, अर तीनगुप्तिरूप दृढ पहे हैं, अर रात्रिभोजनका त्याग सोही गाडीका ऊर्ध्वभाग है, अर सम्यक्त्वरूप अक्ष है, अर सम्यग्ज्ञानरूप धुरा है, अर व्रतरूप भांड वस्तु तिनकरि भरी है, ऐसी दीक्षागाडीउपरि चढि प्रयाण करनेवाला साधुरूप वणिक् बहुरि निरंतर आपके तथा परके हित करनेमें उद्यमी ऐसे आचार्य सोही जो सार्थवाह कहिये संघका स्वामी ताकरि प्रशंसा कीया साधूका समूह, सो संसारमहावनीकूं तिरै है पार उतरे है । संसारवनीमैं इंद्रियरूप तो चोर वसे हैं, अर कषायरूप सिंहव्याघ्रसर्पादिक दुष्टजीव वसे हैं, तिनतैं

साधुसमूहकी शुभभावनाही रक्षा करे है ॥ गाथा—

विसयाडवीए मज्झे । ऊहीणो जो पमाददोसेण ॥
इंदियचोरा तो से । चरित्तभंडं विलुंपंति ॥ ९३ ॥

अर्थ— अर जो साधु प्रमादके दोषकरि पंचेंद्रियनिके विषयनिमें अपसरण करे है— तिस साधुरूप वणिकका चारित्ररूप भांड कहिये धनकूं इंद्रियरूप चोर लूटे हैं ॥

अहवा तल्लिच्छाइं । कूराइं कसायसावदाइं तं ॥
खज्जंति असंजमदा- । ढाहिं संकिलेसादिदंसेहिं ॥ ९४ ॥

अर्थ— अथवा विषयनिकी वांछा करनेवालेनिकूं कषायरूप क्रूर दुष्ट तिर्यंच असंयमरूप दाढनिकरि अर संक्लेशरूप दंतनिकरि भक्षण करे हैं ॥ भावार्थ- जो विषयनिकूं वांछे है ताकूं कषाय अर संक्लेश मारिही नाखे है ॥ गाथा—

ऊसण्णसेवणाउ । पडिसेवंतो असंजदो होइ ॥
सिद्धिपहपत्थिदाउ । ऊहीणो साधुसत्थादो ॥ ९५ ॥

अर्थ— जो मुनिका व्रत धारि अयोग्यवस्तूका सेवन करे है, सो अयोग्यसेवनतैं असंयमी होय है, पश्चात् निर्वाणके मार्गमें गमन करता जो साधूनिका समूह तातैं अपसृत कहिये निकले है, तातैं अवसन्न कहिये है। अवसन्नसंज्ञक मुनि है, सो

मुनिनके संघके बाह्य जानना ॥ गाथा–

इंदियकसायगुरुग- । त्तणेण सुहसीलभाविदो समणो ॥
करणालसो भवित्ता । सेवइ उसण्णसेवाउं ॥ १६ ॥

अर्थ— जो साधु इंद्रियकषायका बडापणाकरिकै सुखियास्वभाव होय तथा त्रयोदशप्रकार चारित्रमें आलसी होयकरिकै अर साधुपणातैं चलायमान होय सो अवसन्न है॥ ऐसैं अवसन्नका स्वरूप कह्या ॥ गाथा–

केई गहिदा इंदिय- । चोरेहिं कसायसावदेहिं वा ॥
पंथं छंडिय णिज्जं- । ति साधुसत्थस्स पासम्मि ॥ १७ ॥

अर्थ— कितनेक मुनि इंद्रियरूप चोरनिकरि तथा कषायरूप दुष्टतिर्यंचनिकरि ग्रहण कीये हुये रत्नत्रयरूप मोक्षमार्गकूं त्यागिकरिकै अर बाह्य भेषकरि साधुसारिसा रहे हैं–जगतकूं साधु दीखे है अर साधु नही भेषमात्र हैं, तातैं इनकूं साधुसंघके पार्श्ववर्तीपणातैं पार्श्वस्थ कहिये हैं ॥

तो साधुसत्थपंथं । छंडिय पासम्मि णिज्जमाणा ते ॥
गारवगहणकुडिल्ले । पडिदा पावंति दुक्खाणि ॥ १८ ॥

अर्थ— जे साधुनिके समूहका मार्ग छांडिकरिकै अर पार्श्वस्थापणानैं प्राप्त भये हैं,

तें अभिमान तथा रसगारव ऋद्धिगारव सातगारवकरिकै आच्छादित जो पार्श्वस्थपणा-
रूप वन तामैं पडे हुये दुःखनिकूं प्राप्त होय हैं ॥ गाथा-

सल्लविसकंटएहिं । विध्दा पडिदा पडंति दुक्खेसु ॥
विसकंटयविध्दा वा । पडिदा अडवीए एगागी ॥ ९९ ॥

अर्थ— जैसैं विषकंटककरि वेध्या पुरुष एकाकी वनीमैं पड्या हुवा दुःख भोगे है, तैसैं
मिथ्यात्व-माया-निदान तीन शल्यरूप विषकंटककरि वेध्या हुवा साधु दुःखनिमें पडत है ॥

पंथं छंडिय सो जा- । दि साधुसत्थस्स चेव पासाउं ॥
जो पडिसेवदि पास- । त्थसेवणाउं हु णिद्धम्मो ॥ १३०० ॥

अर्थ— जो साधुसमूहकी निकटतातैं मार्गकूं छांडिकरिकै अर चारित्रकी विराधना
करे है, सो पार्श्वस्थका सेवन करनेवाला धर्मरहित है ॥ गाथा-

इंदियकसायगरुय- । त्तणेण चरणं तणं व पस्संतो ॥
णिध्दम्मो हु भवित्ता । सेवदि पासत्थसेवाउं ॥ १ ॥

अर्थ— जो साधूका व्रत अंगीकार करिकैहू इंद्रिय और कषाय इनिका तीव्रपणातैं
चारित्रकूं तृणसमान देखे है, सो अधर्मी होयकारिकै अर पार्श्वस्थपणाकूं सेवे है—अंगीकार
करे है ॥ ऐसैं पार्श्वस्थका स्वरूप कह्या ॥ अब कुशीलजातिका भ्रष्टमुनीका स्वरूप कहे हैं ॥

इंदियचोरपरुद्धा । कसायसावदभएण वा केई ॥
उम्मग्गेण पलायं- । ति साधुसत्थस्स दूरेण ॥ २ ॥
तो ते कुसीलपडिसे- । वणावणो उप्पधेण धावंता ॥
सण्णाणदीसु पडिदा । किलेससुत्तेण वुड्डंति ॥ ३ ॥
सण्णाणदीसु वुड्डा । वुड्डा थाहं कहं पि अलहंता ॥
तो ते संसारोदधि- । मदंति वहुदुक्खभीसम्मि ॥ ४ ॥

अर्थ— कितनेक साधु इंद्रियचौरकरि उपद्रवकूं प्राप्त भये अर कषायरूप दुष्टतिर्यंचके भयकरिकै उन्मार्गकरिकै साधूका समूहतैं दूरि निकले है ॥ भावार्थ— कितनेक साधुपणा अंगीकार करिकैभी इंद्रियनिके विषय अर कषाय इनकरि पीडित भये साधुपणाका मार्गकूं उलंघनकरि मिथ्यामार्गमें प्रवर्तन करे हैं ॥ बहुरि तिस साधूका मार्गतैं निकस्या कुशीलप्रतिसेवनारूप वनविषैं उन्मार्गकरिकै दोडते च्यारि संज्ञारूप नदीमैं पडे क्लेशरूप प्रवाहकरिकै डूबे हैं ॥ भावार्थ— जे साधूका आचार छोडि ऊवट मार्गकरि दोडै हैं, ते आहारसंज्ञा भयसंज्ञा मैथुनसंज्ञा परिग्रहसंज्ञा येही जे नदी तिनमैं क्लेशके प्रवाहकरि डूबे हैं ॥ बहुरि संज्ञानदीके प्रवाहकरि वहता कहूभी ठहरनेकूं स्थान नही प्राप्त होत हैं ॥ पाछै वहता वहता बहुतदुःखनिकरि भयंकर जो संसारसमुद्र तामैं प्रवेश करे

हैं ॥ कुशीलमुनि त्रसस्थावरयोनिनिमैं अनंतकाल परिभ्रमण करे हैं ॥ गाथा—

आसागिरिदुग्गाणि य । अदिगम्मति दंडकक्कडसिलासु ॥
उलुंठिय पब्भट्ठा । खविंति अणंतयं कालं ॥ ५ ॥

अर्थ— बहुरि कुशीलमुनि है सो आशारूप पर्वतके शिखरतैं पडिकरिकै मन वचन कायकी कुटिलप्रवृत्तिरूप कर्कशशिलाविषैं लोटते भ्रष्ट भये अनंतकाल व्यतीत करे हैं ॥

भावार्थ— कुशीलमुनि विषयनिकी आशाथकी मनवचनकायकी वक्रताकूं प्राप्त होय अर भ्रष्ट हुवा अनंतसंसारपरिभ्रमण करे हैं ॥ गाथा—

बहुपावकम्मकरणा- । डवीसु महदीसु विप्पणट्ठा वा ॥
अद्दिट्ठणिव्वुदिपधा । भमंति सुचिरं पि तत्थेव ॥ ६ ॥

अर्थ— बहुरि कुशीलमुनिकै कहा होय है, सो कहे हैं । ते कुशीलमुनि बहुत पापकर्मके करनेरूप महावनी तिनविषैं नष्ट भये । तथा नहीं देख्या है निर्वाणका मार्ग जिननैं ऐसे चिरकालपर्यंत संसारमें भ्रमण करे हैं ॥ गाथा—

दूरेण साधुसत्थं । छंडिय सो उप्पधेण हु पलादि ॥
सेवदि कुसीलपडिसे- । वणाउ जो सुत्तदिट्ठाउं ॥ ७ ॥

अर्थ— जे साधुनिके संघकूं दूरिही त्यागिकरिकै अर एकाकी हुवा उन्मार्गमें

प्रवर्तन करे हैं ते शीलप्रतिसेवना सेवे हैं, ऐसें जिनसूत्रमें दिखाया है ॥ गाथा—

इंदियकसायगुरुग- । त्तणेण चरणं तणं व परसंतो ॥
णिद्धंधसो भवित्ता । सेवदि हु कुसीलसेवाउं ॥ ८ ॥

अर्थ— जे इंद्रिय अर कषाय इनका तीव्रपणाकरिकैं चारित्रकूं तृणसमान देखता चारित्रतैं भ्रष्ट होय हैं, ते निर्लज्ज होयकरिकैं कुशीलसेवाकूं सेवन करे हैं ॥ ऐसें कुशीलजातिके भ्रष्टमुनीका स्वरूप कह्या ॥ अब यथाछंदजातिके भ्रष्टमुनिका स्वरूप कहे हैं ॥

सिद्धिपुरमुवल्लीणा । वि केइ इंदियकसायचोरेहिं ॥
पविलत्तचरणभंडा । उवहदमाणा णियत्तंति ॥ ९ ॥
तो ते सीळदरिद्दा । दुक्खमणंतं सदा वि पावंति ॥
वहुपरिजणो दरिद्दो । पावदि तिव्वं जधा दुक्खं ॥ १३१० ॥
सो होदि साधुसत्था- । दु णिग्गदो जो भवे जधाछंदो
उस्सुत्तमणुवदिट्ठं । च जधिच्छाए वि कप्पिंतो ॥ ११ ॥

अर्थ— कितनेक साधु निर्वाणपुरप्रति गमन करनेमें उद्यमी भये हुयेहू इंद्रिय अर कषायरूप चोरनकरि चारित्ररूप धन नष्ट करिकै अर मुनिपणाका अभिमानकूं नष्ट करे हैं, ते उलटे संसारहीमें वाहुडे हैं। पश्चात् शील जो आपका सत्यार्थ निज-

स्वभाव ताकरि रहित दरिद्री हुवा सदाकाल संसारमें अनंतदुःख पावे हैं। जैसें बहुतपरिवार कुटुंबका धनी दरिद्री भया तीव्र दुःख पावे है, तैसें निजस्वभावरहित या जीव त्रसथावरयोनिमैं घोरदुःख पावे है अर जो शीलतैं नष्ट होय साधुमुनिनिके संघतैं निकलि जाय तादि सूत्रविरुद्ध गुरुनिका उपदेशरहित यथेच्छ कल्पना करता स्वच्छंद होय है॥ भावार्थ- कितनेक जीव साधुपणाहू धारैं अर महाव्रतादिक अंगीकारहू करै अर निर्वाणके अर्थि निरंतर उद्यमहू करै, परंतु इंद्रियनिकै विषय तथा कषायनिकै वशी होय चरित्रधर्मका नाश करि मुनिपणाका अभिमान बिगाडि शीलरहित दरिद्री हुवा गुरुनिका उपदेशविनाही उत्सूत्र कहिये सूत्रविरुद्ध आपकी इच्छाकरि कल्पना करे हैं, तिनकूं स्वच्छंद कहिये हैं। ते उन्मार्गी संसारमें अनंत-दुःखकूं प्राप्त होय हैं॥ गाथा-

जो होदि जधाछंदो। तस्स धणिदं पि संजमितस्स॥
णत्थि दु चरणं चरणं। ख़ु होदि सम्मत्तसहचारि॥ १२॥

अर्थ— जो मुनि स्वेच्छाचारी है सो अतिशयरूप संयममें प्रवर्तन करै तोहू ताकै चरित्र नही होय है। चारित्र है सो सम्यक्त्वका सहचारी है, यातैं सम्यक्त्व-सहितहीकै चारित्र होय है। अपनी इच्छातैं सूत्रविरुद्ध आचरण करै, ताकै सम्य-

क्त्वहू नहीं अर चारित्रहू नहीं होय है ॥ गाथा–

इंदियकसायगुरुय- । त्तणेण सुत्तं पमाणमकरंतो ॥
परिमाणेदि जिणुत्ते । अत्थे सच्छंददो चेव ॥ १३ ॥

अर्थ— जो साधु इंद्रिय अर कषाय इनकी तीव्रताकरिकै जिनेंद्रकरि कहे हुये सूत्रकूं नहीं प्रमाण करता जिनेंद्रके कहे अर्थनिकूं अवज्ञा करे है, जिनोक्त अर्थहूमें स्वच्छंद मार्गरहित प्रमाण करे है, सो साधु स्वच्छंद है–जिनेंद्रका सत्यार्थ मार्गतें भ्रष्ट है ॥ ऐसें यथाछंदका स्वरूप कह्या ॥ अब संसक्तका स्वरूप कहे हैं ॥ गाथा–

इंदियकसायदोसे- । हिं अध व सामणजोगपरिदंतो ॥
जो उंवायदि सो हो- । दि णियत्तो साधुसत्थादो ॥ १४ ॥

अर्थ— केई इंद्रिय अर कषायनिके दोषकरि चारित्रतैं चलायमान होय है अथवा सामान्य मनवचनकायके योगनिकरि दम्या हुवा चारित्रतैं भ्रष्ट होय है, सो साधु साधुनिका संघतैं निवृत्त होय है–रहित होय है ॥ गाथा–

इंदियकसायवसिया । केई ठाणाणि ताणि सव्वाणि ॥
पाविज्जंते दोसे- । हिं तेहिं सव्वेहिं संसत्ता ॥ १५ ॥

अर्थ— कितनें मुनि इंद्रियनिके अर कषायके वशी भये, ते सकलदोषनिकरि

सकल अशुभपरिणामनिके स्थाननिकूं प्राप्त होय हैं, ते संसक्त कहे हैं ॥ ऐसैं संसक्तजातीका भ्रष्टमुनीका स्वरूप कह्या ॥ गाथा–

इय एदे पंचविधा । जिणेसवयणा दु गुंछिदा सुत्ते ॥
इंदियकसायगरुग- । त्तणेण णिच्चं पि पडिकुध्दा ॥ १६ ॥

अर्थ— ऐसे ये पंचप्रकारके भ्रष्ट मुनि जिनेंद्रभगवान परमागममें निंद्यरूप कहे हैं, ये निंद्यमुनि हैं ते मुनिका भेष धारे हैं, तथापि इंद्रियनिके विषयनिकी तीव्रतातैं नित्यही जिनेंद्रधर्मतैं प्रतिकूल हैं–पराङ्मुख हैं ॥ ऐसैं पार्श्वस्थपणा कह्या ॥ गाथा–

दुठ्ठा चवला अदिदु- । ज्जया य णिच्चं पि समणुबध्दा य ॥
दुक्खावहा य भीमा । जीवाणं इंदियकसाया ॥ १७ ॥

अर्थ— जीवनिके ये पांच इंद्रिय अर क्रोधादिक च्यारि कषाय ये अतिदुःखकारी हैं। कैसेक हैं इंद्रिय अर कषाय? आत्माकै उपद्रवकारीपणातैं दुष्ट हैं, अर अवस्थित नही तातैं चपल हैं, अर महान बलवानहू–जीति न सकै तातैं अतिदुर्जय हैं, अर चारित्रमोहके तीव्र उदयतैं वारंवार आत्मातैं बंधे हैं, अर दुःखके वहनेवाले हैं अर अति भयकारी हैं ॥ भावार्थ– आत्माकै जितने क्लेश हैं तितने विषयनिके अनुरागतैं हैं, तथा कषायनिकी तीव्रतातैं हैं, तथा विषय नही प्राप्त होय तो महादुःख होय है,

अर जो प्राप्त होयकरि विनाशि जाय तो अतिदुःख होय है, अर विषय तथा अभिमानादिकतैंही भय उपजे है, विषयादिक विनसनेका जगतमें बडा भय होय है ॥

मरुतेल्लं पि पियंतो । वत्थो जह वादि पूदियं गंधं ॥
तध दिक्खिदो वि इंदिय- । कसायगंधं वहदि कोई ॥ १८ ॥

अर्थ— जैसैं बकरा सुगंधतैल तथा अत्तर पीवताहू दुर्गंधही पसेवकूं तथा मदकूं उगले है, तैसैं कितने पुरुष जिनदीक्षा ग्रहणकरि संयम धारताहू मिथ्यादर्शन तथा चारित्रमोहका तीव्र उदयतैं इंद्रियनिके विषयनिकी वांछाकूं तथा क्रोधादिकषायतैं उपजी मलिनताकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा—

भुंजंतो वि सुभोयण- । मिच्छादि जध सूयरो समलमेव ॥
तध दिक्खिदो वि इंदिय- । कसायमलिणो हवादि कोई ॥ १९ ॥

अर्थ— ग्रामसूकर सुंदर मेवा मिष्टान्न भोजन करतेहू विष्ठाके भक्षण करनेकीही इच्छा करे है, तैसैं कोऊ दीक्षा ग्रहण करिकैहू भ्रष्ट होय इंद्रियनिके विषयनिकी लालसा करे है, तथा कषायनिके आधीन होय है ॥ गाथा—

वाहभयेण पलादो । जूहं दट्ठूण वागुरापडिदं ॥ सयमेव मउं वागुर- ।
सदीदि जध जूहतण्हाए ॥ १३२० ॥ पंजरमुक्को सउणो । सुइरं आरा-

मघसु विहरंतो ॥ सयमेव पुणो पंजर-। मदीदि जव णीडतण्हाए ॥
२१ ॥ कलभो गयेण पंका। उद्धरिदो दुद्धरादु वलिएण ॥ सयमेव
पुणो पंकं। जलतण्हाए जध अदीदि ॥ २२ ॥ अग्गिपरिक्खित्तादो।
सउणो रुक्खादु उप्पदित्ताणं ॥ सयमेव तं दुमं सो। णीडणिमित्तं
जध अदीदि ॥ २३ ॥ लंघिज्जंतो अहिणा। पासुत्तो कोइ जग्गमाणेण ॥
उट्ठविदो तं घेत्तुं। इच्छदि जध कोदुहल्लेण ॥ २४ ॥ सयमेव वंतम-
सणं। णिल्लज्जो णिग्घिणो सयं चेव ॥ लोलो किविणो भुंजदि। सुणहो
जध असणतण्हाए ॥ २५॥ एवं केई गिहिवा-। सदोसमुक्का वि ।दिक्खिदा
संता ॥ इंदियकसायदोसे-। हिं पुणो ते चेव गिण्हंति ॥ २६ ॥

अर्थ— जैसैं व्याध जो शिकारी, सो मृगनिकूं पकडनेकूं वनमें जाल पसाऱ्या,
तदि कोऊ मृग शिकारीका भयकरिकैं वडी दूरि भागि गया अर अन्य समस्तमृगनिका
समूह जालमें फसिगया तदि दूरि भाग्याहू मृग अपने जूथकी तृष्णाकरि स्वयमेव
जालमें आय पडे है, यद्यपि शिकारीके भयतैं भागि गया तथापि जूथविना अकेला
आपकूं देखि क्लेशित होय अपने साथीनिकूं हेरता स्वयमेव अपने यूथके सामिल
जालमें आय पडे है, पाछै शिकारीकरि माऱ्या जाय है; तैसैं संसारी जीव परिग्रह

त्यागि दीक्षित होयकरिकेहू इंद्रियकषायनिका प्रेऱ्या परिग्रहमें बहुरि आय फसे है ॥
तथा जैसें पिंजरातें छूट्या पक्षी बहुत काल बागबगीचेनिमें विहार करताहू स्थानकी
तृष्णाकरि बहुरि स्वयमेव पिंजरेकूं प्राप्त होय है; तैसें संसारी जीव गृहकुटुंबके बंधनतें
छूटि दीक्षित होयकरिकेहू विषयकषायनिका प्रेऱ्या हुवा बहुरि स्थानादिकमें ममत्वकरि
आय फसे है ॥ तथा जैसें हस्तीका बच्चा कर्दममें फस्या ताकूं कोऊ बलवान् हस्ती बडे
अगाध कीचतें बाहिर काढ्या, परंतु बहुरि जलकी तृष्णाकरि स्वयमेव कर्दममें जाय
फसे है; तैसें कोऊ त्यागी हुवाहू विषयनिकी तृष्णाकरिकें संसाररूप कर्दममें बहुरि
उलझि मरे है ॥

तथा जैसें कोऊ वृक्षके अग्नि लागि तदि उस वृक्षमें बसनेवाले पक्षी अपने घुरसाले
छोडिकरिकैं उस वृक्षके बाहिर भागे, परंतु अपने घुरसालेकूं दग्ध होता जानि च्यारि-
थोडी वृक्षके ऊपरि भ्रमण करि उस वृक्षहीमें पडि दग्ध होय है; तैसें इंद्रियनिके विषय
तथा कषायका प्रेऱ्या दीक्षित हुवाहू विषयरूप अग्निमें पडि दुर्गतिकूं जाय प्राप्त होय
है ॥ तथा जैसें कोऊ पुरुष शयन करै था, ताकूं सर्प उलंघन करि गया, पाछै कोऊ
जाग्रत पुरुष ताकूं जगायकरि कही "अरे, तोकूं सर्प उलंघन करि गया है" तादि
तिससर्पकूं कौतूहलकरि ग्रहण करनेकी इच्छा करै; तैसें परिग्रहकूं त्यागि बहुरि ग्रहण

करना है ॥ तथा जैसैं आपकरि वमन कस्या भोजनकूं निर्लज्ज निर्घृण लोलपी नीच श्वान भोजनकी तृष्णाकरि भक्षण करे है, तैसैं निर्लज्ज नीच सूगलो कोऊ पुरुष विषय कषाय त्यागि जिनदीक्षा ग्रहण करिकैहू बहुरि विषयनिकूं भोगे है ॥

ऐसैं कितने गृहवासका दोष छांडिकरिकै दीक्षित हुवा संताहू इंद्रियनिके विषय तथा कषायनिके दोषकरिकै बहुरि तिन गृहवासके दुःखनिहीकूं ग्रहण करे हैं । कैसाक है गृहवास? यह हमारा यह हमारा ऐसा ममत्वका आधार है ममत्व यामैं वसे है। बहुरि निरंतर जीवकै आशा अर लोभके उत्पन्न करनेमें समर्थ है। बहुरि कषायनिकी खनि है। बहुरि इसकै पीडा करूं इसकै उपकार करूं ऐसे परिणाम करनेमें समर्थ है। बहुरि पृथ्वी जल अग्नि पवन वनस्पति इनकी हिंसामैं प्रवृत्ति करावनेवाला है। बहुरि चेतन अचेतन अल्प तथा बहुत धनके ग्रहण करनेमें तथा बधावनेमें मनवचनकायकरिकै परिश्रम करावनेवाला है। बहुरि इस गृहवासमें तिष्ठता जन असारकूं सार, तथा अनित्यकूं नित्य, तथा अशरणकूं शरण, तथा अशुचिकूं शुचि, तथा दुःखकूं सुख, तथा अहितकूं हित, तथा अनाश्रयकूं आश्रय, तथा शत्रूकूं मित्र मानता संता सर्वतरफ दौडे है। बहुरि कैसा है गृहवास? तामैं मनुष्य महादुःखी हुवा तिष्ठे है, जैसैं लोहके पींजरेमें सिंह तिष्ठे तथा पासीमैं पड्या मृग तिष्ठै तथा जैसैं कर्दममें मग्न वृध्दहस्ती तैसैं

अन्यायकर्दममें मग्न होय रह्या है ॥

बहुरि नानाप्रकारके बंधनकरि बंध्या बंदीखानेमें जैसें चोर तिष्ठै तथा व्याघ्रनिके तिनकीनांई तिष्ठता बीचि बलरहित हरिण तिष्ठै तथा पासीमें खैंच्या जलचर जीव तिष्ठै तिनकीनांई तिष्ठता प्राणी कामरूप बहुत अंधकारके पटलकरि आच्छादित करिये है। तथा रागरूप महासर्पके जहरकरि लोक उपद्रवसहित वर्तें हैं—अचेत होय रहे हैं। तथा चिंतारूप डाकिनी ग्रासीभूत करे है। तथा शोकरूप ल्यालीकरि उपद्रवरूप होय है। तथा जामें क्रोधरूप अग्नि भस्म करे है। तथा आशारूप लताकरि प्राणीनिकूं बांधिये है। तथा इष्ट पुत्र स्त्री मित्रादिकके वियोगरूप वज्रपातकरि खंड करिये है। तथा वांछितका अलाभरूप बाणनिकरि वेधिये है। बहुरि मायारूप वृध्दस्त्री दृढ आलिंगन करे है। जहां तिरस्काररूप कुहाडेनतैं विदारिये है, जहां अपयशरूप मलकरि लीपिये है, जहां मोहरूप वनहस्तीकरि घातिये है, जहां पापरूप शिकारी मारिकरि नीचै पटके है, जहां भयरूप लोहकी शलाकानिकरि व्यथा करिये है, जहां पश्चात्तापरूप काक दिनप्रति शब्द करे है, जहां ईर्षाकरि विरूपताकूं प्राप्त होइये है, जहां परिग्रहरूप पिशाच ग्रहण करे है।

बहुरि गृहवासमें तिष्ठतो पुरुष असंयमके सन्मुख होय है। तथा ईर्षारूप स्त्रीसूं

प्यार करे है। तथा अभिमानरूप राक्षसका अधिपतिपणाकूं अनुभवे है। तथा विस्तीर्ण उज्वल चारित्ररूप छत्रका सुखकूं नही प्राप्त होय है। तथा संसारके दुःखतैं आत्माकूं नही रक्षा करिसके है। तथा कर्मका नाश करनेकूं नही समर्थ होय है। तथा मरणरूप विषके वृक्षकूं नही दग्ध करे है। तथा मोहरूप दृढ सांखलकूं नही तोडे है। तथा अनेक विचित्र योनीनिमैं परिभ्रमणकूं नही निषेध करे है। इसप्रकार गृहवासके दोषनिकूं त्यागिकरि अर संयम ग्रहण करिकैहू अधमपुरुष विषयकषायकै वशीभूत होय बहुरि परिग्रहादिक अंगीकार करै है; सो पूर्वै कहे अनर्थनिकूं अंगीकार करे है ॥

बंधणमुक्को पुणरे-। व वंधणं सो अचेयणो अदिदि ॥
इंदियकसायवंधण-। मुवेदि जो दिक्खिदो संतो ॥ २७ ॥

अर्थ— जो दीक्षा ग्रहण करिकैहू इंद्रियकषायके बंधनकूं प्राप्त होय है, सो अज्ञानी बंधनतैं छूटया हुवाहू बहुरि बंधनकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा—

मुक्को वि णरो कलिणा। पुणो वि तं चेव मग्गादि कलिं सो ॥
जो दिक्खिदो वि इंदिय-। कसायमइयं कलिमुवेदि ॥ २८ ॥

अर्थ— जो दीक्षित होयकरिकैहू इंद्रियकषायमय कलहकूं प्राप्त होय है, सो कहा करे है? जैसें कोऊ पुरुष कलहकरिकै छूट्या हुवा बहुरि कलहहीकूं हेरे है! तैसें

अनर्थ करे है ॥ गाथा–

सो णिच्छदि मोत्तुं जे । हत्थगयं उम्मुयं सुपज्जलियं ॥
अक्कमदि किण्हसप्पं । छादं[1] वग्घं च परिमसदि ॥ २९ ॥ [1] क्षुधितं
सो कंठोलइदसिलो । दहमत्थाहं अदीदि अण्णाणी ॥
जो दिक्खिदो वि इंदिय- । कसायवसिगो हवे साधू ॥ १३३० ॥

अर्थ— जो अज्ञानी साधु दीक्षित होयकरिकैहू इंद्रियकषायकै वशी होय है; सो हस्तमें प्राप्त हुवा जो प्रज्वलित अंगारा ताहि नही छंड्या चाहे है, अथवा कुष्णसर्पकूं ग्रहण करे है, अथवा क्षुधावान् व्याघ्रकूं आलिंगन करे है, तथा कंठविषैं शिला बांधि अगाधद्रहमें प्रवेश करे है ॥ गाथा–

इंदियगहोवसिट्ठो । उवसिट्ठो ण दु गहेण उवसिट्ठो ॥
कुणदि गहो एयभवे । दोसं इदरो भवसदेसु ॥ ३१ ॥

अर्थ— इंद्रियरूप पिशाचकरि ग्रहण कीया पुरुष गृहीत कहिये परवश है अर पिशाचकरि ग्रहण कीया गृहीत नही है। जातैं पिशाच तो एकभवमें दोष करे है–अनर्थ करे है अर इंद्रियनिके विषय संख्यात असंख्यात अनंतभवनिमें अनर्थ करे हैं ॥ गाथा–

होदि कसाउम्मत्तो । उम्मत्तो तध ण पित्तउम्मत्तो ॥

ण कुणदि पित्तुम्मत्तो । पावं इदरो जधुम्मत्तो ॥ ३२ ॥

अर्थ— जैसैं कषायनिकरि उन्मत्त मनुष्य उन्मत्त होय है, तैसैं पित्तकरि उन्मत्त उन्मत्त नही होय है। जैसैं कषायनिकरि उन्मत्त पाप करे है, तैसें पित्तकरि उन्मत्त पाप नही करे है। जातैं कषायनिकरि उन्मत्त तो हिंसादिकपापनिमें प्रवर्तन करे है अर कर्मनिकी स्थितीकूं दीर्घ करे है अर पापप्रकृतिनिमैं अनुभाग वधावे है अर पुण्यप्रकृतिनिमैं अनुभाग घटावे है, ऐसैं पित्तोन्मत्त अनर्थ नही करे है ॥ गाथा—

इंदियकसायमइया । णरं पिसायं करांति हु पिसाया ॥
पावकरणवेलंबं । पेच्छणयकरं सुजणमज्झे ॥ ३३ ॥

अर्थ— इंद्रियकषायरूप पिशाच हैं ते पुरुषनैं पिशाच करे हैं तथा पाप करनेमें विलंब नही करे हैं, तथा सुजनांके मध्य निंद्य करे हैं ॥ गाथा—

कुलजस्स जसं इच्छं- । तयस्स णिधणं वरं खु पुरिसस्स ॥
ण य दिक्खिदेण इंदिय- । कसायवसिएण जीदुं जे ॥ ३४ ॥

अर्थ— आपके यशकूं इच्छा करता अर महान् कुलमें उत्पन्न भया ऐसा पुरुषकूं मरण करना श्रेष्ठ है, परंतु जिनेंद्रकी दीक्षा ग्रहण करिकै इंद्रियकषायकै वश होय जीवना श्रेष्ठ नही है ॥ गाथा—

जध सण्णद्धो पग्गहि- । दचावकंडो रधी पलायंतो ॥
णिंदिज्जदि तध इंदिय- । कसायवसिगो वि पव्वयिदो ॥ ३५ ॥

अर्थ— जैसैं ग्रहण कीया है धनुष्यबाण जानै अर सज्य हुवा ऐसा रथी जो महान् जोद्धा सो रणमें भागता संता निंद्यताकूं प्राप्त होय है; तैसैं दीक्षा ग्रहण करिकै अर इंद्रियकषायके वशवर्त्ती होय सो जगतमें निंद्यवेजोग्य होय है ॥ गाथा—

जध भिक्खं हिंडंतो । मउडादिअलंकिदो गहिदसत्थो ॥
णिंदिज्जइ तध इंदिय- । कसायवसिगो वि पव्वयिदो ॥ ३६ ॥

अर्थ— जैसैं कोऊ मुकुटादिक आभरणकरि भूषित अर समस्तशस्त्रनिकूं ग्रहण कीये भिक्षाके निमित्त परिभ्रमण करै, ताकूं जगतमें निंदिये है; तैसैं जिनेंद्रदीक्षा ग्रहण करिकै अर इंद्रियकषायनिके आधीन होय सो मुनि निंदा करनेयोग्य है ॥ गाथा—

इंदियकसायवसिगो । मुंडो णग्गो य जो मलिणगत्तो ॥
सो चित्तकम्मसवणो । व समणरूवो असमणो दु ॥ ३७ ॥

अर्थ— जो मुंडहू मुंडाय अर नग्न होय अर मलिन शरीर स्नानादिक संस्काररहित मुनि होयकरिकै इंद्रियकषायनिकै वश होय है, सो चित्रामका मुनिकीनांई मुनि-कासा रूप है, तोऊ मुनि नहीं है ॥ गाथा—

णाणं दोसे णासदि । णरस्स इंदियकसायविजयेण ॥
आउहरणं पहरणं । जह णासेदि अरिं ससत्तस्स ॥ ३८ ॥

अर्थ— पुरुषके इंद्रिय अर कषायका विजय करिकै ज्ञान है सो दोषनिका नाश करे है, जो इंद्रियकषायके विजयविना ज्ञानाभ्यासपणा है तथा ज्ञानीपणा है सो वृथा है। जैसें पराक्रमी जोध्दाके हस्तविषैं मारनेवाला शस्त्र वैरीकूं मारे है अर कायरके हस्तमें शस्त्र वैरीनिका घात करनेमें समर्थ नही है॥ भावार्थ— ज्ञान है सो मिथ्यात्वादिक अनेकदोषनिका नाश करनेवाला है, परंतु विषयकषायके जीतनेवाला पुरुषकै है। जैसें आयुध वैरीकूं मारे है, परंतु शूरवीरके हाथि हुवा मारे है॥ गाथा—

णाणं पि कुणदि दोसे । णरस्स इंदियकसायदोसेण ॥
आहारो वि हु पाणे । णरस्स विससंजुदो हरदि ॥ ३९

अर्थ— मनुष्यके इंद्रियनिके विषय अर कषायनिके दोषकरिकै ज्ञानभी दोषनिकूं करे है। जैसें विषकरिकै मिल्या सुंदर आहारहू प्राणनिकूं हरे है॥ भावार्थ— यद्यपि ज्ञान पावना बहुत गुणकारक है, तथापि जो विषयकषायनिमें लीन है ताकै ज्ञानभी दोषही करैगा—विपरीत परिणमन करेगा, गुण नही करेगा। ज्ञान पावना तो मंद-कषायीकै तथा विषयवांछारहितकै गुणकारक है॥ गाथा—

णाणं करेदि पुरिस- । स्स गुणे इंदियकसायविजयेण ॥
वलरूववण्णमाऊ । करेदि जुत्तो जधाहारो ॥ १३४० ॥

अर्थ— मनुष्यकै ज्ञानहू इंद्रियकषायका विजयकरिकै गुणनिकूं करे है। जैसैं योग्य आहार बल रूप तेज वर्ण आयूकूं विस्तीर्ण करे है ॥ गाथा—

णाणं पि गुणे णासे- । दि णरस्सिंदियकसायदोसेण ॥
अप्पत्रधाए सत्थं । होदि हु कापुरिसहत्थगदं ॥ ४१ ॥

अर्थ— जैसैं कापुरुषका हस्तमें प्राप्त हुवा शस्त्र अपनेही मरणके अर्थि होत है, तैसैं मनुष्यके इंद्रियकषायनिके दोषकरिकै ज्ञानाभ्यासहू गुणनिका नाश करनेवाला होय है। विषयनिका लंपटी तीव्रकषायीका ज्ञान तीव्रबंध करे है, ज्ञानी होय निंद्यकर्म करै तिसका जगत् अपवाद करे है ॥ गाथा—

सुवहुस्सुदो वि अवमा- । णिज्जदि इंदियकसायजोगेण ॥
णरमाउधहत्थं पि हु । मदयं गिध्दा परिभमंति ॥ ४२ ॥

अर्थ— जैसैं आयुध है हस्तविषैं जाकै ऐसाहू मृतकमनुष्यका गृध्रपक्षी तिरस्कार करे है, तैसैं बहुतश्रुतका धारकहू इंद्रियकषायका योगकरिकै अवज्ञा करिये है ॥ भावार्थ— जो पुरुष बहुतश्रुतज्ञानका धारकहू होयकरिकै अर इंद्रियांका विषयांमें

लंपटी होय है तथा कषायनिमैं प्रवर्तन करे है, सो जगतमें सर्वप्रकारकरि तिरस्कारकूं प्राप्त होय है। जैसैं मृतकमनुष्य शस्त्रधारकहू होय तोहू काकगृध्रादि निर्भय भया ताका मांसकूं चूंथे है॥ गाथा-

इंदियकसायवसगो। बहुस्सुदो वि चरणे ण उज्जमदि॥
पक्खी व छिण्णपक्खो। ण उप्पददि इच्छमाणो वि॥ ४३॥

अर्थ— इंद्रियनिके विषय तथा कषायकै वशीभूत हुवा बहुश्रुती पुरुषहू चारित्रमें उद्यम नही करि सके है, पापनितैं भयकरि पापकूं त्याग्या चाहै, तोहू विषयनिका अनुरागतैं कषायनिकी तीव्रतातैं पापहीके मार्गमें प्रवर्तन करे है। जैसैं जाकी पांखां छेदी गई ऐसा पक्षी उडनेकी इच्छा करै, तोहू नहीं उडि सके है॥ गाथा-

णासदि य सगं बहुगं। पि णाणमिंदियकसायसम्मिस्सं॥
विससम्मिसिदं दुध्दं। णस्सदि जध सक्कराकढिदं॥ ४४॥

अर्थ— इंद्रियनिके विषय अर कषायसूं मिल्या हुवा बहुत बडा ज्ञानहू स्वयमेव नाशकूं प्राप्त होय है। जैसैं मिश्री मिलाय अग्निपरि ओटाया दुग्धहू विषकरि मिल्या हुवा नष्ट होय है॥ गाथा-

इंदियकसायदोसे। मलिणं णाणं ण वट्टदि हिदे से॥

वट्टदि अण्णस्स हिदे । खरेण जह चंदणं वूढं ॥ ४५ ॥

अर्थ— विषय अर कषायके दोषकरि मलिन ज्ञान है सो आपके हितविषैं नही प्रवर्ते है। जैसैं गर्दभकरि वह्या चंदनका भार अन्यलोकनिकूं सुगंधरूप करनेकरि अन्यके हितमें प्रवर्ते है अर आप तो भारही वहे है–आप सुगंध ग्रहण नही करे है। तैसैंही विषयानुरागी तथा कषायी पुरुष ज्ञानका अभ्यास तथा व्याख्यानकरि अन्यलोकनिकूं धर्ममें प्रवर्तन कराय अन्यकी हितमैं प्रवृत्ति करावे है। परंतु आप विषयनिमें कषायनिमें अंध हुवा अपने आत्माकूं तो नरक तिर्यंचगतिविषैंही पटके है ॥ गाथा–

इंदियकसायणिग्गह- । णिमीलिदस्स हु पयासदि ण णाणं ॥
रत्तिं चक्खुणिमील- । स्स जधा दीवो सुपज्जलिदो ॥ ४६ ॥

अर्थ— जैसैं रात्रिके विषैं दीपक समस्तवस्तूका प्रकाश करनेवाला है, परंतु जाके दोऊ नेत्र निमीलित होय रहे हैं ऐसा अंधकूं दीपक कुछ दिखावनेमें समर्थ नही है; तैसैं इंद्रियनिके विषय अर कषाय जिसनैं नही निग्रह कीया तथा विषयकरि हृदय जाका मुद्रित होय रह्या, ताकै ज्ञान नही प्रकाश करे है–पदार्थनिकूं यथावत् नही दिखाय सके है ॥ गाथा–

इंदियकसायमइलो । बाहिरकरणणिहुदेण वेसेण ॥

आवहदि कोइ विसए। सउणो वीदंसगेणेव ॥ ४७ ॥

अर्थ— कोऊ बाह्य गमन आगमनादिक क्रियामैं निश्चल साधुकासा आचरण करे है अर अंतरंगमें इंद्रियनिके विषय तथा कषायकरि मलिन हुवा विषयनिकूं वहे है, सो, पाशकरि बंध्या हुवा पक्षीकीनांई बंध्या जाय है ॥ गाथा—

घोडयलंद्दिसमाण-। स्स तस्स अभ्भंतरंमि कुधिदस्स ॥ [1]

वाहिरकरणं किं से। काहिदि वगणिहुदकरणस्स ॥ ४८ ॥

अर्थ—जैसैं घोडेकी लादी बाह्य तो सचिक्कण दीखे है अर मांहि महादुर्गंध मलिन है, ताकी बाह्य उज्वलताकरि कहा साध्य है? तैसैं जो साधु बाह्य नग्नता तथा शीत उष्णादिकपरीषहकी सहनता तथा अनशनादिक तप इनिकरि तो उज्वल है अर अभ्यंतर विषयनिकी इस लोक परलोकमें चाहना तथा अभिमानादिक कषायकरि मलिन है, ताका आचरण बुगलाकीनांई बाहिर इंद्रियां रोकि राखी है अर अंतरंगमें दुष्टता है, ताका बाह्य व्रततपकरि कहा साध्य है? वृथा है ॥ गाथा—

वाहिरकरणविसुध्दी। अभ्भंतरकरणसोधणत्थाए ॥

ण हु कुंडयस्स सोधी। सक्का सतुसस्स कादुं जे ॥ ४९ ॥

अर्थ— बाह्यक्रियाकी शुद्धता है सो अभ्यंतर विनयादिक तथा ध्यानादिककी

[1] लिंड इत्यपि

शुद्धि ताके अर्थि होय है। जातैं तुससहित तंदुलकी अभ्यंतर लाली नही दूरि होय है। पहली तुष दूरि होयगा तदि अभ्यंतर रक्तता दूरि होयगी। तैसैं जाका बाह्य आचरण शुद्ध होयगा ताहीका अभ्यंतर आतमपरिणाम शुद्ध होयगा। तातैं बाह्यप्रवृत्ति शुद्ध करि आतमाकी शुद्धता करो ॥ गाथा–

अब्भंतरसोधीए। सुद्धं णियमेण बाहिरं करणं ॥
अब्भंतरदोसेण हु। कुणदि णरो बाहिरं दोसं ॥ १३५० ॥

अर्थ— अभ्यंतर आतमपरिणामकी शुद्धताकरि बाह्यक्रियाकी शुद्धता नियमकरिकै होय है। अर अभ्यंतरदोषकरिकै पुरुष बाह्यदोषकूं नियमकरिकै करेही है ॥ गाथा–

लिंगं च होदि अब्भं-। तरस्स सोधीए बाहिरा सोधी ॥
भिउडीकरणं लिंगं। जह अंतो जादकोधस्स ॥ ५१ ॥

अर्थ— या बाह्य शुद्धता है सो अभ्यंतरशुद्धताका लिंग कहिये चिह्न है। जैसैं जाके अभ्यंतर क्रोध उपज्या होय, ताका भ्रकुटीका वक्र करना लिंग है ॥ भावार्थ– जाकी भ्रकुटी टेढी वांकी चढी रही होय, ताके अंतरंगमें क्रोध जान्या जाय है, तैसैं बाह्यचिन्हनिकरि अभ्यंतरपरिणाम जान्या जाय है ॥ गाथा–

ते चेव इंदियाणं। दोसा सव्वे हवंति णादव्वा ॥

कामस्स य भोगाण य। जे दोसा पुव्वणिद्दिट्ठा ॥ ५२ ॥

अर्थ— जे दोष पूर्वैं कामके तथा भोगनिके कहे, तेही समस्त दोष इंद्रियनिके विषयनितैं होत हैं, ऐसैं जानना योग्य है ॥ गाथा—

महुलित्तं असिधारं। तिक्खं लेहिज्ज जध णरो कोई ॥
तध विसयसुहं सेवदि। दुहावहं इह हि परलोये ॥ ५३ ॥

अर्थ— जैसैं कोऊ मूढ नर सहतसूं लपेटी तीक्ष्ण खड्गकी धाराकूं आस्वादे है, तहां जीभके स्पर्शमात्र तो मिष्टता, अर जीभ कटि गिर परै ताकी महान् दुःख भोगे है; तैसैं इस लोकमें तथा परलोकमें दुःखके वहनेवाले विषयसुख ताकूं मूढ सेवन करे है॥

सद्देण मउ रूवे-। ण पदंगो वणगउ वि फरिसेण ॥
मच्छो रसेण भमरो। गंधेण य पाविदो दोसं ॥ ५४ ॥
इदि पंचहिं पंच हदा। सद्दरसफरिसगंधरूवेहिं ॥
इक्को कहं ण हणणदि। जो सेवदि पंच पंचेहिं ॥ ५५ ॥

अर्थ— कर्ण इंद्रियका विषय जो शब्द ताका श्रवणकरिकै मृग मार्‍या जाय है। तथा रूपके अवलोकनकरिकै पतंग दीपकमें पडि मरे है। तथा स्पर्शन इंद्रियका विषयकरिकै वनका हस्ती बंधकूं प्राप्त होय है। तथा जिह्वा इंद्रियके विषयकरिकै जलके

मत्स्य मत्स्यी मार जाय हैं। तथा गंधके लोभकरिकै भ्रमर कमलमें मुद्रित होय मरे है॥ ऐसैं पंच इंद्रियनिके शब्द रस स्पर्श रूप गंध ऐसे पंचविषयनिकरिकै पांचूं हते गये, तो एक पुरुष पांचूं विषयनिकूं सेवै सो कैसें नही हण्या जाय?॥ गाथा–

सरजूए गंधमित्तो। घाणिंदियवसगदो विणीदाए॥
विसपुप्फगंधमग्घा-। य मदो णिरयं च संपत्तो॥ ५६॥

अर्थ— विनीता नाम नगरीको पति गंधमित्र नामा राजा सरयूनदीके तटविषैं विषका पुष्पको गंध सुंघिकरिकै मरणकूं प्राप्त होय नरककूं प्राप्त भया॥ गाथा–

पाडलिपुत्ते पंचा-। लगीदसद्देण मुच्छिदा संती॥
पासादादो पडिदा। णट्ठा गंधव्वदत्ता हि॥ ५७॥

अर्थ— पटणानगरविषैं गंधर्वदत्ता नामा स्त्री पंचालगीतके श्रवणकरि अचेत भई संती महलतैं पतनकरिकै प्राणरहित होत भई॥ गाथा–

माणुसमंसपसत्तो। कंपिल्लवदी तधेव भीमो वि॥
रज्जब्भट्ठो णट्ठो। मदो य पच्छा गदो णिरयं॥ ५८॥

अर्थ— मनुष्यका मांसमें आसक्त जो कांपिल्यनगरका स्वामी भीम नामा राजा राज्यतैं भ्रष्ट होय बहुरि मरणकूं प्राप्त होय पाछै नरककूं प्राप्त भया॥ गाथा–

चोरो वि तह सुवेगो। महिलारूवम्मि दत्तदिट्ठीउ ॥
विद्धो सरेण अच्छिसु। मदो य णिरयं च संपत्तो ॥ ५९ ॥

अर्थ— तथा सुवेग नामा चोर स्त्रीका रूपमें दीई है दृष्टि जानैं सो नेत्रनिविषैं बाणकरि वेध्या हुवा मरिकरिकै नरककूं प्राप्त भया ॥ गाथा—

फासिंदिएण गोवे। सत्ता गहवादिपिया वि णासक्के ॥
मारेदूण सपुत्तं। धूदाए मारिदा पच्छा ॥ १३६० ॥

अर्थ— नासक्य कानानको नाम ग्रामविषैं गृहपातिकी स्त्री स्पर्शन इंद्रियका विषयकरि गुवालमें आसक्त होय अर अपने पुत्रकूं मारिकरिकै अर पीछै अपने पुत्रीके प्रहारतैं मरिकरिकै नरककूं प्राप्त भई ॥ ऐसैं इंद्रियजनितदोषनिकूं दिखाय अब क्रोधकृतदोष पनरह गाथानिकरि दिखावे हैं ॥ गाथा—

रोसाइट्ठो णीलो। हदप्पभो अरदिअग्गिसंतत्तो ॥
सीदे वि णिवाइज्जादि। वेवादि य गहोवसिट्ठो वा ॥ ६१ ॥

अर्थ— रोषकरिकैं व्याप्त पुरुषकी कांति नील होजाय है, देहकी प्रभा नष्ट होजाय है, अर अरतिरूप अग्निकरि तप्तायमान भया शीतकालहूमैं तप्त होय है; तृषावान् होय है, पिशाचकरि ग्रहण कीया ताकीनांई सर्व अंग कंपायमान होय है ॥ गाथा—

भिउडीतिवलियवयणो । उग्गदणिच्चलसुरत्तलुक्खच्छो ॥
कोवेण रक्खसो वा । णराण भीमो णरो हवदि ॥ ६२ ॥

अर्थ— मनुष्य है सो कोपकरिकै भ्रकुटी चढाय त्रिवलीसहित मुखका धारक होय है, अर विस्तीर्ण-निश्चल-रक्त-रूक्ष-नेत्र होय है, मनुष्यनिके मध्य भयानक राक्षसकी-नांई होय है ॥ गाथा-

जध कोइ तत्तलोहं । गहाय रुट्ठो परं हणामित्ति ॥
पुव्वदरं सो डज्झदि । डहिज्ज व ण वा परो पुरिसो ६३ ॥

अर्थ—जैसैं कोऊ क्रोधी तप्तलोहकूं ग्रहण करिकै कहै मै परकूं हणूं हूं, सो पूर्वै आप दग्ध होय है! पाछे परपुरुष दग्ध होय वा नहीं होय । परताईं पहूंचैगा वा नहीं पहूंचैगा । परंतु तप्तलोहकूं ग्रहण करनेवाला तापहली दग्ध होयही है ॥ गाथा-

तध रोसेण सयं पु- । व्वमेव डज्झदि हु कलकलेणेव ॥
अण्णस्स पुणो दुक्खं । करिज्ज रुट्ठो ण य करिज्ज ॥ ६४ ॥

अर्थ— तैसैंही क्रोधी ताया हुवा लोहके समान रोपकरिकै पूर्वै आपकूं दग्ध करे है पीछे अन्यकै दुःख करै वा नहीं करै ॥ गाथा-

णासेदूण कसायं । अग्गी णस्सादि सयं जधा पच्छा ॥

णासेदूण तध णरं । णिए सउं णस्सदे कोधो ॥ ६५ ॥

अर्थ— जैसें अग्नि इंधनकूं नाश करिकै पीछै स्वयमेव अपना नाशकूं प्राप्त होत है—बुझे है; तैसें क्रोध जीवका ज्ञानदर्शनसुखादिकका नाश करि पाछै आत्माकूं निगोद पहुंचाय आप नष्ट होय है ॥ गाथा—

कोधो सत्तुगुणकरो । णीयाणं अप्पणो य सोथकरो ॥ [1] मण्णु इत्यपि

परिभवकरो सवासे । रोसो णासेदि णरमवसं ॥ ६६ ॥

अर्थ—क्रोध है सो शत्रूनिकै गुणकारक है । जातैं जो क्रोधी होयगा सो सहजही मार्‍या जायगा, इसलोक परलोकमें दुःखका अकीर्तीका पात्र होयगा, तातैं शत्रूनिकै गुणकारक है । अर अपने बांधवनिकै तथा आपकै शोक करनेवाला होय है, अपने स्थानमें तिरस्कार करनेवाला है । यो रोष मनुष्यकूं परवश जैसें होय तैसें नाश करे है ॥

ण गुणे पेच्छादि अववद- । दि गुणे जंपदि अजंपदिवं च ॥

रोसेण रुद्दहिदउं । णारगसीलो णरो होदि ॥ ६७

अर्थ— यो मनुष्य क्रोधकरिकै गुणनिकूं नही देखे है अर गुणनिकाहू अपवाद करे है अर नही बोलनेजोग्य बोले है, रोषकरिकैं रौद्रहृदय हुवा नारकीकासा स्वभाव होय है ॥

जध करिसयस्स धण्णं । वरसेण समज्जिदं खलं पत्तं ॥

डहदि फुलिंगो दित्तो । तध कोहग्गी समणसारं ॥ ६८ ॥

अर्थ— जैसैं क्षेती करनेवाला किसाणका एकवर्षपर्यंत महाकष्टकरि संचय कीया धान्य खलामैं प्राप्त भया ताकूं अग्नीका एक फुलिंगा दग्ध करे है, तैसैं क्रोधरूप अग्नि बहुतकालका संचय कीया साधुपणारूप सारवस्तु ताहि क्षणमात्रमें दग्ध करे है ! ॥

जध उग्गविसो उरगो । दब्भतणंकुरहदो य कुप्पंतो ॥
अचिरेण होदि अविसो । तध होदि जदी वि णिस्सारो ॥ ६९ ॥

अर्थ — जैसैं उत्कटविषका धारक सर्प डाभके वा तृणनिके अंकुरेनिकरि हत्या हुवा क्रोधकरि कोप करता तृणनिऊपरि फण पटकता थोरा कालमें निर्विष होय है-शक्तिरहित होय है; तैसैं क्रोध करता साधूहू धर्मरहित हुवा निःसार होय है ॥ गाथा-

पुरिसो मक्कडसरिसो । होदि सरूवो वि रोसहदरूवो ॥
होदि य रोसणिमित्तं । जम्मसहस्सेसु यदुरूवो ॥ १३७० ॥

अर्थ— सुंदर रूपवान् पुरुषहू रोसकरिकै हण्या जाय है रूप जाका सो मर्कटसमान लालमुख अर विपरीत आकृतिकूं प्राप्त होय है ॥ बहुरि क्रोध करनेतैं आगामी हजारां लाखां कोट्यां जन्मपर्यंत कुरूप होय है ॥ गाथा-

सुट्ठु वि पिउ मुहुत्ते- । ण होदि विस्सो जणस्स कोधेण ॥

पथिदो वि जसो णस्सदि । कुध्दस्स अकज्जकरणेण ॥ ७१ ॥

अर्थ— आपका अत्यंत प्याराभी होय सोहू क्रोधकरिकै जनांकै एकमुहूर्तमें वैर करने-योग्य होय है। क्रोधी पुरुष अकार्य करनेकरिकै विख्यातहू अपना जसकूं नाश करे है॥

णीयल्लगो वि कुध्दो । कुणदि अणीयल्लए व सत्तू वा ॥
मारेदि तेहि मारि- । ज्जदि वा मारेदि अप्पाणं ॥ ७२ ॥

अर्थ— क्रोधी पुरुष आपके पुत्रबांधवादिक निज जे हैं तिननैंहू तथा अनिज जे पर जे हैं तिननैंहू शत्रूकीनांई मारे है अथवा तिनकरिकै आप मार्या जाय है तथा आपही आपकूं मारे है॥ गाथा—

पुज्जो वि णरो अवमा- । णिज्जदि कोवेण तक्खणे चेव ॥
जगविस्सुदं वि णस्सदि । माहप्पं कोहवसियस्स ॥ ७३ ॥

अर्थ— पूज्यहू मनुष्य कोपकरिकैं तींही क्षणमें अवज्ञा करनेयोग्य होय है। क्रोधके वशीभूत जो है ताका जगतमें विख्यातहू माहात्म्य है सो नाशकूं प्राप्त होय है॥

हिंसं अलियं चोज्जं । आचरदि जणस्स रोसदोसेण ॥
तो ते सव्वे हिंसा- । लियादिदोसा भवे तस्स ॥ ७४ ॥

अर्थ— रोसके दोषकरिकै हिंसा करे है, असत्य बोले है, चोरी करे है। तातैं

ते हिंसा अलीकवचनादिक दोष सर्व क्रोधीकै होय हैं ॥ गाथा–

दारवदी य असेसा । दध्धा दीवायणेण रोसेण ॥
वध्दं च तेण पावं । दुग्गदिभयवंधणं घोरं ॥ ७५

अर्थ— द्वीपायनमुनि रोषकरिकै समस्त द्वारावती नगरी दग्ध करी! अर क्रोधकरिकै दुर्गतिके भयकूं कारण ऐसा अर घोर पापका वंध कीया ॥

ऐसैं अनुशिष्टि अधिकारविषैं पंद्रहगाथानिकरि क्रोधका वर्णन कीया ॥ अब सात गाथानिकरि मानकषायके दोष कहे हैं ॥ गाथा–

कुळरूवाणावळसुद- । लाभेसरियत्तमादितवादीहिं ॥
अप्पाणमुण्णमंतो । णीचागोदं कुणदि कम्मं ॥ ७६ ॥

अर्थ— कुल, रूप, आज्ञा, वल, श्रुतलाभ, ऐश्वर्य, वुध्दि, तपादिकका मदकरि आत्माकूं ऊंचा मानता पुरुष नीचगोत्रनामकर्मकूं वांधे है ॥ गाथा–

दट्ठूण अप्पणादो । हीणे मुख्खा उवींति माणकालिं ॥
दट्ठूण अप्पणादो । अधिए माणं ण इंति वुधा ॥ ७७ ॥

अर्थ— मूर्ख हैं ते आपतैं हीन लोकनिकूं देखिकरिकै मानरूप कालिमाकूं वहे है । अर ज्ञानी जन हैं ते आपतैं अधिक पुरुषनिकूं देखिकरिकै अभिमानकूं नही प्राप्त होय हैं ॥

माणी विस्सो सव- । स्स होदि कलहभयवेरदुक्खाणि ॥
पावदि माणी णियदं । इहपरळोए य अवमाणं ॥ ७८ ॥

अर्थ— अभिमानी पुरुष समस्त लोकनिकैं वैर द्वेष करनेयोग्य होय है। बहुरि अभिमानी पुरुष इस लोकमें कलह भय वैर दुःखनिकूं प्राप्त होय है अर परलोकमें निश्चयथकी अनेकभवनिमें अभिमानी अपमानकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा–

सव्वे वि कोहदोसा । माणकसायस्स होंति णादव्वा ॥
माणेण चेव मिधुणं । हिंसालियचोज्जमाचरदि ॥ ७९ ॥

अर्थ— पूर्वें कहे जे समस्त क्रोधके दोष, ते मानकषायके धारकहूके होय हैं ऐसैं जाननेयोग्य है। अभिमानकरिकैही मैथुन हिंसा असत्य चौर्य इत्यादिकपापनिकूं आचरे है

सयणस्स जणस्स पिउ । णरो अमाणी सदा हवदि ळोए ॥
णाणं जसं च अत्थं । लभदि सकज्जं च साहेदि ॥ १३८० ॥

अर्थ— मानरहित विनयवान् पुरुष लोकमें स्वजन अर परजन तिनकै सदाकाल प्रिय होय है। मानरहित विनयवान् पुरुष जो है, सो ज्ञान अर जस अर अर्थकूं प्राप्त होय है, ज्ञान अर जस उपार्जन करे है, इस लोक परलोकमें अर्थ उपार्जन करे है– अपने कार्यकूं साधे है ॥ गाथा–

ण य परिहायादि कोई । अत्थो मउगत्तणे पउत्तम्मि ॥
इह य परत्त य लब्भदि । विणयेण हु सव्वकल्लाणं ॥ ८१ ॥

अर्थ— मार्दव जो कोमलपणा तिसकरि युक्त होते संते कोऊ पुरुषहू अपना अर्थके नाशकूं नही प्राप्त होय है ॥ भावार्थ- मार्दवगुणयुक्त पुरुषका कोऊ प्रयोजन तथा धन बडापणा नही घटे है । विनयकरिकै इस लोक परलोकमें सर्वकल्याणकूं प्राप्त होय है

सट्ठिं साहस्साउं । पुत्ता सगरस्स रायसीहस्स ॥
अदिबलवेगा संता । णट्ठा माणस्स दोसेण ॥ ८२ ॥

अर्थ— अभिमानका दोषकरिकै सगर नामा चक्रवर्तीका साठि हजार पुत्र अतिबलका वेगसहित नष्टताकूं प्राप्त भयो ॥ भावार्थ- सगरचक्रीका साठि हजार पुत्राकै बलका गर्व बहोत था, ते गर्वकरिकैं नष्ट होते भये ॥

ऐसैं सात गाथानिकरि मानकषायका स्वरूप कह्या ॥ अब मायाचारकूं सात गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

जध कोडिसमिद्धो वि स- । सल्लो ण लभदि सरीरणिव्वाणं ॥
मायासल्लेण तधा । ण णिव्वुदिं तवसमिद्धो वि ॥ ८३ ॥

अर्थ— जैसैं कोटीधनका धनी पुरुषहू जो शल्यकरि सहित होय सो शरीरके सुखकूं

नही प्राप्त होय है; तैसैं मायाशल्यसहित पुरुष तपकरि महितहू निर्वाणकूं नही प्राप्त होय है॥

होदि य विस्सो अप्प- । च्छइदो तध अवमदो य सुजणस्स ॥
होदि अचिरेण सत्तू । णीयाणं णियडिदोसेण ॥ ८४ ॥

अर्थ-- एक मायाचार जो कपट ताके दोषकरिकै समस्त स्वजनांकै द्वेष करनेयोग्य होय है! मायाचारतैं अपने समस्त स्वजन मित्र वैरी होइ हैं । तथा कपटी प्रीति करनेयोग्य नही होय हैं तथा स्वजनांके मध्यहू अवज्ञा करनेयोग्य-तिरस्कार करनेयोग्य होय है अर थोरे कालमें आपके निज जे मित्रादिक तिनहूका मायाचारी शत्रू होजाय है॥

पावदि दोसं माया- । ए महल्लं लहु सगावराधे वि ॥
सच्चाण सहस्साणि वि । माया एक्का विणासेदि ॥ ८५ ॥

अर्थ-- अत्यंत अल्प अपराधीहू मायाचारकरि शीघ्रही महान् दोषकूं प्राप्त होय है। एकही मायाचार हजारां सत्यनिका नाश करे है॥ गाथा-

मायाए मित्तभेदे । कदम्मि इध लोगिगत्थपरिहाणी ॥
णासदि मायादोसा । विसजुददुद्धं व सामण्णं ॥ ८६ ॥

अर्थ-- मायाचारकरिकैं मित्रभेद होते संते इस लौकिक अर्थकी परिहानि होय है अर मायाचाररूप दोषतैं विषसहित दुग्धकीनांई श्रमणपणा नाशकूं प्राप्त होय है॥

भावार्थ-जहां मायाचार तहां मित्रता हैही नही, मायाचार प्रकट हुवा पीछै बहुतकालकी मित्रताहू क्षणमात्रमें नष्ट होय है, अर मायाचारीका व्यवहारही मलिन होजाय; तदि परमार्थधर्मरूप साधूपणा तो जैसें विषकरि दुग्ध विनसे है तैसें नाशकूं प्राप्त होय है ॥

माया करेदि णीचा-। गोदं इत्थी णपुंसगं तिरियं ॥
मायादोसेण य भव-। सएसु डंभिज्जिदे वहुसो ॥ ८७ ॥

अर्थ— मायाचारकरिकैं नीचगोत्रका बंध होय है, तथा स्त्रीपणा नपुंसकपणा तिर्यंचपणा बहुतभवनिमैं होय है, तथा मायाचाररूप दोषकरिके बहुतवार सैंकडा भवनिमैं परकरिकैं ठिग्या जाय है ॥ गाथा–

कोहो माणो लोभो। य जत्थ माया वि तत्थ सण्णिहिदा ॥
कोहमदलोभदोसा। सव्वे मायाए ते होंति ॥ ८८ ॥

अर्थ— जहां मायाचार है तहां क्रोध मान लोभ ये सर्व निकटवर्ती हैं। क्रोध अभिमान लोभ ये समस्तदोष मायाचारकरि प्रगट होय हैं ॥ गाथा–

सस्सो भरहग्गाम-। स्स सत्तसंवच्छराणि णिस्सेसो ॥
दड्ढो डंभणदोसे-। ण कुंभकारेण रुट्ठेण ॥ ८९ ॥

अर्थ— रोषकूं प्राप्त भया जो कुंभकार सो कपटका दोषकरिकै भरतग्रामका समस्त

धान्य सप्तवर्षपर्यंत दग्ध कीयो ! ॥ ऐसैं मायाचारका दोष सप्तगाथामें वर्णन कीया ॥
अब लोभकषायकूं छ गाथानिकरि वर्णन करे हैं ॥ गाथा–

लोभेणासाघत्तो । पावइ दोसे वहुं कुणदि पावं ॥
णीए अप्पाणं वा । लोभेण णरो ण वि गणेदि ॥ १३९० ॥

अर्थ— लोभकरिकै आशाकरि ग्रस्या प्राणी बहुदोषनिनैं प्राप्त होय है। अर लोभकरिकै बहुत पाप करे है, अपने स्वजन बांधव मित्रनिकूं नही गिणे है, अपना लोभही साध्या चाहे है, अर लोभकरिकै अपना आत्मामैं आवता मरण दुःख विपत्ति नही गिणे है। लोभीकूं आपका तथा परका दोऊका चेत नही रहे है ॥ गाथा–

लोभो तणे वि जादो । जणेदि पावमिदरत्थ किं वच्चं ॥
रइदमउडादिसंग- । स्स वि हु ण पावं अलोभस्स ॥ ९१ ॥

अर्थ— तृणहूमैं उत्पन्न भया लोभ पापकूं उपजावे है; तो अन्यवस्तूमैं कीया लोभ जो पाप उपजावे है ताका कहा कहना? अर जो लोभरहित पुरुष मुकुटादि आभरणसहित है तोऊ पापकूं नही प्राप्त होय है। लोभीकै समता संतोष नही होय है, जातैं लोभ तो शरीर धन धान्यादिकमें अहंकार–ममकारबुद्धि है। अर जाकै परवस्तूमैं मूर्च्छा ममताबुद्धि नही है ताकै पापबंधहू नही है ॥ गाथा–

साकेदपुरे सीमं- । धरस्स पुत्तो मिगध्दवो णाम ॥
भद्दयमहिसणिमित्तं । जुवराजो केवळी जादो ॥ ९२ ॥

अर्थ— साकेतपुरविषैं सीमंधरका पुत्र मृगध्वज नामा युवराजा भद्रमहिषीके निमित्त केवली होतो हुवो ॥ इसकी कथा ग्रंथांतरमैं जानना ॥ गाथा—

तेलुक्केण विचित्त- । स्स णिव्वुदी णत्थि लोभघत्थस्स ॥
संतुट्ठो हु अलोभो । लभदि दरिद्दो वि णिव्वाणं ॥ ९३ ॥

अर्थ— लोभकरिकैं जाका चित्त व्याप्त भया ताकै त्रैलोक्यका राज्यकरिकैंहू तृप्ति नही आवे है—सुख नही होय है। अर लोभरहित संतोषी दरिद्री है—धनरहित है तोहू निर्वाण जो सुख ताकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा—

सव्वे वि गंथदोसा । लोभकसायस्स हुंति णादव्वा ॥
लोभेण चेव मेहुण- । हिंसालियचोज्जमाचरदि ॥ ९४ ॥

अर्थ— लोभकषायका धारककै सर्वही परिग्रहसंबंधी दोष होय हैं ऐसैं जनना । लोभकरिकैही मैथुन हिंसा असत्य चोरीकूं आचरण करे है ॥ गाथा—

रामस्स जामदग्गिस्स । वत्थं घित्तूण कित्तविरिउ वि ॥
णिधणं पत्तो सकुलो । ससाहणो लोभदोसेण ॥ ९५ ॥

अर्थ— एक लोभका दोषकरिकै रामका तथा जमदग्नीका वस्त्र ग्रहणकरिकै कार्तवीर्य नामा कोऊ अपना कुलसहित तथा सेनासहित मरणकूं प्राप्त भया। इसकी कथा प्रथमानुयोगके ग्रंथनितैं जाननी ॥

ऐसैं छ गाथानिमैं लोभका वर्णन कीया ॥ अब सामान्य इंद्रियकषायनिका स्वरूप सत्ताईस गाथानिमैं वर्णन करे हैं ॥ गाथा—

ण हि तं कुणिज्ज सत्तू। अग्गी वग्घो व कण्हसप्पो वा ॥
जं कुणइ महादोसं। णिव्वुदिविग्घं कसायरिवू ॥ ९६ ॥

अर्थ— जो कषायरूप वैरी निर्वाणमें विघ्न अर महादोष करे है; सो दोष वैरी नहीं करे है, अग्नि नहीं करे है, व्याघ्र नहीं करे है, कृष्णसर्प नहीं करे है। वैरी तो एक-जन्म दुःख दे है, अग्नि एकवार दग्ध करे है, व्याघ्र एकवार भक्षण करे है, कृष्णसर्प एकवार डसे है अर कषाय अनंतजन्म दुःख देनेवाले हैं ॥ गाथा—

इंदियकसायदुद्द-। तस्सा पाडिंति दोसविसमेसु ॥
दुक्खावहेसु पुरिसे। पसिढिलणिव्वेदखलिया हु ॥ ९७ ॥

अर्थ— इंद्रिय अर कषायरूप दुर्दम अश्व कहिये अशिक्षित घोडे जिनकी वैराग्यरूप लगाम शिथिल होगई ते घोडे पुरुषनिनैं दुःखके वहनेवाले पापरूप विषम स्थाननिमें

पटके हैं ॥ गाथा—

इंदियकसायदुद्दं- । तस्सा णिवेदखलिणिदा संता ॥
झाणकसाए भीदा । ण दोसविसमेसु पाडिंति ॥ ९८ ॥

अर्थ— इंद्रियकषायरूप दुर्दम अश्व वैराग्यरूप लगामकरि वशीभूत किये संते अर ध्यानरूप चाबककरि भयवान् भये, पुरुषांनिनैं दोषरूप विषमस्थाननिमैं नहीं पटकत हैं ॥

इंदियकसायपण्णग- । दट्ठा वहुवेदणट्टदा पुरिसा ॥
पब्भट्टझाणसुक्खा । संजमजीवं पविजहंति ॥ ९९ ॥

अर्थ— इंद्रिय और कषायरूप सर्पकरि डस्या अर बहुतवेदनाकरि व्याप्त भया अर भ्रष्ट हुवा है ध्यानरूप सुख जिनिका ऐसे पुरुष संयमरूप जीवका त्याग करे है-छांडे है ॥

झाणागदेहि इंदिय- । कसायभुजगा विरागमंतेहिं ॥
णियमिज्जंता संजम- । जीवं साहुस्स ण हरंति ॥ १४०० ॥

अर्थ— ध्यानरूप औषधकरिकै अर वैराग्यरूप मंत्रकरिकै रोके हुये जे इंद्रियकषायरूप सर्प ते साधूका संयमरूप जीवकूं नहीं हरे हैं—नहीं घाति सके हैं ॥ गाथा—

सुमरणपुंखा चिंता- । वेगा विसयविसलित्तरइधारा ॥
मणधणुमुक्का इंदिय- । कंडा विंधंति पुरिसमयं ॥ १ ॥

अर्थ— संसारविषैं इंद्रियरूप बाण पुरुषरूप मृगकूं घाते हैं। बाणकै पांख होय हैं, इंद्रियरूप बाणकै विषयनकूं स्मरण करना सोही पांख हैं। अर चिंतारूप वेगकूं धारे हैं। अर विषयरूप विषकरि लिप्त हैं। अर जिनकै रति जो आसक्तता सोही धार है। अर मनरूप धनुष्यकरि छूटे हैं। ऐसे इंद्रियबाण जीवरूप मृगका घात करे हैं॥

धिदिखेडएहि इंदिय-। कंडे झाणवरसत्तिसंजुत्ता॥
वारंति समणजोहा। सुणाणदिट्ठीहि दट्ठूण॥ २॥

अर्थ— ध्यानरूप श्रेष्ठशक्तिकरिकैं संयुक्त जे श्रमणरूप जोध्दा ते इंद्रियरूप बाणनिकूं सम्यग्ज्ञानरूप दृष्टिकरि देखिकरिकै धैर्यरूप खेट नाम आयुधकरिकैं छेदे हैं– रोके हैं॥ भावार्थ-- इंद्रियनिके विषयरूप बाण जिनकै लागे हैं, तिनका ज्ञानसंयमादिरूप प्राण नष्ट होय निगोदमें जाय परे है, यातैं साधुरूप जोध्दा सांची ज्ञानदृष्टितैं विषयरूप बाणनिकूं अपना घात करनेवाले देखिकरिकै धैर्यरूप आयुधकरि छेदे हैं– आपकै लागने नही दे हैं॥ गाथा–

गंथाडवीचरंतं। कसायविसकंटया पमायमुहा॥
विंधंति विसयतिरवखा। अधिदिदढोवाणहं पुरिसं॥ ३॥

अर्थ— परिग्रहरूप गहनवनीमैं कषायरूप विषके कांटे विखरि रहे हैं। कैसेक हैं

विषयरूप विषके कांटे? प्रमादरूप जिनकै मुख हैं अर विषयनिकी चाहनारूप तिनकी तीक्ष्ण अणी है, ऐसी विषयरूपकंटकनिकी भरी परिग्रहवनीमें धैर्यरूप पगरखीरहित जो पुरुष प्रवेश करे है, सो कषायरूप विषकंटकनिकरि वेधे हुये मरणकरि दुर्गतिकूं प्राप्त होय हैं ॥ गाथा–

आवध्दधिदिदढोवा- । णहस्स उवउंगदिट्ठिजुत्तस्स ॥
ण करिंति किंचि दुक्खं । कसायविसकंटया मुणिणो ४ ॥

अर्थ— पहरी है धैर्यरूप पगरखी जानैं अर उपयोगकी शुद्धतारूप दृष्टिकरि संयुक्त जो मुनि, ताकै कषायरूप विषके कांटे किञ्चिन्मात्रहू दुःख नही करे है ॥ गाथा

उड्डहणा अदिचवला । अणिगहिदकसायमक्कडा पावा ॥
गंथफळलोलहिदया । णासंति हु संजमारामं ॥ ५ ॥

अर्थ— जे पुरुष असंजमी हैं, अर अतिचपल जिनका मन है, अर पापरूप जिनकी प्रवृत्ति है, अर जिननैं कषायरूप मर्कटका निग्रह नही कीया, अर परिग्रहरूप फलमें जिनका मन लोलपी है, ते पुरुष संजमरूप बागका विध्वंस करे हैं । बहुरि अनंतकालमें ताकूं संजम दुर्लभ होय है ॥ गाथा–

णिच्चं पि अमज्झत्थे । तिकाळदोसाणुसरणपरिहत्थे ॥

संजमरज्जूहि जदी । वंधंति कसायमक्कडए ॥ ६ ॥

अर्थ— जती हैं ते संजमरूप रज्जूकरिके कषायरूप मर्कटनिकूं बांधत हैं। कैसेक हैं कषायरूप मर्कट? मध्यस्थ नही हैं—निरंतर चपल हैं। बहुरि कैसेक हैं कषायमर्कट? भूत-भविष्य-वर्तमानकालमें दोषनिकूं प्राप्त होनेमें प्रवीण हैं। ऐसे कषायरूप मर्कटनिकूं दिगंबर जतीही संजमरूप रसेनकरि बांधनेकूं समर्थ हैं, अन्य नही हैं ॥ गाथा—

धिदिवम्मिएहि उवसम- । सरेहिं साधूहि णाणसत्थेहिं ॥
इंदियकसायसत्तू । सक्का जुत्तेहि जेदुं जे ॥ ७ ॥

अर्थ— धैर्यरूप वगतर अर उपशमभावरूप बाण अर ज्ञानरूप शस्त्रनिकरि युक्त जे साधू, तिनकरि इंद्रियकषायरूप शत्रु जीतिवेकूं शक्य होय हैं ॥

इंदियकसायचोरा । सुभावणासंखलाहि वज्झंति ॥
ता ते ण विकुव्वंति । चोरा जह संखलाबद्धा ॥ ८ ॥

अर्थ— ये इंद्रिय अर कषायरूप चोर सुंदरभावनारूप सांकलनिकरि बांधिये तो ते विकार नही करै, जैसें दृढ सांकलनिकरि बांध्या चोर विकार नही करै ॥ गाथा—

इंदियकसायवग्घा । संजमणरघादणे अदिपसत्ता ॥
वेरग्गलोहदढपं- । जरेहि सक्का हु णियमेदुं ॥ ९ ॥

अर्थ-- संयमरूप मनुष्यका घात करनेमें अति आसक्त ऐसे इंद्रियकषायरूप व्याघ्र हैं, ते वैराग्यरूप लोहके दृढपंजरकरिकैं रोकिवेकूं शक्य होइये हैं ॥ जैसें मनुष्यनिका घात करनेमें आसक्त ऐसा व्याघ्र पींजरेविना रोकनेकूं नही शक्य होइए हैं; तैसें इंद्रियकषाय तो व्याघ्र हैं अर संजमरूप मनुष्यका घात करे हैं, सो ऐसे इंद्रियकषाय-व्याघ्र वैराग्यरूप पींजरेनिंविना कैसे रोके जाय? ॥ गाथा-

इंदियकसायहत्थी । वयवारिमहीणिदा उवाएण ॥ १ अधीनिताः
विणयवरत्तावध्दा । सक्का अवसा वसे कादुं ॥ १४१० ॥

अर्थ— इंद्रियकषायरूप हस्ती हैं ते उपायकरिकैं व्रतरूप आगलभूमीनैं प्राप्त कीये अर विनयरूप वरत्रा जो गजबंधनीकरिकैं बंधे हुये पहली कहींकै वश नही थे, तेहू वश करनेकूं शक्य होइये हैं ॥ भावार्थ- जैसें मदोन्मत्त हस्ती कहींकै वश नही, तेहू कोऊ उपायकरिकै आगलका स्थानमें प्रवेश कराय वरत्राकरिकै बांधि दे, तदि वश होय है; तैसें ये इंद्रिय अर कषाय तो मदोन्मत्त हस्ती हैं अर व्रत हैं ते आगलके स्थान हैं अर विनयरूप वरत्रा है, सो व्रतकी आगलमें आये जे विनयसूं बांधि जाय तदि इंद्रियकषाय वश होयही हैं ॥ गाथा-

जदि विसयगंधहत्थी । अदिणिज्जदि रागदोसमदमत्तो ॥

ठिच्चा ण झाणजोह- । स्स वसे णाणंकुसेण विणा ॥ ११ ॥
विसयवणरमणलोला । वाला इंदियकसायहत्थी ते ॥
पसमे रामेदव्वा । तो ते दोसं ण काहिंति ॥ १२ ॥

अर्थ— जो मनरूप गंधहस्ती स्वयमेव परिग्रहरूप वनीमैं प्रवेश करे है, रागद्वेषरूप मदकरिकै उन्मत्त होय रह्या है, ज्ञानरूप अंकुशविना ध्यानरूप जोध्दाके वशीभूत हुवा नही तिष्ठे है, तातैं ये विषयरूप वनमें रमणके लोलपी ऐसे इंद्रियकषायरूप बालहस्ती तिनकूं प्रशमभाव जो वीतरागभाव तिसमें रमावना योग्य है। जो इंद्रियकषाय प्रशमभावमें लीन होजाय, तो संसारपरिभ्रमणके कारण ऐसे अनर्थ नही करै ॥ भावार्थ- हे भव्य! रागद्वेषकरि सहित यो आत्मा अंगपूर्वनिके ज्ञानविना जितनैं शुक्लध्यानमें लीन नही होय, तितनैं इंद्रियकषायनिकूं समभावमें लीन करना उचित है ॥

सद्दे रूवे गंधे । रसे य फासे सुभे य असुभे य ॥
तह्मा रागद्दोसं । परिहर तं इंदियजयेण ॥ १३ ॥

अर्थ— तातैं, भो मुने! इंद्रियनिके विजयकरिकै शुभ और अशुभ जे शब्द और रूप तथा गंध तथा रस और स्पर्श इनमैं रागद्वेषका त्याग करहु ॥ गाथा—

जह णीरसं पि कडुयं । पि ओसहं जीवत्थिवो पिवदि ॥

कडुयं पि इंदियजयं । णिव्वुइहेदुं तह पिविज्ज ॥ १४ ॥

अर्थ— जैसें जीवनेका अर्थी जो रोगी, सो नीरस अर कटुकहू औषधकूं पीवेही है; तैसें अनंतजन्ममरणका अभाव करनेका अर्थी जो ज्ञानी, सो कटुकहू इंद्रियनिका विजयकूं निर्वाणके अर्थि अंगीकार करे है॥ यद्यपि संसारी मोही जीवनिकै विषयनिका त्याग करना अतिविषम है, तथापि ज्ञानी क्षणमात्रमें त्यागे है ॥ गाथा–

जे आसि सुभा एण्हिं । असुभा ते चेव पुग्गला जादा ॥

जे आसि तदा असुभा । ते चेव सुभा इमा इण्हिं ॥ १५ ॥

अर्थ— जे पुद्गल इस वर्तमानकालमें शुभ दीसे हैं, तेही पुद्गल पूर्वे अनंतभवनिमें दुःख देनेवाले अशुभ भये हैं। अर जे पुद्गल इस वर्तमानकालमें अशुभ दीसे हैं, तेही पूर्वे अनंतवार सुखकारी शुभ भये हैं ॥ गाथा–

सव्वे वि य ते भुत्ता । मुत्ता वि य तह अणंतखुत्तो मे ॥

सव्वेसु एत्थ को वि- । म्हअउ य भुत्तविजढेसु ॥ १६ ॥

अर्थ— सर्वप्रकारके पुद्गलद्रव्य अनंतवार आहार-शरीर-इंद्रियरूप परिणमन करायकरि भोगे अर अनंतवार त्यागे, ऐसे सर्वपुद्गल, तिनके ग्रहणत्यागमें कहा विस्मय है? ॥

रूवं सुभं च असुभं । किंचिवि दुक्खं सुहं च ण य कुणइ ॥

संकप्पविसेसेण दु । सुहं च दुक्खं च होइ जए ॥ १७ ॥

अर्थ— शुभ रूप अर अशुभ रूप जीवकै किंचितहू सुखदुःख नहीं करे है, रूपकूं देखि संकल्पविशेषकरिकै जगतमें सुखदुःख होय है ॥ गाथा—

इह य परत्त य लोये । दोसे वहुगे य आवहइ चक्खू ॥
इदि अप्पणो गणित्ता । णिज्जेदव्वो हवदि चक्खू ॥ १८ ॥

अर्थ— नेत्र इंद्रियका विषय इस लोकमें तथा परलोकमें बहुत दोषनिकूं वहे है! या हेतूतैं नेत्र इंद्रियका विषयानिकूं तिरस्कार करिकै आपके नेत्र इंद्रियकूं जीतना योग्य है ॥

एवं सम्सं सद्दर- । सगंधफासे विचारइत्ताणं ॥
सेसाणि इंदियाणि वि । णिज्जेदव्वाणि बुद्धिमदा ॥ १९ ॥

अर्थ— ऐसैं इंद्रियनिके विषयनिकूं इस लोक परलोकमें दोषकरि विचारिकरिकै अर शब्द रस गंध स्पर्श हैं विषय जिनिके ऐसे शेषहू कर्ण रसना नासिका स्पर्शन इंद्रियनिकूंहू बुद्धिवाननिकूं जीतना योग्य है ॥ अब क्रोधके जीतनेका उपाय कहे हैं ॥ गाथा—

जदि दा सवदि असंते- । ण परो तं णत्थि मित्ति खामिदव्वं ॥
अणुकंपा वा कुज्जा । पावइ पावं वराउत्ति ॥ १४२० ॥

अर्थ—जो मेरेमांहि दोष नहीं अर दोष कहे है-गालि देवे है, तो ऐसा विचार करै जिसमें

दोष है तिसकूं कहे है, मेरेमांहि ऐसा दोष नही ऐसैं विचारि क्षमा करै। अथवा इसका कह्या दोष मेरै लगे नही, यो हमारे दोष यथेच्छ कहो, हमारै कहा हानि है? अथवा ऐसा विचारि करुणा करै, जो "मेरा निमित्तसूं यो गरीब पापकूं प्राप्त होय, सो इसकूं मोहनीयकर्म तथा ज्ञानावरणकर्म दाबि राख्या है" सो कषायनिका प्रेरया वृथा वकवाद करि आपकूं नरकनिगोदमें पटके है! इसप्रकार करुणाही करै ॥ गाथा—

जदि वा सविज्ज संते- । ण परो तह वि पुरिसेण खमिदव्वं ॥
सो अत्थि मज्झ दोसो । ण अलीयं तेण भणिदित्ति ॥ २१ ॥

अर्थ— जो दोष आपमैं विद्यमान होय सो दोष परपुरुष प्रगट करै तौ तहांभी क्षमा करै। यो हमारो दोष सांचा प्रकट करे है, मेरेमांहि दोष विद्यमान है, इसनैं झूंठ नही कह्या है, अब मोकूं ये दोष बुरे लागे हैं, तो शीघ्रही मोकूं इस दोषका त्याग करना, जिस दोषतैं मेरा अपवाद होय सो मोकूं ग्रहण करना उचित नही ॥ गाथा—

सत्तो वि ण चेव हदो । हदो वि ण य मारिदोत्ति य खमेज्ज ॥
मारिज्जंतो वि खमि- । ज्ज चेव धम्मो ण णट्ठोत्ति ॥ २२ ॥

अर्थ— मोकौ गालीही देवे है, मारे तो नही है! अर जो मारै, तो मेरा प्राणनिका घात तो नही कीया! जगतमें मारि नाखनेवालेभी होय हैं। अर जो प्राण

हरै तो चिंतवन करै– इसनैं धर्म तो मेरा नहीं हरया, प्राण तो विनाशीक है, औरनि-
मित्ततैं नाश होताही, इसका कछू अपराध नहीं। ऐसैं चिंतवन करता क्षमाही करै ॥

रोसेण महाधम्मो। णासिज्ज तणं व अग्गिणा सव्वो ॥
पावं च करिज्ज महं। वहुगं पि णरेण खमिदव्वं ॥ २३ ॥

अर्थ— जैसैं अग्निकरिकैं तृणानिका नाश होय है; तैसैं रोसकरिकैं महान् धर्मका नाश होय है। अर रोसकरिकैं जीवकै महापाप होय है। तातैं बहुतप्रकारकरिकैं क्षमा करना योग्य है

पुव्वकदमज्झपावं। पत्तं परदुक्खकरणजादं मे ॥
रिणमोक्खो मे जादो। अज्जत्ति य होइ खमिदव्वं ॥ २४ ॥

अर्थ-- कोऊका कुवचन श्रवण करिकै तथा मारण ताडन करिकै उत्तम पुरुष ऐसैं चिंतवन करे है– मेरा पूर्वजन्मकृत पाप है, जो मैं अन्यजीवनिकै दुःख कीया! ताकरिकैं पापकर्म उपार्जन कीया! सो यह मेरै उदय आया है, सो आपका फल देय नाशकूं प्राप्त होयगा। जैसैं कोऊका ऋण देना होय अर दे देवै तदि क्लेशरहित होजाय, तैसैं जो पापकर्मका उदयकूं क्रोधादिकरहित समभावनिकरि सहूंगा तो आगानैं तो बंध नहीं होयगा, अर पूर्वकृत पाप निर्जरि जायगा। तातैं अब क्षमाही करना योग्य है ॥

पुव्वं सयमुवभुत्तं। काले णाएण तेत्तियं दव्वं ॥

-को धारणिउं धणिय- । स्स दिंतउं दुक्खिउं होज्ज ॥ २५ ॥

अर्थ— पूर्वें परका धन आप ऋण करि भोग्या, बहुरि अवसर पाय धनवाला मांगे तदि न्यायमार्गकरिकै देखिये तो जितना धन पैलाका देना है तितना देनेमें कौन दुःखित होय? न्यायमार्गी तो वडाही आदरतें पैलेका धन देय ऋणरहित होय सुखित होय है; तैसें पूर्वें आप पापबंधका कारण अन्यजीवनकूं कुवचन कह्या, झूंठा कलंक लगाया, ताका फल यह उदय आया है, सो न्यायही है, अब इसके भोगनेमें विषाद नही करना, यहही आत्महित है ॥ गाथा-

इह य परत्त य लोए । दोसे बहुए य आवहइ कोहो ॥
इदि अप्पणो गणित्ता । परिहरिदव्वो हवइ कोहो ॥ २६ ॥

अर्थ— यो क्रोध इस लोकमें तथा परलोकमें बहुत दोषनिकूं वहे है, ऐसें आपकी अवज्ञा करिकै क्रोधकषायका परित्याग होय है। ऐसें क्रोधकृत परिणामके जीतनेका उपाय वर्णन करिकै, अब मानकृत परिणामकूं जीतनेकी भावना कहे हैं ॥ गाथा-

को इत्थ मज्झ माणो । बहुसो णीचत्तणं पि पत्तस्स ॥
उच्चत्ते य अणिच्चे । उवट्ठिदे चावि णीचत्ते ॥ २७ ॥

अर्थ— बहुतवार नीचकुल नीचजाति पाया, तथा अनेकवार कुरूप हुवा,

अज्ञानी हुवा, तथा रंक हुवा, दीन हुवा, बलरहित हुवा, अनंतवार नीचपनेकूं प्राप्त भया, जो मैं, ताकैं अब इस मनुष्यजन्ममैं कहा मान है? अनंतकालपर्यंत अनंतजन्मनिमैं बहुत अपमान भया, अब मान करना बडी लज्जा है, यो विनाशीक उच्चपणो होताहू नीचपणा नजिकहीं जानहू। तातैं अभिमान छांडि मार्दव धारना योग्य है॥

अधिगेसु बहुसु संते-। सु ममादो एत्थ को महं माणो॥
किं विब्भर्उ वि बहुसो। पत्ते पुव्वम्मि उच्चत्ते॥ २८॥

अर्थ— मुझतैं धनकरि, ज्ञानकरि, कुलकरि, रूपकरि, ऐश्वर्यकरि अधिक बहुत मनुष्यनिकूं होते संते मेरे इनमैं कहा मान है? अर पूर्वैं बहुतवार पापकरिकैं छुट्या अर बहुरि शुभकर्मका उदयकरि प्राप्त हुवा जो उच्चपणा तामैं अब हमारैं कहा आश्चर्य है? भावार्थ- कुल, बल, ऐश्वर्य, धन, ज्ञान, रूप, मुझतैं अधिक अधिक बहुत लोकनिमैं पाइये है अर पूर्वैं उच्चपणाभी अनेकवार पाय पाय छूट्या है, अब किंचिन्मात्र पाया तामैं गर्व करना अतिनिंद्य है॥ गाथा-

जो अवमाणणकरणं। दोसं परिहरइ णिच्चमाउत्तो॥
सो णाम होदि माणी। ण दु गुणचत्तेण माणेण॥ २९॥

अर्थ— जगतमैं अपमान करनेका कारण दोषनिका त्याग नित्यहीं उपयुक्त

हुवा करै सो मानी है, अन्यगुणरहित मानकरिकै काहेका मानी? भावार्थ- कोऊ लौकिकजन ऐसैं कहे, जो, महंतपुरुषनिकै तो मानही धन है, मान गया जाका सव बडापना गया। इहां मानका अभावकूं श्रेष्ठ कैसैं कहो हो? ताकूं उत्तर ऐसा है- मान तो जाका गया, जो निंद्यकर्म करि अपना अपमान करावै, सो तो मान त्यागनेयोग्य है। अर ऐसा मान तो राखना, जो, मै उत्तमकुलमें उपज्या हूं, मोकूं नीचकुलवाले- कीनांई अयोग्यवचन गाली भंडवचन वोलना योग्य नही, अभक्ष्य भक्षण करना योग्य नही, व्यसन सेवन करना योग्य नही, मोकूं ऐश्वर्य पाय कहींका अपमान करना योग्य नही, क्रोध करना योग्य नही, मायाचार करना योग्य नही, लोभ करना योग्य नही, बलकूं पाय निर्वलका घात करना योग्य नही, दीननिकी रक्षाही करनी, ज्ञान पाय आत्माकूं रागादिक भावकर्मनितैं छुडाय निजस्वरूपमें स्थिर करना उचित है, ऐसा मान तौ श्रेष्ठ है। अर जो कर्मका उदयतैं धन ऐश्वर्य कुल जात्यादिक पाय इनका गर्व करना जो मै उच्च हूं, कुलवान् हूं, ज्ञानवान् हूं और समस्त नीचे हैं, अज्ञानी हैं· ऐसा अभिमान दुर्गतिका कारण त्यागनेयोग्य है॥ गाथा-

इह य परत्त य लोए। दोसे वहुगे य आवहइ माणो ॥
इदि अप्पणो गणित्ता। माणस्स विणिग्गहं कज्जा ॥ १४३० ॥

अर्थ— यो अभिमान इसलोकमें तथा परलोकमें आपके बहुत दोष हैं तिनकूं वहे है, ऐसैं मानकी अवज्ञा करिकै अर मानका निग्रह करना योग्य है॥ ऐसैं मानकृत दोष कहे॥ अब मायाचारकृत दोषनिका स्वरूप कहे हैं॥ गाथा—

अदिगूहिदा वि दोसा। जणेण कालंतरेण णज्जंति॥
मायाए पउत्ताए। को इत्थ गुणो हवदि लध्दो॥ ३१॥

अर्थ— अति छिपाये हुयेहू दोष कालांतरकरिकै लोकनिकरि जाननेमें आवे हैं, छिपायकरि कहा किया? तातैं इहां रची जो माया ताकरि कहा गुण प्राप्त होय है? कुछ गुण प्रकट होय नही, केवल तीव्र अशुभकर्मका बंधही होय है॥ गाथा—

परिभागम्मि असंते। णियडिसहस्सेहि गूहमाणस्स॥
चंदग्गहो व दोसो। खणेण सो पायडो होइ॥ ३२॥

अर्थ— भाग्य नही होता संता हजार कपट करिकैं छिपावतैंहू भाग्यरहित पुरुषका दोष क्षणमात्रमें चंद्रमाका ग्रहणकीनांई प्रकट होय है। जैसैं राहू चंद्रमाकूं ग्रस्या, तदि कोऊकूं राहू जावता आवता दीख्या नही, अत्यंत छिपिकरिकै ग्रस्या है, तथापि तिसही क्षणमें लोकनिमें प्रकट होगया, जो " राहू व्यापीविना चंद्रमाकूं कौन ग्रसै? " तैसैं हजार कपटनिकरि छिपाया दोष जगतमें प्रकट होयही है, कपट छिप्या नहीही रहे है॥

जणपायडो वि दोसो । दोसत्ति ण घिप्पदे सभागस्स ॥
जह समलित्तिणि घिप्पदि । समलं पि जए तलायजलं ॥ ३३ ॥

अर्थ— भाग्यवान् पुरुषका लोकनिमैं प्रकटहू दोष जगतमैं दोषपणाकरि नही ग्रहण करे है! दोषहू जगतकूं गुणही दीखै! जैसैं मलकर्दमकरि सहितहू तलावका जल तिसकूं यो तलाव 'कर्दम तथा मलसहित' है ऐसा ग्रहण नही करिये है, जितनैं जल है तितनैं जलका भऱ्या तलाव जगत् कहे हैं, मल भऱ्या है तोहू जगत् मलका भऱ्या नही कहे है॥

डंभसएहिंमि वहुएहिंमि । सुपउत्तेहिं अपाडिभागस्स ॥
हत्थं ण एदि अत्थो । अण्णादो सपरिभागादो ॥ ३४ ॥

अर्थ— बहुत यत्नकरिकै कीया जो बहुत मायाचार ताकरिकैहू भाग्यरहितके हाथि अन्य पुण्यवानका धन नही प्राप्त होय है। मायाचारकरिकै केवल दुर्गतिका कारण पापबंधही होय है। अर पुण्यहीनके हाथि पुण्यवानका धन नही आवे है॥ गाथा—

इह य परत्त य लोए । दोसे वहुए य आवहइ माया ॥
इदि अप्पणो गणित्ता । परिहरिदवा हवइ माया ॥ ३५ ॥

अर्थ— माया नामा कषाय इस लोकमें तथा परलोकमें बहुतदोषनिकूं वहे है-धारण करे है, यातैं ज्ञानकरि मायाका तिरस्कार करिकै मायाका परिहार करना योग्य

है ॥ ऐसैं मायाकषायकूं पांच गाथानिकरि वर्णन कीया ॥ अब लोभकषायकूं तीन गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

लोभे कए वि अत्थो । ण होइ पुरिसस्स अपरिभागस्स ॥
अकए वि हवदि लोभे । अत्थो परिभागवंतस्स ॥ ३६ ॥

अर्थ— लोभ करता संताहू भाग्यहीन पुरुषकै धन नही होय है अर भाग्यवान् पुरुषकै लोभ नही करता संताहू धनका संचय होय है ॥ गाथा—

सव्वे वि जए अत्था । परिगहिदा ते अणंतखुत्तो मे ॥
अत्थेसु इत्थ को म- । ज्झ विंभउं गहिदविजढेसु ॥ ३७ ॥

अर्थ— जगतके विषैं समस्तजातीके अर्थ जे परिग्रह हैं, ते मैं अनंतवार ग्रहण कीये, अर अनंतवार ग्रहण होय करिकै छूटे, अब इनकी प्राप्ति होनेमें कहा आश्चर्य है?॥

इह य परत्त य लोए । दोसे बहुए य आवहइ लोभो ॥
इदि अप्पणो गणित्ता । णिज्जेदव्वो हवदि लोभो ॥ ३८ ॥

अर्थ— लोभ है सो इस लोकमें तथा परलोकमें बहुतदोषनिकूं धारण करे है, यातैं ज्ञानका प्रभावकरिकैं याका नाश करिकै लोभकषाय जीतना योग्य होय है॥ ऐसैं इंद्रिय-कषायका स्वरूप कह्या॥ अब निद्राविजय करनेका उपाय दश गाथानिमैं वर्णन करे हैं॥

णिद्दं जिणाहि णिच्चं । णिद्दा हु णरं अचेदणं कुणइ ॥
वट्टिज्ज हु पासुत्तो । खवउ सव्वेसु दोसेसु ॥ ३९ ॥

अर्थ— भो क्षपक! निद्रा जो है ताही जीतहू! या निद्रा मनुष्यकै अचेतन करे है, योग्यायोग्यका विवेकरहित करे है, निद्राकूं प्राप्त भया जो क्षपक कहिये मुनि सो समस्त हिंसादिक दोषनिमैं वर्त्ते है ॥ कोऊ या कहै "निद्रा नामा कर्मका उदयतैं निद्रा आवे है, ताकूं कैसैं जीतै?" ताका समाधान करे हैं ॥ गाथा—

जदि अधिबाधिज्ज तुमं । णिद्दा तो तं करेदि सज्झायं ॥
सुहुमत्थे वा चिंते- हि सुणसु संवेगणिव्वेगं ॥ १४४० ॥

अर्थ— जो निद्रा तुमकूं बाधा करै तो तुम स्वाध्याय करो, अर सूक्ष्मपदार्थनिनैं चिंतवन करो, तथा धर्मानुरागिणी—संसारदेहभोगनितैं विरक्त करनेवाली कथा श्रवण करो ॥ अब अन्यप्रकार निद्रा जीतनेका कारण कहे हैं ॥ गाथा—

पीदी भए य सोगे । य तहा णिद्दा ण होइ मणुयाणं ॥
एदाणि तुमं तिण्णि वि । जागरणत्थं णिसेवेहि ॥ ४१ ॥
भयमागच्छसु संसा- । रादो पीदी य उत्तमट्ठम्मि ॥
सोगं च पुरा दुच्चरि- । दादो णिद्दाविजयहेदुं ॥ ४२ ॥

जागरणत्थं इच्चे- । वमादिकं कुण कम्मं सदा उत्तो ॥
उज्झाणेण विणा वंद्धो । कालो हु तुमे ण कायव्वो ॥ ४३ ॥

अर्थ— मनुष्यनिकै प्रीति अर भय अर शोक होते संते निद्रा नही होय है; तातैं जागरणके निमित्त प्रीति, अर भय, अर शोक इनि तीननकूं अंगीकार करो ॥ इहां निद्राके विजयके अर्थि पंचपरिवर्तनरूप संसारके अनंतजन्ममरणनितैं तो भय करो। अर उत्तमार्थ जो रत्नत्रय ताकेविषैं प्रीति करो। अर पूर्वैं खोटे आचरण कीये तिनका शोक करो। कैसैं करना सो कहे हैं– नरकादिक गतीमैं वारंवार परिभ्रमण करता जो मैं, सो शरीरसंबंधी तथा आगंतुक तथा मानासिक तथा क्षेत्रकालादिकतैं उपज्या विचित्र दुःख भोगे! तेही दुःख बहुरि आगानैं भोगनेमैं आवसी, ऐसैं संसारका भय करहू ॥ बहुरि समस्त आपदाके समूहका नाश करनेकूं; तथा स्वर्गमुक्तीके सुखनिकूं प्राप्त होनेकूं, तथा असार शरीरका भार उतारनेकूं, तथा अनंतज्ञान-अनंतदर्शन-अनंतवीर्य-अनंतसुखरूप साम्राज्यलक्ष्मी ग्रहण करनेकूं तथा कर्मरूप विषके वृक्षकूं उपाडनेकूं समर्थ अर अनंत भवनिमैं पूर्वैं नही पाई ऐसी रत्नत्रयकी आराधना करनेकूं, मै उद्यमी भया हूं, ऐसैं रत्नत्रयमें प्रीति करहू ॥ बहुरि हिंसा असत्य चौर्य अब्रह्म परिग्रह इनि पंचपापनिविषैं, तथा मिथ्यात्वकषायनिविषैं तथा अशुभ मन वचन कायके योगनिविषैं, तथा कामके

कारणनिविषें मै मंदभागी प्रवर्तन कीया है; तथा हित अहितका विचारमें मूढबुद्धि करि, तथा सत्यार्थमार्गका उपदेश देनेवालाका नही लाभ होनेतैं, तथा प्रबल ज्ञानावरणका उदयतैं जिनेंद्रका प्ररूप्या पदार्थनिका नही जाननेतैं, तथा कदाचित् पदार्थ जाननेमें आये तोहू श्रद्धानके अभावतैं, तथा चारित्रमोहके उदयतैं सन्मार्ग जो रत्नत्रय तिसमैं नही प्रवर्तन करनेतैं मै दुःखरूप समुद्रमें मग्न हुवा हूं–डूब्या हूं! ऐसैं उद्वेगरूप चित्तकरिकै निद्राका विजय होय है ॥ ऐसैं निद्राकूं जीति जागरणके अर्थि इत्यादिक संसारतैं भय, अर रत्नत्रयमें प्रीति, अर खोटे आचरणतैं भय, ऐसैं सदाकाल चिंतवन करो अर शुभध्यानाविना मनुष्य जन्मका काल निष्फल मति व्यतीत करो ॥

संसाराडविणित्थर- । णमिच्छदो अणपणीय दोसा हि ॥
सोदुं ण खमो अहिसण- । पणीय सोदुं व सघरम्मि ॥ ४४ ॥

अर्थ–– जैसैं जाका गृहमें सर्प होय सो पुरुष सर्पकूं गृहमैंतैं निकासेविना शयन करनेकूं नही समर्थ होय है; तैसैं संसाररूप वनीके पारकूं प्राप्त होनेका इच्छक पुरुष दोषनिकूं नही दूरि करिकै शयन करनेकूं नही समर्थ होय है ॥ गाथा–

को णाम णिरुव्वेगो । लोए मरणादिअग्गिपज्जलिदे ॥
पज्जलिदम्मि व णाणी । घरम्मि सोदुं अभिलसिज्ज ॥ ४५ ॥

अर्थ— जैसैं दग्ध होते गृहमें कौन ज्ञानी शयन करनेका अभिलाष करै? तैसैं जन्ममरणादिक अग्निकरिकै प्रज्वलित लोकविषैं कौन ज्ञानी उद्वेगरहित हुवा शयन करै? ज्ञानीकै संसारका बडा भय है, अचेत हुवा शयन नही करे है, आत्माकूं संसारपरिभ्रमणतैं रक्षा करनेकूं सदाकाल सावधान रहे है ॥ गथा–

को णाम णिरुव्वेगो। सुविज्ज दोसेसु अणुवसंतेसु ॥
गहिदाउहाण वहुया-। ण मज्झयारे व सत्तूण ॥ ४६ ॥

अर्थ— जैसैं, ग्रहण कीया है आयुध जिननैं ऐसे बहुत शत्रूनिकै मध्य निर्भय भया कोन शयन करै? तैसैं रागादिक आत्माका घात करनेवाले दोष तिनको नही नष्ट होता कोन ज्ञानी निर्भय हुवा शयन करै? जागृतही रहे है ॥ भावार्थ— परमार्थीनिकै रागद्वेष कामक्रोधादिकनिका बडा भय है। सो इन दोषनिकूं मारनेकूं सदा उद्यमी हुवा ध्यानस्वाध्यायमें लीन होय निद्राका विजयही करे है ॥ गाथा–

णिद्दातमस्ससरिसो। अण्णो णत्थि हु तमो मणुस्साणं ॥
इदि णच्चा जिणसु तुमं। णिद्दा झाणस्स विग्घयरी ॥ ४७ ॥

अर्थ–– मनुष्यनिकै निद्रारूप अंधकारके समान अन्य अंधकार नही है, ऐसैं जाणि, हे भव्य! तुम ध्यानमें विघ्न करनेवाली निद्रा ताहि विजय करहू ॥ गाथा–

कुणह व णिद्दामोक्खं । णिद्दामोक्खस्स भणिदवेलाए ॥
जह वा होइ समाधी । खवणकिलंतस्स तह कुणह ॥ ४८ ॥

अर्थ— हे भव्य! निद्रा त्यागनेका अवसर जो तीनप्रहर रात्रि व्यतीत भये पीछे निद्राका त्याग करहू । क्षपण कहिये उपवासकरिकैं खेदखिन्न जो तुम, तिनके जैसें रत्नत्रयधर्ममें तथा शुभध्यानमें सावधानी होय तैसें यत्न करहू ॥ ऐसें दश गाथानिमें निद्राका विजय वर्णन कीया ॥ अब सत्ताईस गाथानिमें तपमहिमा तथा तपमें प्रेरणा वर्णन करे हैं ॥ गाथा–

एस उवावो कम्मा- । सवदारणिरोहणे हवे सव्वो ॥
पोराणयस्स कम्म- । स्स पुणो तवसा खउ होइ ॥ ४९ ॥

अर्थ— यो पूर्वें वर्णन कीयो जो समस्त उपाय सो तो कर्मके आस्रव रोकनेमें है । बहुरि पूर्वें बांध्या जो कर्म ताका तपकरि क्षय होय है ॥ भावार्थ– नवीन कर्मबंधके रोकनेका तो यो समस्त उपाय वर्णन कीया । अर पूर्वें बंधन कीया जे कर्म तिनका नाश तपकरिकैं होय है । सो कर्म नाश करनेका उपाय एक तप है ॥ गाथा–

अब्भंतरबाहिरगे । तवम्मि सत्ती सगं अगूहंतो ॥
उज्जमसु सुहे देहे । अप्पडिवध्दो अणलसो सं ॥ १४५० ॥

अर्थ— भो भव्य! ऐसैं जानिकरिकैं अब तुम शरीरके सुखमें तो आसक्तताका त्याग करो! अर आलस्यरहित हुवा बारहप्रकारके बाह्य अभ्यंतर तपमें अपनी शक्तीकूं नही छिपावता उद्यम करो ॥ गाथा—

सुहसीलदाए अलस- । त्तणेण देहपडिबद्धदाए य ॥
जो सत्ती संतीए । ण करिज्ज तवं ससत्तिसमं ॥ ५१ ॥
तस्स ण भावो सुद्धो । तेण पउत्ता तदो हवइ माया ॥
ण य होइ धम्मसद्धा । तिवा सुहदेहपिक्खाए ॥ ५२ ॥
अप्पा य वंचिउं ते- । ण होइ विरियं च गूहियं होइ ॥
सुहसीळदाए जीवो । बंधदि हु असादवेदणियं ॥ ५३ ॥

अर्थ—जो पुरुष आपकै शक्ति होता संताहू सुखमें आसक्तपणाकरि तथा आलसीपणाकरि तथा देहमें आसक्तताकरि अपनी शक्तिप्रमाण तप नही करे है; तिस पुरुषकै भावशुध्दि नही है—शक्तिसमानहू तप नही करनेतैं भावनिकी शुद्धता कहा रही? ॥ बहुरि भावनिकी शुद्धताविना मायाचारही प्रवर्तन कीया! देहका सुखमें आसक्तबुद्धिकरि ताकै धर्ममें तीव्र श्रद्धानभी नही होय है। जातैं विनाशीकदेहमें जाकै प्रीति प्रवर्तै है, सो देहहीको आपा जाने है, ताकै धर्म कहा? केवल मायाचार है ॥ बहुरि जो देहके

सुखमें आसक्त है, सो पुरुष अपने आत्माकूं ठिग्या! तथा अपना वीर्य छिपाया, तथा देहके सुखमें आसक्तता करि असतावेदनीयकर्मका बंध कीया ॥ ऐसैं तो जो देहका सुखमें आसक्त होय तप नही करै, ताके दोष दिखाये ॥ अब जो आलस्यकरि तप नही करे है, ताके दोष दिखावे हैं ॥ गाथा—

विरियंतरायमलस-। त्तणेण बंधदि चरित्तमोहं च ॥
देहपडिबद्धदाए। साधू सपरिग्गहो होइ ॥ ५४ ॥

अर्थ— जो आलसी होयकरिकै शक्तिप्रमाणहू तप नही करे है, सो वीर्यांतराय नामा कर्मबंधकूं करे है. तथा चारित्रमोहकर्मकूं बांधे है, तथा शरीरमें आसक्तताकरि साधु जो मुनि सो परिग्रहसहित होय है। जातैं समस्तपरिग्रहकूं शरीरका सुखके अर्थि ग्रहण करे है; तातैं जो शरीरके सुखमें आसक्त है, सो समस्तपरिग्रहमें आसक्त है ॥ बहुरि जो शक्तिसमानहु तप नही करै अर अपनी शक्तीकूं छिपावे है, सो मायाचारी है, तातैं तिस साधूकै मायाजनितहू दोष आवे है ऐसैं कहे हैं ॥ गाथा—

मायादोसा माया-। ए हुंति सव्वे वि पुव्वणिद्दिट्ठा ॥
धम्मम्मि णिप्पिवासस-। स्स होइ एसो दुल्लहो धम्मो ॥५५॥ [1] निरादरस्य

अर्थ— जो शक्तिप्रमाणहू तप नही करै सो मायाचारी भया; तिस मायाचारीकै

जे मायाचारमें पूर्वें दोष कहे, ते समस्त होय हैं ॥ बहुरि मायाचारकरि धर्ममें निरादर करनेवालेकै संसारमें धर्म पावना अत्यंत दुर्लभ होय है ॥ भावार्थ— जो धर्मसेवनमें मायाचार करे है, सो धर्मका तिरस्कार करे है—अनादर करे है, धर्मसूं पराङ्मुख भया है, ताकूं फेरि अनंतभवनिमें धर्मका समागम मिलना कठिण होय है ॥ गाथा—

पुव्वुत्ततवगुणाणं । चुक्को जं तेण वंचिर्उ होइ ॥
विरियनिगूही वंधदि । मायं विरियंतरायं च ॥ ५६ ॥

अर्थ— जो शक्ति होतेहू तप नही करे है, सो पूर्वें कहे जे संवरनिर्जरादिक गुण, तिनकरिकै छूटे है, तिसकारणकरि आपकूं आप ठिग्या है बहुरि आपका वीर्य जो शक्ति ताहि छिपावनेवाला मायाचारकर्मकूं तथा वीर्यांतरायकर्मका तीव्र बंध करे है ॥

तवमकरंतस्सेदे । दोसा अण्णे य होंति संतस्स ॥
होंति य गुणा अणेया । सत्तीए तवं कुणंतस्स ॥ ५७ ॥

अर्थ— तपकूं नही करते साधूके अन्यहू अनेक दोष होय हैं। अर शक्तिकरिकैं तपकूं करते साधूके अनेक गुण होय हैं ॥ अब तपश्चरणके गुणनिकूं दिखावे हैं ॥

इह य परत्त य लोए । अदिसयपूया उ लहइ सुतवेण ॥
आंयंपियंति वि तहा । देवा वि सइंदया तवसा ॥ ५८ ॥ [१]

१ आवर्ज्यन्ते

अर्थ— सम्यक्त करिकैं इस लोकमें तथा परलोकमें अतिशयरूप पूजाकूं प्राप्त होय है। तथा सांच तपकरिकैं इंद्रनिकरि सहित समस्त देव सेवा करे हैं॥ गाथा—

अप्पो वि तवो बहुगं। कल्लाणं फलइ सुप्पउगकदो॥
जह अप्पं वडवीयं। फलइ वडमणेयपारोहं॥ ५९॥

अर्थ— उज्वल उपयोगतैं कीया अल्पहू तप बहुतकल्याणनिकूं फले है। जैसैं अल्पहू वडका बीज वाह्या हुवा अनेक वड अनेक डाहलेनिकूं फले है॥ गाथा—

सुट्ठुकदाण वि सस्सा-। दीणं विग्घा हवंति अदिबहुगा॥
सुट्ठुकदस्स तवस्स पु-। ण णत्थि कोइ वि जए विग्घो॥ १४६०॥

अर्थ— भली विधिकरिकै उत्पन्न कीये जे धान्यादिक, तिनमैं तो कदाचित अतिबहुत विघ्न होय हैं; परंतु सम्यक्परिणामकरिकै कीया जो तप, ताके मध्य कोऊभी विघ्न जगतमें नहीही है॥ गाथा—

जणणमरणादिरोगा-। तुरस्स सुसवो वरोसधं होइ॥
रोगादुरस्स अदिविरि-। यमोसधं सुप्पउत्तं वा॥ ६१॥

अर्थ— जैसैं रोगकरि पीडित पुरुषकै अतिवीर्यवान् औषध भले यत्नतैं युक्त करी हुई रोगकूं हरै है; तैसैं जन्ममरणरोगकरि पीडित प्राणीकै सम्यक्तपही जन्ममरणरूप

रोगके मेटनेकूं श्रेष्ठ औषध है ॥ गाथा–

संसारमहाडाहे- । ण डज्झमाणस्स होइ सीयघरं ॥
सुतवो दाहेण जहा । सीयघरं डज्झमाणस्स ॥ ६२ ॥

अर्थ–– जैसैं ग्रीष्मऋतुका दाहकरि दग्ध होते पुरुषकै शीतग्रह जो धाराग्रह, सो दाहकै दूरि करनेवाला होय है; तैसैं संसारकी महादाहकरिकै दग्ध होते जीवकै सम्यक्तप है सोही शीतलगृह है ॥ गाथा–

णीयंल्लवो[1] व सुतवे- । ण होइ लोगस्स सुप्पिउ पुरिसो ॥
माया व होदि विस्सस- । णिज्जो सुतवेण लोगस्स ॥ ६३ ॥

अर्थ–– सम्यक्तपके धारण करनेतैं यो पुरुष लोककै अपना निजमित्र बांधव पुत्र-कीनांई अत्यंत प्रिय होय है। अर सम्यक्तपकरिकै यो पुरुष समस्तलोककै अपनी माताकीनाई विश्वास करनेयोग्य होय है। जातैं तपस्वी समस्तलोकनिकै प्रिय होय है अर समस्तलोकनिकै विश्वास करनेयोग्य होय है ॥ गाथा–

कल्लाणिड्ढिसुहाइं । जावइयाइं हवेइ सुरणराणं ॥
जं परमणिव्वुदिसुहं । च ताणि सुतवेण लभ्भंति ॥ ६४ ॥

अर्थ— पंचकल्याण अर अद्भुतऋद्धि तथा विभूति जितनी देवनिकै तथा मनुष्यनिकै

[1] बन्धुरिव

होय है तथा जो सर्वोत्कृष्ट निर्वाणका सुख ते समस्तही सुख सम्यक्तपकरि प्राप्त होय हैं ॥

कामदुहा वरधेणू । णरस्स चिंतामणिव्व होइ तवो ॥
तिळउं व णरस्स तवो । माणस्स विहूसणं सुतवो ॥ ६५ ॥

अर्थ— मनुष्यकै तप है सो कामना परिपूर्ण करनेकूं कामधेनू है, तथा वांछित देनेकूं चिंतामणिसमान है, तथा यह तप मनुष्यकै तिलककीनांई सकल आभूषणनिमैं प्रधान है। तथा सम्यक्तप है सो लोकमें मान्यजननिका मानका भूषण है ॥ गाथा–

होइ सुतवो य दीवो । अण्णाणतमंधयारचारिस्स ॥
सव्वावत्थासु तवो । वट्टदि य पिदा व पुरिसस्स ॥ ६६ ॥

अर्थ— अज्ञानरूप अंधकारमें गमन करता जीवकै ज्ञानरूप उद्योत करनेकूं यो सम्यक्तप है सो दीपक है। तथा समस्त अवस्थामें पुरुषकै एक यो सम्यक्तप पिताकीनांई रक्षक है। जातैं अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, तथा श्रुतकेवल, तथा केवलज्ञान तपतैंही होय। तथा इस जीवकूं संसारपतनतैं रक्षा करनेकूंभी तपही समर्थ है ॥

विसयमहापंकाउल-। गड्डाए संकमो तवो होइ ॥
होइ य णावा तरिदुं। तवो कसायादिचवलणदी ॥ ६७ ॥

अर्थ— संसारी जीवकै फसावनेकूं पंच इंद्रियनिके विषयरूप महाकर्दमका भऱ्या

खाडा तिसतैं निकासनेवाला एक तपही है। बहुरि कषायरूप अतिचपलनदी ताहि तिरवेकूं एक तपही नाव है॥ भावार्थ- विषयरूप कर्दममें उलग्या हुवा जीवकूं तपही निकासनेवाला है। तथा कषायरूप प्रबलनदीके पार करनेकूंभी एक तपही समर्थ है॥

फलिहो व दुग्गहीणं। अणेयदुक्खावहाण होदि तवो॥
आमिलतण्हाछेदण-। समत्थमुदगं व होइ तवो॥ ६८॥

अर्थ— एक यह तप दुर्गतिमें गमनके रोकनेकूं अर्गल है-जीवकूं दुर्गति नहीं जाने दे है। कैसीक है दुर्गति? अनेक दुःखनिकूं धारण करनेवाली है। बहुरि विषयनिमें महातृष्णा ताके छेदनेकूं समर्थ जो जल, ताकीनांई यो सम्यक्तप है॥

मणदेहदुक्खवित्ता-। सिदाण सरणं गदी य होइ तवो॥
होदि य तवो सुतित्थं। सवासुहदोसमलहरणं॥ ६९॥

अर्थ— मनके दुःख तथा देहके दुःख तिनकरि त्रासकूं प्राप्त होते जीवनकूं सम्यक्तपही शरण है। तथा दुःखनितैं निकासनेकूं तपही गति है। तथा समस्त पापदोषरूप मलके हरनेकूं—दूरि करनेकूं तपही सत्य तीर्थ है। इस जीवके पाप हरनेकूं तपतीर्थविना अन्य तीर्थ समर्थ नही॥ गाथा—

संसारविसमदुग्गे। तवो पणट्ठस्स देसउ होइ॥

होइ तवो पत्थेऽयणं[1] । भवकंतारम्मि दिग्घम्मि ॥ १४७० ॥

अर्थ— संसाररूप विषम दुर्गम वनी, तिसमें मार्ग भूलि बहुतकाल परिभ्रमण करता जीवकूं मोक्षका मार्गका उपदेशकरि संसारवनीतैं निकासनेवाला एक तपही है। बहुरि दीर्घ जो संसाररूप वन तामैं पथ्य भोजनहू तपही है॥ गाथा—

रक्खा भएसु सुतवो । अब्भुदयाणं च आगरो सुतवो ॥
णिस्सेणी होइ तवो । अक्खयसोक्खस्स मोक्खस्स ॥ ७१ ॥

अर्थ— भयनिमें रक्षा करनेवाला एक तपही है। समस्त देवमनुष्यसंबंधी अभ्युदय तिनकी खानि एक तपही है। तथा अविनाशीकसुखका ठिकाना जो मोक्ष ताकी निसरणीभी एक सम्यक्तपही है॥ गाथा—

तं णत्थि जं ण लब्भइ । तवसा सम्मंकएण पुरिसस्स ॥
अग्गीव तणं जलिउं । कम्मतणं डहदि य तवग्गी ॥ ७२ ॥

अर्थ— ऐसा जगतमें उत्तमवस्तु नही है 'जो सम्यक्तपकरि पुरुषकूं प्राप्त नही होय है'। जैसैं अग्नि तृणानिकूं दग्ध करे है; तैसैं तपरूप अग्नि कर्मरूप तृणानिकूं दग्ध करे है॥

सम्मं कदस्स अपरि- । स्सवस्स ण फलं तवस्स वण्णेदुं ॥
कोई अत्थि समत्थो । जस्स वि जिब्भासयसहस्सं ॥ ७३ ॥

[1] पथ्यदनं

अर्थ— जिसके लक्ष जिव्हा होय सोहू सांचा कीया अर आस्रवरहित ऐसे तपका फल वर्णन करनेकूं नही समर्थ होय है ॥ गाथा-

एवं णादूण तवं । महागुणं संजमम्मि ठिच्चाणं ॥
तवसा भावेदव्वो । अप्पा णिच्चं पि जुत्तेण ॥ ७४ ॥

अर्थ— ऐसैं तपका महान् गुण जाणिकरिकै अर संयममें तिष्ठिकरिकैं अर नित्यही उपयुक्त जो तप ताकरि आत्मा भावनेयोग्य है ॥ गाथा-

जह गहिदवेयणो वि य । अदया कज्जे णिउज्जदे भिच्चो ॥
तह चेव दमेयव्वो । देहो मुणिणा तवगुणेसु ॥ ७५ ॥

अर्थ— जैसैं अपने कार्यका अर्थी जो स्वामी वेदनासहितहू सेवककी नही दया करिकै अपना कार्य आजाय तिसमें युक्त करिये है; तैसैंही मुनिहू देहकूं तपरूप गुणनिविषैं दमे है ॥ ऐसैं तप नामा उत्तरगुणका सत्ताईस गाथानिमैं वर्णन कीया ॥

इच्चेव समणधम्मो । कहिदो मे दसविधो सगुणदोसो ॥
एत्थ तुममप्पमत्तो । होहि समण्णागदमदीउ[1] ॥ ७६ ॥

अर्थ— अब संस्तरनैं प्राप्त भया मुनिकूं ऐसैं निर्यापक गुरु उपदेश देयकरिकै बहुरि कहे है- हे क्षपक! ऐसैं गुणदोषकरिकै सहित दशप्रकार मुनिधर्म है सो मैं

[1] समागतस्मातिकाः ॥

तुमकूं कह्या। अब इस श्रमणधर्ममें सावधान हुवा प्रमादरहित हुवा संता धर्ममें बुद्धीकूं लीन करहू॥ गाथा-

तो खवगवयणकमलं। गणिरविणो तेहिं वयणरस्सीहिं॥
चित्तपसायविमळं। पफुल्लियं पीदिमयरंदं॥ ७७॥

अर्थ-- ततः कहिये तिस निर्यापकगुरुनिकी ऐसी शिक्षा हुई पाछे निर्यापकाचार्यरूप सूर्यकरि पूर्वे कहे जे शिक्षाके वचन तेही किरण तिनकरि क्षपकका मुखरूप कमल प्रफुल्लित होय है। कैसाक है मुखकमल? आचार्यनिके शिक्षाके वचन तिनविषैं जो प्रीति सोही तामैं सुगंध है। बहुरि कैसाक है मुखकमल? चित्तकूं प्रसन्न करिकै अर निर्मल भया है॥ गाथा-

वयणकमलेहि गणिआभि-। मुहेहि सा विंभियच्छिपत्तेहिं॥
सोभइ तह सह सूरो-। दयम्मि फुल्लं व णलिणिवणं॥ ७८॥

अर्थ— इस जगतमें सूर्यका उदय होतै जैसैं प्रफुल्लित कमलिनीका वन सोहे है; तैसैं उपदेश सुनिकरि आश्चर्यरूप है नेत्रपत्र जामैं ऐसा आचार्यनिके सन्मुख जो मुखरूप कमल तिनकरि क्षपकहू सोहे है॥ गाथा-

गणिउवएसामयपा-। णयेण पल्हाविदम्मि चित्तम्मि॥

जाउ य णिव्वुदो सो । पाऊण य पाणवं तिसिदो ॥ ७९ ॥

अर्थ— जैसैं कोऊ बहुतकालका तृषाकरि पीडित पुरुष अमृतमय जल पानकरि तृप्त होय है; तैसैं क्षपकमुनिहू आचार्यनिका उपदेशरूप अमृतके पीवनेकरि आनंदितचित्त हुवा सुखकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा–

तो सो खवउ तं अणु- । सिट्ठिं सोऊण जायसंवेगो ॥
उट्ठित्ता आयरियं । वंदइ विणयेण पणदंगो ॥ १४८० ॥

अर्थ— तैंठा पाछे गुरुनिकी शिक्षा श्रवण करिकै अर उपज्या है परमधर्ममें अनुराग जाकै ऐसा क्षपकमुनि संस्तरमें ऊठिकरिकै अर विनयकरिकै नम्रीभूत है अंग जाका ऐसा आचार्यनिकूं वंदना करै ॥ गाथा–

भंते सम्मं णाणं । सिरिसा य पडिच्छिदं मए एदं ॥
जं जह वुत्तं तं तहा । करेमि इणिउ तदो भणए ॥ ८१ ॥

अर्थ— वंदना कीये पश्चात् क्षपक गुरुनिसूं वीनती करे है । भगवन् ! मै आपका दीया सम्यग्ज्ञान मस्तककरि अंगीकार कीया । अब जैसी आप आज्ञा करि, तैसैं मै प्रवर्तन करस्यूं । ऐसें नम्रीभूत होय विनयकरिकै गुरुनिके चरणारविंदाके सम्मुख होय वीनती करै ॥ गाथा–

अप्पा णित्थरदि जहा। परमा तुट्ठी य हवदि जह तुज्झं ॥
जह तुब्भं संघस्स य। सफलो य परिस्समो होइ ॥ ८२ ॥
जह अप्पणो गणस्स य। संघस्स य विस्सुदा हवइ कित्ती ॥
संघस्स पसाएण य। तह हं आराहइस्सामि ॥ ८३ ॥

अर्थ— क्षपक गुरुनितैं वीनती करे है। भगवन्! जैसैं मेरा आत्मा संसारतैं निस्ती-र्णतानैं प्राप्त होय अर जैसैं आपकै परम संतोष होय अर जैसैं मेरा अनुग्रहमें प्रवर्तन कीयो जो समस्त संघ तिसका परिश्रम सफल होय अर जैसैं मेरी अर आप जे आचार्य तिनकी अर सकल संघकी उज्वल कीर्ति जगतमें विख्यात होय तैसैं संघके प्रसादकरिकै आराधना ग्रहण करस्यूं ॥ भावार्थ— क्षपक गुरुनिसूं अपना अभिप्राय प्रकट करे है। जो, हे भगवन्! आपके चरणारविंदके प्रसादतैं ऐसा सत्यार्थ उपदेश पाय मै कदाचित् समाधिमरणमें शिथिल नही होऊंगा, जैसैं मेरा आत्मा संसारसमुद्रके पार होय तैसैं करूंगा, तथा जैसैं आप गुरुजननिका चरणारविंदांकी कीर्ति उज्वल विस्तरेगी तैसैं करूंगा, तथा मेरे हितमें उद्यमी अर समाधिमरण करावनेके अर्थि रात्रिदिन वैयावृत्यमें सावधान जो सर्वसंघ ताका परिश्रम सफल होयगा तैसी निर्दोष उज्वल आराधना ग्रहण करूंगा॥ ऐसैं अपने परिणामका आराधनामरणमें उत्साह अर

परम शूरवीरता प्रगट गुरुनिकूं दिखाया ॥ गाथा—

वीरपुरिसेहि जं आ- । इरियं जं च ण तरंति का ुरिसा ॥
मणसा वि विचिंतेदुं । तमहं आराहणं काहं ॥ ८४ ॥

अर्थ—जो आराधना गणधरादिक वीरपुरुषनिकरि आचरण करी अर जिस आराधनाकूं कापुरुष जे विषयके लंपटी तथा तीव्रकषायका धारक मनकरिकै चिंतवन करनेकूंहू नही समर्थ होय है! तिस आराधनाकूं मै आपके प्रसादतैं आराधन करस्यूं ॥

एवं तुम्भं उवए- । सामिदमासाइदत्तु को णाम ॥
वीहिज्ज छुहादीणं । मरणस्स वि कायरो वि णरो ॥ ८५ ॥

अर्थ—हे भगवन्! ऐसें आपका उपदेशरूप अमृतकूं आस्वादन करि कौन कायर पुरुषहू क्षुधातृषादिकनिका तथा मरणका भयको प्राप्त होय है! नही होय है, यह मेरै निश्चय है ॥ भावार्थ—आपका उपदेशरूप अमृत जिस पुरुषनैं पान कर लिया, सो कायरहू मरण रोग क्षुधा तृषादिकका भय नही करे है। जातैं ऐसा श्रद्धान प्रगट होय है, जो, क्षुधा तृषा रोगादिक तो देहकूं मारैगा, मेरा आत्मा अखंड अविनाशी ज्ञानानंदरूप ताहि कोऊ नाश करने समर्थ नही, ऐसा स्वरूपमें निश्चलपणा आपका उपदेशहीका प्रभावतैं होय है ॥ गाथा—

किं जंपिएण बहुणा । देवा वि सइंदया महं विग्घं ॥
तुज्झं पादोवग्गह- । गुणेण कादुं ण अरिहंति ॥ ८६ ॥

अर्थ— हे भगवन्! बहुत कहनेकरि कहा? आपके चरणनिका उपकाररूप गुणकरि हमारै आराधनामें विघ्न करनेकूं इंद्रनिसहित देवहू समर्थ नही है। अन्य विषयकषाययुक्त पुरुषनिकी तो कहा कथा! ॥ गाथा—

किं पुण छुहा व तण्हा । परिस्समो वादियादिरोगा वा ॥
काहिंति झाणविग्घं । इंदियविसया कसाया वा ॥ ८७ ॥

अर्थ— जो इंद्रनिसहित देवताही हमारी आराधनामें विघ्न नही करि सकै, तो ये क्षुधा तृषा तथा परिश्रम तथा वातपित्तकफादिक रोग तथा इंद्रियनिके विषय तथा क्रोधादिक कषाय हमारे ध्यानमें विघ्न करै कहा? अपि तु नही करै! ॥ गाथा—

ठाणा चलिज्ज मेरू । भूमी उम्मत्थिया भविस्सिहदि ॥
ण य हं गच्छमि विगदिं । तुब्भं पायप्पसाएण ॥ ८८ ॥

अर्थ— कदाचित् मेरुगिरि पर्वत स्थानतैं चलायमान होय! तथा पृथ्वी उलटि औंधी होजाय! तदिहू आप जे गुरु तिनके चरणारविंदके प्रसादतैं मै विकारकूं प्राप्त नही होऊं—आराधनातैं चलायमान नही होऊं ॥ गाथा—

एवं खवउ संथा- । रगदो खवइ विरियं अगूहंतो ॥
देदि गणी वि सदा से । तह अणुसिट्ठिं अपरिदंतो ॥ ८९ ॥

अर्थ— ऐसैं संस्तरकूं प्राप्त भया जो क्षपक सो अपनी शक्तीकूं नही छिपावता संता कर्मनिकूं क्षपावे है। अर आचार्यहू आलस्यरहित हुवा जैसैं क्षपकके ज्ञान जागृत रहै तैसैं सदाकाल परमधर्मरूप शिक्षा करे हैं ॥ भावार्थ— क्षपक तो अपनी शक्ति नही छिपावे है अर आचार्य उपदेश देनेमें आलसी नही होय है ॥

इति सविचार भक्तप्रत्याख्यान नामा मरणके चालीस अधिकारनिविषैं सातसै सत्तरि गाथानिकरि अनुशिष्टि नामा तेतीसमां अधिकार समाप्त कीया ॥ ३३ ॥ अब उगणीस गाथानिमैं सारणा जो धर्मतैं चलायमान होतेकी रक्षा करनेका चोतीसमां अधिकार वर्णन करे हैं ॥ गाथा—

अकडुगमतित्तयमणं- । बिलं च अकसायमलवणममधुरं ॥
अविरसमदुब्भिगंधं । अच्छमणुण्हं अणदिसीदं ॥ १४९० ॥
पाणगमसिंभलं परि- । पूयं खीणस्स तस्स दादव्वं ॥
जह वा पच्छं खवय । स्स तस्स तह होइ दायव्वं ॥ ९१ ॥

अर्थ— समाधिमरणकी प्रतिज्ञा करि क्षीणशरीरी जो क्षपक ताकै अर्थि पानक कहिये

पीवनेयोग्य आहार ऐसा देना योग्य है– जो क्षपककै पथ्य होय, परिपाकमें गुणकारक होय, शरीरमें रोगका उपशम करै, सो पीवनेयोग्य आहार देनेयोग्य है ।। जो कटुक नहीं होय, अर तीक्ष्ण चिरपरा नहीं होय, अर खाटा नहीं होय, अर कषायला नहीं होय, तथा लवणरहित होय, तथा मिष्ट नहीं होय, खांड मिश्री इत्यादिकका मिलापरहित होय, तथा विरस जो स्वादरहित सो नहीं होय, तथा दुर्गंध नहीं होय ऐसा स्वच्छ उज्वल होय, अर उष्ण नहीं होय अर अतिशीत नहीं होय, तथा कफ करनेवाला नहीं होय, अर पवित्र होय ऐसा जलादिक पानद्रव्य क्षपककै देनेयोग्य है ।।

संथारत्थो खवउ । जइया खीणो हविज्ज तो तइया ।।
वोसरिदव्वो पुव्ववि- । धिणेव सो पाणगाहारो ।। ९२ ।।

अर्थ–– बहुरि जिस अवसरमें संस्तरमें तिष्ठता क्षपकका शरीर क्षीण होजाय, तदि पूर्वें जो तीन आहारका त्यागमें जैसें विधि कही तैसें पानक आहारहू त्यागनेयोग्य है ।।

एवं संथारगद- । स्स तस्स कम्मोदएण खवयस्स ।।
अंगे कत्थइ उट्ठि- । ज्ज वेयणा झाणविग्घयरी ।। ९३ ।।

अर्थ— ऐसें संस्तरमें तिष्ठता क्षपकके कर्मका उदयकरिकै कोई अंगमें ध्यानका विघ्न करनेवाली वेदना उपजै, तो कहा करै सो कहै––

वहुगुणसहस्सभरिया । जदि णावा जम्मसायरे भीमे ॥
भिज्जइ हु रयणभरिया । णावा व समुद्दमज्झम्मि ॥ ९४ ॥
गुणभरिदं जादि णावं । दट्ठूण भवोदधिम्मि भिज्जंतं ॥
कुणमाणो हु उविक्खं । को अण्णो हुज्ज णिद्धम्मो ॥ ९५ ॥

अर्थ— कर्मका उदयकरि क्षपकका देहमें ध्यानका विघ्न करनेवाली वेदना उपजि आवै, तो, जैसैं समुद्रके मध्य रत्ननिकरि भरी नाव फूटि जाय; तैसैं बहुतगुणरत्ननिकरि भरी साधुरूप नाव भयानक संसारसमुद्रमें फूटि जाय है। तातैं धर्मात्मा साधुजन जैसैं क्षपकके वेदनाका उपशम होय तैसैं उपदेशादिक प्रतीकार करै, अर वेदना घटि परिणाम समतारूप व्रतनिमैं सावधान होय तैसैं वैयावृत्यादिक करै। अर जो गुणनिकरि भरी साधुरूप नावकूं वेदनादिकनितैं संसारसमुद्रमें फूटती देखि अर जो रक्षाको उपाय उपदेश वैयावृत्त्यादिक नही करे है---उदासीन रहे है, तो तिससमान अन्य कोन धर्मरहित अधर्मी होय है? जो गुणनिकरि सहित साधूका धर्म बिगडता होय अर जो अपनी शक्तिप्रमाणहू रक्षा नही करै तो धर्मतैं पराङ्मुख भया अपना धर्मही बिगाड्या ॥ गाथा--

विज्जावच्चस्स गुणा । जे पुव्वं वित्थरेण अक्खादा ॥
तेसिं फिडिदो सो हो- । इ जो उविपिज्ज तं खवयं ॥ ९६ ॥

अर्थ— जो साधु धर्मका मार्ग जाणिकरिकैहू अन्य मुनीश्वर वेदनाकरिकै चलायमान होय तिसकूं धर्मोपदेश देयकरि तथा शरीरकी टहल करनेकरि नही स्थिर करे है तथा संजमीकै योग्य अन्यहू इलाजकरि वैयावृत्य नही करे है केवल क्षपकमें उदासीन नही रहे है, सो साधु पूर्वैं जे वैयावृत्यके गुण विस्तारकरिकै कहे, तिन गुणनितैं रहित होय है ॥ गाथा—

तो तस्स तिगिंछाजा- । णएण खवयस्स सव्वसत्तीए ॥
विज्जादेसवसेण य । पडिकम्मं होइ कायव्वं ॥ ९७ ॥

अर्थ— तातैं क्षपककी चिकित्साकूं जाननेवाले वैद्यका उपदेशकरिकै समस्त शक्तिकरिकै प्रतीकार करना योग्य है ॥ गाथा—

णाऊण विकारं वे- । दणाए तिस्से करिज्ज पडियारं ॥
फासुगदव्वेहिं करि- । ज्ज वायकफपित्तपडिघादं ॥ ९८ ॥

अर्थ— क्षपकका रोगादिककूं जानिकरिकै अर तिस रोगकी वेदनाका इलाज साधूकै योग्य प्रासुकद्रव्यनिकरि करै अर प्रासुकद्रव्यनिकरि वात पित कफका नाश करै॥

वत्थीहिं अवदवणता- । वणेहिं आलेवसीयकिरियाहिं ॥
अब्भंगणपरिमद्दण- । आदीहिं तिगिंछदे खवयं ॥ ९९ ॥

अर्थ— बहुरि वस्तिकर्म जो मूत्रका आशयमें वर्ती इत्यादिक तथा उष्णकरण तथा तापन तथा लेपन तथा अन्य शीतक्रिया तिनकरिकैं, तथा मर्दन तथा अंगका दाबना मसलना इत्यादिक प्रासुकद्रव्यनिकरिकै, मुनि तथा धर्मात्मा श्रावकादिक संघमें होय सो क्षपकका इलाज करै। जातैं धर्मात्मा व्रतीकूं वेदनापीडित देखि जे छांडे हैं ते अधर्मी हैं। जैसैं बनै तैसैं उनका धर्मकी रक्षाही करै। अर धर्मात्मा व्रतीनिकै अंतकालमें कर्मका प्रबल उदयकरि रोगवेदनादिक प्रबल आताप आजाय अर निसकरि शिथिल होजाय अर अजोग्य आचरणहू करनेकूं चलायमान होजाय तो तहां धैर्यवान् होय स्थितीकरणही करै। अर अनेक योग्य उपायनिकरि दुःख दूरिही करै। अर जे दुःख आवताथका सधर्मीकूं छोडि जाय हैं ते महानिर्दयी हैं, धर्मतैं पराङ्मुख हैं. अर धर्मकी निंदा करावनेवाले हैं, उनकै समाधिमरण नहीं होजाय अर आगानै समाधिमरण करनेमें सकल अन्यमुनि शिथिल होय हैं॥ गाथा—

एवं पि कीरमाणे। परियम्मे वेदणाउवसमो सो॥ खवयस्स पावकम्मो-।
दएण विव्वेण हु ण हुज्ज॥ १५००॥ अहवा तण्हादिपरी-। सहेहि खवउं
हविज्ज अभिभूदो॥ उवसग्गेहिंमि खवउं। अचेदणो होज्ज अभिभूदो॥१॥
तो वेदणावसट्टो। वाउलिदो वा परिसहादीहिं॥ खवउं अणप्पवसिउं।

सो विपलाविज्ज जं किं पि ॥ २ ॥ उब्भासिज्ज व गुणसे- । ढीदो उंदर-
णवुद्धिर्उ खवर्उ ॥ छट्ठं दोच्चं पढमं । व सियां कुंडिलिदमिच्छंतो ॥ ३ ॥
तह मुज्झंतो खवर्उ । सारेदव्वो य सो तर्उ गणिणा ॥ जह सो विसुद्ध-
लेसो । पच्चागदचेदणो होज्ज ॥ ४ ॥ [1] कदाचित् ॥

अर्थ — ऐसैं पूर्वोक्त प्रासुकद्रव्यनितैं प्रतीकार करतेहू क्षपकके तीव्र पापकर्मका उदयकरि वेदनाका उपशम नहीं होय-वेदना नही घटै, जातैं पापकर्मका प्रबल उदय होय तदि समस्त प्रतीकार निष्फल जाय है; अथवा तृषाक्षुधाकी परीषहकरिकैं क्षपक तिरस्कृतरूप होय है; अथवा अनेक रोग क्षुधा तृषा शीत उष्णतादिक उपसर्गनिकरि क्षपक तिरस्कारनैं प्राप्त हुवा अचेत होजाय; तथा वेदनाके वशतैं पीडित होय; तथा व्याकुल होय; अथवा परीषह उपसर्गादिककरि क्षपक आपके वश नही होता रोगके वशतैं विलाप करने लगि जाय—प्रलाप करने लगि जाय; अथवा अयोग्यवचन कहै; अथवा गुणश्रेणीतैं उतरनेकी बुद्धीकूं प्राप्त भया क्षपक छठा रात्रिभोजनकूं चाहै, तथा द्वितीय भोजन जो जलपान ताकूं याचै, तथा प्रथम जो भोजन ताकूं याचने लगि जाय, तथा मोहकूं प्राप्त हुवा स्खलितपद जो मुनिव्रतकूं भंग करनेकी इच्छा करै तदि आचार्य करुणानिधान किंचितहू धैर्यकूं नही त्यागता क्षपककी

सारणा जो व्रतकी रक्षा ताहि तैसैं करै " जैसें यो क्षपक लेश्याकी उज्वलताकूं प्राप्त होय, तथा चेतना वाहुडि आवै " बहुरि मुनिके धर्ममें सावधान होजाय तैसैं सारणा करै ॥ अब सारणा जो रत्नत्रयकी रक्षा ताका उपाय कहे हैं ॥ गाथा—

को सि तुमं किंणामो । कत्थ वससि को व संपदी कालो ॥
किं कुणसि तुमं कह वा । लच्छसि किं णामगो वा हं ॥ ५ ॥
एवं आउच्छित्ता । परिखहेदुं गणी तयं खवयं ॥
सारइ वच्छलयाए । तस्स य कवयं करिस्सामि ॥ ६ ॥

अर्थ— हे आत्मकल्याणके अर्थी! तुम कोन हो? तुमारा नाम कहा है? तुम कहा वसो हो? अवार कोन काल वर्ते है? तुम कहा करो हो? तुम कोनप्रकार तिष्ठो हो? हमारा नाम कहा है? ऐसें आचार्य तिसकी सावधानीकी परीक्षाके अर्थि क्षपककूं वारंवार पूछिकरिकैं अर ताकी रक्षा करै ॥ कितनेक ऐसैं पूछनेतैंही सचेत होय हैं— अहो! मै मुनिका व्रत धारि संन्यास कीया है, ये आचार्य परमोपकार करनेवाला गुरु है, मै कैसैं अचेत हुवा अयोग्य आचरण करूं हूं! मोकूं अब सावधान होय रत्नत्रय सेवन करि मरण करना उचित है! ऐसैं पूछनेतैं सावधान होजाय है ॥ अथवा जो इसमें चेतना है अक अचेत है? ऐसा निश्चय करिकै अर क्षपकमें वात्सल्य-

भाव करिकै अर आचार्य भगवान् विचारै, जो, सचेत है तो अब याके आराधनाकी रक्षा करनेवाला कवच करिस्यूं ॥ गाथा–

जो पुण एवं ण करि- । ज्ज सारणं तस्स वियळचक्खुस्स ॥
सो तेण होइ णिद्धं- । धसेण खवउ य परिचत्तो ॥ ७ ॥

अर्थ— इसप्रकार जो चलायमान है चित्तकी प्रवृत्ति जाकी ऐसा क्षपकका जो आचार्य गुरु रक्षण नही करै, तो तिस निर्दयी गुरुनैं क्षपकका त्याग कीया छोड्या! यह बडा अनर्थ भया ! ॥ गाथा–

एवं सारिज्जंतो । कोई कंसुवसमेण लभदि सदिं ॥
तह य ण लब्भिज्ज सदिं । कोई कम्मे उदिण्णम्मि ॥ ८ ॥

अर्थ— ऐसैं सारणा जो रक्षण कीया हुवा कोऊ साधु चारित्रमोहकर्मका उपशमकरिकै अथवा असातावेदनीयकर्मका उपशमकरिकै ऐसा स्मरणकूं प्राप्त होय है– अहो बडा अनर्थ है! जो, मैं त्रैलोक्यमें दुर्लभ ऐसा संयम अंगीकार करिकै अर अकालमें भोजनपानकी इच्छा करूं हूं! अबार हमारे संन्यासका अवसरमें समस्त आहारपानका त्यागका अवसर है, मैं समस्तसंघकूं साक्षी करिकै समस्त च्यारि प्रकारका आहारका त्याग कीया है, जो सल्लेखनामरण अनंतानंतकालमें नही पाया सो अब गुरुनिके प्रसा-

दतैं प्राप्त भया है, अब मेरे समस्त विषयानुराग त्याग करि परमवीतरागताका अवसर है, तातैं मोकूं परमसंयममैं सावधानताकरिकैं आत्मकल्याणमें सावधानी करनी! ऐसैं कोऊ साधु तो अपने व्रतसंयम पूर्वे धारण कीये तिनमें दृढ होय है॥ अर कोऊ साधु ज्ञानावरणादिकानिका तीव्र उदयकरिकैं स्मृतीकूं नही प्राप्त होय है-अचेतही रहे है॥

इति सविचार भक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषैं सारणा नामा चोतीसमां अधिकार उगणीस गाथानिकरि समाप्त कीया॥३४॥ अब कवच नामा अधिकार एकसो चहोत्तरि गाथानिमैं वर्णन करे हैं॥ गाथा-

सदिमलभंतस्स वि का-। दव्वं पडिकम्ममट्ठियं गणिणा॥
उवदेसो वि सया से। अणुलोमो होदि कायव्वो॥ १॥

अर्थ— ऐसैं आचार्य क्षपककूं अपना मुनिपणा तथा आराधनामरणकी प्रतिज्ञा तथा च्यार प्रकार आहारका त्यागकी यादिगिरी जो स्मरण ताहि करावै, अर जो साधु स्मरण कराया हुवाहू स्मृतिकूं प्राप्त नही होय-त्यागमें संयममें चेतनाकूं प्राप्त नही होय, तो गणी जो आचार्य सो शिथिलतारहित हुवा संता क्षपकके स्मरण दृढ होय तैसैं प्रतीकार करै॥ भावार्थ- जो क्षपक सावधान नहीभी होय, रोगतैं तथा वेदनातैं बेखबरी होय ताकाहू आचार्य प्रतीकार सचेत होनेका उपाय करेही। इलाज कीयेविना

स्थिरता नही ग्रहे है बहुरि आचार्य तिस क्षपककै अनुकुल उपदेशहू सदाकाल करै ॥

चेयंतो वि य कम्मो- । दएण कोई परीसहपरज्झो ॥
उंभासिज्ज व उंतुवि- । ज्ज भिंदिज्ज आउरो पइण्णं ॥ १५१० ॥
ण हु सो कडुगं फरुसं । वा भणिदव्वो ण खीसिदव्वो य ॥
ण य वित्तासेदव्वो । ण य वट्टदि हीलणं काउं ॥ ११ ॥

अर्थ— कोऊ साधु चेतनाकूं प्राप्त हुवाहू कर्मका उदयकरिकैं परीषहनकरि क्लेशकूं प्राप्त हुवा संता अयोग्यवचन बोले, तथा रुदन करे, तथा आतुर-पीडित हुवो अपनी व्रतप्रतिज्ञा भंग करे, तदि तिस साधूकूं कटुकवचन कहनेयोग्य नही है। तथा सो तिरस्कार करनेयोग्य नही। तथा हास्य करनेयोग्य नही। तथा त्रास देनेयोग्यहू नही। तथा पराभव करनेयोग्यहू नही है ॥ गाथा—

फरुसवयणादिगेहिं । दु माणी विप्फुरिउं तउं संतो ॥
उंहाणं वक्कमणं । कुज्जा असमाधिकरणं वा ॥ १२ ॥

अर्थ— कठोरवचनादिककरि विराधित हुवा तथा तिरस्कारकूं प्राप्त हुवा साधु अभिमानकूं प्राप्त हुवा संता अपध्यानकूं प्राप्त होय है। तथा मर्याद उलंघन करिकै अर संस्तरतैं बाहिर भागि जाय। तथा असावधानीतैं असमाधिमरण करे है। तातैं

बडा अनर्थ जानि चलायमान हुवा क्षपककूं कठोरवचनादिक नही कहे हैं ॥ गाथा–

तस्स पदिण्णामेरं । भित्तुं इच्छंतयस्स णिज्जवउ ॥
सव्वायरेण कवयं । परीसहणिवारणं कुज्जा ॥ १३ ॥

अर्थ— प्रतिज्ञारूप मर्यादकूं भेदनेका इच्छक जो क्षपक ताकै निर्यापकाचार्य परीषह निवारण करनेमैं समर्थ ऐसा कवच सर्व आदरकरिकैं करै ॥ भावार्थ– जैसैं सुभट अभेद्य बकतर पहरि रणमें प्रवेश करै, तो वैरीनिकै बाणनिकरि नाशकूं नही प्राप्त होय है; तैसैं साधुरूप सुभटहू संन्यासके अवसरमें कर्मनितैं जो महासंग्राम तिसमें प्रवेश करता गुरुनिका उपदेशरूप कवच जो बकतर ताहि धारण करता संता कर्मरूप वैरीके प्रेरे जे विषयकषायरूप शस्त्र तिनकरिकैं नाशकूं नही प्राप्त होय है ॥

णिध्दं मधुरं पल्हा- । दणिज्ज हिदयंगमं अतुरिदं च ॥
तो सीहावेदव्वो[1] । सो खवउ पण्णवंतेण ॥ १४ ॥

[1] प्रज्ञापयता

अर्थ— महान् बुद्धिमान् जो गुरु सो क्षपककूं शिक्षारूप वचन कहनेजोग्य है। कैसे वचन कहै? स्नेहसहित कहै, अर कर्णनिकूं प्रिय कहै, अर आनंद करनेवाले कहै–जिनकूं श्रवण करतेही सर्व दुःखका स्मरण नष्ट होजाय, बहुरि हृदयमें प्रवेश करि जाय ऐसा वचन कहै, बहुरि शीघ्रताकूं लीये वचन नहीं कहै ॥ गाथा–

रोगादंके सुविहिद- । विउलं वा वेदणं धिदिवलेण ॥
तमदीणमसंमूढो । जिण पच्चूहे चरित्तस्स १५ ॥
सव्वे वि य उवसग्गे । परीसहे य तिविहेण णिज्जिणाहि ॥
णिज्जिणिय सम्मसेदे । होहसि आराहउं मरणे ॥ १६ ॥

अर्थ— हे सुंदर चारित्रके धारक हे मुने! थे दीनतारहित हुवा संता तथा मोहरहित हुवा संता धैर्यके वलकरिकै; चारित्रमें विघ्न करनेवाले जे रोग जे महान् व्याधि, अर आतंक जे अल्पव्याधि, तिननैं तथा प्रबलवेदनानैं जीतहू । तथा समस्त उपसर्गनिनैं तथा परीषहनिनैं मन वचन कायकरिकै जीतहू। अर रोग वेदना उपसर्ग परीषहनिकूं जीतिकरिकै अर मरणकालके विषैं सम्यक्प्रकार च्यार आराधनाका अराधक होहू ॥ भावार्थ- रोगादिक व्याधि अशुभकर्मके उदयकरिकैं होय हैं, तातैं जो रोग उपसर्ग परिषह आये जगतमें दीन भये विचरोगे अर धैर्य छांडोगे तोहू कोऊ तुमारा उपद्रव दूरि करने समर्थ नही है! तुमारा तुमही भोगोगे, अपने परिणामनिकरि उपजाया जो अशुभकर्म ताहि दूरि करनेकूं अर शुभकर्म देनेकूं कोऊ देव दानव इंद्र अहमिंद्र जिनेंद्र समर्थ है नही! तातैं रोग उपसर्ग परीषहादिक आये कायरता छांडि महान् धैर्य अंगीकार करि क्लेशरहित हुये भोगना श्रेष्ठ है । यातैं पूर्व-

कर्मकी निर्जरा होय अर आगै नवीन बंधको अभाव होय ॥ गाथा–

संभर सुविहिय जं ते । मज्झम्मि चदुव्विधस्स संघस्स ॥
वूढा महापदिण्णा । अहयं आराहइस्सामि ॥ १७ ॥

अर्थ— हे चारित्रधारक! च्यारि प्रकारके संघमें तुम महाप्रतिज्ञा धारण करी थी, जो, मै "आराधना धारण करस्यूं" सो तुम स्मरण करो—यादि करो! भूलि गये कहा ?॥

को णाम भडो कुलजो । माणी थोलाइदूण जणमज्झे ॥
जुध्दे पलाइ आवडि- । दमित्तउं चेव अरिभीदो ॥ १८ ॥

अर्थ— कुलमें उत्पन्न भया मानी सुभट लोकनिके मध्य भुजानिका आस्फालन करिकैं अर जुध्दके विषैं वैरीकूं सम्मुख आवतेंही वैरीतैं भयवान् हुवा कोन भागै? कुलवान् भटपणाका अभिमानी तो वैरीकूं पीठ नही दिखावेगा ॥ गाथा–

थोलाइदूण[1] पुव्वं । माणी संतो परीसहादीहिं ॥
आवडिदमित्तउं चे- । व को विसण्णो हवे साधू ॥ १९ ॥

अर्थ— तैसैंही कोऊ मुनि धर्मका मानी होय अर सर्वसंघमें भुजनिका आस्फालन कीया, जो, "मै च्यारि आराधना धारण करस्यूं" ऐसी प्रतिज्ञा करिकैं बहुरि परीषहवैरीनकूं सम्मुख आवतेंही कुण चलायमान होय? कौन विषादी होय?

[1] भुजास्फालनं कृत्वा

उत्तमसाधू तो प्रतिज्ञा करिकै बहुरि कदाचित् चलायमान होय विषाद नहीही करेगा ॥

आवडिया पडिकूला । पुरउं चेव क्कमंति रणभूमिं ॥
अवि य मरिज्ज रणे ते । ण य पसरमरीण वड्ढंति ॥ १५२० ॥

तह आवइपडिकूल- । दाए साहो वि माणिणो सूरा ॥
अइतिव्ववेयणाओ । सहंति ण य विगडिमुवयांति ॥ २१ ॥

अर्थ— जैसैं शूरवीरपणाका अभिमानी जो पुरुष सो वैरीनिकूं सम्मुख आवतै रणकी भूमीमैं आगेही गमन करे हैं-वैरीनिके सम्मुख जाय हैं अर रणभूमीविषैं मरणही करै, परंतु जीवते संते रणभूमीमैं वैरीका प्रसर नही वधने दे हैं; तैसैं मानी अर शूरवीर ऐसे साधु जे हैं, तेहू आपदाकूं प्रतिकूल होते अतितीव्रवेदनानिकूं समभावनिकरि सहे हैं अर परिणामनिकी विकृतताकूं प्राप्त नही होय हैं ॥ गाथा—

थोवाइयस्स कुलज- । स्स माणिणो रणमुहे वरं मरणं ॥
ण य लज्जणयं काउं । जावज्जीवं सुजणमज्झे ॥ २२ ॥

अर्थ— कीया है भुजानिका आस्फालन कहिये ठकोरना जानैं ऐसा कुलमें उपज्या मानीकूं रणविषैं मरण करना श्रेष्ठ है, परंतु यावज्जीव स्वजनानिके मध्य लज्जाकै योग्य कर्म करिकै जीवना श्रेष्ठ नही ॥ गाथा—

समणस्स माणिणो सं- । जदस्स णिहणगमणं पि होइ वरं ॥
ण य लज्जणयं काउं । कायरदा दीणकिविणत्तं ॥ २३ ॥

अर्थ— श्रमण अर मानी ऐसा संजमी जो मुनि ताकूं मरणकूं प्राप्त होना श्रेष्ठ है, परंतु लज्जा करनेयोग्य जो कायरपणा दीनपणा कृपणपणा करना श्रेष्ठ नहीं ॥ भावार्थ– जिस पुरुषके ऐसा अभिमान है, जो मैं संजमी हूं जिनेंद्रकारे आदरे व्रत-संयम धारण करे है, जो संजम अनंतभवनिमें दुर्लभ सो मेरे वीतरागगुरुनिके प्रसादतैं प्राप्त भया है, अर अब किंचित् रोगादिकजनित उपसर्गपरिषह कर्मके उदय-करि आये हैं तो अब मरणकूं प्राप्त होना श्रेष्ठ है! जो एकवार मरनाही है! अर गुरुनिके प्रसादतैं व्रतसहित मरण होजाय तो इससमान मेरा कल्याण और है नहीं, अर इस अवसरमें कायर होय व्रतनितैं शिथिल होना तथा हीन होय विलाप करना तथा व्रतनिका नाश करि नीचकर्म करि इलाज चाहना यह इस लोकमें महालज्जा-योग्य निंद्यकर्मकरि दोऊ लोकका नाश करि दुर्गतिके दुःखनिको कौन आदरै ॥ गाथा

एकस्स अप्पणो को । जीविदहेदुं करिज्ज जंपणयं ॥
पुत्तपउत्तादीणं । रणे पलादो सुजणलंछं ॥ २४ ॥
तह अप्पणो कुलस्स य । संघस्स य मा हु जीविदत्थी तं ॥

कुणसु जणे जंपणयं । किमिणं कुव्वं सुगणलंछं ॥ २५ ॥

अर्थ— जैसैं कोऊ उत्तमकुलमें उत्पन्न हुवा ऐसा शूरवीर पुरुष एक अपना जीवनेके अर्थि रणमें भागता संता पुत्र पौत्रादिकनिकी जगतमें निंदा अपवाद तथा स्वजननिकै कलंक कौन उत्पन्न करै । तैसैं एक अपना जीवनेके अर्थि अधमपणा करता संता आपका तथा कुलका तथा संघका लोकनिमैं अपवाद मति करावो! आपका संघकूं तथा धर्मकूं कलंक मति लगावो ॥ गाथा—

गाढप्पहारसंता- । विदा वि सूरा रणे अरिसमक्खं ॥
ण मुहं भंजंति सयं । मरंति भिउडीमुहा च्चेव ॥ २६ ॥

अर्थ— शूरवीर पुरुष हैं ते संग्रामविषैं दृढप्रहारकरिकैं संतापित भये भ्रकुटीसहित मरण तो करे हैं! परंतु वैरीनिके सन्मुख अपने मुखकूं भंग नही करे हैं—उलटा मुख नही करे हैं ॥ गाथा—

सुट्ठु वि आवइपत्ता । ण कायरत्तं करिंति सप्पुरिसा ॥
कत्तो पुण दीणत्तं । किमिणत्तं चावि काहंति ॥ २७ ॥

अर्थ— तैसैंही सत्पुरुष हैं ते अत्यंत आपदाकूं प्राप्त भयेहू कायरपणा नही करे हैं, तो दीनपणा कृपणपणा तो कैसे करे? ॥ गाथा—

केई अग्गिमदिगदा । समंतउ अग्गिणा वि डज्झंता ॥
जलमज्झगदा व णरा । अच्छंति अचेदणा चेव ॥ २८ ॥
तत्थ वि साहुक्कारं । सग अंगुलिचालणेण कुव्वंति ॥
केई करिंति धीरा । उक्किट्ठिं अग्गिमज्झम्मि ॥ २९ ॥

अर्थ— केई उत्तम पुरुष अग्निकूं प्राप्त भये सर्वतरफतैं अग्निकरिकैं दग्ध होतेहू जैसैं जलके मध्य प्राप्त भये निराकुल अचेतनकीनांई तिष्ठत हैं अर अग्निमैं तिष्ठतेहू केई धीरवीर पुरुष अपनी अंगुलिचालनकरिकै साधुकारही करे हैं। जो, "भली भई! कर्मका ऋण चुकया" अर केई अग्नीके मध्य उत्क्रोशन करे हैं ॥ गाथा—

जदि दा तह अण्णाणी । संसारपवड्ढणाए लेसाए ॥
तिव्वाए वेदणाए । सुहसाउलया करिंति धिदिं ॥ १५३० ॥
किं पुण जदिणा संसा- । रसव्वदुक्खक्खयं करिंतेण ॥
बहुतिव्वदुक्खरसजा- । णएण धीदी हवदि कज्जा ॥ ३१ ॥

अर्थ— तथा जो अज्ञानीकै संसार बधावनेवाली लेश्याकरिकै तीव्रवेदनाकूं होता संताहू परलोकसंबंधी सुखके स्वादमें लंपटी हुवा धैर्य धारण करे है, तो संसारके समस्तदुःखकूं क्षय करता अर चतुर्गतिरूप संसारके बहुत तीव्र दुःखरसकूं जानता

जैनका यति धैर्यधारण नही करै कहा? करैही करै ॥ भावार्थ– इस जगतमें कितनेक अज्ञानीहू तीव्रवेदनाकूं आवतेभी परलोकके सुखका अर्थी होइ धैर्य धारण करै, जो "वेदनामें कायर नही होऊंगा, तो देवलोकके सुखकूं प्राप्त हूंगा" तो संसारके समस्तदुःखका नाश करनेका इच्छक दिगंबर साधु रोगादिक दुःख आये धैर्यधारण कैसें नही करै? ॥ गाथा–

असिवे दुब्भिक्खे वा । कंतारे वा भए व आगाढे ॥
रोगेहि व अभिभूदा । कुलजा माणं ण विजहंति ॥ ३२ ॥
ण पियंति सुरं ण य खं- । ति गोमयं ण य पलंडुमादीयं
ण य कुव्वंति विकम्मं । तहे व अण्णं पि लज्जणयं ॥ ३३ ॥

अर्थ— मारी होतेंहू तथा दुर्भिक्ष काल पडतेंहू तथा भयानक वनीमें प्राप्त होतें तथा अत्यंत गाढ भयमें तथा रोगनिकरि तिरस्कार कीये हुयेहू कुलमें उपजे पुरुष अपना मान नही छांडे हैं। जातें मारीके भयतें दुर्भिक्षादिकके भयतें मदिरा नही पीवे हैं, मांस नही खाय हैं, कांदे भक्षण नही करे हैं, तथा कुकर्म नही करे हैं, तथा ओरहू लज्जनीयकर्म नही करे हैं। कुलवंत पुरुष बहुत दुःख आवतैही निंद्यकर्म नही करै, तो परमार्थमें प्रवर्तते निंद्यकर्म कैसैं करै ॥ गाथा–

किं पुण कुलगणसंघ- । स्स जसमाणिणो लोयपूजिदा साधू ॥
माणं पि जहिय काहं- । ति विकम्मं सुजणलज्जणयं ॥ ३४ ॥

अर्थ— बहुरि अपने कुलका तथा गणका तथा संघका जस उत्पन्न करनेका अहंकारवान् अर लोकमें पूज्य ऐसे उत्तम साधु अपना लोकपूज्य अभिमान त्यागिकरिकै अर सज्जनपुरुषनिमें लज्जनीक निंद्यकर्म करै कहा? कदाचित् नही करै ॥ गाथा—

जो गच्छिज्ज विसादं । महल्लमप्पं च आवदीपत्तो ॥
तं पुरिसकादरं विं- । ति धीरपुरिसा हु संढित्ति ॥ ३५ ॥

अर्थ— जो पुरुष महान् आपदा तथा अल्प आपदाकूं प्राप्त हुवो संतो विषादकूं प्राप्त होय है, तिस पुरुषकूं धीरवीर पुरुष कायर कहे हैं अथवा नपुंसक कहे हैं ॥ गाथा—

मेरुव्व णिप्पकंपा । अक्खोभा सागरुव्व गंभीरा ॥
धिदिमंता सप्पुरिसा । होंति महल्लावईए वि ॥ ३६ ॥

अर्थ—महान् आपदाकूं आवताभी धैर्यके धारी सत्पुरुष जे हैं ते मेरुकीनांई निष्प्रकंप कहिये अचल होय हैं अर समुद्रकीनांई क्षोभरहित गंभीर होय हैं ॥ भावार्थ—सत्पुरुषनिका ऐसाही स्वभाव है, जो अनेक दुःख आपदा आवतैंहू परिणामनिमैं चलायमान नही होय हैं अर जिनका परिणाम समुद्रकीनांई क्षोभकूं प्राप्त नही होय है ॥ गाथा—

केई विमुत्तसंगा । आदारोविदभरा अपडिकम्मा ॥
गिरिपब्भारसभिगदा । बहुसावदसंकडं भीमं ॥ ३७ ॥
धिदिधणियबद्धकच्छा । अणुत्तरविहारिणो सुदसहाया ॥
साहिंति उत्तमट्ठं । सावददाढंतरगदा वि ॥ ३८ ॥

अर्थ— केतेक साधु त्याग्या है समस्त परिग्रह जिननैं ऐसे अर अपने आत्मस्वरूपविषैं आरोपण कीया है आपा जिननैं अर उपसर्गादिकनिके नही आदरे है इलाज जिननैं अर बहुत सिंह व्याघ्र सर्पादिक दुष्टजीवनिकरि व्याप्त अर भयानक ऐसे पर्वतनिके शिखरनिकूं प्राप्त भये अर धैर्यरूप अत्यंत बांधी है कमरि जिननैं अर सर्वोत्कृष्टचारित्रमें प्रवर्तन करते अर श्रुतज्ञानका है सहाय जिनकै ऐसे साधु सिंहव्याघ्रादिक दुष्ट जीव तिनकी दाढनिके मध्य प्राप्त भयेहू उत्तमार्थ जो रत्नत्रय ताहि साधे हैं, कायर होय शिथिल नही होय हैं ॥ गाथा—

भल्लुकिए तिरत्तं । खज्जंतो घोरवेदणंगो वि ॥
आराधणं पवण्णो । झाणेणावंतिसुकुमालो ॥ ३९ ॥

अर्थ— स्यालिनीनिकरि तीन रात्रिपर्यंत खाद्यमान कहिये भक्षण कीया अर घोरवेदनाकरि व्याप्त ऐसाहू अवंतिसुकुमाल नामा मुनि ध्यानकरिकै आराधनानिकूं प्राप्त

भया ॥ भावार्थ– क्षपककूं शिक्षा करे है ॥ भो मुने! महान कोमल अंगका धारक अर तत्कालका दीक्षित ऐसा सुकुमाल नामा श्रेष्ठी, ताका अंगकूं स्यालिनी अपने बच्चेनिकरि सहित तीन दिनपर्यंत भक्षण कीया! परंतु आप परमधैर्यके धारक शुद्ध भावनिकरि तीन दिनपर्यंत घोर उपद्रव सहिकरि उत्तमार्थकूं साध्या, चलायमान नही भया ॥

मुग्गलगिरिम्मि य सुको- । सलो वि सिद्धत्थ इह य भयवं ॥
वग्घीए वि खज्जंतो । पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥ १५४० ॥

अर्थ— मुद्गल नाम पर्वतविषैं सिध्दार्थपुत्र जो भगवान् सुकोसल नामा महामुनि माताको जीव जो व्याघ्री ताकरिकैं भक्षण कीया हुवाहू उत्तम अर्थ जो रत्नत्रयका निर्वाह ताहि प्राप्त भया ॥ गाथा–

भूमीए समं कीला- । होडिददेहो वि अल्लचम्मं व ॥
भयवं पि गयकुमारो । पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥ ४१ ॥

अर्थ— भूमीविषैं आला चामडाकीनाई कीलनिकरि वेध्या है देह जाका ऐसाहू भगवान् गजकुमार नामा साधु उत्तमार्थकूं प्राप्त होत भया ॥ गाथा–

कच्छुजरखाससोसो । भत्तच्छद्दच्छिकुच्छिदुक्खाणि ॥
अधियासियाणि सम्मं । सणक्कुमारेण वाससयं ॥ ४२ ॥

अर्थ— भो मुने ! देखो, सनत्कुमार नाम महामुनि सौ वर्षपर्यंत खाजि ज्वर कास शोष तीव्रक्षुधा अग्निकी बाधा तथा वमन तथा नेत्रपीडा उदरपीडा इत्यादिक अनेकरोगजनित दुःखनिकूं भोगतेहू संक्लेशरहित परिणामनिकरि सम्यक्प्रकार सहते भये, परिणाममें धैर्य नही छांडि रत्नत्रयधारण करत भये ॥ गाथा—

णावाए णिब्बुडाए । गंगामज्झे असुज्झमाणमदी ॥
आराधणं पवण्णो । काळगउ एणियापुत्तो ॥ ४३ ॥

अर्थ— गंगा नाम नदीके मध्य नाव डूबता संता एणिकपुत्र नामा साधु मोहरहित हुवा च्यारि आराधनाकूं प्राप्त होय मरण कीया अर कायरता नही धारी । तातैं, भो कल्याणका अर्थी हो! तुमकूं दुःखमें धैर्य धारण करि आत्महितमें सावधान होना उचित है ॥ गाथा—

ऊंमोदरिए घोरा- । ए भद्दबाहू असंकिलिट्ठमदी ॥
घोराए विगिंछाए । पडिवण्णो उत्तमं ठाणं ॥ ४४ ॥

अर्थ— भद्रबाहु नामा मुनि घोरतर क्षुधाकी वेदनाकरि पीडित हुवाहू संक्लेशरहित बुद्धिकूं अवलंबन करता प्रबल अल्प आहार नाम जो तप ताही धारण करिकैं उत्तम स्थानकूं प्राप्त भया ॥ भावार्थ— भद्रबाहु नामा मुनिकै तीव्र क्षुधाका रोग उपज्या,

तोहू अवमोदर्य जो अल्पभोजन तपही धारण करि उत्तमस्थानकूं प्राप्त भया, परंतु भोजनमें लालसा नही करी ॥ गाथा---

कोसंवी ललियघडा । वूढा णइपूरएण जळमज्झे ॥
आराधणा पवण्णा । पाउवगदा अमूढमदी ॥ ४५ ॥

अर्थ— कौशांबीनगरीविषैं ललितघट नामकरि प्रसिद्ध जे बत्तीस महामुनि हैं, ते जलके मध्य नदीका प्रवाहकरिकैं डूबे हुयेहू मोहरहित होय प्रायोपगमनसंन्यासकूं प्राप्त होय आराधनाकूं प्राप्त भये ॥ गाथा—

चंपाए मासखमणं । करित्तु गंगातडम्मि तण्हाए ॥
घोराए धम्मघोसो । पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥ ४६ ॥

अर्थ— चंपानगरीके बाह्य गंगाके तटविषैं धर्मघोष नामा महामुनि एक महिनाका उपवास धारणकरिकैं अर घोर तृषाकी वेदनाकरि संक्लेशरहित भये उत्तम अर्थ जो आराधनासहित मरण ताहि प्राप्त भया । तृषाकी वेदनातैं जलकी इच्छा नही धरी, संजम नही बिगाड्या, धैर्य धारणकरि आत्मकल्याण कीया ॥ गाथा—

सीदेण पुव्ववइरिय- । देवेण विकुव्विएण घोरेण ॥
संतत्तो सिरिदत्तो । पडिवण्णो उत्तमं ठाणं ॥ ४७ ॥

अर्थ— पूर्वजन्मका वैरी जो देव तींकरि विक्रियारूप कीया जो घोर शीतकी वेदनाकरि व्याप्त जो श्रीदत्त नाम मुनि संक्लेशरहित हुवा उत्तमस्थानकूं प्राप्त भया ॥

उण्हं वादं उण्हं । सिलादलं आदवं च अदिउण्हं ॥
सहिदूण उसहसेणो । पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥ ४८ ॥

अर्थ— वृषभसेन नामा मुनि है, सो उष्णपवनकूं तथा उष्णशिलातलकूं तथा अतिउष्ण सूर्यका आतापकूं संक्लेशरहित हुवा सहिकरिकैं उत्तम अर्थकूं प्राप्त भया ॥

रोहेडयम्मि सत्ती- । ए हओ कोंचेण अग्गिदइदो वि ॥
तं वेयणमधियासिय । पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥ ४९ ॥

अर्थ— रोहेडग नाम नगरविषैं अग्नि नामा राजाका पुत्र क्रौंच नाम वैरीकरिकैं शक्ति नामा आयुधकरि हत्या हुवा शक्तिकी वेदनाकूं सहिकरिकैं उत्तम अर्थकूं प्राप्त भया ॥

काइंदिय भयघोसो । वि चंडवेगेण छिण्णसव्वंगो ॥
तं वेयणमधियासिय । पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥ १५५० ॥

अर्थ— काकंदी नाम नगरीविषैं अभयघोष नामा मुनिहू चंडवेग नाम कोऊ वैरीकरि सर्व अंग छेद्या हुवा तिस घोर वेदनाकूं प्राप्त होयकरिकैं उत्तम अर्थ जो रत्नत्रय ताकूं प्राप्त होत भया ॥ गाथा—

दंसेहिं य मसएहिं य । खज्जंतो वेयणं परमघोरं ॥
विज्जुच्चरोऽधियासिय । पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥ ५१ ॥

अर्थ— विद्युच्चर नाम चोर डांस अर मांछरनिकरि भक्षण कीया हुवा परमघोर वेदनाकूं संक्लेशरहित हुवा सहिकरिकै अर उत्तम अर्थ जो आत्मकल्याण ताहि साधता भया·

हत्थिणपुरगुरुदत्तो । सम्मलिथालीव दोणिमंतम्मि ॥
डज्झंतो अधियासिय । पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥ ५२ ॥

अर्थ— हस्तिनापुरमें वसनेवाला गुरुदत्त नाम मुनि द्रोणिमत् पर्वतविषैं संमलिथालीनाई दग्ध होता संता उत्तम अर्थकूं साधता भया ॥ इहां संमलिथालीका अर्थ हमारी समझिमें नहीं आया है, तातैं नहीं लिख्या है ॥

(हारे धान्यकणिशको घडामें भरके उसका मुख ढांकिकरिकै किंचित् भूमीमें गाढि उपरसे अग्नि प्रज्वालित करके भीतरके धान्य-कणिशको पकाना उसका नाम संमलिथाली है ॥ इसको मरेठीमें 'उपरहंडी' कहते हैं ॥ संशोधकः) गाथा—

गाढप्पहारविध्दो । पूइंगुलियाहि चालणीव कदो ॥
तध वि य चिलादपुत्तो । पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥ ५३ ॥

अर्थ— चिलातपुत्र नाम मुनिकूं कोऊ पूर्व अवस्थाका वैरी दृढ आयुधनिकरि

घात्या अर बहुरि घावनिमैं स्थूल कीडे चाढि आये तिन स्थूल कीडेनिकरि चालिनिकीनांई सर्व अंगमें छिद्ररूप कीया, तोहू संक्लेशरहित हुवा समभावनितैं वेदनाकूं सहिकरि उत्तम अर्थकूं प्राप्त भया ॥ गाथा—

दंडो जउणावंके- । ण तिख्खकंडेहि पूरिदंगो वि ॥
तं वेयणमधियासिय । पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥ ५४ ॥

अर्थ— यमुनावक्रके तीक्ष्णबाणनिकरि पूर्ण है अंग जाका ऐसा दंड नामा मुनि घोरवेदनाकूं समभावनितैं सहिकरिकै उत्तम अर्थ जो आराधना ताही प्राप्त होत भया ॥

अभिणंदणादिया पं- । चसया णयरम्मि कुंभकारकडे ॥
आराधणं पवण्णा । पीलिज्जंता वि जंतेण ॥ ५५ ॥

अर्थ— कुंभकारकट नामा नगरविषैं जंत्र जो घाणी तीमैं पीडे हुये अभिनंदनादिक पांचसै मुनि समभावनितैं आराधनाकूं प्राप्त होत भये ॥ गाथा—

गोट्ठे पाउवगदो । सुबंधुणा गोव्वरे पलिविदम्मि ॥
डज्झंतो चाणक्को । पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥ ५६ ॥

अर्थ— कोऊ सुबंधु नामा वैरी गायनिके रहनेका गृहकै अग्नि लगाई, तिस गायनिके गृहमें दग्ध होता चाणक्य नामा, प्रायोपगमन संन्यास धारणकरि संक्लेशरहित

[1] करीषे

हुवा उत्तम अर्थकूं साधता भया। अग्निमें दग्ध होता संता समभावनितैं सर्व अंतरंग-बहिरंग उपाधि त्यागि आत्मकल्याण कीया ॥ गाथा–

वसदीए पालिदाए। रिट्ठामच्चेण उसहसेणो वि ॥
आराधणं पवण्णो। सह परिसाए कुलालम्मि ॥ ५७ ॥

अर्थ— कुलाल नाम ग्रामका बहिर्भागविषैं रिष्टामच्च नामा वैरी मुनीनिकी भरी वसतिकाकूं दग्ध करी, तिसमें मुनिनकी सभासहित वृषभसेन नामा मुनि आराधनाकूं प्राप्त होत भया ॥ भावार्थ– वृषभसेन नामा आचार्य समस्तमुनिनिकी सभासहित वसतिकामैं तिष्ठे थे, तिनकूं रिष्टामच्च नामा वैरी दग्ध कीया! ते दग्ध होतहू परमवीतरागता धारणकरि आराधनाकूं प्राप्त भये, किंचितहू संक्लेश नही कीया ॥ गाथा–

जदि दा एवं एदे। अणगारा तिव्ववेदणट्ठा वि ॥
एगागि अपडियम्मा। पडिवण्णा उत्तमं अट्ठं ॥ ५८ ॥
किं पुण अणयारसहा-। यगेण कीरंतयम्मि पडिकम्मे ॥
संघे उलग्गंते। आराधेदुं ण सक्किज्ज ॥ ५९ ॥

अर्थ— निर्यापकाचार्य संस्तरनैं प्राप्त भया क्षपककूं कहे है ॥ भो मुने! जो इतने मुनि तीव्रवेदनाकरि पीडित अर असहाय एकाकी अर इलाज-प्रतिकार-वैयावृत्य-

रहित हुयेहू कायरतारहित परम धैर्य धारण करि उत्तम अर्थकूं प्राप्त भये, तो, भो मुने! तुम तो मुनिनिका सहायसहित अर सर्वसंघकूं इलाजमें उपासना करता संता तुम आराधनाके आराधनेमें कैसें नही उद्यमी होत हो? ॥ भावार्थ- आगममें प्रसिद्ध जगतमें विख्यात येते मुनि एकाकी, अर जिनका कोऊ सहायी नही, अर कोऊ जिनका वैयावृत्य करनेवाला नही, अर कोऊ जिनका इलाज नही, अर जिनउपरि दुष्टवैरीनिनें घोर उपसर्ग कीये, अर अग्निमें दग्ध कीये, अर शस्त्रनितें विदारे, अर जलमें डबोय दीये, अर पर्वतादिकतें गेरी दीये, तथा तिर्यंचनिकरि भक्षण कीयेहू परम साम्यभाव नही तज्या! प्राणरहित भये! परंतु आराधनातें शिथिल नही भये अर आत्मकल्याण कीया ॥ तुमारे तो समस्त आचार्यादिक बडे ज्ञानी दयावान् धैर्यके धारी परमहितोपदेशमें उद्यमी अर शरीरका वैयावृत्त्य करनेमें सावधान अर समस्त योग्य इलाज करनेमें तत्पर ऐसो सर्वसंघ सहायी है; अर तीव्र उपसर्गादिक उपद्रवभी नही आये हैं, अब ऐसे अवसरमें तुम आराधना ग्रहण करनेमें कैसें शिथिल भये हो? आपाको समालना योग्य है। अब कायरता छांडहू, धीरता अंगीकार करहू ॥ गाथा-

जिणवयणममिदभूदं । महुंर कण्णाहुदिं सुणंतेण ॥

सक्का हु संघमज्झे। साहेदुं उत्तमं अट्ठं ॥ १५६० ॥

अर्थ— भो मुने! समस्तसङ्घके मध्य अमृतरूप अर मधुर ऐसे जिनेंद्रके वचन कर्णनिमें प्रवेश कीया, तिसकूं श्रवण करते जो तुम तिनकै उत्तम अर्थ जो च्यारि आराधना ताहि आराधनेकूं समर्थपणा है॥ भावार्थ- जिनेंद्रभगवानके वचन श्रवण कीये हुये अमृत जो मोक्ष ताका जो आत्मिकसुख तिसका साक्षात् अनुभव करावे है अर मोक्षकूं दे हैं। तातैं जिनवचन अमृतभूत हैं अर कर्णनिकूं प्रिय हैं तातैं मधुर हैं। ऐसे जिनेंद्रके वचन जिसकै कर्णद्वार होय हृदयमें प्रवेश कीये, सो पुरुष च्यारि आराधनारूप परिणमवेमें कैसैं असमर्थ होय?॥ गाथा-

णिरयतिरिक्खगदीसु य। माणुसदेवत्तणे य संतेण ॥
जं पत्तं इह दुक्खं। तं अणुचिंतेहि तच्चित्तो ॥ ६१ ॥

अर्थ— भो क्षपक! इहां तुमारै कहा दुःख आये हैं? जिनतैं शिथिल भये हो! इस संसारमें परिभ्रमण करते तुम नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगतिनिविषैं जो दुःख प्राप्त भये हो, सो तिनमें चित्त लगाय चिंतवन करो! ऐसे कोऊ दुःख बाकी नही रहे, जे तुम संसारमें नही भोगे। अनंतवार अग्निमें दग्ध होय होय मरे हो। अनंतवार जलमें डूबि डूबि मरे हो। अनंतवार पर्वतानितैं पतन करि करि मरे हो।

अनंतवार कूप तलाव समुद्रमें मरे हो। अनंतवार नदीनिमैं वही मरे हो। अनंतवार शस्त्रनितैं विदारे गये हो। अनंतवार घाणीमैं पेले गये हो। अनंतवार दुष्टनिकरि खाये गये हो, पीसे गये हो, रांधे गये हो, भुलसे गये हो। अनंतवार क्षुधाकी तीव्रवेदनातैं मरे हो। अनंतवार तृषाकी वेदनातैं मरे हो। अनंतवार शीतवेदनातैं, अनंतवार उष्णवेदनातैं, अनंतवार वर्षाकी बाधातैं, अनंतवार पवनकी वेदनातैं, अनंतवार विषभक्षणतैं मरे हो। अनंतवार तीव्ररोगकी वेदनाकरि मरे हो। अनंतवार भयकरि मरे हो। अनंतवार शोककरि मरे हो। अनंतवार सिंह व्याघ्र सर्पादिक दुष्टजीवनिकरि विदारे गये हो। अनंतवार चोरनिकरि भीलनिकरि राजानिकरि कोटपालकरि म्लेच्छनिकरि मारे गये हो। अनंतवार अपनी स्त्रीपुत्र बांधवमित्र कुटुंबादिकनिकरि तथा शत्रूनिकरि मारे गये हो॥ अब इस अवसरमें मरणका भयकरि तथा वेदनाका भयकरि रत्नत्रयकूं बिगाडना उचित नही है। बहुत दुःखनिकरि अनंतकाल व्यतीत भया! अब किञ्चिन्मात्र वेदनाके प्राप्त होनेतैं परमधर्ममें शिथिल होना उचित नही॥ आगै, पूर्वै नरकमें वेदना भोगि तिनकूं दिखावे हैं॥ गाथा—

णिरएसु वेयणाउ। अणोवमाउ असादवहुलाउ॥
कायणिमित्तं पत्तो। अणंतसो तं वहुविधाउ॥ ६२॥

अर्थ— भो मुने! इस संसारमें शरीरके निमित्त असंयमी होय ऐसा कर्म उपार्जन कीया, जिसतैं नरकभूमीकूं प्राप्त भया जो तुम, सो नरकनिविषैं बहुतप्रकारकी उपमारहित असाताकी आधिक्यतासहित वेदना अनंतवार भोगी ॥ गाथा—

जदि कोइ मेरुमत्तं । लोहंडं पक्खिविज्ज णिरयम्मि ॥
उण्हे भूमिमपत्तो । णिमिसेण विलिज्ज सो तत्थ ॥ ६३ ॥

अर्थ— उष्णनरकनिमैं ऐसी ऊष्मा है, जो कोऊ मेरुप्रमाण लोहका पिण्ड क्षेपै, तो भूमिकूं नही प्राप्त होय तितनैं एक निमेषमात्रमें गलिकरि रस होय वहि जाय ऐसैं पहली दूसरी तीसरी चोथी पृथ्वीके बिलनिमैं तथा पांचवी पृथ्वीके दोय लाख बिल सब मिलि बियासी लाख बिलनिमैं घोर उष्णवेदना असंख्यातकालपर्यंत कर्मनिकै वशी होय भोगी! तो इस मनुष्यजन्ममें ज्वरादिकरोगजनित तथा तृषाजनित तथा ग्रीष्मकालजनित किञ्चित् उष्णता आय प्राप्त भई तो धर्मके धारकनिकूं समभावनिकरि नही सहनेयोग्य है कहा? यह अवसर समभावतैं परीषह सहनेका है, अर नही सहोगे तो कर्म बलवान् है छोडनेका नही, तातैं परम धैर्य अवलंबन करो ॥

तह चेव य तद्देहो । पज्जलिदो सीयणरयपक्खित्तो ॥
सीदे भूमिमपत्तो । णिविसेण सडिज्ज लोहंडं ॥ ६४ ॥

अर्थ— तैसेंही दोय लाख नरकके शीतबिल, तिनमें लाख योजनप्रमाण लोहका पिंड क्षेपिये तो नरककी शीतभूमीकूं नही प्राप्त होय, तितनैं एक निमेषमात्रमें खंडखंड होय बिखरि जाय! ऐसी शीतवेदना शीतनरकके पंचमके तथा छठी सातवी पृथ्वीके बिलनिमैं जन्म धारण करि असंख्यात कालपर्यंत कर्मनिके वशी होय भोगी, तो अब इस मनुष्यजन्ममें शीतज्वरादिकजानित तथा शीतकालजनित आई प्राप्त भई जो शीतवेदना सो धर्मके धारकनिकूं सहनेयोग्य नंही है कहा? तातैं सचेत होहू । किञ्चि-न्मात्र थोरे काल आई जो शीतवेदना, तातैं कायर होय परमधर्म बिगाडि संसारमें परिभ्रमण मति करो ॥ गाथा—

होदि य णरए तिव्वा । सभावदो चेव वेदणा देहे ॥
चुण्णीकदस्स वा म- । च्छिदस्स खारेण सित्तस्स ॥ ६५ ॥

अर्थ— नरकनिविषैं स्वभावहीतैं देहविषैं तीव्र वेदना होय है। तथा तिनका देह नारकीनिकरि चूर्ण कीया तथा मूर्छाकूं प्राप्त भया तथा क्षारजलकरि सींचे हुये नारकी-निके शरीरमें प्रचुर वेदना होय हैं ॥ गाथा—

णिरयकडयम्मि पत्तो । जं दुक्खं लोहकंटएहि तुमं ॥
णेरइएहि य तत्तो । पडिउं जं पाविउं दुक्खं ॥ ६६ ॥

अर्थ— नरकरूप कटक कहिये सेना तिसविषैं तथा नरकरूप खाडेविषैं नारकीनिकरि पटक्या जो तुम, सो लोहमय कांटेनिकरि जो दुःखकूं प्राप्त भया हो, तिन नारकीनिके दीये दुःखकूं चिंतवन करो। इहां तुमारै रोगादिकतैं उपज्या तथा भूमीके स्पर्शतैं उपज्या कहा दुःख है? जिसतैं अत्यंत कायर होतहो! ॥ गाथा—

जं कूडसामलीहि य। दुक्खं पत्तो सि जं च सूलम्मि ॥
आसिपत्तवणम्मि य जं। जं च कयं गिद्धकंकेहिं ॥ ६७ ॥

अर्थ— हे मुने! नरकनिविषैं कूटशालमलीवृक्ष जिनके ऊर्ध्व अधः कंटक तिनकरि घसीटनेकरि दुःख प्राप्त भये हो! तथा शूलीके अग्रभागविषैं तथा असिपत्रवनविषैं तथा वज्रमय है चूंच जिनकी ऐसे गृध्रपक्षी तथा कंकपक्षी तिनकरि दुःखकूं प्राप्त भये हो! ॥

सामसवलेहि दोसं। वइतरणीए य पाविउं जं से ॥
पत्तो कयं व वालुय-। मइगम्ममसायमइतिव्वं ॥ ६८ ॥

अर्थ— नरकनिमैं श्यामशबलसंज्ञक तथा अंबाबरीषजातिके दुष्ट असुरकुमार देव तिनकरि परस्पर करायो घात तथा मारण तिनकरि अति तीव्र दुःख सहे तिनकूं चित्तमें धरो। तथा दुःसह महादुर्गंध क्षार रुधिर राधिमय महाभयानक वैतरणीनदीमैं प्राप्त भये तिस घोरदुःखकूं कौन वर्णन करि सकै? सर्व अंग फूटि जाय अर जिनमें अग्नि-

समान आतापकारी महान् वेदना करनेवाला जल वहै ऐसी वैतरणीनदीके प्रवेशकरि महादुःख भोगे तथा कदंबसमान वालू रेत महादुःखकारी तिनकूं प्राप्त होयकरिकैं तीव्र असाताकूं प्राप्त भया! ॥ गाथा–

जं णीलमंडवे त- । त्तलोहपडिमाउले तुमे पत्तं ॥
जं पाइईउ सि खारं । कडुयं तत्तं कलकलं च ॥ ६२ ॥

अर्थ— तथा लोहमय नीलमंडप तिनमें तप्त लोहमय फूतल्यां तिनके स्पर्शननैं बलात्कारकरि प्राप्त भया, तिनके अतिदुःखकारि आलिंगन तिनकरि जो दुःख प्राप्त भया, तिसकूं मनमें चिंतवन करो! तथा नारकीनिकरि पाया महाक्षार कटुक तप्तायमान रस तिसकरि घोरदुःखकूं प्राप्त भया! ॥ भावार्थ- नरकधरामें तप्तायमान महा विकराल जिनका स्वरूप अर अग्निकूं उगलती अर तीक्ष्ण कंटकमय तप्तायमान है देह जिनका ऐसी लोहमय फूतल्यां बलात्कारकरि पकडे हैं, तिनकरि सर्व मर्मस्थान भग्न होय हैं, अर तिनके स्पर्शन करनेकरि उपजी जो तीव्रवेदना सो वचनद्वार कही नही जाय! सो भोगे है! परंतु आयु पूर्ण भयेविना नरकमें मरण नही होय है। तथा ताम्र गालिकरि पावै है। तथा सिंडासेनितैं मुख फाडि महाकटुक क्षाररसकूं पावै है॥ गाथ

जं खाविईउ सि अवसो । लोहंगारे य पज्जलंते तं ॥

कंडुसु जं सि रद्धो। जं लिकभल्लीए तलिउं सि ॥ १५७० ॥

अर्थ— भो मुने! जो परवश हुवा संडासेनिकरि मुखकूं विदारि अर प्रज्वलते लोहमय अंगारे भक्षण कराये तिनकूं यादि करो। तथा कटाईनिमें रांधे तथा लोहमय यंत्रमें तले गये तिनकूं चितारो ॥ गाथा—

कुट्टाकुट्टिं चुण्णा-। चुण्णिं मुग्गरमुसुंढिहत्थेहिं ॥
जं विसखंडाखंडिं। कउं तुमं जणसमूहेण ॥ ७१ ॥

अर्थ— हे मुने! जो थे मुद्गरसूं खंडि तथा हस्तकरिकै कूंटाकूंटि करिकै तथा चूर्णाचूर्णि करिकै नारकीनिके समूहकरि वारंवार खंडन कीये गये, तिसकूं चिंतवन करो ॥ भवार्थ- नरकमें नारकी परस्पर आयुधनिकरि तथा हस्तपादनिकरि घात करे हैं। तिनके घातनिकरि तुमहू वारंवार खंडन कीये गये हो ॥ गाथा—

जं अवहद्धो उप्पा-। डिदाणि अत्थीणि णिरयवासम्मि ॥
अवसस्स उक्खया जं। सतूलमूलायते जिब्भा ॥ ७२ ॥

अर्थ— बहुरि नरकधराविषैं परवश जो तुम, ताका मस्तक छेद्या गया तथा नेत्र उपाडे तथा समस्त जिह्वा उखालि, तिसकूं विचारो ॥ गाथा—

कुंभीपाएसु तुमं। उक्कढिउं जं चिरं पि अंगारे ॥

जं हुट्ठउ व णिरय- । म्मि पउलिदो पावकम्मेहिं ॥ ७३ ॥

अर्थ— हे मुने! तुम पापकर्मकरिकै कुंभीपाकनिविषैं चिरकालपर्यंत ओटाये, तथा नरकविषैं शूलमें पोया मांसकीनाई अंगारविषैं सेके पकाये गये, सो चिंतवन करो ॥

जं भज्जिदो सि भज्जिद- । गं पि य जं गालिउं सि रसयं व ॥
जं कप्पिउं सि वल्लू- । रयं व चुण्णं व चुण्णिकदो ॥ ७४ ॥

अर्थ— नरकमें तुम भज्जिदग नाम शाककीनांई भंगनैं प्राप्त भये हो विदारे गये हो, तथा रसवत् गाले गये हो अर वल्लूरवत् कतरे गये हो अर चूर्णवत् चूर्ण कीये गये हो, सो चिंतवन करो ॥ गाथा—

चक्केहि करकचेहि य । जं सि णिकत्तो वि कत्तिउं जं च ॥
परसूहि फाडिउं ता- । डिउं य जं तं मुसंढीहिं ॥ ७५ ॥

अर्थ— भो मुने! नरकविषैं चक्रनिकरि छेदे गये हो, करोतनिकरि चीरे गये हो, तथा कतरे गये हो, तथा नानाखंडरूप कीये गये हो, तथा फरसीनिकरि फाडे गये हो, तथा मुसंडी मुद्गरनिकरि ताडे गये हो, तिनकूं चिंतवन करो ॥ गाथा—

पासेहि जं च गाढं । बध्दो भिण्णो य जं सि दु घणेहिं ॥
जं खारकद्दमे खु- । प्पिउं सि उम्मत्थिउं अवसो ॥ ७६ ॥

अर्थ— हे मुने! तुम नरकविषैं जो पासीनिकरि दृढ बांधे गये हो, तथा जो घननिकरि भेदे गये हो अर परवश भये क्षार कर्दममैं नीचा मस्तक ऊपरि पग करि गाडे गये हो, तिन दुःखनिकूं यादि करो ॥ गाथा—

जं छोडिदो सि जं मो- । डिदो सि जं फाडिउँ सि मलिदो सि ॥
जं लोटिदो सि सिंघा- । डएसु तिक्खेसु वेएण ॥ ७७ ॥

अर्थ— भो मुने! नरकविषैं जो थे हस्तपादादिकरि भग्न भये हो, अर जो पटके गये हो, अर जो फाडे गये हो, अर जो मर्द्दले गये हो, अर जो तीक्ष्ण शृंगाटक जे तीक्षण पत्थर तथा कंटक तिनविषैं वेगकरिकैं जो लोटे हो घंसीटे गये हो, तिन दुःखनिकूं चिंतवन करो ॥ गाथा—

विच्छिण्णंगोवंगो । खारं सिंचित्तु पिंजिदो जं सि ॥
सत्तीहि सुतिक्खीहिं । अदयाए खुंचिउँ जं सि ॥ ७८ ॥
पगळंतरुधिरधारो । पलंवचम्मो य भिण्णपोट्टसिरो ॥
पउलिदहिदउँ जं फुडि- । दच्छो पडिचूरियंगो य ॥ ७९ ॥
जं वडवडित्तकरचर- । णंगो पत्तो सि वेदणं तिव्वं ॥
णिरए अणंतखुत्तो । तं अणुचिंतेहि णिस्सेसं ॥ १५८० ॥

अर्थ— हे मुने! नरकनिविषैं छिद्या है अंगोपांग जाका ऐसे तुमकूं अन्य नारकी क्षारकरि सींचिकरिकै पवनतैं कंपायमान कीये हो, वहुरि तीक्ष्ण शक्ति नामा आयुध तिनकरिकै दयारहित होय खैंच्या गया हो तथा पलट्या गया हो, वहुरि झरती है रुधिरकी धारा जिनकै ऐसे, अर लटकता है खालडा जाकै ऐसे, अर विदार्या गया है उदर अर मस्तक जाका, अर तप्तायमान है हृदय जाका, अर फूटि गई है आंखि जाकी अर चूर्णचूर्ण कीया है अंग जाका, अर वेदनाकरि कांपता है हस्तपाद जाका ऐसे तुम नरकविषैं तीव्र वेदनाकूं अनंतवार प्राप्त भये हो, सो समस्त नरकके दुःख चिंतवन करो ॥

भावार्थ- भो मुने! इहां तुमारे कहा वेदना है? नरकनिविषैं अनंतवार जैसी वेदना भोगी तैसी इस लोकमें देखनेमें आवै नहीं, श्रवणमें आवै नहीं, अनुभवमें आवै नहीं जहां मुद्गरनिकरि मर्मस्थाननिकूं भेदना, करोतनिकरि चीरना, वसोलेनिकरि छीलना, कुहाडेनिकरि फाडना, जंत्रनिकरि पीसना, कुंभीनिमैं ओटावना, शस्त्रनिकरि खंड करना, नाना आयुधनिकरि मारना, तिनकरि अनंतकाल दुःख भोगे हैं। तथा नरकका क्षेत्रही ऐसा है- जो कोटिवृश्चिकनिकरि एकैकाल वेदना नहीं होय तैसी पृथ्वीके स्पर्शकी वेदना है। तथा पर्वतसमान खैरके अंगारनिपरि लोटनाहू नरककी पृथ्वीके स्पर्शतैं सुखकारी दीखे है। तथा महान् कडवी दुर्गंध नरककी मृत्तिका, तो कणमात्र भक्षण

करतैंही मूर्छित हो जाय। नारकीनिकै ऐसी क्षुधा है, जो, सकलपृथ्वीके अन्नादिक भक्षण कीयेहू उपशम नहीं होय, अर एक कणमात्र मिलै नही। तथा नारकीनिकै ऐसी तृषाकी प्रबल वेदना है, जो, समस्तसमुद्रका जल पीजाय तोहू उपशम नही होय अर एक बूंदमात्रहू मिलै नही है। पूर्वजन्ममें अभक्ष्य भक्षण कीये हैं, रात्रिमैं भोजन कीये हैं, सप्तव्यसन सेये हैं, हिंसादिक महापाप कीये हैं, निर्माल्य खाये हैं, व्रतीनिकूं कलंक लगाये हैं, विपरीत देव गुरु धर्मका मार्ग चलाया है, तिन घोरपापनिका नरकमें फल जानना ॥

तथा नरकभूमीकी मट्टी ऐसी दुर्गंध है, जो इस मनुष्यलोकमें एक कणहू आवे तो पहले पटलकीतैं आध आध कोसके पंचेंद्रिय मनुष्य तिर्यंच दुर्गंधकरि मरण करे। तथा दूसरा पटलकीतैं एक कोसके ऐसे सातमा नरकको जो गुणचासमो पटल ताकी मृत्तिकाको एक कणभी जो मध्यलोकमें आवे तो साढा चोईस चोईस कोसके पंचेंद्रिय मनुष्य तिर्यंच दुर्गंधकरि मरण करे हैं ऐसी जहां दुर्गंध नारकी भोगे हैं। तथा नरककी पृथ्वी पर्वत वृक्ष तथा नारकीनिके अत्यंत भयंकर रूप देखनेका दुःखका वर्णन कोन कहि सकै? ऐसी इस लोकमें वस्तूही नही, जाकी उपमा दीजे। तथा नारकीनिका तथा दुष्ट असुरकुमारनिका महा भयंकर शब्द सुनिये हैं, तथा नारकीनिके

शरीरमें कोटिन रोगनिका एककाल उदय आवे है, तथा मानसिक बडा दुःख नारकीनिकै है, तथा असुरकुमारनिमें अंबावरीषादि दुष्ट देव अत्यंत दुःख करनेवाली सामग्री प्रकट करे हैं, तथा मारे हैं, तथा नारकीनिकूं लडावे हैं। नारकीनिकी ऐसी पर्याय है, जो, परस्पर देखतप्रमाण अतिक्रोध प्रज्वलित होय है, देखतैंही परस्पर नेत्रनिकूं उपाडे है, आंतनिकूं काटे हैं उदरकूं विदारे हैं, इत्यादिक नानाप्रकारके परस्पर दुःख करे हैं। तहां आयु पूर्ण हुवाविना मरण नही, तिलतिलमात्र खंड होजाय हैं, तोहू नारकीनिका शरीर पारेकीनांई मिलि जाय है, आयु पूर्ण हुवा विना नरकमैंतें निकलना नही होय है। सो ऐसे दुःख अनंतकाल भोगे! तो अब ये सन्यासमरणका अवसरमें कर्मके उदयतैं आये अति अलपकाल रोगादिकतैं उपज्या तथा क्षुधातृषादिकतैं उत्पन्न भया कहा दुःख है? अब धैर्य धारणकरि वेदनाकूं समभावनितैं सहिकरिकै अपना आत्मकल्याण करो ॥ अर भो मुने! जहां अनंतानंत काल परिभ्रमण कीया ऐसी तिर्यंचगतिके दुःखनिकूं अब ऐसैं चिंतवन करो ऐसा कहे हैं ॥ गाथा—

तिरियगदिं अणुपत्तो। भीममहावेदणाउळमयारं ॥
जम्मणमरणरहट्टं। अणंतखुत्तो परिगदो जं ॥ ८१ ॥

अर्थ— भयानक है महावेदना जामैं अर नही है पार जाका ऐसी तिर्यंचगतिकूं

प्राप्त हुवा, जन्ममरणरूप घटीयंत्रकूं अनंतवार प्राप्त भया, तिसकूं चिंतवन करो ॥ भावार्थ— जैसें अरहटका घटीयंत्र एकतरफ रीता होता जाय एकतरफ भरता जाय, तैसें निरंतर एक आयु पूर्ण करि मरे हैं; अन्यमें जन्मे है। ऐसें जन्म अर मरण निरंतर करते करते अनंतकाल व्यतीत भये हैं। तिनमें अनंतानंतकाल एकेंद्रियनिमैं व्यतीत भये अर यद्यपि त्रसपर्यायका असंख्यात काल है, तथापि अनेकवारपरिवर्तनकरि अनंतकालही त्रसमें व्यतीत भया, तिनके दुःख कोन कहि सके? ॥ गाथा—

ताडणतासणबंधण-। वाहणलंछणविहेडणं दमणं ॥
कण्णच्छेदणणासा-। वेहणणिल्लंच्छणं चेव ॥ ८२ ॥
छेदणभेदणडहणं। णिपीलणं गालणं छुहा तण्हा ॥
भक्खणमद्दणमलणं। विकत्तणं सीदउण्हं च ॥ ८३ ॥
जं अत्ताणो णिप्पडि-। यम्मो बहुवेदणद्दिउं पडिउं ॥
बहुएहि मदो दिवसे-। हि चडयडंतो अणाहो तं ॥ ८४ ॥

अर्थ— बहुरि तिर्यंचगतिविषैं नानाप्रकारकरि ताडन तथा त्रासन बंधन वाहन लंछन विहेडन दमन कर्णच्छेदन नासिकावेधन बीजविनाशन तथा छेदन भेदन दहन निपीडन गालन तथा क्षुधा तृषा भक्षण मर्दन मलन विकीर्णन शीत उष्ण इत्यादिक

दुःखनिकूं अशरण हूवो तथा नहीं है इलाज जाका ऐसा अर बहुतवेदनाकरि पीडित पडता हुवा बहुत दिननिपर्यंत दुःख भोगिभोगिकरि मन्या चडचडाट करता अनाथ हुवा वारंवार मरण कीया, सो चिंतवन करो ॥

भावार्थ— तिर्यंचगतिविषैं नानाप्रकारकी लाठी मूंकी चावकानिकी ताडना भोगी, तथा नानाप्रकारके शस्त्रनिकी त्रास भोगी; तथा नानाप्रकारके दृढबंधन, नासिकावेधन, हस्तपादादिबंधन, ग्रीवाबंधन, पिंजरेनिका बंधनमें बंध्या हुवा तीव्रदुःखकूं प्राप्त भया; तथा कर्णच्छेदन, नासिकाछेदन, तथा शस्त्रनितैं वेधन तथा घसीटनां इत्यादिक दुःख सहे; तथा बहुतभारकरि हाडनिके खंड होगये; तथा मार्गमें बोझ लादि बहुत दूरि क्षेत्रपर्यंत रात्रिमें अर दिनमें वहाया; तथा अग्निमें बल्या, जलमें डूब्या, तथा परस्पर भक्षण कीया हुवा, तथा क्षुधा तृषा शीत उष्णजनित घोरवेदना भोगी, तथा पीठ गल गई, अशक्त हुवा कर्दमादिकानिमें, तथा घोर आतापमें पड्या हुवा घोर क्लेशकूं प्राप्त भया तिनकूं चिंतवन करो! इहां कहा दुःख है? ॥ गाथा—

रोगा विविधा वाधा- । उ तह य तिव्वं भयं च सव्वत्तो ॥
तिव्वा उ वेदणाउ । धाडणपादाभिघादा य ॥ ८५ ॥

अर्थ— तथा तिर्यंचगतिमैं नानाप्रकारके रोग, तथा सर्वतरफतैं शाश्वत भय, तथा

दुष्टतिर्यंचनिकरि तथा मनुष्यनिकरि कृत घोरवेदना, तथा वचनकृत तिरस्कार, तथा चरणनिके घात तिनकूं दीर्घकालपर्यंत भोगता भया ॥ गाथा—

सुविहिय अदीदकाले । अणंतकायं तुमे आदिगदेण ॥
जम्मणमरणाटंकं । अणंतखुत्तो समणुभूदं ॥ ८६ ॥

अर्थ— हे सुंदरचारित्रके धारक! पूर्वें गया जो अतीतकाल, तिसविषैं अनंतकाय जो निगोद, तिनविषैं प्रवेश करिकै तुम जन्ममरणकी पीडाकूं अनंतवार भोगी है, सो चिंतवन करो ॥ गाथा—

इच्चेवमादि दुक्खं । अणंतखुत्तो तिरिक्खजोणीए ॥
जं पत्तो सि अदीदे । काले चिंतेहि तं सव्वं ॥ ८७ ॥

अर्थ— भो मुने! अतीतकालविषैं तिर्यग्योनिविषैं इत्यादिक दुःख अनंतवार प्राप्त भये, सो समस्त चिंतवन करो। इहां तुमारे कहा दुःख है? ॥ ऐसैं तिर्यंचगतिके दुःखनिका स्मरण कराया ॥ अब देवमनुष्यपर्यायमें जे दुःख भोगे, तिनकूं दिखावे हैं ॥

देवत्तमाणुसत्ते । जं ते जाएण सकयकम्मवसा ॥
दुक्खाणि किलेसा वि य । अणंतखुत्तो समणुभूदं ॥ ८८ ॥

अर्थ— हे मुने! अपने कीये कर्मनिके वशतैं देवपणामैं तथा मनुष्यपणाविषैं

उत्पन्न भये भी तुम दुःखनिकूं तथा क्लेशनिकूं अनंतवार अनुभव कीये हैं–भोगे हैं ॥

पियविप्पउंगदुक्खं । अप्पियसंवासजादुक्खं च ॥
जं वेमणस्सदुक्खं । जं दुक्खं पच्छिदालाभे ॥ ८९ ॥
परभिउदाए जं ते । असब्भवयणेहिं कडुगफरुसेहिं ॥
णिब्भच्छणावमाणण- । तज्जणदुक्खाइं पत्ताइं ॥ १५९० ॥

अर्थ— देवमनुष्यपर्यायविषैं अपने प्राणनितैंहू अधिक प्रिय तिनका वियोगका दुःख, तिनकूं यादि कीये हृदय फटि जाय सो बहुतवार प्राप्त भया । तथा जिनका नाम श्रवणमें आया हुवाहू मस्तकके शूलसमान वेदना करै ऐसे महादुष्ट अप्रियनिके संग वसनेकरि उत्पन्न भया जो दुःख सो बहुतवार भोगे । तथा वांछितका लाभ नही होतै जो मनके विगडनेका जो दुःख प्राप्त भये, तिनकूं चिंतवन करो । बहुरि परके सेवकपणाविषैं पराधीन हुवा अयोग्य वचननिकरिकैं तथा कटुकवचननिकरि कठोरवचननिकरि तिरस्कार तथा अपमान तर्जनादिक दुःखनिकूं प्राप्त भये हो, तिनकूं चिंतवन करो

दीणत्तरोसचिंता- । सोगामरिसग्गिपउलिदमणो जं ॥
पत्तो घोरं दुक्खं । माणुसजोणीए संतेण ॥ ९१ ॥

अर्थ— मनुष्ययोनि होते संते दीनपणा तथा रोष चिंता शोकके वशी होय दुःख

भोग्या तथा क्रोधरूप अग्निकरि प्रज्वलित है मन जाका ऐसा जीव जो घोरदुःखकूं प्राप्त भया, सो स्मरण करो ॥ गाथा—

दंडणमुंडणताडण-। धरिसणपरिमोससंकिलेसो य ॥
धणहरणदारधरिसण-। घरदाहजलादिधणणासं ॥ ९२ ॥

अर्थ— तथा तीव्र राजादिकनिके तथा दुष्ट कोटपालनिकरि तथा राजाके दुष्ट मंत्री तथा भील म्लेंछनिकरि दीया तीव्र दंडकरि, तथा मुंडन करनेकरि, तथा नानाप्रकारकी ताडना तथा नरकके बिलसमान बंदीखानेनिमैं रोकनेकरि, तथा चोरनिकरि क्लेशकूं प्राप्त भया, तथा बलात्कारकरि धनका हरणका दुःख, तथा स्त्रीके हरणका दुःख तथा गृहका अग्निकरि दग्ध होनेतैं उपज्या दुःख, तथा गृह धनादिकका जलकरि वहनेतैं उपज्या दुःख, तथा निर्धन–धनरहित होनेतैं उपजे अनेक दुःख मनुष्यजन्ममें बहुतवार प्राप्त भये हो; तिनकूं यादि करि परमसमता ग्रहण करना उचित है ॥

दंडकसालट्ठिसदा-। णि दंकुरा कंटमद्दणं घोरं ॥ कुंभीपाको मच्छय-।
पलीवणं भत्तवुच्छेदो ॥ ९३ ॥ दमणं च हत्थिपाद-। स्स णिगल
अंदूवरत्तरज्जूहिं ॥ वंधणमाकुट्टणयं । उलंवणणिहणणं चेव ॥ ९४ ॥
कण्णोट्ठसीसणासा-। छेदण दंताण भंजणं चेव ॥ उप्पाडणं च अच्छी-।

ण तहा जिब्भाए णीहरणं ॥ ९५ ॥ अग्गिविससत्तुसप्पा- । दिवालस-
त्थाभिघादघादेहिं ॥ सीउण्हरोगदंसम- । सएहि तण्हा छुधादीहिं ॥ ९६॥
जं दुक्खं संपत्तो । अणंतखुत्तो मणे सरीरे य ॥ माणुसभवे वि तं स- ।
व्वमेव चिंतेहि तं धीर ॥ ९७ ॥ १ मुष्टिप्रहाराः

अर्थ— हे मुने! मनुष्यभवविषैं इस जीवनैं जे जे दुःख भोगे हैं, तिनकूं यादि करो । दंड वेद लाठीनिकरि मारे गये हो, घोडेनिके मारनेके कशा कहिये चाबके तिनकी मार भोगी है, तथा लोहंडीनिके सैंकडेनिकरि चूरे गये हो, तथा ठोकरेनिके प्रहार अर मुष्टीनिके प्रहार भोगे हैं, तथा कंटकनिकी भूमीमैं मर्दले गये हो, घोर कहिये भयानक जैसैं होय तैसैं कटाहेनिमैं पकाये गये हो, तथा मस्तक ऊपरि अग्नि प्रज्वलित करी गई है, तथा भोजनपानके अभावकरि मारे गये हो, तथा दमन कीया है, निर्बल कीये गये हो, तथा सांकलनिकरि हस्तपाद बांधे जिनकी वेदना भोगी है, तथा रज्जू रसोनिकरि अंडक बांधि मारे गये हो, तथा रज्जूनिकरि सर्व अंगकूं बांधि मारे हैं, तथा आक्रोडन कहिये दोऊ हस्त पृष्ठपरि लेय बांधना तथा ग्रीवामैं पासीकरि बांधि वृक्षनिकी शाखानिकै झूलावना, तथा एक पावकूं वृक्षकी शाखाकै बांधि नीचे मस्तक करि लटकावना तथा खाडा खोदि उसमैं गाडि धूलीतैं खाडा भरि पूर्ण करनेकरि पराधीन पड्या घोरदुःख

भोगे हैं, तथा मनुष्यभवविषैं कर्णनिका काटना, ओष्ठका छेदना, मस्तक विदारना, नासिका छेदना, दांतनिका भंजन करना, नेत्रनिका उपाडना, जिह्वाका निकालि लेना इत्यादिकनिकरि पराधीन हुवा अनेकवार दुःख भोगे हैं, तथा अग्निमैं बलिकरि मरे हो, तथा विषभक्षणकरि मरे हो, तथा शत्रुनिकरि नानाप्रकारके घातनिकरि मारे गये हो, तथा सर्पनिकरि डसे गये हो, सिंहव्याघ्रादिकानिकरि विदारे गये हो, शत्रुनिके घातनिकरि घाते गये हो, तथा शीत उष्ण डांस मच्छरनिकी वेदनाकरि तथा क्षुधा-तृषादिककी वेदनाकरि मारे गये हो, औरहू कूपमें पडना, पर्वततैं गिरना, वृक्षके पडने-करि जायगा मकानके पडनेकरि दबि मरना, तथा वर्षाकी बाधाकरि पवनकी बाधाकरि गडेनिकी मारकरि विजुलीके पडनेकरि तीव्र रोगादिककरि घोर दुःख पाय पाय अनेक-वार मरे हो। मनुष्यभवहूमैं शरीरसंबंधी दुःख तथा दारिद्र्यजनित अपमानजनित इष्टवियोगादिजनित मानसिक दुःख समस्त जो दुःख ते अनंतवार भोगे हैं, तिनकूं हे धीर चिंतवन करो! इहां सन्न्यासका अवसरमें किंचित् उपजी वेदना ताका कहा दुःख है? अब समभावनितैं सहिकरि सर्वदुःखका अभाव करनेका अवसर है, तातैं कायरता तजो, परमधैर्य धारणकरि परीषहनिकूं जीति सकलकल्याणकूं प्राप्त होहू! यह कर्मके विजय करनेका अवसर है, इस अवसरमें गाफिल रहना उचित नहीं ॥

सारीरादो दुक्खा- । दु होइ देवेसु माणसं तिव्वं ॥
दुक्खं दुस्सहमवस- । स्स परेण अभिभुज्जमाणस्स ॥ ९८ ॥

अर्थ— बहुरि देवगतिविषैं अन्यदेवनिकरि वाहनादिकपणाकूं प्राप्त कीया अर महर्द्धिकदेवनिके आधीन परवश जो देव तिसकै शरीरदुःखतैंहू अधिक मानसिक दुःसह दुःख होत है ॥ गाथा—

देवो माणी संतो । पस्सिददेवे महड्ढिए अण्णे ॥
जं दुक्खं संपत्तो । घोरं भग्गेण माणेण ॥ ९९ ॥

अर्थ— देव अभिमानी हुवो संतो अन्य महर्द्धिकदेवनिनैं देखिकरिकै मानभंगकरिकैं घोरदुःखकूं प्राप्त भया, तिनकूं चिंतवन करो ॥ गाथा—

दिव्वे भोगे अच्छर- । साउं अवसस्स सग्गवासं च ॥
पजहंतस्स य जं ते । दुक्खं जादं चयणकाळे ॥ १६०० ॥

अर्थ— स्वर्गलोकमें मरणका अवसरमें कर्मके आधीन हुवा बहुत अप्सरानिके दिव्यभोगनिकूं तथा स्वर्गका निवासकूं छांडते देवकै महान् दुःख उत्पन्न होय है, तिसकूं चिंतवन करो ॥ गाथा—

जं गब्भवासकुणिमं । कुणिमाहारं छुहादिदुक्खं च ॥

चिंतंतस्स य सुचियसु- । हिदस्स दुक्खं चयणकाळे ॥ १ ॥

अर्थ— महापवित्र अर सुखित जो देव ताकै मरणकालविषैं ऐसा चिंतवन होय है, जो मेरा गमन अब तिर्यंचगति तथा मनुष्यगतिके गर्भमें होयगा! तहां महादुर्गंध जो गर्भवासमें वसना, तिसकूं, अर मनुष्यातिर्यंचगतिसंबंधी मलिन दुर्गंध आहार, तिसकूं, अर क्षुधातृषादिकका दुःखनिकूं चिंतवन करतेकै महान् दुःख उत्पन्न होय है ॥
भावार्थ— इस मनुष्यपर्यायमें निर्धनता, अर सप्तधातुमय मलिन रोगनिका भऱ्या देहका धारना, अर कुदेशमें वसना, अर स्वचक्रपरचक्रका दुःख सहना, अर वैरीसमान बांधवनिमें वसना, अर कुपुत्रके संयोगका संताप सहना, अर दुष्टस्त्रीके संग रहना, अर नीरस आहार भोगना, अपमानका सहना, चोर तथा दुष्टराजा दुष्टमंत्री कोटपालकी नानात्रासनिकरि भयभीत होय जीवना, अर अकालमें स्त्रीपुत्रकुटुंबादिकका वियोग होना, परका सेवकादिक होय पराधीन रहना, दुर्वचन सहना, क्षुधातृषादिकनिकी तीव्रवेदना सहना इत्यादिक दुःखनिका भऱ्या जो मनुष्यजन्म तिसकेविषैं अपना मरण नजीक आया जाणि लेवै, तो तत्काल वेखबरि होजाय, सर्वशरीरका रुधिर पलटि जाय, सावधानी विगडि जाय, अर देखिये तो मनुष्यजन्ममें बहोत थोरे दिननतैं आया है, अर विकाररहित दुःखरहित दिव्यशरीरादिकहू नहीं पाया है, तिस

मनुष्यदेहकूं त्यागतैंही एता दुःख होय है; तो स्वर्गलोकका धातुउपधातुरहित दिव्यशरीर असंख्यातकालपर्यंत स्वर्गनिका निवास, तिसकूं तो छोडना अर दुर्गंध मलिन देह धारण करना आपकू छ महिना पहली दीखै तिस दुःखकूं कोऊ वचनद्वारै कहवेकूं समर्थ नही है। मिथ्यादृष्टि देव महान् विलाप करे हैं, स्वर्गलोकका छूटना अर प्रेमके भरे असंख्यात देवनिका वियोग होना अर मनुष्यतिर्यंचनिके हाड मांस चाम मलमूत्रमय दुर्गंध शरीर धारण करना दीखै, तिस दुःखकरि देवनिकै बडा विलाप जानना ॥

एवं एदं सव्वं। दुक्खं चदुगदिगदं पि जं पत्तो ॥
तत्तो अणंतभागो। होज्ज ण वा दुक्खमिमयं ते ॥ २ ॥

अर्थ— हे मुने! इसप्रकार चतुर्गतिनिमें परिभ्रमण करता जीव जो समस्तदुःखनिकूं प्राप्त हुवा, तिसतैं अनंतवै भागहू दुःख तुमारै इस अवसरमें नही होत है, तुम कैसैं कायर होय धर्मकूं मलिन करो हो! ॥ गाथा—

संखिज्जमसंखिज्जं। कालं ताइं अविस्समंतेण ॥
दुक्खाइं सोढाइं। किं पुण अदिअप्पकालमिमं ॥ ३ ॥

अर्थ – हे मुने! जो ऐसे चतुर्गतिके घोरदुःख विश्रामरहित तुम संख्यात काल असंख्यात काल सहे, तो इस संन्यासके अवसरमैं अति अल्पकाल आया जो

रोगादिजनित दुःख नहीं सहनेयोग्य है कहा? अब धैर्य धारणकरि वेदनाकूं सहिकरि अपना आत्माका कल्याण करो ॥ गाथा—

जदि तारिसाउ तुम्हे । सोढाउं वेयणाउ अवसेण ॥
धम्मोत्ति इमा सवसे- । ण कहं सोढुं ण तीरिज्ज ॥ ४ ॥

अर्थ— हे मुने! जो तुम परवश होयकरिकै चतुर्गतिमें तैसी वेदना सही, तो इस अवसरमें वेदनाके सहनेकूं धर्म जानते तुम आपके वशकरिकै कैसे सहवेकूं नहीं समर्थ होइए हैं? ॥ गाथा–

तण्हा अणंतखुत्तो । संसारे तारिसी तुमं आसि ॥
जं पसमेदुं सवो- । दधीणमुदगं पि ण तीरेज्ज ॥ ५ ॥

अर्थ— हे मुने! संसारमें तुमारै तैसी तृषाकी वेदना अनंतवार होत भई, जिसकूं उपशांत करनेकूं सर्व समुद्रनिका जलहू समर्थ नहीं है ॥ गाथा–

आसी अणंतखुत्तो । संसारे ते छुधा वि तारिसिया ॥
जं पसमेदुं सवो । पुग्गलकाउं ण तीरिज्ज ॥ ६ ॥

अर्थ— हे मुने! संसारविषैं तुमारै ऐसी क्षुधावेदनाहू अनंतवार भई, जिसकूं उपशम करनेकूं समस्तपुद्गलकायहू नहीं समर्थ होत है ॥ गाथा–

जइ तारिसिया तण्हा । छुधा य अवसेण ते तदा सोढा ॥
धम्मुत्ति इमा सवसे- । ण कहं सोढुं ण तीरिज्ज ॥ ७ ॥

अर्थ— जो पूर्वै तिस कालमें अवश होयकरिकैं तैसी दुःसह घोरतृष्णा तथा क्षुधा तुम सही, तो अब स्ववश होयकरिकै क्षुधा तृषा सहनेकूं धर्म जानते तुम कैसे सहिवेकूं नही समर्थ होइये हैं? ॥ भावार्थ— पूर्वै अनंतकालतैं कर्मनिके वशि होय अनंतवार वेदना भोगि, तो अब चारित्रधर्मके अर्थि उद्यमी तिनकूं स्ववश होयकरिकै समभाव धारि वेदना सहना परमकल्याण है, जातैं बहुरि वेदनाके पात्र नही होहूगे ॥

सुइपाणएण अणुसि- । ट्ठिभोयणेण य पुणोवगहिएण ॥
झाणोसहेण तिव्वा । वि वेदणा तीरदे सहिदुं ॥ ८ ॥

अर्थ— तीनप्रकार धर्मकथाका श्रवणरूप पानकरिकै अर गुरुनिकी शिक्षारूप भोजनकरिकै अर ग्रहण कीया जो शुभध्यानरूप औषधकरिकै तीव्रवेदना सहिवेकूं समर्थ होइए हैं॥

भीदो व अभीदो वा । णिप्पडियम्मो व सपडिकम्मो वा ॥
मुच्चइ ण वेदणाए । जीवो कम्मे उदिण्णम्मि ॥ ९ ॥

अर्थ— हे मुने! कर्मका प्रबल उदय होतैं भयसहित होहू, तथा भयरहित होहू, इलाजरहित होहू, वा इलाजसहित होहू, वेदनातैं नही छूटोगे ॥ गाथा—

पुरिसस्स पावकम्मो- । दएण ण करंति वेदणोवसमं ॥
सुट्ठु पउत्ताणि वि उ- । सधाणि अदिवीरियाणी वि ॥ १६१० ॥

अर्थ— इस जीवकै पापकर्मका उदय तिसकरिकै अतिशक्तिवान्हू औषध बहुत यत्नतैं युक्त कीया हुवाहू वेदनाका उपशम नही करे है ॥ गाथा—

रायादिकुडुंबीणं । अदयाए असंजमं करंताणं ॥
धण्णंतरी वि कादुं । ण समत्थो वेदणोवसमं ॥ ११ ॥
किं पुण जीवणिकाये । दयंतया जादणेण लद्धेहिं ॥
फासुगदव्वेहि करें- । ति साहुणो वेदणोवसमं ॥ १२ ॥

अर्थ— जिनकै दया नही ऐसे अदयाकरिकै असंयमकूं करते जे राजादिक कुटुंबी तिनके जो वेदनाका उपशम करिवेकूं धन्वंतरि जो वैद्यनिका शिरोमणि सोहू समर्थ नही। तो जीवनिकायनिमैं दया करते जे तुमारे प्रतीकार करनेवाले साधुजन ते याचनाकरि प्राप्त भये जे प्रासुकद्रव्य तिनकरि संस्तरगत साधूकै वेदनाको उपशम कहा करनेकूं नही समर्थ होय है? ॥ भावार्थ— हे मुने! थे वेदनाकरि आकुल भये वेदनाका दूरि करनेवाला इलाजकी वांछाकरि अति आकुल हो, जो, 'हमारी वेदना मिटै, जैसैं जतन करो' ऐसैं जानहू। जगतमैं राजासमान सामग्री अन्य कोनकै होय? जिनकै

समस्त औषधि अर जिनकै यो औषधि करने योग्य है यो योग्य नही ऐसा विचार नहीं, अर महान् आरंभ करतैं वा हिंसा करतैं जिनकै किंचित्हू दया नही, अर जिनकै भक्ष्य अभक्ष्यका विचार नही, तथा रात्रि खावनेका वा दिवसमें खावनेका वा वारंवार खावनेका किंचित्हू संयम नही, अर बडे बडे धन्वंतरिसदृश वैद्य इलाजके करनेवाले, तोहू कर्मके उदयकरि आई रोगजनितवेदना ताहि दूरि करनेकूं समर्थ नही! तो महादयाके पालनेवाले अर संजमी ऐसे ये तुमारी वैयावृत्य करनेवाले साधु ते परघरि जाचना करि प्राप्त भये जो प्रासुकद्रव्य तिनकरि तुमारी वेदनाका उपशम कैसें करैंगे? तातैं धैर्य धारण करि अपना उपजाया कर्मका फल समभावनिकरि भोगो! जो तुमारै नवीन कर्मबंध नही होय अर पूर्वै बांध्या तिनकी निर्जरा होय ॥ गाथा—

मोक्खाभिलासिणो सं- । जदस्स णिधणगमणं पि होदि वरं ॥
ण य वेदणाणिमित्तं । अप्पासुगसेवणं कादुं ॥ १३ ॥
णिधणगमणमेयभवे । णासो ण पुणो पुरिल्लजम्मेसु ॥
णासं असंजमो पुण । कुणइ भवसएसु वहुएसु ॥ १४ ॥

अर्थ— मोक्षके अभिलाषी जे संयमी जन तिनकूं मरणकूं प्राप्त होना तो श्रेष्ठ है; अर वेदनाका उपशमके अर्थि अयोग्यद्रव्यका सेवन करना श्रेष्ठ नहीं । जातैं मरणकूं

प्राप्त होना तो एकजन्ममें नाश है-आगेकूं अनेकभवनिमें नाश नही है; अर असंजम है सो बहुत सैंकडे भवनिमैं नाश करनेवाला है। तातैं एकजन्ममें थोरे दिन जीवनेकूं संजमका नाश करना उचित नही ॥ गाथा-

ण करेंति णिव्वुइं इ- । च्छया वि देवा सइंदया सव्वे ॥
पुरिसस्स पावकम्मे । अणुक्कमेण य उदिण्णम्मि ॥ १५ ॥
किह पुण अण्णो काहिदि । उदिण्णकम्मस्स णिव्वुदिं पुरिसो ॥
हत्थीहि अतीरंतं । भंतु भंजिहदि किह ससउं ॥ १६ ॥

अर्थ-- जीवकै उदयके अनुक्रमकरिकैं पापकर्मकूं उदय आवता संता सुख करनेकी इच्छा करते ऐसे इंद्रनिकरि सहित समस्त च्यारि निकायके देवही सुख करनेकूं समर्थ नही हैं; तो अन्य कोऊ पुरुष असातावेदनीय कर्मकी उदीरणा होतैं सुख कैसें करसी? जिसकूं भंग करनेकूं महाबलवान् हस्तीही समर्थ नही; तिसकूं बलरहित सुसा कैसैं भंग करै ॥ गाथा-

ते अप्पणो वि देवा । कम्मोदयपच्चयं मरणदुक्खं ॥
वारेदुं ण समत्था । धणिदं पि विकुव्वमाणा वि ॥ १७ ॥

अर्थ— कर्मका उदय है कारण जाकूं ऐसा आपकै आया जो मरणका दुःख ताहि

दूरि करनेकूं अतिशयकरि विक्रिया करते देवहू समर्थ नहीं हैं ॥ गाथा–

उज्झंति जत्थ हत्थी । महाबलपरक्कमा महाकाया ॥
सुत्ते तम्मि वहंते । ससया तूढिल्लया चेव ॥ १८ ॥

अर्थ— जिस नदीके बडे प्रवाहमें महान् बलपराक्रमके धारक अर बडा है देह जिनका ऐसे हस्तीही वहते चले जाय! तिस प्रवाहविषैं सुसा वहै, तिसका कहा आश्चर्य है

किह पुण अप्पणो मुच्छिह- । दि सगेणुदयागदेण कम्मेण ॥
तेलोक्केण वि कम्मं । अवारणिज्जं खु समुवेदं ॥ १९ ॥

अर्थ— उदयकूं प्राप्त भया कर्म त्रैलोक्यकरिकैहू रोक्या नहीं जाय! तो आपकरि उपजाया अर उदयके अवसरकूं प्राप्त भया कर्म आपकूं कैसैं छांडै? ॥ भावार्थ– उदयमें आया कर्म कोईकरि निवारण कीया नहीं रुकै है ॥ गाथा–

कह ठाइ सुक्कपत्तं । वाएण पडंतयम्मि मेरुम्मि ॥
देवे वि विहेडयदो । कम्मस्स तुमंमि का सण्णा ॥ १६२० ॥

अर्थ— जिस पवनकरि मेरुका पतन होय, तिस पवनतैं शुष्कपत्र कैसे तिष्ठै? देवनिनैंहू विघ्न करता कर्म, तिसकै तुमारेविषैं कहा विचार है? ॥ भावार्थ– जो कर्म स्वर्गलोकके इंद्रादिक देवनिहीका पतन कर देवै, तो तुमारा पतन करनेमें तिसकै

कहा विचार है? ॥ गाथा–

कम्माइं वलियाइं। वलिउं कम्माउ णत्थि को वि जगे ॥
सव्ववलाइं कम्मं। मलेइ हत्थी व णलिणिवणं ॥ २१ ॥

अर्थ— जगतविषैं कर्म बलवान है, कर्मतैं अधिक बलवान् कोऊही नहीं है। जातैं विद्याका बंधुजनका शरीरका धनका परिवारका सर्व बल है, तिननैं कर्म एक क्षणमात्रमें जैसैं कमलिनीके वनकूं मदोन्मत्त हस्ती मर्दन करै, तैसैं मर्दन करै है ॥ गाथा–

इच्चेवं कम्मुदर्उं। अवारणिज्जोत्ति सुट्ठु णाऊण ॥
मा दुक्खायतु मणसा। कम्मम्मि सगे उदिण्णम्मि ॥ २२ ॥

अर्थ— तातैं, भो कल्याणके अर्थी हो! इसप्रकार कर्मका उदयकूं भलैप्रकार अरोक जानि अर अपने कर्मकूं उदीरणाकूं प्राप्त होते संते मनकरिकै दुःख मति करो ॥ भावार्थ उदयमें आया कर्मकूं जिनेंद्र अहमिंद्र समस्त इंद्र देव टारिनेकूं समर्थ नहीं हैं। तातैं अरोक जानि असाताका उदयमें दुःख मति करो, दुःख करोगे तो अधिक अधिक असाताकर्म और बंधेगा अर उदय तो टरेगा नहीं ॥ गाथा–

पडिकूविदे विलपणे। रडिदे दुक्खादिदे किलिट्ठे वा ॥
ण य वेदणोवसामदि। णे व विसेसो हवादि तिस्से ॥ २३ ॥

अण्णो वि को वि ण गुणो । त्थ संकिलेसेण होइ खवयस्स ॥
अट्टं सुसंकिलेसो । झाणं तिरियाउगणिमित्तं ॥ २४ ॥

अर्थ— हे मुने! विलाप करनेतैं, विषादरूप होनेतैं, रोवनेतैं, दुःखकरि पीडित होनेतैं, तथा क्लेशरूप होनेतैं; वेदना नही उपशमेगी—नही घटैगी—वेदनामैं तफावतभी नही होयगा । वेदनामैं संक्लेश करनेकरि अन्य कोऊभी गुण नही उपजैगा, एक बहोत संक्लेशथकी तिर्यंचगतिका कारण आर्त्तध्यान होयगा ॥ गाथा—

हदमाकासं मुट्ठी- । हि होइ तह य कंडिया तुसा होंति ॥
सिगिदा य पीडिदाउ । घुसिलिदमुदयं च होइ जहा ॥ २५ ॥

अर्थ— जैसैं मुष्टिनिके प्रहारकरि आकाशकी ताडना करना निरर्थक है, जैसैं तंदुलनिके निमित्त तुषनिकूं खोटना-कूंटना निरर्थक है, जैसैं तेलके अर्थि वालू रेतका पीलना निरर्थक है, जैसैं घृतके अर्थि जलका विलोडना मथना निरर्थक है, केवल महान् खेदका कारण है; तैसैं असातावेदनीयादिक अशुभकर्मकूं उदय आवता जो विलाप करना, रोवना, संक्लेश करना, दीनता भावना निरर्थक है—दुःख मेटनेको समर्थ नही, केवल वर्तमानकालमें दुःख वधावे अर आगानैं तिर्यंचगति तथा नरकनिगोदकूं कारण ऐसा तीव्रकर्म बांधै जो अनंतकालहूमैं नही छूटै ॥ गाथा—

पुव्वं सयमुवभुत्तं । काले णाएण तत्तियं दव्वं ॥
को धारणिउं धणिद- । स्स दिंतउं दुक्खिउं होज्ज ॥ २६ ॥
तह चेव सयं पुव्वं । कदस्स कम्मस्स पाककालम्मि ॥
णायागयम्मि को णा- । म दुक्खिउं होज्ज जाणंतो ॥ २७ ॥

अर्थ— जैसैं कोऊ पुरुष किसीका द्रव्य करजकरि आप भोग्या, अब करार पूर्ण भये अवसरविषैं न्यायमार्गकरि तिस धनवानका तितना द्रव्य देनेमें कौन ऋणवान् पुरुष न्यायतैं दुःखित होय? न्यायमार्गी तो परका धनका करज लिया सो करार पूर्ण भये देनेमें दुःख नही करै, तैसैंही पूर्वैं आप कर्म उपार्जन कीया अब न्यायमार्गकरि अवसरमें उदय आय रस दीया तिसकूं भोगता कौन ज्ञानी दुःख करै? ज्ञानी तो कर्मका ऋण चुकनेका बडा आनंद मानै है ॥ गाथा—

इय पुव्वकदं इणम- । ज्ज महं कम्माणुगत्ति णाऊण ॥
रिणमुक्खणं व दुक्खं । पिच्छसु मा दुक्खिउं होहि ॥ २८ ॥

अर्थ—याप्रकार अवार हमारै पूर्वकृत कर्म उदय आया है ऐसैं जाणिकरिकै दुःखकूं ऋणमोचनकीनाँई देखहू अर दुःखित मति होहू ॥ भावार्थ— कर्मका उदयजनित दुःख आवे है तिसकूं अपना ऋण चुकना मानि हर्ष मानहु अर दुःख मति करो ॥ गाथा—

समस्त संघकूं साक्षीकरिकै कीया जो त्याग, तिसका भंग करनेतैं मरण श्रेष्ठ है। मरण तो अवश्य होयहीगा, परंतु व्रतभंग करना इस लोकमें महानिंद्य है, तथा मार्ग बिगाडना है, धर्मका अपवाद करावना है। अर परलोकमें बहुतकालपर्यंत अनंतदुःखनिसहित अनंत जन्ममरण करना है॥ गाथा-

आसादिदा तदो हों-। ति तेण ते अप्पमाणकरणेण ॥
राया विव सक्खिकदो। विसंवदंतेण कज्जम्मि ॥ ३४ ॥

अर्थ— जैसैं राजाकी साक्षिकरि कीया जो कार्य तिसमैं विसंवाद करता अन्यप्रकार करता पुरुष राजाकी अवज्ञा करी-अपमान कीया; तैसैं अरहंतादिक पंचपरमेष्ठीकी साक्षीतैं ग्रहण कीये जे व्रतादिक तिनकूं भंग करता पुरुष अरहंतादिकनिकी अप्रमाणता करनेकरि अरहंतादिकनिकी विराधना करी-अवज्ञा करी-उनकूं कछू गिण्या नहीं! उनतैं पराङ्मुख भया ॥ गाथा-

जइ दे कदा पमाणं। अरहंतादी हविज्ज खवएण ॥
तस्सक्खियं कयं सो। पच्चक्खाणं ण भंजिज्ज ॥ ३५ ॥

अर्थ— भो मुने! जो अरहंतादिक पंचपरममेष्ठी तुमनैं प्रमाण कीया हैं, तो तिनकी साक्षीतैं कीया जो त्यागव्रत सल्लेखना ताहि भंग मति करो॥ गाथा-

सक्खिकदरायहीलण- । मावहइ णरस्स जह महादोसं ॥
तह जिणवरादिआसा- । दणावि दोसं महं कुणदि ॥ ३६ ॥

अर्थ-- जैसैं राजाकूं साक्षी करिकै कीया कार्यका लोप करना है, सो राजाका तिरस्कार है, सो पुरुषकै महादोषकूं प्राप्त करे है; तैसैं जिनवरादिकांकी विराधनाहू इस लोक परलोकमें जीवकै महान् दोषकूं करे है ॥ गाथा-

तित्थयरपवयणसुदे । आइरिए गणहरे महड्ढीए ॥
एदे आसादंतो । पावइ पारंचियं ठाणं ॥ ३७ ॥

अर्थ— तीर्थंकरनिकी तथा रत्नत्रयकी, श्रुतज्ञानकी, आचार्यनिकी, गणधरनिकी, महर्द्धिकनिकी विराधना करता पुरुष पारंचिक नामा प्रायश्चित्तकूं प्राप्त होय है। पंचपरमेष्ठिनिकी अवज्ञा करते पुरुषकै महान् प्रायश्चित्त होय है ॥ गाथा-

सक्खीकयरायासा- । दणे हु दोसं करेहु एयभवे ॥
भवकोडीसु य दोसं । जिणादिआसादणं कुणई ॥ ३८ ॥

अर्थ— राजाकूं साक्षी करि राजाका लोपना एक भवमें दोष करे है अर जिनादिककी विराधना करी हुई कोटिजन्मानिमें दोष करे है ॥ गाथा-

मोक्खाभिलासिणो सं- । जदस्स णिधणगमणं पि होइ वरं ॥

पच्चक्खाणं भंजं । तस्स ण वरमरहादिसक्खिकदा ॥ ३९ ॥

अर्थ— मोक्षका अभिलाषी ऐसा संयमीके मरणकूं प्राप्त होना श्रेष्ठ है, परंतु अरहंतादिकनिकी साक्षीकरि कीया प्रत्याख्यान जो त्याग, ताका भंग करना श्रेष्ठ नहीं है

णिधणगमणमेयभवे । णासो ण पुणो पुरिल्लजम्मेसु ॥

णासं वयभंगो पुण । कुणइ भवसएसु वहुएसु ॥ १६४० ॥

अर्थ— मरणकूं प्राप्त होना तो एकभवमें नाश है अन्य होनहार जन्मनिमैं नाश नहीं है अर व्रतभंग करना बहुत भवनिके सैंकडेनिमैं अपना नाश करे है ॥ गाथा—

ण तहा दोसं पावइ । पच्चक्खाणमकरित्तु कालगदो ॥

जह भंजणादु पावइ । पच्चक्खाणं महादोसं ॥ ४१ ॥

अर्थ— प्रत्याख्यानकूं नहीं करिकै जो मरण करे है, सो तैसैं दोषकूं प्राप्त नहीं होय है; जैसैं प्रत्याख्यानके भंजनतैं महादोषकूं प्राप्त होय है! ॥ भावार्थ— जो सन्न्यास नहीं धारण करै अर असंयमका त्यागहू नहीं करिकै मरण करे है, सो तो अनादिका संसारी हैही, उसनैं तो रत्नत्रय पायाही नहीं; परंतु जो संन्यास धारण करि महाव्रतादिक अंगीकार करि छांडे है--बिगाडे है, सो पुरुष अनंतानंत कालहूमैं रत्नत्रयकूं नहीं प्राप्त होय है। जो त्यागकी वस्तूका सेवन है, सो प्रत्याख्यानका भंग है, सो आहारकूं

त्यागिकरिकै बहुरि आहारकूं प्रार्थना करता जीव समस्त हिंसादिकनिकूं अंगीकार करे है

आहारत्थं हिंसइ । भणइ असच्चं करेइ तेणिक्कं ॥
रूसइ लुब्भइ मायं । करेइ परिगिण्हदि य संगे ॥ ४२ ॥

अर्थ— आहारके अर्थि छकायकी जीवनिके हिंसा करे है, असत्यवचन बोले है, चोरी करे है, रोष करे है, लोभ करे है, मायाचार करे है, परिग्रहकूं ग्रहण करे है ॥ भावार्थ– आहारकी वांछा करता जीव ऐसा आरंभ करे है, जिसमें असंख्यात अनंत-जीवनिका घात होजाय है, अभक्ष्यभक्षण करे है, हिंसाकूं नहीं गिणे है, आहारहीके अर्थि निंद्य असत्यवचननिमें प्रवर्तन करे है, आहारका लोभी हुवाही परधनहरण करे है, क्रोध लोभ मायाचारहू आहारमें लुब्ध हुवाही करे है, परिग्रहमें अति आसक्तताभी भोजनका लंपटीहीकै जानहु ॥ गाथा–

होइ णरो णिल्लज्जो । पयहइ तवणाणदंसणचारित्तं ॥
आमिसकालिणा छइउं । छायं मइलेइ य कुलस्स ॥ ४३ ॥

अर्थ— आहारका लंपटी पुरुष निर्लज्ज होइ है, आहारका लंपटी अपना पदस्थ नहीं देखे है, कुलजाति नहीं देखे है, बहुत धनका धनीहू नीच रंक शूद्रादिकनिके घरि भोजनकूं जाय बैठे है, भोजनका लोलपी तपश्चरण ज्ञानाभ्यास दर्शन चारित्र

समस्तकूं छांडि भोजनमें पडे है, अपना अपमानादिककूं नही देखे है, अभक्ष्यमें उच्छिष्टमें मांसादिकनिमें आसक्त होयकरिकै अपना उत्तम कुलकी कांतिकूं मलिन करे है ॥

णासदि बुध्दी जिब्भा- । वसस्स मंदा वि होइ तिख्खा वि ॥
जोणिकसिलेसलग्गो । व होइ पुरिसो अणप्पवसो ॥ ४४ ॥

अर्थ— जो जिव्हा इंद्रियकै वश होय है, तिस पुरुषकी बुद्धि नष्ट होय है, तथा बुद्धि विपरीत होय भ्रष्ट होय है, वहुरि तीक्ष्णबुद्धिहू अत्यंत मंद होय है। वहुरि आहारका लंपटी आपका वशी नही रहे है, पराधीन होय है, जैसैं जोणिकश्लेषलग्न पुरुष पराधीन होय है; तैसैं जानहू ॥ इहां "जोणिकसिलेसलग्गो" इस पदका अर्थ नही जाननेमें आया है, तातैं नही लिख्या है ॥ [संस्कृत टीका— णासदि बुध्दी-बुद्धिर्नश्यति, आहारलम्पटतया युक्तायुक्तविवेकाकरणात्। कस्य? जिह्वावशस्य। तीक्ष्णाऽपि सती पूर्वं बुद्धिः कुण्ठा भवति। रसरागमलोपप्लुता अर्थयाथात्म्यं न पश्यतीति पारशीकक्लेशलग्न इव भवति। पुरुषोऽनात्मवशः॥ इस टीकापरसे विद्ज्जन जान लेवेंगे.]

धीरत्तणमाहप्पं। कदपणदं विणयधम्मसध्दाउ ॥
पयहइ कुणइ अणत्थं। गललग्गो मच्छउ चेव ॥ ४५ ॥

अर्थ— भोजनका लंपटी धीरपणाकूं छांडे है, जातैं अतिलंपटीकै सोधने देखनेमें विचार नही होय है, अतिगृध्दितातैं भक्षणही करे है, बहुरि भोजनका लंपटी अपना कुल जाति पदस्थादिक नही अवलोकन करता जैठें मिष्टभोजन मिलिजाय तैठेंही योग्य अयोग्यका विचारही नही करता भक्षण करे है; तातैं अपना महानपणाकूंहू छांडे है। बहुरि भोजनका लंपटी परका उपकारकूंहू नही जाणे है, भोजनके देनेवाले के वशीभूत हुवा आपका उपकार करनेवाला स्वामी गुरु मित्र बांधवादिक तिनका उपकारकूं लोपि उलटा आप अपकार करनेमें उद्यमी होय है। बहुरि भोजनका लंपटीका विनयहू नही रहे है, जातैं विनय तो लंपटतारहित निर्लोभीका होय है, भोजनके लंपटीका विनय तो अपना स्त्रीपुत्रादिकही नही करे है, तातैं भोजनका लंपटी विनयहू छांडे। बहुरि जिसकै भोजनमें लंपटता, तिसकै धर्मका श्रद्धानकाहू अभावही होय है, जो आत्मिकसुख जाने है, तिसकै भोगानिमैं अरुचि विरक्तता हुवाविना रहै नही, तातैं भोजनका लंपटी धर्मका श्रद्धानरहितही होय है, तातैं धर्मकी श्रद्धाकाहू त्यागही भया। जैसैं कंठकूं पकडि मत्स्य अनर्थ करे है, तातैं अधिक अनर्थ भोजनकी लंपटता करे है॥ गाथा—

आहारत्थं पुरिसो। माणी कुलजादिपहिदकित्ती त्ति॥

भुंजंति अभोज्जाइं । कुणई कम्मं अकिच्चं खु ॥ ४६ ॥

अर्थ— जो पुरुष महान् अभिमानी होय अर जिसके कुलकी जातिकी कीर्तिहू जगतमें विख्यात होय ऐसाहू पुरुष भोजनके अर्थि लंपटी होयकरिकै नही भोजन करनेयोग्य ऐसे अभक्ष्य तथा परकी उच्छिष्टादिक भक्षण करे है! तथा भोजनका लंपटी दीन हुवा परके मुखकूं देखता फिरे है! तथा याचना करे है, नही करनेयोग्य निंद्यकर्म करे है ॥ गाथा–

आहारत्थं मज्जा- । रि सुंसुमारी अही मणुस्सी वि ॥
दुब्भिक्खादिसु खायं- । ति पुत्तभंडाणि दइयाणि ॥ ४७ ॥

अर्थ— वहुरि दुर्भिक्षविषैं मार्जारी तथा सुंसुमारी जो जलमें वसनेवाला मत्स्यविशेष तथा सर्पिणी तथा मनुष्यिणीहू आहारके अर्थि अपने अतिवल्लभ संतान तिनहूकूं भक्षण करे है ॥ गाथा–

इहपरलोइयदुक्खा- । णि आवहंते णरस्स जे दोसा ॥
ते दोसे कुणइ णरो । सव्वे आहारगिध्दीए ॥ ४८ ॥

अर्थ— इस लोक तथा परलोकमें मनुष्यकै दुःख देनेवाले जे दोष हैं, तिन सर्व दोषनिकूं मनुष्य आहारका अतिगृद्धिताकरिकै करे है ॥ गाथा–

अवधिट्ठाणं णिरयं । मच्छा आहारहेदु गच्छंति ॥
तत्थेवाहारभिला- । सेण गदो सालिसित्थो वि ॥ ४९ ॥

अर्थ— स्वयंभूरमण समुद्रके महामत्स्य आहारकी गृद्धिताकरिकै अनेक जीवनकूं भक्षण करिकै सप्तम नरककूं गमन करे है। अर शालिसिक्थ नामा मत्स्य अत्यंत अल्प शरीरका धारक जो कोऊ जीवकूं भक्षण करनेकूं समर्थ नही है, तोहू भोजनमें अति अभिलाष करिकैही सप्तम नरककूं प्राप्त होय है ॥ गाथा—

चक्कधरो वि सुभूमो । फळरसगिद्धीए वंचिउं संतो ॥
णट्ठो समुद्दमज्झे । सपरिजणो तो गउं णिरयं ॥ १६५० ॥

अर्थ— सुभौम नामा चक्रवर्ती छखंड भरतक्षेत्रको स्वामीहू कोऊ एक विदेशीका भेषधारी आया जो वैरी देव, ताका ल्याया एक फल, तिसके रसकी लंपटताकरि ठिग्या गया संता परिवारके लोकनिसहित समुद्रमें डूबिकरि सप्तमनरककूं प्राप्त भया! तो ओरनिकी कहा कथा? ॥ गाथा—

आहारत्थं काऊ- । ण पावकम्माणि तं परिगउं सि ॥
संसारमणादीयं । दुक्खसहस्साणि पावंतो ॥ ५१ ॥
पुणरवि तहेव संसा- । रं किं भमिदूणमिच्छसि अणंतं ॥

असंख्यात कालपर्यंत भोग्या, तोहू तृप्ति नही भई! तो अन्य सामान्य अन्नादिकनिके किंचित् आहारतैं कैसी तृप्ति होयगी? तातैं धैर्य धारणकरि आहारकी वांछाकूं छांडना योग्य है ॥ गाथा–

उध्दुदमणस्स ण रदी । विणा रदीए कुदो हवदि पीदी ॥
पीदीए विणा ण सुहं । उध्दुदचित्तस्स घुण्णस्स ॥ ५६ ॥

अर्थ— भोजनके लंपटीका चित्त एक आहारहूमैं नही ठहरे है–मिष्टभोजन करते करते खांटा भोजनमें वांछा उपजे है, बहुरि चिरपरामैं बहुरि लवणमें बहुरि अन्यअन्य भोजनमें चित्त उडता फिरे है। यातैं चलायमान है चित्त जाका ताकै रति नही होय है, अर रतिविना प्रीति नही होय, अर प्रीतिविना सुख नही होय है। तातैं आहारमें गृद्धिता–लंपटताकरि चलायमान है चित्त जाका तिसकै सुख कदाचित नही होय है ॥ गाथा–

सव्वाहारविधाणे- । हि तुमे ते सव्वपुग्गला वहुसो ॥
आहारिदा अदीदे । काले तित्तिं चसि ण पत्तो ॥ ५७ ॥
किं पुण कंठप्पाणो । आहारेदूण अज्जमाहारं ॥
लभिहिसि तित्तिं पाऊ- । णुदधिं हिमलेहणेणेव ॥ ५८ ॥

अर्थ— हे मुने! अतीतकालविषैं तुम समस्त आहारके विधानकरिकै समस्तजातिके पुद्गल बहुतवार भक्षण कीये, तोहू तुमारै तृप्ति नही भई। तो अब कंठगतपाण जो तुम, सो इस अवसरमें किंचित् आहार ग्रहण करिकै तृप्तिकूं प्राप्त होहूंगे कहा? नही तृप्त होहूंगे। जैसैं कोऊ समुद्रका समस्तजल पीयकरिकैही तृप्त नही भया, सो उसकी बूंदके चाटनेकरि कैसा तृप्त होयगा? तातैं आहारकी अभिलाषा छांडिकरि संतोषरूप परम अमृतका आस्वादन करो॥ गाथा—

को इत्थ विंभर्उ दे। वहुसो आहारे भुत्तपुव्वम्मि॥
जुज्जिज्ज हु अभिलासो। अभुत्तपुव्वम्मि आहारे॥ ५९॥

अर्थ— इस संसारमें पूर्वकालमैं बहुतवार भोग्या जो आहार, तिसके भोगनेमें तुमारै कहा आश्चर्य है? जो पूर्वैं नही भोग्या ऐसा आहारविषैं अभिलाष करै तो युक्तभी है। सो ऐसा कोऊ आहार नही, तिसकूं बहुतवार तुम नही भोग्या॥ गाथा

आवादमित्तसोख्खं। आहारो ण दु सुखमत्थ वहु अत्थि॥
दुख्खं चेवत्थ वहु। आहट्टं तस्स गिद्धीए॥ १६६०॥

अर्थ— यो, आहार जिह्वाका अग्रविषैं पतनमात्र सुखरूप भासै है, बहुतकाल सुख नही है, अतिगृद्धिताकरि ग्रहण करनेवालेकै बहुतदुःखही है॥ भावार्थ—

आहारको लंपटी जीव बहुतकाल तो नानास्वादरूप जो आहार ताकी वांछातैं आकुलतारूप दुःखी रहे है। बहुरि बहुतकाल आहारकी विधि मिलावनेकूं धनसंग्रह करना–कुमावना, सेवा करना, दीनता करना तिनकरि दुःखी रहे है। बहुरि स्त्रीपुत्रादिक आपके जे वांछित आहारकी विधि मिलावे हैं, तिनके आधीन होना तथा आप बहुतकालपर्यंत आरंभ करि खावना अर तिसका स्वाद एक क्षणमात्रका है, तातैं आहारकी गृद्धितातैं दुःखही जानहू ॥ गाथा–

जिब्भामूलं वोले- । इ वेगिउं वरहयव्व आहारो ॥
तत्थे व रसं जाणइ । ण य परदो ण वि य से पुरदो ॥ ६१ ॥

अर्थ— आहार करनेमें सुखके कालकी मंदताकूं दिखावे हैं– श्रेष्ठहू आहार घोडेकीनांई वेगकरिकै जिह्वाका मूलकूं उलंघन करे है अर जिह्वाका अग्रभागही रसकूं जाने है, जिह्वाका अग्रमें नही प्राप्त हुवा तिसपहलीहू रसकूं नही जाने है, अर जिह्वातैं पार उतस्या पाछैहू स्वाद नही रहे है। तातैं रसके आस्वादकूं जाननेका सुखहू अत्यंत अल्पकालही रहे है ॥ भावार्थ- संसारी जीव अतिलंपटताकरिकै तो भोजनके जीमनेमैं प्रवर्तै अर ग्रास मुखमें मेलताप्रमाण रसना इंद्रियको स्पर्श होतैंही ऐसी गृद्धिता उपजै, सो आहारकूं किंचितकालहू ठहरने नही देवै, रस छूटै पाछै निगालि कंठमें उतारिहि

जाय है अर रसकूं स्वादनेमात्रहीमैं अतिगृद्धितातैं सुख दीखे है, जिह्वाकै स्पर्शही हुवा, स्पर्शनग्रहलीहू सुख नहीं छा अर निगलि गयापाछैंहू सुख नहीं रहे है ॥ गाथा–

अच्छिणिमेसणमित्तो । आहारसुहस्स सो हवइ कालो ॥
गिद्धीए गिलइ वेगं । गिद्धीए विणा ण होइ सुहं ॥ ६२ ॥

अर्थ— सो आहारके आस्वादतैं उपज्या जो सुख तिसका काल नेत्रके टिमकार नेमात्र है। ज्यौंज्यौं ग्रासमैंतैं रस निकसे है, त्यौंत्यौं गृद्धिताकरिकैं वेगकरि निगले है। अर गृद्धिताविना सुख नहीं होय है। चाहकी दाहमें किंचित् भोजनादि मिलि जाय तिसहीकूं संसारी जीव सुख माने है ॥ गाथा–

दुक्खं गिद्धीघत्थ- । स्साहट्टंतस्स होइ वहुगं च ॥
चिरमाहट्टियदुग्गय- । चेडस्स व अण्णगिद्धीए ॥ ६३ ॥

अर्थ— अतिगृद्धिताकरि पीडित होय भोजन करते पुरुषकै बहुत दुःख होय है। जैसैं दरिद्रीका घरकी दासीका पुत्र अन्नकी गृद्धिताकरि बहुतकालपाछैं आहार मिलै तिसकूं भक्षण करतेकै दुःख होय है ॥ गाथा–

को णाम अप्पसुक्ख- । स्स कारणं वहुसुहस्स चुक्केज्ज ॥
चुकइ हु संकिलेसे- । ण मुणी सग्गापवग्गाणं ॥ ६४ ॥

बाकी नही रह्या, जो दुःख संसारी जीव नही पाया ॥ गाथा–

दुक्खं अणंतखुत्तो । पाविज्ज सुहं पि पावदि कहिंचि ॥

तह वि य अणंतखुत्तो । सव्वाणि सुहाणि पत्ताणि ॥ ८४ ॥

अर्थ— इस संसारविषैं यो जीव अनंतवार दुःख पायकरिकैं कोईप्रकार इंद्रियजनित सुखकूं एकबार प्राप्त होय है। बहुरि अनंतपर्यायनिमैं अनंतवार दुःखनिकूं प्राप्त होइ बहुरि एकवार सुखकूं प्राप्त होय है! ऐसैं अनंतवार विषयाधीन इंद्रियजनित सुखहू प्राप्त भया। एक सम्यग्दर्शनके धारीनिके स्थान जे गणधर कल्पेंद्र तथा लौकांतिकदेवपना तथा नव अनुदिश पंच अनुत्तर तीर्थंकरादिकनिके पद कबहू नही धाऱ्या ॥ गाथा–

करणेहिं होदि विगलो । बहुसो वचिचित्तसोदणित्तेहिं ॥

घाणेण य जिब्भाए । चिट्ठावलविरियजोगेहिं ॥ ८५ ॥

जच्चंधवहिरमूउ । छादो तिसिउ वणे व एयाई ॥

भमइ सुचिरं पि जीवो । जम्मवणे णट्ठसिद्धिपहो ॥ ८६ ॥

अर्थ— इस संसारमें यो जीव बहुतवार वचन, मन, कर्ण, नेत्र, जिन्हा, नासिका, तथा बल, वीर्य इनके संयोगकरि रहित भया इंद्रियनिकरि विकल होय है। निर्वाणका मार्ग जो रत्नत्रय तिसकरि रहित भयो यो जीव संसाररूप वनविषैं चिरकाल जो

अनंतकालपर्यंत एकाकी "जन्मतैं अंध भया, तथा बधिर भया, गूंगा भया, क्षुधावान् हुवा, तृषावान् हुवा, वनमें भ्रमण करै तैसें" भ्रमण कीया ॥ भावार्थ- संसारमें जीव जन्मतैंही अंध हुवा बहिरा गूंगा क्षुधातृषाकरि पीडित बहुतकाल भ्रमण कीया है, सो मार्ग जो रत्नत्रय ताहि नही ग्रहण करि कीया है ॥ गाथा-

एइंदिएसु पंचवि-। धेसु वि उत्थाणवीरियाविहूणो ॥
भमदि अणंतं काळं। दुक्खसहस्साणि पावंतो ॥ ८७ ॥

अर्थ— बहुरि पृथ्वीकाय-अप्काय-तेजस्काय-वायुकाय-वनस्पतिकायस्वरूप जे पंचप्रकारके एकेंद्रिय, तिनविषें त्रसकायकी प्राप्तीके अर्थि उद्यम तथा उत्थान कहिये उठना इत्यादिककी शक्तिरहित हुवा हजारनि दुःखनिकूं प्राप्त भया अनंतकालपर्यंत स्थावरकायमें भ्रमण करै है ॥ गाथा-

बहुदुक्खावत्ताए। संसारणदीए पावकलुसाए ॥
भमइ वराउ जीवो। अण्णाणणिमीलिदो सुचिरं ॥ ८८ ॥

अर्थ— बहुतप्रकारके शरीरतैं उपज्या अर मनतैं उपज्या है दुःख जामैं, अर पापकरि मलिन ऐसी संसाररूप नदीविषें अज्ञानभावकरि मुद्रित है ज्ञानरूप नेत्र जाका ऐसा वराक संसारी जीव चिरकाल भ्रमण करै है। गाथा-

विसयामिसारगाढं । कुजोणिणेमि सुहदुक्खदढखीलं ॥
अण्णाणतुंबधरिदं । कसायदढपट्टियावद्धं ॥ ८९ ॥
वहुजम्मसहस्सविसा- । लवत्तणी मोहवेगमदिचवलं ॥
संसारचक्कमारुहि- । य भमदि जीवो अणप्पवसो ॥ १७९० ॥

अर्थ— ऐसा संसाररूप चक्र ऊपरि चढ्या जीव परवश हुवा भ्रमण करे है ॥ कैसाक है संसारचक्र? विषयनिका अभिलाषरूप जे आरा तिनकरि दृढ है, बहुरि नरकादिक कुयोनि तेही जाके नेमि कहिये पूठी हैं, अर सुखदुःखरूप जामैं दृढ कीला है, अर अज्ञानभावरूप तुंबकरि धार्या है, अर कषायरूप दृढपट्टिकाका जाकै बंध है, अर बहुत-जन्मके सहस्ररूप विस्तीर्ण जाका परिभ्रमणका मार्ग है, अर मोहरूप जाका वेग है—अति-चंचल है, ऐसा संसाररूप चक्रपरि चढ्या जो जीव तिसका निकलना बहुत कठिन है ॥

भारं णरो वहंतो । कहिंचि विस्समदि उरुहिय भारं ॥
देहभरवाहिणो पुण । ण लहंति खणं पि विस्समिदुं ॥ ९१ ॥

अर्थ— भारकूं वहता पुरुष तो कोऊ स्थानविषैं भारकूं उतारि विश्रामकूं प्राप्त होय है। बहुरि देहका भारकूं वहता पुरुष क्षणमात्रहू विश्राम करिवेकूं नहीं प्राप्त होय है। अर जहां औदारिक वैक्रियकका भार उतारे है, तहांहू इनतैं अनंतगुणे परमाणूनिके

स्कंधरूप तैजस कार्मण शरीरका वडा भार वणि रह्या है। जिसतैं आत्माका केवलज्ञान अनंतदर्शन अनंतसुख अनंतवीर्य प्रकट नहीं होय सके है॥ गाथा-

कम्माणुभावदुहिदो। एवं मोहंधयारगहणम्मि॥
अंधो व दुग्गमग्गे। भमदि हु संसारकंतारे॥ ९२॥

अर्थ— जैसैं विषममार्गमें अंधा परिभ्रमण करै; तैसैं मोह अंधकारकरि गहन जो संसार रूप वन ताविषैं कर्मके प्रभावकरि दुःखित जीव भ्रमण करे है॥ गाथा-

दुख्खस्स पडिगरिंतो। सुहमिच्छंतो य तह इमो जीवो॥
पाणवधादी दोसे। करेइ मोहेण संछण्णो॥ ९३॥

अर्थ— यह संसारी जीव दुःखसूं भयरूप हुवा दुःखका प्रतीकार जो इलाज ताहि करता अर सुखकूं अभिलाप करता मोहकरि आच्छादित हुवा हिंसादिकदोषही करे है॥ भावार्थ- संसारी जीव दुःखतैं भयवान् होइ अर सुखकी वांछा करता मिथ्यादर्शनका प्रभावकरि विपरीत इलाज करे है! दुःखकूं दूरि करि सुखकी उत्पत्ति करनेमें समर्थ ऐसे जे महाव्रत अणुव्रत तिनमैं निरादर करि अपनैं दुःख करनेवाले जे पंच पाप प्राणीनिकी हिंसा, असत्य, परस्त्रीसेवन, परधनमैं वांछा, वहु आरंभ-वहु परिग्रह इनमैं तीव्र राग करि प्रवर्ते है, अभक्ष्यभक्षण करे है, अयोग्य अन्याय ग्रहण करे है, इनितैं नरका-

दिकमैं घोरदुःख बहुतकालपर्यंत भोगवे है। मिथ्यात्वके उदयकरि दुःखके कारणनिकूं
सुख जानि अंगीकार करे है॥ गाथा—

दोसेहि तेहि बहुगं। कम्मं बंधइ तहा णवं जीवो॥
अह तेण पच्चइ पुणो। पविसित्तु व अग्गिमग्गीदो॥ ९४॥
बंधंतो मुच्चंतो। एवं कम्मं पुणो पुणो जीवो॥
सुहकामो बहुदुक्खं। संसारमणादियं भमइ॥ ९५॥

अर्थ— ते हिंसादिक दोष तिनकरिकै जीव नवीन नवीन बहुतकर्मकूं तैसैं बांधत
है जैसैं तिस कर्मकरि बहुरि परिपाककूं प्राप्त होइ बाधाकूं प्राप्त होइ जैसैं अग्नीतैं निकसि
बहुरि अग्नीमैं प्रवेश करे! ऐसैं संसारी जीव कर्मकरि वारंवार बंधता अर वारंवार
छूटता सुखका इच्छक हुवा बहुतदुःखरूप अनादिसंसारमें भ्रमण करे है॥ इहां पंचपरिव-
र्तनका विशेषरूप ग्रंथ बधनेके भयकरि नहीं कह्या है॥ ऐसैं संसारानुप्रेक्षा वर्णन करि॥

अब लोकानुप्रेक्षा पंदरा गाथानिकरि कहे हैं॥ गाथा—

आहिंडयपुरिसस्स व। इमस्स णीया तहिं तहिं होंति॥
सव्वे वि इमो पत्तो। संबंधे सव्वजीवेहिं॥ ९६॥

अर्थ—संसारमें परिभ्रमण करता इस पुरुषकै तिसतिस पर्यायमें बांधव स्वजन समस्त संबंध

होइ हैं। इस संसारमें समस्त जीवनिकरि सहित समस्तसंबंधनिकूं अनेकवार प्राप्त भया है॥

माया वि होइ भज्जा। भज्जा मायत्तणं पुणमुवेदि ॥
इय संसारे सव्वे। परियत्तंते हु संबंधा ॥ ९७ ॥

अर्थ— संसारमें माताहू भार्या होत है, बहुरि भार्या जो स्त्री सो मातापणाकूं प्राप्त होय है, इसप्रकार संसारविषैं समस्तसंबंध निरंतर पलटे हैं ॥ गाथा—

जणणी वसंततिलया। भगिणी कमला य आसि भज्जाउ ॥
धणदेवस्स य एक्क-। म्मि भवे संसारवासम्मि ॥ ९८ ॥

अर्थ— इस संसारवासमें अन्यपर्यायनिमें जे अनेक संबंध होइ, ते तो दूरिही रहो; एकही भवविषैं धनदेव नामा वणिक्पुत्रकी वंसततिलका मातही अपनी भार्या भई! अर एक उदरमें उपजी ऐसी कमला नामा बहणहू स्त्री होत भई! जो एकजन्ममें येता अपवाद पाया, तो अन्यजन्मकी कहा कथा है? ॥ गाथा—

राया वि होइ दासो। दासो रायत्तणं पुणमुवेदि ॥
इय संसारे परिय-। त्तंते ठाणाणि सव्वाणि ॥ ९९ ॥

अर्थ— पापकर्मका उदय आवे है तदि राजा तो दास होय है, बहुरि दास राजा होय है। संसारमें समस्तस्थान जे पदस्थ ते पलटत हैं ॥ गाथा—

कुलरूवतेयभोगा- । धिगो वि राया विदेहदेसवदी ॥
वच्चघरम्मि सुभोगो । जाउं कीडो सकम्मेहिं ॥ १८०० ॥

अर्थ— कुलवान् रूपवान् तेजका धारक अर अन्यलोकनितैं भोगानितैं अधिक ऐसा विदेहदेशका स्वामी सुभोग नामा राजा आपके अशुभकर्मके वशकरिकैं विष्ठाके गृहमें कीडा होत भया! इस संसारमें पापपुण्यका समस्त चरित्र है ॥ गाथा—

होऊण महद्धीउ । देवो सुभवण्णगंधरूवधरो ॥
कुणिमम्मि वसहि गब्भे । धिगत्थु संसारवासस्स ॥ १ ॥

अर्थ— शुभवर्ण, शुभगंध, शुभरूपका धारकहू महान् ऋध्दिका धारक देव होय- करिकै बहुरि आयूका अंतकरि महामलिन दुर्गंध गर्भस्थानकमैं प्रवेश करे है! तातैं संसारके वासकूं धिक्कार होहु! ॥ गाथा—

इथ विं परलोगे वा । सत्तू पुरिसस्स हुंति णीया वि ॥
इहइं परत्त वा खा- । इ पुत्तमंसं णियय्मादा ॥ २ ॥

अर्थ— जे अपने अति निज हैं, तेहू इस लोकमें वा परलोकमें पुरुषकै अपने शत्रु होय हैं। निजमाताही इस लोकमें वा परलोकमें अपने पुत्रका मांस खाई है! इस- सिवाय अनर्थ कहा है? ॥ गाथा—

होऊण रिऊ वहुदु-। रुखकारउं वंधवो पुणो होदि ॥
इय परियत्तइ णीय-। त्तणं च सत्तुत्तणं च जये ॥ ३ ॥

अर्थ— जो पूर्वं बहुत दुःखका करनेवाला वैरी होयकरिकै बहुरि इसही लोकमें स्नेहकरि सहित अपना बांधव होय है। जगतविषैं इसप्रकार निजपणा अर शत्रुपणा क्षणमात्रमें रागद्वेषके वशतैं पलटै है ॥ गाथा—

विमलाहेदुं वंके-। ण मारिउं णियघभारियागब्भे ॥
जाउं जाउं जाई-। भरो सुदिट्ठी सकम्मेहिं ॥ ४ ॥

अर्थ— विमला नाम स्त्रीके निमित्त वक्र नामा अपना सेवककरिकै मार्‍या, जो सुदृष्टि नामा पुरुष, सो अपने कर्मकरिकै अपनी स्त्रीके गर्भमें उत्पन्न भया। अर पाछैं जातिस्मरण जो पूर्वजन्मका स्मरणकूं प्राप्त भया ॥ गाथा—

होऊण वंभणो सो-। त्तिउं वि पावं करित्तु माणेण ॥
सूणहो व सुयरो वा। पाणो वा होइ परळोए ॥ ५ ॥

अर्थ— वेदांती ब्राह्मण होइकरिकै अर अभिमानकरि पाप उपजायकरिकै अर मरिकरि श्वान होय है! वा सूकर होइ वा चांडाल होय है ॥ गाथा—

दारिद्दं अड्ढित्तं। णिंदं च थुदिं च वसणमब्भुदयं ॥

पावदि वहुसो जीवो । पुरिसित्थिणपुंसयत्तं च ॥ ६ ॥

अर्थ— संसारी जीव लाभांतरायके उदयतैं दरिद्र होय है। बहुरि लाभान्तरायके क्षयोपशमतैं बहुतधनका धनी होय है, वांछिततैं अधिक संपदा प्राप्त होय है। अयशस्कीर्ति नाम कर्मके उदयतैं निंदाकूं प्राप्त होय है। यशस्कीर्ति नाम कर्मके उदयतैं जगतमैं उज्वल जस विस्तरे है। असातावेदनीयकर्मके उदयतैं व्यसन, कष्ट, दुःखकूं प्राप्त होय है। सातावेदनीयके उदयतैं देवमनुष्यगतिमैं सुखकूं प्राप्त होय है। वेदके उदयकरिकै वारंवार पुरुष-स्त्री-नपुंसकपणाकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा—

कारी होइ अकारी । अप्पाडिभोगो जणो हु लोगम्मि ॥

कारी वि जणसमक्खं । होइ अकारी सपाडिभोगो ॥ ७ ॥

अर्थ— इस संसारविषैं पुण्यरहित पुरुष दोष अपराध नही करै तोहू लोकमें उसका अपराध करना प्रकट होय है। अर पुण्यसहित पुरुष जनांकै प्रत्यक्ष देखतैं कीया हुवाहू अपराध जगतविषैं प्रकट नही होय है ॥ भावार्थ— जीवके पापका उदय आवै तदि विनाकीया दोषका करना प्रकट होइ जगत सदोषी कहे है। अर पुण्य उदय आवै तदि कीया हुवा अपराधहू जगतमें प्रकट नही होय है ॥

सरिसीए चंदिगाए । कालो वेस्सो पिउ जहा जुण्हो ॥

सरिसे यि तहा चारे। कोई वेस्सो पिउ कोइ ॥ ८ ॥

अर्थ— जैसैं एक मासके दोय पक्ष, तिनमैं चंद्रमाकी चांदणी समान है, अर समानकालही चंद्रमाका उदय है— शुक्लपक्षमें पहली रात्रीविषैं चांदणी विस्तरे है, कृष्णपक्षमें पाछिली रात्रिमैं चांदणीसमान काल रहे है, अर चंद्रमाकी कलाहू समानही रहे है, ताहू लोकमैं कृष्णपक्ष द्वेष करनेजोग्य समस्तकै अप्रिय है, अर शुक्लपक्ष समस्तकै प्रिय है; तैसैं आचरण क्रिया कार्य उपकार अपकार समान करतैहू कोऊ समस्तकै द्वेष करनेयोग्य अप्रिय होय है, कोऊ समस्तकै राग करनेयोग्य प्रिय होय है। तातैं पुण्यपापके प्रबल उदयमें कर्तव्य नहीं चालिसकै है। कर्मका उपशम होतैं समस्त करना सफल होय है

इय एस लोगधम्मो। चिंतिज्जंतो करेइ णिव्वेदं ॥
धण्णा ते भयवंता। जे मुक्का लोगधम्माउ ॥ ९ ॥

अर्थ— इसप्रकार इस लोकका स्वभाव चिंतवन कीया हुवा जीवकै संसार देह भोगनिमैं विरक्तता उपजावे है। लोकमें ते ज्ञानवान् सामर्थ्यवान् धन्य हैं—पूज्य हैं, जे इस लोकके स्वभावमें रागद्वेष छांडि अपने आत्मस्वभावमें रोचे हैं ॥ गाथा—

विज्जू व चंचलं फेण। व दुव्वलं वाधिमहियमच्चुहदं ॥
णाणी किह पेच्छंतो। रमिज्ज दुक्खाउरं लोगं ॥ १८१० ॥

अर्थ— यो मनुष्यलोक विजुलीवत् चंचल है, फेन जो झाग तिसकीनांई दुर्बल है, अर व्याधिकरि मथित है, अर मृत्युकरि ताडित है, अर दुःखकरि आकुल है, ऐसा इस मनुष्यलोककूं देखता संता ज्ञानी इसमैं कैसें रमै? ॥ ऐसें लोकस्वभावका चिंतवन पनरा गाथानिमैं कह्या ॥

अब अशुभभावना, ताकूं अशुचिहू कहिये है, ताकूं आठ गाथानिमैं वर्णन करे हैं॥

असुहा अत्था कामा । य हुंति देहो य सव्वमणुयाणं ॥
एओ चेव सुभो णव- । रि सव्वसोक्खायरो धम्मो ॥ ११ ॥

अर्थ— इनि मनुष्यनिकै ये अर्थ जे धनादिक अर काम जे पंचइंद्रियनिके विषय ते अशुभ हैं-जीवकै अकल्याण करनेवाले हैं। अर देहमें लालसा है सो अशुभ है-अनंतानंत जन्ममरण करावनेवाली है। केवल यो धर्म है, सो समस्तसुखका करनेवाला है, अर शुभ है-समस्तकल्याणका बीज है ॥ अब धनतैं उपज्या अनर्थकूं दिखावे हैं ॥

इहलोगियपरलोगिय- । दोसे पुरिसस्स आवहे णिच्चं ॥
अत्थो अणत्थमूलं । महाभउ मुत्तिपडियत्थो ॥ १२ ॥

अर्थ— इस संसारमें ये धन हैं ते इस लोकसंबंधी काम, क्रोध, मद, मोह, अभिमान, भय, मायाचार, ईर्षा, बहुआरंभ, बहुपरिग्रह, हिंसादिक समस्तदोषनिकूं प्राप्त करे

है—समस्त कासादिक भयादिक समस्त धनतैं होय हैं। तातैं धन है सो समस्त इस लोकसंबंधी दोषनिकूं नित्यही प्राप्त करे है अर परलोकमें दुर्गतिकूं प्राप्त करे है। तातैं अर्थ जो धन है, सो महान् अनर्थका मूल है; वैर, कलह, दुर्ध्यान, ममता धनहीतैं वधे है। अर धन है सो महाभयका कारण है अर मुक्तिकै दृढ अर्गल है। जातैं तीव्र-रागका वधावनेवाला धन, तातैं मुक्तिं अतिदूरि वर्ते है। मुक्ति तौ वीतरागतातैं होइ है॥ अब कामका अशुभपणा कहे हैं॥ गाथा—

कुणिमकुडिभवा लहुग-। त्तकारया अप्पकालिया कामा॥
उवधो लोए दुक्खा-। वहा य ण य हुंति ते सुलहा॥ १३॥

अर्थ— बहुरि कामविषय हैं ते सिडी हुई दुर्गंध देहरूप कुटीतैं उत्पन्न भये हैं, अर जगतमें लघुपणाका करनेवाले हैं, अर अल्पकाल रहे हैं, अर दोऊ लोकमें दुःखका वहनेवाले हैं, तोहू ये भोग सुलभ नही हैं॥ भावार्थ— ये कामभोग अत्यंतदुर्गंध देहतैं उपजे हैं, अर भोगी कामी जगतमें निंद्य होइ हैं, अर कामभोगका कालभी अति अल्प है, अर काममें आसक्त जो कामी सो इस लोकमें कलंक अप-वाद अर परलोकमें नरकादिक दुर्गतिकूं प्राप्त होय है, अर ऐसे अनर्थकारीहू कामभोग पूर्वले पुण्यविना नहीं मिले हैं, हाय हाय करता दुर्गति जाय है॥ ऐसैं कामकृत

अशुभपणा दिखाया ॥ अब देहका अशुभपणा दिखावे हैं ॥ गाथा—

अट्ठिदलियच्छिराव- । क्कवद्धिया मंसमट्टिया लित्ता ॥
वहुकुणिमभंडभरिदा । विहिंसणिज्जा हु कुणिमकुडी ॥ १४ ॥

अर्थ— देहकूं कुटीसमान वर्णन करे हैं। सो देहरूप कुटी कैसीक है? हाडनिके खंडनिकरि रची है, अर नासाजालरूप वकलकरि बंधी है, अर मांसरूप मांटीकरि लिप्त है, अर महादुर्गंध शिडता हुवा मांस-रुधिर-मल-मूत्र-रूप भांडकरि भऱ्या है, अर ग्लानि करनेयोग्य है, दुर्गंधकुटीसमान है ॥ ऐसैं देहरूप कुटीका अशुभपणा दिखाया ॥

इंगालो धुव्वंतो । ण सुद्धिमुवयादि जह जलादीहिं ॥
तह देहो धोवंतो । ण जाइ सुद्धिं जलादीहिं ॥ १५ ॥

अर्थ— जैसैं अंगारेकूं जलादिककरि धोयेहू शुद्धीकूं नही प्राप्त होय है—अपना शामपणाकूं नही छांडे है; तैसैं जलादिककरि प्रक्षालन कीया देह शुद्धताकूं नही प्राप्त होय है ॥ गाथा—

सलिलादीणि अमिज्झं । कुणइ अमिज्झाणि ण हु जलादीणि ॥
मेज्झममेज्झं कुव्वं- । ति सयममिज्झाणि संताणि ॥ १६ ॥

अर्थ— अमेध्य कहिये महान् अपवित्र शरीर सो जलादिकनिकूं अशुद्ध करे है,

अर जलादिक अपवित्र शरीरकूं पवित्र नही करे है ॥ गाथा–

तारिसयममिज्झमयं । सरीरयं किह जलादिजोगेण ॥
मिज्झं हविज्ज मिज्झं । ण हु होदि अमिज्झमयघडउं ॥ १७ ॥

अर्थ— तैसा अशुचिमय शरीर जलादिकका धोवनेकरि क्यूं पवित्र होय है कहा? कदाचित् नही होइ। जैसें मलका घडा जलादिककरि शुध्द नही होइ है; तैसें मलमय हाड चाम मांस रुधिर मल मूत्रादिकमय शरीर जलादिककरि शुद्ध नही होय है ॥

णवरि हु धम्मो मिज्झो। धम्मत्थस्स वि णमंति देवा वि ॥
धम्मेण चेव हुंति हु। साहू जल्लोसधादीया ॥ १८ ॥

अर्थ— केवल एक धर्मही पवित्र है, धर्मविषैं तिष्ठतेकूं देवहू नमस्कार करे हैं, अर धर्मकरिकैही साधूकै जल्लौषधादिक ऋद्धि प्रकट होइ हैं ॥ इहां प्रकरण पाइ जल्लौषधादिक ऋद्धि कौन कौन हैं, तिनकूं कहे हैं–

ऐसा प्रकरण है– मनुष्य दोयप्रकारके हैं। एक आर्य, एक म्लेच्छ, ऐसैं दोय जाति हैं। तिनमें आर्य दोयप्रकारके हैं। एक ऋद्धिनिकूं प्राप्त भये ते ऋध्दिप्राप्तार्य मनुष्य हैं। एक जिनकूं ऋध्दि नही प्राप्त भई ते अनृध्दिप्राप्तर्य मनुष्य हैं। तिन ऋध्दिरहित आर्यनिके पंच भेद हैं। क्षेत्रार्य, जात्यार्य, कर्मार्य, चारित्रार्य, दर्शनार्य। तिनमें

जे मनुष्य काशी कोशलादिक उत्तमदेशमें उपजे, ते क्षेत्रार्य हैं। अर इक्ष्वाकुवंश
भोजवंश इत्यादिक उत्तमकुलमें उत्पन्न भये ते जात्यार्य हैं। अर कर्मार्य तीनप्रकार हैं
। सावद्यकर्मार्य, अल्पसावद्यकर्मार्य, असावद्यकर्मार्य। तिनमें जे पापकर्मसहित
जीविका करै, ते सावद्यकर्मार्य हैं। अर अल्पपापसहित जीविका करै, ऐसे व्रती-
श्रावक ते अल्पसावद्यकर्मार्य हैं। अर समस्तपापरहित जो जीविका करै, सो असाव-
द्यकर्मार्य है। इनमें सावद्यकर्मार्य छप्रकार हैं॥

असि जो खड्गादिक आयुध बांधि जीविका करै, सो असिकर्मार्य है। अर
धनसंपदादिकनिका आगमन तथा खरच हिसाब लेखादिकनिके लिखनेमें निपुण होइ
जीविका करै, सो मषिकर्मार्य। हल, फावडा, दांतलादिक जे खेतीके उपकरणनि-
करि धान्यादिकका वाहणां छेदना इत्यादिककरि धान्य उपजाय खेतीसूं जीविका
करै, ते कृषिकर्मार्य हैं। आलेख्य गणितशास्त्रादिक बहत्तरि कला इत्यादिक विद्याका
पठनपाठनादिककरि जीविका करै, ते विद्याकर्मार्य हैं। बहुरि नाई, धोबी, लुहार
सुनार, कुंभार, खाती इत्यादिक शिल्पिकर्म करि आजीविका करै, ते शिल्पिकर्मार्य
हैं। बहुरि चंदनकर्पूरादिक सुगंधद्रव्य तथा घृततैलादिक रस अर शालीनैं आदिलेय
शाली, गोहूं, चणा, मूंग, जव, इत्यादिक धान्य अर कपास, वस्त्र, मणि,

मोती, सुवर्ण, रूपा इत्यादिक नानाप्रकार द्रव्यनिका बेचना खरीदना इत्यादिक विणजकरि आजीविका करै, ते वणिक्कर्मार्य हैं। ऐसैं छप्रकारके कहे, ते अविरतमें प्रवृत्तितैं सावद्यकर्मार्य हैं। अर श्रावकके अणुव्रतादिक धारण करि अन्यायका त्यागकरि न्यायरूप यत्नाचारतैं जीविका करे हैं, बहुतपापसहित जीविका नही करै, ते अलपपापमें प्रवर्तनेतैं अर बहुतपापतैं पराङ्मुख होनेतैं अणुव्रती श्रावक अलपसावद्यकर्मार्य हैं॥ अर समस्त पापका तथा आरंभादिकनिका मन-वचन-काय करि त्यागी होय कर्मनिके क्षय करनेमें उद्यमी होय ऐसे निर्ग्रंथमुनि असावद्यकर्मार्य हैं। ऐसैं सावद्यकर्मार्य, अलपसावद्यकर्मार्य, असावद्यकर्मार्य तीनप्रकार कर्मार्य नामा तीसरा भेद कह्या॥

बहुरि चारित्रार्य दोयप्रकार हैं। अभिगतचारित्रार्य, अनभिगतचारित्रार्य। जे चारित्रमोहके उपशमतैं तथा चारित्रमोहके क्षयतैं बाह्य उपदेशकूं नही अपेक्षा करिकै आत्माकी उज्वलतातैं चारित्रपरिणामकूं प्राप्त भये ऐसे उपशांतकषाय गुणस्थानके धारक वा क्षीणकषायगुणस्थानके धारक, ते अभिगतचारित्रार्य हैं। बहुरि जे अंतरंगमें चारित्रमोहका क्षयोपशम होते संते बाह्य उपदेशके निमित्ततैं संयमके परिणामकूं ग्रहण कीये ते अनभिगतचारित्रार्य हैं॥

बहुरि दर्शनार्य दशप्रकार हैं। आज्ञा, मार्ग, उपदेश, सूत्र, बीज, संक्षेप, विस्तार,

अर्थ, अवगाढ, परमावगाढ ऐसैं दशप्रकार श्रद्धानके भेदतैं सम्यक्त्वके दश भेद हैं ॥ जो
तिनमैं जो सर्वज्ञ वीतराग अरहंतभगवानकी आज्ञामात्रकरि जाकै श्रद्धान भया,
समस्तपदार्थनिकूं एककाल क्रमरहित समस्त अतीत--अनागत--वर्तमानपर्यायनिसहित
जाणै, "ऐसे सर्वज्ञ अर रागद्वेषरहित ऐसे वीतराग भगवान् असत्यार्थ नही कहै--सर्व-
ज्ञवीतरागका कह्या मेरै प्रमाण है" ऐसैं सर्वज्ञके वचन जे परमागम तातैं जो श्रद्धान
भया, सो आज्ञासम्यक्त्व है ॥ १ ॥ निर्ग्रंथरूप मोक्षमार्गकूं श्रवणकरि निश्चय भया
जो निर्ग्रंथ वीतराग, ताही मोक्षका मार्ग है अन्य नही, ऐसा जो श्रद्धान सो मार्गस-
म्यक्त्व है ॥ २ ॥ तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेवादिकनिके चरित्रनिके उपदेश ग्रहण
करनेतैं उपज्या जो श्रद्धान, सो उपदेशसम्यक्त्व है ॥ ३ ॥ बहुरि दीक्षाकी मर्यादाके
प्ररूपण करनेवाले आचारसूत्र तिनके श्रवणमात्रतैं उपज्या जो श्रद्धान, सो सूत्रस-
म्यक्त्व है ॥ ४ ॥ बहुरि सिद्धांतसूत्रके बीजपदके ग्रहणपूर्वक सूक्ष्म अर्थरूप तत्वार्थका
श्रद्धान होइ, सो बीजसम्यक्त्व है ॥ ५ ॥ जीवादिकपदार्थनिका सामान्यसंबोधनमा-
त्रकरि उपज्या श्रद्धान, सो संक्षेपसम्यक्त्व है ॥ ६ ॥ अंगपूर्व है विषय जिनका ऐसे
जीवादिपदार्थनिका विस्ताररूप प्रमाणनयादिकनिका निरूपणकरि प्राप्त भया जो श्र-
द्धान, सो विस्तारसम्यक्त्व है ॥ ७ ॥ वचनके विस्तारविनाही पदार्थनिका ग्रहणकरि

उपजी जो निर्मलता, सो अर्थसम्यक्त्व है ॥ ८ ॥ आचारांगादिक द्वादशांगके ज्ञानकरि उपज्या श्रध्दान, सो अवगाढसम्यक्त्व है ॥ ९ ॥ परमावधिज्ञान तथा केवलज्ञान केवलदर्शनकरि प्रकाशित जे जीवादिकपदार्थनिका प्रकाशरूप परमावगाढसम्यक्त्व है ॥ १० ॥ ऐसैं क्षेत्रार्य, जात्यार्य, कर्मार्य, चारित्रार्य, दर्शनार्य पंचप्रकारकरिकैं ऋद्धिरहित जो अनृद्धिप्रासार्य, तिनके पंच भेद वर्णन कीये ॥

अब, ऋद्धि जिनकै तपके बलकरि उपजी ऐसे ऋद्धिप्रासार्य अष्टप्रकार हैं ॥ बुध्यर्द्धि, क्रियर्द्धि, विक्रियर्द्धि, तपोऋद्धि, बलर्द्धि, औषधर्द्धि, रसर्द्धि, क्षेत्रर्द्धि ये अष्टप्रकारकी मूलऋद्धि हैं ॥ इनमें बुध्यर्द्धि अष्टादशप्रकार है– केवलज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, बीजबुद्धि, कोष्ठबुद्धि, पदानुसारित्व, संभिन्नश्रोतृत्व, दूरादास्वादनसमर्थता, दूरदर्शनसमर्थता, दूरस्पर्शनसमर्थता, दूरघ्राणसमर्थता, दूरश्रवणसमर्थता, दशपूर्वित्व, चतुर्दशपूर्वित्व, अष्टाङ्गमहानिमित्तज्ञता, प्रज्ञाश्रवणत्व, प्रत्येकबुद्धता, वादित्व ऐसैं अष्टादश बुध्यर्द्धिके नाम कहे ॥ तिनमें समस्तज्ञानावरणके अत्यंतक्षयतैं लोकालोकवर्ती समस्तपदार्थनिके गुणपर्याय त्रिकालसंबंधी एककालमें क्रमरहित प्रत्यक्ष जानै, सो केवलज्ञानर्द्धि है ॥ १ ॥ बहुरि द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी मर्यादसहित मूर्तिरूपदार्थकूं प्रत्यक्ष जानै, सो अवधिज्ञान नामा ऋद्धि है ॥ २ ॥ बहुरि अपने मनसें

वा अन्य अनेक जीवनिके मनमें चिंतवन कीया पदार्थ वा चिंतवन करैगा वा चिंतवन करे है वा अर्थचिंतवन कीया वा चिंतवन करि विस्मरण भया ऐसा मूर्तिकपदार्थकूं प्रत्यक्ष जानै, सो मनःपर्ययज्ञानर्द्धि है ॥ ३ ॥

जैसैं आच्छी रीति हल आदिककरि सुधास्या अर सारांश(स)हित ऐसे क्षेत्रमें कालादिकनिकी सहायतैं वाया एक बीज अनेककोटी बीजका देनेवाला होइ है; तैसैं मनइंद्रियावरण शुद्धतावरण अर वीर्यांतरायके क्षयोपशमकी आधिक्यता होतै संतै एक बीजपदकूं ग्रहण करनेतैं अनेकपदके अर्थनिका ज्ञान होना, सो बीजबुद्धि नामा ऋद्धि है ॥ ४ ॥ बहुरि जैसैं कोठ्यारविषैं कोठ्यारीकरिकै स्थापित कीये अर भिन्नभिन्न धरे मिले नही ऐसे बहुत धान्यबीजनिका कोष्ठ जो कोठ्यार तिसविषैं धान्य जुदेजुदे तिष्ठे हैं, जब निकासै तदि न्यारेन्यारे विनाशरहित निकसि आवै अथवा जैसैं एकमकानमें स्थापन कीये नानाजातीके रत्न मणि मोती सोना जब निकासो तदि भिन्नभिन्न जेता प्रमाणरूप स्थाप्या था, तितना प्रमाण लीये भिन्नभिन्न निकसै मिलै, नहीं घटै, वटै नहीं; तैसैं परके उपदेशतैं ग्रहण कीये जे शब्द अर्थ तिन बहुत शब्द-अर्थकूं जिस अवसरमें देखो, तिस अवसरमें बुद्धीमें जैसेके तैसें रहै घटै वटै नहीं—अक्षरादिक आगैपाछै होय नहीं, सो कोष्ठबुध्यर्द्धि है ॥ ५ ॥ पदानुसारि

बुद्धीका स्वरूप कहे हैं- जो कोऊ ग्रंथमें तैं आदिका वा मध्यका वा अंतका एकपदका अर्थ अन्यतैं श्रवणकरिकै अर अवशेष समस्तग्रंथका वा अर्थका जानना, सो पदानुसारित्व नामा ऋद्धि है ॥ ६ ॥

बहुरि संयमीनिके मध्य कोऊ मुनिकै तपोविशेषका बलके लाभकरि समस्त आत्मप्रदेशनिमैं श्रोत्रेंद्रियके परिणामरूप श्रवण करनेमें समर्थ ऐसी शक्ति प्रकट भई है, तातैं द्वादशयोजन लंबा अर नवयोजन चौडा जो चक्रवर्तीका कटक ताके विषैं हाथी घोडे ऊंट गर्दभ मनुष्य इत्यादिकनिके नानाप्रकारके एकैकाल युगपत् उपजे जे अनेकशब्द तिनकूं एककालमें भिन्नभिन्न श्रवण करै, सो संभिन्नश्रोतृत्व नामा ऋध्दि है ॥ ७ ॥ बहुरि तपकी शक्तीका विशेषकरि प्रकट हुवा जो अन्यजीवनिकै ऐसा क्षयोपशम नहीं होय तैसा रसनेंद्रियावरणका क्षयोपशमतैं अर अन्यजीवनिकै नहीं होय, ऐसा श्रुतावरण अर वीर्यांतरायके क्षयोपशमतैं अर अंगोपांग नामकर्मके लाभतैं नवयोजनप्रमाण जो रसना इंद्रियका उत्कृष्ट विषय तातैंहू वारै बहुतयोजन दूरक्षेत्रतैं आया रसके आस्वादनमें सामर्थ्य प्रकट होइ सो दूरादास्वादनसमर्थता नामा ऋध्दि है ॥ भावार्थ- तपके प्रभावतैं रसनेंद्रियावरण अर श्रुतज्ञानावरण अर वीर्यांतराय इनका क्षयोपशम अर अंगोपांग नाम कर्मका लाभ

ऐसा होइ है– जातैं रसनेंद्रियका उत्कृष्टविषय नवयोजनका है, तातैंहू बहुतयोजनदूरिके रसके आस्वादनेमें सामर्थ्य प्रकट होइ, सो दूरादास्वादनसमर्थताऋद्धि है ॥ ८ ॥ ऐसैंही घ्राण इंद्रियका नवयोजनका विषय है, तिसतैं दूरीकी वस्तूका गंध ग्रहण करनेका सामर्थ्य जातैं प्रकट होइ, सो दूरघ्राणसमर्थता नाम ऋध्दि है ॥ ९ ॥

बहुरि नेत्रेंद्रियावरण अर श्रुतज्ञानावरण अर वीर्यांतरायके क्षयोपशमतैं ऐसी देखनेकी शक्ति प्रकट होइ, जो, नेत्रेंद्रियका उत्कृष्टविषय सैंतालीस हजार दोयसे तरेसठि योजन अर एकयोजनका वीस भागमें सप्तभागका है, तिसतैंहू बहुतयोजन दूरि तिष्ठती वस्तूके देखनेकी समर्थता प्रकट होइ, सो दूरदर्शनसमर्थता नामा ऋध्दि है ॥ १० ॥ ऐसैंही स्पर्शनेंद्रियावरण अर श्रुतज्ञानावरण अर वीर्यांतरायके क्षयोपशमकरि ऐसी स्पर्शनेंद्रियमें जाननेकी शक्ति होय है, जो, स्पर्शनेंद्रियका नवयोजनका उत्कृष्ट विषय है, तिसतैं बहुतयोजन दूरि तिष्ठती वस्तूके जाननेकी सामर्थ्य, सो दूरस्पर्शनसमर्थता नामा ऋध्दि है ॥ ११ ॥ बहुरि कर्ण इंद्रियका द्वादशयोजनका विषय है, सो प्रकृष्ट श्रोत्रेंद्रिय अर श्रुतज्ञानावरण अर वीर्यांतरायके प्रकर्ष क्षयोपशमतैं अर अंगोपांग नाम कर्मके लाभतैं द्वादश योजनतैं अधिक बहुतयोजन दूरिका श्रवण करै, सो दूरश्रवणसमर्थता नामा ऋध्दि है १२

बहुरि महारोहिणीकूं आदि लेइ अर प्राप्त भई अर प्रत्येक अपना अपना रूप

अर अपना अपना सामर्थ्य प्रकट करनेकूं अर अपना अपना सामर्थ्य कहनेकूं प्रवीण अर वेगवान् ऐसी विद्यादेवतानिकरि जिसका चारित्र चलायमान नही होइ अर दशपूर्वरूप दुस्तरसमुद्रके पार होना, सो दशपूर्वित्व नामा ऋध्दि है ॥ भावार्थ– दशमापूर्वका जाननेका सामर्थ्य तपके प्रभावतैं जब प्रकट होय है, तब दशमपूर्वमें रोहिणीकूं आदि करि अनेक विद्यादेवता मुनीश्वरनिके निकट चलायमान करनेकूं प्रकट होइ हैं, जो, भो मुने! अब ध्यानादिकतपकरि कहा करो हो! तुमारे तपकरि हम आपकी आज्ञाकारिणी हाजरि हैं, जो आप आज्ञा करो तो समस्तपृथ्वीमैं रत्नवर्षा करैं, नगर रचैं, महल मंदिर राज्य संपदा रचैं, समस्तकूं आपके चरणनिमैं नमाय आज्ञाकारी करैं इत्यादिक कहैं, अर नानाप्रकारका अपना सामर्थ्य प्रकट करै अर अनेकविक्रियासहित अपना रूप दिखावै हाव भाव विलास विभ्रमादिरूपकरि मुनीश्वरनिका चित्त चलायमान कऱ्या चाहै, परंतु विद्यादेवतानिकरि जिनका परिणाम चलायमान नही होय, दृढध्यानमैं रत रहै, तिसकै दशपूर्वित्वर्ध्दि होइ है। अर जो विद्यानिके लोभतैं चलायमान होय है, सो मुनि साधुधर्मतैं भ्रष्ट होइ मिथ्यात्वी असंयमी होय है। तातैं दशपूर्वसमुद्रके पार होजाय, तिसकै दशपूर्वित्वर्ध्दि होय है ॥ १३ ॥ बहुरि समस्त श्रुतका ज्ञानका धारक श्रुतकेवलीपणा सो चतुर्दशपूर्वित्वर्ध्दि है ॥ १४ ॥

बहुरि अंतरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, व्यंजन, लक्षण, छिन्न, स्वप्न ये निमित्तज्ञानके अष्ट अंग हैं। इनि अष्टांगनिमित्तका जानना, सो अष्टांगनिमित्तज्ञता नाम ऋद्धि है॥ तिनमैं अंतरिक्ष जो आकाश तिसविषैं सूर्य, चंद्रमा, ग्रह, नक्षत्र, तारानिका उदय अस्तादिक देखनेकरि ऐसा ज्ञान होइ, जो, पूर्वैं ऐसैं तो हुई होगी अर अब आगानैं ऐसा होना दीखे है, सो अंतरिक्ष नाम निमित्तज्ञान है ॥ १ ॥ बहुरि पृथ्वीकी कठोरता कोमलता सचिक्कणता रूक्षतादिकनिकूं देखि तथा पूर्वादिकदिशानिमैं सूतके पडनेकरि ऐसा ज्ञान होइ, जो, इस क्षेत्रमें वृध्दि वा हानि तथा राजादिकनिकी हारि जीति ऐसी भई है, अर ऐसी होयगी, तथा भूमीविषैं तिष्ठते सुवर्णरूप्यादिकनिका जानना सो भौम नामा निमित्तज्ञान है ॥ २ ॥ बहुरि हस्त पाद मस्तकादिक तो अंग अर कर्ण नेत्र ललाट ग्रीवा इत्यादिक उपांग इनि अंगउपांगनिके देखनेकरि तथा स्पर्शनादिककरि जो त्रिकालका भावी सुखदुःखादिककूं जानना, सो अंग नामा निमित्तज्ञान है ॥ ३ ॥ बहुरि अक्षरअनक्षररूप शुभअशुभ शब्दके श्रवणकरि इष्टानिष्टफलका प्रकट करना, सो स्वर नामा निमित्तज्ञान है ॥ ४ ॥

बहुरि मस्तक मुख ग्रीवा इत्यादिकनिविषैं तिल मुसल सणादिकनिकूं देखि त्रिकाल संबंधी सुखदुःखका जानना, सो व्यंजन नामा निमित्तज्ञान है ॥ ५ ॥ बहुरि श्रीवृ-

क्षका लक्षण, स्वस्तिक जो साथ्या ताका लक्षण अर भृंगार, झारी, कलश इत्यादि लक्षण शरीरमें देखनेतैं त्रिकालसंबंधी स्थान मान ऐश्वर्यादिकका जानना, सो लक्षण नामा निमित्तज्ञान है ॥ ६ ॥ बहुरि वस्त्र, शस्त्र, छत्र, उपानत् जो पगरखी अर आसन शयनादिकनिकूं शस्त्र कंटक मूषा इत्यादिककरि छेद्या देखि त्रिकालसंबंधी लाभ अलाभ सुखदुःखादिककूं जानै; जो, ऐसैं हुया होगा. अर ऐसैं होइ है, अर आगानैं ऐसैं होइगा, ऐसा ज्ञान सो छिन्न नाम निमित्तज्ञान है ॥ ७ ॥ बहुरि वात-पित्त-कफके प्रकोपरहित पुरुषकूं पाछिली रात्रीका भागविषैं स्वप्नमें चंद्रमा, सूर्य, पृथ्वी, पर्वत, समुद्रका मुखविषैं प्रवेश करना, तथा समस्तपृथ्वीमण्डलकूं आच्छादन करना इत्यादिक तो शुभस्वप्न हैं अर घृततैलकरि लिप्त अपना देहका स्वप्नमें देखना, अर खर ऊंटउपरि चढि दक्षिण-दिशामैं गमन करना इत्यादिक अशुभस्वप्नके देखनेतैं आगामी कालमें जीवना मरना तथा सुखदुःखादिकका जानना, सो स्वप्न नामा निमित्तज्ञान है ॥ ८ ॥ एते जे अष्टांगनिमित्तनिमैं प्रवीणपणा होना, सो अष्टांगनिमित्तज्ञान नामा ऋध्दि है ॥ १५ ॥

बहुरि कोऊ सूक्ष्म अर्थतत्त्वका विचार ऐसा गहन है; जो, चौदहपूर्वके धारी श्रुतकेवलीही जानै, अन्यज्ञानी जाननेमें समर्थ नही, परंतु कोऊ मुनिकै अत्यंत श्रुतज्ञानावरण अर वीर्यांतराय नामा कर्मके क्षयोपशमतैं असाधारण ऐसी बुद्धीकी शक्ति

प्रकट होइ है; जो, द्वादशांग चतुर्दशपूर्वका अध्ययनज्ञानविनाही अतिसूक्ष्मतत्त्वकूं संशयरहित सत्यार्थनिरूपण करै, सो प्रज्ञाश्रवणत्व ऋद्धि है ॥ १६ ॥ बहुरि परके उपदेशविनाही अपनी शक्तीके विशेषतैंही ज्ञानके तथा संयमके विधानमें निपुणपणा होइ, सो प्रत्येकबुद्धता नाम ऋद्धि है ॥ १७ ॥ बहुरि जो इंद्रादिकदेवहू प्रतिपक्षी होइ विवाद करै तो तिनकूंहू उत्तररहितकरि दे, अर अन्यके मतके समस्त छिद्रनिकूं जाणि ले आप परकरिकैं नही जीत्या जाय, वादमैं परकूं तिरस्कृत कर दे, सो वादित्व नाम ऋध्दि है ॥ १८ ॥ ऐसैं बुध्यर्ध्दीके अष्टादश भेद कहे ॥

अब, दूसरी क्रियर्ध्दि दोयप्रकार है। चारणत्व, आकाशगामित्व ॥ तिनमें चारणर्ध्दीके अनेक भेद हैं। तिनमैं नदी तलाव बावडी इत्यादिकके जलके ऊपरि गमन करै, अर जलकायिक जीवांकी विराधना नही होय अर भूमीकीनांई जलमैं पगका उठावना अर मेलना इत्यादिकमें समर्थ होइ, सो जलचारण ऋध्दीके धारक हैं ॥ १ ॥ बहुरि भूमीतैं च्यारि अंगुल ऊंचा आकाशमैं जंघानिकूं शीघ्रतातैं निराधार उठावता मेलता सैंकडा हजारा योजन गमन करनेमैं समर्थ, ते जंघाचारण ऋध्दीके धारक हैं ॥ २ ॥ ऐसैंही तंतुऊपरि गमन करै अर तंतु नही टूटै, सो तंतुचारणर्ध्दि है ॥ ३ ॥ बहुरि पुष्पनिऊपरि गमन करै अर पुष्पके जीवनिकै विराधना नही होइ, सो पुष्प-

चारणर्ध्दि है ॥ ४ ॥ बहुरि पत्रनिऊपरि गमन करै अर पत्रके जीवनिकै बाधा नही होय, सो पत्रचारणर्ध्दि है ॥ ५ ॥ बहुरि आकाशकी श्रेणीरूप गमन करै, सो श्रेणीचारण है ॥ ६ ॥ बहुरि अग्नीकी शिखाऊपरि गमन करै अर अग्निकायके जीवनिकै बाधा नही होइ, सो अग्निशिखाचारणऋध्दि है ॥ ७ ॥ इत्यादिक चारण-ऋध्दीके अनेक भेद हैं ॥ बहुरि क्रियर्ध्दिका दूसरा भेद जो आकाशगामित्व, ताका स्वरूप ऐसा है- पर्यंकासनकरि बैठे तथा कायोत्सर्गकरि खडे चरणनिका उठावनेमे-लनेकी विधिविना जो आकाशमें गमन करनेमें समर्थता, सो आकाशगामिनी ऋद्धि है॥

बहुरि विक्रियर्ध्दि अनेकप्रकार हैं- अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, अप्रतिघात, अन्तर्ध्दान, कामरूपित्व इत्यादि विक्रियर्ध्दि अनेकप्रकार हैं ॥ तिनमैं जो अणुमात्र सूक्ष्मशरीर करना, सो अणिमा ऋध्दि है ॥ मेरूतैंहू महत् शरीररूप विक्रिया करनेमें समर्थता, सो महिमा ऋध्दि है ॥ अर पवनतैंहू हलका शरीर करनेका सामर्थ्य, सो लघिमा ऋध्दि है ॥ बहुत भाऱ्या शरीर करनेका सामर्थ्य, सो गरिमा नामा ऋद्धि है ॥ बहुरि भूमीविषैं तिष्ठिकरि अंगु-लीका अग्रभागकरि मेरूका शिखरकूं स्पर्शन करनेका सामर्थ्य, तथा सूर्यचंद्रमाके विमानकूं स्पर्शन करनेका सामर्थ्य, सो प्राप्ति नामा ऋध्दि है ॥ बहुरि जलविषैं

भूमीकीनांई गमन अर भूमीमैं जलकीनांई उन्मज्जन निमज्जन करनेका सामर्थ्य, सो प्राकाम्य नामा ऋध्दि है॥ त्रैलोक्यका प्रभुपणा प्रकट करनेका सामर्थ्य, सो ईशित्व नाम ऋध्दि है॥ सर्वजीवनिकूं वश करनेका सामर्थ्य, सो वाशित्व नामा ऋध्दि है॥ बहुरि पर्वतके मध्यमें आकाशकीनांई गमनागमनकी शक्ति "जैसैं आकाशमें गमनागमन करै तैसैं पर्वतमें गमनागमन करनेका सामर्थ्य" सो अप्रतिघात नामा ऋध्दि है॥ अदृश्य होनेका सामर्थ्य सो अंतर्धान ऋद्धि है॥ युगपत् अनेक आकाररूप करनेका सामर्थ्य, सो कामरूपित्व नाम ऋद्धि है॥ ऐसैं वैक्रियक ऋद्धिका वर्णन कीया॥

अब तपोऽतिशय ऋध्दि सप्तप्रकार है— उग्रतपोऋध्दि, दीप्ततपोऋद्धि, तप्ततपोऋध्दि, महातपोऋध्दि, घोरतपोऋध्दि, घोरपराक्रमार्ध्दि, घोरब्रह्मचर्यर्ध्दि॥ तिनमैं एक उपवास, वेला, तेला, चोला, पंचोपवास, पक्षोपवास, मासोपवास इत्यादिक अनशनतपके मध्य एक तपकूं आरंभ करिकै मरणपर्यंत उस तपतैं पाछा नहीं आवै, सो उग्रतप नाम ऋध्दि है॥ बहुरि तेला, चोला, पंचोपवास, पक्षोपवासादिक निरंतर महान् उपवासादिक करतेहू जिनके काय-वचन-मनका बल दिनदिन बधता जाय, अर मुखमें दुर्गंध नहीं होइ, अर कमलादिककी सुगंधकीनांई मुखमैंतैं सुगंधनिश्वास प्रगट होइ, अर शरीरकी महादीप्ति प्रगट होइ, सो, दीप्ततपोऋध्दीके धारक हैं॥ बहुरि जिन साधूनिका

भोजन कीया हुवा आहार, मलमूत्र रुधिरादिकरूप परिणमनकूं प्राप्त नही होइ "जैसैं तप्तायमान लोहका कडाहेमैं जल सूकि जाय, तैसें शीघ्रही शुष्क होइ" मलमूत्र रुधिरादिकरूप नही परिणमै, ते तप्ततपोऋध्दीके धारक हैं ॥ बहुरि सिंहनिष्क्रीडितादिक जे महान् तप, तिनके करनेमैं उद्यमी ते महातपोऋध्दीके धारक हैं ॥

बहुरि जिनकै शरीरमें पूर्वोपार्जित असाताकर्मके तीव्र उदयतैं वात पित्त कफ सन्निपाततैं उत्पन्न भया ज्वर, कास, श्वास, नेत्रशूल, कोढ, प्रमेह, उदरशूल, स्फोदर, कठोदर इत्यादिक नानाप्रकारके रोगनिकरि तीव्रवेदना संताप प्रकट भया; तोहू अनशनादिक कायक्लेशकूं नही त्यागते अनशनादिक तपकूं बडी प्रीतीतैं रक्षा करते; अर किसीका शरण इलाज नही वांछा करते; भयानक स्मशान भूमि, पर्वतका शिखर, गुफा, पर्वतानिके दराडा, शून्य ग्रामादिक जिनमें दुष्ट यक्ष राक्षस पिशाच अनेक विकार करै, अर जहां कठोर स्यालिनीनिके शब्द अर सिंह व्याघ्र सर्प अन्य नानाप्रकारके भयानक वनके जीव अर शिकारी चोर भीलादिक दुष्टजीव जिन स्थाननिमैं विचरै, ऐसे स्थानक जिन साधूनिकूं रुचै अन्यजननिका शरणा इलाज नही चाहते वसै; ते घोरतपके धारक हैं ॥ बहुरि पूर्वैं वर्णन कीये अनेकरोगनिकरि सहित अर पूर्वोक्त निर्जनस्थानके वसनेमें प्रीतियुक्त अर ग्रहण कीये तपके वधावनेमैं तत्पर, ते मुनि घोरपराक्रम ऋद्धिके

धारक हैं ॥ बहुरि चिरकालपर्यंत सेवन कीया है अचलब्रह्मचर्य जानैं ऐसे साधु प्रकृष्ट-
चारित्रमोहके क्षयोपशमतैं नष्ट भये हैं खोटे स्वप्न जिनकैं ते घोरब्रह्मचर्य ऋद्धिके धारक
हैं ॥ ऐसैं सप्तप्रकार तपोऋद्धीका वर्णन कीया ॥

बहुरि बलर्द्धि तीनप्रकारकी है— मनोबलर्द्धि, वचनबलर्द्धि, कायबलर्द्धि ॥ तिनमैं
मनःश्रुतज्ञानावरण वीर्यांतरायके क्षयोपशमकी प्रकर्षता होतै संतै जो अंतर्मूहूर्तमें
समस्त द्वादशांग श्रुतका अर्थके चिंतवनमें सामर्थ्य-शक्ति प्रकट होई, सो मनो-
बलर्द्धि है ॥ १ ॥ बहुरि मनःश्रुतावरण अर जिव्हाश्रुतावरण अर वीर्यांतरायके क्षयो-
पशमातिशय होत संते अंतर्मूहूर्तमें समस्त श्रुतज्ञानके उच्चारणकी शक्ति प्रकट होई
अर निरंतर उच्चस्वरकरि उच्चारण होतेंहू खेद जिनकैं नही उपजै, अर कंठकी हीनता
नहीं होय, सो वचनबलर्द्धि है ॥ २ ॥ बहुरि वीर्यांतरायके क्षयोपशमतैं ऐसा असाधा-
रण कायबल प्रकट होई; जातैं मासोपवास, चातुर्मासके उपवास वा संवत्सरपर्यंत
प्रतिमायोग धारतैंहू कायमें खेद क्लेश नही उपजै; सो कायबलर्द्धि है ॥ ३ ॥ ऐसैं बल
ऋद्धि तीनप्रकार वर्णन करी ॥

अब अष्टप्रकार औषधी ऋद्धिकूं कहे हैं— जो असाध्यहू समस्तरोगनिका अभाव करनेमें
समर्थ सो औषधर्द्धि अष्टप्रकार है— आमर्शौषधि ऋद्धि, क्ष्वेलौषधि ऋद्धि, जल्लौषधि ऋद्धि,

मलौषधि ऋद्धि, विडौपधि ऋद्धि, सर्वौपधि ऋद्धि, आस्याविषर्द्धि, दृष्ट्याविषर्द्धि ॥ जिनके हस्तपादादिक अंगका आमर्श जो स्पर्शन, सोही औषधिरूप होइ रोगनिका नाश करै, ते आमर्शौषधि ऋद्धीके धारक हैं ॥ १ ॥ अर जिनका क्ष्वेल जो कफ, सोही औषधिरूप होई रोगनिका नाश करै, ते क्ष्वेलौषधि ऋद्धीके धारक हैं ॥ २ ॥ अर जल्ल जो समस्त अंगका पसेव मलकेउपरि लग्या रज सोही जिनके रोगका नाश करनेवाला होइ, ते जल्लौषधि ऋद्धीके धारक हैं ॥ ३ ॥ जिनके कर्णमल तथा दंतमल नासिकामलही रोगका नाश करनेवाले होई, ते मलौषधि ऋद्धीके धारक हैं ॥ ४ ॥ वहुरि जिनका विट जो विष्ठा सोही रोगका नाश करनेमें समर्थ होइ, ते विडौषधि ऋद्धीकूं धारे हैं ॥ ५ ॥ वहुरि जिनका अंग तथा उपांग तथा नख दंत केशादिककूं स्पर्श करनेवाला पवनादिकही समस्तरोगनिका नाश करै, ते सर्वौषधि ऋद्धीके धारक हैं ॥ ६ ॥ वहुरि जिनके मुखमें प्राप्त भया उत्कृष्ट विषहू निर्विषताकूं प्राप्त होइ, ते आस्याविष ऋद्धीके धारक हैं ॥ अथवा जिनके मुखतैं निकले वचनके श्रवण करनेतैं महान् विपकरि व्याप्तहू विषरहित होय है, ते आस्याविष ऋद्धीके धारक हैं ॥ ७ ॥ वहुरि औषधर्द्धीके धारक साधुनिकी दृष्टिके पतनमात्रकरि उत्कटविषकरि दूषित होइ, तेहू विषरहित होइ, ते दृष्ट्यविष ऋद्धीके धारक हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ— साधूकै तपके प्रभावतैं औषधि ऋद्धि ऐसी उपजै है, तिसके प्रभावतैं साधूका अंग उपांग केश नख दंत मल मूत्र कफ पसेव नासिकामल इत्यादिकके स्पर्शनकरिकै रोग दूरि होय हैं वा मलादिक शरीरादिककूं स्पर्शनकरि पवन लगे है, सो समस्त रोगीनिका रोग दूरि करे है ॥ तथा सर्पादिकनिके विषकरि व्याप्त हैं तिनके विष दूरि होय हैं ॥ ऐसैं अष्टप्रकार औषधि ऋद्धीका वर्णन कीया ॥

अब छप्रकार रसऋध्दीकूं कहे हैं— आस्यविषा, दृष्टिविषा, क्षीरास्रावी, मध्वास्रावी, सर्पिरास्रावी, अमृतास्रावी ॥ उत्कृष्टतपके बलका धारक मुनीश्वर क्रोधकरि कोईकूं कहै, तूं मरि जा! तो तिसही क्षणमें महाविषकरि व्याप्त होइ मरिजाय, सो आस्यविषर्द्धि है ॥ १ ॥ उत्कृष्टतपके धारक यति क्रोधकरि जाकूं देखै, सोही उत्कृष्टविषकरि व्याप्त होय मरे है, ते दृष्टिविष ऋध्दीके धारक हैं ॥ २ ॥ यद्यपि वीतरागमार्गी क्रोधकरि कहेहू नहीं, अर क्रोधकरि देखेहू नहीं, शत्रुमित्रमें जिनकै समानबुध्दि है, तथापि तपके प्रभावतैं ऐसी शक्ति प्रकट भई, सो शक्तिका प्रभाव दिखाया है ॥ अर दिगंबर यति दुर्गतिका कारण निंद्यकर्म कदाचितही नहीं करे हैं ॥ बहुरि जिनके हस्तमें प्राप्त हुवा नीरसहू आहार क्षीररसके गुणरूप परिणमनकूं प्राप्त होइ, ते क्षीरास्रावी ऋध्दीके धारक हैं ॥ अथवा जिनके वचन क्षीणमनुष्यनिकूं दुग्धर-

सकीनांई तृप्ति करनेवाला होइ, ते क्षीरास्त्रावी ऋध्दीके धारक हैं ॥ ३ ॥ बहुरि जिनके हस्तपुटमें प्राप्त भया नीरसहू आहार मधुररसकी शक्तिरूप परिणमे अथवा जिनके वचन दुःखकरि पीडित श्रोताजननिकै मिष्टगुणकूं पुष्ट करै, ते मध्वास्त्रावी ऋध्दीके धारक हैं ॥ ४ ॥ बहुरि जिनके हस्तपुटमें प्राप्त हुवा रूक्षहू अन्न घृतरसकी शक्तीके उदयकूं प्राप्त होय अथवा जिनके वचन श्रवण करते प्राणीनिकूं घृतरसकीनांई आनंदित करै, तृप्ति करै, ते सर्पिरास्त्रावी ऋध्दीके धारक हैं ॥ ५ ॥ बहुरि जिनके हस्तमें प्राप्त हुवा जैसातैसा आहार सो अमृतपणाकूं प्राप्त होय अथवा जिनके कहे वचन प्राणीनिका अमृतकीनांई उपकार करै, ते अमृतास्त्रावी ऋध्दीके धारक हैं ॥ ६ ॥ ऐसें छप्रकार रसर्ध्दीका वर्णन कीया ॥

अब क्षेत्रर्द्धि दोयप्रकार है– एक अक्षीणमहानसर्द्धि, एक अक्षीणमहालयर्ध्दि ॥ लाभांतरायके क्षयोपशमकी आधिक्यतातैं तपस्वीनिकै ऐसी शक्ति प्रकट होइ है, जो गृहस्थ तपस्वीनिके अर्थि जिस पात्रतैं निकासि भोजन देवै, तिस पात्रतैं चक्रवर्तीका कटकहू जीमिजाय तोहू तिस दिनविषैं पात्रमें भोजन नही घटै, सो अक्षीणमहानसर्द्धीके धारक है ॥ बहुरि जिस क्षेत्रमें अक्षीणमहालयऋद्धीकूं प्राप्त भया मुनीश्वर वसै, तिस क्षेत्रमें देव मनुष्य तिर्यंच परस्पर निराबाध हुये सुखसूं तिष्ठै सकडाई नही होइ,

ते अक्षीणमहालय ऋद्धीके धारक हैं ॥ २ ॥ ऐसैं क्षेत्रर्द्धीके दोय भेद कहे ॥ आत्मामैं अनंतशक्ति है, सो तपके प्रभावतैं जैसैंजैसैं कर्मका क्षय क्षयोपशम होइ तैसैंतैसैं शक्ति प्रकट होय है। तपका अद्भुत प्रभाव है । कोटिजिव्हातैं असंख्यातकालपर्यंत तपका महिमा कहनेमें नही आवे है।

ऐसे ऋद्धिप्राप्त आर्यके भेद कहे, ते समस्त सत्यरूप धर्मसेवनेका महिमा है। जातैं महान् अशुचि मलिनदेहकूंभी धारण करि जो तपश्चरणादिककरि परमधर्म सेवन करे हैं, तिनकै अनेकप्रकारकी ऋद्धि प्रकट होइ है। तातैं अशुचिदेहकूं धर्मसेवनमें लगावनाही अपना कल्याण है ॥ ऐसैं अशुचिभावना वर्णन करी ॥

अब चौदह गाथानिकरि आस्रवभावनाकूं कहे हैं ॥ गाथा—

जम्मसमुद्दे वहुदो- । सवीचिए दुक्खजलयराइण्णे ॥
जीवस्स दु परिभमण- । म्मि कारणं आसउं होदि ॥ १९ ॥

अर्थ— संसाररूप समुद्रविषैं जीवका परिभ्रमणका कारण आस्रव है। कैसाक है संसारसमुद्र? जिसमें बहुतदोषरूप लहरी उठे हैं अर दुःखरूप जलचरजीवनिकरि भर्या है॥

संसारसागरे से । कम्मजलमसंपुडस्स आसवदि ॥
आसवणीए णावाए । जह सलिलं उदधिमज्झम्मि ॥ १८२० ॥

अर्थ— जैसैं समुद्रके मध्य छिद्रसहित फूटी नावमें जल प्रवेश करे है; तैसैं संसार-समुद्रमें संवररहित पुरुषकै कर्मरूप जल प्रवेश करे है ॥ गाथा—

धूली णेहुत्तुप्पिद- । गत्ते लग्गा मलो जदा होदि ॥
मिच्छत्तादिसिणेहो- । लिदस्स कम्मं तहा होइ ॥ २१ ॥

अर्थ— जैसैं सचिक्कणतासहित जो शरीर तिसविषैं लगी जो धूली, सो मैली होइ है; तैसैं मिथ्यात्व-असंयम-कषायरूप चिकणाईसहित आत्माकै कर्म होनेके योग्य पुद्गल-द्रव्य ते कर्म होय हैं ॥ भावार्थ— समस्त लोक पुद्गलद्रव्यकरि भऱ्या है। तिन पुद्गल-निमैं निरंतर परिणमन होनेतैं कर्मरूप होनेजोग्यहू अनंतानंत पुद्गलवर्गणा समस्तलोकमें भरी है, जहां आत्माके प्रदेश तहांहू भरी है। जिस कालमें संसारी आत्मा मिथ्यात्व अविरत कषाय जोगरूप अपना परिणाम करे है, तिस कालमें कर्मके जोग्य पुद्गलस्कंध कर्मरूप होइ आत्मामैं एकक्षेत्रावगाहरूप होनेकूं प्रवेश करे है, सो आस्रव है ॥ अब कर्म होनेके योग्य पुद्गलद्रव्य समस्त लोकमें भरे हैं, ऐसा दिखावे हैं ॥ गाथा—

ओगाढगाढणिचिदो । पुग्गलदव्वेहिं सव्वदो लोगो ॥
सुहुमेहिं वादरेहिं य । दिस्सादिस्सेहिं य तहेव ॥ २२ ॥

अर्थ— यो तीनसै तीयालीस घनरज्जूप्रमाण समस्त लोक, सो दृश्य अर अदृश्य

ऐसे सूक्ष्मबादर पुद्गलद्रव्यनिकरि नीचै उपरि मध्यमैं अत्यंत गाढागाढा भऱ्या है। पुद्गलद्रव्यविना एक प्रदेशहू लोकाकाशका नहीं है। तिनमें कर्म होनेके योग्यहू अनंतानंत पुद्गलपरमाणु भऱ्या है। सो जैसैं जलमें पड्या तप्तलोहका गोला सर्वतरफतैं जलकूं खेंचै है; तैसैं मिथ्यात्वकषायादिककरि तप्तायमान संसारी आत्मा सर्वतरफतैं कर्मके योग्य पुद्गलनिकूं ग्रहण करे है ऐसैं समयसमय समयप्रबध्द ग्रहण करे है। पाछैं जैसैं एकवार ग्रहण कीया आहार रुधिर मांस वीर्य मल मूत्र अस्थि चाम केशादिक नानास्वरूप परिणमे हैं; तैसैं एकवार ग्रहण कीया कार्माण समयप्रबध्द ज्ञानावरणादिक अष्टप्रकाररूप परिणमे है॥ अब मिथ्यात्वादिकानिकूं कहे हैं॥ गाथा—

मिच्छत्तं अविरमणं। कसायजोगा य आसवा होंति॥
अरहंतउत्तअत्थे-। सु विमोहो होइ मिच्छत्तं॥ २३॥

अर्थ— मिथ्यात्व, अविरत, कषाय अर योग ये आस्रव होइ हैं। कर्मवर्गणाके आवनेके द्वाररूप मिथ्यात्व ५, अविरत १२, कषाय २५, योग १५ ये सत्तावन आस्रव हैं–कर्म आवनेके द्वार हैं। तिनमें जो अरहंत भगवानका कह्या जे सप्ततत्वादिक अर्थनिमैं विमोह जो अश्रध्दान, सो मिथ्यात्व होय है॥ अब असंयमकूं कहे हैं॥

अविरमणं हिंसादी। पंच वि दोसा हवंति णायव्वा॥

कोधादीया चत्ता- । रि कसाया रागदोसमया ॥ २४ ॥

अर्थ— हिंसा, असत्य, चोरी, कुशीलसेवन, परिग्रहमें ममता ये पंच दोष, ते अविरमण हैं; इनकूंही असंयम कहिये हैं ॥ छकायके जीवनिकी दया नही अर पंच इंद्रिय अर छट्ठा मनका वशीभूतपणा नही ये बारह अविरति हैं। पंचपापका त्यागीकै बारह अविरतका अभाव है। अर क्रोध मान माया लोभ ये च्यारी कषाय हैं, सो रागद्वेषमय हैं ॥ अब रागद्वेषका माहात्म्य दिखावे हैं ॥ गाथा—

किह दाराउ रंजे- । दि णरं कुणिमे वि जाणुगं देहे ॥
किह दा दोसो वेसं । खणेण णीयं पि कुणइ णरं ॥ २५

अर्थ— अशुचि अर अनुरागके अयोग्यभी देहके विषैं ज्ञातामनुष्यकूं यो रागभाव कैसैं रंजायमान करे है! अशुचि अर असारदेहमें अज्ञानी रंजायमान होय है। ज्ञानी होई मलिन विनाशिक कृतघ्नी देहमें रंजायमान होय, सो बडा आश्चर्य है! तातैं जगतके भुलावनेमें रागभाव बडा प्रबल है। बहुरि दोषकी प्रबलता ऐसी है, जो अपना निजबांधव ताहिहू क्षणमात्रमें द्वेष करनेयोग्य करे है, तातैं रागद्वेषही जगतकूं विपरीतमार्गमें प्रवर्तन करावे है ॥ गाथा—

सम्मादिट्ठी वि णरो । जेसिं दोसेण कुणइ पावाणि ॥

अर्थ— जिनके दोषकरिकैं सम्यग्दृष्टीहू पापनिमैं प्रवृत्ति करै ऐसे गारव, इंद्रिय, संज्ञा, मद, राग, द्वेषनिकूं धिक्कार होहू ॥ ऋद्धिगारव, रसगारव, सातगारव ये तीनप्रकारगारव हैं ॥ मेरीसी ऋध्दिसंपदा कौनकै है? मै ऋध्दिसंपदाकरि अधिक हूं ऐसैं ऋध्दिकरि आपकूं बडा मानना, सो ऋध्दिगारव है ॥ १ ॥ बहुरि छ रससहित भोजन मिलनेका अभिमान, जो, मै रंकपुरुषकीनांई नही, मेरा ऐसा पुण्य है, जो, अनेकप्रकारके रसयुक्त भोजन हाजरि धरे हैं! कौन ग्रहण करै! कौन अवलोकन करै! ऐसा रसगारव है ॥ २ ॥ बहुरि सातका उदय होतैं अभिमान करै; जो, मेरै पुण्य उदय है; मेरै हानि, वियोग, रोग दुःख नही होइ कोई, पापीकै होयगा; मै कहा पापी हूं! मेरै दुःख कदाचित् नही होइ ये मोकूं भरोसा है; ऐसैं साताकर्मके उदयतैं सुख रहै, ताका अभिमान, सो सातगारव है॥ ३॥ अर अपने अपने विषयनिमैं लंपटता चाहना, सो पंच इंद्रिय हैं ॥ ५ ॥ अर भोजनकी अभिलाषा सो आहारसंज्ञा है ॥ १ ॥ भयकी इच्छा जो "छिपि रहना, कहां जाऊं! कौन मेरी रक्षा करै! कहा होसी!" ऐसा कायरपणा, सो भयसंज्ञा है ॥ २ ॥ अर कामकी आतुरताकरिकै मैथुनमें अभिलाषं सो मैथुनसंज्ञा ॥ ३ ॥ परिग्रहमें अभिलाष, सो परिग्रहसंज्ञा है ॥ ४ ॥ सोही गोमटसारग्रंथमें संज्ञानिका लक्षण अर संज्ञाकी उत्पत्तीका बहिरंगकारणनिकूं कहे हैं ॥

इह जाहि वाहियाहि य। जीवा पावंति दारुणं दुक्खं ॥
सेवंता वि य उभये। ताऊं चत्तारि सण्णाउं ॥ १ ॥

अर्थ— जे आहार भय मैथुन परिग्रहरूप वांछाकरिकैं जीव इसभवमें इनके विषयनिकूं सेवन करै तो, तथा नही सेवन करै विषयनिकी प्राप्ति होतैं वा नही होतैं घोरदुःखनिकूं प्राप्त होई; ते च्यारि संज्ञा हैं। इनहीकरिकैं संसारी जीव नानाप्रकारके दुखःनिकूं भोगवे हैं ॥ तिनमैं च्यारिप्रकारका सुंदर आहारकूं देखना, तथा पूर्वैं भोग्या जो आहार तिसकूं यादि करना, तथा आहारकी कथाके श्रवण करनेमें उपयोग लगावना, तथा उदरका रीतापणा होना इत्यादिक बाह्यकारण-निकरि तथा असातावेदनीयकर्मकी उदीरणा वा तीव्र उदयकरिकैं जो आहारमें वांछा उपजे सो आहारसंज्ञा है ॥ १ ॥ बहुरि अतिभयंकर व्याघ्रादिक दुष्टजीवका देखना, दुष्ट तिर्यंच मनुष्य व्यंतरादिकनिकी कथाका श्रवण करना–स्मरणमें उपयोग लगावना, तथा शक्तिरहितपणा इत्यादिक बहिरंगकारण अर भयनोकषायका तीव्र उदयरूप अंतरंगकारणनिकरि भयसंज्ञा उत्पन्न होइ है ॥ २ ॥ बहुरि पुष्टरसका भोजन करना, अर कामकथाका श्रवण अर अनुभव करना, अर कामचेष्टामैं उपयोग रखना, अर कुशील

धि तेसिं गारविंदिय- । सण्णामयरागदोसाणं ॥ २६ ॥

विटादिक कामीपुरुषनिका सेवन गोष्ठी प्रीती इत्यादिक बहिरंगकारणनिकरि, तथा स्त्रीवेद पुंवेद नपुंसकवेद इनि तीन वेदनिमैंतैं कोऊएक वेदकी उदीरणारूप अंतरंगकारणकरि मैथुनमें वांछारूप मैथुनसंज्ञा होइ है ॥ ३ ॥ बहुरि बाह्य नानाप्रकारके धनधान्य वस्त्र रत्नादिक वस्तुके देखनेकरि, तथा परिग्रहकी कथाका श्रवणादिककरि परिग्रहमें आसक्ततारूप बहिरंगकारण अर लोभकषायकी उदीरणारूप अंतरंगकारणकरि परिग्रहमें वांछा, सो परिग्रहसंज्ञा है ॥ ४ ॥ सो छठा गुणस्थानपर्यंत च्यारि संज्ञा हैं। अप्रमत्तादिकमें आहारसंज्ञाका अभाव है ॥ ऐसैं ये च्यारि संज्ञा अर अष्ट मद ये महान् अनर्थके मूल इनकूं धिक्कार होहू! अर रागद्वेषनिकूं धिक्कार होहू! इनि दोषनिकरि सम्यग्दृष्टि पुरुषहू पापनिकूं करे है ॥ गाथा—

जो अभिलासो विसए- । सु तेण ण य पावए सुहं पुरिसो ॥
पावदि य कम्मवंधं । पुरिसो विसयाभिलासेण ॥ २७ ॥

अर्थ— जो पुरुषकै पंच इंद्रियनिके विषयनिमें अभिलाष है, ताकरि, पुरुष सुखकूं नहीं प्राप्त होय है। विषयनिके अभिलाषकरि पुरुष कर्मबंधकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा—

कोहि डहिज्ज जह चं- । दणं णरो दारुगं च बहुमोल्लं ॥
णासेइ मणुस्सभवं । पुरिसो तह विसयलोभेण ॥ २८ ॥

अर्थ— जैसैं कोऊ मनुष्य बहुमूल्य चंदनकूं काष्ठके निमित्त दग्ध करै; तैसैं पुरुष विषयांका लोभकरिकै निर्वाणका कारण जो मनुष्यभव, ताका नाश करे है ॥ गाथा—

छंडिय रयणाणि जहा । रयणद्दीवा हरिज्ज कट्ठाणि ॥
माणुसभवे वि छंडिय । धम्मं भोगेऽभिलसदि तहा ॥ २९ ॥

अर्थ— जैसैं कोऊ पुरुष रत्नद्वीपमें प्राप्त होइकरिहू रत्ननिकूं छांडिकरिकैं रत्नद्वीपतैं काष्ठ ग्रहण करै; तैसैं मनुष्यभवविषैं धर्मकूं त्यागिकरिकै भोगनिकूं अभिलाष करे है ॥ भावार्थ— जैसैं रत्नद्वीपमें प्राप्त होइकरिकैहू कोऊ रत्न त्यागि काष्ठका भार बांधे है; तैसैं मनुष्यभवविषैं धर्मकूं त्यागि भोगनिका अभिलाष करे है ॥ गाथा—

गंतूण णंदणवणं । अमियं छंडिय विसं जहा पियइ ॥
माणुसभवे वि छंडिय । धम्मं भोगेऽभिलसदि तहा ॥ १८३० ॥

अर्थ— जैसैं कोऊ पुण्यहीन पुरुष नंदनवनमें जायकरिकै अर अमृतकूं त्यागिकरिकैं विषकूं पीवे है; तैसैं मूढजन मनुष्यभवमें धर्मकूं छांडि भोगनिमैं वांछा करे है ॥

पावपउंगा मणवचि- । काया कम्मासवं पकुव्वंति ॥
भुंजंतो दुब्भुत्तं । वणम्मि जह आसवं कुणइ ॥ ३१ ॥

अर्थ— पापमें युक्त जे मनवचनकायके जोग, ते कर्मनिका आस्रव करे हैं । जैसैं

खोटे आहारकूं भोजन करता पुरुष आपके व्रणमें राधिरुधिरका आस्रव करे है ॥ गाथा—

अणुकंपा सुद्धुवउ-। गो वि य पुण्णस्स आसवदुवारं ॥
तं विवरीदं आसव-। दारं पावस्स कम्मस्स ॥ ३२ ॥

अर्थ— अनुकंपा जो जीवदया अर शुभोपयोग ये पुण्यके आवनेके द्वार हैं। अर जीवनिमैं निर्दयता अर अशुभोपयोग ये पापकर्मके आस्रवके द्वार है ॥ जिसके दर्शनचारित्र-मोहनीयका विशिष्ट क्षयोपशमतैं उपजा जो शुभराग, तातैं परमभट्टारक महादेवाधिदेव परमेश्वर अर्हत्–सिद्ध–आचार्य–उपाध्याय–साधुनिके गुणनिका श्रद्धानमें तथा सर्वज्ञकी आज्ञामैं प्रवर्त्या उपयोग तथा समस्तजीवनिकी दयामैं प्रवर्त्या उपयोग; सो शुभोपयोग है; सो पुण्यास्रवका कारण है ॥ तथा दर्शनचारित्र–मोहनीयका विशिष्ट उदयतैं उपज्या जो अशुभराग, ताकरि परमभट्टारक देवाधिदेव परमेश्वर अर्हत्–सिध्द–आचार्य–उपाध्याय–साधुनितैं अन्य उन्मार्गीनिका गुणानिमैं उपदेशमें प्रवर्त्या जो उपयोग, सो अशुभोपयोग है ॥ तथा विषयनिके सेवनेमें, कषायरूप होनेमें, दुष्टशास्त्र जे हिंसाके प्ररूपक शास्त्रनिके श्रवणमें, दुष्टनिकी संगतिमें, दुष्टनिके आश्रय, दुष्टनिके सेवनमें, उत्कट आचरण करनेमें प्रवृत्तीकूं प्राप्त हुवा जो उपयोग, सो अशुभोपयोग है;–पापके आस्रवका कारण है ॥

इहां विशेष ऐसा जानना— शुभयोग पुण्यास्रवका कारण है, अशुभ मनोवचनकायके योग पापास्रवका कारण है ॥ प्राणीनिकी हिंसा, परका विनादीया धनका ग्रहण करना, मैथुनसेवनादिक ये अशुभ काययोग हैं ॥ बहुरि असत्यभाषण, कठोरवचन, धर्मविरुध्दवचन ये अशुभ वचनयोग हैं ॥ बहुरि परजीवनिका घातका चिंतवन करना, ईर्षाभाव, अदेखसका भाव ये अशुभ मनोयोग हैं ॥ ते पापास्रव करे हैं ॥ अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्यादिक शुभकाययोग हैं ॥ सत्य हित मित वचन बोलना, सो शुभ वचनयोग है ॥ अरहंतादिकनिकी भक्ति, तपश्चरणमें रुचि, श्रुतका विनयादिक, सो शुभ मनोयोग है ॥ ये शुभयोग पुण्यस्राव करे हैं ॥

अब ज्ञानावरणादिक अष्टकर्मके आस्रवके कारणनिकूं कहे हैं— मोक्षका मूलसाधन जो मत्यादिकज्ञान, ताकी कोऊ प्रशंसा करै सो अन्तरङ्गमें बुरी लागै, सुहावै नहीं; सो प्रदोष है, अथवा तत्त्वके ज्ञानकी कथनीमैं हर्षका अभाव सो प्रदोष है ॥ बहुरि कोऊ कारणकरि कोऊ सम्यग्ज्ञानकी कथनी पूछै, ताकूं कहै मै नही जाणूं वा ऐसैं नही है ऐसैं सम्यग्ज्ञानकूं छिपावना, सो निह्नव है। अथवा अपना गुरु अप्रसिद्ध तिसकूं छिपाय प्रसिध्दगुरुका नाम प्रकट करना, सो निन्हव है ॥ बहुरि आपकरि अभ्यास कीया सम्यग्ज्ञान देनेके जोग्यहू योग्यशिष्यके अर्थि नही देना, सो मा-

त्सर्य है ॥ बहुरि केई धर्मानुरागी ज्ञानका अभ्यास करते होइ, तिनकै व्यवच्छेद करना स्थान बिगाडि देना, पुस्तकका संयोग बिगाडि देना, पढावनेवालेका संबंध बिगाडि देना, सो अंतराय है॥ बहुरि परकरि प्रकाश्या ज्ञानकूं कायकरि वचनकरि वर्जन करना, सो आसादना है॥ बहुरि अपनी बुद्धीकी दुष्टताकरिकै प्रशंसायोग्य ज्ञानकूं दूषण लगावना, सो उपघात हैं॥ ये समस्त प्रदोष-निन्हव-मात्सर्य-अंतराय-आसादना-उपघातरूप परिणाम ज्ञानावरण अर दर्शनावरण कर्मके आस्रवका कारण हैं ॥

बहुरि आचार्य जो संघका स्वामी अर उपाध्याय जो ज्ञानाभ्यास करावनेके अधिकारी तिनतैं प्रतिकूल रहना, अपूठा रहना, तथा अकालमें अध्ययन करना, तथा जिनेंद्रके वचननिमें श्रध्दान नहीं करना, शास्त्राभ्यासमें आलसी रहना, अनादरतैं शास्त्रार्थका श्रवण करना, धर्मतीर्थका रोकना, अर आपके बहुश्रुतीपणाका गर्व करना, मिथ्यात्वका उपदेश देना, बहुश्रुतीनिका अपमान करना, अपना पक्षका ग्रहणमें पंडितपणा, अपनी पक्षका परित्याग करना, विनासंबंध प्रलाप करना, सूत्रविरुध्द वाद करना, शास्त्रनिका बेचना, प्राणिहिंसादिक ये समस्त ज्ञानावरणकर्मके आस्रवके कारण हैं ॥ बहुरि परके देखनेमें मत्सरता, अर देखनेमें अंतराय करना, परके नेत्र उपाडना, परकी इंद्रियनितैं वैर करना, नेत्रनिकूं बडा करना-फाडना, बहुत दीर्घकाल

सोवना, दिनमें निद्रा लेना, आलस्य करना, नास्तिकताका ग्रहण करना, सम्यग्दृष्टीनिकूं दूषण लगावना, कुतीर्थ जो खोटे तीर्थकी प्रशंसा करना, प्राणनिका घात करना, यतिजननिकी ग्लानि करना ये समस्त दर्शनावरणकर्मके आस्रवके कारण हैं ॥

अब वेदनीयकर्मके आस्रवके कारण कहे हैं– अनिष्टवस्तु जो अपना विरोधीद्रव्यका समागम अर वांछितका वियोग अर अनिष्ट कठोरवचनका श्रवणादिक बाह्यकारणकी अपेक्षातैं अर असातावेदनीयका उदयतैं उपज्या जो पीडारूप परिणाम, सो दुःख है ॥ अर अपने उपकारक बांधवमित्रादिकनिका संबंधका अभाव होता, ताकूं वारंवार चिंतवन करते पुरुषकै अभ्यंतर मोहनीयकर्मका भेद जो शोक, ताके उदयतैं चिंताखेदलक्षण मलिनपरिणाम होय, सो शोक है ॥ बहुरि कठोरवचनके श्रवणतैं तथा अपवाद तिरस्कारादिकके होनेतैं अन्तःकरणमें मलिन होइकरिकै जो तीव्र पश्चात्ताप करै, सो ताप है ॥ बहुरि परिताप होनेतैं अश्रुपात नाखना प्रचुर विलाप करिकै अर अंगमें विकारादिक करता प्रकट शब्द करि रुदन करै, सो आक्रंदन है ॥ अर आयु, इंद्रिय, बल, श्वासोश्वासरूप प्राणनिका वियोग करना, सो वध है ॥ बहुरि संक्लेशपरिणामकरि ऐसा रुदन विलाप करै–जाके श्रवणतैं अन्यजीवनिका परिणाम कांपने लगिजाय, दया उपजि आवै–सो परिदेवन है ॥ ये दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध, परिदेवनरूप

परिणाम क्रोधादिककरि आपकै करै; अर आप समर्थ होइ कषायका वशतैं अन्यजीवनिकै करै; अर आपकै अर अन्यकै दोऊनिकै करै, तातैं असातावेदनीयकर्मका आस्रव होइ है॥

दुःखशब्दकरि औरहू असातावेदनीयका कारण कहे हैं॥ अशुभप्रयोग करना, परका अपवाद निंदा करना, पूठि पाछै परके दोष कहना, दयाका अभाव करना, परजीवनिकै ताप उपजावना, अंग उपांग छेदन करना, भेदन करना, लाठीमूकीतैं ताडन करना, त्रास उपजावना, तर्जना करना, छेदन करना, छोलना, कांटना, बांधना, रोकना, मर्दन करना, दमन करना, बहुत दूरि चलावना, फैकना, परकी निंदा करना, अपनी प्रशंसा करना, संक्लेश प्रकट करना, निर्दयपणाकरि प्राणीनिका नाश करना, महान् आरंभ करना, महान् परिग्रह वधावना, विश्वासघात करना, वक्रस्वभाव रखना, पापकर्मनितैं जीविका करना, अनर्थदंड ग्रहण करना, विष मिलावना, जीवनिकै मारनेकूं पकडनेकूं जाल पासी वागुरा पींजरा जंत्र इत्यादिक उपाय रचना, खोटे शास्त्र देना, पापके भाव करना ये समस्त आपकै तथा आप अर पर दोऊनिकै कीया हुवा असातावेदनीयकर्मके आस्रवके कारण हैं॥

अब सातावेदनीयके आस्रवके कारणनिकूं कहे हैं॥ भूत जे समस्त प्राणी अर व्रती जे अहिंसादिकपापनिके त्यागी, तिनविषैं अनुकंपा करना। अनुग्रहबुद्धिकरि भीज्या

हुवा, परकै पीडाकूं देखि आपमैं पीडा तिष्ठतीकीनांई जानि, कंपायमान होना, सो अनुकंपा है। जाकै दया है, ताकै सामान्य समस्त प्राणीनिमैं दुःख देखि कांपना है। अर महाव्रतीमैं अणुव्रतीमैं दुःख आया देखि दुःख मेटनेकी इच्छारूप हुवा, आपमैं आया दुःखकीनांई विशेष कम्पायमान होना, सो भूतव्रतीनिमैं अनुकंपा है॥ परके उपकारके अर्थि अपना आहार वस्त्रादिक देना, सो दान है॥ संसारका अभावके अर्थि वीतरागतामैं उद्यमी है, तोहू पूर्वोपार्जित कर्मके उदयतैं रागसहित होना, सो सरागता है, सरागकै जो छकायका जीवनिकी हिंसाका त्याग अर इंद्रियनिके विषयनिमैं अनुरागका त्याग, सो सरागसंयम है॥ औरहू संयमासंयम तथा पराधीनपणातैं बंदिगृहादिकनिमैं भोगोपभोगका रुकना, सो अकामनिर्जरा है॥ अज्ञानी मिथ्यादृष्टीनिका तप, सो बालतप है॥ निर्दोष क्रियाका आचरण, सो योग है, ताकूं ध्यान कहिये है॥ शुभपरिणामनिकी भावनापूर्वक क्रोधादिककषायका अभाव, सो क्षमा है॥ लोभका त्याग, सो शौच है॥ ऐसैं इन भूतव्रतीनिमैं अनुकंपा अर दानका देना, सरागसंयम, तथा संयमासंयम, अकामनिर्जरा, बालतप, योग तथा क्षमा, शौच इनिरूप परिणाम सातावेदनीयका आस्रवका कारण है॥ तथा क्षमा, अरहंत भगवानकी पूजाके करनेमैं तत्परता, बाल वृध्द तपस्वीनिके वैयावृत्त्यमैं उद्यम,

सरलपरिणाम, विनयादिक समस्त सातावेदनीयकर्मके आस्रवका कारण है ॥

अब दर्शनमोहनीयकर्मके आस्रवके कारणपरिणामनिकूं कहे हैं ॥ जाकै ज्ञानावरणकर्मके अत्यंत क्षयतैं उपज्या केवलज्ञान, सो केवली है। अर रागद्वेषमोहरहित अर बुध्दिके अतिशय ऋध्दिकरि युक्त जे गणधरदेव, तिनकरि प्रकाश्या, सो श्रुत है। अर रत्नत्रयके धारक मुनीश्वरनिका समूह, सो संघ है ॥ अहिंसादिलक्षण धर्म है ॥ भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी कल्पवासी ये च्यारिप्रकारके देव हैं॥ केवली, और श्रुत, और संघ, अर धर्म, अर देव इनिका अवर्णवाद करना, सो दर्शनमोहके आस्रवका कारण है ॥

जो गुणवंत महान् पुरुषनिका अनहोता असत्य दोष अपनी बुद्धिकी मलिनतातैं प्रकट करना, सो अवर्णवाद है ॥ तिनमें केवलीकै अन्नके पिण्डका आहार करना कहै, तथा केवली कंबल ऊनके वस्त्र पहरे रहे है, केवली निहार करे है, केवलीकै तुंबीपात्र है, केवलीकै दर्शनपूर्वक ज्ञान होय है इत्यादिक अपनी बुद्धिकी मलिनतातैं समस्तदोषरहित केवलीकै झूंटा दोष कहना, सो केवलीका अवर्णवाद है ॥

बहुरि ऐसे कहै-श्रुत जो शास्त्र, तामैं मांसभक्षण; मत्स्यीमत्स्यका भक्षण तथा, मधु जो सहत ताका भक्षण; तथा मदिरापान करना, तथा कामपीडित साधूकै मैथुनसेवन करना, रात्रिभोजन करना इत्यादि निर्दोष है, श्रुतमें निर्दोष कह्या है ऐसैं

कहना; सो श्रुतका अवर्णवाद है ॥

बहुरि ये जैनके दिगम्बर मुनि शूद्र हैं, स्नानरहित हैं, मलकरि लिप्त हैं, अशुचि हैं, निर्लज्ज हैं, इहांही प्रत्यक्ष दुःख भोगे हैं! परलोकमें कैसैं सुखी होयगे? ऐसैं कहना, सो संघका अवर्णवाद है ॥

बहुरि जिनेन्द्रका उपदेश्या दशलक्षण धर्म निर्गुण है, इसके सेवनेवाले असुर होयगे ऐसैं कहना, सो धर्मका अवर्णवाद है ॥ बहुरि देव मांसभक्षण करे हैं, मदिरा पीवे हैं इत्यादिक कहना, सो देवका अवर्णवाद है ॥ ऐसैं केवलीका अवर्णवाद, श्रुतका अवर्णवाद, संघका अवर्णवाद, धर्मका अवर्णवाद, देवका अवर्णवाद, सो दर्शनमोहनीयकर्मके आस्रवके कारण है ॥

अब चारित्रमोहनीयकर्मके अस्रावके कारण परिणामनिकूं कहे हैं ॥ जगतके उपकार करनेमें उमर्थ जो शीलव्रत, तिनकी निंदा करना, आत्मज्ञानी तपस्वीनिकी निंदा करना, धर्मका विध्वंस करना, धर्मके साधनमें अन्तराय करना, तथा शीलवानकूं शीलतैं चिगावना, देशव्रतीकूं तथा महाव्रतीकूं व्रतनितैं चलायमान करना, मद्यमांसमधुका त्यागीनिके चित्तमें भ्रम उपजावना–जातैं त्यागमें शिथिल होजाय, चारित्रमें दूषण लगावना, क्लेशरूप लिंग–भेष धारना, क्लेशरूप व्रत धारना, आपकै अर परकै कषाय

उपजावना इत्यादिक कषायवेदनीयके आस्रवके कारण हैं ॥

बहुरि नानाप्रकार पर कोई क्रीडा करै तिसकी क्रीडामैं तत्परता, अन्यकै क्रीडाकी सामग्रीमैं उद्यम करना, उचितक्रियाका वर्जन नही करना, नानाप्रकारकी पीडाका अभाव करना, देशादिकमैं उत्सुकपणाका अभाव, सो रतिवेदनीयकर्मका आस्रवका कारण है ॥ अन्यजीवनिकै अरति प्रकट करना, परकी रतिका विनाश करना, पापरूप जिनका स्वभाव तिनकी संगति करना, अकल्याणरूप खोटी क्रियामैं उत्साह करना ये अरतिवेदनीयकर्मका आस्रव करे हैं ॥

अपनै शोक होय तामैं विषादी होय चिंतवन करना, परकै दुःख प्रकट करना, अन्यकूं शोकमें लीन देखि आनन्द धारना, सो शोकवेदनीयकर्मके आस्रवका कारण है ॥ बहुरि अपना भयरूप परिणाम करना, परकै भय उपजावना, निर्दयपणाकरि परकूं त्रास देना इत्यादिक भयवेदनीयका आस्रवका कारण है ॥ बहुरि सत्यधर्मकूं प्राप्त भये च्यारि वर्णके धारक ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र तिनका कुलकी क्रिया आचारकी ग्लानि करना, परका अपवाद करना, सो जुगुप्सावेदनीयके आस्रवके कारण है ॥ बहुरि अतिक्रोधके परिणाम, अतिमानीपणा, ईर्षाका व्यवहार, असत्यवचन, अतिमाया-चारमैं तत्परपणा, अतिरागभावका करना, परस्त्रीसेवन करना, परस्त्रीका रागभावतैं आदर

करना, स्त्रीकेसे भाव आलिंगनादिक करना, इनि भावनितैं स्त्रीवेदका आस्त्रव होय है.

अल्प क्रोध, कुटिलताका अभाव, विषयनिमें उत्सुकताका अभाव, निर्लोभता, स्त्रीके संबंधमें अल्प राग, अपनी स्त्रीमैं संतोष, ईर्षाका अभाव, गंध पुष्प माल्य आभरणमें अनादर इत्यादिक पुरुषवेदके आस्त्रवका कारण है ॥ बहुरि क्रोध मान माया लोभ च्यार्‍यूं कषायनिका प्रचुरपरिणामका होना, तथा गुह्य इंद्रियका छेदना, स्त्रीपुरुषनिके कामके अंग छांडि अनंगमें व्यसनीपणा, शीलवंतनिकूं उपसर्ग करना, व्रतीनिकूं दुःख देना, गुणनिके धारकनिका मथन करना, दीक्षाकूं ग्रहण करनेवालेनिकूं दुःख देना, परस्त्रीका संगमवास्तै तीव्र राग करना, आचाररहित निराचारी होना, सो नपुंसकवेदके बंधका कारण है ॥

अब च्यारिप्रकारकी आयुके मध्य नरक आयूके बंधका कारण कहे हैं ॥ हिंसाका कारण बहुत आरंभ अर बहुतपरिग्रहका संचय करना, सो नरक आयूका आस्त्रवका कारण है ॥ विशेष कहे हैं– मिथ्यादर्शनकरि मिल्या आचरण, उत्कृष्ट अभिमानीपणा, शिलाभेदसदृश क्रोध, तीव्रलोभमें अनुराग, निर्दयपणा, परजीवनिकै संताप उपजावनेका परिणाम रखना, परके घातका परिणाम रखना, परकै बंधनका अभिप्राय, समस्तजीवनिका घात करनेका परिणाम, जिसतैं प्राणीनिका

घात होइ ऐसा असत्यवचनका स्वभाव रखना, परद्रव्यके हरनेके परिणाम, मैथुनका उपसेवन, पापका कारण अभक्ष्य आहार, वैरकी स्थिरता, यतीनिकी निंदा, तीर्थंकरांकी अवज्ञा, कृष्णलेश्याके परिणाम, रौद्रध्यानकरि मरण इत्यादिक नरक आयूका आस्रवका कारण है ॥

बहुरि मायाचारका परिणाम तिर्यंचयोनीका कारण है ॥ मिथ्याधर्मका उपदेश, बहु आरंभ, बहुपरिग्रह, कपट, कूटकर्म करना; पृथ्वीका भेदसमान क्रोध, शीलरहितपणा, शब्द चिह्न वचननिकरि तीव्र मायाचारमें प्रीति, परके परिणामनिमैं भेद करना; अनर्थ प्रकट करना; वर्ण, गंध, रस, स्पर्श इनिका विपरीत करना; जाति कुल शीलमें दूषण लगावना; विसंवादका अभिप्राय रखना; परके उत्तमगुणनिकूं छिपावना; विनाहोते अवगुण प्रकट करना; नील कपोत लेश्याके परिणाम, आर्तध्यानतैं मरण करना; इत्यादि तिर्यंच आयूके आस्रवके कारण हैं ॥

बहुरि अल्प आरंभ, अल्पपरिग्रहपणा मनुष्य आयूके आस्रवका कारण है ॥ बहुरि मिथ्यादर्शनसहित बुद्धि, विनयवान्स्वभावपणा, सरलप्रकृति, मार्दव, आर्जव, सांचे आचरणमें सुख मानना, अपना सुख जनावना, वालू रेतमें लीकसमान क्रोध, सरलव्यवहारमें प्रवृत्ति, संतोषमें रति, प्राणीनिका घातमें विरक्तता, खोटे कर्मनितैं

निवृत्ति होना, आपके निकट आया तिसमैं मिष्ट संभाषण, प्रकृतिहीतैं मधुरता, लौकिकव्यवहारतैं उदासीनता, ईर्षारहितपणा, अल्पसंक्लेशपणा, देवता गुरु अतिथिकी पूजादानका अपने द्रव्यमैंतैं विभाग करना, कपोतलेश्याके परिणाम, मरणकालमें धर्मध्यानीपणा, अर स्वभावहीतैं विनासिखाया कोमलपणा ये मनुष्य आयूके आस्रवके कारण हैं ॥

बहुरि सरागसंयम, अकामनिर्जरा, अज्ञानतप ये देव आयूके आस्रवका कारण हैं ॥ तथा कल्याण करनेवाला मित्रका संबंध, धर्मके स्थान आयतनकी सेवा, सत्यार्थधर्मका श्रवण, धर्मका महिमा जैसें होइ तैसें करना, सम्यक्त्व धारना, प्रोषधोपवास करना, इनतैं देव आयूका आस्रव होय है ॥ तत्त्वज्ञानरहित मिथ्यादृष्टीका तप करना है, सो बालतप है ते बालतपके धारक भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी देवनिमैं तथा बारमां स्वर्गपर्यंत स्वर्गनिमें वा मनुष्यतिर्यंचनिमें उपजे हैं ॥ बहुरि पराधीन हुवा क्षुधा तृषाका निरोध भोगना, बंदिग्रहादिकनिमैं ब्रह्मचर्य, भूमिशयन, मलधारण करना, दुर्वचनादिकका आताप सहना, दीर्घकाल रोगधारण ये अकामनिर्जराके धारक ये व्यंतर मनुष्य तिर्यंचनिमैं उत्पन्न होय हैं ॥ बहुरि संक्लेशरहित होइ वृक्षतैं पडनेवाले; पर्वततैं गिरनेवाले; भोजनके त्यागमें, जलप्रवेश करनेमें, अग्निप्रवेश करनेमें, विषभक्षणमें, धर्मके माननेवाले व्यंतर तथा मनुष्यतिर्यंचनिमैं उपजे हैं ॥ बहुरि शीलवान, व्रतवान, दया-

वान्, जलरेखासमान क्रोधके धारक, अर भोगभूमीमैं उपजनेवाले, व्यंतरादिकदेवानिमैं जन्म धारण करे हैं ॥ बहुरि सम्यग्दृष्टी भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी देवनिमैं नहीं उपजे हैं–कल्पवासी देवानिहीमैं उत्पन्न होय हैं ॥

अब अशुभनामके कारणानिकूं कहे हैं ॥ मन वचन कायकी कुटिलता रखना, अर विसंवाद करना, तातैं अशुभनामकर्मका बंध होय है ॥ अशुभयोगानिका विशेष ऐसैं जानना–मिथ्यादर्शन धरना, परकी पूठि पाछै खोटी कहना, चित्तका अस्थिरपणा, ताखडी वाट कुडा रखना, सुवर्ण मणि रत्नादिक खोटेकूं आच्छेमैं मिलावना, कुडी खोटी साक्षी भरना, अंग उपांग काटना, वर्ण रस गंध स्पर्श इनकी विपरीतता करना, अनेक जीवानिकूं दुःख देनेवाले जंत्र पींजरे बनावना, कपटकी प्रचुरता, परकी निंदा अपनी प्रशंसा करना, झूंठ वचन बोलना, परका द्रव्य ग्रहण करना, महान् आरंभका महान् परिग्रहका मद करना, उज्वल आभरण वस्त्र उज्वलवेषका मद करना, रूपका मद करना, कठोर निंद्य वचन असत्यप्रलाप क्रोधके वचन धीटताके वचन कहना, सौभाग्यमें उपयोग करना, वशीकरणके प्रयोग करना, परजीवनिकै कौतूहल उपजावना, आभरण पैरनेमैं आदरतैं अनुराग करना, जिनमंदिरके चंदनादिक गंध अर पुष्पमाल्यादिक धूपदीपादिकानिका चोरना, हास्य करना ईंटनिके पकावनेके प्रयोग दावाग्नीके प्रयोग करना, देवकी

प्रतिमाका विनाश करना, तथा प्रतिमाका स्थान जो मंदिर ताका नाश करना, मनुष्यादिकनिके बैठनेरहनेके मकानकूं मलमूत्रादिककरि विगाडना, बागवगीचे वनका विनाश करना, क्रोध मान माया लोभका तीव्रपणा, पापकर्मनितैं जीविका करना इत्यादिकनितैं अशुभनाम कर्मके आस्रव होय हैं ॥

बहुरि मन वचन कायकी सरलता अर पूर्वं कहे तीसूं उलटे परिणाम ते समस्त शुभनाम कर्मके आस्रवके कारण हैं ॥ तथा धर्मात्माकूं देखि हर्षकूं प्राप्त होना, सम्यग्भाव रखना, संसारभ्रमणतैं भयभीत रहना, प्रमाद वर्जना इत्यादिक शुभनाम कर्मके आस्रवके कारण हैं ॥

अब अनंत अर उपमारहित है प्रभाव जाका अर अचिंत्यविभूतिविशेषका कारण त्रैलोक्यमें विजय करनेवाला ऐसा तीर्थंकरनामा नामकर्मके आस्रवके कारण षोडशकारण भावना हैं, तिनका संक्षेप ऐसा है– जिनेन्द्रका उपदेश्या निर्ग्रन्थलक्षण मोक्षका मार्गमें जो रुचि अर निःशंकितत्वादि अष्ट अंगनिकी उज्वलतारूप दर्शनविशुद्धि है १ ज्ञानदर्शनचारित्रविषैं अर दर्शनज्ञानचारित्रके धारकनिमें आदर करना–सत्कार करना तथा कषायका अभाव करना, सो विनयसम्पन्नता है ॥ २ ॥ अहिंसादिक व्रतनिमें तथा व्रतके पालनेके अर्थि क्रोध मान माया लोभका त्यागस्वभाव शीलनिविषैं मनवचनकायकरि निर्दोषप्रवृत्ति करना, सो शीलव्रतेष्वनतीचार भावना है ॥ ३ ॥ ज्ञानकी

भावना पढना पढावना उपदेश करना इत्यादिक श्रुतज्ञानके अर्थमें निरंतर उपयोग रखना, सो अभीक्ष्णज्ञानोपयोग है ॥ ४ ॥ शरीरसंबंधी दुःख, तथा मानसिकदुःख तथा इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग, वांछितका अलाभ इत्यादिक संसारके दुःखनितैं नित्य भयभीतता, सो संवेगभावना है ॥ ५ ॥ धर्मात्मा पुरुषनिकै उपकारके अर्थि आहार औषध शास्त्र अभयदानका सम्यग्भावनितैं भक्तिपूर्वक देना सो शक्तितस्त्याग है ॥ ६ ॥ अपना वीर्यकूं नहीं छिपायकरिकै जिनेंद्रके मार्गके अनुकूल अनशनादिक कायक्लेश करना, सो शक्तितस्तप है ॥ ७ ॥ मुनीश्वरनिकै कोऊ कारणतैं व्रत तप शील संयममें विघ्न आवै, तिनका विघ्न दूरि करि रक्षा करना, जैसैं अनेकवस्तुनिकरि भऱ्या भंडारमें अग्नि लागै, तो तिसका बुझावना रक्षा है; तैसैं साधुनिकै विघ्न दुःख दूरि करि, तप, व्रत, शील, संयमकी रक्षा करना सो साधुसमाधि है ॥ ८ ॥

गुणवंतनिकै दुःख प्राप्त होते निर्दोषविधिकरि उनका दुःख दूरि करना, टहल करना, सो वैयावृत्य है ॥ ९ ॥ केवलीनिके गुणनिमैं अनुराग सो अर्हद्भक्ति है ॥ १० ॥ समस्तसंघके अधिपति दीक्षाशिक्षाके दायक आचार्यनिके गुणनिमैं अनुराग, सो आचार्यभक्ति है ॥ ११ ॥ स्वमतपरमतके ज्ञाता ऐसे बहुश्रुतीनिके गुणनिमैं अनुराग, सो बहुश्रुतभक्ति है ॥ १२ ॥ श्रुतज्ञानके गुणनिमैं अनुराग, सो प्रवचनभक्ति है ॥ १३ ॥

षट् आवश्यकनिका यथाकाल प्रवर्तन करना, सो आवश्यकापरिहाणि नामा भावना है ॥ १४ ॥ ज्ञानके प्रकाशकरि तथा महान् तपकरि तथा जिनपूजाकरि जिनधर्मका उद्योत करना, सो मार्गप्रभावना है ॥ १५ ॥ धर्मात्मा पुरुषनिविषैं अतिस्नेह करना जैसैं गऊ वत्सविषैं प्रीति करै, तैसैं प्रीति करना, सो प्रवचनवत्सलत्व है ॥ १६ ॥ ये षोडशभावना तीर्थंकरनाम कर्मके आस्रवकूं कारण हैं ॥

अब गोत्रकर्मके आस्रवके कारणनिमैं नीचगोत्रनाम कर्मके आस्रवके कारणनिकूं कहे हैं ॥ परके दोष होते वा अनहोते प्रकट करनेकी इच्छा, सो परनिंदा है। अर आपविषैं विद्यमान वा अविद्यमान गुणनिके प्रकट करनेकी इच्छा, सो आत्मप्रशंसा कहिये। परके सांचे गुणनिकूंहू आच्छादन करना अर अपने झूंटेहू गुण प्रकट करना, सो परनिंदा आत्मप्रशंसा। परके गुण होइ तिनकूं ढांकना अर आपके अनहोत गुण प्रकट करना, ते नीचगोत्रके आस्रवके कारण हैं ॥ विशेष ऐसा जानना– जाति कुल बल रूप श्रुत आज्ञा ऐश्वर्य तपका मद करना, परकी अवज्ञा करना, परकी हास्य करना, परके अपवाद करनेका स्वभाव रखना, धर्मात्मा पुरुषनिकी निंदा करना, अपनी उच्चता दिखावना, परके यशकूं बिगाडि देना, असत्य कीर्ति उपजावना, गुरुनिका तिरस्कार करना, गुरुनिका दोष विख्यात करना, गुरुनिका स्थान बिगाडना, अपमान करना,

गुरुनिकै पीडा उपजावना, अवज्ञा करना, गुणनिकूं लोप करना, गुरुनिकूं अंजुली नही जोडना, गुरुनिकी स्तुति नही करना, गुरुनिके गुण नहि प्रकाशना, गुरुनिकूं आवतें नही खडा होना, तीर्थंकरादिकनिकी आज्ञादिकका लोप करना ये समस्त नीचगोत्रके बंधके कारण हैं ॥

अब उच्चगोत्रके आस्रवके कारणनिकूं कहे हैं ॥ अपनी निंदा करना, परकी प्रशंसा करना, परके भले गुणनिकूं प्रकट करना, अवगुणनिकूं ढांकना, गुणवंतनिविषैं विनयकरि नम्रीभूत रहना, आपमैं ज्ञानादिकगुणनिकी आधिक्यता होतैहू ज्ञानादिकनिकृत मदकूं प्राप्त नही होना—अहंकार नही करना, सो उच्चगोत्रके आस्रवका कारण है ॥ औरहू कह्या है— जाति, कुल, बल, रूप, वीर्य, विज्ञान, ऐश्वर्य, तप इनिकरि अधिक होय, तातैं आपकी उच्चता नही चिंतवन करना; अन्यजीवनकी अवज्ञा नही करना; अन्यजीवनितैं उद्धतपणा छांडना; परकी निंदा, परकी ग्लानि, परकी हास्य, परका अपवादका त्याग करना; बहुरि अभिमानरहित रहना; धर्मात्माजनका पूजा सत्कार करना—देखतैंही ऊठि खडा होना, अंजुली जोडना, नम्रीभूत होना, वंदना करना; बहुरि अवारके अवसरमें अन्यपुरुषनिकै ऐसे गुण होना दुर्लभ तैसे गुण आपमैं होतैहू उद्धतपणा नही करना; अहंकारका अभाव करना—जैसैं भस्ममें ढक्या अग्निकी-

नाई अपना माहात्म्य नही प्रकट करना; धर्मके कारणनिमैं परम हर्ष करना; सो समस्त उच्चगोत्रके आस्रवके कारण हैं ॥

अब अंतरायकर्मके आस्रवके कारण परिणामनिकूं कहे हें ॥ दान देनेमें विघ्न करनेतैं दानांतरायका आस्रव होय है ॥ कोऊकै लाभ होता होय तिस लाभके कारणकूं बिगाडै, तातैं लाभांतरायकर्मका आस्रव होय है। परके भोग बिगाडनेतैं भोगांतरायका अर परका उपभोग बिगाडनेतैं उपभोगांतरायका, परका वीर्य बिगाडनेतैं वीर्यांतरायकर्मका आस्रव होय है ॥ इसका विस्तार कहे हैं– कोऊ ज्ञानाभ्यास करता होय ताके निषेध करनेतैं; तथा कोऊका सत्कार होता होय तिसके विनाशनेतैं; तथा दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, स्नान, विलेपन, अतर, सुगंध, पुष्पमाल्यादिक, वस्त्र, आभरण, शय्या, आसन, भक्षण करनेयोग्य भक्ष्य, भोजन करनेयोग्य भोज्य, पीवनेयोग्य पेय, आस्वादनेयोग्य लेह्य इत्यादिकनिमैं विघ्न करनेतैं, तथा विभवसमृद्धि देख आश्चर्य करनेतैं, तथा अपने द्रव्य होतेहू नहीं खर्चनेतैं, द्रव्यकी अतिवांछातैं देवतानिकै चढी वस्तूके ग्रहण करनेतैं, निर्दोष उपकरणके त्यागनेतैं, परकी शक्ति–वीर्य विनाशनेतैं; धर्मका छेद करनेतैं; सुंदर आचारके धारक तपस्वी गुरुका घात करनेतैं; जिनप्रतिमाकी पूजाके बिगाडनेतैं; तथा दीक्षित, तथा दरिद्री, दीन, अनाथ इनकूं कोऊ

वस्त्र पात्र स्थान देते होय, तिनके निषेध करनेतैं; परकूं बंदिगृहमैं रोकनेतैं; बांधनेतैं; गुह्य अंगके छेदनेतैं; कर्ण, नासिका ओष्ठके काटनेतैं; जीवनिकै मारनेतैं अंतराय नामा कर्मका आस्रव होय है ॥

जैसैं कोऊ मद्यपानी अपनी रुचिविशेषतैं मद मोह विभ्रमके करनेवाली मादिरा पीयकरिकै अर तिसके उदयके वशतैं अनेकविकारकूं प्राप्त होय है; तथा जैसैं रोगी अपथ्यभोजन करि अनेक वातपित्तकफादिजनित विकारनिकूं प्राप्त होय है; तैसैं आस्र-वविधिकरि ग्रहण कीया अष्टप्रकारका ज्ञानावरणादिक कर्म तथा एकसो अठतालीस प्रकार उत्तरकर्म तथा असंख्यात लोकप्रमाण उत्तरोत्तर कर्मकी प्रकृतितैं उपज्या विकारकूं प्राप्त होय है ॥ बहुरि कोऊ प्रश्न करै— जो, आयुकर्मविना सप्त कर्मप्रकृतिनिका आस्रव समयसमय निरंतर अनादिकालतैं होय है, तदि प्रदोषादिकनिकरि ज्ञानावरणादिकनि-काही नियम कैसैं रह्या? ताका उत्तर— एककालमें जो समयप्रबद्ध आवे है, तिसके परमाणु ज्ञानावरणादिक सप्तकर्मनिकूं वटे है, तथा अपनेअपने वटमें यथायोग्य अपनी-अपनी उत्तरप्रकृतिनिकूं वटे है। तातैं समस्त कर्मप्रकृतिकै प्रदेशबंधप्रति नियम नहीं कह्या है। जो ये पूर्वैं तत्प्रदोषादिक भाव कहे, ते अनुभागप्रति नियमके कारण हैं। इनि भावनितैं जो कर्म आवै, सो अनुभागप्रति नियम जनावे है। जैसैं कोऊ पुरुषका

भाव दानके देनेमें विघ्न करनेवाला भया, तदि उस समयमें जो कर्मका आस्रव भया, सो सप्तकर्मनिकूं वटि गया, परंतु दानांतरायकर्ममें तो रस प्रचुर पड्या, अर अन्य प्रकृति थोथी रहि गई, प्रकृति स्थिति प्रदेश तीनप्रकार बंध भया। अनुभाग कषायरूप भावनिप्रमाण कोऊमैं तीव्र रह्या, कोऊमैं मंद रह्या ऐसैं जानना ॥

अब इहां ऐसा संक्षेप जानना–आस्रव सत्तावन प्रकारके हैं। मिथ्यात्व पंचप्रकार है– १ एकांत, २ विपरीत, ३ विनय, ४ संशय, ५ अज्ञान ये पंच मिथ्यात्वके प्रकार हैं। पंच इंद्रिय अर छट्ठा मनकूं वशीभूत नहीं करना अर छकायके जीवनिकी हिंसाका त्याग नहीं ये बारहप्रकार अविरत हैं। अर पचीस कषाय हैं। अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान मान माया लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ, संज्वलन क्रोध मान माया लोभ, हास्य, रति अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद ये पचीस कषाय हैं। सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, उभयमनोयोग, अनुभयमनोयोग ये च्यारि मनके योग हैं। सत्यवचनयोग, असत्यवचनयोग, उभयवचनयोग अनुभयवचनयोग ये च्यारि वचनयोग हैं। औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र, कार्मण ये सप्त काययोग हैं। ऐसैं मिथ्यात्व ५। अविरत १२। कषाय २५। योग १५। ये सत्तावन

आस्रव हैं, कर्म इनद्वारै होइ आवे है। तिनमें मिथ्यात्वद्वारै कर्म तो एक मिथ्यात्वगुणस्थानहीमैं आवे है अर अविरतद्वारै कर्म देशसंयमपर्यंतही आवे है। तिनमें त्रसवधद्वारै कर्म च्यारि गुणस्थानपर्यंतही है। अर कषायद्वारै कर्म सूक्ष्मसांपरायपर्यंत दश गुणस्थानपर्यंत आवे है॥ अर योगद्वारै कर्म तेरहमे गुणस्थानपर्यंत आवे है॥ ऐसैं आस्रवभावना संक्षेपतैं कही॥ विस्ताररूप गोमटसार नाम ग्रंथतैं जानना॥

अब दश गाथानिमैं संवरभावना कहे हैं॥ गाथा—

मिच्छत्तासवदारं। रुंभइ सम्मत्तदिढकवाडेण॥
हिंसादिदुवाराणि वि। दढवदफलिहेहिं रुंभंति॥ ३३॥

अर्थ— सम्यक्त्वरूप दृढकपाटकरिकैं मिथ्यात्वरूप आस्रवद्वारकूं रोकै अर दृढव्रतरूप आगलकरिकैं हिंसादिकद्वारनिकूं रोकै; तब मिथ्यात्वद्वारैं अर अव्रतद्वारैं कर्म आवै छा, ताका संवर होय है॥ गाथा—

उवसमदयादमाउह-। करेण रक्खा कसायचोरेहिं॥
सक्का काउं आउह-। करेण रक्खा व चोराणं॥ ३४॥

अर्थ— कषायनिका उपशम अर जीवनिकी दया अर इंद्रियनिका दमन येही आयुध हैं हस्तमें जाके ऐसा पुरुष कषायचोरनितैं अपनी रक्षा करे है। जैसैं जिसका

हस्तमें आयुध, सो पुरुष चोरनितैं रक्षा करनेकूं समर्थ होय है ॥ गाथा—

इंदियदुद्दंतस्सा । णिघिप्पंति[1] दमणाणखलिणेहिं ॥
उप्पहगामा णिघि- । प्पंति हु खलिणेहिं जह तुरया ॥ ३५ ॥

अर्थ— जैसें उत्पथमार्गमें गमन करनेवाले घोडे लगामकरि निग्रहकूं प्राप्त करिये हैं; तैसें इन्द्रियरूप दुष्ट घोडे विषयनितैं रोकनेरूप लगामकरि निग्रहकूं प्राप्त करिये हैं ॥

अणिहुदमणसा इंदिय- । सप्पाणि णिगिण्हिदुं ण तीरिज्ज ॥
विज्जामंतोसहिही- । णेण जहाऽऽसीविसा सप्पा ॥ ३६ ॥

अर्थ— जैसें विद्या मंत्र औषधिकरि रहित पुरुष आसीविषजातिका सर्पके निग्रह करनेकूं समर्थ नही है; तैसें मनकूं नही निश्चल करनेवाला चपलचित्तका धारक पुरुषहू इंद्रियरूप सर्पनिकै वश करनेकूं नही समर्थ होय है ॥ गाथा—

पावपयोगासवदा- । रणिरोधो अप्पमादफलिगेण ॥
कीरइ फलिगेण जहा । णावाए जलासवणिरोधो ॥ ३७ ॥

अर्थ— विकथादिक पंचदश प्रमाद, ते पापप्रयोग हैं । जैसें नावमें जल आवनेके द्वारकूं काष्ठका फलककरि रोकिये है; तैसें अप्रमादरूप फलककरि पापप्रयोग रोकिये हैं ॥ भावार्थ— जिसकै अपने स्वरूपकी निरंतर सावधानी है-प्रमाद नही होय

[1] निगृह्यन्ते

है, तिसकै विकथादिरूप प्रमादकरि आस्रव नहीं होय है। जिसकै अपने स्वरूपकी सावधानी नही, सो ४ विकथा, ४ कषाय, ५ इंद्रिय, १ निद्रा, १ स्नेह इनि पंद्रह प्रमादनितैं अंध होइ कर्मका आस्रव करे है॥ गाथा—

गुत्तिपरिखाहिं गुत्तं। संजमणयरं ण कम्मरिउसेणा॥
बंधेइ सत्तुसेणा। पुरं व परिखादिहिं सुगुत्तं॥ ३८॥

अर्थ— जैसैं खाई कोट इत्यादिककरि रक्षा कीया पुरकूं शत्रुकी सेना भंग करनेकूं समर्थ नही है; तैसैं मनवचनकायकी गुप्तिरूप खाई कोटकरि रक्षा कीया संयमनगरकूं कर्मरूप वैरीकी सेना भंग करनेकूं नही समर्थ होई है॥ गाथा—

समिदिदढणावमारुहि-। य अप्पमत्ता भवोदधिं तरदि॥
छज्जीवणिकायवधा-। दिपावमगरेहि अच्छिक्का॥ ३९॥

अर्थ— प्रमादरहित पुरुष हैं ते समितिरूप दृढ नावमें बैठिकरिकै छकायके जीवनिकी हिंसातैं उपज्या जे पापरूप जलचर तिनकरि नहीं स्पर्शे संसारसमुद्रकूं तिरे हैं॥

दारे व दारवालो। हिदये सुप्पणिहिदा सदी जस्स॥
दोसा धंसंति ण तं। पुरं सुगुत्तं जहा सत्तू॥ १८४०॥

अर्थ— जैसैं भलैप्रकारकरि रक्षा कीया पुरुष, ताहि शत्रु वैरी विध्वंस करनेकूं नहीं

प्राप्त होय है; तैसैं कर्मधातुमैं मिल्या हुवा जीव महान् तपरूप अग्निकरि धम्या हुवा शुद्धरूपकूं प्राप्त होय है ॥ अब इहां कोऊ कहै- जो, तपही आचरण करना, संवरकरि कहा प्रयोजन है? इस शंकाकूं निराकरण करता कहे हैं ॥ गाथा-

तवसा चेव ण मोक्खो । संवरहीणस्स होइ जिणवयणे ॥
ण हु सोत्ते पविसंते । किसिणं परिसुस्सदि तलायं ॥ ५२ ॥

अर्थ— जिनेंद्रका परमागममें भगवान् ऐसैं कह्या है, संवररहित पुरुषकै तपकरिकैही मोक्ष नहीं होय है । संवरसहित तपश्चरणकरिकैही मोक्ष होय है । जैसैं जिस तलावमें जलका प्रवाह निरंतर आवता होय, सो तलाव समस्त नहीं शुष्क होय है, पहली नवीन जल आवता रुकि जाय, तादि ग्रीष्मके सूर्यका आतापकरि तलाव सूकिही जाय है; तैसैं संवरपूर्वक तपही मोक्षका कारण है ॥ गाथा-

एवं पिणद्धसंवर- । वम्मो सम्मत्तवाहणारूढो ॥
सुदणाणमहाधणुगो । झाणादितवोमयसरेहिं ॥ ५३ ॥
संजमरणभूमीए । कम्मारिचमू पराजिणिय सव्वं ॥
पावदि संजयजोहो । अणोवमं मोक्खरज्जसिरिं ॥ ५४ ॥

अर्थ— ऐसैं पूर्वोक्तप्रकार पहऱ्या है संवररूप बकतर जानै ऐसा, अर सम्यक्त्वरूप

वाहनऊपरि चढ्या, अर श्रुतज्ञानरूप महान् धनुष्यकूं धारण करता, संयमीरूप योद्धा संयमरूप रणभूमीविषैं कर्मरूप वैरीनिकूं ध्यानादि तपोमय बाणनिकरि जीतिकरिकै उपमारहित मोक्षके राज्यकी लक्ष्मीकूं प्राप्त होय है॥ ऐसैं निर्जरानुप्रेक्षा कही ॥

अब धर्मभावनाकूं नवगाथानिमैं कहे हैं ॥ गाथा—

जीवो मुक्खपुरक्कड- । कल्लाणपरंपरस्स जो भागी ॥
भावेणोवज्जदि सो । धम्मं तं तारिसमुदारं ॥ ५५ ॥

अर्थ— जो जीव मोक्षपर्यंत कल्याणनिकी परंपराका भाजन है—पात्र है, सो जीव समस्त सुख देनेमें प्रवीण ऐसा उदार धर्मकूं प्राप्त होय है। जो निर्वाणकै योग्य नही सो उत्तमधर्मकूं नही धारण करिसकै है। जिसके कर्मनिकी स्थिति घटि जाय अर पाप-प्रकृतिनिमैं रस मंद रहि जाय, तिसका भाव धर्मके धारण करनेका होय है॥ गाथा—

धम्मेण होइ पुज्जो । विस्ससणिज्जो पिउ जसस्सी य ॥
सुहसज्झो य णराणं । धम्मो मणणिव्वुदिकरो य ॥ ५६ ॥

अर्थ— पुरुष जगतमें धर्मकरि पूजनेयोग्य होय है। धर्मके प्रभावतैं समस्तजगतकै विश्वास करनेयोग्य होय है, सर्वकै प्रिय होय है, यशस्वी होय है। मनुष्यनिकै धर्म है सो सुखकरि साधनेयोग्य है, मनमें आनंद करनेवाला है॥ गाथा—

जावदियाइं कल्ला- । णाइं माणुस्सदेवलोगे य ॥
आवहइ ताणि सव्वा- । णि मोक्खसोक्खं च वरधम्मो ॥ ५७ ॥

अर्थ— इस मनुष्यलोकमें वा देवलोकमें जितने कल्याण हैं, तिन समस्त कल्याणनिकूं अर निर्वाणके अनंत अविनाशी सुखकूं यो श्रेष्ठधर्म प्राप्त करे है ॥ गाथा—

ते धण्णा जे धम्मं । जिणदिट्ठं सव्वदुक्खणासयरं ॥
पडिवण्णा दढधिदिया । विसुद्धमणसा णिरावेक्खा ॥ ५८ ॥

अर्थ— जे दृढधैर्यके धारण करनेवाले अर उज्ज्वलमनके धारक अर इसलोक परलोकमें ख्याति लाभ पूजादिककी अपेक्षारहित हुये समस्त दुःखनिके नाश करनेवाला अर जिनेंद्रका देख्या ऐसा सत्यार्थधर्मकूं धारण करे हैं; ते जगतमें धन्य हैं ॥ धर्मरहितपुरुषनिकरि तो जगत् भर्‍या है, केवल महात्मापुरुष विरले हैं ते धन्य हैं ॥

विसयाडवीए उम्म- । ग्गविहरिदा सुचिरमिंदियस्सेहिं ॥
जिणदिट्ठणिव्वुदिपहं । धण्णा उंदरिय गच्छंति ॥ ५९ ॥

अर्थ— विषयरूप वनीमैं इंद्रियरूप दुष्ट अश्वनिकरि चिरकालपर्यंत उत्पथमार्गमें विहार करते कोऊ धन्यपुरुष हैं ते इंद्रियरूप दुष्ट घोडेनितैं उतरिकरि जिनेंद्रका दिखाया निर्वाणका मार्गप्रति गमन करे हैं ॥ गाथा—

रागेण य दोसेण य । जगे रमंतम्मि वीदरागम्मि ॥
धम्मम्मि णिरासाद- । म्मि रदी अदिदुल्लहा होइ ॥ १८६० ॥

अर्थ— जगद्वर्ती लोक रागकरि द्वेषकरि क्रीडा करते संते निरास्वाद वीतराग-धर्ममें रति करना अत्यंत दुर्लभ है ॥ भावार्थ— जगतके लोक इंद्रियनिके विषयनिमें रमि रहे हैं, अर कषायनिकरि मलिन होइ रहे हैं, अर विषयनिमैंही सुखरूप आस्वादनकरि रमि रहे हैं, विषयनिके आस्वादनके लोलपी संसारी जीवनिकी विषयरहित वीतरागधर्ममें रति होना अत्यंत दुर्लभ है ॥ गाथा—

सहलं माणुसजम्मं । तस्स हवदि जस्स चरणमणवज्जं ॥
संसारदुक्खकारय- । कम्मागमदारसंरोधं ॥ ६१ ॥

अर्थ— जिस मनुष्यकै, संसारके दुःख करनेवाले कर्म तिनके आगमनका द्वार रोकनेमें समर्थ ऐसा निर्दोष चारित्र होय है, तिसहीका मनुष्यजन्म सफल है ॥ गाथा—

जह जह णिव्वेदुवसम- । वेरग्गदयादमा पवड्ढंति ॥
तह तह अब्भासयरं । णिव्वाणं होइ पुरिसस्स ॥ ६२ ॥

अर्थ— इस मनुष्यकै धर्मानुराग अर कषायनिकी मंदता अर वैराग्यता अर समस्त प्राणीनिकी दया अर इंद्रियनिका दमन जैसैं जैसैं वधत है, तैसैं तैसैं निर्वाण अति-

शयकरि समीपताकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा—

सम्मद्दंसणतुंवं । दुवालसंगारयं जिणिंदाणं ॥
वयणेमियं जगे जय- । इ धम्मचक्कं तवाधारं ॥ ६३ ॥

अर्थ— जिनेंद्रभगवानका धर्मचक्र जगतमें जयवंत प्रवर्ते है। कैसाक है धर्मचक्र? जाकै सम्यग्दर्शनरूप मध्यका तुंव है, अर आचारांगादिक द्वादश अंगही जाकै आरा हैं, पंचमहाव्रतादिरूप जाकै नेमि है, अर तपरूप जाकै धार है, ऐसा भगवानका धर्मरूप चक्र कर्मरूप वैरीनिकूं जीति परमविजयकूं प्राप्त होय है॥ ऐसें धर्मभावना वर्णन करी॥

अब बोधिदुर्लभभावना अष्टगाथानिमें वर्णन करे हैं ॥ गाथा—

दंसणसुदतवचरणम- । इयम्मि धम्मम्मि दुल्लहा वोही ॥
जीवस्स कम्मसत्त- । स्स संसरंतस्स संसारे ॥ ६४ ॥

अर्थ— संसारविषैं परिभ्रमण करता कर्मनिकरि लिप्त जो जीव, ताकै दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तपरूप धर्मविषैं बोधि जो रत्नत्रयकी परिपूर्णता तथा आराधनासहित मरण होना दुर्लभ है ॥ गाथा—

संसारम्मि अणंते । जीवाणं दुल्लहं मणुस्सत्तं ॥
जुगसमिलासहजोगो । जह लवणजले समुद्दम्मि ॥ ६५ ॥

अर्थ— जैसैं लवणसमुद्रकी पूर्वदिशामैं क्षेप्या जूडा अर पश्चिमदिशाके लवणसमुद्रमें क्षेपी समिला इन दोऊनिका संयोग होना दुर्लभ है; तैसैं अनंतसंसारविषैं जीवनिकै मनुष्यपणा होना दुर्लभ है ॥ गाथा—

असुभपरिणामवहुल- । त्तणं च लोगस्स अदिमहल्लत्तं ॥
जोणिवहुत्तं च कुणदि । सुदुल्लहं माणुसं जोणिं ॥ ६६ ॥

अर्थ— इस लोकमें मिथ्यात्व असंयम कषाय प्रमाद इत्यादिक अशुभपरिणामनिका बहुलपणा है--मिथ्यात्व असंयमादिक भाव निरंतर बहुतवार बहुत प्रवर्तत हैं। अर मनुष्यविना अन्यजीवनिका बहुतपणा है। अर योनीका बहुलपणा है--चोऱ्यासी लक्ष योनिस्थान हैं अर तिनमें एकसो साठा निन्याणवे लक्ष कुलकोडी हैं, ते मनुष्य योनीकूं दुर्लभ करे हैं ॥

भावार्थ— यो जीव अनंतानंत काल तो निगोदहीमैं वस्या है। अर कदाचित् कोई जीव निगोदतैं निकलै तौ पृथ्वीकायमें, जलकायमें, पवनकायमैं तथा अग्निकायमें, तथा प्रत्येकवनस्पतीमैं उत्पन्न होइ बहुरि निगोदमें जाय है। कैसा है निगोद? अनंतकालहूमैं तातैं निकलना कठिन है। अर अनंतानंतकालमें कदाचित् बहुरि निकसे तो फेरि पंचस्थावरनिमें उपजि बहुरि निगोद जाय है! ऐसैं अनंतवार एकेंद्रियमें परिभ्रमण करते

करते त्रसपणा पावना दुर्लभ है! अर कदाचित् त्रसहू होइ, तो वेंद्रीतैं तेंद्रियपना पावना दुर्लभ है! तातैं चौंद्रियपना पावना दुर्लभ है। अनंतवार स्थावरमें अर विकलत्रयमेंही परिभ्रमण करता अनंतकाल व्यतीत करे है, पंचेंद्रियपना पावना अत्यंत दुर्लभ है। अर कदाचित् वहुत भ्रमण करते करते पंचेंद्रियहू होइ, तो सिंह व्याघ्र सर्प ल्याली चीता मत्स्य इत्यादिक दुष्टजीवानिमैं उपजि नरककूं प्राप्त होइ असंख्यात काल दुःख भोगि फेरिहू तिर्यंच होइ फेरि वारंवार निगोदमें विकलत्रयमें वा दुष्टतिर्यंचनिमैं वा नरकमें उत्पन्न होइ होइ अनंतकाल व्यतीत करते करते कदाचित् मनुष्यपर्याय धारे है, जातैं मनुष्यपर्यायका विभागही अति थोडा है॥ गाथा-

देसकुलरूवमारो-। ग्गमाउगं वुद्धिसवणगहणाणि ॥
लध्दे वि माणुसत्ते। ण हुंति सुलभाणि जीवस्स ॥ ६७ ॥

अर्थ— अर जो कदाचित् मनुष्यपणा होय तौ उत्तमदेशमें उपजना दुर्लभ है। अनेकपापरूप धर्मरहित मूढनिकरि व्याप्त देशमें उपजि मनुष्यजन्मकूं वृथा ठोरकीनांई व्यतीत करे है। अर जो उत्तमदेशमेंहू उपजै तो उत्तमकुलमें उपजना अतिदुर्लभ है। हीन नीच मांसभक्षी मद्यपानी अनर्थके करनेवाले वा नीचजीविकाके करनेवाले वा चांडाल कलाल लुहार धोबी नीलगर इत्यादिकनिके कुलमें उपज्या तो देशादिक पावनाहू वृथा

है। अर जो उत्तमकुलमेंहू उपजै तो सुंदररूप नयन नासिका कर्णादिक इंद्रिय अर हस्तपादादिक अंग अर अंगुल्यादिक उपांग इनकी हीनाधिकतारहित जगतकै आदरनेयोग्य सुंदररूप पावना दुर्लभ है। अर देशकुल रूपादिकभी पावै अर रोगसहित शरीर पाय तो समस्त पावना वृथा है। रात्रिंदिन हायहाय करता वेदनाजनित आर्तध्यानकूं प्राप्त होइ दुर्गति जाय है। अर नीरोग शरीरभी कदाचित् पावै तो दीर्घायु होना दुर्लभ है। जातैं देश कुल रूप आरोग्यादिक समस्तसामग्री पायकरिकैंहू कोऊ गर्भहीमें मरण करै है! कोऊ एकदिन, दोय दिन, महिना, दोय महिना, बरस, दो बरस, पांच बरस, वीस बरस इत्यादिक अल्प आयु पायकरिकैं मरण करे है, तातैं दीर्घायु पावना अतिदुर्लभ है। अर दीर्घायुभी पावै तो उज्वलबुद्धि पावना दुर्लभ है। अर बुद्धिभी पावै तो संसारके विषयकषायनिमैं रचे है। धर्मश्रवण करना दुर्लभ है। अर धर्मश्रवण करे तो ग्रहण होना दुर्लभ है। तातैं मनुष्यपणा पायेभी उत्तमदेश, उत्तमकुल, रूप, आरोग्य, दीर्घायु, उज्वलबुद्धि, धर्मश्रवण धर्मग्रहण होना अतिदुर्लभ है ॥ गाथा—

लद्धेसु वि तेसु पुणो। बोधी जिणसासणम्मि ण हु सुलहा ॥
कुपधाकुलो य लोगो। जं बलिया रागदोसा य ॥ ६८ ॥

अर्थ— बहुरि देशकुलादिक प्राप्त होतेहू जिनशासनमें बोधि जे दीक्षाके सन्मुखबुद्धि

पावना दुर्लभ है। जातैं रागद्वेष बडे बलवान् हैं। इनके उदयतैं लोक कुमार्गमें आकुल भये प्रवर्ते हैं, रत्नत्रयमार्गमें चारित्रमोहके उदयतैं प्रवर्तन करना दुर्लभ है॥ गाथा–

इय दुल्लहाए वोही-। ए जो पमाइज्ज कह वि लद्धाए ॥
सो उल्लट्टइ दुक्खे-। ण रदणगिरिसिहरमारुहिय ॥ ६९ ॥

अर्थ— ऐसैं बोधि जो रत्नत्रय ताका प्राप्त होना दुर्लभ है अर कदाचित् बोधिकूं प्राप्त होइकरिकै प्रमादी होइ जो बोधितैं छूटे है, सो रत्नगिरिके शिखर चढिकरिकै अर प्रमादी हुवा दुःखकरि नीचे पडे है॥ गाथा–

फिडिदा संति य वोधी। ण य सुलहा होइ संसरंतस्स ॥
पडिदं समुद्दमज्झे। रदणं व तमंधयारम्मि ॥ १८७० ॥

अर्थ— जैसैं अंधकारके अवसरविषैं समुद्रमें पटक्या रत्नका पावना दुर्लभ है; तैसैं संसारमें परिभ्रमण करते जीवकै, नष्ट हुवा बोधि जो रत्नत्रय ताका फिरि पावना दुर्लभ है!

ते धण्णा जे जिणवर-। दिट्ठे धम्मम्मि होंति संवुद्धा ॥
जे य पवण्णा धम्मं। भावेण उवट्ठिदमदीया ॥ ७१ ॥

अर्थ— जे जिनवरकरि देखे धर्ममें प्रबुद्ध होय हैं, ते धन्य हैं। बहुरि जे उद्यमरूप भये भावनिकरि धर्मकूं प्राप्त होय हैं, ते धन्य हैं। ऐसैं बोधिदुर्लभभावना नवगाथानिमैं

वर्णन करी ॥ अब धर्मध्यानके प्रकरणमें आया द्वादशभावनाका स्वरूप वर्णन करी अब प्रकरणकूं समेटे हैं ॥ गाथा–

इयमालंवणमणुपे- । हाउ धम्मस्स होंति झाणस्स ॥
झायंतो ण विणस्सदि । झाणे आलंवणेहि मुणी ॥ ७२ ॥

अर्थ— ये बारह अनुप्रेक्षा धर्मध्यानका आलंबन हैं। इन भावनानिका आलंबन करिकै ध्यान करता मुनि ध्यानके संबंधमें नहीं विनसे है, ध्यानकी शुद्धता होय है ॥ अब धर्मध्यानके ध्याताके औरहू आलंबन कहे हैं ॥ गाथा–

आलंवणं च वायण- । पुच्छणपरिवट्टणाणुपेहाउ ॥
धम्मस्स तेण अविरु- । द्धाउ सव्वाणुपेहाउ ॥ ७३ ॥

अर्थ— जातैं निर्दोषग्रंथका वा अर्थका वा ग्रंथ अर्थ दोऊनिका योग्यपुरुषनिकूं पढावना–शिक्षा करना वा आप पढना, सो वाचना है। बहुरि अपने संशयके दूरि करनेके अर्थि वा तत्वका दृढनिश्चयके अर्थि विनयपूर्वक बहुज्ञानीनिकूं पूछना, सो पृच्छना है। बहुरि आगमतैं वा बहुज्ञानीनितैं जान्या जो अर्थ ताका मनकरि निरंतर अभ्यास, सो अनुप्रेक्षा है। बहुरि पीछला शीख्या ग्रंथका शुद्ध पाठ करना–ग्रंथ अर्थ दोऊनिकी समालि करनी, सो परिवर्तन है ॥ सो वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा,

परिवर्तन इनि च्यारि प्रकारकी स्वाध्यायतैं बुद्धि तो अतिशयरूप होइ है, अर प्रशंसायोग्य उज्वलपरिणाम होय है, अर सर्वोत्कृष्ट धर्मानुराग होय है, संसार देह भोगनितैं विरक्तता होय है, तपकी वृद्धि होय है। तातैं समस्त द्वादश अनुप्रेक्षा धर्मध्यानका निर्दोष अबाध आलंबन है, तातैं धर्मध्यानीकै द्वादश भावनाका अवलंबन श्रेष्ठ है ॥

आलंवणेहि भरिदो। लोगो झाइदुमणस्स खवयस्स ॥
जं जं मणसा पेच्छइ। तं तं आलंवणं हवइ ॥ ७४ ॥

अर्थ— ध्यान करनेका है मन जाका ऐसा क्षपककै समस्त लोक ध्यानके आलंबननिकरि भऱ्या है। वीतरागी हुवा जिस जिस वस्तूकूं देखे है, सो सो वस्तु ध्यानका आलंबन है। जातैं ध्यान करिये है, सो समस्त विपयकपायकूं निग्रह करि परम साम्यभावके प्राप्त होनेकूं करे है। अर वीतरागी मुनिकै समस्त पदार्थनिमैं साम्यभाव प्रकट भया, तातैं वीतरागी मुनिनिकै समस्तपदार्थही ध्यानके अवलंबन है ॥ गाथा—

इच्चेवमदिक्कंतो। धम्मज्झाणं जदा हवइ खवउ ॥
सुक्कज्झाणं झायदि। तत्तो सुविसुद्धलेसाउ ॥ ७५ ॥

अर्थ— जिस अवसरविषैं वीतरागी क्षपक इसप्रकार धर्मध्यान वर्णन कीया तिसकूं उल्लंघन करै तदि लेश्याकी उज्वलताकूं प्राप्त भया संता शुक्लध्यानकूं ध्यावत है ॥ ऐसैं

एकसो सड़सठि गाथानिमैं धर्मध्यानका वर्णन कीया ॥ अब बारह गाथानिमैं शुक्ल-ध्यानका वर्णन करे हैं ॥ गाथा–

झाणं पुधत्तसविय- । क्कसवीचारं हवे पढमसुक्कं ॥
सवियक्के गत्तावी- । चारं झाणं विदियसुक्कं ॥ ७६ ॥
सुहुमकिरियं तु तदियं । सुक्कज्झाणं जिणेहि पण्णत्तं ॥
बिंति चउत्थं सुक्कं । जिणा समुच्छिण्णकिरियं तु ॥ ७७ ॥

अर्थ— पहला ध्यान तो पृथक्त्ववितर्कवीचार प्रथम शुक्लध्यान है । एकत्ववितर्क अवीचार दूजा शुक्लध्यान है । सूक्ष्मक्रिय नामा तीसरा शुक्लध्यान है । समुच्छिन्नक्रिय नामा चोथा शुक्लध्यान है ॥ अब पृथक्त्वसवितर्क सवीचार नाम प्रथमध्यानकूं तीन गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा–

दव्वाइ अणेयाइं । तीहि वि जोगेहि जेण झायंति ॥
उवसंतमोहणिज्जा । तेण पुधत्तात्ति तं भणियं ॥ ७८ ॥

अर्थ— जातैं जिनकै मोहका उपशम होगया ते साधु अनेकद्रव्यनिमैं मनवचनका-यकरिकैं ध्यावत हैं, तिस कारणकरि तिस प्रथमध्यानकूं पृथक्त्व कह्या है । पृथक्त्व नाम नानाका है—अनेकका है । सो नानाप्रकारके योगनिकरि अनेक अर्थनिकूं

ध्यावै, तातैं तो पृथक्त्व कहिये हैं ॥ गाथा–

जह्मा सुदं वियक्कं । जह्मा पुव्वगदअत्थकुसलो य ॥
झायदि झाणं एदं । सविदक्कं तेण तं झाणं ॥ ७९ ॥

अर्थ— जातैं वितर्क नाम श्रुतका है। जातैं पूर्वगत अर्थमें कुशल होइ इस ध्यानकूं ध्यावै, तातैं इस ध्यानकूं सवितर्क कहिये हैं। पूर्वनिके अर्थका जाननेवालेकै आदिके दोय शुक्लध्यान होइये हैं ॥ गाथा–

अत्थाण वंजणाण य । जोगाण य संकमो हु वीचारो ॥
तस्स य भावेण तयं । सुत्ते उत्तं सवीचारं ॥ १८८० ॥

अर्थ— जातैं भावनिकरि अर्थनिका पलटना तथा अक्षरनिका पलटना तथा मनवचनकायके योगनिका पलटना, ताकूं वीचार कहिये हैं। तातैं सूत्रविषैं प्रथमशुक्लध्यानकूं सवीचार कहिये हैं। जातैं अनेकद्रव्यनिनैं अनेकयोगनिकरि ध्यावै, तातैं याकूं पृथक्त्व कहिये। अर वितर्क नाम श्रुतका है, श्रुतके अर्थसहित जो ध्यान, सो सवितर्क है। अर इस ध्यानमें अर्थ पलटे है, शब्द पलटे है, योग पलटे है, यातैं याकूं सवीचार कहिये हैं। तातैं पहला शुक्लध्यानकूं पृथक्त्ववितर्कविचार कहिये हैं ॥ ऐसैं प्रथमशुक्लध्यानका स्वरूप कह्या ॥ अब एकत्ववितर्क अवीचार नामा द्वितीय

शुक्लध्यानकूं तीन गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

जेणेगमेव दव्वं। जोगेणेगेण अण्णदरगेण ॥ खीणकसाउं झायदि।
तेणेगत्तं तयं भणियं ॥ ८१ जह्मा सुदं वितक्कं। जह्मा पुव्वगदअत्थकु-
सलो य ॥ झायदि झाणं एयं। सवितक्कं तेण तं झाणं ॥ ८२ ॥ अत्थाण
वंजणाण य। जोगाण य संकमो हु वीचारो ॥ तस्स अभावेण तयं।
झाणं अविचारमिदि वुत्तं ॥ ८३ ॥

अर्थ— तीन योगनिमैंतैं एकयोगकरिकै एकद्रव्यकूं क्षीणकषाय जो समस्त मोहकर्मका नाश करि क्षीणकषाय नाम बारमा गुणस्थानका धारक ध्यावै, तिसकारणकरि इस ध्यानकूं एकत्व कहिये हैं। प्रथमध्यानकीनांई नानाद्रव्यनिका नानायोगनिकरि ध्यावना नाहीं है, इस ध्यानमें एकयोगकरि एकद्रव्यका ध्यावना है, तातैं इसकूं एकत्व कहिये। बहुरि वितर्क नाम श्रुतका है, जातैं पूर्वके अर्थका जाननेवाला इस ध्यानकूं ध्यावे है, तातैं याकूं सवितर्क कहिये हैं। जातैं अर्थनिका व्यंजननिका योगनिका पलटनेकूं वीचार कहिये हैं, इस ध्यानमें अर्थव्यंजनयोगनिका पलटना नाहीं है, तातैं इस ध्यानकूं अवीचार कहिये हैं ॥ भावार्थ— एकद्रव्यकूं एकयोगकरि श्रुतका ज्ञानी शब्द अर्थ योगनिका पलटनेविना ध्यावे है, तातैं एकत्ववितर्क अवी-

चार नामा दूजा शुक्लध्यान कह्या ॥ अब सूक्ष्मक्रिया नामा तीसरा शुक्लध्यानकूं दोय गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

अवितक्कमवीचारं । सुहुमकिरियबंधणं तदियसुक्कं ॥
सुहुमम्मि कायजोगे । भणिदं तं सव्वभावगदं ॥ ८४ ॥
सुहुमम्मि कायजोगे । वट्टंतो केवली तदियसुक्कं ॥
झायदि णिरुंभिदुं जे । सुहुमत्तं कायजोगं पि ॥ ८५ ॥

अर्थ— जिसमें श्रुतज्ञानका अवलंबन नहीं, अर अर्थव्यंजनयोगका पलटना नहीं, सूक्ष्मकाययोगमें समस्तपदार्थनिकूं एकैकाल जानता तिष्ठै, ताकूं सूक्ष्मक्रिय नाम ध्यान कहिये हैं। सूक्ष्मकाययोगमें तिष्ठता सूक्ष्मकाययोगकूं रोकिकरि जो केवली भगवान् निश्चल रहै, सो सूक्ष्मक्रियध्यान तीसरा है ॥ अब समुच्छिन्नक्रिय नाम चौथा ध्यानकूं दोय गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

अवियक्कमवीचारं । अणियट्टिमकिरियं च सीलेसिं ॥
झाणं णिरुध्दजोगं । अपच्छिमं उत्तमं सुक्कं ॥ ८६ ॥
तं पुण णिरुद्धजोगो । सरीरतियणासणं करेमाणो ॥
सव्वण्हू अपडिवादिं । झायदि झाणं चरिमसुक्कं ॥ ८७ ॥

अर्थ— कैसाक है चौथा शुक्लध्यान? अवितर्क कहिये श्रुतका अवलंबनरहित है, बहुरि अवीचार कहिये पदार्थ व्यंजन योग इनिका पलटनेकरि रहित है। जातैं ये दोऊ ध्यान भगवान् केवलीकै आयुका अंतर्मुहूर्त काल अवशेष रहे होइ हैं, तातैं केवलीकै समस्त आवरणके अभावतैं समस्तपदार्थनिका जानना एककालमें प्रकट भया तदि श्रुतका अवलंबन नहीं है, अर अर्थ व्यंजन योगनिका पलटनाभी नहीं है, इनका पलटना तो क्रमवर्ती ज्ञान जिनकै होय तिनकै होय है। बहुरि समस्तकर्मका नाश करेविना नहीं वाहुडे है, तातैं अनिवृत्ति कहिये हैं। बहुरि श्वासोश्वासादिक समस्त मनवचनकायके हलनचलनरहित है, तातैं समुच्छिन्नक्रिय कहो वा अक्रिय कहो। बहुरि समस्तशीलनिका अधिपति जो यथाख्यातचारित्र, ताका सहचारी ध्यान है, तातैं ध्यानकूं शैलेश्य कहिये हैं। बहुरि समस्तयोगनिका निरोधरूप है अर या पाछै और ध्यान नहीं, तातैं याकूं अपश्चिम कहिये हैं। ऐसा सर्वोत्कृष्ट उत्तमध्यान है। सो यो चतुर्थ ध्यान योगनिका अभाव करनेतैं निरुध्दयोग है। अर औदारिक तैजस कार्मण शरीरके नाश करनेवाला है। अर उलटा नहीं आवै तातैं अप्रतिपाति है। सो चौथा शुक्लध्यान सर्वज्ञभगवान ध्यावै है ॥

भावार्थ ऐसा जानना— जो मोहनीयकर्मकी अठाईस प्रकृति हैं। तिनमैं तीनप्रकार

दर्शनमोहनीय अर च्यारिप्रकार अनंतानुबंधी कषाय इन सप्त प्रकृतिनिका अविरत देशविरत प्रमत्त अप्रमत्त इनि च्यारि गुणस्थाननिमैंतैं कोऊ एक गुणस्थानमें नाश करिकै अर क्षायिक सम्यग्दृष्टि होइकरिकै अर आठमें गुणस्थानमें इकईसप्रकार मोहनीयका नाशके अर्थि प्रथमशुक्लध्यानको प्रारंभ करि अर आठमें नवमें दशमें गुणस्थानमें समस्त इकईसप्रकार मोहनीयका नाश करि क्षीणकषायनाम बारमा गुणस्थानमें श्रुतज्ञानतैं एकपदार्थ ग्रहण करि अर योगनिके पलटनेकरि रहित एकत्ववितर्क नाम दूसरा शुक्लध्यानतैं ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतराय इनिका नाशकरि केवलज्ञान उपजावे है ॥

बहुरि भगवान् केवली आयुपर्यंत विहार करि अर जब आयुका अंतर्मुहूर्त अवशेष रहिजाय, तदि जोगनिकी हलनचलन क्रिया रुकै, ताकूं सूक्ष्मक्रियध्यान कहिये है। अर जोगनिका निरोधरूप व्युपरतक्रियनिवृत्ति नाम ध्यान है। जातैं भगवान् केवलीकै समस्तपदार्थ अनंतगुणपर्यायसहित एकसमयमें साक्षात् प्रकट भये, अर अनंतसुखवीर्यादिक प्रकट भये, अब कोऊ पदार्थका ध्यान प्रकट होना रह्या नहीं, जिसका ध्यान करै। परंतु संसारमें ध्यान करनेवालेकै मनवचनकायके जोग तो रुके है अर कर्मनिकी निर्जरा होय है, सो भगवान् केवलीकैहू आयुका अंतर्मुहूर्त बाकी रहिजाय तदि आपैआप जोगनिका तो निरोध होय है अर कर्मनिकी निर्जरा होय है, सो भगवानकै ध्यानके

दोऊ कार्य देखि उपचारतैं ध्यान कह्या है। अर मुख्यपने केवलीकै ध्यावना कुछ रह्या है नही। आयुका अंत होइ तदि योगानिका अभाव होयही अर समस्त अघातिया कर्म झडैही। तातैं ध्यानकासा कार्य देखि ध्यान कह्या है॥ ऐसैं द्वादशगाथानिमैं शुक्लध्यानका वर्णन समास कीया॥ अब ग्यारह गाथानिमैं ध्यानका फल कहे हैं॥ गाथा—

इय सो खवउं झाणं। एयग्गमणो समणिदो सम्मं॥
विउलाए णिज्जराए। वट्टइ गुणसेढिमारूढो॥ ८८॥

अर्थ— ऐसैं एकाग्र है मन जाका ऐसा सम्यग्ध्यानकूं अंगीकार करता जो क्षपक सो गुणश्रेणीकूं आरूढ हुवा प्रचुर निर्जरामैं वर्ते है—अंतर्मुहूर्तपर्यंत समयसमय असंख्यातगुणी कर्मकी निर्जरा करे है॥ अब ध्यानका माहात्म्य वर्णन करे हैं॥ गाथा—

सुचिरं पि संकिलिट्ठं। विहरंतं झाणसंवरविहूणं॥
झाणेण संपुडप्पा। जिणइ य अंतो मुहुत्तेण॥ ८९॥

अर्थ— ध्यान नामा संवरकरि रहित पुरुष किंचित् ऊन कोटिपूर्वपर्यंत क्लेशसहित तपश्चरण करता जिस कर्मकूं जीतें है, तिस कर्मकूं ध्यानकरि संवररूप पुरुष अंतर्मुहूर्तसें जीते है॥ गाथा—

एवं कसायजुध्द-। म्मि होइ खवयस्स आउहं झाणं॥

झाणविहूणो खवउ । रंगे व अणाउहो मल्लो ॥ १८९० ॥

अर्थ— ऐसैं क्षपककै कषायनिके जुद्धमें ध्यान आयुध है, ध्यानरहित क्षपक आयुधरहित है। जैसें रणभूमीमें आयुधरहित मल्ल वैरीके जीतनेकूं समर्थ नहीं होय है; तैसें ध्यानरूप आयुधकरि रहित क्षपक कर्मरूप वैरीके जीतनेकूं समर्थ नहीं होय है ॥

रणभूमीए कवचं । व कसायरणे तगं हवे कवयं ॥
जुद्धे व णिरावरणो । झाणेण विणा हवे खवउ ॥ ९१ ॥

अर्थ— जैसें रणभूमीमें योद्धाकी रक्षा वकतरके पहरनेतें है; तैसें कषायनिके रण-विषैं क्षपककै ध्यान है सो वकतर है। जैसें रणभूमीविषैं वकतरादिक आवरणरहित जोद्धा है; तैसें ध्यानरहित क्षपक है ॥ गाथा—

झाणं करेइ खवय- । स्सोवट्टंभं खु हीणचेट्ठस्स ॥
थेरस्स जहा जंत- । स्स कुणदि जट्ठी उवट्ठंभं ॥ ९२ ॥

अर्थ— जैसें गमन करता वृद्धपुरुषके लाठी अवलंबनरूप है—गिरतेकूं थांबे है; तैसें हीनचेष्टाका धारक क्षपककै ध्यान अवलंबनरूप है, रत्नत्रयतें चिगने नहीं देय है ॥

मल्लस्स णेहपाणं । व कुणइ खवयस्स दढवलं झाणं ॥
झाणविहीणो खवउ । रंगे व अपोसिउ मल्लो ॥ ९३ ॥

अर्थ— जैसैं मल्लकै दुग्ध घृतादिकका पीवना दृढ बल करे है; तैसैं क्षपककै यो ध्यान बलकी दृढता करे है। जैसैं रणभूमीमैं विना पोष्या मल्ल वैरीनिकूं नही जीति सके है; तैसैं संन्यासका अवसरमें ध्यानरहित क्षपक कर्मवैरीनिकूं नही जीति सके है॥

वयरं रदणेसु जहा। गोसीसं चंदणं व गंधेसु॥
वेरुलियं व मणीणं। तह झाणं होइ खवयस्स॥ ९४॥

अर्थ— जैसैं रत्ननिमैं हीरा प्रधान है, अर सुगंधद्रव्यनिमैं गोसीर चंदन प्रधान है, अर मणीनिमैं वैडूर्यमणि प्रधान है; तैसैं क्षपककै समस्त व्रततपनिमैं ध्यान प्रधान है॥

झाणं किलेससावद-। रक्खा रक्खा व सावदभयम्मि॥
झाणं किलेसवसणे। मित्तं मित्तं व वसणम्मि॥ ९५॥

अर्थ— जैसैं दुष्ट तिर्यंचानिके भयमैं कोऊ योद्धा रक्षक होय है; तैसैं क्लेशरूप दुष्ट-तिर्यंचनिके भयमैं ध्यान रक्षक है। जैसैं क्लेशव्यसनकष्टमैं जो अपना मित्र होइ, सोही सहायी है; तैसैं कष्टनिमैं व्यसननिमैं ध्यानही मित्र है॥ गाथा-

झाणं कसायवादे। गब्भघरं मारुए व गब्भहरं॥
झाणं कसायउण्हे। छाही छाही व उण्हम्मि॥ ९६॥

अर्थ— जैसैं प्रबल पवन चलती होय तहां कोई अनेक गृहनिके बीचि गर्भगृहमें

जाय बैठ्या पुरुषकै पवनकी बाधा नही होय है; तैसैं कषायरूप प्रबल पवनतैं ध्यानरूप गर्भगृहमें तिष्ठता पुरुषकै बाधा नही होय है ॥ जैसैं ग्रीष्मकी आतापमें छाया आतापनिवारण करे है; तैसैं कषायनिकी आतापकूं ध्यान छायाकीनांई निवारण करे है ॥

झाणं कसायडाहे । होदि वरदहो व दाहम्मि ॥
झाणं कसायसीदे । अग्गी अग्गी व सीदम्मि ॥ ९७ ॥

अर्थ— जैसैं ग्रीष्मकी दाहमें श्रेष्ठ जलका भऱ्या हुवा दह दाहकूं दूरि करे है; तैसैं कषायनिके दाहके विषें ध्यान आताप हरनेकूं दहसमान हैं ॥ तथा जैसैं शीतजानितवेदनामें अग्नि उपकारक है; तैसैं कषायरूप शीतके दूरि करनेकूं ध्यान अग्निसमान है ॥ गाथा–

झाणं कसायपरच- । क्कभए बलवाहणड्ढुउं राया ॥
परचक्कभए बलवा- । हणड्ढुउं होइ जह राया ॥ ९८ ॥

अर्थ— जैसैं परचक्रका भयकूं होतैं बलवान् वाहनपरि चढ्या राजा रक्षा करे है; तैसैं कषायरूप परचक्रका भय होतैं बलवान् साम्यभावरूप वाहनउपरि चढ्या ध्यान रक्षा करे है ॥ गाथा–

झाणं कसायरोगे- । सु होइ विज्जो तिगिंछदो कुसलो ॥
रोगेसु जहा विज्जो । पुरिसस्स तिगिंछउं कुसलो ॥ ९९ ॥

अर्थ— जैसैं रोग होतै पुरुषकै रोगका इलाज करि नीरोग करनेवाला प्रवीण वैद्य है; तैसैं कषायरोगकूं होतै रोगकू नाश करनेकूं समर्थ यो ध्यान प्रवीण वैद्य है ॥ गाथा

झाणं विसयछुहाए। य होइ अछुहाइ अण्णं वा ॥
झाणं विसयतिसाए। उदयं उदयं व तण्हाए ॥ १९०० ॥

अर्थ— जैसैं क्षुधावेदनाकी पीडाकूं अन्न दूरि करे है; तैसैं विषयनिकी चाहनारूप क्षुधावेदनीके मेटनेकूं ध्यान समर्थ है ॥ जैसैं तृषाकी पीडा मेटनेकूं शीतल मिष्टजल समर्थ है; तैसैं विषयनिकी तृष्णा मेटनेकूं ध्यान समर्थ है ॥ गाथा—

इय झायंतो खवउ। जइया परिहीणवायिउ होइ ॥
आराधणाइं तइया। इमाणि लिंगाणि दंसेइ ॥ १ ॥

अर्थ— जैसैं ध्यानकूं करता क्षपकमुनि जिस अवसरमें वचनरहित होजाय रोगादिकके वशतैं जुबान थकि जाय, तो तिस अवसरमें आपके अंतःकरणमें च्यारि आराधनामैं सावधानीके येते चिह्न वैयावृत्य करनेवालेनिकूं दिखावै, जिन चिह्ननितैं अपना मांहिला अभिप्राय परिणाम ऊपरले टहल करनेवालेनिकै प्रकट होजाय ॥ गाथा—

हुंकारंजलिभमुहं-। गुलिहि अच्छीहि वीरमुट्ठीहिं ॥
सिरचालणेण य तहा। सण्णं दावेइ सो खवउ ॥ २ ॥

अर्थ— हुंकार करनेकरि, अंजुली जोंडनेकरि, भ्रकुटीका क्षेपण करिकै पंच अंगुलीनिकूं दिखावनेकरिकै, उपदेशदाताप्रति प्रसन्नदृष्टिकरि देखनेकरिकै, वीरकीनाई मुष्टीके बंधनकरिकै, मस्तकके चलावनेकरिकै इत्यादि अनेक संज्ञा–समस्या करिकैं अपना आराधनामैं दृढ अभिप्रायकूं दिखावै, अपना धैर्य दिखावै, धर्ममें सावधानी दिखावै, वेदनाका विजयकूं तथा निर्भयताकूं तथा स्वरूपकी सावधानीकूं तथा संजममें दृढता उपदेशकी ग्रहणताकूं दिखावै। जुबान थकि जाय बोलनेका सामर्थ्य घटि जाय, तोहू अपना धर्ममें लीनपणा समस्याकरि प्रकट दिखावै ॥ गाथा—

तो पडिचरया खवय- । स्स दिंति आराधणाए उवउंगं ॥
जाणंति सुदरहस्सा । कदसण्णा कायखवएण ॥ ३ ॥

अर्थ— क्षपक संज्ञाकरि अपना संकेत जिनकूं जणाया ऐसे वैयावृत्य करनेवाले मुनि हैं ते क्षपकका आराधनामैं उपयोग दीया जाणत हैं; जो, हमारा परिश्रम सफल है, यह क्षपक धर्ममें सावधान है, परिणाम कायर नही है, उज्वल है, ऐसैं संज्ञा समस्यासूं जाणत हैं ॥ ऐसैं ध्यानका फलमहिमा सोलह गाथानिमैं वर्णन कीया ॥

इति भगवती आराधना नाम ग्रंथविषैं सविचारभक्तप्रत्याख्यान मरणके चालीस अधिकारनिविषैं ध्यान नामा सैंतीसमां अधिकार दोयसै सात गाथानिमैं समाप्त कीया ॥

३७ ॥ अब अष्टादश गाथानिमैं लेश्या नामा अडतीसमां अधिकार वर्णन करे हैं ॥

इय समभावमुवगदो । तह झायंतो पसत्थज्झाणं च ॥
लेस्साहि विसुज्झंतो । गुणसेढिं सो समारुहइ ॥ ४ ॥

अर्थ— ऐसैं समभावकूं प्राप्त भया अर प्रशस्तध्यानकूं ध्यावता जो मुनि, सो लेश्याकी उज्वलताकूं प्राप्त होय है, सो गुणनिकी श्रेणीकूं चढे है ॥ गाथा—

जह वाहिरलेस्साउ । किण्हादीउ हवंति पुरिसस्स ॥
अब्भंतरलेस्साउ । तह किण्हादी य पुरिसस्स ॥ ५ ॥

अर्थ— जैसैं पुरुषकै बाह्यलेश्या कृष्णादिक होय हैं; तैसैं कृष्णादिकलेश्या पुरुषकै अभ्यंतर होय हैं । बाह्यलेश्या तो शरीरका रंग, सो आत्माका उपकारक अपकारक नहीं है । अर कषायनिकरि मन-वचन-कायकी परिणतिके विषैं रंग सो अभ्यंतरलेश्या है ॥

किण्हा णीला काउ । तिण्णि लिस्साउ वि अप्पसत्थाउ ॥
पयहइ विरायकरणो । संवेगमणुत्तरं पत्तो ॥ ६ ॥

अर्थ— कृष्ण नील कापोत ये तीन लेश्या अप्रशस्त हैं बुरी हैं । जिसकै वीतरागपरिणाम है अर सर्वोत्कृष्ट धर्मानुरागकूं जो प्राप्त भया है, सो पुरुष इनि तीन लेश्यानिका त्याग करै ॥ गाथा—

तेऊ पउमा सुक्का । लेस्साउ तिण्णि वि दु पसत्थाउ ॥
पडिवज्जेइ य कमसो । संविग्गमणुत्तरं पत्तो ॥ ७ ॥

अर्थ— तेजोलेश्या पद्मलेश्या शुक्ललेश्या ये तीन लेश्या प्रशस्त हैं–सराहनेयोग्य हैं। जो उत्कृष्ट धर्मानुरागकूं प्राप्त होइ, सो इनि तीन लेश्यानिकूं क्रमकरि प्राप्त होय है ॥ अब इहां प्रकरण पाय लेश्यानिका लक्षणादिक संक्षेपतैं श्रीगोमटसार नाम सिद्धांतग्रंथतैं लिखिये है। अर विशेष जाननेका इच्छक होय ते सोलह अधिकारकरि लेश्याका वर्णन श्रीगोमटसारतैं जानहु ॥

ऐसा संक्षेप है– जो संसारी आत्माकी परिणति है, सो मन-वचन-कायके योगनिके द्वार है। अर कषायनिकरि लिप्त जे योगनिकी प्रवृत्ति, ते लेश्या जाननी। इन लेश्यानिकरिही प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध, ऐसैं च्यारि प्रकारका बंध होय है। कषायनिका उदयस्थान असंख्यात लोकमात्र हैं, तिनकै असंख्यातका भाग दीये बहुभागप्रमाण तो अशुभलेश्याके स्थान हैं अर एकभागप्रमाण शुभलेश्याके स्थान है। इन छहू लेश्यावालेनिके जे कार्य हैं, तिनका ऐसा दृष्टांत जानना– षट् लेश्याके धारक छह पुरुष कोऊ देशांतरकूं गमन करै थे, सो मार्ग भूलि वनमें प्रवेश कीया, तिस वनमें फलनिका भर्‍या एक आम्रका वृक्ष देख्या, देखिकरि वृक्षके फल-

भक्षणका उपाय अपनी अपनी लेश्याके अनुसार चिंतवन करते भए। कृष्णलेश्याके
धारककै तो ऐसा चिंतवन भया– जो, इस वृक्षकूं मूल पेडमैंतैं काटि जमीमें पटकि
फलभक्षण करना। अर नीललेश्याका धारककै ऐसा परिणाम भया– जो, पेडकूं तो
नही काटना अर डाहलेनिकूं काटि फलभक्षण करना। अर कपोत लेश्यावालेकै ऐसा
परिणाम भया– जो, इसकी डाहली काटि फलभक्षण करना। अर पीतलेश्यावालेकै
ऐसा परिणाम भया– जो फलसहित है सो डालीया काटि फलभक्षण करना। अर
पद्मलेश्याके धारककै ऐसा परिणाम भया– जो अन्यवृक्षकूं काहेकू बाधा करै? जो
फल खाइवेमें आवेगा, सोही तोडना। अर शुक्ललेश्याके धारककै ऐसा परिणाम भया–
जो, भूमीऊपरि स्वतैही पडे फलभक्षण करना–वृक्षकूं बाधा नही होइ तैसें मोकूं फलभ-
क्षण करना॥ ऐसें छह लेश्याके कर्म कहे॥ अब छह लेश्याके लक्षण कहे हैं॥

जिसकै ऐसा परिणाम होय, ताकै कृष्णलेश्या है। तीव्र क्रोधी होय, एकवार वैर
हुवा पाछै कोटि दानसन्मान करतेहू वैर नही छांडे है, भंडवचन बोलनेका स्वभाव
होय, युद्ध करनेका स्वभाव होय, धर्मदयारहित होय, दुष्ट होय, कोऊ उपायकरिहू
जो वश नही होय, जो भोजन धन स्थानादिक देतैंहू आदर सत्कार नम्रतादिक कर-
तैंहू मिष्टवचन कहतैंहू यशकीर्तन करतेहू वश नही होय–अधिकाधिक विपरीतता

धारै ये लक्षण कृष्णलेश्याके धारकके कहे। औरहू कृष्णलेश्याके धारकके लक्षण कहे हैं- मंद कहिये स्वच्छंद होय, वा क्रियामैं मंद होय, बुद्धिहीन होय, वर्तमानकार्यकूं नही जानता होय, विज्ञान जो हित अहितके ज्ञानरहित होय, विषयनिमैं लंपटी होय, मानी अहंकारी होय, मायाचारी होय, करनयोग्यमें आलसी होय ये कृष्णलेश्याके धारकके लक्षण कहे॥

अब नीललेश्याके धारकके लक्षण कहे हैं बहुत निद्रा जाकै होय, मायाचारकी जाकै आधिक्यता होय, धनधान्यादिकमैं जाकै तीव्र वांछा होय ये नीललेश्याके धारक जीवके लक्षण कहे·

अब कापोतलेश्याके धारकके लक्षण कहे हैं- अन्यमैं कोप करै, बहुतप्रकार परकी निंदा करै, परकूं दूषण लगावै, शोक बहुत करै, भय बहुत राखै, परकूं नही सहि सकै, परका तिरस्कार करै, अपनी बहुतप्रकार प्रशंसा करै, अन्य कोईका विश्वास नही करै, परकूं आपसमान मानै-जाणै, कोई आपकी बडाई करै तिसऊपरि संतुष्ट होय, आपकै अन्यकै हानि वृद्धि होती नही जानै, रणविषै अपना मरण चाहै, अपनी स्तुति करै तिसकूं बहुत धन देवै, करनेयोग्य नही करनेयोग्यका विचार नही करै ये कापोतलेश्याके धारक जीवके लक्षण होत हैं॥

अब तेजोलेश्याके लक्षण कहे हैं- जो करनेयोग्य नही करनेयोग्यकूं जानै, तथा सेवनेयोग्य नही सेवनेयोग्यकूं जानै, समस्तजीवनिमैं समदर्शी होय, दयाविषै वा दानविषै प्री-

तियुक्त होय, मन-वचन-कायमें कोमलता होय ये तेजोलेश्यावान् जीवके लक्षण होत हैं।

अब पद्मलेश्याके लक्षण कहे हैं- जो त्यागी होय, दानी होय, भद्रपरिणामी होय, शुभकार्य करनेका जाका स्वभाव होय, शुभकार्य करनेमें उद्यमी होय, कष्ट आवै वा उपद्रव आवै तिनकूं समभावतैं सहनेका जाका स्वभाव होय, मुनिजन तथा गुरुजनकी पूजा प्रशंसा करनेमें जाकै प्रीति होय ये पद्मलेश्यावान् जीवके लक्षण हैं॥

अब शुक्ललेश्याके लक्षण कहे हैं- जो पक्षपात नही करै, आगामी चाहरूप निदान नही करै, समस्तलोकनिमैं समभावरूप होय, रागद्वेषरहित होय, पुत्र मित्र कलत्रादिकनिमैं स्नेहरहित होय सो शुक्ललेश्याके धारक जीवके लक्षण हैं॥ ऐसैं षट्लेश्या धारकनिके लक्षण कहे॥ औरहू गत्यादिक समस्त लेश्यानिकरिही बंधे हैं, जातैं कषायाधिकारमें कषायनिकी शक्तीके च्यारि स्थान कहे हैं॥

प्रथम तीव्रतर स्थान तो पाषाणकी लीकसमान है। दूजा पृथ्वीके भेदसमान तीव्र स्थान है। तीजा धूलीमैं भेदसमान मंद स्थान है। चौथा जलमें लीकसमान मंदतर स्थान है॥ ऐसैं तीव्रतर, तीव्र, मंद, मंदतर कषायनिके स्थान हैं। ते ये कषायनिके शक्तिस्थान असंख्यातलोकमात्र हैं। तिनकै असंख्यातका भाग दीजै, तहां बहुभाग-प्रमाण तो कषायनिके तीव्रतर शक्तिस्थान हैं। अर तिस एक भागकै असंख्यातका

भाग दीजे, तिनमें वहुभागप्रमाण कषायनिके तीव्र शक्तिस्थान हैं। वहुरि जो एक भाग रह्या, तिसकै फेरि असंख्यातका भाग दीजे, तिनमें वहुभागप्रमाण कषायनिके मंद शक्तिस्थान हैं। वहुरि जो एक भाग रह्या, तिसप्रमाण कषायनिके मंदतर स्थान हैं॥ तिनमैं जे कषायनिके पाषाणकी लीकसमान तीव्रतर स्थान हैं, तिनमैं तो एक कृष्णलेश्याही है। तिस कृष्णलेश्याके असंख्यात लोकप्रमाण परिणामनिके असंख्यातका भाग दीजिये, तिनमें वहुभागमात्र कृष्णलेश्याके परिणामनिमैं आयु नही वंधे है अर एक भागप्रमाण परिणामनिमैं जो आयु वंधै, तो एक नरकायु वंधै, और नही वंधै॥

भावार्थ— तीव्रतर कषायके स्थाननिविषै एक कृष्णलेश्याही है। तिस कृष्णलेश्याके वहुतस्थाननिमैं तो आयु वंधै नही अर अल्पस्थाननिमैं आयु वंधै तो एक नरकहीकी वंधै॥ वहुरि पृथ्वीभेदसमान कषायनिके तीव्र स्थान तिनमें केते स्थान तो केवल एक कृष्णलेश्याहीके हैं, तिनमें नरक आयुही वंधे है। अर केतेक कृष्ण नील दोय लेश्याके स्थान कहे, तिनमैंभी एक नरकका आयुही वंधे है। अर कितने कृष्ण नील कापोत इनि तीन लेश्याके स्थान हैं तिनमें कितने स्थान नरक आयुके वंधनेयोग्य हैं, कितने नरक तिर्यंच दोय आयुके वंधनके योग्य हैं, कितने स्थानक नरक तिर्यंच मनुष्य तीन आयुके वंधनके योग्य हैं॥ वहुरि इस भूभेदसमान

तीव्र कषायहीके शक्तिस्थान कृष्णादिक च्यारि लेश्याके योग्य हैं। तिनमैं नरक तिर्यंच मनुष्य देव च्यार्‍यूं आयूके बंधनेकी योग्यता है। कितने कृष्णादिक पंच-लेश्याकै योग्य स्थान हैं, तिनमैंहू च्यार्‍यूं आयु बंधनेकी योग्यता है। कितने कृष्णादिक छहू लेश्यायोग्य स्थान हैं, तिनमैंहू च्यार्‍यूं आयुके बंधनेकी योग्यता है॥ ऐसैं तीव्र भूभेदसमान कषायके शक्तिस्थानानिमें लेश्याके स्थान छह अर आयुबंधके स्थान आठ कहे॥

धूलीभेदसमान कषायनिके मंदस्थान तिनमैं कितने शक्तिस्थान तो कृष्णादिक छह लेश्याके जोग्य हैं, तिन छै लेश्याके योग्य परिणामनिमैं केते परिणाम तो नरकादिक च्यारी आयूके बंधनके योग्य हैं। कितने परिणाम नरकविना तीन आयुके बंधनके योग्य हैं। कितने परिणाम मनुष्य आयु अर देव आयु दोय आयुके बंधनके योग्य हैं, कितने परिणाम देव आयुके बंधनके योग्य हैं॥ बहुरि कितने परिणाम नीलादिक पंच लेश्याके योग्य हैं, तिनमैं एक देव आयुहीका बंध है। कितने कपोतादिक च्यारि लेश्याके परिणाम हैं, तिनमें एक देव आयुहीका बंधनेकी योग्यता है। कितने परिणाम पीतादिक तीन लेश्याके योग्य हैं, तिनमैं कितने परिणामनिमैं तो देव आयुका बंध है, कितनेमैं आयुबंध नही है। बहुरि

कितने परिणाम पद्मादि दोय लेश्याके योग्य हैं, तिनमैं आयुका बंध नही है। कितने परिणाम शुक्ललेश्याके योग्य हैं, तिनमैंभी आयुबंध नही है ॥ ऐसैं धूलीभेदसमान कषायनिके मंदशक्तीके स्थाननिमैं लेश्याके स्थान छह कहे। अर आयुबंधके स्थानहू छह कहे। अर आयुबंधके अभावके तीन स्थान कहे ॥

बहुरि मंदतर जलरेखासमान कषायनिके शक्तिस्थाननिविषैं एक शुक्ललेश्याही है अर इसमें आयुका बंध नही है ॥ ऐसैं कषायनिके शक्तिस्थान च्यारि कहे, तिनमैं तीव्रतर पाषाणकी लीकसमान कषायनिके असंख्यात स्थाननिमैं एक कृष्णलेश्याही है, तातैं लेश्यास्थान एक है। अर कितने स्थान आयुबंधनकै जोग्य नही। कितने नरकायुकै योग्य हैं। तातैं आयुबंधावबंधस्थान दोय हैं ॥ बहुरि पृथ्वीभेदसमान कषायके तीव्र शक्तिस्थाननिमैं कितने कृष्णलेश्याके, कितने कृष्ण नील दोयके, कितने कृष्णादिक तीनके, कितने कृष्णादिक च्यारिके, कितने कृष्णादिक पांचके, कितने कृष्णादिक छहके स्थान छह भये। अर इसमें आयुबंधके आठ स्थान हैं ॥ केवल कृष्णाके परिणामनिमैं नरकायुका, कृष्णनीलकेमैं नरकायुका, कृष्णनीलकपोतकेमैं नरकायुका तथा नरकतिर्यक् आयुका, नरक तिर्यक् मनुष्य तीन आयुका ऐसैं तीन स्थान हैं। कृष्णादिक च्यारि लेश्याके स्थानमैं च्यारि आयुका एक स्थान है। कृष्णा

दि पंच लेश्याके स्थानमें च्यारि आयुका बंध हैं, कृष्णादि छह लेश्यानिके स्थानमें
च्यारि आयुका एक स्थान है। ऐसे आयुबंधके आठ स्थान कहे ॥

बहुरि धूलीभेदसमान कषायनिके मंद शक्तिस्थाननिमैं कितने कृष्णादि छह लेश्याके,
कितने नीलादि पंच लेश्याके, कितने कपोतादि च्यारि लेश्याके, कितने पीतादि
तीन लेश्याके, कितने पद्मादि दोय लेश्याके, कितने एक शुक्ललेश्याके ऐसे लेश्या-
स्थान छह हैं ॥ बहुरि कृष्णादिक छह लेश्याके स्थानमें आयुबंधके योग्य तीन प्रकार
हैं। कितने च्यारि आयुके बंधके योग्य हैं, कितने नरकविना तीन आयुके बंधके योग्य
हैं, कितने मनुष्य देव दोय आयुके बंधके योग्य हैं ॥ बहुरि नीलादि पंच लेश्याका
स्थानमें एक देवायुका बंध है। कपोतादि च्यारि लेश्याके स्थानमें एक देवायुका बंध
है। पीतादि तीन लेश्याके स्थानविषैं कितनेकमें देवायुका बंध है। कितनेमें
आयुबंध नही है। पद्मादि दोय लेश्याके स्थानमें आयुका बंध नही है। शुक्ललेश्याके
स्थानविषैंहू आयुका बंध नही है। ऐसैं धूलीभेदसमान कषायनिके मंद शक्तिस्थाननिमैं
लेश्याके स्थान तो छह कहे। अर आयुका बंध अबंध स्थान नव कहे। अब जलरे-
खासमान कषायनिके मंदतर शक्तिस्थानमें एक शुक्ललेश्याही है। अर इस मंदतर
शक्तिस्थानकी शुक्ललेश्यामैं आयुबंधकी योग्यता नही है ॥

कषायनिके चत्वारि शक्तिस्थानानि.	चतुर्दशलेश्यास्थान १४	विंशतिरायुबंधाबंधस्थान.
तीव्रतर शिलाभेद समान.	१ कृष्ण.	०
		नरकायु १.
तीव्र भूभेदसमान.	कृष्णादि १.	नरकायु १.
	कृष्णादि २.	नरकायु १.
	कृष्णादि ३.	नरकायु १.
		नरक तिर्यंच २.
		नरक तिर्यंच मनुष्य ३.
	कृष्णादि ४.	सर्व ४.
	कृष्णादि ५.	सर्व ४.
	कृष्णादि ६.	सर्व ४.
मंद धूलीभेदसमान.	कृष्णादि ६.	सर्व ४.
		नरकविना ३.
		मनुष्य देव. २
	नीलादि ५.	देवायु १.
	कपोतादि ४.	देवायु १.
	पीतादि ३.	देवायु १.
		०
मन्दतर जलरेखा-समान.	पद्मादि २.	०
	शुक्ल १.	०
	शुक्ल १.	०

लेश्याके आधीनही गति है ॥ तिनमैं कृष्णादिक तीन लेश्याके जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेदकरि नवप्रकार, तथा शुक्लेश्यादिक शुभलेश्या तीनके जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेदकरि नवप्रकार, बहुरि कापोतलेश्याका उत्कृष्ट अंशतैं आगै तेजोलेश्याका उत्कृष्ट अंशतैं पहली कषायनिका उदयस्थानके विषैं आठ मध्यम अंश हैं, ऐसैं लेश्याके छवीस अंश भये ॥ तहां आयुकर्मके बंधके योग्य आठ मध्यम अंश जानने। ते आठ मध्यम अंश अपकर्ष काल आठ तिनविषैं संभवे हैं। वर्तमान जो भुज्यमान मनुष्य आयु ताकूं अपकर्ष्य अपकर्ष्य कहिये घटाय घटाय बांधै, सो अपकर्ष कहिये है। ताका उदाहरण कहे हैं-

किसी कर्मभूमीका मनुष्य वा तिर्यंचका भुज्यमान आयु पैंसाठिसै इकसाठि वर्षका है तिस आयूके तीन भाग करिये, तिनमैं दोय त्रिभागके तियालीससै चोवन वर्षपर्यंत तो परभवसंबंधी आयुबंध करनेकी योग्यताही नही है, अर आयूके दोय भाग गये इकईससै सत्यासी वर्ष रहे, तहां तीसरा भाग लागतैंही प्रथमसमयसूं लगाय अंतर्मुहूर्त पर्यंत कालविषैं परभवसंबंधी आयु बांधै, अर जो तिस अंतर्मुहूर्तमें नही बांधै तो तिस एकभागका २१८७ इकईससै सत्यासी वर्षके तीन भाग कीजे, तिनमैं चोदासै अठावन वर्षप्रमाण दोय त्रिभागमें तो परभवसंबंधी आयुबंध करनेकी योग्यता नही है, अर एक भाग जो ७२९ सातसैं गुणतीस वर्षप्रमाण त्रिभाग रह्या, तिसका पहला

सयमसूं लगाय अंतर्मुहूर्तपर्यंत परभवसंबंधी आयुबंध करनेकी योग्यता है, अर जो तहांभी नही बंधै तो तिस सातसै गुणतीसका दोय त्रिभाग जो च्यारिसै छियासी वर्षपर्यंत तो आयू नही बंधै, अर दोयसै तीयालीस वर्ष रह्या तिसकी आदिका अंतर्मुहूर्तमें आयू बांधै, अर जो तहां नही वंधै तौ १६२ एकसो बासठि वर्ष गये पाछै इक्यासी वर्ष रहे, तिसकी आदिका अंतर्मुहूर्तमें बांधै, अर तहांहू नही बंधै तो इक्यासीका दोय त्रिभाग जो चोवन वर्ष गये पाछै सत्ताईस वर्ष रहे, तिसकी आदिका अंतर्मुहूर्तमें बांधै, अर तहांभी नही बंधै तो सत्ताईसका दोय त्रिभाग जो अठारह वर्ष गये पाछै नव वर्ष रहे तिसकी आदिका अंतर्मुहूर्तमें बांधै, अर तहांभी नही बंधै तो नव वर्षके दोय त्रिभाग जो छ वर्ष गये तीन वर्षकी आदिका अन्तर्मुहूर्तमें वंधै, अर तहांभी नही बंधै तो तीन वर्षका दोय त्रिभाग जो दोय वर्ष गये पाछै एक वर्षकी आदिका अन्तर्मुहूर्तमें बंधै, ऐसैं आयूके आठ अपकर्ष होय हैं अर आठ अपकर्षमें आयुका बंध होयही ऐसा नियम नही है ॥

अर आठसिवाय नवमा अपकर्ष होय नही है, तो आयुबंध कहां होइ सो कहे हैं ॥ भुज्यमान आयूका आवलीके असंख्यातवे भागप्रमाण काल अवशेष रहिजाय तिसकै पहली अंतर्मुहूर्त कालमात्र समयप्रवद्धनिकरि परभवका आयुको बांधि पूर्ण करे है।

सो यो नियम कर्मभूमीके मनुष्यतिर्यंचनिका है ॥ पूर्वैं कहे जे आठ अपकर्षनिविषैं केई जीव आठवार, केई सातवार, केई छहवार, केई पांचवार, केई च्यारवार, केई तीनवार, केई दोयवार, केई एकवार आयूके बंध होनेयोग्य परिणाम तिनकरि परिणमे हैं ॥ आयुके बंध होनेयोग्य परिणाम अपकर्षनिविषैंही होइ ऐसा कोई स्वभावही है, अन्य कारण नही है। अर ऐसा कछू नियम नही है– जो इन अपकर्षनिविषैं आयुका बंध होयही होय। इन आठ त्रिभागनिविषैं आयुके बंध होनेकी योग्यता है, जो बंध होय तो होय, न होय तो नही होय। अर जाकै आठ त्रिभागनिमैंभी नही होइ, तिसके भुज्यमान आयुका अवशेष रह्या जो आवलीका असंख्यातवा भाग ताके पहली अंतर्मुहूर्तप्रमाण समयप्रबलद्धनिमैं आयुबंध होयही, ऐसा नियम है। अर आठ त्रिभागसिवाय त्रिभाग नही कह्या है ॥

बहुरि देवनारकीनिकै आयूका छह महिना अवशेष रहे, तब आयुबंध करनेकी योग्यता है। पहली आयुबंधकी योग्यताही नही है। तहां छह महीनामैंहू त्रिभाग त्रिभागकरि आठतांई अपकर्ष हो हैं, तिनविषैं आयुबंध करनेकी योग्यता है ॥ बहुरि एकसमय अधिक कोटिपूर्ववर्षतैं लगाय तीनपल्यपर्यंत असंख्यात वर्षमात्र आयुके धारक भोगभूमियां तिर्यंच मनुष्य ये निरुपक्रम आयू हैं, इनकी आयू विषशस्त्रादिकके

निमित्तसूं नही छिदे है, इनकै अपने आयूका नव महीना अवशेष रहे आठ अपकर्षनिकरि परभवके आयूका बंध होनेकी योग्यता है ॥

२
४
१
३
२७
८१
२४३
७२९
२१८७
६५६१

बहुरि इतना और विशेष जानना– जिस गतिसंबधी आयूबंध प्रथम अपकर्षविषैं होइ पीछैं जो द्वितीयादिक अपकर्षनिविषैं आयूका बंध होइ, तो तिस प्रथमादि अपकर्षमें आयूका बंध भया सोही होइ द्वितीयादिकनिमैं अन्य आयूका बंध नही होइ ॥ किसी जीवकै आयूका बंध एक अपकर्षहीविषैं होय, केईकै दोय करि, केईकै तीन वा च्यारि वा पांच वा छह वा सात वा आठ अपकर्षनिकरि आयूका बंध होय है ॥ तहां आठ अपकर्षनिकरि परभवकी आयूके बंध करनहारे जीव थोरे हैं; तिनतैं संख्यातगुणे सात अपकर्षनिकरि आयूके बंध करनेवाले हैं, तिनतैं संख्यातगुणे छह अपकर्षनिकरि बंध करनेवाले हैं। ऐसैं संख्यातगुणे संख्यातगुणे पांच च्यारि तीन दोय एक अपकर्षनिकरि आयूबंध करनेवाले जानने। ऐसैं आयूके बंधनेको योग्य लेश्यानिका मध्यम आठ अंश तिनकी आठ अपकर्षनिकरि उत्पत्तीका क्रम कह्या। तिन मध्यम अंशनितैं अवशेष रहे जे लेश्यानिके अठारह अंश ते च्यारि गतिविषैं गमनकूं कारण है, मरण इन

अठारह अंशनिकरि सहित होय, सो मरणकरि यथायोग्यगतिकूं जीव प्राप्त होय है ॥

शुक्ललेश्याके उत्कृष्ट अंशसहित मरै, ते सर्वार्थसिद्धि नाम इंद्रकविमानमें प्राप्त होय हैं। शुक्ललेश्याका जघन्य अंशकरि मरै, ते जीव शतार सहस्रार स्वर्गविषैं उपजे हैं। शुक्ललेश्याके मध्यम अंशकरि मरै, ते जीव आनतस्वर्गके ऊपरि सर्वार्थसिद्धि इंद्रकका विजयादिक विमानपर्यंत यथासंभव उपजे हैं ॥

पद्मलेश्याके उत्कृष्ट अंशकरि मरे, ते जीव सहस्रार स्वर्गकूं प्राप्त होय हैं। पद्म-लेश्याके जघन्य अंशकरि मरे, ते जीव सनत्कुमार माहेंद्रस्वर्गकूं प्राप्त होय हैं। पद्म-लेश्याके मध्यम अंशकरि मरे, ते जीव सहस्रार स्वर्गके नीचे अर सनत्कुमार माहेंद्रके ऊपरि यथासंभव उपजे हैं ॥

बहुरि तेजोलेश्याका उत्कृष्ट अंशकरि मरे ते जीव सनत्कुमार माहेंद्रस्वर्गका अंतका पटलविषैं चक्र नामा इंद्रकसंबंधी श्रेणीबद्ध विमाननिविषैं उपजे हैं। तेजोलेश्याका जघन्य अंशकरि मरे, ते जीव सौधर्म ईशानका पहला ऋतु नामा इंद्रक वा श्रेणीबद्ध विमाननिविषैं उपजे हैं। बहुरि तेजोलेश्याके मध्यम अंशकरि मरे, ते जीव सौधर्म ईशानका दूसरा पटलका विमल इंद्रकतैं लगाय सनत्कुमार माहेंद्रका द्विचरम पटलका बलिभद्र नामा इंद्रकपर्यंत विमाननिविषैं उपजे हैं ॥

बहुरि कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट अंशकरि मरे, ते जीव सातवी नरकपृथ्वीका एकही पटल है ताका अवधिस्थानक नामा इंद्रकबिलविषैं उपजे हैं। कृष्णलेश्याके जघन्य अंशकरि मरे, ते जीव पंचम पृथ्वीका अंतपटलका तिमिस्र नामा इंद्रकविषैं उपजे हैं। कृष्णलेश्याका मध्यम अंशकरि मरे, ते जीव अवधिस्थान इंद्रकका च्यारि श्रेणी-बद्ध बिल तिनविषैं वा छट्ठी पृथ्वीका तीनों पटलनिविषैं वा पंचम पृथ्वीका चरमप-टलविषैं यथायोग्य उपजे हैं ॥

बहुरि नीललेश्याके उत्कृष्ट अंशकरि मरे, ते जीव पंचमपृथ्वीका द्विचरमपटलका अंध नामा इंद्रकविषैं उपजे हैं, केई पांचमां पटलविषैंभी उपजे हैं। अरिष्टा पृथ्वीका अंतका पटलविषैं कृष्णलेश्याका जघन्य अंशकरि मरे हुयेभी केई जीव उपजे हैं इतना विशेष जानना। बहुरि नीललेश्याका जघन्य अंशकरि मरे, ते जीव वालुकाप्रभा पृथ्वीका अंतपटलविषैं संप्रज्वलित नाम इंद्रकविषैं उपजे हैं॥ बहुरि नीललेश्याका मध्यम अंशकरि मरे, ते जीव वालुकाप्रभा पृथ्वीका संप्रज्वलितइंद्रकतैं नीचै अर चोथी पृथ्वीका सातों पटल अर पंचम पृथ्वीका अंधक इंद्रकके ऊपरि यथायोग्य उपजे हैं॥

कापोतलेश्याके उत्कृष्ट अंशकरि मरे, ते जीव तीसरी पृथ्वीका आठवा द्विचरम पटल ताके संज्वलित नाम इंद्रकविषैं उपजे हैं। केई अंतका पटलसंबंधी संप्रज्वलित

नाम इंद्रकविषैंभी उपजे हैं। बहुरि कापोतलेश्याका जघन्य अंशकरि मरे, ते जीव घर्मा पहली पृथ्वीका पहला सीमंतक नाम इंद्रकविषैं उपजे हैं। कपोतलेश्याके मध्यम अंशकरि मरे, ते जीव पहली पृथ्वीका सीमंतक इंद्रकतैं नीचै बारह पटलनिविषैं बहुरि मेघा तीसरी पृथ्वीका द्विचरम संप्रज्वलित इंद्रकतैं ऊपरि सात पटलनिविषैं बहुरि दूसरी पृथ्वीका ग्यारह पटलनिविषैं यथायोग्य उपजे हैं॥

बहुरि इहां यहू विशेष है— कृष्ण नील कपोत तीन लेश्या तिनके मध्यम अंशकरि मरे ऐसे कर्मभूमीयां मिथ्यादृष्टि मनुष्य वा तिर्यंच अर तेजोलेश्याके मध्यम अंशकरि मरे ऐसे भोगभूमीयां मिथ्यादृष्टि तिर्यंच मनुष्य ते भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी देवनिविषैं उपजे हैं॥ कृष्ण नील कपोत पीत इनि च्यारि लेश्याके मध्यम अंशकरि मरे ऐसे तिर्यंच वा मनुष्य भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी वा सौधर्मस्वर्ग ईशानस्वर्गके वासी देव मिथ्यादृष्टि, ते बादर पर्याप्तक पृथ्वीकायिक अप्कायिक वनस्पतिकायिकविषैं उपजे हैं। भवनत्रयादिककी अपेक्षा इहां पीतलेश्या जाननी। तिर्यंचमनुष्यनिकी अपेक्षा कृष्णादिक तीन लेश्या जाननी॥ बहुरि कृष्ण नील कपोतके मध्यम अंशकरि मरे ऐसे तिर्यंच वा मनुष्य ते तेजस्कायिक वातकायिक विकलत्रय असंज्ञी पंचेंद्रिय साधारणवनस्पति इनिविषैं उपजे हैं॥ बहुरि भवनत्रय आदि सर्वार्थसिद्धिपर्यंत

देव अर घर्मादिक सातों पृथ्वीसंबंधी नारकी ते अपनी अपनी लेश्याके अनुसारि यथायोग्य मनुष्यगति वा तिर्यंचगतिकूं प्राप्त होय हैं॥

इहां इतना जानना– जिस गतिसंबंधी पूर्वैं आयु बंध्या होय, तिसही गतिविषैं जो मरण होतैं लेश्या होइ, ताके अनुसारि उपजे हैं। जैसैं मनुष्यकै पूर्वैं देवायुबंध भया बहुरि मरण होतैं कृष्णादिक अशुभ लेश्या होइ तो भवनत्रिकविषैं उपजै, ऐसैंही अन्यत्र जानना॥ ऐसैं लेश्याके आधीन गतिका वर्णन कीया॥

अब गुणस्थाननिमैं कहे हैं– असंयतपर्यंत च्यारि गुणस्थानपर्यंत तो छहू लेश्या हैं। देशविरत आदि तीन गुणस्थाननिमैं पीतादिक तीन शुभलेश्याही हैं। तातैं उपरि अपूर्वकरणतैं लगाय सयोगीपर्यंत छह गुणस्थाननिविषैं एक शुक्ललेश्याही है। अयोगी-गुणस्थान लेश्यारहित है। जातैं तहां योगकषायका अभाव है। उपशांतकषायादिक जहां कषाय नष्ट होगये ऐसे तीन गुणस्थाननिमैं कषायका अभाव होतैंहूं लेश्या उपचार कहिये हैं॥

एदेसिं लेस्साणं। विसोधणं पदि उवक्कमो इणमो॥
सव्वेसिं संगाणं। विवज्जणं सव्वहा होइ॥ ८॥

अर्थ— इन लेश्यानिकै उज्वल करनेप्रति यो इलाज है। जो, समस्त परिग्रहका

सर्वथा त्याग करना । परिग्रहधारीनिकै लेश्याकी शुद्धता नहीं होइ है ॥ गाथा—

लिस्सासोधी अज्झव- ॥ साणविसोधीए होइ जीवस्स ॥
अज्झवसाणविसोधी ॥ मंदकसायस्स णायव्वा ॥ ९ ॥

अर्थ— जीवकै लेश्याकी शुद्धता परिणामनिकी शुद्धताकरि होइ है । अर परिणामनिकी शुद्धता मंदकषायके धारककै होइ है ॥ गाथा—

मंदा हुंति कसाया । वाहिरसंगविजढस्स सव्वस्स ॥
गिण्हइ कसायवहुलो । चेव हु सव्वं पि गंथकलिं ॥ १९१० ॥

अर्थ— समस्त बाह्यपरिग्रहरहितके कषाय मंद होय हैं । जातैं तीव्रकषायका धारकही समस्त परिग्रहरूप कालिमाकूं ग्रहण करे है । तातैं बाह्यपरिग्रहका अभावतैंही कषायनिकी मंदता होइ है ॥ गाथा—

जह इंधणेहिं अग्गी । वढ्ढइ विज्झाइ इंधणेहिं विणा ॥
गंथेहिं तह कसाउ । वढ्ढइ विज्झाइ तेहिं विणा ॥ ११ ॥

अर्थ— जैसैं अग्नि है सो इंधनकरि वधे है, इंधनविना बुझि जाय है; तैसैं कषाय हैं ते परिग्रहकरि वधे हैं, परिग्रहविना शांत होइ जाय है ॥ गाथा—

जह पत्थरो पडंतो । खोभेइ दहे पसण्णमवि पंकं ॥

खोभेइ पसण्णमवि क- । सायं जीवस्स तह गंथो ॥ १२ ॥

अर्थ— जैसैं जलके दहविषैं पडता जो पत्थर, सो शांतहू कर्दमकूं क्षोभरूप करे है; तैसैं जीवकै दब्या हुवाहू कषायकूं परिग्रह है सो उदीरणाकूं प्राप्त करे है ॥ गाथा—

अब्भंतरसोधीए । गंथे णियमेण बाहिरे चयदि ॥
अब्भंतरमइलो चे- । व बाहिरे गिण्हदि हु गंथे ॥ १३ ॥

अर्थ— अभ्यंतरपरिणामनिकी शुद्धताकरिकै नियमतैं बाह्यपरिग्रहकूं त्यागे है। जाका अभ्यंतर परिणाम उज्वल होजाय तिसकै बाह्यपरिग्रहका त्याग होयही है। अर जिसके अभ्यंतरपरिणाम मलिन है, सो बाह्यपरिग्रहकूं ग्रहण करैही। जिसकै अभ्यंतर राग, सो परिग्रह ग्रहण करै। जिसका अभ्यंतर राग नष्ट होगया, सो बाह्यपरिग्रहमें ममत्व नहीं करे है॥ गाथा—

अब्भंतरसोधीए । बाहिरसोधी वि होइ णियमेण ॥
अब्भंतरदोसेण हु । कुणइ णरो बाहिरे दोसे ॥ १४ ॥

अर्थ— अभ्यंतर शुद्धताकरिकै बाह्यशुद्धता नियमतैं होइ है। अर अभ्यंतर दोषकरिकै पुरुष बाह्य दोषनिकूं करे है॥ गाथा—

जह तंडुलस्स कुंडय- । सोधी सतुसस्स तीरदि ण काउं ॥

तह जीवस्स ण सक्का । लिस्सासोधी ससंगस्स ॥ १५

अर्थ— जैसैं तुषसहित तंदुलकी अभ्यंतर लाली दूरि करि उज्वलता करनेकूं नही समर्थ होइये है; तैसैं परिग्रहसहित जीवके लेश्याकी शुध्दता करनेकूं नही समर्थ होइए है ॥ अब लेश्याके भेदतैं आराधनामैं भेद होइ, तिनकूं निरूपण करे हैं ॥

सुक्काए लेस्साए । उक्कस्सं अंसयं परिणमित्ता ॥
जो मरदि सो हु णियमा । उक्कस्साराधउं होइ ॥ १६ ॥

अर्थ— शुक्लेश्याका उत्कृष्ट अंशरूप परिणमिकरिकै जो मरण करे है; सो नियमतैं उत्कृष्ट आराधनाका धारक होय है ॥ गाथा—

खाइयदंसणचरणं । खवोवसमियं च णाणमिदि मग्गो ॥
तं होइ खीणमोहो । आराहित्ता य जो हु अरहंतो ॥ १७ ॥

अर्थ— उत्कृष्ट आराधनाका धारकके क्षायिक सम्यग्दर्शन, क्षायिकचारित्र, अर क्षायोपशमिक ज्ञान ये मोक्षका मार्ग है। सो बारमा गुणस्थानका धारक इनिकूं आराधिकरिकै अरहंत होइ हैं ॥ गाथा—

जे सेसा सुक्काए । दु अंसया जे य पोमलेसाए ॥
तल्लेसापरिणामो । दु मज्झिमाराधणा मरणे ॥ १८ ॥

अर्थ— बहुरि अवशेष जे शुक्ललेश्याके अंश अर पद्मलेश्याके बाकीके अंश हैं तिनके परिणाम मरणकालमें मध्यम आराधनाके हैं ॥ गाथा—

तेजाए लिस्साए। जे अंसा तेसु जो परिणमित्ता ॥
कालं करेइ तस्स हु। जहण्णियाराधणा भणिदा ॥ १९ ॥

अर्थ— बहुरि जे तेजोलेश्याके अंश हैं तिनरूप परिणमिकरिकै जो मरण करे है, तिसकै जघन्य आराधना परमागममें कही है ॥ गाथा—

जो जाए परिणमित्ता। लिस्साए संजदो कुणइ कालं ॥
तल्लेसो उववज्जइ। तल्लेसे चेव सो सग्गे ॥ १९२० ॥

अर्थ— जो संयमी जैसी लेश्यारूप अपना परिणमनकरि मरण करे है, सो तैसी लेश्यावाले स्वर्गमें तिस लेश्याका धारक देव होय है ॥ गाथा—

अह तेउपउमसुक्कं। अंदिच्छिदो[1] णाणदंसणसमग्गो ॥
आउखखया दु सुध्दो। गच्छदि सिध्दिं चुदकिलेसो ॥ २१ ॥

[1] अतिक्रान्तः ॥

अर्थ— बहुरि जो तेजोलेश्या पद्मलेश्या शुक्ललेश्याकूं उलंघन करि लेश्याके अभावकूं प्राप्त भये हैं, ते ज्ञानदर्शनकरि पूर्णतानैं प्राप्त भये आयुका क्षय होतैं समस्तक्लेशरहित शुध्द हुवा निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं ॥

इति सविचार भक्तप्रत्याख्यान मरणके चालीस अधिकारनिविषैं लेश्या नामा अड तीसमा अधिकार अठारह गाथानिमैं समाप्त कीया ॥ अब आराधनाके फलका गुण-तालीसमा अधिकार इकतालीस गाथानिमैं वर्णन करे हैं ॥ गाथा—

एवं सुभाविदप्पा । झाणोवगउ पसत्थलेसाउ ॥
आराहणापडायं । हरइ अविग्घेण सो खवउ ॥ २२ ॥

अर्थ— ऐसैं भलैप्रकार आत्माकी भावना करता अर ध्यानकूं प्राप्त भया अर प्रशस्तलेश्याका धारक जो क्षपक सो निर्विघ्नताकरि आराधनापताकाकूं हरे है—ग्रहण करे है ॥

तेलोक्कसव्वसारं । चउगइसंसारदुक्खणासयरं ॥
अराहणं पवण्णो । सो भयवं मुक्खपडिमुल्लं ॥ २३ ॥

अर्थ— त्रैलोक्यका समस्तसार अर चतुर्गतिसंसारके दुःखके नाश करनेवाली अर मोक्षप्रति मोल ऐसी जो आराधना, ताहि प्राप्त होइ, सो भगवान् है ॥ गाथा—

एव जधाखादविधिं । संपत्ता सुध्ददंसणचरित्ता ॥
केई खवंति खवया । मोहावरणंतरायाणि ॥ २४ ॥

अर्थ— ऐसैं यथाख्यातचारित्रकी विधीकूं प्राप्त भये अर शुद्ध है सम्यग्दर्शन अर सम्यक्चारित्र जिनकै ऐसे केई क्षपक मोहनीय अर ज्ञानावरण दर्शनावरण अर

अंतराय कर्मका नाश करे है ॥ गाथा–

केवलकप्पं लोगं । संपुण्णं दव्वपज्जयविधीहिं ॥
झायंता एयमणा । जहंति आराहया देहं ॥ २५ ॥

अर्थ–– बहुरि केवलज्ञानकै ज्ञेयपणाकरिकै योग्य ऐसा संपूर्ण लोककूं द्व्यपर्यायके भेदनिकरि एकाग्र हुवा जाणता ऐसे आराधक जे भगवान् अरहंत ते देहकूं त्यागे हैं ॥

सव्वुक्कस्सं जोगं । जुंजंता दंसणे चरित्ते य ॥
कम्मरयविप्पमुक्का । हवंति आराधया सिध्दा ॥ २६ ॥

अर्थ–– आराधनाके धारक सर्वोत्कृष्ट योगकूं दर्शनचारित्रमें युक्त करते कर्मरूप रजकरि रहित भये सिद्ध होत हैं ॥ गाथा–

इयमुक्किस्सयमारा- । धणमणुपालित्तु केवली भविया ॥
लोगग्गसिहरवासी । हवंति सिद्धा धुयकिलेसा ॥ २७ ॥

अर्थ–– ऐसें उत्कृष्ट अराधनाकूं अनुक्रमतैं पालिकरिकै अर केवलज्ञानी होइकरिकै अर समस्तकर्मबंधरूप क्लेशकूं उडायकरिकै लोकाग्रशिखरमें वसनेवाले सिध्द होय हैं ॥

अह सावसेसकम्मा । मलियकसाया पणट्ठमिच्छत्ता ॥
हासरइअरइभयसो- । गदुगुंछावेयणिम्महणा ॥ २८ ॥

पंचसमिदा तिगुत्ता। सुसंपुडा सव्वसंगउ मुक्का ॥
धीरा अदीणमणसा। समसुहदुक्खा असंमूढा ॥ २९ ॥
सव्वसमाधाणेण य। चरित्तजोगे अधिट्ठिदा सम्मं ॥
धम्मे वा उवउत्ता। झाणे तह पढमसुक्के वा ॥ १९३० ॥
इय मज्झिममाराधण-। मणुपालित्ता सरीरपयहित्ता ॥
हुंति अणुत्तरवासी। देवा सुविसुद्धलेसा य ॥ ३१ ॥

अर्थ— अथवा जिनके कर्म नहीं क्षिपे अवशेष रहि गये ऐसे; अर मथित भये हैं कषाय जिनके; अर नष्ट भया है मिथ्यात्व जिनका; अर हास्य, रति, अरति, शोक भय, जुगुप्सा अर वेद इनकूं मथन करि मंद करि दीये अर पंचसमितिकरि सहित अर तीन गुप्तिकरि सहित अर संवरकूं धारते अर समस्तसंगरहित अर धीरवीर अर परिणाममें दीनतारहित अर सुखदुःखमें समभावसहित अर देहमें वा रागादिकामें मूढतारहित; समस्त सावधानीकरि चारित्रकूं पालनेमें सम्यक् आरूढ भये; धर्मध्यानमें वा प्रथमशुक्लध्यानमें जे उपयुक्त ते पुरुष ऐसें मध्यम आराधनाकूं पालिकरिकैं अर शरीरकूं छांडिकरिकै शुक्लेश्याके धारक अनुत्तरविमाननिमें वसनेवाले अहमिंद्रदेव होय हैं ॥

दंसणणाणचरित्ते। उक्किट्ठा उत्तमा पहाणा य ॥

इरियावहपडिवण्णा । हवंति लवसत्तमा देवा ॥ ३२ ॥
कप्पोववा सुरा जं । अच्छरसहिया सुहं अणुहवंति ॥
तत्तो अणंतगुणियं । सुहं तु लवसत्तमसुराणं ॥ ३३ ॥

अर्थ— जे इहां दर्शनज्ञानचारित्रविषैं उत्कृष्ट हैं, उत्तम हैं, प्रधान हैं, ईर्यापथकूं प्राप्त भये हैं, ते लवसत्तमा देवाः कहिये अहमिंद्रदेव होय हैं। अप्सरांनिकरि सहित कल्पवासी देव जो सुख अनुभवे हैं, तातैं अनंतगुणितसुख अहमिंद्रदेव अनुभवे हैं-भोगे हैं ॥ गाथा—

णाणम्मि दंसणम्मि य । आउत्ता संजमे अधक्खादे ॥
वड्ढिदतउवधाणा । अवहियलिस्सा सददमेव ॥ ३४ ॥
पयहिय सम्मं देहं । सययं सव्वगुवड्ढियगुणड्ढं ॥
देविंदचरिमठाणं । लहंति आराधया खवया ॥ ३५ ॥

अर्थ— ज्ञानमें, दर्शनमें, यथाख्यातचारित्रमें जे अत्यंत युक्त हैं, अर तपके परिकरकूं वधावते हैं अर निरंतर लेश्याकी उज्वलताकूं प्राप्त भये हैं अर निरंतर सर्वगुणनिकरि वर्धितगुणनिकरि सहित हैं ऐसे आराधनाके धारक क्षपक देहका सम्यक् त्याग करिकै सोलमा स्वर्गका इंद्र होय हैं ॥ गाथा—

सुयभत्तीए विसुद्धा । उग्गतवा णियमजोगसंसुद्धा ॥
लोगंतिया सुरवरा । हवंति आराधया धीरा ॥ ३६ ॥

अर्थ— जे श्रुतज्ञानकी भक्तिकरि अति उज्वल हैं अर उग्रतपके करनेवाले हैं अर नियमध्यानकरि शुद्ध हैं, ते धीरवीर आराधनाके धारक मरणकरि लौकांतिकदेव होय हैं ॥ गाथा—

जावदिया रिद्धीउ । हवंति इंदियगदाणि य सुहाणि ॥
ताइं लहंति ते आ- । गमेसि भद्दासया खवया ॥ ३७ ॥

अर्थ— जेती जगतमें ऋद्धि हैं अर जेते इंद्रियजनित सुख हैं, तिन समस्त ऋद्धि अर सुखनिकूं आगामी कालविषैं भद्रपरिणामी क्षपक प्राप्त होयगे ॥ गाथा—

जे वि हु जहण्णियं ते- । उलेसमाराहणं उवणमंति ॥
ते वि हु सोहम्माइसु । हवंति देवा ण हेट्ठिल्ला ॥ ३८ ॥

अर्थ— जे जघन्य तेजोलेश्यामें आराधनाकूं प्राप्त होइ हैं, तेहू सौधर्मादिक स्वर्गनिविषैं देव होय हैं। नीचले भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी देवनिमें जन्म नहीं धरे हैं, इन देवनिमें मिथ्यादृष्टिकाही उत्पाद है। सम्यग्दृष्टि भवनत्रिकमें नहीं उपजे हैं ॥

किं जंपिएण वहुणा । जो सारो केवलस्स लोगस्स ॥

तं अचिरेण लहंते। फासित्ताराहणं णिहिलं ॥ ३९ ॥

अर्थ— बहुत कहनेकरि कहा? समस्त आराधनाकूं अंगीकार करिकै समस्त इस लोकका सारकूं अति थोरा कालमें प्राप्त होय हैं ॥ गाथा—

भोगे अणुत्तरे भुं-। जिऊण तत्तो चुदा सुमाणुस्से ॥
इड्ढिमतुलं चइत्ता। चरंति जिणदेसियं धम्मं ॥ १९४० ॥
सदिमंतो धिदिमंतो। सद्धासंवेगवीरियोवगया ॥
जेदा परीसहाणं। उवसग्गाणं व अभिभविय ॥ ४१ ॥
इय चरणमधक्खादं। पडिवण्णा सुद्धदंसणमुवेदा ॥
सोधिंति झाणजुत्ता। लेसाउं संकिलिट्ठाउं ॥ ४२ ॥
सुक्कं लेसमुवगदा। सुक्कज्झाणेण खविदसंसारा ॥
उम्मुक्ककम्मकवया। उविंति सिद्धिं धुदकिलेसा ॥ ४३ ॥

अर्थ— आराधनाके धारक जीव देवलोकनिमैं सर्वोत्कृष्ट भोगनिकूं भोगिकरिकैं, आयुके अंतमें देवलोकतैं चयकरि, उत्तम मनुष्यभवमें उत्पन्न होय। अर मनुष्यसंबंधी अतुल ऋद्धि पाय बहुरि समस्तकूं त्यागि जिनेंद्रका उपदेश्या धर्मकूं आचरण करे हैं। अर अपने स्वरूपकूं स्मरण करे हैं। अर धैर्यकूं धारत हैं। अर श्रद्धान वैराग्य वीर्यकूं

प्राप्त होत हैं। परीषहनिकूं जीतते अर उपसर्गनिका तिरस्कार करते उपसर्गनिकूं नही गिणे हैं ॥ ऐसैं यथाख्यातचारित्रकूं प्राप्त होइ हैं। बहुरि शुद्धदर्शनकूं प्राप्त भये ध्यान-करि युक्त भये संक्लिष्टलेश्याकूं शुद्ध कहिये उज्वल करे हैं ॥ बहुरि शुक्ललेश्याकूं प्राप्त भये शुक्लध्यानकरिकैं संसारका नाश करते दूरि उडाये हैं कर्मकृत क्लेश जिननैं ऐसे कर्मरूप कवचतैं छूटे हुये सिध्दीकूं प्राप्त होय हैं-निर्वाणगमन करे हैं ॥ गाथा-

एवं संथारगदो। विसोधइत्ता वि दंसणचरित्तं ॥
परिवडदि पुणो कोई। झायंतो अट्टरुद्दाणि ॥ ४४ ॥

अर्थ— ऐसैं संस्तरकूं प्राप्त भयाहू कोऊ क्षपक दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी उज्वलता करिकैंहू आर्त रौद्र ध्यानकूं ध्यावता संता आराधनातैं पडे है-छूटे है ॥ भावार्थ-रत्नत्रयका धारकहू जो आर्तरौद्रकूं प्राप्त होय है, सो आराधनातैं भ्रष्ट होइ रत्नत्रयका नाश करे है ॥ गाथा-

झायंतो अणगारो। अट्टं रुद्दं च चरिमकालम्मि ॥
जो जहइ सयं देहं। सो ण लहइ सुग्गइं खवउं ॥ ४५ ॥

अर्थ— जो क्षपक समस्त जन्ममें आराधना धारिकरिकैंहू मरणके अवसरमें आर्त-रौद्रकूं ध्यावता संता मरण करे है-अपना देहकूं छांडे है, सो साधु सुगतिकूं नही प्राप्त

होय है। आर्तरौद्रमें मरण करै, तिसकूं सुगति कैसें होय? नहीं होय ॥ गाथा—

जदि दा सुभाविदप्पा । वि चरिमकालम्मि संकिलेसेण ॥ परिवडइ वेदणट्टो । खवउं संथारमारूढो ॥ ४६ ॥ किं पुण जे उंसण्णा । णिच्चं जे चावि णिच्चपासत्था ॥ जे वा सदा कुशीला । संसत्ता वा जहाछंदा ॥ ४७ ॥ [गच्छं हि केइ पुरिसा । पख्खी इव पंजरंतरणिरुद्धा ॥ सारणपंजरचकिता । उंसण्णागा पविहरंति ॥] अविसुद्धभावदोसा । कसायवसगा य मंदसंवेगा ॥ अच्चासादणसीला । मायावहुला णिदाणकदा ॥ ४८ ॥ सुहसादा किंमज्झा । गुणसायी पावनुत्तपडिसेवी ॥ त्रिसयालापडिवध्दा । गारवगरुया पमाइल्ला ॥ ४९ ॥ समिदीसु य गुत्तीसु य । अभाविदा सीलसंजमगुणेसु ॥ परतत्तीसु पसत्ता । अणाहिया भावसुध्दीए ॥ १९५० ॥ गंथ अणियत्ततण्हा । वहुमोहा सवलसेवणासेवी ॥ सद्दरसरूवगंधे । फासेसु य मुच्छिदाघाडिया ॥ ५१ ॥ परलोगणिप्पवासा । इहलोगे चेव जे सुपडिवद्धा ॥ सज्झायादीसु य जे । अणुट्ठिदा संकिलिट्ठमदी ॥ ५२ ॥ सव्वेसु य मूलुत्तर- । गुणेसु तह ते सदा अइचरंता ॥ ५३ ॥ ण लहंति खउंवसमं । चरित्तमोहस्स कम्मस्स ॥

अर्थ— जो वर्तमानमें भलेप्रकार भाया है आत्मा जानैं अर संस्तरमें आरूढ भया ऐसाहू क्षपक जो मरणके अवसरमें रोगादिककी वेदनाकरि पीडित हुवा संक्लेशकरिकै पतन करे है; तो जे नित्यही अवसन्न हैं, नित्यही पार्श्वस्थ हैं, सदाकाल कुशील हैं संसक्त हैं, स्वच्छंद हैं, ते नही पतन करै कहां? अपि तु पतन करैही ॥ जैसैं कर्दममें फंस्या वा मार्गमें थकि गया तिसकूं अवसन्न कहिये हैं; तैसैं जो उपकरणमें, वसतिकामैं, संस्तरके शोधनेमैं, स्वाध्यायमें, विहार करते भूमिके शोधनेमैं, गोचरीकी शुद्धतामैं, ईर्यासमित्यादिकनिमैं, स्वाध्यायके कालका अवलोकनमें, स्वाध्यायका विसर्जन जो समाप्ति इत्यादिकमें अनुद्यमी रहै–प्रवर्तनेमें उद्यमी नही रहै; छह आवश्यकनिमें आलसी वा आवश्यकमें हीनता करै वा अधिकता करै वा वचनकायतैं आवश्यक करै भावनितैं नही करै; चारित्रके पालनेमें खेदकूं प्राप्त होय, सो अवसन्नजातिका भ्रष्ट मुनि है ॥ १ ॥

बहुरि जैसैं कोऊ पुरुष शुद्धमार्गकूं देखताहू तिस मार्गके समीप अन्यमार्गकरिकै गमन करै; तैसैं कोऊ निरतिचार संयमका मार्गकूं जानताहू संयममें नही प्रवर्ते– संयमसाक दीखे ऐसा मार्गकरि प्रवर्ते, सो पार्श्वस्थ है ॥ भोजन देनेवाले दातारकी भोजन लीये पहली स्तुति करै वा भोजन कीयेपाछे स्तवन करै, तथा उत्पादनदोष एषणादोषकरि सहित दुष्टभोजन करै, एकवसतिकामैं नित्य वसै–मुनीश्वरनिका एकव-

सतिकामैं ममता बांधि रहना चारित्रकूं नाश करे है, तथा एकसंस्तरमें नित्य शयन करै, तथा एक क्षेत्रमें वसै, तथा गृहस्थनिके गृहके मध्य बैठना, गृहस्थनिके उपकरणकरि प्रवृत्ति करना, तथा दुष्टतातैं भूमीका प्रतिलेखन करना-शोधना, तथा मयूरपिच्छिका विना दुष्टप्रतिलेखनतैं शोधना, वा ओरहू कारणविना पादप्रक्षालनादि वारंवार करना, सो पार्श्वस्थ नाम भ्रष्ट मुनिके लक्षण हैं ॥ २ ॥

बहुरि जाका लोकमें प्रकट कुत्सित कहिये खोटा स्वभाव होइ, सो कुशील है। सो कुशील अनेकप्रकारे हैं। कोऊ तौ कौतुककुशील है। जो औषध लेपन विद्याके प्रयोगकरिकै सौभाग्यका कारण राजद्वारमें कौतुक दिखावै, सो कौतुककुशील है। कोऊ भूतिकर्मकुशील है। जो भूति जो धूली वा भस्म तथा सिरसूं वा फूल वा फल वा जलादिकनिकूं मंत्रकरि रक्षा करै, वशीकरण करै, सो भूतिकर्मकुशील है। बहुरि अंगुष्ठप्रसेनिका अक्षरप्रसेनी शशिप्रसेनी सूर्यप्रसेनी स्वप्नप्रसेनी इत्यादिकविद्यानिकरि लोकनिकूं रंजायमान करै, सो प्रसेनिकाकुशील है। बहुरि विद्यामंत्र औषध ओरलोकनिकूं रागी करनेवाले प्रयोगनिकरि वा असंयमीनिका इलाज करै, सो अप्रसेनिकाकुशील है। बहुरि जो अष्टांगनिमित्त जानि लोकनिकूं आज्ञा करै, सो निमित्तकुशील है। बहुरि अपनी जाति वा कुलका महिमाका प्रकाश करि जो भिक्षादिकनिकूं

उपजावै, सो आजीवकुशील है। बहुरि कोऊकरि उपद्रवकूं प्राप्त भया परके शरणानैं प्रवेश करै वा अनाथशालामैं प्रवेश करि आशाकूं करै, सोहू आजीवकुशील है बहुरि विद्याप्रयोगादिक करिकै परके द्रव्यहरणादिक डिंभ दिखावनेमें तत्पर वा इंद्रजालादिक करिकै जो लोककूं विस्मयरूप करै, सो कुहनकुशील है ॥ बहुरि जो वृक्षनिकी वा गुल्म जे छोटे वृक्षनिकी पुष्पनिकी फलनिकी उत्पत्ति दिखावै वा गर्भस्थापनादिक करै, सो संमूर्छनाकुशील है। जो कीटादिक त्रसजातिका अर वृक्षादिकनिका फलपुष्पादिकनिका गर्भका नाश करै वा शाप देवै, सो प्रपातनकुशील है। बहुरि जो क्षेत्र चतुष्पद सुवर्ण इत्यादिक परिग्रह ग्रहण करै, तथा हरित कंदफलका भोजन करै, उद्देश्या आहार करै, अशुद्धवसतिका ग्रहण करै, परस्त्रीनिकी कथानिमें जाकै राग होइ, मैथुनसेवामैं तत्पर होइ, प्रमादी होइ विकाररूप जिनका वेष होय, ते समस्त कुशीलजातिके भ्रष्ट मुनि हैं। इनकी संगतितैं कुमतिमैं पतन होय है ॥ ३॥

अब संसक्तके लक्षण कहे हैं ॥ जो सुंदरचारित्रमें प्रीति नहीं करै, कुचारित्रमें प्रीतिका धारक होइ, नटकीनांई अनेक खोटे रूप भेषका ग्रहण करनेवाला होइ, पंचेंद्रियनिके विषयनिमैं आसक्त होइ, तीन गौरवतामैं आसक्त होइ स्त्रीनिके विषयनिमैं संकल्पकूं धारता होइ, गृहस्थजननिका संसर्ग जाकूं प्रिय होय, सो संसक्तजातिका भ्रष्टमुनि है ४

जो उन्मार्गचारी संघबाह्य प्रवर्तन एकाकी करता होइ, सो स्वच्छंद है। जिसके आहार विहार वेष उपदेश शयन आसन लोंच त्याग ग्रहण जिनसूत्रकी आज्ञारहित यथेच्छ होइ, सो स्वच्छंद है॥ ५॥ ऐसैं पंचजातिके भ्रष्ट तपस्वी कहे, इनकै आराधना स्वप्नहूमैं नही होय है॥

बहुरि जे भावनिमैंतैं शंकादिकदोष दूरि नही कीये होइ अर जे कषायनिके वशवर्ती हैं, अभिमानादिक कषायनिकूं त्यागनेकूं समर्थ नही हैं, अर जिनकै धर्ममें अनुराग अति मंद है, अर जे सम्यग्दर्शनादिक गुण अर गुणनिके धारनेवाले पुरुषनिका अपमान करनेवाले हैं, अर प्रचुर मायाचारकूं प्राप्त भये हैं, अर निदान करनेवाले हैं, अर जे इंद्रियनिके सुखके स्वादमें लंपटी हैं, मोकूं कहा प्रयोजन है ऐसैं संघके कार्यमें अनादररूप प्रवर्ते हैं, बहुरि सम्यग्दर्शनादिक गुणनिमैं सूते हैं—उत्साहरहित हैं, "अर मिथ्यात्व असंयम कषायनिमैं प्रचुर प्रवृत्ति करावनेवाले जे वैद्यकशास्त्र, मायाचारके शिखावनेवाले कौटिल्यशास्त्र, स्त्रीपुरुषनिके लक्षणशास्त्र, धातुवाद काम लोभ विषय मायाचारके वधावनेवाले काव्य नाटकादिक शास्त्र, वा चोरविद्याके शास्त्र वा शस्त्रविद्याके जीवनिके मारनेपकडने दाव घाव करनेके शास्त्र, तथा चित्रकला गंधर्वकलाके तथा गंधादिक करनेके खोटे शास्त्र, तिनकूं पापसूत्र कहिये हैं" इनमें

जो अभ्यास आदर करवावाले हैं ते अर वांछित विषयनिके प्राप्तीके अर्थि जिननैं आशा बांधि राखी है, अर तीन गारवकरि आपकूं बडा मानि रहे हैं, अर जे विकथादिक पंचदशप्रमादनिमैं आसक्त हैं, अर जे पंचसमितिविषैं तीन गुप्तिविषैं अर शीलसंयम गुणनिविषैं भावनारहित हैं, अर जे परनिंदाविषैं आसक्त हैं, अर जिनकै भावनिकी शुध्दीमैं अनादर है, अर जिनकी परिग्रहमें तृष्णा नही घटे है, अर जो मोह अज्ञान ताकी आधिक्यतासहित हैं, अर जे सदोषवस्तूका सेवनमें तत्पर हैं, अर जे शब्द रस रूप गंध स्पर्शरूप जे इंद्रियनिके विषय तिनमैं मूर्छित हैं—अति आसक्त हैं, बहुरि जे परलोकके हितमें निर्वांछक हैं, अर जे इस लोकसंबंधी कार्यमें जाग्रत हैं, अर जे स्वाध्यायादिक धर्मकार्यनिमैं अनुद्यमी हैं—आलसी हैं, अर जे संक्लेशरूप बुध्दीके धारक हैं, बहुरि जे समस्त मूलगुण उत्तरगुणनिमैं सदाकाल अतिचारदोष लगावे हैं, ते चारित्रमोहके क्षयोपशमकूं नही प्राप्त होय हैं ॥ गाथा—

एवं मूढमदीया । अवंतदोसा करेंति जे कालं ॥
ते देवदुब्भगत्तं । मायामोसेण पावंति ॥ ५४ ॥

अर्थ— ऐसैं जे पूर्वोक्तप्रकार मूढबुध्दि नही वमन कीये हैं दोष जिननैं ऐसे दोषनिके धारक जे काल करे हैं, ते मायाचारकरिकैं असत्यवचनकरिकैं देवदुर्भगता जो

देवनिमैं नीचता ताकूं प्राप्त होय हैं ॥ गाथा—

किं मज्झ णिरुच्छाहा । भवंति ते सव्वसंघकज्जेसु ॥
ते देवसमिइवज्झा । कप्पंते हुंति सुरमिच्छा ॥ ५५ ॥

अर्थ— बहुरि जे समस्त संघके कार्यनिमैं उत्साहरहित हैं, "जो, मोकूं कहा? मैंही हूं कहा? मोसूं मेराही कार्य नही बणै! मै कौनका करूं?" ऐसैं समस्त संघके हितमें कार्यमें वैयावृत्त्यमें अनादरकरि सहित हैं, ते देवनिकी सभाके बाह्य वसनेवाले सुरम्लेंछ होय हैं, देवनिमैं म्लेंछसमान हैं ॥ गाथा—

कंदप्पभावणाए । देवा कंदप्पिया मदा होंति ॥
खिब्भिसियभावणाए । कालगदा होंति खिब्भिसिया ॥ ५६ ॥

अर्थ— जो असत्यवचन निंद्यवचन आप बोलै औरनिकूं बुलावै अर कामरतिमैं लीन, सो कंदर्प भावना है। सो कंदर्पभावनाकरिकैं कंदर्पदेवनिमैं उपजे है। बहुरि जो तीर्थंकरनिकी आज्ञातैं प्रतिकूल होइ अर संघका तथा चैत्य जो प्रतिमाका तथा जिनसूत्रका विनयरहित अविनयी होइ मायाचारी होय, सो किल्बिषभावना है। सो किल्बिषभावनाकरि जो मरण करे है, सो किल्बिषजातिके देवनिमैं उपजे हैं ॥ गाथा—

अभिजोगभावणाए । कालगदा आभिउगिया हुंति ॥

तह आसुरीयजुत्ता । हवंति देवा असुरकाया ॥ ५७ ॥

अर्थ— जो साधु तंत्रमंत्रादिक बहुत भावनिनैं 'अभिजुंक्ते' नाम करे है, तथा हास्यादिक बहुत वाग्जालनिकूं करे है, सो अभियोगभावना है । अभियोगभावनाकरिकै वाहनजातिका आभियोग्यदेवनिमैं उपजे हैं । बहुरि जो क्रोधी मानी मायावी होइ तथा तपमें चारित्रमें संक्लेशसहित होइ अर दृढवैरमें जाकी रुचि होइ, सो आसुरी-भावनासहित है । सो जीव आसुरीभावनाकरि असुरदेवनिमैं उपजे है ॥ गाथा—

सम्मोहणाए कालं । करित्तु दुंदुगासुरा हुंति ॥
अण्णं पि देवदुग्गइ । उववंति विराधया मरणे ॥ ५८ ॥

अर्थ— उन्मार्गका उपदेश देना, अर मार्ग जो रत्नत्रय ताका नाश करना, अर सांचे मार्गकूं बिगाडि अपना नवीनमार्गका स्थापन करना, मिथ्यात्वके उपदेशकरि जगतकै मोह उपजावना ऐसी सम्मोहीभावनाकरि मरण करे हैं, ते संमोहजातीके स्वच्छंददेवनिमैं उपजे हैं । मरणकालमें दर्शन-ज्ञान-चारित्रके विराधक हैं ते अन्यहू देवदुर्गतिनिकूं प्राप्त होय हैं ॥ गाथा—

इय जे विराधइत्ता । मरणे असमाधिणा मरिज्जण्हू ॥
तं तेसिं वालमरणं । होइ फलं तस्स पुव्वुत्तं ॥ ५९ ॥

अर्थ— इसप्रकार जे मरणकालमें रत्नत्रयकी विराधना करि असमाधि जो धर्ममें असावधानताकरि मरण करे हैं, तिनकै सो बालमरण होय है। अर बालमरणका फल पूर्वै ग्रंथकी आदिमैं वर्णन कीया, सोही संसारमें भ्रमण करावनेवाला जानना ॥

जे सम्मत्तं खवया । विराधइत्ता पुणो मरेज्जण्हू ॥
ते भवणवासिजोदिस । भोमेज्जा वा सुरा हुंति ॥ १९६० ॥

अर्थ— बहुरि जे क्षपक सम्यक्त्वकी विराधना करि अर मरण करे हैं, ते भवनवासी वा ज्योतिष्कदेव वा व्यंतरदेव होय हैं ॥ गाथा–

दंसणणाणविहूणा । तदो चुदा दुक्खवेदणुम्मीए ॥
संसारमंडलगदा । भमंति भवसागरे मूढा ॥ ६१ ॥

अर्थ— बहुरि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानकरि हीन ऐसे मूढ मिथ्यादृष्टि भवन व्यंतर ज्योतिषी देवनितैं चयकरिकै संसारमंडलकूं प्राप्त भये संसाररूप समुद्रमें भ्रमण करे हैं। कैसाक है संसारसमुद्र? दुःखवेदनाही हैं लहरी जामैं ॥ भावार्थ– मिथ्यादृष्टि आराधनाका नाश करि देवदुर्गतिकूं प्राप्त होइ बहुरि संसारहीमैं अनंतानंतकाल परिभ्रमण करे हैं ॥

जो मिच्छत्तं गंतू । ण किण्हलिस्साइपरिणदो मरदि ॥
तल्लेसो सो जायइ । जल्लेसे कुणदि जो कालं ॥ ६२ ॥

अर्थ— जो मिथ्यात्वकूं प्राप्त होइकरिकैं कृष्णादिकलेश्यारूप परिणामनैं प्राप्त होइ जो मरे है, सो जिस लेश्याकूं धारण करि मरै तिसही लेश्याका धारक होय है ॥

इति सविचार भक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषैं आराधनाका फलका वर्णन इकतालीस गाथानिमैं करि, गुणतालीसमा अधिकार समाप्त कीया ॥ ३९ ॥

आराधनामरण करि परलोक जानेका वर्णन तो लेश्याके अनुसारि कह्या ॥ अब क्षपकका मृतकशरीर रह्या, तिसके क्षेपनेका विधानका है वर्णन जामैं ऐसा विजहना नामा चालीसमां अधिकार पैंतीस गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

एवं कालगदस्स दु । सरीरमंतो व होज्ज वाहिं वा ॥
विज्जावच्चकरा तं । सयं विकिंचंति जदणाए ॥ ६३ ॥

अर्थ— ऐसैं पूर्वोक्तप्रकार मरणकूं प्राप्त भया जो क्षपक, ताका शरीरके मांहि वा वारै कफमलादिक होइ, तो वैयावृत्यके करनेवाले यत्नाचारकरि तिसकूं दूरि करे हैं ॥

समणाणं ठिदिकप्पो । वासे वासे तहेव उडुवंधे ॥
पडिलिहिदव्वा णियमा । णिसीहिया सव्वसाधूहिं ॥ ६४ ॥

अर्थ— सर्वही साधूनिनैं वर्षवर्षमें वा ऋतुका आरंभमें निषीधिका नियमतैं प्रतिलेखन करनेयोग्य है, ऐसा मुनीश्वरनिका स्थितिकल्प है। इसका विशेष तो आगममें

जानेविना लिखनेमें आवै नही। जो आचारांगमें स्थितिकल्प है, सो प्रमाण है। परंतु सामान्य इसमें ऐसा है– जो, मुनीका शरीरके स्थापन करनेयोग्य स्थानकूं निषीधिका कहिये हैं॥ अव निषीधिका कैसीक होय, ताहि कहे हैं॥ गाथा–

एगंता सालोगा। णादिविकिट्टा ण चावि आसण्णा॥
विच्छिण्णा विद्धत्था। णिसीहिया दूरमोगाढा॥ ६५॥
अइसुइ असुसिर अघसा। उज्जोवा वहुसमा असिणिद्धा॥
णिज्जंतुका अरहिदा। अविला य तहा अणावाधा॥ ६६॥

अर्थ— परकै अदृश्य ऐसी एकांत होइ, अर उद्योतकरि सहित होइ, अतिदूर नही होइ, अतिनिकट नही होइ, अर विस्तीर्ण होइ, अर विध्वस्त कहिये मर्दली हुई होइ, अर अतिशयकरि अत्यंत दृढ होइ ऐसी निषीधिका होइ, वहुरि अतिपवित्र होइ, बिलरहित होइ, घासरहित होइ, उद्योतसहित होइ, वहुतप्रकारकरि सम होइ, उच्चनीच नही होइ, सचिक्कणतारहित होइ, निर्जंतु होइ, रजरहित होइ, अविचल होइ, वाधारहित होइ॥ गाथा–

जा अवरदक्खिणाए। व दक्खिणीए य अहव अवराए॥
वसधीदो विरइज्जइ। णिसीधिया सा पसत्थात्ति॥ ६७॥

अर्थ— जो निषीधिका होइ सो वसति जो नगर ग्राम तातैं पश्चिमदक्षिणके मध्य नैऋतविदिशामैं वा दक्षिणदिशाविषैं अथवा पश्चिमदिशाविषैं वर्णन करी है। इनि तीन दिशामैं निषीधिका प्रशंसायोग्य कही है ॥ गाथा—

सव्वसमाधी पढमा-। ए दक्खिणाए दु भत्त मो सुलभं ॥
अवराए सुविहारो। होदि य से उवधिलाभो य ॥ ६८ ॥

अर्थ— जो निषीधिकाका लाभमें कोऊ निमित्त विचारै तो ऐसा जानना— जो, वसतीकी नैऋतकोणमें पूर्वैं कही तैसी वसतिका होय तो समस्तसंघमें समाधि जो आराधनाका लाभ होसी। अर दक्षिणमैं प्राप्त होय तो आगै संघकूं भोजनका लाभ सुलभ होसी। अर पश्चिममैं प्राप्त होय तो जानिये संघका आगानै विहार सुखरूप होसी। तथा संघमें पीछी पुस्तक कमंडलादिकनिका लाभ होसी ॥ गाथा—

जदि तेसिं वाघादो। दट्ठवा पुवदक्खिणा होइ ॥
अवरुत्तरा वि पुवा। उदीचिपुव्वुत्तरा कमसो ॥ ६९ ॥

अर्थ— जो पूर्वोक्तदिशामैं निषीधिका नही मिलै, तो पूर्वदक्षिण कहिये अग्निकोणमें वा वायुकोणमें वा पूर्वमैं वा उत्तरमैं वा ईशानमैं मिलै, तो, तिनका निमित्तज्ञानसूं ऐसा फल जाननां ॥ गाथा—

एदासु फलं कमसो । जाणिज्ज तुमंतुमा य कलहो य ॥
भेदो य गिलाणं पि य । चरिमा पुण कड्ढदे अण्णं ॥ १९७० ॥

अर्थ— इनका फल क्रमतैं ऐसा जानना, अग्निदिशामैं वसतिका प्राप्त होइ तो आगानैं संघमें ईर्षा होयगी । पवनादिदिशामैं प्राप्त होइ तो ऐसा जानना, जो, संघमैं कलह होसी । पूर्वदिशामैं प्राप्त होइ तो संघमें भेद पडेगा ऐसा फल जानना । उत्तरमें निषीधिका प्राप्त होइ तो, जानिये, संघमें रोग व्याधि होनी है । ईशानविदिशामैं निषीधिका प्राप्त होइ तो संघमें परस्पर पक्षपात वधसी ऐसा फल जानना ॥

जं वेलं कालगदो । भिक्खू तं वेलमेव णीहरणं ॥
जग्गणबंधणछेदण- । विधी अवेलाए कादव्वा ॥ ७१ ॥

अर्थ— जिस अवसरविषैं साधूका मरण होइ, तिस वेलाविषैंही उसका देहका निकासना—लेजावना है । अर जो लेजावनेका अवसर नही होय—रात्री इत्यादिकका अवसर होय; तो जागरण, बंधन, छेदन ये तीन विधि करै ॥ अत्र जागरण जो क्षपकके निर्जीवदेहके निकट जागना सो कैसेकसे मुनि तहां जागते रहै सो कहे हैं ॥

बाले वुड्ढ सीहे । तवस्सिभीरुग्गिलाणए दुहिदे ॥
आयरिए वि विकिंचिय । धीरा जग्गंति जिदणिद्दा ॥ ७२ ॥

अर्थ— बालमुनि, तथा वृद्धमुनि, नवीन शिक्षकमुनि, बहुत तपश्चरण करनेमें उद्यमी ऐसे तपस्वी मुनि, तथा कायरस्वभावके धारक भीरु मुनि, तथा व्याधिसहित रोगी मुनि, तथा वेदनाकरि दुःखित मुनि, बहुरि आचार्यमुनि इनकूं वर्जि करि धीर वीर निद्राके जीतनेवाले क्षपकका मृतकशरीरके निकट जागरण करे हैं—जागे हैं ॥ अब कैसे मुनि बंधन करे हैं सो कहे हैं ॥ गाथा—

गीदत्था कदकरणा । महावलपरक्कमा महासंता ॥
वंधंति य छिंदंति य । करचरणंगुट्ठयपदेसे ॥ ७२ ॥

अर्थ— ग्रहण कीया है पदार्थनिका सत्यार्थस्वरूप जिननैं ऐसे, कीये है करण जिननैं, महान् है बल पराक्रम जिनमैं, अर महान् आत्मवीर्यके धारक ऐसे मुनि हैं ते क्षपकके शरीरके हस्त वा पादके अंगुष्ठका किंचित् प्रदेशनैं बांधै वा छेदै ॥ इहां कोऊ कहै– मृतक मुनिके अंगुष्ठके प्रदेशकूं कैसें बांधै? कैसें छेदै? तिसका उत्तर यह है– जो, ऐसा सामान्यही इहां लिख्या है। विशेष अन्यग्रंथनितैं जाननेमें आया नही, यातैं विशेष लिखना सूत्रकी आज्ञाविना होय नही। तातैं जैसैं भगवान् ज्ञानी देख्या तैसैं प्रमाण है॥ ऐसैं अंगुष्ठके प्रदेशकूं छेदन बंधन नही करे तो कहा दोष आवै? ऐसी शंका होतैं दोषकूं दिखावे हैं ॥ गाथा–

जदि वा एस ण कीरि- । ज्ज विधी तो तत्थ देवदा कोइ ॥
आदाय तं कलेवर- । मुट्ठिज्ज रमिज्ज वाधिज्ज ॥ ७४ ॥

अर्थ— जो ऐसैं जागरण तथा अंगुष्ठप्रदेशमें छेदन बंधन नही करै अर कदाचित् कोई धर्मका द्रोही वा कौतुकी व्यंतरादिक देव तिस मृतककलेवरमें प्रवेश करि ऊठि खडा हुवा अनेक क्रीडा करै वा संघमें बाधा करै तो संघमें नवीन मुनि कायरमुनि मंद-ज्ञानी मुनिनके परिणाम दर्शन–ज्ञान–चारित्रमें शिथिल होजाय तो बडा अनर्थ प्रकट होइ धर्ममें उपद्रव होय! तातैं जागरण छेदन बंधन करे हैं ॥ इस लोकमें व्यंतर निरंतर भरे हैं। ग्राममें, नगरमें, वनमें, पर्वतमें, नदीमें, गुफामें, महल मठ मकानमें, वृक्ष कूप बावडी मार्ग समस्त क्षेत्रमें निरंतर विचरे हैं। तातैं जागरण छेदन बंधन करनेतैं कोई धर्मतैं पराङ्मुख देवता उपद्रव नही करि सके हैं ॥ गाथा–

उवसयपडिदावणं । उवणगहिदं तु तत्थ उवकरणं ॥
सागारियं च दुविहं । परिहारियमपरिहरियं वा ॥ ७५ ॥

इस गाथाका अर्थ हमारे जाननेमें नही आया वा टीकाकारहू नही लिख्या है। बहुज्ञानी होइ, सो समझि अर्थ लिखियो ॥ गाथा–

जइ विखखादा भत्तप- । इण्णा अज्जा व हुज्ज कालगदा ॥

देउल सागारित्ति व। सिवियाकरणं पि तो होज्ज ॥ ७६ ॥

अर्थ— मुनीश्वरनिका मरण अनेक वनमें पर्वतानिमैं, गुफानिमैं, नदीनिके पुलिनमें, वृक्षनिके कोटरनिमैं होइ है; सो वहां देहकूं कोन उठावै? कलेवर पड्या रहे है, वा जंतु भक्षण करे हैं, पवनादिकनितैं शुष्क होइ जाय है, अर कोऊ खबरिही नही पावे है। अर कदाचित् कोऊ जानै तोहू उनका कुछ उठावनेमें वा दग्ध करनेमें गृहस्थनिका धर्म है। ऐसा कोऊ श्रावकाचार यतीका आचारमें कथनकी विख्याततताहू नही है। बहुरि लोकमैंहू विख्यात है- कोऊकै अग्नितैं दग्ध करना है कोऊ देशमें जलमें नदीमैं वहाय देना है, कोऊकै पर्वतनिमें मेलि आवना है, कोऊकै वृक्षनिकै बांधि आवना है, कोऊकै जमीमैं गाडना है, कोऊकै भीतीमैं चुनि देना है, कोऊकै समुद्रमें नाखना है, कोऊकै वनमें मेलि आवना है इत्यादिक अनेक रीति हैं। परंतु जो भक्तप्रत्याख्यान नामा समाधिमरण लोकनिमैं विख्यात होइ तथा समाधिमरणके धारीनिका अनेक लोक दर्शनकूं आवते होय सब गांवमें गृहस्थनिमैं जिन मुनीश्वरनिका वा आर्यिकाका समाधिमरण प्रकट होइ, तो मुनिके समाधिमरण करनेकी उस वसतिकाका स्वामी वा अन्य गृहस्थजन आय मुनिके देहके लेजायवेकूं शिबिका जो पालकी रथी ताहि करै॥ पाछै कहा करै सो कहे हैं॥

तेण परं संठाविय । संथारगदं च तत्थ वंधित्ता ॥
उत्थिसुरक्खणट्ठं । गामं तत्तो सिरं किच्चा ॥ ७७ ॥
पुव्वाभोइयमग्गे- । ण आसु गच्छंति तं समादाय ॥
अट्ठिदमणियत्तंता । य पिट्ठदो अणिज्झंता ॥ ७८ ॥
कुसमुट्ठिं घित्तूण य । पुरदो एगेण होइ गंतव्वं ॥
अट्ठिद अणियत्तंते- । ण पिट्ठदो लोयणं मुच्चा ॥ ७९ ॥
तेण कुसमुट्ठिधारा- । ए अव्वोच्छिण्णाए समणियादाए ॥
संथारो कादव्वो । सव्वत्थ समो संगिं तत्थ ॥ १९८० ॥ [1]

अर्थ–– संस्तरमें प्राप्त जो क्षपकका शरीर, ताही, गृहस्थजनकरि कीई जो शिबिका तिसमें स्थापन करि, अर तिसमें उछलनेकी रक्षाके अर्थि बंधन करि, अर ग्रामके सन्मुख मस्तक करि, तिस मृतककी शिबिकाकूं गृहस्थजन उठायकरिकै अर पूर्वें देख्या जो मार्ग तिसकरिकै शीघ्रही गमन करै। अर मार्गमें खडा नही रहे। अर उलटा वाहुडे नही। ऊठि पाछै अवलोकन छोडिकरि गमन करै, पाछा नही देखै। बहुरि एक पुरुष कुशमुष्टि जो डाभ घास तृणकी मूठी है ताहि ग्रहण करि शिबिकाके आगै गमन करै। अर मार्गमें खडा नही रहै। अर पाछा वाहुडे नही। अर पाछानैं अवलोकन छांडि गमन

[1] सकृत

करै। अर अगाऊ जाय पूर्वें देखी हुई जो निषीधिका ताकेविषैं डाभकी मूठी विच्छेद-रहित बराबरि पटकि अर मुनिका देह स्थापन करनेकी भूमीकूं सर्वत्र समान करै॥ अर जो तिस क्षेत्रमें डाभ तृण नही होइ, तो कैसैं भूमीकूं सम करै, सो कहे हैं॥ गाथा—

जत्थ ण होज्ज तणाइं। चुण्णेहिं वि तत्थ केसरेहिं वा॥
सत्थरिदव्वा लेहा। सव्वत्थ समा अवुच्छिण्णा॥ ८१॥

अर्थ— जहां भूमी सम करनेकूं डाभ नही होइ-तृण नही होइ, तो ईंटनिके चूर्णकरिकै वा वृक्षनिकी शुष्ककेसरिकरिकै सर्वत्र समान विच्छेदरहित भूमि करै। अर जो भूमि सम नही होय, तो निमित्तज्ञानीतैं ऐसा आगै होना दीखे है॥ गाथा—

जदि विसमो संथारो। उवरिं मज्झे वहिज्ज हिट्ठा वा॥
मरणं गिलाणयं वा। गणिवसभजदीण णायव्वा॥ ८२॥

अर्थ— जो संस्तर ऊपरि विषम होइ-सम नही होइ तो ऐसा जानिये- जो, संघमें आचार्यका मरण होसी वा आचार्यनिकै रोग आवसी। अर जो मध्यमें विषम होइ तो जानिये- संघमें कोऊ प्रधानमुनिकै मरण वा व्याधि-रोग होसी। अर जो नीचै विषम होइ तो जानिये- कोऊ यतिका मरण होसी वा रोग आवसी। ऐसा निमित्ततैं जानिये हैं॥ अब क्षपकके शरीरकूं कैसैं स्थापन करै सो कहे हैं॥ गाथा—

जत्तो दिसाए गामो । तत्तो सीसं करित्तु सोवधियं ॥
उट्ठंतरक्खणट्ठं । वोसरिदव्वं सरीरं तं ॥ ८३ ॥

अर्थ— जिस दिशामैं ग्राम होई तिस दिशाविषैं क्षपकका मस्तक करि पिच्छिका-सहित शरीरकूं स्थापन करै। मृतकका व्यंतरादिकरि ऊठनेकी रक्षाके अर्थि ग्रामकी वोडी मस्तक करि उपकरण निकट धरै॥ मृतकके निकट मयूरपिच्छिकादिक उपकरण स्थापनेमें गुण दिखावे हैं ॥ गाथा—

जो वि विराधिय दंसण । अंते कालं करित्तु होज्ज सुरो ॥
सो वि विवुज्झइ दट्ठू । ण सदेहं सोवाधिं सज्जो ॥ ८४ ॥

अर्थ— जो कदाचित् कोऊ क्षपक संक्लेशपरिणामनिमैं अंतकालमैं सम्यग्दर्शनकी विराधना करिकै अर व्यंतर असुरादिक देव जाय उपज्या होय अर उस स्थानकूं आवै तो अपना शरीरकूं पीछीसहित देखै तो फेरि ज्ञान उपजि सम्यक्त्व ग्रहण करै, जो, मै पूर्वं संममी था अब मै कैसैं विकारी भया हूं! ऐसैं धर्ममें दृढ होजाय। तातैं मृतकमुनिकै निकट उपकरण स्थापन करनेमें गुण कह्या है॥ बहुरि आराधना समस्तमैं विख्यात होइ जिसका पार पडना बडी प्रभावना है॥ इस आराधनाके धारकके मरणतैं निमित्त विचारिये तो संघमें आगानै भावीकाहू कितनाक निश्चय होय है, सो कहे हैं॥

णत्ताभाए रिक्खे । जदि कालगदो सिवं तु सव्वेसिं ॥
एक्को दु समे खित्ते । दिवड्ढखित्ते मरंति दुवो ॥ ८५ ॥

अर्थ— जघन्यनक्षत्रमें आराधनाके धारकका मरण होइ तो जानिये- समस्त संघका कल्याण होसी । मध्यमनक्षत्रमें मरण होइ तो एकका मरण और होसी । महान् नक्षत्रमें मरण करै तो दोयका मरण होना जानै ॥ गाथा-

गणरक्खणत्थ तह्मा । तणमयपडिबिंबयं तु कायव्वं ॥
एक्कं तु समे खित्ते । दिवड्ढखित्ते दुवे दिज्जा ॥ ८६ ॥

अर्थ— तातैं गणरक्षाके अर्थि मध्यमनक्षत्रमें तृणमय एक प्रतिबिंब जो एक पूलो सो वहां निकट मेलना योग्य है । अर उत्तम नक्षत्रमें तृणमय दोय मुष्टि धरै ॥ गाथा-

तट्ठाणसावणं चिय । तिखुत्तो ठविय मदयपासम्मि ॥
विदिय वियप्पियभिक्खू । कुज्जा तह विदियतिदियाणं ॥ ८७ ॥

अर्थ— तिस स्थानमें मृतकके निकट तृणमय पिंड स्थापना करि "द्वितीयोऽर्पितः" ऐसैं कहै । तथा द्वितीय स्थापन कीया ऐसैं कहि तृणमय पूला दोय मेलै ॥ गाथा-

असदि तणे चुण्णेहिं । व केसरिच्छारिट्ठिकादिचुण्णेहिं ॥
कादव्वो थ ककारो । उवरे हिट्ठा तकारो से ॥ ८८ ॥

उवगंहिदं उवकरणं । हविज्ज जं पाडिहारियं किंचि ॥
पडिवोधित्ता सम्मं । अप्पेदवं तयं तेसिं ॥ ८९ ॥

अर्थ— अर उस क्षेत्रमें तृण नहीं होइ तो पुष्पनिकी केसरी वा भस्म वा ईंटनिका चूर्णकरिकै उपरि ककार लिखि नीचे तकार लिखै। अर जो पींछी कमंडल उपकरण होइ तो तिसकूं सम्यक् प्रतिलेखन करि अर्पण करि दे–स्थापन करि दे ॥ ऐसैं मृतकक्षपकके स्थापनकी विधि कही ॥ अब संघके मुनि तहां क्षपककी समाधिमरण करनेकी वसतिकामैं कहा करै सो कहे हैं ॥ गाथा–

आराधणपत्तीयं । काउंसग्गं करेइ तो संघो ॥
अधिउत्ताए इच्छा- । गारं खवयस्स वसधीए ॥ १९९० ॥

अर्थ— तीठापाछैं समस्त संघ आपकै आराधनाके अर्थि कायोत्सर्ग करै। जैसैं इनूकैं आराधना हुई, तैसैं हमारैहू आराधना होहू। इस अभिप्रायकूं धारि कायोत्सर्ग समस्त संघके साधु करै ॥ बहुरि जिस वसतिकामैं क्षपककै आराधना भई, तिस वसतिकाके अधिपतिदेवताकूं समस्त मुनि इच्छाकार करै– भो, स्थानके स्वामी हो! तिहारी इच्छाकरिकै इस क्षेत्रमें संघ तिष्ठनेकी इच्छा करे है। जातैं मुनीश्वरनिका ऐसा सदाकालही आचार है– जिस वसतिकादिस्थानमें प्रवेश करै तहां तो ऐसा वचन

कहि प्रवेश करै " युष्माकमिच्छया अत्रासितुमिच्छामि—भो, स्थानके स्वामी हो! तुमारी इच्छाकरि इस क्षेत्रमें स्थिति रहनेकी इच्छा करूं हूं " अर स्थान छांडि जाय तदि आशीर्वाद देजाय। ऐसा नित्यही नियोग है॥ गाथा—

सगणत्थे कालगदे। खमणमसज्झाइयं च तद्दिवसं॥
ण ज्झाइ परगणत्थे। भयणिज्जं खमणकरणं वि॥ ९१॥

अर्थ— अपने गणमें तिष्ठता मुनि कालकूं प्राप्त होतें तिस दिनविषैं समस्त संघ उपवास करै अर तिस दिन स्वाध्याय नही करै। अर परगणमें तिष्ठता मुनि मरणकूं प्राप्त होइ तो स्वाध्याय नही करै अर उपवास करै वा नही करै॥ गाथा—

एवं पदिट्ठवित्ता। पुणो वि तदीयदिवसे उविक्खंति॥
संघस्स सुहविहारं। तस्स गदी चेव णादुं जे॥ ९२॥

अर्थ— ऐसैं क्षपकके शरीरकूं स्थापन करिकै बहुरि तृतीय दिवसविषैं कोऊ निमित्तके जाननेवाला संघका सुखरूप विहार जाननेकूं अर क्षपककी गति जाननेकूं तृतीय दिनविषैं क्षपकके शरीरकूं अवलोकन करै॥ गाथा—

जदि दिवसे संचिट्ठइ। तमणालद्धं च अक्खयं मडयं॥
तदि वासाणि सुभिक्खं। खेमसिवं तम्मि रज्जम्मि॥ ९३॥

अर्थ— जितने दिन क्षपकका मृतकशरीर वनके जीवनिकरि अखंड तिष्ठै—वनके जीव भक्षण नहीं करै, तितने वर्ष तिस राज्यमें सुभिक्ष क्षेम कल्याण रहे है। ऐसैं निमित्ततैं जानै ॥ गाथा—

जं वा दिससुवणीदं । सरीरयं खगचदुप्पदगणेहिं ॥
खेमं सिवं सुभिक्खं । विहरिज्जो तद्दिसं संघो ॥ ९४ ॥

अर्थ— पक्षी तथा चतुष्पादनिके समूह क्षपकका शरीरका खंड जिस दिशामैं लेगया होइ, तिस दिशामैं क्षेम शिव सुभिक्ष जाणिकरि तिस दिशामैं संघ विहार करै ॥ भावार्थ— क्षपकका कलेवरकूं तीसरे दिन कोऊ निमित्त ज्ञाननेवाला देखै। जिस दिशामैं उसके अंगका खंड पक्षी चतुष्पादकरि लेगया देखै तिस दिशामैं क्षेम सुभिक्ष जाणि विहार करै ॥ गाथा—

जदि तस्स उत्तमंगं । दिस्सदि दंता च उवरि गिरिसिहरे ॥
कम्ममलविप्पमुक्को । सिध्दिं पत्तोत्ति णादव्वो ॥ ९५ ॥
वेमाणिउ थलगदो । समम्मि जोदिसिय वाणविंतरिउ ॥
गड्डाए भवणवासी । एस गदी से समासेण ॥ ९६ ॥

अर्थ— क्षपककी गतिभी संक्षेपकरि ऐसी जानी जाइ है— जो, क्षपकका मस्तक

वा दंत पर्वतके शिखरउपरि दीखै तो ऐसा जानना- जो, कर्ममलरहित सिद्ध भया। अर मस्तक स्थलगत उन्नतभूमीमैं तिष्ठता दीखै, तो ऐसा जान्या जाय- जो, वैमानिक देव भया। अर समभूमीमैं दीखै, तो ज्योतिष्कदेवनिमैं वा व्यंतरदेवनिमैं प्राप्त भया। अर खाडेमैं दीखै, तो भवनवासीनिमैं प्राप्त भया। ऐसैं निमित्ततैं स्थूलपणाकरि गति जानी जाइ है॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिमैं चोतीस गाथानिकरि विजहन नामा चालीसमा अधिकार समाप्त कीया॥ ४०॥ अब सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणकी महिमा नव गाथानिकरि कहे हैं॥ गाथा-

ते सूरा भयवंता। आईच्चइऊण संघमज्झम्मि॥ प्रतिज्ञां कृत्वा।
आराधणापडाया। चउप्पयारा धिदा जेहिं॥ ९७॥

अर्थ— जे शूरवीर ज्ञानवंत संघके मध्य प्रतिज्ञा करि च्यारिप्रकार आराधनापताका ग्रहण करि, ते जगतमें धन्य हैं॥ गाथा-

ते धण्णा ते णाणी। लद्धो लाभो य तेहि सव्वेहिं॥
आराधणा भयवदी। पडिवण्णा जेहि संपुण्णा॥ ९८॥

अर्थ— जिनूनैं ए भगवान्‌संबंधी आराधना पाई, ते धन्य हैं, ते ज्ञानवंत हैं, तिनूनैं

समस्त लाभ पाया। जे आराधना अनंतकालहूमें प्राप्त नही भई ते प्राप्त भई, इससिवाय कोऊ तीन लोकमें लाभ नही है ॥ गाथा—

किं णाम तेहिं लोगे। महाणुभावेहिं हुज्ज ण य पत्तं ॥
आराधणा भयवदी। सयला आराधिदा जेहिं ॥ ९९ ॥

अर्थ— इस लोकके विषें जिन आराधनानिकूं महाप्रभाववान् पुरुषहू नही प्राप्त भये ऐसी भगवान् सर्वज्ञकरि आराधना करी जो भगवती आराधनाकूं जे समस्तप्रकारकरि आराधना करी, तिनका कहा महिमा कहूं? ॥ गाथा—

ते च्चिय महाणुभावा। धण्णा जेहिं च तस्स खवयस्स ॥
सव्वादरसत्तीए। उवविहिदाराधणा सयला ॥ २००० ॥

अर्थ— ते महानुभाव निर्यापकहू धन्य हैं, जिनूंनें सर्व आदरकरिकै समस्त शक्ति करिकै तिस क्षपकके समस्त आराधना कराई ॥ गाथा—

जो उवविधेदि सव्वा-। दरेण आराधणं खु अण्णस्स ॥
संपज्जदि णिव्विग्घा। सयला आराधणा तस्स ॥ १ ॥

अर्थ— जो पुरुष अन्य धर्मात्मा पुरुषकै समस्तप्रकार आदर करि, शरीरकी वैयावृत्य करि, धर्मोपदेश करि, धर्ममें दृढता करि, आहार पान औषध स्थानके दान

नेका जंघामैं बल घटि गया होई, परसंघमें जायवेकूं असमर्थ होई, तिस मुनिकै निरुध्दभक्तप्रत्याख्यान कह्या । जितनैं बल वीर्य देहमें रहै, तितनैं परकरि इलाज टहल वैयावृत्त्य नही करावै । आहारके अर्थि जानेमें, निहार करनेमें, विहार करनेमें, परका सहाय नही चाहै । अर जब शरीर थकिजाय, तदि अपने संघके मुनीश्वरनिके सहायकरि प्रवृत्ति करै ॥ गाथा-

इय संणिरुध्दमरणं । भणियं अणिहारिमं अवीचारं ॥
सो चेव जधाजोग्गं । पुव्वुत्तविधी हवदि तस्स ॥ ११ ॥

अर्थ— ऐसैं जंघामैं बलकी हीनताकरिकै तथा शरीरमें रोग व्याधिकरि पीडित होनेकरि अपने संघमें निरुध्द होगया—परगणमें जानेकूं समर्थ नही भया, तातैं याकूं निरुद्ध कहिये । बहुरि सविचार भक्तप्रत्याख्यानमें कही जो विधि तिसके अभावतैं याकूं अनिहारित कहिये । बहुरि अनियतविहारादिक विधि आचरणके अभावतैं अवीचार कहिये । अपने संघहीमैं आचार्यनिके समीपविषैं अवीचार कहिये शुध्द होइ करिकैं अर अपनी निंदा गर्हा करता ऐसा जितनैं आपमें शक्ति रहै तितनैं परसूं प्रतीकार नही करावता विहार करै—प्रवर्तन करै । जदि समस्तचेष्टाहीन होजाय, तादि परकरि अनुग्रह कीया संता विहार करै ॥ गाथा-

समस्त लाभ पाया । जे आराधना अनंतकालहूमें प्राप्त नही भई ते प्राप्त भई, इससिवाय कोऊ तीन लोकमें लाभ नही है ॥ गाथा—

किं णाम तेहिं लोगे । महाणुभावेहिं हुज्ज ण य पत्तं ॥
आराधणा भयवदी । सयला आराधिदा जेहिं ॥ ९९ ॥

अर्थ— इस लोकके विषैं जिन आराधनानिकूं महाप्रभाववान् पुरुषहू नही प्राप्त भये ऐसी भगवान् सर्वज्ञकरि आराधना करी जो भगवती आराधनाकूं जे समस्तप्रकारकरि आराधना करी, तिनका कहा महिमा कहूं? ॥ गाथा—

ते च्चिय महाणुभावा । धण्णा जेहिं च तस्स खवयस्स ॥
सव्वादरसत्तीए । उवविहिदाराधणा सयला ॥ २००० ॥

अर्थ— ते महानुभाव निर्यापकहू धन्य हैं, जिनूंनें सर्व आदरकरिकै समस्त शक्तिकरिकै तिस क्षपककै समस्त आराधना कराई ॥ गाथा—

जो उवविधेदि सव्वा- । दरेण आराधणं खु अण्णस्स ॥
संपज्जदि णिव्विग्घा । सयला आराधणा तस्स ॥ १ ॥

अर्थ— जो पुरुष अन्य धर्मात्मा पुरुषकै समस्तप्रकार आदर करि, शरीरकी वैयावृत्य करि, धर्मोपदेश करि, धर्ममें दृढता करि, आहार पान औषध स्थानके दान

करि, आराधना करावे है; तिस पुरुषकै निर्विघ्न समस्त आराधना परिपूर्ण होइ है ॥ अन्य धर्मात्मा पुरुषकूं आराधनामरण करायनेमें जे सहायी होय हैं, ते च्यारि आराधनाकी पूर्णता पाय लोकाग्रस्थानमें निवास करे हैं ॥ बहुरि जे आराधना करनेवालेके दर्शनकूं जाय हैं, तिनकी महिमा कहे हैं ॥ गाथा—

ते वि कदत्था धण्णा । य हुंति जे पावकम्ममलहरणे ॥
ण्हायंति खवयतित्थे । सव्वादरभत्तिसंजुत्ता ॥ २ ॥

अर्थ— ते पुरुषहू जगतमें धन्य हैं, कृतार्थ हैं। जे पापकर्मरूप मैलके हरनेवाले क्षपकरूप तीर्थमें समस्त आदरभक्तिकरि संयुक्त स्नान करे हैं। अर जे भक्तिसंयुक्त भये क्षपकके दर्शनमें प्रवर्ते हैं, ते धन्य हैं—कृतार्थ हैं॥ अब क्षपककै तीर्थपणा दिखावे हैं॥

गिरिणदियादिपदेसा । तित्थाणि तवोधणेहि जदि उसिदा ॥
तित्थं कधं ण हुज्जो । तवगुणरासी सयं खवउ ॥ ३ ॥

अर्थ— जो तपस्वीजन जिस पर्वत इत्यादिकके प्रदेशनिकूं प्राप्त होइ हैं, ते पर्वत नद्यादिक जगतमें तीर्थ मानि सेवन करिये हैं; तो तपगुणकी राशि ऐसा क्षपक आप तीर्थ कैसें नहीं होय? ॥ गाथा—

पुव्वरिसीणं पडिमा- । उ वंदमाणस्स होइ जदि पुण्णं ॥

खवयस्स वंदर्ड किह । पुण्णं विउलं ण पाविज्ज ॥ ४ ॥

अर्थ— जो पूर्वे ऋषि मुनि भये, तिनकी प्रतिमानिकूं वंदना करते पुरुषकै पुण्य होय है; तो साक्षात् क्षपककूं वंदना करता पुरुष प्रचुरपुण्यकूं कैसें नही प्राप्त होय? ॥

जो उल्लग्गदि आरा- । धयं सदा तिव्वभत्तिसंजुत्तो ॥
संपज्जदि णिव्विग्घा । तस्स वि आराधणा सयला ॥ ५ ॥

अर्थ— जो तीव्र भक्तिसंयुक्त होइ आराधनाके धारककी सदाकाल सेवन करे है, तिस पुरुषकै निर्विघ्न आराधना प्राप्त होय है, अर तिसकी आराधना सफल होय है॥

इति भगवती आराधना नाम ग्रंथविषें पंडितमरणके तीन भेदनिमैं सविचारभक्तप्रत्याख्यान–मरणका वर्णनके चालीस अधिकार उगणीससै गाथानिमैं समाप्त कीये ॥ अब पंडितमरणका दूजा भेद जो अविचारभक्तप्रत्याख्यान ताकूं उगणीस गाथानिमैं वर्णन करे हैं ॥ तिनमैं तीन गाथानिमैं अविचारभक्तप्रत्याख्यानका सामान्य भेद वर्णन करे हैं ॥ गाथा–

सविचारभत्तवोसर- । णमेवमुववण्णिदं सवित्थारं ॥
अविचारभत्तपच्च- । क्खाणं एत्तो परं वुच्छं ॥ ६ ॥

अर्थ— ऐसें सविचार भक्तप्रत्याख्यानकूं विस्तारसहित वर्णन कीया ॥ अब आगै

अविचार भक्तप्रत्याख्यानकूं कहूंगा ॥ गाथा-

तत्थ अविचारभत्त- । प्पइण्णमरणम्मि होइ आगाढे ॥
अपरक्कमस्स मुणिणो । कालम्मि असंपहुत्तम्मि ॥ ७ ॥

अर्थ— अल्पशक्तिका धारक जो मुनि ताकै आयुका बहुतकाल नहीं अवशेष रहै अर मरण शीघ्र आजाय तदि अविचार भक्तप्रत्याख्यानका अवसर जानना ॥ गाथा-

तत्थ पढमं णिरुद्धं । णिरुद्धतरयं तहा हवे विदियं ॥
तदियं परमणिरुद्धं । एवं तिविहं अवीचारं ॥ ८ ॥

अर्थ— तहां अविचारभक्तप्रत्याख्यान ऐसैं तीनप्रकार है । प्रथम निरुद्ध, द्वितीय निरुद्धतर, तृतीय परमनिरुद्ध । ऐसैं तीन नाम कहे ॥ अब निरुद्ध भक्तप्रत्याख्यान पंच गाथानिकरि कहे हैं ॥ तिनमैं निरुद्ध ऐसे मुनिकै होइ है—

तस्स णिरुध्दं भणिदं । रोगादंकेहिं जो समभिभूदो ॥
जंघावलपरिहीणो । परगणगमणम्मि ण समत्थो ॥ ९ ॥
जावय वलविरियं से । सो विहरदि ताव णिप्पडीयारो ॥
पच्छा विहरदि पडिज- । ग्गीयंतो तेण सगणेण ॥ २०१० ॥

अर्थ— जो मुनि रोगकी पीडाकरि पीडित होइ, अर परगणादिकमैं विहार कर-

नेका जंघामैं बल घटि गया होई, परसंघमें जायवेकूं असमर्थ होई, तिस मुनिकै निरुध्दभक्तप्रत्याख्यान कह्या। जितनैं बल वीर्य देहमें रहै, तितनैं परकरि इलाज टहल वैयावृत्त्य नही करावै। आहारके अर्थि जानेमें, निहार करनेमें, विहार करनेमें, परका सहाय नही चाहै। अर जब शरीर थकिजाय, तदि अपने संघके मुनीश्वरनिके सहायकरि प्रवृत्ति करै ॥ गाथा–

इय संणिरुध्दमरणं। भणियं अणिहारिमं अवीचारं ॥
सो चेव जधाजोग्गं। पुव्वुत्तविधी हवदि तस्स ॥ ११ ॥

अर्थ— ऐसैं जंघामैं बलकी हीनताकरिकै तथा शरीरमें रोग व्याधिकरि पीडित होनेकरि अपने संघमें निरुध्द होगया–परगणमें जानेकूं समर्थ नही भया, तातैं याकूं निरुद्ध कहिये। बहुरि सविचार भक्तप्रत्याख्यानमें कही जो विधि तिसके अभावतैं याकूं अनिहारित कहिये। बहुरि अनियतविहारादिक विधि आचरणके अभावतैं अवीचार कहिये। अपने संघहीमैं आचार्यनिके समीपविषैं अवीचार कहिये शुध्द होइ करिकैं अर अपनी निंदा गर्हा करता ऐसा जितनैं आपमें शक्ति रहै तितनैं परसूं प्रतीकार नही करावता विहार करै–प्रवर्तन करै। जदि समस्तचेष्टाहीन होजाय, तादि परकरि अनुग्रह कीया संता विहार करै ॥ गाथा–

करिकै अपने मनमेंही अरहंत सिध्द आचार्य उपाध्याय साधु इनिकूं अलोचना करै ॥

आराधणाविधी जो । पुव्वं उववण्णिदो सवित्थारो ॥
सो चेव जुज्जमाणो । इत्थ विही होइ णादव्वो ॥ २०२० ॥

अर्थ— जो पूर्वें आराधनाकी विधि विस्तारसहित वर्णन करी, सोही विधि अवसरकै योग्य इहांहू जाणवो जोग्य है ॥ गाथा--

एवं आसुक्कारम- । रणे वि सिज्झंति केइ धुदकम्मा ॥
आराधयित्तु केई । देवा वि विमाणिया होंति ॥ २१ ॥

अर्थ— इसप्रकार शीघ्र मरण होतैंहू केते महामुनि शुक्लध्यानकरि कर्मनिकूं उडाय सिध्दिकूं प्राप्त होय हैं । अर केई आराधनाकूं आराधिकारि वैमानिक देव होई है ॥ अब कोऊ आशंका करै-- जो, अल्पकालकरि निर्वाण कैसैं होइ? सो शंका दूरि करिवेके अर्थि कहे हैं ॥ गाथा---

आराधणाए तत्थ दु । कालस्स बहुत्तणं ण हु पमाणं ॥
बहवो मुहुत्तमत्ता । संसारमहण्णवं तिण्णा ॥ २२ ॥

अर्थ— तिस आराधनाविषैं कालका बहुतपणेका प्रमाण नही है । बहुत जीव अंतर्मुहूर्तमात्र आराधनामैं तिष्ठि संसारसमुद्रकूं तिरि गये हैं । जातैं क्षायिकसम्यक्त्व

नेका जंघामैं वल घटि गया होई, परसंघमें जायवेकूं असमर्थ होई, तिस मुनिकै निरुध्द्भक्तप्रत्याख्यान कह्या। जितनैं वल वीर्य देहमें रहै, तितनैं परकरि इलाज टहल वैयावृत्त्य नही करावै। आहारके अर्थि जानेमें, निहार करनेमें, विहार करनेमें, परका सहाय नही चाहै। अर जव शरीर थकिजाय, तदि अपने संघके मुनीश्वरनिके सहायकरि प्रवृत्ति करै ॥ गाथा-

इय संणिरुध्दमरणं। भणियं अणिहारिमं अवीचारं ॥
सो चेव जधाजोग्गं। पुव्वुत्तविधी हवदि तस्स ॥ ११ ॥

अर्थ— ऐसैं जंघामैं वलकी हीनताकरिकै तथा शरीरमें रोग व्याधिकरि पीडित होनेकरि अपने संघमें निरुध्द होगया—परगणमें जानेकूं समर्थ नही भया, तातैं याकूं निरुद्ध कहिये। वहुरि सविचार भक्तप्रत्याख्यानमें कही जो विधि तिसके अभावतैं याकूं अनिहारित कहिये। वहुरि अनियतविहारादिक विधि आचरणके अभावतैं अवीचार कहिये। अपने संघहीमैं आचार्यनिके समीपविषैं अवीचार कहिये शुध्द होइ करिकैं अर अपनी निंदा गर्हा करता ऐसा जितनैं आपमें शक्ति रहै तितनैं परसूं प्रतीकार नही करावता विहार करै—प्रवर्तन करै। जदि समस्तचेष्टाहीन होजाय, तादि परकरि अनुग्रह कीया संता विहार करै ॥ गाथा-

दुविधं तं पि अणीहा- । रिमं पगासं च अप्पगासं च
जणणादं च पगासं । इदरं च जणेण अणणादं ॥ १२ ॥

अर्थ— अवीचार भक्तप्रत्याख्यान दोयप्रकार है। एक प्रकाश, एक अप्रकाश। तिनमैं जो लोकनिके जाननेमें होइ, सो प्रकाश है। अर जो लोकनिमैं विख्यात नही होइ, सो अप्रकाश है॥ भावार्थ— लोकनिमैं कोऊका समाधिमरण विख्यात होइ, सो प्रकाश है। विख्यात नही होइ, सो अप्रकाश है॥ गाथा—

खवयस्स चित्तसारं । खित्तं कालं पडुच्च सजणं वा ॥
अण्णम्मि व तारिसय- । म्मि कारणे अप्पगासं तु ॥ १३ ॥

अर्थ— बहुरि क्षपककी बुद्धीके बलकूं तथा क्षेत्रकूं तथा कालकूं तथा स्वजननिकूं तथा औरहू कारणनिकूं प्रकाशके योग्य नही होतै समाधिमरणकी प्रकटता नही होइ है, तातैं अप्रकाश कहिये हैं। जो क्षपक क्षुधादिक परिषह सहनेमें असमर्थ होइ तथा वसतिका एकांतमें नही होइ वा अज्ञानी धर्ममें विघ्न करनेवाला होइ, तहां समाधिमरण तो करावै; परंतु देश-काल-द्रव्य-भावकी योग्यताविना प्रकट नही करै, सो अविचारभक्तप्रत्याख्यानका निरुद्ध नाम भेदमें अप्रकाश वर्णन कीया॥ अब निरुद्धतर नामा दूजा भेदकूं च्यारि गाथानिकरि वर्णन करे हैं॥ गाथा—

वालग्गिवग्घमहिसग- । यरिंछपडिणीगतेणमिच्छेहिं ॥
मुच्छाविसूचियादी- । हि हुज्ज सज्जो हु वावत्ती ॥ १४ ॥
जाव ण वाया अखिव- । दि वलं विरियं तु जाव कायम्मि ॥
तिव्वाए वेदणाए । जाव य चित्तं ण विक्खित्तं ॥ १५ ॥
णच्चा संवट्टिज्जं । तमाउगं सिग्घमेव तो भिक्खू ॥
गणियादीणं सण्णिहि- । दाणं आलोचए सम्मं ॥ १६ ॥

अर्थ— सर्पकरिकै तथा अग्निकरिकै तथा व्याघ्रकरिकै तथा महिषकरिकै तथा गजकरिकै तथा रींछकरिकै तथा शत्रुकरिकै तथा चोरनिकरिकै तथा म्लेंछनिकरिकै तथा मूर्छाकरिकै तथा विसूचिकादिककरिकै जो तत्काल शीघ्रतातैं आपत्ति आजाय तो, जितनैं वाणी नही थकै-वचन नही विनसै, तथा जितनैं कायमैं बल वीर्य नही विनसै, तथा जितनैं तीव्रवेदनाकरिकै चित्त विक्षिप्त नही होइ, तितनैं सो साधु अपना आयुकूं संकुचित होता जानि शीघ्रही आपके निकट कोई आचार्यादिक तिनकूं सम्यक् आलोचना करै अर आराधनाका शरणा ग्रहण करिकै मरण करै, सो अवीचार भक्तप्रत्याख्यानका निरुध्दतर नामा दूजा भेद है ॥ गाथा—

एवं णिरुध्ददरयं । विदियं अणिहारिमं अवीचारं ॥

सो चेव जधाजोग्गं । पुव्वुत्तविधी हवदि तस्स ॥ १७ ॥

अर्थ— ऐसैं विहाररहित अत्यंतनिरोधरूप अविचारभक्तप्रत्याख्यानका निरुध्दतर नामा दूसरा भेद कह्या । इसविषैंहू जो पूर्वैं भक्तप्रत्याख्यानमें विधि कही, सोही यथायोग्य जाननी ॥ जो सिंह व्याघ्र अग्नि जलादिककरि अचानक शीघ्रही मरण आजाय, तो तहां आचार्यादिकनिसैं आलोचनादिकहू नही होइ सकै, जो निकटवर्ती साधु होइ तिसहीसैं आलोचना करि शीघ्र मरण करै, तिसकै निरुध्दतर नामा मरण होइ है ॥ ऐसैं च्यारि गाथानिमें निरुध्दतरका वर्णन कीया ॥ अब परमनिरुध्दभेदकूं सप्तगाथा-निकरि वर्णन करे हैं ॥ गाथा—

वालादिएहि जइया । अक्खित्ता होज्ज भिक्खुणो वाया ॥
तइया परमणिरुद्धं । भणिदं मरणं अवीचारं ॥ १८ ॥

अर्थ— सर्प व्याघ्र सिंह अग्नि चौरादिककरि उपद्रवतैं जो क्षपककी वाणी नष्ट होजाइ— जुबान बंद होजाइ, तदि साधूकै परमनिरुद्ध नामा अविचारभक्तप्रत्याख्यान होय है ॥

णच्चा संवट्टिज्जं । तमाउगं सिग्घमेव तो भिक्खू ॥
अरहंतासिद्धसाहू- । ण अंतियं सिग्घमालोचे ॥ १९ ॥

अर्थ— तीठापाछे भिक्षु जो साधु सो अपना आयु शीघ्र संकुचित होता जाणि-

करिकै अपने मनमेंही अरहंत सिध्द आचार्य उपाध्याय साधु इनिकूं अलोचना करै ॥

आराधणाविधी जो । पुव्वं उववण्णिदो सवित्थारो ॥
सो चेव जुज्जमाणो । इत्थ विही होइ णादव्वो ॥ २०२० ॥

अर्थ— जो पूर्वै आराधनाकी विधि विस्तारसहित वर्णन करी, सोही विधि अवसरकै योग्य इहांहू जाणवो जोग्य है ॥ गाथा--

एवं आसुकारम- । रणे वि सिज्झंति केइ धुदकम्मा ॥
आराधयित्तु केई । देवा वि विमाणिया होंति ॥ २१ ॥

अर्थ— इसप्रकार शीघ्र मरण होतैंहू केते महामुनि शुक्लध्यानकरि कर्मनिकूं उडाय सिध्दिकूं प्राप्त होय हैं। अर केई आराधनाकूं आराधिकारि वैमानिक देव होई हैं ॥ अब कोऊ आशंका करै-- जो, अल्पकालकरि निर्वाण कैसें होइ? सो शंका दूरि करिवेके अर्थि कहे हैं ॥ गाथा---

आराधणाए तत्थ दु । कालस्स वहुत्तणं ण हु पमाणं ॥
वहवो मुहुत्तमत्ता । संसारमहण्णवं तिण्णा ॥ २२ ॥

अर्थ— तिस आराधनाविषैं कालका बहुतपणेका प्रमाण नहीं है। बहुत जीव अंतर्मुहूर्तमात्र आराधनामें तिष्ठि संसारसमुद्रकूं तिरि-गये हैं। जातैं क्षायिकसम्यक्--

कहिये चौडे सम उन्नत जीवरहित योग्यस्थानमें शुद्धपृथ्वीमें वा शिलामय संस्तरविषैं आपकूं एकाकी असहाय स्थापन करै ॥ गाथा–

पुव्वुत्ताणि तणाणि य । जाइत्ता थंडिलम्मि पुव्वुत्ते ॥ जदणाए संथरित्ता । उत्तरसिरमध व पुव्वसिरं ॥ ३२ ॥ पाचीणाभिमुहो वा । उदीचिजुत्तो व तत्थ सो ठिच्चा ॥ सीसे कदंजलिपुडो । भावेण विसुद्धलिस्सेण ॥ ३३ ॥ अरिहादिअंतियं तो । किच्चा आलोचणं सुपरिसुध्दं ॥ दंसणणाणचरित्तं । पडिसारेदूण णिस्सेसं ॥ ३४ ॥ सव्वं आहारविधिं । जावज्जीवाय वोसरित्ताणं ॥ वोसरिदूण असेसं । अब्भंतरवाहिरे गंथे ॥ ३५ ॥ सव्वे वि णिज्जिणंतो । परीसहे धिदिवलेण संजुत्तो ॥ लेसाए विसुज्झंतो । धम्मं झाणं उवेणमित्ता ॥ ३६ ॥ ठिच्चा णिसिदित्ता वा । वट्टेदूण व सकायपडिचरणं ॥ सयमेव णिरुवसग्गे । कुणदि विहारम्मि सो भयवं ॥ ३७ ॥

[1] संस्कृत्य
[1] प्रतिपद्य

अर्थ— पूर्वोक्त तृण जे हैं तिनकूं याचना करिकै अर पूर्वोक्त स्थंडिलस्थानविषैं तृणनिका यत्नाचारकरि संस्तर करिकै अर उत्तराशिर अथवा पूर्वशिर संस्तर करै । बहुरि तिस संस्तरमें पूर्वदिशाकै सन्मुख वा उत्तरकै सन्मुख तिष्ठिकरिकै विशुद्ध लेश्यारूप भावकरिकै, अर मस्तकविषैं अंजुली करि अर अरहंतादिकनिकै समीप उज्वल आलो-

करिकै अपने मनमेंही अरहंत सिध्द आचार्य उपाध्याय साधु इनिकूं अलोचना करै ॥

आराधणाविधी जो । पुव्वं उववण्णिदो सवित्थारो ॥
सो चेव जुज्जमाणो । इत्थ विही होइ णादव्वो ॥ २०२० ॥

अर्थ— जो पूर्वें आराधनाकी विधि विस्तारसहित वर्णन करी, सोही विधि अवसरकै योग्य इहांहू जाणवो जोग्य है ॥ गाथा--

एवं आसुक्कारम- । रणे वि सिज्झंति केइ धुदकम्मा ॥
आराधयित्तु केई । देवा वि विमाणिया होंति ॥ २१ ॥

अर्थ— इसप्रकार शीघ्र मरण होतेंहू केते महामुनि शुक्लध्यानकरि कर्मनिकूं उडाय सिध्दिकूं प्राप्त होय हैं। अर केई आराधनाकूं आराधिकारि वैमानिक देव होई हैं ॥ अव कोऊ आशंका करै- जो, अल्पकालकरि निर्वाण कैसैं होइ? सो शंका दूरि करिवेके अर्थि कहे हैं ॥ गाथा--

आराधणाए तत्थ दु । कालस्स वहुत्तणं ण हु पमाणं ॥
वहवो मुहुत्तमत्ता । संसारमहण्णवं तिण्णा ॥ २२ ॥

अर्थ— तिस आराधनाविषैं कालका वहुतपणेका प्रमाण नही है। वहुत जीव अंतर्मुहूर्तमात्र आराधनामैं तिष्ठि संसारसमुद्रकूं तिरि गये हैं। जातैं क्षायिकसम्यक्त्व

क्षायिकज्ञान जो केवलज्ञान, क्षायिकचारित्र जो यथाख्यातचारित्र, तप जो शुक्लध्यान ये अंतर्मुहूर्तमें उपजे हैं। अर इनि च्यारि आराधनाकूं हुयेपीछे अंतर्मुहूर्तमें सिद्धि होइ है ॥

खणमित्तेण अणादिय। मिच्छादिट्ठी वि वद्धणो राया ॥
उसहस्स पादमूले। संबुज्झित्ता गदो सिद्धिं ॥ २३ ॥

अर्थ— अनादिमिथ्यादृष्टिहू वर्द्धन नामा राजा वृषभदेवस्वामीका चरणनिके निकट प्रबोधकूं प्राप्त होइकरि क्षणमात्रकरि सिध्दिकूं प्राप्त भया ॥ गाथा—

सोलसतित्थयराणं। तित्थुप्पण्णस्स पढमदिवसम्मि ॥
सामण्णणाणसिध्दी। भिण्णमुहुत्तेण संपण्णा ॥ २४ ॥

अर्थ— षोडश तीर्थंकरनिका तीर्थमें उत्पन्न भये साधूकै दीक्षा लीनि तिसका प्रथम दिवसके विषैं अंतर्मुहूर्तकरिकै सामान्यज्ञानकी सिद्धि होत भई ॥ ऐसैं परमनिरुद्धमरणका वर्णन सप्त गाथानिमैं कीया ॥

इति भगवती आराधना नाम ग्रंथविषैं पंडितमरणका वर्णनमें भक्तप्रत्याख्यानका वर्णन समाप्त कीया ॥ अब पंडितमरणका दूसरा भेद जो इंगिनीमरण ताहि चौतीस गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

एसा भत्तपइण्णा। वाससमासेण वण्णिदा विधिणा ॥

इत्तो इंगिणिमरणं । वासससमासेण वण्णेसिं ॥ २५ ॥ [1]

अर्थ— या भक्तप्रतिज्ञा विस्तारसंक्षेपरूप विधिकरिकैं वर्णन करी । यातैं आगै इंगिनीमरणकूं संक्षेपविस्तारकरिकै वर्णन करिस्यूं । ऐसैं इंगिनीमरण कहनेकी शिवकोटिस्वामी प्रतिज्ञा करी ॥ गाथा—

जो भत्तपदिण्णाए । उवक्कमो वण्णिदो सवित्थारो ॥
सो चेव जधाजोग्गं । उवक्कमो इंगिणीए वि ॥ २६ ॥

अर्थ— जो भक्तप्रत्याख्यानको क्रमविस्तारसहित वर्णन कीयो, सोही यथायोग्य इंगिनीमरणविषैंहू आरंभ जानना ॥ गाथा—

पव्वज्जाए सुद्धो । उवसंपज्जित्तु लिंगकप्पं च ॥ पवयणमोगाहित्ता । विणयसमाधीए विहरित्ता ॥ २७ ॥ णिप्पादित्ता सगणं । इंगिणिविधिसाधणाए परिणमिया ॥ सिदिमारुहित्तु भाविय । अप्पाणं सल्लिहित्ताणं ॥ २८ ॥ परियाइगमालोचिय । अणुजाणित्ता दिसं महज्जणस्स ॥ तिविधेण खमावित्ता । सबालउड्ढावुळं गच्छं ॥ २९ ॥ अणुसिट्ठिं दादूण य । जावज्जीवाय विप्पउंगत्थी ॥ अब्भादिगजादहासो । णीदि गणादो गुणसमग्गो ॥ २०३० ॥

[1] व्यासः

१ कृतार्थोऽस्मीति जातहर्षः

अर्थ— इंगिनीमरण कैसैं होइ? किसकै होइ? सो कहे हैं– जो दीक्षाग्रहणाविषैं योग्य होय, शुद्ध होय, अर आचारांगके अनुकूल, योग्य वीतरागलिंग ग्रहण करिकै, अर जिनेंद्रका प्ररूप्या आचारांगादिकका अवगाहन करिकै, अर विनयमें तथा समाधिके परिणामनिकी सावधानीसैं प्रवर्तन करिकै, अर अपने संघकूं रत्नत्रयमें दृढतानैं प्राप्त करिकै, अर इंगिनीमरणकी विधिका साधनके अर्थि परिणमन करिकै, अर परिणामनिकी विशुद्धतारूप श्रेणी चढिकरिकै, अर अपने आत्माकूं शोधनकरिकै, अर रत्नत्रयमें जे अतीचार लागे होय तिनकूं शोधिकरिकै, अर जो आपपाछैं नवीन आचार्य होइगे तिनकूं जणायकरिकै, अर च्यारिप्रकारका संयमीनिका बालवृद्धसहित समस्तसंघतैं मन–वचन–काय–करिकै क्षमा ग्रहण करायकरिकै, अर संघकूं हितरूप शिक्षा देइकरिकै, अर यावज्जीव समस्तसंघतैं वियोगका अर्थी हुवा, तथा संघमैंतैं निकसि एकाकी होइ परम आराधनाके पालनेमैं उपज्या है परम हर्ष जाकै ऐसा, गुणनिकरि परिपूर्ण हुवा संघतैं एकाकी निकलै ॥ गाथा–

एवं च णिक्खमित्ता । अंतो वाहिं व थंडिले जोगे ॥
पुढवीसिलामए वा । अप्पाणं णिजवे एक्को ॥ ३१ ॥

अर्थ— ऐसैं संघवारै निकसिकरिकै अर गुफादिकनिके मांहि वा बाहिर स्थंडिल

सयमेव अप्पणो सो । करेदि आउंटणादिकिरियाउ ॥
उच्चारादीणि तधा । सयमेव विकिंचदे विधिणा ॥ ३८ ॥

अर्थ— बहुरि सो क्षपक हस्तपादादिक अंगनिका पसारना, खैंचना, पलटना इत्यादिक अपने देहमें आपही क्रिया करै—परका तहां करनेका संबंधही नही । तथा मलमूत्रका मोचन यथाविधि शुद्धभूमीमैं आपका आपही करै ॥ गाथा—

ज़ाधे पुण उवसग्गा । देवा माणुस्सिया व तेरिच्छा ॥
ताधे णिप्पडियम्मो । ते अधियासेदि विगदभउ ॥ ३९ ॥

अर्थ— बहुरि जिसकालमें देवनिकरि कीया वा मनुष्यनिकरि कीया वा तिर्यंचनिकरि कीया उपसर्ग आजाय तो तिसकाल भयरहित हुवा तिन उपसर्गनिकूं सहै—उपसर्गमें समभाव नही छांडै—कायरता नही करै ॥ गाथा—

आदितियसुसंघदणो । सुहसंठाणो अभिज्जाधिदिकवचो ॥
जिदकरणो जिदणिद्दो । उंघवलो उंघसूरो य ॥ २०४० ॥

अर्थ— कैसाक है इंगिनीमरणका धारक क्षपक? आदिका तीन संहननका धारक है । वज्रर्षभनाराच, वज्रनाराच, नाराच ये आदिके तीन संहनन हैं । बहुरि सुंदर ज्ञाका संस्थान होय, बहुरि उपसर्ग परीषहनिकरि नही भेद्या जाय ऐसा, धैर्यरूप जाके

वकतर होय, बहुरि इंद्रियनिकूं जीतनेवाला होइ, बहुरि निद्राकूं जीत लई होय, बहुरि महान् बलवान् होय, बहुरि अत्यंत शूरवीर होय, कायर नही होय, तिसकै एकविहारीपणा होइ इंगिनीमरण होय है ॥ गाथा—

वीभच्छभीमदारिसण- । विगुव्विदा भूदरक्खसपिसाया ॥
खोभिज्ज जदि वि तयं । तदि वि ण सो संभमं कुणइ ॥ ४१ ॥

अर्थ— यद्यपि भयानक है दर्शन जिनका महाभयंकर अनेक विक्रिया करते भूत-राक्षस-पिशाच क्षपककै क्षोभ करै-चलायमान कीया चाहै; तोहू संभ्रम-भयकूं प्राप्त नही होय ॥ गाथा—

इड्ढिमतुलं विउव्विय । किण्णरकिंपुरिसदेवकण्णाउ ॥
लोलंते जदि वि तगं । तध वि ण सो विब्भयं जाइ ॥ ४२ ॥

अर्थ— जो कदाचित् किन्नर किंपुरुष देवकन्या मिलिकरिकै असदृश ऋद्धिकूं विक्रियाकरिकै नानाप्रकार हावभाव विलास विभ्रम रूप लावण्य प्रीति प्रेमकरि ललचावै, तोहू ते विस्मयकूं प्राप्त नही होय है ॥ गाथा—

सव्वो पुग्गलजाउं । दुक्खतए जदि वि तमुवणमिज्ज ॥
तध वि य तस्स ण जायदि । झाणस्स विसुत्तिया कोई ॥ ४३ ॥

अर्थ— समस्त जगतके पुद्गलनिकी जाति जो दुःखरूप होय तिसका तिरस्कार करै तोहू तिस क्षपककै किंचित्‌हू ध्यानकै विपरीतपणा नही करि सके है ॥ गाथा–

सव्वो पुग्गलकाउं । सोक्खत्ताए जदि वि तमुवणमिज्ज ॥
तध वि हु तस्स ण जायदि । झाणस्स विसुत्तिया केई ॥ ४४ ॥

अर्थ— समस्त जगतके पुद्गलसमूह जो सुख देनेरूप परिणमै, तोहू तिस क्षपकका ध्यानकै चलायमानपणा किंचित्‌हू नही उपजे है ॥ गाथा–

सच्चित्ते साहरिदो । तत्थ उविक्खदि वियत्तसव्वंगो ॥
उवसग्गे य पसंते । जदणाए थंडिलमुवेदि ॥ ४५ ॥

अर्थ— जो व्याघ्र सिंह दुष्टमनुष्यादिक क्षपककूं उठाय सचित्तभूमीमैं पटकि दे तो समस्त अंगतैं ममता छांडि उदासीन हुवा जिस भूमीमैं लेजाय तहांही तिष्ठै। बहुरि उपसर्ग मिटि जाय तो यत्नाचारपूर्वक सचित्तभूमीकूं छांडि सुंदर जंतुरहित निर्दोषभूमीमैं जाय तिष्ठै–उपसर्ग दूरि भये पीछै कर्दम हरितभूम्यादिक सचित्तभूमीमैं नही तिष्ठै ॥

एवं उवसग्गविधिं । परीसहविधिं च सोऽधियासंतो ॥
मणवयणकायगुत्तो । सुणिच्छिदो णिज्जिदकसाउं ॥ ४६ ॥
इहलोए परलोए । जीविदमरणे सुहे य दुक्खे य ॥

णिप्पडिवद्धो विहरदि । जिदवुक्खपरिस्समो धिदिमं ॥ ४७ ॥

अर्थ— ऐसैं उपसर्गकी विधि अर परीषहनिकी विधीकूं सहता, अर मन-वचन-कायकूं गुप्तिरूप करता, अर सत्यार्थका निश्चय करता, अर कषायनिकूं जीतता, अर जीत्या है दुःखका परिश्रम जानै, अर धैर्यवान् ऐसा क्षपक है सो इसलोकके पदार्थनिमैं अर परलोकमें तथा जीवनेमें, मरणमें, सुखमें, दुःखमें कहाहू परिणामकरि नहीं बंधे है— आप अलिप्त रहे है ॥ गाथा—

वायणपरियट्टणपु- । च्छणाउ मोत्तूण तध य धम्मथुदिं ॥
सुत्तत्थपोरिसीसु वि । सरेदि सुत्तत्थमेयमणो ॥ ४८ ॥

अर्थ— तिस अवसरमें वाचना, परिवर्तन, पृच्छना, तथा धर्मस्तुतिकूं त्यागिकरिकै धर्मोपदेशरूप सूत्रका अर अर्थका चिंतवन करै। मरण नजीक आवते संते वाचना पृच्छना परिवर्तनका अवसर नहीं है। एक धर्मरूप उपदेशहीकूं स्मरण करे है॥ गाथा—

एवं अट्ठ वि जामे । अणुवट्टो तत्थ झादि एयमणो ॥ [1]
जदि आहच्चा णिद्दा । हविज्ज सो तत्थ अपडिण्णो ॥ ४९ ॥

अर्थ— ऐसैं अष्टप्रहर शयनक्रियारहित एकाग्रमन हुवा तहां ध्यान करै। अर जो हटकरिकै निद्रा आय प्राप्त होइ तो तहां प्रतिज्ञा नहीं जाननी ॥ गाथा—

[1] निरस्तशयनक्रियः ॥

सज्झायकालपडिले-। हणादिकाउ ण संति किरियाउ ॥
जह्मा मसाणमज्झे। तस्स य झाणं अपडिसिध्दं ॥ २०५० ॥

अर्थ— इनि इंगिनीमरण करनेवालेके स्वाध्यायकालमें प्रतिलेखना जो भूमिशोधनादि क्रिया नही हैं। यातैं याकै स्मशानभूमीमैंहू ध्यानका निषेध नही है ॥ गाथा—

आवासयं च कुणदे। उवंधोकालम्मि जं जहिं कमादि ॥ १ कालद्वयेऽपि ॥
उवकरणं पडिलेहइ। उवधोकालम्मि जदणाए ॥ २०५१ ॥

अर्थ— बहुरि दोऊ कालविषैं आवश्यकक्रिया करे है। जो उपकरण पीछी है सोहू यत्नाचारकरि दोऊ कालमें सोधै—देखै—प्रतिलेखन करै ॥ गाथा—

सहसा चुक्कखलिदे। णिसीधियादीसु मिच्छकारो सो ॥
आसिअणिसीधियाउ। णिग्गमणपवेसणे कुणइ ॥ ५२ ॥

अर्थ— बहुरि इंगिनी नाम मरणके धारक चूकिर शीघ्रतातैं जो स्खलित होजाय गिरिजाय तो मै मिथ्या करि ऐसैं मिथ्याकार करै। बहुरि स्थान वसतिका गुफा इनमैंतैं निकसतैं तो आशिका जो आशीर्वाद देर जाय अर प्रवेश करै जब निषेधिका करै। जो, "भो स्थानके स्वामी हो! तुमारी इच्छाकरि इहां स्थिति रह्यो चाहूं हूं" ऐसैं निषेधिका करै। सो साधुका समाचारमें मिथ्याकार आशिका निषेधिका जो कही है, सो

समस्त क्रिया करै ॥ गाथा–

पादे कंटयमादिं । अच्छिम्मि रजादियं जदा होज्ज ॥
अच्छदि अधावधिं सो । परणीहरणे य तुण्हिक्को ॥ ५३ ॥

अर्थ— चरणनिमैं कंटकादिक प्रवेश करिजाय तथा नेत्रनिमैं रज तृणादिक जो प्रवेश करै तो आप जैसेके तैसे तिष्ठै, अन्य कोऊ आय कंटकादिक निकासै तो आप मौनी हुवा तिष्ठै–कछू कहै नही ॥ गाथा–

वेउव्वणमाहारय- । चारणखीरासवादिलध्दीसु ॥
तवसा उप्पण्णासु वि । विरागभावो ण सेवादि सो ॥ ५४ ॥

अर्थ— वैक्रियक ऋद्धि, आहारक ऋद्धि, चारण ऋद्धि, क्षीरास्रावी इत्यादिक ऋद्धि तपके प्रभावकरि उत्पन्न होतेहू ये वीतरागभावके धारक ऋद्धिनिकूं नही सेवन करै हैं ॥

मोणावग्गहणिरदो । रोगादंकादिवेदणाहेदुं ॥
ण कुणदि पडिकारं सो । तहेव तण्हाछुहादीणं ॥ ५५ ॥

अर्थ— मौनव्रतकूं धारता साधु जो रोगकी वेदना मेटनेके अर्थि तथा तृष्णा क्षुधादिकके मेटनेके अर्थि प्रतीकार जो इलाज सो नही करै है ॥ गाथा–

उवएसो पुण आयरि- । याणं इंगिणिगदोऽवि छिण्णकधो ॥

देवेहिं माणुसेहिं व । पुट्ठो धम्मं कधेदित्ति ॥ ५६ ॥

अर्थ— वहुरि आचार्यनिको यो उपदेश है । जो इंगिनी नाम संन्यासकूं प्राप्त भया मुनि कथा आलाप नहीं करै, तोहू देव मनुष्य धर्मकथा पूछे तो धर्म कहे है ॥

एवमधक्खादविधिं । साधित्ता इंगिणिं धुदकिलेसा ॥
सिज्झंति केइ केई । हवंति देवा विमाणेसु ॥ ५७ ॥

अर्थ— केई मुनि तो ऐसें यथाख्यातचारित्रविधिकरि इंगिनीमरणकूं साधिकरिकै उडाये हैं क्लेश जिनूनैं ऐसे सिद्ध होय हैं । अर केई मुनि विमाननिमैं कल्पवासी तथा अहमिंद्र होय हैं । गाथा—

एवं इंगिणिमरणं । वाससमासेण वण्णिदं विधिणा ॥
पाउवगमणमित्तो । समासदो चेव वण्णेसिं ॥ ५८ ॥

अर्थ— ऐसें इंगिनीमरणकूं । विधिकरिकैं विस्तारकरिकैं तथा संक्षेपकरिकैं वर्णन कीया ॥ अब आगैं संक्षेपतैं प्रायोपगमनमरणकूं वर्णन करूंगा ॥

इति भगवती आराधनाग्रंथविषैं पंडितमरणका दूसरा भेद जो इंगिनी, ताहि चोतीस गाथानिमैं वर्णन कीया ॥ अब पंडितमरणका तीजा भेद जो प्रायोपगमन, ताहि नव गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

पाउँवगमणमरण- । स्स होदि सो चेव उक्कमो सव्वो ॥
वुत्तो इंगिणिमरण- । स्स उक्कमो जो सवित्थारो ॥ ५९ ॥

अर्थ-- इंगिनीमरणकी जो विधि विस्तारसहित कही, सोही समस्तविधि प्रायो-
पगमन मरणकी होइ है गाथा-

णवरिं तणसंथारो । पाउँवगदस्स होदि पडिसिद्धं ॥
आदपरपउँगेण य । पडिसिद्धं सव्वपरियम्मं ॥ २०६० ॥

अर्थ— प्रायोपगमनमैं इंगिनीतैं इतना विशेष है- इंगिनीमरणमें तो तृणनिका
संस्तर है अर अपना वैयावृत्य उठना बैठना सोवना चालना आपका आप करै है।
अर प्रायोपगमनमें तृणमय संस्तरहू नहीं अर अपना समस्त प्रतीकार आप करै नहीं,
अन्यकरि करावै नहीं है ॥ गाथा-

सो सल्लेहिददेहो । जम्हा पाउँवगमणमुवयादि ॥
उच्चारादिविकिंचण- । मवि णत्थि पउँगदो तम्हा ॥ ६१ ॥

अर्थ— जातैं सम्यक् कीया है शरीरका कृशपणा जानै ऐसा साधु प्रायोपगमनसं-
न्यासकूं प्राप्त होय है, तातैं अपने प्रयोगतैं मलमूत्रादिकहू नहीं करै है ॥ गाथा-

पुढवीआऊतेउँ- । पणप्फदितसेसु जदि वि साहरिदो ॥

वोसट्टचत्तदेहो । अधाउगं पालए तत्थ ॥ ६२ ॥

अर्थ-- जो कोऊ दुष्ट खैंचिकरि पृथ्वीमें जलमें अग्नीमें वनस्पतिमें त्रसनिमें पटकि दे तो वहांही छोड्या है देहमें ममता जिननैं ऐसा तहांही मरणपर्यंत तिष्ठि आयुकूं तहांही पूर्ण करै ॥ गाथा-

मज्जणयगंधपुप्फो- । वयारपडिचारणा विकीरंतो ॥
वोसट्टचत्तदेहो । अधाउगं पालए तध वि ॥ ६३ ॥

अर्थ— जो कोऊ अभिषेक करै वा सुगंधपुष्पादिककरि पूजा स्तवन करै तोहू त्याग्या है देहतैं ममता जानैं ऐसा रागी द्वेषी नही होय है-आयुपर्यंत तैसैंही पूर्ण करे है॥गाथा-

वोसट्टचत्तदेहो । दु णिखेविज्ज जहिं जधा अंगं ॥
जावज्जीवं तु सयं । तहिं तमंगं न चालेदि ॥ ६४ ॥

अर्थ— छोड्या है देह जानैं ऐसा प्रायोपगमनका धारी जिस क्षेत्रमें जैसैं अंग पडि गया, तैसैं यावज्जीव पड्या रहै-स्वयं अपने अंगकूं चलावै हलावै नही है। जैसैं कोऊ सूका काठ वा मृतकका शरीर तैसैं अचल तिष्ठै ॥ गाथा-

एवं णिप्पडियम्मं । भणंति पाउवगमणमरहंता ॥
णियमा अणिहारं तं । सिया य णीहारमुवसग्गे ॥ ६५ ॥

अर्थ— ऐसें स्वपरकृत प्रतीकाररहित प्रायोपगमनकूं अरहंत भगवान् कह्या है सो शरीर नियमतैं उपसर्गविना तो अनाहार कहिये अचल है अर उपसर्गविषैं मनुष्य तिर्यंच देवादिक चलायमान करे हैं तदि चल होय है ॥ गाथा—

उवसग्गेण वि साहरि- । दो सो अण्णत्थ कुणदि जं कालं ॥
तह्मा वुत्तं णीहा- । रमदो अण्णं अणीहारं ॥ ६६ ॥

अर्थ— उपसर्गकरिकै हरण कीया हुवा सो साधु अन्यक्षेत्रमें काल करे है, तातैं याकूं नीहार कहिये हैं। यातैं अन्यरीति उपसर्गविना चलायमान नहीं होय तातैं अनाहार है

पडिमापडिवण्णा वि हु । करंति पाउँवगमणमप्पेगे ॥
दीहध्दं विहरंता । इंगिणिमरणं च अप्पेगे ॥ ६७ ॥

अर्थ— जिनके आयुका अवशेपकाल आति अल्प रहि गया ऐसे केतेक साधु तो प्रतिमायोग धारण करता प्रायोपगमनसंन्यासकूं करे हैं। कितने वहुतकाल प्रवर्तन करते इंगिनीमरणकूं प्राप्त होय हैं

इति भगवती आराधनाविषैं पंडितमरणके तीन भेदनिमैं प्रायोपगमन नाम तीसरे मरणका नव गाथानिमैं वर्णन कीया ॥ अब पंडितमरणमें प्रायोपगमनमरणकरि जे आत्मकल्याण कीया, तिनका छह गाथानिमैं वर्णन करे हैं ॥ गाथा—

आगाढे उवसग्गे । दुब्भिक्खे सव्वदोऽवि दुत्तारे ॥
कदजोगिसमधियासिय । कारणजादेहि वि मरंति ॥ ६८ ॥

अर्थ---- समस्तप्रकारतैं दुस्तर कहिये पार नहीं हुया जाय ऐसा दृढ महान् उपसर्ग आवतै तथा दुर्भिक्ष आवतै तथा ओरहू मरणका कारण होतैं कीया है ध्यान जानैं ऐसा योगी प्रायोपगमनसंन्यासकरि मरण करे है ॥ तिनहीका उदाहरण कहे हैं ॥ गाथा---

कोसलय धम्मसीहो । अट्ठं साधेदि गिद्धपुच्छेण ॥
णयरम्मि य कुल्लगिरिं । चंदसिरिं विप्पजहिदूण ॥ ६९ ॥

अर्थ---- कोशलनगरविषैं कुलगिरिपर्वतमें धर्मसिंह नामा चंद्रश्री नाम स्त्रीकूं त्यागि करिकै गृद्धपिच्छकरिकै अपना आत्म अर्थ साध्या ॥ गाथा---

पाडलिपुत्ते धूदा- । हेदुं मामयकदम्मि उवसग्गे ॥
साधेदि उसभसेणो । अट्ठं वेघाणसं किच्चा ॥ २०७० ॥

अर्थ---- पटना नाम नगरविषैं पुत्रीके अर्थि मामाका कीया उपसर्ग सहिकरि, वृषभसेन नामा अपना आत्मका अर्थ जो आराधनाकी पूर्णता, ताहि करी ॥ गाथा---

अहिमा(सा)रएण णिव्वदि- । म्मि मारिदे गहिदसमणलिंगेण ॥
उड्डाहपसमणत्थं । सत्थग्गहणं अकासि गणी ॥ ७१ ॥

अर्थ— अहिमारक नाम चोर मुनिका लिंग धारणकरि राजाकूं मारते संते संघका स्वामी गणी जो आचार्य सो समस्तसंघका उपद्रव दूरि करनेके अर्थि वा संघका तथा धर्मका अपवाद दूरि करनेके अर्थि आप शस्त्रग्रहण करत भया ॥ गाथा—

सगडालएण वि तधा । सत्थग्गहणेण साधिदो अत्थो ॥
वररुइपउगहेदुं । रुट्ठे णंदे महीपउगे[1] ॥ ७२ ॥

अर्थ— वररुचिका प्रयोगके अर्थि नंद नामा राजाकूं रोषरूप होतें शकडाल नामाभी शस्त्रग्रहणकरिकैंहू अपना आराधनारूप अर्थकूं साध्या ॥ गाथा—

एवं पंडिदमरणं । सवियप्पं वण्णिदं सवित्थारं ॥
वुच्छामि वालपंडिद- । मरणं एत्तो समासेण ॥ ७३ ॥

अर्थ— ऐसैं पंडितमरण अपने भेद जे भक्तप्रत्याख्यान इंगिनी प्रायोपगमन तिनकरि सहित विस्तारकरि वर्णन कीया ॥ अब आगै संक्षेपकरि वालपंडितमरणकूं कहूं ॥

इति भगवती आराधना नाम ग्रंथविषैं पंडितमरणका वर्णन कीया ॥ ९ ॥ अब वालपंडितमरण देशव्रती श्रावककै होय है तिसकूं दश गाथानिमैं वर्णन करिये हैं ॥

देसिक्कदेसविरदो । सम्मादिट्ठी मरिज्ज जो जीवो ॥
तं होदि वालपंडिद- । मरणं जिणसासणे दिट्ठं ॥ ७४ ॥

[1] महापउमो इत्यपि

अर्थ— जो एकदेशविरत सम्यग्दृष्टि जीव मरण करे है, सो जिनेंद्रका शासनमें बालपंडितमरण कह्या है ॥ इहां ऐसा विशेष जानना— जो सम्यग्दर्शन ग्रहण करिकै पंचपापनिका एकदेश त्याग करे है, सो देशव्रती नाम पावे है । तिस देशव्रतमें ग्यारह स्थान हैं, तिनका ऐसा संक्षेप जानना— प्रथम तो सम्यग्दृष्टि होइ । मिथ्यादृष्टि जीवकै देशव्रत नही होइ है । सो सम्यग्दर्शन तीनप्रकार है । उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक । तिनमैं अनादिमिथ्यादृष्टि जीवकै पहली उपशमसम्यक्त्वही होय है, अर मिथ्यात्व छूटि उपशमसम्यक्त्व होइ, ताकूं प्रथमोपशमसम्यक्त्व कहिये हैं । सोही लब्धिसार नामा सिद्धांतमैं कह्या है ॥ गाथा—

चदुगदिमिच्छो सण्णी । पुण्णो गब्भजविसुद्धसागारो ॥
पढमुवसम्मं गिण्हदि । पंचमवरलद्धिचरिमम्हि ॥ १ ॥

अर्थ— सम्यग्दर्शन होय है सो च्यारों गतिहीमैं अनादिमिथ्यादृष्टि वा सादिमिथ्यादृष्टि संज्ञी पर्याप्त गर्भज मंदकषायी गुणदोषका विचाररूप साकार जो ज्ञानोपयोगयुक्तकै पंचमी करणलब्धीका उत्कृष्ट जो अनिवृत्तिकरण तिसका अंतसमयविषैं प्रथमोपशमसम्यक्त्व होय है, बहुरि जागृतकै होय है तथा भव्यहीकै होय है । जातैं मिथ्यात्वगुणस्थानतैं छूटि उपशमसम्यक्त्वग्रहण होइ, ताका नाम प्रथमोपशम है । अर

उपशमश्रेणीकी आदिमैं क्षयोपशमसम्यक्त्वतैं उपशमसम्यक्त्व होइ, सो द्वितीयोपशम है। तातैं प्रथमोपशमसम्यक्त्वकूं मिथ्यादृष्टिहि ग्रहण करे है। अर प्रथमोपशमसम्यक्त्व असंज्ञी अपर्याप्त सन्मूर्छनकै नहीं होय है, सूतेकै नहीं होय है॥ बहुरि प्रथमोपशम सम्यक्त्व होनेतैं पहलै मिथ्यादृष्टिगुणस्थानविषैं पंचलब्धि होइ हैं, तिनका संक्षेपतैं वर्णन करिये हैं॥ गाथा—

खयउवसमियविसोही। देसणपाउँगकरणलद्धी य॥
चत्तारि वि सामण्णा। करणं सम्मत्तचारित्ते॥ २॥

अर्थ— १ क्षयोपशम, २ विशुद्धि, ३ देशना, ४ प्रायोग्य, ५ करण ये पंच लब्धि हैं। तिनमैं आदिकी च्यारि लब्धि तो सामान्य हैं—भव्य अभव्य दोऊनिकै होजाइ हैं। अर करणलब्धि भव्यहीकै सम्यक्चारित्रकूं साध्य होत संतै होइ है॥ गाथा—

कम्ममळपडळसत्ती-। पडिसमयमणंतगुणविहीणकमा॥
होदूणुदीरदि जदा। तदा खउंवसमियलद्धी दु॥ ३॥

अर्थ— कर्मनिविषैं मल जो अप्रशस्त ज्ञानावरणादिक तिनका समूहकी शक्ति जो अनुभाग, सो जिस कालविषैं समयसमयप्रति अनंतगुणा घटता अनुक्रमकरि उदय होइ, तिस कालविषैं क्षयोपशमलब्धि हो है। जातैं उत्कृष्ट अनुभागका अनंतवा

भागमात्र जे देशघातिस्पर्द्धक तिनका उदय होतैं भी उत्कृष्ट अनुभागका अनंत बहुभागमात्र जे सर्वघातिस्पर्द्धक तिनके उदयका अभाव सो तो क्षय, अर तेई सर्वघातिस्पर्द्धक जे उदय अवस्थाकूं नही प्राप्त भये, तिनकी सत्तामैं अवस्था सो उपशम तिनकी प्राप्ति सो क्षयोपशमलब्धि जाननी ॥ गाथा-

आदिमलद्धिभवो जो । भावो जीवस्स सादपहुदीणं ॥
सत्ताणं पयडीणं । वंधणजोग्गो विसुद्धिलद्धी सो ॥ ४ ॥

अर्थ— पहली जो क्षयोपशमलब्धि तातैं उपज्या जो जीवके सातादिक प्रशस्त बंध करनेको कारण धर्मानुरागरूप शुभपरिणाम होइ, ताकी जो प्राप्ति सो विशुद्धि लब्धि है, सो ठीकही है, अशुभकर्मका अनुभाग घटै संक्लेशताकी हानि अर ताका प्रतिपक्षी विशुद्धि ताकी वृद्धि होनी युक्तही है ॥ गाथा-

छद्दव्वणवपयत्थो- । वदेसयरसूरिपहुदिलाहो जो ॥
देसिदपदत्थधारण- । लाहो वा तदियलद्धी दु ॥ ५ ॥

अर्थ— छह द्रव्य नव पदार्थनिकूं उपदेश करनेवाले आचार्यादिकका लाभ तिनके उपदेशकी प्राप्ति अथवा उपदेशित पदार्थके धारनेकी प्राप्ति, सो तीसरी देशनालब्धि है। तु शब्दकरि नरकादिकविषैं जहां उपदेश देनेवाला नही तहां पूर्वभवविषैं

धाऱ्या हुवा तत्त्वार्थके संस्कारका बलतैं सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति जाननी ॥ गाथा—

अंतोकोडाकोडी- । विट्ठाणे ठिदिरसाण जं करणं ॥
पाउग्गलद्धि णामा । भव्वाभव्वेसु सामण्णा ॥ ६ ॥

अर्थ— पूर्वोक्त तीन लब्धिसंयुक्त जे जीव समयसमय विशुद्धताकरि वर्द्धमान होत संते आयुविना सात कर्मनिकी अंतःकोटाकोटी सागरमात्र स्थिति अवशेष राखै तिस कालविषैं जो पूर्वैं स्थिति थी, ताको एक कांडक घातकरि छेदि तिस कांडकके द्रव्यको अवशेष रही स्थितिविषैं निक्षेपण करे है। बहुरि घातियानिका लता-दारुरूप अघातियानिका निंब-कांजीररूप द्विस्थानगत अनुभाग इहां अवशेष रहे है। पूर्वैं अनुभाग था ताकै अनंतका भाग दीये बहुभागमात्र अनुभागकूं छेदि अवशेष रह्या अनुभागविषैं ग्रास करे है तिस कार्य करनेकी योग्यता (प्रायोग्य) लब्धि है। सो भव्यकै वा अभव्यकैभी समान होहै ॥ गाथा—

जेट्ठवरट्ठिदिबंधो । जेट्ठवरट्ठिदितियाण सत्ते य ॥
ण य पडिवज्जदि पढमुव- । समसम्मं मिच्छजीवो हु ॥ ७ ॥

अर्थ— संक्लेशी संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्तके संभवता ऐसा उत्कृष्ट स्थितिबंध अर उत्कृष्ट स्थिति-अनुभाग-प्रदेशका सत्त्व बहुरि विशुद्ध क्षपकश्रेणीके मांहि संभवता ऐसा जघन्य

स्थितिबंध अर जघन्य स्थिति–अनुभाग–प्रदेशका सत्त्व इनको होतैं जीव प्रथमोपशम-सम्यक्त्वकूं नहीं ग्रहण करे है ॥ गाथा–

सम्मत्ताहिमुहमिच्छो । विसोहिवड्ढीहि वड्ढमाणो हु ॥
अंतोकोडाकोडिं । सत्तण्हं वंधणं कुणइ ॥ ८ ॥

अर्थ— प्रथमोपशमसम्यक्त्वकै सन्मुख भया मिथ्यादृष्टि जीव सो विशुद्धिताकी वृद्धिकरि वर्द्धमान होत संतै प्रायोग्यलब्धिका प्रथमसमयतैं लगाय पूर्वस्थितिके संख्यातवैं भागमात्र अंतःकोटाकोटी सागरप्रमाण आयुविना सातकर्मकी स्थितिबंध करे है ॥

तत्तो उदधिसदस्स य । पुधत्तमेत्तं पुणो पुणोदरिय ॥
वंधम्मि पयडिवंधु- । च्छेदपदा होंति चोत्तीसा ॥ ९ ॥

अर्थ— तिस अंतःकोटाकोटीसागर स्थितिबंधतैं पल्यका संख्यातवा भागमात्र घटता स्थितिबंध अंतर्मुहूर्तपर्यंत समानता लीए करै। बहुरि तातैं पल्यका संख्यातवा भागमात्र घटता स्थितिबंध अंतर्मुहूर्तपर्यंत करै। ऐसैं क्रमतैं संख्यात स्थितिबंधापसरणनिकरि पृथक्त्व सौ सागर घटे पहला प्रकृतिबंधापसरणस्थान होइ। बहुरि तिसही क्रमतैं तिसतैंभी पृथक्त्व सौ सागर घटै दूसरा प्रकृतिबंधापसरणस्थान होइ। ऐसैंही इसही क्रमतैं इतना स्थितिबंध घटै एक एक स्थान होइ। ऐसैं प्रकृतिबंधापसरणके चोतीस स्थान

कसमयमैं एकही परिणाम होय है। नानाजीवनिकी अपेक्षा एकसमयकै योग्य संख्यातपरिणाम हैं। ते अपूर्वकरणके परिणामभी समयसमय सदृश चयकरि वर्द्धमान हैं। जातैं उपरले समयसंबंधी परिणाम हैं ते नीचले समयसंबंधी परिणामनितैं समान नही हैं। प्रथमसमयकी उत्कृष्टविशुद्धतातैंहू द्वितीय समयसमयसंबंधी जघन्यविशुद्धताभी अनंतगुणी है। ऐसैं परिणामनिका अपूर्वपणा है, तातैं दूसरा करणकूं अपूर्वकरण कह्या है॥

दूसरे करणका प्रथमसमयतैं लगाय अंतसमयपर्यंत अपने जघन्यतैं अपना उत्कृष्ट अर पूर्वसमयके उत्कृष्टतैं उत्तरसमयका जघन्यपरिणाम क्रमतैं अनंतगुणी विशुद्धता लीये सर्पकी चालवत् जानने। इहां अनुकृष्टि नाही है। अपूर्वकरणके पहले समयतैं लगाय यावत्सम्यक्त्वमोहनी मिश्रमोहनीका पूर्ण काल जो जिस कालविषैं गुणसंक्रमण करि मिथ्यात्वको सम्यक्त्वमोहनी मिश्रमोहनीरूप परिणमावे है, तिस कालका अंतसमयपर्यंत १ गुणश्रेणी, २ गुणसंक्रमण, ३ स्थितिखंडन, ४ अनुभागखंडन ये च्यारि आवश्यक होहैं॥ बहुरि स्थितिबंधापसरण है सो अधःकरणका प्रथमसमयतैं लगाय तिस गुणसंक्रमण पूर्ण होनेका कालपर्यंत होहै॥

यद्यपि प्रायोग्यलब्धितैंही स्थितिबंधापसरण होय है, तथापि प्रायोग्यलब्धीकै

अधःप्रवृत्तिकरण है। अधःकरण मांडें कोई जीवको स्तोक काल भया कोईको बहुत काल भया, तिनके परिणाम इस करणविषैं संख्या वा विशुद्धताकरि समानभी होहै ऐसा जानना, तातैं याको अधःकरण कहिये हैं ॥

बहुरि अधःप्रवृत्तिकरणके परिणामनिके प्रभावतैं समयसमयप्रति अनंतगुणी विशुद्धिताकी वृद्धि होय है। बहुरि स्थितिबंधापसरण होय है। पूर्वैं जेता प्रमाण लीये कर्मनिका स्थितिबंध होता था, तातैं घटाइ घटाइ स्थितिबंध करे है। बहुरि सातावेदनीयको आदि देकरि प्रशस्त कर्मप्रकृतिनिका समयसमय अनंतगुणां अनंतगुणां वधता गुड खंड शर्करा अमृतसमान चतुःस्थान लीए अनुभागबंध होहै ॥ बहुरि असातावेदनीय आदि अप्रशस्त कर्मप्रकृतिनिका अनंतगुणां अनंतगुणां घटता निंब·कांजीरसमान द्विस्थान लीये अनुभागबंध होहै। विषहलाहलरूप नही होइ है। ऐसैं अधःकरणके परिणामनितैं च्यारी आवश्यक होइ हैं। अधःकरणका अंतर्मुहूर्त काल व्यतीत भये दूसरा अपूर्वकरण होइ है। अधःकरणके परिणामनितैं अपूर्वकरणके परिणाम असंख्यातलोकगुणे हैं, सो नानाजीवनिकी अपेक्षा है। एकजीवकी अपेक्षा एकसमयमें एकही परिणाम होइ है। तातैं एकजीवकी अपेक्षा जेते अपूर्वकरणके अंतर्मुहूर्तकालके समय हैं तेते परिणाम हैं। ऐसैंही अधःकरणके भी एकजीवकै

एकसमयमें एकही परिणाम होय है। नानाजीवनिकी अपेक्षा एकसमयके योग्य असंख्यातपरिणाम हैं। ते अपूर्वकरणके परिणामभी समयसमय सदृश चयकरि-वर्द्धमान हैं। जातैं उपरले समयसंबंधी परिणाम हैं ते नीचले समयसंबंधी परिणामनितैं समान नहीं हैं। प्रथमसमयकी उत्कृष्टविशुद्धतातैंहू द्वितीय समयसमयसंबंधी जघन्यविशुद्धताभी अनंतगुणी है। ऐसैं परिणामनिका अपूर्वपणा है, तातैं दूसरा करणकूं अपूर्वकरण कह्या है ॥

दूसरे करणका प्रथमसमयतैं लगाय अंतसमयपर्यंत अपने जघन्यतैं अपना उत्कृष्ट अर पूर्वसमयके उत्कृष्टतैं उत्तरसमयका जघन्यपरिणाम क्रमतैं अनंतगुणी विशुद्धता लीये सर्पकी चालवत् जानने। इहां अनुकृष्टि नाही है। अपूर्वकरणके पहले समयतैं लगाय यावत्सम्यक्त्वमोहनी मिश्रमोहनीका पूर्ण काल जो जिस कालविषै गुणसंक्रमण करि मिथ्यात्वको सम्यक्त्वमोहनी मिश्रमोहनीरूप परिणमावे है, तिस कालका अंतसमयपर्यंत १ गुणश्रेणी, २ गुणसंक्रमण, ३ स्थितिखंडन, ४ अनुभागखंडन ये च्यारि आवश्यक होहैं ॥ बहुरि स्थितिबंधापसरण है सो अधःकरणका प्रथमसमयतैं लगाय तिस गुणसंक्रमण पूर्ण होनेका कालपर्यंत होहै ॥

यद्यपि प्रायोग्यलब्धितैंही स्थितिबंधापसरण होय है, तथापि प्रायोग्यलब्धीके

सम्यक्त्व होनेका अनवस्थितपना है, नियम नांही, तातैं नही ग्रहण कीया। बहुरि स्थितिबंधापसरण काल अर स्थितिकांडकोत्करणकाल ये दोऊ समान अंतर्मुहूर्तमात्र हैं। तहां पूर्वैं बांध्या था ऐसा सत्तामैं कर्मपरमाणुरूप द्रव्य तामैंसूं काटि जो द्रव्य गुणश्रेणीविषैं दीया ताका गुणश्रेणीका कालमैं समयसमयप्रति असंख्यातगुणां असंख्यातगुणां अनुक्रम लीए पंक्तिबंध जो निर्जराका होना, सो गुणश्रेणिनिर्जरा है ॥ १ ॥

बहुरि समयसमयप्रति गुणकारका अनुक्रमतैं विवक्षितप्रकृतिके परमाणू पलटिकरि अन्यप्रकृतिरूप होइ परिणमे, सो गुणसंक्रमण है ॥ २ ॥ बहुरि पूर्वैं बांधी थी सत्तारूप कर्मप्रकृतिनिकी स्थिति तिसका घटावना, सो स्थितिखंडन है ॥ ३ ॥ बहुरि पूर्वैं बांध्या था ऐसा सत्तारूप अप्रशस्त कर्मप्रकृतिनिका अनुभाग ताका घटावना, सो अनुभागखंडन कहिये ॥ ४ ॥ ऐसैं च्यारि कार्य अपूर्वकरणविषैं अवश्य होइ हैं ॥ अपूर्वकरणके प्रथमसमयसंबंधी प्रशस्तअप्रशस्त प्रकृतिनिका जो अनुभागसत्त्व है, तातैं ताके अंतसमयविषैं प्रशस्तनिका अनंतगुणां वधता अर अप्रशस्तनिका अनंतगुणां घटता अनुभागसत्त्व होहै ॥ इहां समयसमयप्रति अनंतगुणी विशुद्धता होनेतैं प्रशस्तप्रकृतिनिका अनंतगुणां अर अनुभागकांडकघातका माहात्म्यकरि अप्रशस्तप्रकृतिनिका अनंतवै भाग अनुभाग अंतसमयविषैं संभवे है। इन स्थितिखंडादिक होनेके विधानका कथन

बहुतविस्तारसहित लब्धिसार ग्रंथतैं जानना। इहा नाममात्र प्रकरणके वशतैं जनाया है॥

बहुरि दूसरा अपूर्वकरणविषैं कहे स्थितिखंडादिक कार्यविशेषतैं तीसरा अनिवृत्तिकरणविषैंभी जानने। विशेष इतना— इहां समानसमयवर्ती नानाजीवके सदृश परिणाम हैं। जातैं जितने अनिवृत्तिकरणके अंतर्मुहूर्तके समय हैं, तितनेही अनिवृत्तिकरणके परिणाम हैं। तातैं नाही है निवृत्ति कहिये परस्पर परिणामनिमैं भेद जिनकै ते अनिवृत्तिकरण हैं। तातैं समयसमयप्रति एकएक परिणामही है॥ बहुरि इहां औरही प्रमाण लीए स्थितिखंड अनुभागखंड स्थितिबंधका प्रारंभ हो है। जातैं अपूर्वकरणसंबंधी जे स्थितिखंडादिक तिनका ताके अंतसमयविषैंही समाप्तपना भया। इहां अंतरकरणादिक विधि है सो श्रीलब्धिसारग्रंथमें है। इहां प्रयोजन ऐसा है— जो, अनिवृत्तिकरणके अंतसमयविषैं दर्शनमोह अर अनंतानुबंधी चतुष्क इनके प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभागनिका समस्तपनै उदय होनेके अयोग्यरूप उपशम होनेतैं तत्त्वार्थके श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शनकूं पाय औपशमिक सम्यग्दृष्टि होइ है। तहां प्रथमसमयविषैं द्वितीयस्थितिविषैं तिष्ठता मिथ्यात्वद्रव्यकूं स्थितिकांडक अनुभागकांडक घातविना गुणसंक्रमणका भाग देइ मिथ्यात्व मिश्र सम्यक्त्वमोहनीयरूपकरि तीन प्रकार करे है। एक दर्शनमोहका द्रव्य तीन शक्तिरूप न्यारे न्यारे होई तिष्ठै है॥ ऐसैं मिथ्यादृष्टीके

सम्यक्त्व होनेका कारण पंच लब्धिनिका संक्षेपतें वर्णन जनाया ॥

इस उपशमसम्यक्त्वका जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त काल है। उपशमसम्यक्त्वका काल पूर्ण भये पीछै नियमतें तीन दर्शनमोहकी प्रकृतिनिविषें एकका उदय होइ। तहां जो सम्यक्त्वमोहनीयका उदय होतें उपशमसम्यक्त्वतें छूटि जीव वेदकसम्यग्दृष्टि होय है, सो सम्यक्त्वमोहनीयका उदयतें वेदकसम्यग्दृष्टि चल-मल-अगाढरूप तत्वको श्रद्धान करे है। सम्यक्त्वमोहनीयके उदयतें श्रध्दानविषें चलपना होय है, तथा मल जो अतिचार सो लागे है, वा शिथिल श्रध्दान रहे है, इस वेदकसम्यक्त्वहीकूं क्षयोपशमसम्यक्त्व कहिये है। जातें दर्शनमोहके सर्वघातिस्पर्धकनिका उदयका अभावरूप है लक्षण जाका ऐसा क्षय होतें अर देशघातिस्पर्द्धकरूप सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होतें बहुरि तिस सम्यक्त्वमोहनीयके वर्तमानसमयसंबंधीतें ऊपरिके निषेक उदयकूं न प्राप्त भये तिनसंबंधी स्पर्धकनिका सत्तामें अवस्थारूप है लक्षण जाका ऐसा उपशम होतें वेदकसम्यक्त्व होय है। तातें याहीका दूसरा नाम क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है, भिन्न नहीं है। बहुरि उपशमसम्यक्त्वका अंतर्मुहूर्तकाल वीते पाछै मिश्र जो सम्यङ्मिथ्यात्वप्रकृतिका उदय होइ जाय तो तत्व अतत्व दोऊनिकूं एककाल श्रद्धान करता मिश्रगुणस्थानी होय है। अर मिथ्यात्वका उदय होय जाय तो मिथ्यादृष्टि-विपरीतश्रध्दानी होय है॥

जैसैं ज्वरकरि पीडित पुरुषकूं मिष्टभोजन नहीं रुचै, तैसैं ताकूं धर्म जो अनेकांतरूप वस्तूका स्वभाव तथा रत्नत्रयरूप मोक्षका मार्ग सो रुचै नहीं है ॥

अर जो उपशमसम्यक्त्वके अंतर्मुहूर्तकालमें जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली अवशेष रहे च्यारिप्रकार अनंतानुबंधीमैंतैं कोई एक क्रोधको वा मानको वा मायाको वा लोभको उदय होय तो सम्यक्त्वतैं छूटि सासादन नाम पावै, सो जघन्य एकसमय उत्कृष्ट छह आवलीप्रमाण काल सासादन नाम पाइ नियमतैं मिथ्यादृष्टि होय है। ऐसैं उपशमसम्यक्त्वका अंतर्मुहूर्तकाल पूर्ण भये पीछै सम्यक्त्वमोहनीयका उदय होय तो क्षायोपशमसम्यक्त्वी होय, अर मिश्रप्रकृतिका उदय होय तो मिश्रगुणस्थानी होय अर मिथ्यात्वका उदय होतैं मिथ्यात्वी नियमतैं होइ है ॥

अब क्षायिकसम्यक्त्व होनेका संक्षेप कहै हैं। जातैं दर्शनमोहकी क्षपणाका आरंभ करै सो कर्मभूमीका मनुष्य करै—भोगभूमीका मनुष्य नहीं करै, वा समस्त देव नारकी तिर्यंचनिकै क्षायिकसम्यक्त्वका प्रारंभ नहीं होय। अर जो कर्मभूमीका मनुष्य आरंभ करै सो तीर्थंकर वा अन्य केवली वा श्रुतकेवलीके पादमूलविषैं तिष्ठता होइ सो दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका आरंभ करै है। जातैं केवली श्रुतकेवलीकी निकटताविना ऐसी विशुद्धता नहीं होइ है। अधःकरणका प्रथमसमयसूं लगाय यावत् मिथ्यात्व मिश्र

मोहनीयका द्रव्य सम्यक्त्वप्रकृतिरूप होइ संक्रमण करै तावत् अंतर्मुहूर्तकालपर्यंत दर्शन-मोहकी क्षपणाका प्रारंभक कहिये तिस प्रारंभक कालके अनंतरवर्ती समयतैं लगाय क्षायिकसम्यक्त्व ग्रहणके प्रथमसमयतैं पहलै निष्ठापक हो है। सो जहां प्रारंभ कीया था तहांही वा सौधर्मादिकल्प वा कल्पातीतविषैं वा भोगभूमीके मनुष्यतिर्यंचविषैं वा घर्मा नाम नरकपृथ्वीविषैं निष्ठापक होइ है। जातैं पूर्वै बांधी है आयु जानै ऐसा कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टि मरि च्यार्यों गतिविषैं उपजे है, तहां क्षपणाकूं पूर्ण करै है ॥

अब अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ अर दर्शनमोहनीय इनकी कैसी क्षपणा होइ सो कहे हैं– कोऊ वेदकसम्यग्दृष्टि असंयत वा देशसंयत वा प्रमत्त वा अप्रमत्त इनिमैंतैं एक गुणस्थानमें तिष्ठता पूर्वै तीन करणकी विधिकरिकै अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभके उदयावलीमें तिष्ठते निषेकनिकूं छोडि अर उदयावलीवारै उपरितन स्थितिमें तिष्ठते समस्त निषेकनिकूं विसंयोजन करता अनिवृत्तिकरणके अंतके समयविषैं समस्त अनंतानुबंधीके द्रव्यकूं द्वादश कषाय अर नव नोकषायरूप परिणमन करावे है, सो अनंतानुबंधीका विसंयोजन है। इहांहू विसंयोजनमें गुणश्रेणी अर स्थितिकांडघातादिक बहुत विधि हैं। अनंतानुबंधीका विसंयोजन कीये पीछै अंतर्मु-हूर्त काल विश्राम करि अन्यक्रिया नहीं करी। ता पीछै बहुरि तीन करणनिकरि

अनिवृत्तिकरणका कालविषैं मिथ्यात्व मिश्र सम्यक्त्वमोहनीयकों क्रमतैं नष्ट करे है ॥ सो इन करणानिके सामर्थ्यतैं जो जो कर्मनिका स्थिति–अनुभागनिका घात होनेका विधान है, सो श्रीलब्धिसारतैं जानहू ॥ ऐसैं सप्तप्रकृतिनिकूं नष्ट करि क्षायिकसम्यक्त्वी होय है। ऐसैं तीनप्रकार सम्यक्त्व होनेका विधान अतिसंक्षेपतैं वर्णन कीया ॥

अनंतानुबंधी ४, मिथ्यात्व १, सम्यङ्मिथ्यात्व १, सम्यक्त्व १ इन सात प्रकृतिनिका उपशमतैं उपशमसम्यक्त्व होइ अर इन सप्तप्रकृतिनिके क्षयतैं क्षायिकसम्यक्त्व होय है ॥ बहुरि अनंतानुबंधी कषायनिका अप्रशस्त उपशमको होतैं अथवा विसंयोजन होतैं बहुरि दर्शनमोहका भेद जो मिथ्यात्वकर्म अर सम्यङ्मिथ्यात्वकर्म इन दोऊनिकूं प्रशस्त उपशमरूप होतैं वा अप्रशस्त उपशम होतैं वा क्षय होनेके सन्मुख होतैं बहुरि सम्यक्त्वप्रकृतिरूप देशघातिस्पर्द्धकनिका उदय होतैंही जो तत्त्वार्थका श्रद्धान है लक्षण जाका ऐसा सम्यक्त्व होइ सो वेदक ऐसा नाम धारक है। जहां विवक्षित प्रकृति उदय आवनेजोग्य नही होइ अर स्थिति अनुभाग घटने वधने वा संक्रमण होनेयोग्य होइ तहां अप्रशस्तोपशम जानना। बहुरि जहां उदय आवनेयोग्य नही होइ अर स्थिति अनुभाग घटने वधने वा संक्रमण होनेयोग्यभी नही होइ तहां प्रशस्तोपशम जानना। बहुरि तिहां सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होतैं देशघातिस्पर्धकनिकै

तत्त्वार्थश्रद्धान नष्ट करनेकी सामर्थ्यका अभाव है, अर श्रद्धानकूं चल मल अगाढ दोषकरि दूषित करे है। जातैं सम्यक्त्वप्रकृतिका उदयकै तत्त्वार्थश्रद्धानकै मल उपजावनेमात्रहीका सामर्थ्य है। तिंह कारणतैं तिस सम्यक्त्वप्रकृतिकै देशघातिपना है। तिस सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयकूं अनुभव करता जीवकै उत्पन्न भया जो तत्त्वार्थश्रद्धान, सो वेदकसम्यक्त्व है, इसहीकूं क्षायोपशमिकसम्यक्त्व कहिये हैं। जातैं दर्शनमोहके सर्वघातिस्पर्द्धकनिका उदयका अभाव है लक्षण जाका ऐसा क्षय होतैं वहुरि देशघातिस्पर्द्धकरूप सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होतैं वहुरि तिसहीका वर्तमानसमयसंवंधीतैं उपरिके निषेक उदयकूं नहीं प्राप्त भये तिनसंवंधी स्पर्द्धकनिका सत्ता अवस्थारूप है लक्षण जाका ऐसा उपशम होतैं वेदकसम्यक्त्व हो है, तातैं याहीका दूसरा नाम क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है ॥

अव इस सम्यक्त्वप्रकृतिका उदयतैं जो श्रद्धानकै चलादिक दोष लागे हैं तिनिका लक्षण कहे हैं ॥ अपनेही " जे आप्त आगम पदार्थरूप " श्रध्दानके भेदनिविषैं चलायमान होइ, सो चल है। जैसैं अपना कराया हुवा अर्हत्प्रतिविम्वादिकविषैं " यह मेरा देव है " ऐसैं ममता करि वहुरि अन्यका कराया अर्हत्प्रतिविम्वादिकविषैं " यह अन्यका है " ऐसैं परका मानि परिणाममें भेद करे है, तातैं चल कह्या है। इहां

दृष्टांत कहे हैं– जैसैं नानाप्रकार कल्लोलनिकी पंक्तिविषैं जल एकही तिष्ठे है, तथापि भी नानारूप होइ चले हैं; तैसैं सम्यक्त्वप्रकृतिका उदयतैं श्रध्दान है सा भ्रमणरूप चेष्टा करे है ॥ भावार्थ— जैसैं जल तरंगनिविषैं चंचल होइ परंतु अन्यभावकूं न भजै; तैसैं वेदकसम्यग्दृष्टिहू अपना वा अन्यका कराया जिनबिम्बादिकाविषैं " यहु मेरा है, यहु अन्यका है" इत्यादिक विकल्प करे है, परंतु अन्य रागी द्वेषी देवादिककूं नाही भजे है. अब मलिनपणा कहे हैं ॥ जैसैं शुद्ध सोनाहू मलका संयोगतैं मैला होइ है; तैसैं सम्यक्त्वहू सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयतैं शंकादिक मलदोषका संयोगतैं मलिन होय है ॥ अब अगाढ कहे हैं ॥ जैसैं वृद्धका हस्तकी लाठी स्थानमें तिष्ठतीहू कंपायमान रहे है–गिरै नही, तोहू दृढ नही है, तैसैं आप्त आगम पदार्थनिका श्रध्दानरूप अवस्था तिसविषैं तिष्ठता हुवाभी परिणाममें कांपे है, दृढ नही रहै, ताकूं अगाढ कहिये है। ताका उदाहरण ऐसा–समस्त अरहंत परमेष्ठीनिकै अनंतशक्तिपना समान होतैंहू जाकै ऐसा विचार होइ इस शांतिक्रियाविषैं शांतिनाथस्वामीही समर्थ है, बहुरि इस विघ्नना-शन आदि क्रियाविषैं पार्श्वनाथस्वामीही समर्थ हैं. इत्यादि प्रकारकरि रुचि–प्रतीतीकी शिथिलता है, तातैं बूढेका हाथविषैं लाठीका शिथिलसंबंधपनाकरि अगाढका दृष्टांत है ॥ ऐसैं सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयकरि श्रध्दानमें चल मल अगाढ दोष क्षयोपशमसम्य-

क्त्वमें आवे हैं अर कर्मका नाश करनेकूं समर्थ हैं ॥

बहुरि अनंतानुबंधी ४ दर्शनमोहनीय ३ इन सातप्रकृतिनिका सर्व उपशम होनेकरि औपशमिकसम्यक्त्व होय है। अर इन सात प्रकृतिनिका क्षयतैं क्षायिक सम्यक्त्व होय है। इन दोऊ सम्यक्त्वमें शंकादिक मलनिका अंशभी नाही, तातैं निर्मल है। अर परमागममें कहे पदार्थनिके श्रद्धानमें कहूंभी नही स्खलित होइ है, तातैं दोऊ सम्यक्त्व निश्चल है। अर आप्त आगम पदार्थ भगवान्के कहे तिनमें तीव्र रुचि धारे हैं। तातैं दोऊही सम्यक्त्व गाढरूप हैं। जातैं चल मल अगाढ दोष उत्पन्न करनेवाली सम्यक्त्व-प्रकृतिके उदयका अभाव है; तातैं ये दोऊ सम्यक्त्व निर्दोष हैं॥ अब व्यवहार-सम्यक्त्वका विषेश कहे हैं॥ जो सत्यार्थ आप्त आगम गुरूका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है॥ आप्तका स्वरूप ऐसा है– जो क्षुधा, तृषा, जन्म, जरा, मरण, राग, द्वेष, शोक, भय, विस्मय, मद, मोह, निद्रा, रोग, अरति, चिंता, स्वेद, खेद ये अठारह दोषरहित होय; अर समस्त पदार्थनिके भूत भविष्यत् वर्तमान त्रिकालवर्ती समस्त गुणपर्यायनिकूं क्रमरहित एकैकाल प्रत्यक्ष जानता ऐसा सर्वज्ञ होय; बहुरि परमहितरूप उपदेशका कर्ता होय सो आप्त अंगीकार करना॥ जातैं जो रागी द्वेषी होइ सो सत्यार्थवस्तुका नही कहे। अर जो आपही काम क्रोध मोह क्षुधा तृषादिक दोषसहित होइ, सो

अन्यकूं निर्दोष कैसैं करै? अर जाकै इंद्रियांके आधीन ज्ञान होय अर क्रमवर्ती होय सो समस्तपदार्थनिकूं अनंतानंतपरिणतिसहित कैसैं जानै? अर दूरवर्ती स्वर्ग नरक मेरु कुलाचलादिनिकूं अर पूर्वै भये जे भरतादिक तथा रामरावणादिक अर सूक्ष्म परमाणु आदिक सर्वज्ञविना कोन जाने? बहुरि परमहितोपदेशकाविना जगतके जीवनिका उपकार कैसैं होय? तातैं वीतराग सर्वज्ञ परमहितोपदेशकाविना आप्तपणा नहीं संभवे है।

जिनकै शस्त्रादिक ग्रहण करना तो असमर्थता अर भयभीतपणा प्रकट दिखावे है, अर स्त्रीनिका संग वा आभरणादिक प्रकट कामीपणा रागीपणा दिखावे है, तिनकै आप्तपणा कदाचित् नहीं संभवे है। तातैं परीक्षा करि जाकै सर्वज्ञता अर वीतरागता अर परमहितोपदेशकता ये तीन गुण होइ, सो आप्त है। जाकै वीतरागताही होइ अर सर्वज्ञपणा नहीं होइ तो वीतरागता तो घटपटादिक अचेतनद्रव्यनिकैहू क्षुधा तृषा राग द्वेषादिकके अभावतैं पाइये है, तिनकै आप्तपणा प्राप्त होइ वा सर्वज्ञत्व विशेषण आप्तका नहीं होय तो इंद्रियनिके आधीन किंचित् किंचित् मूर्तिक स्थूल निकटवर्ती वर्तमान वस्तूके जाननेवालेके वचनकी प्रमाणता होइ, सो अल्पज्ञके कहे वचन प्रमाण नहीं। तातैं अल्पज्ञानीकै आप्तपणा नहीं संभवे है, तातैं वीतराग "सर्वज्ञ" ऐसा कह्या। अर वीतरागता अर सर्वज्ञपणा दोय विशेषणही आप्तकै कहिये

तो वीतरागसर्वज्ञपणा तो मोक्षस्थानमें सिद्धनिकैहू पाइये है, यातैं परमहितोपदेशकपणाविना आप्तपणा नही बने है। तातैं सर्वज्ञता वीतरागता परमहितोपदेशकता अरहंतहीकै संभवे है ॥

बहुरि श्रुत जो आगम, ताका लक्षण श्रीरत्नकरण्ड नाम परमागममें ऐसा कह्या है ॥ श्लोक ॥ आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकं ॥ तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥ १ ॥ अर्थ- एते गुणसहित होय सो शास्त्र है ॥ आप्त जो सर्वज्ञवीतराग, ताकी दिव्यध्वनिकरि प्रकट कीया होय अर जाका अर्थ तथा शब्द वादिप्रतिवादीकरि तिरस्कारकूं नही प्राप्त होइ, एकांतीनिकी मिथ्यायुक्तिकरि छेद्या नही जाय, बहुरि प्रत्यक्ष अनुमानकरि जामैं विरोध नही आवै, अर वस्तुका जैसा स्वभाव है तैसा तत्त्वभूत उपदेशका करनेवाला होइ बहुरि समस्तजीवनिका हितरूप होइ, किसही जीवका अहितकूं नहीं करता होय, अर कुमार्गका दूरि करनेवाला होय सो शास्त्र है ॥ जातैं अल्पज्ञानीका कह्या तथा रागी द्वेषीका कह्या तो प्रमाणही नही है। तातैं आप्तका उपदेश्या आगम है सोही प्रमाण है। अर जाका अर्थ परवादीनिकरि बाधाकूं प्राप्त होइ प्रमाणकरि बाधित होइ सो काहेका आगम? बहुरि जामैं प्रत्यक्षप्रमाणसूं बाधा आजाय वा अनुमानसूं बाधा आजाय, सो काहेका आगम? बहुरि जामैं सारभूत

जीवका कल्याणरूप उपदेश नही, सो काहेका आगम? बहुरि जो जीवनिका घात करनेवाला दुःखदायी होय, सो शास्त्र शस्त्र है, बुद्धिवानोंनिकै आदरनेजोग्य नही है। अर जो संसारके कुमार्गकूं प्रवर्तन करावै, सो खोटा आगम है॥

अब गुरूका लक्षण ऐसा है॥ श्लोक॥ विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः॥ ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते॥ १॥ अर्थ— जो पंच इंद्रियनिके विषयनिकी आशाकरि रहित होय, जाकै इंद्रियनिके विषयनिमैं वांछा नष्ट होगई होइ, बहुरि जाकै किंचिन्मात्रहू आरंभ नही होय, अर जाकै तिलतुषमात्र परिग्रह नही होय, अर जो ज्ञान ध्यान तपमें लीन होय–रक्त होय, सो तपस्वी प्रशंसायोग्य है॥ ऐसैं आप्त आगम गुरूमैं जाकै दृढ श्रद्धान होइ सो सम्यग्दृष्टि है॥ जातैं कार्तिकेयस्वामीहू स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाविषैं सम्यक्त्वका लक्षण ऐसा कह्या है– जो अनेकांतस्वरूप तत्त्वकूं निश्चयकरि सप्तभंगकरि सहित श्रुतज्ञानकरि वा नयनिकरि जीव अजीवादिक नवप्रकारके पदार्थनिकूं श्रध्दान करे है, सो शुद्ध सम्यग्दृष्टि है। तथा जो जीव पुत्रकलत्रादिक समस्त अर्थनिमैं मद गर्व नही करे है–उपशमभाव जे मंदकषायरूप भाव तिनकूं भावनारूप करे है अर आपकूं तृणवत् लघु माने है अर विषयनिकूं सेवन करे है अर समस्त आरंभमें वर्ते है, तोहू जाकै मोहका ऐसा विलास है सो समस्तविषयनिकूं हेय माने

है-त्यागनेयोग्य माने है, चारित्रमोहकी प्रबलतातैं विषयनिमैं आरंभमें प्रवर्तताहू अतिविरक्त है-नही राचे है, जो उत्तम सम्यक् गुणनिके ग्रहणमें आसक्त है, अर उत्तम साधुजननिमैं विनयसंयुक्त जाकी प्रवृत्ति है, अर साधर्मीनिमैं जाकै अत्यंत अनुराग है, अर देहसूं मिली रह्याहू अपने आत्माकूं अपना ज्ञानगुणकरि भिन्न जाने है, अर जीवसूं मिल्या देहकूं कंचुक जो वस्त्र वा वकतरसमान भिन्न जाने है, सो शुद्धसम्यग्दृष्टि है ॥

णिज्जियदोसं देवं । सव्वजीवाण दयावरं धम्मं ॥
वज्जियगंथं च गुरुं । जो मण्णदि सो हु सद्दिठी ॥ १ ॥

अर्थ— जो अठरा दोषरहित सर्वज्ञकूं तो देव माने है, अर समस्त जीवनिकी दयामैं तत्पर, ताकूं धर्म माने है, अर समस्तपरिग्रहरहितकूं गुरु माने है, सो सम्यग्दृष्टि है ॥

दोससहियं पि देवं । जीवहिंसाइसंजुदं धम्मं ॥
गंथासत्तं च गुरुं । जो मण्णदि सो हु कुद्दिठी ॥ २ ॥

अर्थ— जो रागद्वेषादिक दोषसहितकूं देव माने है, अर जीवहिंसासहित धर्म माने है, अर परिग्रहमें आसक्तकूं गुरु माने है, सो मिथ्यादृष्टि है ॥ कोऊ देव मनुष्यादिक इस जीवकूं लक्ष्मी नही दे है ॥ अर इस जीवका कोऊ उपकार नही करे है। उपकार अर अपकारकूं अपना उपार्जन कीया पुण्यपापरूप कर्म करे है।

कोऊकूं कोऊ अशुभकर्म हरनेको अर शुभकर्म देनेको तीन लोकमें देव दानव इं
अहमिंद्र जिनेंद्र समर्थ नहीं है। कर्म तो अपने शुभ अशुभ परिणामके अनुकूल
बंधे है। अर द्रव्य क्षेत्र काल भावका निमित्तकूं पाय अपना रस देय निर्जरे है।
तातैं पर तो निमित्तमात्र है। जो भक्तिकरि पूजे हुये व्यंतर योगिनी यक्ष क्षेत्रपाला-
दिकही लक्ष्मी देवै तो धर्म करना व्यर्थ होजाय। समस्तव्यंतरनिहीकूं पूजि अपना हित
करै, पूजा दान ध्यान शील संयमादिक निष्फल होजाइ। जातैं सुख आवै सो साता-
वेदनीयकर्मके उदयतैं आवै अर दुःख आवै सो असातावेदनीयकर्मके उदयतैं आवै।
अर कर्म कोऊकूं कोऊ देनेकूं समर्थ नही है। तातैं अन्यकूं दूषण देना वा राग करना
मिथ्या है। जो हितके इच्छक हो तो परमधर्ममें प्रवर्तन करो॥

बहुरि जिस जीवके जिस देशमें जिस कालमें जिस विधानकरिकै जन्म वा
मरण, सुख, दुःख, लाभ, अलाभ, संयोग वियोग होना जिनेंद्रभगवान् केवलज्ञानकरि
निश्चित जान्या है—देख्या है; तिस जीवकै तिस देशमें, तिस कालमें, तिस विधान-
करिकै तैसैंही होयगा। इसकूं अन्यथा करनेकूं चलायमान करनेकूं इंद्र वा अहमिंद्र
वा जिनेंद्र समर्थ नही है। ऐसैं जो निश्चयनयतैं समस्तद्रव्यनिके समस्तपर्यायगुण-
निके परिणमनकूं जाने है, सो शुद्ध सम्यग्दृष्टि है। अर जो इसमें शंका करै सो

मिथ्यादृष्टि है। बहुरि जो तत्त्व जाननेकूं समर्थ नहीं है सो जिनेंद्रके वचननिहीमें श्रद्धान करे है। जो जिनेंद्रभगवान् दिव्यज्ञानतैं देखिकरि कह्या है, सो समस्त मैं सम्यक् इच्छा करूं हूं-प्रमाण करूं हूं ग्रहण करूं हूं ऐसा जाकै दृढ निश्चय है, सो मंदज्ञानीहू सम्यग्दृष्टि है ॥

सम्यग्दर्शनके पचीस दोष हैं तिनकूं टारि श्रद्धानकूं उज्वल करना ॥ तिनमैं मूढता तीन ३, अष्ट मद ८, शंकादिक दोष आठ ८, अनायतन छह ये पचीस दोष हैं ॥ तिनमैं मूढताकूं वर्णन करे हैं- नदीस्नानमें धर्म मानै, समुद्रकी लहरीनिके स्नानमें धर्म मानै, पाषाणका वालूका पूंज करनेमें धर्म मानै, पर्वततैं पडनेमें अग्निमें प्रवेश करनेमें धर्म मानै, संक्रांतिमें दान करनेमें ग्रहणमें स्नानकरनेमें धर्म मानै, सो लौकिकमूढ है ॥ बहुरि हमारा वांछित देव देगा ऐसी आशा करि रागद्वेषकरि मलिनदेवनिकी सेवा करना; तथा ग्रह, भूत, पिशाच, योगिनी, यक्ष, क्षेत्रपाल, सूर्य, चंद्रमा, शनैश्चरादिकनिकूं वांछितकी सिद्धीके अर्थि पूजा करना दान करना; सो देवमूढता है ॥ तथा जे च्यारि निकायके देवनिके स्वरूपकरि रहित अर देवाधिदेव सर्वज्ञपणाकरि रहित जिनका विकारी रूप वा तिर्यंचनिकेसे मुख जिनका हस्तीकासा मुख सिंहकासा मुख गर्दभमुख वानराकेसे मुख सूरकेसे मुख पूंछ सींग इत्यादिसहितकूं देव

माननाः तथा त्रिमुख चतुर्मुख पंचमुख चतुर्भुज इत्यादिक प्रकट दिव्य देवके रूपरहित विकराल जिनके रूप तथा लिंग योनि इत्यादिक विपरीत रूप जिनकूं देखे लज्जा उपजै तिनमैं देवत्वबुद्धि करै अर देव मानि पूजा वंदना करै, देवनिके अर्थि बकरा भैसा इत्यादिकनिकूं मारि चढावै, तथा देवतानै मद्यमांसके भक्षक जानै, सो समस्त तीव्र मिथ्यात्वके उदयतैं देवमूढता कहिये हैं ॥

जे आरंभ परिग्रह हिंसाकरि सहित, पाखंडी, कुलिंगी, विषयनिके लोलपी, अभिमानीनिकूं गुरु मानि सत्कार वंदना पूजादिक करै; सो गुरुमूढता जाननी ॥ बहुरि ज्ञानका मद, कुलमद, जातिमद, बलमद, ऐश्वर्यमद, तपोमद, रूपमद, शिल्पिमद, ये आठ मद सम्यक्त्वके घातक हैं ॥ इंद्रियजनित विनाशिक ज्ञानमें अहंकार करना तथा जाति, कुल, रूप, बल, ऐश्वर्य ये कर्मके उदयजनित हैं, तथा पर हैं, विनाशिक हैं, इनमें आपा धरना सो अष्ट मद मिथ्यात्वके उदयतें हैं ॥ तथा कुदेव, कुधर्म, कुगुरु, अर इनके सेवक तिनकूं अनायतन कहे हैं। रागी द्वेषी मोही तथा जे देवपणारहित ये कुदेव, अर जामैं तीव्र हिंसाकी प्रवृत्ति दयारहित सो कुधर्म, अर परिग्रहधारी विषयकषायांकै वशीभूत सो कुगुरु, तीन तो ये भये। अर कुदेव कुधर्म कुगुरु इनि तीननिके सेवन करनेवाले ये छहूही 'आयतन' कहिये धर्मके स्थान नही हैं, तातैं इनकूं

अनायतन कहिये हैं। इनकी प्रशंसा करना, इनमें भले गुण जानना मिथ्यात्वके उदयतैं हैं॥

बहुरि शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढदृष्टिता, अनुपगूहन, अस्थितीकरण, अवात्सल्य, अप्रभावना ये आठ दोष सम्यक्त्वके हैं। इनिके अभावतैं इनिके प्रतिपक्षी अष्टगुण हैं। तिनमैं जो सर्वज्ञभाषित धर्ममें संशयका अभाव, सो निःशङ्कित है। सर्वज्ञ वीतरागही आराधनायोग्य देव है-अन्य रागी द्वेषी नही, रत्नत्रयके धारक विषयकषायनिके जीतनेवाले निर्ग्रंथही गुरु हैं-अन्य आरंभी परिग्रही नही, दयाभावही धर्म है-हिंसाभाव धर्म नही, देवगुरुके निमित्तकरि हुई हिंसा पापही फले है धर्मकूं नही उपजावे है। ऐसैं देव-गुरु-धर्मके स्वरूपमें संशयरहित निःशंक प्रवर्तै; ताकै निःशङ्कित गुण होय है॥ बहुरि इहलोकभय, परलोकभय, मरणभय, वेदनाभय, अनारक्षाभय, अगुप्तिभय, अकस्माद्भय इनि सप्तभयनिकरि रहित निःशंकित गुण होय है॥ दशप्रकारके परिग्रहके वियोग होनेका भय, सो इस लोकका भय है। अर दुर्गति जानेका भय, सो परलोकका भय है। प्राणनिका नाश होनेका भय, सो मरणका भय है। रोगका भय, सो वेदनाभय है। कोऊ हमारा रक्षक नही ऐसा अनारक्षाभय होय है। चोरनिका भय, सो अगुप्तिभय है। अचानक कोऊ आपत्ति दुःख आवै ताका भय, सो अकस्माद्भय है। इनि सप्तभयनिका अभाव जाकै होय,

सो निःशंकितगुणका धारक नियमतैं सम्यग्दृष्टि होय है ॥

सम्यग्दृष्टि इस लोकके भयके जीतनेकूं ऐसैं चिंतवन करे है— नखतैं लगाय शिखापर्यंत समस्त देहकूं अवगाहन करि जो ज्ञान तिष्ठे है, सो मेरा अविनाशी निज धन है, अनादिनिधन है, नवीन उत्पन्न नही, अर अनंतकालमें विनसे नही, यह मेरे निश्चय है, अर जो धन धान्य स्त्री पुत्र परिवार कुटुंब राज्य संपदा हैं ते परद्रव्य हैं, विनाशीक हैं, जहां उत्पत्ति है तहां प्रलय है, अर जिसका संयोग है तिसका वियोग है, इनका मेरे अनेकवार संयोग भया अर वियोग भया, जातैं परिग्रहके नाश होतैं मेरा नाश नही अर परिग्रहका उत्पाद होतैं मेरा उत्पाद नही—उत्पादविनाश दोऊ परद्रव्यनिमें हैं तातैं परद्रव्यका नाश होतैं स्वभाव अचल है—नाश नही, ऐसैं सम्यग्दृष्टि अपना रूपकूं अखंड अविनाशी ज्ञाता द्रष्टा देखे है—अनुभवे है । तातैं दशप्रकारका परिग्रह विनशनेका भय—जो मेरी धनसंपदा, मेरा स्त्रीपुत्र कुटुंब, मेरा ऐश्वर्य मति कदाचित् विनशि जाय ऐसैं परिणाममें शंका, सो इसलोकका भय—ताकूं सम्यग्ज्ञानी नही प्राप्त होय है ॥

परलोकमें दुर्गति जानेका भय, सो परलोकभय है, सो सम्यग्दृष्टीके नही है । सम्यग्दृष्टि ऐसा विचार करे है— ज्ञान है सो मेरा वसनेका लोक है, इस अविनाशी ज्ञान-

लोकहीमैं मेरा निश्चल वसना है, अर जे नरक स्वर्ग मनुष्य तिर्यंच महादुःखनिके भरे लोक है सो मेरा लोक नही है-पुण्यपापातैं उपज्या है, पुण्यका उदय होइ तदि जीव शुभगतिकूं प्राप्त होय है, पापका उदय होइ तदि दुर्गतिकूं प्राप्त होय है, सुगति दुर्गति दोऊ विनाशिक हैं कर्मकृत हैं, मै चिदानंद चैतन्य ज्ञाता द्रष्टा अखंड शिवनायक कर्मतैं भिन्न अपने ज्ञानलोकमें रहूं ज्ञानलोकविना अन्य मेरा लोकही नही, ऐसैं चिंतन करतै परलोकका भय नही होय है ॥ जो सुगतिदुर्गतिसंबंधी इंद्रियजनित सुखदुःखमें आपा धारे है, ताकै परलोकका भय है। अर जो निःशंक कर्मकलंकरहित अपना स्वरूपकूं अविनाशिक अखंड अनुभवे है, ताकै परलोकका भय नही होय है ॥

अब रोगकी वेदनाका भयकूं निराकरण करे है ॥ जो अचल निजज्ञानकूं वेदे है-अनुभवे है, सो वेदना है, सो अनुभव करनेवाला जीव अर जिस भावकूं वेदे है-अनुभवे है सोहू जीव है, जो अपने स्वभावकूं वेदना-अनुभवना सो वेदना तो अविनाशीक है, मेरा रूप है, सो देहमें नही है। अर जो कर्मकरि करी हुई सुखदुःखरूप वेदना है सो मोहका विकार है, पुद्गलमें है, विनाशिक है, देहमें जाकै ममता है ताकै है। अर देहका घात करनेवाले रोगादिक ते देहमें हैं, देहका नाश करेगा। मै ज्ञाता द्रष्टा अमूर्तिक अविनाशी ताका एकप्रदेशकूं चलायमान करनेकूं समर्थ नही है। ऐसैं

देहतैं अर देहमें उपजी वेदनातैं अपने स्वरूपकूं अखंड अविनाशी अनुभवे है, ताकै वेदनाभय नही प्राप्त होय है ॥

अब मरणभयका निराकरण करे हैं ॥ प्राणनिके नाशकूं मरण कहिये हैं। सो पंच इंद्रिय, मनोबल, वचनबल, कायबल, आयु, श्वासोश्वास ये दश प्राण हैं, सो देहकै हैं। इनका विनाश होतैं देहका विनाश होय है। ज्ञानप्राणसंयुक्त अमूर्त अखंड ऐसा मै आत्मा, तिसका नाश नही है। ऐसैं देहतैं अर देहजानित मूर्तिक विनाशिक दश-प्राणनितैं आपकूं भिन्न अनुभवे है, ताकै मरणका भय नही होय है। जो मूढ देहका मरणकूं आत्माका मरण होना अनुभवे है, ताकै मरणका भय होइ। यातैं सम्यग्दृष्टि अपने आत्माकूं ज्ञान दर्शन सुख सत्ता इत्यादि भवप्राणरूप अनुभवै, ताकै मरणभय नही होय है ॥

अब कोऊ हमारा रक्षक नही ऐसा अनारक्षा भयकूं कहे हैं ॥ जगतविषैं जो सत् है तिसका विनाश नही है, ऐसैं वस्तुकी स्थिति प्रकट है। सत्का विनाश नही असत्का उत्पाद नही। मेरा ज्ञान सत् है, सो तीन कालमें इसका नाश है नही, ऐसा मेरै निश्चय है। यातैं मेरा चैतन्यस्वभावका अन्य कोऊ रक्षक नही, अर अन्य कोऊ भक्षक नही, पर्याय उपजे हैं पर्याय विनसे हैं। मेरा स्वभाव पुद्गलपर्यायतैं भिन्न

अविनाशी ज्ञानमय है, याका रक्षक भक्षक कोऊ है नही। तातै सम्यग्दृष्टि निःशंक निर्भय अपना ज्ञानमय निजस्वभावकूं वेदे है-अनुभवे है ॥

चोरका भय सो अगुप्तिभय है, ताहि जनावे है, । जो वस्तूका निजस्वरूप है सोही सर्वोत्कृष्ट गुप्ति है । अपना निजस्वरूपविषैं कोऊ परद्रव्य प्रवेश करनेकूं अशक्त है, मेरा सर्वोत्कृष्ट चैतन्य स्वरूप है, अन्य कोऊ इसमें प्रवेश नही करि सके है । अर मेरा चैतन्य रूप कोऊ हरनेकूं समर्थ नही है, मेरा स्वरूप अक्षय अनंतज्ञानस्वरूप अविनाशी धन है, तिसकूं चोर कैसें ग्रहण करै? इसमें कोऊ अन्यद्रव्यका प्रवेशही नही, ज्ञान-दर्शन-सुख- वीर्यरूप मेरा अविनाशी धन कोऊ हरनेकूं समर्थ नही । ऐसैं अनुभव करता निःशंक निर्भय अपने ज्ञानस्वभावमें तिष्ठते सम्यग्दृष्टीकै अगुप्तिभय नही होय है ॥

अब अकस्माद्भयकूं निराकरण करे हैं ॥ मेरा स्वरूप स्वभावहीतैं शुद्ध है, ज्ञानस्वरूप है, अनादिका है, अविनाशी है, अचल है, सिद्ध है, एक है, इसमें दूजेका प्रवेश नही है, चैतन्यका विलासरूप समस्तद्रव्यनिका जामैं प्रकाश हो रह्या है, अर समस्त-विकल्परहित अनंतसुखका स्थान है, तिसमैं अचानक कुछ होना नही है । तातैं ज्ञानी सम्यग्दृष्टि अपना स्वरूपमें अनंतानंत काल होतैंहू द्रव्यकृत क्षेत्रकृत कालकृत

भावकृत कुछहू उपद्रव होना नही माने है। केवल ऐसा साहस सम्यग्दृष्टि जीवही करनेकूं समर्थ है। जो भयकरिकैं चलायमान जो त्रैलोक्य तानैं छांडी है प्रवृत्ति जातैं ऐसा वज्रपातकूं पडतैंहू अपने स्वभावकी निश्चलताकरिकै समस्तही शंकाकूं त्यागिकरिकै अर अपना स्वरूपकूं अविनाशी ज्ञानमय जानत है अर ज्ञानतैं नही च्युत होय है ॥ भावार्थ— ऐसा वज्रपात पडै! जो लोक चालते हालते खाते पीते जैसेके तैसे अचल रहिजाय ऐसा भयंकर कारण होतैंहू जो अपना ज्ञानमय आत्माकूं अविनाशी जानता भयकूं नही प्राप्त होय, तिसकै निःशंकित अंग होय है ॥

बहुरि इंद्रियजनित सुखमें जाकै अभिलाष नही, धर्मसेवनकरि धर्मके फलकूं नही चाहै, सो निष्कांक्षित गुण है। जातैं सम्यग्दृष्टीकूं इंद्रियनिके विषयजनित सुख दुःखरूप भासे हैं। कैसे हैं विषयनिके सुख? कर्मके परवशी हैं, पुण्यकर्मका उदय होइ तदि विषय मिले हैं, बहुरि मिलै तोहू थिर नही हैं—अंतसहित हैं, बहुरि बीचिबीचि इष्टवियोगादिक अनेकदुःखनिके उदयकरि सहित हैं, पापका बीज हैं। ऐसैं इंद्रियजनितसुखमें वांछाका अभाव सो निष्कांक्षित अंग है ॥

बहुरि रोगी दरिद्री देखि ग्लानि नही करै, तथा आपकै अशुभकर्मका उदय देखि ग्लानि नही करै, तथा पुद्गलनिकी मलिनता देखि ग्लानि नही करै, जातैं देह तो

रोगमय है अर कर्मके उदयकी अनेक परिणति हैं, पुद्गलनिके नाना परिणमन हैं, इनके परिणमन देखि रागद्वेषकरि परिणामकूं मलिन नही करै, ताकै निर्विचिकित्सा अंग होइ॰

बहुरि जो भयतैं लज्जातैं लाभतैं हिंसाके आरंभकूं धर्म नही मानै अर जिनेंद्रकी आज्ञामैं लीन हुवा मिथ्यादृष्टि एकांतीनिका चलायमान कीया तत्त्वतैं नही चलै, सो अमूढदृष्टि नामा अंग है ॥ तथा मिथ्यादृष्टीनिका प्ररूप्या एकांतरूप कुमार्ग तथा कुमार्गीनिका आचरण कुमार्गीनिका ज्ञान ध्यान तप त्याग देखि मन–वचन–कायकरि प्रशंसा नही करै। तथा मंत्र यंत्र तंत्र पूजा मंडल होम यज्ञादिककरि तथा व्यंतरादिक-देवनिकी पूजाकरि तथा गृहादिकनिकी पूजदिककरि अशुभकर्मका अभाव होना अर साताका उदय होनेका श्रद्धान नही करै। जातैं अशुभकर्मके उदय दूरि करनेकूं अर शुभकर्मके देनेकूं त्रैलोक्यमें कोऊ समर्थ नही है। अपने परिणामनिकरि बांध्या हुवा कर्म आपके शुद्धपरिणामकरिही निर्जरै, और कोऊ दूरि करनेकूं समर्थ नही है। ऐसा दृढश्रद्धान सो अमूढदृष्टि है ॥

बहुरि जो परके दोषकूं आच्छादन करै–ढाकै अर अपना भला कर्तव्य तिसका प्रकाश नही करै। जातैं संसारी जीव रागद्वेषके वशीभूत हैं, अपना आपा भूलि रहे हैं, परमार्थतैं पराङ्मुख हैं, स्वरूपका अवलोकनरहित हैं, ज्ञानावरणकरि आच्छादित

हैं, तातैं परवश हुवा दोषरूप प्रवर्ते हैं, इनका दोष प्रकट कीये अवज्ञा होयगी; तथा यो धर्ममें प्रवर्ते हैं, धर्मकी हास्य होयगी; तातैं परके दोषकूं ढाकै अर अपनी बढाई नहीं करै "जो मैं केवलज्ञानरूप परमात्मरूप होइ विषयकषायनिमैं फसि रह्या हूं!" ऐसैं आत्मनिंदा करै, अर जैसैं सर्वज्ञभगवान् देख्या है तैसैं होयगा ऐसैं भवितव्यभावनामैं रत होइ, ताकै उपगूहन अंग होइ है ॥

कोऊ पुरुष रोगकरि वा उपसर्गकरि वा क्षुधातृषाकी वेदनाकरि वा व्रत पालनेमें शिथिलताकरि तथा असहायताकरि तथा निर्धनताकरि मुनिधर्मतैं वा श्रावकधर्मतैं चलायमान होता होय ताकूं धर्मोपदेश देनेकरि तथा शरीरकी टहल चाकरी करि वा औषध भोजनपान देनेकरि वा निराकुल वसतिका वा गृहादिक देनेकरि वा उपद्रवादिक दूरि करनेकरि धर्ममें स्तंभन करै, धर्मतैं चलवा नहीं दे, ताकै स्थितीकरण अंग है॥

बहुरि जो धर्मविषैं वा धर्मात्मा पुरुषविषैं वा धर्मायतन कहिये जिनमंदिर जिनप्रतिमाविषैं वा सत्यार्थधर्मके प्ररूपक जिनेंद्रका आगमके पठनविषैं श्रवणविषैं उपदेश देनेविषैं जिनकै अत्यंत प्रीति होय ताकै वात्सल्य अंग होय है ॥

संसारी जीवनिकै अपनी स्त्रीविषैं वा पुत्रादिककुटुंबविषैं वा धनपरिग्रहादिकविषैं तीव्र अनुराग लगि रह्या है, धर्ममें धर्मात्मापुरुषनिमैं राग नहीं है, सत्यार्थ स्वपरका

निर्णय करि जो परमधर्मकूं जाणै चतुर्गतिका दुःखसूं भयभीत होय, अर जाकूं विषय विषसमान भासै अर आत्मिकसुख जाकूं सुख दीखै, ताकै धर्ममें वात्सल्य होय है ॥

बहुरि अपने आत्माके मांहि अनादिके मिथ्यात्वादिक मल रागादिक कामादिक मल तिनकूं दूरि करि अपने आत्माका प्रभाव रत्नत्रय धारणकरि प्रकट करना, सो प्रभावना नाम अंग है ॥ तथा दान तप जिनपूजा त्याग इत्यादिकरि जिनधर्मका प्रभाव जगतमें प्रकट करै, मिथ्यादृष्टीहू देखि प्रशंसा करै " जो, ऐसा शील जैनीहीकै होय, जिनका निर्लोभपणा, दयालुपणा, दातारपणा, क्षमावान्पणा, तथा त्याग, वैराग्य, शील, संयम, सत्य इत्यादिक देखि बालगोपालहू महिमा करै," ताकै प्रभावना अंग होइ है ॥ जो महाव्रत अणुव्रत धारै, सो प्राण जातैंहू हिंसा, झूठ, परधनहरण, कुशील, परिग्रहमें नहीं प्रवृत्ति करै ऐसा धर्मका महिमा प्रकट दिखावै, अपनी मन-वचन-कायकी प्रवृत्तिकरि धर्मकी निंदा नहीं करावै, अर अभ्यंतर अपने आत्माकूं मिथ्यात्वादिकनितैं मलिन नहीं होने देवै, ताकै प्रभावना नाम अंग होय है ॥ ऐसैं सम्यक्त्वके अष्ट गुण कहे ॥ कार्तिकेयस्वामी ऐसैं कह्या है—

जो ण कुणदि परतत्तिं । पुणुपुणु भावेदि सुद्धमप्पाणं ॥
इंदियसुहणिरवेक्खो । णिस्संकाई गुणा तस्स ॥ १ ॥

अर्थ— जो जीव परकी निंदा नहीं करे है, अर वारंवार रागादिरहित शुद्ध आत्माकूं भावे है–अनुभवे है, अर इंद्रियजनितसुखमें जिनकै वांछाका अभाव है, तिनकै निःशंकितादि गुण जानिये है ॥

औरहू प्रशम, संवेग, अनुकंपा, आस्तिक्य ये सम्यक्त्वके लक्षण हैं ॥ संवेग, निर्वेग, निंदा, गर्हा, उपशम, भक्ति, वात्सल्य, अनुकंपा ये सम्यक्त्वके अष्टगुण हैं ॥ धर्ममें अत्यंत अनुराग होना, सो संवेग है ॥ संसार देह भोगनितैं विरक्तता, सो निर्वेग है ॥ आपका दोष चिंतवन करि अंतःकरणमें आपकी निंदा करनी, अपना प्रमादीपणा विषयानुरागीपणा कषायनिके आधीनपणा संयमरहितपणा देखि आपाकूं निंदना, सो निंदा है ॥ गुरुनिके निकट अपने दोष प्रकट करि आपकी निंदा करना, सो गर्हा है ॥ बहुरि क्रोध मान माया लोभका मंद होना, सो उपशमभाव है ॥ बहुरि पंचपरमेष्ठीके गुणनिमैं वा सम्यग्दृष्टि व्रतीनिके गुणनिमैं अनुराग करना, सो भक्ति है ॥ बहुरि धर्मात्मा जीवनिमैं प्रीति करना, सो वात्सल्य है ॥ बहुरि समस्तजीवनिमैं दुःख देखि अंतरंगमें कंपायमान होना, सो अनुकंपा है ॥ जाकै सम्यग्दर्शन होइ ताकै ये अष्टगुण प्रकट होयही हैं ॥ ऐसैं सम्यक्त्वका संक्षेप वर्णन कीया ॥ सम्यग्दर्शनसहित एकदेशव्रतकूं धारण करि मरण करे है, सो बालपंडितमरण है ॥ अब गृहस्थकै

देशव्रत कैसें है, सो कहे हैं ॥ गाथा–

पंच य अणुव्वयाइं। सत्त य सिक्खाउ देसजदिधम्मो ॥
सव्वेण य देसेण य। तेण जुदो होदि देसजदी ॥ २०७५ ॥

अर्थ— पंच अणुव्रत अर सप्त शिक्षाव्रत ये बारा व्रत देशयति जो एकदेशव्रती ताका धर्म है। जो श्रावक ये बारा व्रत समस्तपणाकरि वा इनिका एकदेशकरि जो युक्त होय, सो श्रावक एकदेश यति वा एकदेश संयमी वा व्रती होइ है ॥ अब पंच अणुव्रत तिनके नाम कहे हैं ॥ गाथा–

पाणिवधमुसावादा-। दत्तादाणपरदारगमणेहिं ॥
अपरिमिदिच्छादो वि य। अणुव्वयाइं विरमणाइं ॥ ७६ ॥

अर्थ— हिंसा, असत्य, अदत्तादान, परदारागमन, परिमाणरहित परिग्रह इनि पंच पापनिका एकदेशत्याग, सो पंच अणुव्रत है ॥ अब तीनप्रकार गुणव्रतके नाम कहे हैं ॥ गाथा—

जं च दिसावेरमणं। अणत्थदंडेहि जं च वेरमणं ॥
देसावगासियं पि य। गुणव्वयाइं भवे ताइं ॥ ७८ ॥

अर्थ— जो मरणपर्यंत दश दिशानिमैं गमनादिककी मर्यादा करना, सो दिग्विरति

व्रत है। अर अनर्थदंडनिका त्याग, सो अनर्थदंडविरति व्रत है। अर कालकी मर्याद करि क्षेत्रमें गमन करनेकी मर्यादा, सो देशावकाशिक है। ऐसैं तीन गुणव्रत हैं॥ अब च्यारिप्रकार शिक्षाव्रतनिकूं कहे हैं॥ गाथा—

भोगाणं परिसंखा। सामाइयमतिहिसंविभागो य॥
पोसहविधी य सव्वो। चदुरो सिक्खाउ वुत्ताउ॥ ७८॥

अर्थ— भोगोपभोगकी मर्यादा, सो भोगोपभोगपरिमाणव्रत है। सामायिककी प्रतिज्ञा करना, सो सामायिक नाम शिक्षाव्रत है। च्यारि पर्वनिमैं उपवासादिक प्रोषध विधि करना, सो प्रोषधोपवास नामा शिक्षाव्रत है। ऐसैं च्यारि शिक्षाव्रत कहे॥ पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, च्यारि शिक्षाव्रत ऐसैं ये बारह व्रत गृहस्थ अवस्थामैं श्रावककै कहे॥

इहां ऐसा विशेष जानना— सम्यग्दर्शनका धारक जीवकै समस्त व्रतादिक होइ हैं। तातैं जो पहली जिनेंद्रभाषितसूलकी आज्ञाप्रमाण तत्त्वार्थनिका श्रद्धानस्वरूप सम्यग्दर्शन धारण करिकै; अर जो जूवा, मांस, मद्य, वेश्या, शिकार, चोरी, परस्त्री इन सात व्यसनका त्याग; अर पंच उदुंबरफलादिकका त्याग; तथा जिनमैं त्रसजीवनिकी उत्पत्ति ऐसा बीजफलादिकका त्याग करे है; सो दर्शनप्रतिमाका धारक श्रावक है॥

बहुरि जो विशुद्धता वधि जाय तो व्रत नामा दूसरी प्रतिमा, तिसमैं बारा व्रत

धारण करे है। तिन व्रतनिका ऐसा संक्षेप है– जो अपनी बुद्धिपूर्वक नियम करना, सो व्रत है। तिनमैं जो अपने संकल्पतैं त्रसजीवनिकी हिंसा करनेका त्याग करै; मन वचन कायके संकल्पकरि त्रसजीवनिका घात नही करै; अन्यतैं मन वचन काय-करिकैं नही करावै; अन्य करता होय तिसकूं मन वचन कायकरि भला नही जानै–प्रशंसा नही करै; रोगादिककी पीडाकरि वा धनके लोभकरि वा भयकरि, वा लज्जाकरि, कदाचित् अपना प्राण जाय तोहू बे इंद्रियादिक त्रसका घात नही करै; जातैं गृहस्थकै एकेंद्रियकी हिंसाका त्याग तो बणि सकै नही; चाकी, चूला उखणी, भुवारी, परीडा, अर द्रव्यका उपार्जन ये छ कर्म पापहीके हैं; तातैं पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, पवनकाय, वनस्पतिकाय इनिके आरंभमें तो अत्यंत घटाय यत्नाचारपूर्वक प्रवर्तन करै; अर संकल्पी त्रसहिंसाका त्याग करै; अर आरंभमें यत्नाचारपूर्वक प्रवर्ततेहू जो कदाचित् विराधना होइ तो आपकै संकल्प है नही, कोऊ लाख धन देकरि एक कीडीकूं मरावै, वा भयकरि मरावै, तो प्राण जावो! वा धन जावो! परंतु अपने संकल्पतैं एक जीवकूं नही मारै; ताकै अहिंसा नामा अणुव्रत होय है॥ जातैं रागादिकनिकी उत्पत्ति सो हिंसा है, अर रागादिकनिकी उत्पत्तिका अभाव, सो अहिंसा है। जो वीतरागताकूं नही विस्मरण होता निरंतर

यत्नाचाररूप प्रवर्तै अर दयाधर्मकूं एक क्षण विस्मरण नही होय, ताकै अहिंसा नाम अणुव्रत है ॥

बहुरि जो हिंसाके करनेवाले वचन नही बोलै, वा कर्कश वचन नही कहै, वा अन्यकै दुःख उत्पन्न करनेवाला सत्यवचनहू नही कहै, अन्यकूं असत्यवचन नही बुलावै, तथा जो वचन कहै सो समस्त छकायके जीवनिके हितरूप कहै अर प्रमाणीक कहै, अर समस्त जीवनिकै संतोष करनेवाला वचन कहै, अर धर्मका प्रकाश करनेवाले वचन कहै, ताकै सत्य नामा अणुव्रत होइ है ॥

बहुरि विनादिया धनका ग्रहण करना, सो चोरी है। यातैं कोऊ आपमैं धन स्थाप्या होइ, वा कोऊ नगर ग्राम वन उपवनमें पड्या होइ, वा जमीमैं पड्या होइ, वा कोऊ भूमीमैं पटकि गया होइ, वा आपकूं सोंपि भूलि गया होइ, ऐसा परधनका जो त्याग करै, सो अचौर्य नामा अणुव्रत है। तथा बहुतमोलकी वस्तु अल्पमोलमें नही ग्रहण करै, अर गिऱ्या, पड्या, भूल्या, विस्मरण हुवा परके वस्तूको नही ग्रहण करै तथा अल्पलाभमें संतोष करै, ताकै अचौर्य नामा अणुव्रत है ॥

बहुरि जो अपनी विवाहिता स्त्रीविना अन्य समस्त स्त्रीनिका त्याग करै, ताकै ब्रह्मचर्य नाम अणुव्रत है ॥ बहुरि जो धनधान्यादिक समस्त परिग्रहका परिणाम करि

तिसतैं अधिकमें तृष्णाका अभाव करि संतोष धारण करै, ताकै परिग्रहपरिणाम नामा अणुव्रत होय है ॥ ऐसैं पंच अणुव्रत कहे ॥

बहुरि लोभके नाशके अर्थि जो यावज्जीव दश दिशानिका परिमाण, सो दिग्विरतिव्रत है ॥ बहुरि जिसतैं आपका कार्य तो कुछहू सिद्ध नहीं होय अर जातैं नित्य पापकर्मका बंध होइ, सो अनर्थदंड होय है । सो अनर्थदंड अनेकप्रकार है । तथापि सामान्यपणाकरि पंच भेद कहे हैं । पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुतिसेवन, प्रमादचर्या ये पंचप्रकार अनर्थदंडके नाम हैं । तिनमें जो खेती करनेका, पशु पालनेका, पापके विणजका, तिर्यंच मनुष्यनिकूं मारनेका, दृढ बांधनेका, पुरुषस्त्रीनिके संयोगका, तथा छहकायके जीवनिका घात जातैं होइ ऐसा उपदेश करना, सो पापोपदेश नामा अनर्थदंड है ॥

बहुरि हिंसाके उपकरण जे खड्ग, बाण, छुरी, कटारी, फावडा, खुरपा, कुंदाल, विष, अग्नि, रस, जेवडा, वेडी, सांकल, चाबका, जाल, पींजरा इत्यादिकका देना, सो हिंसादान नामा अनर्थदंड है । तथा मार्जार, कूकरा, तीतर, कूकडा इत्यादिक मांसभक्षी जीवनिका पालना तथा आयुधनिका वेचना, लोहका विणज करना, तथा लाख खलि इत्यादिक " जीवनिकी हिंसा जिनतैं प्रवर्तै तिनका " विणज व्यवहार

करना, सोहू हिंसादान नामा अनर्थदंड है ॥

बहुरि जो रागी द्वेषी हुवा अन्यजीवनिके स्त्रीपुत्रादिकनिका मरण चाहना; तथा अन्यजीवनिकै राजाकरि कीया तीव्रदंड, वा सर्वस्वहरण, वा चौरादिककरि धनका नाश, तथा जगतमैं अपवाद, कलंक इत्यादिककी वांछा करना; तथा अन्यजीवनिका अंगका छेद, बुद्धीका नाश, मारण, ताडनकी चाह करना; परका उदय देखि क्लेशित होना; अन्यकै आपदा आजाय वा अपमानादिक होय तदि आनंद मानना; सो अपध्यान नामा अनर्थदंड है ॥ तथा अन्य मनुष्य तिर्यंचनिकी राडि कलह देखना वा देखिकरि हर्ष मानना, अन्यजीवनिके दोष ग्रहण करना, परकी धन संपदा देखि वांछा करना, अन्यकी स्त्रीका देखनेमें अनुराग करना, आपका अभिमानकी वृद्धि चाहना, परका अपमान चाहना इत्यादिक अपध्यान नामा अनर्थदंड है ॥

बहुरि जिस शास्त्रमें हिंसामैं धर्म कह्या; तथा जिनमैं भंडकथा, कामकथा, वशीकरण, कपट, छलवर्णन, तथा युद्धशास्त्र तथा रागद्वेष मिथ्यात्वके वधावनेवारे खोटे शास्त्रनिका श्रवण करना; सो दुःश्रुति नाम अनर्थदंड है ॥ बहुरि जो प्रयोजनविना दोडना, कूटना, जलकूं सींचना, काटना, विनाप्रयोजन अग्निका बधावना पवनका उडावना, वनस्पतीका छेदना इत्यादिक निष्फलव्यापार-प्रवृत्ति करना, सो

प्रमादचर्या नामा अनर्थदंड हैं ॥ ऐसैं पंचप्रकारके अनर्थदंडनिका छोडना सो अनर्थदंडत्याग नामा दूसरा गुणव्रत है ॥

बहुरि जो यावज्जीव दशदिशामैं गमनका प्रमाण कीया, सो तो दिग्विरतिव्रत है। तिसमैं जो दिनप्रति मर्याद करै—जो मै आजि इतनी दूरही गमन करूंगा ऐसैं जो कालकी मर्याद करि गमनका परिमाण निति करै—ताकै देशावकाशिकव्रत कहिये हैं॥ बहुरि अपनी भोगोपभोगसंपदाकूं जाणिकरिकै अर रागभावके घटावनेकूं जो इंद्रियनिके विषयनिका परिमाण करै, ताकै भोगोपभोग नामा शिक्षाव्रत है ॥ तिनमैं मद्य, मांस, मधु, नवनीत जो लूण्यो, कंद, मूल, हलद, आदो, निंब, केवडा, केतकी इत्यादिकनिके पुष्प इनिमैं तो नियम नही; ये तो बहुत त्रसजीवनिका स्थान कहै, तातैं यावज्जीव त्याग करना उचित है। अर जो आपकै उदरशूलादिक दुःख करनेवाला जो प्रकृतिविरुद्ध है, ताका त्याग करै। जातैं जो अपनै दुःख होना, रोगका बधना, मरण होना, इनकूं नही गिणता जिव्हा इंद्रियका लोलपी होइ प्रकृतिविरुद्ध आहार करे है, ताकै तीव्ररागजनित अशुभकर्मका बंध होय है ॥

बहुरि जिसमैं जीवनिकी विराधना तो नही, परंतु उत्तमकुलमैं ग्रहणयोग्य नही, ते अनुपसेव्य हैं। जातैं शंखचूर्ण, गजके दंत, औरहू हाड, गायका मूत्र, उंटका

दुग्ध, तांबूलका उद्गाल, मुखकी लाल, मूत्र, मल, कफ, तथा उच्छिष्ट भोजन, तथा अशुद्धभूमीमें पड्या भोजन, तथा म्लेंछादिकनिकरि स्पर्श्या भोजन, पान, तथा अस्पृश्य शूद्रका ल्याया जल, तथा शूद्रादिकका कीया भोजन, तथा अयोग्य क्षेत्रमें धन्या भोजन, तथा मांसभोजन करनेवालेका भोजन, तथा नीचकुलके गृहनिमैं प्राप्त भया भोजन जलादिक अनुपसेव्य हैं। यद्यपि प्रासुक होइ हिंसारहित होइ तथापि अनुपसेव्यपणातैं अंगीकार करनेयोग्य नही है। बहुरि विकार करनेवाला भेष, वस्त्र, आभरण, नीच पुरुषनिकै योग्य, रागकारी कामादिकके वधावनेवाले चित्राम, गीत, नृत्य, भंडवचनश्रवण इत्यादिहू अनुपसेव्य हैं॥ तातैं अनिष्ट अर अनुपसेव्यकूं वर्जन करिकै जो न्यायोपार्जित त्रसजीवनिकी विराधनारहित भोजनादिक भोग अर वस्त्रादिक उपभोग, तिनमैं प्रमाण करि अंगीकार करै, तिसकै भोगोपभोगपरिमाण नाम व्रत है·

जो एकवार भोगनेमें आवै, सो तो भोजन, जल, पुष्प, गंधविलेपनादिकनिकूं भोग कहिये हैं। अर जे वस्त्र, आभरण, स्त्री, शयन, आसन, असवारी, महल, इत्यादिक वारंवार भोगनेयोग्य ते उपभोग हैं। तिन भोगोपभोगका यावज्जीव त्याग करना, ताकूं यम कहिये हैं। अर जो एकदिन, दोयदिन, वा रात्रि, वा पक्ष, मास, चतुर्मास, एक वर्ष इत्यादिक कालकी मर्यादारूप त्याग करना, सो नियम है। तिनमें

अयोग्य अनुपसेव्य त्रसनिका घात करनेवाले भोजनका तो यावज्जीव त्याग करि यमही करै । अर योग्यविषयनिमैं कालकी मर्यादपूर्वक त्याग करि नियम धारै ॥ ऐसैं समस्त पंच इंद्रियनिके विषयनिमैं यमनियम करै, सो भोगोपभोगपरिमाण नामा शिक्षाव्रत है ॥

बहुरि जिनकै पुण्यके उदयतैं नानाप्रकारकी भोगोपभोगसामग्री घरमें मौजूद तिष्ठै है, तिनमैंतैं अल्प ग्रहण करि वहुतका त्याग करे हैं अर आगामी कालमें भोगोपभोगकी वांछारहित हैं अर वर्तमानकालमें जे कर्मके उदयतैं भोगनेमें आवे हैं, तिनमैं अति उदासीन हुवा मंदरागसहित भोगे हैं, तिनके व्रत इंद्रनिकरि प्रशंसायोग्य समस्तकर्मकी स्थितिका छेद करे हैं ॥

बहुरि समस्त चेतन अचेतन द्रव्यनिविषैं रागद्वेषको त्याग करि साम्यभावकूं आलंबनकरिकै अर प्रातःकाल अर संध्याकालके विषैं अविचल मन–वचन–कायकूं करि अवश्य नित्यही सामायिकका अवलंबन करना, सो सामायिक नामा शिक्षाव्रत है। सो सामायिक करनेके अर्थि क्षेत्रशुद्धता देखनी । जहां कलकलाट शब्द नहीं होय, अर जहां स्त्रीनिका आगमन नहीं होय, नपुंसकनिका प्रचार नहीं होय, तिर्यंचनिका संचार नहीं होय, वा गीत नृत्य वादित्रादिकनिका शब्दरहित कलह विसंवादरहित होय, तथा जहां डांस मांछर मांखी बीछू सर्पादिकनिकी बाधारहित,

प्रोषधस्थान है ॥ याका विशेष ऐसा–

जो सप्तमी वा त्रयोदशीके दिन मध्याह्नकालपहली भोजन करिकै, अर पाछै
अपराह्नकालविषैं जिनेंद्रके मंदिरमें जायकरिकै, अर मध्याह्नसंबंधी क्रिया करिकै,
च्यारिप्रकारके आहारका त्याग करि उपवास ग्रहण करै, अर समस्त ग्रहके आरंभका
त्याग करि जिनमंदिरमें वा प्रोषधोपवासके गृहमें वा वनके चैत्यालयमें वा साधुनिके
निवासमें समस्त विषयकषायका त्याग करिकै सोलह प्रहरपर्यंत नियम करै, तहां सप्तमी
त्रयोदशीका अर्धदिन धर्मध्यान स्वाध्यायतैं व्यतीत करि अर संध्याकालसंबंधी सामा-
यिक वंदनादिक करि रात्रिनैं धर्मचिंतन धर्मकथा पंचपरमगुरुके गुणनिका स्मरणादि-
ककरि पूर्ण करिकै, अर अष्टमीचतुर्दशीके प्रातःकालमें प्रभातसंबंधी क्रिया करिकै, अर
समस्तदिवसकूं शास्त्रके अभ्यासतैं व्यतीत करिकै, बहुरि संध्याकालमें देववंदना करिकै,
अर रात्रिकूं तैसैंही धर्मध्यानतैं व्यतीत करिकै, प्रातःकाल देववंदनादिक करिकै, अर
पश्चात् पूजनविधिकरि अर पात्रकूं भोजन कराय करिकै जो पारणा करै, ताकै प्रोषधो-
पवास होय है ॥ एकहू निरारंभ उपवास उपशांत भया जो करै है, सो बहुतप्रकारका
चिरकालतैं संचय कीया कर्मकी लीलामात्रकरिकै निर्जरा करै है। अर जो पुरुष उप-
वासके दिनहू आरंभ करै है, सो केवल अपने देहकूं शोषण करै है अर कर्मका लेशहू

अयोग्य अनुपसेव्य त्रसनिका घात करनेवाले भोजनका तो यावज्जीव त्याग करि यमही करै। अर योग्यविषयनिमैं कालकी मर्यादपूर्वक त्याग करि नियम धारै ॥ ऐसैं समस्त पंच इंद्रियनिके विषयनिमैं यमनियम करै, सो भोगोपभोगपरिमाण नामा शिक्षाव्रत है ॥

वहुरि जिनकै पुण्यके उदयतैं नानाप्रकारकी भोगोपभोगसामग्री घरमें मौजूद तिष्ठै है, तिनमैंतैं अल्प ग्रहण करि वहुतका त्याग करे हैं अर आगामी कालमें भोगोपभोगकी वांछारहित हैं अर वर्तमानकालमें जे कर्मके उदयतैं भोगनेमें आवे हैं, तिनमैं अति उदासीन हुवा मंदरागसहित भोगे हैं, तिनके व्रत इंद्रनिकरि प्रशंसायोग्य समस्तकर्मकी स्थितिका छेद करे हैं ॥

वहुरि समस्त चेतन अचेतन द्रव्यनिविषैं रागद्वेषको त्याग करि साम्यभावकूं आलंबनकरिकै अर प्रातःकाल अर संध्याकालके विषैं अविचल मन-वचन-कायकूं करि अवश्य नित्यही सामायिकका अवलंबन करना, सो सामायिक नामा शिक्षाव्रत है। सो सामायिक करनेके अर्थि क्षेत्रशुद्धता देखनी। जहां कलकलाट शब्द नही होय, अर जहां स्त्रीनिका आगमन नही होय, नपुंसकनिका प्रचार नही होय, तिर्यंचनिका संचार नही होय, वा गीत नृत्य वादित्रादिकनिका शब्दरहित कलह विसंवादरहित होय, तथा जहां डांस मांछर मांखी वीछू सर्पादिकनिकी वाधारहित,

शीत उष्ण वर्षा पवनादिकके उपद्रवरहित, एकांत अपने गृहमें निराला प्रोषधोपवास करनेका स्थान होइ, वा जिनमंदिरमें वा नगरग्रामबाह्य वनका मंदिर वा मठ मकान सूना गृह गुफा बाग इत्यादिक बाधारहित क्षेत्र होइ तहां सामायिक करनेकूं तिष्ठै ॥

बहुरि प्रातःकाल वा मध्याह्नकाल तथा संध्याकाल इन तीन कालनिमें समस्त पापक्रियाको त्याग करिकै सामायिक करै। इतनैं कालपर्यंत मैं समस्त सावद्ययोगका त्यागी हूं; इनि कालनिविषैं भोजन, पान, विणज, सेवा, द्रव्योपार्जनके कारण लेण देण, विकथा आरंभ, विसंवादादिक समस्तका त्याग करै; सामायिकके अर्थि काल दे देवै तिन कालनिमें अन्यकार्यका त्याग करै ॥ बहुरि सामायिकके अवसरमें आसनकी दृढता करै। जो पूर्वै अपनै स्थिर आसनका अभ्यास नही करि राख्या होय तासूं लौकिक कार्यही नही होय तो परमार्थका कार्य कैसैं बनै? तातैं आसनकरि अचल होइ तिसहीकै सामायिक होय है ॥

बहुरि सामायिकका पाठ वा देववंदना वा प्रतिक्रमणादिकके पाठके अक्षरनिमैं, वा इनके अर्थमें, वा अपने स्वरूपमें, वा जिनेंद्रके प्रतिबिंबमें, वा कर्मनिके उदयादिक-स्वभावमें चित्तकूं लगाय, अर इंद्रियनिका विषयनिमैं प्रवृत्तिकूं रोकिकरिकै मन-वचन-कायकी शुद्धता करि सामायिक करै; तथा शीत उष्ण पवनकी बाधा, डांस, मांछर,

मक्षिका, कीडा, कीडी, वीछू, सर्पादिककरि आया परीपहतें चलायमान नहीं होइ; तथा दुष्ट व्यंतरदेवादिक अर अनुष्य अर तिर्यंच अर अचेतनकृत उपसर्गकूं समभावनिकरि सहै चलायमान नहीं होइ–परिणाममैं सकंप नहीं होइ–देह चल जाय तोहू जिनका परिणाम क्षोभकूं नहीं प्राप्त होइ; ताकै सामायिक नाम शिक्षाव्रत होय है ॥

वहुरि जो अष्टमी चतुर्दशी एकमासमें च्यारि पर्व तिनमैं उपवास ग्रहण करै; च्यारिप्रकारका आहारका त्याग, अर स्नान, विलेपन, आभूषण, स्त्रीनिका संसर्ग, अत्तर, फुलेल, पुष्प, धूप, दीप, अंजन, नाशिकामैं सूंघनेकी नाश, तथा विणज व्यवहार, सेवा, आरंभ, कामकथा इत्यादिकानिका त्याग करि धर्मध्यानसहित रहै अर च्यारिप्रकारका आहारका त्याग करै; ताकै प्रोपधोपवास होय है ॥

तथा स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा नाम ग्रंथमैं ऐसैं कह्या है– जो एकवार भोजन करै वा नीरस आहार वा कांजिका करै, ताकैहू प्रोपधोपवास नामा शिक्षाव्रत है ॥ वहुरि जो उत्तमपात्र जो मुनि अर मध्यमपात्र अणुव्रती गृहस्थ अर जघन्यपात्र अव्रतसम्यग्दृष्टि गृहस्थ तिनके अर्थि जो भक्तिसहित दान करै है, ताकै अतिथिसंविभाग व्रत है ॥ आहारदान, औषधदान, ज्ञानदान, वसतिकादान ये च्यारिप्रकार दान करना, सो भक्तिपूर्वक करना । राग, द्वेष, असंयम, मद, दुःख, भयादिक जिस वस्तुतैं नहीं होइ;

सो वस्तु संयमीनिके अर्थि दान देनेयोग्य है ॥ वैयावृत्य अर दान एक अर्थ है। जो तपस्वीनिका शरीरका टहल करना, सो वैयावृत्य है; तथा अरहंत भगवानका पूजन सो अर्हद्वैयावृत्य है; जिनमंदिरकी उपासना करना वा उपकरण चमर छत्र सिंहासन कलशादिक जिनमंदिरके अर्थि देना, सो समस्त जिनमंदिरका वैयावृत्य है; सो महान् दान है। सो बडा आदरपूर्वक करना। ऐसें दानका प्रकार समस्तही वैयावृत्यमें जानना ॥ ऐसें संक्षेपकरि श्रावकके बारह व्रत कहे वा इनके अतीचार कहे सो श्रावकाचारादिक ग्रंथनिमें प्रसिद्ध है। इनि बारहप्रकार व्रतनिकूं धारै सो दूसरी पैडीका धारक व्रती श्रावक है ॥

जातैं जो सम्यग्दर्शनकरि शुद्ध हुवा संसार देह भोगनितैं विरक्त, अर पंचपरमगुरुका शरण ग्रहण करता, सप्तव्यसनका त्याग करि समस्त रात्रिभोजनादिक अभक्ष्यका त्याग करै, ताकै दर्शन नामा प्रथम स्थान है ॥ बहुरि पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, च्यारि शिक्षाव्रत इनि बारहव्रतनिकूं धारण करै सो व्रती श्रावक दूसरा पदका धारक है ॥ बहुरि तीनकाल साम्यभाव धारण करि सामायिकका नियम करै, सो सामायिक पदवीका धारक तीजा भेद है ॥ बहुरि एकएक मासविषैं च्यारिच्यारि पर्वविषैं जो अपनी शक्तीकूं नही छिपाय करिकै जो प्रोषधोपवास धारण करै, ताकै चोथा

प्रोषधस्थान है ॥ याका विशेष ऐसा–

जो सप्तमी वा त्रयोदशीके दिन मध्याह्नकालपहली भोजन करिकै, अर पाछै अपराह्नकालविषैं जिनेंद्रके मंदिरमें जायकरिकै, अर मध्याह्नसंबंधी क्रिया करिकै, च्यारिप्रकारके आहारका त्याग करि उपवास ग्रहण करै, अर समस्त ग्रहके आरंभका त्याग करि जिनमंदिरमें वा प्रोषधोपवासके गृहमें वा वनके चैत्यालयमें वा साधुनिके निवासमें समस्त विषयकषायका त्याग करिकै सोलह प्रहरपर्यंत नियम करै, तहां सप्तमी त्रयोदशीका अर्धदिन धर्मध्यान स्वाध्यायतैं व्यतीत करि अर संध्याकालसंबंधी सामायिक वंदनादिक करि रात्रिनैं धर्मचिंतन धर्मकथा पंचपरमगुरुके गुणनिका स्मरणादिककरि पूर्ण करिकै, अर अष्टमीचतुर्दशीके प्रातःकालमें प्रभातसंबंधी क्रिया करिकै, अर समस्तदिवसकूं शास्त्रके अभ्यासतैं व्यतीत करिकै, बहुरि संध्याकालमें देववंदना करिकै, अर रात्रिकूं तैसैंही धर्मध्यानतैं व्यतीत करिकै, प्रातःकाल देववंदनादिक करिकै, अर पश्चात् पूजनविधिकरि अर पात्रकूं भोजन कराय करिकै जो पारणा करै, ताकै प्रोषधोपवास होय है ॥ एकहू निरारंभ उपवास उपशांत भया जो करे है, सो बहुतप्रकारका चिरकालतैं संचय कीया कर्मकी लीलामात्रकरिकै निर्जरा करे है। अर जो पुरुष उपवासके दिनहू आरंभ करे है, सो केवल अपने देहकूं शोषण करे है अर कर्मका लेशहू

नहीं नष्ट करे है ॥ ऐसें प्रोषध नामा चौथा स्थान है ॥

बहुरि जो मूल फल पत्र शाक शाखा पुष्प कंद बीज कूंपल इत्यादि अपक्व सचित्त नही भक्षण करै, सो सचित्तका त्याग नामा पंचम स्थान है। जातैं अग्निमैं तप्त कीया, तथा अग्निकरि पकाया, तथा शुष्क भया, तथा आंमिली लूणकरि मिल्या हुवा द्रव्य, तथा जंत्र जो काष्ठपाषाणादिकके अनेकप्रकारके उपकरण तिनिकरि छेद्या जे समस्त द्रव्य, ते प्रासुक हैं, सो भक्षण करनेयोग्य हैं ॥ जो त्यागी आप सचित्त भक्षण नही करै, ताकूं अन्यके अर्थि सचित्त भोजन करावना युक्त नही है। जातैं भक्षण अरनेमें अर करावनेमें कुछभी विशेष नही है। जो पुरुष सचित्तवस्तुका त्याग करे है, सो बहुत जीवनिकी दया धारण करे है। अर जो सचित्तका त्याग कीया, सो कापुरुषनिकरि नही जीती जाय ऐसी जिव्हाकूं जीते है अर जिनेंद्रका वचन पालत है ॥ ऐसें सचित्तके त्यागीका पंचम स्थान कह्या ॥

बहुरि जो अन्न पान खाद्य स्वाद्य ऐसें च्यारिप्रकारका भोजन रात्रिविषैं करै नही, करावै नही, अन्य भोजन करै ताकी प्रशंसा करै नही, तिसकै रात्रिभोजनत्याग नामा छट्ठा स्थान है ॥ जो रात्रिभोजनका त्याग करिकै अर रात्रिके विषैं आरंभकाहू त्याग करे है, सो एकवर्षमें छह महीनेके उपवास करे है ॥ बहुरि जो अपनी विवाही

स्त्रीकाहू त्याग करि स्त्रीमात्रतैं विरक्त हुवा गृहमें तिष्ठे है अर अपनी स्त्रीतैं रागरूप कथा तथा पूर्वे भोगे भोगनिकी कथाकूं वर्जिकरिकै कोमलशय्या आसन विकाररूप वस्त्र आभरणके त्याग करिकै स्त्रीनितैं भिन्नस्थानमें शय्या आसन करता ब्रह्मचर्यव्रत पाले है, ताकै ब्रह्मचर्य नामा सातवा स्थान होइ है ॥

बहुरि जो सेवा कृषि वाणिज्य शिल्पि इत्यादिक धन उपार्जन करनेके कारण तथा हिंसाके कारण आरंभकूं त्यागिकरि, अर अपने गृहमें द्रव्य होय तिनका स्त्रीपुत्र-कुटुंबादिकनिका विभाग करि, अर अपनेयोग्यकूं आप ग्रहण करि, अन्यमें ममता त्यागि नवीन उपार्जनका त्याग करि, अपने परिग्रहमें संतोष करि, जो अपने निकट द्रव्य राखि लीया ताकूं अन्न वा वस्त्रादिक भोगनिमैं वा पूजा दान इत्यादिकमैं व्यतीत करता वा सज्जनादिकनिकूं देता वांछारहित काल व्यतीत करै, ताकै आरंभत्याग नामा अष्टमस्थान होय है ॥ इहां इतना विशेष जानना– जो आप अल्प धन अपने खाने पीने दानपूजादिकके निमित्त राख्या था, ताकूं कदाचित् चोर वा दुष्ट राजा वा दायियादार वा कपूतपुत्रादिक हरण करै, तो नींचा नही उतरै, "जो, मेरा जीवनेका निमित्त धन था, सो जाता रह्या, नवीन उपार्जनका मे रै त्याग है, अब मै कहां करूं? कैसैं जीवूं! ऐसैं अरतिकूं नही प्राप्त होय है, धैर्यका धारक धर्मात्मा

विचारे है- यह परिग्रह दोऊ लोकमें दुःखका देनेवाला है, सो मै अज्ञानी मोहकरि अंध हुवा ग्रहणकरि राख्या था, सो अब दैवनैं मेरा बडा उपकार कीया, जो, ऐसैं बंधनतैं सहज छूट्या" ऐसा चिंतन करता परिग्रहत्याग नामा नवमी पयडीकूं प्राप्त होय है, उलटा आरंभ करि परिग्रहग्रहणमें चित्त नही करे है, ताकै आरंभत्याग नामा आठमा स्थान होय.

बहुरि जो राग द्वेष काम क्रोधादिक अभ्यंतर परिग्रहकूं अत्यंत मंदकरिकै, अर धनधान्यादिक परिग्रहकूं अनर्थ करनेवाले जानि, बाह्यपरिग्रहतैं विरक्त होइकरिकै, शीत उष्णादिककी वेदना निवारणेके कारण प्रमाणीक वस्त्र तथा पीतल तामाका जलका पात्र वा भोजनका एक पात्र इनिविना अन्य सुवर्ण रूपा वस्त्र आभरण शय्या यान वाहन गृहादिक अपने पुत्रादिकनिकूं समर्पण करि, अपने गृहमें भोजन करताहू अपनी स्त्रीपुत्रादिक ऊपरि कोऊ प्रकार उजर नही करता, परमसंतोषी हुवा, धर्मध्यानतैं काल व्यतीत करै, ताकै परिग्रहत्याग नामा नवमा स्थान है ॥

बहुरि गृहके कार्य जे धनउपार्जन वा विवाहादिक वा मिष्टभोजनादिक स्त्रीपुत्रादिकनिकरि कीये तिनकी अनुमोदनाका त्याग करै वा कडवा खाटा खाये अलूणा भोजन जो भक्षण करनेमें आवै ताकूं खाये अलूणा बुरा भला नही कहै, ताकै अनुमतित्याग नाम दशमा स्थान है ॥

बहुरि जो गृहकूं त्यागि मुनिनके निकटि जाय व्रत ग्रहण करि, समस्त परिग्रहका त्याग करि, कमंडलु पीछी ग्रहण करै, अर एक कौपीन राखै, तथा शीतादिकके परीषह निवारण करनेकूं एक वस्त्र राखै-जिसतैं समस्त अंग नही आच्छादन होय ऐसा वोछा वस्त्र राखै, वा अपने उद्देश्य कहिये आपके निमित्त कीया भोजनकूं नही ग्रहण करता समितिगुप्तीकूं पालता मुनीश्वरनिकीनांई भिक्षा भोजन करै, मौनतैं जाय याचनारहित लालसारहित रस नीरस कडवा मीठा जो मिलै तामैं मलिनतारहित शुद्ध भोजन करै, ताकै उद्दिष्ट आहारत्याग नामा ग्यारमा स्थान है ॥ ऐसैं ये ग्यारह प्रतिमा वर्णन करी, इनमैं जो जो स्थान होय सो सो पूर्वपूर्वसहित होय । इनि एकादशस्थाननिमैंतैं कोऊ स्थान धारि जो सल्लेखनामरण करै, सो बालपंडितमरण है ॥ सो अब कहे हैं ॥ गाथा—

आसुक्कारे मरणे । अवोछिण्णाए जीविदासाए ॥
णादीहि वा अमुक्को । पच्छिमसल्लेहणमकासी ॥ २०७९ ॥

अर्थ— श्रावकव्रतके धारकका शीघ्र मरण आवता संता अर जीवितकी आशा नही छूटता संता वा अपने कुटुंबीनिकरि नही छूटते पश्चिम सल्लेखनाकूं करै॥ भावार्थ— अणुव्रतीका मरण तो नजीक आजाय अर आपके जीवनेमें आशा घटी नही अर स्त्री

अर्थ— ऐसा कौन बुद्धिवान् है? जो किंचिन्मात्रकाल आहारका अल्पसुखके निमित्त बहुतसुखतैं चलायमान होय! तैसें आहारके स्वादनेका अल्पकालका सुख तिसके निमित्त संक्लेशकरिकै अर स्वर्गमुक्तिके सुखनितैं कौन मुनि चिगै? भावार्थ— किंचित्कालमात्र भोजनके स्वादका सुखके अर्थि स्वर्गमुक्तिका कारण सम्यक्चारित्र ताहि कौन मुनि बिगाडै? ॥ गाथा—

महुलित्तं असिधारं । लेहइ भुंजइ य सो सविसमण्णं ॥
जो मरणदेसयाले । पत्थिज्ज अकप्पियाहारं ॥ ६५ ॥

अर्थ— जो पुरुष मरणके देशकालमें अयोग्य आहारकी वांछा करे है, तथा आहारकूं प्रार्थना करे है, सो पुरुष सहतकरि लिप्त खड्गकी धाराका आस्वादन करे है तथा विषसहित अन्नका भोजन करे है ॥ गाथा—

असिधारं च विसं वा । दोसं पुरिसस्स कुणइ एयभवे ॥
कुणइ हु मुणिणो दोसं । अकप्पसेवा भवसएसु ॥ ६६ ॥

अर्थ— सहतलपेटी खड्गकी धाराका आस्वादन तथा विषसहित अन्नका भोजन ये तो पुरुषके एकभवमें दोष करे है अर अयोग्य आहारादिकनिका सेवन मुनीश्वरनिके तथा श्रावकनिके बहुत सैंकडां हजारां भवनिमें दोष करे है। तातैं अयोग्यव-

स्तूका सेवन योग्य नहीं है, आगामी कालमैं बहुत दुःखदायी है ॥ गाथा—

जावं तु किंचि दुक्खं । सारीरं माणसं च संसारे ॥
पत्तो अणंतखुत्तं । कायस्स ममत्तिदोसेण ॥ ६७ ॥

अर्थ— हे मुने! संसारमें जितने केई शरीरसंबंधी तथा मनःसंबंधी दुःख अनंतवार प्राप्त भये हो, ते सर्वदुःख एक देहमें ममत्वके दोषकरि प्राप्त भये हो। संसारमें जितने दुःख हैं ते शरीरके ममत्वकरिकै प्राणी भोगे हैं ॥ गाथा—

इण्हिं पि जदि ममत्तिं । कुणासि सरीरे तहेव ताणि तुमं ॥
दुक्खाणि संसरंतो । पाविहसि अणंतयं काळं ॥ ६८ ॥

अर्थ— हे मुने! अबभी जो शरीरमें तुम ममत्व करोगे तो अनंतकालपर्यंत संसारमें परिभ्रमण करते दुःखनिकूं प्राप्त होहुगे ॥ गाथा—

णत्थि भयं मरणसमं । जम्मणसमयं ण विज्जदे दुक्खं ॥
जम्मणमरणादंकं । छिण्ण ममत्तिं सरीरादो ॥ ६९ ॥

अर्थ— इस संसारमें मरणसमान भय नहीं है अर जन्मसमान दुःख नहीं है। तातैं जन्ममरणकरि व्याप्त जो शरीर तातैं ममताकूं छांडहू ॥ गाथा—

अण्णं इमं सरीरं । अण्णो जीउ त्ति णिच्छिदमदीउ ॥

दुहभयकिलेसयारी । मा हु ममत्तिं कुण सरीरे ॥ १६७० ॥

अर्थ— यो शरीर अन्य है अर जीव अन्य है इसप्रकार निश्चयरूप है बुद्धि जाकी ऐसे तुम, सो अब दुःख अर भय अर क्लेश इनिका करनेवाला शरीरविषैं ममता मति करो ॥ भावार्थ- शरीर तो अनेक पुद्गलपरमाणूनिका समूहरूप पुद्गलमय है जड है, अचेतन है, विनाशीक है; अर आत्मा अमूर्तिक है, ज्ञाता है चेतन है, अविनाशिक है, तातैं पुद्गल अन्य है अर आत्मा अन्य है, इन दोऊनिकूं प्रकट भिन्न अनुभव करतेहू तुम शरीरविषैं ममत्व मति करो । कैसाक है शरीर? क्षुधा तृषा रोग शोक वियोगादि ककरि आत्माकै महान् दुःख उपजावनेवाला है अर संक्लेशका उपजावनेवाला है, तातैं ज्ञानभावनाकूं पायकरिकैहू अब शरीरमें ममता करना योग्य नहीं है ॥ गाथा—

सव्वं अधियासंतो । उवसग्गविधिं परीसहविधिं च ॥
णिस्संगदाए सहिह । असंकिलेसेण तं मोहं ॥ ७१ ॥

अर्थ— हे मुने! समस्त उपसर्गके प्रकारनिकूं अर समस्त क्षुधा तृषा रोगादिकतैं उपजे परीषहनिके भेदनिकूं निःसंगपणाकरि सहते जो तुम, सो अब संक्लेशपरिणाम-रहित होयकरिकै मोहकूं कृश करो ॥ गाथा ॥

ण वि कारणं तणादी । संथारो ण वि य संघसमवाउ ॥

साधुस्स संकिलेसं- । तस्स य मरणावसाणम्मि ॥ ७२ ॥

अर्थ— मरणके अवसरमें संक्लेश करता साधूकै सल्लेखनाको कारण तृणादिकनिका संस्तर नहीं है अर समस्तसंघका समूहभी नहीं है, संक्लेशपरिणामका धारक जीवकै तृणादिकनिका संस्तर वृथा है, संघका संबंधहू कार्यकारी नाहीं । संक्लेशरहित मंदकषायी वीतरागीविना सल्लेखनामरण नहीं होय है ॥ गाथा–

जह वाणियआ सागर- । जलम्मि णावाहिं रयणपुण्णाहिं ॥
पट्टणमासण्णा वि हु । पमादमूढा विवज्जंति ॥ ७३ ॥
सल्लेहणाविसुद्धा । केई तह चेव विविहसंगेहिं ॥
संथारे विहरंता । वि संकिलिट्ठा विवज्जंति ॥ ७४ ॥

अर्थ— जैसैं वणिक् समुद्रके जलके मध्य रत्ननिकरि भरी नांवकरिकै गमन करि पत्तनके समीप प्राप्त भयाहू प्रमादतैं समुद्रमें डूबि नाशकूं प्राप्त होय है; तैसैं केई जीव उज्वल सल्लेखना धारण करतेहू नाना प्रकारके रागद्वेष मोहादिक भावरूप परिग्रह करिकै संक्लेशपरिणामी भये संते संस्तरमें प्रवर्ततेहू संसारसमुद्रमें डूबे हैं ॥ गाथा–

सल्लेहणापरिस्सम- । मिमं कयं दुक्करं च सामण्णं ॥
मा अप्पसोक्खहेदुं । तिलोगसारं विणासेहि ॥ ७५ ॥

अर्थ— हे मुने! अनशनादि तपकरि कीया जो सल्लेखनाका परिश्रम तथा तीन लोकमें सार स्वर्गमोक्षका देनेवाला जो दुःखकरिकैहू करनेकूं अशक्य ऐसा साधुपणा ताहि अल्प जो आहारका सुख ताके निमित्त विनाश मति करो ॥ भावार्थ- आहारका अत्यंत अल्प सुख तिसके निमित्त आहारकी वांछाकरिकै तीन लोकमें उत्कृष्ट ऐसा साधुपणा अर सल्लेखना इनिका नाश करना योग्य नही, तातैं अल्पकाल जीवन रह्या है, सो अब आहारकी वांछा त्यागि परमसंयमभावमें यत्न करो ॥ गाथा—

धीरपुरिसपण्णत्तं । सप्पुरिसणिसेवियं उवणमित्ता ॥
धण्णा णिरावयक्खा । संथारगया णिसंज्जंति[1] ॥ ७६ ॥

[1] शेरते

अर्थ- उपसर्ग अर परीषहनिकूं प्राप्त होतेहू जिनका धैर्य नही छूट्या ऐसे धीरपुरुषनिकरि उपदेश्या अर सत्पुरुषनिकरि सेवन कीया ऐसा रत्नत्रयमार्गकूं प्राप्त होयकरिकै अर धन्यपुरुष आहारादिक शरीरादिकमें वांछारहित भये संस्तरमें प्राप्त हुये शुद्ध होय हैं.

तह्मा कलेवरकुडिं । पव्वोढवत्ति णिम्ममो दुक्खं ॥
कम्मफळमुवेक्खंतो । विसहसु णिव्वेदणो चेव ॥ ७७ ॥

अर्थ— तातैं भो कल्याणके अर्थी हो! इस कलेवरकुटीकूं अत्यंत त्यागनेयोग्य है ऐसैं जानहू। अर यो देहकलेवर हमारा नही है ऐसैं ममतारहित भये तिष्ठो।

बहुरि कर्मके फलमैं उदासीन भये वेदनारहितकीनाईं दुःखकूं सहना योग्य है ॥ गाथा—

इय पणविज्जमाणो । सो पुव्वं जायसंकिलेसादो ॥
विणियत्तंतो दुक्खं । पस्सइ परदेहदुक्खं वा ॥ ७८ ॥

अर्थ— निर्यापकाचार्यनिकरि इसप्रकार भेदविज्ञानकूं प्राप्त कीया जो क्षपक, सो पूर्वै अज्ञानभावतैं उपज्या जो संक्लेश, तातैं निवृत्त हुवा, जैसैं परके देहमें उपज्या दुःख आपकूं नही प्राप्त होय; तैसैं अपनी देहमें उपज्या दुःखकूंहू परके देहका दुःखकीनाईं देखे है ॥ गाथा—

रायादिमहड्ढियया- । गमणपउंगेण चावि माणिस्स ॥
माणजणणेण कवयं । कायव्वं तस्स खवयस्स ॥ ७९ ॥

अर्थ— जैसैं राजादिक महान् ऋद्धिके धारकनिके आगमनकरिकै अभिमानी शूरवीर होय सो वक्तर पहरिकरिकै युद्धकूं तयार होय है; तैसैं क्षपकहू ऐसैं चिंतवन करे है— हमारी धीरता देखनेकूं ये महान ऋद्धिके धारक वीतराग मुनि मेरे निकट आये हैं, अब जो इनके अग्रभागविषैं प्राण जाय है तो यथेच्छ जावो, परंतु धैर्यकूं त्यागि व्रतभंग करि धर्मकूं लज्जित नही करूंगा। ऐसैं उत्तमपुरुषनिके संसर्गतैं कायरहू धैर्यरूप वक्तर धारणकरि कर्मनितैं जुध्द करनेकूं उद्यमी होय है ॥ गाथा—

इच्चेवमाइकवचं। भणियं उस्सग्गियं जिणमदम्मि ॥
अववादियं च कवचं। आगाढे होइ कायव्वं ॥ १६८० ॥

अर्थ— जिनेंद्रके मतविषैं इत्यादिक उत्सर्गिक कवच कह्यो अर अपवादिक कवच (विशेषरूप कवच) आगाढ जो निश्चितमरण तिसविषैं करना योग्य है ॥ गाथा—

जह कवचेण अभिज्जे-। ण कवचिउ रणमुहम्मि सत्तूणं ॥
जायइ अलंघणिज्जो। कम्मसमत्थो य जिणदि य ते ॥ ८१ ॥

अर्थ— जैसैं अभेद्य वकतरकरिकै सज्या हुवा जोध्दा संग्रामके अग्रभागविषैं वैरीनिकै अलंघ्य होय है—वैरीनिके शस्त्रनिकरि नही घात्या जाय है, प्रहरणादिक्रियामैं समर्थ होय है; तैसैं कवच वर्णन कीया तिसकूं हृदयमें धारण करता पुरुषहू कर्मवैरीनिकरि घात्या नही जाय है अर कर्मके मारनेमें प्रहरणादिक्रिया करनेमें समर्थ होय है अर कर्मवैरीनिकूं जीतत है ॥ गाथा—

एवं खवउ कवचे-। ण कवचिउ तह परीसहरिऊणं ॥
जायइ अलंघणिज्जो। झाणसमत्थो य जिणदि य ते ॥ ८२ ॥

अर्थ— ऐसैं क्षपक कवचकरिकै सहित हुवो परीषहरूप वैरीनिकै अलंघ्य होय है अर ध्यानमें समर्थ होय है अर कर्मवैरीनिकूं जीतत है ॥ गाथा—

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषैं कवच नामा पैंतीस[illegible] अधिकार एकसो चहोत्तरि गाथानिमैं समाप्त कीया ॥ अत्र चोदह गाथानिकरि समत[illegible] नामा छत्तीसमां अधिकारनैं वर्णन करे हैं ॥ गाथा—

एवं अधियासंतो । सम्मं खवउ परीसहे एदे ॥
सव्वत्थ अपडिबद्धो । उवेदि सव्वत्थ समभावं ॥ ८३ ॥

अर्थ— ऐसैं वीतरागगुरुनिकरि धारण कराया जो कवच तिसका प्रभावकरिकै क्षुधा तृषा रोग वेदनादिक परीषहनिकूं संक्लेशरहित परमसमताकरि सहता जो क्षपक सो शरीविषैं वसतिकाविषैं सकलसंघविषैं वैयावृत्य करनेवालेनिविषैं ओर समस्त क्षेत्रकालादिविषैं रागद्वेषरहित हुवा कोऊमैंहू परिणामनिकरि नही बंधनरूप होता परमसमताकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा—

सव्वेसु दव्वपज्जय- । विधीसु णिच्चं ममत्तिदो विजढो ॥
णिप्पणयदोसमोहो । उवेदि सव्वत्थ समभावं ॥ ८४ ॥

अर्थ— जो साधु समस्त द्रव्यपर्यायनिके विकल्पनिविषैं शाश्वत ममत्वरहित है, अर स्नेह द्वेष मोहकरि रहित है, सो सर्वत्र समभावकूं प्राप्त होय है ॥ भावार्थ— संसारमें जितने वस्तु ग्रहणमें आवे हैं, तितने सर्व मोतैं अन्य हैं—मेरा नाही ऐसैं निर्मम होय

जिसकै कछू चेतन अचेतन पदार्थमें राग द्वेष मोह नहीं होय है, सोही समभावकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा—

संजोगविप्पउगे- । सु जहदि इट्ठेसु वा अणिट्ठेसु ॥
रादि अरदि उस्सुगत्तं । हरिसं दीणत्तणं च तहा ॥ ८५ ॥

अर्थ— बहुरि जो कवचकरिकै धैर्य धारण कीया जो साधु सो संयोगमें तो रति नहीं करे है, अर वियोगमें अरति नहीं करे है, इष्टवस्तुके संयोगमें उत्सुकता तथा हर्ष नहीं करे है अर अनिष्टवस्तुके संयोगविषैं दीनपणाकूं तथा विषादकूं त्यागत है ॥

मित्तेसु य णादीसु य । सिस्से साधम्मिए कुळे चावि ॥
रागं वा दोसं वा । पुव्वं जायं पि सो जहइ ॥ ८६ ॥

अर्थ— मित्रनिविषैं तथा स्वजनादिकनिविषैं तथा शिष्यनिविषैं साधर्मीनिविषैं कुलविषैं पूर्वैं उपज्याहू रागद्वेष ताहि कवच धारण करता साधु त्यागे है ॥ गाथा—

भोगेसु देवमाणु- । स्सगेसु ण करेइ पत्थणं खवउ ॥
मग्गो विराधणाए । भणिउ विसयाभिलासोत्ति ॥ ८७ ॥

अर्थ— कवचकरिकै दृढ भया जो साधु सो देवमनुष्यनिके भोगनिविषैं वांछा नहीं करे है । जातैं विषयनिमैं अभिलाप है सो मार्ग जो रत्नत्रयधर्म तथा दशलक्षण-

धर्मकी विराधनाका कारण है, ऐसैं जिनेंद्रभगवान् कह्या है ॥ गाथा—

इट्ठेसु अणिट्ठेसु य । सद्दफरिसरसरूवगंधेसु ॥
इहपरलोए जीविद- । मरणे माणावमाणे च ॥ ८८ ॥
सव्वत्थ णिव्विसेसो । होदि तदो रागदोसरहिदप्पा ॥
खवयस्स रागदोसा । हु उत्तमट्ठं विणासंति ८९ ॥

अर्थ— जो वीतरागकवच धारण करे है सो मुनि इष्ट अनिष्ट जे शब्द स्पर्श रस रूप गंध पंचेंद्रियनिके विषय तिनाविषैं तथा इसलोक परलोकविषैं तथा जीवनमरणविषैं तथा मानापमानविषैं रागद्वेषरहित हुवा सर्वविषैं समान होय है। जातैं इस जगतमें जेते इंद्रियनिके विषय हैं, तेते पुद्गलद्रव्यके पर्याय हैं अर ज्ञानानंदस्वरूप जो मैं तातैं भिन्न हैं, अब मैं कौनसैं रागद्वेष करूं? यातैं जैनका यति समस्त परद्रव्यनिमैं अर इंद्रियनिके विषयनिमैं रागद्वेषरहित होय है। ये रागद्वेष हैं ते साधूका उत्तमार्थ जो आराधनामरण ताका विनाश करे हैं ॥ गाथा—

जदि वि य से चरिमंते । समुदीरदि मारणंतियमसायं ॥
सो तह वि असंमूढो । उवेदि सव्वत्थ समभावं ॥ १६९० ॥

अर्थ— यद्यपि जो क्षपकके अंतकालविषैं मरणपर्यंत दुःख उदीरणाकूं प्राप्त होय,

तोहू मोहरहित हुवा समस्तदुःखमें तथा दुःखसुखकी सामग्रीमैं समभावकूं प्राप्त होय है ॥

एवं सुभाविदप्पा । विहरइ सो जाव वीरियं काए ॥
उट्ठाणे सयणे वा । णिसीयणे वा अपरिदंतो ॥ ९१ ॥

अर्थ— ऐसैं आचार्यनिके निकट भलैप्रकार भाया है आतमा जानैं, ऐसा क्षपक, सो जितनैं अपनी शक्ति बणी रहै, तितनैं शरीरमें तथा उठनेमें शयनमें आसनमें खेदरहित हुवा प्रवर्त्तन करै ॥ भावार्थ— जितनैं अपनी शक्ति रहै, तितनैं गमनमें आगमनमें शयनमें आसनमें परका सहाय नही चाहै, आपनैं करनेयोग्य कार्य आपही करै ॥ गाथा—

जाहे सरीरचिट्ठा । विगदत्थामस्स से पदणुभूदा ॥
देहादिविउसग्गं । सव्वत्तो कुणइ णिरवेक्खो ॥ ९२ ॥
सेज्जं संथारं पा- । णयं च उवधिं तहा सरीरं च ॥
विज्जाविच्चकरा वि य- । वोसरइ समत्तमारूढो ॥ ९३ ॥

अर्थ— क्षपककै जिसकालमें शरीरका बल नष्ट होवै—शरीरकी चेष्टा गमन आगमन तथा उठनेमें बैठनेमें अति अल्प रहि जाय, तिस कालमें समस्तमें वांछारहित हुवा देहादिकनिका त्याग करै, अर समस्तरत्नत्रयमें आरूढ हुवा संता शय्या संस्तर

पानक उपकरण तथा शरीर अर वैयावृत्यके करनेवालेनिकाहू त्याग करै ॥ भावार्थ— शरीरकी चेष्टा घटिजाय तदि शय्या संस्तर देहादिकमें ममताभाव छांडिकरिकै अर वैयावृत्य करनेवालेनिमैंहू त्यागरूप होय है, इनका संयोगमें राग नहीं करै, वैयावृत्य करावनेमैंहू राग त्यागे है ॥ गाथा—

अवहट्ट कायजोगे । व विप्पउंगे य तत्थ सो सव्वे ॥
सुद्धे मणप्पउंगे । होइ णिरुद्धस्स वसियप्पा ॥ ९४ ॥

अर्थ— तिस अवसरमें समस्त कायके योगनिनैं अर वचनके प्रयोगनिनैं निराकरण करिकै रोक्या है अन्यविषयनिमैं प्रचार जानैं, ऐसा मनकूं शुद्ध होत संते समस्तपरद्रव्यनिमें प्रवृत्ति त्यागि चित्तकूं अपने वशि करि एकाग्र चित्तनिरोधरूप होय है ॥

एवं सव्वत्थेसु वि । समभावं उवगउं विसुद्धप्पा ॥
मित्ती करुणं मुदिद- । मुविरवं खवउं पुण उवेदि ॥ ९५ ॥
जीवेसु मित्तचिंता । मित्ती करुणा य होइ अणुकंपा ॥
मुदिदा जदि गुणाचिंता । सुहदुक्खवियासणसुविरक्खा ॥ ९६ ॥

अर्थ— इसप्रकार समस्तपदार्थनिमैं समभावकूं प्राप्त भया अर उज्वल है चित्त जाका ऐसा जो क्षपक, सो मैत्री अर करुणा अर मुदित अर अपेक्षा कहिये मध्यस्थता

इनक प्राप्त होय है। सो ये च्यारि भावना कौन कौन स्थानमें करिये सो कहे हैं– चतुर्गतिमें अनादिके परिभ्रमण करते अर अनंतानंत दुःख कर्मके वशी होय भोगते ये संसारी जीव, इनकै दुःखका अभाव होहू, कोऊ प्राणीमात्रकै दुःख मति होहू, ऐसैं समस्त एकेंद्रियादिक प्राणीनिके विषैं मनवचनकायकरिकै दुःखकी उत्पत्तीका अभाव चिंतवन करना, सो मैत्रीभावना है ॥ बहुरि शारीर-मानस दुःखादिककरिकै पीडित जे रोगी जन वा बंदिगृहमें बंधनमें पडे तथा क्षुधा तृष्णा शीत उष्णकरिकै पीडित तथा निर्दयनिकरि ताडनारूप कीये तथा अपने जीवितकूं इच्छा करते वा दीन जन तिनविषैं जो उपकार करनेका वा अनुग्रह करनेका वा दुःख हरनेका परिणाम, सो करुणाभावना है ॥ अथवा ये संसारी जीव मिथ्यात्व अविरति कषाय अशुभयोगनिकरि अशुभकर्म उपार्जन कीये हैं तिनके वशतैं अनंत जन्म मरण जरा रोग शोक इष्टवियोग अनिष्टसंयोग दारिद्र विषयानुराग तीव्रकषायनिकरि दुःख भोगे हैं; इनका मिथ्यात्वरागादिक दूरि करनेमें उपकारबुद्धिका प्रवर्तन होना, सो करुणा है ॥ बहुरि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र सम्यक्तप दानशीलादिक गुणानेके धारकनिकूं देखि तथा चिंतवन करि मनवचनकायमें आनंद-रूप होना, दर्शनस्पर्शनकी वांछा करना; गुणानिमैं अनुराग करना, सो मुदितभावना

है ॥ बहुरि तीव्रकषायी जीवनिमैं तथा व्यसनी हटग्राही मिथ्यादृष्टि आपथापी पापमें प्रवीण दुष्ट धर्मके द्रोही जीव तिनविषैं रागद्वेषरहित होय उनकै सुखदुःख नही चाहना मध्यस्थ रहना राग प्रीती नही करना अर द्वेष वैरहू नही करना, सो उपेक्षा भावना है ॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषैं समता नामा छत्तीसमां अधिकार चौदह गाथानिकरि समाप्त कीया ॥ अब ध्यान नामा सैंतीसमां अधिकार दोयसै सात गाथानिकरि कहे हैं ॥ तिनमैं शुभध्यानसामान्यकूं बारह गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

दंसणणाणचारित्तं । तवं च विरियं समाधिजोगं च ॥
तिविहेणुवसंपज्जि य । सव्वुवरिल्लं कमं कुणइ ॥ ९७ ॥

अर्थ— दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, अपनी शक्तीको नही छिपावना सो वीर्य, चित्तकूं एकाग्र विकल्परहित करना सो समाधियोग इनकूं जो मुनि मनवचनकायकरि अंगीकार करे है, सो सर्वोत्कृष्ट क्रियाकूं करे है ॥ अब शुभध्यानमें प्रवर्तनेका इच्छक ताकै परिकर दिखावे हैं ॥ गाथा—

जिदरागो जिददोसो । जिदिंदिर्उ जिदभर्उ जिदकसार्उ ॥
रदिअरदिमोहमहणो । झाणोवगर्उ सदा होइ ॥ ९८

अर्थ— जीते है पांचूं इंद्रियनिके विपयमें राग जानैं, अर जीते है समस्त चेतन अचेतन पदार्थनिमें द्वेप जानैं, अर जैसैं पांचूं इंद्रिय अपने अपने विपयनिमें नही जाय सके तैसैं जीते हैं पंच इंद्रिय जानैं, अर जीते है इसलोकका तथा परलोकका मरणका वेदनाका अनारक्षाका अगुप्तिका अकस्मातका सातप्रकार भय जानैं, अर जीते हैं क्रोध मान माया लोभ कपाय जानैं, अर रतिभाव तथा अरतिभाव अर मोहभाव इनका कीया है नाश जानैं, सो पुरुप ध्यानमें सदाकाल प्राप्त होय है ॥ गाथा-

धम्मं चउप्पयारं । सुक्कं च चदुविधं किलेसहरं ॥
संसारदुक्खभीउ । दुण्णि वि झाणाणि सो झादि ॥ ९९ ॥

अर्थ— संसारके दुःखानितैं भयभीत जो क्षपक, सो क्लेशका नाश करनेवाला जो च्यारिप्रकारका धर्मध्यान तिसकूं तथा च्यारिप्रकारका शुक्लध्यान ताकूं ऐसैं दोयप्रकार ध्यान ध्यावत है ॥ गाथा-

ण परीसहेहिं संता- । विउ वि सो झाइ अट्टरुद्दाणि ॥
सुट्ठुवहाणे सुध्दं । पि अट्टरुद्दा विणासंति ॥ १७०० ॥

अर्थ— अनेकप्रकारके क्षुधा तृपा रोगादिक परिपह तिनकरि वाधा कीया हुवाहू क्षपक आर्त रौद्र दोऊ जे अशुभध्यान तिनकूं नहीं ध्यावे है। जातैं आर्त रौ

क्षपक आर्त रौद्र दुर्ध्यानकूं नही प्राप्त होय है ॥ गाथा—

ये दोऊ जे अशुभध्यान, ते सम्यक् उपयोगमें प्राप्त होय शुद्धहू जो क्षपक ताका नाश करे है! तातैं प्राणनिके हरनेवालाहू परीषह उपसर्गनिका संताप आवते संते क्षपक आर्त रौद्र दुर्ध्यानकूं नही प्राप्त होय है ॥ गाथा—

अट्टे चउप्पयारे । रुद्दे य चउव्विधे य जे भेदा ॥
ते सव्वे परियाणइ । संथारगउ तउ खवउ ॥ १ ॥
अमणुण्णसंपउगे । इट्ठविउए परीसहणिदाणे ॥
अट्टं कसायसहियं । झाणं भणियं समासेण ॥ २ ॥

अर्थ— संस्तरकूं प्राप्त भया जो क्षपक, सो च्यारिप्रकारके अर्तध्यानकूं तथा च्यारिप्रकारके रौद्रध्यानकूं अर तिनके समस्तभेदनिकूं जाने है, जानेविना अनादिकालके दोऊ दुर्ध्यान आत्मगुणके घात करे हैं, इनतैं छूटना कैसैं होय? इनमें आर्तध्यानके भेदनिकूं ऐसैं जानना—

अमनोज्ञवस्तुका संयोगतैं उपज्या जो परिणाममें संक्लेश, सो अनिष्टसंयोगज नामा आर्तध्यानका भेद है ॥ १ ॥ बहुरि इष्टवस्तूके वियोगतैं उत्पन्न भया जो संक्लेश, सो इष्टवियोगज नामा आर्तध्यानका भेद है ॥ २ ॥ बहुरि क्षुधा तृषा रोगादिककी वेदनातैं उत्पन्न भया जो संक्लेश, सो वेदनाजनित आर्तध्यानका भेद

है ॥ ३ ॥ बहुरि भोगनिकी अभिलाषाकरि उपज्या जो संक्लेश, सो निदान नामा आर्तध्यानका चौथा भेद है ॥ ४ ॥ सो कषायसहित आर्तध्यान संक्षेपतैं वर्णन कीया ॥ इहां ऐसें जानना– जो ऋत जो दुःख, तातैं उपज्या ध्यान, तिसकूं आर्तध्यान कहिये हैं ॥

अब अनिष्टसंयोगज नामा आर्तध्यानका किंचित् विशेष ऐसैं जानना– जे अपना स्वजन, धन, शरीरकूं नाश करनेवाले जे अग्नि, जल, पवन, विष, शस्त्र, सर्प, हस्ती, सिंह, व्याघ्र, दुष्ट राक्षस, तथा स्थलके जीव जे क्रूर महिषादिक, जलके जीव जे दुष्ट मत्स्यादिक, अर बिलके जीव जे मूषकादिक, तथा दुष्ट राजा, तथा वैरी, तथा भील, चोर, लुटेरे, तथा दुष्ट स्त्री, कपूतपुत्र, दुष्टबांधवादिक इनके संयोगतैं, तथा देखनेतैं, श्रवण करनेतैं, तथा चिंतवन करनेतैं, तथा निकट प्राप्त होनेतैं उपज्या जो मनकै संक्लेश सो अनिष्टसंयोगज प्रथम आर्तध्यान है ॥

अनिष्टसंयोग होय है, तब परिणाममें बडा संक्लेशदुःख उपजे है अर यहही चिंतवन लग्या रहे है “ जो, मेरै इसका वियोग कैसें होय? कदि होयगा? कहा करूं? कोनसूं कहूं? कहां जाऊं? ऐसा विकल्प पापबंधका कारण तिसकूं अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान कह्या है। सो सम्यग्दृष्टीकै अनिष्टसंयोग होय, तब ऐसैं चिंतवन करै– हे आत्मन्! पदार्थका सत्यार्थस्वरूप चिंतवन करो, इस जगतमें कोऊ वस्तूहू अनिष्ट

नहीं है, अपना किया पापकर्म एक अनिष्ट है, सो पापकर्म उदय आय अनिष्ट-संयोगरूप रस दे है, नरकनिमैं असंख्यातकालपर्यंत अनिष्टकाही संयोग रह्या, तथा तिर्यंचगतिमैं परस्पर कलह तथा मारण तथा वध बंधन लादन वाहन अंगच्छेदनादिककरि अनिष्टसंयोग बहुत अनंतकाल भोगे, तथा विकलत्रयनिकी बाधा भोगी, अब तुमारै नवीन अनिष्ट कहा प्राप्त भया है? तातैं अब परमसमताभाव अंगीकार करो-जो, संसारमें वास करैगा, तिसकै तो अनिष्टसामग्री प्रगट हुयाई करेगी, तातैं अन्य-पदार्थनिमैं द्वेषबुद्धि छांडि एक दुष्टकर्मके नाश करनेमें परम उद्यम करो, तुमारै पुण्यका उदय आवता तो ये स्त्रीपुत्रबांधवादिक दुष्ट कैसे होते? तातैं संसारमें समस्त पुण्यपापकी रचना है। पाप उदय आवै तादि अपना इष्ट, मित्र, प्यारी स्त्री, सपूत पुत्र, हितकारी बांधव ये समस्त वैरीरूप होय महादुःखकूं देइ मारे है! तातैं कोऊ जगतमें अनिष्ट इष्ट नहीं है। ये दुष्टकर्म वैरि हैं इनको अनिष्ट जानहू। वृथा पर-पदार्थमें अनिष्टका संकल्प करि वैर बांधि दुर्गतिका कारण अशुभकर्मका बंध मति करो

बहुरि अपने प्यारे पुत्रका, स्त्रीका, मित्रका, बांधवका, तथा चित्तकूं प्रीति करनेवाला राज्यका, तथा ऐश्वर्य तथा भोग उपभोगका, तथा नगर ग्राम महल मकान धन वस्त्र परिग्रहका वियोग होतैं जो शोक क्लेश भ्रम भयका उपजना सो इष्टवियोगज आर्तध्यान

है ॥ ३ ॥ बहुरि भोगनिकी अभिलाषाकरि उपज्या जो संक्लेश, सो निदान नामा आर्तध्यानका चौथा भेद है ॥ ४ ॥ सो कषायसहित आर्तध्यान संक्षेपतैं वर्णन कीया ॥ इहां ऐसैं जानना– जो ऋत जो दुःख, तातैं उपज्या ध्यान, तिसकूं आर्तध्यान कहिये हैं ॥

अब अनिष्टसंयोगज नामा आर्तध्यानका किंचित् विशेष ऐसैं जानना– जे अपना स्वजन, धन, शरीरकूं नाश करनेवाले जे अग्नि, जल, पवन, विष, शस्त्र, सर्प, हस्ती, सिंह, व्याघ्र, दुष्ट राक्षस, तथा स्थलके जीव जे क्रूर माहिषादिक, जलके जीव जे दुष्ट मत्स्यादिक, अर बिलके जीव जे मूषकादिक, तथा दुष्ट राजा, तथा वैरी, तथा भील, चोर, लुटेरे, तथा दुष्ट स्त्री, कपूतपुत्र, दुष्टबांधवादिक इनके संयोगतैं, तथा देखनेतैं, श्रवण करनेतैं, तथा चिंतवन करनेतैं, तथा निकट प्राप्त होनेतैं उपज्या जो मनकै संक्लेश सो अनिष्टसंयोगज प्रथम आर्तध्यान है ॥

अनिष्टसंयोग होय है, तब परिणाममें बडा संक्लेशदुःख उपजे है अर यहही चिंतवन लग्या रहे है " जो, मेरै इसका वियोग कैसैं होय? कदि होयगा? कहा करूं? कोनसूं कहूं? कहां जाऊं? ऐसा विकल्प पापबंधका कारण तिसकूं अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान कह्या है। सो सम्यग्दृष्टीकै अनिष्टसंयोग होय, तब ऐसैं चिंतवन करे– हे आत्मन्! पदार्थका सत्यार्थस्वरूप चिंतवन करो, इस जगतमें कोऊ वस्तूहू अनिष्ट

नहीं है, अपना किया पापकर्म एक अनिष्ट है, सो पापकर्म उदय आय अनिष्ट-संयोगरूप रस दे है, नरकनिमें असंख्यातकालपर्यंत अनिष्टकाही संयोग रह्या, तथा तिर्यंचगतिमें परस्पर कलह तथा मारण तथा वध बंधन लादन वाहन अंगच्छेदनादिककरि अनिष्टसंयोग बहुत अनंतकाल भोगे, तथा विकलत्रयनिकी बाधा भोगी, अब तुमारै नवीन अनिष्ट कहा प्राप्त भया है? तातैं अब परमसमताभाव अंगीकार करो. जो, संसारमें वास करैगा, तिसकै तो अनिष्टसामग्री प्रगट हुयाई करेगी, तातैं अन्य-पदार्थनिमें द्वेषबुद्धि छांडि एक दुष्टकर्मके नाश करनेमें परम उद्यम करो, तुमारै पुण्यका उदय आवता तो ये स्त्रीपुत्रबांधवादिक दुष्ट कैसे होते? तातैं संसारमें समस्त पुण्यपापकी रचना है। पाप उदय आवै तदि अपना इष्ट, मित्र, प्यारी स्त्री, सपूत पुत्र, हितकारी बांधव ये समस्त वैरीरूप होय महादुःखकूं देइ मारे है! तातैं कोऊ जगतमें अनिष्ट इष्ट नहीं है। ये दुष्टकर्म वैरि हैं इनको अनिष्ट जानहू। वृथा पर-पदार्थमें अनिष्टका संकल्प करि वैर बांधि दुर्गतिका कारण अशुभकर्मका बंध मति करो

बहुरि अपने प्यारे पुत्रका, स्त्रीका, मित्रका, बांधवका, तथा चित्तकूं प्रीति करनेवाला राज्यका, तथा ऐश्वर्य तथा भोग उपभोगका, तथा नगर ग्राम महल मकान धन वस्त्र परिग्रहका वियोग होतैं जो शोक क्लेश भ्रम भयका उपजना सो इष्टवियोगज आर्तध्यान

है ॥ हाय! अब मेरा इष्ट कैसैं प्राप्त होय? कहा देखूं? कौनसूं कहूं? कहां जाऊं? कैसैं जीऊं? मेरा आधार कोन रह्या! कोनका सरणा लेऊं? बडा दुःसहदुःखकूं कैसैं भुगतूं? इत्यादिक संक्लेश इष्टके वियोगतैं होय है ॥ बडे बडे ज्ञानवान् शूर वीर धैर्यके धारकनिके हृदय इष्टके वियोगतैं फाटिजाय है! धैर्य छूटि जाय है! ऐसैं इष्टवियोगज आर्तध्यानकूं एक सम्यग्ज्ञानीही जीते है ॥

सो सम्यग्ज्ञानी इष्टका वियोग होतैं ऐसैं चिंतवन करे है– इस जगतमें कोऊ वस्तु इष्ट अनिष्ट है नही, अपने रागभावतैं इष्ट माने है, द्वेषभावतैं अनिष्ट माने है, पुण्य उदय आवै तदि समस्त इष्ट होय परिणमे है, पाप उदय आवै तदि अनिष्ट होय परिणमे है, संसारमें जितने इष्टनिके संबंध भये हैं तितनेका वियोग अवश्य होयगा। तातैं अब इष्टके वियोगमें शोच करना पापबंधका कारण है, अर समस्त चेतन अचेतन वस्तूमैं मेरा अनेकवार संयोग होय होय वियोग भया है, अनेकवार मित्रके शत्रु भये, शत्रूके मित्र भये, कोऊ मेरा अनादिका शत्रु मित्र है नही, समस्त अपने अपने मुतलबके विषयकषायके निमित्त शत्रुमित्रपणा करे हैं। बहुरि समस्तवस्तु पर्यायार्थिकनयकरि विनाशिक हैं, मै अज्ञानी परद्रव्यनिमें मोहकरि वृथा ममता करि राखी है। जो मेरी दीर्घ आयु है, तदि तो अनुक्रमकरि वियोग होयगा।

आजि माताका, आजि पिताका, आजि स्त्रीका, आजि पुत्रका, आजि मित्रका, बांधवका ऐसैं समस्तनिके अपने अपने आयूके अनुसार निश्चयकरि वियोग होयगा। अर मेरी अल्प आयु है तो समस्तनिसूं एकैकाल वियोग होयगा। जातैं मेरा मरण होई तदि समस्तका वियोग एक क्षणहीमैं होय, तातैं परवस्तुमैं ममताभावकरि संसारमें परिभ्रमण करनेका कारण जो कर्मबंध ताकरि दुःखकूं अंगीकार करना उचित नही है। मै अनादिका एकाकी हूं, एकाकी आया हूं, एकाकी जाऊंगा, तातैं इष्टवस्तूका वियोगमें पश्चात्ताप करनेवरोवरि अन्य मूर्खता नही है॥

बहुरि कास, श्वास, ज्वर, उदर, भगंदर, उदरशूल, शिरःशूल, नेत्रशूल, अतिसार कोढ, वात, पित्त, कफ इत्यादिक क्षणक्षणमैं वृद्धीनैं प्राप्त होते जे रोग तिनकरिकैं परिणाममें जो व्याकुलताका उपजना, सो रोगार्त्त नामा आर्त्तध्यान है। तथा मेरै यो रोग कैसैं मिटै! कहा करूं! कोनसूं इलाज कराऊं! कोन वैद्य मेरा दुःख मेटै! तथा कोऊ देवता मेरी सहाय करै! वा मंत्रतंत्र औषधि मणि मुद्रा मंडलादिककरि मेरा दुःख हरनेवाला कोऊ प्राप्त होजाय! ऐसा निरंतर संक्लेशरूप परिणामनिका होना सो वेदनाजनित आर्त्तध्यान दुर्गतिका कारण है॥ सम्यग्दृष्टि रोगादिकनिकूं उपजतैं ऐसैं चिंतवन करे है— जो, मेरै तो बडा रोग ज्ञानावरणादिककर्म है! सो मेरा स्वरूपकूं

पराधीन करि राख्या है! अर संसारमें अनंतानंतकालतें जन्ममरणादिक करावे है! अर यो शरीरही रोग है, जिसमैं शाश्वती क्षुधावेदना तृषावेदना शीतवेदना उष्णवेदना रोगवेदना निरंतर उपजे हैं। कैसाक है शरीर? सात धातु सात उपधातूका पिंड है, अर महादुर्गंधमय अनेकरोगनिकरि भऱ्या है, ऐसा देहमें, वसिकरि नीरोगपणा चाहना वडी मूर्खता है! अर एक रोग मिट्या तो दूसरा ओर उपजेगा, मेरा पूर्वकर्मजनित उदय है, कायर होय भोगूंगा तो रोग नही छोडेगा धैर्यधारण करूंगा तो नही छांडेगा, कर्मके उदयकूं मेटनेकूं कोन समर्थ है? जगतमें देव, दानव, इंद्र, धरणेंद्र, जिनेंद्र कर्मके उदयकूं टालनेकूं समर्थ नही है! कर्म हरनेकूं अर कर्म देनेकूं कोऊ जगतमें समर्थ है नही; तातैं रोगमें आकुलता करि अशुभ तिर्यंचगतिका कारण कर्मका दृढबंध करना उचित नही। जैसैं भगवान् ज्ञानी मेरै होना देख्या है, तैसैं होयगा। यो रोग है सो देहमें है, देहका घात करैगा, मेरा रूप अविनाशी ज्ञानदर्शनमय आत्मा तिमका नाश करनेमें समर्थ नही; तातैं रोगमें आर्तध्यान करना तिर्यंचगतिका कारण है ॥

बहुरि जो भोगनिके अर्थि देवपणा, इंद्रपणा, तथा राजापणा श्रेष्ठीपणी चाहना; सो निदान नामा आर्त्तध्यान है। तथा आपकै भोगसामग्रीकी वांछा करना, तथा

रूपकी वांछा करना, ऐश्वर्य चाहना, जगतमें अतिविख्यात कीर्ति चाहना, तथा जिनेंद्र चक्रवर्ती नारायणपदकूं चाहना, तथा वैरीनिकरी रहित राज्य चाहना, तथा रूपवती स्त्रीनिकूं चाहना, तथा आपका सत्कार पूजा चाहना, तथा वैरीनिका दुष्टनिका नाश चाहना, तथा शत्रुनिके घातके अर्थि बलवीर्यादिककी वांछा तथा दीर्घकाल जीवनेकी इच्छा सो निदान नामा आर्त्तध्यान है ॥

सो सम्यग्ज्ञानी परवस्तूकी वांछा नही करे है, भोगनिके सुख हैं, ते सुखाभास हैं, अज्ञानी जीवनिकूं सुख भासे हैं। ये भोग हैं, राज्य हैं, धन हैं, ते कर्मके आधीन हैं; पुण्य उदय होय तो प्राप्त होय, पूर्वजन्मकृत पुण्यका उदय नही होय तो कोटि कष्ट करै तोहू लेशमात्रभी प्राप्त नही होय हैं। अर ये भोग प्राप्त भयेहू अतितृष्णा आकुलताके बधावनहारे हैं, तथा विनाशीक हैं, अंतरंगमें चाहकी अति दाह उपजे है तादि इनकूं ग्रहण करे है। ये भोग असातावेदनीयजनित उपज्या दुःख तिसका किञ्चिन्मात्र काल उपशमन करनेका इलाज हैं। जिमकूं गरमी व्यापे है, तिसकूं शीत पवन भली भासे है। जिसकै क्षुधावेदना पीडा करै, तिसकूं भोजन सुखकारी भासे है। जिसकै तृषावेदना पीडा करै, तिसकूं शीतल जल सुख भासे है। जिसकूं शीतवेदना कामवेदना पीडा करेगी, तिसकूं अग्नीका तपना रुईके वस्त्र पहरना स्त्रीसंगम करना

सुख भासे है। जाकै वेदनाही नही ताकै यह भोगरूप इलाज कैसैं सुख करे? तातैं पांच इंद्रियनिके विषय सुखरूप नही हैं॥

जिसनैं निराकुलतालक्षण वेदनारहित स्वाधीन अविनाशी अंतररहित अप्रमाण आत्मिकसुखका अनुभव नही कीया, सो पुरुष विषयनिके अर्थि दीन हुवा दुःखहीकूं सुख माने है। यह भोगसंपदा अभिमान वधावे है, मद उपजावे है, अपना रूपकूं भुलावे है, दीनता करावे है, तातैं दुःखही है, ऐसैं वस्तूका स्वरूपकूं यथार्थ जानता जो सम्यग्दृष्टि सो याप्रकार चिंतवे है- जो, परद्रव्य मेरा कदाचित्‌ही होय नही, मै चेतन, ये विषय जडरूप, मेरै इन दुःखकारी विषयनिसूं कहा संबंध? मै अनंतज्ञान अनंतसुखरूप हूं, मैरै इनकरि अनादिकालसूं दुःखही उपज्या, तातैं मोकूं इंद्र अहमिंद्रलोककी संपदाहू महादुःखरूप बंधनरूप भासे है, ऐसैं चिंतवन करते सम्यग्दृष्टि आगामी वांछारूप निदान नही करे है॥ ऐसैं च्यारिप्रकारकरिकै आर्त्तध्यान संक्षेपकरि वर्णन कीया। अर जीवनिके अभिप्राय असंख्यात हैं तथा अनंतजीवनिकी अपेक्षा अनंते परिणाम हैं, तिस अपेक्षा आर्त्तध्यानके असंख्यात अनंत भेद हैं, तिनकूं जाननेकूं कहनेकूं भगवान् केवलीही समर्थ है, अन्य समर्थ नही है॥

यो आर्त्तध्यान कहूं रागी द्वेषी मोही जीवनिकूं रमणीक भासे है, तथापि परिपाककालमें

अपथ्य भोजनकीनाईं महादुःख उपजावनेवाला है, अर कृष्णादिक अशुभलेश्यानिके बलकरि उत्पन्न होय है ॥ पंचमगुणस्थानताईं तो च्यारि भेद होय हैं, अर प्रमत्तगुणस्थानके धारककै निदान नहीं होय है। तीन भेद छठे गुणस्थानपर्यंत कदाचित होय हैं; परंतु सम्यग्दृष्टीकै अपना तथा परपदार्थका सम्यग्ज्ञान है, तातैं अर कषायनिकी मंदतातैं कदाचित् किंचिन्मात्र होय है; परंतु जैसैं विपरीतग्राही मिथ्यादृष्टीकै तिर्यंचगतिका कारण होय, तैसैं नहीं होय है। अनादिकालका संक्लेशपरिणामनिके संस्कारतैं प्राणीनिकै विनायत्नही आर्तध्यान उपजे है, अर अनंतदुःखनिकरि सहित तिर्यंचगतिमैं परिभ्रमण होना याका फल है, अर याका अंतर्मुहूर्तकाल है, अंतर्मुहूर्तपाछे अन्य आर्त्त रौद्र पलट्या करे है! अर याके बाह्यचिह्न ऐसे जानने— भयवान् होना, शोकमें मग्न होना, चिंता करना, शंका करना, प्रमादी होना, कलह करना, भ्रमरूप होना, वारंवार निद्राका आवना, आलस्य लेना, विषयांमैं उत्कंठित होना, अचानक अबुद्धिपूर्वक वचन बोलि ऊठना, शरीरमें जाड्यता होना, खेदरूप रहना, दीर्घनिश्वास नाखना, हाहाकारकरि ऊठना, बेखबरि होई जाना इत्यादिक अनेक संतापक्लेशरूप चिह्न आर्त्तध्यानके भगवान् परमागममें वर्णन कीये हैं; तातैं भगवान् वीतरागका धर्म धारण करि आर्त्तध्यानके परिणामनिकूं प्राप्त मति होहू ॥ अब रौद्र-

ध्यानका स्वरूप संक्षेपकरि कहे हैं ॥ गाथा–

तेणिक्कमोससार- । रक्खणेसु तह चेव छव्विधारंभे ॥
रुद्दं कसायसहियं । झाणं भणियं समासेण ॥ ३ ॥

अर्थ— परधन हरण करनेमें, असत्यप्रवृत्ति करावनेमें, तथा परिग्रहका रक्षणमें, तथा छकायके जीवनिकी विराधनेमें रौद्र कषायसहित परिणाम होय, सो संक्षेपकरि रौद्रध्यान भगवान् कह्या है ॥ अब इहां किंचित् विशेष ऐसा जानना– रौद्र जो तीव्र कषायके परिणामनिकरि उपज्या जो चिंतवन, सो रौद्रध्यान है । सो हिंसानंद, मृषानंद, चौर्यानंद, परिग्रहानंद ये च्यारि भेदकरि संयुक्त है ॥ तिनमैं हिंसानंदकूं कहे हैं ॥

जिसका निरंतर निर्दयी स्वभाव होय; स्वभावहीतैं क्रोधाग्निकरि तप्तायमान होय; तथा धनका, बलका, ऐश्वर्यका, ज्ञानका, कुलका, जातिका, रूपका, कलाविज्ञान, पूज्यता इत्यादिकनिके मदकरि उद्धत होयकरिकैं जगतकूं तृणसमान लघु देखता होय; तथा जिसकी बुद्धि पाप करनेमें प्रवीण होय; महाकुशीली खोटे स्वभावका धारक होय; धर्मका, पापका, पुण्यका, जीवका, परलोकका अभाव मानता होय; नास्तिकमार्गी होय; तथा एकब्रह्मरूप समस्तकूं श्रद्धानकरि परलोकका अभाव माननेवाला होय; तथा जीवका अभाव कहनेवाला ऐसा ब्रह्माद्वैतवादी होय; तथा बाह्य समस्तपदार्थ ग्रहणमें

आवे हैं, तिनका अभाव कहनेवाला; ज्ञानाद्वैतवादी होय; एक ज्ञानविना अन्य सर्व अपने आत्माका, तथा परके आत्माका, तथा स्वर्ग, नरक, नगर, ग्राम, पृथ्वी, आकाश, काल, पुद्गलके अभावकूं कहनेवाला ज्ञानाद्वैतवादी कहे हैं– समस्तवस्तु जगतमें दीखे हैं, सो भ्रम है, एक ज्ञानमात्रही है, बाह्यवस्तु भ्रमसौं जान्या जाय है, वस्तुत्वकरि ज्ञानविना कोऊही पदार्थ नांही; तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, पवनरूप जे भूतचतुष्टय, तातैं आत्माकी उत्पत्ति मानि परलोकका तथा पापपुण्यका अभाव माननेवाला चार्वाकमतके धारकहू नास्तिकही है; ये ब्रह्माद्वैतवादी, तथा ज्ञानाद्वैतवादी, तथा चार्वाक नास्तिक परलोकका अभाव कहनेवाले जीवके घातमें, मांसका भक्षण करनेमें पाप नही सरधान करे हैं! ये हिंसामैं आनंद मानते हिंसानंद नामा रौद्रध्यानमें प्रवर्ते हैं ॥

तथा आपकरिकै वा परकरिकै प्राणीनिका समूह नाशकूं प्राप्त होतैं वा पीडाकूं प्राप्त होतैं विध्वंस होतैं जो हर्षका करना, सो हिंसानंद नामा रौद्रध्यान है ॥ जिसकै हिंसाके कर्ममें प्रवीणता होय, तथा पापरूप उपदेश देनेमें निपुणता होय, तथा नास्तिकमतमें निपुणता होय, अर दिनदिन प्रति हिंसामैं आसक्तता, अर निर्दयीनिके संगमें वसना, अर स्वाभाविक क्रूरताकूं प्राप्त होना, सो हिंसानंद नामा रौद्रध्यान है ॥ बहुरि जाकै ऐसा विचार रह्या करै— जो, ये मेरे वैरी दाइयादार दुष्ट

मनुष्यनिका मरना कोन उपायकरि होय? इनकूं मारनेमें कौन समर्थ है? इनके मारनेमें कौनकै राग है? इनसैं कौनका वैर है? ये कदि मारे जायगे? ऐसें कोऊ निमित्तके जाननेवाला ज्योतिषीनिकूं पूछनेका चिंतवन करना, तथा ये मरि जायगे वा इनकूं कोऊ मारि नाखै तो हम बहुत ब्राह्मणनिकूं भोजन करावै तथा अनेक-देवतानिका बडा उत्सवसहित पूजन करै वा बडा दान देवै ऐसैं चिंतवन करना, सो हिंसानंद नामा रौद्रध्यान है ॥

तथा जिसकै जलके जीव मारनेमें कौतुक होय–हर्ष होय; तथा आकाशमें गमन करनेवाले काक, चोल, चिंडी, शूवा इत्यादिक अनेकपक्षीनिके मारनेमें उत्साह होय; तथा जाकै पृथ्वीमें विचरनेवाले मृग, सूकर, सिंहव्याघ्रादिकनिके मारनेमें उपाय तथा उत्साह तथा चिंतवन होय; तथा जीवनिकूं शस्त्रतैं मारनेमें, बाणनितैं वेधनेमें, परस्पर लडायनेमें, चामके उपाडनेमें जीवनिके नेत्र उपाडनेमें, नख उपाडनेमें, जिह्वा निकालि लेनेमें, इंद्रिय उपाडनेमें, अग्निमें दग्ध करनेमें, जलमें डबोय देनेमें, पर्वतादिकनितैं गरेनेमें, नासिका छेदनेमें, हस्तपाद काटनेमें, समस्तकुटुंबकूं मारनेमें, नानाप्रकारकी ताडन मारण छेदनादिककरि त्रास देनेमें हर्ष होय कौतुक होय उपाय होय सो समस्त हिंसानंद नामा रौद्रध्यान है ॥

बहुरि संग्राममें इसकी जीति होहू इसकी हारि होहू इत्यादिक हिंसाननंद नामा रौद्रध्यान है ॥ बहुरि प्राणीनिका मरण, तथा तिरस्कार, तथा नानाप्रकारकी ताडना देखिकरिकै वा श्रवण करिकै वा चिंतवन करिकै जो आनंद होय है, सो नरकके ले जावनेवाला हिंसानंद नामा रौद्रध्यान है ॥ इस वैरीनैं मेरा अपमान कर्‍या है, धन हर्‍या है, मेरे मित्रनिकूं तथा कुटुंबकेनिका घात कीया है, तथा मेरी आजीविका हरी है–बिगाडी है, मेरी जमीजायगा बलात्कारकरि हरी है, मेरी हास्य करी है, गाली दीई है, मेरी निंदा अपवाद कीया है, अब कोऊ दैवका सानुकूलपणातैं मेरा अवसर आवतैं वा कोई मेरा सहायी होजाय; तो इसकूं नानाप्रकारकी त्रास देई मारि मेरा बदला लेऊं तदि मेरा जीवना सफल है, वे दिन धन्य है ऐसैं चिंतवन करता रहै; तिसकै हिंसानंद नामा रौद्रध्यान होय है ॥ कहा करूं? मेरी शक्ति बिगडि गई! कोऊ मेरा सहायी रह्या नहीं, धन भी नहीं रह्या, अवसर बिगडि गया, तातैं ये मेरे वैरी जीवे हैं! इनका नाम सुणूं हूं अर इनका उदय देखूंहूं तदि मेरे हृदयमें अग्नि बले है! दाह उपजे है! अब मेरा अवसर नहीं, अवसर आवै तो इसकूं ऐसैं कैसैं रहने द्यूं? परलोकताईं मारूंगा ऐसा चिंतवन सो हिंसानंद है ॥

इस दुष्टवैरीका नाश होहू! इसका स्त्रीपुत्र मरि जावो! इसका मूलसूं विनाश

होजावो? इसनैं मोकूं दुःख दीया है, इसकूं भगवान् ईश्वर दुःख देवैगा ऐसा चिंतवन करना सो हिंसानंद नामा रौद्रध्यान है॥ बहुरि अन्यजीवनिकै दुःख आपदा अपमान अपकार देखिकरिकैं मनमें आनंद मानना, तथा अन्यजीवांकै विघ्न आवता आनंद मानना सो हिंसानंद नामा रौद्रध्यान है॥ बहुरि अन्यजीवांकै सुख देखि, तथा गुण देखि, तथा अन्यजीवांका जस श्रवणकरि, वा उच्चता देखिकरि परिणाममें संक्लेश करना ईर्षा करना सो हिंसानंद नामा रौद्रध्यान है॥ बहुरि पृथ्वीका आरंभ करि हर्ष करना; तथा जलके आरंभ, जलका छिडकनेरि, तथा जलमें मग्न होना, तिरना इत्यादिकरि आनंद मानना; तथा अग्नीका आरंभ, पवनका आरंभ, वनस्पतिका आरंभ छेदन-काटनकरि आनंद मानना: तथा अनेक बागवननिमैं विहार करिकैं आनंद मानना; तथा अत्तर फुलेल पुष्पमालादिकानिके आरंभकरि हर्पित होना; तथा कामसेवनकरि हर्षित होना; तथा अभक्ष्यभक्षण करि हर्पित होना; तथा विवाहादिक महाहिंसाके आरंभादिकका आरंभकरि आनंद मानना; तथा सुंदर भोजन, वाहन, गमन आगमनकरि आनंद मानना; सो समस्त हिंसानंद नामा रौद्रध्यान है॥ बहुत कहनेकरि कहा? संसारी जीवनिकै जे हिंसाके विकल्प हैं, तितने हिंसानंद नामा रौद्रध्यान हैं॥ बहुरि हिंसाके कारण आयुधादिक उपकरण ग्रहण करना, तथा हिंसक जीव

जे श्वान, मार्जार, चिता, सिंह, व्याघ्र, वाज, सिकरा, चिडी, काक, चील, शूवा, मैना, तीतर, कूकडा इत्यादिक दुष्टजीवनिकूं पालना रक्षा करना; लढावना; प्रीति करना; सो समस्त हिंसानंद नामा दुर्ध्यान है ॥

अब मृषानंद नामा दूसरा रौद्रध्यानकूं कहे हैं ॥ असत्यकी कल्पना करि जिसका चित्त मलिन है तिसकै मृषानंद नामा रौद्रध्यान होय है ॥ मेरे माहि ऐसा सामर्थ्य है, जो, लोकनिकूं कपटके शास्त्रनिकरि अनेक हिंसादिकनिके मार्गनिमैं लगाय बहुत धन उपार्जन करि इंद्रियजनित सुख भोगने; तथा मेरी वचनकलाके प्रभावकरि सांचेकूं झूंठा करूंगा अर झूंटेकूं सांचा करूंगा; अर वचनकी चातुर्यताके बलकरि लोकनितैं धन, तथा हस्ती, घोडे, वस्त्र, सुवर्ण, आभरण, ग्राम, रूपवती कन्या ग्रहण करूंगा, ऐसा चिंतवन जाकै होय; सो मृषानंद रौद्रध्यानका धारक है ॥ तथा असत्यके सामर्थ्यतैं राजनिकरि तथा चोरनिकरि मेरे वैरी हैं तिनका घात कराऊंगा; निर्दोष हैं तिनके दोष प्रकट करयूंगा; चोरीकरि रहित है तिनमैं चोरी प्रकट करवूंगा; शीलवंतनिकूं जगतमें कुशीली दिखाय द्यूंगा; धनका नाश कराय द्यूंगा; बंदिगृहमें नानाबंधननिकरि मारणकरि त्रास भुगताऊंगा; इत्यादि चिंतवन करना सो मृषानंद नामा रौद्रध्यान है ॥

बहुरि झूंट बोलि आनंद मानना, सत्यार्थधर्मके तथा धर्मके धारीनिके दोष कहि-करि आनंद मानना; तथा झूंट हिंसाके पुष्ट करनेवाले शास्त्र बणाय आनंद मानना; तथा कामकी कथाकरि आनंद मानना; भोजन कथाकरि, स्त्रीनिकी कथाकरि, तथा पापी जीवनिका सामर्थ्य वर्णन करि, तथा हिंसाके आरंभकी प्रशंसा करिकै आनंद मानना; तथा पापरूप कथाके श्रवणकरि आनंद मानना; तथा परनिंदा परकी चुगलीकी वार्ताके कहनेकरि, तथा श्रवणकरि आनंद मानना; तथा चोर दुष्ट म्लेछनिकी कथा करनी, तथा तिनकी कला चतुराई सामर्थ्यकी प्रशंसा करना सो समस्त मृषानंद नामा रौद्रध्यान है ॥ ये मनुष्य मूर्ख हैं, ज्ञानरहित हैं, हेय उपादेयका विचाररहित हैं, इनकूं मेरे वचनकी चातुर्यताकरि नवीन कुमार्गमें प्रवर्तन करावस्यूं इत्यादिक अनेक असत्यके संकल्पकरि जो आनंद उपजे है, सो दुर्गतिमें बहुतकाल परिभ्रमण करनेका कारण मृषानंद नामा रौद्रध्यान जानना ॥ जे संसारके दुःखनितैं भयभीत हैं, ते अयोग्यवचनका स्वप्नेहूमें चिंतवन नही करे हैं ॥

अब चौर्यानंद नामा रौद्रध्यानकूं कहे हैं ॥ जो चोरीका उपदेश देनेमें निपुणपणा, तथा चोरी करनेमें प्रबलपणा, तथा चोरी करनेके उपायमें चित्तका रहना, सो चौर्यानंद रौद्रध्यान है ॥ बहुरि चोरीके अर्थि वारंवार चिंतवन करना, अर चोरी करि बहुत हर्षित

हर्षित होना, अर चोरी करि अन्य कोऊ अन्यका धन हरण कीया होय तिसमैं हर्षित होना, सो चौर्यानंद है ॥ बहुरि जिसकै ऐसा चिंतवन लग्या रहै- अब मै कोऊ शूरवीर पुरुषका सहाय पायकरिकैं तथा नानाप्रकारके उपायनिकरिकैं लोकनिका बहुतकालतैं संचय कीया धनकूं ग्रहण करस्यूं, बहुरि ऐसैं चिंतवन करै- जो, मेरै इसका धन कैसैं हाथि लगै? कैसैं ये अचेत गाफिल होय? वा कोई मर्मका जाननेवाला मेरै सामिल होय तदि मेरै हाथि प्रचुर धन आवै, ऐसा चिंतवन सो चौर्यानंद है ॥ बहुरि कोईप्रकार मेरै गाड्या धन हाथि लगिजाय, वा भूल्या पड्या किसीप्रकार परधन आवै, तदि मेरा जीवना बुद्धि कलादिक समस्त सफल है, जगतमैं न्यायका धन कोऊकै आवै नही, जगतमैं जो सुख देखिये है सो तो परके धनहीतैं है, बहुरि अन्यायतैं धन आवै जिसमैं बडा पुरुषार्थ वा भाग्य वा बुद्धीकी तीव्रता मानि आनंद करना; तथा बहुमोलकी वस्तु थोडे मोलमैं लेय आनंद मानना इत्यादिक समस्त चौर्यानंद रौद्रध्यान साक्षात् नरकगतिका कारण है ॥

अब परिग्रहानंद रौद्रध्यानका विशेष कहै हैं ॥ जो पुरुष बहुत आरंभमैं तथा बहुत-परिग्रहमैं रक्षाके अर्थि उद्यम करै, अर बहुत परिग्रह होय तदि आपकूं धन्य मानै-कृतार्थ मानै, मै राजा हूं प्रधान हूं ऐसैं मानना सो परिग्रहानंद रौद्रध्यान है ॥ बहुरि ऐसैं

चिंतवन करै, जो, मैं पुरुषनिमैं प्रधानपुरुष हूं, जैसा मेरा ऐश्वर्य है तैसा औरनिकै नाही, मै बडे पुरुषार्थकरि अनेकवैरीनिका मारण करि यह विभव उत्पन्न कीया है, तथा अपने गृहमें तिष्ठती नानाप्रकारकी सामग्री तथा महल उद्यान रत्न सुवर्ण स्त्री पुत्र वस्त्र शय्या आसन असवारी पयादे सेवक इनकूं देखि चिंतवन करि आनंद मानना सो परिग्रहानंद है ॥ जो परिग्रह वधाय आनंद मानना, सो दुर्गतिका कारण परिग्रहानंद दुर्ध्यान है ॥ इसका विशेष परिग्रहत्याग महाव्रतमें कहेही है। इहां विशेष लिख्ये कथन वधि जाय ॥

ये च्यारि प्रकारके रौद्रध्यान कृष्णलेश्याकरि सहित हैं, इनका फल नरकमें गमन करना है। क्रोधकी तीव्रता, क्रूरवचनका बोलना, पैलेकूं ठिगनेमें कुशलता, कठोरता, निर्दयता ये रौद्रध्यानके चिह्न हैं। तथा अग्नीके फुलिंगेसमान नेत्रका होना, तथा भ्रकुटीकी वक्रता करना, भयानक आकृतिकरि शरीरका कंप होना, पसेवनिका आवना इत्यादिक रौद्रध्यानतैं देहमें चिह्न प्रकट होय हैं ॥ यो रौद्रध्यान क्षायोपशमिक भाव है, इमका अंतर्मुहूर्त काल है, दुष्ट अभिप्रायके वशतैं होय है, खोटे अवलंबनतैं उपजे है, धर्मरूप वृक्षकूं दग्ध करनेवाला है, जिसका अंतःकरण परिग्रह आरंभ कषायादिककरि मलिन होय ताकै उपजे है, देशविरतगुणस्थानपर्यंत होय है ॥ ऐसैं संसारप-

रिभ्रमणके कारण आर्त्तरौद्रकूं जानि इनका त्याग करि परिणाम उज्वल करना श्रेष्ठ है ॥

अवहट्ट अट्टरुद्दे । महाभए सुग्गदीए पच्चूहे ॥
धम्मे सुक्के य सदा । होदि समण्णागदमदीउ ॥ ४ ॥

अर्थ— नरकादिकमैं प्राप्ति करनेतैं महान् भयके करनेवाले अर शुभगतिके नष्ट करनेकूं महाविघ्नके कारण ऐसे आर्त्तरौद्र दोऊ दुर्ध्याननिकूं त्यागिकरिकै; अर धर्मध्यान शुक्लध्यानमें सम्यग्बुध्दीकूं प्राप्त करनेवाला सदाकाल होहू ॥ गाथा—

इंदियकसायजोगणि-। रोधं इच्छं च णिज्जरं विउलं ॥ चित्तस्स य वसियत्तं । मग्गादु अविप्पणासं च ॥ ५ ॥ किंचिवि दिट्ठिमुपाव-। त्तइत्तु झाणे णिरुध्ददिट्ठीउ ॥ अप्पाणं हि सदिं स-। छित्ता संसारमो-क्खट्ठं ॥ ६ ॥ पच्चाहरित्तु विसए-। हिं इंदियाइं मणं च तेहिंतो ॥ अप्पाणम्मि मणं तं । जोगं पणिधाय धारेदि ॥ ७ ॥ एयग्गेण मणं रुं-। भिऊण धम्मं चउव्विहं झादि ॥ आणापायविवाग-। विचयं संठाणविचयं च ॥ ८ ॥

अर्थ— जो इंद्रियनिकूं वश करना, अर कषायका निग्रह करना, अर योगनिका निरोधकी इच्छा करत है, तथा प्रचुरनिर्जराकी इच्छा करत है, तथा चित्तकूं आपके

वशी कीया चाहे है, तथा रत्नत्रयमार्गतैं नही छूट्या चाहे है; तो, किंचित् बाह्यपदार्थनितैं दृष्टिसंकोच करिकै, अर शुभध्यानमें अंतर्दृष्टिकूं रोकिकरिकै, अर संसारका अभावके अर्थि आत्माविषैं स्मरण जोडिकरिकै, अर विषयनितैं इंद्रियनिकूं रोकिकरिकै अर इंद्रियनितैं मनकूं रोकिकरिकै, अर योग्य वीर्यांतरायका क्षयोपशम विचारिकरिकै, अर मनकूं आत्मामैं धारण करै; सो मनकूं एकाग्र रोकिकरिकैं, अर आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय च्यारिप्रकार धर्मध्यानकूं ध्यावत है ॥ भावार्थ–जो इंद्रियनिका तथा कषायनिका निग्रह चाहै, तथा प्रचुरनिर्जरा चाहे, तथा चित्तका वशीकरण चाहै, तथा रत्नत्रयमार्गतैं नही छूट्या चाहै, सो अभ्यंतर आत्मदृष्टिकरिकै अर इंद्रियनिकूं विषयनितैं रोकिकरिकैं अर इंद्रियनितैं मनकूं रोकिकरिकै अर धर्मध्यानमें चित्तकूं रोकै ॥ गाथा–

धम्मस्स लक्खणं से । अज्जवलहुगत्तमद्दवोवसमो ॥
सुत्तस्सुवदेसेण । णिसग्गउं अत्थरुचिगो से ॥ ९ ॥

अर्थ— तिस धर्मध्यानका लक्षण आर्जव कहिये कपटरहित सरलता है, तथा निष्परिग्रहता ताकूं लघुत्व कहिये भाररहितपणा कहिये है, तथा जात्यादिक अष्टप्रकार मदका अभाव सो मार्दवधर्मका लक्षण है, तथा उपशमभाव कहिये कषा-

यनिकी मंदता है, तथा जिनेंद्रके सूत्रका उपदेश करना, तथा स्वभावतैंही पदार्थनिमैं
सत्यार्थ रुचि ये धर्मके लक्षण जानने ॥ भावार्थ– जो कपटका अभावकरि सरलताका
प्रकट होना, तथा परिग्रहरहित होई आत्मामैं लघुत्वगुण प्रकट करना, तथा अष्टम-
दरहित होई मार्दव अंग धरना, कषायनिकी मंदता करना, जिनसूत्रका उपदेश
करना, तथा जिनेंद्रके उपदेशे सत्यार्थपदार्थनिमैं श्रद्धान करना ये धर्मके लक्षण हैं,
इनतैं धर्म जाण्या जाय है, इन गुणनिविना धर्म नहीं होय है ॥ गाथा–

आलंवणं च वायण- । पुच्छणपरिवट्टणाणुवेहाउं ॥
धम्मस तेण अविरु- । द्धाउं सव्वाणुपेहाउं ॥ १७१० ॥

अर्थ— धर्मध्यानका आलंबन पंचप्रकारका स्वाध्याय है– वाचना, पृच्छना, परिव-
र्त्तन, अनुप्रेक्षा अर इनतैं अविरुध्द समस्त अनुप्रेक्षानिका भावना ये धर्मध्यान
करनेका बाह्य अभ्यंतर अवलंबन है ॥ भावार्थ– धर्मध्यानका प्रधान अवलंबन
पंचप्रकारका स्वाध्याय है । तिनमैं निर्दोष ग्रंथ अर निर्दोष अर्थका धर्मानुरागी होइ
पठनपाठन करना, सो वाचना है ॥ अर अपने संशयके दूरि करनेके अर्थि, तथा
पदार्थनिका निश्चय होनेके अर्थि, वा विशेष जाननेके अर्थि, तत्त्वका निर्णयके अर्थि,
उद्धततारहित विसंवादरहित महाविनयसंयुक्त वात्सल्ययुक्त अंजुली जोडिकरि बहुश्रुती-

निकूं प्रश्न करना, सो पृच्छना नाम स्वाध्याय जानना ॥ बहुरि जिनसूत्रकी ज्ञातातैं सम्यक् ज्ञानवान् गुरुनिके संयोगतैं परमार्थभूत जान्या हुवा अर्थका मनकरि वारंवार अभ्यास करना–चिंतवन करना, सो अनुप्रेक्षा नाम स्वाध्याय है ॥

बहुरि शब्द अर अर्थ गुरुनिकी परिपाटीतैं शुद्ध उच्चार करना, पाठ करना, सो आम्नाय नामा स्वाध्याय है ॥ बहुरि अपनी विख्याततातूं नहीं इच्छा करता धर्मोपदेश करे, तथा धर्मका उपदेश देइ भोजनका लाभ धन संपदा वसतिकादिकाका लाभ नहीं इच्छा करता तथा अपनी पूजा मान्यता नहीं इच्छा करता केवल अपना अर परका कल्याणके अर्थि समस्त जीवनिका हित करनेवाली जे धर्मकथा तिनका उपदेश करना, सो धर्मोपदेश नाम स्वाध्याय है ॥

ऐसैं पंचप्रकारका स्वाध्याय धर्मध्यानका अवलंबन है, सो ग्रहण करना योग्य है ॥ अब च्यारिप्रकारका धर्मध्यानमें आज्ञाविचय नामा धर्मध्यानकूं कहे हैं ॥ गाथा—

पंचेव अत्थिकाया । छज्जीवणिकाये दव्वमण्णो य ॥
आणागेज्झे भावे । आणाविचयेण विचिणादि ॥ ११ ॥

अर्थ— पंच अस्तिकाय– जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश इनिकूं अस्तिकाय कहिये हैं ॥ जातैं उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीनपरिणतिकरि युक्त होइ, सो अस्ति है,

ताकूंही सत् कहिये हैं। जामैं उत्पाद व्यय ध्रौव्य नही सो सत्ही नही। समस्तवस्तु
सर्वथा नित्य नही है सर्वथा क्षणिक नही है। सर्वथा नित्य वस्तुकै अनुक्रमतैं वर्तते जे
पर्याय, तिनका अभावतैं विकारवान्‌पणाका अभाव होई-परिणतिरहित होइ। अर
सर्वथा क्षणविनाशिकही मानिये तो प्रत्यभिज्ञानका अभाव होय है, या वस्तु वाही है
ऐसैं कहना नही बणै। तथा कोऊकूं बालक अवस्थामैं देखि बहुरि दशवर्षपाछैं देख्या
तादि जाण्या, जो, "वै दशवर्ष पहली बाल्य अवस्थामैं देख्या था, सोही यह है."
क्षणविनाशीकमैं ऐसा प्रत्यभिज्ञान नही होय है। तातैं प्रत्यभिज्ञानका कारण
कोऊस्वरूपकरिकै ध्रौव्यपणाकूं अवलंबन करता अर कितने पर्याय क्रमकरिकै प्रवर्तते
तिनकरिकै विनाश अर उत्पाद एककाल अवलंबन करता ऐसैं एकसमयमें उत्पाद व्यय
ध्रौव्य तीन परिणनिकूं धारण करते वस्तूकूं 'सत्' ऐसा जानना योग्य है। जैसैं
घटपर्यायका नाश होना, सोही कपालपर्यायका उत्पाद है; अर कपालका उत्पाद होना,
सोही घटपर्यायका नाश है; अर मृत्तिका दोऊ पर्यायनिमैं ध्रुव है। तातैं घटका नाश
होनेका अर कपालका उत्पाद होनेका अर मांटीकी ध्रुवताका काल भिन्न नही है॥
बहुरि घटमें समयसमय सूक्ष्मपरिणति उपजे है अर विनशे है, अर मृत्तिकाकरिकै
ध्रौव्य है। जो पर्यायार्थिक नयकरिकैंहू नही उपजे है अर नही विनसे है, तो नवीन

घट था सो पुराणा कैसें होइ? तातैं अर्थपर्याय तो समयसमयमें उपजे है अर विनसे है। अर व्यंजनपर्याय जो स्थूलपर्याय सो बहुतकालमें विनसे है। जैसैं घटपर्याय तो व्यंजनपर्याय है, सो बहुतकालमें विनसै, परंतु अर्थपर्याय तो घटमें समयसमय उपजे विनसे है। जैसैं मनुष्यपर्याय तो व्यंजनपर्याय है सो आयुपर्यंत एक रहे है अर व्यंजनपर्याय समयसयमयविषैं भिन्नभिन्न उपजती निरंतर असंख्यात उत्पन्न होइहोइ विनसे है अर द्रव्य ध्रुव रहे है॥ यातैं समस्त जे जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश इनि पांचनिमैं उत्पाद व्यय ध्रौव्य है, तातैं इनकूं 'अस्ति' कहिये हैं। अर जाका प्रदेश बहुत होय, ताकूं काय कहिये। सो एक जीवके असंख्यात प्रदेश हैं अर पुद्गल संख्यातप्रदेश तथा असंख्यातप्रदेश तथा अनंतप्रदेशकूं धारण करे है। अर धर्मद्रव्य तथा अधर्मद्रव्यके असंख्यात असंख्यात प्रदेश हैं। आकाशके अनंत प्रदेश हैं। अर बहुप्रदेशीकूं काय कहिये हैं। अर जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश ये बहुप्रदेशी हैं तातैं इनकूं अस्तिकाय कहिये हैं। इनकै उत्पादव्ययध्रौव्यपणातैं तो अस्तिपणा है अर बहुप्रदेशीपणातैं कायपणा है, तातैं इनकूं अस्तिकाय कहिये हैं। अर कालाणूनिकै उत्पादव्ययध्रौव्यतातैं अस्तिपणा तो है, परंतु बहुत प्रदेश नहीं, तातैं कायपणा नहीं, यातैं कालकूं अस्तिपणातैं द्रव्यनिमैं तो कह्या अर कायनिमैं नहीं कह्या। जातैं

जे अपनेअपने गुणपर्यायनिकूं समयसमय प्राप्त होइ, तिनकूं द्रव्य कहिये। अर जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये छहूही समयसमय एकपरिणतिकूं छांडे हैं अर नवीन ग्रहण करे हैं अर आप ध्रुव रहे हैं; तातैं इनकूं द्रव्य कहिये हैं। अर कालकै द्रव्यपणा तो है, परंतु एकप्रदेशी है-बहुतप्रदेशी नही तातैं कायपणा नही। यातैं द्रव्य तो छहप्रकार है अर अस्तिकाय पांचही हैं, तिनकूं भगवान सर्वज्ञ वीतरागकी आज्ञातैं 'आज्ञाविचय' धर्मध्यानकरिकैं चिंतवन करै॥

बहुरि पृथ्वीही है काय जिनकै ऐसे पृथ्वीकाय, अर जलही है काय जिनकै ते अप्कायिक, अर अग्नि है काय जिनकै ऐसे अग्निकायिक जीव, अर पवन है काय जिनकै ते जीव पवनकायिक, अर वनस्पति है काय जिनकै ते वनस्पतिकायिक ये तो पंचप्रकार स्थावर अर द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय इनकूं त्रस कहिये हैं। इन छकायनिमैं जिनेंद्रकरि देख्या हुवा जीव है। तातैं जीवनिकी छकाय अर जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये षद्द्रव्य, ये सर्वज्ञकी आज्ञाकरि ग्रहण करनेयोग्य 'आज्ञाविचय' धर्मध्यानमैं चिंतवन करै॥ गाथा—

कल्लाणपावगाणो-। पाए विचिणादि जिणमदमुवेज्ज॥
विचिणादि वा अवाए। जीवाण सुभे य असुभे य॥ १२॥

अर्थ— जिनेंद्रमतकूं प्राप्त होयकरिकै अर आपकै कल्याणप्राप्ति होनेके उपायनिकूं चिंतवन करै. सो उपायविचय धर्मध्यान है ॥ भावार्थ- मेरा कल्याण कैसैं होय? जिनेंद्रभगवान् मेरा हित होनेका उपाय कैसा कह्या है? मेरा राग द्वेष मोह कैसैं मंद होय? मेरा शुद्ध वीतरागभाव कैसैं प्रकट होय? ऐसैं चिंतवन करना, सो उपायविचय धर्मध्यान है ॥ अथवा मेरे अशुभ मनवचनकायका अभाव कैसैं होय, तथा जीवनिके शुभ अशुभ बंधका नाश चाहना, सो अपायविचय धर्मध्यान है। मेरे अशुभकर्मका नाश जिस अवसर होइ, तिस अवसर मेरा कल्याण है। ऐसैं कर्मका नाश होनेमें उद्यम परिणाम संगति चारित्रकूं अभिलाष करना, सो अपायविचय धर्मध्यान है ॥ गाथा-

एयाणेयभवगदं । जीवाणं पुण्णपावकम्मफळं ॥
उदउदीरणसंकम- । बंधे मोख्खे य विचिणादि ॥ १३ ॥

अर्थ— बहुरि विपाकविचय धर्मध्यानविषैं जीवानिकै एकभवतैं तथा अनेकभवनितैं प्राप्त भया पुण्यपापकर्मका फल तथा उदय उदीरणा संक्रमण बंध मोक्ष इनिकूं चिंतवन करै.

अह तिरियउड्ढळोए । विचिणादि सपज्जए ससंठाणे ॥
इत्थेव अणुगदाउ । अणुपेहाउ वि विचिणादि ॥ १४ ॥

अर्थ— संस्थानविचयधर्मध्यानमें अधोलोक तिर्यग्लोक ऊर्ध्वलोक पर्यायनिकरि सहित तथा संस्थानकरि सहित तिनकूं चिंतवन करै। अर संस्थानविचय धर्मध्यान-हीमैं द्वादशभावनाका चिंतवन करै ॥

अब द्वादशभावनाका कथन एकसो सत्तावन गाथानिमैं कहे हैं ॥ गाथा—

अद्धुवमसरणमेग- । त्तमण्णसंसारलोयमसुइत्तं ॥
आसवसंवरणिज्जर- । धम्मं वोधिं च चिंतिज्ज ॥ १५ ॥

अर्थ— १ अध्रुव, २ अशरण, ३ एकत्व, ४ अन्यत्व, ५ संसार, ६ लोक, ७ अशुचित्व, ८ आस्रव, ९ संवर, १० निर्जरा, ११ धर्म, १२ बोधि ये द्वादश भावना वारंवार चिंतवन करै ॥ भावार्थ— ये द्वादश भावना वैराग्यकी माता भग-वान् तीर्थंकरदेवनिकरि चिंतवन करी हुई समस्त जीवनिके हित करनेवाली, दुःखित जीवनिकूं शरणभूत, आनंद करनेवाली, परमार्थमार्गकूं दिखावनेवाली, तत्त्वनिका निश्चय करावनेवाली, सम्यक्त्व उपार्जन करावनेवाली, अशुभध्यानकूं नष्ट करने-वाली, कल्याणके अर्थीनिकूं नित्यही चिंतवन करना श्रेष्ठ है ॥ गाथा—

लोगो विलीयइ इमो । फेणो व सदेवमाणुसतिरिक्खो ॥
रिद्धीउ सव्वाउ । सुविणयसंदंसणसमाउ[1] ॥ १६ ॥

[1] स्वप्नसंदर्शनसमाः ॥

अर्थ— देव मनुष्य तिर्यंचनिकरि सहित यो लोक फेन जो झाग तिसकीनांई विलय होय है । अर समस्त ऋद्धि हैं ते स्वप्नके दर्शनसमान हैं ॥ भावार्थ– जैसैं जलके झाग वा बुदबुदा देखतैं देखतैं विलाय जाय है; तैसैं देवनिका देह तथा मनुष्यतिर्यंचनिके देहहू क्षणमात्रमें विलय होय हैं । अर समस्त ऋद्धि संपदा राज्य विभव एक क्षणमें ऐसैं विनसे हैं, जैसैं स्वप्नमें देख्या हुवा बहुरि नही दीखै ॥ गाथा–

विज्जूव चंचलाइं । दिट्ठपणट्ठाइं सव्वसोक्खाइं ॥
जलबुब्बुदंव अधुवा- । णि हुंति सव्वाणि ठाणाणि ॥ १७ ॥

अर्थ— समस्त इंद्रियजनित सौख्य विजुलीवत् चंचल है । जैसैं विजुली पूर्वै दीखै बहुरि नष्ट होजाइ, फिर नही दीखै; तैसैं इंद्रियनिके विषयजनित सुख नष्ट हुवा पाछै बहुरि नही दीखे है । अर समस्त ग्राम नगर गृह मकान जलके बुदबुदेकीनाई अस्थिर हैं । यातैं यह मेरा स्थान है, यह मेरा गृह है, मै इहां वसूं हूं, ये मेरे विषय हैं इंद्रिय हैं, ऐसा संकल्प मति करो । समस्त इंद्रपणा चक्रीपणा विनाशीक जाणि अपना ज्ञानदर्शनस्वरूपमें आपा धारण करो ॥ गाथा–

णावागदा व बहुगइ- । पधाविदा हुंति सव्वसंबंधा ॥
सव्वेसि आसया वि य । अणिच्च जह अब्भसंघायं ॥ १८ ॥

अर्थ— समस्त संबंध कैसे हैं? जैसैं एक नावमैं अनेकदेश अनेकग्रामके पुरुष सामिल होइ बैठे, बहुरि नाव तीरां लागै तदि उतरि नानामार्गकूं प्राप्त होय हैं, तैसैं समस्त कुटुंबके एककुलरूप नावमें सामिल होइ बहुरि आयुके अंतविषैं नानागतिनिकूं प्राप्त होय हैं! बहुरि जिस स्वामी, सेवक, पुत्र, स्त्री, भ्रातानिकै आश्रय होयकरिकै जीवना चाहे है, ते समस्त आश्रय बादलेनिके समूहकीनांई अनित्य हैं–विनाशीक हैं·

संवासो वि अणिच्चो। पहियाणं पिंडणं व छाहीए ॥
पीदी वि अत्थि रागो। व अणिच्चा सव्वजीवाणं ॥ १९ ॥

अर्थ— बंधुजन तथा मित्र तथा परिवारके जननिकरि सहित वसना है सो अनित्य है। जैसैं मार्गमें पथिकनिका समूह एक वृक्षकी छायाकूं प्राप्त होइ बहुरि अपने अपने ग्रामकूं वा अपने अपने मार्गकूं उठि जाय है–बहुरि मिलना नही होय है; तैसैं कुटुंबके जन मित्रजनहू एककुलमें एकगृहमें आइ वसे हैं बहुरि अपनी अपनी गतिनिकूं प्राप्त होय हैं–बहुरि नही मिले हैं। बहुरि समस्तजनांकी प्रीतिहू नेत्रनिका रागकीनांई अनित्य है॥ भावार्थ- समस्तलोकनिकी प्रीति एक मुतलबकी है, क्षणमात्रमें पलटै है। जैसैं नेत्रनिमें रक्तता एकक्षणमात्रमें पलटै है, तैसी संसारकी प्रीति जाननी ॥ गाथा–

रत्तिं एकम्मि दुमे। सउणाणं पिंडणं व संजोगो ॥

परिवेसो व अणिच्चो। इस्सरियाणाधणारोग्गं ॥ १७२० ॥

अर्थ— जैसैं सूर्यके अस्तसमयविषैं एकवृक्षविषैं अनेक पक्षी इकट्ठे होइ वसे हैं, उनका ऐसा संकेत परस्पर नहीं है– जो, "अपनेतांई इस वृक्षविषैं सामिल रहना" विनासंकेतही अनेकदेशनिके आइ प्राप्त होय हैं, प्रातःकाल नानादेशनिकूं गमन करे हैं; तैसैं संकेतविनाही अनेकगतिनितैं आया कुटुंबीनिका संयोग होय है, वहुरि मरणकूं प्राप्त होइ त्रसस्थावरादि अनेक योनिस्थानकूं प्राप्त होय हैं॥ बहुरि जैसैं चंद्रमासूर्यका कुंडाला होइ विनासि जाय है; तैसैं ऐश्वर्य तथा आज्ञा तथा धन तथा नीरोगपणा विनासि जाय है ॥ गाथा–

इंदियसामग्गी वि अ-। णिच्चा संझा व होइ जीवाणं ॥
मज्झण्णं व णराणं। जोव्वणमणवट्ठियं लोए ॥ २१ ॥

अर्थ— जीवनिके इंद्रियनिकी सामग्रीहू संध्याकालकी लालीकीनांई अनित्य है। क्षणमात्रमें नेत्र नष्ट होइ अंधा होय है, कर्ण नष्ट होइ बधिर होय है, जिव्हा थकि जाय है, हस्तपाद रुकि जाय है। अर लोकविषैं जैसैं मध्यान्हकी छाया टलि जाय है; तैसैं यौवन मनुष्यनिकै थिर नहीं है ॥ गाथा —

चंदो हीणो व पुणो। वड्ढदि एदि य उदू अदीदो वि ॥

ण दु जोव्वणं णियत्तइ । णदीजलमदच्छिदं चेव ॥ २२ ॥

अर्थ— जगतमें कृष्णपक्षमें हीन भया जंद्रमा तो शुक्लपक्षमें बहुरि वृद्धिकूं प्राप्त होय है; अर नक्षत्र अस्त भयाहू बहुरि उदय होय है; अथवा हिम शिशिर वसंत ऋतु इत्यादिक गई हुईहू बहुरि आवत हैं; परंतु यौवन गया हुवा "जैसैं नदीका जल गया हुवा नही बाहुडै तैसैं" नहीं आवे है ॥ गाथा—

धावदि गिरिणदिसोदं । व आउगं सव्वजीवलोगम्मि ॥
सुकुमालदा वि हायदि । लोगे पुव्वण्हछाही व ॥ २३ ॥

अर्थ— समस्त जीवलोकमें आयु ऐसैं निरंतर जाय है— जैसैं पर्वतकी नदीका प्रवाह दौडे है। अर देहकी सुकुमारताहू ऐसैं नष्ट होय है— जैसैं पूर्वाह्णकालकी छाया क्षणमें घटे है ॥ गाथा—

अवरण्हरुक्खछाही । व अट्ठिदं वड्ढदे जरा लोगे ॥
रूवं पि णासइ लहुं । जले व णिहिदल्लयं रूवं ॥ २४ ॥

अर्थ— जैसैं अपराह्णकालमें वृक्षकी छाया अथिर जैसैं होय तैसैं लोकमें वृद्धिनैं प्राप्त होय है; तैसैं जरा क्षणक्षणमें वृद्धिनैं प्राप्त होय है ॥ बहुरि कैसी है जरा? जिसनैं आवते संते जैसैं जलमें लिख्या रूप शीघ्र विनशि जाय है; तैसैं पुरुषका

रूप शीघ्र विनसे है ॥ भावार्थ— कैसीक है जरा ? सुंदररूपही जो कूंपल तिनकूं दग्ध करनेकूं दावाग्निसमान है। अर सौभाग्यरूप पुष्पनिके नष्ट करनेकूं गडेनकी वृष्टिसमान है। अर स्त्रीनिकी प्रीतिरूप हरिणीकै भक्षण करनेकूं व्याघ्रसमान है। ज्ञाननेत्रकै मुद्रित करनेकूं धूलीकी वृष्टिसमान है। अर तपरूप कमलनिके वनकूं नष्ट करनेके अर्थि हिमानीका पतनसमान है। दीनता उत्पन्न करनेकी माता है। तिरस्कारकै वधावनेकूं धाईसमान है। अर मृत्युकी दूती है। भयकी प्यारी सखी है। ऐसी जरा लोकनिके मध्य विस्तरे है ॥ गाथा—

तेउ वि इंदधणुते- । जसण्णिहो होइ सव्वजीवाणं ॥
दिट्ठपणट्ठा बुद्धी । वि होइ उक्का व जीवाणं ॥ २५ ॥

अर्थ— समस्तजीवनिका तेज है सो इंद्रधनुष्यका तेजसमान है। जैसें इंद्रधनुष्यका नानारंगनिका तेज प्रकट होइ क्षणमात्रमें विनसे है; तैसें जीवनिका तेज विनासीक जानना। जीवनिकी बुद्धि है सो बीजलीकीनांई प्रकट होयकरि नष्ट होय है ॥ गाथा—

आदिवडइ वलं खिप्पं । रूवं धूलीकदं व रत्थाए ॥
वीची व अध्दुवं वी- । रियं पि लोगम्मि जीवाणं ॥ २६ ॥

अर्थ— बहुरि बल है सोहू जैसें नगरकी गलीमें धूलीकरिकैं बणाया पुरुषका आकार

सो विनसि जाय; तैसें शीघ्र पतननैं प्राप्त होय है। अर लोकविषैं जीवोंका वीर्य
जलमें लहरीकीनांई अथिर है ॥ गाथा—

हिमणिचउ व्व गिहसय- । णासणभंडाणि होंति अधुवाणि ॥
जसकित्ती वि अणिच्चा । लोए संज्झब्भरागो व ॥ २७ ॥

अर्थ— लोकके विषैं गृह, शय्या, आसन, भांड, आभरणादिक समस्त हिमनिचय
जो पालका समूह ताकीनांई अथिर हैं ॥ अर लोकमें पसरी कीर्ति है सोहू संध्याकी
लालीकीनांई विनाशीक है ॥ गाथा—

किह दा सत्ता कम्मव- । सत्ता सारदियमेहसरिसमिणं ।
ण मुणंति जगमणिच्चं । मरणभयसमुच्छिया संता ॥ २८ ॥

अर्थ— मरणके भयतैं व्याप्त भये संते अर कर्मके वशकरिकै पीडित ऐसे संसारी
प्राणी इस जगतकूं शरत्का मेघसमान कैसें अनित्य नही जाणत हैं? इहां औरहू
विशेष कहिये हैं— इस जगतमें जेते पदार्थ नेत्रनिकै गोचर देखीये हैं, ते समस्त वि-
नसेंगे। शरीर है सो रोगनिकरि व्याप्त है, ऐश्वर्य विनाशकरि सहित है, इस संसा-
रमें बलभद्र-नारायणका ऐश्वर्य क्षणमात्रमें नष्ट होगया, जिनकी देवनिकरि रची
द्वारावती नगरी नष्ट होती भई, औरनिकी कहा कथा? लक्ष्मी विनाशकरि सहित

जानहू, जीवन मरणकरि सहित है, अर स्त्री पुत्र मित्र कुटुंबादिकनिके जेते संयोग हैं तिनका वियोग निश्चयतैं होयगा, जैसैं इंद्रधनुष्य तथा विजुलीका चमत्कार क्षणभंगुर है तैसैं समस्तसंबंध क्षणभंगुर जानहू ॥ देह बण्या नही रहेगा, बल वीर्य नष्ट होयगे, इंद्रिय विनाशकूं प्राप्त होयगी, तातैं जितनैं इंद्रियबल नष्ट नही होइ अर जरा देहकूं जर्जरा नही करै, तितनैं परमधर्ममें यत्नकरि अपना हित करना श्रेष्ठ है ॥

या लक्ष्मी बडे पुण्यवान् चक्रवर्त्ती तिनकै स्थिर नही रही, तो अन्य रंकनिकी कहा कथा? अतिबलवान्हू मरणरहित नही होय है। नानाप्रकारके भोजनकरि पोषतैं पोषतैंहू शरीर नष्ट होयहीगा। अर ये भोग हैं ते काले नागके फणसमान भयंकर दुर्गतिके दुःख उपजावनेवाले हैं, तोहू थिर नही हैं। अर यो देह स्त्री, पुत्र, मित्र, बांधव अवश्य नष्ट होयगे; तो इनके अर्थि इस लोकमें वृथा पापबंधकरि नरकमें गमन करना श्रेष्ठ नही। स्त्री पुत्र मित्रादिक किसीके लार परलोक जाय नही, अपने उपार्जन कीये शुभाशुभ कर्म साथी हैं, तातैं अनित्यभावना भावहू ॥

अर ये जाति कुल देश नगर देहकी लारही वियोगनैं प्राप्त होयगे, जातिकुलमें आपा धारो सो पर्यायकी लैरही विनसे है। इस मनुष्यशरीरकै दोऊ लोकमें कल्याण-कार्य करो, अर लक्ष्मी परके उपकारनिमित्त लगावो। या लक्ष्मी कोई कुलवानमें

रूपवानमें, बलवानमें, शूरवीरमें, कृपणमें, कायरमें, अकुलीनमें, पूज्यमें, धर्मा
त्मामें, पराक्रमीमें, अधर्मीमें कहूँमें नही रमे है, पूर्वजन्ममें जे पुण्य कीये तिनकै
प्राप्त होई, बहुरि मद उपजाय पापनिमैं प्रवृत्ति कराय दुर्गतिगमन करावनेवाली है।
तातैं उत्तम मध्यम जघन्य पात्रनिके दानतैं तथा सप्तक्षेत्रनिमैं लगाईके सफल करहू।
अर यौवन रूप पायकरिकैं दृढ शीलव्रत पालहू। बल पाइकरिकैं क्षमा ग्रहण करो।
ऐश्वर्य पायकरिके मदरहित होई विनयवान् होहू। संयोग पाइ वैराग्यभावना
भावहू ॥ ऐसैं अनिमित्यभावना वर्णन करी ॥ अब अशरण भावना अठारह
गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

णासदि मदी उदिण्णे। कम्मे ण य तस्स दीसदि उवाउ ॥
अमदं पि विसं सत्थं। तणं पि णीया वि हुंति अरी ॥ २९ ॥

अर्थ— अशुभकर्मकी उदीरणा होता संता बुद्धि नष्ट होय है, कर्मका उदयकूं
आवतैं एकहू कोऊ उपाय नही दीखे है, अमृतहू विष होई परिणमे है, तृणहू शस्त्र होई
परिणमें है, अर अपने निजमित्रहू वैरी होई परिणमे हैं, प्रबल उदय होतैं बुद्धि
विपर्यय होई आपही अपने घातके कर्म करे है ॥ गाथा—

मुक्खस्स वि होदि मदी। कम्मोवसमे य दीसदि उवाऊं ॥

णीया अरी वि सत्थं । पि तणं अमयं च होदि विसं ॥ १७३० ॥

अर्थ— बहुरि जब अशुभकर्मका उपशम होइ तब मूर्खकैहू प्रबल बुद्धि प्रकट होइ है अर अनेक उपाय सुखकारी दीखे हैं, अर वैरीहू अपना मित्र होय है, अर शस्त्रहू तृणसमान होय है, अर विषहू अमृत होइ परिणमे है—अशुभकर्मका उपशम होय तदि समस्त उपद्रवकारी वस्तुहू सुखकारी होइ परिणमे हैं ॥ गाथा—

पावोदएण अत्थो । हत्थं पत्तो वि णस्सदि णरस्स ॥
दूरादो वि सपुण्ण- । स्स एदि अत्थो अयत्तेण ॥ ३१ ॥

अर्थ— इस जगतमें मनुष्यकै पापका उदयकरि हस्तमें प्राप्त भयाहू जो अर्थ कहिये धन, सो नाशकूं प्राप्त होय है। अर पुण्यवान् पुरुषकै पुण्यकर्मके उदयकरि विनायत्नही अतिदूरतैं धन आय प्राप्त होय है ॥ भावार्थ— लाभांतरायका क्षयोपशम होय तदि जतनविनाही अनेक दूरि क्षेत्रतैंहू अचिंत्य धन आय प्राप्त होय है। अर जब लाभांतराय तथा असाताकर्मका तीव्र उदय होय, तब बडे जतनकरि रक्षा करतै करतैहू हस्तमें धऱ्या धनहू नष्ट होय है ॥ गाथा—

पावोदयेण सुट्ठु वि । चिट्ठंतो कोइ पाउणदि दोसं ॥
पुण्णोदएण दुट्ठु वि । चिट्ठंतो कोवि लहदि गुणं ॥ ३२ ॥

कोऊ रोकनेवाला नही है। कर्मके सहकारीकारण बाह्यनिमित्त प्राप्त भये पीछे कर्मके उदयकूं करनेमें कोऊ देव दानव मनुष्यादिक समर्थ नही है ॥ गाथा–

रोगाणं पडिगारो । दिट्ठो कम्मस्स णत्थि पडिगारो ॥
कम्मं मलेदि हु जगं । हत्थी व णिरंकुसो मत्तो ॥ ४१ ॥

अर्थ— रोगनिका प्रतीकार जो इलाज सो जगतमें देखिये है अर कर्म उदय आया ताका इलाज नही देखिये है ॥ भावार्थ– रोगनिका इलाज तौ औषधादिक जगतमें बहुत हैं। परंतु कर्मके उदयकूं रोकनेवाला कोऊ औषध मंत्रतंत्रादिक जगतमें नही है ॥ जैसैं निरंकुश मदोन्मत्त हस्ती कमलिनीके वनकूं दलमले है; तैसैं कर्मका उदय जगतके जीवनिकूं दलमले है ॥ गाथा–

रोगाणं पडिगारो । णत्थि य कम्मे णरस्स समुदिण्णे ॥
रोगाणं पडिगारो । होदि हु कम्मे उवसमंते ॥ ४२ ॥

अर्थ— मनुष्यकै असातावेदनीयकर्मकी उदीरणा होय तदि रोगनिका इलाज नही होय है, जिसकाल असातावेदनीयकर्मका उपशम होय, तिसकाल औषधादिक-निकरि रोगका इलाज होय है ॥ गाथा–

विज्जाधरा य बलदे- ॥ ववासुदेवा य चक्कवट्टी वा ॥

अर्थ— पापकर्मका उदयकरि सुंदर प्रवृत्ति करताहू कोऊ पुरुष दोषकूं प्राप्त होय है। अर पुण्यउदयकरि कोऊ पुरुष दुष्ट चेष्टा करतोहू गुणनिकूं प्राप्त होय है॥ भावार्थ— अयशस्कीर्ति नामा कर्मका उदय आवै तदि सुंदरचेष्टा करताहू अपवादकूं प्राप्त होय है। अर यशस्कीर्तिकर्मका उदय होय तदि दुष्टताके कार्य करतेहू जगतमें गुण विख्यात होय हैं॥ गाथा—

पुण्णोदएण कस्सइ। गुणे असंते वि होइ जसकित्ती॥
पाउदएण कस्सइ। सगुणस्स वि होइ जसघाउ॥ ३३॥

अर्थ— पुण्यके उदयकरिकै कोऊकै गुण नही होतेहू जगतमें जसकीर्ति प्रकट होय है अर गुणसहितहू कोईकै पापके उदयकरिकै जसका नाश होइ अपजस प्रकट होय है॥

णिरुवक्कमस्स कम्म-। स्स फले समुवट्ठिदंमि दुक्खंमि॥
जादिजरामरणरुजा-। चिंताभयवेदणादीए॥ ३४॥
जीवाण णत्थि कोई। ताणं सरणं च जो हविज्ज इदं॥
पायालमदिगदो वि य। ण सुच्चइ सकम्मउदयम्मि॥ ३५॥

अर्थ— उदय आयेपाछे जिसका इलाज नही ऐसा कर्मका फल जो जन्म जरा मरण रोग चिंता भय वेदना दुःख इनकूं प्राप्त होतै जीवनिकै कोऊ रक्षा करनेवाला

देविंदा वि ण सरणं। कस्सइ कम्मोदए होंति ॥ ४३ ॥

अर्थ— अशुभकर्मका उदय होइ तब विद्याधर बलदेव वासुदेव चक्रवर्ती तथा देवेंद्रहू कोऊकै शरण नही हैं-रक्षक नही हैं। अशुभकर्मका उपशम होइ तथा पुण्यकर्मका उदय होइ तदि समस्त रक्षक होइ हैं॥ गाथा–

वोलिज्ज चंकमंतो। भूमिं उदधिं तारिज्ज पवमाणो॥
ण पुणो तीरदि कम्म-। स्स फलमुदिण्णस्स वोलेदुं ॥ ४४ ॥

अर्थ— गमन करता पुरुष भूमीकूं उलंघन करै अर तिरनेवाला पुरुष समुद्रकूं उलंघन करै; परंतु उदीरणाकूं प्राप्त भया जो कर्मका फल, ताहि तिरिवेकूं वा उलंघन करनेकूं कोऊ नही समर्थ होय है॥ भावार्थ– जगतमें पृथ्वी अर समुद्र दोइ वडे हैं, सो जगतमें ऐसेऐसे पुरुषार्थी हैं, जो समुद्रपर्यंत पृथ्वीके अंतकूं प्राप्त होय हैं अर समुद्रकूं तिरि पैलीपार होजानेवालेभी हैं; परंतु कर्मके उदयकूं उलंघन करनेवाले नही हैं॥

सीहतिमिंगिलगिलिद-। स्स मउ मच्छो व णत्थि जह सरणं॥
कम्मोदयेण जीव-। स्स णत्थि सरणं तहा कोइ ॥ ४५ ॥

अर्थ— जैसैं वनकेविषैं सिंहकरि गिल्या जो हरिण अर जलविषैं तिमिंगिलमत्स्यकरि गिल्या जो छोटा मत्स्य, तिनकूं कोऊ शरण नही है, तैसैं कर्मके उदयकरि

ग्रस्या जीवकै कोऊ शरण नही है ॥ गाथा—

दंसणणाणचरित्तं । तवो य ताणं च होइ सरणं च ॥
जीवस्स कम्मणासण- । हेदुं कम्मे उदिण्णम्मि ॥ ४६ ॥

अर्थ— इस जीवकै कर्मकी उदीरणा होतै कर्मका नाश करनेकूं कारण दर्शन ज्ञान चारित्र तप रक्षक-शरण होय है, और कोऊ शरण नही है। जातैं इस संसारमें स्वर्गलोकका इंद्रका नाश होइ ओरनिकी कहा कथा है? जो अणिमादिक ऋद्धीनिके धारक समस्तस्वर्गलोकके असंख्यात देव मिलिकरिकै अपना स्वामी इंद्रकूंही रक्षा नही करिसके, तदि अन्य अधम व्यंतरादिक देव ग्रह यक्ष भूत योगिनी क्षेत्रपाल चंडी भवानी इत्यादिक असमर्थ देव जीवकी रक्षा करनेमें कैसे समर्थ होयगे? जो मनुष्यनिकी रक्षा करनेमें कुलदेवी मंत्र तंत्र क्षेत्रपालादिक समर्थ होइ, तो जगतमें मनुष्य अक्षय होइ जाय। तातैं जो अपनी रक्षा करनेमें शरण ग्रह भूत पिशाच योगिनी यक्षनिकूं मानै हो, सो दृढ मिथ्यात्वकरि मोहित हैं। जातैं आयुका क्षयकरिकैं मरण होय है अर आयु देनेमें कोऊ देव दानव समर्थ नही, तातैं मरणकी रक्षा करनेमें कोऊकूं सहायी माने है सो मिथ्यादर्शनका प्रभाव है। जो देवही मनुष्यनिकी रक्षा करनेमें समर्थ होइ, तो आपही देवलोककूं कैसैं छांडे? तातैं परमश्रद्धानकरिकैं ज्ञान दर्शन चारित्र तपका परम शरण

ग्रहण करो। संसारमें भ्रमण करतेकै कोऊ शरण नही है। इस जगतमें आपही आ-
पका रक्षक है अर उत्तम क्षमादिकरूप आपके आत्माकूं परिणमावता आपही आपका
रक्षक होय है। अर क्रोध मान माया लोभरूप परिणमन करता आपकूं आप घाते
है। तातैं अपना रक्षक अर नाशक अपना आपही है॥ ऐसैं अशरणभावना वर्णन
करी॥ अब एकत्वभावना सात गाथानिकरि कहे हैं॥ गाथा—

पावं करेदि जीवो। वंधवहेदुं सरीरहेदुं च॥
णिरयादिसु तस्स फलं। एक्को सो चेव वेदेदि॥ ४७॥

अर्थ— यो जीव बांधव जो कुटुंब ताके निमित्त वा शरीरकी पालनाके निमित्त
पापकर्म करे है, बहु आरंभ बहुपरिग्रहमें लीन होइ ऐसा पापबंध करे है। तिसका
फल नरकादिक कुगतिमैं एकाकी महादुःख आप भोगे है॥ गाथा—

रोगादिवेदणाउ। वेदयमाणस्स णिययकम्मफलं॥
पेच्छंता वि समक्खं। किंचिवि ण करंति से णियया॥ ४८॥

अर्थ— अपने कर्मका फल जो रोगादिक वेदना तिनकूं भोगता जीवकै अपना
निजमित्र कुटुंबादिक प्रत्यक्ष देखताहू किंचित् दुःख दूरि नहीं करिसके हैं! तो परलो-
कमें कौन सहायी होयगा? एकाकी नरकादिकनिमैं कर्मका फलकूं भोगेगा॥ गाथा—

तह मरइ एक्कउ चे-। व तस्स ण वि विज्जउ हवइ कोई ॥
भोगे भोत्तुं णियया। विंदिज्जया ण पुण्णकम्मफलं ॥ ४९ ॥

अर्थ— अपने आयुका अंत होते एकाकी मरण करे है, मरणकूं रोकि मरणतैं रक्षा करनेवाला कोऊ दूजा सहायी नही होय है, भोगानिनैं भोगवेकू कुटुंबके तथा स्त्री पुत्र मित्रादिक सहायी होय हैं, अर अशुभकर्मके फल भोगनेमैं कोऊ अपना सहायी नही होय है ॥ गाथा-

णीया अत्था देहा-। दिया य संगा ण कस्स इह होंति ॥
परलोगं मुणिंणता। जदि वि दइत्तंति ते सुट्ठु ॥ १७५० ॥

अर्थ— परलोकप्रति गमन करते जीवके स्त्री पुत्र मित्र धन देहादिक परिग्रह कोईहू अपना नही होय हैं। यद्यपि ते स्त्रीपुत्रादिक आपकूं अत्यंत चाहे हैं-संबंधकी अत्यंत वांछा करे हैं, तथापि निरर्थक हैं ॥ गाथा-

इहलोगबंधवा ते। णियया ण परम्मि होंति लोगम्मि ॥
तह चेव धणं देहो। संगा सयणासणादी य ॥ ५१ ॥

अर्थ— इस लोकमें जे बांधव मित्रादिक हैं, ते परलोकविषैं बांधव मित्रादिक नही होइ हैं; तैसैंही धन, शरीर, परिग्रह, शय्या, आसन, महल, मकान परलोकमें अपना

नहीं होइगे। इस देहके संबंधी इस देहका नाश होतैं समस्त संबंध छूटैगे। परलोकप्रति कोऊ स्त्री पुत्र मित्र सेवकादिक संबंधी परलोकमें संबंध करनेकूं नहीं जायगे। महल मकान राज्य संपदाका संबंध इहांही है। पुण्यपाप लीये परलोकप्रति एकाकी गमन करेगा। तातैं संबंधीनितैं ममता करि परलोक बिगाडना महान् अनर्थ है॥ गाथा–

जो पुण धम्मो जीवे-। ण कदो सम्मत्तचरणसुदमइउं॥
सो परलोए जीव-। स्स होइ गुणकारकसहाउं॥ ५२॥

अर्थ— बहुरि इस जीवनैं जो सम्यक्त्व चारित्र श्रुतज्ञानका अभ्यासमय धर्म कीया है, सो परलोकमें जीवकै गुणकारक सहायी होय है। इस धर्मविना कोऊही अपना सहायी हितू नहीं है। धर्मके सहायतैं स्वर्गके महर्द्धिक देव, तथा अहमिंद्रपणा, इंद्रपणा, तीर्थंकरपणा, चक्रीपणा, सुंदरकुल, जाति, रूप, बल, विद्या, जगतमें पूज्यता ये समस्त धर्मके प्रसादतैं प्राप्त होय हैं॥ गाथा–

वद्धस्स वंधणे ण व। राउं देहम्मि होइ णाणिस्स॥
विससरिसेसु ण रागो। अत्थेसु महाभएसु तहा॥ ५३॥

अर्थ— जैसैं बंधननिकरि बंध्या पुरुषकै बंधनमें बंदिगृहमें राग नहीं है; तैसैं ज्ञानवंत पुरुषकै देहमें राग नहीं है। अर तैसैंही संसारमें अनंतवार मरण करावनेवाले तथा महाभ-

यके कारणतैं विषसमान जे धनसंपदा परिग्रहादिकनिमैं ज्ञानीके राग नही होय है। अनंतदुःखनिकरि भऱ्या जो संसाररूप वन तिसविषैं यो जीव एकाकी परिभ्रमण करे है अर अपना भावनिकरि उत्पन्न कीये कर्मनिका फल चतुर्गतिमैं एकाकी भोगे है, एकाकी नरकगमन करे है, एकाकी संकल्पके अनंतर उपजे दिव्यस्वर्गके सुखरूप अमृतकूं अनुभवे है। संयोगमें, वियोगमें, उत्पत्तीमैं, मरणमें, सुखमें, दुःखमें कोई इस जीवका मित्र नही है। अपना कीया आप एकाकी भोगे है। अर जो धन स्त्री पुत्र मित्र कुटुंबादिकके अर्थि निंद्यकर्म करे है, तिनका फल नरकादिकगतिनिमैं एकाकी आप दुःख भोगे है। इसके धनादिक भोगनेमें सहायी होय हैं अर पापकर्मतैं उत्पन्न भये कष्ट तिनके भोगनेमें कोऊ सहायी नही होय है। तातैं भो आत्मन्! अपना एकाकीपना कैसैं नही देखो हो? जो जन्ममरणादिक प्रत्यक्ष अनुभवमें आवे है। अर जो मोहतैं चेतन अचेतन पदार्थनिकरि अपनी एकता माने है सो अपने आत्माकूं दृढकर्मबंधनतैं अपना भूलिकरि बांधे है। जिसकाल भ्रमरहित हुवा अपना एकाकीपणा अवलोकन करेगा; तिसकाल कर्मबंधका अभावकरि शुद्धस्वरूपकूं प्राप्त होयगा। अर अपना स्वरूपके भूलनेतैं जिसका ज्ञाननेत्र मुद्रित भया, सो कर्मनिके वशि पड्या हुवा दीर्घकाल संसारमें परिभ्रमण करे है। एकाकी उपजे है, एकाकी विनसे है, एकाकी गर्भके

दुःख भोगे है, एकाकी निर्धनपणा बालपणा वृद्धपणा नीचपणा समस्त भोगे है। समस्त स्वजन देखे हैं, तौहू कोऊ दुःखका लेशहू नहीं वटाइ सके हैं। ऐसें जानताहू देहकुटुंबादिकनिमैं मूढ ममत्व नही छांडे है। इस जीवका रक्षक सहायी एक दशलक्षण धर्म जानहु और नाहि॥ ऐसें एकत्वभावना वर्णन करी॥

अब अन्यत्वभावना चौदह गाथानिकरि कहे हैं॥ गाथा—

किह दा जीवो अण्णो। अप्पणं सोयदि हु दुक्खियं णीयं॥
ण य वहुदुक्खपुरक्कड-। मप्पाणं सोयदि अवुद्धी॥ ५४॥

अर्थ— परपदार्थनितैं भिन्न जो जीव, सो अन्य जो अपनी जातिके दुःखित कुटुंबी जन तिनकूं कैसें शोच करे है? इसभांति अपना शोच नही करे है। जो, मैं अनादिकालतैं शरीरसंबंधी अर मनसंबंधी अनंतदुःख भोगे अर आगानैं द्रव्य क्षेत्र काल भावका सहायतैं उदय आवता असातावेदनीय कर्म तिसकरि अनंतकाल अनंतदुःख भोगऊंगा! मेरा दुःख दूरि होनेका कहा इलाज है?॥ भावार्थ— अज्ञानी अन्य जे स्त्री पुत्र कुटुंबादिक तिनकूं दुःखी देखि रागभावतैं अतिशोच करे है, अर अपना नरक तिर्यंच गतिमैं पतन नजीक आया तिसका शोच नही करे है, जो, मोकूं अब कहा करना? कैसें संसारके दुःखनितैं दूरि होय आत्माधीन निराकुलतालक्षण

सुखकूं प्राप्त होहूं? ऐसा विचार अज्ञानी नहीं करे हैं ॥ गाथा—

संसारम्मि अणंते १ सगेण कम्मेण हीरमाणाणं ॥ १ आकृष्यमाणानां

को कस्स होइ सयणो । सज्जइ मोहा जणम्मि जणो ॥ ५५ ॥

अर्थ— पंचपरिवर्तनरूप जो अनंतसंसार तिस संसारमें अपने कर्मके वशतें परिभ्रमण करते जीवनिके मध्य कोऊका कोऊ स्वजन नहीं है। मोह जो मिथ्यात्वभाव तिसकरिकै लोकनिमैं लोक आसक्त होइ रहे है। जो, यह मेरा पुत्र है, भ्राता है, स्त्री है, मित्र है, स्वामी है, सेवक है। कोऊ कोऊका नहीं, समस्त अन्य अन्य हैं, समस्त संबंध कर्मजनित हैं, विषयकषायके पुष्ट करनेकूं हैं, विनाशीक हैं, अपने अपने रागद्वेष पुष्ट करनेकूं हैं ॥ गाथा—

सव्वो वि जणो सयणो । सव्वस्स वि आसि तीदकालम्मि ॥

एंते य तहा काले । होहदि सयणो जणस्स जणो ॥ ५६ ॥

अर्थ— अनंतकाल व्यतीत भया, तिसमें समस्त जीवनिका समस्त जीव अनंतवार स्वजन भये हैं अर आगानैं अनंतवार जनांके जन स्वजन होइगे। तातैं कौन कोनमें स्वजनपणाका संकल्प करेगा? जे अबार स्वजन मित्र दीखे हैं, ते पूर्वे अनंतवार तेरे घात करनेवाले शत्रुपणाकूं प्राप्त भये हैं अर जे अबार शत्रु दीखे हैं, ते अनेकवार

तेरे हितकारी मित्र भये हैं अर आगै ऐसेही होयगे। तातैं इनमें रागद्वेष बुद्धि करि आपका घात मति करो। समस्त अन्य अन्य हैं ॥

रत्तिं रत्तिं रुक्खे। रुक्खे जह सउणयाणं संगमणं ॥
जादीए जादीए। जणस्स तह संगमो होइ ॥ ५७ ॥

अर्थ— जैसें रात्रिरात्रिविषैं वृक्षवृक्षमें अनेक पक्षीनिका संयोग होय है; तैसें लोककै जन्मजन्ममें अनेक प्राणीनिका संयोग होय है। जैसें पक्षी रात्रि होइ तब वृक्षका आश्रयविना तिष्ठवेकूं असमर्थ हैं, अपने योग्य वृक्षकूं प्राप्त होइ रात्रि व्यतीत करि प्रातःकाल देशांतरनैं गमन करे हैं; तैसें संसारी प्राणीहू समस्त आयुके निषेक गालि जाय तदि पूर्वशरीरकूं त्यागि अन्यशरीरकूं ग्रहण करि नवीन नवीन स्वजन संबंधीनिकूं ग्रहण करे हैं ॥ गाथा—

पहिया उवासइ जह। तहिं तहिं अल्लियंति ते य पुणो ॥
छंडित्ता जंति णरा। तह णीयसमागमा सव्वे ॥ ५८ ॥

अर्थ— जैसें अनेक देश अनेक ग्रामनगरके निवासी पथिकजन एक आश्रमस्थानमें रात्रि आय वसे हैं, पश्चात् प्रात भये आश्रमकूं त्यागि नानादेशनिकूं गमन करे हैं; तैसें अनेक योनीनितैं आया प्राणी एक कुलरूप आश्रममें सामिल होय हैं,

पाछै अपनी अपनी आयु पूर्ण करि अनेकगतीनिकूं प्राप्त होय हैं ॥ गाथा–

भिण्णपयडिम्मि लोए। को कस्स सभावदो पिउं होज्ज ॥
कज्जं पडि संबंधं। वालुयमुट्ठी व जगमिणमो ॥ ५९ ॥

अर्थ— भिन्नभिन्न प्रकृतीके धारक जे लोक तिनमें कोनका कोन स्वभावतैं प्रिय होय? नानास्वभावरूप लोकनिमैं स्वभाव मिल्याविना प्रीति होय नही अर स्वभाव मिलै नही। नानाजीवनिके नानाप्रकारके भिन्नभिन्न स्वभाव हैं। यातैं कोऊभी कोऊकै प्रिय नही होय है। समस्त जीवनिकै प्रयोजनप्रति संबंध है, कार्यके निमित्त-करिही संबंध है—कार्य नही होतैं कोऊ कोऊतैं प्रीतिका संबंध नही करे है। यो लोक वाल्रेतकी मुठीकीनांई संबंधकूं प्राप्त होय रह्या है। जैसैं भिन्नभिन्न है स्वभाव जिनके ऐसे वाल्रेतके कण जलादिक द्रवरूप द्रव्यके मिलापतैं संबंधकूं प्राप्त होय हैं, जलादिक द्रव्यका संयोग दूरि होतैं भिन्नभिन्न होइ विखरि जाय हैं; तैसैं संसारी जीवहू अपने अपने मुतलबके अर्थि कार्य विचारि प्रीति करे हैं, जिससैं आपना कुछहू कार्य सधता नही दीखै तिससैं प्रीति नही करे हैं, अपना अभिमान जिसतैं वधता जानै तो प्रीति करै। तथा धनके अर्थि, तथा धनवाननतैं आदर पावनेके अर्थि, तथा अपनी विख्यातता होनेके अर्थि, अथवा कोई वस्तूका लाभके अर्थि, वा अपनी बडाईके

अर्थि, अथवा अपना पूज्यपणा होनेके अर्थि, अथवा जसकीर्तीके अर्थि कोऊसूं प्रीति करे हैं। विनाकार्य कोऊकै स्वभावतैं प्रीति नही जाननी, समस्त अन्य अन्य हैं, कोऊका संबंधी कोऊही नही है, यह निश्चय करि परमैं प्रीति त्यागि अपना आत्महितमैं प्रीति करना उचित है ॥ गाथा–

माया पोसेइ सुयं। आधारो मे भविस्सदि इमुत्ति ॥
पोसेदि सुदो मादं। गब्भे धरिउं इमा इत्ति ॥ १७६० ॥

अर्थ— यो पुत्र मेरा आधार है, इसविना दुःख दरदमें तथा वृद्धअवस्थामैं अन्य कोऊ सहायी नहीं, इस अभिप्रायतैं पुत्रका पालन पोषण करे है। अर इस मातानैं मोकूं गर्भमें धाऱ्या है, इस अभिप्रायतैं पुत्र माताकी पोषणा करे है। अथवा माताकी पोषणा नही करूंगा तो जगतमें कृतघ्न कहाऊंगा, जगत निंदेगा, इस हेतुतैं पोषणा करे है॥

होऊण अरी वि पुणो। मित्तं उवकारकारणा होइ ॥
पुत्तो वि खणेण अरी। जायदि अवयारकरणेण ॥ ६१ ॥
तह्मा ण कोइ कस्सइ। सयणो व जणो व अत्थि संसारे ॥
कज्जं पडि हुंति जगे। णीया व अरी व जीवाणं ॥ ६२ ॥

अर्थ— वैरी होइकरिकै हू बहुरि उपकार करनेतैं मित्र होय है, जातैं जिसका

दानसन्मानादिक करियेगा, सो शत्रुहू अपना अत्यंत प्रियमित्र होयगा। बहुरि पुत्रहू वांछितभोग रोकनेकरि अपमान तिरस्कारादिक करनेकरि अपना क्षणमात्रमें शत्रु होयगा। तातैं कोऊ पुरुष कोऊका संसारमें शत्रु नही है वा वैरी नही है, कार्यप्रति शत्रुता मित्रता प्रकट होय है। स्वजनपणा, परजनपणा, शत्रुपणा, मित्रपणा, जीवनिकै स्वभावतैंही नही है; उपकार अपकारकी अपेक्षा मित्रपणा शत्रुपणा जानना। जातैं जगतके जीव विषयकषायके वशीभूत हैं। जिसतैं आपके पंचेंद्रियनिके विषय पुष्ट होता जानै, तथा अभिमान सधता जानै, परिग्रहकी धनकी वृध्दि जानै, तिसकूं मित्र जाने है। जिसतैं अपने विषय रुकता जानै, बिगडता जानै, अभिमान घटता जानै, ताहि वैरी जानि तीव्रवैर करे है। और वस्तुत्वकरि कोऊ शत्रुमित्र हैं नही। तातैं कोऊमैंही रागद्वेष करना उचित नही है॥ अब शत्रुमित्रका लक्षण कहे हैं॥ गाथा–

जो जस्स वट्टदि हिदे। पुरिसो सो तस्स वंधवो होदि॥
जो जस्स कुणदि अहिदं। सो तस्स रिवुत्ति णायव्वो॥ ६३॥

अर्थ— जिसका हितमें उपकारमें जो प्रवर्तै, सो तिसका बांधव है; अर जो जिसका अहित करे है, सो तिसका वैरी है; ऐसी जगतकी प्रवृत्ति है॥ अब वीतराग गुरु बांधवनिविषैं शत्रुपणा दिखावे हैं॥ गाथा–

णीया करिंति विग्घं । मुक्खब्भुदयावहस्स धम्मस्स ॥
कारिंति य अइवहुगं । असंजमं तिव्वदुक्खकरं ॥ ६४ ॥
णीया सत्तू पुरिस- । स्स हुंति जदि धम्मविग्घकरणेण ॥
कारेंति य अतिवहुगं । असंजमं तिव्वदुक्खयरं ॥ ६५ ॥

अर्थ— निज जे बांधव मित्रादिक हैं ते स्वर्गमोक्षके उदयकूं प्राप्त करनेवाले धर्ममें विघ्न करे हैं । अर हिंसा, झूंठ, चोरी, कुशील, परिग्रहमें, आसक्तनारूप असंयमकूं करावे हैं । कैसाक है असंजम? जो अतिमहान तीव्रदुःखका करनेवाला संसारमें डबोवनेवाला है; अभक्ष्यभक्षणमें रात्रिभोजनमें, कुशील सेवनेमें, बहु आरंभमें, बहुपरिग्रहमें प्रवृत्ति कराय अभिमान लोभादिकमें प्रवृत्ति कराय नरकादिकनिमें प्राप्त करे है । तातैं जे अपने निज हैं, ते शत्रु हैं, जो पुरुषके धर्मनें विघ्न करनेकरि अर अति-दुःख देनेवाला असंयम करावनेकरि अपने निजबांधव पुत्रमित्रादिक शत्रुगणाही प्रकट कीया, इससिवाय अन्य शत्रुपणा कहा होय है? ॥ गाथा—

पुरिसस्स पुणो साधू । उज्जोगं संजणांति जदि धम्मे ॥
तह दिव्वदुक्खकरणं । असंजमं परिहराविंति ॥ ६६ ॥
तह्मा णीया पुरिस- । स्स होंति साहू अणेयसुहहेदुं ॥

दकूं जाइ प्राप्त होय है। कैसीक है निगोद? जिसतैं अनंतकालपर्यंत निकलना कठिन है.

वहुतिवदुक्खसलिलं। अणंतकायप्पवेसपादालं ॥
चदुपरियट्टावत्तं। चदुगदिवहुपट्टणमणंतं ॥ ६९ ॥
हिंसादिदोसमगरा-। दिसावदं दुविहजीववहुमच्छं ॥
जाइजरामरणोदय-। मणेयजादीसदुम्मीयं ॥ १७७० ॥
दुविहपरिणामवादं। संसारमहोदधिं परमभीमं ॥
आदिगम्म जीवपोदो। भमइ चिरं कम्मभंडभरो ॥ ७१ ॥

अर्थ— ज्ञानावरणादिक कर्मरूप भांड वस्तु तिनकरि भऱ्या जे जीवरूप जिहाज, सो संसाररूप समुद्रकूं प्राप्त होइ, चिरकाल जो अनंतकालपर्यंत परिभ्रमण करे है। कैसाक है संसारसमुद्र? बहुत तीव्रदुःखही है जळ जामैं, अर अनंतकाय जो निगोदमैं प्रवेश करनाही है पाताला जामैं, द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप जे च्यारि परिवर्तन वा भवसहित पंचपरिवर्तनही है भवग जामैं, अर च्यारि गतिरूप है बहुत पट्टण जामैं, अर नही है अंत जाका, अर हिंसादिक दोपही हैं मगरादिक दुष्टजीव जामैं, अर त्रस स्थावर जीवही हैं मत्स्य जामैं, अर जन्म जरा मरणही है जल जामैं, अर अनेक जीतीनिके सैंकडेही हैं लहरी जामैं, अर दोयप्रकार परिणामही है पवन जामैं, अर

महाभयानक है हृदय जाका ऐसा संसारसमुद्रमें जीव अनंतकालपर्यंत भ्रमण करे है ॥

एगविगतियचउपंचिं- । दियाण जाउ हवंति जोणीउ ॥
सव्वाउ ताउ पत्तो । अणंतखुत्तो इमो जीवो ॥ ७२ ॥

अर्थ— एकेंद्रिय, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय जीवनिकी ये योनि हैं, ते समस्तयोनि संसारी जीव अनंतवार प्राप्त भया है ॥ गाथा–

अण्णं गिण्हदि देहं । तं पुण मुत्तूण गिण्हदे अण्णं ॥
घडिजंतो व य जीवो । भमदि इमो दव्वसंसारे ॥ ७३ ॥

अर्थ— यो जीव अन्यदेह ग्रहण करि बहुरि तिस देहकूं छांडिकरि अन्यदेह ग्रहण करे है। जैसें अरहटमें घटीजल रीता होइ बहुरि भरे है अर बहुरि रीता होइ बहुरि भरे है; तैसें द्रव्यसंसारविषैं एकदेह त्यागि अन्यदेह ग्रहण करे है, अन्यकूं त्यागि अन्य ग्रहण करे है ॥ ऐसें नवीन नवीन ग्रहण करते अर त्यागतें अनंतानंतकालमें अनंतानंतदेह ग्रहण कीये हैं अर त्यागे हैं ॥ गाथा–

रंगगदणडो व इमो । बहुविहसंठाणरूववण्णाणि ॥
गिण्हदि मुच्चदि य ठियं । जीवो संसारमावण्णो ॥ ७४ ॥

अर्थ— संसारकूं प्राप्त भयो यो जीव नृत्यके अखाडेकूं प्राप्त भया नटकीनांई बहुत-

प्रकार संस्थान वर्ण रूप स्थिरतारहित निरंतर ग्रहण करे है अर छांडे है ॥ गाथा–

जत्थ ण जादो ण मदो । ण हवदि जीवो अणंतसो चेव ॥
कालत्तीदम्मि इमो । ण सो पदेसो जए अत्थि ॥ ७५ ॥

अर्थ— जिस क्षेत्रका प्रदेशमें यो जीव नही उत्पन्न भयो अर अनंतवार नही मर्यो ऐसो जगतमें एकहू प्रदेश नही है । अतीतकालमें तीनसैं तीयालीस राजूमात्र लोकके समस्तप्रदेशनिमें अनंतानंतवार जन्म लीया है अर मरण कीया है ॥ गाथा–

तक्कालतदाकालस- । मएसु जीवो अणंतसो चेव ॥
जादो मदो य सव्वे- । सु इमोऽतीदम्मि कालम्मि ॥ ७६ ॥

अर्थ— यो जीव उत्सर्पिणी अर अवसर्पिणीके समस्तसमयनिविषैं अतीतकालमें अनंतवार जन्म लीया है अर अनंतवार मरण कीया है । ऐसा कोई कालका समय बाकी नही रह्या है, जिसमें इस जीवनें जन्ममरण नही कीया है ॥ गाथा–

अट्ठपएसे मुत्तू- । ण इमो सेसेसु सगपदेसेसु ॥
तत्तम्मि व अद्दहणं । उव्वत्तपरत्तयं कुणदि ॥ ७७ ॥

अर्थ— यो जीव मध्यके अष्टप्रदेशनिकूं छांडिकरिकैं शेष अपने आत्मप्रदेशनिविषैं तप्तजलरूप आधणके मध्य तिष्ठते तंदुलकीनांई उद्वर्तन परावर्तन करे है ॥ भावार्थ–

जीवके अष्टमध्यप्रदेशनिविना अन्य समस्तप्रदेश संकोचविस्तारनैं प्राप्त होइ ॥ गाथा—

लोगागासपएसा । असंखगुणिदा हवंति जावदिया ॥
तावदियाणि दु अज्झव- । साणाणि इमस्स जीवस्स ॥ ७८ ॥
अज्झवसाणट्ठाणं । तराणि जीवो वि कुवइ इमो हु ॥
णिच्चं पि जहा सरडो । गिण्हदि णाणाविधे वण्णे ॥ ७९ ॥

अर्थ— जितने असंख्यातगुणे लोकाकाशके प्रदेश हैं, तितने इस जीवके कर्मके बंध होनेजोग्य कषायनिके अर अनुभागके परिणामनिके स्थान हैं ॥ जैसें करकांट्या नानाप्रकारके रंग ग्रहण करे है; तैसें समयसमय परिणाम पलटे हैं, तातैं नवीननवीन अध्यवसाय जो परिणाम सो होय है ॥ गाथा—

आगासम्मि वि पक्खी । जले वि मच्छा थले वि थलचारी ॥
हिंसंति एक्कमिक्कं । सव्वत्थ भयं खु संसारे ॥ १७८० ॥

अर्थ— आकाशविषैं गमन करते पक्षीकूं तो अन्य पक्षी मारे हैं । जलमें गमन करते मत्स्यादिकनिकूं अन्यजलचर मत्स्यादिक मारे हैं । अर स्थलमें विचरते तिर्यंच-मनुष्यनिकूं स्थलचारी दुष्ट तिर्यंचमनुष्य मारे हैं । एक एककूं मारे हैं, तातैं संसारविषैं सर्वत्र समस्त स्थानानिमैं निरंतर भय जानना ॥ गाथा—

ससगो वाहपरद्धो । विलत्ति णाऊण अजगरस्स मुहं ॥
सरणत्ति मण्णमाणो । मच्चुस्स मुहं जह अदीदि ॥ ८१ ॥
तह अण्णाणी जीवा । परिद्धमाणा छुधादिवाहेहिं ॥
अदिगच्छंति महादुह- । हेदुं संसारसप्पमुहं ॥ ८२ ॥

अर्थ— जैसैं व्याध जो सिकारी मनुष्य तिसकरी उपद्रवकूं प्राप्त भया जो सुसा, सो फाड्या हुवा अजगरका मुखकूं बिल जाणि अर आपकै सरण मानता मृत्युका मुखमें प्रवेश करे है! तैसैं अज्ञानी जीव क्षुधा तृषा काम कोपादिककरि बाधाकूं प्राप्त भया महादुःखका कारण संसाररूप सर्पके मुखमें प्रवेश करे है। मिथ्यात्व विषयकषायनिमें प्रवेश करे है, सोही संसाररूप सर्पका मुख है, संसारमें निगोद प्रधान है, सो निगोदमें प्राप्त होइ अपने ज्ञान दर्शन सुख सत्तादिक भावप्राणनिका लोप करि जडरूप हुवा अनंतानंत काल व्यतीत करे है ॥ गाथा—

जावदियाइं सुहाइं । होंति लोगम्मि सव्वजीवेसु ॥
ताइं पि वहुविधाइं । अणंतखुत्तो इमो पत्तो ॥ ८३ ॥

अर्थ— लोकके विषैं समस्त चतुर्गतिके जीवनिविषैं जितने दुःख होय हैं, तितने बहुतप्रकारके दुःख अनंतवार यो जीव प्राप्त भया है। जगतमें ऐसा कोऊ दुःख

अर्थ— अतिशयकरिकैं संयम पालतोहू साधु विनादीया तृणमात्रहू ग्रहणकरिकै तृणवत् लघु होय है अर चोरकीनांई प्रतीतिरहित होय है ॥ भावार्थ- अत्यंत संयम पालतोहू साधु जो एक तृणभी विनादीयो ग्रहण करै तो तृणहूतैं अधिक निरादरयोग्य होय, जातैं संयमी तो अचौर्यादिक व्रतथकी पूज्य है अर जब विनादीया ग्रहण कीया तब चोरतैं अधिकही भया ॥ गाथा—

परळोगम्मि य चोरो। करेदि णिरयम्मि अप्पणो वसधिं ॥
तिव्वाउ वेयणाउं। अणुभवदि हि तत्थ सुचिरं पि ॥ ८७० ॥

अर्थ— बहुरि चोरी करनेवाला पुरुष परलोकमैंहू आपकी वसति नरकमें करे है। तिन नरकनिमैं चिरकालपर्यंत तीव्र वेदनानिकूं अनुभवे है ॥ गाथा—

तिरियगदीए वि तहा। चोरो पाउणदि तिव्वदुक्खाणि ॥
पापेण णीयजोणी-। सु चेव संसरइ सुचिरं पि ॥ ७१ ॥

अर्थ— जैसैं चोर नरकगतिमैं तीव्र दुःख पावे है, तैसैंही तिर्यंचगतिहूमैं तीव्र दुःखनिनैं प्राप्त होय है। अर चोरी करनेवाला बहोत असंख्यातकालपर्यंत नीचयोनी जो कूंकर सूकर गर्दभ महिषादिक तथा विकलत्रयादिकानिकी योनिनिमैं बाहुल्यपणाकरि परिभ्रमण करे है ॥ गाथा—

माणुसभवे वि अत्था। हिदा व अहिदा व तस्स णस्संति ॥
ण य से धणमुवधीयदि। सयं च उंलड्डदि धणादो ॥ ७२ ॥

अर्थ— बहुरि चोर कदाचित् मनुष्यभवकू पावै, तो मनुष्यभवकूमैं ताका धन कोऊ-करि हर्‍या हुवा वा विनाहर्‍या नाशकूं प्राप्त होय है। अर ताका धन संचयकूं प्राप्त नही होय। अर जहां धन होय, तहांतैं आप स्वयमेव दूरि निकसि जाय है! चोरी करनेका बडा घोर दुःख होना अनेकजन्मनिमैं ऐसा फल है॥ गाथा—

परदव्वहरणवुद्धी। सिरिभूदी णयरमज्झयारम्मि ॥
होदूण हदो पहदो। पत्तो सो दीहसंसारं ॥ ७३ ॥

अर्थ— परका धन हरनेकी है बुद्धि जाकी ऐसा श्रीभूति नामा राजाका पुरोहित सो नगरके मांहिंही नानावेदनाकरि ताडित तथा प्रहत कहिये नाना त्रासनितैं मरिकरिकै दीर्घ संसारपरिभ्रमणनैं प्राप्त होत भयो॥ गाथा—

एदे सव्व दोसा। ण हुंति परदव्वहरणविरदस्स ॥
तव्विवरीदा य गुणा। होंति सदा दत्तभोइस्स ॥ ७४ ॥

अर्थ— अर जो परद्रव्यहरणका त्यागी है ताकै एते सकलही दोष नही होय हैं। जो परका दीया हुवा भोगै ताकै पूर्वै जो चोरके दोष कहे तिनतैं उलटे गुणही सदा होत हैं॥

देविंदरायगहवइ- । देवदसाहम्मिउग्गहं तह्मा ॥
उग्गहविधिणा दिण्णं । गेण्ह सुसामण्णसाहणयं ॥ ७५ ॥

अर्थ— तातैं देवेंद्र राजा गृहपति साधर्मीदेवतानिका परिग्रह अवग्रह कहिये देने योग्य विधिकरिकै दीयाहू मुनिपणाकै योग्य, ज्ञान अर संयमका साधन होय सो गृहण करहू ॥ भावार्थ- जो ग्रहण करो, सो विधिकरि दीया गृहण करहू । अर दीया हुयाहूमैं जिसतैं सम्यग्ज्ञान बधै तथा संयम वृद्धीकूं प्राप्त होय, सोही ग्रहण करो । संयमकूं मलिन करनेवाला कोटि आग्रहतैं दिया हुवाहू ग्रहण मति करो ॥

ऐसैं अनुशिष्टि नामा महाधिकारविषैं अचौर्यमहाव्रतका वर्णन चोईस गाथानिमैं कह्या ॥ अब दोयसै इकतालीस गाथानिमैं ब्रह्मचर्य नामा महाव्रतका वर्णन करे हैं ॥ तिनमैं पांच गाथानिमैं सामान्यब्रह्मचर्यकूं उपदेशे हैं ॥ गाथा—

रक्खाहि बंभचेरं । अब्बंभं दसविधं तु वज्जित्ता ॥
णिच्चं वि अप्पमत्तो । पंचविधे इत्थिवेरग्गे ॥ ७६ ॥

अर्थ— भो मुने! दशप्रकारका अब्रह्मकूं वर्जनकरिकै अर ब्रह्मचर्यकी रक्षा करहू । अर पंचप्रकारकरिकै स्त्रीनितैं वैराग्य होनेविषैं नित्यही प्रमादी मति होहू ॥ अब सो ब्रह्मचर्य पालनेयोग्य कहा है सो कहे हैं ॥ गाथा—

जीवो बंभा जीव- । म्मि चेव चरिया हवेज्ज जा जदिणो ॥

तं जाण बंभचेरं । विमुक्कपरदेहतत्तिस्स ॥ ७७ ॥

अर्थ— ज्ञानदर्शनादिरूपकरि जो वृद्धीकूं प्राप्त होय, सो ब्रह्म है। सो इहां जीवकूं ब्रम्ह कहिये है। सो पर जो देह, तामैं प्रवृत्तिकरि रहित जो यति, ताकी जो जीवमें चर्या प्रवृत्ति सो ब्रम्हचर्य है ॥ भावार्थ- जीवकूं ब्रह्म कहिये हैं, ब्रह्म नाम जीवका है। सो अपने अर परके शरीरादिकनिमें प्रवृत्तिकूं त्यागिकरिकै अर शुद्धज्ञान-शुद्धदर्शनादिक स्वभावरूप जो आपका आत्मा, तामैं जो चर्या कहिये प्रवृत्ति, ताहि ब्रह्मचर्य कहिये हैं। अनादिकी पर वस्तु जो अपना परका शरीर तथा धनधान्यक्षेत्रकुटुंबादिकनिमें आत्माकी प्रवृत्ति लगिरही है अर जब परमें प्रवृत्ति छूटि अपना जानन-देखनभाव है तामैं प्रवृत्ति करना सोही ब्रह्मचर्य है। तातैं अन्य जो देहादिक तामैं ममत्व त्यागि जैनका यति होवै जो आत्मा तामैं प्रवृत्ति करे हैं। परके शरीरमें मनवचनकायकरि प्रवृत्तिका त्याग जाकै होय, ताकै ब्रह्मचर्य होय है ॥ दशप्रकारका अब्रह्मका त्यागतैं दशप्रकार ब्रह्मचर्य होय है। तातैं अब्रह्मचर्यके दश भेदनिकूं कहे हैं॥

इत्थिविसयाभिलासो । वत्थिविमोक्खो य पणिदरससेवा ॥

संसत्तदव्वसेवा । तदिंदियालोयणं चेव ॥ ७८ ॥

सक्कारो संकारो । अदीदसुमरणमणागदभिलासो ॥
इट्ठविसयसेवा वि य । अब्बंभं दसविहं एदं ॥ ७९ ॥
एवं विसग्गिभूदं । अब्बंभं दसविहं पि णादव्वं ॥
आवादे मधुरंमिव । होदि विवागे य कडुयदरं ॥ ८८० ॥

अर्थ— स्त्रीसंबंधी जे इंद्रियविषय, तिनिका अभिलाष सो स्त्रीविषयाभिलाष है । स्त्रीनिके सुंदर नेत्र, मुख, ग्रीवा, बाहू, कुच, उदर, नितंब, तथा आभरण, वस्त्र, हावभाव, विलास, विभ्रम इत्यादिकके देखनेमें अभिलाष; तथा तिनके सुंदर मिष्टवचन, तथा शृंगाररसके भरे सुंदरगीत सुननेमें अभिलाष; तथा स्त्रीनिके कोमल अंगके स्पर्शन करनेमें अभिलाष; तथा अधररसका पान करनेमें अभिलाष; तथा स्त्रीनिके मुखादिकनितें उपज्या गंध, तथा अतर फुलेल इत्यादिककरि जो उपज्या गंध, ताके सूंघनेमें अभिलाष इत्यादिक स्त्रीसंबंधी पंच इंद्रियनिका विषयमें अभिलाष सो स्त्रीविषयाभिलाष नामा प्रथम अब्रह्म है । जातें स्त्रीका देखना भोगना इत्यादिक विषय तो भोगांतराय नामा कर्मका क्षयोपशमके आधीन है, आपके आधीन नही है । परंतु स्त्रीनिके देखनेस्पर्शनेका अभिलापही ब्रह्मचर्य नामा व्रतका नाश करि अब्रह्म नामा दोषकूं प्रकट करि दुर्गतिका कारण कर्मबंध करे है ॥ १ ॥

बहुरि कामकरि विकारी पुरुषकै जो वीर्यका मोचन होना सो वस्तिविमोक्ष नामा अब्रह्म है ॥ २ ॥

बहुरि कामविकारके उपजावनेवाले जे पुष्टरस तथा मद करनेवाली वस्तु जिनके भक्षण करनेतें कामोद्दीपन होजाय वा अतिलंपटता वधिजाय सो प्रणीतरससेवन नामा अब्रह्म है। जातैं स्त्रीसंगविनाही इन पुष्टरसनिका भोजन ब्रम्हचर्यका घात तो करेही है, याकूं वृष्याहारसेवनहू कहे हैं ॥ ३ ॥

बहुरि स्त्रीनिकरि तथा कामीपुरुषनिकरि संसक्त कहिये संबंधनैं प्राप्त हुवा शय्या तथा आसन महल मकान बाग तथा कामीनिके पहरनेजोग्य विकाररूप वस्त्राभरण तिनकूं जो सेवना, सो संसक्तद्रव्यसेवन नामा अब्रम्ह है ॥ ४ ॥

बहुरि साक्षात् स्त्रीनिका रागभावकरि प्रीतिपरिणामकरि अवलोकन करना, सो इंद्रियावलोकन नामा अब्रह्म है ॥ ५ ॥

बहुरि स्त्रीनिका सत्कार आदर वचनालाप रागभावतें करना, सो सत्कार नामा अब्रह्म है ॥ ६ ॥

बहुरि अपने शरीरका गंधपुष्पादिकनिकरि तथा स्नान उद्धर्तनादिककरि संस्कार करना, सो संस्कार नामा अब्रह्म है ॥ ७ ॥

बहुरि पूर्वे जो भोग भोग्या वा श्रवण कीया देख्या तिनका यादि करना, सो अतीतस्मरण नामा अब्रह्म है ॥ ८ ॥

बहुरि आगामी कालमें कामभोग क्रीडा शृंगारादिकका अभिलाप, सो अनागताभिलाप नामा अब्रह्म है ॥ ९ ॥

बहुरि मर्यादरहित यथेच्छ विषयनिका सेवन जो निरर्गल जावना, आवना, बोलना, बैठना, खाना, पीना, रात्रि संचरण करना, यथेच्छ जोग्यअजोग्यका विचाररहित संगति करना, अजोग्यद्रव्यका सेवन, अजोग्यक्षेत्रमें जाना, आना, सोवना, बैठना इत्यादि मर्यादरहित प्रवर्तना, सो इष्टविषयसेवन नामा अब्रह्म है ॥ १० ॥

ऐसें ये दशप्रकारका अब्रह्म जीवकूं अचेत करि धर्मरहित करि ऐसा घाते है, जो, बहुरि अनंतानंतकालमें सचेत नही होय सकै! यातें अब्रह्मकूं विषरूप कह्या है। बहुरि आत्माकै संतापका कारण है, तथा दर्शन ज्ञान चारित्रकूं दग्ध करि मूलतें नाश करनेवाला है। तातें अब्रह्म अग्निसमान है॥ ऐसें अब्रम्हकूं विषरूप तथा अग्निरूप जानना योग्य है॥ कैसाक है दशप्रकारका अब्रह्म? आवता तो अज्ञानी जीवनिकूं मिष्ट दीखे है, अर उदयकालमें अतिकटुक है॥ अब कामतें विरक्त होनेका उपाय कहे हैं॥ गाथा–

कामकदा इत्थिकदा। दोसा असुचित्तु वुड्ढसेवा य ॥
संसग्गयदोसा वि य। करिंति इत्थीसु वेरग्गं ॥ ८१ ॥

अर्थ— या जीवकै जे दोष कामविकारतैं उपजे हैं; तथा स्त्रीनिकरि कीये दोष होय हैं, तथा शरीरकी अशुचिताजनित दोष हैं, तथा वृद्धसेवाकरि जे गुण होय हैं, तथा स्त्रीनिकी संगतिकरि जे दोष होय हैं, ते चिंतवन कीये हुये स्त्रीनिमैं वैराग्य उपजावे हैं ॥ अब या जीवकै उत्पन्न हुवा जो परिणाममें कामका विकार, सो कहा कहा दोष करे है, तिन कामकृतदोषनिकूं पंचावन गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

जावइया किर दोसा। इहपरळोए दुहावहा होंति ॥
सव्वे वि आवहदि ते। मेहुणसण्णा मणुस्सस्स ॥ ८२ ॥

अर्थ— इस लोकविषैं तथा परलोकविषैं दुःखके करनेवाले जितने दोष हैं, तिन सर्व दोषनिकूं मनुष्यकी एक मैथुनकी अभिलाषा प्राप्त करे हैं ॥ गाथा—

सोयदि विलवदि परित-। प्पदी य कामादुरो विसीदयादि ॥
रत्तिं दिवा य णिद्दं। ण लहदि पज्झादि विमणो य ॥ ८३ ॥

अर्थ— कामकरिकै पीडित पुरुष शोच करत है, विलाप करत है, परितापकूं प्राप्त होय है, विषाद करत है, रात्रिविषैं दिनविषैं निद्राकूं नही लेत है अर विम-

नरक हुवा उणमणा हुवा चिंतवन करे है ॥ गाथा—

सयणे जणे य सयणा-। सणे य गामे घरे वरणे वा ॥
कामपिसायग्गहिदो। ण रमदि तह भोयणादीसु ॥ ८४ ॥

अर्थ—कामपिशाचकरिकै गृहीत जो पुरुष, सो स्वजन जे आपके स्त्री पुत्र-कुटुंबादिक तिनमैं नही रमे है, तथा अन्यजननिमैं तथा शयनमें तथा ग्राममें तथा गृहमें तथा वनमें तथा भोजन पान वस्त्र आभरण राग रंग महल मकान द्रव्यका उपार्जनमें तथा राजसेवा तथा धनसंपदा लेन देन धरनेमेलनेमैं कोऊ रचनामैंहू नही रमे है। जातैं जिस स्त्री वा पुरुष नपुंसकादिक कोऊमैं दर्शन स्पर्शन क्रीडन-रूप राग बंध्या होय, तासूं मिलैही थिरता पावै। कामपिशाचकी या जाति है! जो, कोई नीच दासी वा वेश्या वा चांडाली भीलणी इत्यादिक कोऊ नीचस्त्रीसूं स्नेह लाग्या होय तथा कोऊ नीच अधम विजातीय दासकर्म करनेवाला अभक्ष्य-भक्षी दासीपुत्र वा घोडेका चाकर तथा चारण भाट डूंब इत्यादिकमैं जिसमें स्नेह बंध्या होय तो ताका संयोग हुवाही जक परैगी! अनेक रूपवती कुलवती वस्त्रा-भरणसहित आपकी विवाहितस्त्रीनिका संयोग तथा सुबुद्धिपुत्रनिका संयोग विष-समान भासेगा! तातैं कामसमान अन्यपिशाच नही है ॥ गाथा—

कामादुरस्स गच्छदि । खणो वि संवच्छरो व पुरिसस्स ॥

सीदंति य अंगाइं । होदि अ उक्कंठिउं पुरिसो ॥ ८५ ॥

अर्थ—आपका स्नेहीका संबंधरहित जो कामातुरपुरुष. ताकै क्षणमात्रहू संवत्सर-बराबर होजाय है। अर सर्व अंग वेदनाकूं प्राप्त होय है। अर मन ऐसा उत्कंठित होय है, जाकूं दूसरा दीखैही नही । वारंवार परिणाम उसकी वोडीही लग्या रहै, अन्य भोजन शयन स्त्रीपुत्रादिकनिमैं रचै नही ताकूं उत्कंठा कहिये है, सो सर्व कामातुरकै होय है ॥ गाथा—

पाणिदलधरिदगंडो । वहुसो चिंतेदि किंपि दीणमुहो ॥

सीदे वि णिव्वादिज्जइ । वेवदि य अकारणे अंगं ॥ ८६ ॥

अर्थ—कामातुर पुरुष अपने हस्ततलपरि धऱ्या है गंडस्थल जानै अर दीन है मुख जाका ऐसा बहुतवार क्योंहू चिंतवन करै है, अर शीतकालहूमैं पसीनेकूं प्राप्त होय है, अर कामीका अंग जो शरीर सो कारणविनाही कंपायमान होय है ॥

कामुम्मत्तो संतो । अंतो डज्झइ य कामचिंताए ॥

पीदो व कलकलो सो । अरदग्गिजाले जलंतम्मि ८७

अर्थ— कामकरि उन्मत्त हुवा संता पुरुष कामकी चिंताकरिकै अंतरंगमें दग्ध

होय है। जैसैं कोऊ गालया तामा ताहि पीय अंतरंग–हृदयमें दग्ध होय है–मूर्छित होय है, तैसैं कामी अपने वांछित जो स्त्रीका संगम वा पुरुषका संगम नही पाय-करिकै वलती जो अंतरंगमें आर्तिरूप अग्नीकी ज्वाला ताविषैं वले है ॥ गाथा—

कामादुरो णरो पुण। कामिज्जंते जणे दु अलहंते ॥
घत्तदि मरिदुं वहुधा। मरुप्पवादादिकरणेहिं ॥ ८८ ॥

अर्थ— बहुरि कामातुर जो जीव सो आपके वांछित जासूं प्रीतिकरि बंधननैं प्राप्त हुवा ऐसा कोऊ स्त्री तथा पुरुष जो आपसूं पराङ्मुख होजाय वा हजारां दीनता करताहू आपसैं प्रीति छोडि दे अथवा और कोऊ धनवान् रूपवान् ऐश्वर्यवान् तामैं आसक्त होजाय अर आपसूं प्रीति संकोच ले तथा आपका निर्धनपणाकरि वृद्धपणाकरि आपकूं नही गिणे, तो बहुतप्रकार जे पर्वततैं गिरना, तथा समुद्रमें पडना, तथा अग्निमें प्रवेश करना, तथा भींतिनिकरि स्तंभनिकरि मस्तक फोडि मर जाना, तथा वनमें प्रवेशकरि जाना, तथा पाशी कंठमें नाखि मर जाना, तथा शस्त्रघातकरि मरना, तथा विषभक्षणादिकनितैं मारिजाना इत्यादि-ककरि मरणमें प्रवर्तत है। ॥ भावार्थ– अंतर्गत जो कोऊ स्त्रीमैं वा पुरुष वा नपुंसकमें रागभाव सो काम है। सो कामभाव जब प्रकट होय है, तब अपने

घरमें आपकी देवांगनासमान अर अतिस्नेहकी भरी अनेक स्त्री तथा आज्ञाकारी महागुणवंत पुत्र तथा वांछितकार्यके साधनेवाले सेवकजन तिनमैं द्वेष करे है। अर जिसमें मन आसक्त भया तिसकूं वारंवार चिंतवन करे हैं! अर जो आपका वांछितजन नहीं दीखै, तब सर्वकुटुंब शून्य दीखै है, दस्रूंदिशा शून्य दीखे हैं! अपना रहनेका महल मंदिर वनसमान तथा मसानसमान दीखे है! अर सर्व कुटुंब अपने हितकी कहै सो विषसमान दीखे हैं! ॥ गाथा—

संकप्पंडयजादे- । ण रागदोसचलजमलजीहेण ॥
विसयबिलवासिणारादि- । मुहेण चिंतादिरोसेण ॥ ८९ ॥
कामभुजयेण दट्ठा । लज्जाणिम्मोगदप्पदाढेण ॥
णस्संति णरा अवसा । अणेयदुक्खावहविसेण ॥ ९० ॥

अर्थ— कामसर्पकरिकै डस्या मनुष्य परवश हुवा नाशकूं प्राप्त होय है। कैसाक है कामरूप सर्प? सर्प तौ अंडेतैं उपजे है, अर कामरूप सर्प मनका संकल्प सोही जो अंडा ताकरि उपजे है, परिणामनिके संकल्पविना नहीं उपजे है। बहुरि सर्पकै चलायमान दोय जिव्हा होय हैं अर कामरूप सर्पकै रागद्वेषरूप चलायमान जुगल जिव्हा होय है। बहुरि सर्प तो बिलमें वसे है अर कामसर्प विषयरूप बिलमें वसनेवाला है।

बहुरि सर्पके तो मुख होत है, अर कामरूप सर्पके रति जो आसक्तता सोही मुख ताकरि पुरुषका मर्मकूं काटनेवाला है। बहुरि सर्पके रोष होय है, कामरूप सर्पके चिंतारूप रोष है। बहुरि सर्प कांचली छोडे है, अर कामरूप सर्प लज्जारूप कांचली छोडे है। बहुरि सर्पके डाढ होय है, अर कामरूप सर्पके रूपका मद तथा धनका शृंगारादिकनिका मद सोही तीक्ष्ण दाढ है। अर सर्पके अनेक दुःखनिका वहना भोगना सोही विष है। ऐसें कामरूप सर्पकरि डस्या हुवा जीव आपके ज्ञानदर्शनादिकका नाश करि पराधीन हुवा नाशकूं प्राप्त होय है! नरकनिगोदकूं प्राप्त होय है! ॥

आसीविसेण अवरु- । द्धस्स वि वेगा हवंति सत्तेव ॥
दस होंति पुणो वेगा । कामभुयंगावरुद्धस्स ॥ ९१ ॥

अर्थ— सर्पनिमें प्रधान जो आशीविषजातिका सर्प ताकरि डस्या पुरुषके तो सात वेग होय हैं, अर कामरूप सर्पकरि डस्या हुवा पुरुषकै दश वेग होय हैं॥ ते दश वेग कैसे हैं सो कहे हैं ॥ गाथा–

पढमे सोयदि वेगे । दट्ठुं तं इच्छदे विदियवेगे ॥
णिस्ससदि तदियवेगे । आरुहदि जुरो चउत्थम्मि ॥ ९२ ॥
डज्झदि पंचमवेगे । अंगं छट्ठे ण रोचदे भत्तं ॥

मुच्छिज्जदि सत्तमए। उम्मत्तो होइ अट्ठमए ॥ ९३ ॥
णवमे ण किंचि जाणदि। दसमे पाणेहि मुच्चदि मदंधो ॥
संकप्पवसेण पुणो। वेगा तिव्वा य मंदा वा ॥ ९४ ॥

अर्थ— कामके प्रथमवेगविषैं शोच करत है, जाकूं देख्या था तथा श्रवण कीया था, ताका वारंवार चिंतवन करे है। अर द्वितीयवेगविषैं देखनेकी अति इच्छा उपजै जो देख्याविना परिणाम अति आकुल व्याकुल होय है। अर तृतीयवेग चढै ताविषैं दीर्घनिश्वास पटके है। अर चतुर्थवेगविषैं शरीरमें ज्वर उत्पन्न होय है। अर पंचमवेगविषैं अंग दग्ध होनेलगिजाय है। अर छट्टा वेगविषैं भोजन नहीं रुचे है। अर सातमां वेगविषैं मूर्छाकूं प्राप्त होय है। अर अष्टमवेगविषैं उन्मत्त होय है। नवमां वेगविषैं ज्ञानरहित होय है। दशमां वेगविषैं मदकरि अंध हुवा प्राणनिकरि रहित होय है! ॥ बहुरि संकल्पका वशकरिकै ये दशवेग कोऊकै तीव्र होय हैं, कोऊकै मंद होय हैं, जैसा रागका तीव्रपणा मंदपणा होय तिसप्रमाण वेग चढै है ॥ गाथा—

जेट्ठामूले जोण्हे। सूरो विमले णहम्मि मज्झण्हे ॥
ण डहदि तह जह पुरिसं। दहदि विवड्ढंतउ कामो ॥ ९५ ॥

अर्थ— जैसें ज्येष्ठमासका शुक्लपक्षमें निर्मल आकाशमें मध्याह्नकालमें जो सूर्यहू

आतापकरि दग्ध नहीं करै, तैसें वधता हुवा काम पुरुषकूं दग्ध करे है– आताप करे है ॥ गाथा–

सूरग्गी दहदि दिवा । रत्तिं च दिवा य डहइ कामग्गी ॥
सूरस्स अत्थि उच्छा- । णारो कामग्गिणो णत्थि ॥ ९६ ॥
विज्झादि य सूरग्गी । जलादिएहिं ण तहा हु कामग्गी ॥
सूरग्गी दहइ तयं । अब्भंतरबाहिरं इदरो ॥ ९७ ॥

अर्थ— सूर्यकी अग्नि तो दिवसहीमें दग्ध करे है–आताप करे है, अर काम अग्नि दिवसमें तथा रात्रिमें सदाकाल दग्ध करे है । बहुरि सूर्यकी आतापकूं रोकनेवाला पदार्थ तो छत्रादिक बहोत है, अर काम अग्निकी आतापकूं रोकनेवाली लोकमें वस्तु नहीं है । बहुरि सूर्यकी आताप तो जलयंत्रादिककरि बुझि जाय है, अर कामकी आताप नहीं बुझि है । बहुरि सूर्यकी अग्नि तो शरीरहीकूं दग्ध करे है, अर कामरूप अग्नि अभ्यंतर आत्माके ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, शील, संयमादिक तिनकूं दग्ध करे है अर बाह्यभी शरीरकूं इंद्रियनिकूं यशकूं व्यवहारकूं पूज्यपणा कुलवंतणा तथा धनवंतपणाका नाश करे है ॥ गाथा–

जादिकुलं संवासं । धम्मं णियबंधवम्मि अगणिंतो ॥

कुणदि अकज्जं पुरिसो । मेहुणसण्णाए सम्मूढो ॥ ९८ ॥

अर्थ—मैथुनकी इच्छाके विषैं मोही जो पुरुष सो आपकी जातीकूं नही गिणे है, कुलकूं नही गिणे है, जिनकी संगति रहै तिनकूं नही गिणे है, तथा धर्मकूं कुटुंबकेनिकूं नही गिणता,, नही करने योग्य अकार्यकूं करे है ॥

भावार्थ— जो कामकै वशीभूत है सो अपना उत्तमकुल उत्तम जातिकूं तो जलांजलि दीनी ! सो प्रत्यक्ष देखिये है । कामीकै ऐसा विचारही नही है, जो, या स्त्री कोन जाति है? वा चांडाली है! तथा चांडाल भील म्लेंछ अधमाधम जो जगतमैं देखि जे तिनतैं रमनेवाली अर मद्यमांसके खावनेवाली वेश्या है वा दासी तथा कुलटा है इत्यादिक नीचजाति नीच आचार ताकी ग्लानिरहित अति आसक्त हुवा ताका मुखकी लाला पीवे है! तथा अधम अंगानिकूं स्पर्शे है! चाटे है! कामीकै जातिकुलका विचार नष्ट होय है। चांडाल तथा म्लेंछनिकी उच्छिष्ट भक्षण करनेवालीकै सामिल अखाद्य खाय है! मद्य पीवे है ॥

कामांधकी जातिकुलकी रक्षा कोऊ देखी नही, सुनी नही। तथा उत्तम कुल उत्तमजातिका ऐसा मार्ग है—जो, अपनी विवाहितस्त्रीका संगम करे है अर अन्य स्त्रीकूं माता बहण पुत्रीतुल्य जानि कदाचित् रागभावसूं अवलोकन करना भी

अपना दोऊ लोक नष्ट होना माने है। अर जब कामांध होय है तब माताकूं सेवन करे है! भगिनीकूं सेवे है! पुत्रीमैं आसक्त होय है! पुत्रकी स्त्रीमैं आसक्त होय है! तथा औरहू अपने कुटुंबकी तथा तपस्विनी गुराणी तथा कन्या कुमारी सबमैं आसक्त होय कुलभ्रष्ट होय है, धर्मभ्रष्ट होय है, लज्जारहित होय है। तथा तैसैंही कोऊ पुरुषमैं रागसंयुक्त होय तदि ऐसा विचार नही करे है– जो यो पुरुष नीच है, तथा चोर है ज्वारी है, वा व्यभिचारी है वा प्रतिष्ठारहित है, याकी संगतितैं मेरा सर्व आपा बिगडि जायगा। सो कामकरिकै अंधकै विचारही नही है। ऐसैं तो जातिकुलका नहीं गिणना कह्या ॥

बहुरि कामी पुरुष जिनके साथि आप वसे है, तिनहूकूं नही देखे है, जो, मै नीचकर्म करूंगा तो मेरे सर्व साथी लज्जित होयगे, तथा मेरा इतना बडा घोरकर्म प्रगट होयगा जब बांधवनिकूं तथा कुटुंबीनिकूं तथा स्वामीकूं सेवकनिकूं धर्मात्मा-जननिकूं तथा पुत्रनिकूं तथा पाडोसीनिकूं कैसैं मुख दिखाऊंगा? तथा तिनके बीचि बैठि कैसैं सुंदर बात करूंगा? ऐसा विचार कामोन्मत्तका जाता रहे है ॥ कामी महानिर्लज्ज है। बहुरि कामी धर्मकूं नही गिणे है, जो, मेरा अणुव्रत महाव्रत तप शील सर्व नष्ट हो जायगा तथा सर्वलोकनिमैं मै धर्मात्मा कहाऊं हूं, जो; अब

मेरा कुशीलपणा प्रगट होयगा तो सर्व त्यागीनिका तथा धर्मबुद्धीनिका अपवाद होयगा ऐसा विचार नही करे है॥ बहुरि आपके बांधवनिकूं नही गिणे है। कामकी वांछाकरि मूढ है ताकै करनेयोग्य अर नही करनेयोग्यका विचारही नही है॥ गाथा—

कामपिसायग्गहिदो। हिदमहिदं वा ण अप्पणो मुणदि॥
होइ पिसायग्गहिदो। व सदा पुरिसो अणप्पवसो॥ ९९॥

अर्थ— कामरूप पिशाचकरि ग्रहण कीया पुरुष आपका हित अर अहितकूं नही जाने है। पिशाचगृहीत पुरुषकीनांई सर्वकालविषैं आपके वशी नही रहे है॥ गाथा—

णीचो व णरो वहुगं। पि कदं कुलपुत्तउ वि ण गणेदि॥
कामुम्मत्तो लज्जा-। लुउ वि तह होदि णिल्लज्जो॥ १००॥

अर्थ— कामकरि उन्मत्त ऐसा कुलवंतहू पुरुष परके कीये वहुतहू उपकार नीचपुरुषकीनांई नही गिणे है॥ भावार्थ— नीचपुरुषकै चाहे जितना उपकार करो, नीचपुरुष परके उपकारकूं नही गिणे है, तैसैं कामकै वशीभूत पुरुषहू परके बहोत उपकारकूं लोप दे है। बहुरि लज्जावान् मनुष्यहू कामकै वशीभूत हुवा निर्लज्ज होय है॥ गाथा—

कामी सुसंजदाणं। विरुसदि चोरो व जग्गमाणाणं॥

पिच्छदि कामग्घत्थो । हिदं भणंते वि सत्तू व ॥ १ ॥

अर्थ— जैसैं जाग्रता पुरुषमें चौर रोस करे है, तैसैं कामी पुरुष सुंदर संयमीनिमैं रोस करे है। कामीकूं शीलवान् त्यागी पुरुष महावैरी दीखे है। वहुरि कामकरिकै व्याप्त पुरुष आपके हितकी कहनेवालेकूं शत्रुकीनांई देखे है ॥ गाथा—

आयरियउवज्झाए । कुलगणसंघस्स होइ पडिणीउ ॥
कामकलिणा हु घत्थो । धम्मियभावं य पहिदूण ॥ २ ॥

अर्थ— कामकरि मलिन पुरुष धर्मात्मापणाकूं छोडिकरिकै अर आचार्य उपाध्याय कुलगणसंघतैं अपूठा होय है ॥ गाथा—

कामग्घत्थो पुरिसो । तिळोयसारं जहदि सुदलाभं ॥
तेळोक्कपूइदं पि य । माहप्पं जहदि विसयंधो ॥ ३ ॥

अर्थ— कामकरि ग्रस्या पुरुष त्रैलोक्यमें सार ऐसा श्रुतज्ञानका लाभकूं त्यागे है ॥ भावार्थ— जिस पुरुषकै कामपिशाच लाग्या, ताकै पठन-पाठन-धर्मश्रवणतैं पराङ्मुखता होय है। अर जो पूर्व अवस्थामैं श्रुतग्रहण कस्या होय, सो नष्ट होय है। वहुरि विषयनिकरि अंधा पुरुष त्रैलोक्यकरिकै पूजित ऐसा अपना महान्पणा त्यागे है ॥

तह विसयामिसघत्थो । तणं व तवचरणदंसणं जहइ ॥

विसयामिसगिद्धस्स हु । णत्थि अकायव्वयं किंचि ॥ ४ ॥

अर्थ— तैसैंही जो विषयरूप मांसकरि ग्रस्या लंपटीपुरुष तपश्चरणकूं तथा सम्यग्दर्शनकूं त्यागत है। विषयरूप मांसमें लंपटीकै किंचिन्मात्रहू नही करनेयोग्य नही है-संपूर्ण अकृत्य करे है ॥ गाथा-

अरहंतसिद्धआयरिय- । उवज्झायसव्वसाहुवग्गाणं ॥
कुणदि अवण्णं णिच्चं । कामुम्मत्तो विगयवेसो ॥ ५ ॥

अर्थ— कामकरि उन्मत्तपुरुष ताका वेष विकाररूप होय है। बहुरि अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्वसाधूनिके समूहका सर्वकालविषैं अवर्णवाद करे है-झूंटे दोष पंचपरमेष्ठीकै प्रकाशे है-निंदा करे है। कामीपुरुषबराबरी कोऊ पातकी है नही ॥

अजसमणत्थं दुक्खं । इहलोए दुग्गदी य परलोए ॥
संसारं पि अणंतं । ण मुणदि विसयामिसे गिद्धो ॥ ६ ॥

अर्थ— विषयरूप मांसमें जाकै तीव्र लंपटता है सो पुरुष इसलोकमें अपना अपयश होता नही जाने है, तथा अनर्थ होता नही जाने है, तथा राजका दंडजनित तथा अपवादजनित तथा धनका नाश होनेतैं तथा प्राणनिका घात इत्यादिकनितैं उपजता दुःख नही जाने है, परलोकमैं नरकादिकदुर्गतिमैं अपना जाना नही जाने है, तथा

अनंतानंतकाल संसारमें परिभ्रमण होय ताहि नहीं जाने है ॥ गाथा—

णीचं पि विसयहेदुं । सेवदि उच्चो वि विसयलुद्धमदी ॥
वहुगं पि य अवमाणं । विसयंधो सहइ माणी वि ॥ ७ ॥

अर्थ— विषयनिमैं लुब्धबुद्धि कहिये विषयनिका लोभी कुल धन ऐश्वर्य ज्ञान तप त्यागकरि जगतमें उच्च हैं तोहू विषयनिकेतांई नीच स्त्री नीच पुरुषकी सेवा करे है, पादमर्दन करे हैं, निरंतर वाका मुख देखै, जो, हमसै कोऊप्रकार प्रसन्न रहे। अर कामीपुरुष नीचस्त्रीपुरुषनितैं हस्त जोरे है अर मुखतैं दीनताके वचन कहे हैं, जो "मै तुमारा आज्ञाकारी सेवक हूं एक तुमारी कृपादृष्टीकी अभिलाषा मेरे निरंतर रहे है, कहा करूं? मै तुमारा संगमविना प्राण धारनेकूं असमर्थ हूं अर तुमारे द्वारे पड्या हूं तुमारी ममत्वदृष्टितैं मेरा जीवन जानहू" इत्यादिक वचननिकरि हीनता भाषे है। अर जो वै आज्ञा करै ताही करे है, शरीरकी चाकरी करि अपना धन्यभाग्य माने है। अर आपका घरमें जो सुंदरवस्तु होय, सो सर्व दे है, अपना सर्व धन दे है। अर वै ग्रहण करै तब आपकूं कृतकृत्य माने है। बहुरि महा अभिमानीहू विषयनिकरि आंधा अपना बहुत अपमान सहै है। तथा ताडना दुर्वचनादिकनिका लाभकूं महान् लाभ माने है! कामांधबरोबरी जगतमें कोऊ अंध हैही नहीं ॥ गाथा—

णीचं पि कुणदि कम्मं । कुलपुत्तदुगंछियं विगदमाणो ॥

वारत्तुउ वि कुकम्मं । अकासि जह लंघियाहेदुं ॥ ८ ॥

अर्थ— विषयवांछाकरि अंधपुरुष मानरहित हुवा कुलवंतनिकरि निंदनीक उच्छिष्ट-भोजनादिक सोहू अपने प्रीतिके पात्र जो स्त्री तथा पुरुष तिनकरि भक्षण कीयाकूं भक्षण करि आपका धन्यभाग्य माने है। जैसैं अकुलीन स्त्रीके निमित्त कोऊ वारत्रक नामा यति नीचकर्म करतो हुवो ॥ गाथा-

सूरो तिक्खो मुक्खो । वि होइ वसिउं जणस्स सधणस्स ॥

विसयामिसम्मि गिद्धो । माणं रोसं च मुत्तूण ॥ ९ ॥

अर्थ— शूर, वीर, तथा कोऊका कह्या नहीं सहि सके ऐसा तीक्ष्ण कहिये क्रोधी तथा मुख्य कहिये सर्व लोकनिमैं प्रधान ऐसा पुरुषहू विषयरूप मांसका लंपटी हुवा संता मान अर रोष दोऊकूं छांडिकरिकैं धनवानजनके वशी होत है॥ भावार्थ- विषयाभिलाषीविना अपना अभिमान छोडि धनवानका दुर्वचन तथा अपमान कौन सहै? विषयनिके वशतैं धनका लोभी होय सर्व सहे है॥ गाथा-

माणी वि असरिसस्स वि । चडुयम्मं कुणदि णिच्चमविलज्जो ॥

मादापिदरे दासो । वायाए परस्स कामंतो ॥ ११० ॥

अर्थ— कामकी इच्छासंयुक्त मानीहू पुरुष असदृश जो अधम नीच आपकी बरावरी नही ऐसा कोऊ पुरुषका तथा स्त्रीका निर्लज्ज हुवा हजारां चाटुकार कहिये कुसामद्यां नित्यही करे है। वचनकरि कहे है, तुम हमारे पिता हो, तुम हमारी माता हो, तुम स्वामी हो, मै तुमारे गृहमें दास हुवा रहूं, मेरे प्राण तुमारी कृपादृष्टितैं रहेंगे, मै आपका सरणा लीया, मेरा तिरस्कार करो वा सत्कार करो, मेरै और कुछ चाह नही, एक तुमारी सांची प्रीतिही चाहूंहूं। ऐसें आपका आत्मानैं पराधीन करता अधमचेष्टाकूं प्राप्त होय है ॥

इहा इतना और जानना- जो, कोऊ जानेगा, मैथुनसेवनहीकूं काम कह्या है। मैथुनसेवन करना सोही कामविषय नही जानना, जो कोऊका रूपके देखनेमें तथा अंगके स्पर्शनमें तथा नेत्रसूं नेत्र मिलनेमें तथा रागवचन सुननेमें एक आसन एकशयन बैठनेसोवनेमें जो तीव्र आसक्तताकरि परके वशीभूत होना सो सर्व कामकी तीव्रताका प्रभाव जानना। जो कामके वशीभूत है, ताकै इसलोकमें तो यश उपार्जन करना अर स्वाधीन रहना दोऊ नही होय है अर परलोकके अर्थि हितरूप ऐसा धर्मसेवन सामायिक स्वाध्याय शुभध्यान शुभभावना शुभसंगति वीतरागतादिक सर्व कल्याणरूप कार्यतैं पराङ्मुखता होय है ॥ गाथा-

वयणपडिवत्तिकुसल- । त्तणं पि णासइ णरस्स कामिस्स ॥
सत्थप्पहदा तिक्खा । वि मदी मंदा तहा हवदि ॥ ११ ॥

अर्थ— कामी पुरुषका वचन बोलनेविषैं प्रवीणपणा नष्ट होय है, ये वचन बोलनेके ये वचन नही बोलनेके, तथा 'हमारा पदस्थ ऐसा इसका पदस्थ ऐसा' अर अनेक जन सुननेवाले कहा कहैंगे! मै इतना बडा पदस्थधारी! अन्य नीचजन भांडजन तिनकेसे वचन कैसैं कहूंहू? ऐसा विचारही जाता रहे है। बहुरि अनेकशास्त्रनिके ज्ञानकरि तथा लौकिकव्यवहारज्ञानकरि संवारीहू बुद्धि मंद होय है, नष्ट होय है ॥

होदि सचक्खू वि अच- । क्खु व वधिरो वा वि होइ सुणमाणो ॥
दुट्ठकरेणुयमत्तो । वणहत्थी चेव सम्मूढो ॥ १२ ॥

अर्थ— कामोन्मत्त पुरुष नेत्रनिकरि सहित है तोहू अंधकीनांई नही देखे है! अर कर्णनिकरि सहित है तोहू नही सुणत है! जैसैं कपटकी हथणीमैं आसक्त वनका हाथी ताकीनांई मूढ होय है ॥ भावार्थ—जैसैं मदकरि मतवाला हस्ती कपटकी हथनीमैं आसक्त होय अपना खाडेमें पडना वधबंधननिकूं प्राप्त होना नही जाने है, तैसैं कामकरि मतवाला पुरुष नेत्रनिसूं प्रकट देखै है जो "कामी पुरुष मास्या जाय है, प्रकट अपवादकूं प्राप्त होय है, राजकरि तीव्र दंड पावे है, शरीरकरि नष्ट होजाय है, धनरहित होय है, पूज्यपणा

बडापणा प्रतिष्ठा सर्व बिगडिजाय है, नीचस्त्री अर नीचपुरुषनिसूं दीनता करनी पडे है, ऐसैं अनेककी अवस्था आप प्रत्यक्ष देखी है अर देखे है " तथापि या जाने है, जगत् बुद्धिरहित मूर्ख है! समझिसहित विषयसेवन नही करि जाने है? तातैं तिनकै आपदा आवे है। हम ऐसी बुद्धिसूं प्रवर्ते है, सो हमारे क्लेश नही आवै। बहुरि आपकूं जगत् दुराचारी जाने है, तथापि ऐसा माने है, हमारा दुराचार कोऊ जाने नाही। ऐसैं कामकरि अंधके सुशाकीनांई अंधेरा है, देखता संताहू नही देखे है। बहुरि कामकरि उन्मत्त अन्य अनेकपुरुषनिके अनेकदुःख श्रवण करे है, तथा कामीनिका नरकगमन श्रवण करे है, तोहू आपकै दुःख होना नही जाने है, बधिरकीनांई आचरण करे है॥ गाथा—

सलिलणिवुड्डो य णरो। वुज्झंतो विगदचेयणो होइ॥
दक्खो वि होइ मंदो। विसयपिसाउंवहदचित्तो॥ १३॥

अर्थ— जैसैं जलमैं डूब्या अर प्रवाहकरि वहता पुरुष चेतनारहित होय है, तैसैं सर्वकार्यनिमैं प्रवीण ऐसा पुरुषभी विषयरूप पिशाचकरि जाका चित्त नष्ट हुवा, सो सर्वकार्यनिमैं मंद होय है—मूढ होय है॥ गाथा—

वारसवासाणि वि सं-। वसित्तु कामादुरो ण याणीय॥

पादंगुट्ठमसंतं । गणियाए गोरसंदीवो ॥ १४ ॥

अर्थ-- गोरसंदीप नामा कामी बारह बरसपर्यंत गणिकाकै सामिल वसिकरिकैहू गणिकाका पगमें अंगुष्ठ नही था सो जाण्या नही! भावार्थ- कामकरि अंधकूं चेत नही रह्या । जो, इस वेश्याका पगकै अंगुष्ठ है की नही है ॥ गाथा-

सीदं उण्हं तण्हं । छुदं च दुस्सेज्जभत्तपंथसमं ॥
सुकुमारो वि य कामी । सहइ वहइ भारमधिगतयं ॥ १५ ॥

अर्थ-- कोमल अंगका धारकहू कामी पुरुष आपका वांछित जो स्त्री तथा पुरुष ताका संगमके अर्थि अपना घरका सुखकारी महल वस्त्र पर्यंक सुंदरस्त्री पांचूं इंद्रियनिका भोग छांडिकरिकै अर परके द्वारे भूमीमैं धूलीमैं पत्थरनिमैं पडता हुवा आपका उच्चपणाकूं नही जानता अत्यंत विषयकी आशाकरिकै शीतऋतुकी रात्रिविषैं शीतवेदना सहे है, तथा ग्रीष्मऋतुका आताप सहे है, तृषा सहे है, क्षुधा सहे है, खोटी शय्या खोटा भोजन अंगीकार करे है, मार्गका खेद सहे है, अर अधिकसूं अधिक भार वहे है, सुकुमार अंगका धारकहू कामांध आपकी वेदना नही गिणे है ॥ गाथा-

गायदि णच्चदि धावदि । कसइ ववदि लवदि तह मलेइ णरो ॥
तूणेइ वुणइ जाचइ । कुलम्मि जादो वि विसयवसो ॥ १६ ॥

सेवदि णियादि रक्खदि । गोमहिसिमजाविर्यं हयं हत्थिं ॥
ववहरदि कुणदि सिप्पं । सिणेहपासेण दढबद्धो ॥ १७ ॥

अर्थ—विषयाके वशीभूत हुवा उच्चकुलमें जन्याहू पुरुष कहा कहा करे है? जिसमें प्रीति लागी ऐसा स्त्रीपुरुषके आगे बैठ्या हुवा नीचजनकीनांई गावे है, नाचे है, जो कार्य होय ताके अर्थि दौडे है, खोदे है, वावे है, लूणे है, मर्दन करे है, सीवे है, वणे है, याचना करे है। तथा स्नेहपाशकरि बंध्या हुवा और कहा करे है? सेवा करे है, साथि देशांतरमें निकलि जाय है, अपने स्नेहीकी गाई भैसी अजा छेली तथा अवि कहिये भेड तथा घोडा तथा हाथी इनकी रक्षा करे है, विणज करे है, तथा शिल्प करे है, तथा स्नेहका मास्या उत्तमकुलसंबंधी उत्तमजीविका तथा धनसंपदाकूं त्यागिकरि अपना स्नेहीकी साथि नीचकर्मकरि जीविका करि जीवे है, तथा भिक्षा मांगता फिरे है ॥ गाथा—

वेढेइ विसयहेदुं । कलत्तपासेहिं दुव्विमोएहिं ॥
कोसेण कोसियारु- । व्व दुम्मदी णिच्च अप्पाणं ॥ १८ ॥

अर्थ— जैसें कोशकार नामा रेशमकी लट सो आपके मुखमैंसूं तांत काढि आपहीकूं बांधे है, तैसें दुर्बुद्धि जीव विषयनिके अर्थि स्त्रीरूप पाशीकरि आपकूं नित्यही

वेष्टन करे है-वेढे है। कैसीक है स्त्रीरूप पाशी? जो दुःखकरिकैंहू नहीं छूटे है॥

रागो दोसो मोहो। कसायपेसुण्णसंकिलेसो य॥
ईसा हिंसा मोसम-। सूया तेणिक्ककलहो य॥ ११९॥
जंपणपरिभवणियप-। रिवादरिपुरोगसोगधणणासो॥
विसयाउलम्मि सुलभा। सव्वे दुक्खावहा दोसा॥ १२०॥

अर्थ— विषयनिकी वांछाकरि आकुल जो पुरुष तामैं, दुःखके करनेवाले येते सर्व दोष प्रकट होय हैं, ते दोष कौन कौन हैं सो कहे हैं- राग, तथा द्वेष, तथा मोह, तथा कषाय, तथा पैशुन्य, तथा संक्लेश, तथा परके गुणनिकूं नहीं सहिसकना सो ईर्षा है, तथा हिंसा, तथा झूंठ, तथा असूया कहिये गुणनिमैं दोषनिका आरोपण करना, तथा चोरी, तथा कलह, तथा वृथा बकवाद, तथा तिरस्कार, तथा कपट, तथा अपवाद इत्यादिक हजारां दोष कामी पुरुषमें प्रकट होय जाय हैं, अर अनेक लोक विनाकारण वैरी होजाय हैं, अर रोग, तथा शोक, तथा धनका नाश येते सर्व दोष कामकै वशीभूत पुरुषकै प्रकट होय हैं। सो इनका विस्तार लिख्या वहोत कथनी होजाय, प्रत्यक्ष अपने अपने ज्ञानमें प्रकट दीखे हैं॥ गाथा—

अवि य वहो जीवाणं। मेहुणसेवाए होदि वहुगाणं॥

तिळणालीए तत्ता- । सळापवेसो व जोणीए ॥ २१ ॥

अर्थ— जैसैं तिलांकी नालीमैं संतप्त लोहकी सलाइके प्रवेशकरि तिलनिका घात होय है, तैसैं मैथुनसेवनकरि योनिस्थानमें बहुत बादरनिगोदिया जीवनिका तथा त्रसजीवनिका नाश होय है ॥ गाथा—

कामुम्मत्तो महिलं । गम्मागम्मं पुणो अविपणाय ॥
सुलहं दुलहं इच्छिय- । मणिच्छियं चावि पत्थेदि ॥ २२ ॥

अर्थ— बहुरि कामकरि उन्मत्त पुरुष या स्त्री योग्य है वा अयोग्य है, या सुलभ है या दुर्लभ है, या मोकूं वांछै है वा नही वांछै है इत्यादिकज्ञानरहित हुवा प्रार्थना करे है-प्रीतिके अर्थि याचना करे है ॥ गाथा—

दट्ठूण परकलत्तं । किह दा पत्थेइ णिग्घिणो जीवो ॥
ण य तत्थ किं पि सुक्खं । पावदि पावं च अज्जेदि ॥ २३ ॥
आहट्टिदूण चिरमवि । परस्स महिलं लभित्तु दुक्खेण ॥
उव्वेगमवीसत्थं । अणिव्वुदं तारिसं चेव ॥ २४ ॥
कहमवि तमंधयारे । संपत्तो जत्थ तत्थ वा देसे ॥
किं पावदि रइसुक्खं । भीदो तुरिदो वि उल्लावो ॥ २५ ॥

अर्थ— प्रथम तो यो कामांध जीव परकी स्त्रीकूं देखिकरि निर्लज्ज हुवा कैसें वांछा करत है? परकी स्त्रीकी वांछामैं कछूहू सुखकूं नही प्राप्त होय है, केवल पापही संचय करे है ॥ भावार्थ– अन्यस्त्रीकूं देखि अभिलाष कीया परकी स्त्री आपकै कैसें आवेगी? नही आवै अर केवल पापबंधही होयगा ॥ बहुरि कदाचित् बहुतकाल अभिलाष करता करता दुःखकरिकै परकी स्त्रीकूं पायकरिकैहू उद्वेग जो भय तथा अविश्वास अर तृप्तिरहितपणातैं जैसें परस्त्रीका लाभ नही हुवा तदि वांछाका मार्‍या दुःखी था, तैसैंही तृप्तिविना दुःखीही रहे है ॥ बहुतकाल तरसता तरसता वांछा करता करता कदाचित् परस्त्रीका मिलापभी होय, तोहू विश्वास नही आवै, मति कदाचित् मेरा तिरस्कार कर दे! तथा अन्यलोकनिका बडा भय रहे है, काहूहीका विश्वास नही करे है, मति कोऊ देख ले वा जाण जाय तो मार्‍या जाऊं! आपा बिगडि जाय इत्यादिक भय रहे है ॥ बहुरि कांऊ बडा कष्टकरिकै कोऊ शून्य घरमें वा वनमें अंधकारका अवसरमें परकी स्त्रीका संगम हुवा तो तहां भयसहित 'मति कोऊ पाछै पाछै आवता होय' ऐसैं कंपायमान हुवा अर कठोरभूमिविषैं जहां अंग उपांग दीखे नही ऐसा स्थानमें अंधेरी रात्रिमैं कोऊ गलीमैं मकानमें व्याकुलचित्त हुवा वचन बोलनेमेंहू भयभीत हुवा कदाचित् शीघ्रतातैं कामसेवन करे है। सो ऐसैं भयसहित पुरुष रतिका सुखकूं कैसें

प्राप्त होय? उद्वेग भय अर अतृप्तता सदाकाल रहे है ॥ गाथा–

परमहिलं सेवंतो । वेरं वधवंधकलहधणणासं ॥
पावदि रायकुलादो । तिस्से णीयल्लयादो वा ॥ २६ ॥

अर्थ— परकी स्त्रीकूं सेवन करनेवालेका सर्व लोक वैरी होय है। वहुरि राजाके पुरुषनितैं तथा तिस स्त्रीके कुटुंवीनितैं नानाप्रकारका ताडन मारण वंधन कलह अर धनका नाश अर अपवाद तिनकूं अवश्य प्राप्त होय है ॥ गाथा–

जदि दा जणेइ मेहुण-। सेवा पावं सदारम्मि ॥
अदितिव्वं कह पावं । ण होज्ज परदारसेविस्स ॥ २७ ॥

अर्थ— जो हाल आपकी स्त्रीविषैंही जो मैथुनसेवन पाप उपजावे है, तो परकी स्त्रीका सेवनतैं अति तीव्र पाप कैसैं नही होय? ॥ इहां कोऊकै ऐसी आशंका उपजै, जो, कामसेवनतैं आपकी स्त्रीमैं वा परकी स्त्रीमैं पाप तो दोऊनिमैं वरोवरिही होयगा सो ऐसैं नहीं जानना। जातैं, अपनी स्त्रीका सेवन तो ऐसा है जो पूर्वोपार्जित कर्म जाका संगम करि दीया तिस स्त्रीनैं कर्मका उदयतैं तथा मंदरागतैं भोगे है तातैं मंदरागतैं उपज्या मंदही वंध है। अर परकी स्त्रीमैं अतितीव्र रागका संकल्पकरि आसक्त होय है, आपकी स्त्रीका तो संयोग करै तवही अल्पराग होय है। अर

परकी स्त्रीकीमांहि रात्रि अर दिन कोऊ अवसरहूमें आसक्तता नही छूटै है, अर रात्रिदिन दुर्ध्यानही बण्यो रहे है अर तृप्तता नही आवे है। अर जामैं ऐसा तीव्र परिणाम उपजे है, जो परस्त्रीकेतांई आप मर जाय अर पैलानैं मारि नाखे है वा अन्य दुष्टनिनै धन देय वाका भर्तापुत्रादिकानैं मराय नाखे है! वा जगतमें अपना अपजस नही गिने है, जातिकुल भ्रष्ट होना नही गिने हैं! तथा बंदिगृहमें पडना, तथा सर्व धनका नष्ट होना, तथा नाक-कान-लिंगछेदनादिक इसलोकमें नाना दंड होइ ताहि नही गिने हैं! लज्जा सर्व छोडि दे है, धर्मभ्रष्ट होजाय है, कुल छोडि नीचकुलकै सामिल होय खानपान करे है, आपका पदस्थ तथा उच्चपणा पंडितपणा तपस्वीपणा लोकमान्यपणा पूज्यपणा सर्व बिगाडे है अर नरक जावनेका भय नही करे है। तातैं परस्त्रीमैं जो आसक्त तिस पुरुषकै जो तीव्रपरिणामकरि पापबंध होय, तैसैं पापबंध कोऊही पापीकै नही होय है ॥

कर्मबंध तो परिणामनिके आधीन है। अर जाकै इस लोकका बिगडना अर परलोकमें नरक जाना दोऊ तो भलाही होहु, परंतु परकी स्त्रीका संगम मेरै होहू ऐसा तीव्र परिणाम होय, तिससमान अधम कोऊ हैही नाही ॥ बहुरि अन्यपुरुषकी स्त्रीकूं अन्यपुरुष सेवन करै, तब जातिकुलकी मर्याद गई। माता औरजाति रही, पिता

औरजाति रह्या, तब सर्व कुल भ्रष्ट होय सर्व धर्म नष्ट होय है। तातैं परस्त्रीकूं अंगीकार करनेसमान और पापकर्म नही है। जातैं परस्त्रीके सेवनेमें अदत्तादान नामा तो चोरीका पाप आवे है अर मायाचार अर झूंठ अर हिंसा अर शीलभंग अर अन्यायप्रवर्तन अर तीव्रराग अर क्रोधादिक कषाय अर विषयनिकी तीव्रता अर अतिआसक्तता अर अतिनिर्लज्जता अर निरंतर दुर्ध्यानता इत्यादिक महान् अनर्थनितैं नरकनिगोदका कारण तीव्रकर्मबंध करे है ॥ गाथा–

माथाधूदाभज्जा-। भगिणीसु परेण विप्पियम्मि कदे ॥
जह दुक्खमप्पणो हो-। इ तहा अण्णस्स वि णरस्स ॥ २८ ॥
एवं परजणदुक्खे। णिरवेक्खो दुक्खवीयमज्जेदि ॥
णीचागोदं इत्थी-। णउंसवेदं च अतितिव्वं ॥ २९ ॥

अर्थ— जैसैं अपनी माता तथा पुत्री तथा अपनी बहण तथा अपनी स्त्री इनतैं कोऊ अन्यपुरुष दुराचार करै तदि आपकै दुःख होय है, तैसैं अन्यपुरुषकी माता पुत्री भार्या भगिनीसूं व्यभिचार कीया अन्यपुरुषकैहू दुःख होय है। ऐसैं अन्यजनकै दुःख होनेका जाकै विचार नही ऐसा अन्यजनके दुःखमें निरपेक्ष जो कामांध सो दुःखका कारण जो अतितीव्र असतावेदनी नामा कर्म तथा नीचगोत्र नामा कर्म तथा स्त्रीवेद

तथा नपुंसकवेद नामा कर्म ताका संचय करे है ॥ गाथा-

जमणिच्छंती महिलं । अवसं परिभुंजदे जहिच्छाए ॥
तह य किलिस्सइ जं सो । तं से परदारगमणफलं ॥ ९३० ॥

अर्थ— जो कोई स्त्री नही इच्छा करती अवश हुई यथेच्छ जबरदस्तीतैं कोऊ पुरुष सेवन करै, तदि सो स्त्री अतिक्लेशनैं प्राप्त होय, सो सर्व पूर्वजन्ममें परस्त्री सेवन करी, ताका फल है ॥ गाथा-

महिलावेसविलंबी । जं णीचं कुणदि कम्मयं पुरिसो ॥
तह वि ण पूरइ इच्छा । तं से परदारगमणफळं ॥ ३१ ॥

अर्थ— जो कोऊ पुरुष स्त्रीका वेषनैं अवलंबन करि नीचकर्म करे है, तोहू कामकी इच्छा पूर्ण नही होय है! कामकी दाहकी मान्याही वले है-तृप्तता नही आवे है! सो सर्व परस्त्रीमैं गमन करनेका फल जानहू ॥ गाथा-

भज्जा भगिणी मादा । सुदा य बहुएसु भवसयसहस्सेसु ॥
अयसायासकरीउ । होंति विसीला य णिच्चं से ॥ ३२ ॥

अर्थ— परकी स्त्रीमैं लंपटी पुरूष नरकनिगोदमें परिभ्रमण करि कदाचित् मनुष्य-भवकूं प्राप्त होय तो, तहां स्त्री तथा बहण तथा माता तथा पुत्री कुशीलिनी तथा

अयश करनेवाली तथा खेद करनेवाली प्राप्त होय है। सो ऐसें कोट्यां भवपर्यंत जो स्त्री माता वहण पुत्री पावै तो व्यभिचारिणीही पावै-शीलवती नहीं प्राप्त होय है॥

होइ सयं पि विसीलो। पुरिसो अदिदुब्भगो परभवेसु॥
पावइ वधवंधादी। कलहं णिच्चं अदोसो वि॥ ३३॥

अर्थ— परकी स्त्रीमैं लंपटी पुरुष सो कुशीलका प्रभावतैं अन्यभवनिविषैंहू आप कुशीलोही होय तथा अतिदुर्भाग्य होइ तथा निर्दोषीभी मारण बंधन कलहकूं नित्यही प्राप्त होय है॥ गाथा-

इहलोए वि महल्लं। दोसं कामस्स वसगदो पत्तो॥
कालगदो वि य पच्छा। कडारपिंगो गदो णिरयं॥ ३४॥

अर्थ— कामकै वशी हुवो जो कडारपिंग नामा मंत्रीका पुत्र सो इस लोकमें महान् दुःखकूं प्राप्त हुवो अर पश्चात् मरणकरिकै नरककूं प्राप्त हुवो॥ गाथा-

एदे सव्वे दोसा। ण होंति पुरिसस्स वंभचारिस्स॥
तव्विवरीया य गुणा। हवंति वहुगा विरागिस्स॥ ३५॥

अर्थ— वहुरि ब्रह्मचारी पुरुषकै ये सर्व दोष-पूर्वैं कहे ते-नहीं होय हैं। कामतैं विरक्त जो शीलवान् पूरुष, ताकै दोषनितैं अपूठे वहुत गुण होय हैं॥ गाथा-

कामग्गिणा धगधगं- । तेण हु डज्झंतयं जगं सव्वं ॥
पिच्छइ पिच्छयभूदो । सीदीभूदो व गदरागो ॥ ३६ ॥

अर्थ— धगधगायमान जो कामाग्नि ताकरिकैं दग्ध होता सर्व जगतकूं देखि अर गया है राग जाका ऐसा त्यागी पुरुष शांतरूप सुखी हुवा संता तिष्ठै है अर साक्षीभूत हुवा देखे है ॥

ऐसें (अनुशिष्टि अधिकारके) ब्रह्मचर्य नामा महा अधिकारविषैं पचवन गाथानिमैं कामकृत दोष कहे ॥ अब पैंसठि गाथानिमैं स्त्रीकृत दोषनिकूं कहे हैं ॥ गाथा—

महिला कुळं सवासं । पदिं सुदं मादरं च पिदरं च ॥
विसयंधा अगणंती । दुक्खसमुद्दंमि पाडेइ ॥ ३७ ॥

अर्थ— विषयनिकरि अंध जो स्त्री सो अपना कुल नहीं गिणे है, जो, 'मैं कोन कुलमें उपजी हूं? कुमार्ग चलूंगी तो सर्व कुल कलंकित होय जायगा! ऐसा विचार नहीं करे है'। बहुरि सहवासी जे कुटुंबके (जन) तिनकी अवज्ञा नहीं गिणे है। बहुरि मेरा भर्ताकी जगतमें बडी प्रतिष्ठा है, मैं कुमार्ग चलूंगी तो मेरा भर्तारकी प्रतिष्ठा बिगडी जायगी, ऐसा विचार नहीं करे है। बहुरि मेरा पुत्र महा ऐश्वर्यवान् है, सर्व-लोकमें मान्य है-पूज्य है, जो मैं अकृत्य करूंगी तो मेरा पुत्र महंतपुरुषनिमें कैसें

मुख दिखायवेगा! ऐसा अनर्थसूं नही शंका करे है। बहुरि मेरी माता तथा पिता लज्जित होय कृष्णमुख होय हृदयमें अतिदग्ध होय आर्तध्यानतैं मरण करेंगे! मोकूं निंद्यकर्म करतैं समस्त कुटुंबके संताप उपजैगा, व्यभिचारिणी दुष्टिणी ऐसा विचार नही करती सर्व कुटुंबकूं दुःखके समुद्रमें पटकत है ॥ गाथा–

माणुण्णयस्स पुरिस- । द्दुमस्स णीचो वि आरुहदि सीसं ॥
महिलाणिस्सेणीए । णिस्सेणीए व दीहदुमं ॥ ३८ ॥

अर्थ— जैसें निःश्रेणी जो निसीरणी ताकरिकै ऊंचा वृक्षके उपरि चढि जाना होय है, तैसें स्त्रीरूप निसीरणीकरिकै, मानकरि ऊंचा जो पुरुषरूप वृक्ष ताका मस्तकविषैं नीचपुरुष चढे है ॥ भावार्थ– अभिमानकरिकै महान उच्चभी पुरुष सो कुशीलिनी स्त्रीके निमित्ततैं अधमपुरुषनिकरिहू तिरस्कार करनेयोग्य होय है। कुशीलिनी माता बहण पुत्रीके निमित्ततैं जगतके नीचपुरुषहू धिक्कार धिक्कार करे हैं ॥

पव्वदमित्ता माणा । पुंसाणं होंति कुलबलधणेहिं ॥
वलिएहि य अखोहा । गिरीव लोगप्पयासा य ॥ ३९ ॥
ते तारिसया माणा- । उ मत्थिज्जंति दुट्ठमहिलाहिं ॥
जह अंकुसेण णिस्सा- । दिज्जइ हत्थी अदिबलो वि ॥ १४० ॥

अर्थ— इस जगतमें पुरुषनिकै "उच्चकुलमें उपजनेकरि; तथा शरीरके बलकरि; अथवा राज्य, सेना, सुभट, परिकरके लोक तिनके बलकरि; तथा धन, संपदा, आजीविकादिकनिकरि" पर्वतसमान बडा अभिमान होय है! कैसाक है अभिमान? जे बडे बलवंतनिकरिहू जिनमैं क्षोभ नही उपजै, पर्वतसमान सर्व जगतके लोकनिकै प्रगट प्रकाशमें आ रह्या है ऐसाहू अभिमान दुष्टस्त्रीनिके संयोगकरिकै मथ्या जाय है, बिगाडिजाय है! जैसैं अतिबलवानहू हस्ती अंकुशकरिकै बैठाणिये है॥ भावार्थ—पर्वतसमानहू महान् कठोर अभिमानी पुरुष व्यभिचारिणी स्त्रीका संगकरि अभिमानरहित होय दीन रंक दासनिकीनांई आचरण करे है॥ गाथा—

आसीय महाजुद्धा। इत्थीहेदुं जणम्मि बहुगाणि॥
भयजणणाणि जणाणं। भारहरामायणादीणि॥ ४१॥

अर्थ—बहुरि इस जगतमेंहू स्त्रीनिके निमित्तही लोकनिकूं भयका उपजावनेवाला भारत रामायणादिक बहुतवार महान् युद्ध होते भये॥ गाथा—

महिलासु णत्थि वीसं-। भो पणयपरिचयकदण्णदा णेहो॥
लहुमेव परगममणा। ताउ सकुलं पि य जहंति॥ ४२॥

अर्थ— स्त्रीनिविषैं विश्वास, तथा स्नेह, तथा परिचय, तथा कृतज्ञता कहिये कीये

उपकारका नही भूलना, तथा स्नेह (मैत्री) येते नहीही हैं। जातैं याका परपुरुषमें चित्त गया पाछै विश्वास रहै नही, परिचय रहै नही, कीये उपकार लोपे दे, स्नेहका भंग करै, तथा आपका कुशल जो भला होना ताही शीघ्रही त्याग करे है॥ गाथा—

पुरिसस्स दु वीसंभं। करेवि महिला वहुप्पयारेहिं ॥
महिला वीसंभेदुं। वहुप्पयारेहि वि ण सक्का ॥ ४३ ॥

अर्थ— इनि स्त्रीनिका ऐसा बुद्धीका सामर्थ्य है, जो, पुरुषकूं बहुतप्रकारकरि विश्वास प्रतीति अपनी कराइ दे, झूंटीकूं सांची प्रतीति कराइ दे, जाकूं पुरुष वारंवार अनुभई-परिचय कीई ऐसीहू सांचके मांहि झूंटकी प्रतीति कराइ दे, अर स्त्रीकूं विश्वास करावनेका कोऊ पुरुषका सामर्थ्य नही है॥ गाथा—

अदिलहुयगे वि दोसे। कदम्मि सुकदस्सहस्समगणंती ॥
पइ अप्पाणं च कुलं। धणं च णासंति महिलाउ ॥ ४४ ॥

अर्थ— अति अलप दोषकूं होतेहू हजारां उपकार नही गिणती ये स्त्री अपने भर्ताकूं मार ले है, तथा आप मरिजाय है, तथा कुलका नाश करे है, तथा धनका नाश करे है॥ गाथा —

आसीविसो व कुविदो । ताउं दूरेण अणदि अप्पाउं ॥
रुट्ठो चंडो राया । व ताउ कुव्वंति कुलवादं ॥ ४५ ॥

अर्थ— ए दुष्टस्त्री कैसीक है? क्रोधकूं प्राप्त हुवा आशीविषजातीका सर्पकीनांई आत्माकूं दूरीहीतैं नष्ट करे है। अर रोषकूं प्राप्त हुवा क्रोधी राजाकीनांई कुलका घात करे है ॥ गाथा—

अकदम्मि य अवराधे । ताउं वीसत्थमिच्छमाणीउं ॥
कुव्वंति वहं पदिणो । सुदस्स ससुरस्स पिदुणो वा ॥ ४६ ॥

अर्थ— अपनी स्वच्छंदप्रवृत्तीकूं इच्छा करती जे स्त्री ते विना अपराधही आपका भर्त्ताकूं मारत है, तथा पुत्रकूं मारै, तथा सुसराकूं मारै, तथा पिताकूं मारे है ॥ भावार्थ— या स्त्रीकी यथेच्छ स्वच्छंदप्रवृत्तीकूं रोकै ताकै मारैही ॥ गाथा—

सक्कारं उवकारं । गुणो व सुहलालणं च णेहो वा ॥
महुरवयणं च महिला । परगदहिदया ण चिंतेइ ॥ ४७ ॥

अर्थ— व्यभिचारिणी स्त्री होय ताकी ऐसी रीति है, जो, आपका भर्त्ता बहुत सन्मान सत्कार करै, तथा वस्त्र आभरण धन भोजन दान देयकारि बहुत उपकार करै, तथा आपका भर्त्ता कुलवान् होय, रूपवान् होय, यौवनवान् होय, शीलवान्

विनयवान्, गुणवान् होय, तथा आपका सुखरूप लाड करतो होय, तथा आपमें बहुत स्नेह धारतो होय, तथा मिष्टवचन बोलतो होय एते अपने पतीके गुण नही चिंतवन करे है परपुरुषमें रक्त ऐसी स्त्री एते गुणानिका धारक तथा इतने उपकार करनेवालाहू पतिकूं मास्याही चाहै अर मारै इसमें संशय नही ॥ गाथा–

साकेदपुराधिवदी । देवरदी रज्जसुक्खपब्भट्ठो ॥
पंगुळहेदुं छूढो । णदीए रत्ताए देवीए ॥ ४८ ॥

अर्थ— देखहू! साकेतपुरका स्वामी देवरति नामा राजा रक्ता नामा स्त्रीके निमित्त राज्य त्यागि देशांतरनैं गमन करता राज्यसुखसूं रहित हुवा, ताकूं रक्ता नामा राणी पांगुलाके निमित्त नदीके मांहि वहाइ दीया! ॥ गाथा–

ईसालुयाए गोववदीए । गामउडधूयया चेव ॥
सीसं छिण्णं पहदो । पासे भल्लेण सीहवलो ॥ ४९ ॥

अर्थ— कोऊ सिंहबल नामा ताकी गोपवती नामा स्त्री सो ग्रामकूटकी पुत्री जो आपकी सोकि ताका मस्तक छेद्या बहुरि शक्ति नामा आयुधकरि सिंहबल नामा भर्ताकूं हणत भई ॥ गाथा–

वीरमदीए सूलगद । चोरदिट्ठोट्ठियाए वाणियउं ॥

पहदो दत्तो य तहा । छिण्णो उट्ठोत्ति आलविदो ॥ ९५० ॥

अर्थ— सूलीउपरि चढ्या चोर ताकरि खंडन कीया है ओष्ठ जाका ऐसी वीरमती नामा दुष्ट स्त्री, सो आपका भर्त्ता जो वणिक्पुत्र ताही हत्यो! अर घोषणा करी– जो, मेरा भर्त्तानैं ओष्ठच्छेद किया है! यातैं दुष्टस्त्री जो अनर्थ करै ऐसा अनर्थ जगतमैं कोऊ नही करे है ॥ गाथा–

वग्घविसचोरअग्गी । जलमत्तगयकिण्हसप्पसत्तूसु ॥
सो वीसंभं गच्छदि । वीसंभं जो महिलियासु ॥ ५१ ॥

अर्थ— जो पुरुष स्त्रीनिमैं विश्वास करे है; सो व्याघ्रमें, विषमें, चोरमें, अग्निमें, जलमें, मदोन्मत्तहस्तीमें, कृष्णसर्पमें, शत्रूनिमें विश्वास करे है ॥ गाथा–

वग्घादीया एदे । दोसं ण णरस्स तं करेजण्हू ॥
जं कुणइ महादोसं । दुट्ठा महिला मणुस्सस्स ॥ ५२ ॥

अर्थ— मनुष्यकै जो महादोष दुष्ट स्त्री करे है; सो महादोष पुरुषकै व्याघ्र, विष, चोर, अग्नि, जल, मदोन्मत्त हस्ती, कृष्णसर्प, शत्रु जे हैं ते नही करे हैं ॥ गाथा–

पाउसकालणदीउ- । व्व ताउ णिच्चं पि कलुसहिदयाउ ॥
धणहरणकदमदीउ । चौरोव्व सकज्जगुरुयाउ ॥ ५३ ॥

अर्थ— ये स्त्री कैसीक हैं? जैसैं वर्षाकालकी नदी अभ्यंतर मलिन होय हैं, तैसैं इनका चित्त राग द्वेष मोह ईर्षा अर असूया कहिये परके गुण नही देखि सकना अर मायाचार इत्यादिक दोषनिकरि निरंतर मलिन हैं। बहुरि जैसैं चोरकी बुद्धि परक धन हरनेमैं है, तैसैं स्त्रीकी बुद्धिहू मधुरवचनकरिकै तथा रतिक्रीडाकरि तथा अनुकूल प्रवृत्तिकरिकै पुरुषका धन हरण करनेमैं उद्यमी है अर अपने कार्य करनेमैं प्रधान है ॥ गाथा—

रोगो दारिद्दं वा। जरा व ण उवेइ जाव पुरिसस्स ॥
ताव पिउं होदि णरो। कुलपुत्तीए वि महिलाए ॥ ५४ ॥

अर्थ— जितनैं; रोग, दारिद्र्य, जरा पुरुषकूं नही प्राप्त होय, तितनैंही कुलमैं उपजी ऐसीहू स्त्रीकूं पुरुष प्रिय है॥ भावार्थ— कुलवंतीहू स्त्री रोगी दरिद्री वृद्ध भर्ताकूं नही चाहे है॥ गाथा—

जुण्णो व दरिद्दो वा। रोगी सो चेव होइ से वेसो ॥
णिप्पीलिउं व उच्छू। माला य मिला पगदगंधा ॥ ५५ ॥

अर्थ—जैसैं जिस अवसरमैं अपना भर्ता युवान था, तथा धनवान् था, तथा नीरोग था, तिस अवसरमैं जो आपकूं प्रिय था; तैसैं वृद्ध तथा दरिद्री तथा रोगी हुवा

सोही आपका भर्त्ता द्वेष करवाजोग्य अप्रिय होत है। जैसैं रसका भरया सांठा तथा प्रफुल्लित उज्वल सुगंध पुष्पमाला अतिरागतैं आदरनेयोग्य होय है, अर जाका रस काढि लीया ऐसा सांठा तथा मलिन हुई गंधरहित माला आदरनेयोग्य नहीं होय है, तैसैंही वृद्ध तथा दरिद्र तथा रोगी पुरुष आदरनेयोग्य नहीं होय है ॥ गाथा—

महिला पुरिसमकण्णा-। ए चेव वंचेइ णियडिकवडेहिं ॥

महिला पुण पुरिसकदं। जाणइ कवडं अवण्णाए ॥ ५६ ॥

अर्थ— स्त्रीका ऐसा सामर्थ्य है, जो सहजही मायाचार कपट करिकै अर पुरुषकूं ठिगत है। अर अपना कपटकूं पुरुष नहीं जानि सकै है। बहुरि पुरुषका कीया कपटकूं या स्त्री सहजही जाणै है— जामैं कुछ जतन नहींही करै अर सहज जाणि जाय ॥ भावार्थ— स्त्रीकी बुद्धि कपट करनेमें ऐसी प्रवीण है, जो, हजारां कपट करले अर ताके कपटकूं बहोत जतनकरिकै पुरुष नहीं जाणि सकै है। अर पुरुषका कीया कपटकूं सहज जाणि ले है—कपट जाननेमें स्त्रीकी बुद्धिकी बडी तीक्ष्णता है ॥ गाथा—

जह जह मण्णेइ णरो। तह तह परिभवइ तं णरं महिळा ॥

जह जह कामेइ णरो। तह तह पुरिसं विमाणेइ ॥ ५७ ॥

अर्थ— पुरुष जैसैं जैसैं स्त्रीका सन्मान करै है, तैसैं तैसैं या स्त्री पुरुषका

तिरस्कार करे है। अर पुरुष जैसैं जैसैं याकूं कामके अर्थि चाहे है, तैसैं तैसैं या पुरुषका अपमान करे है॥ गाथा–

मत्तो गउव्व णिच्चं। पि ताउ मदविंभलाउ महिलाउ ॥
दासे व सगे पुरिसे। किंपि य ण गिणंति महिळाउ ॥ ५८ ॥

अर्थ— मदोन्मत्त हस्तीकीनांई रूपका मदकरि तथा यौवनका मदकरि तथा धनका मदकरि तथा वस्त्र आभरणशृंगारका मदकरिकै ये स्त्रियां जब विह्वल होय हैं, निरंतर अचेत होय हैं, तब आपका दासीपुत्रमें अर अपना भर्त्तारमें किंचितहू विशेष नही जाने हैं!॥ भावार्थ– मदकी भरी हुई स्त्री ऐसा विचार नही करे है, जो, मेरा भर्त्ता कुलवान् पूज्य जगतमें प्रसिद्ध मेरा स्वामी है, अर यो महा अधम नीचबुद्धि मेरी दासीका पुत्र है, मै याकी स्वामिनी हूं ऐसा कामांधके विचार कहां होय है?॥ गाथा–

अणिहुदपरगदहिदया। ताउ वग्घीव दुट्ठहिदयाउ ॥
पुरिसस्स ताव सत्तू। व सदा पावं विचिंतंति ॥ ५९ ॥

अर्थ— जैसैं व्याघ्री विना अपराधही मारनेकूं दुष्टहृदयकूं धारे है, तैसैं अरोक है परपुरुषमें गया चित्त जाका ऐसी दुष्टस्त्रीहू विना अपराधही मारनेकूं व्याघ्रीकीनांई

दुष्टहृदया हैं! बहुरि ते कुशीली स्त्री शत्रूकीनांई पुरुषका अशुभही सदाकाल चिंतवन करे है ॥ गाथा-

संझा व णरेसु सदा । ताउ होंति खणमेत्तरायाउ ॥
वादो व महिलियाणं । हिदयं अदिचंचलं णिच्चं ॥ ९६० ॥

अर्थ— ये स्त्री पुरुषनिमें सर्वकालविषैं संध्याका रागकीनांई अल्पकाल रागकूं धारे हैं । इनिका बहुत वध्या हुवाहू अनुराग एक क्षणमें जाता रहे है । स्त्रीका अन्यपुरुषमें चित्त जाय तब आपका बहुतकालका उपकारी स्नेही तामैं बहुतहू अपना रागभावकूं संध्याका रागकीनांई क्षणमात्रमें त्यागे हैं । बहुरि पवनकीनांई नित्यही इनका हृदय अतिचंचल है, एक पुरुषमें नही स्थिर रहे है ॥ गाथा-

जावइयाइं तणाइं । वीचीउ वालुगा व रोमाइं ॥
लोए हविज्ज तत्तो । महिलाचिंताइं बहुगाइं ॥ ६१ ॥

अर्थ— लोकविषैं जितने तृण हैं, तथा समुद्रमें जितने लहरी हैं, तथा वालू रेतके जितने कण हैं, तथा जितने लोकमें रोम हैं-बाल हैं, तितनेहू स्त्रीके परिणामनिके दुष्टविकल्प अधिक हैं ॥ गाथा-

आगासभूमिउदधी- । जलमेरूवाउणो वि परिमाणं ॥

माउं सक्कं ण पुणो । सक्का इत्थीण चित्ताइं ॥ ६२ ॥

अर्थ— आकाशका तथा भूमीका तथा समुद्रके जलका तथा मेरुका तथा पवनकाहू परिमाण करिये है. परंतु स्त्रीनिके मनके दुष्ट विकल्पनिका परिमाण नही किया जाय है! ॥ गाथा—

चिट्ठंति जहा ण चिरं । विज्जुज्जळवुव्वुर्उं व उक्का वा ॥
तह ण चिरं महिळाए । एक्के पुरिसे हवदि पीदी ॥ ६३ ॥

अर्थ— जैसें बीजली तथा जलका बुद्बुद तथा उल्कापात बहुतकाल नही तिष्ठे हैं, तैसें एकपुरुषविषैं स्त्रीकी प्रीतीहू बहुतकाल नही तिष्ठे है, स्त्रीका चित्तका राग अनेकपुरुषनिमें गमन करे है ॥ गाथा—

परिमाणू वि कहं चि वि । आगच्छेज्ज गहणं मणुस्सस्स ॥
ण य सक्का घेत्तुं जे । चित्तं महिलाए अदिसण्हं ॥ ६४ ॥

अर्थ— मनुष्यकें कदाचित् कोईप्रकार अतिसूक्ष्महू परमाणु ग्रहणमें आजाय, परंतु अतिसूक्ष्म जो स्त्रीका परिणाम सो ग्रहण करनेकूं नही समर्थ होइ है ॥ गाथा—

कुविदो व कण्हसप्पो । दुट्ठो सीहो गउं मदगलो वा ॥
सक्को हवेज्ज घेत्तुं । ण य चित्तं दुट्ठमहिळाए ॥ ६५ ॥

अर्थ— क्रोधकूं प्राप्त हुवा दुष्टसर्प तथा कृष्णसिंह तथा मदकरि व्याप्त हस्ती एते तो ग्रहण करनेकूं समर्थ होइये हैं, परंतु दुष्ट स्त्रीनिका चित्त आपके वशी करनेकूं समर्थ नहीं होइए हैं ॥ गाथा—

सक्का हविज्ज दट्ठुं । विज्जुज्जोएण रूवमच्छिम्मि ॥
ण य महिळाए चित्तं । सक्का अदिचंचळं णादुं ॥ ६६ ॥

अर्थ— आपका नेत्र आपकूं नहीं दीखे है, तोहू बीजलीके उद्योतकरि आपके नेत्रनिका रूपहू देखनेकूं समर्थ होइए है। परंतु स्त्रीका अतिचंचल चित्त जाननेकूं नहीं समर्थ होइए है ॥ गाथा—

अणुवत्तणाइ गुणवय- । णेहिं य चित्तं हरंति पुरिसस्स ॥
मादा व जाव ताउ । रत्तं पुरिसं ण याणंति ॥ ६७ ॥

अर्थ— जितनैं पुरुषका चित्त आपमें आसक्त हुवा नहीं जानै, तितनैं माताकी-नांई अनुकूल प्रवर्तन करिके तथा गुणसहित वचन करिकै पुरुषका चित्तकूं हरे है ॥ कौन कौन प्रकारकरि पुरुषका चित्तकूं हरे हैं, सो कहे हैं ॥ गाथा—

अलिएहि हसियवयणे- । हिं अलियरुयणेहि अलियसवएहिं ॥
पुरिसस्स चलं चित्तं । हरंति कवडाउ महिलाउ ॥ ६८ ॥

महिला पुरिसं वयणे- । हि हरदि य हणदि य पावहिदयेण ॥
वयणे अमयं चिट्ठदि । हियए य विसं महिलियाए ॥ ६९ ॥
तो जाणिऊण रत्तं । पुरिसं चम्मट्ठिमंसपरिसेसं ॥
उड्डाहंति वधंति य । वडिसामिसलग्गमच्छं व ॥ १७०

अर्थ— झूठे हास्यके वचनकरिकै, तथा झूठे रुदनकरिकै, तथा झूठे सोगनकरिकै, कपटतैं ये स्त्रियां पुरुषका चंचलचित्तकूं हरे हैं-आपके वशी करे हैं। बहुरि ये स्त्री वचनकरिकै तो पुरुषका मनकूं हरे है, अर पापरूप हृदयकरि पुरुषकूं हणे है-मारे है। जातैं स्त्रीनिका वचनमें अमृत वसे है अर हृदयमें महान् विष है। जितनैं पुरुषकूं आपमें आसक्त नहीं जानैं तितनैं अनुकूल प्रवर्तन तथा अत्यंत विनयादिककरि पुरुषके आधीन प्रवर्ते है अर पश्चात् पुरुषकूं आपमें आसक्त जाणिकरिकै अर पुरुषकूं चाम हाड मांसहीका फूतला ज्ञानरहित जानिकरि अपमान करे है। अर जैसैं वडिस जो लोहका वक्र कीला तामैं उरग्या जो मत्स्य ताकीनांई पुरुषकूं बांधत है॥ भावार्थ— पुरुषकूं जितनैं आपमैं आसक्त हुवा नहीं जानैं, तितनैं अनेक असत्यादिककरि आपमैं आसक्त करै अर जब आपमैं रक्त हुवा जानैं तदि अवज्ञा करि दे है॥

उदये य वहिज्ज सिला । अग्गी ण डहेज्ज सीदलो होज्ज ॥

ण य महिलाण कदाई । उज्जुयभावो णरेसु हवे ॥ ७१ ॥

उज्जुयभावम्मि अस- । त्तयम्मि किध होदि तासु वीसंभो ॥

वीसंभम्मि असंते । का होज्ज रदी महिलियासु ॥ ७२ ॥

अर्थ— कदाचित् पाषाणकी शिला जलविषैं तिरै, तथा अग्नि शीतल होय दग्ध नही करै, ऐसे नही होनेके कार्यहू कदाचित् होय तोहू स्त्रियनिका भाव तो पुरुषनिमें कदाचित् सरल नही होय है अर सरलभाव नही होता संता स्त्रियनिमें विश्वास कैसैं होय? अर विश्वास जो प्रतीति नही होता संता स्त्रियनिमें रति जो प्रीति तथा आसक्ति सो कैसैं होय? गाथा—

गच्छेज्ज समुद्दस्स वि । पारं पुरिसो तरित्तु उंघवलो ॥

मायाजळमहिलोदधि- । पारं ण य सक्कदे गंतुं ॥ ७३ ॥

अर्थ— महापराक्रमी पुरुष भुजानितैं तिरिकरिकै समुद्रका पारकूंभी प्राप्त होत है, परंतु मायाचाररूप जलकां भऱ्या जो स्त्रीरूप समुद्र ताके पारकूं गमन करनेकूं महाबलवानहू नही समर्थ होतं है ॥ गाथा—

रदणाउला सवग्घा । व गुहा गाहाउळा व रम्मणदी ॥

मधुरा रमणिज्जा वि य । सठा य महिळा सदोसा य ॥ ७४ ॥

अर्थ— जैसी रत्नसहित व्याघ्रकी गुफा अर ग्राहकरि व्याप्त रमणीक नदी है, तैसी वचनकरि मधुर अर रूपकरि रमणीक दीखे है, तोहू आपाका ज्ञानरहित महामूर्ख है अर दोषनिकरि सहित है ॥ भावार्थ— जैसी मिष्टजलकरि भरीहू नदी दुष्टजीवनिकी भरी स्पर्शनयोग्य नहीं है, तैसी मधुरवचनकरि युक्तहू दुष्ट स्त्री अंगीकार करनेयोग्य नहीं है ॥ जैसी रत्ननिकरि भरीहू व्याघ्रकी गुफा रमनेयोग्य नहीं, तैसी वस्त्र आभरण रूप हावभावादिककरि रमणीकहू कुशीलिनी स्त्री आदरनेयोग्य नहीं है ॥ गाथा—

दिट्ठं पि ण सब्भावं । पडिवज्जदि णियडिमेव उड्ढेदि ॥
गोधाणुलुक्कमित्थी । करेदि पुरिसस्स कुलजा पि ॥ ७५ ॥

अर्थ— यह स्त्री कैसीक है? जिनकूं वारंवार दिखाया हुवाहू अर उपदेश्या हुवाहू सत्यार्थभाव नहीं अंगीकार करे है। अर मायाचार छलकूं विना उपदेश्या स्वयमेवही प्राप्त होय है ॥ भावार्थ— स्त्रीकै ऐसाही कोऊ कुमतिज्ञानका बल है, जो धर्मनैं लीया न्यायमार्गरूप दोऊ लोकमें हितकारी ऐसी विद्या नानायत्नकरि शिखायाहू नहीं आवे है। अर छल करना, कपट करना, ठिगना, परका कपट जानि लेना, अनेक वचनकी कला करि मोहित करि लेना, धन हरि लेना, मारि लेना, अपना अपराध छिपावना, परकै दूषण लगाय देना इत्यादिक विनासिखाया हृदयमें

वसे है ॥ बहुरि जैसैं गोह नामा जीव जिस मकानकूं पगकरि पकडि लिया, ताकूं अपनें अंगका टूक होजाय तोहू जाकूं पकड्या ताकूं नहीं छांडे है, तैसैं कुलवंतीहू स्त्री अपना हटकूं नहीं छांडे है, जो हट ग्रहण करै तिसकूं कोटि उपायतैंहू नहीं छांडे है ॥

पुरिसं वधमुवणेदि । त्ति होदि वहुगा णिरुत्तिवादम्मि ॥
दोसे संघादि त्ति य । होइ य इत्थी मणुस्सस्स ॥ ७६ ॥

अर्थ— निरुक्तिवाद जो शब्दका अर्थ तामैं ऐसा भाव जानना, जो 'पुरुषकूं वध जो मरण ताहि प्राप्त करै' तातैं याकूं 'वधू' कहिये है। बहुरि 'मनुष्यके दोषनिनैं सङ्घातयति कहिये इकठे करै ताकूं स्त्री कहिये है ॥ भावार्थ— स्त्रीनिकी संगतितैं पुरुषमें अनेकदोषनिका संचय होय है, तातैं स्त्री है ॥ गाथा—

तारिसउ णत्थि अरी । णरस्स अण्णो त्ति उच्चदे णारी ॥
पुरिसं सदा पमत्तं । कुणदित्ति य उच्चदे पमदा ॥ ७७ ॥

अर्थ— मनुष्यकै स्त्रीसमान और अरि कहिये वैरी नहीं है, तातैं याकूं नारी कहिये है। बहुरि पुरुषकूं प्रमादी करै है, तातैं याकूं प्रमदा कहिये है ॥ गाथा—

गलए लायदि पुरिस- । स्स अणत्थं जेण तेण विलया सा ॥
जोजेदि णरं दुक्खे । ण तेण जुवदी य जोसा य ॥ ७८ ॥

अर्थ— पुरुषके कंठविषैं अनर्थनिकूं लयति कहिये लीन करै तातैं स्त्रीकूं विलया कहिये। बहुरि नरकूं दुःखकरिकै योजयति कहिये युक्त करै, तातैं याकूं युवति कहिये तथा योषा कहिये ॥ गाथा—

अवलेत्ति होदि जं से। ण दढं हिदयम्मि धिदिवळं अत्थि ॥
कुम्मरणोपायं जं। जणयदि तो वुच्चदि कुमारी ॥ ७९ ॥

अर्थ— स्त्रीनिके प्रसंगतैं पुरुषनिके हृदयविषैं धैर्यका बल नष्ट होय है, तातैं याकूं अबला कहिये है। बहुरि पुरुषनिके कुमरणको उपाय उत्पन्न करै, तातैं याकूं कुमारी कहिये है ॥ गाथा—

आलं जणेदि पुरिस-। स्स महल्लं जेण तेण महिला सा ॥
एवं महिलाणामा-। णि होंति असुभाणि सव्वाणि ॥ ९८० ॥

अर्थ— पुरुषनिकै महान् अनर्थ उपजावे है, तातैं याकूं महिला कहिये है। ऐसैं स्त्रीके जितने नाम हैं, तितने संपूर्ण अशुभ हैं, नामही दोषनिकी घोषणा करे हैं ॥

णिलउ कलीए अलिय-। स्स आलउ अविणयस्स आवासो ॥
आयासस्सावसधी। महिला मूळं च कलहस्स ॥ ८१ ॥
सोगस्स सरी वेर-। स्स खणी णिवहो वि होइ कोहस्स ॥

णिचउं णियडीणं आ- । सवो य महिला अकित्तीए ॥ ८२ ॥

अर्थ— जितनी जगतमें कलह, सो स्त्रीके निमित्ततैं होय है, तातैं स्त्री है सो कलहका स्थान है। तथा सकल असत्य यामैं वसे है, तातैं या स्त्री असत्यका स्थान है। बहुरि या स्त्री अविनयका आवास है, यामैं रागी पुरुष पिताकी उपाध्यायकी शिक्षा नहीं ग्रहण करे है, तातैं अविनयका स्थान है। बहुरि खेदकूं अवकाश देनेवाली है। बहुरि कलहका मूल है, इसविना कलहकी उत्पत्ति होय नहीं। बहुरि शोककी नदी है। अर वैरकी खानि है। क्रोधका पुंज है। बहुरि मायाचारका समूह है। बहुरि अकीर्तीका आश्रय है। गाथा—

णासो अत्थस्स खउं । देहस्स य दुग्गदीए मग्गो य ॥
आवाहो य अणत्थ- । स्स होइ पहवो य दोसाणं ॥ ८३ ॥

अर्थ— स्त्री है सो अर्थका नाश करनेवाली है, जातैं जितना धन उपार्जन करै है तितना स्त्रीके मार्ग होय नष्ट होय है, बहुरि स्त्रीनिका रागतैं देहकाहू नाश होय है। बहुरि स्त्रीही नरक-तिर्यंचगति जावनेका मार्ग है। बहुरि अनर्थरूप जल आवनेका धोरा हैं। बहुरि दोषनिकूं उत्पन्न करनेवाली है ॥ गाथा—

महिला विग्घो धम्म- । स्स होदि परिहो य मोक्खमग्गस्स ॥

दुख्खाण य उप्पत्ती । महिला सुख्खाण य विवत्ती ॥ ८४ ॥

अर्थ-- स्त्री है सो धर्ममें विघ्न है अर मोक्षमार्गकै आगल है, दुःखनिकी उत्पत्तिभूमि है, सुखनिकूं नाश करनेकूं विपत्ति है ॥ गाथा-

पासो व बंधिदुं जे । छित्तुं महिला असी व पुरिसस्स ॥
सेल्लं व विंधिदुं जे । पंको व णिमज्जिदुं महिला ॥ ८५ ॥
सूलो इव भित्तुं जे । होइ पवोदुं तहा गिरिणदी व ॥
पुरिसस्स खुप्पिदुं क- । द्दमो व मच्चू व मरिदुं जे ॥ ८६ ॥
अग्गी वि य डहिदुं जे । मदो व पुरिसस्स मुज्झिदुं महिला ॥
महिला णिकत्तिदुं कर- । कचो व कंडू व पउलेदुं ॥ ८७ ॥
फड्डेदुं परसू वा । होदि तहा मुग्गरो व ताडेदुं ॥
अवहणणं पि य चुण्णे- । दुं जे महिला मणुस्सस्स ॥ ८८ ॥

अर्थ-- ये स्त्री कैसीक है? पुरुषकूं बांधनेकूं पाश है, अर छेदनेकूं खड्गकीनांई है, अर भेदवेकूं वहाला-शल्यकीनांई है, अर डबोइवेकूं महान् कर्दम है, अर भेदवेकूं शूल है, अर परिणामके वहाइवेकूं पर्वततैं उतरती नदीकीनांई है, मांहि पैसि जानेकूं तथा गडिवेकूं अंध कर्दमकीनांई है, मारनेकूं मृत्युकीनांई है, वहुरि दग्ध करनेकूं आग्नि-

कीनांई है, पुरुषकूं मूढ करनेकूं मदिराकीनांई है, चीरवेकूं करोंतकीनांई है, खुजालवेकूं खाजीकीनांई है, फाडिवेकूं फरसीकीनांई है, तथा ताडन करनेकूं मुद्गरकीनांई है, चूर्ण करिवेकूं पीसनीकीनांई है, ऐसैं पुरुषकै दुःख उपजावनवाली स्त्री है ॥ गाथा—

चंदो हविज्ज उण्हो । सीदो सूरो वि घट्टमागासं ॥

ण य होज्जमदोसा भ- । द्दिया वि कुळबाळिया महिला ॥ ८९ ॥

अर्थ— कदाचित् चंद्रमा उष्ण होजाय, अर सूर्य शीतल होजाय, अर आकाश कठोर होजाय, तोहू कुलवंती स्त्रीहू दोषरहित नहीं होय है अर सरलपरिणामकूं नहीं धरै है॥गाथा

एए अण्णे य वहू । दोसे महिलाकदे विचिंतयदो ॥

महिलाहि तो वि चित्तं । उव्वियदि विसग्गिसरिसीहिं ॥ ९९० ॥

वग्घादीणं दोसे । णच्चा परिहरदि ते जहा पुरिसो ॥

तह महिलाणं दोसे । दट्ठुं महिलाउ परिहरइ ॥ ९१ ॥

अर्थ— स्त्रीनिकरि कीये येते दोष तथा अन्यहू बहुत दोष, तिननैं चिंतवन करता पुरुषका चित्त इनि स्त्रियनितैं उद्वेगरूप होय है—पराङ्मुख होय है। कैसीक है ये स्त्री? विषसमान तो अचेत करनेवाली तथा मारनेवाली है, अर अग्निसमान अंतरंगमें दाह करनेवाली अर आत्माका ज्ञान दर्शन चारित्रकूं दग्ध करनेवाली है॥ जैसैं पुरुष व्या-

घ्रादिक दुष्ट तिर्यंचानिके कीये दोष जानि व्याघ्रादिकांकी संगतितैं दूरिही भागि तिष्ठे है, तैसैं स्त्रियनिके दोषानिकूं देखि महान पुरुष इनका दूरिहीतैं त्याग करे है ॥ गाथा–

महिलाणं जे दोसा। ते पुरिसाणं पि होंति णीयाणं ॥
तत्तो अहियदरा वा। तेसिं वलसत्तिजुत्ताणं ॥ ९३ ॥

अर्थ— जे दोष स्त्रीनिके पूर्वे कहे, ते सर्व दोष नीचपुरुषनिकैहू होय हैं, अथवा बलकी शक्तिकरि युक्त जे पुरुष तिनकै स्त्रीनितैंहू अधिक दोष होय हैं ॥ भावार्थ– कितने पुरुषनिका तो परिणामही नपुंसकनितैं अधिक नीच है, नित्यही भंड वचन बोलनेवाले अतिहास्यके स्वभावके धारक हैं, रात्रिदिन कामकी तीव्रताकूं धारे हैं, तथा पुरुषपणामैंहू कितने ऐसे हैं "जे स्त्रीकेसे आभरण, केशभार, दंतनिके मषी, कज्जल कुंकुमादिक हावभाव विलास विभ्रम गान स्पर्शन वचनकूं धारण करिकै अर आपकूं धन्य माने है! स्त्रीनिकीनांई अंगकी चेष्टा केशनिका संस्कार करे हैं, ते पुरुषपर्यायमैंहू नीच आचरणके धारक तिनिकी संगतिकूं व्यभिचारिणी स्त्रीका संगकीनांई त्याग करि उच्च आचरण करना योग्य है ॥ गाथा–

जह सीळरक्खयाणं। पुरिसाणं णिंदिदा उ महिळाउ ॥
तह सीळरक्खियाणं। महिळाणं णिंदिदा पुरिसा ॥ ९३ ॥

अर्थ— जैसैं शीलकी रक्षा करनेवाले पुरुषनिकै स्त्री निंदनेयोग्य है, तैसैं अपना शीलकी रक्षा करनेवाली धर्मात्मा स्त्रियां तिनकै पूरुषनिका संग निंदनेयोग्य है। जे कुलवंती शीलवंती धर्मात्मा स्त्री हैं, तिनिकूं पुरुषनिकी संगति तथा कुशीलिनी स्त्रीनिकी संगति सर्वथा त्यागनेयोग्य है ॥ गाथा–

किं पुण गुणसहिदाउ । इत्थीउ अत्थि वित्थरजसाउ ॥
णरलोयदेवदाउ । देवेहि वि वंदणिज्जाउ ॥ ९४ ॥
तित्थयरचक्कधरवा- । सुदेवबळदेवगणधरवराणं ॥
जणणीउ महिळाउ । सुरणरपवरेहि महियाउ ॥ ९५ ॥

अर्थ— बहुरि शीलादिक गुणनिकरि सहित अर विस्तारनैं प्राप्त हुवा है यश जिनका अर मनुष्यलोकमें देवतासमान अर देवनिकरि वंदनीक ऐसी स्त्री लोकमें नही हैं कहा? अपि तु हैंही ॥ तीर्थंकर, चक्रधर, वासुदेव, बलदेव, गणधर इनकूं उत्पन्न करनेवाली इनकी माता–देवमनुष्यानिमैं प्रधान तिनकरि वंदनीक–ऐसी स्त्रियांभी जगतमैं होतही हैं ॥ गाथा–

एकपादिवइकण्णा । वयाणि धारिंति किति महिळाउ ॥
वेधव्वतिव्वदुक्खं । आजीवं णेति काउ वि ॥ ९६ ॥

अर्थ— कितनी स्त्रियां एकपतिका व्रतकरि सहित अणुव्रतनिनैं धारण करे हैं अर विधवापणाका तीव्रदुःख जीवै जितनैं नहीं प्राप्त होय हैं ॥ गाथा—

सीलवदीउ सुच्चं- । ति महियले पत्तपाडिहेराउ ॥
सावाणुग्गहसम्म- । त्थाउ वि य काउ वि महिळाउ ॥ ९७ ॥

अर्थ— इस लोकमें शीलव्रतकूं धारती पृथ्वीविषैं देवनिकरि सिंहासनादिक प्रातिहार्यनिकूं शीलके प्रभावकरि प्राप्त भई अर शापमें अनुग्रहमें है शक्ति जिनकी ऐसीहू कितनेक स्त्री पृथ्वीतलमें हैंही ॥ गाथा—

उघेण ण वूढाउ । जळंतघोरग्गिणा ण दग्धाउ ॥
सप्पेहिं सावदेहिं य । परिहरिदाउ य काउ वि ॥ ९८ ॥
सव्वगुणसमग्गाणं । साहूणं पुरिसपवरसीहाणं ॥
चरिमाणं जणणित्तं । पत्ता उ हवंति काउ वि ॥ ९९ ॥

अर्थ— लोकमें कितनी शीलवतीनिकूं शीलके प्रभावकरि प्रबलजल वहायवेकूं समर्थ नहीं होय है । अर प्रज्वलित होती घोर अग्नि नहीं दग्ध करिसके है । अर सर्प तथा सिंह व्याघ्रादिक दुष्टजीव दूरिहीतैं छांडि जाय हैं ऐसीहू स्त्रियां हैंही ॥ अर जे सर्वगुणसमूहके धारक साधु तिनकी तथा पुरुषनिमें प्रधान चरमशरीरी तिनकी

मातापणाकूं धारण करती कितनी स्त्रियां जगतमें होयही हैं ॥ भावार्थ– जगतमें ऐसी स्त्रियां होय हैं, जिनकूं देव वंदना करे हैं, सम्यग्दर्शनके धारण करनेवाली एकजन्म बीचि धारण करि तीसरे जन्म निर्वाण गमन करनेवाली महान् साहसके धरनेवाली जगतके पूज्य महासती धर्मकी मूर्ति वीतरागरूपिणी तिनकी महिमा कोटिजिव्हानितैं कोटिवर्ष वर्णन करनेकूं समर्थ कोऊ नही है ॥ गाथा–

मोहोदएण जीवो । सव्वो दुस्सीलमइलिदो होइ ॥
सो पुण सव्वो महिला- । पुरिसाणं होइ सामण्णो ॥ १००० ॥
तह्मा सा पण्णवणा । पउरा महिळाण होदि अधिकिच्चा ॥
सीलवदीउ भणिदे । दोसे किह णाम पावंति ॥ २१ ॥

अर्थ–– सर्वही जो जीव सो मोहका उदयकरि कुशीलकरि मलिन होय है. सो मोहका उदय स्त्रीनिकै अर पुरुषनिकै सामान्य होय है. तातैं या कथनी बहुतप्रकार स्त्रीनिकूं आश्रयकरिकै होत है अर जो शीलव्रत धारण करनेवाली स्त्रियां हैं तिनकै पूर्वं कहे जे दोष ते कैसैं प्राप्त होय? जे मोहकै वशीभूत हैं तिन स्त्रीपुरुषनिकै ये सर्व दोष जानने, मोहरहित कदाचित् दोषनिकूं नही प्राप्त होय हैं ॥

ऐसैं ब्रह्मचर्य नामा महाव्रतका वर्णनमें स्त्रीकृतदोषनिका पैंसठि गाथानिमें

वर्णन कीया ॥ अब ब्रह्मचर्यव्रतके कथनविषैं अडसाठि गाथानिमैं अशुचित्वका वर्णन करे हैं ॥ गाथा—

देहस्स वीयणिप्प- ॥ त्तिखेत्तआहारजम्मवुड्ढीउ ॥
अवयवणिग्गम असुइ ॥ पेच्छसु वाधी य अधुवत्तं ॥ २ ॥

अर्थ—देहके विषैं वीतरागताका कारण ग्यारह अधिकार ज्ञानी शीलवान् तिनकूं जानने योग्य हैं ॥ इस देहका वीज कहा है, सो जानना ॥ १ ॥ तथा देहकी उत्पत्ति कैसी, सो जान्या चाहिये ॥ २ ॥ तथा देहकी उत्पत्तीका क्षेत्र जानना, जो, या देहकी कहां उत्पत्ति होय है? ॥ ३ ॥ वहुरि देहका आहार कहा है? ॥ ४ ॥ तथा देहका जन्म कैसैं होय? ॥ ५ ॥ तथा देह वृद्धीकूं कैसैं प्राप्त होय? ॥ ६ ॥ तथा देहके अवयवांका निर्गमन कहिये प्रकट होना ॥ ७ ॥ तथा देहका मध्यतैं मल निकलना ॥ ८ ॥ तथा देहमैं अशुचिता ॥ ९ ॥ तथा देहमैं व्याधि ॥ १० ॥ तथा देहका अध्रुवपणा ॥ ११ ॥ ये ग्यारह अधिकार चिंतवन करना ॥ तिनमैं वीजकूं तीन गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

देहस्स सुक्कसोणिय- । असुईपरिणामकारणं जह्मा ॥
देहो वि होइ असुई । अमेज्झघदपूरउ व्व तदो ॥ ३ ॥

अर्थ— जातैं देहकी उत्पत्तीका कारण महा अशुचि माताका रुधिर पिताका वीर्य है, जैसैं मलिनवस्तूका कीया जो घेवर सोहू मलिनही होय है, तैसैं अशुचिबीजतैं देहहू अशुचिही उपजे है ॥ गाथा—

दट्ठुं पि अमेज्झं पि व । विहिंसणिज्जं कुदो पुणो होज्ज ॥
उंजिंघिदुमालध्दुं । परिभोत्तुं वा वि तं वीयं ॥ ४ ॥

अर्थ— जो देखतैंही विष्ठाकीनांई ग्लानीके योग्य है, तो ऐसा मलिन माताका रुधिर पिताका वीर्य सो सूंघिवेकूं आलिंगन करवेकूं अर भोगिवेकूं कैसैं समर्थ होइये?

समिदकदो घदपुण्णो । सुज्झदि सुद्धत्तणेण समिदस्स ॥
असुचिम्मि तम्मि वीये । कह देहो सो हवे सुद्धो ॥ ५ ॥

अर्थ— जैसैं समित जो गोहूंकी कणिका ताका कीया जो घेवर सो गोहांकी कणिकका शुद्धपणातैं घेवरहू शुद्धही होय है अर अशुचि जो माताका रुधिर पिताका वीर्य तातैं उपजा देह कैसैं शुद्ध होय? मलिनतैं उपज्या महामलिनही होय ॥ ऐसैं तो देहका बीज कह्या ॥ अब शरीरकी उत्पत्तीका क्रमकूं पांच गाथानिकरि निरूपण करे है ॥ गाथा—

कललगदं दसरत्तं । अच्छदि कलुसीकदं च दसरत्तं ॥ थिरभूदं दसरत्तं ।

अच्छदि गब्भम्मि तं वीयं ॥ ६ ॥ तत्तो मासं बुब्बुद- । भूदं अच्छदि पुणो वि घणभूदं ॥ जायदि मासेण तदो । य मंसपेसी य मासेण ॥७॥ मासेण पंच पुलगा । तत्तो हुंति हु पुणो वि मासेण ॥ अंगाणि उवंगाणि य । णरस्स जायंति गब्भम्मि ॥ ८ ॥ मासम्मि सत्तमे त- । स्स होदि चम्मणहरोमणिप्पत्ती ॥ फुंदणमट्ठममासे । णवमे दसमे य णिग्गमणं ॥ ९ ॥ सव्वासु अवत्थासु वि । कललादीयाणि ताणि सव्वाणि ॥ असुईणि अमेज्झाणि य । विहिंसणिज्जाणि णिच्चं पि ॥ ११०॥

अर्थ— गर्भमें तिष्ठता जो मिल्या हुवा माताका रुधिर अर पिताका वीर्य, सो दश रात्रिपर्यंत तो हालता हुवा तिष्ठे है अर दश दिन गया पाछै काला होय दश रात्रि तिष्ठे है अर वीस दिन पाछै दस दिनमें थिर होय तिष्ठे है—हलन चलन नहीं करै ॥ ऐसें एक मास तो व्यतीत होय पाछै दूजे मासविषें बुदबुदारूप होय तिष्ठे है, तीजे मासविषैं वै बुदबुद घन कहिये कठोरतानैं प्राप्त भया तिष्ठे है, बहुरि चौथे मासविषैं मांसकी पेशी मांसकी डली होय तिष्ठे है ॥ बहुरि पांचमां महीनामैं पंच पुलक उस मांसकी डलीमैं निकसे है, एक मस्तकका आकार अर दोय हस्तनका अर दोय पगनिका ऐसे पंच अंकुर होय हैं. बहुरि छठे मासविषैं मनुष्यके अंग उपांग प्रकट

हैं, तिनमें दोय पग दोय बाहू एक नितंब एक पूठि एक हृदय एक मस्तक ये तो आठ अंग हैं, अर अंगनिमैं नेत्र नासिका कर्ण मुख ओठ अंगुळी इत्यादिकनिकी उपांग संज्ञा है, सो छठे महीनेमें अंग उपांग गर्भविषैं प्रकट होय हैं ॥ अर सप्तम मासविषैं मनुष्यका चाम, तथा नख, तथा रोम जे बाल, तिनकी उत्पत्ति होय है, अर अष्टम मासविषैं गर्भमें किंचित् चलन करे है—हाले है, अर नवमां मासविषैं तथा दशमां मासविषैं उदरवारैं निर्गमन होय है ॥ ऐसैं जिस दिन गर्भमें माताका रुधिर पिताका वीर्य स्थिति रह्या, तिस दिनतैं कललादिक जे सकल व्यवस्था तिनविषैं महामलिनवस्तुकीनांई अशुचि नित्यही ग्लानियोग्यही रह्या! ऐसैं या देहकी उत्पत्तिहू महा अशुचिही कही ॥ अब जहां यो देह उपज्यो उस देहके क्षेत्रकूं तीन गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

आमासयम्मि पक्का- । सयस्स उवरिं अमेज्झमज्झम्मि ॥
वत्थिपडलावछण्णो । अच्छइ गब्भो हु णवमासं ॥ ११ ॥

अर्थ— भक्षण कीया जो भोजन सो उदरकी अग्निकरि अपक्क होहै, ताकूं आम कहिये, ताके रहनेका स्थान ताहि आमाशय कहिये, अर जो भोजन उदरकी अग्निकरि पकि गया ताकूं पक्क कहिये, सो पक्क आहार जो मल ताके रहनेका स्थानकूं

पक्काशय कहिये है, सो आमका रहनेका स्थानविषैं अर पक्क जो मल ताका स्थानके उपरि पक्क अपक्क जो विष्ठा ताके बीचि वस्तिपटल जो मांसरुधिरकरि व्याप्त जो जालकासा आकार ताके मांहि नव महीनापर्यंत गर्भमें तिष्ठत है ॥ गाथा—

वमियाअमेज्झमज्झे । मासंमि समखमच्छिदो पुरिसो ॥
होहिदि विहंसणिज्जो । जदि वि सयाणियल्लउं होज्ज ॥१२॥
किह पुण णवदसमासे । उसिदो वमिए अमेज्झमज्झम्मि ॥
होज्ज ण विहिंसणिज्जो । जदि वि सयणियल्लउं होज्ज ॥ १३ ॥

अर्थ— वमन अर विष्ठा इनके मध्य एक महिनामात्रहू कोईकूं प्रत्यक्ष तिष्ठता देखै तो यद्यपि आपका निज बंधु होइ तोहू ग्लानि करनेयोग्य होय है, बहुरि जो नव महिना तथा दश महिना पर्यंत वमन अर विष्ठाके मध्य तिष्ठ्या पुरुष ग्लानियोग्य कैसैं नही होय? यद्यपि आपको घणो प्रिय हितू बांधवही होहू सुग्या करनेयोग्य होयही है ॥ ऐसैं तीन गाथानिकरि क्षेत्रकी अशुचिता वर्णन करी ॥ अब जिस आहारकरि देह वृद्धीकूं प्राप्त हुवा, तिस आहारकूं पांच गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

दंतेहि चविदं वी- । लणं च सिंभेण मेलिदं संतं ॥
मायाहारियमण्णं । जुत्तं पित्तेण कडुयेण ॥ १४ ॥

वमियाअमेज्झसरिसं । वादविउजिदरसं खलं गब्भे ॥
आहारेदि समंता । उवरिं विप्पंतयं णिच्चं ॥ १५ ॥
तो सत्तमम्मि मासे । उप्पलणालसरिसी हवइ णाही ॥
तत्तो पभूदि माए । वमियं आहरदि णाहीए ॥ १६ ॥

अर्थ— गर्भविषैं तिष्ठता मनुष्य काहेका आहार करे है, सो कहे हैं ॥ माताकरि भक्षण कीया जो अन्न सो प्रथम तो दंतनिकरि चर्वण कीया, बहुरि वीलनं कहिये सूक्ष्म कीया, बहुरि कफकरि मिल्या, बहुरि कडवा पित्तकरि संयुक्त हुवा, वमन कीया जो मलिन मल ताके सदृश हुवा, बहुरि गर्भमें पवनकरिकै खलभाग अर रसभाग जुदा कीया सो सर्वतरफतैं उपरितैं झरता-पडता जो बूंद ताही नित्यही गर्भमें तिष्ठता जन आहार करे है ॥ बहुरि छ महिनापाछै सप्तम मासविषैं कमलकी नालीसदृश नाभी होय है सो नाभीकी नालीकरि महान् मलिन वमन अर अपक्व मल ताहि आहार करे है ॥ गाथा—

वमियं व अमेज्झं वा । आहरिदं वा सकिं पि ससमक्खं ॥
होदि हु विहिंसणिज्जो । जदि वि य णीयल्लउं होज्ज ॥ १७ ॥
किह पुण णवदसमासे । आहारेदूण तं णरो वमियं ॥

होज्ज ण विहिंसणिज्जो । जदि वि य णीयल्लउं होज्ज ॥ १८ ॥

अर्थ— जो आपका निजबंधुभी होय अर जो एकवारहू आपके प्रत्यक्ष वमन वा अमेध्य जो विष्ठा ताही भक्षण करे तो ग्लानिकै योग्य होजाय आदरिवेयोग्य नही रहै, तो जो नव महीना वा दशमहीनापर्यंत वमनकूं आहार करे सो कैसे ग्लानियोग्य नही होय? यद्यपि अपना निजबंधु होय तोहू ग्लानियोग्यही है ॥ ऐसैं आहारकी अशुचिता वर्णन करी ॥ अब शरीरके जन्मकूं दोय गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

असुचिं अपेच्छणिज्जं । दुग्गंधं मुत्तसोणियदुवारं ॥
वोत्तुं पि लज्जणिज्जं । पोट्टमुहं जम्मभूमी से ॥ १९ ॥
जदि दा व विहिंसिज्जइ । वत्थीयमुहं परस्स आलध्दुं ॥
कह सो विहिंसणिज्जो । ण होज्ज सल्लीढपोट्टमुहो ॥ १०२० ॥

अर्थ— जो उदरका मुख है सो इस देहकी जन्मभूमि है, सो कैसाक है उदरका मुख? महान अशुचि है, बहुरि देखनेयोग्य नही है, बहुरि दुर्गंध है, बहुरि मूत्र अर रुधिर इनके निकलनेका द्वार है, बहुरि मुखतैं नाम लेनेमें बडी लज्जा उपजी है, ऐसा उदरका मुख जन्मभूमीहू महान् अशुचि है ! जो हाल अन्य कोऊकी वस्तिमुख जो रुधिरमांसका भऱ्या जालकीनांई प्राणीकूं आच्छादन करनेवाली थैली सो स्पर्शनेतैं

देखनेतैंही महाग्लानि आवै, तो आलिंगन कीया जो योनिमुख तथा जरायुपटलमें वसता कैसैं ग्लानियोग्य नहीं होय? ॥ ऐसैं जन्मभूमीकी अशुचिता कही ॥ अब शरीरकी वृद्धीकूं च्यारि गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

वालो विहिसंणिज्जा- । णि कुणदि तह चेव लज्जणिज्जाणि ॥ मेज्झामेज्झं कज्जा- । कज्जं किं चि वि अयाणंतो ॥ २१ ॥ अण्णस्स अप्पणो वा । सिंहाणयखेलमुत्तपुरिसाणि ॥ चम्मट्ठिवसापूया- । दीणि य तुंडे सगे छुभदि ॥ २३ ॥ जंकिंचि खादि जंकिं- । चि कुणदि जंकिंचि जंपदि अलज्जो ॥ जंकिंचि जत्थ तत्थ वि । वोसरादि अयाणगो वालो ॥ २४ ॥ वालत्तणे कदं स- । व्वमेव जदि णाम संमरेज्ज तदो ॥ अप्पाणं पि य गच्छे । णिव्वेदं किं पुण परम्मि ॥ २४ ॥

अर्थ— यो मनुष्य बाल्य अवस्थाके विषैं "यो वस्तु शुचि है, यो अशुचि है, तथा यो कार्य करनेयोग्य है, यो कार्य करनेयोग्य नही है," ऐसैं किंचिन्मात्रहू नहीं जानता महानिंद्य ग्लानियोग्य कर्म करे है! अर महालज्जनीय कर्म करे है! सो बाल्य अवस्थामैं कहा कहा निंद्यकर्म करे है सो कहे हैं— अन्यका तथा आपका नासिकाका मल, तथा कफ, तथा मूत्र, तथा विष्ठा, तथा चाम, तथा हाड, तथा नसा, तथा राधि इत्यादिक

महानिंद्य वस्तु अपने मुखविषैं क्षेपे है! बाल्य अवस्थामैं अज्ञानी बाल खाद्य तथा अखाद्य खाय है, बोलनेयोग्य वा अयोग्यका विचाररहित वचन बोले है, योग्य तथा अयोग्यका ज्ञानरहित कार्य करे है, बहुरि निर्लज्ज हुवा जीठै तीठै शुचि अशुचि स्थानमें मलमूत्र छोडे है, बहुत कहा कहिये? जो बाल्यपणामैं आपविषैं आप जो सर्व कीया ताकूं जो स्मरणहू करै तो वैराग्यकूं प्राप्त होजाय, परविषैं वर्त्तै है ताका तो कहा कहना! ॥ ऐसैं देहकी वृद्धीमैं अशुचिता दिखाई ॥ अब देहके अवयवनिकूं चौदह गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा–

कुणिमकुडी कुणिमेहि य । भरिदा कुणिमं च सवदि सव्वत्तो ॥
भाणं व अमिज्झमयं । अमिज्झभरिदं सरीरमिणं ॥ २५ ॥

अर्थ— यो देह कुथित जो मलिनवस्तु ताकी कुटी है, तथा मलिनवस्तुहीकरि भरी है, तथा सर्वतरफ सर्वद्वारनितैं वा सर्वशरीरके अंग–उपांगनितैं सिड्या दुर्गंध महामलिन मल ताकूं निरंतर स्रवे है–झरे है, तथा मलका भऱ्या मलका भाजनकीनांई यो शरीर मलकरि भऱ्यो है अर मलमयही है ॥ अब शरीरके अवयवनिकूं तेरह गाथानिकरि जणावे है गाथा–

अट्ठीणि होंति तिण्णि दु । सदाणि भरिदाणि कुणिममज्झाए ॥ सव्वम्मि

चेव देहे संधीणि हवंति तावदिया ॥ २६ ॥ पहारूण णवलदाइं । सिरासदाणिं हवंति सत्ते व । देहम्मि मंसपेसी- । ण होंति पंचेव य सदाणि ॥ २७ ॥ चत्तारि सिराजाला- । णि होंति सोलसय कंडराणि तहा । छच्चेव सिराकुच्चा । देहे दो मंसरज्जू य ॥२८॥ सत्त तयाउ काले- । जयाणि सत्तेव होंति देहम्मि ॥ देहम्मि रोमकोडी- । ण होंति असीदी सदसहस्सा ॥ २९ ॥ पक्कामयासयत्था । य अंतगुंजाउ सोलस हवंति ॥ कुणिमस्से आसया स- । त्त होंति देहे मणुस्सस्स ॥ १०३० ॥ थूणा उ तिण्णि देह- । म्मि होंति सत्तुत्तरं च मम्मसदं ॥ णव होंति वणमुहाइं । णिच्चं कुणिमं सवंताइं ॥ ३१ ॥ देहम्मि मत्थुलिंगं । अंजलिमित्तं सय- प्पमाणेण ॥ अंजलिमेत्तो मेदो । उजो वि य तत्तिउ चेव ॥ ३२ ॥ तिण्णि य वसंजलीउ । छच्चेव य अंजलीउ पित्तस्स ॥ सिंभो पित्तस- माणो । लोहिदमद्धाढयं हवदि ॥ ३३ ॥ मुत्तं आढयमेत्तं । उच्चारस्स य हवंति छप्पत्था ॥ वीसं णहाणि दंता । वत्तीसं होंति पगदीए ॥३४॥ किमिणो व वणो भरिदं । सरीरियं किमिकुलेहि वहुगेहिं ॥ सव्वं देहं अफ्फुं- । दिऊण वादा ठिदा पंच ॥ ३५ ॥ एवं सव्वे देह- । म्मि अव-

अर व्रणांमैंसूं रस झरने लगिजाय, तो बहुतहू प्रिय जो स्त्री ताहि देखनेकूंहू मनुष्य इच्छा नहीं करे है ॥

ऐसें तेरह गाथानिमैं शरीरके अत्यंत अशुचि अवयवनिकूं दिखाये ॥ अब देहतैं मैलका निर्गमन तीन गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

कण्णेसु कण्णगूथो । जायदि अच्छीसु चिक्कणंसूणि ॥
णासागूथो सिंघा- । णयं च णासापुडेसु तहा ॥ १०३९ ॥
खेलो पित्तो सिंभो । वमिया जिब्भामळो य दंतमळो ॥
लाळा जायदि तुंड- । म्मि मुत्तपुरिससुक्कमुदरत्थं ॥ १०४० ॥
सेदो जायदि सिलेसो । व चिक्कणो सव्वरोमकूवेसु ॥
जायंति जूवलिक्खा । छप्पदियाउ य सेदेण ॥ ४१ ॥

अर्थ— इस देहमें जे कर्ण हैं तिनविषैं कर्णगूथ उपजे हैं । अर नेत्रनिमैं नेत्रमल अर अश्रु उपजे है । अर नासिकाके पुटनिमैं सिंघाणक जो नासिकाका मल उपजे है । बहुरि मुखविषैं खंखार, तथा पित्त, तथा कफ, तथा वमन, तथा जिव्हाका मल, तथा दंतमल, तथा लाला उत्पन्न होय है । अर अधोद्वारनिमैं मूत्र, तथा मल, तथा वीर्य उत्पन्न होय है, बहुरि सर्व रोमनिके निकलनेके छिद्र तिनमेंतैं सचिक्कण पसेव

निकले हैं। बहुरि पसेवकरि यूका, तथा लिक्षा, तथा चर्मयूका उत्पन्न होय हैं॥ भावार्थ- पसेवनितैं जूं तथा लीख तथा चमजूं उत्पन्न होय हैं॥ ऐसैं तीन गाथानि-करि निर्गमन कह्या॥ अब अशुचिता दश गाथानिकरि कहे हैं॥ गाथा-

विट्ठापुणो भिण्णो। व घडो कुणिमं समंतदो गलइ॥
पूदिं गालो किमिणो। व वणो पूदिं च वादि सदा॥ ४२॥

अर्थ— जैसैं विष्ठाका भर्‍या फूटा घडा सर्वतरफतैं दुर्गंध मलकूं स्रवे है; तैसैं शरीरहू सर्वतरफतैं निरंतर मल स्रवे है, बहुरि जैसैं कृमिनिका भर्‍या व्रण सो दुर्गंध राधिकूं स्रवे है, तैसैं या शरीरकूं जानहू॥ गाथा-

इंगालो धोवंतो। ण हु सुज्झदि जहा पयत्तेण॥
सव्वेहि समुद्देहिं। सुज्झदि देहो ण धुव्वंतो॥ ४३॥

अर्थ— जैसैं कोइलाकूं सर्व समुद्रके जलकरि बडे यत्नकरि धोवताहू उज्वल नहीं होय है- मांहीतैं शामता निकली है, तैसैं देहकूं बहोत जलादिकतैं धोयेहू मांहीतैं [illegible] मलही निकले है॥ गाथा-

सिण्हाणब्भंगुव-। ट्टणेहि मुहदंत अच्छिधुवणेहिं॥
णिच्चं पि धोवमाणो। वादि सदा पूदियं देहो॥ ४४॥

अर्थ— स्नान, तथा अतर फुलेल, तथा उवटणा तिनकरिकै, तथा मुख दंत नेत्रनिके धोवनेकरिकै, तथा नित्यही स्नानादिकनिमैं धोया हुवाहू देह दुर्गंधही सदा वमे है ॥ भावार्थ— चंदन कर्पूर अतर फुलेल वारंवार लगावतैंहू तथा वारंवार धोवतेंहू यो देह अपनी दुर्गंधता नहीं छांडे है । अपने संसर्गतैं अन्य सुगंधद्रव्यनिकूंहू दुर्गंध करे है ॥ गाथा—

> पाहाणधादु अंजण- । पुढवितयाछल्लिवल्लिमूलेहिं ॥
> मुहकेसवासतंबो- । लगंधमल्लेहिं धूवेहिं ॥ ४५ ॥
> अभिभूददुब्विगंधं । परिभुज्जादि मोहिएहि परदेहं ॥
> खज्जादि पूयइ मंसं । जुत्तं जह कडुगभंडेण ॥ ४६ ॥

अर्थ— पाषाण जो रत्न, तथा सुवर्ण, तथा अंजन, तथा मृत्तिका, तथा सुगंध त्वचा, छालि, तथा वेली, तथा मूल जो जड, तथा मुखकूं सुगंध करनेवाले द्रव्य, तथा केशनिकूं सुगंध करनेवाले तांबूल गंध माल्य धूप, तिनकरि दूरि कीया है दुर्गंध जाका ऐसा परके देहकूं मूढजन अति आसक्त हुवा भोगे है ॥ जैसैं कटुक भांड जे मिरच हिंगु इत्यादिककरि संस्काररूप कीया जो महादुर्गंध मांस ताहि भक्षण करे है ॥ भावार्थ— जैसैं महादुर्गंध मांसकूं हिंग मिरच इत्यादिकनितैं सुधारि अर लोलपी पापी

भक्षण करे है, तैसें नीचपुरुष अन्यके दुर्गंधमलिनशरीरकूं आभरण वस्त्र सुगंधादिकनितैं सुधारि भोगता आपकूं धन्य माने है ॥ गाथा–

अब्भंगादीहिं विणा । सभावदो चेव जदि सरीरमिमं ॥
सोभेज्ज मोरदेहु- । व्व होज्ज तो णाम से सोभा ॥ ४७ ॥

अर्थ— जो मयूर नामा पक्षीका देहकीनांई स्नान उद्वर्तन तेल फुलेलविना स्वभावतैंही जो यो शरीर शोभावान् होय, तदि तो शोभा सांची होय । अर जो स्वयं मलिन दुर्गंध, तो परकृत काहीकी शोभा? ॥ गाथा–

जदि दा विहिंसदि णरो । आलध्दुं पडिदमप्पणो खेलं ॥
कध दा णिपिवेज्ज वुहो । महिलामुहजायकुणिमजलं ॥ ४८ ॥

अर्थ— जो अपना कफ पड्या हुवाकूं आप स्पर्श करनेकूं बडी ग्लानि करे है, तो अब स्त्रीका मुखकी लालका दुर्गंध बुरा जल कामी कैसें पीवै! ॥ गाथा–

अंतो बहिं च मज्झे । व कोइ सारो सरीरगे णत्थि ॥
एरंडगो व देहो । णिस्सारो सव्वहिं चेव ॥ ४९ ॥

अर्थ— जैसें एरंडकी लकडीमें कहूंही सार नही है, तैसें इस मनुष्यके देहमें मांहि बाहिर मध्यमें सर्व शरीरमें कठेही सार नही है ॥ गाथा–

चमरीवालं खग्गिवि- । साणं गयदंतसप्पमणिगादी ॥
दिट्ठो सारो ण य अ- । त्थि कोइ सारो मणुस्सदेहम्मि ॥ १०५० ॥

अर्थ—– चमरीगायके बाल, गेंडाके सिंग, हस्तीका दंत, सर्पके मणि इत्यादिक देहके अंग कोऊ कार्यके साधनेतैं सारहू है। परंतु मनुष्यके देहमैं तौ कोऊ वस्तु साररूप नही है ॥ गाथा–

छगलं मुत्तं दुध्दं । गोणीए रोयणा य गोणस्स ॥
सुचिया दिट्ठा ण य अ- । त्थि किंचि सुचि मणुयदेहम्मि ॥ ५१ ॥

अर्थ—– बकरेका मूत्र, गायका दुग्ध, बलधका गोरोचन लौकिकमैं शुचिहू देखिये है। परंतु मनुष्यदेहविषैं तौ किंचितहू शुचि नही है ॥ ऐसैं देहमें अशुचिता दश गाथानिकरि दिखाइ ॥ अब तीन गाथानिकरि देहमैं व्याधि दिखावे है ॥ गाथा–

वाइयपित्तियसिंभिय- । रोगा तण्हा छुहा समादी य ॥
णिच्चं तवंति देहं । अद्दहिदजलं व जह अग्गी ॥ ५२ ॥

अर्थ—– जैसैं चूलाऊपरि तिष्ठता पात्रमें जलकूं अग्नि ओटावे है तपावे है; तैसैं वात पित्त कफ रोग तथा क्षुधा तृषा तथा अन्य जो खेद ते देहकूं नित्यही तप्तायमान करे है ॥

जदि दा रोगा एक- । म्मि चेव अच्छिम्मि होंति छण्णउदी ॥

सव्वम्मि चेव देहे । होदव्वं कदिहि रोगेहिं ॥ ५३ ॥

पंचेव य कोडीउं । अट्ठासट्ठिं तहेव लक्खाइं ॥

णव णवदिं च सहस्सा । पंचसया होंति चुलसीदी ॥ ५४ ॥

अर्थ— जो एक नेत्रविषैं छिनिवै रोग होत हैं, तो संपूर्ण देहविषैं कितने रोग होनेजोग्य होय? पांच कोडी अडसठि लाख निन्याणवै हजार पांचसै चोरासी रोग देहमें उपजनेजोग्य हैं ॥ ऐसैं तीन गाथानिमैं रोगका वर्णन कीया ॥ अब देहकी अध्रुवता ग्यारह गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा–

पीणत्थणिंदुवदणा । जा पुव्वं णयणदइदिआ आसे ॥

सा चेव होदि संकुडि- । दंगी यिरसा य परिजुण्णा ॥ ५५ ॥

अर्थ— इस शरीरका स्वरूप देखहू! जो स्त्री पूर्वैं यौवन अवस्थामैं पीनस्तनी कहिये जाका कुच पुष्ट था, अर चंद्रमावत् आनंदकारी जाका मुख था, अर नेत्रनिकूं अतिवल्लभ थी, जाका स्पर्शनतैं तथा अवलोकनतैं तृप्ति नहीं आवै थी, सोहीं स्त्री वृद्ध अवस्थामैं तथा रोगकी अवस्थामैं तथा दारिद्र शोकादिककरि दुःख अवस्थामैं कैसी भई है? जाका सर्व अंग संकुचित अर श्रृंगारहास्यादिक रसरहित विरस तथा कामरसरहित अत्यंत जीर्ण कुटीकीनांई दीखे है ॥ गाथा–

जा सव्वसुंदरंगी । सविलासा पढमजोव्वणे कंता ॥
सा चेव मुदा संती । होदि हु विरसा य वीभच्छा ॥ ५६ ॥

अर्थ— जो स्त्री प्रथमयौवनमें सर्व सुंदर अंगका धारनेवाली थी, अर अनेकविलाससहित थी, अर मनोहर थी, सोही स्त्री मृतक हुई संती अतिविरस दीखे है अर अति भयानक दीखे है ॥ ऐसैं दोय गाथानिकरि शरीरकी तथा शरीरकी कांतियौवनकी अध्रुवता कही ॥ अब संयोगहूकी अध्रुवता दोय गाथानिकरि दिखावे है ॥ गाथा—

मरदि सयं वा पुव्वं । सा वा पुव्वं मरिज्जसे कंता ॥
जीवंतस्स व सा जी- । वंती य हरेज्ज वलिएहिं ॥ ५७ ॥
सा वा हवे विरत्ता । महिला अण्णेण सह पलाएज्ज ॥
अपलायंती व तहा । करेज्ज से वेमणस्साणि ॥ ५८ ॥

अर्थ— बहुरि जो मनकूं आह्लादकारी स्नेहकी भरी रूपवान् विनयवान् यौवनवान् स्त्रीकूं छांडि पहली आप मरण करै तो मरणका अवसरमें महान् दुःख उपजे है! जो, हाय हाय! या स्त्री मोविना कैसैं जन्म पूरा करेगी? अर मुझविना याका वांछित कार्य कोन साधेगा? अर मोकूं ऐसा संजोग मिलना अब अनेकजन्मनिमैंहू नहीं! ऐसैं आर्तध्यान करता दुर्गतिमैं जाय पडे है ॥ बहुरि जो स्त्रीका मरण पहली होवै तो,

आप वाका गुण स्मरण करता वियोगका दुःखकरि अत्यंत तप्तायमान होता राति अर दिन शोकमें जलता विलाप करे है! हाय! उस वल्लभाकूं कहा देखूं! मेरा कोन सहायी रह्या? सब कुटुंबमें मेरा कोऊ नही! मेरा दुःखसुख कोनकूं कहूं? दसूं दिशा शून्य दीखे हैं, मेरा ऐश्वर्यका सुख कोनकोनकूं आवै? मेरा यश सुनि कोन हर्षित होय? मेरेमांहि दुःख देखि कोनकूं दरद आवै? जगतमैं कोऊ मेरा रह्या नही! पुत्रबांधवादिक मेरा धनका ग्राहक हैं, मेरा कोऊ नही, मैं असहाय हूं, मेरा आभरण वस्त्रादिक देखि कोन राजी होय? मेरी शय्या मेरा आसन महल मकान वस्त्र आभरणके भोगनेमें कोऊ सहायी साथी नही, मेरी सहचरी जो मोकूं एक घडी आया नही देखती तो अतिव्याकुल मृगीकीनांई धैर्यधारण नही करती, अब मोकूं कोन यादि करै? अर मेरा अभिप्रायकूं कोन पूछै? अर कदाचित् निर्धनता होय तथा रोग आवै तो मेरा दुःखमें कोन पूछनेवाला? कोऊ दीखे नही! सर्व घर भऱ्या है, तोऊ स्त्रीविना ऊजाड है! ग्राम नगर शून्य दीखे है! इत्यादिक संक्लेशपरिणामकरि दुर्ध्यानकूं प्राप्त होय महादुःखतैं मरणकरि दुर्गति जाय है॥ बहुरि आपभी जीवे है अर जीवती स्त्रीकूं कोऊ बलवान् दुष्ट राजा वा म्लेंछ चोर भील जबरीतैं खोसि लेजाय, तो एता वडा दुःख अर दुर्ध्यान होय है, जो, कोऊ वचनद्वारै

कहनेकूं समर्थ नही— यो दुःख मरण करनेतैंहू अधिक है ॥ वहुरि कदाचित् आपकी स्त्री आपमैं विरक्त होय अन्यकी लैर ऊठि जाय तो वडा दुःख है! वहुरि जो अन्यपुरुषमें आसक्त होजाय तो वडा दुःख है! वहुरि जो आपकी आज्ञावारै प्रवर्तै तो दुःख होय है! वहुरि दुष्टनी होय तथा कलहकारिणी होय तथा कटुकवचन वोलनेवाली तथा निर्दयपरिणाम धारण करनेवाली इत्यादिक दुःख देनेवाली होय तो रातिदिनमैं एक घडीहू समता नही आवै, कौनकूं कहूं? कहां जाऊं? जिसकूं कहूं सो हास्य करै, वा वडी दीनता है! इत्यादिक दुःख स्त्रीके निमित्ततैं होय है ॥ अत्र शरीरको अध्रुवपणै कहे हैं ॥ गाथा—

रूवाणि कट्ठकम्मा- । दियाणि चिट्ठंति सारवेंतस्स ॥
घणिदं पि सारवेंत- । स्स ठादि ण चिरं सरीरमिमं ॥ ५९ ॥

अर्थ— काष्ठपाषाणमयरूप तो संवाऱ्या हुवा बहुतकाल तिष्ठे है अर यो मनुष्यशरीरकूं अत्यंतसंस्कार करताहू चिरकालपर्यंत नही तिष्ठे है ॥ गाथा—

मेघहिमफेणउक्का । संझाजलवुवुदोवमणुगाणं ॥
इंदियजोवणमदिरू- । वतेववलवीरियमणिच्चं ॥ १०६० ॥

अर्थ— मनुष्यानिका इंद्रिय यौवन मति रूप तेज वल वीर्य ये सर्व मेघ तथा वासका

जल तथा फेण (फेन-जाग) तथा वीजली तथा संध्याकी रक्तता तथा जलका बुद-बुदाकीनाईं अनित्य है-विनाशीक है ॥ गाथा-

साधुं पडिलाहेदुं । गदस्स सुरयस्स अग्गमहिसीए ॥
णट्ठं सदीए अंगं । कोढेण जहा मुहुत्तेण ॥ ६१ ॥

अर्थ— साधूका आहारदानके अर्थि गया जो सुरत नामा राजा ताकी सती नामा पट्टराणीका कोडकरिकै एकमुहूर्तमें अंग नष्ट हुवो ॥ गाथा-

वज्झो य णिज्जमाणो । जह पियइ सुरं च खाइ तंबोलं ॥
कालेण य णिज्जंता । विसए सेवंति तह मूढा ॥ ६२ ॥

अर्थ— जैसै कोईकूं मारणेकूं लेजाय अर वह पुरुष मदिरा पीवै! अर तांबूल भक्षण करै! तैसैं कालकरिकै ले गये मूढ-जिनकै भय नहीं लज्जा नहीं ते विषयसेवन करे हैं ॥

वग्घपरद्धो लग्गो । मूले य जहा ससप्पविलपडिदो ॥
पडिदमधुद्दिंदुचक्खण- । रदिउं मूलम्मि छिज्जंते ॥ ६३ ॥
तह चेव मच्चुवग्घप- । रद्धो वहुदुक्खसप्पबहुलम्मि ॥
संसारबिळे पडिदो । आसामूलम्मि संलग्गो ॥ ६४ ॥
वहुविग्घमूसएहिं । आसामूलम्मि तम्मि छिज्जंते ॥

लेहदि तह वि अलज्जो । अप्पसुहं विसयमधुविंदुं ॥ ६५ ॥

अर्थ— जैसैं निर्जन वनमैं महादरिद्री कोऊ पुरुष व्याघ्रका भयकरिकै भाग्यो, सो एक अंधकारसहित अर सर्पनिकरि तथा अजगरसहित एक कूप छो तामैं पड्यो! सो कूपमांहि एक वृक्ष छो, सो ताकी जड भींतीमैं छी, सो यो पुरुष उस जडकूं पकडि अनाधार लटकै, अर नीचै अजगर मुख फाडि राख्यो! तथा सर्प मुख फाडि राख्यो! जो, यो पुरुष पडै तो भक्षण करां, अर जिस जडकूं अवलंबन करि निराधार लटकै छा, तिस जडकूं धोला अर काला दोय मूंसा काटनेका उद्यम करने लग्या, अर ताहि अवसरमें इसकूं जड पकरि लटकनेतैं वृक्ष कांप्या, सो वृक्षमें मधुमक्षिकाका छत्ता छा, सो मक्षिका उडिकरि इसका देहकै आइ लागि! सो ताकी घोरवेदना भोगता कूवामैं लटकि रह्या! सो याका ऊंचा मुख छा, तामैं मधुछातातैं सहतकी एक बूंद आय पडी, सो सहतकी बूंदकूं आस्वादनकरि सर्वदुःख भूलि गया! तिस अवसरमें आकाशमें एक विद्याधर विमानमें बैठ्या जाय छो, सो या पुरुषका दुःख देखि अति दयावान् होय आकाशमैंतैं उतरि कूवाके उपरि आय इस पुरुषकूं कह्या– जो, हे भद्र! मेरा हस्त ग्रहण करी, मैं तोकूं विमानमें बैठाय बहोत धन देय तेरे वांछितस्थान प्राप्त करूंगा, अब ढील मति करो, जिस जडकूं

पकडि लटको हो जिसके आधार जीवो हो, सो जड संपूर्ण कटि गई है, अर बाकी नही रही है, सो जड टूटि अर तुम पडोगे! अर नीचे अंधकूपमें अजगर मुख फाड्या बैठ्या है सो निगलि जायगा! तातैं शीघ्रही हस्त ग्रहण करो। तब ऐसैं वचन सुणि कूपमें लटकता पुरुष बोल्या– या एकबूंद सहतकी लटकि रही है, सो याका आस्वादन करि तुमारा हस्तग्रहण करूंगा। तब विद्याधर करुणावान होई बहुरि कह्या– अरे निर्लज्ज मूर्ख! इतना बडा दुःख सहे! अर मरणकूं नही देखे है! सो या बूंदमें कहा स्वाद है? जड कट गई है, गिरनेकी तयारी है, अर या बूंदहू लटकतीही दीखे है, अर तेरे मुखमें नही आवेगी, अर तू पडि अजगरके मुखमें जाय नष्ट होयगा! ऐसैं वारंवार कहतेहू मूढ याही कहे– अब बूंद आजाय है अर आस्वादन करिकै तुमारा विमानमें बैठि चलूंगा। ऐसैं सहतकी बूंदकी आशा करि कालका विलंब करि रह्या, इतनेमें वृक्षकी जड कटि गई! सो टूटि पडिकरि अजगरका मुखमें प्रवेश कीया! तैसैं संसारी मिथ्यादृष्टि जीवहू संसाररूप वनमें परिभ्रमण करता पर्यायरूप अंधकूपमें पड्या! तामैं अजगर समान तो निगोद है, अर चतुर्गतिस्थानीय सर्प हैं, अर वृक्षकी जडसमान याकी आयु है, अर रातिदिन जाय है सोही काले धोले मूंसेनिकरि आयुरूप जडका कटना है, अर

मोहकी माक्षिकासमान कुटुंबादिकनिके तथा क्षुधातृषाके दुःख हैं, अर सहतकी बूंदसमान विषयनिका सुख है, अर विद्याधरसमान दयावान् विनाकारण बांधव यह निर्ग्रन्थ गुरु है, सो वारंवार उपदेश करे है, परंतु सहतकी बूंदकी आशासमान विषयनिकी तृष्णाकरि संसारमें डूबे है निगोदमें जाय पडे है! ॥ इनि तीन गाथानिका भाव लिख्या ॥ ऐसें अध्रुवपणा कह्या ॥ अब अशुचिपणा च्यारि गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा–

वालो अमेज्झलित्तो । अमेज्झमज्झम्मि चेव जह रमदि ।
तह रमदि णरो मूढो । महिलामेज्झे सयममेज्झो ॥ ६६ ॥

अर्थ— जैसें अज्ञानी बालक मलकरि लिप्त मलविषैंही रमे है तैसें मूढ मनुष्य आप अत्यंत मलिन हुवा संता अनेक अशुचिताकरि भरया जो स्त्रीका शरीर तिसविषैं रमे है, ज्ञानीके रमनेयोग्य नही है ॥ गाथा–

कुणिमरसकुणिमगंधं । सेवंतो महिलियाए कुणमकुडी ।
जं होंति सोचयत्ता । एदं हासावहं तेसिं ॥ ६७ ॥

अर्थ— अशुचि मल रुधिरादिक है रस जामैं अर अशुचि है गंध जामैं ऐसा अत्यंत अशुचि जो स्त्रीका शरीर ताहि सेवन करि अर आप शुचि होय है, आपकूं उज्वल

माने हैं, तिनका शुचिपणा जगतमें हास्यका वहनेवाला है। ऐसा मलिन देहमैं आसक्त होय आपकूं उज्वल माने है, सो जगतमें हास्य करनेयोग्य है ॥ गाथा–

एवं एदे अत्थे। देहे चिंततयस्स पुरिसस्स ॥
परदेहं परिभोत्तुं। इच्छा किह होज्ज सघिणस्स ॥ ६८ ॥

अर्थ—ऐसैं देहविषैं येते मलादिक अर्थ तिनकूं चिंतवन करतो अर देहमें ग्लानि-सहित जो पुरुष सो अन्य जो स्त्रीपुरुषका देह ताहि भोगवेकूं कैसैं इच्छा करै? ॥

एदे अत्थे सम्मं। देहे पेच्छंतउ णरो सघिणो ॥
ससरीरे वि विरज्जइ। किं पुण अण्णस्स देहम्मि ॥ १०६९ ॥

अर्थ--एने अर्थ देहमें सत्य देखतो पुरुष ग्लानिसहित होय है, तादि आपका शरीरहीमें विरक्त होय है, तदि अन्यका देहमें कैसैं रागी होई? ॥ ऐसैं अशुचिता वर्णन करी ॥ अब वृद्धसेवा नामा ब्रह्मचर्यका अधिकार ताहि पनरा गाथानिकरि कहे हैं ॥

थेरा वा तरुणा वा। वुड्ढा सीलेहिं होंति वुड्ढेहिं ॥
थेरा वा तरुणा वा। तरुणा सीलेहिं होंति तरुणेहिं ॥ १०७० ॥

अर्थ— अवस्थाकरिकैं वृद्ध होहू वा तरुण होहू, वृद्धीनैं प्राप्त भये जे शील कहिये क्षमा मार्दव आर्जव शौच सत्य संयम तप त्याग आकिञ्चन्य ब्रह्मचर्य इनि गुणनिकी

वृद्धिकरि वृद्ध होत है। बहुरि अवस्थाकरि वृद्ध होहू वा तरुण होहू, तरुणशील जो हास्य तथा कामकी आधिक्यता तथा कषायनिकी प्रबलता तथा भोजनादिक कथामैं राग ताकरि पुरुष तरुण होय है ॥ गाथा–

जह जह वयपरिणामो। तह तह णस्सदि णरस्स बलरूवं ॥
मंदा य हवदि कामर-। दिदप्पकीडा य लोभो य ॥ ७१ ॥

अर्थ— जैसैं जैसैं अवस्थाका परिणमन होय है, तैसैं तैसैं मनुष्यका बल तथा रूप विनसता जाय है अर काम तथा रति तथा दर्प जो मद तथा क्रीडा तथा लोभ मंदताकूं प्राप्त होय है॥ भावार्थ– बाल्य अवस्था तथा यौवन अवस्था जैसैं जैसैं व्यतीत होय तैसैं तैसैं शरीरके बलका तथा रूपका नाश होयही है अर अवस्था वृद्ध होय तदि कामकी तथा आसक्तताकी तथा मद तथा कौतुक क्रीडा तथा लोभ स्वयमेवही घटै, तथा सामर्थ्य घटनेतैं घटेही है, लोकनितैं लज्जा आवैही है ॥ गाथा–

खोभेइ पत्थरो जह। दहे पडंतो पसण्णमवि पंकं ॥
खोभेइ तहा मोहं। पसण्णमवि तरुणसंसग्गी ॥ ७२ ॥

अर्थ— जैसैं जलका न्हदमैं पडतो जो पत्थर, सो जलमें प्रशांत हो रह्याहू कर्दमकूं 'क्षोभयति' कहिये जलमें ऊंचा करि जलकूं कर्दमकरि मलिन करे है, तैसैं

तरुणपुरुषकी संगाति प्रशांत हुवाहू मोहकूं उदय करे है ॥ भावार्थ- जैसें स्वच्छह्न जलका द्रहमारे पत्थरके पडनेतें मलिन होय है, तैसें तरुणकी संगतितें उज्वलपरिणामभी कामादिककरि मलिन होय है ॥ गाथा-

कलुसीकदं पि उदयं । अच्छं जह होइ कदकजोएण ॥
कलुसो वि तहा मोहो । उवसमदि हु वुड्ढसेवाए ॥ ७३ ॥

अर्थ— जैसें कर्दमकरि मलिनभी जल कतकफलके संयोगतें स्वच्छ उज्वल होय है, अर कर्दम नीचैं दबि जाय है; तैसें आत्माका ज्ञानपरिणामकूं मलिन करता जो मोह सो वृद्धपुरुषनिकी संगतितें तत्काल दबिजाय है, ज्ञानपरिणाम उज्वल होय है, तातें जे गुणानिकरि वृद्ध हैं तिनकी संगातिही जीवका कल्याण है ॥ गाथा-

लीणो त्ति मट्टियाए । उदीरादि जलासएण जह गंधो ॥
लीणो उदीरादि णरे । मोहो तरुणासएण तहा ॥ ७४ ॥

अर्थ— जैसें मृत्तिका जो मांटी ताके विषैं लीन जो गंध सो जलका मिलापकरि उदयकूं प्राप्त होय है, तैसेंही तरुणका आश्रयकरि मोह तीव्र उदयकूं प्राप्त होय है ॥ भावार्थ- जैसें मांटीमैं दब्या हुवा गंध जलके पडनेतें प्रगट होय है; तैसें तरुण पुरुष तथा कामी रागी द्वेषीकी संगतितें काम राग द्वेष प्रकट होय हैं ॥ गाथा-

संतो वि मट्टियाए । गंधो लीणो हवदि जळेण विणा ॥
जह तह गोट्ठीए विणा । णरस्स लीणो हवदि मोहो ॥ ७५ ॥

अर्थ— जैसैं मृत्तिकामैं विद्यमानहू गंध जलविना मांटीमैं लीनही रहे है, तैसैं तरुणकी गोष्ठीविना मनुष्यका मोह लीनही रहे है–बाहिर प्रकट नही होय है ॥ गाथा–

तरुणो वि वुड्ढसीळो । होदि णरो वुड्ढसंसिर्उ अचिरा ॥
लज्जासंकामाणा- । वमाणभयधम्मवुद्धीहिं ॥ ७६ ॥

अर्थ— वृद्धपुरुषनिकी संगतिकरिकै तरुणपुरुषहू शीघ्रही लज्जाकरिकै तथा शंकाकरिकै तथा मानकरिकै तथा अपमानकरिकै तथा धर्मबुद्धिकरिकै वृद्धशील कहिये उत्तमपुरुषनिकेसे स्वभावकूं धारण करे है ॥ गाथा–

वुड्ढो वि तरुणसीळो । होइ णरो तरुणसंसिर्उ अचिरा ॥
वीसंभणिव्विसंको । समोहणिज्जो य पयडीए ॥ ७७ ॥

अर्थ– तरुणपुरुषनिकी संगतिकरिकै वृद्धपुरुषहू शीघ्रही विश्वासकरिकै तथा निर्विशंकताकरिकै तथा स्वभावहीसूं मोहसहित वर्तनाकरिकै तरुणपुरुषकासा अधमस्वभाव हास्य कौतुक काम कोपादिकरूप स्वभावकूं धारण करे है ॥ गाथा–

सुंडयसंसग्गीए । जह पादुमसुंडर्उ भिलसादि सुरं ॥

विसए वि तहा पयडी- । ए संमोहो तरुणगोट्ठीए ॥ ७८ ॥

अर्थ— जैसें मद्यपान जिनका कुलहूमें नहीं ऐसें अशौंड जे हैं तेहू मद्य पीवनेवालेकी संगतिकरि मदिरा पीवनेका अभिलाष करे हैं, तैसें स्वभावकरिकैही संसारी मोहसहित वर्ते हैं, बहुरि जे तरुण इंद्रियविषयनिकरि विकल तिनकी संगतिकरिकै उत्तमपुरुष त्यागी पुरुषहू विषयनिकी वांछा करनेमें प्रवर्ते हैं ॥ गाथा-

तरुणेहि सह वसंतो । चलिंदिउ चलमणो य वीसत्थो ॥
अचिरेण सइरचारी । पावदि महिलाकयं दोसं ॥ ७९ ॥

अर्थ— जो पुरुष तरुणपुरुषनिकी संगतिमें वसे है, ताकी इंद्रियां चलायमान होयही हैं अर मनहू अनेकरागद्वेषनिके विकल्पनिकरि चलायमान होय है अर भयलज्जारहित हुवा विश्वासकूं प्राप्त होय है तथा थोरे कालमें स्वेच्छाचारी होय पूर्वे स्त्रीकृत दोष कहे तिनकूं प्राप्त होयही है ॥ गाथा-

पुरिसस्स अप्पसत्थो । भावो तिहिं कारणेहिं संभवइ ॥
विहरम्मि अंधयारे । कुसीलसेवाए ससमक्खं ॥ १०८० ॥

अर्थ— पुरुषका परिणाम तीन कारणनिकरि अप्रशस्त होय है खोटे होय है, एक तो एकाकी स्त्रीनिमें रहनेतैं अर अंधकारमें गमनादिकतैं अर कुशीलेनिकी

संगतितैं प्रत्यक्ष बिगडे है ॥ गाथा-

पासिय सुच्चा व सुरं । पिज्जंतं सुंडउं भिलसदि जहा ॥
विसए य तह समोहो । पासिय सुच्चा व अभिलसदि ॥ ८१ ॥

अर्थ— जैसैं मद्यपानी मद्यकूं पीवते देखिकरिकै तथा श्रवणकरिकै मद्य पीवनेकूं अभिलाप करे है, तैसैं मोही पुरुष विषयनिकूं देखिकरिकै तथा कामभोगरूप हास्य इत्यादिक विषयनिकूं श्रवणकरिकै विषयनिमैं अभिलाप करे है ॥ गाथा-

जादो खु चारुदत्तो । गोट्ठीदोसेण तह विणीदो वि ॥
गणियासत्तो मज्जा- । सत्तो कुलदूसउं य तहा ॥ ८२ ॥

अर्थ— तथा महाविनयवानहू चारुदत्त नामा श्रेष्ठी संगतिके दोषकरि गणिकामैं आसक्त हुवो! तथा मद्यमैं आसक्त हुवो!! अर कुलको दूषक हुवो॥ गाथा-

तरुणस्स वि वेरग्गं । पल्हाविज्जदि णरस्स वुड्ढेहिं ॥
पल्हाविज्जइ य इुही । वि जहा वच्छस्स फरिसेण ॥ ८३ ॥

अर्थ— ज्ञान विनय तपकरिकैं वृद्धपुरुष जे है, ते तरुण पुरुषहूकै वैराग्य उत्पन्न करे हैं। जैसैं वतसका स्पर्श गायकूं झरता है दुग्ध जाकै ऐसी करिये है ॥ भावार्थ- जैसैं वाछडेका स्पर्शकरि गऊकै दुग्ध उतरि आवे है, तैसैं ज्ञानवान् विनयवान्

तपस्वीनका संगकरि तरुणनिकै वैराग्य उत्पन्न होय है ॥ गाथा—

परिहरइ तरुणगोट्ठी । विसं व वुड्ढाउळे य आयदणे ॥
जो वसइ कुणइ गुरुणि- । देसं सो णित्थरदि वंभं ॥ ८४ ॥

अर्थ— जो पुरुष तरुण जो विषयांमैं आसक्त तिनकी संगति तो विषकीनांई आत्माके गुणनिकूं घात करनेवाली जानिकरि छांडे है अर ज्ञान विनय शील तपकरि वृद्ध हैं तिनके स्थानकमें वसे है, सो गुरुनिकी आज्ञा पाले है अर सोही ब्रह्मचर्य नामा व्रतका निस्तार करे है-निर्वाह करे है ॥ भावार्थ— जिनकै, तरुण विषयानुरागी-निकै सामिल वसना अर तरुणनितैं गोष्ठी करना बणि रह्या हैं, तिनका ब्रह्मचर्य बिगडिजाय है, अर जिनकै, ज्ञान वैराग्यके धारकनिकै सामिल वसना है, तिनकै शुद्धब्रह्मचर्य रहे हैं ॥

ऐसैं ब्रह्मचर्य नामा अधिकारविषैं वृद्धसेवा पनरह गाथानिकरि कहीं ॥ अब बाईस गाथानिमैं स्त्रीका संसर्ग जो संगति, तातैं जे दोष उपजे हैं तिनकूं कहे हैं ॥ गाथा—

आलोयणेण हिदयं । पचलदि पुरिसस्स अप्पसारस्स ॥ पेच्छंतयस्स
वहुसो । इत्थीथणजहणवदणाणि ॥ ८५ ॥ लज्जं तदो विहंसं । परिचय-
मध णिव्विसंकिदं चेव ॥ लज्जालुउ कमेणा- । रुहंतउ होदि वीसत्थो ८६

वीसत्थदाए पुरिसो । वीसंभं महिळियासु उवयादि ॥ वीसंभाउ पणउ । पणयादु रदी हवदि पच्छा ॥ ८७ ॥ उल्लावसमुल्लावे- । हिं चावि अल्लि- यणपेच्छणेहिं तहा ॥ महिलासु सइरचारि- । स्स मणो अचिरेण खुभ्भादि हु ॥ ८८ ॥ ठिदिगदिविलासविभ्भम- । हासचेट्ठिदकडक्खदिट्ठीहिं ॥ लीला- जुदिरदिसम्मे- । लणोवयारेहिं इत्थीणं ॥ ८९ ॥ हासोवहासकीडा- । रहस्सवीसत्थजंपिएहिं तहा ॥ लज्जामज्जादीणं । मेरं पुरिसो अदिक्कमदि ॥१०९०॥

अर्थ— अल्पधैर्यका धारक जे मोही पुरुष तिनकै स्त्रीके स्तन तथा जघन तथा मुख इनका देखनेकरि मन अत्यंत चलायमान होय है, अर चलायमान हुवापाछै लज्जा नष्ट होय है, अर लज्जाकूं गयापाछै तिस स्त्रीका देखना तथा समीप जावना तथा हसना इत्यादिक स्त्रीनिमैं परिचयकूं प्राप्त होय है, अर स्त्रीनिमैं परिचय हुवापाछै या शंका मनमें नही रहे है– जो, याकरि सहित मोकूं कोऊ देखेंगे तो कहा कहेंगे? ऐसैं लज्जावानहू पुरुष क्रमतैं निःशंक होय विश्वासकूं प्राप्त होय है; जो; या स्त्रीका मेरेमांहि अत्यंत प्रेम है मेरा याका हित ममत्वकी वार्ता दूजे ठिकाणै जाय नही ऐसा विश्वास उपजे है, ऐसैं अपने मनके विश्वासतैं स्त्रीमैं विश्वासनैं प्राप्त होय है, अर ज्यूं विश्वास वधे त्यूं विश्वासतैं स्नेह वधे है अर स्नेहतैं रति जो आसक्तता सो वधे है,

अर आसक्ततापाछै परस्पर वचनालाप प्रवर्तै है, तथा वारंवार मिलना तथा वारंवार देखना तिनकरि स्त्रीमैं स्वेच्छाचारी पुरुषको मन शीघ्रही क्षोभकूं प्राप्त होय है, देख्या-विना वचनालाप कियाविना एकांतमें मिल्याविना मनकूं जक नही पडे है, बहुरि स्त्रीनिके स्थिति रहना तथा गमन करना तथा नेत्रनिके विलास तथा भ्रकुटीनिके विभ्रम तथा हास्य चेष्टा तथा कटाक्षदृष्टि तथा क्रीडा तथा शरीरकी कांति तथा रति तथा मिलाप तथा हास्य उपहास क्रीडा एकांतमें विश्वासरूप वचनालापकरि पुरुष लज्जा कुलमर्यादकी सीमा उलंघन करे है ॥

ठाणगदिपेच्छिदुल्ला- । वादी सव्वासिमेव इत्थीणं ॥
सविलासा चेव सदा । पुरिसस्स मणोहरा होंति ॥ ९१ ॥

अर्थ— सर्वही स्त्रीका विलासकरि सहित स्थान गति अवलोकन वचनालाप सदा पुरुषका मनकूं हरैही है ॥ गाथा—

संसग्गीए पुरिस- । स्स अप्पसारस्स लद्धपसरस्स ॥
अग्गिसमीपे व घयं । मणो हु लहुमेव हि विलाइ ॥ ९२ ॥

अर्थ— अल्प है धैर्यका बल जाका अर स्त्रीनिमैं कीया है परिचय जानै ऐसा पुरुषका मन स्त्रीनिका संसर्गकरिकै अग्नीके समीप घृतकीनांई नरम होइ वहजाय है ॥

संसग्गीसम्मूढो । मेहुणसहिदो मणो हु दुम्मेरो ॥
पुव्वावरमगणंतो । लंघिज्ज सुसीळपायारं ॥ ९३ ॥

अर्थ— यो प्राणीनिको मन जिस कालमें स्त्रीनिका संसर्गकरि मूढ होय है अथवा मोही होय है तथा मैथुनकी वांछासहित होय है तथा मर्यादरहित होय है, तिसकाल पूर्वापर नहीं गिणतो सुंदर शीलरूप कोट ताहि उलंघन करत है ॥ गाथा-

इंदियकसायसण्णा- । गारवगरुका सभावदो सव्वे ॥
संसग्गिलद्धपसर- । स्स ते उदीरंति अचिरेण ॥ ९४ ॥

अर्थ— स्त्रीनिका संसर्गविषै पाया है प्रसार कहिये फैलाव जानै ऐसा पुरुषकै स्वभावहीतैं विनायत्नहीतैं सर्व इंद्रिय कषाय संज्ञा गौरव शीघ्रही उत्कटतानैं प्राप्त होय है ॥ भावार्थ- जो पुरुष स्त्रीनिमैं प्रचार करै, ताके पांचू इंद्रियां विषयनिमें अतितीव्रताकूं प्राप्त होय हैं, क्रोध मान माया लोभ कषाय प्रबलताकूं प्राप्त होय हैं, बहुरि आहार भय मैथुन परिग्रह ये च्यारि प्रकारके संज्ञाकी प्रबलता होय है, तथा ऋद्धिगौरव रसगौरव सातगौरवकरि सहित होय है, तातैं स्त्रीनिका संसर्ग करना बडा अनर्थ है॥

मादं सुदं च भगिणी । एगंते आसियं च तस्स मणो ॥
खुब्भइ णरस्स सहसा । किं पुण सेसासु महिलासु ॥ ९५ ॥

अर्थ— एकांतमैं माता पुत्री बहण इनिकूंहू अवलोकन करता पुरुषका मन शीघ्रही क्षोभनैं प्राप्त होय है, तो अन्य स्त्रीनिमैं चलायमान होय ताका तो कहा आश्चर्य है?

जुण्णं पोच्चलमइलं । रोगियवीभस्सदंसणविरूवं ॥
मेहुणपडिगं पत्थे- । दि मणो तिरियं व खु णरस्स ॥ ९६ ॥

अर्थ— तीव्र कामके परिणामतैं जीर्ण जो वृध्दा स्त्री ताकूं कामीका मन प्रार्थना करे है, बहुरि जो निस्सार होय मलिन होय तथा रोगिणी होय तथा जाकूं देखताही भय आवै ऐसी भयानक होय तथा कुरूप होय तथा तिर्यंचणी होय ऐसीहू स्त्रीकूं कामी पुरुष वांछा करे है! ॥ गाथा—

दिट्ठाणुभूदसुदविस- । याणं अभिलाससुमरणं सव्वं ॥
एसो वि होइ महिला- । संसग्गी इत्थिविरहम्मि ॥ ९८ ॥

अर्थ— जो स्त्री नहींहू होय, तोहू स्त्रीनिमैं कीया संसर्ग कैसाक है? जा थकी पूर्वैं देखे सुने अनुभव कीये जे विषय तिनका अभिलाष तथा स्मरण चिंतवन हृदयमें निरंतर बणेहीं रहे है—स्त्रीसंबंधी विषयवासना जाय नहीं है ॥ गाथा—

थेरो वहुस्सुदो वा । पच्चइउं तह गणी तवस्सी वि ॥
अचिरेण लभदि दोसं । महिलावग्गम्मि वीसत्थो ॥ ९८ ॥

अर्थ— जो पुरुष स्त्रीनिके समूहमें विश्वास करे है सो वृध्द होहू तथा बहुश्रुती होहू तथा बहुतप्रतीतिका पात्र प्रमाणभूत होहू तथा संघका अधिपति सर्व लोकनिमें मान्य पूज्य गणी होहू तथा तपस्वी होहू तोहू स्त्रीनिकी संगतितें थोरा कालमें अपवाद अजस दुराचारकूं प्राप्त होयहीगा, जो स्त्रीनिकी संगति तथा स्त्रीनिसूं वचनालाप करैगा; ताकी प्रतिष्ठा बिगडि जायगी, धर्मभ्रष्ट होजायगा, ज्ञानादिक सर्वगुण भ्रष्ट होय संसारमें डूबि जायगा ॥ गाथा—

किं पुण तरुणा अवहु- । स्सुदा य सइरा य विगदवेसा य ॥
महिलासंसग्गीए । णट्ठा अचिरा ण हो होंति ॥ ९९ ॥

अर्थ— जो वृद्ध तपस्वी ज्ञानवान्‌ही स्त्रीके संसर्गकरि भ्रष्ट हो जाय! तो तरुण अर श्रुतका ज्ञानरहित तथा स्वेच्छाचारी तथा विकाररूप आभरण भेष वस्त्रादिकके धारण करनेवाले स्त्रीनिकी संगतिकरि तथा स्त्रीनितैं वचनालापकरि नहीं नष्ट होयगे कहा? भो लोक हो? स्त्रीनितैं किंचितहू संसर्ग राखेगा तिनकूं नष्ट भयेही जानहू ॥

सगडो हु जइणिगाए । संसग्गीए दु चरणपब्भट्ठो ॥
गणियासंसग्गीए । य कूपचारो तहा णट्ठो ॥ ११०० ॥

अर्थ— संकट नामा मुनि जयिणिका नामा ब्राह्मणीकी संसर्गकरि चारित्रतैं भ्रष्ट

हुवो अर कूपचार नामा मुनि वेश्याका संसर्गकरि नष्ट होत भयो ॥ गाथा–

रुद्दो पारासरो । सच्चइ रायरिसि देवउत्तो य ॥
महिलारूवालोगे । णट्ठा संसत्तदिट्ठीए ॥ १ ॥

अर्थ— रुद्र, तथा पाराशर, तथा सात्यकी, तथा राजर्षि, तथा देवपुत्र एते महान् ऋषि स्त्रीके रूप देखनेमें आसक्त जो दृष्टि ताकरि नष्ट होते भये ॥ गाथा–

जो महिलासंसग्गं । विसं व दट्ठूण परिहरइ णिच्चं ॥
णित्थरइ वंभचेरं । जावज्जीवं अकंपं सो ॥ २ ॥

अर्थ— जो पुरुष स्त्रीका संसर्ग विषकीनाईं देखिकरिकै नित्यही त्याग करे है, सो निष्कम्प हुवा यावज्जीव ब्रह्मचर्यका निर्वाह करे है ॥ भावार्थ— स्त्रीमात्रका संसर्ग त्यागैगा, ताकै निश्चल ब्रह्मचर्य होवेगा अर जो स्त्रीकी संगति स्त्रीतैं वचनालाप तथा अवलोकन करैगा ताका ब्रह्मचर्य नष्ट होयहीगा ॥ गाथा–

सव्वम्मि इत्थिवग्ग- । म्मि अप्पमत्तो सदा अवीसत्थो ॥
वंभं णित्थरदि वदं । चरित्तमूलं चरणसारं ॥ ३ ॥

अर्थ— जो पुरुष संपूर्णस्त्रीनिके समूहमें प्रमादरहित है अर सदाकाल स्त्रीनिका विश्वास नही करै है–दूरिही रहे है, सो पुरुष चारित्रका मूल आचरणमें सार ऐसा

ब्रह्मचर्यव्रतका निस्तार करे है ॥ गाथा—

किं मे जंपदि किं मे । पस्सदि अप्पणो कहं च वट्टामि ॥
इदि जो सदाणुपिरुखइ । सो दढवंभव्वदो होदि ॥ ४ ॥

अर्थ— जाकै निरंतर ऐसा भय रहे है, जो, मैं स्त्रीसूं वचनालाप करूंगा तथा रागतैं देखूंगा, तो ये अन्यलोक मोकूं कहा कहेंगे! कहा देखेंगे! मोकूं कैसैं वर्तेंगे? मोकूं अत्यंत नीच अधम पापिष्ठ कहेंगे देखेंगे वर्तेंगे! याप्रकार जिनके हृदयमें सदाकाल ऐसा चिंतवन रहे है; ते पुरुष दृढ ब्रह्मचर्यके धारक होय हैं ॥ गाथा—

मज्झण्हतिरुखसूरं । व इत्थिरूवं ण पासदि चिरं जो ॥
खिप्पंपडिसंहरदी । दिट्ठिं सो णित्थरइ वंभं ॥ ५ ॥
एवं चिय महिलाए । सद्दे रूवे तहेव संफासे ॥
ण चिरं जस्स दु सज्जइ । मणं खु सो णित्थरइ वंभं ॥ ६ ॥

अर्थ— जो पुरुष मध्यान्हकालका तीक्ष्णसूर्यकीनांई स्त्रीका रूपकूं ठहरि रागरूप हुवा नही देखे है, दृष्टीकूं पडलाप्रमाण शीघ्रही संकोचि ले है—मुद्रित कर ले है, सो ब्रह्मचर्यका निस्तार करे है। बहुरि ऐसेही स्त्रीके शब्द सुननेमें तथा रूप देखनेमें तथा स्पर्श करनेमें जाका मन चिरकाल नही ठहरे है—लगेही नही है, सो पुरुष ब्रह्मचर्यव्रतका

निर्वाह करे है ॥ ऐसें ब्रह्मचर्य नामा महा अधिकारमें स्त्रीसंसर्गके करनेतें जे दोष होय हैं, तिनका वर्णन बाईस गाथानिमें कह्या ॥ अब स्त्रीनिके वशी नही होय हैं, तिनकी महिमाकूं दश गाथानिकरि उपदेश करे हैं ॥

इहपरलोगे जदि दे । मेहुणविस्सुत्तिया हवेजण्हू ॥
तो होहि तमुवउत्तो । पंचविहे इत्थिवेरग्गे ॥ ७ ॥

अर्थ-- हे आत्मन्! इसलोकसंबंधी तथा परलोकमें जो तुमारे मैथुनमें परिणाम होय-ब्रह्मचर्यमें पापके उदयतें नही तिष्ठै; तो तुम स्त्रीकृत दोष, तथा मैथुनकृत दोष, तथा संसर्गकृत दोष, तथा शरीरकी अशुचिता, तथा वृद्धसेवा ये पंचप्रकार स्त्रीनिमें विरक्त करनेके कारण कहे तिनमें उपयुक्त होहू, तातें तुमारा परिणाम कामवासनातें छूटि ब्रह्मचर्यमें दृढ होय है ॥ गाथा-

उदयम्मि जाय वड्डिय । उदयेण ण लिप्पए जहा पउमं ॥
तह विसएहि ण लिप्पइ । साहू विसएसु उसिउं वि ॥ ८ ॥

अर्थ— जैसें जलविषैं उपज्या अर जलमें वृद्धीकूं प्राप्त हुवा जो कमल, सो जलकरिकैं नही लिप्त होय है, तैसें साधु जो है, सो विषयनिमें वर्तताहू विषयनिकरि नही लिप्त होत है ॥ भावार्थ— यद्यपि कमल जलमें उपजे है अर जलमेंही

वृद्धीनैं प्राप्त होय है, तोहू कमलमें ऐसी सचिकणता गुण हैं जातें कमलमें जल चिपैही नही, तैसैं उत्तम साधुजननिकै भेदविज्ञानका प्रभावतें वीतरागता ऐसी प्रकट होय है सो सर्वविषयनिकूं जाणे है अर लीनता तथा आसक्तताकूं प्राप्त नही होय है ॥

उग्गाहिंतस्सुदधिं । अच्छेरमणोल्लणं जह जळेण ॥
तह विसयजळमणोल्लण- । मच्छेरं विसयजलहिम्मि ॥ ९ ॥

जर्थ— जैसैं कोऊ समुद्रकूं अवगाहन करै अर ताकै समुद्रके जलकारिकै आर्द्रपणा नही होय–नही भींजै सो बडा आश्चर्य है, तैसैं विषयरूप समुद्रमें वास करता कोऊ पुरुष विषयरूप जलकरि नही लिप्त होय सो बडा आश्चर्य है ॥ भावार्थ— वीतरागभेद-विज्ञानका ऐसा महिमा है, जो, जो त्रैलोक्य पांचूं इंद्रियनिका विषयमय है, तोहू साधुजन तामैं लिप्त नही होय है ॥ गाथा–

मायागहणे वहुदो- । ससावए अलियदुमगणे भीमे ॥
असुइतणिल्ले साहू । ण विप्पणस्संति इत्थिवणे ॥ १११० ॥

अर्थ— यो स्त्रीरूप वन मायाचारकरि गहन है–जामैं प्रवेश नही दीखै, बहुरि बहुत जे ईर्षा चपलता पिशुनता इत्यादिक दोष तेही जे दुष्टजीव तिनकरि व्याप्त है, बहुरि झूंठरूप जामैं वृक्षनिके समूह हैं, बहुरि इसलोकमैंहू भयानक अर

परलोकमैंहू भयानक अर अशुचितारूप तृणांनिकरि व्याप्त ऐसे स्त्रीरूपवनमें साधुजन आपा भूलि नष्ट नहीं होय हैं ॥

सिंगारतरंगाए । विलासवेगाए जोव्वणजलाए ॥
विहसियफेणाए मुणि । णारिणईए ण उव्भंति ॥ ११ ॥

अर्थ— या नारीरूप नदी शृगांररूप है तरंग जामैं अर विलासरूप है वेग जामैं अर यौवनरूप है जल जामैं अर मंदहास है झाग जामैं ऐसी नारीरूप नदीमैं मुनीश्वर नहीं डूबे हैं। या नारीरूप नदी उत्तममुनिनके चित्तकूं नहीं वहाय सके है ॥ गाथा—

ते अदिसूरा जे विला- ससलिलमदिचवलरदिवेगं ॥
जोव्वणणइमुत्तिण्णा । ण य गहिया इत्थिगाहेहिं ॥ १२ ॥

अर्थ— जगतमें ते अतिशूर वीर हैं, जो यौवनरूप नदीकूं पार उतर गये अर यौवनरूप नदीमैं स्त्रीरूप महाग्राह कहिये मत्स्य तिनकरि नहीं ग्रहण कीये गये। कैसीक है यौवनरूप नदी? विलासरूप है जल जामैं, अर अतिचपल रतिरूप है वेग जामैं ॥ भावार्थ— जे यौवनरूप नदीकूं तिरि पार होगे, ते धन्य हैं। इस यौवनन-दीमैं स्त्रीरूप मत्स्यकरि कोन बचे हैं? जे स्त्रीमैं नहीं रचे, तेही धन्य हैं ॥ गाथा—

महिलावाहविमुक्का । विलासपुंखा कडक्खदिट्ठिसरा ॥

जं ण वधंति सदा विस- । यवणचरं सो हवइ धण्णो ॥ १३ ॥

अर्थ— नारीरूप पारधीकरि छोड्या अर विलासरूप है पांख जाकै ऐसे कटाक्षदृष्टि रूप बाण जिनकूं विषयरूप वनमैं प्रवर्ततेकूं सर्वकालमैं नही घाते हैं, ते धन्य हैं॥ भावार्थ- इस विषयरूप वनमें जो नारीनिके कटाक्षबाणकरि नही घात्या गया, सो धन्य है ॥

विब्वोगतिक्खदंतो । विलासखंधो कडक्खदिट्ठिणहो ॥
परिहरदि जोव्वणवणे । जमित्थिवग्घो तगो धण्णो ॥ १४ ॥

अर्थ— नानाप्रकारके भ्रकुटीके विभ्रमही हैं तीक्ष्ण दंत जाकै अर नेत्रानिके विलासही हैं स्कंध जाकै अर कटाक्षदृष्टीही है नख जाकै ऐसा स्त्रीरूप व्याघ्र जाकूं यौवनरूप वनमें नही घात कीया, सो धन्य है ॥ गाथा—

तेलोक्काडविदहणो । कामग्गी विसयरुक्खपज्जालिउ ॥
जोव्वणतणिल्लचारी । जं ण डहइ सो हवइ धण्णो ॥ १५ ॥

अर्थ— त्रैलोक्यरूप वनकूं दग्ध करता अर विषयरूप वृक्षनिकरि प्रज्वालित ऐसा कामरूप अग्नि है सो जिस यौवनरूप तृणनिमैं गमन करते पुरुषकूं नही जाले है, सो पुरुष धन्य है ॥ भावार्थ- कामरूप अग्नि जाकूं यौवन अवस्थामैं दग्ध नही कीया सो पुरुष धन्य है ॥ गाथा—

विसयसमुद्दं जोव्वण- । सलिलं हसियगइप्पोक्खिउम्मीयं ॥
धण्णा समुत्तरंति हु । महिलामयरेहिं अच्छित्ता ॥ १६ ॥

अर्थ— यो विषयरूप समुद्र है तामैं यौवनरूपी जल है अर स्त्रीनिके हास्य तथा गमन अर अवलोकन येही जामैं लहरी हैं सो ऐसा विषयरूप समुद्रकूं जे स्त्रीरूप मगर–मत्स्यनिकरि नहीं स्पर्शन कीये–नहीं ग्रहण कीये समुद्रकूं तिरत हैं, ते धन्य हैं ॥ भावार्थ– विषयरूप समुद्रमें स्त्रीरूप मगर मत्स्य वसे हैं, सो ऐसे समुद्रकूं स्त्रीरूप मत्स्यसूं जे टलि अर पार उतर गये, ते धन्य हैं ॥

ऐसैं अनुशिष्टि नामा महा अधिकारविषैं ब्रम्हचर्यका वर्णन दोयसै इकतालीस गाथामैं समाप्त कीया ॥ अब परिग्रहत्याग नामा व्रतकूं सडसठि गाथानिकरि कहे हैं ॥

अब्भंतरवाहिरए । सव्वे गंथे तुमं विवज्जेही ॥
कदकारिदाणुमोदे- । हिं कायमणवयणजोगेहिं ॥ १७ ॥

अर्थ— हे आत्मन! अभ्यंतर अर बाह्य जे सर्व परिग्रह तिननैं मनवचनकाय-कृतकारितअनुमोदनाकरि तुम त्याग करहू ॥ गाथा–

मिच्छत्तवेदरागा । तहेव हस्सादिया य छद्दोसा ॥
चत्तारि तह कसाया । चोद्दस अब्भंतरा गंथा ॥ १८ ॥

अर्थ— वस्तूका यथावत् श्रद्धानका अभाव, सो मिथ्यात्व ॥ १ ॥ अर स्त्रीका विषयमें, अर पुरुषका स्पर्शनादिविषयमें, अर नपुंसकका अंगादिकनिके स्पर्शमें, तथा स्त्रीपुरुष दोऊके मध्य रमनेमें, जो रागकरि आसक्तता, ये तीन वेद हैं ॥ ३ ॥ तथा हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा ये छह नोकषाय ॥ ६ ॥ अर क्रोध, मान, माया, लोभ ये च्यारि कषाय ॥ ४ ॥ ऐसे ये चौदह अभ्यंतरपरिग्रह हैं ॥ गाथा—

> वाहिरसंगा खेत्तं । वत्थुं धणधण्णकुप्पभंडाणि ॥
> दुपयचउप्पयजाणा- । णि चेव सयणासणे य तहा ॥ १९ ॥

अर्थ— धान्य उत्पन्न होनेका क्षेत्र ॥ १ ॥ अर जायगा रहनेयोग्य तथा अन्य मकान तिनकूं वास्तु कहिये ॥ २ ॥ बहुरि सोना, रूपा, रुपया, महोर इत्यादिकनिकूं धन कहिये ॥ ३ ॥ बहुरि चावल तथा गोहूं जव इत्यादिक धान्य होय हैं ॥ ४ ॥ बहुरि वस्त्रादिक कुप्य हैं ॥ ५ ॥ बहुरि कुंकुम, कर्पूर, मिरच, हिंग्वादिक भांड हैं ॥ ६ ॥ दासी दास तथा अन्य सेवकनिका समूह सो द्विपद हैं ॥ ७ ॥ बहुरि हस्ती घोडा वलध इत्यादिक चतुष्पद हैं ॥ ८ ॥ बहुरि पालखी विमान इत्यादिक यान हैं ॥ ९ ॥ बहुरि शय्या पर्यंकादिक अर सिंहासनादिक आसन ॥ १० ॥ ये दशप्रकार बाह्यग्रंथ हैं ॥ बाह्यपरिग्रहका परित्यागविना आत्माके दर्शन ज्ञान चारित्र वीर्य अव्याबाधसुख इत्या-

दिक गुणनिके घात करनेवाला मोहमलका अभाव नहीं होय है, ऐसैं दृष्टांतकरि कहे हैं॥

जह कुंडउ ण सक्का । सोधेदुं तंदुळस्स सतुसस्स ॥
तह जीवस्स ण सक्कं । मोहमळं संगसत्तस्स ॥ ११२० ॥

अर्थ— जैसैं तुससहित जो तंदुल, ताका कुंड जो अंतरमल, सो दूरि करनेकूं नही समर्थ होइए है; तैसैं बाह्यपरिग्रहमें आसक्त जो जीव सो आपके अभ्यंतर जो मोहमल ताके दूरि करनेकूं नही समर्थ होइए हैं ॥ भावार्थ-- चांवलनिका उपरला तुस पहली दूरि होजाय, तदि तो मांहिली लालीहू दूरि होसके है। अर जाका तुसही दूरि नही होय ताकी लाली मेटनेकूं कोन समर्थ है? जैसैं जानैं बाह्यपरिग्रहही नही त्याग्या, ताका अभ्यंतर आत्मा उज्वल कदाचित्‌ही नही होय है ॥ गाथा–

रागो लोभो मोहो । सण्णाउ गारवाणि य उदिण्णा ॥
तो तइया घेत्तुं जे । गंथे वुध्दी णरो कुणइ ॥ २१ ॥

अर्थ-- परद्रव्यमें आसक्तता, सो राग है। परिग्रहकी इच्छा, सो लोभ है। परवस्तूमैं ममत्व, सो मोह है। हमारै यो वस्तु सुखकारी है ऐसा इच्छारूप जो परिणाम, सो संज्ञा है। पर्यायसंबंधी बडापनाका अभिमान धरना, सो गौरव है। जिस अवसरमें राग लोभ मोह संज्ञा गौरव ये उत्कटतानैं प्राप्त होय हैं, तिस अवसरमें यो मनुष्य परि-

संगणिमित्तं ईसा- । सूयासल्लाणि जायंति ॥ २६ ॥

अर्थ— परिग्रहके निमित्त तीव्र इक्षा (इच्छा) उपजे है, तथा परिग्रह धारण करेगा ताकै बडा गौरव वडा गर्व होय है, तथा परिग्रहके निमित्त परका दोषनिका प्रकाश करे है--चुगली करे है, तथा परके निमित्त कलह करे है, तथा धनके अर्थि कठोरवचन कहे है, तथा निष्ठुरवचन कहे है, तथा परिग्रहके निमित्त विवाद करे है, परिग्रहके निमित्त ईर्षा करे है, तथा असूया-अदेखसका भाव करे है यो पुरुष इसके अर्थि दे है, मेरे अर्थि नही दे है तथा इस कार्यमें याकै तो भला हुवा अर मेरै नही हुवा याका नाम ईर्षा है ॥ तथा अन्य धनवानकूं नही देखि सकना याका नाम असूया है ॥ येते सर्व दोष परिग्रहमें आसक्तपुरुषके जानने ॥ गाथा—

कोधो माणो माया । लोभो हासरइअरादिभयसोगा ॥

संगणिमित्तं जायइ । दुगुंछ तह रादिभत्तं च ॥ २७ ॥

अर्थ— परिग्रहके निमित्त चाऱ्यों कषाय प्रबल होय हैं ॥ कोई ऋण मांगने आवै तो वडा क्रोध उपजे है, तथा कोऊ धनाढ्य आपकूं कुछ नही देवै तो वासूं वडा क्रोध उपजै, जो, आप जबर होय तदि अन्यका धन बलात्कार हरनेकूं वडा क्रोध करे है, तथा आपका कोई धन हरण करे तो ताऊपरि वडा क्रोध करे है, कोऊ आपका

धनकूं खरच करावै ताऊपरि बडा क्रोध करे है, धनके वास्तै ऐसा क्रोध करे है परकूं विना अपराध नाना मार मारे है-प्राणरहित करे है आप मरि जाय है! परिग्रहके निमित्त आपका मरना नही देखे है, ऐसे अनेकप्रकार परिग्रहके निमित्त क्रोध करे है। तथा धन पाय आपकूं ऊंचा जाने है, जगतकूं रंकसमान देखे है, आप परिग्रहका बडा अभिमान करे है, आपकूं इंद्रसमान जाने है, धनका अभिमानकरि धर्मात्माका तिरस्कार करे है, माता पिता गुरु उपाध्यायका अविनय करे है, जगतकूं तृणसमान देखे है, परिग्रहका मदकरि अंधसमान होजाय है, तातैं परिग्रहतैं बडा अनर्थरूप अभिमान होय है। बहुरि परिग्रहके मायाचार बहुत करे है, परिग्रहवास्तैं नानाप्रकार छल करे है, जगतमें परिगृहतैं निमित्त बडी ठिगाठिगी लगी रही है, परिग्रहवास्ते पाखंडरूप भेष धारण करे है, तातैं परिग्रह मायाचारका निवास है बहुरि परिग्रहवानकी तृष्णा नही मिटे है, सौसूं हजारसूं लक्षतैं कोटीकोटीनतैं राजापणा चक्रीपणा अधिकाधिकही वांछा करे है, संग्रह करताकरता नही धापे है, महा आरंभ विस्तारे है, जगतकूं ठिग्या चाहे है, नही करनेका कार्य करे है, इत्यादिक परिग्रहतैं लोभकी आधिक्यता होय है ॥ परिग्रहवास्तै आप हास्यका पात्र बणि जाय है, लज्जा छांडि दे है। बहुरि अति आसक्तताकूं प्राप्त होय है। अर परिग्रह बिगडि जाय तदि अत्यंत अरति जो मरणसूं

अधिकपीडा ताकूं प्राप्त होय है। अर परिग्रहधारीकै निरंतर भय रहे है 'मति कोऊ हर ले' तथा राजाका तथा चोरका तथा दुष्टनिका तथा दायियादारनिका परिग्रहधारीकै शाश्वत भय रहे है। तथा परिग्रह नष्ट होय जाय तो महाशोक उपजे है, धन नष्ट होनेहालेकै जैसा शोक होय है तैसा काहूकै नही होय है, अर परिग्रहका धारी है सो परिग्रह जहां नही दीखै ऐसे दरिद्री पुरुषनिमैं तथा दरिद्रीनिके गृहकुंटुबमैं महाग्लानि करे है। तथा परिग्रहका धारक रात्रिभोजनादिक सकलपाप अंगीकार करे है। परिग्रहका लोलपी खाद्य अखाद्य जोग्य-अजोग्यमें विचारही नही करे है। गाथा-

गंथो भयं णराणं। सहोदरा एयलच्छया जं ते ॥
अण्णोण्णं मारेदुं। अत्थणिमित्तं मदिमकासी ॥ २८ ॥

अर्थ— मनुष्यनिकै परिग्रह है सो भय है-भयका कारण है, यातैं, जातैं एकलछनगरमें एकउदरतैं उपजे भाई धनके अर्थि परस्पर मारनेमें बुद्धि करत भये, तातैं जाकै परिग्रह है ताकै निश्चयतैं भय जानहू ॥ गाथा-

अत्थणिमित्तमदिभयं। जादं चोराण एक्कमेक्केहिं ॥
मज्जे मंसे य विसं। संजोइय मारिदा जं ते ॥ २९ ॥

अर्थ— धनके निमित्त-चोरानिकै अति भय उत्पन्न-होतो भयो। अर धनके अर्थिही

परस्पर मद्यमें मांसमें विष संयुक्त करि परस्पर मारे गये ॥ गाथा—

संगो महाभयं जं । विहेडिदो सावएण संतेण ॥
पुत्तेण चेव अत्थे । हिदम्मि णिहिदेल्लए साहू ॥ ११३० ॥

अर्थ— जातैं परिग्रह महाभय हैं, इस परिग्रहतैं महान् धर्मात्माकाभी परिणाम बिगडे है। देखो! जमींमैं मेल्या हुवा धन आपका पुत्र काडि लेगया, तदि सत्पुरुषहू श्रावककै ऐसी शंका उपजी, जो मेरा जमींमैं धर्‍या धनकूं साधु जाने था, सो कदाचित् इनका परिणाम बिगाडि धन हर्‍या होय! ऐसा विचारि साधूकूं बाधारूप कीया ॥

याका ऐसा संबंध है— कोऊ एक शुद्धचारित्रका धारक मुनीश्वर एक नगरके बाह्य वन छो तामैं वर्षाऋतुमें च्यारि महिनाको जोग धारण करि तिष्ठे, तिस अवसरमें उस नगरका एक श्रावक मुनीश्वरांकी वंदना करिकै विचार कीया, जो "मेरा बडा भाग्यतैं च्यारि महिना साधूका संगम हुवा" अब मैं ऐसैं करूं, जो, च्यारि महीना मेरै साधुनिकी सेवा अर धर्मश्रवणहीमैं व्यतीत होय ऐसा विच्यारि अर अपना विसनीक पूत पुत्रका भयकरि अपना घरका सारभूत जो धन, सो एक कलशमें मेलि अर जहां मुनीश्वर तिष्ठै छा तहां ल्याय भूमीनैं खोदि धरि दीया, अर आप निर्भय हुवा साधूके निकटि धर्मश्रवण करि च्यारि महीना साधुसेवातैं व्यतीत कीया। परंतु जिस अवसरमें

घरथकी धनका कलश ल्याय मुनीश्वरांका आश्रममें गाडै छो, तिस अवसरमें आपका व्यसनी पुत्र छिप्यो हुवो देखै छो, सो कोइक दिन पिता तो नगरमें भोजनकूं गयो अर पछांसूं धनका कलश जमींमेंतैं निकासि ले गयो!

अब चतुर्मास पूरा हुवा, मुनि विहार करि गया, अर श्रावकहू तिनकूं कितनी दूरि पोंचाय वंदनाभक्ती करि नगरमें पाछो आयो, तदि विचारी, जो "धनका कलश अब घरि ले चलूं" सो जिस मकानमें गाड्या छा वहां आय देखै तो कलश नही! तदि परिणाममें किंचित् व्याकुल होय विचार कीया, मेरा धनका कलश कोन ले गया? इहां वनमें कोऊही देखनेवाला नही छा, एक दिगंबर साधुही छा, तातैं अब चालि उनकूं पूंछना, ऐसा विचार करि आपका पुत्रकूं लारै लेय मुनिश्वरनिके निकटि जाय पहुंच्या, तदि मुनि जाणि लीनी जो "यो सेट धनका भऱ्या कलशवास्तै आया है"। परंतु साधूका कहनेका मार्ग नही! प्राण जाउं परंतु साधु सदोषवचन नही कहै। तदि श्रेष्ठी कही, हे भगवन! आप गमन करते हो, परंतु एक मै कथा कहूं हूं सो श्रवण करते जावो, तदि मुनीश्वरां कही, थे कथा कहो, हम श्रवण करे है। तदि एक कथा श्रेष्ठी कही तदि ताका उत्तररूप एक कथा साधु कही, वहुरि एक कथा सेठ कही, अर एक कथा साधु कही, ऐसैं आठ कथा श्रेष्ठी कही अर आठ कथा साधु कही सो

सोलह कथाका नाम आगे दोय गाथानिमैं नाममात्र वर्णन करसी ॥

सो ऐसैं प्रकट तो दोऊ कहि सकै नही, अर श्रेष्ठी तो ऐसैं कहे, जो, हे स्वामिन्! वै तो एता उपकार कीया अर दूजा वाका अपकार करै! सो जो उपकारीकै अपकार करना जोग्य है कहा? तब साधु कहै, उपकारीका अपकार करना जोग्य नही। परंतु मेरी कथा सुनहु। सो एक कथा साधु कहे, तामैं ऐसा भाव कहै, जो, विनासमझ्या अपराधरहितकूं दूषण लगाना जोग्य है कहा?। तदि श्रेष्ठी कहै, विनासमझ्या दूषण लगावना जोग्य नही। ऐसैं दोऊनिकी सोलह कथा होय चुकी, तदि पुत्र पितासैं कही, हे पिता, यो धनका कलश मैं ले गयो, सो यो तुम ग्रहण करो! इस धनबरोबरी कोऊ परिणाम बिगाडनेवाला नही है! धिक्कार होहू या धनकूं! जाके निमित्ततैं तुमसारिखे महाश्रद्धानी व्रती श्रावकनिका परिणाम चालि गया! जो ऐसा विचार नही उपज्या– जो, "ऐसे धर्मात्मा दिगंबर, जिनके निकट च्यारि महीना धर्मश्रवण करि भलैप्रकार निश्चय करि लीया! यो मेरा धनका कलश कैसैं लेजाय? जिनकै इंद्रलोक अहमिंद्रलोककी संपादामैं विषकी बुद्धि प्रवर्ते है! अर अपना देहहूमें ममता नही, सो परधनमें ममता कैसैं करै? हे पिता! अब यह धनका कलश तुम ग्रहण करो, मै तो अब दिगंबरदीक्षा धारण करूंगा! तब श्रेष्ठीहू धनका निमि-

तसूं अपना परिणामका श्रद्धानका मलिनपणा जाणि परिग्रहतैं विरक्त होय दीक्षा धारण करता हुवा। तातैं परिग्रह है सो धर्मकी श्रद्धाकूं क्षणमात्रमें विगाडे है ॥

दूउ बंभण वग्घो। लोउ हत्थी य तह रायसुयं ॥
पहियणरो वि य राया। सुवण्णरयणस्स अख्खाणं ॥ ३१ ॥
वण्णरणउळो वेज्जो। वसहो तावस तहेव रुख्खाणं ॥
रुख्खसिवणीडुंडुह। मेदज्ज मुणिस्स अख्खाणं ॥ ३२ ॥

अर्थ— १ दूत, २ ब्राम्हण, ३ व्याघ्र, ४ लोक, ५ हस्ती, ६ राजपुत्र, ७ पथिक, ८ राजा इनसंबंधी आठ कथा अर १ वानर, २ नकुल, ३ वैद्य, ४ वृषभ, ५ तापस, ६ वृक्ष, ७ सिवणी, ८ सर्प ये आठ कथा ऐसें सोलह कथा परस्पर होत भई· ते प्रथमानुयोगके ग्रंथनितैं जाननी ॥ गाथा—

सीदुण्हादववादं। वरिसं तण्हा छुहा समं पच्छं ॥
दुस्सेज्जं दुब्भत्तं। सहइ वहइ भारमवि गरुयं ॥ ३३ ॥
गायदि णच्चदि धावइ। कसइ ववइ लवदि तह मलेदि णरो ॥
तुण्णोदि वुणइ जाचइ। कुलम्मि जादो वि गंथत्थी ॥ ३४ ॥

अर्थ— परिग्रहका अर्थी शीतकी वेदना, तथा उष्णकी वेदना, तथा आताप जो

तावडाकी तथा पवनकी वेदना, तथा वर्षाकी वेदना, तथा तृष्णाकी वेदना, तथा क्षुधाकी वेदना नानादुःखरूप भोगे है ॥ बहुरि परिग्रहका अर्थी खेद भुगते है, परिग्रहवास्तैं महान् श्रम करे है, तथा परिग्रहका लोभी धनाढ्य लोकनिका बाह्य अंगणमें पडा रहे है। तथा लोभी हुवा दुर्भक्त जो खोटा नीरसभोजन करे है। तथा अन्यके द्वारे निरादरसूं दीया भोजन ग्रहण करे है। अर धनका लोभी हुवा बहुत भार वहे है ॥ बहुरि उच्चकुलमें उपज्याहू पुरुष परिग्रहका लोभी धनके अर्थि आपका कुलनैं तथा जातिनैं तथा धर्मनैं पदस्थानै—पूज्यपणानैं नहीं गिणतो नीचपुरुषनिके करनेजोग्य महानीचकर्म करे है ॥ ते नीचकर्म कोन कोन हैं सो कहे हैं—गावे है, तथा नाचे है, तथा आगाकूं दोडे है, तथा खेती करे है, तथा वाहे है, तथा लूणे है, तथा पादमर्दनादिक करे है, तथा सीवे है, तथा वणे है, तथा याचना करे है इत्यादि नीचकर्म लोभीविना कोन करे? ॥ गाथा—

सेवइ णियादि रक्खइ। गोमहिसिमजाविर्यं हयं हत्थिं ॥
ववहरादि कुणदि सिप्पं। अह्रो य रत्ती य गयणिद्दो ॥ ३५ ॥

अर्थ— बहुरि धनके अर्थि अधमपुरुषनिकी सेवा करे है, परिग्रहके निमित्त देशबाहिर निकलि जाय है, तथा धनके अर्थि गायनिकी तथा भैसी तथा छ्याली तथा

मींढा तथा घोडा तथा हाथीनिकी रक्षा करे है, चाकरी करे है, तथा पशूनिका व्यवहार करे है तथा दिनरात्रिमें शिल्पिकर्म करे है, रात्रिकूं निद्राहू नही लेवे है ॥ गाथा–

आउधवासस्स उरं । देइ रणमुहम्मि गंथलोभाउ ॥
मगरादिभीमसावद- । बहुलं अदिगच्छदि समुद्दं ॥ ३६ ॥

अर्थ— परिग्रहका लोभतें संग्रामविषैं आयुधांकी वर्षाके सन्मुख अपना हृदय देत है! अर परिग्रहकी वांछातें मगरमत्स्यादिकरि भयानक अर बहुत हैं दुष्टजीव जामैं ऐसे समुद्रमें प्रवेश करे है!॥ गाथा–

जदि सो तत्थ मरिज्जो । गंथो भोगाथ कस्स ते होज्ज ॥
महिलाविहिंसणिज्जो । लूसिददेहो व सो होज्ज ॥ ३७ ॥

अर्थ— जो कदाचित् धनका लोभी रणविषैं तथा समुद्रविषैं मरिजाय तो परिग्रह तथा भोग कौनकै होय? तथा रणमें जावनेतें तथा समुद्रमें प्रवेश करनेतें देह लूखो होजाय तथा विरूप होजाय तो स्त्रीनिकै ग्लानि करनेयोग्य होजाय तदि धनपरिग्रहका कहा सुख होय? गाथा–

गंथणिमित्तमदीदि य । गुहाउ भीमाउ तह य अडवीउ ॥
गंथणिमित्तं कम्मं । कुणइ अकादव्वयं पि णरो ॥ ३८ ॥

अर्थ— ग्रंथके निमित्त भयानक गुफामैं प्रवेश करे है तथा भयानकवनीमैं प्रवेश करे है! तथा ग्रंथके निमित्त यो नर नही करनेयोग्यहू कर्म करे है ॥ गाथा–

सूरो तिक्खो मुक्खो । वि होइ वसिउं जणस्स सधणस्स ॥
माणी वि सहइ गंथणि- । मित्तं बहुयं पि अवमाणं ॥ ३९ ॥

अर्थ— परिग्रहके निमित्त शूर वीर तथा तीक्ष्ण कहिये 'काहूकी नही सहिसके' ऐसा स्वभावका तीखा तथा मूर्खहू धनसंयुक्तपुरुषकै वशीभूत होय है, तथा अभिमानीहू परिग्रहके निमित्त महान् अपमानकूं सहे है ॥ गाथा—

गंथणिमित्तं घोरं । परितावं पाविदूण कंपिल्ले ॥
लल्लकं संपत्तो । णिरयं पिण्णागगंधो खु ॥ ११४० ॥

अर्थ— कांपिल्यनगरविषैं पिण्याकगंध नामा पुरुष परिग्रहके अर्थि महान् संताप पायकरिकै अर ललक नाम नरककूं प्राप्त भयो ॥ गाथा–

एवं चेट्ठंतस्स वि । संसयिदो चेव गंथलाहो खु ॥
ण य संचीयदि गंथो । सुइरेण वि मंदभागस्स ॥ ४१ ॥

अर्थ— ऐसैं नानाप्रकार उद्यम नानाप्रकार नीचप्रवृत्ति करताहू पुरुषकै परिग्रहका लाभ संशयरूप है–लाभ होय तथा नही होय! नीचप्रवृत्ति करता लाभ होयही ऐसा

नियम नही है। जातैं मन्दभाग्य पुरुषकै बहुतकाल घोर उद्यम करिकैहू संचय तथा लाभ नही होय है ॥ गाथा–

जदि वि कहंचिय गंथा। संचीएजणहु तह वि से णत्थि ॥
तित्ती गंथेहि सया। लोभो लाभेण वड्ढदि खु ॥ ४२ ॥

अर्थ–– जो कदाचित् परिग्रहका संचयहू होय, तोहू ताकै तृप्तिता परिग्रहकरि नही होय है, जातैं लाभकरिकै लोभ सदा वृद्धिकूंही प्राप्त होय है, जैसैं जैसैं धनका लाभ होय तैसैं तैसैं लोभ वृद्धिकूं प्राप्त होय है॥ गाथा––

जह इंधणेहि अग्गी। लवणसमुद्दो णदीसहस्सेहिं ॥
तह जीवस्स ण तित्ती। अत्थि तिळोगे वि लद्धम्मि ॥ ४३ ॥

अर्थ— जैसैं इंधनकरि अग्नि तृप्त नही होय अर हजारां नदीनिकरि समुद्र तृप्त नही होय; तैसैं संसारी जीव त्रैलोक्यका लाभ होय तोहू तृप्त नही होय है॥ गाथा–

पडहत्थस्स ण तित्ती। आसीय महाधणस्स लुद्धस्स ॥
संगेसु मुच्छिदमदी। जादो सो दीहसंसारी ॥ ४४ ॥

अर्थ— महाधनका धनी अर महालोभी ऐसा पटहस्त नामा वणिक ताकै बहुत धनतैंहू तृप्ति नही हुई; सो परिग्रहमें महाममतारूप बुद्धिको धारि अनंतसंसारी होतो

हुवो! तातैं परिग्रहसमान तृष्णा बधावनेवाला और कोऊ नहीं है ॥ गाथा—

तित्तीए असंतीए । हाहाभूदस्स घण्णचितस्स ॥
किं तत्थ होज्ज सुक्खं । सदा वि पंपाए गहिदस्स ॥ ४५ ॥

अर्थ— अर परिग्रहतैं तृप्ति नही आवै तादि हाय हाय करतो अर लंपटी है चित्त जाका अर सदाकाल तृष्णाकरि ग्रहण कीयो पकड्यो ऐसा लोभीकै परिग्रहमैं सुख होत है कहा? नहीही सुख होत है ॥ गाथा—

हम्मदि मारिज्जदि वा । वज्झदि रुंभदि य अणवराधो वि ॥
आमिसहेदुं घण्णो । खज्जादि पक्खीहि जह पक्खी ॥ ४६ ॥

अर्थ— जैसैं मांसके निमित्त लंपटी हुवा जो पक्षी सो कोऊ अन्य मांसकूं ले जावता पक्षीकूं देखि वाकू मारे है, खाय जाय है; तैसैं अपराधरहितहू धनाढ्य पुरुषकूं धनका अर्थी दुष्ट राजा, दाइयादार भाई, तथा चोर, तथा दुष्ट कोटपाल, तथा दुष्ट आपका कुटुंबी विनाकारणही मारे है! तथा हणे है, तथा बांधे है, रोके है। ऐसा विचार नही करे है, जो, विनाअपराध याकूं कैसैं मारूं हूं? धन खोशनेमैं लुटनेमें जिनका परिणाम, तिन निर्दयीनिकै काहेकी दया? तातैं परिग्रहका निमित्ततैं हनना, मारना, बंधना, रुकना सर्व दुःख सहना होय है ॥ गाथा—

मादुपिदुपुत्तदारे- । सु वि पुरिसो ण उवयाइ वीसंभं ॥
गंथणिमित्तं जग्गइ । रक्खंतो सव्वरत्तीए ॥ ४७ ॥

अर्थ— यो पुरुष परिग्रहके निमित्त माताकेविषैं, तथा पितामैं, तथा पुत्रमें, तथा स्त्रीमैं विश्वास नही करे है ॥ यद्यपि ये माता पिता पुत्र स्त्री विश्वास करनेयोग्य हैं, तथापि सर्वरात्रि परिग्रहकी रक्षा करता जाग्रत रहे है ॥ गाथा–

सव्वं पि संकमाणो । गामे णगरे घरे व रण्णे वा ॥
आधारमग्गणपरो । अणप्पवसिउ सदा होई ॥ ४८ ॥

अर्थ— परिग्रहधारी पुरुष सर्वलोकनितैं शंकाकूं प्राप्त हुवा ग्राममें, नगरमें, तथा गृहमें, तथा वनमें, आधार हेरनेमें तत्पर सदा अनात्मवश होय है ॥ भावार्थ– परिग्रहका धारी भयवान् हुवा सर्व जायगां आपकी रक्षा करनेवाला कोऊका सहाय कोऊका आश्रय निरंतर चाहता पराधीन होय है ॥ गाथा

गंथपडियासलुद्धो । धीराचरियं विवित्तमावसहं ॥
णिच्छदि वहुजणमज्झे । वसदि य सागारिउ वसए ॥ ४९ ॥

अर्थ— जो परिग्रहका लोभी है, सो धीरपुरुषनिकरि आचरण कीया ऐसा एकांत-स्थान नही इच्छा करे है, वहुतजननिके मध्य गृहस्थनिके गृह तिनमें वसे है ॥ गाथा–

सोणदू किंचि सद्दं । सग्गंथो होइ उट्ठिदो सहसा ॥
सव्वत्तो पिच्छंतो । परिमसदि पलादि मुज्झदि य ॥ ११५० ॥
तेणभएणारोहइ । तरुं गिरिं उप्पहेण व पलादि ॥
पविसदि य दहं दुग्गं । जीवाण वहं करेमाणो ॥ ५१ ॥
तह वि य चोराचारभ- । डा वा गंथं हरेज्ज अवसस्स ॥
गेण्हेज्ज दायिया वा । रायाणो वा विलुंपिज्ज ॥ ५२ ॥

अर्थ— परिग्रहसहित जो पुरुष सो किंचिन्मात्रहू शब्द श्रवणकरिकै अर शीघ्रही ऊठि सर्वदिशामैं अवलोकन करतो अपना द्रव्यकूं स्पर्शन करे है, तथा लेय भागे है, तथा अज्ञान हुवा मोह जो बेखबरी ताही प्राप्त होय है ॥ बहुरि चोरका भयकरिकै वृक्षकूं आरोहण करे है, पर्वत ऊपरि भयतैं चढि जाय है, तथा चोर लुटेरेनिके भयतैं उत्पथमार्ग होय भागे है, तथा जलका द्रहमैं पडे है, तथा महान् विषमस्थानमें जाय है, कोऊ आपकूं भागतेकूं रोकै तिन जीवनिकूं मारता भाग जाय है ॥ ऐसैं भयवान् हुवा दौडे है तोहू चोर तथा प्रबल योद्धा ताकूं वशीभूत करि पकडि अर धनहरण करे है, अथवा दायियादार जे भाईबंध ते धन हरण करे हैं, तथा राजा लूटि ले है, ताका दुःखकूं कोन कहने समर्थ है? गाथा—

संगणिमित्तं कुद्धो । कलहं बोलं करिज्ज वेरं वा ॥
पहणेज्ज व मारिज्ज व । मारिजेज्ज व तह य कामिज्ज ॥ ५३ ॥
अहवा होइ विणासो । गंथस्स जलग्गिमूसयादीहिं ॥
णट्ठे गंथे य पुणो । तिव्वं पुरिसो लहदि दुक्खं ॥ ५४ ॥

अर्थ— परिग्रहके निमित्त क्रोधी होय है, कलह करे है, तथा विवाद करे है, वैर करे है, हणे है–ताडन करे है, तथा मारे है, तथा परकरिकै मारिये है ॥ अथवा जलकरिकै अग्निकरिकै मूषादिककरिकै परिग्रह नष्ट होय तब पुरुष तीव्र दुःखकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा–

सोयइ विलवइ कंदइ । णट्ठे गंथम्मि होइ य विसण्णो ॥
पज्झादि णिवाइज्जइ । वेवइ उक्कंठिउं होइ ॥ ५५ ॥

अर्थ— परिग्रह नष्ट होता संता शोच करे है, तथा विलाप करे है, पुकार करे है, विषादी होय है, चिंता करे है, संतापकूं प्राप्त होय है, कंपायमान होय है, तथा उत्कंठित होय है ॥ गाथा–

डज्झदि अंतो पुरिसो । अप्पीये णट्ठयम्मि गंथम्मि ॥
वाया वि य अक्खिप्पइ । बुद्धी वि य होइ से मूढा ॥ ५६ ॥

अर्थ— आपका अल्पहू परिग्रहका नाश होता संता अंतःकरणमें दाहकूं प्राप्त होय है, वचनहू नष्ट होय है, अर वाकी बुद्धीहू मूढ होय है ॥ गाथा—

उम्मत्तो होइ णरो । णट्ठे गंथे गहोवसिट्ठो वा ॥
चेट्ठदि मरुप्पवादा- । दिएहि वहुधा णरो मरिदुं ॥ ५७ ॥

अर्थ— जैसैं पिशाचकरि गृहीत पुरुष उन्मत्त होय है–आपा भूलिजाय है, तैसैं परिग्रहका नाश होय तब पुरुष उन्मत्त होय जाय है, तथा पर्वतादिकतैं पतन करि अपना बहुतप्रकारकरि मरिवेकूं चेष्टा करे है ॥ गाथा—

चेलादीया संगा । संसज्जंति विविहेहिं जंतूहिं ॥
आगंतुगा वि जतूं । हवंति गंथेसु सण्णिहिदा ॥ ५८ ॥

अर्थ— वस्त्रादिक परिग्रह हैं ते नानाप्रकारके जूवा उटकणादिकका संसर्गकरि सहित होत हैं, बहुरि वस्त्रादिकपरिग्रहमें उपरिले तथा भूमिपरि विचरते कीडी कीडा मछर डांस मकडी कानखजून्या इत्यादिक अनेक आगंतुक जीव प्राप्त होय हैं ॥ गाथा—

आदाणे णिक्खेवे । पसारणे चावि तेसि गंथाणं ॥
उक्कस्सणे च कसणे । फंसणपप्फोडणे चेव ॥ ५९ ॥
छेदणवंधणवेढण- । आदावणधोवणादिकिरियासु ॥

संघट्टणपरिदावण- । हणणादी होइ जीवाणं ॥ ११६० ॥
जदि वि विविंचदि जंतू । दोसा ते चेव होंति से लग्गा ॥
होदि यि विविंचणे वि हु । तज्जोणिविउजणा णियमं ॥ ६१ ॥

अर्थ— वस्त्रादिक परिग्रह ग्रहण करनेमें, तथा स्थापन करनेमें, तथा पसारणेमें, तथा उत्कर्षण कहिये ऐंठी ऊंठी खीचनेमें, तथा बांधनेमें, छोडनेमें, तथा हलावनेमें, तथा छेदनेमें, तथा वेढनेमें, वोढनेमें, तावडेमें सुकावनेमें तथा धोवनादिक्रियानिमें जीवनिका संघट्टन तथा परितापन तथा हनन जो मारण सो प्रकट होय है ॥ अर यद्यपि वस्त्रादिकानितैं जीव निराकरण करिये तोहू तेही दोष लगे हैं। जातैं तिन जीवनिके दूरि करनेमैंभी तिन जीवनका अपने योनिस्थानके छूटनेतैं मरण होय है। तातैं परिग्रही निश्चयतैं जीवनिकी विराधनाही करे है ॥ ऐसैं अचित्तपरिग्रहके दोष कहिकरिकै अब सचित्तपरिग्रहके दोष कहे हैं ॥ गाथा—

सच्चित्ता पुण गंथा । वधंति जीवे सयं च दुक्खंति ॥
पावं च तण्णिमित्तं । परिगिण्हंतस्स से होइ ॥ ६२ ॥

अर्थ— सचित्त जे दासी दास गोमहिष्यादिक परिग्रह हैं, ते जीवनिनैं मारे हैं— घाते हैं, तथा आपहू दुःखकूं प्राप्त होय हैं, तथा खेती इत्यादिक आरंभमें युक्त कीये हुये

महापाप करे हैं, तातैं सचित्तपरिग्रह ग्रहण करतेकै तिनके निमित्ततैं पापही होय है ॥

इंदियमयं सरीरं । गंथे गिण्हदि य देहसुक्खत्थं ॥
इंदियसुहाभिलासो । गंथग्गहणेण तो सिध्दो ॥ ६३ ॥

अर्थ— जातैं यो शरीर इंद्रियमय है—इंद्रियनितैं शरीर जुदा नहीं, अर ग्रंथ जो परिग्रह ग्रहण करे है, सो शरीरका सुखके निमित्त करे है, तातैं परिग्रह ग्रहण करनेतैं इंद्रियनिका सुखका अभिलाष सिद्ध भया, सो इंद्रियजनितसुखका अभिलाष कर्मबंधको निमित्त है, तातैं मोक्षाभिलाषीकूं परिग्रहका त्यागही उचित है ॥ गाथा—

गंथस्स गहणरक्खण- । सारवणाणि णिययं करेमाणो ॥
विक्खित्तमणो झाणं । उवेदि कहमुक्कसज्झाउं ॥ ६४ ॥

अर्थ— परिग्रही पुरुष त्याग्या है स्वाध्याय जानैं ऐसा स्वाध्यायरहित हुवा परिग्रहकी रक्षा तथा परिग्रहका ग्रहण तथा परिग्रहका संवारना ऐसैं नित्यही परिग्रहमें लीनताकरि विक्षिप्त है मन जाका सो कैसैं शुभध्यान करै? गाथा—

गंथेसु घडिदहिदउ । होइ दरिद्दो भवेसु बहुगेसु ॥
होदि कुणंतो णिच्चं । कम्मं आहारहेदुम्मि ॥ ६५ ॥

अर्थ— जाका चित्त परिग्रहमें आसक्त है, सो बहुतभवपर्यंत दरिद्री हुवा आहारके

अर्थि बहुत नीचकर्म करता भ्रमण करे है ॥ गाथा-

विविहाउ जायणाउं । पावदि परभवगदो वि धणहेदुं ॥
लुद्धो पंपागहिदो । हाहाभूदो किलिस्सदि य ॥ ६६ ॥

अर्थ— परिग्रहमें आसक्त पुरुष परभवमें धनके निमित्त नानाप्रकार पीडाकूं प्राप्त होय है, अर लोभी हुवो आशाकै आधीन हाय हाय करतो क्लेशकूं प्राप्त होय है ॥

एदेसिं दोसाणं । मुच्चइ गंथजहणेण सव्वेसिं ॥
तव्विवरीया य गुणा । लभदि य गंथस्स जहणेण ॥ ६७ ॥

अर्थ— अर परिग्रहका त्याग करिकै येते सर्व दोष त्यागत है अर इनि दोषनितैं औळे गुणनिकूं धारण करे है-प्राप्त होय है ॥ गाथा-

गंथच्चाउ इंदिय- । णिवारणे अंकुसो व हत्थिस्स ॥
णयरस्स खाइया वि व । इंदियगुत्ती असंगत्तं ॥ ६८ ॥

अर्थ— जैसैं हस्तीकूं उत्पथमार्गतैं रोकनेकूं अंकुश है, तैसैं इंद्रियनिकूं विषयनितैं रोकनेकूं परिग्रहत्याग नामा व्रत समर्थ है। जैसैं नगरकी रक्षाके अर्थि खाई है, तैसैं इंद्रियनिकूं रागभावतैं तथा कामभावतैं रोकनेकूं एक परिग्रहरहितपणाही समर्थ है ॥

सप्पबहुळम्मि रण्णे । अमंतविज्जोसहो जहा पुरिसो ॥

होइ दढमप्पमत्तो । तह णिग्गंथो वि विसएसु ॥ ६९ ॥

अर्थ— जैसैं सर्प हैं बहुत जामैं ऐसे वनविषैं मंत्ररहित विद्यारहित औषधरहित जो पुरुष सो अत्यंत अप्रमादी–सावधान हुवा वसे है, तैसैं क्षायिकसम्यक्त्व केवलज्ञान यथाख्यातचारित्ररूप जे मंत्र–विद्या–औषधसहित निर्ग्रंथहू रागादिकसर्पनिकरि व्याप्त जो विषयरूप वन तामैं प्रमादी हुवा नहीं वसे है–सावधानही रहे है ॥ गाथा–

रागो हवे मणुण्णे । विसंए दोसो य होइ अमणुण्णे॥ [1] गंथे इत्यपि पाठभेदः ॥

गंथच्चाएण पुणो । रागदोसा हवे चत्ता ॥ ११७० ॥

अर्थ— मनोज्ञविषयमें राग होय है अर अमनोज्ञमें द्वेष होय है, अर मनोज्ञ अमनोज्ञ दोऊ प्रकारका परिग्रहका त्याग करिकै रागद्वेषका त्याग होय है ॥ भावार्थ– कर्मबंधका मूलकारण राग अर द्वेष है अर रागद्वेषका कारण परिग्रह है, जहां परिग्रहका त्याग भया, तहां संसारपरिभ्रमणका कारण रागद्वेषका अभाव होय है, तातैं परिग्रहका त्यागही संसारका अभावका कारण जानहू ॥ गाथा–

सीदुण्हदंसमसया- । दियाण दिण्णो परीसहाण उरो ॥

सीदादिणिवारणए । गंथे णियमं जहंतेण ॥ ७१ ॥

अर्थ— शीत उष्णादिक वेदनाकूं निराकरण करनेवारे जे वस्त्रादिक परिग्रह तिनकूं

त्याग करतो पुरुष, शीत उष्ण दंशमशकादिक वेदनारूप परीषह सहनेकूं अपना हृदयकूं दीया ॥ भावार्थ- जानैं नग्नपना धाऱ्या, तानैं सकलपरीषह सहना अंगीकार कीया ॥

जह्मा णिग्गंथो सो । वादादवसीददंसमसयाणं ॥
सहदि य विविधा वाधा । तेण सदेहे अणादरदा ॥ ७२ ॥

अर्थ— जातैं ये निर्ग्रंथ पवन तथा आताप तथा शीत तथा दंशमशकनिकरि कीई नानाप्रकारकी बाधा सहे है, ता कारणकरि इनूनैं अपना देहविषैंहू अनादरता अंगीकार करी ॥ गाथा-

संगपरिमग्गणादी । णिस्संगे णत्थि सव्वविक्खेवा ॥
झाणज्झेणाणि तउ । तस्स अविग्घेण वच्चंति ॥ ७३ ॥

अर्थ- परिग्रहका लाभकूं हेरना, तथा धनवानकूं अवलोकना, तथा याचना करना, दीन मन करना, तथा धनकी रक्षा करना, नष्ट होनेका भय करना इत्यादिक सर्ववि-क्षेप परिग्रहका त्यागीकै नही होय हैं। अर विक्षेप नही होय तादि निर्विघ्नताकरि ध्यान तथा स्वाध्यायमें निरंतर प्रवृत्ति होय है। तातैं सर्वतपनिमें प्रधान जे ध्यानस्वाध्याय तिनमें प्रवर्तन करनेका उपाय एक परिग्रहका त्यागही है ॥ गाथा-

गंथच्चाएण पुणो । भावविसुध्दी वि दीविदा होइ ॥

ण हु संगघढिदवुध्दी । संगे जहिदुं कुणदि वुध्दी ॥ ७४ ॥

अर्थ— बहुरि परिग्रहका त्यागकरिकै भावनिकी विशुद्धता दीपे है, परिग्रहमें आसक्त है बुद्धि जाकी ऐसा पुरुष परिग्रह त्यागनेमें बुद्धि नहीं करे है ॥ गाथा—

णिस्संगो चेव सदा । कसायसल्लेहणं कुणदि भिक्खू ॥
संगा दु उदीरेंति । कसाय अग्गी व कट्ठाणि ॥ ७५ ॥

अर्थ— परिग्रहरहितहू साधु सदाकाल कषायनिकूं कृश करे है, परिग्रहका धारीकै कषायनिकी तीव्रताही होय है। जैसैं काष्ठ अग्नीकूं वधावे है, तैसैं परिग्रह कषायनिकूं उत्कट करेही है ॥ गाथा—

सव्वत्थ होइ लहुगो । रूवं विस्सासियं हवइ तस्स ॥
गुरुगो हि संगसत्तो । संकिज्जइ चावि सव्वत्थ ॥ ७६ ॥

अर्थ— परिग्रहरहित जो साधु ताकै गमनमें तथा आगमनमें सर्व जायगां भाररहित–स्वाधीनता होय है। तथा निर्ग्रंथरूपभी सर्वकै विश्वास करनेजोग्य होय है ॥ बहुरि परिग्रहमें आसक्त जो साधु ताकै बडा भार है, अर परिग्रहका धारक सर्व जगतमें शंका करनेजोग्य होय है ॥ गाथा—

सव्वत्थ अप्पवसिउं । णिस्संगो णिब्भउं य सव्वत्थ ॥

होदि य णिप्परियम्मो । णिप्पडिकम्मो य सव्वत्थ ॥ ७७ ॥

अर्थ— बहुरि परिग्रहरहित जो साधु सो सर्व ग्राममें नगरमें वनमें स्वाधीन रहे है। अर सर्व अवसरमें सर्व स्थाननिमैं निर्भय रहे है। अर सर्व कालमें व्यापाररहित प्रवृत्तिरहित होय है! अर इस कार्यकूं तो मै कीया अर यह कार्य मेरे करना है इत्यादिक सर्व विकल्परहित परिग्रहका त्यागी होय है॥ गाथा—

भारक्कंतो पुरिसो । भारं उरुहिय णिव्वुडे होइ ॥
जह तह पयहिय गंथे । णिस्संगो णिव्वुडे होइ ॥ ७८ ॥

अर्थ— जैसें भारकरि दव्या पुरुष भारकूं उतारिकरि सुखी होय है, तैसें संगरहित साधुहू परिग्रहका भार उतारि सुखी होय है॥ गाथा—

तह्मा सव्वे संगे । अणागए वट्टमाणए तीदे ॥
तं सव्वत्थ णिवारे- । हि करणकारावणाणुमोदेहिं ॥ ७९ ॥

अर्थ— तातैं, भो ज्ञानी हो! तुम आगै होयगे तथा वर्तमान तथा होय गये ऐसे संपूर्ण परिग्रहनिकूं कृत-कारित-अनुमोदनाकरि निराकरण करो! जो परिग्रह गया ताकूं यादि मति करो अर आगैकूं वांछा मति करहू, अर वर्तमान हैं तिनमें राग मति करो॥

जावंतु केइ संगा । विराधया तिविहकाळसंभूदा ॥

तेहिं तिविहेण विरदो। विमुत्तसंगो जह सरीरं ॥ ११८० ॥

अर्थ— भो कल्याणके अर्थी हो! इस जीवकै तीन कालमें उपजे जितने केई संग रत्नत्रयके विनाशक हैं, तिनतैं मन-वचन-काय करिकै विरक्त होय संगतैं रहित हुवा शरीरकूं त्यागो ॥ भावार्थ— जो रत्नत्रयकी विराधना करनेवाला परिग्रह है, ताका मन-वचन-कायकरि पहली त्याग करो, पाछै अवसर पाय देहका ममतारहित हुवा त्याग करो, परिग्रहीकै देहतैं ममता नहीं घटै है ॥

एवं कदकरणिज्जो। तिकालतिविहेण चेव सव्वत्थ ॥

आसं तण्हं संगं। छिंद ममत्तिं च मुच्छं च ॥ ८१ ॥

अर्थ— ऐसैं कीया है करनेजोग्य जानैं ऐसा जो तुम, सो तीन कालमें मन-वचन-कायकरिकै सर्व परपदार्थनिमें आशा तथा तृष्णा तथा संग तथा ममत्व तथा मूर्च्छानिका त्याग करो ॥ गाथा

सव्वग्गंथविमुक्को। सीदीभूदो पसण्णचित्तो य ॥

जं पावइ पीइसुहं। ण चक्कवट्टी वि तं लहदि ॥ ८२ ॥

रागविवागसतण्हा-। इगिध्दिअवितिरित चक्कवट्टिसुहं ॥

णिस्संगणिव्वुइसुह-। स्स कहं अग्घइ अणंतभागं पि ॥ ८३ ॥

अर्थ— इस जगतमें जो पुरुष सर्वसंगरहित है अर तृष्णाकी आतापकरि रहित जाका चित्त शीतल है अर लोभकी मलिनतारहित जाका उज्वल चित्त है ऐसा पुरुष जो प्रीति अर सुखकूं प्राप्त होय है, सो सुख अर प्रीतीकूं चक्रवर्तीहू नही प्राप्त होय है। जातैं चक्रवर्तीका सुख तो रागका उदयतैं उपज्या है, जो तीव्र राग नही होय तो अति वेखबरी हुवा अतिनिंद्य विषयनिमैं कैसैं रमै? वहुरि तृष्णासहित है— जिनतैं चाहकी दाह नही मिटै है, वहुरि अतिगृध्रिता जो अतिलंपटता ताकरि सहित है, जातैं भोगनिमैं उलग्या आपका आपाकूं नही सुलझाय सके है, वहुरि ये भोग भोगे हुवेहू तृप्ति नही करै। तातैं पराधीनतारहित रागादिककी आतापरहित जो निस्संगनिकै निराकुलतारूप आत्मिकसुख है ताका अनंतवा भागहू चक्रवर्तीकै सुख नही है ॥

ऐसैं अनुशिष्टि नामा महाअधिकारविषैं महाव्रतनिका अधिकारविषैं परिग्रहत्याग नामा महाव्रतका वर्णन समाप्त कीया ॥ अब महाव्रतनिकी सार्थक संज्ञा कहे हैं ॥

साहंति जं महत्थं । आयरिदाइं च जं महल्लेहिं ॥
जं च महल्लाइ सयं । तदो महव्वदाइं हवे ताइं ॥ ८४ ॥

अर्थ— जातैं ये पंचपापनिका त्याग महान अर्थ जो निर्वाणके अनंतज्ञानादि

गुण तिनकूं सिद्ध करे हैं, तातैं इनकूं महाव्रत कहिये हैं। बहुरि महान् जे तीर्थंकर चक्रवर्ती गणधरादिक तिनकरि आचरण कीये हैं, तातैंभी महाव्रत कहिये हैं। बहुरि ये पंचमहाव्रत स्वयमेव महान् हैं, तातैं ये महाव्रत हैं ॥ गाथा-

तेसिं चेव वदाणं। रक्खट्ठं रादिभोयणणियत्ती ॥

अट्ठप्पवयणमादा-। उ भावणाउ य सवाउ ॥ ८५ ॥

अर्थ— तिन महाव्रतनिकी रक्षाके अर्थि रात्रिभोजनका त्याग तथा अष्टप्रवचनमातृकाका धारण करना, तथा संपूर्ण भावनानिकूं भावना करना श्रेष्ठ है ॥ सो अष्टप्रवचनमातृका तो पंचसमिति तथा तीन गुप्तीकूं कहिये हैं, सो आगै इहांही वर्णन करसी। तथा पांच महाव्रतनिकी पचीस भावना हू आगै इस ग्रंथमें कहसी ॥

तेसिं पंचण्हं पि य। अंहयाणमावज्जणं व संका वा ॥

आदविवत्ती य हवे। रादीभत्तप्पसंगम्मि ॥ ८६ ॥

अर्थ— रात्रिभोजनका प्रसंग होता ते पंचमहाव्रत हैं तिनका तो नाश होय है अर शंका होय है अर आत्मविपत्ति होय है ॥ भावार्थ- यद्यपि रात्रिभोजन तो जैनी अव्रतीहू नही करे है, तथापि ऐठें त्यागका उपदेश करि जन्मांतरनिमेंहू आकांक्षा नही होय ऐसैं विरक्तता करावे है, जो रात्रिभोजन करैगा, ताकै अहिंसादिक

एकहू व्रत नही रहैगा, अर शंका रात्रि रहवोही करै, अर रात्रिनैं स्थाणु कंटकादिकरि आपका नाशहू होयही है, तातैं रात्रिभोजन तो त्यागनेजोग्यही है ॥ गाथा—

अण्हयदारो विरमण-। रयस्स गुत्तीउ होंति तिण्णेव ॥
चेट्ठिदुकामस्स पुणो। समिदीउ पंच दिट्ठाउ ॥ ८७ ॥

अर्थ— बाह्यचेष्टारहित प्रवृत्तिरहित जो साधु ताकै तो तीन गुप्ति होय हैं। बहुरि गमन, आगमन, शयन, आसन, आहार, निहार, विहार इत्यादिक प्रवृत्ति करनेका इच्छक साधूकै पंचसमिति भगवान् दिखाई हैं-कही हैं॥ अब मनकी गुप्ति तथा वचनगुप्तीकूं कहे हैं॥ गाथा—

जा रागादिणियत्ती। मणस्स जाणाहि तं मणोगुत्ती ॥
अलियादिणियत्ती वा। मोणं वा होइ वचिगुत्ती ॥ ८८ ॥

अर्थ— जो मनका राग द्वेष मोहादिक भावनितैं रहित होना सो मनोगुप्ति जानहु। बहुरि असत्यादिकवचननिमैं वचनकी प्रवृत्तिरहित होना तथा मौनरूप रहना सो वचनगुप्ति है॥ आगै कायगुप्तीकूं कहे हैं॥ गाथा—

कायकिरियाणियत्ती। काउस्सग्गो सरीरगे गुत्ती ॥
हिंसादिणियत्ती वा। सरीरगुत्ती हवदि दिट्ठा ॥ ८९ ॥

अर्थ— देहकी हलनचलनादि क्रियातैं निवृत्ति होना, सो कायगुप्ति है; अथवा कायमें ममता त्यागि कायोत्सर्ग करना, सो कायगुप्ति है; अथवा हिंसादिकनितैं निवृत्ति होना, सो कायगुप्ति है ॥ गाथा—

छेत्तस्स वई णयर- । स्स खाइया अहव होइ पायारो ॥
तह पावस्स णिरोधे । ताउ गुत्तीउ साहुस्स ॥ ११९० ॥

अर्थ— जैसैं क्षेत्रकी रक्षाके अर्थि क्षेत्रकै वाडी होय है, तथा नगरकी रक्षाके अर्थि खाई अथवा प्राकार कहिये कोट होय है; तैसैं साधूकै पापके रोकनेविषैं तीन गुप्ति परम उपाय है ॥ गाथा—

तह्मा तिविहे वि तुमं । मणवचिकायप्पउगम्मि ॥
होहि सुसमाहिदमदी । णिरंतरं झाणसज्झाए ॥ ९१ ॥

अर्थ— तातैं भो ज्ञानी जन हो! तुम मनवचनकायकी प्रवृत्ति रोकनेकूं ध्यान तथा स्वध्यायमें मनवचनकायकरिकै निरंतर भलैप्रकार सावधानबुद्धिरूप होहू ॥

अब पंचसमितिका निरूपणविषैं ईर्यासमितिका निरूपणके अर्थि कहे हैं ॥ गाथा—

मग्गुज्जोवपउंगा- । लंबणसुद्धीहि इरियदो मुणिणो ॥
सुत्ताणुवीचिभणिदा । इरियासमिदी पवयणम्मि ॥ ९२ ॥

अर्थ— आचारांगसूत्रके अनुसारकरि जो मार्गशुद्धि, तथा उद्योतशुद्धि, तथा उययोगशुद्धि, तथा आलंबनशुद्धि ऐसैं च्यार प्रकारकी शुद्धताकरिकै गमन करता जो मुनि ताकै भगवानका सिद्धांतमें इर्यासमिति कही है ॥

तहां मार्गशुद्धता तो ऐसैं जाननी— जा मार्गमें बहुत त्रस नही होय, तथा बीज अंकुर हरित तृण पत्र जल कर्दमादिरहित होय, तथा गाडा गाडी हाथी घोडा वलध मनुष्यादिक बहुत जामैं गमन करि गये होय, अर अनेकमनुष्यादिकनिकी जा मार्गमें गमनागमनकी प्रवृत्ति होय, तथा जामैं उन्मत्त पुरुष तथा स्त्री तथा दुष्ट तिर्यंच मार्ग रोके नही खडे होय, ऐसे मार्गमें गमन करै ॥

बहुरि रात्रीमैं गमन नही करैं, तथा दीपकचंद्रमादिकनिका उद्योतकरिकै संयमीनिका गमन नही होय है, तातैं सूर्यका उद्योतकरि मार्ग स्पष्ट दीखने लगिजाय तादि च्यारि हाथप्रमाण जमीकूं दूरिहीतैं अवलोकन करि गमन करना। तथा सूत्रकी आज्ञाप्रमाण अभ्यंतर तो ज्ञानका उद्योत अर बाह्यसूर्यका उद्योतकरि गमन करै, सो उद्योतशुद्धता जाननी

बहुरि निर्दयतारहित धर्मध्यान चिंतवन करता, द्वादश भावना भावता, आहारका लाभ, स्वादादिककूं नही चिंतवन करता, तथा अभिमानादिक दोषरहित गमन करै, ताकै उपयोगशुद्धतासहित गमन जानना ॥

बहुरि गुरुवंदना, तथा तीर्थवंदना, तथा चैत्यवंदना, तथा यतीश्वरनिकी वंदनाके अर्थि गमन करे है; तथा अपूर्वशास्त्रका श्रवणके अर्थि, तथा संयमध्यानके योग्य क्षेत्र अवलोकनके अर्थि, तथा धर्मात्मा साधूकी वैयावृत्यके अर्थि, तथा मुनीकूं एकस्थान नही रहना तातैं अन्य धर्मरूप प्रदेशनिमैं विहार करनेके अर्थि, तथा आहार नीहारके अर्थि गमन करै; अर वन वृक्ष कूवा बावडी नदी तलाव ग्राम नगर महल मकान बाग इत्यादिकके अवलोकनके अर्थि कदाचित् गमन नही करे है, ताकै अवलंबनशुद्धि होय है ॥

बहुरि सूत्रके अनुसार गमन करे है, अतिविलंबतैं गमन नही करे है, अर अतिशीघ्र गमन नही करे है, बहुरि भयरहित तथा विस्मयरहित क्रीडाविलासरहित तथा उलंघना उछलना दोडना इत्यादिकदोषरहित गमन करै, तथा लंबायमान भुजाकरि गमन करै तथा चपलतारहित ऊर्ध्व तिर्यक् अवलोकनरहित गमन करै, बहुरि कंपायमान होता जो पाषाण ईंट काष्ठ तिनऊपरि पग देय गमन नही करै, विनासोध्या विनाविचाऱ्या पग नही धरै, तथा मार्गमें गमन करते कोऊसूं वचनालाप नही करै, अर जो कदाचित् बोलनेकाही अवसर आजाय तो खडारहिकरिकै अर थोरे अक्षरनकरिकै धर्मका अवलंबनसहित वचन कहे, बहुरि तुस भुस आला-गोवर तथा मलमूत्र तृणानिका

समूह तथा पाषाण काष्ठफलक दूरहितैं टारै, तथा गौ वलध कूंकश गाडी घोडा हाथी भैसा मींढा गधा इत्यादिक अनेकतिर्यंचनिकूं टालिकरिकै गमन करनेमें प्रवीण होय ताकै ईर्यासमिति होय है ॥ अब भाषा समितिको वर्णन करै हैं ॥ गाथा—

सच्चमसच्चं मोसं । अलियादीदोसवज्जणमवज्जं ॥
वदमाणस्सणुवीची । भासासमिदी हवइ सुद्धा ॥ ९२ ॥

अर्थ— लोकविषैं वचन च्यारिप्रकार हैं। सत्य, असत्य, उभय, अनुभय। तिनमें असत्य अर उभय इनि दोयवचनकूं त्यागि अर सत्य अर अनुभय इनि दोयप्रकार वचनकूं सूत्रके अनुकूल बोलता पुरुषके शुद्ध भाषासमिति होय है॥ कैसाक हैं सत्यवचन अर अनुभयवचन? असत्यादिकदोषरहित हैं, तातैं दोय वचनही श्रेष्ठ हैं॥

भावार्थ— सांचे समीचीन वचनकूं सत्य कहिये हैं। अर असम्यक् बुरा वचन ताकूं मृषा कहिये वा असत्य कहिये हैं। अर जामैं सांच अर झूंठ दोऊ होय ताकूं सत्यमृषा कहिये हैं वा उभय कहिये हैं। अर जामैं सत्यहू नही अर असत्यहू नहीं ताकूं अनुभय कहिये अथवा असत्यमृषा कहिये ॥

अब प्रकरण पाय च्यारि प्रकारका वचनकूं संक्षेपकरि कहिये हैं॥ प्राणीका दोऊ लोकसंबंधी हितनैं वांछा करता खोटे अभिप्रायरहित सत्य कहो वा असत्य कहो

उस वचनकूं सत्य कहिये हैं। अर प्राणीका अहितकूं चाहता जाका खोटा परिणाम होय, सो सत्य कहो वा असत्य कहो, ताकूं असत्यही कहिये हैं। अथवा घटकूं घट कहना सत्य है। अर मृगतृष्णाकूं जल कहना असत्य है। वहुरि कुंडिकाकूं घट कहना उभयवचन है, जैसैं जलधारणादिक क्रिया घटमें प्रवर्तै तैसैं कुंडिकामैंहू प्रवर्तै है तातैं अर्थक्रियाका करनेतैं तो सत्य है, जैसैं जलका धारण स्नान पानादिक क्रिया घटतैं होय तैसैं कुंडिकाहूतैं होय है, तातैं तो सत्य है, अर घटकी आकृति तथा नामादिक नही प्रवर्तै तातैं असत्य है, ऐसैं कुंडिकाकूं घट कहना सत्य असत्य दोऊरूपपणातैं उभयवचन है। बहुरि जामैं सत्य असत्य दोऊ नही तिस वचनकूं अनुभय कहिये॥ सो सत्यका स्वरूप अर अनुभयवचनका स्वरूप सूत्रकार आपही कहसी। तातैं इहां विशेष नही लिख्या है॥ अब सत्यवचनका दशभेद कहे हैं॥ गाथा—

जणवदसंमदिठयणा-। णामेरूवे पडुच्चसच्चे य॥
संभावणववहारे। भावेणोपम्मसच्चेण॥ ९४॥

अर्थ— १ जनपदसत्य, २ संमतसत्य, ३ स्थापनासत्य, ४ नामसत्य, ५ रूपसत्य, ६ प्रतीत्यसत्य, ७ संभावनासत्य, ८ व्यवहारसत्य, ९ भावसत्य, १० उपमासत्य ऐसैं दशप्रकार सत्यवचन भगवान् कहे हैं॥

१ तिनमैं जो अनेकदेशनिमैं जिसजिस देशके वसनेवाले व्यवहारी लोक, तिनका जो वचन, ताकूं जनपदसत्य कहिये हैं ॥ जैसैं रांधे चावलनिकूं महाराष्ट्रदेशमें 'भातु' कहे हैं, कोऊ 'भेटु' कहे हैं, आंध्रदेशमें 'वंटकमु' कहे हैं वा 'कूंड' कहे हैं, कर्णाटदेशमें 'कूलु' कहे हैं, द्रविडदेशमें 'चोंरु' कहे हैं, मालवमें वा गुजराथमें 'चोखा' कहे हैं। सो ऐसैं देशकी भाषाकरि वस्तूकूं कहना, सो जनपदसत्य है ॥ जनपद नाम देशका है, अथवा आर्य अनार्य जे नानाप्रकार देश तिनमें जो धर्म अर्थ काम मोक्षादिकका स्वरूपका उपायका उपदेश करनेवाला वचन 'जैसैं धर्म दयास्वरूपही है' तथा राजा राणा इत्यादिक वचन सो सर्व जनपदसत्य है ॥

२ बहुरि जो वचन सर्वलोकमें मान्य होय ताकूं संमतसत्य कहिये हैं। जैसैं कमल पृथ्वी जल पवन बीज इत्यादिक अनेककारणनितैं उपज्या है, तोहू ताकूं सर्वलोक पंकज कहे हैं, कमल केवल पंक जो कर्दम ताहीतैं तो नहीं उपज्या है, तोहू पंकज कहना संमतसत्य है। अथवा राजाकी पट्टराणी मनुष्यिणी है तोहू सर्वलोक ताकूं देवी कहे हैं, सो संमतसत्यही है ॥

३ बहुरि अन्यवस्तूका धर्म अन्य जो तद्रूप अथवा अतद्रूप तामैं आरोपण करिये स्थापना करिये, सो स्थापनासत्य है। जैसैं धातुपाषाणका प्रतिबिंबमें अथवा अक्षतादि-

कनिमैं ये चंद्रप्रभस्वामी है ऐसैं मुख्यवस्तूका स्थापन करना, सो स्थापनासत्य है ॥

४ बहुरि जो शब्दका अर्थरूप तो नही होय अर जैसा नाम कहे तैसा तामैं गुणहू नही होय, तामैं व्यवहारकी प्रसिद्धताके अर्थि लौकिकजनाकरि कीया सो नामसत्य है। जैसैं कोऊकूं देवदत्त कह्या तथा जिनदत्त कह्या, जिनादिक ताकूं दीया नही तोऊ ताकूं जिनदत्त कहे हैं। अथवा मनुष्यकूं इंद्रराज कहै, तथा चंद्र सूर्य कहै, तथा चतुर्भुज कहै, सो नामसत्य है ॥

५ बहुरि जगतमें नेत्रनिका व्यवहारकी आधिक्यता है, तातैं पुद्गलका रूप गुणकी प्रधानताकरि जो वचन कहना, सो रूपसत्य है। जैसैं हंसनिकी पंक्तीमैं हंसनिका रस रुधिर चूंच पग रक्त है तोऊ श्वेत कहना सो रूपसत्य है ॥

६ बहुरि कोऊ पदार्थकी अपेक्षाकरिकै अन्यस्वरूप कहना; जैसैं कायरकी अपेक्षा कोऊकूं शूर वीर कह्या, मंदज्ञानीकी अपेक्षा कोऊकूं ज्ञानी कह्या, दीर्घकी अपेक्षा कोऊकूं ह्रस्व कह्या सो सर्व प्रतीत्यसत्य है ॥

७ बहुरि असंभवका परिहारपूर्वक वस्तूका धर्मकी विधि है लक्षण जाका ऐसी संभावना करिकै जो वचन, सो संभावनासत्य है। जैसैं इंद्र एक तर्जनी अंगुलीकरि मेरूकूं उखालनेकूं समर्थ है अथवा इंद्र जंबूद्वीपकूं पलट दे ऐसैं कहना, सो इंद्रमें मेरूकूं

अंगुलीकरि उठावनेकी अर जंबूद्वीपकूं पलट देनेकी शक्तीका अभाव नहीं है– ऐसैं करनेका सामर्थ्य है, तथापि ऐसी क्रिया कदे करी नही अर करेगा नही, परंतु सामर्थ्य हैही, सो क्रियाकी अपेक्षाविना जो वस्तूका सामर्थ्य कहना, सो संभावनासत्य हैं ॥

८ बहुरि नैगमनयकूं प्रधानकरि कहना, जैसैं कोऊ पुरुष पाणी भरै था तथा अग्नि वाले छा, ताकूं कोऊ पूछि तुम कहा करो हो? तब कही– भात पकावां हां, सो इहां हाल चावलही धरे है, इनकूं भात कहना सो व्यवहारसत्य है ॥

९ बहुरि अतींद्रिय अर्थविषैं भगवानका परमागममें कह्या जो विधिनिषेध, तींका संकल्परूप परिणामकूं भाव कहिये हैं, ताके आश्रय जो वचन, सो भावसत्य है। जैसैं शुष्क कहिये सूका अर पक्व कहिये अग्नीमैं पकाया तथा ताता कीया तथा आमली लवण जामैं मिलाय दीया बहुरि चाकी पत्थरादिकनितैं पीस्या काट्या तथा जंत्रमें पेल्या ऐसा द्रव्य प्रासुक है, ताके सेवनेमें पापबंध नही है, ऐसैं पापका त्यागरूप प्रासुकद्रव्य सर्वज्ञ भगवान् कह्या है। ऐसैं प्रासुकही द्रव्यमें सूक्ष्मप्राणी आय पडे अर इंद्रियनिके गोचर नही, तिनमें सर्वज्ञप्रणीत आगमकी प्रमाणतातैं शुद्ध जानना, सो भावसत्य है ॥

१० बहुरि जाकी गिणती नही करि जाय ऐसे प्रमाणकूं पल्य जो खाडा ताकी

उपमा करि कहिये, सो उपमासत्य है। जैसें याका आयु कल्पप्रमाण है। तथा ग्रीष्म अग्नि है ऐसें कहना उपमासत्य है॥

ऐसें सत्यके दश भेद कहे, सो भाषासमितिका धारक सत्य कहे हैं॥ गाथा—

तव्विवरीदं मोसं। तं उभयं जत्थ सच्चमोसं तं॥
तव्विवरीया भासा। असच्चमोसा हवदि दिट्ठा॥ ९५॥

अर्थ— जो वचन दशप्रकारका सत्यवचनतैं विपरीत कहिये उलटा हैं, सो मृषावाचन कहिये असत्यवचन है। अर जामैं सत्य असत्य दोऊ सो उभयभाषा है- जैसें कमंडलकूं घट कहना, जातैं घटकीनाईं जलधारण स्नानपानादिक अर्थक्रिया करे है, तातैं तो सत्य है, अर घटका आकार तथा नामादिक नही तातैं असत्य है। ऐसें उभयवचन कह्या। अर जामैं सत्य अर असत्य दोऊ नही, ऐसे वचनकूं अनुभयवचन कह्या है। जैसें कोऊ कही 'मोकूं क्यूं प्रतिभासे है?' इहां सामान्यकरिकै अर्थ प्रतिभास्या है, सो अपनी अर्थक्रियाकारी जो विशेषनिर्णय ताका अभावतैं सत्य ऐसैं नही कह्या जाय अर सामान्यप्रतिभासमें आयाही, तातैं ताकूं असत्यहू नही कह्या जाय, तातैं अनुभयवचनकी जाति जुदीही है॥ अब आमंत्रणादी अनुभयवचनके नव भेद कहे हैं॥ गाथा—

आमंतणि आणवणी । जायणि संपुच्छणी य पण्णवणी ॥
पच्चख्खाणी भासा । भासा इच्छाणुलोमा य ॥ ९६ ॥
संसयवयणी य तहा । असच्चमोसा य अट्ठमी भासा ॥
णवमी अणख्खरगदा । असच्चमोसा हवदि णेया ॥ ९७ ॥

अर्थ— १ आमंत्रणी, २ आज्ञापनी, ३ याचिनी, ४ सम्पृच्छनी, ५ प्रज्ञापनी, ६ प्रत्याख्यानी, ७ इच्छानुलोमवचनी, ८ संशयवचनी, ९ अनक्षरात्मिका ऐसें नवप्रकार अनुभयवचन है ॥

कोऊ पुरुष अन्यकार्यमें आसक्त था, ताकूं सन्मुख करनेकूं हे देवदत्त इत्यादि वचन सो आमंत्रणी भाषा है ॥ १ ॥ मै तुमकूं आज्ञा करूं हूं सो आज्ञापनी भाषा है ॥ २ ॥ मै एक याचना करूं हूं इत्यादि याचनी भाषा है ॥ ३ ॥ मै एक आपकूं पूछूं हूं सो आपृच्छनी भाषा है ॥ ४ ॥ मै एक आपकूं जणाऊं हूं सो प्रज्ञापनी भाषा है ॥ ५ ॥ मै एक त्याग करूं हूं इत्यादि प्रत्याख्यानी भाषा है ॥ ६ ॥ जैसी आपकी इच्छा है तैसें मोकूं करना ऐसें इच्छानुलोमवचनी है ॥७॥ या बुगलांकी पंक्ति है अकि ध्वजा है? इत्यादि संशयवचनी भाषा है ॥८॥ अर बेइंद्रियकी तथा त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय असञ्ज्ञीपञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चनिकी तथा बालककी अक्षररहित जो भाषा सो अनक्षरी भाषा है

ये नवप्रकारकी भाषा श्रवण करनेवालेनिकै सामान्यकरिकै तो अर्थका एक अंशका जनावनेतैं तो प्रकट अर विशेष अर्थका प्रकट करनेके अभावतैं अप्रकट ऐसी अनुभय-भाषा है। सो यामैं विशेष अर्थ तो प्रकट नहीं हुवा, तातैं तो सत्य कैसैं कह्या जाय? अर सामान्य अर्थके प्रकट करनेतैं असत्य कैसैं कह्या जाय? तातैं अनुभयपणा जानना। अर लोकमें औरहू अनेकप्रकार अनुभयभाषा हैं। सो ये नवप्रकार कहे वचनमेंही गर्भित हैं॥ कोऊ प्रश्न करे, जो, तिर्यंचनिकी अनक्षरात्मकभाषामैं सामान्य अर्थका अंश जनावनेका अभावतैं अनुभयवचन कैसैं कह्या? ताकूं उत्तर करे हैं— जो, द्वीन्द्रियादिक अनक्षरभाषाकूं बोलनेवाला जीव ताके वचनके श्रवण करिकै तिनका सुखदुःख प्रकरणादिकका अवलंबन करिकै हर्षविषादादिक अभिप्रायकूं जान्या जाय है, तातैं सामान्य अर्थका जनावनेतैं अनक्षरात्मक वचनहू अनुभयवचन है॥ इहां कोऊ प्रश्न करै, जो, केवलीकी दिव्यध्वनिकै सत्यवचन अर अनुभयवचनपणा कैसैं संभवै? ताका उत्तर ऐसा है— जो भगवानकी दिव्यध्वनिके उत्पत्तिविषैं तो अनक्षरात्मकपणाकरिकैं श्रोताजननिके कर्णप्रदेशकी प्राप्तीका समयपर्यंत तो अनुभय-भाषापणाकी सिद्धि है अर ताके अनंतर श्रोताजनाका अभिप्रायका अर्थनिमैं संश-यादिकका निराकरण करिकै सम्यग्ज्ञानका उपजावनेकरि सत्यवचनकी सिद्धि है॥

ऐसैं पंचसमितिविषैं भाषासमितिका वर्णन कीया ॥ गाथा—

उग्गमउप्पादणए- । सणाहि पिंडमुवधिं च सेज्जं च ॥
सोधिंतस्स य मुणिणो । विसुज्झदे एसणासमिदी ॥ ९८ ॥

अर्थ— आहार और उपधि कहिये उपकरण और वसतिका इनकूं उद्गम उत्पादन एषणा इनि दोषनिकरि रहित इनकूं सोधन करता मुनिकै एषणासमिति शुद्ध होय है ॥ भावार्थ- उद्गम उत्पादन एषणा दोषरहित शुध्द आहार और उपकरण अर वसतिकाकूं जो मुनि ग्रहण करे है, ताकै शुद्ध एषणासमिति होय है ॥ गाथा—

सहसाणाहोइयदु- । प्पमज्जियअपच्चुवेखणा दोसे ॥
परिहरमाणस्स हवे । समिदी आदाणणिक्खेवा ॥ ९९ ॥

अर्थ— येते आदाननिक्षेपणाके दोष टारि जो शरीरका तथा उपकरणादिकका उठावना मेलना करे है, ताकै आदाननिक्षेपणा समिति होय है ॥ जो शीघ्रतासूं शरीरादिककूं उठावै मेलै पसारै संकोचै, ताकै सहसानिक्षेपदोष है ॥ बहुरि नेत्रनिसूं देखेविना तथा कोमल पीछिकातैं सोधेविना उठावना मेलना, सो अनाभोगितदोष है ॥ बहुरि अनादरतैं सोधना मन विनालगाये लोकनिकूं अपनी शुद्धता दिखावनेकूं तथा आचारमात्र समझि जीवदयाकरि रहित होय सोधना, सो दुष्प्रमार्जित-

दोष है ॥ बहुरि वस्तुकूं बहोत काल गयेपीछे सोधना— जामैं जीवनिका निवास होय जावै तदि सोधै तथा साधुकूं प्रभातकाल अर अपराण्हकाल दोय कालमैं संस्तर उपकरण सोधनेकी आज्ञा है तहां प्रमादी होय काल व्यतीत भये सोधना, सो अप्रत्युपेक्षणदोष है ॥ इनि दोषनिकूं टारि शरीर पुस्तकादिक उपकरणका उठावना मेलना प्रमादरहित यत्नाचारतैं करै ताकै आदाननिक्षेपणासमिति होय है ॥ गाथा—

एदेण चेव पदिट्ठा- । वणसमिदी वि वण्णिया होई ॥
वोसरिणिज्जं दव्वं । थंडिल्ले वोसरंतस्स ॥ १२०० ॥

अर्थ— इस आदाननिक्षेपणा समितीका वर्णनकरिकैंही प्रतिष्ठापना नामा समितीका वर्णन होय है। सो स्थंडिलभूमि जो निर्जंतु प्रासुक छिद्ररहित उद्योतरूप क्षेत्रमें मल, मूत्र, कफ, केश, नखनिकूं क्षेपण करते मुनिकै प्रतिष्ठापना समिति होय हैं ॥

एदाहिं सदा जुत्तो । समिदीहिं जगम्मि विहरमाणो दु ॥
हिंसादीहिं ण लिप्पइ । जीवणिकायाउळे साहू ॥ १ ॥
पउमणिपत्तं व जहा । उदएण ण लिप्पदि सिणेहगुणजुत्तं ॥
तह समिदीहिं ण लिप्पइ । साहू काएसु इरियंतो ॥ २ ॥

अर्थ— यामकार जे पंचसमिति तिनकरिकै जगतमैं प्रवर्तन करते जे साधु ते

छकायके जीवनिकरि व्याप्त जो लोक, तामैं हिंसादिकपापनिकरि नही लिपे है ॥ जैसैं सचिक्कणतागुणसहित जो कमलिनीका पत्र, सो जलमें रहताहू जलकरि लिप्त नही होय है, तैसैं पंचसमितिकूं पालन करता साधु जीवनिकरि व्याप्तहू लोकमें प्रवर्तन करताहू हिंसादिक पापनिकरि नही लिपे है ॥ गाथा—

सरवासे वि पडंते। जह दढकवचो ण विज्झदि सरेहिं ॥
तह समिदीहिं ण लिप्पइ। साहू काएसु इरियंतो ॥ ३ ॥

अर्थ— जैसैं रणके अंगणमें दृढ वकतर धारण करता पुरुष बाणनिकी वर्षा होताभी बाणनिकरि नही भेद्या जाय है, तैसैं समिति धारण करिकै साधूहू छकायके जीवनिकरि व्याप्त लोकमें प्रवर्तन करताहू पापकरि लिप्त नही होय है ॥ गाथा—

जत्थेव चरइ वालो। परिहारण्हू वि चरइ तत्थेव ॥
वज्झदि पुण सो वालो। परिहारण्हू वि मुच्चइ सो ॥ ४ ॥
तह्मा चेट्ठिदुकामो। जइया तइया भवाहि तं समिदो ॥
समिदो हु अण्णमण्णं ॥ णादियदि खवेदि पोराणं ॥ ५ ॥

अर्थ— जिस क्षेत्रमें, वा विहारमें, तथा आहारपानमें, तथा इंद्रियद्वारे श्रवण करनेमें, अवलोकनमें, तथा भोजनके आस्वादनमें यत्नाचारी रागी द्वेषी हुवा अज्ञानी

प्रवर्तै है, तिसहीमैं यत्नाचारी रागद्वेषरहित हुवा सम्यग्ज्ञानी प्रवर्तन करे है। तिनमैं अज्ञानी तो कर्मबंधकूं प्राप्त होय है अर ज्ञानी निर्जरा करे है। तातैं जिस कालमैं गमनकी इच्छा होय तथा वचन बोलनेकी तथा आहार पान शयन आसनकी तथा मेलने-उठावनेकी इच्छा होय, तिस कालमैं समितिरूप होय परमयत्नाचारतैं प्रवर्तन करहू। समितिरूप प्रवर्तता यत्नाचारी ज्ञानी नवीन नवीन कर्म नहीं ग्रहण करे है अर पुरातन बांध्या कर्मकी निर्जरा करे है॥ गाथा—

एयाउ अट्ठपवयण-। मादाउ णाणदंसणचरित्तं ॥
रक्खंति सदा मुणिणो। मादा पुत्तं व पयदाउ ॥ ६ ॥

अर्थ— ऐसैं पंचसमिति तथा तीन गुप्तिस्वरूप जे ये अष्टप्रवचनमातृका, ते मुनीश्वरनिके दर्शनज्ञानचारित्रनिकूं सदाकाल रक्षा करे हैं। जैसैं जतनकूं धारती माता पुत्रकी रक्षा करे है, तैसैं साधूका रत्नत्रयकी रक्षा करनेवाली अष्टप्रवचनमातृका जाननी॥ त्रयोदशप्रकार अखंडचारित्रकूं आराधना करता साधूकै एकेक व्रतकी रक्षाके अर्थि पांच पांच भावना परमागमविषैं कही हैं॥ तातैं अब अहिंसाव्रतकी पांच भावना कहे हैं॥ गाथा—

एसणणिक्खेवादा-। णिरियासमिदी तहा मणोगुत्ती ॥

आलोयभोयणं चिय । अहिंसाए भावणा होंति ॥ ७ ॥

अर्थ— पूर्वै आहारकी विधि जैसैं वर्णन कीनी, तैसैं छीयालीस दोष अर बतीस अंतराय अर चोदह मल तिनकरि रहित शुद्ध आहार ग्रहण करना, सो एषणासमिति है। तथा यत्नाचारसहित शरीर तथा उपकरणनिका उठावना मेलना, सो आदाननिक्षेपणासमिति है। बहुरि निर्जंतु भूमीविषैं ईर्यापथ शोधता गमन करना, सो ईर्यासमिति है। बहुरि मनकूं अशुभध्यानतैं रोकि शुभध्यानमें लगावना, सो मनोगुप्ति है। बहुरि दिवसमें नेत्रनितैं अवलोकन करि पानभोजन करना, सो आलोकितपानभोजन है॥ जो साधु अहिंसामहाव्रतकूं धारण करि व्रतकी रक्षा कीया चाहै; सो, भोजनका अवसरमें तो एषणासमिति, अर शरीरादिकनिका उठावनेमेलनेका अवसरमें आदाननिक्षेपणासमिति, अर गमनका अवसरमें ईर्यासमिति, अर मनोगुप्ति अर आलोकितपानभोजन इनि पंचभावनानिकूं निरंतर विस्मरण नही करना ॥ अब सत्यमहाव्रतकी पंच भावना कहे हैं ॥ गाथा—

कोधभयलोभहस्सप- । दिण्णा अणुवीचिभासणं चेव ॥
विदियस्स भावणाउ । वदस्स पंचेव ता होंति ॥ ८ ॥

अर्थ— जो सत्यमहाव्रत धारण करै, ताकूं क्रोधका तथा भयका तथा लोभका तथा

हास्यका तो त्याग करना, अर सूत्रके अनुकूल वचन बोलना योग्य है ॥ आगै अचौर्यव्रतकी पांच भावना कहे हैं ॥ गाथा—

अणणुण्णादग्गहणं । असंगबुद्धी अणुण्णवित्ता वि ॥
एदावंति य उग्गह- । जायणमध उग्गहाणुस्स ॥ ९ ॥
वज्जणमणणुण्णादो । गिहप्पवेयस्स गोयरादीसु ॥
उग्गहजायणमणुवी- । चीए तह भावणा तइये ॥ १२१० ॥

अर्थ— कमंडलु पींछी पुस्तकादिक साधर्मीनिकूं जणायाविना—आज्ञाविना नही ग्रहण करना, तथा आज्ञाकरिकैहू ग्रहण कीये जे उपकरणादिक तिनमें आसक्तताका अभाव, तथा ग्रहण करनेयोग्यमेंहू जितनातैं प्रयोजन तितना मात्र याचना करना, तथा ग्रहण करनेयोग्यमें ग्रहण करनेकी बुद्धि करना अथवा विनाजणाया साधर्मीनिके उपकरणादिकनिका ग्रहण नही करना, तथा गोचरीका अवसरमेंहू गृहस्थकी आज्ञाविना गृहस्थके घरमें प्रवेश नही करना, सूत्रके अनुकूल वस्तूका ग्रहण करना, ये अचौर्यव्रतकी पंच भावना हैं ॥ अब ब्रह्मचर्यव्रतकी पंच भावनाकूं कहे हैं ॥ गाथा—

महिलालोयणपुव्वरदि- । सरणं संसत्तवसहिविकहाहिं ॥
पणिदरसेहि य विरदी । य भावणा पंच बंभस्स ॥ ११ ॥

र्थ— ब्रह्मचर्यव्रतकी पांच भावना हैं। तिनमें स्त्रीनिके स्तन–जघन–वदनकूं
ावकरि देखनेका त्याग, तथा अपनी असँयम अवस्थामें जे कामभोगादिक
कीये थे तिनका स्मरण–चिंतवन करनेका त्याग, तथा स्त्रीनिका संसर्ग तथा
करि सेये स्थान आसन वसतिकानिका त्याग, तथा जिनवचननिकरि स्त्रीनिका
भोगरूप चातुर्यताका प्रकट करना होय ऐसी विकथानिका त्याग, तथा
की उत्कटताका करनेवाला रसकारी भोजनका त्याग करना, ये ब्रह्मचर्यव्रतकी
ावना भावनेयोग्य हैं ॥ अब परिग्रहत्यागव्रतकी पंच भावना कहे हैं गाथा–

अपरिग्गहस्स मुणिणो । सद्दफरिसरसरूवगंधेसु ॥
रागद्दोसादीणं । परिहारो भावणा होंति ॥ १२ ॥

अर्थ— परिग्रहका त्यागी साधूके शब्द स्पर्श रस रूप गंध जे पंच इंद्रियनिके
ा तिनमें सुंदरमें रागका त्याग करना अर अमनोज्ञमें द्वेषका त्याग करना,
परिग्रहत्याग महाव्रतकी पंचभावना हैं ॥ अब भावनाका महिमा कहे हैं ॥ गाथा–

ण करेदि भावणाभा- । विदो हु पीडं वदाण सव्वेसिं ॥
साधू पासुत्तो समु- । हदो व किमिदाणि वेदंतो ॥ १३ ॥

अर्थ— एकएक व्रतकी पंच पंच भावना भावता साधु शयन करताहू तथा

मूर्छाकूं प्राप्त भयाहू समस्तव्रतनिकूं पीडा नही करे हैं, तो साक्षात् भावना भावताको व्रत कैसैं मलिन होय? व्रतनिकी उज्वलताही होय ॥ गाथा—

एदाहि भावणाहि दु । तह्मा भावेहि अप्पमत्तो तं ॥
अच्छिद्दाणि अखंडा- । णि ते भविस्संति हु वदाणि ॥ १४ ॥

अर्थ— तातैं भो मुने! इनि पचीस भावनानिकूं प्रमादरहित भये निरंतर भावना करो । तुमारै छिद्ररहित निरंतर अखंडव्रत पूर्ण होयगे ॥ अब निःशल्य कहिये शल्यरहितकै व्रत होय हैं, तातैं माया मिथ्या निदान ये तीन प्रकारकी शल्य निराकरण करो, ऐसैं कहे हैं ॥ गाथा—

णिस्सल्लस्सेव पुणो । महव्वदाइं हवंति सव्वाइं ॥
वदमुवहम्मइ तीहिं । दु णिदाणमिच्छत्तमायाहिं ॥ १५ ॥

अर्थ— जातैं शल्यरहितकैही सकल महाव्रत होय है अर निदान मिथ्यात्व माया ये तीन शल्य व्रतनिका घात करे हैं, तातैं निःशल्य होना योग्य है ॥ अब सतरि गाथानिकरि निदानशल्यकूं कहे हैं ॥ गाथा—

तत्थ णिदाणं तिविहं । होइ पसत्थापसत्थभोगकदं ॥
तिविहं पि तं णिदाणं । परिपंथो सिद्धिमग्गस्स ॥ १६ ॥

अर्थ— तिन तीन शल्यनिमें निदान शल्य तीनप्रकार है। एक प्रशस्तनिदान, दूजा अप्रशस्तनिदान, तीजा भोगकृतनिदान। ऐसैं तीन प्रकारकाही निदान निर्वाणका मार्ग जो रत्नत्रय, तामैं विघ्न है-रत्नत्रयका विनाशकरनेवाला है॥ अब प्रशस्तनिदानका निरूपण करें हैं॥ गाथा-

संजमहेदुं पुरिस-। त्तवलवीरियसंहणणबुद्धी॥
सावयबंधुकुलादी-। णि णिदाणं होदि हु पसत्थं॥ १७॥

अर्थ— जो संजम धारनेके अर्थि अन्यजन्ममें पुरुषार्थ, उत्साह अर शरीरतैं उपज्या बल, अर वीर्यांतरायके क्षयोपशमतैं उपज्या वीर्य, अर वज्रवृषभनाराच जो उत्तमसंहनन, अर उत्तम बुद्धि, अर श्रावकधर्म, अर धर्ममें सहायी बंधुजन, वा बंधुजनका अभाव, तथा निर्वाणकै योग्य निर्मलकुलादिकनिकी चाह करना, सो प्रशस्तनिदान होत है॥ भावार्थ- जाकै ऐसी वांछा, जो, कोऊप्रकार मेरै श्रावकधर्मकी प्राप्ति होहू, तथा पुरुषार्थ बल वीर्य संहनन ऐसा मेरै होय जायकी मेरी संजममें शीघ्रही प्रवृत्ति होजाय ऐसी वांछा करना, सो प्रशस्तनिदान है॥ अब अप्रशस्तनिदानकूं कहे हैं॥

माणेण जाइकुलरू-। वमादि आइरियगणधरजिणत्तं॥
सोभग्गाणादेज्जं। पत्थंतो अप्पसत्थं तु॥ १८॥

अर्थ— बहुरि जो अभिमानकरिकै उत्तमजाति, उत्तमकुल, उत्तमरूप, उत्तमबुद्धि, तथा आचार्यपणा, तथा गणधरपणा, तथा तीर्थंकरपणा तथा सौभाग्य, तथा आज्ञा, तथा आदरकी प्रार्थना करै; ताकै अप्रशस्तनिदान होत है ॥ गाथा—

कुद्धो वि अप्पसत्थं । मरणे पत्थेइ परवधादीयं ॥
जह उग्गसेणघादे । कदं णिदाणं वसिट्ठेण ॥ १९ ॥

अर्थ— जो मरणकालमें क्रोधी होय अर परका मारणादिककी वांछा करे है, ताकै अप्रशस्तनिदान होत है। जैसैं वसिष्ठ नामा मुनि उग्रसेन राजाकूं मारनेके अर्थि निदान कीया ॥ अब भोगकृतनिदानका निरूपण करे हैं ॥ गाथा—

देवियमाणुसभोगे । णारिस्सरसिट्ठिसत्थवाहादी ॥
केसवचक्कधरत्तं । पत्थिंते होदि भोगकदं ॥ १२२० ॥

अर्थ— देवनिका भोग, तथा मनुष्यका भोग, तथा नारीनिका ईश्वरपणा, तथा श्रेष्ठीपणा, तथा संघका-जातिकुलका अधिपतिपणा, तथा केशवपणा, तथा चक्रवर्तीपणाकूं प्रार्थना करै; ताकै भोगकृतनिदान होत है ॥ गाथा—

संजमसिहरारूढो । घोरतवपरक्कमो तिगुत्तो वि ॥
पकरेज्ज जइ णिदाणं । सो वि य वट्टेइ दीहसंसारं ॥ २१ ॥

अर्थ— जो संयमके शिखरऊपरि चढ्या होय, तथा घोरतप घोरपराक्रमका धारक होय, तथा तीन गुप्तीका धारक होय, ऐसा उत्कृष्टचारित्रका धारकहू साधु कदाचित् निदान करै, तो दीर्घसंसारकी वृद्धि करै! बहुतकाल संसारपरिभ्रमण करै! तदि अल्पचारित्रका धारक निदान करै तो बहुतकाल संसारभ्रमण नही करै कहा ? करैही करै ॥

जो अप्पसुक्खहेदुं । कुणइ णिदाणमविगणिय परमसुहं ॥
सो कागणिए विक्के । इ मणी वहुकोडिसयमोल्लं ॥ २२ ॥

अर्थ— जो इंद्रियजनित अल्पसुखके निमित्त आत्मिक-अतींद्रिय-निर्वाणके सुखकूं अवज्ञा करिकै अर निदान करे है, सो बहुतकोटि धन है मोल जाका ऐसी मणीकूं एक कौडीमैं वा एक दमडीमैं बेचे है! ॥ भावार्थ— शुद्धसंयम धारण करनेतैं आत्मिक अतींद्रिय-निर्वाणका सुख होय है अर कोऊ दुर्बुद्धीकूं प्राप्त होय भोगनिमैं निदान करि विषयांके निमित्त संयम बिगाडे है, सो कोटिधन है मोल जाका ऐसी मणीकूं कौडी एकमें वा दमडीमैं वेचे है ॥ गाथा—

सो भिंदइ लोहत्थं । णावं भिंदइ मणिं च सुत्तत्थं ॥
छारकदे गोसीरं । डहदि णिदाणं खु जो कुणदि ॥ २३ ॥

अर्थ— जो धर्मात्मा होय निदान करे है, सो अनेक रत्नांकी भरी 'समुद्रमें

गमन करती' नावकूं लोहके अर्थि भेदे है! तथा सूतके अर्थि मणिमय हारकूं तोडे है! तथा भस्मके निमित्त गोसीर नाम दुर्लभचंदनकूं दग्ध करे है! ॥ गाथा—

कोढीसंतं लध्दुण । डहई उच्छुं रसायणं एसो ॥

जो सामण्णं णासे- । इ भोगहेदुं णिदाणेण ॥ २४ ॥

अर्थ— जो परमरसायनरूप मुनिपणाकूं भोगांके निमित्त निदानकरिकै नाश करै है, सो पुरुष जैसैं कोऊ कोढामनुष्य रसायनरूप इक्षुरस प्राप्त होय ताकूं टोलत है, तैसैं जानना! ॥ गाथा—

पुरिसत्तादिणिदाणं । पि मोक्खकामा मुणी ण इच्छंति ॥

जं पुरिसत्ताइमई । भवो भवमई य संसारो ॥ २५ ॥

अर्थ— मोक्षके इच्छक मुनि पुरुषलिंग तथा उत्तमसंहननादिक पावनेकाहू निदान नही करै हैं। जातैं पुरुषलिंग पुरुषार्थ संहननादिक सर्व भव है, अर भवमय संसार है, तातैं जो पुरुष लिंगसंहननादिककी वांछाकरि निदान करै है; सो संसारकीही चाहना करी। तातैं वीतरागमुनि पुरुषार्थादिकनिहूकी वांछा नही करै है॥ अब सम्यग्ज्ञानी कहा वांछा करै है, सो कहै हैं॥ गाथा—

दुक्खक्खयकम्मक्खय- । समाधिमरणं च बोधिलाभो य ॥

एयं पत्थेदव्वं । ण पत्थणीयं तउ अण्णं ॥ २६ ॥

अर्थ— हमारै शरीरधारणादिक जन्ममरणादिक तथा क्षुधा तृषणा काम रागादिक जे दुःख, तिनिका क्षय होहू । बहुरि अनादिका आत्माकूं पराधीन करनेवाला मोहनीयादिक कर्मका क्षय होहू । तथा रत्नत्रयसहित मरण होहू । तथा बोधि जो रत्नत्रयका लाभ हमारै होहू । सम्यग्दृष्टीकै इतनी प्रार्थना करनेयोग्य है । इनतैं अन्य इस भव परभवमें प्रार्थना करनेयोग्य नही है ॥ गाथा—

पुरिसत्तादीणि पुणो । संजमलाभो य होइ परलोए ॥
आराधयस्स णियमा । तदत्थमकदे णिदाणे वि ॥ २७ ॥

अर्थ— बहुरि आराधनाकूं आराधते मनुष्यकै पुरुषार्थादिकके अर्थि नही निदान करतेभी नियमथकी परलोकमें पुरुषलिंगादिक अर संयमका लाभ होयही है ॥ गाथा—

माणस्स भंजणत्थं । चिंतेदव्वो सरीरणिव्वेदो ॥
दोसा माणस्स तहा । तहेव संसारणिव्वेदो ॥ २८ ॥

अर्थ— बहुरि मानका भंजनके अर्थि शरीरतैं वैराग्यचिंतवन करना योग्य है । अर समस्तदोष मानहीतैं हैं, तातैं इस पंचपरिवर्तनरूप संसारपरिभ्रमण करना सो मानहीका दोष है ॥ अब कुलका अभिमानका अभावके अर्थि उपाय कहे हैं ॥

कालमणंतं णिच्चा- । गोदो होदूण लहइ सगिमुच्चं ॥
जोणिं इदरसलागं । ताउ वि गदा अणंताउ ॥ २९ ॥

अर्थ— संसारपरिभ्रमण करता जो संसारी जीव, सो अनंतकालपर्यंत अनंतवार नीचगोत्रका धारक होयकरिकैं एकवार उच्चगोत्र धारत है। ऐसैं अनंतवार नीचयोनि धारण करै, तदि एकवार उच्चयोनि धारण करै। बहुरि अनंतवार नीचयोनि धारण करै, तदि एकवार उच्चयोनि धारण करै। ऐसैं करते करतेहू अनंतवार उच्चयोनीका धारकहू होगया। ऐसैं नीचा उंचा अनादिका होता आवे है। इतना विशेष है— नीचयोनि अनंत पावै तदि एक उच्चयोनि पावै है। तातैं कुलका अभिमान करना वृथा है॥

उच्चासु व णीचासु व । जोणीसु ण तस्स अत्थि जीवस्स ॥
वुड्ढी वा हाणी वा । सवत्थ वि तित्तिउ चेव ॥ १२३० ॥

अर्थ— उच्चयोनीमैं वा नीचयोनीमैं कोऊ योनीमैं प्राप्त होहू, जीवकी वृद्धि वा हानि होय नहीं। सर्व योनीनिमैं असंख्यातप्रदेशीही रहे है॥ गाथा—

णीचो वि होइ उच्चो । उच्चो णीचत्तणं पुण उवेई ॥
जीवाणं खु कुलाइं । पधियस्स व विस्समंताणं ॥ ३१ ॥

अर्थ— नीचयोनि जे कूकर सूकर चांडालादिकनिकी योनीकूं प्राप्त होय। बहुरि

उच्च देव मनुष्य ब्राह्मणक्षत्रियादिकनिकी योनीकूं प्राप्त होय है। बहुरि उच्चकुलकूं प्राप्त होय बहुरि नीचकुलकूं प्राप्त होय है। जैसैं मार्गमें गमन करता पथिक एकेक विश्रामस्थानकं छोडि अन्यस्थानकूं प्राप्त होय है। बहुरि ताकूंभी त्यागि अन्यस्थानकूं प्राप्त होय है। तैसैं जीवका नीचउच्चकुलमें परिभ्रमण जानना ॥ गाथा–

वहुसो वि लद्धविजढे। को उच्चत्तम्मि विंभमो णाम ॥
वहुसो वि लद्धविजढे। णीचत्ते चावि किं दुख्खं ॥ ३२ ॥

अर्थ-- जिस उच्चकुलकूं बहुतवार प्राप्त होय होय त्याग कीया, अब तिस उच्चकुलके पावनेमें कहा विस्मय है? अर जिस नीचकुलकूं बहुतवार प्राप्त होय छोड्या तिस नीचकुलके पावनेमें कहा दुःख है? ॥ गाथा–

उच्चत्तणे वि पीदी। संकप्पवसेण होइ जीवस्स ॥
णीचत्तणे य दुख्खं। तह होइ कसायवहुलस्स ॥ ३३ ॥

अर्थ— इस तीव्र मानादिक कषायके धारक जीवकै उच्चपणामैंभी संकलपका वशकरिकै प्रीति आनंद होय है, जो "मै उच्चकुलमें उपज्या हूं तथा पूज्या हूं उच्च हूं"। अर नीचपणामैंहू तैसैंही संकलपका वशतैं दुःख होय है, जो "हाय! मै इन लोकनितैं नीचा हूं"। ऐसैं नीचउच्चपणाहू कषायी जीवकै संकलपके वशतैं होय है। अर

निश्चयकरि देखिये तो आत्मा नीचाऊंचा है नही। अभिमानतैं आपकूं नीचाऊंचा माने है॥

उच्चत्तणं व जो णी- । चत्तं पिच्छेज्ज भावदो तस्स ॥
उच्चत्तणे व णीच- । त्तणे वि पीदी ण किं होज्ज ॥ ३४ ॥

अर्थ— जो जीव उच्चपणाकीनांई नीचपणाकूं भावनितैं देखे है, ताकै उच्चपणामैं तथा नीचपणामैं दोऊमैं सुख होत है। जाकै, उच्चनीचपणा दोऊही आत्मातैं भिन्न-कर्मके कीये हुये चिंतवनमें आवे हैं, ताकै आपका नीचापणा देखि दुःख नही उपजे है, आपकै निर्धनपणा अकुलीनपणा तथा आदरका अभाव देखिकरिकैभी आनंदरूपही रहे है ॥

णीचत्तणं व जो उ- । च्चत्तं पेच्छेज्ज भावदो तस्स ॥
णीचत्तणे वि उच्च- । त्तणे वि दुक्खं ण किं होज्ज ॥ ३५ ॥

अर्थ-- जो जीव उच्चपणाकूं नीचपणाकीनांई भावनितैं देखै, ताकै नीचत्व उच्चत्व दोऊही अवस्थामैं दुःख नही होय है कहा? होयही है। उच्चनीचपणाका सुखदुःख तो भावनिके संकल्पतैं है, औरप्रकार नही है॥ गाथा-

तम्हा ण उच्चणीच- । त्तणाइ पीदिं करंति दुक्खं वा ॥
संकप्पो से पीदिं । करेदि दुक्खं च जीवस्स ॥ ३६ ॥

अर्थ— तातैं जीवकै उच्चपणा प्रीति नही करे है अर नीचपणा दुःख नही

करे है। सुख अर दुःख जीवके संकल्प करे हैं ॥ भावार्थ— नीचपणाका दुःख अर उच्चपणाका सुख संकल्पके वशतैं होय है ॥ गाथा—

कुणदि य माणो णिच्चा- । गोदं पुरिसं भवेसु वहुएसु ॥
पत्ता हु णीचजोणी । वहुसो माणेण लच्छिमदी ॥ ३७ ॥

अर्थ— मानकषाय इस जीवकूं बहुतभवनिमैं नीचगोत्र जो चांडाल भीलादिकनिके कुलमें तथा ग्रामसूकर कूकरादिक अधमतिर्यंचनिमें तथा नारकीनिमैं वारंवार उत्पन्न करे है। जैसी लक्ष्मीमती ब्राह्मणी मानकषायकरिकै बहुतवार नीचयोनीनिकूं प्राप्त होती भई ॥ गाथा—

पूयावमाणरूववि- । रूवं सुभगत्तदुब्भगत्तं च ॥
आणाणाणा य तहा । विधिणा तेणेव पडिसेज्ज ॥ ३८ ॥

अर्थ— पूज्यपणा अपमान रूप विरूप सौभाग्य दुर्भाग्य आज्ञा अनाज्ञा तैसी विधिकरिकैही निषेध करनेजोग्य है ॥ भावार्थ—आपकै पूज्यपणाका अभिमान तथा अपमानपणाका दुःख, तथा रूपका आनंद अर विरूपपणाका दुःख, तथा सौभाग्यपणाका अभिमान तथा दुर्भाग्यपणाका दुःख, अर आज्ञा आपकी प्रवर्तै ताका सुख तथा आज्ञा आपकी नही मानै ताका दुःख इत्यादिक अभिमानजनित संकलपके वशतैं होय

हैं। वस्तुत्वकरि कछूहू नहीं, तातैं वस्तूका सत्यार्थरूप समझी निषेध करना योग्य है॥

इच्चेवमादि अविचिं-। तयदो माणो हवेज्ज पुरिसस्स ॥
एदे सम्मं अत्थे। पस्सदो णो होइ माणो हु॥ ३९

अर्थ— इत्यादिक दोष नहीं चिंतवन करता पुरुषकै अभिमान होय है। अर एते पदार्थनिकूं सत्यार्थ अवलोकन करता पुरुषकै मान नहीं होय है॥ गाथा—

जइदा उच्चत्तादिणि-। दाणं संसारवड्ढणं होदि ॥
कह दीहं ण करिस्सदि। संसारं परवधणिदाणं ॥ १२४० ॥

अर्थ— जो उच्चगोत्रादिकरूप जो अपना उच्चपणाका निदान करनाही संसारका बधावनेवाला होय है, तो परजीवनिका घात करनेका निदान दीर्घसंसार कैसें नहीं करसी?॥

आयरियत्तादिणिदा-। णे नि कदे णत्थि तस्स तम्मि भवे ॥
धणिदं पि संजमंत-। स्स सिज्झणं माणदोसेण ॥ ४१ ॥

अर्थ— आचार्यत्वादिकपदका निदान करताभी ताकै तिस भवमें अतिशयकरिकै संयम धारण करताकैहू मानका दोषकरिकैं आचार्यादिपणा सिद्ध नहीं होय है। जातैं आचार्यादिकपदस्थकी चाहनाभी मानकषायकी तीव्रतातैं होय है, तातैं जाकै अभिमानकी तीव्रता, ताकै सिद्धि होना बहुतजन्महूमैं दुर्लभ है॥ अब जो जीव भोगनिमें

दोष चिंतवन करे है, ताकै भोगनिमैं वांछारूप निदान नही होय है ॥ गाथा–

भोगा चिंतेदव्वा । किंपागफलोवमा कडुविवागा ॥

महुरा च भुंजमाणा । पच्छा वहुदुक्खभयपउरा ॥ ४२ ॥

अर्थ— ये इंद्रियनिके भोग किंपाकफलकीनांई भोगनेमें मिष्ट हैं अर परिपाक अतिकडवा है। कैसेक हैं भोग? बहुतदुःख अर भय तिनकरिकैं प्रचंड हैं ॥ गाथा–

भोगणिदाणेण य सा- । मण्णं भोगत्थमेव होइ कदं ॥

साहालंगो जह अ- । त्थिदो वणे को वि भोगत्थं ॥ ४३ ॥

अर्थ— भोगनिका निदानकरिकै जो श्रमणपणा धारण करना है, ताकै मुनिपणा भोगनिके अर्थिही करना भया! कर्मका क्षयके निमित्त नही होय है। भोगनिमें राग करिकै जाका चित्त व्याकुल है, ताकै नवीन कर्मका प्रवाह आवे है, निर्जरा तो अतिदूरिही है॥ जैसैं वनमें कोऊ साहालंग नामा तपस्वी भोगनिके अर्थि निदान कीया, इसकी कोई कथा है, सो आगमतैं जाननी ॥ गाथा–

आवडणत्थं जह उ- । सरणं मेसस्स होइ मेढादो ॥

सणिदाणबंभचेरं । अबंभत्थं तहा होइ ॥ ४४ ॥

अर्थ— जैसैं मेष जो मींढो ताकै अन्यमींढातैं दूरि जाना है–उलटे पांवकरि बहुत पाछा

जावना है, सो परस्पर मस्तकका अधिक अभिघातके अर्थि ह, तैसें निदानसहित ब्रह्मचर्य धारण करना है सो अब्रह्मके आर्थ होय है। जातैं अनंतभव संसारमें परिभ्रमण करेगा॥

जह वाणिया य पणियं। लाभत्थं विक्किणंति लोभेण॥
भोगाण पणियभूदो। सणिदाणो होइ तह धम्मो॥ ४५॥

अर्थ— जैसैं वणिक् लाभके अर्थि पण्य जो किराणा ताहि बेचे है, तैसैं निदानसहित चारित्रादिक धर्म धरना भोगनिके लोभकरिकै अंगीकार करना है! परमार्थके अर्थि नही है॥

सपरिग्गहस्स अब्बं-। भचारिणो अविरदस्स से मणसा॥
कायेण सीलवहणं। होदि हु णडसमणरूवं वा॥ ४६॥

अर्थ— जो अभ्यंतरवेदतैं उपज्या रागभाव सोही परिग्रह तिसकरि सहित है, तथा मनकरि कुशीलका वांछक तातैं अब्रह्मचारी है, तथा इंद्रियजनित सुखका वांछक तातैं अव्रती है। जाका अभ्यंतर आत्मा तौ ऐसा है अर कायकरिकै शीलधारण करे है मुनिव्रत धारे है, तथा परिग्रह ग्रहण नही करे है—नग्न रहे है, पींछी कमंडलु धारे है, कायोत्सर्ग करे है, दुर्धरतप करे है, सो नटश्रमणरूप है। जैसैं स्वांग ल्यावनेवाला नट अनेकस्वांग ल्यावै तिनमें कोऊ जैनके साधूकाहू स्वांग ल्यावै, परंतु स्वांग ल्याये साधु नही होय है, तैसैं अभ्यंतर वीतरागताविना अभिमान भोग विषयका वांछक मुनिकेहू

नटकासा स्वांगही होय है ॥ गाथा–

रोगं इच्छेज जहा । पडियारसुहस्स कारणा कोई ॥
तह अप्पणेसदि दुक्खं । सणिदाणो भोगतण्हाए ॥ ४७ ॥

अर्थ— जैसैं कोऊ नीरोग होयकरिकै अर इलाजका सुखके अर्थि रोगकूं वांछा करै, तैसैं भोगनिकी तृष्णाकरि निदानसहित पुरुष आगामी कालमें बहुत दुःखकूं इच्छा करे है, हेरे है! ॥ गाथा–

खंधेण आसणत्थं । वहेज्ज गरुगं सिलं जहा कोई ॥
तह भोगत्थं होदि हु । संजमवहणं णिदाणेण ॥ ४८ ॥

अर्थ— जैसैं कोऊ पुरुष आपकै आसनके अर्थि बहुत भारी पाषाणकी शिला अपने स्कंधऊपरि लिये फिरै, जो "मोकूं जहां बैठना होगा, तहां शिला बिछाय बैठूंगा"। तैसैं भोगनिके अर्थि निदान करिकै संयम धारना होय है ॥ गाथा–

भोगोपभोगसुक्खं । जं जं दुक्खं च भोगणासम्मि ॥
एदेसु भोगणासे । जादं दुक्खं पडिविसिट्ठं ॥ ४९ ॥

अर्थ— संसारमें भोगोपभोगकी प्राप्तितैं जितनें जितनें सुख होय है अर भोगोपभोगके नाशतैं जितनें जितनें दुःख होय हैं, तिनमें भोगनिकी प्राप्तिके सुखतैं भोगनिके

नाशतैं उपज्या दुःख अत्यंत अधिक है ॥ भावार्थ—भोगोपभोगका नाश होय है तदि भोगनिके संयोगमें जो सुख माया तातैं बहुतगुणां दुःख उपजे है ॥ गाथा—

देहे छुधादिमाहिदे। चले य सत्तस्स होज्ज किह सुक्खं ॥
दुक्खस्स य पडियारो। रहस्सणं चेव सुक्खं खु ॥ १२५० ॥

अर्थ— क्षुधा तृषादिककी बाधाकरि पीडित अर चलायमान विनाशिक जो देह ताकेविषैं प्राणीकै सुख कैसैं होय? नही होय। ये इंद्रियजनितसुख हैं ते क्षुधा तृषा काम रागादिकजनित दुःखकूं थोरे काल अल्प करनेवाले हैं, अर पाछै अधिक वेदना वधावे हैं ॥ भावार्थ— ये इंद्रियजनित सुख हैं ते सुख नही हैं—सुखाभास हैं—मोही जीवनकूं सुखसे दीखे हैं। जैसैं जाकै शीतकी पीडा होय, सो अग्नीतैं तापनकूं सुख माने है, अर जाकै गरमीकी बाधा होय, सो शीतलपवनकूं सुख माने है; अर वातादिकजनितवेदना जाकै होय, सो अग्नीका सेककूं अर दुर्गंध तैलका मर्दनकूं सुख माने है; अर जाकै खाजीकी वेदना होय, सो खुजावनेकूं सुख माने है; तैसैं इंद्रियजनित विषयानुरागकी पीडाका दुःख नही सह्या जाय तदि विषयनिकूं चाहे है। तथा क्षुधावेदनाकी पीडाका मार्‍या भोजन चाहे है तृषाकी वेदनाकरि पीडित शीतलजलकूं चाहे है। खावना पीवना वोढना ये सुख नही हैं, वेदनाके इलाज हैं। सोहू भोगनिके भोग-

नेतैं वेदना थोरे काल किंचित् मंद होय हैं, बहुरि अधिक अधिक वेदना उपजावे हैं। सुख तो सो है, जहां वेदनाही नहीं उपजै, सुख तो निराकुलतालक्षण ज्ञानानंद है। अर जो इंद्रियनिके विषयद्वारैभी जो सुख है, सोहू इंद्रियजनितज्ञानद्वारैभी जानना। ज्ञानविना कहूही सुख हैही नहीं। तातैं भोगनिकूं वेदनाका इलाजमात्र जानि भोगनिका निदान त्यागि निर्वांछक हुवा परमधर्म सेवन करो! जातैं फेरि वेदनाही नहीं होय॥

जह कोढिल्लो अग्गिं। तप्पंतो णेव उवसमं लभदि॥
तह भोगे भुंजंतो। खणं पि णो उवसमं लभदि॥ ५१॥

अर्थ— जैसें कोडी पुरुष अग्निकरि तप्तायमान होता संताहू उपशमनाकूं नहीं प्राप्त होय है, रुधिर उमले है, ताकरि अधिक अधिक अग्नीके सेकमें वांछा उपजे है। तैसें संसारी जीव भोगनिकूं भोगताहू क्षणमात्रहू भोगनिकी चाहनारूप दाहतैं उपशमताकूं नहीही प्राप्त होय है। ज्यूं ज्यूं भोगे है, त्यूं त्यूं अधिक अधिक तृष्णा बधती जाय है॥ गाथा —

सुक्खं अणपिक्खित्ता। बाधादि दुक्खमणुगं पि जह पुरिसं॥
तह अणपिक्खिय दुक्खं। णत्थि सुहं णाम लोगम्मि॥ ५२॥

अर्थ— जैसें अणुमात्रहू दुःख सुखकी नहीं अपेक्षाकरिकै बाधा करे है, तैसें लोकमें दुःखकी अपेक्षा नहीं करिकै काऊ सुख हैही नहीं॥ भावार्थ- दुःख तो सुखविनाही

होय है। अर सुख दुःखविना हैही नही। क्षुधातृषाजनित दुःख जाकै पहली होयगा, ताकै भोजनपान सुख करैगा। विनाक्षुधाकी वेदना तथा तृषाकी वेदनाविना भोजनपान सुख करैगा नही। मिष्टरस तथा लवणादिक रस तिनकी चाहनारूप दुःख जाकै उपजेगा सोही मिष्टरसकूं भक्षण करि सुख मानेगा। अर जाकै मिष्टरसकी आकांक्षा अंतरंगमें पित्तवातादिकजनित नही उपजी, ताकूं मिष्टरसका नामभी नही सुहावैगा। सूर्यका कठोर आतापकरि तप्तायमान होयगा, ताकूं शीतल छाया शीतल पवनकरि सुख होयगा। शीतकरि जाका शरीर संकुचित होयगा, ताकूं सूर्यका आताप तथा अग्निका तापन सुखरूप होय है। स्थान आसनतैं उपज्या खेद जाकै होयगा, सो शयनमें सुख मानेगा। जाका चरणहस्तादिकनिमें फूटणी तथा वेदना उपजेगी, सो दबाया चाहेगा। जाकै चरणनितैं गमन करनेमें दुःख व्यापै, ताकै पालकी इत्यादिकउपरि चढना सुख होयगा। जाकै विरूपपणाका दुःख होयगा, सो आभरणनिका दुःखकारी बंधनकूं सुख मानेगा, तथा सुंदरवस्त्रनितैं सुख मानेगा। जाकै दुर्गंधादिकजनित दुःख, ताकै चंदन अगुरादिकनिमें सुख दीखे है। जाकै कामवेदनाजनित दुःख होय ताकै मैथुनरूप महासंक्लेशकर्ममें सुख होय है। तातैं बहुत कहनेकरि कहा?। जितने इंद्रियजनित सुख हैं, ते पूर्वैं दुःख उपजै तदि किंचिन्मात्र थोरे काल जिनि

विषयनितैं दुःख उपशमै, ताकूं जीव सुख माने है, सो सुख है नहीं अतिदुःखही है! सुख तौ जाकै वेदनाही नहीं अर निराकुलतालक्षण संपूर्णपदार्थनिकूं एककालमें जानना है। अर इंद्रियजनित सुख तो परिपाकमें अति आतापके उपजावनेवाले वेदनाकी त्रासतें सुख भासे है। जैसें कोढी अग्निकरि तप्तायमान होता अग्नीतें सुख माने है, अर अग्नीतें तपनेमें अधिक अधिक अभिलाप करे है, तैसें कामादिकवेदना-पीडित पुरुषहू अति आतुर हुवा स्त्रीनिके संगमादिकविषयनिमें रचे है॥ गाथा—

कंडुं कंडुयमाणो। सुहाभिमाणं करोदि जह दुक्खे॥
दुक्खे सुहाभिमाणं। मेहुणआदीहिं कुणदि तहा॥ ५३॥

अर्थ— जैसें खाजिरोगसहित पुरुष खाजीकूं खुजावतां दुःखमें सुख माने है, तैसें कामी पुरुष मैथुनादि कामचेष्टाकरि दुःखमें सुख माने है॥ गाथा—

घोसादकीय जह किमि। खत्तो मधुरित्ति मण्णदि वराउ॥
तह दुक्खं वेदंतो। मण्णइ सुक्खं जणो कामी॥ ५४॥

अर्थ— जैसें कृमि कहिये लट कडवी तोऱ्यां तथा विषके फुल तिनकूं भक्षण करता जहरहीकूं मधुर माने है, तैसें दीन ऐसा कामी जन प्रत्यक्ष शरीरादिकदुःखनिकूं अनुभव करता कामकी वेदनाका मान्या सुख माने है॥ गाथा—

सुट्ठु वि मग्गिज्जंतो । कत्थ वि कयलीए णत्थि जह सारो ॥
तह णत्थि सुहं मग्गि- । ज्जंतं भोगेसु अप्पं पि ॥ ५५ ॥

अर्थ-- जैसैं बहुत चोकसतैं हेरिये तोहू केलीके स्तंभमें कहांहू सार नहीं निकसे है, तैसैं भोगनिमैं अल्पहू सुख नहीं है ॥ गाथा-

ण लहदि जह लेहंतो । सुक्खल्लयमट्ठियं रसं सुणहो ॥
सो सगतालुगरुहिरं । लेहंतो मण्णए सुक्खं ॥ ५६ ॥
महिलादिभोगसेवी । ण लहइ किंचि वि सुहं तहा पुरिसो ॥
सो मण्णदे वराउं । सगकायपरिस्समं सुक्खं ॥ ५७ ॥

अर्थ-- जैसैं श्वान सूके हाडकूं आस्वादन करता हाडथकी रसकूं नहीं प्राप्त होय है, तिस हाडनिकी कोरतैं अपना तालवा गुलाफा फाटि रुधिर निकले है ताकूं हाडमैंतैं निकस्या मानि भ्रमतैं सुख माने है! तैसैं स्त्रीके भोगनिकूं सेवन करता कामी किंचिन्मात्रहू सुखकूं नहीं प्राप्त होय है! सो कामकी पीडातैं वराक हुवा दीन हुवा अपना कायका परिश्रमकूंही सुख माने है ॥

तह अप्पं भोगसुहं । जह धावंतस्स अहिदवेगस्स ॥
गिम्हे उण्हे तत्त- । स्स होज्ज छायासुहं अप्पं ॥ ५८ ॥

अर्थ- जैसें अति उष्ण ग्रीष्मकालमें नही ठहऱ्या है वेग जाका ऐसा दौडता पुरुषकै मार्गमें कोऊ एक वृक्षादिककी छायामें दोडतां अल्पकाल सुख होइ है, तैसें कर्मकरि महादुःखरूप संसारमें परिभ्रमण करते पुरुषके भोगनिका सुखहू अति अल्पकाल है ॥

अथवा अप्पं आसा- । ससुहं सरिदाए उप्पियंतस्स ॥
भूमीछिक्कंगुट्ठ- । स्स उब्भमाणस्स होदि सो तेण ॥ ५९ ॥

अर्थ-- अथवा जैसें नदीके मध्य वडे जोरके प्रवाहकरि वहता अर डूबता पुरुषका भूमीमें अंगुष्ठ स्पर्श होनेका अति अल्पकाल आश्वासनरूप सुख है, जो में थंभ्या जीया ऐसा एक पलकमात्र भूमीका अंगुष्ठके स्पर्शनतें आश्वास है फेरि वहिकरि मरण करे है; तैसें संसारी जीव कर्मजनित त्रासकरि वहता कोऊ किंचिन्मात्र विषय धन परिवार इत्यादिकका संबंध मिलता आश्वास माने है, पाछै वहता निगोदकूं जाय प्राप्त होय है॥

दीसइ जळं व मयत- । ण्हिया दु जह वणमयस्स तिसिदस्स ॥
भोगा सुहं व दीसं- । ति तह य रागेण तिसियस्स ॥ १२६० ॥

अर्थ— जैसें वनमें तृषाकरि पीडित जो वनका मृग, ताकूं दूरि तिष्ठता मृगतृष्णा नामा घास सो जल दीखे है; सो जल जानि दौडे है तहां जल नही ! तदि आगानैं तथा अन्य दिशामें मृगतृष्णा दीखै, तदि उसकी तरफ दौडे, तदि वहांभी जल नही

दीखै! आगानैं वा अन्यदिशामैं मृगतृष्णा नामा घास दीखै, तादि उसमांहू दोडै, वहांभी नही दीखै! तदि अन्यवोडी ऐसैं दोडता दोडता तृष्णाका मास्या प्राणरहित होय है; तैसैं तीव्ररागकरि तृष्णाकूं प्राप्त हुवा संसारी पुरुषहू भोगनिकूं सुख मानैहै! सुख है नही! ऐसैं भोगनिमैं अतितृष्णाकरि मरणनैं प्राप्त होय नरकनिगोदकूं जाय प्राप्त होय है॥

वग्घो सुखेज्ज मदयं । अवयासेऊण जह मसाणम्मि ॥
तह कुणिमदेहसंफा- । सणेण अवुहा सुहायंति ॥ ६१ ॥

अर्थ— जैसैं स्मशानभूमीमैं मृतककूं आस्वादनकरि व्याघ्र कूंकरा स्याली सुखी होत हैं, तैसैं स्त्रीनिके अशुचि अंगकूं स्पर्शन करिकै अज्ञानी विषयांध सुखी होय हैं॥

जावंति केइ भोगा । भुत्ता सव्वे अणंतखुत्तो ते ॥
को णाम तत्थ भोगे । सु विंभर्उ लद्धविजढेसु ॥ ६२ ॥

अर्थ— हे आत्मन्! जितने केई भोग हैं, तितने सर्वही तुम अनंतवार भोग लीए अब अनंतवार भोगे अर छोडे! तिनकी प्राप्तीमैं कहा विस्मय है? ॥ गाथा—

जहजह भुंजइ भोगे । तहतह भोगेसु वड्ढदे तण्हा ॥
अग्गी व इंधणाइं । तण्हं दीवंति से भोगा ॥ ६३ ॥

अर्थ— संसारी जीव जैसैं जैसैं भोगनिकूं भोगे हैं, तैसैं तैसैं भोगनिमैं तृष्णा बधे

है। जैसैं इंधन अग्नीकूं वधावे है, तैसैं भोग जीवके तृष्णाकूं वधावे हैं ॥ गाथा—

जीवस्स णत्थि तित्ती। चिरं पि भोएहि भुंजमाणेहिं ॥
तित्तीए विणा चित्तं। उव्वूरं उव्वुदं होइ ॥ ६४ ॥

अर्थ— इस जीवकै चिरकाल भोगनेमें आये जे भोग, तिनकरि तृप्ति नही होय है। अर तृप्तिविना चित्त उद्वेगरूप तथा उड्या हुवा रहे है ॥ गाथा—

जह इंधणेहि अग्गी। जह व समुद्दो णदीसहस्सेहिं ॥
तह जीवा ण हु सक्का। तिप्पेदुं कामभोगेहिं ॥ ६५ ॥

अर्थ— जैसैं इंधननिकरि अग्नि नही तृप्त होत है, तथा हजारां लाखां नदीनिके प्रवाहकरि समुद्र तृप्त नही होत है, तैसैं कामभोगनिकरि संसारी जीवहू तृप्त होनेकूं नही समर्थ होइये है ॥ गाथा—

देविंदचक्कवट्टी। य वासुदेवा य भोगभूमीया ॥
भोगेहिं ण तिप्पंति हु। तिप्पदि भोगेसु किह अप्पणो ॥ ६६ ॥

अर्थ— देवनिके इंद्र, तथा चक्रवर्ती, तथा नारायण प्रतिनारायण, तथा भोगभूमियां सागरांकी तथा पल्यनिकी तथा पूर्वनिकी आयुपर्यंत अप्रमाण जगतके सारभूत भोग भोगे, तिनतैं तृप्त नही भये; तो अन्यसंसारीनिकै अल्प भोग तिनकूं अल्पकाल

भोगि कैसी तृप्ति होयगी ? ॥ गाथा—

संपत्तिविपत्तीसु य । अज्जणरक्खणपरिग्गहादीसु ॥
भोगत्थं होदि णरो । उध्दुयचित्तो य घण्णो य ॥ ६७ ॥

अर्थ— संपदामैं तथा आपदामैं धनका उपार्जनमें तथा रक्षणमें तथा संचय करनेमें तथा आदिशब्दकरि खर्च करनेमें देनेमें भोगनेमें सर्व लोकके परिग्रहमें आपके परिग्र-हमें तथा परके परिग्रहमें संसारी जीव भोगनिके अर्थि चलचित्त होय है। तथा आपदा आवै तदि भोगनिके वियोगतें परिणाम अत्यंत क्लेशित होय है, निरंतर उत्कंठा[1] लगि रहे है। अर संपदा आवै तदि भोगनिमें ऐसा लीन होय हैं जो अचेत होजाय है। तातैं जाकै भोगनिकी इच्छा है, तिससमान कोऊ जगतमें क्लेशित नहीं है ॥ गाथा—

उध्दुयमणस्स ण सुहं । सुहेण य विणा कुदो हवदि पीदी ॥
पीदीए ण विणा रदी । उध्दुयचित्तस्स घण्णस्स ॥ ६८ ॥

अर्थ— जाका चल चित है ताकै सुख नहीं है, अर सुखविना प्रीति कैसी होय ? अर प्रीतिविना रति जो आसक्तता सो नहीं होय। जाकूं उत्कंठारूप डाकिनी ग्रहण कीया, ताके कोठैहू कोई अवसरमेंहू परिणाम थिरताकूं नहीं पावे है ॥ गाथा—

जो पुण इच्छदि रमिदुं । अज्झप्पसुहम्मि णिव्वुदिकरम्मि ॥

[1] उत्कण्ठावान्

कुणदु रदिं उवसंतो। अज्झप्पसमा हु णत्थि रदी ॥ ६९ ॥

अर्थ— जो वीतरागी निर्वाणसुखमें रत हुवा सो निर्वाणका करनेवाला अध्यात्मसुखमें मंदकषायी हुवा रति करो। अध्यात्मसमान रति जो सुख सो है नही ॥ गाथा—

अप्पायत्ता अज्झ-। प्परदी भोगरमणं परायत्तं ॥
भोगरदीए चइदो। होदि ण अज्झप्परमणेण ॥ १२७० ॥

अर्थ— अध्यात्मरति तो स्वाधीन है, इसमें परद्रव्यकी अपेक्षा नही है। अर भोगनिमें रमण पराधीन है। जातैं परद्रव्यका आलंबनाविना भोग नही होत है। बहुरि भोगरतितैं तो छुटे है अर अध्यात्मरतितैं नही चिगे है। जातैं भोगनिमें अनेक विघ्न आवे हैं अर अध्यात्मरति विघ्नका नाश करनेवाली है ॥ गाथा—

भोगरदीए णासो। णियदो विग्घा य होंति अदिबहुगा ॥
अज्झप्परदीए सु-। भाविदाए ण णासो ण विग्घो वा ॥ ७१ ॥

अर्थ— भोगनिमें रति जो सुख सो नाशसहित है अर भोगनिमें विघ्न निश्चयतैं आवेही है। अर भलेप्रकार अनुभव कीया जो अध्यात्मसुख तिसविषैं विघ्न नही है अर ताका नाशहू नही है ॥ अब इंद्रियजनितसुखनिका शत्रुपणा दिखावे हैं ॥ गाथा—

दुक्खं उप्पादिंता। पुरिसा पुरिसस्स होंति जदि सत्तू ॥

अदिदुक्खं कदमाणा । भोगा सत्तू किह ण होंति ॥ ७२ ॥

अर्थ— जो जगतमें पुरुषकै दुःख उपजावनेवाले पुरुष हैं, ते शत्रु होय हैं; तो अतिदुःखका उपजावनेवाला भोग कैसैं शत्रु नहीं होय? ॥ गाथा—

इहइं परलोए वा । सत्तू मित्तत्तणं पुणमुवेंति ॥
इहइं परलोए वा । सदा वि दुक्खावहा भोया ॥ ७३ ॥

अर्थ— बहुरि शत्रु हैं ते तो इस लोकमें वा परलोकमें मित्रपणाकूं प्राप्त होय हैं। अर भोग हैं ते इस लोकमें तथा परलोकमें सदाकाल दुःखका वहनेवालेही होय हैं ॥

एगम्मि चेव देहे । करिज्ज दुक्खं ण वा करिज्ज अरी ॥
भोगा से पुण दुक्खं । करंति भवकोडिकोडीसु ॥ ७४ ॥

अर्थ— वैरी है सो एकही देहविषैं दुःख करै तथा नहीं करै, अर ये भोग इस जीवकै कोटाकोटी भवनिमें तथा असंख्यात अनंतभवनिमें दुःख करे हैं। तातैं भोगतैं उत्पन्न होय जे दोष तिनकूं जाणि भोगनिके अर्थि निदान मति करो ॥

महुमेव पिच्छदि जहा । तडिंउ लंबो ण पिच्छदि पपादं ॥
तह सणिदाणो भोगे । पिच्छदि ण दु दीहसंसारं ॥ ७५ ॥

अर्थ— जैसैं कोऊ तटमें लूमता पुरुष ऊपरि मधुछत्ताहीकूं देखे है, अर अपना

पतनकूं नही देखे है। तैसैं निदानसहित पुरुष भोगनिहीकूं देखे है, अपना पतन होय दीर्घकाल संसारमें परिभ्रमण होना नही देखे है ॥ गाथा-

जालस्स जहा अंते । रमंति मच्छा भयं अयाणंता ॥
तह संगादिसु जीवा । रमंति संसारमगणंता ॥ ७६ ॥

अर्थ— जैसैं मत्स्य आपके भयकूं नही जानता धीवरके पसारे जालमें रमत है; तैसैं संसारी जीव आपका संसारमें परिभ्रमण नही गिणता परिग्रहादिकमें रमत है ॥ देवलोकादिकनिकैहू वस्त्र अलंकार भोजनादिक दुःख निराकरण करनेकूं नही सामर्थ्य है, ऐसैं कहे हैं ॥ गाथा-

दुख्खेण देवमाणुस- । भोगे लध्दूण चावि परिवडिदो ॥
णियदमदीदि कुजोणी । जीवो सघरं पउत्थो वा ॥ ७७ ॥

अर्थ— कोऊ वडे दुःखकरिकैं देवनिके मानुपनिके भोगनिकूं पायकरिकैहू पर्यायतैं छूटि नियमतैं कुयोनीनिकूं प्राप्त होय है! जैसैं प्रवासी अपने घरकूं प्राप्त होय है ॥

जीवस्स कुजोणिगद- । स्स तस्स दुख्खाणि वेदयंतस्स ॥
किं ते करंति भोगा । मदो व वेज्जा मरंतस्स ॥ ७८ ॥

अर्थ— कुयोनीकूं प्राप्त भया अर कुयोनिनिमैं दुःखनिकूं भोगता जीवकै इंद्रियनिके

भोग कहा करै? कुयोनीमैं पडतेकै अर दुःख भोगतेकै इंद्रियनिके भोग सहायी शरण होय नही हैं। जैसैं मरण करते जीवकै, पूर्वकालमें मरणकीया जो वैद्य, सो रक्षक नही होय है॥ भावार्थ– जो वैद्य मरि गया, सो कहांतैं आवैगा? अर मरते जीवकी रक्षा तथा रोगका अभाव कैसैं करेगा? तैसैं भोगे हुये भोग नरकतिर्यंचमें दुःख भोगते जीवकै कैसे सहायी होयगे?॥ गाथा–

जह सुत्तवद्ध सउणो। दूरं पि गदो पुणो वि एदि तहिं॥
तह संसारमदीदि हु। दूरं पि गदो णिदाणगदो॥ ७१॥

अर्थ— जैसैं दीर्घसूत्रतैं बद्ध पक्षी दूर गया हुवाहू बहुरि उसही स्थानकूं प्राप्त होय है; जातैं उडि चल्या तो कहा भया? पग तो सूतकी डोरीतैं बंध्या है, जाय नही सकेगा; तैसैं निदान करनेवाला अतिदूर स्वर्गादिकमें महर्द्धिकदेवनिमैं प्राप्त भयाहू संसारहीमैं परिभ्रमण करेगा–देव लोक जायकरिकैहू निदानके प्रभावतैं एकेंद्रियतिर्यंचमैं तथा पंचेंद्रियातिर्यंचनिमैं तथा मनुष्यानिमैं आय पापसंचयादिक करि नरकनिगोदादिकनिमैं दीर्घकाल परिभ्रमण करेगा॥ गाथा–

दाऊण जहा अत्थं। रोधणमुक्को सुहं घरे वसइ॥
पत्ते समये य पुणो। रुंभइ तह चेव धारणिउं॥ १२८०॥

तह सामण्णं किच्चा। किलेसमुक्कं सुहं वसइ सग्गे ॥
संसारमेव गच्छदि। तत्तो य चुदो णिदाणकदो ॥ ८१ ॥

अर्थ— जैसैं ऋणसहित पुरुष परके बंदीगृहमें पड्या हुवा धन देयकरिकै अर कितनेक दिनका करार करिकै बंदिगृहतैं छूटि सुखरूप हुवा अपने घरमें वसे है, बहुरि करार पूरा होनेके अवसरमें जाका धन वृद्धिसहित लीया होय सो फेरि बंदिगृहमें रोके है; तैसैं साधुपणा धारणकरिकै अर निदान करे है, सो कितनेक काल स्वर्गविषैं क्लेशरहित सुख भोगता वसे है, बहुरि आयु पूर्ण भये स्वर्गतैं चयकरिकै संसारहीकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा—

संभूदो वि णिदाणे-। ण देवसुक्खं च चक्कहरसुक्खं ॥
पत्तो तत्तो य चुदो। उववण्णो णिरयवासम्मि ॥ ८२ ॥

अर्थ— संभूत नामा मुनि निदानकरिकै देवनिके सुख भोगि बहुरि चक्रीपणाका सुख भोगि अर पाछै मरण करि नरकमें जाय उपज्या है ॥ इहां ऐसा जानना— जो मुनिपणामैं तथा देशव्रतीपणामैं मंदकषायके प्रभावतैं तथा तपश्चरणके प्रभावतैं स्वर्गलोकमें उपजावनेवाला तथा अहमिंद्रलोकमें उत्पन्न करनेवाला शुभकर्म बांध्या होय अर पाछै निदान करै, तो नीच भवनत्रिकादिक अधमदेवनिमें जाय उपजै ॥

जाकै पुण्य अधिक होय अर अल्पपुण्यका फलकेजोग्य निदान करै तो अल्पपुण्य-वाला देव मनुष्य जाय उपजै। अर अधिकपुण्यका देवनिमैं तथा मनुष्यनिमैं उपजा चाहै तो नही उपजै ॥ निदानतैं अल्प मिलै, अधिक नही मिलै। जैसैं जाके निकट बहुतमोलकी वस्तु होय अर अल्पधनमें बेचै तो अल्प धन मिलि जाय अर अल्पमोलकी वस्तूकूं अधिकधनमें बेचै तो अधिकधन नही मिले है ॥ जो मुनिश्रावकका धर्म साक्षात् स्वर्गमोक्षका देनेवाला धारण करि भोगनिमैं निदान करि बिगाडे है, सो एक कौडीमैं चिंतामणिरत्न बेचे है? अथवा इंधनके अर्थि कल्पवृक्षकूं काटे है। भोगनिके अर्थि निदान करनेबराबरि कोऊ जगतमें अनर्थ है नही। नारायणादिकहू निदानतैंही परिभ्रमण करे हैं ॥ गाथा—

णच्चा दुरंतमध्दुव- । मत्ताणमतप्पयं अविस्सामं ॥

भोगसुहं तो तह्मा । विरदो मोक्खे मदिं कुज्जा ॥ ८३ ॥

अर्थ— कैसेक हैं भोग? दुःखरूप है फल जाका ऐसा अर अस्थिर अर रक्षा करनेकूं समर्थ नही अर अतृप्तिताका करनेवाला अर विश्रामरहित अंतसहित ऐसे भोगनिकूं जानिकरिकै अर ज्ञानी जन भोगनिके सुखतैं विरक्त होय अर मोक्षमें बुद्धि करै ॥

अणिदाणो य मुणिवरो । दंसणणाणचरणं विसोधेई ॥

तो सुद्धणाणचरणो। तवसा कम्मक्खयं कुणइ ॥ ८४ ॥

अर्थ— जो मुनिवर निदानरहित है, सो दर्शनज्ञानचारित्रकूं शुद्ध करे है। अर दर्शनज्ञानचारित्र शुद्ध जाकै होय, सो ध्यान नामा तपकरि कर्मका क्षय करे है ॥

इच्चेवमेदमविचिं-। तयदो होज्ज हु णिदाणकरणमदी ॥
इच्चेवं पस्संतो। ण हु होदि णिदाणकरणमदी ॥ ८५ ॥

अर्थ— ऐसैं पूर्वोक्तप्रकार निदानदोषनिकूं नहीं चिंतवन करते पुरुषकै निदान करनेमें बुद्धि होय है; अर निदानकूं विषसमान अनंतदुःखनिका करनेवाला जो भावनितैं देखे है, ताकै निदान करनेमें बुद्धि नहीं होय है ॥

ऐसैं सत्तरि गाथानिमैं निदानशल्यका वर्णन कीया ॥ अब मायाशल्यकूं दोय गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

मायासल्लस्सालो-। चणाधियारम्मि वण्णिदा दोसा ॥
मिच्छत्तसल्लदोसा। य पुव्वमुववण्णिया सव्वे ॥ ८६ ॥

अर्थ— मायाशल्यतैं उपजे दोष पूर्वैं आलोचना नामा अधिकारमें वर्णन कीये अर मिथ्याशल्यके दोषहू सर्व पूर्वैं वर्णन कीये। तातैं माया मिथ्या निदान तीनप्रकारकी शल्य हृदयथकी निकासहु ॥ गाथा—

पब्भट्ठवोधिलाभा । मायासल्लेण आसि पूदिमुहीं ॥

दासी सागरदत्त- । स्स पुप्फदंता हु विरदा वि ॥ ८७ ॥

अर्थ— पुष्पदंता नामा आर्यिका शल्यकरि भ्रष्ट भया है रत्नत्रयका लाभ जाकै ऐसी मायाचारका पापकरि सागरदत्त नामा वणिककै महादुर्गंधदेहकूं धरनेवाली पूतिमुखी नामा दासी होती भई! देखहू! कहां देवलोकका देनेवाला आर्यिकाका व्रत अर कहां वणिकके घर दुर्गंधदासी होना! मायाशल्य महान् अनर्थ करनेवाला है ॥ ऐसें मायाशल्यतैं उपजे दोष कहे ॥ अब मिथ्याशल्यकृत दोष एकगाथामें कहे हैं ॥

मिच्छत्तसल्लदोसा । पियधम्मो साधुवच्छलो संतो ॥

बहुदुक्खे संसारे । सुचिरं परिहिंडिउ मरीची ॥ ८८ ॥

अर्थ— अतिवल्लभ है धर्म जाकूं अर साधुपुरुषनिमें प्रीतियुक्त हुवा संताहू मरीची एक मिथ्यात्वशल्यके दोषतैं बहुत दुःखरूप संसारमें बहुत असंख्यातकालपर्यंत परिभ्रमण करता हुवा ॥ ऐसें मिथ्यात्वशल्यका वर्णन कीया ॥ अब ऐसे साधुसमूह निर्वाणपुरीकूं प्रवेश करे हैं, सो कहे हैं ॥ गाथा—

इय पव्वज्जाभंडिं । समिदिवइल्लं तिगुत्तिदिढचक्कं ॥

रादियभोयण उद्धं । सम्मत्तक्खं सुणाणधुरं ॥ ८९ ॥

वदभंडभरिदमारुहि- । दसाधसत्थेण पच्छिदो समयं ॥
णिव्वाणभंडहेदुं । सिद्धिपुरिं साधुवाणियउ ॥ १२९० ॥
आयरियसत्थवाहे- । ण णिच्चुज्जुत्तेण सारविज्जंतो ॥
सो साहुवग्गसत्थो । संसारमहाडविं तरइ ॥ ९१ ॥
तो भावणादिजुत्तो । रक्खदि तं साधुसत्थमाउत्तं ॥
इंदियचोरेहिं तो । कसायवहुसावदेहिं च ॥ ९२ ॥

अर्थ— ऐसें दीक्षारूप गाडीमें चढिकरिके अर साधूनिका समूहसहित जो निर्वाणपुरीप्रति गमन करे है, सो साधुरूप वणिक् संसाररूप वनीके पार उतरे है ॥ कैसी है संसाररूप गाडी? जाके समितिरूप तो बलध है, अर तीनगुप्तिरूप दृढ पहे हैं, अर रात्रिभोजनका त्याग सोही गाडीका ऊर्ध्वभाग है, अर सम्यक्त्वरूप अक्ष है, अर सम्यग्ज्ञानरूप धुरा है, अर व्रतरूप भांड वस्तु तिनकरि भरी है, ऐसी दीक्षागाडीउपरि चढि प्रयाण करनेवाला साधुरूप वणिक् बहुरि निरंतर आपके तथा परके हित करनेमें उद्यमी ऐसे आचार्य सोही जो सार्थवाह कहिये संघका स्वामी ताकरि प्रशंसा कीया साधूका समूह, सो संसारमहावनीकूं तिरे है पार उतरे है। संसारवनीमें इंद्रियरूप तो चोर वसे हैं, अर कषायरूप सिंहव्याघ्रसर्पादिक दुष्टजीव वसे हैं, तिनतें

साधुसमूहकी शुभभावनाही रक्षा करे है ॥ गाथा--

विसयाडवीए मज्झे । उहीणो जो पमाददोसेण ॥
इंदियचोरा तो से । चरित्तभंडं विलुंपंति ॥ ९३ ॥

अर्थ— अर जो साधु प्रमादके दोषकरि पंचेंद्रियनिके विषयनिमें अपसरण करे है—तिस साधुरूप वणिकका चारित्ररूप भांड कहिये धनकूं इंद्रियरूप चोर लूटे हैं॥

अहवा तल्लिच्छाइं । कूराइं कसायसावदाइं तं ॥
खज्जंति असंजमदा- । ढाहिं संकिलेसादिदंसेहिं ॥ ९४ ॥

अर्थ— अथवा विषयनिकी वांछा करनेवालेनिकूं कषायरूप क्रूर दुष्ट तिर्यंच असंयमरूप दाढनिकरि अर संक्लेशरूप दंतनिकरि भक्षण करे हैं ॥ भावार्थ- जो विषयनिकूं वांछे है ताकूं कषाय अर संक्लेश मारिही नाखे है ॥ गाथा—

उसण्णसेवणाउ । पडिसेवंतो असंजदो होइ ॥
सिद्धिपहपत्थिदाउ । उहीणो साधुसत्थादो ॥ ९५ ॥

अर्थ-- जो मुनिका व्रत धारि अयोग्यवस्तूका सेवन करे है, सो अयोग्यसेवनतैं असंयमी होय है, पश्चात् निर्वाणके मार्गमें गमन करता जो साधूनिका समूह तातैं अपसृत कहिये निकले है, तातैं अवसन्न कहिये है। अवसन्नसंज्ञक मुनि है, सो

मुनिनके संघके बाह्य जानना ॥ गाथा—

इंदियकसायगुरुग- । त्तणेण सुहसीलभाविदो समणो ॥
करणालसो भवित्ता । सेवइ उसण्णसेवाउं ॥ ९६ ॥

अर्थ— जो साधु इंद्रियकषायका बडापणाकरिकै सुखियास्वभाव होय तथा त्रयोदशप्रकार चारित्रमें आलसी होयकरिकै अर साधुपणातैं चलायमान होय सो अवसन्न है ॥ ऐसैं अवसन्नका स्वरूप कह्या ॥ गाथा—

केई गहिदा इंदिय- । चोरेहिं कसायसावदेहिं वा ॥
पंथं छंडिय णिज्जं- । ति साधुसत्थस्स पासम्मि ॥ ९७ ॥

अर्थ— कितनेक मुनि इंद्रियरूप चोरनिकरि तथा कषायरूप दुष्टतिर्यंचनिकरि ग्रहण कीये हुये रत्नत्रयरूप मोक्षमार्गकूं त्यागिकरिकै अर बाह्य भेषकरि साधुसारिसा रहे हैं-जगतकूं साधु दीखे है अर साधु नही भेषमात्र हैं, तातैं इनकूं साधुसंघके पार्श्ववर्तीपणातैं पार्श्वस्थ कहिये हैं ॥

तो साधुसत्थपंथं । छंडिय पासम्मि णिज्जमाणा ते ॥
गारवगहणकुडिल्ले । पडिदा पावंति दुक्खाणि ॥ ९८ ॥

अर्थ— जे साधुनिके समूहका मार्ग छांडिकरिकै अर पार्श्वस्थापणानैं प्राप्त भये हैं,

तें अभिमान तथा रसगारव ऋद्धिगारव सातगारवकरिकै आच्छादित जो पार्श्वस्थपणा-
रूप वन तामैं पडे हुये दुःखनिकूं प्राप्त होय हैं ॥ गाथा-

सल्लविसकंटएहिं । विध्दा पडिदा पडंति दुक्खेसु ॥
विसकंटयविध्दा वा । पडिदा अडवीए एगागी ॥ ९९ ॥

अर्थ— जैसैं विषकंटककरि वेध्या पुरुष एकाकी वनीमैं पड्या हुवा दुःख भोगे है, तैसैं
मिथ्यात्व-माया-निदान तीन शल्यरूप विषकंटककरि वेध्या हुवा साधु दुःखनिमें पडत है ॥

पंथं छंडिय सो जा- । दि साधुसत्थस्स चेव पासाउं ॥
जो पडिसेवदि पास- । त्थसेवणाउं हु णिद्धम्मो ॥ १३०० ॥

अर्थ— जो साधुसमूहकी निकटतातैं मार्गकूं छांडिकरिकै अर चारित्रकी विराधना
करे है, सो पार्श्वस्थका सेवन करनेवाला धर्मरहित है ॥ गाथा-

इंदियकसायगरुय- । त्तणेण चरणं तणं व पस्संतो ॥
णिध्दम्मो हु भवित्ता । सेवदि पासत्थसेवाउं ॥ १ ॥

अर्थ— जो साधूका व्रत अंगीकार करिकैहू इंद्रिय और कषाय इनिका तीव्रपणातैं
चारित्रकूं तृणसमान देखे है, सो अधर्मी होयकारिकै अर पार्श्वस्थपणाकूं सेवे है—अंगीकार
करे है ॥ ऐसैं पार्श्वस्थका स्वरूप कह्या ॥ अब कुशीलजातिका भ्रष्टमुनीका स्वरूप कहे हैं ॥

इंदियचोरपरुद्धा । कसायसावदभएण वा केई ॥
उम्मग्गेण पलायं- । ति साधुसत्थस्स दूरेण ॥ २ ॥
तो ते कुसीलपडिसे- । वणावणो उप्पधेण धावंता ॥
सण्णाणदीसु पडिदा । किलेससुत्तेण वुड्डंति ॥ ३ ॥
सण्णाणदीसु वुड्डा । वुड्डा थाहं कहं पि अलहंता ॥
तो ते संसारोदधि- । मदंति वहुदुक्खभीसम्मि ॥ ४ ॥

अर्थ— कितनेक साधु इंद्रियचौरकरि उपद्रवकूं प्राप्त भये अर कषायरूप दुष्टतिर्यंचके भयकरिकै उन्मार्गकरिकै साधूका समूहतैं दूरि निकले है ॥ भावार्थ— कितनेक साधुपणा अंगीकार करिकैभी इंद्रियनिके विषय अर कषाय इनकरि पीडित भये साधुपणाका मार्गकूं उल्लंघनकरि मिथ्यामार्गमें प्रवर्तन करे हैं ॥ बहुरि तिस साधूका मार्गतैं निकस्या कुशीलप्रतिसेवनारूप वनविषैं उन्मार्गकरिकै दोडते च्यारि संज्ञारूप नदीमैं पडे क्लेशरूप प्रवाहकरिकै डूबे हैं ॥ भावार्थ— जे साधूका आचार छोडि ऊवट मार्गकरि दोडै हैं, ते आहारसंज्ञा भयसंज्ञा मैथुनसंज्ञा परिग्रहसंज्ञा येही जे नदी तिनमैं क्लेशके प्रवाहकरि डूबे हैं ॥ बहुरि संज्ञानदीके प्रवाहकरि वहता कहूभी ठहरनेकूं स्थान नही प्राप्त होत हैं ॥ पाछे वहता वहता बहुतदुःखनिकरि भयंकर जो संसारसमुद्र तामैं प्रवेश करे

हैं ॥ कुशीलमुनि त्रसस्थावरयोनिनिमैं अनंतकाल परिभ्रमण करे हैं ॥ गाथा—

आसागिरिदुग्गाणि य । अदिगम्मति दंडकक्कडसिलासु ॥
उलुंठिय पब्भट्ठा । खविंति अणंतयं कालं ॥ ५ ॥

अर्थ— बहुरि कुशीलमुनि है सो आशारूप पर्वतके शिखरतैं पडिकरिकै मन वचन कायकी कुटिलप्रवृत्तिरूप कर्कशशिलाविषैं लोटते भ्रष्ट भये अनंतकाल व्यतीत करे हैं ॥ भावार्थ— कुशीलमुनि विषयनिकी आशाथकी मनवचनकायकी वक्रताकूं प्राप्त होय अर भ्रष्ट हुवा अनंतसंसारपरिभ्रमण करे हैं ॥ गाथा—

बहुपावकम्मकरणा- । डवीसु महदीसु विप्पणट्ठा वा ॥
अद्दिट्ठणिव्वुदिपधा । भमंति सुचिरं पि तत्थेव ॥ ६ ॥

अर्थ— बहुरि कुशीलमुनिकै कहा होय है, सो कहे हैं । ते कुशीलमुनि बहुत पापकर्मके करनेरूप महावनी तिनविषैं नष्ट भये । तथा नहीं देख्या है निर्वाणका मार्ग जिननैं ऐसे चिरकालपर्यंत संसारमें भ्रमण करे हैं ॥ गाथा—

दूरेण साधुसत्थं । छंडिय सो उप्पधेण हु पलादि ॥
सेवदि कुसीलपडिसे- । वणाउ जो सुत्तदिट्ठाउं ॥ ७ ॥

अर्थ— जे साधुनिके संघकूं दूरिही त्यागिकरिकै अर एकाकी हुवा उन्मार्गमें

प्रवर्तन करे हैं ते शीलप्रतिसेवना सेवे हैं, ऐसें जिनसूत्रमें दिखाया है ॥ गाथा—

इंदियकसायगुरुत्त- । त्तणेण चरणं तणं व पस्संतो ॥
णिद्धंधसो भवित्ता । सेवदि हु कुसीलसेवाउं ॥ ८ ॥

अर्थ- जे इंद्रिय अर कषाय इनका तीव्रपणाकरिकैं चारित्रकूं तृणसमान देखता चारित्रतैं भ्रष्ट होय हैं, ते निर्लज्ज होयकरिकैं कुशीलसेवाकूं सेवन करे हैं ॥ ऐसें कुशील-जातिके भ्रष्टमुनीका स्वरूप कह्या ॥ अब यथाछंदजातिके भ्रष्टमुनिका स्वरूप कहे हैं ॥

सिद्धिपुरमुवद्धीणा । वि केइ इंदियकसायचोरेहिं ॥
पविलत्तचरणभंडा । उवहदमाणा णियत्तंति ॥ ९ ॥
तो ते सीळदरिद्दा । दुक्खमणंतं सदा वि पावंति ॥
वहुपरिजणो दरिद्दो । पावदि तिव्वं जधा दुक्खं ॥ १३१० ॥
सो होदि साधुसत्था- । दु णिग्गदो जो भवे जधाछंदो
उस्सुत्तमणुवदिट्ठं । च जधिच्छाए वि कप्पिंतो ॥ ११ ॥

अर्थ— कितनेक साधु निर्वाणपुरप्रति गमन करनेमें उद्यमी भये हुयेहू इंद्रिय अर कषायरूप चोरनकरि चारित्ररूप धन नष्ट करिकै अर मुनिपणाका अभिमानकूं नष्ट करे हैं, ते उलटे संसारहीमें वाहुडे हैं। पश्चात् शील जो आपका सत्यार्थ निज-

स्वभाव ताकरि रहित दरिद्री हुवा सदाकाल संसारमें अनंतदुःख पावे हैं। जैसैं बहुतपरिवार कुटुंबका धनी दरिद्री भया तीव्र दुःख पावे है, तैसैं निजस्वभावरहित या जीव त्रस्थावरयोनिमैं घोरदुःख पावे है अर जो शीलतैं नष्ट होय साधुमुनिनिके संघतैं निकलि जाय तादि सूत्रविरुद्ध गुरुनिका उपदेशरहित यथेच्छ कल्पना करता स्वच्छंद होय है॥ भावार्थ- कितनेक जीव साधुपणाहू धारै अर महाव्रतादिक अंगीकारहू करै अर निर्वाणके अर्थि निरंतर उद्यमहू करै, परंतु इंद्रियनिकै विषय तथा कषायनिकै वशी होय चरित्रधर्मका नाश करि मुनिपणाका अभिमान बिगाडि शीलरहित दरिद्री हुवा गुरुनिका उपदेशविनाही उत्सूल कहिये सूत्रविरुद्ध आपकी इच्छाकरि कल्पना करे हैं, तिनकूं स्वच्छंद कहिये हैं। ते उन्मार्गी संसारमें अनंत-दुःखकूं प्राप्त होय हैं॥ गाथा-

जो होदि जधाछंदो। तस्स धणिदं पि संजमितस्स॥
णत्थि हु चरणं चरणं। खु होदि सम्मत्तसहचारि॥ १२॥

अर्थ— जो मुनि स्वेच्छाचारी है सो अतिशयरूप संयममें प्रवर्तन करै तोहू ताकै चरित्र नही होय है। चारित्र है सो सम्यक्त्वका सहचारी है, यातैं सम्यक्त्व-सहितहीकै चारित्र होय है। अपनी इच्छातैं सूत्रविरुद्ध आचरण करै, ताकै सम्य-

क्त्वहू नही अर चारित्रहू नही होय है ॥ गाथा–

इंदियकसायगुरुय- । त्तणेण सुत्तं पमाणमकरंतो ॥
परिमाणेदि जिणुत्ते । अत्थे सच्छंददो चेव ॥ १३ ॥

अर्थ— जो साधु इंद्रिय अर कषाय इनकी तीव्रताकरिकै जिनेंद्रकरि कहे हुये सूत्रकूं नही प्रमाण करता जिनेंद्रके कहे अर्थनिकूं अवज्ञा करे है, जिनोक्त अर्थहूमें स्वच्छंद मार्गरहित प्रमाण करे है, सो साधु स्वच्छंद है–जिनेंद्रका सत्यार्थ मार्गतें भ्रष्ट है ॥ ऐसैं यथाछंदका स्वरूप कह्या ॥ अब संसक्तका स्वरूप कहे हैं ॥ गाथा–

इंदियकसायदोसे- । हिं अध व सामण्णजोगपरिदंतो ॥
जो उंवायदि सो हो- । दि णियत्तो साधुसत्थादो ॥ १४ ॥

अर्थ— केई इंद्रिय अर कषायनिके दोषकरि चारित्रतैं चलायमान होय है अथवा सामान्य मनवचनकायके योगनिकरि दम्या हुवा चारित्रतैं भ्रष्ट होय है, सो साधु साधुनिका संघतैं निवृत्त होय है–रहित होय है ॥ गाथा–

इंदियकसायवसिया । केई ठाणाणि ताणि सव्वाणि ॥
पाविज्जंते दोसे- । हिं तेहिं सव्वेहिं संसत्ता ॥ १५ ॥

अर्थ— कितने मुनि इंद्रियनिके अर कषायके वशी भये, ते सकलदोषनिकरि

सकल अशुभपरिणामनिके स्थाननिकूं प्राप्त होय हैं, ते संसक्त कहे हैं॥ ऐसैं संस-क्तजातीका भ्रष्टमुनीका स्वरूप कह्या॥ गाथा–

इय एदे पंचविधा। जिणेसवयणा दु गुंछिदा सुत्ते॥
इंदियकसायगरुग-। त्तणेण णिच्चं पि पडिकुद्धा॥ १६॥

अर्थ— ऐसे ये पंचप्रकारके भ्रष्ट मुनि जिनेंद्रभगवान परमागममें निंद्यरूप कहे हैं, ये निंद्यमुनि हैं ते मुनिका भेष धारे हैं, तथापि इंद्रियनिके विषयनिकी तीव्रतातैं नित्यही जिनेंद्रधर्मतैं प्रतिकूल हैं–पराङ्मुख हैं॥ ऐसैं पार्श्वस्थपणा कह्या॥ गाथा–

दुट्ठा चवला अदिदु-। ज्जया य णिच्चं पि समणुबद्धा य॥
दुक्खावहा य भीमा। जीवाणं इंदियकसाया॥ १७॥

अर्थ— जीवनिके ये पांच इंद्रिय अर क्रोधादिक च्यारि कषाय ये अतिदुःखकारी हैं। कैसेक हैं इंद्रिय अर कषाय? आत्माकै उपद्रवकारीपणातैं दुष्ट हैं, अर अवस्थित नहीं तातैं चपल हैं, अर महान बलवानहू–जीति न सकै तातैं अतिदुर्जय हैं, अर चारित्रमोहके तीव्र उदयतैं वारंवार आत्मातैं बंधे हैं, अर दुःखके वहनेवाले हैं अर अति भयकारी हैं॥ भावार्थ– आत्माकै जितने क्लेश हैं तितने विषयनिके अनुरागतैं हैं, तथा कषायनिकी तीव्रतातैं हैं, तथा विषय नहीं प्राप्त होय तो महादुःख होय हैं,

अर जो प्राप्त होयकरि विनाशि जाय तो अतिदुःख होय है, अर विषय तथा अभिमानादिकतैंही भय उपजे है, विषयादिक विनसनेका जगतमें बडा भय होय है ॥

मरुतेल्लं पि पियंतो। वत्थो जह वादि पूदियं गंधं ॥
तध दिक्खिदो वि इंदिय-। कसायगंधं वहदि कोई ॥ १८ ॥

अर्थ— जैसैं बकरा सुगंधतैल तथा अत्तर पीवताहू दुर्गंधही पसेवकूं तथा मदकूं उगले है, तैसैं कितने पुरुष जिनदीक्षा ग्रहणकरि संयम धारताहू मिथ्यादर्शन तथा चारित्रमोहका तीव्र उदयतैं इंद्रियनिके विषयनिकी वांछाकूं तथा क्रोधादिकषायतैं उपजी मलिनताकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा—

भुंजंतो वि सुभोयण-। मिच्छादि जध सूयरो समलमेव ॥
तध दिक्खिदो वि इंदिय-। कसायमलिणो हवादि कोई ॥ १९ ॥

अर्थ— ग्रामसूकर सुंदर मेवा मिष्टान्न भोजन करतेहू विष्ठाके भक्षण करनेकीही इच्छा करे है, तैसैं कोऊ दीक्षा ग्रहण करिकैहू भ्रष्ट होय इंद्रियनिके विषयनिकी लालसा करे है, तथा कषायनिके आधीन होय है ॥ गाथा—

वाहभयेण पलादो। जूहं दट्ठूण वागुरापडिदं ॥ सयमेव मर्उ वागुर-।
सदीदि जध जूहतण्हाए ॥ १३२० ॥ पंजरमुक्को सउणो। सुइरं आरा-

मग्गसु विहरंतो ॥ सयमेव पुणो पंजर- । मदीदि जव णीडतण्हाए ॥
२१ ॥ कलभो गयेण पंका । उद्धरिदो दुद्धरादु वलिएण ॥ सयमेव
पुणो पंकं । जलतण्हाए जध अदीदि ॥ २२ ॥ अग्गिपरिक्खित्तादो ।
सउणो रुक्खादु उप्पदित्ताणं ॥ सयमेव तं दुमं सो । णीडणिमित्तं
जध अदीदि ॥ २३ ॥ लंघिज्जंतो अहिणा । पासुत्तो कोइ जग्गमाणेण ॥
उट्ठविदो तं घेत्तुं । इच्छदि जध कोदुहल्लेण ॥ २४ ॥ सयमेव वंतम-
सणं । णिल्लज्जो णिग्घिणो सयं चेव ॥ लोलो कित्तिणो भुंजदि । सुणहो
जध असणतण्हाए ॥ २५ ॥ एवं केई गिहिवा- । सदोसमुक्का वि दिक्खिदा
संता ॥ इंदियकसायदोसे- । हिं पुणो ते चेव गिण्हंति ॥ २६ ॥

अर्थ— जैसैं व्याध जो शिकारी, सो मृगनिकूं पकडनेकूं वनमें जाल पसाऱ्या, तदि कोऊ मृग शिकारीका भयकरिकैं वडी दूरि भागि गया अर अन्य समस्तमृगनिका समूह जालमें फसिगया तदि दूरि भाग्याहू मृग अपने जूथकी तृष्णाकरि स्वयमेव जालमें आय पडे है, यद्यपि शिकारीके भयतैं भागि गया तथापि जूथविना अकेला आपकूं देखि क्लेशित होय अपने साथीनिकूं हेरता स्वयमेव अपने यूथके सामिल जालमें आय पडे है, पाछै शिकारीकरि माऱ्या जाय है; तैसैं संसारी जीव परिग्रह

त्यागि दीक्षित होयकरिकैहू इंद्रियकषायनिका प्रेऱ्या परिग्रहमें बहुरि आय फसे हैं ॥ तथा जैसें पिंजरातें छूट्या पक्षी बहुत काल वागबगीचेनिमें विहार करताहू स्थानकी तृष्णाकरि बहुरि स्वयमेव पिंजरेकूं प्राप्त होय है; तैसें संसारी जीव गृहकुटुंबके बंधनतें छूटि दीक्षित होयकरिकैहू विषयकषायनिका प्रेऱ्या हुवा बहुरि स्थानादिकमें ममत्वकरि आय फसे है ॥ तथा जैसें हस्तीका बच्चा कर्दममें फस्या ताकूं कोऊ बलवान् हस्ती बडे अगाध कीचतें बाहिर काढ्या, परंतु बहुरि जलकी तृष्णाकरि स्वयमेव कर्दममें जाय फसे है; तैसें कोऊ त्यागी हुवाहू विषयनिकी तृष्णाकरिकैं संसाररूप कर्दममें बहुरि उलझि मरे है ॥

तथा जैसें कोऊ वृक्षके अग्नि लागि तदि उस वृक्षमें बसनेवाले पक्षी अपने घुरसाले छोडिकरिकै उस वृक्षके बाहिर भागे, परंतु अपने घुरसालेकूं दग्ध होता जानि ब्यारि-वोडी वृक्षके ऊपरि भ्रमण करि उस वृक्षहीमें पडि दग्ध होय है; तैसें इंद्रियनिके विषय तथा कषायका प्रेऱ्या दीक्षित हुवाहू विषयरूप अग्निमें पडि दुर्गतिकूं जाय प्राप्त होय है ॥ तथा जैसें कोऊ पुरुष शयन करे था, ताकूं सर्प उलंघन करि गया, पाछै कोऊ जाग्रत पुरुष ताकूं जगायकरि कही "अरे, तोकूं सर्प उलंघन करि गया है" तादि तिससर्पकूं कौतूहलकरि ग्रहण करनेकी इच्छा करै; तैसें परिग्रहकूं त्यागि बहुरि ग्रहण

करना है ॥ तथा जैसैं आपकरि वमन कस्या भोजनकूं निर्लज्ज निर्घृण लोलपी नीच श्वान भोजनकी तृष्णाकरि भक्षण करे है, तैसैं निर्लज्ज नीच सूगलो कोऊ पुरुष विषय कषाय त्यागि जिनदीक्षा ग्रहण करिकैहू बहुरि विषयनिकूं भोगे है ॥

ऐसैं कितने गृहवासका दोष छांडिकरिकै दीक्षित हुवा संताहू इंद्रियनिके विषय तथा कषायनिके दोषकरिकै बहुरि तिन गृहवासके दुःखनिहीकूं ग्रहण करे हैं । कैसाक है गृहवास? यह हमारा यह हमारा ऐसा ममत्वका आधार है ममत्व यामैं वसे है। बहुरि निरंतर जीवकै आशा अर लोभके उत्पन्न करनेमें समर्थ है। बहुरि कषायनिकी खनि है। बहुरि इसकै पीडा करूं इसकै उपकार करूं ऐसे परिणाम करनेमें समर्थ है। बहुरि पृथ्वी जल अग्नि पवन वनस्पति इनकी हिंसामैं प्रवृत्ति करावनेवाला है। बहुरि चेतन अचेतन अल्प तथा बहुत धनके ग्रहण करनेमें तथा बधावनेमें मनवचनकायकरिकै परिश्रम करावनेवाला है। बहुरि इस गृहवासमें तिष्ठता जन असारकूं सार, तथा अनित्यकूं नित्य, तथा अशरणकूं शरण, तथा अशुचिकूं शुचि, तथा दुःखकूं सुख, तथा अहितकूं हित, तथा अनाश्रयकूं आश्रय, तथा शत्रूकूं मित्र मानता संता सर्वतरफ दौडे है। बहुरि कैसा है गृहवास? तामैं मनुष्य महादुःखी हुवा तिष्ठे है, जैसैं लोहके पींजरेमें सिंह तिष्ठे तथा पासीमैं पड्या मृग तिष्ठे तथा जैसैं कर्दममें मग्न वृध्दहस्ती तैसैं

अन्यायकर्दममें मग्न होय रह्या है ॥

बहुरि नानाप्रकारके बंधनकरि बंध्या बंदीखानेमें जैसैं चोर तिष्ठै तथा व्याघ्रनिके तिष्ठता बीचि बलरहित हरिण तिष्ठै तथा पासीमैं खैंच्या जलचर जीव तिष्ठै तिनकीनांई तिष्ठता प्राणी कामरूप बहुत अंधकारके पटलकरि आच्छादित करिये है। तथा रागरूप महासर्पके जहरकरि लोक उपद्रवसहित वर्ते हैं—अचेत होय रहे हैं। तथा चिंतारूप डाकिनी ग्रासीभूत करे है। तथा शोकरूप ल्यालीकरि उपद्रवरूप होय है। तथा जामैं क्रोधरूप अग्नि भस्म करे है। तथा आशारूप लताकरि प्राणीनिकूं बांधिये है। तथा इष्ट पुत्र स्त्री मित्रादिकके वियोगरूप वज्रपातकरि खंड करिये है। तथा वांछितका अलाभरूप बाणनिकरि वेधिये है। बहुरि मायारूप वृध्दस्त्री दृढ आलिंगन करे है। जहां तिरस्काररूप कुहाडेनतैं विदारिये है, जहां अपयशरूप मलकरि लीपिये है, जहां मोहरूप वनहस्तीकरि घातिये है, जहां पापरूप शिकारी मारिकरि नीचै पटके है, जहां भयरूप लोहकी शलाकानिकरि व्यथा करिये है, जहां पश्चात्तापरूप काक दिनप्रति शब्द करे है, जहां ईर्षाकरि विरूपताकूं प्राप्त होइये है, जहां परिग्रहरूप पिशाच ग्रहण करे है।

बहुरि गृहवासमें तिष्ठतो पुरुष असंयमके सन्मुख होय है। तथा ईर्षारूप स्त्रीसूं

प्यार करे है। तथा अभिमानरूप राक्षसका अधिपतिपणाकूं अनुभवे है। तथा विस्तीर्ण उज्वल चारित्ररूप छत्रका सुखकूं नही प्राप्त होय है। तथा संसारके दुःखतैं आत्माकूं नही रक्षा करिसके है। तथा कर्मका नाश करनेकूं नही समर्थ होय है। तथा मरणरूप विषके वृक्षकूं नही दग्ध करे है। तथा मोहरूप दृढ सांखलकूं नही तोडे है। तथा अनेक विचित्र योनीनिमैं परिभ्रमणकूं नही निषेध करे है। इसप्रकार गृहवासके दोषनिकूं त्यागिकरि अर संयम ग्रहण करिकैहू अधमपुरुष विषयकषायकै वशीभूत होय बहुरि परिग्रहादिक अंगीकार करै है; सो पूर्वें कहे अनर्थनिकूं अंगीकार करे है ॥

बंधणमुक्को पुणरे-। व वंधणं सो अचेयणो अदिदि ॥
इंदियकसायवंधण-। मुवेदि जो दिक्खिदो संतो ॥ २७ ॥

अर्थ— जो दीक्षा ग्रहण करिकैहू इंद्रियकषायके बंधनकूं प्राप्त होय है, सो अज्ञानी बंधनतैं छूट्या हुवाहू बहुरि बंधनकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा—

मुक्को वि णरो कलिणा। पुणो वि तं चेव मग्गादि कलिं सो ॥
जो दिक्खिदो वि इंदिय-। कसायमइयं कलिमुवेदि ॥ २८ ॥

अर्थ— जो दीक्षित होयकरिकैहू इंद्रियकषायमय कलहकूं प्राप्त होय है, सो कहा करे है? जैसें कोऊ पुरुष कलहकरिकै छूट्या हुवा बहुरि कलहहीकूं हेरे है! तैसें

अनर्थ करे है ॥ गाथा–

सो णिच्छदि मोत्तुं जे । हत्थगयं उम्मुयं सुपज्जलियं ॥
अक्कमदि किण्हसप्पं । छादं वग्घं च परिमसदि ॥ २९ ॥ [१] क्षुधितं
सो कंठोलइदसिलो । दहमत्थाहं अदीदि अण्णाणी ॥
जो दिक्खिदो वि इंदिय- । कसायवसिगो हवे साधू ॥ १३३० ॥

अर्थ— जो अज्ञानी साधु दीक्षित होयकरिकैहू इंद्रियकषायके वशी होय है; सो हस्तमें प्राप्त हुवा जो प्रज्वलित अंगारा ताहि नहीं छंड्या चाहे है, अथवा कुष्णसर्पकूं ग्रहण करे है, अथवा क्षुधावान् व्याघ्रकूं आलिंगन करे है, तथा कंठविषैं शिला बांधि अगाधद्रहमें प्रवेश करे है ॥ गाथा–

इंदियगहोवसिट्टो । उवसिट्ठो ण दु गहेण उवसिट्ठो ॥
कुणदि गहो एयभवे । दोसं इदरो भवसदेसु ॥ ३१ ॥

अर्थ— इंद्रियरूप पिशाचकरि ग्रहण कीया पुरुष गृहीत कहिये परवश है अर पिशाचकरि ग्रहण कीया गृहीत नहीं है। जातैं पिशाच तो एकभवमें दोष करे है–अनर्थ करे है अर इंद्रियनिके विषय संख्यात असंख्यात अनंतभवनिमें अनर्थ करे हैं ॥ गाथा–

होदि कसाउम्मत्तो । उम्मत्तो तध ण पित्तउम्मत्तो ॥

ण कुणदि पित्तुम्मत्तो । पावं इदरो जधुम्मत्तो ॥ ३२ ॥

अर्थ— जैसैं कषायनिकरि उन्मत्त मनुष्य उन्मत्त होय है, तैसैं पित्तकरि उन्मत्त उन्मत्त नही होय है। जैसैं कषायनिकरि उन्मत्त पाप करे है, तैसें पित्तकरि उन्मत्त पाप नही करे है। जातैं कषायनिकरि उन्मत्त तो हिंसादिकपापनिमें प्रवर्तन करे है अर कर्मनिकी स्थितीकूं दीर्घ करे है अर पापप्रकृतिनिमैं अनुभाग वधावे है अर पुण्यप्रकृतिनिमैं अनुभाग घटावे है, ऐसैं पित्तोन्मत्त अनर्थ नही करे है ॥ गाथा—

इंदियकसायमइया । णरं पिसायं करांति हु पिसाया ॥
पावकरणवेलंबं । पेच्छणयकरं सुजणमज्झे ॥ ३३ ॥

अर्थ— इंद्रियकषायरूप पिशाच हैं ते पुरुषनैं पिशाच करे हैं तथा पाप करनेमें विलंब नही करे हैं, तथा सुजनांके मध्य निंद्य करे हैं ॥ गाथा—

कुलजस्स जसं इच्छं- । तयस्स णिधणं वरं खु पुरिसस्स ॥
ण य दिक्खिदेण इंदिय- । कसायवसिएण जीदुं जे ॥ ३४ ॥

अर्थ— आपकै यशकूं इच्छा करता अर महान् कुलमें उत्पन्न भया ऐसा पुरुषकूं मरण करना श्रेष्ठ है, परंतु जिनेंद्रकी दीक्षा ग्रहण करिकै इंद्रियकषायकै वश होय जीवना श्रेष्ठ नही है ॥ गाथा—

जध सण्णद्धो पग्गहि- । दचावकंडो रधी पलायंतो ॥
णिंदिज्जदि तध इंदिय- । कसायवसिगो वि पव्वयिदो ॥ ३५ ॥

अर्थ— जैसैं ग्रहण कीया है धनुष्यबाण जानै अर सज्य हुवा ऐसा रथी जो महान् जोद्धा सो रणमें भागता संता निंद्यताकूं प्राप्त होय है; तैसैं दीक्षा ग्रहण करिकै अर इंद्रियकषायके वशवर्त्ती होय सो जगतमें निंद्यवेजोग्य होय है ॥ गाथा—

जध भिक्खं हिंडंतो । मउडादिअलंकिदो गहिदसत्थो ॥
णिंदिज्जइ तध इंदिय- । कसायवसिगो वि पव्वयिदो ॥ ३६ ॥

अर्थ— जैसैं कोऊ मुकुटादिक आभरणकरि भूषित अर समस्तशस्त्रनिकूं ग्रहण कीये भिक्षाके निमित्त परिभ्रमण करै, ताकूं जगतमें निंदिये है; तैसैं जिनेंद्रदीक्षा ग्रहण करिकै अर इंद्रियकषायनिके आधीन होय सो मुनि निंदा करनेयोग्य है ॥ गाथा—

इंदियकसायवसिगो । मुंडो णग्गो य जो मलिणगत्तो ॥
सो चित्तकम्मसवणो । व समणरूवो असमणो हु ॥ ३७ ॥

अर्थ— जो मुंडहू मुंडाय अर नग्न होय अर मलिन शरीर स्नानादिक संस्काररहित मुनि होयकरिकै इंद्रियकषायनिकै वश होय है, सो चित्रामका मुनिकीनांई मुनि-कासा रूप है, तोऊ मुनि नही है ॥ गाथा—

णाणं दोसे णासदि । णरस्स इंदियकसायविजयेण ॥
आउहरणं पहरणं । जह णासेदि अरिं ससत्तस्स ॥ ३८ ॥

अर्थ— पुरुषके इंद्रिय अर कषायका विजय करिकै ज्ञान है सो दोषनिका नाश करे है, जो इंद्रियकषायके विजयविना ज्ञानाभ्यासपणा है तथा ज्ञानीपणा है सो वृथा है। जैसें पराक्रमी जोध्दाके हस्तविषैं मारनेवाला शस्त्र वैरीकूं मारे है अर कायरके हस्तमें शस्त्र वैरीनिका घात करनेमें समर्थ नही है ॥ भावार्थ— ज्ञान है सो मिथ्यात्वादिक अनेकदोषनिका नाश करनेवाला है, परंतु विषयकषायके जीतनेवाला पुरुषकै है। जैसें आयुध वैरीकूं मारे है, परंतु शूरवीरके हाथि हुवा मारे है ॥ गाथा—

णाणं पि कुणदि दोसे । णरस्स इंदियकसायदोसेण ॥
आहारो वि हु पाणे । णरस्स विससंजुदो हरदि ॥ ३९

अर्थ— मनुष्यके इंद्रियनिके विषय अर कषायनिके दोषकरिकै ज्ञानभी दोषनिकूं करे है। जैसें विषकरिकै मिल्या सुंदर आहारहू प्राणनिकूं हरे है ॥ भावार्थ— यद्यपि ज्ञान पावना बहुत गुणकारक है, तथापि जो विषयकषायनिमें लीन है ताकै ज्ञानभी दोषही करैगा—विपरीत परिणमन करेगा, गुण नही करेगा। ज्ञान पावना तो मंद-कषायीकै तथा विषयवांछारहितकै गुणकारक है ॥ गाथा—

णाणं करेदि पुरिस- । स्स गुणे इंदियकसायविजयेण ॥
वलरूववण्णमाऊ । करेदि जुत्तो जधाहारो ॥ १३४० ॥

अर्थ— मनुष्यकै ज्ञानहू इंद्रियकषायका विजयकरिकै गुणनिकूं करे है। जैसें योग्य आहार बल रूप तेज वर्ण आयूकूं विस्तीर्ण करे है ॥ गाथा—

णाणं पि गुणे णासे- । दि णरस्सिंदियकसायदोसेण ॥
अप्पत्रधाए सत्थं । होदि हु कापुरिसहत्थगदं ॥ ४१ ॥

अर्थ— जैसें कापुरुषका हस्तमें प्राप्त हुवा शस्त्र अपनेही मरणके अर्थि होत है, तैसें मनुष्यकै इंद्रियकषायनिके दोषकरिकै ज्ञानाभ्यासहू गुणनिका नाश करनेवाला होय है। विषयनिका लंपटी तीव्रकषायीका ज्ञान तीव्रबंध करे है, ज्ञानी होय निंद्यकर्म करै तिसका जगत् अपवाद करे है ॥ गाथा—

सुवहुस्सुदो वि अवमा- । णिज्जदि इंदियकसायजोगेण ॥
णरमाउधहत्थं पि हु । मदयं गिध्दा परिभमंति ॥ ४२ ॥

अर्थ— जैसें आयुध है हस्तविषें जाकै ऐसाहू मृतकमनुष्यका गृध्रपक्षी तिरस्कार करे है, तैसें बहुतश्रुतका धारकहू इंद्रियकषायका योगकरिकै अवज्ञा करिये है ॥ भावार्थ— जो पुरुष बहुतश्रुतज्ञानका धारकहू होयकरिकै अर इंद्रियांका विषयांमें

लंपटी होय है तथा कषायनिमैं प्रवर्तन करे है, सो जगतमें सर्वप्रकारकरि तिरस्कारकूं प्राप्त होय है। जैसैं मृतकमनुष्य शस्त्रधारकहू होय तोहू काकगृध्रादि निर्भय भया ताका मांसकूं चूंथे है॥ गाथा–

इंदियकसायवसगो। वहुस्सुदो वि चरणे ण उज्जमदि॥
पक्खी व छिण्णपक्खो। ण उप्पददि इच्छमाणो वि॥ ४३॥

अर्थ— इंद्रियनिके विषय तथा कषायकै वशीभूत हुवा बहुश्रुती पुरुषहू चारित्रमें उद्यम नहीं करि सके है, पापनितैं भयकरि पापकूं त्याग्या चाहै, तोहू विषयनिका अनुरागतैं कषायनिकी तीव्रतातैं पापहीके मार्गमें प्रवर्तन करे है। जैसैं जाकी पांखां छेदी गई ऐसा पक्षी उडनेकी इच्छा करै, तोहू नहीं उडि सके है॥ गाथा–

णासदि य सगं वहुगं। पि णाणमिंदियकसायसम्मिस्सं॥
विससम्मिसिदं दुध्दं। णस्सदि जध सक्कराकढिदं॥ ४४॥

अर्थ— इंद्रियनिके विषय अर कषायसूं मिल्या हुवा बहुत बडा ज्ञानहू स्वयमेव नाशकूं प्राप्त होय है। जैसैं मिश्री मिलाय अग्निपरि ओटाया दुग्धहू विषकरि मिल्या हुवा नष्ट होय है॥ गाथा–

इंदियकसायदोसे। मलिणं णाणं ण वट्टदि हिदे से॥

वट्टदि अण्णस्स हिदे । खरेण जह चंदणं वूढं ॥ ४५ ॥

अर्थ— विषय अर कषायके दोषकरि मलिन ज्ञान है सो आपके हितविषैं नही प्रवर्ते है। जैसैं गर्दभकरि वह्या चंदनका भार अन्यलोकनिकूं सुगंधरूप करनेकरि अन्यके हितमें प्रवर्ते है अर आप तो भारही वहे है–आप सुगंध ग्रहण नही करे है। तैसैंही विषयानुरागी तथा कषायी पुरुष ज्ञानका अभ्यास तथा व्याख्यानकरि अन्यलोकनिकूं धर्ममें प्रवर्तन कराय अन्यकी हितमैं प्रवृत्ति करावे है। परंतु आप विषयनिमें कषायनिमें अंध हुवा अपने आत्माकूं तो नरक तिर्यंचगतिविषैंही पटके है ॥ गाथा–

इंदियकसायणिग्गह- । णिमीलिदस्स हु पयासदि ण णाणं ॥
रत्तिं चक्खुणिमील- । स्स जधा दीवो सुपज्जलिदो ॥ ४६ ॥

अर्थ— जैसैं रात्रिके विषैं दीपक समस्तवस्तूका प्रकाश करनेवाला है, परंतु जाके दोऊ नेत्र निमीलित होय रहे हैं ऐसा अंधकूं दीपक कुछ दिखावनेमें समर्थ नही है; तैसैं इंद्रियनिके विषय अर कषाय जिसनैं नही निग्रह कीया तथा विषयकरि हृदय जाका मुद्रित होय रह्या, ताकै ज्ञान नही प्रकाश करे है–पदार्थनिकूं यथावत् नही दिखाय सके है ॥ गाथा–

इंदियकसायमइलो । वाहिरकरणणिहुदेण वेसेण ॥

आवहदि कोइ विसए । सउणो वीदंसगेणेव ॥ ४७ ॥

अर्थ— कोऊ बाह्य गमन आगमनादिक कियामैं निश्चल साधुकासा आचरण करे है अर अंतरंगमें इंद्रियनिके विषय तथा कषायकरि मलिन हुवा विषयनिकूं वहे है, सो, पाशकरि बंध्या हुवा पक्षीकीनांई बंध्या जाय है ॥ गाथा–

घोडयलंद्दिसमाण- । स्स तस्स अब्भंतरंमि कुधिदस्स ॥ [1]

वाहिरकरणं किं से । काहिदि वगणिहुदकरणस्स ॥ ४८ ॥

अर्थ–जैसैं घोडेकी लादी बाह्य तो सचिक्कण दीखे है अर मांहि महादुर्गंध मलिन है, ताकी बाह्य उज्वलताकरि कहा साध्य है? तैसैं जो साधु बाह्य नग्नता तथा शीत उष्णादिकपरीषहकी सहनता तथा अनशनादिक तप इनिकरि तो उज्वल है अर अभ्यंतर विषयनिकी इस लोक परलोकमें चाहना तथा अभिमानादिक कषायकरि मलिन है, ताका आचरण बुगलाकीनांई बाहिर इंद्रियां रोकि राखी है अर अंतरंगमें दुष्टता है, ताका बाह्य व्रततपकरि कहा साध्य है? वृथा है ॥ गाथा–

वाहिरकरणविसुद्धी । अब्भंतरकरणसोधणत्थाए ॥

ण हु कुंडयस्स सोधी । सक्का सतुसस्स कादुं जे ॥ ४९ ॥

अर्थ— बाह्यक्रियाकी शुद्धता है सो अभ्यंतर विनयादिक तथा ध्यानादिककी

[1] लिंडं इत्यपि

शुद्धि ताके अर्थि होय है। जातैं तुससहित तंदुलकी अभ्यंतर लाली नही दूरि होय है। पहली तुष दूरि होयगा तदि अभ्यंतर रक्तता दूरि होयगी। तैसें जाका बाह्य आचरण शुद्ध होयगा ताहीका अभ्यंतर आतमपरिणाम शुद्ध होयगा। तातैं बाह्यप्रवृत्ति शुद्ध करि आत्माकी शुद्धता करो ॥ गाथा—

अब्भंतरसोधीए। सुध्दं णियमेण वाहिरं करणं ॥
अब्भंतरदोसेण हु। कुणदि णरो वाहिरं दोसं ॥ १३५० ॥

अर्थ— अभ्यंतर आतमपरिणामकी शुद्धताकरि बाह्यक्रियाकी शुद्धता नियमकरिकै होय है। अर अभ्यंतरदोषकरिकै पुरुष बाह्यदोषकूं नियमकरिकै करेही है ॥ गाथा—

लिंगं च होदि अब्भं-। तरस्स सोधीए वाहिरा सोधी ॥
भिउडीकरणं लिंगं। जह अंतो जादकोधस्स ॥ ५१ ॥

अर्थ— या बाह्य शुद्धता है सो अभ्यंतरशुद्धताका लिंग कहिये चिह्न है। जैसें जाकै अभ्यंतर क्रोध उपज्या होय, ताका भ्रकुटीका वक्र करना लिंग है ॥ भावार्थ— जाकी भ्रकुटी टेढी वांकी चढी रही होय, ताके अंतरंगमें क्रोध जान्या जाय है, तैसें बाह्यचिन्हनिकरि अभ्यंतरपरिणाम जान्या जाय है ॥ गाथा—

ते चेव इंदियाणं। दोसा सवे हवंति णादव्वा ॥

कामस्स य भोगाण य। जे दोसा पुव्वणिद्दिट्ठा ॥ ५२ ॥

अर्थ— जे दोष पूर्वैं कामके तथा भोगनिके कहे, तेही समस्त दोष इंद्रियनिके विषयनितैं होत हैं, ऐसैं जानना योग्य है ॥ गाथा—

महुलित्तं असिधारं। तिक्खं लेहिज्ज जध णरो कोई ॥
तध विसयसुहं सेवदि। दुहावहं इह हि परलोये ॥ ५३ ॥

अर्थ— जैसैं कोऊ मूढ नर सहतसूं लपेटी तीक्ष्ण खड्गकी धाराकूं आस्वादे है, तहां जीभके स्पर्शमात्र तो मिष्टता, अर जीभ कटि गिर परै ताकी महान् दुःख भोगे है; तैसैं इस लोकमें तथा परलोकमें दुःखके वहनेवाले विषयसुख ताकूं मूढ सेवन करे है ॥

सद्देण मऊ रूवे-। ण पदंगो वणगऊ वि फरिसेण ॥
मच्छो रसेण भमरो। गंधेण य पाविदो दोसं ॥ ५४ ॥
इदि पंचहिं पंच हदा। सद्दरसफरिसगंधरूवेहिं ॥
इक्को कहं ण हण्णदि। जो सेवदि पंच पंचेहिं ॥ ५५ ॥

अर्थ— कर्ण इंद्रियका विषय जो शब्द ताका श्रवणकरिकै मृग मार्‍या जाय है। तथा रूपके अवलोकनकरिकै पतंग दीपकमें पडि मरे है। तथा स्पर्शन इंद्रियका विषयकरिकै वनका हस्ती बंधकूं प्राप्त होय है। तथा जिह्वा इंद्रियके विषयकरिकै जलके

मत्स्य मत्स्यी मार जाय हैं। तथा गंधके लोभकरिकै भ्रमर कमलमें मुद्रित होय मरे है॥ ऐसें पंच इंद्रियनिके शब्द रस स्पर्श रूप गंध ऐसे पंचविषयनिकरिकै पांचूं हते गये, तो एक पुरुष पांचूं विषयनिकूं सेवै सो कैसें नही हण्या जाय?॥ गाथा–

सरजूए गंधमित्तो। घाणिंदियवसगदो विणीदाए॥
विसपुप्फगंधमग्घा-। य मदो णिरयं च संपत्तो॥ ५६॥

अर्थ— विनीता नाम नगरीको पति गंधमित्र नामा राजा सरयूनदीके तटविषैं विषका पुष्पको गंध सुंघिकरिकै मरणकूं प्राप्त होय नरककूं प्राप्त भया॥ गाथा–

पाडलिपुत्ते पंचा-। लगीदसद्देण मुच्छिदा संती॥
पासादादो पडिदा। णट्ठा गंधव्वदत्ता हि॥ ५७॥

अर्थ— पटणानगरविषैं गंधर्वदत्ता नामा स्त्री पंचालगीतके श्रवणकरि अचेत भई संती महलतैं पतनकरिकै प्राणरहित होत भई॥ गाथा–

माणुसमंसपसत्तो। कंपिल्लवदी तधेव भीमो वि॥
रज्जब्भट्ठो णट्ठो। मदो य पच्छा गदो णिरयं॥ ५८॥

अर्थ— मनुष्यका मांसमें आसक्त जो कांपिल्यनगरका स्वामी भीम नामा राजा राज्यतैं भ्रष्ट होय वहुरि मरणकूं प्राप्त होय पाछै नरककूं प्राप्त भया॥ गाथा–

चोरो वि तह सुवेगो। महिलारूवम्मि दत्तदिट्ठीउ ॥
विद्धो सरेण अच्छिसु। मदो य णिरयं च संपत्तो ॥ ५९ ॥

अर्थ— तथा सुवेग नामा चोर स्त्रीका रूपमें दीई है दृष्टि जानैं सो नेत्रनिविषैं बाणकरि वेध्या हुवा मरिकरिकै नरककूं प्राप्त भया ॥ गाथा—

फासिंदिएण गोवे। सत्ता गहवदिपिया वि णासक्के ॥
मारेदूण सपुत्तं। धूदाए मारिदा पच्छा ॥ १३६० ॥

अर्थ— नासक्य कानानको नाम ग्रामविषैं गृहपातिकी स्त्री स्पर्शन इंद्रियका विषय-करि गुवालमें आसक्त होय अर अपने पुत्रकूं मारिकरिकै अर पीछै अपने पुत्रीके प्रहा-रतैं मरिकरिकै नरककूं प्राप्त भई ॥ ऐसैं इंद्रियजनितदोषनिकूं दिखाय अब क्रोधकृतदोष पनरह गाथानिकरि दिखावे हैं ॥ गाथा—

रोसाइट्ठो णीलो। हदप्पभो अरदिअग्गिसंतत्तो ॥
सीदे वि णिवाइज्जादि। वेवादि य गहोवसिट्ठो वा ॥ ६१ ॥

अर्थ— रोषकरिकैं व्याप्त पुरुषकी कांति नील होजाय है, देहकी प्रभा नष्ट होजाय है, अर अरतिरूप अग्निकरि तप्तायमान भया शीतकालहूमैं तप्त होय है; तृषावान् होय है, पिशाचकरि ग्रहण कीया ताकीनांई सर्व अंग कंपायमान होय है ॥ गाथा—

भिउडीतिवलियवयणो । उग्गदणिच्चलसुरत्तलुक्खच्छो ॥
कोवेण रक्खसो वा । णराण भीमो णरो हवदि ॥ ६२ ॥

अर्थ— मनुष्य है सो कोपकरिके भ्रकुटी चढाय त्रिवलीसहित मुखका धारक होय है, अर विस्तीर्ण-निश्चल-रक्त-रूक्ष-नेत्र होय है, मनुष्यनिके मध्य भयानक राक्षसकी-नांई होय है ॥ गाथा-

जध कोइ तत्तलोहं । गहाय रुट्ठो परं हणामित्ति ॥
पुव्वदरं सो डज्झदि । डहिज्ज व ण वा परो पुरिसो ६३ ॥

अर्थ—जैसें कोऊ क्रोधी तप्तलोहकूं ग्रहण करिके कहै मैं परकूं हणूं हूं, सो पूर्वे आप दग्ध होय है! पाछे परपुरुष दग्ध होय वा नहीं होय । परतांई पहूंचैगा वा नहीं पहूंचैगा । परंतु तप्तलोहकूं ग्रहण करनेवाला तापहली दग्ध होयही है ॥ गाथा-

तध रोसेण सयं पु- । व्वमेव डज्झदि हु कलकलेणेव ॥
अण्णस्स पुणो दुक्खं । करिज्ज रुट्ठो ण य करिज्ज ॥ ६४ ॥

अर्थ— तैसेंही क्रोधी ताया हुवा लोहके समान रोपकरिके पूर्वे आपकूं दग्ध करे है पीछे अन्यकै दुःख करै वा नहीं करै ॥ गाथा-

णासेदूण कसायं । अग्गी णस्सादि सयं जधा पच्छा ॥

णासेदूण तध णरं। णिए सउं णस्सदे कोधो ॥ ६५ ॥

अर्थ— जैसैं अग्नि इंधनकूं नाश करिकै पीछै स्वयमेव अपना नाशकूं प्राप्त होत है–बुझे है; तैसैं क्रोध जीवका ज्ञानदर्शनसुखादिकका नाश करि पाछै आत्माकूं निगोद पहुंचाय आप नष्ट होय है ॥ गाथा–

कोधो सत्तुगुणकरो। णीयाणं अप्पणो य सोयंकरो ॥ १ मण्णु इत्यपि

परिभवकरो सवासे। रोसो णासेदि णरमवसं ॥ ६६ ॥

अर्थ—क्रोध है सो शत्रूनिकै गुणकारक है। जातैं जो क्रोधी होयगा सो सहजही मार्‍या जायगा, इसलोक परलोकमें दुःखका अकीर्तीका पात्र होयगा, तातैं शत्रूनिकै गुणकारक है। अर अपने बांधवानिकै तथा आपकै शोक करनेवाला होय है, अपने स्थानमें तिरस्कार करनेवाला है। यो रोष मनुष्यकूं परवश जैसैं होय तैसैं नाश करे है ॥

ण गुणे पेच्छादि अववद-। दि गुणे जंपदि अजंपदिव्वं च ॥

रोसेण रुद्दहिदउ। णारगसीलो णरो होदि ॥ ६७

अर्थ— यो मनुष्य क्रोधकरिकै गुणनिकूं नही देखे है अर गुणनिकाहू अपवाद करे है अर नही बोलनेजोग्य बोले है, रोषकरिकैं रौद्रहृदय हुवा नारकीकासा स्वभाव होय है॥

जध करिसयस्स धण्णं। वरसेण समज्जिदं खलं पत्तं ॥

डहदि फुलिंगो दित्तो । तध कोहग्गी समणसारं ॥ ६८ ॥

अर्थ— जैसैं क्षेती करनेवाला किसाणका एकवर्षपर्यंत महाकष्टकरि संचय कीया धान्य खलामैं प्राप्त भया ताकूं अग्नीका एक फुलिंगा दग्ध करे है, तैसैं क्रोधरूप अग्नि बहुतकालका संचय कीया साधुपणारूप सारवस्तु ताहि क्षणमात्रमें दग्ध करे है ! ॥

जध उग्गविसो उरगो । दब्भतणंकुरहदो य कुप्पंतो ॥

अचिरेण होदि अविसो । तध होदि जदी वि णिस्सारो ॥ ६९ ॥

अर्थ — जैसैं उत्कटविषका धारक सर्प डाभके वा तृणानिके अंकुरेनिकरि हत्या हुवा क्रोधकरि कोप करता तृणनिऊपरि फण पटकता थोरा कालमें निर्विष होय है–शक्तिरहित होय है; तैसैं क्रोध करता साधूहू धर्मरहित हुवा निःसार होय है॥ गाथा–

पुरिसो मक्कडसरिसो । होदि सरूवो वि रोसहदरूवो ॥

होदि य रोसणिमित्तं । जम्मसहस्सेसु यदुरूवो ॥ १३७० ॥

अर्थ— सुंदर रूपवान् पुरुषहू रोसकरिकै हण्या जाय है रूप जाका सो मर्कटसमान लालमुख अर विपरीत आकृतिकूं प्राप्त होय है ॥ बहुरि क्रोध करनेतैं आगामी हजारां लाखां कोट्यां जन्मपर्यंत कुरूप होय है ॥ गाथा–

सुट्ठु वि पिउ मुहुत्ते- । ण होदि विस्सो जणस्स कोधेण ॥

पधिदो वि जसो णस्सदि । कुध्दस्स अकज्जकरणेण ॥ ७१ ॥

अर्थ— आपका अत्यंत प्याराभी होय सोहू क्रोधकरिकै जनांकै एकमुहूर्तमें वैर करने-योग्य होय है। क्रोधी पुरुष अकार्य करनेकरिकै विख्यातहू अपना जसकूं नाश करे है॥

णीयल्लगो वि कुध्दो । कुणदि अणीयल्लए व सत्तू वा ॥
मारेदि तेहि मारि- । ज्जदि वा मारेदि अप्पाणं ॥ ७२ ॥

अर्थ— क्रोधी पुरुष आपके पुत्रबांधवादिक निज जे हैं तिननैंहू तथा अनिज जे पर जे हैं तिननैंहू शत्रूकीनांई मारे है अथवा तिनकरिकै आप मास्या जाय है तथा आपही आपकूं मारे है ॥ गाथा—

पुज्जो वि णरो अवमा- । णिज्जदि कोवेण तक्खणे चेव ॥
जगविस्सुदं वि णस्सदि । माहप्पं कोहवसियस्स ॥ ७३ ॥

अर्थ— पूज्यहू मनुष्य कोपकरिकैं तीही क्षणमें अवज्ञा करनेयोग्य होय है। क्रोधके वशीभूत जो है ताका जगतमें विख्यातहू माहात्म्य है सो नाशकूं प्राप्त होय है॥

हिंसं अलियं चोज्जं । आचरदि जणस्स रोसदोसेण ॥
तो ते सव्वे हिंसा- । लियादिदोसा भवे तस्स ॥ ७४ ॥

अर्थ— रोसके दोषकरिकै हिंसा करे है, असत्य बोले है, चोरी करे है। तातैं

ते हिंसा अलीकवचनादिक दोष सर्व क्रोधीकै होय हैं ॥ गाथा—

दारवदी य असेसा । दध्धा दीवायणेण रोसेण ॥
वध्दं च तेण पावं । दुग्गदिभयवंधणं घोरं ॥ ७५

अर्थ— द्वीपायनमुनि रोषकरिकै समस्त द्वारावती नगरी दग्ध करी! अर क्रोधकरिकै दुर्गतिके भयकूं कारण ऐसा अर घोर पापका वंध कीया ॥

ऐसें अनुशिष्टि अधिकारविषैं पंद्रहगाथानिकरि क्रोधका वर्णन कीया ॥ अब सात गाथानिकरि मानकषायके दोष कहे हैं ॥ गाथा—

कुळरूवाणावळसुद- । लाभेसरियत्तमादितवादीहिं ॥
अप्पाणमुण्णमंतो । णीचागोदं कुणदि कम्मं ॥ ७६ ॥

अर्थ— कुल, रूप, आज्ञा, वल, श्रुतलाभ, ऐश्वर्य, वुध्दि, तपादिकका मदकरि आत्माकूं ऊंचा मानता पुरुष नीचगोत्रनामकर्मकूं वांधे है ॥ गाथा—

दट्ठूण अप्पणादो । हीणे मुख्खा उवींति माणकालिं ॥
दठ्ठूण अप्पणादो । अधिए माणं ण इंति वुधा ॥ ७७ ॥

अर्थ— मूर्ख हैं ते आपतैं हीन लोकनिकूं देखिकरिकै मानरूप कालिमाकूं वहे है । अर ज्ञानी जन हैं ते आपतैं अधिक पुरुषनिकूं देखिकरिकै अभिमानकूं नही प्राप्त होय हैं ॥

माणी विस्सो सव्व- । स्स होदि कलहभयवेरदुक्खाणि ॥
पावदि माणी णियदं । इहपरलोए य अवमाणं ॥ ७८ ॥

अर्थ— अभिमानी पुरुष समस्त लोकनिकै वैर द्वेष करनेयोग्य होय है। बहुरि अभिमानी पुरुष इस लोकमें कलह भय वैर दुःखनिकूं प्राप्त होय है अर परलोकमें निश्चयथकी अनेकभवनिमें अभिमानी अपमानकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा-

सव्वे वि कोहदोसा । माणकसायस्स होंति णादव्वा ॥
माणेण चेव मिधुणं । हिंसालियचोज्जमाचरदि ॥ ७९ ॥

अर्थ— पूर्वैं कहे जे समस्त क्रोधके दोष, ते मानकषायके धारकहूके होय हैं ऐसैं जाननेयोग्य है। अभिमानकरिकैही मैथुन हिंसा असत्य चौर्य इत्यादिकपापनिकूं आचरे है

सयणस्स जणस्स पिउ । णरो अमाणी सदा हवदि लोए ॥
णाणं जसं च अत्थं । लभदि सकज्जं च साहेदि ॥ १३८० ॥

अर्थ— मानरहित विनयवान पुरुष लोकमें स्वजन अर परजन तिनकै सदाकाल प्रिय होय है। मानरहित विनयवान् पुरुष जो है, सो ज्ञान अर जस अर अर्थकूं प्राप्त होय है, ज्ञान अर जस उपार्जन करे है, इस लोक परलोकमें अर्थ उपार्जन करे है- अपने कार्यकूं साधे है॥ गाथा-

ण य परिहायादि कोई । अत्थो मउगत्तणे पउत्तम्मि ॥
इह य परत्त य लब्भदि । विणयेण हु सव्वकल्लाणं ॥ ८१ ॥

अर्थ— मार्दव जो कोमलपणा तिसकरि युक्त होते संते कोऊ पुरुषहू अपना अर्थके नाशकूं नही प्राप्त होय है ॥ भावार्थ- मार्दवगुणयुक्त पुरुषका कोऊ प्रयोजन तथा धन बडापणा नही घटे है । विनयकरिकै इस लोक परलोकमें सर्वकल्याणकूं प्राप्त होय है

सट्ठिं साहस्साउ । पुत्ता सगरस्स रायसीहस्स ॥
अदिबलवेगा संता । णट्ठा माणस्स दोसेण ॥ ८२ ॥

अर्थ— अभिमानका दोषकरिकै सगर नामा चक्रवर्तीका साठि हजार पुत्र अतिबलका वेगसहित नष्टताकूं प्राप्त भयो ॥ भावार्थ- सगरचक्रीका साठि हजार पुत्राकै बलका गर्व बहोत था, ते गर्वकरिकैं नष्ट होते भये ॥

ऐसैं सात गाथानिकरि मानकषायका स्वरूप कह्या ॥ अब मायाचारकूं सात गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

जध कोडिसमिद्धो वि स- । सल्लो ण लब्भदि सरीरणिव्वाणं ॥
मायासल्लेण तधा । ण णिव्वुदिं तवसमिद्धो वि ॥ ८३ ॥

अर्थ— जैसें कोटीधनका धनी पुरुषहू जो शल्यकरि सहित होय सो शरीरके सुखकूं

नही प्राप्त होय है; तैसें मायाशल्यसहित पुरुष तपकरि महितहू निर्वाणकूं नही प्राप्त होय है॥

होदि य विस्सो अप्प-। च्छइदो तध अवमदो य सुजणस्स ॥
होदि अचिरेण सत्तू। णीयाणं णियडिदोसेण ॥ ८४ ॥

अर्थ-- एक मायाचार जो कपट ताके दोषकरिकै समस्त स्वजनांकै द्वेष करनेयोग्य होय है! मायाचारतैं अपने समस्त स्वजन मित्र वैरी होइ हैं। तथा कपटी प्रीति करनेयोग्य नही होय हैं तथा स्वजनांके मध्यहू अवज्ञा करनेयोग्य-तिरस्कार करनेयोग्य होय है अर थोरे कालमें आपके निज जे मित्रादिक तिनहूका मायाचारी शत्रू होजाय है॥

पावदि दोसं माया-। ए महल्लं लहु सगावराधे वि ॥
सच्चाण सहस्साणि वि। माया एक्का विणासेदि ॥ ८५ ॥

अर्थ-- अत्यंत अल्प अपराधीहू मायाचारकरि शीघ्रही महान् दोषकूं प्राप्त होय है। एकही मायाचार हजारां सत्यनिका नाश करे है॥ गाथा-

मायाए मित्तभेदे। कदम्मि इध लोगिगत्थपरिहाणी ॥
णासदि मायादोसा। विसजुददुद्धं व सामण्णं ॥ ८६ ॥

अर्थ— मायाचारकरिकैं मित्रभेद होते संते इस लौकिक अर्थकी परिहानि होय है अर मायाचाररूप दोषतैं विषसहित दुग्धकीनांई श्रमणपणा नाशकूं प्राप्त होय है॥

भावार्थ-जहां मायाचार तहां मित्रता हैही नही, मायाचार प्रकट हुवा पीछै बहुतकालकी मित्रताहू क्षणमात्रमें नष्ट होय है, अर मायाचारीका व्यवहारही मलिन होजाय; तदि परमार्थधर्मरूप साधूपणा तो जैसें विषकरि दुग्ध विनसे है तैसें नाशकूं प्राप्त होय है ॥

माया करेदि णीचा- । गोदं इत्थी णपुंसगं तिरियं ॥
मायादोसेण य भव- । सएसु डंभिज्जिदे वहुसो ॥ ८७ ॥

अर्थ— मायाचारकरिकैं नीचगोत्रका बंध होय है, तथा स्त्रीपणा नपुंसकपणा तिर्यंचपणा बहुतभवनिमैं होय है, तथा मायाचाररूप दोषकरिकै बहुतवार सैंकडा भवनिमैं परकरिकैं ठिग्या जाय है ॥ गाथा—

कोहो माणो लोभो । य जत्थ माया वि तत्थ सण्णिहिदा ॥
कोहमदलोभदोसा । सवे मायाए ते होंति ॥ ८८ ॥

अर्थ— जहां मायाचार है तहां क्रोध मान लोभ ये सर्व निकटवर्ती हैं। क्रोध अभिमान लोभ ये समस्तदोष मायाचारकरि प्रगट होय हैं ॥ गाथा—

सस्सो भरहग्गाम- । स्स सत्तसंवच्छराणि णिस्सेसो ॥
दड्ढो डंभणदोसे- । ण कुंभकारेण रुट्ठेण ॥ ८९ ॥

अर्थ— रोषकूं प्राप्त भया जो कुंभकार सो कपटका दोषकरिकै भरतग्रामका समस्त

धान्य सप्तवर्षपर्यंत दग्ध कीयो ! ॥ ऐसें मायाचारका दोष सप्तगाथामें वर्णन कीया ॥
अब लोभकषायकूं छ गाथानिकरि वर्णन करे हैं ॥ गाथा–

लोभेणासाघत्तो । पावइ दोसे वहुं कुणदि पावं ॥
णीए अप्पाणं वा । लोभेण णरो ण वि गणेदि ॥ १३९० ॥

अर्थ— लोभकरिकै आशाकरि ग्रस्या प्राणी बहुदोषनिनैं प्राप्त होय है । अर लोभकरिकै बहुत पाप करे है, अपने स्वजन बांधव मित्रनिकूं नही गिणे है, अपना लोभही साध्या चाहे है, अर लोभकरिकै अपना आत्मामैं आवता मरण दुःख विपत्ति नही गिणे है । लोभीकूं आपका तथा परका दोऊका चेत नही रहे है ॥ गाथा–

लोभो तणे वि जादो । जणेदि पावमिदरत्थ किं वच्चं ॥
रइदमउडादिसंग- । स्स वि हु ण पावं अलोभस्स ॥ ९१ ॥

अर्थ— तृणहूमैं उत्पन्न भया लोभ पापकूं उपजावे है; तो अन्यवस्तूमैं कीया लोभ जो पाप उपजावे है ताका कहा कहना ? अर जो लोभरहित पुरुष मुकुटादि आभरणसहित है तोऊ पापकूं नही प्राप्त होय है । लोभीकै समता संतोष नही होय है, जातैं लोभ तो शरीर धन धान्यादिकमें अहंकार–ममकारबुद्धि है । अर जाकै परवस्तूमैं मूर्च्छा ममताबुद्धि नही है ताकै पापबंधहू नही है ॥ गाथा–

साकेदपुरे सीमं- । धरस्स पुत्तो मिगध्दवो णाम ॥
भद्दयमहिसणिमित्तं । जुवराजो केवली जादो ॥ ९२ ॥

अर्थ— साकेतपुरविषैं सीमंधरका पुत्र मृगध्वज नामा युवराजा भद्रमहिषीके निमित्त केवली होतो हुवो ॥ इसकी कथा ग्रंथांतरमैं जानना ॥ गाथा—

तेलुक्केण विचित्त- । स्स णिव्वुदी णत्थि लोभघत्थस्स ॥
संतुट्ठो हु अलोभो । लभदि दरिद्दो वि णिव्वाणं ॥ ९३ ॥

अर्थ— लोभकरिकैं जाका चित्त व्याप्त भया ताकै त्रैलोक्यका राज्यकरिकैंहू तृप्ति नही आवे है—सुख नही होय है। अर लोभरहित संतोषी दरिद्री है—धनरहित है तोहू निर्वाण जो सुख ताकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा—

सव्वे वि गंथदोसा । लोभकसायस्स हुंति णादव्वा ॥
लोभेण चेव मेहुण- । हिंसालियचोज्जमाचरदि ॥ ९४ ॥

अर्थ— लोभकषायका धारककै सर्वही परिग्रहसंबंधी दोष होय हैं ऐसैं जनना। लोभकरिकैही मैथुन हिंसा असत्य चोरीकूं आचरण करे है ॥ गाथा—

रामस्स जामदग्गिस्स । वत्थं घित्तूण कित्तविरिउ वि ॥
णिधणं पत्तो सकुलो । ससाहणो लोभदोसेण ॥ ९५ ॥

अर्थ— एक लोभका दोषकरिकै रामका तथा जमदग्नीका वस्त्र ग्रहणकरिकै कार्तवीर्य नामा कोऊ अपना कुलसहित तथा सेनासहित मरणकूं प्राप्त भया। इसकी कथा प्रथमानुयोगके ग्रंथनितैं जाननी ॥

ऐसैं छ गाथानिमैं लोभका वर्णन कीया ॥ अब सामान्य इंद्रियकषायनिका स्वरूप सत्ताईस गाथानिमैं वर्णन करे हैं ॥ गाथा—

ण हि तं कुणिज्ज सत्तू। अग्गी वग्घो व कण्हसप्पो वा ॥
जं कुणइ महादोसं। णिव्वुदिविग्घं कसायरिवू ॥ ९६ ॥

अर्थ— जो कषायरूप वैरी निर्वाणमें विघ्न अर महादोष करे है; सो दोष वैरी नहीं करे है, अग्नि नहीं करे है, व्याघ्र नहीं करे है, कृष्णसर्प नहीं करे है। वैरी तो एक-जन्म दुःख दे है, अग्नि एकवार दग्ध करे है, व्याघ्र एकवार भक्षण करे है, कृष्णसर्प एकवार डसे है अर कषाय अनंतजन्म दुःख देनेवाले हैं ॥ गाथा—

इंदियकसायदुद्द- । तस्सा पाडिंति दोसविसमेसु ॥
दुक्खावहेसु पुरिसे। पसिढिलणिव्वेदखलिया हु ॥ ९७ ॥

अर्थ— इंद्रिय अर कषायरूप दुर्दम अश्व कहिये अशिक्षित घोडे जिनकी वैराग्यरूप लगाम शिथिल होगई ते घोडे पुरुषनिनैं दुःखके वहनेवाले पापरूप विषम स्थाननिमें

पटके हैं ॥ गाथा—

इंदियकसायदुद्दं- । तस्सा णिवेदखलिणिदा संता ॥
झाणकसाए भीदा । ण दोसविसमेसु पाडिंति ॥ ९८ ॥

अर्थ— इंद्रियकषायरूप दुर्दम अश्व वैराग्यरूप लगामकरि वशीभूत किये संते अर ध्यानरूप चाबककरि भयवान् भये, पुरुषांनिनैं दोषरूप विषमस्थाननिमैं नही पटकत हैं ॥

इंदियकसायपण्णग- । दट्ठा वहुवेदणट्ठदा पुरिसा ॥
पब्भट्टझाणसुक्खा । संजमजीवं पविजहंति ॥ ९९ ॥

अर्थ— इंद्रिय और कषायरूप सर्पकरि डस्या अर बहुतवेदनाकरि व्याप्त भया अर भ्रष्ट हुवा है ध्यानरूप सुख जिनिका ऐसें पुरुष संयमरूप जीवका त्याग करे है—छांडे है ॥

झाणागदेहि इंदिय- । कसायभुजगा विरागमंतेहिं ॥
णियमिज्जंता संजम- । जीवं साहुस्स ण हरंति ॥ १४०० ॥

अर्थ— ध्यानरूप औषधकरिकै अर वैराग्यरूप मंत्रकरिकै रोके हुये जे इंद्रियकषायरूप सर्प ते साधूका संयमरूप जीवकूं नही हरे हैं—नही घाति सके हैं ॥ गाथा—

सुमरणपुंखा चिंता- । वेगा विसयविसलित्तरइधारा ॥
मणधणुमुक्का इंदिय- । कंडा विंधंति पुरिसमयं ॥ १ ॥

अर्थ— संसारविषैं इंद्रियरूप बाण पुरुषरूप मृगकूं घाते हैं। बाणकै पांख होय हैं, इंद्रियरूप बाणकै विषयनकूं स्मरण करना सोही पांख हैं। अर चिंतारूप वेगकूं धारे हैं। अर विषयरूप विषकरि लिप्त हैं। अर जिनकै रति जो आसक्तता सोही धार है। अर मनरूप धनुष्यकरि छूटे हैं। ऐसे इंद्रियबाण जीवरूप मृगका घात करे हैं॥

धिदिखेडएहि इंदिय-। कंडे झाणवरसत्तिसंजुत्ता॥
वारंति समणजोहा। सुणाणदिट्ठीहि दट्ठूण॥ २॥

अर्थ— ध्यानरूप श्रेष्ठशक्तिकरिकैं संयुक्त जे श्रमणरूप जोध्दा ते इंद्रियरूप बाणनिकूं सम्यग्ज्ञानरूप दृष्टिकरि देखिकरिकै धैर्यरूप खेट नाम आयुधकरिकैं छेदे हैं– रोके हैं॥ भावार्थ-- इंद्रियनिके विषयरूप बाण जिनकै लागे हैं, तिनका ज्ञानसंयमादिरूप प्राण नष्ट होय निगोदमें जाय परे है, यातैं साधुरूप जोध्दा सांची ज्ञानदृष्टितैं विषयरूप बाणनिकूं अपना घात करनेवाले देखिकरिकै धैर्यरूप आयुधकरि छेदे हैं– आपकै लागने नहीं दे हैं॥ गाथा–

गंथाडवीचरंतं। कसायविसकंटया पमायमुहा॥
विंधंति विसयतिख्खा। अधिदिदढोवाणहं पुरिसं॥ ३॥

अर्थ— परिग्रहरूप गहनवनीमैं कषायरूप विषके कांटे विखरि रहे हैं। कैसेक हैं

विषयरूप विषके कांटे? प्रमादरूप जिनकै मुख हैं अर विषयनिकी चाहनारूप तिनकी तीक्ष्ण अणी है, ऐसी विषयरूपकंटकनिकी भरी परिग्रहवनीमें धैर्यरूप पगरखीरहित जो पुरुष प्रवेश करे है, सो कषायरूप विषकंटकनिकरि वेधे हुये मरणकरि दुर्गतिकूं प्राप्त होय हैं ॥ गाथा–

आवध्दधिदिदढोवा- । णहस्स उवउंगदिट्ठिजुत्तस्स ॥
ण करिंति किंचि दुक्खं । कसायविसकंटया मुणिणो ४ ॥

अर्थ— पहरी है धैर्यरूप पगरखी जानैं अर उपयोगकी शुद्धतारूप दृष्टिकरि संयुक्त जो मुनि, ताकै कषायरूप विषके कांटे किञ्चिन्मात्रहू दुःख नही करे है ॥ गाथा

उड्डहणा अदिचवला । अणिगहिदकसायमक्कडा पावा ॥
गंथफळलोलहिदया । णासंति हु संजमारामं ॥ ५ ॥

अर्थ— जे पुरुष असंजमी हैं, अर अतिचपल जिनका मन है, अर पापरूप जिनकी प्रवृत्ति है, अर जिननैं कषायरूप मर्कटका निग्रह नही कीया, अर परिग्रहरूप फलमें जिनका मन लोलपी है, ते पुरुष संजमरूप बागका विध्वंस करे हैं । बहुरि अनंतकालमें ताकूं संजम दुर्लभ होय है ॥ गाथा–

णिच्चं पि अमज्झत्थे । तिकाळदोसाणुसरणपरिहत्थे ॥

संजमरज्जूहि जदी । बंधंति कसायमक्कडए ॥ ६ ॥

अर्थ— जती हैं ते संजमरूप रज्जूकरिकै कषायरूप मर्कटनिकूं बांधत हैं। कैसेक हैं कषायरूप मर्कट? मध्यस्थ नही हैं—निरंतर चपल हैं। बहुरि कैसेक हैं कषायमर्कट? भूत-भविष्य-वर्तमानकालमें दोषनिकूं प्राप्त होनेमें प्रवीण हैं। ऐसे कषायरूप मर्कटनिकूं दिगंबर जतीही संजमरूप रसेनकरि बांधनेकूं समर्थ हैं, अन्य नही हैं ॥ गाथा—

धिदिवम्मिएहि उवसम- । सरेहिं साधूहि णाणसत्थेहिं ॥
इंदियकसायसत्तू । सक्का जुत्तेहि जेदुं जे ॥ ७ ॥

अर्थ— धैर्यरूप वगतर अर उपशमभावरूप बाण अर ज्ञानरूप शस्त्रनिकरि युक्त जे साधू, तिनकरि इंद्रियकषायरूप शत्रु जीतिवेकूं शक्य होय हैं ॥

इंदियकसायचोरा । सुभावणासंखलाहि वज्झंति ॥
ता ते ण विकुव्वंति । चोरा जह संखलावद्धा ॥ ८ ॥

अर्थ— ये इंद्रिय अर कषायरूप चोर सुंदरभावनारूप सांकलनिकरि बांधिये तो ते विकार नही करै, जैसैं दृढ सांकलनिकरि बांध्या चोर विकार नही करै ॥ गाथा—

इंदियकसायवग्घा । संजमणरघादणे अदिपसत्ता ॥
वेरग्गलोहदढपं- । जरेहि सक्का हु णियमेदुं ॥ ९ ॥

अर्थ-- संयमरूप मनुष्यका घात करनेमें अति आसक्त ऐसे इंद्रियकषायरूप व्याघ्र हैं, ते वैराग्यरूप लोहके दृढपंजरकरिकैं रोकिवेकूं शक्य होइये हैं ॥ जैसें मनुष्यनिका घात करनेमें आसक्त ऐसा व्याघ्र पींजरेविना रोकनेकूं नही शक्य होइए है; तैसें इंद्रियकषाय तो व्याघ्र हैं अर संजमरूप मनुष्यका घात करे हैं, सो ऐसे इंद्रियकषाय-व्याघ्र वैराग्यरूप पींजरेनिंविना कैसे रोके जाय? ॥ गाथा-

इंदियकसायहत्थी । वयवारिमहीणिदा[1] उवाएण ॥
विणयवरत्तावध्दा । सक्का अवसा वसे कादुं ॥ १४१० ॥

[1] अधीनिताः

अर्थ— इंद्रियकषायरूप हस्ती हैं ते उपायकरिकैं व्रतरूप आगलभूमीनैं प्राप्त कीये अर विनयरूप वरत्रा जो गजबंधनीकरिकैं बंधे हुये पहली कहींकै वश नही थे, तेहू वश करनेकूं शक्य होइये हैं ॥ भावार्थ- जैसें मदोन्मत्त हस्ती कहींकै वश नही, तेहू कोऊ उपायकरिकै आगलका स्थानमें प्रवेश कराय वरत्राकरिकै बांधि दे, तदि वश होय है; तैसें ये इंद्रिय अर कषाय तो मदोन्मत्त हस्ती हैं अर व्रत हैं ते आगलके स्थान हैं अर विनयरूप वरत्रा है, सो व्रतकी आगलमें आये जे विनयसूं बांधि जाय तदि इंद्रियकषाय वश होयही हैं ॥ गाथा-

जदि विसयगंधहत्थी । अदिणिज्जदि रागदोसमदमत्तो ॥

ठिच्चा ण झाणजोह- । स्स वसे णाणंकुसेण विणा ॥ ११ ॥

विसयवणरमणलोला । बाला इंदियकसायहत्थी ते ॥

पसमे रामेदव्वा । तो ते दोसं ण काहिंति ॥ १२ ॥

अर्थ— जो मनरूप गंधहस्ती स्वयमेव परिग्रहरूप वनीमें प्रवेश करे है, रागद्वेषरूप मदकरिकै उन्मत्त होय रह्या है, ज्ञानरूप अंकुशविना ध्यानरूप जोध्दाके वशीभूत हुवा नही तिष्ठे है, तातैं ये विषयरूप वनमें रमणके लोलपी ऐसे इंद्रियकषायरूप बालहस्ती तिनकूं प्रशमभाव जो वीतरागभाव तिसमें रमावना योग्य है। जो इंद्रियकषाय प्रशमभावमें लीन होजाय, तो संसारपरिभ्रमणके कारण ऐसे अनर्थ नही करै ॥ भावार्थ- हे भव्य! रागद्वेषकरि सहित यो आत्मा अंगपूर्वनिके ज्ञानविना जितनैं शुक्लध्यानमें लीन नही होय, तितनैं इंद्रियकषायनिकूं समभावमें लीन करना उचित है॥

सद्दे रूवे गंधे । रसे य फासे सुभे य असुभे य ॥

तह्मा रागद्दोसं । परिहर तं इंदियजयेण ॥ १३ ॥

अर्थ— तातैं, भो मुने! इंद्रियनिके विजयकरिकै शुभ और अशुभ जे शब्द और रूप तथा गंध तथा रस और स्पर्श इनमें रागद्वेषका त्याग करहु ॥ गाथा-

जह णीरसं पि कडुयं । पि ओसहं जीवत्थिवो पिवदि ॥

कडुयं पि इंदियजयं । णिव्वुइहेदुं तह पिविज्ज ॥ १४ ॥

अर्थ— जैसें जीवनेका अर्थी जो रोगी, सो नीरस अर कटुकहू औषधकूं पीवेही है; तैसें अनंतजन्ममरणका अभाव करनेका अर्थी जो ज्ञानी, सो कटुकहू इंद्रियनिका विजयकूं निर्वाणके अर्थि अंगीकार करे है ॥ यद्यपि संसारी मोही जीवनिकै विषयनिका त्याग करना अतिविषम है, तथापि ज्ञानी क्षणमात्रमें त्यागे है ॥ गाथा—

जे आसि सुभा एण्हिं । असुभा ते चेव पुग्गला जादा ॥
जे आसि तदा असुभा । ते चेव सुभा इमा इण्हिं ॥ १५ ॥

अर्थ— जे पुद्गल इस वर्तमानकालमें शुभ दीसे हैं, तेही पुद्गल पूर्वे अनंतभवनिमें दुःख देनेवाले अशुभ भये हें । अर जे पुद्गल इस वर्तमानकालमें अशुभ दीसे हैं, तेही पूर्वे अनंतवार सुखकारी शुभ भये हैं ॥ गाथा—

सव्वे वि य ते भुत्ता । मुत्ता वि य तह अणंतखुत्तो मे ॥
सव्वेसु एत्थ को वि- । म्भओ य भुत्तविजढेसु ॥ १६ ॥

अर्थ— सर्वप्रकारके पुद्गलद्रव्य अनंतवार आहार-शरीर-इंद्रियरूप परिणमन करायकरि भोगे अर अनंतवार त्यागे, ऐसे सर्वपुद्गल, तिनके ग्रहणत्यागमें कहा विस्मय है? ॥

रूवं सुभं च असुभं । किंचिवि दुक्खं सुहं च ण य कुणइ ॥

संकप्पविसेसेण दु। सुहं च दुक्खं च होइ जए ॥ १७ ॥

अर्थ— शुभ रूप अर अशुभ रूप जीवकै किंचितहू सुखदुःख नही करे है, रूपकूं देखि संकलपविशेषकरिकै जगतमें सुखदुःख होय है ॥ गाथा—

इह य परत्त य लोये। दोसे वहुगे य आवहइ चक्खू ॥
इदि अप्पणो गणित्ता। णिज्जेदव्वो हवदि चक्खू ॥ १८ ॥

अर्थ— नेत्र इंद्रियका विषय इस लोकमें तथा परलोकमें बहुत दोषनिकूं वहे है! या हेतूतैं नेत्र इंद्रियका विषयानिकूं तिरस्कार करिकै आपके नेत्र इंद्रियकूं जीतना योग्य है ॥

एवं सम्सं सद्दर-। सगंधफासे विचारइत्ताणं ॥
सेसाणि इंदियाणि वि। णिज्जेदव्वाणि बुद्धिमदा ॥ १९ ॥

अर्थ— ऐसैं इंद्रियनिके विषयनिकूं इस लोक परलोकमें दोषकरि विचारिकरिकै अर शब्द रस गंध स्पर्श हैं विषय जिनिके ऐसे शेषहू कर्ण रसना नासिका स्पर्शन इंद्रियनिकूंहू बुद्धिवाननिकूं जीतना योग्य है ॥ अब क्रोधके जीतनेका उपाय कहे हैं ॥ गाथा—

जदि दा सवदि असंते-। ण परो तं णत्थि मित्ति खमिदव्वं ॥
अणुकंपा वा कुज्जा। पावइ पावं वराउत्ति ॥ १४२० ॥

अर्थ—जो मेरेमांहि दोष नही अर दोष कहे है-गालि देवे है, तो ऐसा विचार करै जिसमें

दोष है तिसकूं कहे है, मेरेमांहि ऐसा दोष नही ऐसें विचारि क्षमा करै। अथवा इसका कह्या दोष मेरै लगे नही, यो हमारे दोष यथेच्छ कहो, हमारै कहा हानि है? अथवा ऐसा विचारि करुणा करै, जो "मेरा निमित्तसूं यो गरीब पापकूं प्राप्त होय, सो इसकूं मोहनीयकर्म तथा ज्ञानावरणकर्म दाबि राख्या है" सो कषायनिका प्रेर्या वृथा वकवाद करि आपकूं नरकनिगोदमें पटके है! इसप्रकार करुणाही करै ॥ गाथा–

जदि वा सविज्ज संते- । ण परो तह वि पुरिसेण खमिदव्वं ॥
सो अत्थि मज्झ दोसो । ण अलीयं तेण भणिदित्ति ॥ २१ ॥

अर्थ— जो दोष आपमैं विद्यमान होय सो दोष परपुरुष प्रगट करै तौ तहांभी क्षमा करै। यो हमारो दोष सांचा प्रकट करे है, मेरेमांहि दोष विद्यमान है, इसनैं झूठ नही कह्या है, अब मोकूं ये दोष बुरे लागे हैं, तो शीघ्रही मोकूं इस दोषका त्याग करना, जिस दोषतैं मेरा अपवाद होय सो मोकूं ग्रहण करना उचित नही ॥ गाथा–

सत्तो वि ण चेव हदो । हदो वि ण य मारिदोत्ति य खमेज्ज ॥
मारिज्जंतो वि खमि- । ज्ज चेव धम्मो ण णट्ठोत्ति ॥ २२ ॥

अर्थ— मोकौ गालीही देवे है, मारे तो नही है! अर जो मारे, तो मेरा प्राणनिका घात तो नही कीया! जगतमें मारि नाखनेवालेभी होय हैं। अर जो प्राण

हरै तो चिंतवन करै– इसनैं धर्म तो मेरा नही हस्या, प्राण तो विनाशीक है, औरनिमित्ततैं नाश होताही, इसका कछू अपराध नही। ऐसैं चिंतवन करता क्षमाही करै ॥

रोसेण महाधम्मो। णासिज्ज तणं व अग्गिणा सव्वो ॥
पावं च करिज्ज महं। वहुगं पि णरेण खमिदव्वं ॥ २३ ॥

अर्थ— जैसैं अग्निकरिकैं तृणनिका नाश होय है; तैसैं रोसकरिकैं महान् धर्मका नाश होय है। अर रोसकरिकैं जीवकै महापाप होय है। तातैं बहुतप्रकारकरिकैं क्षमा करना योग्य है

पुव्वकदमज्झपावं। पत्तं परदुक्खकरणजादं मे ॥
रिणमोक्खो मे जादो। अज्जत्ति य होइ खमिदव्वं ॥ २४ ॥

अर्थ–– कोऊका कुवचन श्रवण करिकै तथा मारण ताडन करिकै उत्तम पुरुष ऐसैं चिंतवन करे है– मेरा पूर्वजन्मकृत पाप है, जो मैं अन्यजीवनिकै दुःख कीया! ताकरिकैं पापकर्म उपार्जन कीया! सो यह मेरै उदय आया है, सो आपका फल देय नाशकूं प्राप्त होयगा। जैसैं कोऊका ऋण देना होय अर दे देवै तदि क्लेशरहित होजाय, तैसैं जो पापकर्मका उदयकूं क्रोधादिकरहित समभावनिकरि सहूंगा तो आगानैं तो बंध नही होयगा, अर पूर्वकृत पाप निर्जरि जायगा। तातैं अब क्षमाही करना योग्य है ॥

पुव्वं सयमुवभुत्तं। काले णाएण तेत्तियं दव्वं ॥

को धारणिउं धणिय- । स्स दिंतउं दुक्खिउं होज्ज ॥ २५ ॥

अर्थ— पूर्वं परका धन आप ऋण करि भोग्या, वहुरि अवसर पाय धनवाला मांगे तदि न्यायमार्गकरिकै देखिये तो जितना धन पैलाका देना है तितना देनेमें कौन दुःखित होय? न्यायमार्गी तो वडाही आदरतें पैलेका धन देय ऋणरहित होय सुखित होय है; तैसें पूर्वं आप पापवंधका कारण अन्यजीवनकूं कुवचन कह्या, झूंठा कलंक लगाया, ताका फल यह उदय आया है, सो न्यायही है, अव इसके भोगनेमें विषाद नही करना, यहही आत्महित है ॥ गाथा—

इह य परत्त य लोए । दोसे वहुए य आवहइ कोहो ॥
इदि अप्पणो गणित्ता । परिहरिदव्वो हवइ कोहो ॥ २६ ॥

अर्थ— यो क्रोध इस लोकमें तथा परलोकमें वहुत दोषनिकूं वहे है, ऐसें आपकी अवज्ञा करिकै क्रोधकषायका परित्याग होय है। ऐसें क्रोधकृत परिणामके जीतनेका उपाय वर्णन करिकै, अव मानकृत परिणामकूं जीतनेकी भावना कहे हैं ॥ गाथा—

को इत्थ मज्झ माणो । वहुसो णीचत्तणं पि पत्तस्स ॥
उच्चत्ते य अणिच्चे । उवट्ठिदे चावि णीचत्ते ॥ २७ ॥

अर्थ— वहुतवार नीचकुल नीचजाति पाया, तथा अनेकवार कुरूप हुवा,

अज्ञानी हुवा, तथा रंक हुवा, दीन हुवा, बलरहित हुवा, अनंतवार नीचपनेकूं प्राप्त भया, जो मै, ताकै अब इस मनुष्यजन्ममें कहा मान है? अनंतकालपर्यंत अनंतजन्मनिमें बहुत अपमान भया, अब मान करना बडी लज्जा है, यो विनाशीक उच्चपणो होताहू नीचपणा नजिकहीं जानहू। तातैं अभिमान छांडि मार्दव धारना योग्य है॥

अधिगेसु वहुसु संते- । सु ममादो एत्थ को महं माणो ॥
किं विब्भमर्उ वि वहुसो । पत्ते पुवम्मि उच्चत्ते ॥ २८ ॥

अर्थ— मुझतैं धनकरि, ज्ञानकरि, कुलकरि, रूपकरि, ऐश्वर्यकरि अधिक बहुत मनुष्यनिकूं होते संते मेरे इनमें कहा मान है? अर पूर्वे बहुतवार पापकरिकै छुट्या अर बहुरि शुभकर्मका उदयकरि प्राप्त हुवा जो उच्चपणा तामैं अब हमारै कहा आश्चर्य है? भावार्थ- कुल, बल, ऐश्वर्य, धन, ज्ञान, रूप, मुझतैं अधिक अधिक बहुत लोकनिमैं पाइये है अर पूर्वे उच्चपणाभी अनेकवार पाय पाय छूट्या है, अब किंचिन्मात्र पाया तामैं गर्व करना अतिनिंद्य है॥ गाथा-

जो अवमाणणकरणं । दोसं परिहरइ णिच्चमाउत्तो ॥
सो णाम होदि माणी । ण दु गुणचत्तेण माणेण ॥ २९ ॥

अर्थ— जगतमैं अपमान करनेका कारण दोषनिका त्याग नित्यहीं उपयुक्त

हुवा करै सो मानी है, अन्यगुणरहित मानकरिकै काहेका मानी? भावार्थ- कोऊ लौकिकजन ऐसैं कहे, जो, महंतपुरुषनिकै तो मानही धन है, मान गया जाका सब बडापना गया। इहां मानका अभावकूं श्रेष्ठ कैसैं कहो हो? ताकूं उत्तर ऐसा है- मान तो जाका गया, जो निंद्यकर्म करि अपना अपमान करावै, सो तो मान त्यागनेयोग्य है। अर ऐसा मान तो राखना, जो, मै उत्तमकुलमें उपज्या हूं, मोकूं नीचकुलवाले-कीनांई अयोग्यवचन गाली भंडवचन वोलना योग्य नही, अभक्ष्य भक्षण करना योग्य नही, व्यसन सेवन करना योग्य नही, मोकूं ऐश्वर्य पाय कहींका अपमान करना योग्य नही, क्रोध करना योग्य नही, मायाचार करना योग्य नही, लोभ करना योग्य नही, बलकूं पाय निर्बलका घात करना योग्य नही, दीननिकी रक्षाही करनी, ज्ञान पाय आत्माकूं रागादिक भावकर्मनितैं छुडाय निजस्वरूपमें स्थिर करना उचित है, ऐसा मान तौ श्रेष्ठ है। अर जो कर्मका उदयतैं धन ऐश्वर्य कुल जात्यादिक पाय इनका गर्व करना जो मै उच्च हूं, कुलवान् हूं, ज्ञानवान् हूं और समस्त नीचे हैं, अज्ञानी हैं- ऐसा अभिमान दुर्गतिका कारण त्यागनेयोग्य है॥ गाथा-

इह य परत्त य लोए। दोसे वहुगे य आवहइ माणो ॥
इदि अप्पणो गणित्ता। माणस्स विणिग्गहं कज्जा ॥ १४३० ॥

अर्थ— यो अभिमान इसलोकमें तथा परलोकमें आपके बहुत दोष हैं तिनकूं वहे है, ऐसैं मानकी अवज्ञा करिकै अर मानका निग्रह करना योग्य है॥ ऐसैं मानकृत दोष कहे ॥ अब मायाचारकृत दोषनिका स्वरूप कहे हैं ॥ गाथा—

आदिगूहिदा वि दोसा । जणेण काळंतरेण णज्जंति ॥
मायाए पउत्ताए । को इत्थ गुणो हवदि लध्दो ॥ ३१ ॥

अर्थ— अति छिपाये हुयेहू दोष कालांतरकरिकै लोकनिकरि जाननेमें आवे हैं, छिपायकरि कहा किया? तातैं इहां रची जो माया ताकरि कहा गुण प्राप्त होय है? कुछ गुण प्रकट होय नही, केवल तीव्र अशुभकर्मका बंधही होय है ॥ गाथा—

परिभागम्मि असंते । णियडिसहस्सेहि गूहमाणस्स ॥
चंदग्गहो व दोसो । खणेण सो पायडो होइ ॥ ३२ ॥

अर्थ— भाग्य नही होता संता हजार कपट करिकैं छिपावतैंहू भाग्यरहित पुरुषका दोष क्षणमात्रमें चंद्रमाका ग्रहणकीनांई प्रकट होय है। जैसैं राहू चंद्रमाकूं ग्रस्या, तदि कोऊकूं राहू जावता आवता दीख्या नही, अत्यंत छिपिकरिकै ग्रस्या है, तथापि तिसही क्षणमें लोकनिमें प्रकट होगया, जो " राहू व्यापीविना चंद्रमाकूं कौन ग्रसै?" तैसें हजार कपटनिकरि छिपाया दोष जगतमें प्रकट होयही है, कपट छिप्या नहीही रहे है॥

जणपायडो वि दोसो । दोसत्ति ण घिप्पदे सभागस्स ॥
जह समलित्तिणि घिप्पदि । समलं पि जए तलायजलं ॥ ३३ ॥

अर्थ— भाग्यवान् पुरुषका लोकनिमैं प्रकटहू दोष जगतमैं दोषपणाकरि नही ग्रहण करे है ! दोषहू जगतकूं गुणही दीखै ! जैसें मलकर्दमकरि सहितहू तलावका जल तिसकूं यो तलाव 'कर्दम तथा मलसहित' है ऐसा ग्रहण नही करिये है, जितनैं जल है तितनैं जलका भऱ्या तलाव जगत् कहे हैं, मल भऱ्या है तोहू जगत् मलका भऱ्या नही कहे है ॥

डंभसएहिंमि वहुएहिंमि । सुपउत्तेहिं अपाडिभागस्स ॥
हत्थं ण एदि अत्थो । अण्णादो सपरिभागादो ॥ ३४ ॥

अर्थ— बहुत यत्नकरिकै कीया जो बहुत मायाचार ताकरिकैहू भाग्यरहितके हाथि अन्य पुण्यवानका धन नही प्राप्त होय है । मायाचारकरिकै केवल दुर्गतिका कारण पापबंधही होय है । अर पुण्यहीनके हाथि पुण्यवानका धन नही आवे है ॥ गाथा—

इह य परत्त य लोए । दोसे वहुए य आवहइ माया ॥
इदि अप्पणो गणित्ता । परिहरिदवा हवइ माया ॥ ३५ ॥

अर्थ— माया नामा कषाय इस लोकमें तथा परलोकमें बहुतदोषनिकूं वहे है- धारण करे है, यातैं ज्ञानकरि मायाका तिरस्कार करिकै मायाका परिहार करना योग्य

है ॥ ऐसैं मायाकषायकूं पांच गाथानिकरि वर्णन कीया ॥ अब लोभकषायकूं तीन गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा–

लोभे कए वि अत्थो । ण होइ पुरिसस्स अपरिभागस्स ॥
अकए वि हवदि लोभे । अत्थो परिभागवंतस्स ॥ ३६ ॥

अर्थ— लोभ करता संताहू भाग्यहीन पुरुषकै धन नही होय है अर भाग्यवान् पुरुषकै लोभ नही करता संताहू धनका संचय होय है ॥ गाथा–

सव्वे वि जए अत्था । परिगहिदा ते अणंतखुत्तो मे ॥
अत्थेसु इत्थ को म- । ज्झ विंभर्उ गहिदविजढेसु ॥ ३७ ॥

अर्थ—– जगतके विषैं समस्तजातीके अर्थ जे परिग्रह हैं, ते मैं अनंतवार ग्रहण कीये, अर अनंतवार ग्रहण होय करिकै छूटे, अब इनकी प्राप्ति होनेमें कहा आश्चर्य है?॥

इह य परत्त य लोए । दोसे बहुए य आवहइ लोभो ॥
इदि अप्पणो गणित्ता । णिज्जेदव्वो हवदि लोभो ॥ ३८ ॥

अर्थ—– लोभ है सो इस लोकमें तथा परलोकमें बहुतदोषनिकूं धारण करे है, यातैं ज्ञानका प्रभावकरिकैं याका नाश करिकै लोभकषाय जीतना योग्य होय है॥ ऐसैं इंद्रिय-कषायका स्वरूप कह्या॥ अब निद्राविजय करनेका उपाय दश गाथानिमें वर्णन करे हैं॥

णिद्दं जिणाहि णिच्चं । णिद्दा हु णरं अचेदणं कुणइ ॥
वट्टिज्ज हु पासुत्तो । खवउं सव्वेसु दोसेसु ॥ ३९ ॥

अर्थ— भो क्षपक! निद्रा जो है ताही जीतहू! या निद्रा मनुष्यकै अचेतन करे है, योग्यायोग्यका विवेकरहित करे है, निद्राकूं प्राप्त भया जो क्षपक कहिये मुनि सो समस्त हिंसादिक दोषनिमैं वर्त्ते है ॥ कोऊ या कहै " निद्रा नामा कर्मका उदयतैं निद्रा आवे है, ताकूं कैसैं जीतै ? " ताका समाधान करे हैं ॥ गाथा—

जदि अधिबाधिज्ज तुमं । णिद्दा तो तं करेदि सज्झायं ॥
सुहुमत्थे वा चिंते- हि सुणसु संवेगणिव्वेगं ॥ १४४० ॥

अर्थ— जो निद्रा तुमकूं बाधा करै तो तुम स्वाध्याय करो, अर सूक्ष्मपदार्थनिनैं चिंतवन करो, तथा धर्मानुरागिणी—संसारदेहभोगनितैं विरक्त करनेवाली कथा श्रवण करो ॥ अब अन्यप्रकार निद्रा जीतनेका कारण कहे हैं ॥ गाथा—

पीदी भए य सोगे । य तहा णिद्दा ण होइ मणुयाणं ॥
एदाणि तुमं तिण्णि वि । जागरणत्थं णिसेवेहि ॥ ४१ ॥
भयमागच्छसु संसा- । रादो पीदी य उत्तमट्ठम्मि ॥
सोगं च पुरा दुच्चरि- । दादो णिद्दाविजयहेदुं ॥ ४२ ॥

जागरणत्थं इच्छे- । वमादिकं कुण कम्मं सदा उत्तो ॥
उज्झाणेण विणा वंद्धो । कालो हु तुमे ण कायव्वो ॥ ४३ ॥

अर्थ— मनुष्यनिकै प्रीति अर भय अर शोक होते संते निद्रा नहीं होय है; तातैं जागरणके निमित्त प्रीति, अर भय, अर शोक इनि तीननकूं अंगीकार करो ॥ इहां निद्राके विजयके अर्थि पंचपरिवर्तनरूप संसारके अनंतजन्ममरणनितैं तो भय करो। अर उत्तमार्थ जो रत्नत्रय ताकेविषैं प्रीति करो। अर पूर्वैं खोटे आचरण कीये तिनका शोक करो। कैसैं करना सो कहे हैं– नरकादिक गतीमैं वारंवार परिभ्रमण करता जो मैं, सो शरीरसंबंधी तथा आगंतुक तथा मानासिक तथा क्षेत्रकालादिकतैं उपज्या विचित्र दुःख भोगे! तेही दुःख बहुरि आगानैं भोगनेमें आवसी, ऐसैं संसारका भय करहू ॥ बहुरि समस्त आपदाके समूहका नाश करनेकूं; तथा स्वर्गमुक्तीके सुखनिकूं प्राप्त होनेकूं, तथा असार शरीरका भार उतारनेकूं, तथा अनंतज्ञान-अनंतदर्शन-अनंतवीर्य-अनंतसुखरूप साम्राज्यलक्ष्मी ग्रहण करनेकूं तथा कर्मरूप विषके वृक्षकूं उपाडनेकूं समर्थ अर अनंत भवनिमैं पूर्वैं नहीं पाई ऐसी रत्नत्रयकी आराधना करनेकूं, मै उद्यमी भया हूं, ऐसैं रत्नत्रयमें प्रीति करहू ॥ बहुरि हिंसा असत्य चौर्य अब्रह्म परिग्रह इनि पंचपापनिविषैं, तथा मिथ्यात्वकषायनिविषैं तथा अशुभ मन वचन कायके योगनिविषैं, तथा कामके

कारणनिविषैं मै मंदभागी प्रवर्तन कीया है; तथा हित अहितका विचारमें मूढबुद्धि करि, तथा सत्यार्थमार्गका उपदेश देनेवालाका नही लाभ होनेतैं, तथा प्रबल ज्ञानावरणका उदयतैं जिनेंद्रका प्ररूप्या पदार्थनिका नही जाननेतैं, तथा कदाचित् पदार्थ जाननेमें आये तोहू श्रद्धानके अभावतैं, तथा चारित्रमोहके उदयतैं सन्मार्ग जो रत्नत्रय तिसमैं नही प्रवर्तन करनेतैं मै दुःखरूप समुद्रमें मग्न हुवा हूं-डूब्या हूं! ऐसैं उद्वेगरूप चित्तकरिकै निद्राका विजय होय है ॥ ऐसैं निद्राकूं जीति जागरणके अर्थि इत्यादिक संसारतैं भय, अर रत्नत्रयमें प्रीति, अर खोटे आचरणतैं भय, ऐसैं सदाकाल चिंतवन करो अर शुभध्यानविना मनुष्य जन्मका काल निष्फल मति व्यतीत करो ॥

संसाराडविणित्थर- । णमिच्छदो अणपणीय दोसा हि ॥
सोदुं ण खमो अहिसण- । पणीय सोदुं व सघरम्मि ॥ ४४ ॥

अर्थ--- जैसैं जाका गृहमें सर्प होय सो पुरुष सर्पकूं गृहमैंतैं निकासेविना शयन करनेकूं नही समर्थ होय है; तैसैं संसाररूप वनीके पारकूं प्राप्त होनेका इच्छक पुरुष दोषनिकूं नही दूरि करिकै शयन करनेकूं नही समर्थ होय है ॥ गाथा-

को णाम णिरुव्वेगो । लोए मरणादिअग्गिपज्जलिदे ॥
पज्जलिदम्मि व णाणी । घरम्मि सोदुं अभिलसिज्ज ॥ ४५ ॥

अर्थ— जैसैं दग्ध होते गृहमें कौन ज्ञानी शयन करनेका अभिलाष करै? तैसैं जन्ममरणादिक अग्निकरिकै प्रज्वलित लोकविषैं कौन ज्ञानी उद्वेगरहित हुवा शयन करै? ज्ञानीकै संसारका बडा भय है, अचेत हुवा शयन नही करे है, आत्माकूं संसारपरिभ्रमणतैं रक्षा करनेकूं सदाकाल सावधान रहे है ॥ गथा–

को णाम णिरुव्वेगो । सुविज्ज दोसेसु अणुवसंतेसु ॥
गहिदाउहाण वहुया- । ण मज्झयारे व सत्तूण ॥ ४६ ॥

अर्थ— जैसैं, ग्रहण कीया है आयुध जिननैं ऐसे बहुत शत्रूनिकें मध्य निर्भय भया कोन शयन करै? तैसैं रागादिक आत्माका घात करनेवाले दोष तिनको नही नष्ट होता कोन ज्ञानी निर्भय हुवा शयन करै? जागृतही रहे है ॥ भावार्थ— परमार्थीनिकै रागद्वेष कामक्रोधादिकनिका बडा भय है। सो इन दोषनिकूं मारनेकूं सदा उद्यमी हुवा ध्यानस्वाध्यायमें लीन होय निद्राका विजयही करे है ॥ गाथा–

णिद्दातमस्ससरिसो । अण्णो णत्थि हु तमो मणुस्साणं ॥
इदि णच्चा जिणसु तुमं । णिद्दा झाणस्स विग्घयरी ॥ ४७ ॥

अर्थ-- मनुष्यनिकै निद्रारूप अंधकारके समान अन्य अंधकार नही है, ऐसैं जाणि, हे भव्य! तुम ध्यानमें विघ्न करनेवाली निद्रा ताहि विजय करहू ॥ गाथा–

कुणह व णिद्दामोक्खं । णिद्दामोक्खस्स भणिदवेलाए ॥
जह वा होइ समाधी । खवणकिलंतस्स तह कुणह ॥ ४८ ॥

अर्थ— हे भव्य! निद्रा त्यागनेका अवसर जो तीनप्रहर रात्रि व्यतीत भये पीछे निद्राका त्याग करहू । क्षपण कहिये उपवासकरिकैं खेदखिन्न जो तुम, तिनके जैसें रत्नत्रयधर्ममें तथा शुभध्यानमें सावधानी होय तैसैं यत्न करहू ॥ ऐसें दश गाथानिमें निद्राका विजय वर्णन कीया ॥ अब सत्ताईस गाथानिमैं तपमहिमा तथा तपमें प्रेरणा वर्णन करे हैं ॥ गाथा—

एस उवावो कम्मा- । सवद्दारणिरोहणे हवे सव्वो ॥
पोराणयस्स कम्म- । स्स पुणो तवसा खउं होइ ॥ ४९ ॥

अर्थ— यो पूर्वें वर्णन कीयो जो समस्त उपाय सो तो कर्मके आस्रव रोकनेमें है। बहुरि पूर्वें बांध्या जो कर्म ताका तपकरि क्षय होय है ॥ भावार्थ— नवीन कर्मबंधके रोकनेका तो यो समस्त उपाय वर्णन कीया। अर पूर्वें बंधन कीया जे कर्म तिनका नाश तपकरिकैं होय है। सो कर्म नाश करनेका उपाय एक तप है ॥ गाथा—

अब्भंतरबाहिरगे । तवम्मि सत्ती सगं अगूहंतो ॥
उज्जमसु सुहे देहे । अप्पडिवध्दो अणलसो सं ॥ १४५० ॥

अर्थ— भो भव्य! ऐसैं जानिकरिकैं अब तुम शरीरके सुखमें तो आसक्तताका त्याग करो! अर आलस्यरहित हुवा बारहप्रकारके बाह्य अभ्यंतर तपमें अपनी शक्तीकूं नही छिपावता उद्यम करो ॥ गाथा–

सुहसीलदाए अलस- । त्तणेण देहपडिबद्धदाए य ॥
जो सत्ती संतीए । ण करिज्ज तवं ससत्तिसमं ॥ ५१ ॥
तस्स ण भावो सुद्धो । तेण पउत्ता तदो हवइ माया ॥
ण य होइ धम्मसद्धा । तिव्वा सुहदेहपिक्खाए ॥ ५२ ॥
अप्पा य वंचिउ ते- । ण होइ विरियं च गूहियं होइ ॥
सुहसीळदाए जीवो । वंधदि हु असादवेदणियं ॥ ५३ ॥

अर्थ—जो पुरुष आपकै शक्ति होता संताहू सुखमें आसक्तपणाकरि तथा आलसीपणाकरि तथा देहमें आसक्तताकरि अपनी शक्तिप्रमाण तप नही करे है; तिस पुरुषकै भावशुध्दि नही है—शक्तिसमानहू तप नही करनेतैं भावनिकी शुद्धता कहा रही?॥ बहुरि भावनिकी शुद्धताविना मायाचारही प्रवर्तन कीया! देहका सुखमें आसक्तबुद्धिकरि ताकै धर्ममें तीव्र श्रद्धानभी नही होय है। जातैं विनाशीकदेहमें जाकै प्रीति प्रवर्ते है, सो देहहीको आपा जाने है, ताकै धर्म कहा? केवल मायाचार है॥ बहुरि जो देहके

सुखमें आसक्त है, सो पुरुष अपने आत्माकूं ठिग्या! तथा अपना वीर्य छिपाया, तथा देहके सुखमें आसक्तता करि असतावेदनीयकर्मका बंध कीया ॥ ऐसैं तो जो देहका सुखमें आसक्त होय तप नही करै, ताके दोष दिखाये ॥ अब जो आलस्यकरि तप नही करे है, ताके दोष दिखावे हैं ॥ गाथा—

विरियंतरायमलस- । त्तणेण वंधदि चरित्तमोहं च ॥
देहपडिवद्धदाए । साधू सपरिग्गहो होइ ॥ ५४ ॥

अर्थ— जो आलसी होयकरिकै शक्तिप्रमाणहू तप नही करे है, सो वीर्यांतराय नामा कर्मबंधकूं करे है. तथा चारित्रमोहकर्मकूं बांधे है, तथा शरीरमें आसक्तताकरि साधु जो मुनि सो परिग्रहसहित होय है। जातैं समस्तपरिग्रहकूं शरीरका सुखके अर्थि ग्रहण करे है; तातैं जो शरीरके सुखमें आसक्त है, सो समस्तपरिग्रहमें आसक्त है ॥ बहुरि जो शक्तिसमानहु तप नही करै अर अपनी शक्तीकूं छिपावे है, सो मायाचारी है, तातैं तिस साधूकै मायाजनितहू दोष आवे है ऐसैं कहे हैं ॥ गाथा—

मायादोसा माया- । ए हुंति सव्वे वि पुव्वणिद्दिट्ठा ॥
धम्मम्मि णिप्पिवासस- । स्स होइ एसो दुल्लहो धम्मो ॥५५॥ १ निरादरस्य

अर्थ— जो शक्तिप्रमाणहू तप नही करै सो मायाचारी भया; तिस मायाचारीकै

जे मायाचारमें पूर्वे दोष कहे, ते समस्त होय हैं ॥ बहुरि मायाचारकरि धर्ममें निरादर करनेवालेकै संसारमें धर्म पावना अत्यंत दुर्लभ होय है ॥ भावार्थ– जो धर्मसेवनमें मायाचार करे है, सो धर्मका तिरस्कार करे है–अनादर करे है, धर्मसूं पराङ्मुख भया है, ताकूं फेरि अनंतभवनिमें धर्मका समागम मिलना कठिण होय है ॥ गाथा–

पुब्बुत्ततवगुणाणं । चुक्को जं तेण वंचिउ होइ ॥
विरियनिगूही वंधदि । मायं विरियंतरायं च ॥ ५६ ॥

अर्थ— जो शक्ति होतेहू तप नही करे है, सो पूर्वै कहे जे संवरनिर्जरादिक गुण, तिनकरिकै छूटे है, तिसकारणकरि आपकूं आप ठिग्या है बहुरि आपका वीर्य जो शक्ति ताहि छिपावनेवाला मायाचारकर्मकूं तथा वीर्यांतरायकर्मका तीव्र वंध करे है॥

तवमकरंतस्सेदे । दोसा अण्णे य होंति संतस्स ॥
होंति य गुणा अणेया । सत्तीए तवं कुणंतस्स ॥ ५७ ॥

अर्थ— तपकूं नही करते साधूके अन्यहू अनेक दोष होय हैं। अर शक्तिकरिकैं तपकूं करते साधूके अनेक गुण होय हैं॥ अब तपश्चरणके गुणनिकूं दिखावे हैं॥

इह य परत्त य लोए । अदिसयपूया उ लहइ सुतवेण ॥
आंयंपियंति वि तहा । देवा वि सइंदया तवसा ॥ ५८ ॥

[1] आवर्ज्यन्ते

अर्थ— सम्यक्तकरिकैं इस लोकमें तथा परलोकमें अतिशयरूप पूजाकूं प्राप्त होय है। तथा सांच तपकरिकैं इंद्रनिकरि सहित समस्त देव सेवा करे हैं॥ गाथा—

अप्पो वि तवो वहुगं। कल्लाणं फलइ सुप्पउगकदो॥
जह अप्पं वडवीयं। फलइ वडमणेयपारोहं॥ ५९॥

अर्थ— उज्वल उपयोगतैं कीया अल्पहू तप वहुतकल्याणनिकूं फले है। जैसैं अल्पहू वडका वीज वाह्या हुवा अनेक वड अनेक डाहलेनिकूं फले है॥ गाथा—

सुठुकदाण वि सस्सा-। दीणं विग्घा हवंति अदिवहुगा॥
सुठुकदस्स तवस्स दु-। ण णत्थि कोइ वि जए विग्घो॥ १४६०॥

अर्थ— भली विधिकरिकै उत्पन्न कीये जे धान्यादिक, तिनमैं तो कदाचित् अतिवहुत विघ्न होय हैं; परंतु सम्यक्परिणामकरिकै कीया जो तप, ताके मध्य कोऊभी विघ्न जगतमें नहीही है॥ गाथा—

जणणमरणादिरोगा-। तुरस्स सुसवो वरोसधं होइ॥
रोगादुरस्स अदिविरि-। यमोसधं सुप्पउत्तं वा॥ ६१॥

अर्थ— जैसैं रोगकरि पीडित पुरुषकै अतिवीर्यवान् औषध भले यत्नतैं युक्त करी हुई रोगकूं हरे है; तैसैं जन्ममरणरोगकरि पीडित प्राणीके सम्यक्तपही जन्ममरणरूप

रोगके मेटनेकूं श्रेष्ठ औषध है ॥ गाथा—

संसारमहाडाहे- । ण डज्झमाणस्स होइ सीयघरं ॥
सुतत्वो दाहेण जहा । सीयघरं डज्झमाणस्स ॥ ६२ ॥

अर्थ— जैसैं ग्रीष्मऋतुका दाहकरि दग्ध होते पुरुषकै शीतग्रह जो धाराग्रह, सो दाहकै दूरि करनेवाला होय है; तैसैं संसारकी महादाहकरिकै दग्ध होते जीवकै सम्यक्तप है सोही शीतलगृह है ॥ गाथा—

णीयंल्लवो[1] व सुतवे- । ण होइ लोगस्स सुप्पिउ पुरिसो ॥
माया व होदि विस्सस- । णिज्जो सुतवेण लोगस्स ॥ ६३ ॥

[1] बन्धुरिव

अर्थ— सम्यक्तपके धारण करनेतैं यो पुरुष लोककै अपना निजमित्र बांधव पुत्र-कीनांई अत्यंत प्रिय होय है। अर सम्यक्तपकरिकै यो पुरुष समस्तलोककै अपनी माताकीनाई विश्वास करनेयोग्य होय है। जातैं तपस्वी समस्तलोकनिकै प्रिय होय है अर समस्तलोकनिकै विश्वास करनेयोग्य होय है ॥ गाथा—

कल्लाणिद्धिसुहाइं । जावइयाइं हवेइ सुरणराणं ॥
जं परमणिव्वुदिसुहं । च ताणि सुतवेण लभ्भंति ॥ ६४ ॥

अर्थ— पंचकल्याण अर अद्भुतऋद्धि तथा विभूति जितनी देवनिकै तथा मनुष्यनिकै

होय है तथा जो सर्वोत्कृष्ट निर्वाणका सुख ते समस्तही सुख सम्यक्तपकरि प्राप्त होय हैं ॥

कामदुहा वरधेणू । णरस्स चिंतामणिव्व होइ तवो ॥
तिळउं व णरस्स तवो । माणस्स विहूसणं सुतवो ॥ ६५ ॥

अर्थ— मनुष्यकै तप है सो कामना परिपूर्ण करनेकूं कामधेनू है, तथा वांछित देनेकूं चिंतामणिसमान है, तथा यह तप मनुष्यकै तिलककीनांई सकल आभूषणनिमें प्रधान है। तथा सम्यक्तप है सो लोकमें मान्यजननिका मानका भूषण है ॥ गाथा—

होइ सुतवो य दीवो । अण्णाणतमंधयारचारिस्स ॥
सव्वावत्थासु तवो । वट्टदि य पिदा व पुरिसस्स ॥ ६६ ॥

अर्थ— अज्ञानरूप अंधकारमें गमन करता जीवकै ज्ञानरूप उद्योत करनेकूं यो सम्यक्तप है सो दीपक है। तथा समस्त अवस्थामें पुरुषकै एक यो सम्यक्तप पिताकीनांई रक्षक है। जातैं अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, तथा श्रुतकेवल, तथा केवलज्ञान तपतैंही होय। तथा इस जीवकूं संसारपतनतैं रक्षा करनेकूंभी तपही समर्थ है ॥

विसयमहापंकाउल- । गड्डाए संकमो तवो होइ ॥
होइ य णावा तरिदुं । तवो कसायादिचवलणदी ॥ ६७ ॥

अर्थ— संसारी जीवकै फसावनेकूं पंच इंद्रियनिके विषयरूप महाकर्दमका भरया

खाडा तिसतैं निकासनेवाला एक तपही है। बहुरि कषायरूप अतिचपलनदी ताहि तिरवेकूं एक तपही नाव है॥ भावार्थ- विषयरूप कर्दममें उलझ्या हुवा जीवकूं तपही निकासनेवाला है। तथा कषायरूप प्रबलनदीके पार करनेकूंभी एक तपही समर्थ है॥

फलिहो व दुग्गहीणं। अणेयदुक्खावहाण होदि तवो॥
आमिलतण्हाछेदण-। समत्थमुदगं व होइ तवो॥ ६८॥

अर्थ— एक यह तप दुर्गतिमें गमनके रोकनेकूं अर्गल है-जीवकूं दुर्गति नहीं जाने दे है। कैसीक है दुर्गति? अनेक दुःखनिकूं धारण करनेवाली है। बहुरि विषयनिमें महातृष्णा ताके छेदनेकूं समर्थ जो जल, ताकीनांई यो सम्यक्तप है॥

मणदेहदुक्खवित्ता-। सिदाण सरणं गदी य होइ तवो॥
होदि य तवो सुतित्थं। सव्वासुहदोसमलहरणं॥ ६९॥

अर्थ— मनके दुःख तथा देहके दुःख तिनकरि त्रासकूं प्राप्त होते जीवनकूं सम्यक्तपही शरण है। तथा दुःखनितैं निकासनेकूं तपही गति है। तथा समस्त पापदोषरूप मलके हरनेकूं—दूरि करनेकूं तपही सत्य तीर्थ है। इस जीवके पाप हरनेकूं तपतीर्थविना अन्य तीर्थ समर्थ नहीं॥ गाथा—

संसारविसमदुग्गे। तवो पणट्ठस्स देसउ होइ॥

होइ तवो पत्थेऽयणं[1] । भवकंतारम्मि दिग्घम्मि ॥ १४७० ॥

अर्थ— संसाररूप विषम दुर्गम वनी, तिसमें मार्ग भूलि बहुतकाल परिभ्रमण करता जीवकूं मोक्षका मार्गका उपदेशकरि संसारवनीतैं निकासनेवाला एक तपही है । बहुरि दीर्घ जो संसाररूप वन तामैं पथ्य भोजनहू तपही है ॥ गाथा—

रक्खा भएसु सुतवो । अब्भुदयाणं च आगरो सुतवो ॥
णिस्सेणी होइ तवो । अक्खयसोक्खस्स मोक्खस्स ॥ ७१ ॥

अर्थ— भयनिमैं रक्षा करनेवाला एक तपही है । समस्त देवमनुष्यसंबंधी अभ्युदय तिनकी खानि एक तपही है । तथा अविनाशीकसुखका ठिकाना जो मोक्ष ताकी निसरणीभी एक सम्यक्तपही है ॥ गाथा—

तं णत्थि जं ण लब्भइ । तवसा सम्मंकएण पुरिसस्स ॥
अग्गीव तणं जलिउं । कम्मतणं डहदि य तवग्गी ॥ ७२ ॥

अर्थ— ऐसा जगतमें उत्तमवस्तु नही है 'जो सम्यक्तपकरि पुरुषकूं प्राप्त नही होय है' । जैसें अग्नि तृणानिकूं दग्ध करे है; तैसें तपरूप अग्नि कर्मरूप तृणानिकूं दग्ध करे है ॥

सम्मं कदस्स अपरि- । स्सवस्स ण फलं तवस्स वण्णेदुं ॥
कोई अत्थि समत्थो । जस्स वि जिब्भासयसहस्सं ॥ ७३ ॥

[1] पथ्यदनं

अर्थ— जिसकै लक्ष जिन्हा होय सोहू सांचा कीया अर आस्रवरहित ऐसे तपका फल वर्णन करनेकूं नही समर्थ होय है ॥ गाथा–

एवं णादूण तवं। महागुणं संजमम्मि ठिच्चाणं ॥
तवसा भावेदव्वो। अप्पा णिच्चं पि जुत्तेण ॥ ७४ ॥

अर्थ— ऐसें तपका महान् गुण जाणिकरिकै अर संयममें तिष्ठिकरिकें अर नित्यही उपयुक्त जो तप ताकरि आत्मा भावनेयोग्य है ॥ गाथा–

जह गहिदवेयणो वि य। अदया कज्जे णिउज्जदे भिच्चो ॥
तह चेव दमेयव्वो। देहो मुणिणा तवगुणेसु ॥ ७५ ॥

अर्थ— जैसें अपने कार्यका अर्थी जो स्वामी वेदनासहितहू सेवककी नही दया करिकै अपना कार्य आजाय तिसमें युक्त करिये है; तैसेंही मुनिहू देहकूं तपरूप गुणनिविषें दमे है ॥ ऐसें तप नामा उत्तरगुणका सत्ताईस गाथानिमें वर्णन कीया ॥

इच्चेव समणधम्मो। कहिदो मे दसविधो सगुणदोसो ॥
एत्थ तुममप्पमत्तो। होहि समण्णागदमदीउ[1] ॥ ७६ ॥

[1] समागतस्मृतिकाः ॥

अर्थ— अब संस्तरनैं प्राप्त भया मुनिकूं ऐसें निर्यापक गुरु उपदेश देयकरिकै बहुरि कहे है– हे क्षपक! ऐसें गुणदोषकरिकै सहित दशप्रकार मुनिधर्म है सो मैं

तुमकूं कह्या। अब इस श्रमणधर्ममें सावधान हुवा प्रमादरहित हुवा संता धर्ममें बुद्धीकूं लीन करहू॥ गाथा—

तो खवगवयणकमलं। गणिरविणो तेहिं वयणरस्सीहिं॥
चित्तपसायविमळं। पफुल्लियं पीदिमयरंदं॥ ७७॥

अर्थ—— ततः कहिये तिस निर्यापकगुरुनिकी ऐसी शिक्षा हुई पाछे निर्यापकाचार्यरूप सूर्यकरि पूर्वे कहे जे शिक्षाके वचन तेही किरण तिनकरि क्षपकका मुखरूप कमल प्रफुल्लित होय है। कैसाक है मुखकमल? आचार्यनिके शिक्षाके वचन तिनविषें जो प्रीति सोही तामैं सुगंध है। बहुरि कैसाक है मुखकमल? चित्तकूं प्रसन्न करिकै अर निर्मल भया है॥ गाथा—

वयणकमलेहि गणिआभि-। मुहेहि सा विंभियच्छिपत्तेहिं॥
सोभइ तह सह सूरो-। दयम्मि फुल्लं व णलिणिवणं॥ ७८॥

अर्थ— इस जगतमें सूर्यका उदय होतैं जैसैं प्रफुल्लित कमलिनीका वन सोहे है; तैसैं उपदेश सुनिकरि आश्चर्यरूप है नेत्रपत्र जामैं ऐसा आचार्यनिके सन्मुख जो मुखरूप कमल तिनकरि क्षपकहू सोहे है॥ गाथा—

गणिउवएसामयपा-। णयेण पल्हाविदम्मि चित्तम्मि॥

जाउ य णिव्वुदो सो । पाऊण य पाणवं तिसिउ ॥ ७९ ॥

अर्थ—— जैसें कोऊ बहुतकालका तृषाकरि पीडित पुरुष अमृतमय जल पानकरि तृप्त होय है; तैसें क्षपकमुनिहू आचार्यनिका उपदेशरूप अमृतके पीवनेकरि आनंदितचित्त हुवा सुखकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा–

तो सो खवउ तं अणु- । सिट्ठिं सोऊण जायसंवेगो ॥

उट्ठित्ता आयरियं । वंदइ विणयेण पणदंगो ॥ १४८० ॥

अर्थ—— तैंठा पाछे गुरुनिकी शिक्षा श्रवण करिकै अर उपज्या है परमधर्ममें अनुराग जाकै ऐसा क्षपकमुनि संस्तरमें ऊठिकरिकै अर विनयकरिकै नम्रीभूत है अंग जाका ऐसा आचार्यनिकूं वंदना करै ॥ गाथा–

भंते सम्मं णाणं । सिरिसा य पडिच्छिदं मए एदं ॥

जं जह वुत्तं तं तहा । करेमि विणउ तदो भणए ॥ ८१ ॥

अर्थ—— वंदना कीये पश्चात् क्षपक गुरुनिसूं वीनती करे है । भगवन् ! मै आपका दीया सम्यग्ज्ञान मस्तककरि अंगीकार कीया । अब जैसी आप आज्ञा करि, तैसें मै प्रवर्तन करस्यूं । ऐसें नम्रीभूत होय विनयकरिकै गुरुनिके चरणारविंदाके सम्मुख होय वीनती करै ॥ गाथा–

अप्पा णित्थरदि जहा। परमा तुट्ठी य हवदि जह तुज्झं ॥
जह तुब्भं संघस्स य। सफलो य परिस्समो होइ ॥ ८२ ॥
जह अप्पणो गणस्स य। संघस्स य विस्सुदा हवइ कित्ती ॥
संघस्स पसाएण य। तह हं आराहइस्सामि ॥ ८३ ॥

अर्थ— क्षपक गुरुनितैं वीनती करे है। भगवन्! जैसैं मेरा आत्मा संसारतैं निस्तीर्णतानैं प्राप्त होय अर जैसैं आपकै परम संतोष होय अर जैसैं मेरा अनुग्रहमें प्रवर्तन कीयो जो समस्त संघ तिसका परिश्रम सफल होय अर जैसैं मेरी अर आप जे आचार्य तिनकी अर सकल संघकी उज्वल कीर्ति जगतमें विख्यात होय तैसैं संघके प्रसादकरिकै आराधना ग्रहण करस्यूं ॥ भावार्थ— क्षपक गुरुनिसूं अपना अभिप्राय प्रकट करे है। जो, हे भगवन्! आपके चरणारविंदके प्रसादतैं ऐसा सत्यार्थ उपदेश पाय मैं कदाचित् समाधिमरणमें शिथिल नही होऊंगा, जैसैं मेरा आत्मा संसारसमुद्रके पार होय तैसैं करूंगा, तथा जैसैं आप गुरुजननिका चरणारविंदांकी कीर्ति उज्वल विस्तरेगी तैसैं करूंगा, तथा मेरे हितमें उद्यमी अर समाधिमरण करावनेके अर्थि रात्रिदिन वैयावृत्यमें सावधान जो सर्वसंघ ताका परिश्रम सफल होयगा तैसी निर्दोष उज्वल आराधना ग्रहण करूंगा॥ ऐसैं अपने परिणामका आराधनामरणमें उत्साह अर

परम शूरवीरता प्रगट गुरुनिकूं दिखाया ॥ गाथा–

वीरपुरिसेहि जं आ-। इरियं जं च ण तरंति का ुरिसा ॥
मणसा वि विचिंतेदुं। तमहं आराहणं काहं ॥ ८४ ॥

अर्थ–– जो आराधना गणधरादिक वीरपुरुषानिकरि आचरण करी अर जिस आराधनाकूं कापुरुष जे विषयके लंपटी तथा तीव्रकषायका धारक मनकरिकै चिंतवन करनेकूंहू नही समर्थ होय है! तिस आराधनाकूं मै आपके प्रसादतैं आराधन करस्यूं ॥

एवं तुभ्भं उवए-। सामिदमासाइदत्तु को णाम ॥
वीहिज्ज छुहादीणं। मरणस्स वि कायरो वि णरो ॥ ८५ ॥

अर्थ — हे भगवन्! ऐसें आपका उपदेशरूप अमृतकूं आस्वादन करि कौन कायर पुरुषहू क्षुधातृषादिकनिका तथा मरणका भयको प्राप्त होय है! नही होय है, यह मेरै निश्चय है ॥ भावार्थ– आपका उपदेशरूप अमृत जिस पुरुषनैं पान कर लिया, सो कायरहू मरण रोग क्षुधा तृषादिकका भय नही करे है। जातैं ऐसा श्रद्धान प्रगट होय है, जो, क्षुधा तृषा रोगादिक तो देहकूं मारैगा, मेरा आत्मा अखंड अविनाशी ज्ञानानंदरूप ताहि कोऊ नाश करने समर्थ नही, ऐसा स्वरूपमें निश्चलपणा आपका उपदेशहीका प्रभावतैं होय है ॥ गाथा–

किं जंपिएण बहुणा । देवा वि सइंदया महं विग्घं ॥
तुम्हं पादोवग्गह- । गुणेण काउं ण अरिहंति ॥ ८६ ॥

अर्थ— हे भगवन्! बहुत कहनेकरि कहा? आपके चरणनिका उपकाररूप गुणकरि हमारै आराधनामें विघ्न करनेकूं इंद्रनिसहित देवहू समर्थ नही है। अन्य विषयकषाययुक्त पुरुषनिकी तो कहा कथा! ॥ गाथा—

किं पुण छुहा व तण्हा । परिस्समो वादियादिरोगा वा ॥
काहिंति झाणविग्घं । इंदियविसया कसाया वा ॥ ८७ ॥

अर्थ— जो इंद्रनिसहित देवताही हमारी आराधनामें विघ्न नही करि सकै, तो ये क्षुधा तृषा तथा परिश्रम तथा वातपित्तकफादिक रोग तथा इंद्रियनिके विषय तथा क्रोधादिक कषाय हमारे ध्यानमें विघ्न करै कहा? अपि तु नही करै! ॥ गाथा—

ठाणा चलिज्ज मेरू । भूमी उम्मत्थिया भविस्सिहदि ॥
ण य हं गच्छमि विगदिं । तुम्हं पायप्पसाएण ॥ ८८ ॥

अर्थ— कदाचित् मेरुगिरि पर्वत स्थानतैं चलायमान होय! तथा पृथ्वी उलटि औंधी होजाय! तदिहू आप जे गुरु तिनके चरणारविंदके प्रसादतैं मै विकारकूं प्राप्त नही होऊं—आराधनातैं चलायमान नही होऊं ॥ गाथा—

एवं खवउ संथा- । रगदो खवइ विरियं अगूहंतो ॥
देदि गणी वि सदा से । तह अणुसिट्टिं अपरिदंतो ॥ ८९ ॥

अर्थ— ऐसैं संस्तरकूं प्राप्त भया जो क्षपक सो अपनी शक्तीकूं नही छिपावता संता कर्मनिकूं क्षपावे है। अर आचार्यहू आलस्यरहित हुवा जैसें क्षपकके ज्ञान जागृत रहै तैसें सदाकाल परमधर्मरूप शिक्षा करे हैं ॥ भावार्थ— क्षपक तो अपनी शक्ति नही छिपावे है अर आचार्य उपदेश देनेमें आलसी नही होय है ॥

इति सविचार भक्तप्रत्याख्यान नामा मरणके चालीस अधिकारनिविषैं सातसै सत्तरि गाथानिकरि अनुशिष्टि नामा तेतीसमां अधिकार समाप्त कीया ॥ ३३ ॥ अब उगणीस गाथानिमैं सारणा जो धर्मतैं चलायमान होतेकी रक्षा करनेका चोतीसमां अधिकार वर्णन करे हैं ॥ गाथा—

अकडुगमतित्तयमणं- । विलं च अकसायमलवणममधुरं ॥
अविरसमदुब्भिगंधं । अच्छमणुण्हं अणदिसीदं ॥ १४९० ॥
पाणगमसिंभलं परि- । पूयं खीणस्स तस्स दादव्वं ॥
जह वा पच्छं खवय । स्स तस्स तह होइ दायव्वं ॥ ९१ ॥

अर्थ— समाधिमरणकी प्रतिज्ञा करि क्षीणशरीरी जो क्षपक, ताके अर्थि पानक कहिये

पीवनेयोग्य आहार ऐसा देना योग्य है– जो क्षपककै पथ्य होय, परिपाकमें गुणकारक होय, शरीरमें रोगका उपशम करै, सो पीवनेयोग्य आहार देनेयोग्य है ॥ जो कटुक नहीं होय, अर तीक्ष्ण चिरपरा नही होय, अर खाटा नही होय, अर कषायला नही होय, तथा लवणरहित होय, तथा मिष्ट नही होय, खांड मिश्री इत्यादिकका मिलापरहित होय, तथा विरस जो स्वादरहित सो नही होय, तथा दुर्गंध नही होय ऐसा स्वच्छ उज्वल होय, अर उष्ण नही होय अर अतिशीत नही होय, तथा कफ करनेवाला नही होय, अर पवित्र होय ऐसा जलादिक पानद्रव्य क्षपककै देनेयोग्य है ॥

संथारत्थो खवउ । जइया खीणो हविज्ज तो तइया ॥
वोसरिदव्वो पुव्ववि- । धिणेव सो पाणगाहारो ॥ ९२ ॥

अर्थ–– बहुरि जिस अवसरमें संस्तरमें तिष्ठता क्षपकका शरीर क्षीण होजाय, तदि पूर्वैं जो तीन आहारका त्यागमें जैसैं विधि कही तैसैं पानक आहारहू त्यागनेयोग्य है ॥

एवं संथारगद- । स्स तस्स कम्मोदएण खवयस्स ॥
अंगे करथइ उट्ठि- । ज्ज वेयणा झाणविग्घयरी ॥ ९३ ॥

अर्थ— ऐसैं संस्तरमें तिष्ठता क्षपकके कर्मका उदयकरिकै कोई अंगमें ध्यानका विघ्न करनेवाली वेदना उपजै, तो कहा करै सो कहै––

वहुगुणसहस्सभरिया । जदि णावा जम्मसायरे भीमे ॥
भिज्जइ हु रयणभरिया । णावा व समुद्दमज्झम्मि ॥ ९४ ॥
गुणभरिदं जादि णावं । दट्ठूण भवोदधिम्मि भिज्जंतं ॥
कुणमाणो हु उविक्खं । को अण्णो हुज्ज णिद्धम्मो ॥ ९५ ॥

अर्थ— कर्मका उदयकरि क्षपकका देहमें ध्यानका विघ्न करनेवाली वेदना उपजि आवै, तो, जैसें समुद्रके मध्य रत्ननिकरि भरी नाव फूटि जाय; तैसें बहुतगुणरत्ननिकरि भरी साधुरूप नाव भयानक संसारसमुद्रमें फूटि जाय है। तातैं धर्मात्मा साधुजन जैसैं क्षपककै वेदनाका उपशम होय तैसें उपदेशादिक प्रतीकार करै, अर वेदना घटि परिणाम समतारूप व्रतनिमैं सावधान होय तैसें वैयावृत्यादिक करै। अर जो गुणनिकरि भरी साधुरूप नावकूं वेदनादिकनितैं संसारसमुद्रमें फूटती देखि अर जो रक्षाको उपाय उपदेश वैयावृत्त्यादिक नही करे है--उदासीन रहे है, तो तिससमान अन्य कोन धर्मरहित अधर्मी होय है? जो गुणनिकरि सहित साधूका धर्म बिगडता होय अर जो अपनी शक्तिप्रमाणहू रक्षा नही करै तो धर्मतैं पराङ्मुख भया अपना धर्मही बिगाड्या॥ गाथा--

विज्जावच्चस्स गुणा । जे पुव्वं वित्थरेण अक्खादा ॥
तेसिं फिडिदो सो हो- । इ जो उविपिज्ज तं खवयं ॥ ९६ ॥

अर्थ— जो साधु धर्मका मार्ग जाणिकरिकैहू अन्य मुनीश्वर वेदनाकरिकै चलायमान होय तिसकूं धर्मोपदेश देयकरि तथा शरीरकी टहल करनेकरि नही स्थिर करे है तथा संजमीकै योग्य अन्यहू इलाजकरि वैयावृत्य नही करे है केवल क्षपकमें उदासी-नहीं रहे है, सो साधु पूर्वैं जे वैयावृत्यके गुण विस्तारकरिकै कहे, तिन गुणनितैं रहित होय है ॥ गाथा—

तो तस्स तिगिंछाजा- । णएण खवयस्स सव्वसत्तीए ॥
विज्जादेसवसेण य । पडिकम्मं होइ कायव्वं ॥ ९७ ॥

अर्थ— तातैं क्षपककी चिकित्साकूं जाननेवाले वैद्यका उपदेशकरिकै समस्त शक्ति-करिकै प्रतीकार करना योग्य है ॥ गाथा—

णाऊण विकारं वे- । दणाए तिस्से करिज्ज पडियारं ॥
फासुगदव्वेहिं करि- । ज्ज वायकफपित्तपडिघादं ॥ ९८ ॥

अर्थ— क्षपकका रोगादिककूं जानिकरिकै अर तिस रोगकी वेदनाका इलाज साधूकै योग्य प्रासुकद्रव्यनिकरि करै अर प्रासुकद्रव्यनिकरि वात पित कफका नाश करै ॥

वत्थीहिं अवदवणता- । वणेहिं आलेवसीयकिरियाहिं ॥
अब्भंगणपरिमद्दण- । आदीहिं तिगिंछदे खवयं ॥ ९९ ॥

अर्थ— बहुरि वस्तिकर्म जो मूत्रका आशयमें वर्ती इत्यादिक तथा उष्णकरण तथा तापन तथा लेपन तथा अन्य शीतक्रिया तिनकरिकैं, तथा मर्दन तथा अंगका दाबना मसलना इत्यादिक प्रासुकद्रव्यनिकरिकै, मुनि तथा धर्मात्मा श्रावकादिक संघमें होय सो क्षपकका इलाज करै। जातैं धर्मात्मा व्रतीकूं वेदनापीडित देखि जे छांडै हैं ते अधर्मी हैं। जैसैं बनै तैसैं उनका धर्मकी रक्षाही करै। अर धर्मात्मा व्रतीनिकै अंतकालमें कर्मका प्रबल उदयकरि रोगवेदनादिक प्रबल आताप आजाय अर तिसकरि शिथिल होजाय अर अजोग्य आचरणहू करनेकूं चलायमान होजाय तो तहां धैर्यवान् होय स्थितीकरणही करै। अर अनेक योग्य उपायनिकरि दुःख दूरिही करै। अर जे दुःख आवताथका सधर्मीकूं छोडि जाय हैं ते महानिर्दयी हैं, धर्मतैं पराङ्मुख हैं. अर धर्मकी निंदा करावनेवाले हैं, उनकै समाधिमरण नहीं होजाय अर आगानै समाधिमरण करनेमें सकल अन्यमुनि शिथिल होय हैं॥ गाथा—

एवं पि कीरमाणे। परियम्मे वेदणाउवसमो सो॥ खवयस्स पावकम्मो-।
दएण तिव्वेण हु ण हुज्ज॥ १५००॥ अहवा तण्हादिपरी-। सहेहि खवउ
हविज्ज अभिभूदो॥ उवसग्गेहिंमि खवउ। अचेदणो होज्ज अभिभूदो॥१॥
तो वेदणावसट्टो। वाउलिदो वा परिसहादीहिं॥ खवउ अणप्पवसिउ।

सो विपलाविज्ज जं किं पि ॥ २ ॥ उब्भासिज्ज व गुणसे- । ढीदो उंदर-
णवुड्ढिउं खवउं ॥ छट्ठं दोच्चं पढमं । व सिया[1] कुंडिलिदमिच्छंतो ॥ ३ ॥
तह मुज्झंतो खवउं । सारेदव्वो य सो तउं गणिणा ॥ जह सो विसुद्ध-
लेस्सो । पच्चागदचेदणो होज्ज ॥ ४ ॥

[1] कदाचित् ॥

अर्थ — ऐसैं पूर्वोक्त प्रासुकद्रव्यनितैं प्रतीकार करतेहू क्षपकके तीव्र पापकर्मका उदयकरि वेदनाका उपशम नहीं होय-वेदना नहीं घटै, जातैं पापकर्मका प्रबल उदय होय तदि समस्त प्रतीकार निष्फल जाय है; अथवा तृषाक्षुधाकी परीषहकरिकैं क्षपक तिरस्कृतरूप होय है; अथवा अनेक रोग क्षुधा तृषा शीत उष्णतादिक उपसर्गनिकरि क्षपक तिरस्कारनैं प्राप्त हुवा अचेत होजाय; तथा वेदनाके वशतैं पीडित होय; तथा व्याकुल होय; अथवा परीषह उपसर्गादिककरि क्षपक आपके वश नहीं होता रोगके वशतैं विलाप करने लगि जाय—प्रलाप करने लगि जाय; अथवा अयोग्यवचन कहे; अथवा गुणश्रेणीतैं उतरनेकी बुद्धीकूं प्राप्त भया क्षपक छठा रात्रिभोजनकूं चाहै, तथा द्वितीय भोजन जो जलपान ताकूं याचै, तथा प्रथम जो भोजन ताकूं याचने लगि जाय, तथा मोहकूं प्राप्त हुवा स्खलितपद जो मुनिव्रतकूं भंग करनेकी इच्छा करै तदि आचार्य करुणानिधान किंचितहू धैर्यकूं नहीं त्यागता क्षपककी

सारणा जो व्रतकी रक्षा ताहि तैसें करै "जैसें यो क्षपक लेश्याकी उज्वलताकूं प्राप्त होय, तथा चेतना वाहुडि आवै" बहुरि मुनिके धर्ममें सावधान होजाय तैसें सारणा करै ॥ अब सारणा जो रत्नत्रयकी रक्षा ताका उपाय कहे हैं ॥ गाथा—

को सि तुमं किंणामो । कत्थ वससि को व संपदी कालो ॥
किं कुणसि तुमं कह वा । लच्छसि किं णामगो वा हं ॥ ५ ॥
एवं आउच्छित्ता । परिक्खहेदुं गणी तयं खवयं ॥
सारइ वच्छलयाए । तस्स य कवयं करिस्सामि ॥ ६ ॥

अर्थ— हे आत्मकल्याणके अर्थी! तुम कोन हो? तुमारा नाम कहा है? तुम कहा वसो हो? अबार कोन काल वर्ते है? तुम कहा करो हो? तुम कोनप्रकार तिष्ठो हो? हमारा नाम कहा है? ऐसें आचार्य तिसकी सावधानीकी परीक्षाके अर्थि क्षपककूं वारंवार पूछिकरिकैं अर ताकी रक्षा करै ॥ कितनेक ऐसें पूछनेतैंही सचेत होय हैं— अहो! मैं मुनिका व्रत धारि संन्यास कीया है, ये आचार्य परमोपकार करनेवाला गुरु है, मैं कैसें अचेत हुवा अयोग्य आचरण करूं हूं! मोकूं अब सावधान होय रत्नत्रय सेवन करि मरण करना उचित है! ऐसें पूछनेतैं सावधान होजाय है ॥ अथवा जो इसमें चेतना है अक अचेत है? ऐसा निश्चय करिकै अर क्षपकमें वात्सल्य-

भाव करिकै अर आचार्य भगवान् विचारै, जो, सचेत है तो अब याके आराधनाकी रक्षा करनेवाला कवच करिस्यूं ॥ गाथा–

जो पुण एवं ण करि- । ज्ज सारणं तस्स वियळचक्खुस्स ॥
सो तेण होइ णिद्धं- । धसेण खवउ य परिचत्तो ॥ ७ ॥

अर्थ— इसप्रकार जो चलायमान है चित्तकी प्रवृत्ति जाकी ऐसा क्षपकका जो आचार्य गुरु रक्षण नही करै, तो तिस निर्दयी गुरुनैं क्षपकका त्याग कीया छोड्या! यह बडा अनर्थ भया ! ॥ गाथा–

एवं सारिज्जंतो । कोई कंसुवसमेण लभदि सदिं ॥
तह य ण लब्भिज्ज सदिं । कोई कम्मे उदिण्णम्मि ॥ ८ ॥

अर्थ— ऐसैं सारणा जो रक्षण कीया हुवा कोऊ साधु चारित्रमोहकर्मका उपशमकरिकै अथवा असातावेदनीयकर्मका उपशमकरिकै ऐसा स्मरणकूं प्राप्त होय है- अहो बडा अनर्थ है! जो, मै त्रैलोक्यमें दुर्लभ ऐसा संयम अंगीकार करिकै अर अकालमें भोजनपानकी इच्छा करूं हूं! अबार हमारे संन्यासका अवसरमें समस्त आहारपानका त्यागका अवसर है, मैं समस्तसंघकूं साक्षी करिकै समस्त च्यारि प्रकारका आहारका त्याग कीया है, जो सल्लेखनामरण अनंतानंतकालमें नही पाया सो अब गुरुनिके प्रसा-

दतैं प्राप्त भया है, अब मेरै समस्त विषयानुराग त्याग करि परमवीतरागताका अवसर है, तातैं मोकूं परमसंयममैं सावधानताकरिकैं आत्मकल्याणमें सावधानी करनी! ऐसैं कोऊ साधु तो अपने व्रतसंयम पूर्वैं धारण कीये तिनमें दृढ होय है ॥ अर कोऊ साधु ज्ञानावरणादिकनिका तीव्र उदयकरिकैं स्मृतीकूं नही प्राप्त होय है—अचेतही रहे है ॥

इति सविचार भक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषैं सारणा नामा चोतीसमां अधिकार उगणीस गाथानिकरि समाप्त कीया ॥३४॥ अब कवच नामा अधिकार एकसो चहोत्तरि गाथानिमैं वर्णन करे हैं ॥ गाथा—

सदिमलभंतस्स वि का- । दव्वं पडिकम्ममट्ठियं गणिणा ॥
उवदेसो वि सया से । अणुलोमो होदि कायव्वो ॥ ९ ॥

अर्थ— ऐसैं आचार्य क्षपककूं अपना मुनिपणा तथा आराधनामरणकी प्रतिज्ञा तथा च्यार प्रकार आहारका त्यागकी यादिगिरी जो स्मरण ताहि करावै, अर जो साधु स्मरण कराया हुवाहू स्मृतिकूं प्राप्त नही होय—त्यागमें संयममें चेतनाकूं प्राप्त नही होय, तो गणी जो आचार्य सो शिथिलतारहित हुवा संता क्षपकके स्मरण दृढ होय तैसैं प्रतीकार करै ॥ भावार्थ— जो क्षपक सावधान नहीभी होय, रोगतैं तथा वेदनातैं वेखबरी होय ताकाहू आचार्य प्रतीकार सचेत होनेका उपाय करेही । इलाज कीयेविना

स्थिरता नही ग्रहे है बहुरि आचार्य तिस क्षपककै अनुकुल उपदेशहू सदाकाल करै ॥

चेयंतो वि य कम्मो- । दएण कोई परीसहपरज्झो ॥
उंभासिज्ज व उंतुवि- । ज्ज भिंदिज्ज आउरो पइण्णं ॥ १५१० ॥

ण हु सो कडुगं फरुसं । वा भणिदव्वो ण खीसिदव्वो य ॥
ण य वित्तासेदव्वो । ण य वट्टदि हीलणं काउं ॥ ११ ॥

अर्थ— कोऊ साधु चेतनाकूं प्राप्त हुवाहू कर्मका उदयकरिकैं परीषहनकरि क्लेशकूं प्राप्त हुवा संता अयोग्यवचन बोले, तथा रुदन करे, तथा आतुर-पीडित हुवो अपनी व्रतप्रतिज्ञा भंग करे, तदि तिस साधूकूं कटुकवचन कहनेयोग्य नही है। तथा सो तिरस्कार करनेयोग्य नही। तथा हास्य करनेयोग्य नही। तथा त्रास देनेयोग्यहू नही। तथा पराभव करनेयोग्यहू नही है ॥ गाथा—

फरुसवयणादिगेहिं । दु माणी विप्फुरिउं तउं संतो ॥
उंहाणं वक्कमणं । कुज्जा असमाधिकरणं वा ॥ १२ ॥

अर्थ— कठोरवचनादिककरि विराधित हुवा तथा तिरस्कारकूं प्राप्त हुवा साधु अभिमानकूं प्राप्त हुवा संता अपध्यानकूं प्राप्त होय है। तथा मर्याद उलंघन करिकै अर संस्तरतैं बाहिर भागि जाय। तथा असावधानीतैं असमाधिमरण करे है। तातैं

बडा अनर्थ जानि चलायमान हुवा क्षपककूं कठोरवचनादिक नही कहे हैं ॥ गाथा–

तस्स पदिण्णामेरं । भित्तुं इच्छंतयस्स णिज्जवउ ॥
सव्वायरेण कवचं । परीसहणिवारणं कुज्जा ॥ १३ ॥

अर्थ— प्रतिज्ञारूप मर्यादकूं भेदनेका इच्छक जो क्षपक ताकै निर्यापकाचार्य परीषह निवारण करनेमैं समर्थ ऐसा कवच सर्व आदरकरिकैं करै ॥ भावार्थ– जैसैं सुभट अभेद्य वकतर पहरि रणमें प्रवेश करै, तो वैरीनिकै बाणनिकरि नाशकूं नही प्राप्त होय है; तैसैं साधुरूप सुभटहू संन्यासके अवसरमें कर्मनितैं जो महासंग्राम तिसमें प्रवेश करता गुरुनिका उपदेशरूप कवच जो वकतर ताहि धारण करता संता कर्मरूप वैरीके प्रेरे जे विषयकषायरूप शस्त्र तिनकरिकैं नाशकूं नही प्राप्त होय है ॥

णिध्दं मधुरं पल्हा- । दणिज्ज हिदयंगमं अतुरिदं च ॥
तो सीहावेदव्वो । सो खवउ पंण्णवंतेण[1] ॥ १४ ॥

[1] प्रज्ञापयता

अर्थ— महान् बुद्धिमान् जो गुरु सो क्षपककूं शिक्षारूप वचन कहनेजोग्य है। कैसे वचन कहै? स्नेहसहित कहै, अर कर्णनिकूं प्रिय कहै, अर आनंद करनेवाले कहै–जिनकूं श्रवण करतेही सर्व दुःखका स्मरण नष्ट होजाय, बहुरि हृदयमें प्रवेश करि जाय ऐसा वचन कहै, बहुरि शीघ्रताकूं लीये वचन नहीं कहै ॥ गाथा–

रोगादंके सुविहिद- । विउलं वा वेदणं धिदिवलेण ॥
तमदीणमसंमूढो । जिण पच्चूहे चरित्तस्स १५ ॥
सव्वे वि य उवसग्गे । परीसहे य तिविहेण णिज्जिणाहि ॥
णिज्जिणिय सम्मसेदे । होहसि आराहउं मरणे ॥ १६ ॥

अर्थ— हे सुंदर चारित्रके धारक हे मुने! थे दीनतारहित हुवा संता तथा मोहरहित हुवा संता धैर्यके बलकरिकै; चारित्रमें विघ्न करनेवाले जे रोग जे महान् व्याधि, अर आतंक जे अल्पव्याधि, तिननैं तथा प्रबलवेदनानैं जीतहू । तथा समस्त उपसर्गनिनैं तथा परीषहनिनैं मन वचन कायकरिकै जीतहू । अर रोग वेदना उपसर्ग परीषहनिकूं जीतिकरिकै अर मरणकालके विषैं सम्यक्प्रकार च्यार आराधनाका अराधक होहू ॥ भावार्थ- रोगादिक व्याधि अशुभकर्मके उदयकरिकैं होय हैं, तातैं जो रोग उपसर्ग परिषह आये जगतमें दीन भये विचरोगे अर धैर्य छांडोगे तोहू कोऊ तुमारा उपद्रव दूरि करने समर्थ नही है! तुमारा तुमही भोगोगे, अपने परिणामनिकरि उपजाया जो अशुभकर्म ताहि दूरि करनेकूं अर शुभकर्म देनेकूं कोऊ देव दानव इंद्र अहमिंद्र जिनेंद्र समर्थ है नही! तातैं रोग उपसर्ग परीषहादिक आये कायरता छांडि महान् धैर्य अंगीकार करि क्लेशरहित हुये भोगना श्रेष्ठ है । यातैं पूर्व-

कर्मकी निर्जरा होय अर आगै नवीन बंधको अभाव होय ॥ गाथा—

संभर सुविहिय जं ते । मज्झम्मि चदुव्विधस्स संघस्स ॥
वूढा महापदिण्णा । अहयं आराहइस्सामि ॥ १७ ॥

अर्थ— हे चारित्रधारक! च्यारि प्रकारके संघमें तुम महाप्रतिज्ञा धारण करी थी, जो, मै "आराधना धारण करस्यूं" सो तुम स्मरण करो—यादि करो! भूलि गये कहा ?॥

को णाम भडो कुलजो । माणी थोलाइदूण जणमज्झे ॥
जुध्दे पलाइ आवडि- । दमित्तउं चेव अरिभीदो ॥ १८ ॥

अर्थ— कुलमें उत्पन्न भया मानी सुभट लोकनिके मध्य भुजानिका आस्फालन करिकै अर जुध्दके विषैं वैरीकूं सम्मुख आवतेंही वैरीतैं भयवान् हुवा कोन भागै? कुलवान् भटपणाका अभिमानी तो वैरीकूं पीठ नही दिखावेगा ॥ गाथा—

थोलाइदूण[1] पुव्वं । माणी संतो परीसहादीहिं ॥
आवडिदमित्तउं चे- । व को विसण्णो हवे साधू ॥ १९ ॥

[1] भुजास्फालनं कृत्वा

अर्थ— तैसैंही कोऊ मुनि धर्मका मानी होय अर सर्वसंघमें भुजनिका आस्फालन कीया, जो, "मै च्यारि आराधना धारण करस्यूं" ऐसी प्रतिज्ञा करिकै बहुरि परीषहवैरीनकूं सम्मुख आवतेंही कुण चलायमान होय? कौन विषादी होय?

उत्तमसाधू तो प्रतिज्ञा करिकै बहुरि कदाचित् चलायमान होय विषाद नहीही करेगा ॥

आवडिया पडिकूला । पुरउं चेव क्कमंति रणभूमिं ॥
अवि य मरिज्ज रणे ते । ण य पसरमरीण वड्ढंति ॥ १५२० ॥

तह आवइपडिकूल- । दाए साहो वि माणिणो सूरा ॥
अइतिव्ववेयणावो । सहंति ण य विगडिमुवयांति ॥ २१ ॥

अर्थ— जैसैं शूरवीरपणाका अभिमानी जो पुरुष सो वैरीनिकूं सम्मुख आवतै रणकी भूमीमैं आगैही गमन करे हैं-वैरीनिके सम्मुख जाय हैं अर रणभूमीविषैं मरणही करै, परंतु जीवते संते रणभूमीमैं वैरीका प्रसर नही वधने दे हैं; तैसैं मानी अर शूरवीर ऐसे साधु जे हैं, तेहू आपदाकूं प्रतिकूल होते अतितीव्रवेदनानिकूं समभावनिकरि सहे हैं अर परिणामनिकी विकृतताकूं प्राप्त नही होय हैं ॥ गाथा—

थोवाइयस्स कुलज- । स्स माणिणो रणमुहे वरं मरणं ॥
ण य लज्जणयं काउं । जावज्जीवं सुजणमज्झे ॥ २२ ॥

अर्थ— कीया है भुजनिका आस्फालन कहिये ठकोरना जानैं ऐसा कुलमें उपज्या मानीकूं रणविषैं मरण करना श्रेष्ठ है, परंतु यावज्जीव स्वजनानिके मध्य लज्जाकै योग्य कर्म करिकै जीवना श्रेष्ठ नही ॥ गाथा—

समणस्स माणिणो सं- । जदस्स णिहणगमणं पि होइ वरं ॥
ण य लज्जणयं काउं । कायरदा दीणकिविणत्तं ॥ २३ ॥

अर्थ— श्रमण अर मानी ऐसा संजमी जो मुनि ताकूं मरणकूं प्राप्त होना श्रेष्ठ है, परंतु लज्जा करनेयोग्य जो कायरपणा दीनपणा कृपणपणा करना श्रेष्ठ नही ॥ भावार्थ– जिस पुरुषकै ऐसा अभिमान है, जो मैं संजमी हूं जिनेंद्रकारे आदरे व्रत-संयम धारण करे है, जो संजम अनंतभवनिमें दुर्लभ सो मेरे वीतरागगुरुनिके प्रसादतैं प्राप्त भया है, अर अब किंचित् रोगादिकजनित उपसर्गपरिषह कर्मके उदय-करि आये हैं तो अब मरणकूं प्राप्त होना श्रेष्ठ है! जो एकवार मरनाही है! अर गुरुनिके प्रसादतैं व्रतसहित मरण होजाय तो इससमान मेरा कल्याण और है नही, अर इस अवसरमें कायर होय व्रतनितैं शिथिल होना तथा हीन होय विलाप करना तथा व्रतनिका नाश करि नीचकर्म करि इलाज चाहना यह इस लोकमें महालज्जा-योग्य निंद्यकर्मकरि दोऊ लोकका नाश करि दुर्गतिके दुःखनिको कौन आदरै ॥ गाथा

एकस्स अप्पणो को । जीविदहेदुं करिज्ज जंपणयं ॥
पुत्तपउत्तादीणं । रणे पलादो सुजणलंछं ॥ २४ ॥
तह अप्पणो कुलस्स य । संघस्स य मा हु जीविदत्थी तं ॥

कुणसु जणे जंपणयं । किमिणं कुव्वं सुगणलंछं ॥ २५ ॥

अर्थ — जैसें कोऊ उत्तमकुलमें उत्पन्न हुवा ऐसा शूरवीर पुरुष एक अपना जीवनेके अर्थि रणमें भागता संता पुत्र पौत्रादिकनिकी जगतमें निंदा अपवाद तथा स्वजननिकै कलंक कौन उत्पन्न करै । तैसैं एक अपना जीवनेके अर्थि अधमपणा करता संता आपका तथा कुलका तथा संघका लोकनिमैं अपवाद मति करावो! आपका संघकूं तथा धर्मकूं कलंक मति लगावो ॥ गाथा—

गाढप्पहारसंता- । विदा वि सूरा रणे अरिसमक्खं ॥
ण मुहं भंजंति सयं । मरंति भिउडीमुहा चेव ॥ २६ ॥

अर्थ— शूरवीर पुरुष हैं ते संग्रामविषैं दृढप्रहारकरिकैं संतापित भये भ्रकुटीसहित मरण तो करे हैं! परंतु वैरीनिके सम्मुख अपने मुखकूं भंग नहीं करे हैं—उलटा मुख नहीं करे हैं ॥ गाथा—

सुट्ठु वि आवइपत्ता । ण कायरत्तं करिंति सप्पुरिसा ॥
कत्तो पुण दीणत्तं । किमिणत्तं चावि काहंति ॥ २७ ॥

अर्थ— तैसेंही सत्पुरुष हैं ते अत्यंत आपदाकूं प्राप्त भयेहू कायरपणा नहीं करे हैं, तो दीनपणा कृपणपणा तो कैसे करे? ॥ गाथा—

केई अग्गिमदिगदा । समंतउ अग्गिणा वि डज्झंता ॥
जलमज्झगदा व णरा । अच्छंति अचेदणा चेव ॥ २८ ॥
तत्थ वि साहुक्कारं । सग अंगुलिचालणेण कुव्वंति ॥
केई करिंति धीरा । उक्किट्ठिं अग्गिमज्झम्मि ॥ २९ ॥

अर्थ— केई उत्तम पुरुष अग्निकूं प्राप्त भये सर्वतरफतैं अग्निकरिकैं दग्ध होतेहू जैसैं जलके मध्य प्राप्त भये निराकुल अचेतनकीनांई तिष्ठत हैं अर अग्निमैं तिष्ठतेहू केई धीरवीर पुरुष अपनी अंगुलिचालनकरिकै साधुकारही करे हैं। जो, "भली भई! कर्मका ऋण चुकया" अर केई अग्नीके मध्य उत्क्रोशन करे हैं ॥ गाथा—

जदि दा तह अण्णाणी । संसारपवड्ढणाए लेसाए ॥
तिव्वाए वेदणाए । सुहसाउलया करिंति धिदिं ॥ १५३० ॥
किं पुण जदिणा संसा- । रसव्वदुक्खक्खयं करिंतेण ॥
वहुतिव्वदुक्खरसजा- । णएण धीदी हवदि कज्जा ॥ ३१ ॥

अर्थ— तथा जो अज्ञानीकै संसार वधावनेवाली लेश्याकरिकै तीव्रवेदनाकूं होता संताहू परलोकसंबंधी सुखके स्वादमें लंपटी हुवा धैर्य धारण करे है, तो संसारके समस्तदुःखकूं क्षय करता अर चतुर्गतिरूप संसारके वहुत तीव्र दुःखरसकूं जानता

जैनका यति धैर्यधारण नही करै कहा? करैही करै ॥ भावार्थ– इस जगतमें कितनेक अज्ञानीहू तीव्रवेदनाकूं आवतेभी परलोकके सुखका अर्थी होइ धैर्य धारण करै, जो "वेदनामैं कायर नही होऊंगा, तो देवलोकके सुखकूं प्राप्त हूंगा" तो संसारके समस्तदुःखका नाश करनेका इच्छक दिगंबर साधु रोगादिक दुःख आये धैर्यधारण कैसें नही करै? ॥ गाथा–

असिवे दुब्भिक्खे वा । कंतारे वा भए व आगाढे ॥
रोगेहि व अभिभूदा । कुलजा माणं ण विजहंति ॥ ३२ ॥
ण पियंति सुरं ण य खं- । ति गोमयं ण य पलंडुमादीयं
ण य कुव्वंति विकम्मं । तहे व अण्णं पि लज्जणयं ॥ ३३ ॥

अर्थ— मारी होतैंहू तथा दुर्भिक्ष काल पडतैंहू तथा भयानक वनीमैं प्राप्त होतें तथा अत्यंत गाढ भयमें तथा रोगनिकरि तिरस्कार कीये हुयेहू कुलमें उपजे पुरुष अपना मान नही छांडे हैं। जातें मारीके भयतें दुर्भिक्षादिकके भयतें मदिरा नही पीवे हैं, मांस नही खाय हैं, कांदे भक्षण नही करे हैं, तथा कुकर्म नही करे हैं, तथा ओरहू लज्जनीयकर्म नही करे हैं। कुलवंत पुरुष बहुत दुःख आवतैही निंद्यकर्म नही करै, तो परमार्थमें प्रवर्तते निंद्यकर्म कैसैं करै ॥ गाथा–

किं पुण कुलगणसंघ- । स्स जसमाणिणो लोयपूजिदा साधू ॥
माणं पि जहिय काहं- । ति विकम्मं सुजणलज्जणयं ॥ ३४ ॥

अर्थ-- बहुरि अपने कुलका तथा गणका तथा संघका जस उत्पन्न करनेका अहंकारवान् अर लोकमें पूज्य ऐसे उत्तम साधु अपना लोकपूज्य अभिमान त्यागिकरिकै अर सज्जनपुरुषनिमैं लज्जनीक निंद्यकर्म करै कहा? कदाचित् नहीं करै ॥ गाथा-

जो गच्छिज्ज विसादं । महल्लमप्पं च आवदीपत्तो ॥
तं पुरिसकादरं विं- । ति धीरपुरिसा हु संढित्ति ॥ ३५ ॥

अर्थ— जो पुरुष महान् आपदा तथा अल्प आपदाकूं प्राप्त हुवो संतो विषादकूं प्राप्त होय है, तिस पुरुषकूं धीरवीर पुरुष कायर कहे हैं अथवा नपुंसक कहे हैं ॥ गाथा-

मेरुव्व णिप्पकंपा । अक्खोभा सागरुव्व गंभीरा ॥
धिदिमंता सप्पुरिसा । होंति महल्लावईए वि ॥ ३६ ॥

अर्थ—महान् आपदाकूं आवताभी धैर्यके धारी सत्पुरुष जे हैं ते मेरुकीनांई निष्प्रकंप कहिये अचल होय हैं अर समुद्रकीनांई क्षोभरहित गंभीर होय हैं॥ भावार्थ—सत्पुरुषनिका ऐसाही स्वभाव है, जो अनेक दुःख आपदा आवतैंहू परिणामनिमैं चलायमान नहीं होय हैं अर जिनका परिणाम समुद्रकीनांई क्षोभकूं प्राप्त नहीं होय है॥ गाथा-

केई विमुत्तसंगा । आदारोविदभरा अपडिकम्मा ॥
गिरिपब्भारसभिगदा । बहुसावदसंकडं भीमं ॥ ३७ ॥
धिदिधणियबद्धकच्छा । अणुत्तरविहारिणो सुदसहाया ॥
साहिंति उत्तमट्ठं । सावददाढंतरगदा वि ॥ ३८ ॥

अर्थ— केतेक साधु त्याग्या है समस्त परिग्रह जिननैं ऐसे अर अपने आत्मस्वरूपविषैं आरोपण कीया है आपा जिननैं अर उपसर्गादिकनिके नही आदरे है इलाज जिननैं अर बहुत सिंह व्याघ्र सर्पादिक दुष्टजीवनिकरि व्याप्त अर भयानक ऐसे पर्वतनिके शिखरनिकूं प्राप्त भये अर धैर्यरूप अत्यंत बांधी है कमरि जिननैं अर सर्वोत्कृष्टचारित्रमें प्रवर्तन करते अर श्रुतज्ञानका है सहाय जिनकै ऐसे साधु सिंहव्याघ्रादिक दुष्ट जीव तिनकी दाढनिके मध्य प्राप्त भयेहू उत्तमार्थ जो रत्नत्रय ताहि साधे हैं, कायर होय शिथिल नही होय हैं ॥ गाथा—

भल्लुंकिए तिरत्तं । खज्जंतो घोरवेदणट्टो वि ॥
आराधणं पवण्णो । झाणेणावंतिसुकुमालो ॥ ३९ ॥

अर्थ— स्यालिनीनिकरि तीन रात्रिपर्यंत खाद्यमान कहिये भक्षण कीया अर घोरवेदनाकरि व्याप्त ऐसाहू अवंतिसुकुमाल नामा मुनि ध्यानकरिकै आराधनानिकूं प्राप्त

भया ॥ भावार्थ- क्षपककूं शिक्षा करे है ॥ भो मुने! महान कोमल अंगका धारक अर तत्कालका दीक्षित ऐसा सुकुमाल नामा श्रेष्ठी, ताका अंगकूं स्यालिनी अपने बच्चेनिकरि सहित तीन दिनपर्यंत भक्षण कीया! परंतु आप परमधैर्यके धारक शुद्ध भावनिकरि तीन दिनपर्यंत घोर उपद्रव सहिकरि उत्तमार्थकूं साध्या, चलायमान नहीं भया ॥

मुग्गलगिरिम्मि य सुको- । सलो वि सिद्धत्थ इह य भयवं ॥
वग्घीए वि खज्जंतो । पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥ १५४० ॥

अर्थ— मुद्गल नाम पर्वतविषैं सिध्दार्थपुत्र जो भगवान् सुकोसल नामा महामुनि माताको जीव जो व्याघ्री ताकरिकै भक्षण कीया हुवाहू उत्तम अर्थ जो रत्नत्रयका निर्वाह ताहि प्राप्त भया ॥ गाथा—

भूमीए समं कीला- । होडिददेहो वि अल्लचम्मं व ॥
भयवं पि गयकुमारो । पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥ ४१ ॥

अर्थ— भूमीविषैं आला चामडाकीनाई कीलनिकरि वेध्या है देह जाका ऐसाहू भगवान् गजकुमार नामा साधु उत्तमार्थकूं प्राप्त होत भया ॥ गाथा—

कच्छुजरखाससोसो । भत्तच्छद्दच्छिकुच्छिदुक्खाणि ॥
अधियासियाणि सम्मं । सणक्कुमारेण वाससयं ॥ ४२ ॥

अर्थ— भो मुने ! देखो, सनत्कुमार नाम महामुनि सौ वर्षपर्यंत खाजि ज्वर कास शोष तीव्रक्षुधा अग्निकी बाधा तथा वमन तथा नेत्रपीडा उदरपीडा इत्यादिक अनेकरोगजनित दुःखनिकूं भोगतेहू संक्लेशरहित परिणामनिकरि सम्यक्प्रकार सहते भये, परिणाममें धैर्य नही छांडि रत्नत्रयधारण करत भये ॥ गाथा–

णावाए णिब्बुडाए । गंगामज्झे असुज्झमाणमदी ॥
आराधणं पवण्णो । कालगउ एणियापुत्तो ॥ ४३ ॥

अर्थ– गंगा नाम नदीके मध्य नाव डूबता संता एणिकपुत्र नामा साधु मोहरहित हुवा च्यारि आराधनाकूं प्राप्त होय मरण कीया अर कायरता नही धारी । तातैं, भो कल्याणका अर्थी हो! तुमकूं दुःखमें धैर्य धारण करि आत्महितमें सावधान होना उचित है ॥ गाथा–

ऊमोदरिए घोरा- । ए भद्दबाहू असंकिलिट्ठमदी ॥
घोराए विगिंछाए । पडिवण्णो उत्तमं ठाणं ॥ ४४ ॥

अर्थ— भद्रबाहु नामा मुनि घोरतर क्षुधाकी वेदनाकरि पीडित हुवाहू संक्लेशरहित बुद्धिकूं अवलंबन करता प्रबल अल्प आहार नाम जो तप ताही धारण करिकैं उत्तम स्थानकूं प्राप्त भया ॥ भावार्थ— भद्रबाहु नामा मुनिकै तीव्र क्षुधाका रोग उपज्या,

तोहू अवमोदर्य जो अल्पभोजन तपही धारण करि उत्तमस्थानकूं प्राप्त भया, परंतु भोजनमें लालसा नही करी ॥ गाथा—

कोसंवी ललियघडा । वूढा णइपूरएण जळमज्झे ॥
आराधणा पवण्णा । पाउंवगदा अमूढमदी ॥ ४५ ॥

अर्थ— कौशांबीनगरीविषैं ललितघट नामकरि प्रसिद्ध जे बत्तीस महामुनि हैं, ते जलके मध्य नदीका प्रवाहकरिकैं डूबे हुयेहू मोहरहित होय प्रायोपगमनसंन्यासकूं प्राप्त होय आराधनाकूं प्राप्त भये ॥ गाथा—

चंपाए मासखमणं । करित्तु गंगातडम्मि तण्हाए ॥
घोराए धम्मघोसो । पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥ ४६ ॥

अर्थ— चंपानगरीके बाह्य गंगाके तटविषैं धर्मघोष नामा महामुनि एक महिनाका उपवास धारणकरिकैं अर घोर तृषाकी वेदनाकरि संक्लेशरहित भये उत्तम अर्थ जो आराधनासहित मरण ताहि प्राप्त भया । तृषाकी वेदनातैं जलकी इच्छा नही धरी, संजम नही बिगाड्या, धैर्य धारणकरि आत्मकल्याण कीया ॥ गाथा—

सीदेण पुव्ववइरिय- । देवेण त्रिकुव्विएण घोरेण ॥
संतत्तो सिरिदत्तो । पडिवण्णो उत्तमं ठाणं ॥ ४७ ॥

अर्थ— पूर्वजन्मका वैरी जो देव तींकरि विक्रियारूप कीया जो घोर शीतकी वेदनाकरि व्याप्त जो श्रीदत्त नाम मुनि संक्लेशरहित हुवा उत्तमस्थानकूं प्राप्त भया ॥

उण्हं वादं उण्हं । सिलादलं आदवं च अदिउण्हं ॥
सहिदूण उसहसेणो । पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥ ४८ ॥

अर्थ— वृषभसेन नामा मुनि है, सो उष्णपवनकूं तथा उष्णशिलातलकूं तथा अतिउष्ण सूर्यका आतापकूं संक्लेशरहित हुवा सहिकरिकैं उत्तम अर्थकूं प्राप्त भया ॥

रोहेडयम्मि सत्ती- । ए हउ कोंचेण अग्गिदइदो वि ॥
तं वेयणमधियासिय । पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥ ४९ ॥

अर्थ— रोहेडग नाम नगरविषैं अग्नि नामा राजाका पुत्र क्रौंच नाम वैरीकरिकैं शक्ति नामा आयुधकरि हत्या हुवा शक्तिकी वेदनाकूं सहिकरिकैं उत्तम अर्थकूं प्राप्त भया ॥

काइंदिय भयघोसो । वि चंडवेगेण छिण्णसव्वंगो ॥
तं वेयणमधियासिय । पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥ १५५० ॥

अर्थ— काकंदी नाम नगरीविषैं अभयघोष नामा मुनिहू चंडवेग नाम कोऊ वैरीकरि सर्व अंग छेद्या हुवा तिस घोर वेदनाकूं प्राप्त होयकरिकैं उत्तम अर्थ जो रत्नत्रय ताकूं प्राप्त होत भया ॥ गाथा—

दंसेहि य मसएहिं य। खज्जंतो वेयणं परमघोरं ॥
विज्जुच्चरोऽधियासिय। पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥ ५१ ॥

अर्थ— विद्युच्चर नाम चोर डांस अर मांछरनिकरि भक्षण कीया हुवा परमघोर वेदनाकूं संक्लेशरहित हुवा सहिकरिकै अर उत्तम अर्थ जो आत्मकल्याण ताहि साधता भया।

हत्थिणपुरगुरुदत्तो। सम्मलिथालीव दोणिमंतम्मि ॥
डज्झंतो अधियासिय। पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥ ५२ ॥

अर्थ— हस्तिनापुरमें वसनेवाला गुरुदत्त नाम मुनि द्रोणिमत् पर्वतविषैं संमलिथालीनांई दग्ध होता संता उत्तम अर्थकूं साधता भया ॥ इहां संमलिथालीका अर्थ हमारी समझिमें नहीं आया है, तातैं नहीं लिख्या है ॥

(हारे धान्यकणिशको घडामें भरके उसका मुख ढांकिकरिकै किंचित् भूमीमैं गाढि उपरसे अग्नि प्रज्वालित करके भीतरके धान्य–कणिशको पकाना उसका नाम संमलिथाली है ॥ इसको मरेठीमें 'उपरहंडी' कहते हैं ॥ संशोधकः) गाथा–

गाढप्पहारविद्धो। पूइंगुलियाहि चालणीव कदो ॥
तध वि य चिलादपुत्तो। पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥ ५३ ॥

अर्थ— चिलातपुत्र नाम मुनिकूं कोऊ पूर्व अवस्थाका वैरी दृढ आयुधनिकरि

घात्या अर बहुरि घावनिमैं स्थूल कीडे चाढि आये तिन स्थूल कीडेनिकरि चालिनिकी-नाई सर्व अंगमें छिद्ररूप कीया, तोहू संक्लेशरहित हुवा समभावनितैं वेदनाकूं सहिकरि उत्तम अर्थकूं प्राप्त भया ॥ गाथा—

दंडो जउणावंके- । ण तिरूखकंडेहिं पूरिदंगो वि ॥
तं वेयणमधियासिय । पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥ ५४ ॥

अर्थ— यमुनावक्रके तीक्ष्णबाणनिकरि पूर्ण है अंग जाका ऐसा दंड नामा मुनि घोर-वेदनाकूं समभावनितैं सहिकरिकै उत्तम अर्थ जो आराधना ताही प्राप्त होत भया ॥

अभिणंदणादिया पं- । चसया णयरम्मि कुंभकारकडे ॥
आराधणं पवण्णा । पीलिज्जंता वि जंतेण ॥ ५५ ॥

अर्थ— कुंभकारकट नामा नगरविषैं जंत्र जो घाणी तीमैं पीडे हुये अभिनंदनादिक पांचसै मुनि समभावनितैं आराधनाकूं प्राप्त होत भये ॥ गाथा—

गोट्ठे पाउवगदो । सुबंधुणा गोव्वरे पलिविदम्मि ॥
डज्झंतो चाणक्को । पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥ ५६ ॥

१ करीषे

अर्थ— कोऊ सुबंधु नामा वैरी गायनिके रहनेका गृहकै अग्नि लगाई, तिस गाय-निके गृहमें दग्ध होता चाणक्य नामा, प्रायोपगमन संन्यास धारणकरि संक्लेशरहित

हुवा उत्तम अर्थकूं साधता भया। अग्निमें दग्ध होता संता समभावनितैं सर्व अंतरंग-बहिरंग उपाधि त्यागि आत्मकल्याण कीया ॥ गाथा–

वसदीए पालिदाए। रिट्ठामच्चेण उसहसेणो वि ॥
आराधणं पवण्णो। सह परिसाए कुलालम्मि ॥ ५७ ॥

अर्थ— कुलाल नाम ग्रामका बहिर्भागविषैं रिष्टामच्च नामा वैरी मुनीनिकी भरी वसतिकाकूं दग्ध करी, तिसमें मुनिनकी सभासहित वृषभसेन नामा मुनि आराधनाकूं प्राप्त होत भया ॥ भावार्थ– वृषभसेन नामा आचार्य समस्तमुनिनिकी सभासहित वसतिकामैं तिष्ठे थे, तिनकूं रिष्टामच्च नामा वैरी दग्ध कीया! ते दग्ध होतहू परमवीतरागता धारणकरि आराधनाकूं प्राप्त भये, किंचित्‌हू संक्लेश नहीं कीया ॥ गाथा–

जादि दा एवं एदे। अणगारा तिव्ववेदणट्ठा वि ॥
एगागि अपडियम्मा। पडिवण्णा उत्तमं अट्ठं ॥ ५८ ॥
किं पुण अणयारसहा-। यगेण कीरंतयम्मि पडिकम्मे ॥
संघे उलग्गंते। आराधेदुं ण सकिज्ज ॥ ५९ ॥

अर्थ— निर्यापकाचार्य संस्तरनैं प्राप्त भया क्षपककूं कहे है ॥ भो मुने! जो इतने मुनि तीव्रवेदनाकरि पीडित अर असहाय एकाकी अर इलाज-प्रतिकार-वैयावृत्य-

रहित हुयेहू कायरतारहित परम धैर्य धारण करि उत्तम अर्थकूं प्राप्त भये, तो, भो मुने! तुम तो मुनिनिका सहायसहित अर सर्वसंघकूं इलाजमें उपासना करता संता तुम आराधनाके आराधनेमें कैसें नही उद्यमी होत हो? ॥ भावार्थ- आगममें प्रसिद्ध जगतमें विख्यात येते मुनि एकाकी, अर जिनका कोऊ सहायी नही, अर कोऊ जिनका वैयावृत्य करनेवाला नही, अर कोऊ जिनका इलाज नही, अर जिनउपरि दुष्टवैरीनिनें घोर उपसर्ग कीये, अर अग्निमें दग्ध कीये, अर शस्त्रनितें विदारे, अर जलमें डबोय दीये, अर पर्वतादिकतें गेरी दीये, तथा तिर्यंचनिकरि भक्षण कीयेहू परम साम्यभाव नही तज्या! प्राणरहित भये! परंतु आराधनातें शिथिल नही भये अर आत्मकल्याण कीया ॥ तुमारे तो समस्त आचार्यादिक बडे ज्ञानी दयावान् धैर्यके धारी परमहितोपदेशमें उद्यमी अर शरीरका वैयावृत्य करनेमें सावधान अर समस्त योग्य इलाज करनेमें तत्पर ऐसो सर्वसंघ सहायी है; अर तीव्र उपसर्गादिक उपद्रवभी नही आये हैं, अब ऐसे अवसरमें तुम आराधना ग्रहण करनेमें कैसें शिथिल भये हो? आपाको समालना योग्य है। अब कायरता छांडहू, धीरता अंगीकार करहू ॥ गाथा-

जिणवयणममिदभूदं। महुंर कण्णाहुदिं सुणंतेण ॥

सक्का हु संघमज्झे । साहेदुं उत्तमं अट्ठं ॥ १५६० ॥

अर्थ— भो मुने! समस्तसङ्घके मध्य अमृतरूप अर मधुर ऐसे जिनेंद्रके वचन कर्णनिमें प्रवेश कीया, तिसकूं श्रवण करते जो तुम तिनकै उत्तम अर्थ जो च्यारि आराधना ताहि आराधनेकूं समर्थपणा है ॥ भावार्थ- जिनेंद्रभगवानके वचन श्रवण कीये हुये अमृत जो मोक्ष ताका जो आत्मिकसुख तिसका साक्षात् अनुभव करावे है अर मोक्षकूं दे हैं। तातैं जिनवचन अमृतभूत हैं अर कर्णनिकूं प्रिय हैं तातैं मधुर हैं। ऐसे जिनेंद्रके वचन जिसकै कर्णद्वार होय हृदयमें प्रवेश कीये, सो पुरुष च्यारि आराधनारूप परिणमवेमें कैसैं असमर्थ होय? ॥ गाथा-

णिरयतिरिक्खगदीसु य । माणुसदेवत्तणे य संतेण ॥
जं पत्तं इह दुक्खं । तं अणुचिंतेहि तच्चित्तो ॥ ६१ ॥

अर्थ— भो क्षपक! इहां तुमारै कहा दुःख आये हैं? जिनतैं शिथिल भये हो! इस संसारमें परिभ्रमण करते तुम नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगतिनिविषैं जो दुःख प्राप्त भये हो, सो तिनमें चित्त लगाय चिंतवन करो! ऐसे कोऊ दुःख बाकी नही रहे, जे तुम संसारमें नही भोगे। अनंतवार अग्निमें दग्ध होय होय मरे हो। अनंतवार जलमें डूबि डूबि मरे हो। अनंतवार पर्वतानितैं पतन करि करि मरे हो।

अनंतवार कूप तलाव समुद्रमें मरे हो। अनंतवार नदीनिमें वही मरे हो। अनंतवार शस्त्रनितें विदारे गये हो। अनंतवार घाणीमें पेले गये हो। अनंतवार दुष्टनिकरि खाये गये हो, पीसे गये हो, रांधे गये हो, भुलसे गये हो। अनंतवार क्षुधाकी तीव्रवेदनातैं मरे हो। अनंतवार तृषाकी वेदनातैं मरे हो। अनंतवार शीतवेदनातैं, अनंतवार उष्णवेदनातैं, अनंतवार वर्षाकी बाधातैं, अनंतवार पवनकी वेदनातैं, अनंतवार विषभक्षणतैं मरे हो। अनंतवार तीव्ररोगकी वेदनाकरि मरे हो। अनंतवार भयकरि मरे हो। अनंतवार शोककरि मरे हो। अनंतवार सिंह व्याघ्र सर्पादिक दुष्टजीवनिकरि विदारे गये हो। अनंतवार चोरनिकरि भीलनिकरि राजानिकरि कोटपालकरि म्लेच्छनिकरि मारे गये हो। अनंतवार अपनी स्त्रीपुत्र बांधवमित्र कुटुंबादिकनिकरि तथा शत्रूनिकरि मारे गये हो॥ अब इस अवसरमें मरणका भयकरि तथा वेदनाका भयकरि रत्नत्रयकूं बिगाडना उचित नही है। बहुत दुःखनिकरि अनंतकाल व्यतीत भया! अब किञ्चिन्मात्र वेदनाके प्राप्त होनेतैं परमधर्ममें शिथिल होना उचित नही॥ आगै, पूर्वै नरकमें वेदना भोगि तिनकूं दिखावे हैं॥ गाथा—

णिरएसु वेयणाउ। अणोवमाउ असादवहुलाउ॥
कायणिमित्तं पत्तो। अणंतसो तं वहुविधाउ॥ ६२॥

अर्थ— भो मुने! इस संसारमें शरीरके निमित्त असंयमी होय ऐसा कर्म उपार्जन कीया, जिसतैं नरकभूमीकूं प्राप्त भया जो तुम, सो नरकनिविषैं बहुतप्रकारकी उपमारहित असाताकी आधिक्यतासहित वेदना अनंतवार भोगी ॥ गाथा—

जदि कोइ मेरुमत्तं । लोहंडं पक्खिविज्ज णिरयम्मि ॥
उण्हे भूमिमपत्तो । णिमिसेण विलिज्ज सो तत्थ ॥ ६३ ॥

अर्थ— उष्णनरकनिमैं ऐसी ऊष्मा है, जो कोऊ मेरुप्रमाण लोहका पिण्ड क्षेपै, तो भूमिकूं नही प्राप्त होय तितनैं एक निमेषमात्रमें गलिकरि रस होय वहि जाय ऐसैं पहली दूसरी तीसरी चोथी पृथ्वीके बिलनिमैं तथा पांचवी पृथ्वीके दोय लाख बिल सब मिलि बियासी लाख बिलनिमैं घोर उष्णवेदना असंख्यातकालपर्यंत कर्मनिकै वशी होय भोगी! तो इस मनुष्यजन्ममें ज्वरादिकरोगजनित तथा तृषाजनित तथा ग्रीष्मकालजनित किञ्चित् उष्णता आय प्राप्त भई तो धर्मके धारकनिकूं समभावनिकरि नही सहनेयोग्य है कहा? यह अवसर समभावतैं परीषह सहनेका है, अर नही सहोगे तो कर्म बलवान् है छोडनेका नही, तातैं परम धैर्य अवलंबन करो ॥

तह चेव य तद्देहो । पज्जालिदो सीयणरयपक्खित्तो ॥
सीदे भूमिमपत्तो । णिविसेण सडिज्ज लोहंडं ॥ ६४ ॥

अर्थ— तैसेंही दोय लाख नरकके शीतबिल, तिनमें लाख योजनप्रमाण लोहका पिंड क्षेपिये तो नरककी शीतभूमीकूं नही प्राप्त होय, तितनैं एक निमेषमात्रमें खंडखंड होय विखरि जाय! ऐसी शीतवेदना शीतनरकके पंचमके तथा छठ्ठी सातवी पृथ्वीके बिलनिमैं जन्म धारण करि असंख्यात कालपर्यंत कर्मनिके वशी होय भोगी, तो अब इस मनुष्यजन्ममें शीतज्वरादिकजानित तथा शीतकालजनित आई प्राप्त भई जो शीतवेदना सो धर्मके धारकनिकूं सहनेयोग्य नंही है कहा? तातैं सचेत होहू। किञ्चिन्मात्र थोरे काल आई जो शीतवेदना, तातैं कायर होय परमधर्म बिगाडि संसारमें परिभ्रमण मति करो ॥ गाथा—

होदि य णरए तिव्वा। सभावदो चेव वेदणा देहे ॥
चुण्णीकदस्स वा मु-। च्छिदस्स खारेण सित्तस्स ॥ ६५ ॥

अर्थ— नरकनिविषैं स्वभावहीतैं देहविषैं तीव्र वेदना होय है। तथा तिनका देह नारकीनिकरि चूर्ण कीया तथा मूर्छाकूं प्राप्त भया तथा क्षारजलकरि सींचे हुये नारकीनिके शरीरमें प्रचुर वेदना होय हैं ॥ गाथा—

णिरयकडयम्मि पत्तो। जं दुक्खं लोहकंटएहि तुमं ॥
णेरइएहि य तत्तो। पडिउं जं पाविउं दुक्खं ॥ ६६ ॥

अर्थ— नरकरूप कटक कहिये सेना तिसविषैं तथा नरकरूप खाडेविषैं नारकीनिकरि पटक्या जो तुम, सो लोहमय कांटेनिकरि जो दुःखकूं प्राप्त भया हो, तिन नारकीनिके दीये दुःखकूं चिंतवन करो। इहां तुमारै रोगादिकतैं उपज्या तथा भूमीके स्पर्शतैं उपज्या कहा दुःख है? जिसतैं अत्यंत कायर होतहो! ॥ गाथा—

जं कूडसामलीहि य। दुक्खं पत्तो सि जं च सूलम्मि ॥
असिपत्तवणम्मि य जं। जं च कयं गिद्धकंकेहिं ॥ ६७ ॥

अर्थ— हे मुने! नरकनिविषैं कूटशाल्मलीवृक्ष जिनके ऊर्ध्व अधः कंटक तिनकरि घसीटनेकरि दुःख प्राप्त भये हो! तथा शूलीके अग्रभागविषैं तथा असिपत्रवनविषैं तथा वज्रमय है चूंच जिनकी ऐसे गृध्रपक्षी तथा कंकपक्षी तिनकरि दुःखकूं प्राप्त भये हो! ॥

सामसबलेहि दोसं। वइतरणीए य पाविउं जं से ॥
पत्तो कयं व वालुय-। मइगम्ममसायमइतिव्वं ॥ ६८ ॥

अर्थ— नरकनिमैं श्यामशबलसंज्ञक तथा अंबाबरीषजातिके दुष्ट असुरकुमार देव तिनकरि परस्पर करायो घात तथा मारण तिनकरि अति तीव्र दुःख सहे तिनकूं चित्तमें धारो। तथा दुःसह महादुर्गंध क्षार रुधिर राधिमय महाभयानक वैतरणीनदीमैं प्राप्त भये तिस घोरदुःखकूं कौन वर्णन करि सकै? सर्व अंग फूटि जाय अर जिनमें अग्नि-

समान आतापकारी महान् वेदना करनेवाला जल वहै ऐसी वैतरणीनदीके प्रवेशकरि महादुःख भोगे तथा कदंबसमान वालू रेत महादुःखकारी तिनकूं प्राप्त होयकरिकैं तीव्र असाताकूं प्राप्त भया! ॥ गाथा-

जं णीलमंडवे त- । त्तलोहपडिमाउले तुमे पत्तं ॥
जं पाइउं सि खारं । कडुयं तत्तं कलकलं च ॥ ६२ ॥

अर्थ— तथा लोहमय नीलमंडप तिनमें तप्त लोहमय फूतल्यां तिनके स्पर्शननैं बलात्कारकरि प्राप्त भया, तिनके अतिदुःखकारि आलिंगन तिनकरि जो दुःख प्राप्त भया, तिसकूं मनमें चिंतवन करो! तथा नारकीनिकरि पाया महाक्षार कटुक तप्तायमान रस तिसकरि घोरदुःखकूं प्राप्त भया! ॥ भावार्थ- नरकधरामें तप्तायमान महा विकराल जिनका स्वरूप अर अग्निकूं उगलती अर तीक्ष्ण कंटकमय तप्तायमान है देह जिनका ऐसी लोहमय फूतल्यां बलात्कारकरि पकडे हैं, तिनकरि सर्व मर्मस्थान भग्न होय हैं, अर तिनके स्पर्शन करनेकरि उपजी जो तीव्रवेदना सो वचनद्वार कही नही जाय! सो भोगे है! परंतु आयु पूर्ण भयेविना नरकमें मरण नही होय है। तथा ताम्र गालिकरि पावै है। तथा सिंडासेनितैं मुख फाडि महाकटुक क्षाररसकूं पावे है ॥ गाथ

जं खाविउं सि अवसो । लोहंगारे य पज्जलंते तं ॥

कंडुसु जं सि रद्धो। जं लिकभल्लीए तलिउं सि ॥ १५७० ॥

अर्थ— भो मुने! जो परवश हुवा संडासेनिकरि मुखकूं विदारि अर प्रज्वलते लोहमय अंगारे भक्षण कराये तिनकूं यादि करो। तथा कटाईनिमैं रांधे तथा लोहमय यंत्रमें तले गये तिनकूं चितारो ॥ गाथा—

कुट्टाकुट्टिं चुण्णा-। चुण्णिं मुग्गरमुसुंढिहत्थेहिं ॥
जं विसखंडाखंडिं। कउं तुमं जणसमूहेण ॥ ७१ ॥

अर्थ— हे मुने! जो थे मुद्गरसूं खंडि तथा हस्तकरिकै कूंटाकूंटि करिकै तथा चूर्णाचूर्णि करिकै नारकीनिके समूहकरि वारंवार खंडन कीये गये, तिसकूं चिंतवन करो ॥ भवार्थ- नरकमें नारकी परस्पर आयुधनिकरि तथा हस्तपादनिकरि घात करे हैं। तिनके घातनिकरि तुमहू वारंवार खंडन कीये गये हो ॥ गाथा—

जं अवहद्धो उप्पा-। डिदाणि अत्थीणि णिरयवासम्मि ॥
अवसस्स उक्खया जं। सतूलमूलायते जिब्भा ॥ ७२ ॥

अर्थ— बहुरि नरकधराविषैं परवश जो तुम, ताका मस्तक छेद्या गया तथा नेत्र उपाडे तथा समस्त जिह्वा उखालि, तिसकूं विचारो ॥ गाथा—

कुंभीपाएसु तुमं। उक्कढिउं जं चिरं पि अंगारे ॥

जं कुट्ठउ व णिरय- । म्मि पउलिदो पावकम्मेहिं ॥ ७३ ॥

अर्थ— हे मुने! तुम पापकर्मकरिकै कुंभीपाकनिविषैं चिरकालपर्यंत ओटाये, तथा नरकविषैं शूलमें पोया मांसकीनाईं अंगारविषैं सेके पकाये गये, सो चिंतवन करो ॥

जं भज्जिदो सि भज्जिद- । गं पि य जं गालिउं सि रसयं व ॥

जं कप्पिउं सि वल्लू- । रयं व चुण्णं व चुण्णिकदो ॥ ७४ ॥

अर्थ— नरकमें तुम भज्जिदग नाम शाककीनाईं भंगनैं प्राप्त भये हो विदारे गये हो, तथा रसवत् गाले गये हो अर वल्लूरवत् कतरे गये हो अर चूर्णवत् चूर्ण कीये गये हो, सो चिंतवन करो ॥ गाथा—

चक्केहि करकचेहि य । जं सि णिकत्तो वि कत्तिउं जं च ॥

परसूहि फाडिउं ता- । डिउं य जं तं मुसंढीहिं ॥ ७५ ॥

अर्थ— भो मुने! नरकविषैं चक्रनिकरि छेदे गये हो, करोतनिकरि चीरे गये हो, तथा कतरे गये हो, तथा नानाखंडरूप कीये गये हो, तथा फरसीनिकरि फाडे गये हो, तथा मुसंडी मुद्गरनिकरि ताडे गये हो, तिनकूं चिंतवन करो ॥ गाथा—

पासेहि जं च गाढं । बध्दो भिण्णो य जं सि दु घणेहिं ॥

जं खारकद्दमे खु- । प्पिउं सि उम्मत्थिउं अवसो ॥ ७६ ॥

अर्थ— हे मुने! तुम नरकविषैं जो पासीनिकरि दृढ बांधे गये हो, तथा जो घननिकरि भेदे गये हो अर परवश भये क्षार कर्दममैं नीचा मस्तक ऊपरि पग करि गाडे गये हो, तिन दुःखनिकूं यादि करो ॥ गाथा—

जं छोडिदो सि जं मो- । डिदो सि जं फाडिउं सि मलिदो सि ॥
जं लोटिदो सि सिंघा- । डएसु तिक्खेसु वेएण ॥ ७७ ॥

अर्थ— भो मुने! नरकविषैं जो थे हस्तपादादिकरि भग्न भये हो, अर जो पटके गये हो, अर जो फाडे गये हो, अर जो मर्द्दले गये हो, अर जो तीक्ष्ण शृंगाटक जे तीक्ष्ण पत्थर तथा कंटक तिनविषैं वेगकरिकैं जो लोटे हो घंसीटे गये हो, तिन दुःखनिकूं चिंतवन करो ॥ गाथा—

विच्छिण्णंगोवंगो । खारं सिंचित्तु पिंजिदो जं सि ॥
सत्तीहि सुतिक्खीहिं । अदयाए खुंचिउं जं सि ॥ ७८ ॥
पगळंतरुधिरधारो । पलंवचम्मो य भिण्णपोट्टसिरो ॥
पउलिदहिदउं जं फुडि- । दच्छो पडिचूरियंगो य ॥ ७९ ॥
जं वडवडित्तकरचर- । णंगो पत्तो सि वेदणं तिव्वं ॥
णिरए अणंतखुत्तो । तं अणुचिंतेहि णिस्सेसं ॥ १५८० ॥

अर्थ— हे मुने! नरकनिविषैं छिद्या है अंगोपांग जाका ऐसे तुमकूं अन्य नारकी क्षारकरि सींचिकरिकै पवनतें कंपायमान कीये हो, बहुरि तीक्ष्ण शक्ति नामा आयुध तिनकरिकै दयारहित होय खेंच्या गया हो तथा पलट्या गया हो, बहुरि झरती है रुधिरकी धारा जिनकै ऐसे, अर लटकता है खालडा जाके ऐसे, अर विदार्‍या गया है उदर अर मस्तक जाका, अर तप्तायमान है हृदय जाका, अर फूटि गई है आंखि जाकी अर चूर्णचूर्ण कीया है अंग जाका, अर वेदनाकरि कांपता है हस्तपाद जाका ऐसे तुम नरकविषें तीव्र वेदनाकूं अनंतवार प्राप्त भये हो, सो समस्त नरकके दुःख चिंतवन करो॥

भावार्थ- भो मुने! इहां तुमारे कहा वेदना है? नरकनिविषैं अनंतवार जैसी वेदना भोगी तैसी इस लोकमें देखनेमें आवै नहीं, श्रवणमें आवे नहीं, अनुभवमें आवे नहीं जहां मुद्गरनिकरि मर्मस्थाननिकूं भेदना, करोतनिकरि चीरना, वसोलेनिकरि छीलना, कुहाडेनिकरि फाडना, जंत्रनिकरि पीसना, कुंभीनिमैं ओटावना, शस्त्रनिकरि खंड करना, नाना आयुधनिकरि मारना, तिनकरि अनंतकाल दुःख भोगे हैं। तथा नरकका क्षेत्रही ऐसा है- जो कोटिवृश्चिकनिकरि एकैकाल वेदना नहीं होय तैसी पृथ्वीके स्पर्शकी वेदना है। तथा पर्वतसमान खैरके अंगारानिपरि लोटनाहू नरककी पृथ्वीके स्पर्शतैं सुखकारी दीखे है। तथा महान् कडवी दुर्गंध नरककी मृत्तिका, तो कणमात्र भक्षण

करतैंही मूर्छित हो जाय। नारकीनिकै ऐसी क्षुधा है, जो, सकलपृथ्वीके अन्नादिक भक्षण कीयेहू उपशम नही होय, अर एक कणमात्र मिलै नही। तथा नारकीनिकै ऐसी तृषाकी प्रबल वेदना है, जो, समस्तसमुद्रका जल पीजाय तोहू उपशम नही होय अर एक बूंदमात्रहू मिलै नही है। पूर्वजन्ममें अभक्ष्य भक्षण कीये हैं, रात्रिमें भोजन कीये हैं, सप्तव्यसन सेये हैं, हिंसादिक महापाप कीये हैं, निर्माल्य खाये हैं, व्रतीनिकूं कलंक लगाये हैं, विपरीत देव गुरु धर्मका मार्ग चलाया है, तिन घोरपापनिका नरकमें फल जानना ॥

तथा नरकभूमीकी मट्टी ऐसी दुर्गंध है, जो इस मनुष्यलोकमें एक कणहू आवे तो पहले पटलकीतैं आध आध कोसके पंचेंद्रिय मनुष्य तिर्यंच दुर्गंधकरि मरण करै। तथा दूसरा पटलकीतैं एक कोसके ऐसे सातमा नरकको जो गुणचासमो पटल ताकी मृत्तिकाको एक कणभी जो मध्यलोकमें आवे तो साढा चोईस चोईस कोसके पंचेंद्रिय मनुष्य तिर्यंच दुर्गंधकरि मरण करे हैं ऐसी जहां दुर्गंध नारकी भोगे हैं। तथा नरकको पृथ्वी पर्वत वृक्ष तथा नारकीनिके अत्यंत भयंकर रूप देखनेका दुःखका वर्णन कोन कहि सकै? ऐसी इस लोकमें वस्तूही नही, जाकी उपमा दीजे। तथा नारकीनिका तथा दुष्ट असुरकुमारनिका महा भयंकर शब्द सुनिये हैं, तथा नारकीनिके

शरीरमें कोटिन रोगनिका एककाल उदय आवे है, तथा मानसिक बडा दुःख नारकीनिकै है, तथा असुरकुमारनिमें अंबावरीषादि दुष्ट देव अत्यंत दुःख करनेवाली सामग्री प्रकट करे हैं, तथा मारे हैं, तथा नारकीनिकूं लडावे हैं। नारकीनिकी ऐसी पर्याय है, जो, परस्पर देखतप्रमाण अतिक्रोध प्रज्वलित होय है, देखतैंही परस्पर नेत्रनिकूं उपाडे है, आंतनिकूं काटै हैं उदरकूं विदारे हैं, इत्यादिक नानाप्रकारकं परस्पर दुःख करे हैं। तहां आयु पूर्ण हुवाविना मरण नही, तिलतिलमात्र खंड होजाय हैं, तोहू नारकीनिका शरीर पारेकीनांई मिलि जाय है, आयु पूर्ण हुवा विना नरकमैंतें निकलना नही होय है। सो ऐसे दुःख अनंतकाल भोगे! तो अब ये सन्यासमरणका अवसरमें कर्मके उदयतैं आये अति अलपकाल रोगादिकतैं उपज्या तथा क्षुधातृषादिकतैं उत्पन्न भया कहा दुःख है? अब धैर्य धारणकरि वेदनाकूं समभावनितैं सहिकरिकै अपना आतमकल्याण करो ॥ अर भो मुने! जहां अनंतानंत काल परिभ्रमण कीया ऐसी तिर्यंचगतिके दुःखनिकूं अब ऐसैं चिंतवन करो ऐसा कहे हैं ॥ गाथा—

तिरियगदिं अणुपत्तो। भीममहावेदणाउळमयारं ॥
जम्मणमरणरहट्टं। अणंतखुत्तो परिगदो जं ॥ ८१ ॥

अर्थ— भयानक है महावेदना जामैं अर नही है पार जाका ऐसी तिर्यंचगतिकूं

प्राप्त हुवा, जन्ममरणरूप घटीयंत्रकूं अनंतवार प्राप्त भया, तिसकूं चिंतवन करो ॥ भावार्थ— जैसैं अरहटका घटीयंत्र एकतरफ रीता होता जाय एकतरफ भरता जाय, तैसैं निरंतर एक आयु पूर्ण करि मरै है; अन्यमें जन्मै है। ऐसैं जन्म अर मरण निरंतर करते करते अनंतकाल व्यतीत भये हैं। तिनमें अनंतानंतकाल एकेंद्रियनिमैं व्यतीत भये अर यद्यपि त्रसपर्यायका असंख्यात काल है, तथापि अनेकवारपरिवर्तनकरि अनंतकालही त्रसमैं व्यतीत भया, तिनके दुःख कोन कहि सकै? ॥ गाथा—

ताडणतासणबंधण-। वाहणलंछणविहेडणं दमणं ॥
कण्णच्छेदणणासा-। वेहणणिल्लंच्छणं चेव ॥ ८२ ॥
छेदणभेदणडहणं। णिपीलणं गालणं छुहा तण्हा ॥
भक्खणमद्दणमलणं। विकत्तणं सीदउण्हं च ॥ ८३ ॥
जं अत्ताणो णिप्पडि-। यम्मो बहुवेदणद्दिउ पडिउं ॥
बहुएहि मदो दिवसे-। हि चडयडंतो अणाहो तं ॥ ८४ ॥

अर्थ— बहुरि तिर्यंचगतिविषैं नानाप्रकारकरि ताडन तथा त्रासन बंधन वाहन लंछन विहेडन दमन कर्णच्छेदन नासिकावेधन बीजविनाशन तथा छेदन भेदन दहन निपीडन गालन तथा क्षुधा तृषा भक्षण मर्दन मलन विकीर्णन शीत उष्ण इत्यादिक

दुःखनिकूं अशरण हूवो तथा नहीं है इलाज जाका ऐसा अर बहुतवेदनाकरि पीडित पडता हुवा बहुत दिननिपर्यंत दुःख भोगिभोगिकरि मन्या चडचडाट करता अनाथ हुवा वारंवार मरण कीया, सो चिंतवन करो ॥

भावार्थ— तिर्यंचगतिविषैं नानाप्रकारकी लाठी मूंकी चाबकानिकी ताडना भोगी, तथा नानाप्रकारके शस्त्रनिकी त्रास भोगी; तथा नानाप्रकारके दृढबंधन, नासिकावेधन, हस्तपादादिबंधन, ग्रीवाबंधन, पिंजरेनिका बंधनमें बंध्या हुवा तीव्रदुःखकूं प्राप्त भया; तथा कर्णच्छेदन, नासिकाछेदन, तथा शस्त्रनितैं वेधन तथा घसीटनां इत्यादिक दुःख सहे; तथा बहुतभारकरि हाडनिके खंड होगये; तथा मार्गमें बोझ लादि बहुत दूरि क्षेत्रपर्यंत रात्रिमें अर दिनमें वहाया; तथा अग्निमें बल्या, जलमें डूब्या, तथा परस्पर भक्षण कीया हुवा, तथा क्षुधा तृषा शीत उष्णजनित घोरवेदना भोगी, तथा पीठ गल गई, अशक्त हुवा कर्दमादिकनिमैं, तथा घोर आतापमें पड्या हुवा घोर क्लेशकूं प्राप्त भया तिनकूं चिंतवन करो! इहां कहा दुःख है? ॥ गाथा—

रोगा विविधा वाधा- । उ तह य तिव्वं भयं च सव्वत्तो ॥
तिव्वा उ वेदणाउ । धाडणपादाभिघादा य ॥ ८५ ॥

अर्थ— तथा तिर्यंचगतिमैं नानाप्रकारके रोग, तथा सर्वतरफतैं शाश्वत भय, तथा

दुष्टतिर्यंचनिकरि तथा मनुष्यनिकरि कृत घोरवेदना, तथा वचनकृत तिरस्कार, तथा चरणनिके घात तिनकूं दीर्घकालपर्यंत भोगता भया ॥ गाथा–

सुविहिय अदीदकाले । अणंतकायं तुमे अदिगदेण ॥
जम्मणमरणाटंकं । अणंतखुत्तो समणुभूदं ॥ ८६ ॥

अर्थ— हे सुंदरचारित्रके धारक! पूर्वे गया जो अतीतकाल, तिसविषैं अनंतकाय जो निगोद, तिनविषैं प्रवेश करिकै तुम जन्ममरणकी पीडाकूं अनंतवार भोगी है, सो चिंतवन करो ॥ गाथा–

इच्चेवमादि दुक्खं । अणंतखुत्तो तिरिक्खजोणीए ॥
जं पत्तो सि अदीदे । काले चिंतेहि तं सव्वं ॥ ८७ ॥

अर्थ— भो मुने! अतीतकालविषैं तिर्यग्योनिविषैं इत्यादिक दुःख अनंतवार प्राप्त भये, सो समस्त चिंतवन करो। इहां तुमारे कहा दुःख है? ॥ ऐसैं तिर्यंचगतिके दुःखनिका स्मरण कराया ॥ अब देवमनुष्यपर्यायमें जे दुःख भोगे, तिनकूं दिखावे हैं ॥

देवत्तमाणुसत्ते । जं ते जाएण सकयकम्मवसा ॥
दुक्खाणि किलेसा वि य । अणंतखुत्तो समणुभूदं ॥ ८८ ॥

अर्थ— हे मुने! अपने कीये कर्मनिके वशतैं देवपणामैं तथा मनुष्यपणाविषैं

उत्पन्न भये भी तुम दुःखनिकूं तथा क्लेशनिकूं अनंतवार अनुभव कीये हैं–भोगे हैं ॥

पियविप्पउंगदुक्खं । अप्पियसंवासजाद ुक्खं च ॥
जं वेमणस्स ुक्खं । जं दक्खं पच्छिदालाभे ॥ ८९ ॥
परभि ुदाए जं ते । असब्भवयणेहिं कडुगफरुसेहिं ॥
णिब्भच्छणावमाणण- । तज्जणदक्खाइं पत्ताइं ॥ १५९० ॥

अर्थ— देवमनुष्यपर्यायविषैं अपने प्राणनितैंहू अधिक प्रिय तिनका वियोगका दुःख, तिनकं यादि कीये हृदय फटि जाय सो बहुतवार प्राप्त भया । तथा जिनका नाम श्रवणमें आया हुवाहू मस्तकके शूलसमान वेदना करै ऐसे महादुष्ट अप्रियनिके संग वसनेकरि उत्पन्न भया जो दुःख सो बहुतवार भोगे । तथा वांछितका लाभ नही होतै जो मनके बिगडनेका जो दुःख प्राप्त भये, तिनकूं चिंतवन करो । बहुरि परके सेवकपणाविषैं पराधीन हुवा अयोग्य वचननिकरिकैं तथा कटुकवचननिकरि कठोरवचननिकरि तिरस्कार तथा अपमान तर्जनादिक दुःखनिकूं प्राप्त भये हो, तिनकूं चिंतवन करो

दीणत्तरोसचिंता- । सोगामरिसग्गिपउलिदमणो जं ॥
पत्तो घोरं दुक्खं । माणुसजोणीए संतेण ॥ ९१ ॥

अर्थ— मनुष्ययोनि होते संते दीनपणा तथा रोष चिंता शोकके वशी होय दुःख

भोग्या तथा क्रोधरूप अग्निकरि प्रज्वलित है मन जाका ऐसा जीव जो घोरदुःखकूं प्राप्त भया, सो स्मरण करो ॥ गाथा—

दंडणमुंडणताडण-। धरिसणपरिमोससंकिलेसो य ॥
धणहरणदारधरिसण-। घरदाहजलादिधणणासं ॥ ९२ ॥

अर्थ— तथा तीव्र राजादिकनिके तथा दुष्ट कोटपालनिकरि तथा राजाके दुष्ट मंत्री तथा भील म्लेंछनिकरि दीया तीव्र दंडकरि, तथा मुंडन करनेकरि, तथा नानाप्रकारकी ताडना तथा नरकके बिलसमान बंदीखानेनिमैं रोकनेकरि, तथा चोरनिकरि क्लेशकूं प्राप्त भया, तथा बलात्कारकरि धनका हरणका दुःख, तथा स्त्रीके हरणका दुःख तथा गृहका अग्निकरि दग्ध होनेतैं उपज्या दुःख, तथा गृह धनादिकका जलकरि वहनेतैं उपज्या दुःख, तथा निर्धन—धनरहित होनेतैं उपजे अनेक दुःख मनुष्यजन्ममें बहुतवार प्राप्त भये हो; तिनकूं यादि करि परमसमता ग्रहण करना उचित है ॥

दंडकसालट्ठिसदा-। णि ढंकुरा कंटमद्दणं घोरं ॥ कुंभीपाको मच्छय-।
पलीवणं भत्तवुच्छेदो ॥ ९३ ॥ दमणं च हत्थिपाद-। स्स णिगल
अंदूवरत्तरज्जूहिं ॥ वंधणमाकुट्टणयं। उलंवणणिहणणं चेव ॥ ९४ ॥
कण्णोट्ठसीसणासा-। छेदण दंताण भंजणं चेव ॥ उप्पाडणं च अच्छी-।

ण तहा जिब्भाए णीहरणं ॥ ९५ ॥ अग्गिविससत्तुसप्पा- । दिवालस-
त्थाभिघादघादेहिं ॥ सीउण्हरोगदंसम- । सएहिं तण्हा छुधादीहिं ॥ ९६ ॥
जं दुक्खं संपत्तो । अणंतखुत्तो मणे सरीरे य ॥ माणुसभवे वि तं स- ।
व्वमेव चिंतेहि तं धीर ॥ ९७ ॥ १ मुष्टिप्रहाराः

अर्थ— हे मुने! मनुष्यभवविषैं इस जीवनैं जे जे दुःख भोगे हैं, तिनकूं यादि करो। दंड वेद लाठीनिकरि मारे गये हो, घोडेनिके मारनेके कशा कहिये चावके तिनकी मार भोगी है, तथा लोहंडीनिके सैंकडेनिकरि चूरे गये हो, तथा ठोकरेनिके प्रहार अर मुष्टीनिके प्रहार भोगे हैं, तथा कंटकनिकी भूमीमैं मर्दले गये हो, घोर कहिये भयानक जैसैं होय तैसैं कटाहेनिमैं पकाये गये हो, तथा मस्तक ऊपरि अग्नि प्रज्वलित करी गई है, तथा भोजनपानके अभावकरि मारे गये हो, तथा दमन कीया है, निर्बल कीये गये हो, तथा सांकलनिकरि हस्तपाद बांधे जिनकी वेदना भोगी है, तथा रज्जू रसेनिकरि अंडक बांधि मारे गये हो, तथा रज्जूनिकरि सर्व अंगकूं बांधि मारे हैं, तथा आक्रोडन कहिये दोऊ हस्त पृष्ठपरि लेय बांधना तथा ग्रीवामैं पासीकरि बांधि वृक्षनिकी शाखानिकै झूलावना, तथा एक पावकूं वृक्षकी शाखाकै बांधि नीचे मस्तक करि लटकावना तथा खाडा खोदि उसमैं गाडि धूलीतैं खाडा भरि पूर्ण करनेकरि पराधीन पड्या घोरदुःख

भोगे हैं, तथा मनुष्यभवविषैं कर्णनिका काटना, ओष्ठका छेदना, मस्तक विदारना, नासिका छेदना, दांतनिका भंजन करना, नेत्रनिका उपाडना, जिह्वाका निकालि लेना इत्यादिकनिकरि पराधीन हुवा अनेकवार दुःख भोगे हैं, तथा अग्निमें बलिकरि मरे हो, तथा विषभक्षणकरि मरे हो, तथा शत्रुनिकरि नानाप्रकारके घातनिकरि मारे गये हो, तथा सर्पनिकरि डसे गये हो, सिंहव्याघ्रादिकनिकरि विदारे गये हो, शत्रुनिके घातनिकरि घाते गये हो, तथा शीत उष्ण डांस मच्छरनिकी वेदनाकरि तथा क्षुधा-तृषादिककी वेदनाकरि मारे गये हो, औरहू कूपमें पडना, पर्वततैं गिरना, वृक्षके पडने-करि जायगा मकानके पडनेकरि दबि मरना, तथा वर्षाकी बाधाकरि पवनकी बाधाकरि गडोनिकी मारकरि विजुलीके पडनेकरि तीव्र रोगादिककरि घोर दुःख पाय पाय अनेक-वार मरे हो। मनुष्यभवहूमैं शरीरसंबंधी दुःख तथा दारिद्र्यजानित अपमानजानित इष्टवियोगादिजनित मानासिक दुःख समस्त जो दुःख ते अनंतवार भोगे हैं, तिनकूं हे धीर चिंतवन करो! इहां सन्न्यासका अवसरमें किंचित् उपजी वेदना ताका कहा दुःख है? अब समभावनितैं सहिकरि सर्वदुःखका अभाव करनेका अवसर है, तातैं कायरता तजो, परमधैर्य धारणकरि परीषहनिकूं जीति सकलकल्याणकूं प्राप्त होहू! यह कर्मके विजय करनेका अवसर है, इस अवसरमें गाफिल रहना उचित नहीं ॥

सारीरादो दुक्खा- । दु होइ देवेसु माणसं तिव्वं ॥

दुक्खं दुस्सहमवस- । स्स परेण अभिभुज्जमाणस्स ॥ ९८ ॥

अर्थ— बहुरि देवगतिविषैं अन्यदेवनिकरि वाहनादिकपणाकूं प्राप्त कीया अर महर्द्धिकदेवनिके आधीन परवश जो देव तिसकै शरीरदुःखतैंहू अधिक मानसिक दुःसह दुःख होत है ॥ गाथा—

देवो माणी संतो । पस्सिददेवे महड्ढिए अण्णे ॥

जं दुक्खं संपत्तो । घोरं भग्गेण माणेण ॥ ९९ ॥

अर्थ— देव अभिमानी हुवो संतो अन्य महर्द्धिकदेवनिनैं देखिकरिकै मानभंगकरिकैं घोरदुःखकूं प्राप्त भया, तिनकूं चिंतवन करो ॥ गाथा—

दिव्वे भोगे अच्छर- । साउ अवसस्स सग्गवासं च ॥

पजहंतस्स य जं ते । दुक्खं जादं चयणकाळे ॥ १६०० ॥

अर्थ— स्वर्गलोकमें मरणका अवसरमें कर्मके आधीन हुवा बहुत अप्सरानिके दिव्यभोगनिकूं तथा स्वर्गका निवासकूं छांडते देवकै महान् दुःख उत्पन्न होय है, तिसकूं चिंतवन करो ॥ गाथा—

जं गब्भवासकुणिमं । कुणिमाहारं छुहादिदुक्खं च ॥

चिंततस्स य सुचियसु-। हिदस्स दुक्खं चयणकाळे ॥ १ ॥

अर्थ— महापवित्र अर सुखित जो देव ताकै मरणकालविषैं ऐसा चिंतवन होय है, जो मेरा गमन अब तिर्यंचगति तथा मनुष्यगतिके गर्भमें होयगा! तहां महादुर्गंध जो गर्भवासमें वसना, तिसकूं, अर मनुष्यातिर्यंचगतिसंबंधी मलिन दुर्गंध आहार, तिसकूं, अर क्षुधातृषादिकका दुःखनिकूं चिंतवन करतेकै महान् दुःख उत्पन्न होय है॥

भावार्थ— इस मनुष्यपर्यायमें निर्धनता, अर सप्तधातुमय मलिन रोगनिका भरया देहका धारना, अर कुदेशमें वसना, अर स्वचक्रपरचक्रका दुःख सहना, अर वैरीसमान बांधवनिमैं वसना, अर कुपुत्रके संयोगका संताप सहना, अर दुष्टस्त्रीके संग रहना, अर नीरस आहार भोगना, अपमानका सहना, चोर तथा दुष्टराजा दुष्टमंत्री कोटपालकी नानात्रासनिकरि भयभीत होय जीवना, अर अकालमें स्त्रीपुत्रकुटुंबादिकका वियोग होना, परका सेवकादिक होय पराधीन रहना, दुर्वचन सहना, क्षुधातृषादिकनिकी तीव्रवेदना सहना इत्यादिक दुःखनिका भऱ्या जो मनुष्यजन्म तिसकेविषैं अपना मरण नजीक आया जाणि लेवै, तो तत्काल वेखबरि होजाय, सर्वशरीरका रुधिर पलटि जाय, सावधानी विगडि जाय, अर देखिये तो मनुष्यजन्ममें बहोत थोरे दिननतैं आया है, अर विकाररहित दुःखरहित दिव्यशरीरादिकहू नहीं पाया है, तिस

मनुष्यदेहकूं त्यागतैंही एता दुःख होय है; तो स्वर्गलोकका धातुउपधातुरहित दिव्यशरीर असंख्यातकालपर्यंत स्वर्गनिका निवास, तिसकूं तो छोडना अर दुर्गंध मलिन देह धारण करना आपकू छ महिना पहली दीखे तिस दुःखकूं कोऊ वचनद्वारें कहवेकूं समर्थ नहीं है। मिथ्यादृष्टि देव महान् विलाप करे हैं, स्वर्गलोकका छूटना अर प्रेमके भरे असंख्यात देवनिका वियोग होना अर मनुष्यतिर्यंचनिके हाड मांस चाम मलमूत्रमय दुर्गंध शरीर धारण करना दीखे, तिस दुःखकरि देवनिकै बडा विलाप जानना ॥

एवं एदं सव्वं। दुक्खं चदुगदिगदं पि जं पत्तो ॥
तत्तो अणंतभागो। होज्ज ण वा दुक्खमिमयं ते ॥ २ ॥

अर्थ— हे मुने! इसप्रकार चतुर्गतिनिमें परिभ्रमण करता जीव जो समस्तदुःखनिकूं प्राप्त हुवा, तिसतैं अनंतवै भागहू दुःख तुमारे इस अवसरमें नही होत है, तुम कैसैं कायर होय धर्मकूं मलिन करो हो! ॥ गाथा—

संखिज्जमसंखिज्जं। कालं ताइं अविस्समंतेण ॥
दुक्खाइं सोढाइं। किं पुण अदिअप्पकालमिमं ॥ ३ ॥

अर्थ – हे मुने! जो ऐसे चतुर्गतिके घोरदुःख विश्रामरहित तुम संख्यात काल असंख्यात काल सहे, तो इस संन्यासके अवसरमें अति अल्पकाल आया जो

रोगादिजनित दुःख नहीं सहनेयोग्य है कहा? अब धैर्य धारणकरि वेदनाकूं सहिकरि अपना आत्माका कल्याण करो ॥ गाथा—

जदि तारिसाउं तुम्हे । सोढाउं वेयणाउ अवसेण ॥
धम्मोत्ति इमा सवसे- । ण कहं सोढुं ण तीरिज्ज ॥ ४ ॥

अर्थ— हे मुने! जो तुम परवश होयकरिकै चतुर्गतिमैं तैसी वेदना सही, तो इस अवसरमें वेदनाके सहनेकूं धर्म जानते तुम आपके वशकरिकै कैसे सहवेकूं नहीं समर्थ होइए हैं? ॥ गाथा—

तण्हा अणंतखुत्तो । संसारे तारिसी तुमं आसि ॥
जं पसमेदुं सवो- । दधीणमुदगं पि ण तीरेज्ज ॥ ५ ॥

अर्थ— हे मुने! संसारमें तुमारै तैसी तृषाकी वेदना अनंतवार होत भई, जिसकूं उपशांत करनेकूं सर्व समुद्रनिका जलहू समर्थ नहीं है ॥ गाथा—

आसी अणंतखुत्तो । संसारे ते छुधा वि तारिसिया ॥
जं पसमेदुं सवो । पुग्गलकाउं ण तीरिज्ज ॥ ६ ॥

अर्थ— हे मुने! संसारविषैं तुमारै ऐसी क्षुधावेदनाहू अनंतवार भई, जिसकूं उपशम करनेकूं समस्तपुद्गलकायहू नहीं समर्थ होत है ॥ गाथा—

जइ तारिसिया तण्हा । छुधा य अवसेण ते तदा सोढा ॥
धम्मुत्ति इमा सवसे- । ण कहं सोढुं ण तीरिज्ज ॥ ७ ॥

अर्थ— जो पूर्वें तिस कालमें अवश होयकरिकैं तैसी दुःसह घोरतृष्णा तथा क्षुधा तुम सही, तो अब स्ववश होयकरिकै क्षुधा तृषा सहनेकूं धर्म जानते तुम कैसे सहिवेकूं नही समर्थ होइये हैं? ॥ भावार्थ— पूर्वें अनंतकालतैं कर्मनिके वशि होय अनंतवार वेदना भोगि, तो अब चारित्रधर्मके अर्थि उद्यमी तिनकूं स्ववश होयकरिकै समभाव धारि वेदना सहना परमकल्याण है, जातैं बहुरि वेदनाके पात्र नही होहूगे ॥

सुइपाणएण अणुसि- । ट्ठिभोयणेण य पुणोवगहिएण ॥
झाणोसहेण तिव्वा । वि वेदणा तीरदे सहिदुं ॥ ८ ॥

अर्थ— तीनप्रकार धर्मकथाका श्रवणरूप पानकरिकै अर गुरुनिकी शिक्षारूप भोजनकरिकै अर ग्रहण कीया जो शुभध्यानरूप औषधकरिकै तीव्रवेदना सहिवेकूं समर्थ होइए हैं॥

भीदो व अभीदो वा । णिप्पडियम्मो व सपडिकम्मो वा ॥
मुच्चइ ण वेदणाए । जीवो कम्मे उदिण्णम्मि ॥ ९ ॥

अर्थ— हे मुने! कर्मका प्रबल उदय होतैं भयसहित होहू, तथा भयरहित होहू, इलाजरहित होहू, वा इलाजसहित होहू, वेदनातैं नही छूटोगे ॥ गाथा—

पुरिसस्स पावकम्मो- । दएण ण करंति वेदणोवसमं ॥
सुट्ठु पउत्ताणि वि उ- । सधाणि अदिवीरियाणी वि ॥ १६१० ॥

अर्थ— इस जीवकै पापकर्मका उदय तिसकरिकै अतिशक्तिवान्हू औषध बहुत यत्नतें युक्त कीया हुवाहू वेदनाका उपशम नही करे है ॥ गाथा—

रायादिकुडुंबीणं । अदयाए असंजमं करंताणं ॥
धण्णंतरी वि कादुं । ण समत्थो वेदणोवसमं ॥ ११ ॥
किं पुण जीवणिकाये । दयंतया जादणेण लद्धेहिं ॥
फासुगदव्वेहि करें- । ति साहुणो वेदणोवसमं ॥ १२ ॥

अर्थ— जिनकै दया नही ऐसे अदयाकरिकै असंयमकूं करते जे राजादिक कुटुंबी तिनके जो वेदनाका उपशम करिवेकूं धन्वंतरि जो वैद्यनिका शिरोमणि सोहू समर्थ नही। तो जीवनिकायनिमैं दया करते जे तुमारे प्रतीकार करनेवाले साधुजन ते याचनाकरि प्राप्त भये जे प्रासुकद्रव्य तिनकरि संस्तरगत साधूकै वेदनाको उपशम कहा करनेकूं नही समर्थ होय है? ॥ भावार्थ— हे मुने! थे वेदनाकरि आकुल भये वेदनाका दूरि करनेवाला इलाजकी वांछाकरि अति आकुल हो, जो, 'हमारी वेदना मिटै, जैसैं जतन करो' ऐसैं जानहू। जगतमैं राजासमान सामग्री अन्य कोनकै होय? जिनकै

समस्त औषधि अर जिनकै यो औषधि करने योग्य है यो योग्य नही ऐसा विचार नहीं, अर महान् आरंभ करतैं वा हिंसा करतैं जिनकै किंचित्हू दया नही, अर जिनकै भक्ष्य अभक्ष्यका विचार नही, तथा रात्रि खावनेका वा दिवसमें खावनेका वा वारंवार खावनेका किंचितहू संयम नही, अर बडे बडे धन्वंतरिसदृश वैद्य इलाजके करनेवाले, तोहू कर्मके उदयकरि आई रोगजनितवेदना ताहि दूरि करनेकूं समर्थ नही! तो महादयाके पालनेवाले अर संजमी ऐसे ये तुमारी वैयावृत्य करनेवाले साधु ते परघरि जाचना करि प्राप्त भये जो प्रासुकद्रव्य तिनकरि तुमारी वेदनाका उपशम कैसैं करैंगे? तातैं धैर्य धारण करि अपना उपजाया कर्मका फल समभावनिकरि भोगो! जो तुमारै नवीन कर्मबंध नही होय अर पूर्वैं बांध्या तिनकी निर्जरा होय ॥ गाथा—

मोक्खाभिलासिणो सं- । जदस्स णिधणगमणं पि होदि वरं ॥
ण य वेदणाणिमित्तं । अप्पासुगसेवणं कादुं ॥ १३ ॥
णिधणगमणमेयभवे । णासो ण पुणो पुरिल्लजम्मेसु ॥
णासं असंजमो पुण । कुणइ भवसएसु वहुएसु ॥ १४ ॥

अर्थ— मोक्षके अभिलाषी जे संयमी जन तिनकूं मरणकूं प्राप्त होना तो श्रेष्ठ है; अर वेदनाका उपशमके अर्थि अयोग्यद्रव्यका सेवन करना श्रेष्ठ नहीं। जातैं मरणकूं

प्राप्त होना तो एकजन्ममें नाश है-आगेकूं अनेकभवनिमें नाश नहीं है; अर असंजम है सो बहुत सैंकडे भवनिमें नाश करनेवाला है। तातैं एकजन्ममें थोरे दिन जीवनेकूं संजमका नाश करना उचित नहीं ॥ गाथा-

ण करेंति णिव्वुइं इ-। च्छया वि देवा सइंदया सव्वे ॥
पुरिसस्स पावकम्मे। अणुक्कमेण य उदिण्णम्मि ॥ १५ ॥
किह पुण अण्णो काहिदि। उदिण्णकम्मस्स णिव्वुदिं पुरिसो ॥
हत्थीहि अतीरंतं। भंतु भंजिहदि किह ससउं ॥ १६ ॥

अर्थ-- जीवकै उदयके अनुक्रमकरिकैं पापकर्मकूं उदय आवता संता सुख करनेकी इच्छा करते ऐसे इंद्रनिकरि सहित समस्त च्यारि निकायके देवही सुख करनेकूं समर्थ नहीं हैं; तो अन्य कोऊ पुरुष असातावेदनीय कर्मकी उदीरणा होतैं सुख कैसें करसी? जिसकूं भंग करनेकूं महाबलवान् हस्तीही समर्थ नहीं; तिसकूं बलरहित सुसा कैसैं भंग करै ॥ गाथा-

ते अप्पणो वि देवा। कम्मोदयपच्चयं मरणदुक्खं ॥
वारेदुं ण समत्था। धणिदं पि विकुव्वमाणा वि ॥ १७ ॥

अर्थ— कर्मका उदय है कारण जाकूं ऐसा आपकै आया जो मरणका दुःख ताहि

दूरि करनेकूं अतिशयकरि विक्रिया करते देवहू समर्थ नहीं हैं ॥ गाथा–

उज्झंति जत्थ हत्थी। महाबलपरक्कमा महाकाया ॥
सुत्ते तम्मि वहंते। ससया तूढिल्लया चेव ॥ १८ ॥

अर्थ— जिस नदीके बडे प्रवाहमें महान् बलपराक्रमके धारक अर बडा है देह जिनका ऐसे हस्तीही वहते चले जाय! तिस प्रवाहविषैं सुसा वहै, तिसका कहा आश्चर्य है

किह पुण अप्पणो मुच्छिह-। दि सगेणुदयागदेण कम्मेण ॥
तेलोक्केण वि कम्मं। अवारणिज्जं खु समुवेदं ॥ १९ ॥

अर्थ— उदयकूं प्राप्त भया कर्म त्रैलोक्यकरिकैहू रोक्या नहीं जाय! तो आपकरि उपजाया अर उदयके अवसरकूं प्राप्त भया कर्म आपकूं कैसैं छांडै? ॥ भावार्थ– उदयमें आया कर्म कोईकरि निवारण कीया नहीं रुकै है ॥ गाथा–

कह ठाइ सुक्कपत्तं। वाएण पडंतयम्मि मेरुम्मि ॥
देवे वि विहेडयदो। कम्मस्स तुमंमि का सण्णा ॥ १६२० ॥

अर्थ— जिस पवनकरि मेरुका पतन होय, तिस पवनतैं शुष्कपत्र कैसे तिष्ठै? देवनिनैंहू विघ्न करता कर्म, तिसकै तुमारेविषैं कहा विचार है? ॥ भावार्थ– जो कर्म स्वर्गलोकके इंद्रादिक देवनिहीका पतन कर देवै, तो तुमारा पतन करनेमें तिसकै

कहा विचार है? ॥ गाथा—

कम्माइं वलियाइं । वलिउ कम्माउ णत्थि को वि जगे ॥
सव्वबलाइं कम्मं । मद्देइ हत्थी व णलिणिवणं ॥ २१ ॥

अर्थ— जगतविषें कर्म बलवान् है, कर्मतें अधिक बलवान् कोऊही नहीं है । जातें विद्याका बंधुजनका शरीरका धनका परिवारका सर्व बल है, तिनिनैं कर्म एक क्षणमात्रमें जैसें कमलिनीके वनकूं मदोन्मत्त हस्ती मर्दन करै, तैसें मर्दन करै है ॥ गाथा—

इक्कं वि कम्मुदउं । अवारणिज्जानि सुठु णाऊण ॥
मा दुक्खावउ मणसा । कम्मम्मि सगे उदिण्णम्मि ॥ २२ ॥

अर्थ— तातें, भो कल्याणके अर्थी हो ! इसप्रकार कर्मका उदयकूं भलेप्रकार अरोक जानि अर अपने कर्मकूं उदीरणाकूं प्राप्त होते संते मनकरिकै दुःख मति करो ॥ भावार्थ— उदयमें आया कर्मकूं जिनेंद्र अहमिंद्र समस्त इंद्र देव टारिनेकूं समर्थ नहीं है । तातें अरोक जानि असाताका उदयमें दुःख मति करो, दुःख करोगे तो अधिक असाताकर्म और बंधेगा अर उदय तो टरेगा नहीं ॥ गाथा—

पाडिक्कविह विलवणे । रोडिह दुक्खाविह किलिट्ठे वा ॥
ण य वेदणावसामाहि । ण व विसेसो हवइ तिस्से ॥ २३ ॥

अण्णो वि को वि ण गुणो । त्थ संकिलेसेण होइ खवयस्स ॥
अट्टं सुसंकिलेसो । झाणं तिरियाउगणिमित्तं ॥ २४ ॥

अर्थ— हे मुने! विलाप करनेतैं, विषादरूप होनेतैं, रोवनेतैं, दुःखकरि पीडित होनेतैं, तथा क्लेशरूप होनेतैं; वेदना नही उपशमेगी—नही घटैगी—वेदनामैं तफावतभी नही होयगा। वेदनामैं संक्लेश करनेकरि अन्य कोऊभी गुण नही उपजैगा, एक बहोत संक्लेशथकी तिर्यंचगतिका कारण आर्त्तध्यान होयगा ॥ गाथा—

हदमाकासं मुट्ठी- । हि होइ तह य कंडिया तुसा होंति ॥
सिगिदा य पीडिदाउं । घुसिलिदमुदयं च होइ जहा ॥ २५ ॥

अर्थ— जैसैं मुष्टिनिके प्रहारकरि आकाशकी ताडना करना निरर्थक है, जैसैं तंदुलनिके निमित्त तुषनिकूं खोटना—कूंटना निरर्थक है, जैसैं तेलके अर्थि वालू रेतका पीलना निरर्थक है, जैसैं घृतके अर्थि जलका विलोडना मथना निरर्थक है, केवल महान् खेदका कारण है; तैसैं असातावेदनीयादिक अशुभकर्मकूं उदय आवता जो विलाप करना, रोवना, संक्लेश करना, दीनता भावना निरर्थक है—दुःख मेटनेको समर्थ नही, केवल वर्तमानकालमें दुःख वधावे अर आगानैं तिर्यंचगति तथा नरकनिगोदकूं कारण ऐसा तीव्रकर्म बांधै जो अनंतकालहूमैं नही छूटै ॥ गाथा—

पुव्वं सयमुवभुत्तं । काले णाएण तत्तियं दव्वं ॥
को धारणिउं धणिद- । स्स दिंतउं दुक्खिउं होज्ज ॥ २६ ॥
तह चेव सयं पुव्वं । कदस्स कम्मस्स पाककालम्मि ॥
णायागयम्मि को णा- । म दुक्खिउं होज्ज जाणंतो ॥ २७ ॥

अर्थ— जैसैं कोऊ पुरुष किसीका द्रव्य करजकरि आप भोग्या, अब करार पूर्ण भये अवसरविषैं न्यायमार्गकरि तिस धनवानका तितना द्रव्य देनेमें कौन ऋणवान् पुरुष न्यायतैं दुःखित होय? न्यायमार्गी तो परका धनका करज लिया सो करार पूर्ण भये देनेमें दुःख नही करै, तैसैंही पूर्वै आप कर्म उपार्जन कीया अब न्यायमार्गकरि अवसरमें उदय आय रस दीया तिसकूं भोगता कौन ज्ञानी दुःख करै? ज्ञानी तो कर्मका ऋण चुकनेका बडा आनंद माने है ॥ गाथा—

इय पुव्वकदं इणम- । ज्ज महं कम्माणुगत्ति णाऊण ॥
रिणमुक्खणं व दुक्खं । पिच्छसु मा दुक्खिउं होहि ॥ २८ ॥

अर्थ—याप्रकार अबार हमारै पूर्वकृत कर्म उदय आया है ऐसैं जाणिकरिकै दुःखकूं ऋणमोचनकीनांई देखहू अर दुःखित मति होहू ॥ भावार्थ— कर्मका उदयजानित दुःख आवे है तिसकूं अपना ऋण चुकना मानि हर्ष मानहु अर दुःख मति करो ॥ गाथा—

समस्त संघकूं साक्षीकरिकै कीया जो त्याग, तिसका भंग करनेतैं मरण श्रेष्ठ है। मरण तो अवश्य होयहीगा, परंतु व्रतभंग करना इस लोकमें महानिंद्य है, तथा मार्ग बिगाडना है, धर्मका अपवाद करावना है। अर परलोकमें बहुतकालपर्यंत अनंतदुःखनिसहित अनंत जन्ममरण करना है॥ गाथा–

आसादिदा तदो हों-। ति तेण ते अप्पमाणकरणेण ॥
राया विव सक्खिकदो। विसंवदंतेण कज्जम्मि ॥ ३४ ॥

अर्थ— जैसैं राजाकी साक्षिकरि कीया जो कार्य तिसमैं विसंवाद करता अन्यप्रकार करता पुरुष राजाकी अवज्ञा करी–अपमान कीया; तैसैं अरहंतादिक पंचपरमेष्ठीकी साक्षीतैं ग्रहण कीये जे व्रतादिक तिनकूं भंग करता पुरुष अरहंतादिकनिकी अप्रमाणता करनेकरि अरहंतादिकनिकी विराधना करी–अवज्ञा करी–उनकूं कछू गिण्या नहीं! उनतैं पराङ्मुख भया ॥ गाथा–

जइ दे कदा पमाणं। अरहंतादी हविज्ज खवएण ॥
तस्सक्खियं कयं सो। पच्चक्खाणं ण भंजिज्ज ॥ ३५ ॥

अर्थ— भो मुने! जो अरहंतादिक पंचपरममेष्ठी तुमनैं प्रमाण कीया हैं, तो तिनकी साक्षीतैं कीया जो त्यागव्रत सल्लेखना ताहि भंग मति करो ॥ गाथा–

सक्खिकदरायहीलण- । मावहइ णरस्स जह महादोसं ॥
तह जिणवरादिआसा- । दणावि दोसं महं कुणदि ॥ ३६ ॥

अर्थ-- जैसैं राजाकूं साक्षी करिकै कीया कार्यका लोप करना है, सो राजाका तिरस्कार है, सो पुरुषकै महादोषकूं प्राप्त करे है; तैसैं जिनवरादिकांकी विराधनाहू इस लोक परलोकमें जीवकै महान् दोषकूं करे है ॥ गाथा-

तित्थयरपवयणसुदे । आइरिए गणहरे महड्ढीए ॥
एदे आसादंतो । पावइ पारंचियं ठाणं ॥ ३७ ॥

अर्थ— तीर्थंकरनिकी तथा रत्नत्रयकी, श्रुतज्ञानकी, आचार्यनिकी, गणधरनिकी, महर्द्धिकनिकी विराधना करता पुरुष पारंचिक नामा प्रायश्चित्तकूं प्राप्त होय है। पंचपरमेष्ठिनिकी अवज्ञा करते पुरुषकै महान् प्रायश्चित्त होय है ॥ गाथा-

सक्खीकयरायासा- । दणे हु दोसं करेहु एयभवे ॥
भवकोडीसु य दोसं । जिणादिआसादणं कुणई ॥ ३८ ॥

अर्थ— राजाकूं साक्षी करि राजाका लोपना एक भवमें दोष करे है अर जिनादिककी विराधना करी हुई कोटिजन्मानिमैं दोष करे है ॥ गाथा-

मोक्खाभिलासिणो सं- । जदस्स णिधणगमणं पि होइ वरं ॥

पच्चक्खाणं भंजं। तस्स ण वरमरहादिसक्खिकदा ॥ ३९ ॥

अर्थ— मोक्षका अभिलाषी ऐसा संयमीकै मरणकूं प्राप्त होना श्रेष्ठ है, परंतु अरहंतादिकनिकी साक्षीकरि कीया प्रत्याख्यान जो त्याग, ताका भंग करना श्रेष्ठ नहीं है

णिधणगमणमेयभवे। णासो ण पुणो पुरिल्लजम्मेसु ॥

णासं वयभंगो पुण। कुणइ भवसएसु बहुएसु ॥ १६४० ॥

अर्थ— मरणकूं प्राप्त होना तो एकभवमें नाश है अन्य होनहार जन्मनिमैं नाश नहीं है अर व्रतभंग करना बहुत भवनिके सैंकडेनिमैं अपना नाश करे है ॥ गाथा–

ण तहा दोसं पावइ। पच्चक्खाणमकरित्तु कालगदो ॥

जह भंजणादु पावइ। पच्चक्खाणं महादोसं ॥ ४१ ॥

अर्थ— प्रत्याख्यानकूं नहीं करिकै जो मरण करे है, सो तैसैं दोषकूं प्राप्त नही होय है, जैसैं प्रत्याख्यानके भंजनतैं महादोषकूं प्राप्त होय है। ॥ भावार्थ– जो सन्न्यास नहीं धारण करै अर असंयमका त्यागहू नहीं करिकै मरण करे है, सो तो अनादिका संसारी हैही, उसनैं तो रत्नत्रय पायाही नहीं; परंतु जो संन्यास धारण करि महाव्रतादिक अंगीकार करि छांडे है--बिगाडे है, सो पुरुष अनंतानंत कालहूमैं रत्नत्रयकूं नही प्राप्त होय है। जो त्यागकी वस्तूका सेवन है, सो प्रत्याख्यानका भंग है, सो आहारकूं

त्यागिकरिकै बहुरि आहारकूं प्रार्थना करता जीव समस्त हिंसादिकनिकूं अंगीकार करे है

आहारत्थं हिंसइ । भणइ असच्चं करेइ तेणिक्कं ॥
रूसइ लुब्भइ मायं । करेइ परिगिण्हदि य संगे ॥ ४२ ॥

अर्थ— आहारके अर्थि छकायकी जीवनिके हिंसा करे है, असत्यवचन बोले है, चोरी करे है, रोष करे है, लोभ करे है, मायाचार करे है, परिग्रहकूं ग्रहण करे है ॥ भावार्थ- आहारकी वांछा करता जीव ऐसा आरंभ करे है, जिसमें असंख्यात अनंत-जीवनिका घात होजाय है, अभक्ष्यभक्षण करे है, हिंसाकूं नहीं गिणे है, आहारहीके अर्थि निंद्य असत्यवचननिमें प्रवर्तन करे है, आहारका लोभी हुवाही परधनहरण करे है, क्रोध लोभ मायाचारहू आहारमें लुब्ध हुवाही करे है, परिग्रहमें अति आसक्तताभी भोजनका लंपटीहीकै जानहु ॥ गाथा-

होइ णरो णिल्लज्जो । पयहइ तवणाणदंसणचारित्तं ॥
आमिसकालिणा छइउं । छायं मइलेइ य कुलस्स ॥ ४३ ॥

अर्थ— आहारका लंपटी पुरुष निर्लज्ज होइ है, आहारका लंपटी अपना पदस्थ नही देखे है, कुलजाति नही देखे है, बहुत धनका धनीहू नीच रंक शूद्रादिकनिके घरि भोजनकूं जाय बैठे है, भोजनका लोलपी तपश्चरण ज्ञानाभ्यास दर्शन चारित्र

समस्तकूं छांडि भोजनमें पडे है, अपना अपमानादिककूं नहीं देखे है, अभक्ष्यमें उच्छिष्टमें मांसादिकनिमें आसक्त होयकरिकै अपना उत्तम कुलकी कांतिकूं मलिन करे है॥

णासदि वुध्दी जिब्भा-। वसस्स मंदा वि होइ तिक्खा वि ॥
जोणिकासिलेसलग्गो। व होइ पुरिसो अणप्पवसो ॥ ४४ ॥

अर्थ— जो जिव्हा इंद्रियकै वश होय है, तिस पुरुषकी बुद्धि नष्ट होय है, तथा बुद्धि विपरीत होय भ्रष्ट होय है, वहुरि तीक्ष्णबुद्धिहू अत्यंत मंद होय है। वहुरि आहारका लंपटी आपका वशी नही रहे है, पराधीन होय है, जैसैं जोणिकश्लेषलग्न पुरुष पराधीन होय है; तैसैं जानहू॥ इहां "जोणिकासिलेसलग्गो" इस पदका अर्थ नहीं जाननेमें आया है, तातैं नहीं लिख्या है॥ [संस्कृत टीका— णासदि वुध्दी-बुद्धिर्नश्यति, आहारलम्पटतया युक्तायुक्तविवेकाकरणात्। कस्य? जिह्वावशस्य। तीक्ष्णाऽपि सती पूर्वं बुद्धिः कुण्ठा भवति। रसरागमलोपप्लुता अर्थयाथात्म्यं न पश्यतीति पारशीकक्केशलग्न इव भवति। पुरुषोऽनात्मवशः॥ इस टीकापरसे विद्वज्जन जान लेवेंगे.]

धीरत्तणमाहप्पं। कदपणदं विणयधम्मसध्दाउ ॥
पयहइ कुणइ अणत्थं। गललग्गो मच्छउ चेव ॥ ४५ ॥

अर्थ— भोजनका लंपटी धीरपणाकूं छांडे है, जातैं अतिलंपटीकै सोधने देखनेमें विचार नही होय है, अतिगृध्दितातैं भक्षणही करे है, बहुरि भोजनका लंपटी अपना कुल जाति पदस्थादिक नही अवलोकन करता जैठें मिष्टभोजन मिलिजाय तैठेंही योग्य अयोग्यका विचारही नही करता भक्षण करे है; तातैं अपना महानपणाकूंहू छांडे है। बहुरि भोजनका लंपटी परका उपकारकूंहू नही जाणे है, भोजनके देनेवाले के वशीभूत हुवा आपका उपकार करनेवाला स्वामी गुरु मित्र बांधवादिक तिनका उपकारकूं लोपि उलटा आप अपकार करनेमें उद्यमी होय है। बहुरि भोजनका लंपटीका विनयहू नही रहे है, जातैं विनय तो लंपटतारहित निर्लोभीका होय है, भोजनके लंपटीका विनय तो अपना स्त्रीपुत्रादिकही नही करे है, तातैं भोजनका लंपटी विनयहू छांडे। बहुरि जिसकै भोजनमें लंपटता, तिसकै धर्मका श्रद्धानकाहू अभावही होय है, जो आत्मिकसुख जाने है, तिसकै भोगानिमैं अरुचि विरक्तता हुवाविना रहै नही, तातैं भोजनका लंपटी धर्मका श्रद्धानरहितही होय है, तातैं धर्मकी श्रद्धाकाहू त्यागही भया। जैसैं कंठकूं पकडि मत्स्य अनर्थ करे है, तातैं अधिक अनर्थ भोजनकी लंपटता करे है॥ गाथा—

आहारत्थं पुरिसो। माणी कुलजादिपहिदकित्ती त्ति॥

भुंजंति अभोज्जाइं । कुणई कम्मं अकिच्चं खु ॥ ४६ ॥

अर्थ— जो पुरुष महान् अभिमानी होय अर जिसके कुलकी जातिकी कीर्तिहू जगतमें विख्यात होय ऐसाहू पुरुष भोजनके अर्थि लंपटी होयकरिकै नही भोजन करनेयोग्य ऐसे अभक्ष्य तथा परकी उच्छिष्टादिक भक्षण करे है! तथा भोजनका लंपटी दीन हुवा परके मुखकूं देखता फिरै है! तथा याचना करे है, नही करनेयोग्य निंद्यकर्म करे है ॥ गाथा—

आहारत्थं मज्जा- । रि सुंसुमारी अही मणुस्सी वि ॥
दुब्भिक्खादिसु खायं- । ति पुत्तभंडाणि दइयाणि ॥ ४७ ॥

अर्थ— वहुरि दुर्भिक्षविषैं मार्जारी तथा सुंसुमारी जो जलमें वसनेवाला मत्स्यविशेष तथा सर्पिणी तथा मनुष्यिणीहू आहारके अर्थि अपने अतिवल्लभ संतान तिनहूकूं भक्षण करे है ॥ गाथा—

इहपरलोइयदुक्खा- । णि आवहंते णरस्स जे दोसा ॥
ते दोसे कुणइ णरो । सव्वे आहारगिध्दीए ॥ ४८ ॥

अर्थ— इस लोक तथा परलोकमें मनुष्यकै दुःख देनेवाले जे दोष हैं, तिन सर्व दोषनिकूं मनुष्य आहारका अतिगृद्धिताकरिकै करे है ॥ गाथा—

अवधिट्ठाणं णिरयं । मच्छा आहारहेदु गच्छंति ॥
तत्थेवाहारभिला- । सेण गदो सालिसित्थो वि ॥ ४९ ॥

अर्थ— स्वयंभूरमण समुद्रके महामत्स्य आहारकी गृद्धिताकरिकै अनेक जीवनकूं भक्षण करिकै सप्तम नरककूं गमन करे है। अर शालिसिक्थ नामा मत्स्य अत्यंत अल्प शरीरका धारक जो कोऊ जीवकूं भक्षण करनेकूं समर्थ नही है, तोहू भोजनमें अति अभिलाष करिकैही सप्तम नरककूं प्राप्त होय है ॥ गाथा–

चक्कधरो वि सुभूमो । फळरसगिद्धीए वंचिउं संतो ॥
णट्ठो समुद्दमज्झे । सपरिजणो तो गउं णिरयं ॥ १६५० ॥

अर्थ— सुभौम नामा चक्रवर्ती छखंड भरतक्षेत्रको स्वामीहू कोऊ एक विदेशीका भेषधारी आया जो वैरी देव, ताका ल्याया एक फल, तिसके रसकी लंपटताकरि ठिग्या गया संता परिवारके लोकनिसहित समुद्रमें डूबिकरि सप्तमनरककूं प्राप्त भया! तो औरनिकी कहा कथा?॥ गाथा–

आहारत्थं काऊ- । ण पावकम्माणि तं परिगउं सि ॥
संसारमणादीयं । दुक्खसहस्साणि पावंतो ॥ ५१ ॥
पुणरवि तहेव संसा- । रं किं भमिदूणमिच्छसि अणंतं ॥

असंख्यात कालपर्यंत भोग्या, तोहू तृप्ति नहीं भई! तो अन्य सामान्य अन्नादिकनिके किंचित् आहारतैं कैसी तृप्ति होयगी? तातैं धैर्य धारणकरि आहारकी वांछाकूं छांडना योग्य है ॥ गाथा—

उध्दुदमणस्स ण रदी। विणा रदीए कुदो हवदि पीदी ॥
पीदीए विणा ण सुहं। उध्दुदचित्तस्स घुण्णस्स ॥ ५६ ॥

अर्थ— भोजनके लंपटीका चित्त एक आहारहूमैं नहीं ठहरे है—मिष्टभोजन करते करते खांटा भोजनमें वांछा उपजे है, बहुरि चिरपरामैं बहुरि लवणमें बहुरि अन्यअन्य भोजनमें चित्त उडता फिरे है। यातैं चलायमान है चित्त जाका ताके रति नहीं होय है, अर रतिविना प्रीति नहीं होय, अर प्रीतिविना सुख नहीं होय है। तातैं आहारमें गृद्धिता—लंपटताकरि चलायमान है चित्त जाका तिसके सुख कदाचित नहीं होय है ॥ गाथा—

सव्वाहारविधाणे-। हि तुमे ते सव्वपुग्गला वहुसो ॥
आहारिदा अदीदे। काले तित्तिं चसि ण पत्तो ॥ ५७ ॥
किं पुण कंठप्पाणो। आहारेदूण अज्जमाहारं ॥
लभिहिसि तित्तिं पाऊ-। णुदधिं हिमलेहणेणेव ॥ ५८ ॥

अर्थ— हे मुने! अतीतकालविषैं तुम समस्त आहारके विधानकरिकै समस्तजातिके पुद्गल बहुतवार भक्षण कीये, तोहू तुमारै तृप्ति नही भई। तो अब कंठगतप्राण जो तुम, सो इस अवसरमें किंचित् आहार ग्रहण करिकै तृप्तिकूं प्राप्त होहूंगे कहा? नही तृप्त होहूंगे। जैसैं कोऊ समुद्रका समस्तजल पीयकरिकैही तृप्त नही भया, सो उसकी बूंदके चाटनेकरि कैसा तृप्त होयगा? तातैं आहारकी अभिलाषा छांडिकरि संतोषरूप परम अमृतका आस्वादन करो॥ गाथा—

को इत्थ विंभर्ड दे। बहुसो आहारे भुत्तपुव्वम्मि॥
जुज्जिज्ज हु अभिलासो। अभुत्तपुव्वम्मि आहारे॥ ५९॥

अर्थ— इस संसारमें पूर्वकालमैं बहुतवार भोग्या जो आहार, तिसके भोगनेमें तुमारै कहा आश्चर्य है? जो पूर्वै नही भोग्या ऐसा आहारविषैं अभिलाष करै तो युक्तभी है। सो ऐसा कोऊ आहार नही, तिसकूं बहुतवार तुम नही भोग्या॥ गाथा

आवादमित्तसोक्खं। आहारो ण दु सुखमत्थ वहु अत्थि॥
दुक्खं चेवत्थ वहु। आहट्टं तस्स गिद्धीए॥ १६६०॥

अर्थ— यो, आहार जिह्वाका अग्रविषैं पतनमात्र सुखरूप भासै है, बहुतकाल सुख नही है, अतिगृद्धिताकरि ग्रहण करनेवालेकै बहुतदुःखही है॥ भावार्थ—

आहारको लंपटी जीव बहुतकाल तो नानास्वादरूप जो आहार ताकी वांछातैं आकुलतारूप दुःखी रहे है। बहुरि बहुतकाल आहारकी विधि मिलावनेकूं धनसंग्रह करना–कुमावना, सेवा करना, दीनता करना तिनकरि दुःखी रहे है। बहुरि स्त्रीपुत्रादिक आपके जे वांछित आहारकी विधि मिलावे हैं, तिनके आधीन होना तथा आप बहुतकालपर्यंत आरंभ करि खावना अर तिसका स्वाद एक क्षणमात्रका है, तातैं आहारकी गृद्धितातैं दुःखही जानहू ॥ गाथा–

जिब्भामूलं वोले- । इ वेगिर्उ वरहयव्व आहारो ॥
तत्थे व रसं जाणइ । ण य परदो ण वि य से पुरदो ॥ ६१ ॥

अर्थ— आहार करनेमें सुखके कालकी मंदताकूं दिखावे हैं– श्रेष्ठहू आहार घोडेकीनांई वेगकरिकै जिह्वाका मूलकूं उलंघन करे है अर जिह्वाका अग्रभागही रसकूं जाने है, जिह्वाका अग्रमें नही प्राप्त हुवा तिसपहलीहू रसकूं नही जाने है, अर जिह्वातैं पार उतर्या पाछैहू स्वाद नही रहे है। तातैं रसके आस्वादकूं जाननेका सुखहू अत्यंत अल्पकालही रहे है ॥ भावार्थ– संसारी जीव अतिलंपटताकरिकै तो भोजनके जीमनेमैं प्रवर्तै अर ग्रास मुखमें मेलताप्रमाण रसना इंद्रियको स्पर्श होतैंही ऐसी गृद्धिता उपजै, सो आहारकूं किंचित्कालहू ठहरने नही देवै, रस छूटै पाछै निगालि कंठमें उतारिहि

जाय है अर रसकूं स्वादनेमात्रहीमैं अतिगृद्धितातैं सुख दीखे है, जिह्वाकै स्पर्शही हुवा, स्पर्शनपहलीहू सुख नही छा अर निगलि गयापाछैंहू सुख नही रहे है ॥ गाथा–

अच्छिणिमेसणमित्तो । आहारसुहस्स सो हवइ कालो ॥
गिद्धीए गिलइ वेगं । गिद्धीए विणा ण होइ सुहं ॥ ६२ ॥

अर्थ— सो आहारके आस्वादतैं उपज्या जो सुख तिसका काल नेत्रके टिमकारनेमात्र है । ज्यौंज्यौं ग्रासमैंतैं रस निकसे है, त्यौंत्यौं गृद्धिताकरिकैं वेगकरि निगले है। अर गृद्धिताविना सुख नही होय है । चाहकी दाहमें किंचित् भोजनादि मिलि जाय तिसहीकूं संसारी जीव सुख माने है ॥ गाथा–

दुक्खं गिद्धीघत्थ- । स्साहट्टंतस्स होइ वहुगं च ॥
चिरमाहट्टियदुग्गय- । चेडस्स व अण्णगिद्धीए ॥ ६३ ॥

अर्थ— अतिगृद्धिताकरि पीडित होय भोजन करते पुरुषकै बहुत दुःख होय है। जैसैं दरिद्रीका घरकी दासीका पुत्र अन्नकी गृद्धिताकरि बहुतकालपाछैं आहार मिलै तिसकूं भक्षण करतेकै दुःख होय है ॥ गाथा–

को णाम अप्पसुक्ख- । स्स कारणं वहुसुहस्स चुक्केज्ज ॥
चुक्कइ हु संकिलेसे- । ण मुणी सग्गापवग्गाणं ॥ ६४ ॥

जो दुःख संसारी जीव नही पाया ॥ गाथा—
बाकी नही रह्या, जो दुःख संसारी जीव नही पाया ॥ गाथा—

दुक्खं अणंतखुत्तो । पाविंत्तु सुहं पि पावदि कहिंचि ॥
तह वि य अणंतखुत्तो । सव्वाणि सुहाणि पत्ताणि ॥ ८४ ॥

अर्थ— इस संसारविषैं यो जीव अनंतवार दुःख पायकरिकैं कोईप्रकार इंद्रियजनित
सुखकूं एकबार प्राप्त होय है। बहुरि अनंतपर्यायानिमैं अनंतवार दुःखनिकूं प्राप्त होइ बहुरि
एकवार सुखकूं प्राप्त होय है! ऐसैं अनंतवार विषयाधीन इंद्रियजनित सुखहू प्राप्त
भया। एक सम्यग्दर्शनके धारीनिके स्थान जे गणधर कल्पेंद्र तथा लौकांतिकदेवपना
तथा नव अनुदिश पंच अनुत्तर तीर्थंकरादिकनिके पद कबहू नही धाऱ्या ॥ गाथा—

करणेहिं होदि विगलो । वहुसो वचिंचित्तसोदाणित्तेहिं ॥
घाणेण य जिब्भाए । चिट्ठावलविरियजोगेहिं ॥ ८५ ॥
जच्चंधवहिरमूउ । छादो तिसिउ वणे व एयाई ॥
भमइ सुचिरं पि जीवो । जम्मवणे णट्ठसिद्धिपहो ॥ ८६ ॥

अर्थ— इस संसारमें यो जीव बहुतवार वचन, मन, कर्ण, नेत्र, जिव्हा, नासिका,
तथा बल, वीर्य इनके संयोगकरि रहित भया इंद्रियनिकरि विकल होय है। निर्वाणका
मार्ग जो रत्नत्रय तिसकरि रहित भयो यो जीव संसाररूप वनविषैं चिरकाल जो

अनंतकालपर्यंत एकाकी "जन्मतैं अंध भया, तथा बधिर भया, गूंगा भया, क्षुधावान् हुवा, तृषावान् हुवा, वनमें भ्रमण करै तैसैं" भ्रमण कीया ॥ भावार्थ- संसारमें जीव जन्मतैंही अंध हुवा बहिरा गूंगा क्षुधातृषाकरि पीडित बहुतकाल भ्रमण कीया है, सो मार्ग जो रत्नत्रय ताहि नही ग्रहण करि कीया है ॥ गाथा-

एइंदिएसु पंचवि-। धेसु वि उत्थाणवीरियाविहूणो ॥
भमदि अणंतं काळं। दुक्खसहस्साणि पावंतो ॥ ८७ ॥

अर्थ— बहुरि पृथ्वीकाय-अप्काय-तेजस्काय-वायुकाय-वनस्पतिकायस्वरूप जे पंचप्रकारके एकेंद्रिय, तिनविषैं त्रसकायकी प्राप्तीके अर्थि उद्यम तथा उत्थान कहिये उठना इत्यादिककी शक्तिरहित हुवा हजारनि दुःखनिकूं प्राप्त भया अनंतकालपर्यंत स्थावरकायमें भ्रमण करै है ॥ गाथा-

बहुदुक्खावत्ताए। संसारणदीए पावकलुसाए ॥
भमइ वराउ जीवो। अण्णाणणिमीलिदो सुचिरं ॥ ८८ ॥

अर्थ— बहुतप्रकारके शरीरतैं उपज्या अर मनतैं उपज्या है दुःख जामैं, अर पापकरि मलिन ऐसी संसाररूप नदीविषैं अज्ञानभावकरि मुद्रित है ज्ञानरूप नेत्र जाका ऐसा वराक संसारी जीव चिरकाल भ्रमण करै है। गाथा-

विसयामिसारगाढं । कुजोणिणेमि सुहदुक्खदढखीलं ॥
अण्णाणतुंबधरिदं । कसायदढपट्टियावद्धं ॥ ८९ ॥
बहुजम्मसहस्सविसा- । लवत्तणी मोहवेगमदिचवलं ॥
संसारचक्कमारुहि- । य भमदि जीवो अणप्पवसो ॥ १७९० ॥

अर्थ— ऐसा संसाररूप चक्र ऊपरि चढ्या जीव परवश हुवा भ्रमण करे है ॥ कैसाक है संसारचक्र? विषयनिका अभिलाषरूप जे आरा तिनकरि दृढ है, बहुरि नरकादिक कुयोनि तेही जाके नेमि कहिये पूठी हैं, अर सुखदुःखरूप जामें दृढ कीला है, अर अज्ञानभावरूप तुंबकरि धार्‍या है, अर कषायरूप दृढपट्टिकाका जाकै बंध है, अर बहुत-जन्मके सहस्ररूप विस्तीर्ण जाका परिभ्रमणका मार्ग है, अर मोहरूप जाका वेग है—अति-चंचल है, ऐसा संसाररूप चक्रपरि चढ्या जो जीव तिसका निकलना बहुत कठिन है ॥

भारं णरो वहंतो । कहिंचि विस्समदि उरुहिय भारं ॥
देहभरवाहिणो पुण । ण लहंति खणं पि विस्सामिदुं ॥ ९१ ॥

अर्थ— भारकूं वहता पुरुष तो कोऊ स्थानविषैं भारकूं उतारि विश्रामकूं प्राप्त होय है। बहुरि देहका भारकूं वहता पुरुष क्षणमात्रहू विश्राम करिवेकूं नहीं प्राप्त होय है। अर जहां औदारिक वैक्रियकका भार उतारे है, तहांहू इनतैं अनंतगुणे परमाणूनिके

स्कंधरूप तैजस कार्मण शरीरका वडा भार वणि रह्या है। जिसतैं आत्माका केवलज्ञान अनंतदर्शन अनंतसुख अनंतवीर्य प्रकट नहीं होय सके है ॥ गाथा—

कम्माणुभावदुहिदो। एवं मोहंधयारगहणम्मि ॥
अंधो व दुग्गमग्गे। भमदि हु संसारकंतारे ॥ ९२ ॥

अर्थ— जैसें विषममार्गमें अंधा परिभ्रमण करै; तैसें मोह अंधकारकरि गहन जो संसार रूप वन ताविषें कर्मके प्रभावकरि दुःखित जीव भ्रमण करे है ॥ गाथा—

दुक्खस्स पडिगरिंतो। सुहमिच्छंतो य तह इमो जीवो ॥
पाणवधादी दोसे। करेइ मोहेण संछण्णो ॥ ९३ ॥

अर्थ— यह संसारी जीव दुःखसूं भयरूप हुवा दुःखका प्रतीकार जो इलाज ताहि करता अर सुखकूं अभिलाष करता मोहकरि आच्छादित हुवा हिंसादिकदोषही करे है ॥ भावार्थ- संसारी जीव दुःखतैं भयवान् होइ अर सुखकी वांछा करता मिथ्यादर्शनका प्रभावकरि विपरीत इलाज करे है! दुःखकूं दूरि करि सुखकी उत्पत्ति करनेमें समर्थ ऐसे जे महाव्रत अणुव्रत तिनमैं निरादर करि अपनैं दुःख करनेवाले जे पंच पाप प्राणीनिकी हिंसा, असत्य, परस्त्रीसेवन, परधनमें वांछा, वहु आरंभ-वहु परिग्रह इनमैं तीव्र राग करि प्रवर्ते है, अभक्ष्यभक्षण करे है, अयोग्य अन्याय ग्रहण करे है, इनितैं नरका-

दिकमैं घोरदुःख बहुतकालपर्यंत भोगवे है। मिथ्यात्वके उदयकरि दुःखके कारणनिकूं
सुख जानि अंगीकार करे है ॥ गाथा-

दोसेहि तेहि वहुगं । कम्मं वंधइ तहा णवं जीवो ॥
अह तेण पच्चइ पुणो । पविसित्तु व अग्गिमग्गीदो ॥ ९४ ॥
वंधंतो मुच्चंतो । एवं कम्मं पुणो पुणो जीवो ॥
सुहकामो वहुदुक्खं । संसारमणादियं भमइ ॥ ९५ ॥

अर्थ— ते हिंसादिक दोष तिनकरिकै जीव नवीन नवीन बहुतकर्मकूं तैसैं बांधत
है जैसैं तिस कर्मकरि बहुरि परिपाककूं प्राप्त होइ बाधाकूं प्राप्त होइ जैसैं अग्नीतैं निकसि
बहुरि अग्नीमैं प्रवेश करे! ऐसैं संसारी जीव कर्मकरि वारंवार बंधता अर वारंवार
छूटता सुखका इच्छक हुवा बहुतदुःखरूप अनादिसंसारमें भ्रमण करे है ॥ इहां पंचपरिव-
र्तनका विशेषरूप ग्रंथ बधनेके भयकरि नहीं कह्या है॥ ऐसैं संसारानुप्रेक्षा वर्णन करि ॥
अब लोकानुप्रेक्षा पंदरा गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा-

आहिंडयपुरिसस्स व । इमस्स णीया तहिं तहिं होंति ॥
सव्वे वि इमो पत्तो । संवंधे सव्वजीवेहिं ॥ ९६ ॥

अर्थ-संसारमें परिभ्रमण करता इस पुरुषकै तिसतिस पर्यायमें बांधव स्वजन समस्त संबंध

होइ हैं। इस संसारमें समस्त जीवनिकरि सहित समस्तसंबंधनिकूं अनेकवार प्राप्त भया है॥

माया वि होइ भज्जा। भज्जा मायत्तणं पुणमुवेदि॥
इय संसारे सव्वे। परियत्तंते हु संबंधा॥ ९७॥

अर्थ— संसारमें माताहू भार्या होत है, बहुरि भार्या जो स्त्री सो मातापणाकूं प्राप्त होय है, इसप्रकार संसारविषैं समस्तसंबंध निरंतर पलटे हैं॥ गाथा—

जणणी वसंततिलया। भगिणी कमला य आसि भज्जाउ॥
धणदेवस्स य एक्क-। म्मि भवे संसारवासम्मि॥ ९८॥

अर्थ— इस संसारवासमें अन्यपर्यायनिमें जे अनेक संबंध होइ, ते तो दूरिही रहो; एकही भवविषैं धनदेव नामा वणिक्पुत्रकी वंसततिलका मातही अपनी भार्या भई! अर एक उदरमें उपजी ऐसी कमला नामा बहणहू स्त्री होत भई! जो एकजन्ममें येता अपवाद पाया, तो अन्यजन्मकी कहा कथा है?॥ गाथा—

राया वि होइ दासो। दासो रायत्तणं पुणमुवेदि॥
इय संसारे परिय-। त्तंते ठाणाणि सव्वाणि॥ ९९॥

अर्थ— पापकर्मका उदय आवे है तदि राजा तो दास होय है, बहुरि दास राजा होय है। संसारमें समस्तस्थान जे पदस्थ ते पलटत हैं॥ गाथा—

कुलरूवतेयभोगा- । धिगो वि राया विदेहदेसवदी ॥
वच्चघरम्मि सुभोगो । जाउ कीडो सकम्मेहिं ॥ १८०० ॥

अर्थ— कुलवान् रूपवान् तेजका धारक अर अन्यलोकनितैं भोगनितैं अधिक ऐसा विदेहदेशका स्वामी सुभोग नामा राजा आपके अशुभकर्मके वशकरिकैं विष्ठाके गृहमें कीडा होत भया! इस संसारमें पापपुण्यका समस्त चरित्र है ॥ गाथा—

होऊण महड्ढीउ । देवो सुभवण्णगंधरूवधरो ॥
कुणिमम्मि वसहि गब्भे । धिगत्थु संसारवासस्स ॥ १ ॥

अर्थ— शुभवर्ण, शुभगंध, शुभरूपका धारकहू महान् ऋध्दिका धारक देव होय करिकै बहुरि आयुका अंतकरि महामलिन दुर्गंध गर्भस्थानकमैं प्रवेश करे है! तातैं संसारके वासकूं धिकार होहू! ॥ गाथा—

इथ विं परलोगे वा । सत्तू पुरिसस्स हुंति णीया वि ॥
इहइं परत्त वा खा- । इ पुत्तमंसं णिययमादा ॥ २ ॥

अर्थ— जे अपने अति निज हैं, तेहू इस लोकमें वा परलोकमें पुरुषकै अपने शत्रु होय हैं। निजमाताही इस लोकमें वा परलोकमें अपने पुत्रका मांस खाई है! इस-सिवाय अनर्थ कहा है? ॥ गाथा—

होऊण रिऊ वहुदु-। क्खकारउं वंधवो पुणो होदि ॥
इय परियत्तइ णीय-। त्तणं च सत्तुत्तणं च जये ॥ ३ ॥

अर्थ— जो पूर्वे बहुत दुःखका करनेवाला वैरी होयकरिकै बहुरि इसही लोकमें स्नेहकरि सहित अपना बांधव होय है। जगतविषै इसप्रकार निजपणा अर शत्रुपणा क्षणमात्रमें रागद्वेषके वशतैं पलटे है ॥ गाथा—

विमलाहेदुं वंके-। ण मारिउं णियथभारियागब्भे ॥
जाउं जाउं जाई-। भरो सुदिट्ठी सकम्मेहिं ॥ ४ ॥

अर्थ— विमला नाम स्त्रीके निमित्त वक्र नामा अपना सेवककरिकै मान्या, जो सुदृष्टि नामा पुरुष, सो अपने कर्मकरिकै अपनी स्त्रीके गर्भमें उत्पन्न भया। अर पाछै जातिस्मरण जो पूर्वजन्मका स्मरणकूं प्राप्त भया ॥ गाथा—

होऊण वंभणो सो-। त्तिउ वि पावं करित्तु माणेण ॥
सूणहो व सुयरो वा। पाणो वा होइ परळोए ॥ ५ ॥

अर्थ— वेदांती ब्राह्मण होइकरिकै अर अभिमानकरि पाप उपजायकरिकै अर मरिकरि श्वान होय है! वा सूकर होइ वा चांडाल होय है ॥ गाथा—

दारिद्दं अद्धित्तं। णिंदं च थुदिं च वसणमब्भुदयं ॥

पावदि वहुसो जीवो। पुरिसित्थिणपुंसयत्तं च ॥ ६ ॥

अर्थ— संसारी जीव लाभांतरायके उदयतैं दरिद्र होय है। बहुरि लाभान्तरायके क्षयोपशमतैं बहुतधनका धनी होय है, वांछिततैं अधिक संपदा प्राप्त होय है। अयशस्कीर्ति नाम कर्मके उदयतैं निंदाकूं प्राप्त होय है। यशस्कीर्ति नाम कर्मके उदयतैं जगतमैं उज्वल जस विस्तरे है। असातावेदनीयकर्मके उदयतैं व्यसन, कष्ट, दुःखकूं प्राप्त होय है। सातावेदनीयके उदयतैं देवमनुष्यगतिमैं सुखकूं प्राप्त होय है। वेदके उदयकरिकै वारंवार पुरुष-स्त्री-नपुंसकपणाकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा—

कारी होइ अकारी। अप्पडिभोगो जणो हु लोगम्मि ॥
कारी वि जणसमक्खं। होइ अकारी सपडिभोगो ॥ ७ ॥

अर्थ— इस संसारविषैं पुण्यरहित पुरुष दोष अपराध नही करै तोहू लोकमें उसका अपराध करना प्रकट होय है। अर पुण्यसहित पुरुष जनांकै प्रत्यक्ष देखतैं कीया हुवाहू अपराध जगतविषैं प्रकट नही होय है ॥ भावार्थ— जीवके पापका उदय आवै तदि विनाकीया दोषका करना प्रकट होइ जगत सदोषी कहे है। अर पुण्य उदय आवै तदि कीया हुवा अपराधहू जगतमें प्रकट नही होय है ॥

सरिसीए चंदिगाए। कालो वेस्सो पिउं जहा जुण्हो ॥

सरिसे यि तहा चारे। कोई वेस्सो पिउ कोइ ॥ ८ ॥

अर्थ— जैसें एक मासके दोय पक्ष, तिनमैं चंद्रमाकी चांदणी समान है, अर समानकालही चंद्रमाका उदय है– शुक्लपक्षमें पहली रात्रीविषैं चांदणी विस्तरे है, कृष्णपक्षमें पाछिली रात्रिमैं चांदणीसमान काल रहे है, अर चंद्रमाकी कलाहू समानही रहे है, ताहू लोकमैं कृष्णपक्ष द्वेष करनेजोग्य समस्तकै अप्रिय है, अर शुक्लपक्ष समस्तकै प्रिय है; तैसें आचरण क्रिया कार्य उपकार अपकार समान करतेहू कोऊ समस्तकै द्वेष करनेयोग्य अप्रिय होय है, कोऊ समस्तकै राग करनेयोग्य प्रिय होय है। तातैं पुण्यपापके प्रबल उदयमें कर्तव्य नही चालिसकै है। कर्मका उपशम होतैं समस्त करना सफल होय है

इय एस लोगधम्मो। चिंतिज्जंतो करेइ णिव्वेदं ॥
धण्णा ते भयवंता। जे मुक्का लोगधम्माउ ॥ ९ ॥

अर्थ— इसप्रकार इस लोकका स्वभाव चिंतवन कीया हुवा जीवकै संसार देह भोगनिमैं विरक्तता उपजावे है। लोकमें ते ज्ञानवान् सामर्थ्यवान् धन्य हैं–पूज्य हैं, जे इस लोकके स्वभावमें रागद्वेष छांडि अपने आत्मस्वभावमें रोचे हैं ॥ गाथा–

विज्जू व चंचलं फेण। व दुव्वलं वाधिमहियमच्चुहदं ॥
णाणी किह पेच्छंतो। रमिज्ज दुक्खाउरं लोगं ॥ १८१० ॥

अर्थ— यो मनुष्यलोक विजुलीवत् चंचल है, फेन जो झाग तिसकीनांई दुर्बल है, अर व्याधिकरि मथित है, अर मृत्युकरि ताडित है, अर दुःखकरि आकुल है, ऐसा इस मनुष्यलोककूं देखता संता ज्ञानी इसमैं कैसैं रमै ? ॥ ऐसैं लोकस्वभावका चिंतवन पनरा गाथानिमैं कह्या ॥

अब अशुभभावना, ताकूं अशुचिहू कहिये है, ताकूं आठ गाथानिमैं वर्णन करे हैं ॥

अब अशुभभावना, ताकूं अशुचिहू कहिये है, ताकूं आठ गाथानिमैं वर्णन करे हैं ॥

असुहा अत्था कामा । य हुंति देहो य सव्वमणुयाणं ॥
एउ चेव सुभो णव- । रि सव्वसोक्खायरो धम्मो ॥ ११ ॥

अर्थ— इनि मनुष्यनिकै ये अर्थ जे धनादिक अर काम जे पंचइंद्रियनिके विषय ते अशुभ हैं-जीवकै अकल्याण करनेवाले हैं। अर देहमें लालसा है सो अशुभ है-अनंतानंत जन्ममरण करावनेवाली है। केवल यो धर्म है, सो समस्तसुखका करनेवाला है, अर शुभ है-समस्तकल्याणका बीज है ॥ अब धनतैं उपज्या अनर्थकूं दिखावे हैं ॥

इहलोगियपरलोगिय- । दोसे पुरिसस्स आवहे णिच्चं ॥
अत्थो अणत्थमूलं । महाभउ मुत्तिपडियत्थो ॥ १२ ॥

अर्थ— इस संसारमें ये धन हैं ते इस लोकसंबंधी काम, क्रोध, मद, मोह, अभिमान, भय, मायाचार, ईर्षा, बहुआरंभ, बहुपरिग्रह, हिंसादिक समस्तदोषनिकूं प्राप्त करे

है—समस्त कासादिक भयादिक समस्त धनतैं होय हैं। तातैं धन है सो समस्त इस लोकसंबंधी दोषनिकूं नित्यही प्राप्त करे है अर परलोकमें दुर्गतिकूं प्राप्त करे है। तातैं अर्थ जो धन है, सो महान् अनर्थका मूल है; वैर, कलह, दुर्ध्यान, ममता धनहीतैं वधे है। अर धन है सो महाभयका कारण है अर मुक्तिकै दृढ अर्गल है। जातैं तीव्र-रागका वधावनेवाला धन, तातैं मुक्तिं अतिदूरि वर्तें है। मुक्ति तौ वीतरागतातैं होइ है ॥ अब कामका अशुभपणा कहे हैं ॥ गाथा—

कुणिमकुडिभवा लहुग-। त्तकारया अप्पकालिया कामा ॥
उवधो लोए दुक्खा-। वहा य ण य हुंति ते सुलहा ॥ १३ ॥

अर्थ— बहुरि कामविषय हैं ते सिडी हुई दुर्गंध देहरूप कुटीतैं उत्पन्न भये हैं, अर जगतमें लघुपणाका करनेवाले हैं, अर अल्पकाल रहे हैं, अर दोऊ लोकमें दुःखका वहनेवाले हैं, तोहू ये भोग सुलभ नही हैं॥ भावार्थ- ये कामभोग अत्यंतदुर्गंध देहतैं उपजे हैं, अर भोगी कामी जगतमैं निंद्य होइ हैं, अर कामभोगका कालभी अति अल्प है, अर काममें आसक्त जो कामी सो इस लोकमें कलंक अपवाद अर परलोकमें नरकादिक दुर्गतिकूं प्राप्त होय है, अर ऐसे अनर्थकारीहू कामभोग पूर्वले पुण्यविना नहीं मिले हैं, हाय हाय करता दुर्गति जाय है॥ ऐसैं कामकृत

अशुभपणा दिखाया ॥ अब देहका अशुभपणा दिखावे हैं ॥ गाथा—

अट्ठिदलियच्छिराव- । क्कवद्धिया मंसमट्टिया लित्ता ॥
वहुकुणिमभंडभरिदा । विहिंसणिज्जा हु कुणिमकुडी ॥ १४ ॥

अर्थ— देहकूं कुटीसमान वर्णन करे हैं। सो देहरूप कुटी कैसीक है? हाडनिके खंडनिकरि रची है, अर नासाजालरूप वकलकरि बंधी है, अर मांसरूप मांटीकरि लिप्त है, अर महादुर्गंध शिडता हुवा मांस-रुधिर-मल-मूत्र-रूप भांडकरि भऱ्या है, अर ग्लानि करनेयोग्य है, दुर्गंधकुटीसमान है ॥ ऐसैं देहरूप कुटीका अशुभपणा दिखाया ॥

इंगालो धुव्वंतो । ण सुद्धिमुवयादि जह जलादीहिं ॥
तह देहो धोवंतो । ण जाइ सुद्धिं जलादीहिं ॥ १५ ॥

अर्थ— जैसैं अंगारेकूं जलादिककरि धोयेहू शुद्धीकूं नही प्राप्त होय है—अपना शामपणाकूं नही छांडे है; तैसैं जलादिककरि प्रक्षालन कीया देह शुद्धताकूं नही प्राप्त होय है ॥ गाथा—

सलिलादीणि अमिज्झं । कुणइ अमिज्झाणि ण हु जलादीणि ॥
मेज्झममेज्झं कुव्वं- । ति सयममिज्झाणि संताणि ॥ १६ ॥

अर्थ— अमेध्य कहिये महान् अपवित्र शरीर सो जलादिकनिकूं अशुद्ध करे है,

अर जलादिक अपवित्र शरीरकूं पवित्र नही करे है ॥ गाथा-

तारिसयममिज्झमयं । सरीरयं किह जलादिजोगेण ॥
मिज्झं हविज्ज मिज्झं । ण हु होदि अमिज्झमयघडउं ॥ १७ ॥

अर्थ— तैसा अशुचिमय शरीर जलादिकका धोवनेकरि क्यूं पवित्र होय है कहा? कदाचित् नही होइ। जैसें मलका घडा जलादिककरि शुध्द नही होइ है; तैसें मलमय हाड चाम मांस रुधिर मल मूत्रादिकमय शरीर जलादिककरि शुद्ध नही होय है ॥

णवरि हु धम्मो मिज्झो । धम्मत्थस्स वि णमंति देवा वि ॥
धम्मेण चेव हुंति हु । साहू जल्लोसधादीया ॥ १८ ॥

अर्थ— केवल एक धर्मही पवित्र है, धर्मविषैं तिष्ठतेकूं देवहू नमस्कार करे हैं, अर धर्मकरिकैही साधूकै जल्लौषधादिक ऋद्धि प्रकट होइ हैं ॥ इहां प्रकरण पाइ जल्लौषधादिक ऋद्धि कौन कौन हैं, तिनकूं कहे हैं-

ऐसा प्रकरण है- मनुष्य दोयप्रकारके हैं। एक आर्य, एक म्लेच्छ, ऐसें दोय जाति हैं। तिनमें आर्य दोयप्रकारके हैं। एक ऋद्धिनिकूं प्राप्त भये ते ऋध्दिप्राप्तार्य मनुष्य हैं। एक जिनकूं ऋध्दि नही प्राप्त भई ते अनृध्दिप्राप्तर्य मनुष्य हैं। तिन ऋध्दिरहित आर्यनिके पंच भेद हैं। क्षेत्रार्य, जात्यार्य, कर्मार्य, चारित्रार्य, दर्शनार्य। तिनमें

जे मनुष्य काशी कोशलादिक उत्तमदेशमें उपजे, ते क्षेत्रार्य हैं। अर इक्ष्वाकुवंश
भोजवंश इत्यादिक उत्तमकुलमें उत्पन्न भये ते जात्यार्य हैं। अर कर्मार्य तीनप्रकार हैं
। सावद्यकर्मार्य, अल्पसावद्यकर्मार्य, असावद्यकर्मार्य। तिनमें जे पापकर्मसहित
जीविका करै, ते सावद्यकर्मार्य हैं। अर अल्पपापसहित जीविका करै, ऐसे व्रती-
श्रावक ते अल्पसावद्यकर्मार्य हैं। अर समस्तपापरहित जो जीविका करै, सो असाव-
द्यकर्मार्य है। इनमें सावद्यकर्मार्य छप्रकार हैं॥

असि जो खड्गादिक आयुध बांधि जीविका करै, सो असिकर्मार्य है। अर
धनसंपदादिकनिका आगमन तथा खरच हिसाब लेखादिकनिके लिखनेमें निपुण होइ
जीविका करै, सो मषिकर्मार्य। हल, फावडा, दांतलादिक जे खेतीके उपकरणनि-
करि धान्यादिकका वाहणां छेदना इत्यादिककरि धान्य उपजाय खेतीसूं जीविका
करै, ते कृषिकर्मार्य हैं। आलेख्य गणितशास्त्रादिक बहत्तरि कला इत्यादिक विद्याका
पठनपाठनादिककरि जीविका करै, ते विद्याकर्मार्य हैं। बहुरि नाई, धोबी, लुहार
सुनार, कुंभार, खाती इत्यादिक शिल्पिकर्म करि आजीविका करै, ते शिल्पिकर्मार्य
हैं। बहुरि चंदनकर्पूरादिक सुगंधद्रव्य तथा घृततैलादिक रस अर शालीनैं आदिलेय
शाली, गोहूं, चणा, मूंग, जव, इत्यादिक धान्य अर कपास, वस्त्र, मणि,

मोती, सुवर्ण, रूपा इत्यादिक नानाप्रकार द्रव्यनिका बेचना खरीदना इत्यादिक विणजकरि आजीविका करै, ते वणिकर्मार्य हैं। ऐसैं छप्रकारके कहे, ते अविरतमें प्रवृत्तितैं सावद्यकर्मार्य हैं। अर श्रावकके अणुव्रतादिक धारण करि अन्यायका त्यागकरि न्यायरूप यत्नाचारतैं जीविका करे हैं, बहुतपापसहित जीविका नहीं करै, ते अलपपापमें प्रवर्तनेतैं अर बहुतपापतैं पराङ्मुख होनेतैं अणुव्रती श्रावक अलपसावद्यकर्मार्य हैं॥ अर समस्त पापका तथा आरंभादिकनिका मन-वचन-कायकरि त्यागी होय कर्मनिके क्षय करनेमें उद्यमी होय ऐसे निर्ग्रंथमुनि असावद्यकर्मार्य हैं। ऐसैं सावद्यकर्मार्य, अलपसावद्यकर्मार्य, असावद्यकर्मार्य तीनप्रकार कर्मार्य नामा तीसरा भेद कह्या॥

बहुरि चारित्रार्य दोयप्रकार हैं। अभिगतचारित्रार्य, अनभिगतचारित्रार्य। जे चारित्रमोहके उपशमतैं तथा चारित्रमोहके क्षयतैं बाह्य उपदेशकूं नहीं अपेक्षा करिकै आत्माकी उज्वलतातैं चारित्रपरिणामकूं प्राप्त भये ऐसे उपशांतकषाय गुणस्थानके धारक वा क्षीणकषायगुणस्थानके धारक, ते अभिगतचारित्रार्य हैं। बहुरि जे अंतरंगमें चारित्रमोहका क्षयोपशम होते संते बाह्य उपदेशके निमित्ततैं संयमके परिणामकूं ग्रहण कीये ते अनभिगतचारित्रार्य हैं॥

बहुरि दर्शनार्य दशप्रकार हैं। आज्ञा, मार्ग, उपदेश, सूत्र, बीज, संक्षेप, विस्तार,

श्रद्धानके भेदतैं सम्यक्त्वके दश भेद हैं ॥
अर्थ, अवगाढ, परमावगाढ ऐसैं दशप्रकार श्रद्धानके भेदतैं सम्यक्त्वके दश भेद हैं ॥ जो
तिनमैं जो सर्वज्ञ वीतराग अर्हंतभगवानकी आज्ञामात्रकरि जाकै श्रद्धान भया, जो
समस्तपदार्थनिकूं एककाल क्रमरहित समस्त अतीत--अनागत--वर्तमानपर्यायनिसहित
जाणै, "ऐसे सर्वज्ञ अर रागद्वेषरहित ऐसे वीतराग भगवान् असत्यार्थ नही कहै--सर्व-
ज्ञवीतरागका कह्या मेरै प्रमाण है" ऐसैं सर्वज्ञके वचन जे परमागम तातैं जो श्रद्धान
भया, सो आज्ञासम्यक्त्व है ॥ १ ॥ निर्ग्रंथरूप मोक्षमार्गकूं श्रवणकरि निश्चय भया
जो निर्ग्रंथ वीतराग, ताही मोक्षका मार्ग है अन्य नही, ऐसा जो श्रद्धान सो मार्गस-
म्यक्त्व है ॥ २ ॥ तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेवादिकनिके चरित्रनिके उपदेश ग्रहण
करनेतैं उपज्या जो श्रद्धान, सो उपदेशसम्यक्त्व है ॥ ३ ॥ बहुरि दीक्षाकी मर्यादाके
प्ररूपण करनेवाले आचारसूत्र तिनके श्रवणमात्रतैं उपज्या जो श्रद्धान, सो सूत्रस-
म्यक्त्व है ॥ ४ ॥ बहुरि सिद्धांतसूत्रके बीजपदके ग्रहणपूर्वक सूक्ष्म अर्थरूप तत्वार्थका
श्रद्धान होइ, सो बीजसम्यक्त्व है ॥ ५ ॥ जीवादिकपदार्थनिका सामान्यसंबोधनमा-
त्रकरि उपज्या श्रद्धान, सो संक्षेपसम्यक्त्व है ॥ ६ ॥ अंगपूर्व है विषय जिनका ऐसे
जीवादिपदार्थनिका विस्ताररूप प्रमाणनयादिकनिका निरूपणकरि प्राप्त भया जो श्र-
द्धान, सो विस्तारसम्यक्त्व है ॥ ७ ॥ वचनके विस्तारविनाही पदार्थनिका ग्रहणकरि

उपजी जो निर्मलता, सो अर्थसम्यक्त्व है ॥ ८ ॥ आचारांगादिक द्वादशांगके ज्ञानकरि उपज्या श्रध्दान, सो अवगाढसम्यक्त्व है ॥ ९ ॥ परमावधिज्ञान तथा केवलज्ञान केवलदर्शनकरि प्रकाशित जे जीवादिकपदार्थनिका प्रकाशरूप परमावगाढसम्यक्त्व है ॥ १० ॥ ऐसैं क्षेत्रार्य, जात्यार्य, कर्मार्य, चारित्रार्य, दर्शनार्य पंचप्रकारकरिकैं ऋद्धिरहित जो अनृद्धिप्राप्तार्य, तिनके पंच भेद वर्णन कीये ॥

अब, ऋद्धि जिनकै तपके बलकरि उपजी ऐसे ऋद्धिप्राप्तार्य अष्टप्रकार हैं ॥ बुध्यर्द्धि, क्रियर्द्धि, विक्रियर्द्धि, तपोऋद्धि, बलर्द्धि, औषधर्द्धि, रसर्द्धि, क्षेत्रर्द्धि ये अष्टप्रकारकी मूलऋद्धि हैं ॥ इनमें बुध्यर्द्धि अष्टादशप्रकार है- केवलज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, बीजबुद्धि, कोष्ठबुद्धि, पदानुसारित्व, संभिन्नश्रोतृत्व, दूरादास्वादनसमर्थता, दूरदर्शनसमर्थता, दूरस्पर्शनसमर्थता, दूरघ्राणसमर्थता, दूरश्रवणसमर्थता, दशपूर्वित्व, चतुर्दशपूर्वित्व, अष्टाङ्गमहानिमित्तज्ञता, प्रज्ञाश्रवणत्व, प्रत्येकबुद्धता, वादित्व ऐसैं अष्टादश बुध्यर्द्धिके नाम कहे ॥ तिनमें समस्तज्ञानावरणके अत्यंतक्षयतैं लोकालोकवर्ती समस्तपदार्थनिके गुणपर्याय त्रिकालसंबंधी एककालमें क्रमरहित प्रत्यक्ष जानै, सो केवलज्ञानर्द्धि है ॥ १ ॥ बहुरि द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी मर्यादसहित मूर्तिरूपदार्थकूं प्रत्यक्ष जानै, सो अवधिज्ञान नामा ऋद्धि है ॥ २ ॥ बहुरि अपने मनमें

वा अन्य अनेक जीवनिकै मनमैं चिंतवन कीया पदार्थ वा चिंतवन करैगा वा चिंतवन करे है वा अर्थचिंतवन कीया वा चिंतवन करि विस्मरण भया ऐसा मूर्तिकपदार्थकूं प्रत्यक्ष जानै, सो मनःपर्ययज्ञानर्द्धि है ॥ ३ ॥

जैसैं आच्छी रीति हल आदिककरि सुधार्‍या अर सारांश(स)हित ऐसे क्षेत्रमें कालादिकनिकी सहायतें वाया एक बीज अनेककोटी बीजका देनेवाला होइ है; तैसैं मनइंद्रियावरण श्रुतावरण अर वीर्यांतरायके क्षयोपशमकी आधिक्यता होतें संतै एक बीजपदकूं ग्रहण करनेतैं अनेकपदके अर्थनिका ज्ञान होना, सो बीजबुद्धि नामा ऋद्धि है ॥ ४ ॥ बहुरि जैसैं कोठ्यारविषैं कोठ्यारीकरिकै स्थापित कीये अर भिन्नभिन्न धरे मिले नही ऐसे बहुत धान्यबीजनिका कोष्ठ जो कोठ्यार तिसविषैं धान्य जुदेजुदे तिष्ठे हैं, जब निकासै तदि न्यारेन्यारे विनाशरहित निकसि आवै अथवा जैसैं एकमकानमें स्थापन कीये नानाजातीके रत्न मणि मोती सोना जब निकासो तदि भिन्नभिन्न जेता प्रमाणरूप स्थाप्या था, तितना प्रमाण लीये भिन्नभिन्न निकसै मिलै, नहीं घटै, वटै नहीं; तैसैं परके उपदेशतैं ग्रहण कीये जे शब्द अर्थ तिन बहुत शब्द-अर्थकूं जिस अवसरमें देखो, तिस अवसरमें बुद्धीमें जैसेके तैसें रहै घटै वटै नहीं—अक्षरादिक आगेपाछे होय नहीं, सो कोष्ठबुध्यर्द्धि है ॥ ५ ॥ पदानुसारि

बुद्धीका स्वरूप कहे हैं- जो कोऊ ग्रंथमें तैं आदिका वा मध्यका वा अंतका एकपदका अर्थ अन्यतैं श्रवणकरिकै अर अवशेष समस्तग्रंथका वा अर्थका जानना, सो पदानुसारित्व नामा ऋद्धि है ॥ ६ ॥

बहुरि संयमीनिके मध्य कोऊ मुनिकै तपोविशेषका बलके लाभकरि समस्त आत्मप्रदेशनिमैं श्रोत्रेंद्रियके परिणामरूप श्रवण करनेमें समर्थ ऐसी शक्ति प्रकट भई है, तातें द्वादशयोजन लंबा अर नवयोजन चौडा जो चक्रवर्तीका कटक ताके विषैं हाथी घोडे ऊंट गर्दभ मनुष्य इत्यादिकनिके नानाप्रकारके एकैकाल युगपत् उपजे जे अनेकशब्द तिनकूं एककालमें भिन्नभिन्न श्रवण करै, सो संभिन्नश्रोतृत्व नामा ऋध्दि है ॥ ७ ॥ बहुरि तपकी शक्तीका विशेषकरि प्रकट हुवा जो अन्य-जीवनिकै ऐसा क्षयोपशम नहीं होय तैसा रसनेंद्रियावरणका क्षयोपशमतैं अर अन्यजीवनिकै नहीं होय, ऐसा श्रुतावरण अर वीर्यांतरायके क्षयोपशमतैं अर अंगोपांग नामकर्मके लाभतैं नवयोजनप्रमाण जो रसना इंद्रियका उत्कृष्ट विषय तातैंहू बारै बहुतयोजन दूरक्षेत्रतैं आया रसके आस्वादनमें सामर्थ्य प्रकट होइ सो दूरादास्वादनसमर्थता नामा ऋध्दि है ॥ भावार्थ- तपके प्रभावतैं रसनेंद्रियावरण अर श्रुतज्ञानावरण अर वीर्यांतराय इनका क्षयोपशम अर अंगोपांग नाम कर्मका लाभ

ऐसा होइ है— जातैं रसनेंद्रियका उत्कृष्टविषय नवयोजनका है, तातैंहू बहुतयोजनदूरीके रसके आस्वादनेमें सामर्थ्य प्रकट होइ, सो दूरादास्वादनसमर्थताऋद्धि है ॥ ८ ॥ ऐसैंही घ्राण इंद्रियका नवयोजनका विषय है, तिसतैं दूरीकी वस्तूका गंध ग्रहण करनेका सामर्थ्य जातैं प्रकट होइ, सो दूरघ्राणसमर्थता नाम ऋध्दि है ॥ ९ ॥

बहुरि नेत्रेंद्रियावरण अर श्रुतज्ञानावरण अर वीर्यांतरायके क्षयोपशमतैं ऐसी देखनेकी शक्ति प्रकट होइ, जो, नेत्रेंद्रियका उत्कृष्टविषय सैंतालीस हजार दोयसे तरेसठि योजन अर एकयोजनका वीस भागमें सप्तभागका है, तिसतैंहू बहुतयोजन दूरे तिष्ठती वस्तूके देखनेकी समर्थता प्रकट होइ, सो दूरदर्शनसमर्थता नामा ऋध्दि है ॥ १० ॥ ऐसैंही स्पर्शनेंद्रियावरण अर श्रुतज्ञानावरण अर वीर्यांतरायके क्षयोपशमकरि ऐसी स्पर्शनेंद्रियमें जाननेकी शक्ति होय है, जो, स्पर्शनेंद्रियका नवयोजनका उत्कृष्ट विषय है, तिसतैं बहुतयोजन दूरि तिष्ठती वस्तूके जाननेकी सामर्थ्य, सो दूरस्पर्शनसमर्थता नामा ऋध्दि है ॥ ११ ॥ बहुरि कर्ण इंद्रियका द्वादशयोजनका विषय है, सो प्रकृष्ट श्रोत्रेंद्रिय अर श्रुतज्ञानावरण अर वीर्यांतरायके प्रकर्ष क्षयोपशमतैं अर अंगोपांग नाम कर्मके लाभतैं द्वादश योजनतैं अधिक बहुतयोजन दूरिका श्रवण करै, सो दूरश्रवणसमर्थता नामा ऋध्दि है १२

बहुरि महारोहिणीकूं आदि लेइ अर प्राप्त भई अर प्रत्येक अपना अपना रूप

अर अपना अपना सामर्थ्य प्रकट करनेकूं अर अपना अपना सामर्थ्य कहनेकूं प्रवीण अर वेगवान् ऐसी विद्यादेवतानिकरि जिसका चारित्र चलायमान नही होइ अर दशपूर्वरूप दुस्तरसमुद्रके पार होना, सो दशपूर्वित्व नामा ऋध्दि है ॥ भावार्थ- दशमापूर्वका जाननेका सामर्थ्य तपके प्रभावतैं जब प्रकट होय है, तब दशमपूर्वमें रोहिणीकूं आदि करि अनेक विद्यादेवता मुनीश्वरनिके निकट चलायमान करनेकूं प्रकट होइ हैं, जो, भो मुने! अब ध्यानादिकतपकरि कहा करो हो! तुमारे तपकरि हम आपकी आज्ञाकारिणी हाजरि हैं, जो आप आज्ञा करो तो समस्तपृथ्वीमैं रत्नवर्षा करैं, नगर रचैं, महल मंदिर राज्य संपदा रचैं, समस्तकूं आपके चरणनिमैं नमाय आज्ञाकारी करैं इत्यादिक कहैं, अर नानाप्रकारका अपना सामर्थ्य प्रकट करै अर अनेकविक्रियासहित अपना रूप दिखावै हाव भाव विलास विभ्रमादिरूपकरि मुनीश्वरनिका चित्त चलायमान कर्‍या चाहै, परंतु विद्यादेवतानिकरि जिनका परिणाम चलायमान नही होय, दृढध्यानमें रत रहै, तिसकै दशपूर्वित्वर्ध्दि होइ है । अर जो विद्यानिके लोभतैं चलायमान होय है, सो मुनि साधुधर्मतैं भ्रष्ट होइ मिथ्यात्वी असंयमी होय है । तातैं दशपूर्वसमुद्रके पार होजाय, तिसकै दशपूर्वित्वर्ध्दि होय है ॥ १३ ॥ बहुरि समस्त श्रुतका ज्ञानका धारक श्रुतकेवलीपणा सो चतुर्दशपूर्वित्वर्ध्दि है ॥ १४ ॥

बहुरि अंतरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, व्यंजन, लक्षण, छिन्न, स्वप्न ये निमित्तज्ञानके
अष्ट अंग हैं। इनि अष्टांगनिमित्तका जानना, सो अष्टांगनिमित्तज्ञता नाम ऋद्धि है॥
तिनमैं अंतरिक्ष जो आकाश तिसविषैं सूर्य, चंद्रमा, ग्रह, नक्षत्र, तारानिका उदय
अस्तादिक देखनेकरि ऐसा ज्ञान होइ, जो, पूर्वैं ऐसैं तो हुई होगी अर अब आगानैं
ऐसा होना दीखे है, सो अंतरिक्ष नाम निमित्तज्ञान है ॥ १ ॥ बहुरि पृथ्वीकी कठोरता
कोमलता सचिक्कणता रूक्षतादिकनिकूं देखि तथा पूर्वादिकदिशानिमैं सूतके पडनेकरि
ऐसा ज्ञान होइ, जो, इस क्षेत्रमें वृध्दि वा हानि तथा राजादिकनिकी हारि जीति
ऐसी भई है, अर ऐसी होयगी, तथा भूमीविषैं तिष्ठते सुवर्णरूप्यादिकनिका जानना
सो भौम नामा निमित्तज्ञान है ॥ २ ॥ बहुरि हस्त पाद मस्तकादिक तो अंग अर
कर्ण नेत्र ललाट ग्रीवा इत्यादिक उपांग इनि अंगउपांगनिके देखनेकरि तथा स्पर्शना-
दिककरि जो त्रिकालका भावी सुखदुःखादिककूं जानना, सो अंग नामा निमित्तज्ञान
है ॥ ३ ॥ बहुरि अक्षरअनक्षररूप शुभअशुभ शब्दके श्रवणकरि इष्टानिष्टफलका प्रकट
करना, सो स्वर नामा निमित्तज्ञान है ॥ ४ ॥
बहुरि मस्तक मुख ग्रीवा इत्यादिकनिविषैं तिल मुसल सणादिकनिकूं देखि त्रिकाल
संबंधी सुखदुःखका जानना, सो व्यंजन नामा निमित्तज्ञान है ॥ ५ ॥ बहुरि श्राव-

क्षका लक्षण, स्वस्तिक जो साथ्या ताका लक्षण अर भृंगार, झारी, कलश इत्यादि लक्षण शरीरमें देखनेतैं त्रिकालसंबंधी स्थान मान ऐश्वर्यादिकका जानना, सो लक्षण नामा निमित्तज्ञान है ॥ ६ ॥ बहुरि वस्त्र, शस्त्र, छत्र, उपानत् जो पगरखी अर आसन शयनादिकनिकूं शस्त्र कंटक मूषा इत्यादिककरि छेद्या देखि त्रिकालसंबंधी लाभ अलाभ सुखदुःखादिककूं जानै; जो, ऐसैं हुया होगा. अर ऐसैं होइ है, अर आगानैं ऐसैं होइगा, ऐसा ज्ञान सो छिन्न नाम निमित्तज्ञान है ॥ ७ ॥ बहुरि वात-पित्त-कफके प्रकोपरहित पुरुषकूं पाछिली रात्रीका भागविषैं स्वप्नमें चंद्रमा, सूर्य, पृथ्वी, पर्वत, समुद्रका मुखविषैं प्रवेश करना, तथा समस्तपृथ्वीमण्डलकूं आच्छादन करना इत्यादिक तो शुभस्वप्न हैं अर घृततैलकरि लिप्त अपना देहका स्वप्नमें देखना, अर खर ऊंटउपरि चढि दक्षिणदिशामैं गमन करना इत्यादिक अशुभस्वप्नके देखनेतैं आगामी कालमें जीवना मरना तथा सुखदुःखादिकका जानना, सो स्वप्न नामा निमित्तज्ञान है ॥ ८ ॥ एते जे अष्टांगनिमित्तनिमैं प्रवीणपणा होना, सो अष्टांगनिमित्तज्ञान नामा ऋध्दि है ॥ १५ ॥

बहुरि कोऊ सूक्ष्म अर्थतत्त्वका विचार ऐसा गहन है; जो, चौदहपूर्वके धारी श्रुतकेवलीही जानै, अन्यज्ञानी जाननेमें समर्थ नही, परंतु कोऊ मुनिकै अत्यंत श्रुतज्ञानावरण अर वीर्यांतराय नामा कर्मके क्षयोपशमतैं असाधारण ऐसी बुद्धीकी शक्ति

प्रकट होइ है; जो, द्वादशांग चतुर्दशपूर्वका अध्ययनज्ञानविनाही अतिसूक्ष्मतत्त्वकूं संशयरहित सत्यार्थनिरूपण करै, सो प्रज्ञाश्रवणत्व ऋद्धि है ॥ १६ ॥ बहुरि परके उपदेशविनाही अपनी शक्तीके विशेषतैंही ज्ञानके तथा संयमके विधानमें निपुणपणा होइ, सो प्रत्येकबुद्धता नाम ऋद्धि है ॥ १७ ॥ बहुरि जो इंद्रादिकदेवहू प्रतिपक्षी होइ विवाद करै तो तिनकूंहू उत्तररहितकरि दे, अर अन्यके मतके समस्त छिद्रनिकूं जाणि ले आप परकरिकैं नही जीत्या जाय, वादमैं परकूं तिरस्कृत कर दे, सो वादित्व नाम ऋध्दि है ॥ १८ ॥ ऐसैं बुध्द्यर्ध्दीके अष्टादश भेद कहे ॥

अब, दूसरी क्रियर्ध्दि दोयप्रकार है। चारणत्व, आकाशगामित्व ॥ तिनमें चारणर्ध्दीके अनेक भेद हैं। तिनमैं नदी तलाव बावडी इत्यादिकके जलके ऊपरि गमन करै, अर जलकायिक जीवांकी विराधना नही होय अर भूमीकीनांई जलमें पगका उठावना अर मेलना इत्यादिकमें समर्थ होइ, सो जलचारण ऋध्दीके धारक हैं ॥ १ ॥ बहुरि भूमीतैं च्यारि अंगुल ऊंचा आकाशमें जंघानिकूं शीघ्रतातैं निराधार उठावता मेलता सैंकडा हजारा योजन गमन करनेमें समर्थ, ते जंघाचारण ऋध्दीके धारक हैं ॥ २ ॥ ऐसैंही तंतुऊपरि गमन करै अर तंतु नही टूटै, सो तंतुचारणर्ध्दि है ॥ ३ ॥ बहुरि पुष्पनिऊपरि गमन करै अर पुष्पके जीवनिकै विराधना नही होइ, सो पुष्प-

चारणर्ध्दि है ॥ ४ ॥ बहुरि पत्रनिऊपरि गमन करै अर पत्रके जीवनिकै बाधा नही होय, सो पत्रचारणर्ध्दि है ॥ ५ ॥ बहुरि आकाशकी श्रेणीरूप गमन करै, सो श्रेणीचारण है ॥ ६ ॥ बहुरि अग्नीकी शिखाऊपरि गमन करै अर अग्निकायके जीवनिकै बाधा नही होइ, सो अग्निशिखाचारणऋध्दि है ॥ ७ ॥ इत्यादिक चारण-ऋध्दीके अनेक भेद हैं ॥ बहुरि क्रियर्ध्दिका दूसरा भेद जो आकाशगामित्व, ताका स्वरूप ऐसा है– पर्यंकासनकरि बैठे तथा कायोत्सर्गकरि खडे चरणनिका उठावनेमे-लनेकी विधिविना जो आकाशमें गमन करनेमें समर्थता, सो आकाशगामिनी ऋद्धि है॥

बहुरि विक्रियर्ध्दि अनेकप्रकार हैं– अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, अप्रतिघात, अन्तर्ध्दान, कामरूपित्व इत्यादि विक्रियर्ध्दि अनेकप्रकार हैं ॥ तिनमैं जो अणुमात्र सूक्ष्मशरीर करना, सो अणिमा ऋध्दि है ॥ मेरूतैंहू महत् शरीररूप विक्रिया करनेमें समर्थता, सो महिमा ऋध्दि है ॥ अर पवनतैंहू हलका शरीर करनेका सामर्थ्य, सो लघिमा ऋध्दि है ॥ बहुत भाऱ्या शरीर करनेका सामर्थ्य, सो गरिमा नामा ऋद्धि है ॥ बहुरि भूमीविषैं तिष्ठिकरि अंगु-लीका अग्रभागकरि मेरूका शिखरकूं स्पर्शन करनेका सामर्थ्य, तथा सूर्यचंद्रमाके विमानकूं स्पर्शन करनेका सामर्थ्य, सो प्राप्ति नामा ऋध्दि है ॥ बहुरि जलविषैं

भूमीकीनांई गमन अर भूमीमैं जलकीनांई उन्मज्जन निमज्जन करनेका सामर्थ्य, सो प्राकाम्य नामा ऋध्दि है॥ त्रैलोक्यका प्रभुपणा प्रकट करनेका सामर्थ्य, सो ईशित्व नाम ऋध्दि है॥ सर्वजीवनिकूं वश करनेका सामर्थ्य, सो वशित्व नामा ऋध्दि है॥ बहुरि पर्वतके मध्यमैं आकाशकीनांई गमनागमनकी शक्ति "जैसैं आकाशमैं गमनागमन करै तैसैं पर्वतमैं गमनागमन करनेका सामर्थ्य" सो अप्रतिघात नामा ऋध्दि है॥ अदृश्य होनेका सामर्थ्य सो अंतर्धान ऋद्धि है॥ युगपत् अनेक आकाररूप करनेका सामर्थ्य, सो कामरूपित्व नाम ऋद्धि है॥ ऐसैं वैक्रियक ऋद्धिका वर्णन कीया॥

अब तपोऽतिशय ऋध्दि सप्तप्रकार है– उग्रतपोऋध्दि, दीप्ततपोऋद्धि, तप्ततपोऋध्दि, महातपोऋध्दि, घोरतपोऋध्दि, घोरपराक्रमार्ध्दि, घोरब्रह्मचर्यर्ध्दि॥ तिनमैं एक उपवास, वेला, तेला, चोला, पंचोपवास, पक्षोपवास, मासोपवास इत्यादिक अनशनतपके मध्य एक तपकूं आरंभ करिकै मरणपर्यंत उस तपतैं पाछा नही आवै, सो उग्रतप नाम ऋध्दि है॥ बहुरि तेला, चोला, पंचोपवास, पक्षोपवासादिक निरंतर महान् उपवासादिक करतेहू जिनके काय-वचन-मनका बल दिनदिन बधता जाय, अर मुखमैं दुर्गंध नही होइ, अर कमलादिककी सुगंधकीनांई मुखमैंतैं सुगंधनिश्वास प्रगट होइ, अर शरीरकी महादीप्ति प्रगट होइ, सो, दीप्ततपोऋध्दीके धारक हैं॥ बहुरि जिन साधूनिका

भोजन कीया हुवा आहार, मलमूत्र रुधिरादिकरूप परिणमनकूं प्राप्त नही होइ "जैसें तप्तायमान लोहका कडाहेमैं जल सूकि जाय, तैसें शीघ्रही शुष्क होइ" मलमूत्र रुधिरादिकरूप नही परिणमै, ते तप्ततपोऋध्दीके धारक हैं ॥ बहुरि सिंहनिष्क्रीडितादिक जे महान् तप, तिनके करनेमैं उद्यमी ते महातपोऋध्दीके धारक हैं ॥

बहुरि जिनकै शरीरमें पूर्वोपार्जित असाताकर्मके तीव्र उदयतैं वात पित्त कफ सन्निपाततैं उत्पन्न भया ज्वर, कास, श्वास, नेत्रशूल, कोढ, प्रमेह, उदरशूल, स्फोदर, कठोदर इत्यादिक नानाप्रकारके रोगनिकरि तीव्रवेदना संताप प्रकट भया; तोहू अनशनादिक कायक्लेशकूं नही त्यागते अनशनादिक तपकूं बडी प्रीतीतैं रक्षा करते; अर किसीका शरण इलाज नही वांछा करते; भयानक स्मशान भूमि, पर्वतका शिखर, गुफा, पर्वतनिके दराडा, शून्य ग्रामादिक जिनमें दुष्ट यक्ष राक्षस पिशाच अनेक विकार करै, अर जहां कठोर स्यालिनीनिके शब्द अर सिंह व्याघ्र सर्प अन्य नानाप्रकारके भयानक वनके जीव अर शिकारी चोर भीलादिक दुष्टजीव जिन स्थाननिमैं विचरै, ऐसे स्थानक जिन साधूनिकूं रुचै अन्यजननिका शरणा इलाज नही चाहते वसै; ते घोरतपके धारक हैं ॥ बहुरि पूर्वै वर्णन कीये अनेकरोगनिकरि सहित अर पूर्वोक्त निर्जनस्थानके वसनेमें प्रीतियुक्त अर ग्रहण कीये तपके वधावनेमें तत्पर, ते मुनि घोरपराक्रम ऋद्धिके

बहुरि चिरकालपर्यंत सेवन कीया है अचलब्रह्मचर्य जानैं ऐसे साधु प्रकृष्ट-
धारक हैं ॥ बहुरि चिरकालपर्यंत सेवन कीया है अचलब्रह्मचर्य ऋद्धिके धारक
चारित्रमोहके क्षयोपशमतैं नष्ट भये हैं खोटे स्वप्न जिनकै ते घोरब्रह्मचर्य ऋद्धिके धारक
हैं ॥ ऐसैं सप्तप्रकार तपोऋद्धीका वर्णन कीया ॥

बहुरि बलर्ध्दि तीनप्रकारकी है— मनोबलर्ध्दि, वचनबलर्ध्दि, कायबलर्ध्दि ॥ तिनमैं
मनःश्रुतज्ञानावरण वीर्यांतरायके क्षयोपशमकी प्रकर्षता होतै संतै जो अंतर्मूहूर्तमें
समस्त द्वादशांग श्रुतका अर्थके चिंतवनमें सामर्थ्य-शक्ति प्रकट होई, सो मनो-
बलर्ध्दि है ॥ १ ॥ बहुरि मनःश्रुतावरण अर जिव्हाश्रुतावरण अर वीर्यांतरायके क्षयो-
पशमातिशय होत संते अंतर्मूहूर्तमें समस्त श्रुतज्ञानके उच्चारणकी शक्ति प्रकट होई
अर निरंतर उच्चस्वरकरि उच्चारण होतेहू खेद जिनकै नही उपजै, अर कंठकी हीनता
नहीं होय, सो वचनबलर्ध्दि है ॥ २ ॥ बहुरि वीर्यांतरायके क्षयोपशमतैं ऐसा असाधा-
रण कायबल प्रकट होई; जातैं मासोपवास, चातुर्मासके उपवास वा संवत्सरपर्यंत
प्रतिमायोग धारतैंहू कायमें खेद क्लेश नही उपजै; सो कायबलर्ध्दि है ॥ ३ ॥ ऐसैं बल
ऋद्धि तीनप्रकार वर्णन करी ॥

अब अष्टप्रकार औषधी ऋद्धिकूं कहे हैं— जो असाध्यहू समस्तरोगनिका अभाव करनेमें
समर्थ सो औषधर्द्धि अष्टप्रकार है— आमर्शौषधि ऋद्धि, क्ष्वेलौषधि ऋद्धि, जल्लौषधि ऋद्धि,

मलौषधि ऋद्धि, विडौपधि ऋद्धि, सर्वौपधि ऋद्धि, आस्याविषर्द्धि, दृष्ट्याविषर्द्धि ॥ जिनके हस्तपादादिक अंगका आमर्श जो स्पर्शन, सोही औषधिरूप होइ रोगनिका नाश करै, ते आमर्शौषधि ऋद्धीके धारक हैं ॥ १ ॥ अर जिनका क्ष्वेल जो कफ, सोही औषधिरूप होई रोगनिका नाश करै, ते क्ष्वेलौषधि ऋद्धीके धारक हैं ॥ २ ॥ अर जल्ल जो समस्त अंगका पसेव मलकेउपरि लग्या रज सोही जिनके रोगका नाश करनेवाला होइ, ते जल्लौषधि ऋद्धीके धारक हैं ॥ ३ ॥ जिनके कर्णमल तथा दंतमल नासिकामलही रोगका नाश करनेवाले होई, ते मलौषधि ऋद्धीके धारक हैं ॥ ४ ॥ बहुरि जिनका विट जो विष्ठा सोही रोगका नाश करनेमें समर्थ होइ, ते विडौषधि ऋद्धीकूं धारे हैं ॥ ५ ॥ बहुरि जिनका अंग तथा उपांग तथा नख दंत केशादिककूं स्पर्श करनेवाला पवनादिकही समस्तरोगनिका नाश करै, ते सर्वौषधि ऋद्धीके धारक हैं ॥ ६ ॥ बहुरि जिनके मुखमें प्राप्त भया उत्कृष्ट विषहू निर्विषताकूं प्राप्त होइ, ते आस्याविष ऋद्धीके धारक हैं ॥ अथवा जिनके मुखतें निकले वचनके श्रवण करनेतें महान् विषकरि व्याप्तहू विषरहित होय है, ते आस्याविष ऋद्धीके धारक हैं ॥ ७ ॥ बहुरि औषधर्द्धीके धारक साधुनिकी दृष्टिके पतनमात्रकरि उत्कटविषकरि दूषित होइ, तेहू विषरहित होइ, ते दृष्ट्यविष ऋद्धीके धारक हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ— साधूके तपके प्रभावतें औषधि ऋद्धि ऐसी उपजै है, तिसके प्रभावतें
साधूका अंग उपांग केश नख दंत मल मूत्र कफ पसेव नासिकामल इत्यादिकके
स्पर्शनकरिकै रोग दूरि होय हैं वा मलादिक शरीरादिककूं स्पर्शनकरि पवन लगे
है, सो समस्त रोगीनिका रोग दूरि करे है ॥ तथा सर्पादिकनिके विषकरि व्याप्त
हैं तिनके विष दूरि होय हैं ॥ ऐसैं अष्टप्रकार औषधि ऋद्धीका वर्णन कीया ॥

अब छप्रकार रसऋद्धीकूं कहे हैं— आस्यविषा, दृष्टिविषा, क्षीरास्रावी, मध्वास्रावी,
सर्पिरास्रावी, अमृतास्रावी ॥ उत्कृष्टतपके बलका धारक मुनीश्वर क्रोधकरि कोईकूं
कहै, तूं मरि जा! तो तिसही क्षणमें महाविषकरि व्याप्त होइ मरिजाय, सो आस्य-
विषर्द्धि है ॥ १ ॥ उत्कृष्टतपके धारक यति क्रोधकरि जाकूं देखै, सोही उत्कृष्टविषकरि
व्याप्त होय मरे है, ते दृष्टिविष ऋध्दीके धारक हैं ॥ २ ॥ यद्यपि वीतरागमार्गी
क्रोधकरि कहेहू नहीं, अर क्रोधकरि देखेहू नहीं, शत्रुमित्रमें जिनकै समानबुध्दि है,
तथापि तपके प्रभावतें ऐसी शक्ति प्रकट भई, सो शक्तिका प्रभाव दिखाया है ॥
अर दिगंबर यति दुर्गतिका कारण निंद्यकर्म कदाचितही नहीं करे हैं ॥ बहुरि
जिनके हस्तमें प्राप्त हुवा नीरसहू आहार क्षीररसके गुणरूप परिणमनकूं प्राप्त होइ,
ते क्षीरास्रावी ऋध्दीके धारक हैं ॥ अथवा जिनके वचन क्षीणमनुष्यनिकूं दुग्धर-

सकीनांई तृप्ति करनेवाला होइ, ते क्षीरास्त्रावी ऋध्दीके धारक हैं ॥ ३ ॥ बहुरि जिनके हस्तपुटमें प्राप्त भया नीरसहू आहार मधुररसकी शक्तिरूप परिणमे अथवा जिनके वचन दुःखकरि पीडित श्रोताजननिकै मिष्टगुणकूं पुष्ट करै, ते मध्वास्त्रावी ऋध्दीके धारक हैं ॥ ४ ॥ बहुरि जिनके हस्तपुटमें प्राप्त हुवा रूक्षहू अन्न घृतरसकी शक्तीके उदयकूं प्राप्त होय अथवा जिनके वचन श्रवण करते प्राणीनिकूं घृतरस-कीनांई आनंदित करै, तृप्ति करै, ते सर्पिरास्त्रावी ऋध्दीके धारक हैं ॥ ५ ॥ बहुरि जिनके हस्तमें प्राप्त हुवा जैसातैसा आहार सो अम्रतपणाकूं प्राप्त होय अथवा जिनके कहे वचन प्राणीनिका अम्रतकीनांई उपकार करै, ते अमृतास्त्रावी ऋध्दीके धारक हैं ॥ ६ ॥ ऐसैं छप्रकार रसर्ध्दीका वर्णन कीया ॥

अब क्षेत्रर्द्धि दोयप्रकार है- एक अक्षीणमहानसर्द्धि, एक अक्षीणमहालयर्ध्दि ॥ लाभांतरायके क्षयोपशमकी आधिक्यतातैं तपस्वीनिकै ऐसी शक्ति प्रकट होइ है, जो गृहस्थ तपस्वीनिके अर्थि जिस पात्रतैं निकासि भोजन देवै, तिस पात्रतैं चक्रवर्तीका कटकहू जीमिजाय तोहू तिस दिनविषैं पात्रमें भोजन नही घटै, सो अक्षीणमहानस-र्द्धीके धारक है ॥ बहुरि जिस क्षेत्रमें अक्षीणमहालयऋद्धीकूं प्राप्त भया मुनीश्वर वसै, तिस क्षेत्रमें देव मनुष्य तिर्यंच परस्पर निराबाध हुये सुखसूं तिष्ठै सकडाई नही होइ,

ते अक्षीणमहालय ऋद्धीके धारक हैं ॥ २ ॥ ऐसैं क्षेत्रर्द्धीके दोय भेद कहे ॥ आत्माभैं अनंतशक्ति है, सो तपके प्रभावतैं जैसैंजैसैं कर्मका क्षय क्षयोपशम होइ तैसैंतैसैं शक्ति प्रकट होय है। तपका अद्भुत प्रभाव है । कोटिजिव्हातैं असंख्यातकालपर्यंत तपका महिमा कहनेमें नही आवे है।

ऐसे ऋद्धिप्राप्त आर्यके भेद कहे, ते समस्त सत्यरूप धर्मसेवनेका महिमा है। जातैं महान् अशुचि मलिनदेहकूंभी धारण करि जो तपश्चरणादिककरि परमधर्म सेवन करे हैं, तिनकै अनेकप्रकारकी ऋद्धि प्रकट होइ है। तातैं अशुचिदेहकूं धर्मसेवनमें लगा-वनाही अपना कल्याण है ॥ ऐसैं अशुचिभावना वर्णन करी ॥

अब चौदह गाथानिकरि आस्रवभावनाकूं कहे हैं ॥ गाथा-

जम्मसमुद्दे वहुदो- । सवीचिए दुक्खजलयराइण्णे ॥
जीवस्स दु परिभमण- । म्मि कारणं आसउं होदि ॥ १९ ॥

अर्थ— संसाररूप समुद्रविषैं जीवका परिभ्रमणका कारण आस्रव है। कैसाक है संसारसमुद्र? जिसमें बहुतदोषरूप लहरी उठे हैं अर दुःखरूप जलचरजीवनिकरि भरया है॥

संसारसागरे से । कम्मजलमसंपुडस्स आसवदि ॥
आसवणीए णावाए । जह सलिलं उदधिमज्झम्मि ॥ १८२० ॥

अर्थ— जैसैं समुद्रके मध्य छिद्रसहित फूटी नावमें जल प्रवेश करे है; तैसैं संसार-समुद्रमें संवररहित पुरुषकै कर्मरूप जल प्रवेश करे है ॥ गाथा—

धूली णेहुत्तुप्पिद- । गत्ते लग्गा मलो जदा होदि ॥
मिच्छत्तादिसिणेहो- । लिदस्स कम्मं तहा होइ ॥ २१ ॥

अर्थ— जैसैं सचिक्कणतासहित जो शरीर तिसविषैं लगी जो धूली, सो मैली होइ है; तैसैं मिथ्यात्व-असंयम-कषायरूप चिकणाईसहित आत्माकै कर्म होनेके योग्य पुद्गल-द्रव्य ते कर्म होय हैं ॥ भावार्थ— समस्त लोक पुद्गलद्रव्यकरि भर्‍या है। तिन पुद्गल-निमैं निरंतर परिणमन होनेतैं कर्मरूप होनेजोग्यहू अनंतानंत पुद्गलवर्गणा समस्तलो-कमें भरी है, जहां आत्माके प्रदेश तहांहू भरी है। जिस कालमें संसारी आत्मा मिथ्यात्व अविरत कषाय जोगरूप अपना परिणाम करे है, तिस कालमें कर्मके जोग्य पुद्गलस्कंध कर्मरूप होइ आत्मामैं एकक्षेत्रावगाहरूप होनेकूं प्रवेश करे है, सो आस्रव है ॥ अब कर्म होनेके योग्य पुद्गलद्रव्य समस्त लोकमें भरे हैं, ऐसा दिखावे हैं ॥ गाथा—

ओगाढगाढणिचिदो । पुग्गलदव्वेहिं सव्वदो लोगो ॥
सुहुमेहिं वादरेहिं य । दिस्सादिस्सेहिं य तहेव ॥ २९ ॥

अर्थ— यो तीनसै तीयालीस घनरज्जूप्रमाण समस्त लोक, सो दृश्य अर अदृश्य

ऐसे सूक्ष्मबादर पुद्गलद्रव्यनिकरि नीचै उपरि मध्यमैं अत्यंत गाढागाढा भऱ्या है। पुद्गलद्रव्यविना एक प्रदेशहू लोकाकाशका नहीं है। तिनमें कर्म होनेके योग्यहू अनंतानंत पुद्गलपरमाणु भऱ्या है। सो जैसैं जलमें पड्या तप्तलोहका गोला सर्वतरफतैं जलकूं खेचै है; तैसैं मिथ्यात्वकषायादिककरि तप्तायमान संसारी आत्मा सर्वतरफतैं कर्मके योग्य पुद्गलनिकूं ग्रहण करे है ऐसैं समयसमय समयप्रबध्द ग्रहण करे है। पाछैं जैसैं एकवार ग्रहण कीया आहार रुधिर मांस वीर्य मल मूत्र अस्थि चाम केशादिक नानास्वरूप परिणमे हैं; तैसैं एकवार ग्रहण कीया कार्माण समयप्रबध्द ज्ञानावरणादिक अष्टप्रकाररूप परिणमे है॥ अब मिथ्यात्वादिकनिकूं कहे हैं॥ गाथा—

मिच्छत्तं अविरमणं। कसायजोगा य आसवा होंति॥
अरहंतउत्तअत्थे-। सु विमोहो होइ मिच्छत्तं॥ २३॥

अर्थ— मिथ्यात्व, अविरत, कषाय अर योग ये आस्रव होइ हैं। कर्मवर्गणाके आवनेके द्वाररूप मिथ्यात्व ५, अविरत १२, कषाय २५, योग १५ ये सत्तावन आस्रव हैं—कर्म आवनेके द्वार हैं। तिनमें जो अरहंत भगवानका कह्या जे सप्ततत्वादिक अर्थनिमैं विमोह जो अश्रध्दान, सो मिथ्यात्व होय है॥ अब असंयमकूं कहे हैं॥

अविरमणं हिंसादी। पंच वि दोसा हवंति णायव्वा॥

कोधादीया चत्ता- । रि कसाया रागदोसमया ॥ २४ ॥

अर्थ— हिंसा, असत्य, चोरी, कुशीलसेवन, परिग्रहमें ममता ये पंच दोष, ते अविरमण हैं; इनकूंही असंयम कहिये हैं ॥ छकायके जीवनिकी दया नही अर पंच इंद्रिय अर छट्ठा मनका वशीभूतपणा नही ये बारह अविरति हैं। पंचपापका त्यागीके बारह अविरतका अभाव है। अर क्रोध मान माया लोभ ये च्यारी कषाय हैं, सो रागद्वेषमय हैं ॥ अब रागद्वेषका माहात्म्य दिखावे हैं ॥ गाथा—

किह दाराउं रंजे- । दि णरं कुणिमे वि जाणुगं देहे ॥
किह दा दोसो वेसं । खणेण णीयं पि कुणइ णरं ॥ २५

अर्थ— अशुचि अर अनुरागके अयोग्यभी देहके विषैं ज्ञातामनुष्यकूं यो रागभाव कैसैं रंजायमान करे है! अशुचि अर असारदेहमें अज्ञानी रंजायमान होय है। ज्ञानी होई मलिन विनाशिक कृतघ्नी देहमें रंजायमान होय, सो बडा आश्चर्य है! तातैं जगतके भुलावनेमें रागभाव बडा प्रबल है। बहुरि दोषकी प्रबलता ऐसी है, जो अपना निजबांधव ताहिहू क्षणमात्रमें द्वेष करनेयोग्य करे है, तातैं रागद्वेषही जगतकूं विपरीतमार्गमें प्रवर्तन करावे है ॥ गाथा—

सम्मादिट्ठी वि णरो । जेसिं दोसेण कुणइ पावाणि ॥

अर्थ— जिनके दोषकरिकैं सम्यग्दृष्टीहू पापनिमैं प्रवृत्ति करै ऐसे गारव, इंद्रिय, संज्ञा, मद, राग, द्वेषनिकूं धिक्कार होहू ॥ ऋद्धिगारव, रसगारव, सातगारव ये तीनप्रकारगारव हैं ॥ मेरीसी ऋध्दिसंपदा कौनकै है? मै ऋध्दिसंपदाकरि अधिक हूं ऐसैं ऋध्दिकरि आपकूं बडा मानना, सो ऋध्दिगारव है ॥ १ ॥ बहुरि छ रससहित भोजन मिलनेका अभिमान, जो, मै रंकपुरुषकीनांई नहीं, मेरा ऐसा पुण्य है, जो, अनेकप्रकारके रसयुक्त भोजन हाजरि धरे हैं! कौन ग्रहण करै! कौन अवलोकन करै! ऐसा रसगारव है ॥ २ ॥ बहुरि सातका उदय होतैं अभिमान करै; जो, मेरै पुण्य उदय है; मेरै हानि, वियोग, रोग दुःख नहीं होइ कोई, पापीकै होयगा; मै कहा पापी हूं! मेरै दुःख कदाचित् नहीं होइ ये मोकूं भरोसा है; ऐसैं साताकर्मके उदयतैं सुख रहै, ताका अभिमान, सो सातगारव है ॥ ३ ॥ अर अपने अपने विषयनिमैं लंपटता चाहना, सो पंच इंद्रिय हैं ॥ ५ ॥ अर भोजनकी अभिलाषा सो आहारसंज्ञा है ॥ १ ॥ भयकी इच्छा जो "छिपि रहना, कहां जाऊं! कौन मेरी रक्षा करै! कहा होसी!" ऐसा कायरपणा, सो भयसंज्ञा है ॥ २ ॥ अर कामकी आतुरताकरिकै मैथुनमें अभिलाष सो मैथुनसंज्ञा ॥ ३ ॥ परिग्रहमें अभिलाष, सो परिग्रहसंज्ञा है ॥ ४ ॥ सोही गोमटसारग्रंथमें संज्ञानिका लक्षण अर संज्ञाकी उत्पत्तीका बहिरंगकारणनिकूं कहे हैं ॥

इह जाहि वाहियाहि य। जीवा पावंति दारुणं दुक्खं ॥
सेवंता वि य उभये। ताऊ चत्तारि सण्णाउं ॥ १ ॥

अर्थ— जे आहार भय मैथुन परिग्रहरूप वांछाकरिकैं जीव इसभवमें इनके विषयनिकूं सेवन करै तो, तथा नही सेवन करै विषयनिकी प्राप्ति होतैं वा नही होतैं घोरदुःखनिकूं प्राप्त होई; ते च्यारि संज्ञा हैं। इनहीकरिकैं संसारी जीव नानाप्रकारके दुखःनिकूं भोगवे हैं॥ तिनमैं च्यारिप्रकारका सुंदर आहारकूं देखना, तथा पूर्वैं भोग्या जो आहार तिसकूं यादि करना, तथा आहारकी कथाके श्रवण करनेमें उपयोग लगावना, तथा उदरका रीतापणा होना इत्यादिक बाह्यकारण-निकरि तथा असातावेदनीयकर्मकी उदीरणा वा तीव्र उदयकरिकैं जो आहारमें वांछा उपजे सो आहारसंज्ञा है ॥ १ ॥ बहुरि अतिभयंकर व्याघ्रादिक दुष्टजीवका देखना, दुष्ट तिर्यंच मनुष्य व्यंतरादिकनिकी कथाका श्रवण करना–स्मरणमें उपयोग लगावना, तथा शक्तिरहितपणा इत्यादिक बहिरंगकारण अर भयनोकषायका तीव्र उदयरूप अंतरंगकारणनिकरि भयसंज्ञा उत्पन्न होइ है॥ २ ॥ बहुरि पुष्टरसका भोजन करना, अर कामकथाका श्रवण अर अनुभव करना, अर कामचेष्टामैं उपयोग रखना, अर कुशील

धि तोसिं गारविंदिय-। सण्णामयरागदोसाणं ॥ २६ ॥

विटादिक कामीपुरुषनिका सेवन गोष्ठी प्रीती इत्यादिक बहिरंगकारणनिकरि, तथा स्त्रीवेद पुंवेद नपुंसकवेद इनि तीन वेदनिमैंतैं कोऊएक वेदकी उदीरणारूप अंतरंगकारणकरि मैथुनमें वांछारूप मैथुनसंज्ञा होइ है ॥ ३ ॥ बहुरि बाह्य नानाप्रकारके धनधान्य वस्त्र रत्नादिक वस्तुके देखनेकरि, तथा परिग्रहकी कथाका श्रवणादिककरि परिग्रहमें आसक्ततारूप बहिरंगकारण अर लोभकषायकी उदीरणारूप अंतरंगकारणकरि परिग्रहमें वांछा, सो परिग्रहसंज्ञा है ॥ ४ ॥ सो छट्ठा गुणस्थानपर्यंत च्यारि संज्ञा हैं। अप्रमत्तादिकमें आहारसंज्ञाका अभाव है ॥ ऐसैं ये च्यारि संज्ञा अर अष्ट मद ये महान् अनर्थके मूल इनकूं धिक्कार होहू! अर रागद्वेषनिकूं धिक्कार होहू! इनि दोषनिकरि सम्यग्दृष्टि पुरुषहू पापनिकूं करे है ॥ गाथा—

जो अभिलासो विसए- । सु तेण ण य पावए सुहं पुरिसो ॥
पावदि य कम्मबंधं । पुरिसो विसयाभिलासेण ॥ २७ ॥

अर्थ— जो पुरुषकै पंच इंद्रियनिके विषयनिमें अभिलाष है, ताकरि, पुरुष सुखकूं नहीं प्राप्त होय है। विषयनिके अभिलाषकरि पुरुष कर्मबंधकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा—

कोहि डहिज्ज जह चं- । दणं णरो दारुगं च बहुमोल्लं ॥
णासेइ मणुस्सभवं । पुरिसो तह विसयलोभेण ॥ २८ ॥

अर्थ— जैसैं कोऊ मनुष्य बहुमूल्य चंदनकूं काष्ठके निमित्त दग्ध करै; तैसैं पुरुष विषयांका लोभकरिकैं निर्वाणका कारण जो मनुष्यभव, ताका नाश करे है ॥ गाथा—

छंडिय रयणाणि जहा । रयणद्दीवा हरिज्ज कट्ठाणि ॥
माणुसभवे वि छंडिय । धम्मं भोगेऽभिलसदि तहा ॥ २९ ॥

अर्थ— जैसैं कोऊ पुरुष रत्नद्वीपमें प्राप्त होइकरिहू रत्ननिकूं छांडिकरिकैं रत्नद्वीपतैं काष्ठ ग्रहण करै; तैसैं मनुष्यभवविषैं धर्मकूं त्यागिकरिकैं भोगनिकूं अभिलाष करे है ॥ भावार्थ— जैसैं रत्नद्वीपमें प्राप्त होइकरिकैहू कोऊ रत्न त्यागि काष्ठका भार बांधे है; तैसैं मनुष्यभवविषैं धर्मकूं त्यागि भोगनिका अभिलाष करे है ॥ गाथा—

गंतूण णंदणवणं । अमियं छंडिय विसं जहा पियइ ॥
माणुसभवे वि छंडिय । धम्मं भोगेऽभिलसदि तहा ॥ १८३० ॥

अर्थ— जैसैं कोऊ पुण्यहीन पुरुष नंदनवनमें जायकरिकै अर अमृतकूं त्यागिकरिकैं विषकूं पीवे है; तैसैं मूढजन मनुष्यभवमें धर्मकूं छांडि भोगनिमैं वांछा करे है ॥

पावपउंगा मणवचि- । काया कम्मासवं पकुव्वंति ॥
भुंजंतो दुब्भुत्तं । वणम्मि जह आसवं कुणइ ॥ ३१ ॥

अर्थ— पापमें युक्त जे मनवचनकायके जोग, ते कर्मनिका आस्रव करे हैं। जैसैं

खोटे आहारकूं भोजन करता पुरुष आपके व्रणमें राधिरुधिरका आस्रव करे है॥ गाथा—

अणुकंपा सुद्धुवउ- । गो वि य पुण्णस्स आसवदुवारं ॥
तं विवरीदं आसव- । दारं पावस्स कम्मस्स ॥ ३२ ॥

अर्थ— अनुकंपा जो जीवदया अर शुभोपयोग ये पुण्यके आवनेके द्वार हैं। अर जीवनिमैं निर्दयता अर अशुभोपयोग ये पापकर्मके आस्रवके द्वार है॥ जिसके दर्शनचारित्र-मोहनीयका विशिष्ट क्षयोपशमतैं उपजा जो शुभराग, तातैं परमभट्टारक महादेवाधिदेव परमेश्वर अर्हत्-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-साधुनिके गुणनिका श्रद्धानमें तथा सर्वज्ञकी आज्ञामैं प्रवर्त्या उपयोग तथा समस्तजीवनिकी दयामैं प्रवर्त्या उपयोग; सो शुभोपयोग है; सो पुण्यास्रवका कारण है॥ तथा दर्शनचारित्र-मोहनीयका विशिष्ट उदयतैं उपज्या जो अशुभराग, ताकरि परमभट्टारक देवाधिदेव परमेश्वर अर्हत्-सिध्द-आचार्य-उपाध्याय-साधुनितैं अन्य उन्मार्गीनिका गुणनिमैं उपदेशमें प्रवर्त्या जो उपयोग, सो अशुभोपयोग है॥ तथा विषयनिके सेवनेमें, कषायरूप होनेमें, दुष्टशास्त्र जे हिंसाके प्ररूपक शास्त्रनिके श्रवणमें, दुष्टनिकी संगतिमें, दुष्टनिके आश्रय, दुष्टनिके सेवनमें, उत्कट आचरण करनेमें प्रवृत्तीकूं प्राप्त हुवा जो उपयोग, सो अशुभोपयोग है;-पापके आस्रवका कारण है॥

इहां विशेष ऐसा जानना— शुभयोग पुण्यास्रवका कारण है, अशुभ मनोवचनकायके योग पापास्रवका कारण है ॥ प्राणीनिकी हिंसा, परका विनादीया धनका ग्रहण करना, मैथुनसेवनादिक ये अशुभ काययोग हैं ॥ बहुरि असत्यभाषण, कठोरवचन, धर्मविरुध्दवचन ये अशुभ वचनयोग हैं ॥ बहुरि परजीवनिका घातका चिंतवन करना, ईर्षाभाव, अदेखसका भाव ये अशुभ मनोयोग हैं ॥ ते पापास्रव करे हैं ॥ अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्यादिक शुभकाययोग हैं ॥ सत्य हित मित वचन बोलना, सो शुभ वचनयोग है ॥ अरहंतादिकनिकी भक्ति, तपश्चरणमें रुचि, श्रुतका विनयादिक, सो शुभ मनोयोग है ॥ ये शुभयोग पुण्यस्राव करे हैं ॥

अब ज्ञानावरणादिक अष्टकर्मके आस्रवके कारणनिकूं कहे हैं– मोक्षका मूलसाधन जो मत्यादिकज्ञान, ताकी कोऊ प्रशंसा करै सो अन्तरङ्गमें बुरी लागै, सुहावै नहीं; सो प्रदोष है, अथवा तत्त्वके ज्ञानकी कथनीमैं हर्षका अभाव सो प्रदोष है ॥ बहुरि कोऊ कारणकरि कोऊ सम्यग्ज्ञानकी कथनी पूछै, ताकूं कहै मै नही जाणूं वा ऐसैं नही है ऐसैं सम्यग्ज्ञानकूं छिपावना, सो निह्नव है। अथवा अपना गुरु अप्रसिद्ध तिसकूं छिपाय प्रसिध्दगुरुका नाम प्रकट करना, सो निन्हव है ॥ बहुरि आपकरि अभ्यास कीया सम्यग्ज्ञान देनेके जोग्यहू योग्यशिष्यके अर्थि नही देना, सो मा-

त्सर्य है ॥ बहुरि केई धर्मानुरागी ज्ञानका अभ्यास करते होइ, तिनकै व्यवच्छेद करना स्थान बिगाडि देना, पुस्तकका संयोग बिगाडि देना, पढावनेवालेका संबंध बिगाडि देना, सो अंतराय है ॥ बहुरि परकरि प्रकाश्या ज्ञानकूं कायकरि वचनकरि वर्जन करना, सो आसादना है ॥ बहुरि अपनी बुद्धीकी दुष्टताकरिकै प्रशंसायोग्य ज्ञानकूं दूषण लगावना, सो उपघात है॥ ये समस्त प्रदोष-निन्हव-मात्सर्य-अंतराय-आसादना-उपघातरूप परिणाम ज्ञानावरण अर दर्शनावरण कर्मके आस्रवका कारण हैं ॥

बहुरि आचार्य जो संघका स्वामी अर उपाध्याय जो ज्ञानाभ्यास करावनेके अधिकारी तिनतैं प्रतिकूल रहना, अपूठा रहना, तथा अकालमें अध्ययन करना, तथा जिनेंद्रके वचननिमें श्रध्दान नहीं करना, शास्त्राभ्यासमें आलसी रहना, अनादरतैं शास्त्रार्थका श्रवण करना, धर्मतीर्थका रोकना, अर आपके बहुश्रुतीपणाका गर्व करना, मिथ्यात्वका उपदेश देना, बहुश्रुतीनिका अपमान करना, अपना पक्षका ग्रहणमें पंडितपणा, अपनी पक्षका परित्याग करना, विनासंबंध प्रलाप करना, सूत्रविरुध्द वाद करना, शास्त्रनिका बेचना, प्राणिहिंसादिक ये समस्त ज्ञानावरणकर्मके आस्रवके कारण हैं ॥ बहुरि परके देखनेमें मत्सरता, अर देखनेमें अंतराय करना, परके नेत्र उपाडना, परकी इंद्रियनितैं वैर करना, नेत्रनिकूं बडा करना-फाडना, बहुत दीर्घकाल

सोवना, दिनमें निद्रा लेना, आलस्य करना, नास्तिकताका ग्रहण करना, सम्यग्दृष्टीनिकूं दूषण लगावना, कुतीर्थ जो खोटे तीर्थकी प्रशंसा करना, प्राणनिका घात करना, यतिजननिकी ग्लानि करना ये समस्त दर्शनावरणकर्मके आस्रवके कारण हैं ॥

अब वेदनीयकर्मके आस्रवके कारण कहे हैं— अनिष्टवस्तु जो अपना विरोधीद्रव्यका समागम अर वांछितका वियोग अर अनिष्ट कठोरवचनका श्रवणादिक बाह्यकारणकी अपेक्षातैं अर असातावेदनीयका उदयतैं उपज्या जो पीडारूप परिणाम, सो दुःख है ॥ अर अपने उपकारक बांधवमित्रादिकनिका संबंधका अभाव होता, ताकूं वारंवार चिंतवन करते पुरुषकै अभ्यंतर मोहनीयकर्मका भेद जो शोक, ताके उदयतैं चिंताखेदलक्षण मलिनपरिणाम होय, सो शोक है ॥ बहुरि कठोरवचनके श्रवणतैं तथा अपवाद तिरस्कारादिकके होनेतैं अन्तःकरणमें मलिन होइकरिकै जो तीव्र पश्चात्ताप करै, सो ताप है ॥ बहुरि परिताप होनेतैं अश्रुपात नाखना प्रचुर विलाप करिकै अर अंगमें विकारादिक करता प्रकट शब्द करि रुदन करै, सो आक्रंदन है ॥ अर आयु, इंद्रिय, वल, श्वासोश्वासरूप प्राणनिका वियोग करना, सो वध है ॥ बहुरि संक्लेशपरिणामकरि ऐसा रुदन विलाप करै–जाके श्रवणतैं अन्यजीवनिका परिणाम कांपने लगिजाय, दया उपजि आवै–सो परिदेवन है ॥ ये दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध, परिदेवनरूप

परिणाम क्रोधादिककरि आपकै करै; अर आप समर्थ होइ कषायका वशतैं अन्यजीवनिकै करै; अर आपकै अर अन्यकै दोऊनिकै करै, तातैं असातावेदनीयकर्मका आस्रव होइ है॥

दुःखशब्दकरि औरहू असातावेदनीयका कारण कहे हैं॥ अशुभप्रयोग करना, परका अपवाद निंदा करना, पूठि पाछै परके दोष कहना, दयाका अभाव करना, परजीवनिकै ताप उपजावना, अंग उपांग छेदन करना, भेदन करना, लाठीमूकीतैं ताडन करना, त्रास उपजावना, तर्जना करना, छेदन करना, छोलना, कांटना, बांधना, रोकना, मर्दन करना, दमन करना, बहुत दूरि चलावना, फैकना, परकी निंदा करना, अपनी प्रशंसा करना, संक्लेश प्रकट करना, निर्दयपणाकरि प्राणीनिका नाश करना, महान् आरंभ करना, महान् परिग्रह वधावना, विश्वासघात करना, वक्रस्वभाव रखना, पापकर्मनितैं जीविका करना, अनर्थदंड ग्रहण करना, विष मिलावना, जीवनिकै मारनेकूं पकडनेकूं जाल पासी वागुरा पींजरा जंत्र इत्यादिक उपाय रचना, खोटे शास्त्र देना, पापके भाव करना ये समस्त आपकै तथा आप अर पर दोऊनिकै कीया हुवा असातावेदनीयकर्मके आस्रवके कारण हैं॥

अब सातावेदनीयके आस्रवके कारणनिकूं कहे हैं॥ भूत जे समस्त प्राणी अर व्रती जे अहिंसादिकपापनिके त्यागी, तिनविषैं अनुकंपा करना। अनुग्रहबुद्धिकरि भीज्या

हुवा, परकै पीडाकूं देखि आपमैं पीडा तिष्ठतीकीनांई जानि, कंपायमान होना, सो अनुकंपा है। जाकै दया है, ताकै सामान्य समस्त प्राणीनिमैं दुःख देखि कांपना है। अर महाव्रतीमैं अणुव्रतीमैं दुःख आया देखि दुःख मेटनेकी इच्छारूप हुवा, आपमैं आया दुःखकीनांई विशेष कम्पायमान होना, सो भूतव्रतीनिमैं अनुकंपा है॥ परके उपकारके अर्थि अपना आहार वस्त्रादिक देना, सो दान है॥ संसारका अभावके अर्थि वीतरागतामैं उद्यमी है, तोहू पूर्वोपार्जित कर्मके उदयतैं रागसहित होना, सो सरागता है, सरागकै जो छकायका जीवनिकी हिंसाका त्याग अर इंद्रियनिके विषयनिमैं अनुरागका त्याग, सो सरागसंयम है॥ औरहू संयमासंयम तथा पराधीनपणातैं बंदिगृहादिकनिमैं भोगोपभोगका रुकना, सो अकामनिर्जरा है॥ अज्ञानी मिथ्यादृष्टीनिका तप, सो बालतप है॥ निर्दोष क्रियाका आचरण, सो योग है, ताकूं ध्यान कहिये है॥ शुभपरिणामनिकी भावनापूर्वक क्रोधादिककषायका अभाव, सो क्षमा है॥ लोभका त्याग, सो शौच है॥ ऐसैं इन भूतव्रतीनिमैं अनुकंपा अर दानका देना, सरागसंयम, तथा संयमासंयम, अकामनिर्जरा, बालतप, योग तथा क्षमा, शौच इनिरूप परिणाम सातावेदनीयका आस्रवका कारण है॥ तथा क्षमा, अरहंत भगवानकी पूजाके करनेमैं तत्परता, बाल वृध्द तपस्वीनिके वैयावृत्त्यमैं उद्यम,

सरलपरिणाम, विनयादिक समस्त सातावेदनीयकर्मके आस्रवका कारण है ॥

अब दर्शनमोहनीयकर्मके आस्रवके कारणपरिणामनिकूं कहे हैं ॥ जाकै ज्ञानावरणकर्मके अत्यंत क्षयतैं उपज्या केवलज्ञान, सो केवली है। अर रागद्वेषमोहरहित अर बुध्दिके अतिशय ऋध्दिकरि युक्त जे गणधरदेव, तिनकरि प्रकाश्या, सो श्रुत है। अर रत्नत्रयके धारक मुनीश्वरनिका समूह, सो संघ है ॥ अहिंसादिलक्षण धर्म है ॥ भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी कल्पवासी ये च्यारिप्रकारके देव हैं॥ केवली, और श्रुत, और संघ, अर धर्म, अर देव इनिका अवर्णवाद करना, सो दर्शनमोहके आस्रवका कारण है ॥

जो गुणवंत महान् पुरुषनिका अनहोता असत्य दोष अपनी बुद्धिकी मलिनतातैं प्रकट करना, सो अवर्णवाद है ॥ तिनमें केवलीकै अन्नके पिण्डका आहार करना कहै, तथा केवली कंबल ऊनके वस्त्र पहरे रहे है, केवली निहार करे है, केवलीकै तुंबीपात्र है, केवलीकै दर्शनपूर्वक ज्ञान होय है इत्यादिक अपनी बुद्धिकी-मलिनतातैं समस्तदोषरहित केवलीकै झूंटा दोष कहना, सो केवलीका अवर्णवाद है ॥

बहुरि ऐसे कहै-श्रुत जो शास्त्र, तामैं मांसभक्षण; मत्स्यीमत्स्यका भक्षण तथा, मधु जो सहत ताका भक्षण; तथा मदिरापान करना, तथा कामपीडित साधूकै मैथुनसेवन करना, रात्रिभोजन करना इत्यादि निर्दोष है, श्रुतमें निर्दोष कह्या है ऐसैं

कहना; सो श्रुतका अवर्णवाद है ॥

बहुरि ये जैनके दिगम्बर मुनि शूद्र हैं, स्नानरहित हैं, मलकरि लिप्त हैं, अशुचि हैं, निर्लज्ज हैं, इहांही प्रत्यक्ष दुःख भोगे हैं! परलोकमें कैसैं सुखी होयगे? ऐसैं कहना, सो संघका अवर्णवाद है ॥

बहुरि जिनेन्द्रका उपदेश्या दशलक्षण धर्म निर्गुण है, इसके सेवनेवाले असुर होयगे ऐसैं कहना, सो धर्मका अवर्णवाद है ॥ बहुरि देव मांसभक्षण करे हैं, मदिरा पीवे हैं इत्यादिक कहना, सो देवका अवर्णवाद है ॥ ऐसैं केवलीका अवर्णवाद, श्रुतका अवर्णवाद, संघका अवर्णवाद, धर्मका अवर्णवाद, देवका अवर्णवाद, सो दर्शनमोहनीयकर्मके आस्रवके कारण है ॥

अब चारित्रमोहनीयकर्मके अस्रावके कारण परिणामनिकूं कहे हैं ॥ जगतके उपकार करनेमें उमर्थ जो शीलव्रत, तिनकी निंदा करना, आत्मज्ञानी तपस्वीनिकी निंदा करना, धर्मका विध्वंस करना, धर्मके साधनमें अन्तराय करना, तथा शीलवानकूं शीलतैं चिगावना, देशव्रतीकूं तथा महाव्रतकिूं व्रतनितैं चलायमान करना, मद्यमांसमधुका त्यागीनिके चित्तमें भ्रम उपजावना–जातैं त्यागमें शिथिल होजाय, चारित्रमें दूषण लगावना, क्लेशरूप लिंग–भेष धारना, क्लेशरूप व्रत धारना, आपकै अर परकै कषाय

उपजावना इत्यादिक कषायवेदनीयके आस्रवके कारण हैं ॥

बहुरि नानाप्रकार पर कोई क्रीडा करै तिसकी क्रीडामैं तत्परता, अन्यकै क्रीडाकी सामग्रीमैं उद्यम करना, उचितक्रियाका वर्जन नही करना, नानाप्रकारकी पीडाका अभाव करना, देशादिकमें उत्सुकपणाका अभाव, सो रतिवेदनीयकर्मका आस्रवका कारण है ॥ अन्यजीवनिकै अरति प्रकट करना, परकी रतिका विनाश करना, पापरूप जिनका स्वभाव तिनकी संगति करना, अकल्याणरूप खोटी क्रियामैं उत्साह करना ये अरतिवेदनीयकर्मका आस्रव करे हैं ॥

अपनै शोक होय तामैं विषादी होय चिंतवन करना, परकै दुःख प्रकट करना, अन्यकूं शोकमें लीन देखि आनन्द धारना, सो शोकवेदनीयकर्मके आस्रवका कारण है ॥ बहुरि अपना भयरूप परिणाम करना, परकै भय उपजावना, निर्दयपणाकरि परकूं त्रास देना इत्यादिक भयवेदनीयका आस्रवका कारण है ॥ बहुरि सत्यधर्मकूं प्राप्त भये च्यारि वर्णके धारक ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र तिनका कुलकी क्रिया आचारकी ग्लानि करना, परका अपवाद करना, सो जुगुप्सावेदनीयके आस्रवके कारण है ॥ बहुरि अतिक्रोधके परिणाम, अतिमानीपणा, ईर्षाका व्यवहार, असत्यवचन, अतिमायाचारमें तत्परपणा, अतिरागभावका करना, परस्त्रीसेवन करना, परस्त्रीका रागभावतैं आदर

करना, स्त्रीकेसे भाव आलिंगनादिक करना, इनि भावनितैं स्त्रीवेदका आस्त्रव होय है.

अल्प क्रोध, कुटिलताका अभाव, विषयनिमें उत्सुकताका अभाव, निर्लोभता, स्त्रीके संबंधमें अल्प राग, अपनी स्त्रीमैं संतोष, ईर्षाका अभाव, गंध पुष्प माल्य आभरणमें अनादर इत्यादिक पुरुषवेदके आस्त्रवका कारण है ॥ बहुरि क्रोध मान माया लोभ च्यार्‍यूं कषायनिका प्रचुरपरिणामका होना, तथा गुह्य इंद्रियका छेदना, स्त्रीपुरुषनिके कामके अंग छांडि अनंगमें व्यसनीपणा, शीलवंतनिकूं उपसर्ग करना, व्रतीनिकूं दुःख देना, गुणनिके धारकनिका मथन करना, दीक्षाकूं ग्रहण करनेवालेनिकूं दुःख देना, परस्त्रीका संगमवास्तै तीव्र राग करना, आचाररहित निराचारी होना, सो नपुंसकवेदके बंधका कारण है ॥

अब च्यारिप्रकारकी आयुके मध्य नरक आयूके बंधका कारण कहे हैं ॥ हिंसाका कारण बहुत आरंभ अर बहुतपरिग्रहका संचय करना, सो नरक आयूका आस्त्रवका कारण है ॥ विशेष कहे हैं- मिथ्यादर्शनकरि मिल्या आचरण, उत्कृष्ट अभिमानीपणा, शिलाभेदसदृश क्रोध, तीव्रलोभमें अनुराग, निर्दयपणा, परजीवनिकै संताप उपजावनेका परिणाम रखना, परके घातका परिणाम रखना, परकै बंधनका अभिप्राय, समस्तजीवनिका घात करनेका परिणाम, जिसतैं प्राणीनिका

घात होइ ऐसा असत्यवचनका स्वभाव रखना, परद्रव्यके हरनेके परिणाम, मैथुनका उपसेवन, पापका कारण अभक्ष्य आहार, वैरकी स्थिरता, यतीनिकी निंदा, तीर्थंकरांकी अवज्ञा, कृष्णलेश्याके परिणाम, रौद्रध्यानकरि मरण इत्यादिक नरक आयूका आस्रवका कारण है ॥

बहुरि मायाचारका परिणाम तिर्यंचयोनीका कारण है ॥ मिथ्याधर्मका उपदेश, बहु आरंभ, बहुपरिग्रह, कपट, कूटकर्म करना; पृथ्वीका भेदसमान क्रोध, शीलरहितपणा, शब्द चिह्न वचननिकरि तीव्र मायाचारमें प्रीति, परके परिणामनिमें भेद करना; अनर्थ प्रकट करना; वर्ण, गंध, रस, स्पर्श इनिका विपरीत करना; जाति कुल शीलमें दूषण लगावना; विसंवादका अभिप्राय रखना; परके उत्तमगुणनिकूं छिपावना; विनाहोते अवगुण प्रकट करना; नील कपोत लेश्याके परिणाम, आर्तध्यानतैं मरण करना; इत्यादि तिर्यंच आयूके आस्रवके कारण हैं ॥

बहुरि अल्प आरंभ, अल्पपरिग्रहपणा मनुष्य आयूके आस्रवका कारण है ॥ बहुरि मिथ्यादर्शनसहित बुध्दि, विनयवान्स्वभावपणा, सरलप्रकृति, मार्दव, आर्जव, सांचे आचरणमें सुख मानना, अपना सुख जनावना, वालू रेतमें लीकसमान क्रोध, सरलव्यवहारमें प्रवृत्ति, संतोषमें रति, प्राणीनिका घातमें विरक्तता, खोटे कर्मनितैं

निवृत्ति होना, आपके निकट आया तिसमैं मिष्ट संभाषण, प्रकृतिहीतैं मधुरता, लौकिकव्यवहारतैं उदासीनता, ईर्षारहितपणा, अल्पसंक्लेशपणा, देवता गुरु अतिथिकी पूजादानका अपने द्रव्यमैंतैं विभाग करना, कपोतलेश्याके परिणाम, मरणकालमें धर्मध्यानीपणा, अर स्वभावहीतैं विनासिखाया कोमलपणा ये मनुष्य आयूके आस्रवके कारण हैं ॥

बहुरि सरागसंयम, अकामनिर्जरा, अज्ञानतप ये देव आयूके आस्रवका कारण हैं ॥ तथा कल्याण करनेवाला मित्रका संबंध, धर्मके स्थान आयतनकी सेवा, सत्यार्थधर्मका श्रवण, धर्मका महिमा जैसैं होइ तैसैं करना, सम्यक्त्व धारना, प्रोषधोपवास करना, इनतैं देव आयूका आस्रव होय है ॥ तत्त्वज्ञानरहित मिथ्यादृष्टीका तप करना है, सो बालतप है ते बालतपके धारक भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी देवनिमैं तथा बारमां स्वर्गपर्यंत स्वर्गनिमैं वा मनुष्यतिर्यंचनिमैं उपजे हैं ॥ बहुरि पराधीन हुवा क्षुधा तृषाका निरोध भोगना, बंदिग्रहादिकनिमैं ब्रह्मचर्य, भूमिशयन, मलधारण करना, दुर्वचनादिकका आताप सहना, दीर्घकाल रोगधारण ये अकामनिर्जराके धारक ये व्यंतर मनुष्य तिर्यंचनिमैं उत्पन्न होय हैं ॥ बहुरि संक्लेशरहित होइ वृक्षतैं पडनेवाले; पर्वततैं गिरनेवाले; भोजनके त्यागमें, जलप्रवेश करनेमें, अग्निप्रवेश करनेमें, विषभक्षणमें, धर्मके माननेवाले व्यंतर तथा मनुष्यतिर्यंचनिमैं उपजे हैं ॥ बहुरि शीलवान, व्रतवान, दया-

वान्, जलरेखासमान क्रोधके धारक, अर भोगभूमीमैं उपजनेवाले, व्यंतरादिकदेवानिमैं जन्म धारण करे हैं ॥ बहुरि सम्यग्दृष्टी भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी देवनिमैं नहीं उपजे हैं—कल्पवासी देवनिहीमैं उत्पन्न होय हैं ॥

अब अशुभनामके कारणानिकूं कहे हैं ॥ मन वचन कायकी कुटिलता रखना, अर विसंवाद करना, तातैं अशुभनामकर्मका बंध होय है ॥ अशुभयोगानिका विशेष ऐसैं जानना—मिथ्यादर्शन धरना, परकी पूठि पाछै खोटी कहना, चित्तका अस्थिरपणा, ताखडी वाट कुडा रखना, सुवर्ण मणि रत्नादिक खोटेकूं आच्छेमैं मिलावना, कुडी खोटी साक्षी भरना, अंग उपांग काटना, वर्ण रस गंध स्पर्श इनकी विपरीतता करना, अनेक जीवानिकूं दुःख देनेवाले जंत्र पींजरे बनावना, कपटकी प्रचुरता, परकी निंदा अपनी प्रशंसा करना, झूंठ वचन बोलना, परका द्रव्य ग्रहण करना, महान् आरंभका महान् परिग्रहका मद करना, उज्वल आभरण वस्त्र उज्वलवेषका मद करना, रूपका मद करना, कठोर निंद्य वचन असत्यप्रलाप क्रोधके वचन धीटताके वचन कहना, सौभाग्यमें उपयोग करना, वशीकरणके प्रयोग करना, परजीवनिकै कौतूहल उपजावना, आभरण पैरनेमैं आदरतैं अनुराग करना, जिनमंदिरके चंदनादिक गंध अर पुष्पमाल्यादिक धूपदीपादिकानिका चोरना, हास्य करना ईंटनिके पकावनेके प्रयोग दावाग्नीके प्रयोग करना, देवकी

प्रतिमाका विनाश करना, तथा प्रतिमाका स्थान जो मंदिर ताका नाश करना, मनुष्यादिकनिके बैठनेरहनेके मकानकूं मलमूत्रादिककरि विगाडना, वागवगीचे वनका विनाश करना, क्रोध मान माया लोभका तीव्रपणा, पापकर्मनितैं जीविका करना इत्यादिकनितैं अशुभनाम कर्मके आस्रव होय हैं ॥

बहुरि मन वचन कायकी सरलता अर पूर्वं कहे तीसूं उलटे परिणाम ते समस्त शुभनाम कर्मके आस्रवके कारण हैं ॥ तथा धर्मात्माकूं देखि हर्षकूं प्राप्त होना, सम्यग्भाव रखना, संसारभ्रमणतैं भयभीत रहना, प्रमाद वर्जना इत्यादिक शुभनाम कर्मके आस्रवके कारण हैं ॥

अब अनंत अर उपमारहित है प्रभाव जाका अर अचिंत्यविभूतिविशेषका कारण त्रैलोक्यमें विजय करनेवाला ऐसा तीर्थंकरनामा नामकर्मके आस्रवके कारण षोडशकारण भावना हैं, तिनका संक्षेप ऐसा है– जिनेन्द्रका उपदेश्या निर्ग्रन्थलक्षण मोक्षका मार्गमें जो रुचि अर निःशंकितत्वादि अष्ट अंगनिकी उज्वलतारूप दर्शनविशुद्धि है १ ज्ञानदर्शनचारित्रविषैं अर दर्शनज्ञानचारित्रके धारकनिमैं आदर करना–सत्कार करना तथा कषायका अभाव करना, सो विनयसम्पन्नता है ॥ २ ॥ अहिंसादिक व्रतानिमैं तथा व्रतके पालनेके अर्थि क्रोध मान माया लोभका त्यागस्वभाव शीलनिविषैं मनवचनकायकरि निर्दोषप्रवृत्ति करना, सो शीलव्रतेष्वनतीचार भावना है ॥ ३ ॥ ज्ञानकी

भावना पढना पढावना उपदेश करना इत्यादिक श्रुतज्ञानके अर्थमें निरंतर उपयोग रखना, सो अभीक्ष्णज्ञानोपयोग है ॥ ४ ॥ शरीरसंबंधी दुःख, तथा मानसिकदुःख तथा इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग, वांछितका अलाभ इत्यादिक संसारके दुःखनितैं नित्य भयभीतता, सो संवेगभावना है ॥ ५ ॥ धर्मात्मा पुरुषनिकै उपकारके अर्थि आहार औषध शास्त्र अभयदानका सम्यग्भावनितैं भक्तिपूर्वक देना सो शक्तितस्त्याग है ॥ ६ ॥ अपना वीर्यकूं नहीं छिपायकरिकै जिनेंद्रके मार्गके अनुकूल अनशनादिक कायक्लेश करना, सो शक्तितस्तप है ॥ ७ ॥ मुनीश्वरनिकै कोऊ कारणतैं व्रत तप शील संयममें विघ्न आवै, तिनका विघ्न दूरि करि रक्षा करना, जैसैं अनेकवस्तुनिकरि भऱ्या भंडारमें अग्नि लागै, तो तिसका बुझावना रक्षा है; तैसैं साधुनिकै विघ्न दुःख दूरि करि, तप, व्रत, शील, संयमकी रक्षा करना सो साधुसमाधि है ॥ ८ ॥

गुणवंतनिकै दुःख प्राप्त होते निर्दोषविधिकरि उनका दुःख दूरि करना, टहल करना, सो वैयावृत्य है ॥ ९ ॥ केवलीनिके गुणनिमैं अनुराग सो अर्हद्भक्ति है ॥ १० ॥ समस्तसंघके अधिपति दीक्षाशिक्षाके दायक आचार्यनिके गुणनिमैं अनुराग, सो आचार्यभक्ति है ॥ ११ ॥ स्वमतपरमतके ज्ञाता ऐसे बहुश्रुतीनिके गुणनिमैं अनुराग, सो बहुश्रुतभक्ति है ॥ १२ ॥ श्रुतज्ञानके गुणनिमैं अनुराग, सो प्रवचनभक्ति है ॥ १३ ॥

षट् आवश्यकनिका यथाकाल प्रवर्तन करना, सो आवश्यकापरिहाणि नामा भावना है ॥ १४ ॥ ज्ञानके प्रकाशकरि तथा महान् तपकरि तथा जिनपूजाकरि जिनधर्मका उद्योत करना, सो मार्गप्रभावना है ॥ १५ ॥ धर्मात्मा पुरुषनिविषैं अतिस्नेह करना जैसैं गऊ वत्सविषैं प्रीति करै, तैसैं प्रीति करना, सो प्रवचनवत्सलत्व है ॥ १६ ॥ ये षोडशभावना तीर्थंकरनाम कर्मके आस्रवकूं कारण हैं ॥

अब गोत्रकर्मके आस्रवके कारणनिमैं नीचगोत्रनाम कर्मके आस्रवके कारणनिकूं कहे हैं ॥ परके दोष होते वा अनहोते प्रकट करनेकी इच्छा, सो परनिंदा है। अर आपविषैं विद्यमान वा अविद्यमान गुणनिके प्रकट करनेकी इच्छा, सो आत्मप्रशंसा कहिये। परके सांचे गुणनिकूंहू आच्छादन करना अर अपने झूंटेहू गुण प्रकट करना, सो परनिंदा आत्मप्रशंसा। परके गुण होइ तिनकूं ढांकना अर आपके अनहोत गुण प्रकट करना, ते नीचगोत्रके आस्रवके कारण हैं ॥ विशेष ऐसा जानना– जाति कुल बल रूप श्रुत आज्ञा ऐश्वर्य तपका मद करना, परकी अवज्ञा करना, परकी हास्य करना, परके अपवाद करनेका स्वभाव रखना, धर्मात्मा पुरुषनिकी निंदा करना, अपनी उच्चता दिखावना, परके यशकूं बिगाडि देना, असत्य कीर्ति उपजावना, गुरुनिका तिरस्कार करना, गुरुनिका दोष विख्यात करना, गुरुनिका स्थान बिगाडना, अपमान करना,

गुरुनिकै पीडा उपजावना, अवज्ञा करना, गुणनिकूं लोप करना, गुरुनिकूं अंजुली नही जोडना, गुरुनिकी स्तुति नही करना, गुरुनिके गुण नहि प्रकाशना, गुरुनिकूं आवतें नही खडा होना, तीर्थंकरादिकनिकी आज्ञादिकका लोप करना ये समस्त नीचगोत्रके बंधके कारण हैं ॥

अब उच्चगोत्रके आस्रवके कारणनिकूं कहे हैं ॥ अपनी निंदा करना, परकी प्रशंसा करना, परके भले गुणनिकूं प्रकट करना, अवगुणनिकूं ढांकना, गुणवंतनिविषैं विनयकरि नम्रीभूत रहना, आपमैं ज्ञानादिकगुणनिकी आधिक्यता होतैहू ज्ञानादिकनिकृत मदकूं प्राप्त नही होना—अहंकार नही करना, सो उच्चगोत्रके आस्रवका कारण है ॥ औरहू कह्या है— जाति, कुल, बल, रूप, वीर्य, विज्ञान, ऐश्वर्य, तप इनिकरि अधिक होय, तातैं आपकी उच्चता नही चिंतवन करना; अन्यजीवनकी अवज्ञा नही करना; अन्यजीवनितैं उद्धतपणा छांडना; परकी निंदा, परकी ग्लानि, परकी हास्य, परका अपवादका त्याग करना; बहुरि अभिमानरहित रहना; धर्मात्माजनका पूजा सत्कार करना—देखतैंही ऊठि खडा होना, अंजुली जोडना, नम्रीभूत होना, वंदना करना; बहुरि अवारके अवसरमें अन्यपुरुषनिकै ऐसे गुण होना दुर्लभ तैसे गुण आपमैं होतैहू उद्धतपणा नही करना; अहंकारका अभाव करना—जैसैं भस्ममें ढक्या अग्निकी-

नाईं अपना माहात्म्य नहीं प्रकट करना; धर्मके कारणनिमैं परम हर्ष करना; सो समस्त उच्चगोत्रके आस्रवके कारण हैं ॥

अब अंतरायकर्मके आस्रवके कारण परिणामनिकूं कहे हैं ॥ दान देनेमें विघ्न करनेतैं दानांतरायका आस्रव होय है ॥ कोऊकै लाभ होता होय तिस लाभके कारणकूं बिगाडै, तातैं लाभांतरायकर्मका आस्रव होय है। परके भोग बिगाडनेतैं भोगांतरायका अर परका उपभोग बिगाडनेतैं उपभोगांतरायका, परका वीर्य बिगाडनेतैं वीर्यांतरायकर्मका आस्रव होय है ॥ इसका विस्तार कहे हैं– कोऊ ज्ञानाभ्यास करता होय ताके निषेध करनेतैं; तथा कोऊका सत्कार होता होय तिसके विनाशनेतैं; तथा दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, स्नान, विलेपन, अतर, सुगंध, पुष्पमाल्यादिक, वस्त्र, आभरण, शय्या, आसन, भक्षण करनेयोग्य भक्ष्य, भोजन करनेयोग्य भोज्य, पीवनेयोग्य पेय, आस्वादनेयोग्य लेह्य इत्यादिकनिमैं विघ्न करनेतैं, तथा विभवसमृद्धि देख आश्चर्य करनेतैं, तथा अपने द्रव्य होतेहू नहीं खर्चनेतैं, द्रव्यकी अतिवांछातैं देवतानिकै चढी वस्तूके ग्रहण करनेतैं, निर्दोष उपकरणके त्यागनेतैं, परकी शक्ति–वीर्य विनाशनेतैं; धर्मका छेद करनेतैं; सुंदर आचारके धारक तपस्वी गुरुका घात करनेतैं; जिनप्रतिमाकी पूजाके बिगाडनेतैं; तथा दीक्षित, तथा दरिद्री, दीन, अनाथ इनकूं कोऊ

वस्त्र पात्र स्थान देते होय, तिनके निषेध करनेतैं; परकूं बंदिगृहमैं रोकनेतैं; बांधनेतैं; गुह्य अंगके छेदनेतैं; कर्ण, नासिका ओष्ठके काटनेतैं; जीवनिकैं मारनेतैं अंतराय नामा कर्मका आस्रव होय है ॥

जैसैं कोऊ मद्यपानी अपनी रुचिविशेषतैं मद मोह विभ्रमके करनेवाली मदिरा पीयकरिकै अर तिसके उदयके वशतैं अनेकविकारकूं प्राप्त होय है; तथा जैसैं रोगी अपथ्यभोजन करि अनेक वातपित्तकफादिजनित विकारनिकूं प्राप्त होय है; तैसैं आस्र-वविधिकरि ग्रहण कीया अष्टप्रकारका ज्ञानावरणादिक कर्म तथा एकसो अटतालीस प्रकार उत्तरकर्म तथा असंख्यात लोकप्रमाण उत्तरोत्तर कर्मकी प्रकृतितैं उपज्या विकारकूं प्राप्त होय है ॥ बहुरि कोऊ प्रश्न करै— जो, आयुकर्मविना सप्त कर्मप्रकृतिनिका आस्रव समयसमय निरंतर अनादिकालतैं होय है, तदि प्रदोषादिकनिकरि ज्ञानावरणादिकनि-काही नियम कैसैं रह्या? ताका उत्तर— एककालमें जो समयप्रबद्ध आवे है, तिसके परमाणु ज्ञानावरणादिक सप्तकर्मनिकूं वटे है, तथा अपनेअपने वटमें यथायोग्य अपनी-अपनी उत्तरप्रकृतिनिकूं वटे है। तातैं समस्त कर्मप्रकृतिकै प्रदेशबंधप्रति नियम नही कह्या है। जो ये पूर्वैं तत्प्रदोषादिक भाव कहे, ते अनुभागप्रति नियमके कारण हैं। इनि भावनितैं जो कर्म आवै, सो अनुभागप्रति नियम जनावे है। जैसैं कोऊ पुरुषका

भाव दानके देनेमें विघ्न करनेवाला भया, तदि उस समयमें जो कर्मका आस्रव भया, सो सप्तकर्मनिकूं वटि गया, परंतु दानांतरायकर्ममें तो रस प्रचुर पड्या, अर अन्य प्रकृति थोथी रहि गई, प्रकृति स्थिति प्रदेश तीनप्रकार बंध भया। अनुभाग कषायरूप भावनिप्रमाण कोऊमैं तीव्र रह्या, कोऊमैं मंद रह्या ऐसैं जानना॥

अब इहां ऐसा संक्षेप जानना—आस्रव सत्तावन प्रकारके हैं। मिथ्यात्व पंचप्रकार है— १ एकांत, २ विपरीत, ३ विनय, ४ संशय, ५ अज्ञान ये पंच मिथ्यात्वके प्रकार हैं। पंच इंद्रिय अर छट्ठा मनकूं वशीभूत नही करना अर छकायके जीवनिकी हिंसाका त्याग नही ये बारहप्रकार अविरत हैं। अर पचीस कषाय हैं। अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान मान माया लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ, संज्वलन क्रोध मान माया लोभ, हास्य, रति अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद ये पचीस कषाय हैं। सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, उभयमनोयोग, अनुभयमनोयोग ये च्यारि मनके योग हैं। सत्यवचनयोग, असत्यवचनयोग, उभयवचनयोग अनुभयवचनयोग ये च्यारि वचनयोग हैं। औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र, कार्मण ये सप्त काययोग हैं। ऐसैं मिथ्यात्व ५। अविरत १२। कषाय २५। योग १५। ये सत्तावन

आस्रव हैं, कर्म इनद्वारै होइ आवे है। तिनमें मिथ्यात्वद्वारै कर्म तो एक मिथ्यात्वगुणस्थानहीमैं आवे है अर अविरतद्वारै कर्म देशसंयमपर्यंतही आवे है। तिनमें त्रसवधद्वारै कर्म च्यारि गुणस्थानपर्यंतही है। अर कषायद्वारै कर्म सूक्ष्मसांपरायपर्यंत दश गुणस्थानपर्यंत आवे है॥ अर योगद्वारै कर्म तेरहमे गुणस्थानपर्यंत आवे है॥ ऐसैं आस्रवभावना संक्षेपतैं कही॥ विस्ताररूप गोमटसार नाम ग्रंथतैं जानना॥

अब दश गाथानिमैं संवरभावना कहे हैं॥ गाथा—

मिच्छत्तासवदारं। रुंभइ सम्मत्तदिढकवाडेण॥
हिंसादिदुवाराणि वि। दढवदफलिहेहिं रुंभंति॥ ३३॥

अर्थ— सम्यक्त्वरूप दृढकपाटकरिकैं मिथ्यात्वरूप आस्रवद्वारकूं रोकै अर दृढव्रतरूप आगलकरिकैं हिंसादिकद्वारनिकूं रोकै; तब मिथ्यात्वद्वारैं अर अव्रतद्वारैं कर्म आवै था, ताका संवर होय है॥ गाथा—

उवसमदयादमाउह-। करेण रक्खा कसायचोरेहिं॥
सक्का काउं आउह-। करेण रक्खा व चोराणं॥ ३४॥

अर्थ— कषायनिका उपशम अर जीवनिकी दया अर इंद्रियनिका दमन येही आयुध हैं हस्तमैं जाके ऐसा पुरुष कषायचोरनितैं अपनी रक्षा करे है। जैसैं जिसका

हस्तमें आयुध, सो पुरुष चोरनितैं रक्षा करनेकूं समर्थ होय है ॥ गाथा–

इंदियदुद्दंतस्सा । णिघ्घिप्पंति[1] दमणाणखलिणेहिं ॥
उप्पहगामा णिघ्घि- । प्पंति हु खलिणेहिं जह तुरया ॥ ३५ ॥

अर्थ— जैसैं उत्पथमार्गमें गमन करनेवाले घोडे लगामकरि निग्रहकूं प्राप्त करिये हैं; तैसैं इन्द्रियरूप दुष्ट घोडे विषयनितैं रोकनेरूप लगामकरि निग्रहकूं प्राप्त करिये हैं ॥

अणिहुदमणसा इंदिय- । सप्पाणि णिगिण्हिदुं ण तीरिज्ज ॥
विज्जामंतोसहिहीं- । णेण जहाऽऽसीविसा सप्पा ॥ ३६ ॥

अर्थ— जैसैं विद्या मंत्र औषधिकरि रहित पुरुष आसीविषजातिका सर्पके निग्रह करनेकूं समर्थ नही है; तैसैं मनकूं नही निश्चल करनेवाला चपलचित्तका धारक पुरुषहू इंद्रियरूप सर्पनिकै वश करनेकूं नही समर्थ होय है ॥ गाथा–

पावपयोगासवदा- । रणिरोधो अप्पमादफलिगेण ॥
कीरइ फलिगेण जहा । णावाए जलासवणिरोधो ॥ ३७ ॥

अर्थ— विकथादिक पंचदश प्रमाद, ते पापप्रयोग हैं। जैसैं नावमें जल आवनेके द्वारकूं काष्ठका फलककरि रोकिये है; तैसैं अप्रमादरूप फलककरि पापप्रयोग रोकिये हैं ॥ भावार्थ– जिसकै अपने स्वरूपकी निरंतर सावधानी है–प्रमाद नही होय

[1] निगृह्यन्ते

है, तिसकै विकथादिरूप प्रमादकरि आस्रव नहीं होय है। जिसकै अपने स्वरूपकी सावधानी नहीं, सो ४ विकथा, ४ कषाय, ५ इंद्रिय, १ निद्रा, १ स्नेह इनि पंद्रह प्रमादनितैं अंध होइ कर्मका आस्रव करे है॥ गाथा–

गुत्तिपरिखाहिं गुत्तं। संजमणयरं ण कम्मरिउसेणा॥
वंधेइ सत्तुसेणा। पुरं व परिखादिहिं सुगुत्तं॥ ३८॥

अर्थ— जैसैं खाई कोट इत्यादिककरि रक्षा कीया पुरकूं शत्रुकी सेना भंग करनेकूं समर्थ नहीं है; तैसैं मनवचनकायकी गुप्तिरूप खाई कोटकरि रक्षा कीया संयमनगरकूं कर्मरूप वैरीकी सेना भंग करनेकूं नहीं समर्थ होई है॥ गाथा–

समिदिदढणावमारुहि-। य अप्पमत्ता भवोदधिं तरदि॥
छज्जीवणिकायवधा-। दिपावमगरेहि अच्छिक्का॥ ३९॥

अर्थ— प्रमादरहित पुरुष हैं ते समितिरूप दृढ नावमें बैठिकरिकै छकायके जीवनिकी हिंसातैं उपज्या जे पापरूप जलचर तिनकरि नहीं स्पर्शे संसारसमुद्रकूं तिरे हैं॥

दारे व दारवालो। हिदये सुप्पणिहिदा सदी जस्स॥
दोसा धंसंति ण तं। पुरं सुगुत्तं जहा सत्तू॥ १८४०॥

अर्थ— जैसैं भलैप्रकारकरि रक्षा कीया पुरुष, ताहि शत्रु वैरी विध्वंस करनेकूं नहीं

प्राप्त होय है; तैसैं कर्मधातुमैं मिल्या हुवा जीव महान् तपरूप अग्निकरि धम्या हुवा शुद्धरूपकूं प्राप्त होय है ॥ अब इहां कोऊ कहै- जो, तपही आचरण करना, संवरकरि कहा प्रयोजन है? इस शंकाकूं निराकरण करता कहे हैं ॥ गाथा-

तवसा चेव ण मोक्खो । संवरहीणस्स होइ जिणवयणे ॥
ण हु सोत्ते पविसंते । किसिणं परिसुस्सदि तलायं ॥ ५२ ॥

अर्थ— जिनेंद्रका परमागममें भगवान् ऐसैं कह्या है, संवररहित पुरुषकै तपकरिकैही मोक्ष नहीं होय है। संवरसहित तपश्चरणकरिकैही मोक्ष होय है। जैसैं जिस तलावमें जलका प्रवाह निरंतर आवता होय, सो तलाव समस्त नहीं शुष्क होय है, पहली नवीन जल आवता रुकि जाय, तादि ग्रीष्मके सूर्यका आतापकरि तलाव सूकिही जाय है; तैसैं संवरपूर्वक तपही मोक्षका कारण है ॥ गाथा-

एवं पिणद्धसंवर- । वम्मो सम्मत्तवाहणारूढो ॥
सुदणाणमहाधणुगो । झाणादितवोमयसरेहिं ॥ ५३ ॥
संजमरणभूमीए । कम्मारिचमू पराजिणिय सव्वं ॥
पावदि संजयजोहो । अणोवमं मोक्खरज्जसिरिं ॥ ५४ ॥

अर्थ— ऐसैं पूर्वोक्तप्रकार पहऱ्या है संवररूप बकतर जानै ऐसा, अर सम्यक्त्वरूप

वाहनऊपरि चढ्या, अर श्रुतज्ञानरूप महान् धनुष्यकूं धारण करता, संयमीरूप योद्धा संयमरूप रणभूमीविषैं कर्मरूप वैरीनिकूं ध्यानादि तपोमय बाणनिकरि जीतिकरिकै उपमारहित मोक्षके राज्यकी लक्ष्मीकूं प्राप्त होय है॥ ऐसैं निर्जरानुप्रेक्षा कही ॥

अब धर्मभावनाकूं नवगाथानिमैं कहे हैं ॥ गाथा—

जीवो मुक्खपुरक्कड- । कल्लाणपरंपरस्स जो भागी ॥
भावेणोवज्जदि सो । धम्मं तं तारिसमुदारं ॥ ५५ ॥

अर्थ— जो जीव मोक्षपर्यंत कल्याणनिकी परंपराका भाजन है—पात्र है, सो जीव समस्त सुख देनेमें प्रवीण ऐसा उदार धर्मकूं प्राप्त होय है। जो निर्वाणकै योग्य नही सो उत्तमधर्मकूं नही धारण करिसकै है। जिसके कर्मनिकी स्थिति घटि जाय अर पापप्रकृतिनिमैं रस मंद रहि जाय, तिसका भाव धर्मके धारण करनेका होय है ॥ गाथा—

धम्मेण होइ पुज्जो । विस्ससणिज्जो पिउ जसस्सी य ॥
सुहसज्झो य णराणं । धम्मो मणणिव्वुदिकरो य ॥ ५६ ॥

अर्थ— पुरुष जगतमें धर्मकरि पूजनेयोग्य होय है। धर्मके प्रभावतैं समस्तजगतकै विश्वास करनेयोग्य होय है, सर्वकै प्रिय होय है, यशस्वी होय है। मनुष्यनिकै धर्म है सो सुखकरि साधनेयोग्य है, मनमें आनंद करनेवाला है ॥ गाथा—

जावदियाइं कल्ला-। णाइं माणुस्सदेवलोगे य ॥
आवहइ ताणि सव्वा-। णि मोक्खसोक्खं च वरधम्मो ॥ ५७ ॥

अर्थ— इस मनुष्यलोकमें वा देवलोकमें जितने कल्याण हैं, तिन समस्त कल्याणनिकूं अर निर्वाणके अनंत अविनाशी सुखकूं यो श्रेष्ठधर्म प्राप्त करे है ॥ गाथा—

ते धण्णा जे धम्मं। जिणदिट्ठं सव्वदुक्खणासयरं ॥
पडिवण्णा दढधिदिया। विसुद्धमणसा णिरावेक्खा ॥ ५८ ॥

अर्थ— जे दृढधैर्यके धारण करनेवाले अर उज्वलमनके धारक अर इसलोक परलोकमें ख्याति लाभ पूजादिककी अपेक्षारहित हुये समस्त दुःखनिके नाश करनेवाला अर जिनेंद्रका देख्या ऐसा सत्यार्थधर्मकूं धारण करे हैं; ते जगतमें धन्य हैं ॥ धर्मरहितपुरुषनिकरि तो जगत् भऱ्या है, केवल महात्मापुरुष विरले हैं ते धन्य हैं ॥

विसयाडवीए उम्म-। ग्गविहरिदा सुचिरमिंदियस्सेहिं ॥
जिणदिट्ठणिव्वुदिपहं। धण्णा ओदरिय गच्छंति ॥ ५९ ॥

अर्थ— विषयरूप वनीमैं इंद्रियरूप दुष्ट अश्वनिकरि चिरकालपर्यंत उत्पथमार्गमें विहार करते कोऊ धन्यपुरुष हैं ते इंद्रियरूप दुष्ट घोडेनितैं उतरिकरि जिनेंद्रका दिखाया निर्वाणका मार्गप्रति गमन करे हैं ॥ गाथा—

रागेण य दोसेण य । जगे रमंतम्मि वीदरागम्मि ॥
धम्मम्मि णिरासाद- । म्मि रदी अदिदुल्लहा होइ ॥ १८६० ॥

अर्थ— जगद्वर्ती लोक रागकरि द्वेषकरि क्रीडा करते संते निरास्वाद वीतराग-धर्ममें रति करना अत्यंत दुर्लभ है ॥ भावार्थ- जगतके लोक इंद्रियनिके विषयनिमें रमि रहे हैं, अर कषायनिकरि मलिन होइ रहे हैं, अर विषयनिमैंही सुखरूप आस्वा-दनकरि रमि रहे हैं, विषयनिके आस्वादनके लोलपी संसारी जीवनिकी विषयरहित वीतरागधर्ममें रति होना अत्यंत दुर्लभ है ॥ गाथा—

सहलं माणुसजम्मं । तस्स हवदि जस्स चरणमणवज्जं ॥
संसारदुक्खकारय- । कम्मागमदारसंरोधं ॥ ६१ ॥

अर्थ— जिस मनुष्यकै, संसारके दुःख करनेवाले कर्म तिनके आगमनका द्वार रोकनेमें समर्थ ऐसा निर्दोष चारित्र होय है, तिसहीका मनुष्यजन्म सफल है ॥ गाथा—

जह जह णिव्वेदुवसम- । वेरग्गदयादमा पवड्ढंति ॥
तह तह अब्भासयरं । णिव्वाणं होइ पुरिसस्स ॥ ६२ ॥

अर्थ— इस मनुष्यकै धर्मानुराग अर कषायनिकी मंदता अर वैराग्यता अर समस्त प्राणीनिकी दया अर इंद्रियनिका दमन जैसें जैसें वधत है, तैसें तैसें निर्वाण अति-

शयकरि समीपताकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा—

सम्मद्दंसणतुंवं । दुवालसंगारयं जिणिंदाणं ॥
वयणेमियं जगे जय- । इ धम्मचक्कं तवाधारं ॥ ६३ ॥

अर्थ— जिनेंद्रभगवानका धर्मचक्र जगतमें जयवंत प्रवर्ते है। कैसाक है धर्मचक्र? जाकै सम्यग्दर्शनरूप मध्यका तुंव है, अर आचारांगादिक द्वादश अंगही जाके आरा हैं, पंचमहाव्रतादिरूप जाकै नेमि है, अर तपरूप जाके धार है, ऐसा भगवानका धर्मरूप चक्र कर्मरूप वैरीनिकूं जीति परमविजयकूं प्राप्त होय है॥ ऐसें धर्मभावना वर्णन करी॥

अब वोधिदुर्लभभावना अष्टगाथानिमें वर्णन करे हैं ॥ गाथा—

दंसणसुदतवचरणम- । इयम्मि धम्मम्मि दुल्लहा वोही ॥
जीवस्स कम्मसत्त- । स्स संसरंतस्स संसारे ॥ ६४ ॥

अर्थ— संसारविषैं परिभ्रमण करता कर्मनिकरि लिप्त जो जीव, ताकै दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तपरूप धर्मविषैं वोधि जो रत्नत्रयकी परिपूर्णता तथा आराधनासहित मरण होना दुर्लभ है ॥ गाथा—

संसारम्मि अणंते । जीवाणं दुल्लहं मणुसत्तं ॥
जुगसमिलासहजोगो । जह लवणजले समुद्दम्मि ॥ ६५ ॥

अर्थ— जैसैं लवणसमुद्रकी पूर्वदिशामैं क्षेप्या जूडा अर पश्चिमदिशाके लवणसमुद्रमें क्षेपी समिला इन दोऊनिका संयोग होना दुर्लभ है; तैसैं अनंतसंसारविषैं जीवनिकै मनुष्यपणा होना दुर्लभ है ॥ गाथा—

असुभपरिणामवहुल- । त्तणं च लोगस्स अदिमहल्लत्तं ॥
जोणिवहुत्तं च कुणदि । सुदुल्लहं माणुसं जोणिं ॥ ६६ ॥

अर्थ— इस लोकमें मिथ्यात्व असंयम कषाय प्रमाद इत्यादिक अशुभपरिणामनिका बहुलपणा है—मिथ्यात्व असंयमादिक भाव निरंतर बहुतवार बहुत प्रवर्तत हैं। अर मनुष्यविना अन्यजीवनिका बहुतपणा है। अर योनीका बहुलपणा है—चोऱ्यासी लक्ष योनिस्थान हैं अर तिनमें एकसो साठा निन्याणवे लक्ष कुलकोडी हैं, ते मनुष्य योनीकूं दुर्लभ करे हैं ॥

भावार्थ— यो जीव अनंतानंत काल तो निगोदहीमैं वस्या है। अर कदाचित् कोई जीव निगोदतैं निकलै तौ पृथ्वीकायमें, जलकायमें, पवनकायमैं तथा अग्निकायमें, तथा प्रत्येकवनस्पतीमैं उत्पन्न होइ बहुरि निगोदमें जाय है। कैसा है निगोद? अनंतकालहूमैं तातैं निकलना कठिन है। अर अनंतानंतकालमें कदाचित् बहुरि निकसे तो फेरि पंचस्थावरनिमें उपजि बहुरि निगोद जाय है! ऐसैं अनंतवार एकेंद्रियमें परिभ्रमण करते

करते त्रसपणा पावना दुर्लभ है! अर कदाचित् त्रसहू होइ, तो वेंद्रीतैं तेंद्रियपना पावना दुर्लभ है! तातैं चौंद्रियपना पावना दुर्लभ है। अनंतवार स्थावरमें अर विकलत्रयमेंही परिभ्रमण करता अनंतकाल व्यतीत करे है, पंचेंद्रियपना पावना अत्यंत दुर्लभ है। अर कदाचित् वहुत भ्रमण करते करते पंचेंद्रियहू होइ, तो सिंह व्याघ्र सर्प स्याली चीता मत्स्य इत्यादिक दुष्टजीवानिमैं उपजि नरककूं प्राप्त होइ असंख्यात काल दुःख भोगि फेरिहू तिर्यंच होइ फेरि वारंवार निगोदमें विकलत्रयमें वा दुष्टतिर्यंचनिमें वा नरकमें उत्पन्न होइ होइ अनंतकाल व्यतीत करते करते कदाचित् मनुष्यपर्याय धारे है, जातैं मनुष्यपर्यायका विभागही अति थोडा है॥ गाथा—

देसकुलरूवमारो- । ग्गमाउगं वुद्धिसवणगहणाणि ॥
लध्दे वि माणुसत्ते । ण हुंति सुलभाणि जीवस्स ॥ ६७ ॥

अर्थ— अर जो कदाचित् मनुष्यपणा होय तौ उत्तमदेशमें उपजना दुर्लभ है। अनेकपापरूप धर्मरहित मूढनिकरि व्याप्त देशमें उपजि मनुष्यजन्मकूं वृथा ठेरकीनांई व्यतीत करे है। अर जो उत्तमदेशमेंहू उपजै तो उत्तमकुलमें उपजना अतिदुर्लभ है। हीन नीच मांसभक्षी मद्यपानी अनर्थके करनेवाले वा नीचजीविकाके करनेवाले वा चांडाल कलाल लुहार धोबी नीलगर इत्यादिकनिके कुलमें उपज्या तो देशादिक पावनाहू वृथा

है। अर जो उत्तमकुलमेंहू उपजै तो सुंदररूप नयन नासिका कर्णादिक इंद्रिय अर हस्तपादादिक अंग अर अंगुल्यादिक उपांग इनकी हीनाधिकतारहित जगतकै आदरनेयोग्य सुंदररूप पावना दुर्लभ है। अर देशकुल रूपादिकभी पावै अर रोगसहित शरीर पाया तो समस्त पावना वृथा है। रात्रिंदिन हायहाय करता वेदनाजनित आर्तध्यानकूं प्राप्त होइ दुर्गति जाय है। अर नीरोग शरीरभी कदाचित् पावै तो दीर्घायु होना दुर्लभ है। जातैं देश कुल रूप आरोग्यादिक समस्तसामग्री पायकरिकैंहू कोऊ गर्भहीमें मरण करे है! कोऊ एकदिन, दोय दिन, महिना, दोय महिना, बरस, दो बरस, पांच बरस, वीस बरस इत्यादिक अल्प आयु पायकरिकैं मरण करे है, तातैं दीर्घायु पावना अतिदुर्लभ है। अर दीर्घायुभी पावै तो उज्वलबुद्धि पावना दुर्लभ है। अर बुद्धिभी पावै तो संसारके विषयकषायनिमैं रचे है। धर्मश्रवण करना दुर्लभ है। अर धर्मश्रवण करे तो ग्रहण होना दुर्लभ है। तातैं मनुष्यपणा पायेभी उत्तमदेश, उत्तमकुल, रूप, आरोग्य, दीर्घायु, उज्वलबुद्धि, धर्मश्रवण धर्मग्रहण होना अतिदुर्लभ है ॥ गाथा—

लद्धेसु वि तेसु पुणो। बोधी जिणसासणम्मि ण हु सुलहा ॥
कुपथाकुलो य लोगो। जं बलिया रागदोसा य ॥ ६८ ॥

अर्थ— बहुरि देशकुलादिक प्राप्त होतेहू जिनशासनमें बोधि जे दीक्षाके सन्मुखबुद्धि

पावना दुर्लभ है। जातैं रागद्वेष बडे बलवान् हैं। इनके उदयतैं लोक कुमार्गमें आकुल भये प्रवर्ते हैं, रत्नत्रयमार्गमें चारित्रमोहके उदयतैं प्रवर्तन करना दुर्लभ है॥ गाथा–

इय दुल्लहाए वोही- । ए जो पमाइज्ज कह वि लद्धाए ॥
सो उल्लट्टइ दुक्खे- । ण रदणगिरिसिहरमारुहिय ॥ ६९ ॥

अर्थ— ऐसैं बोधि जो रत्नत्रय ताका प्राप्त होना दुर्लभ है अर कदाचित् बोधिकूं प्राप्त होइकरिकै प्रमादी होइ जो बोधितैं छूटे है, सो रत्नगिरिके शिखर चढिकरिकै अर प्रमादी हुवा दुःखकरि नीचे पडे है॥ गाथा–

फिडिदा संति य वोधी । ण य सुलहा होइ संसरंतस्स ॥
पडिदं समुद्दमज्झे । रदणं व तमंधयारम्मि ॥ १८७० ॥

अर्थ— जैसैं अंधकारके अवसरविषैं समुद्रमें पटक्या रत्नका पावना दुर्लभ है; तैसैं संसारमें परिभ्रमण करते जीवकै, नष्ट हुवा बोधि जो रत्नत्रय ताका फिरि पावना दुर्लभ है!

ते धण्णा जे जिणवर- । दिट्ठे धम्मम्मि होंति संवुद्धा ॥
जे य पवण्णा धम्मं । भावेण उवट्ठिदमदीया ॥ ७१ ॥

अर्थ— जे जिनवरकरि देखे धर्ममें प्रबुद्ध होय हैं, ते धन्य हैं। बहुरि जे उद्यमरूप भये भावनिकरि धर्मकूं प्राप्त होय हैं, ते धन्य हैं। ऐसैं बोधिदुर्लभभावना नवगाथानिमैं

वर्णन करी ॥ अब धर्मध्यानके प्रकरणमें आया द्वादशभावनाका स्वरूप वर्णन करी अब प्रकरणकूं समेटे हैं ॥ गाथा–

इयमालंवणमणुपे- । हाउ धम्मस्स होंति झाणस्स ॥
झायंतो ण विणस्सदि । झाणे आलंवणेहि मुणी ॥ ७२ ॥

अर्थ— ये बारह अनुप्रेक्षा धर्मध्यानका आलंबन हैं। इन भावनानिका आलंबन करिकै ध्यान करता मुनि ध्यानके संबंधमें नहीं विनसे है, ध्यानकी शुद्धता होय है ॥ अब धर्मध्यानके ध्याताके औरहू आलंबन कहे हैं ॥ गाथा–

आलंवणं च वायण- । पुच्छणपरिवट्टणाणुपेहाउ ॥
धम्मस्स तेण अविरु- । द्धाउ सव्वाणुपेहाउ ॥ ७३ ॥

अर्थ— जातैं निर्दोषग्रंथका वा अर्थका वा ग्रंथ अर्थ दोऊनिका योग्यपुरुषनिकूं पढावना–शिक्षा करना वा आप पढना, सो वाचना है। बहुरि अपने संशयके दूरि करनेके अर्थि वा तत्वका दृढनिश्चयके अर्थि विनयपूर्वक बहुज्ञानीनिकूं पूछना, सो पृच्छना है। बहुरि आगमतैं वा बहुज्ञानीनितैं जान्या जो अर्थ ताका मनकरि निरंतर अभ्यास, सो अनुप्रेक्षा है। बहुरि पीछला शीख्या ग्रंथका शुद्ध पाठ करना–ग्रंथ अर्थ दोऊनिकी समालि करनी, सो परिवर्तन है ॥ सो वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा,

परिवर्तन इनि च्यारि प्रकारकी स्वाध्यायतैं वुद्धि तो अतिशयरूप होइ है, अर प्रशंसा-योग्य उज्वलपरिणाम होय है, अर सर्वोत्कृष्ट धर्मानुराग होय है, संसार देह भोगनितैं विरक्तता होय है, तपकी वृद्धि होय है। तातैं समस्त द्वादश अनुप्रेक्षा धर्मध्यानका निर्दोष अवाध आलंबन है, तातैं धर्मध्यानीकै द्वादश भावनाका अवलंवन श्रेष्ठ है ॥

आलंवणेहि भरिदो। लोगो झाइदुमणस्स खवयस्स ॥
जं जं मणसा पेच्छइ। तं तं आलंवणं हवइ ॥ ७४ ॥

अर्थ— ध्यान करनेका है मन जाका ऐसा क्षपककै समस्त लोक ध्यानके आलंवननिकरि भऱ्या है। वीतरागी हुवा जिस जिस वस्तूकं देखे है, सो सो वस्तु ध्यानका आलंवन है। जातैं ध्यान करिये है, सो समस्त विपयकपायकूं निग्रह करि परम साम्यभावके प्राप्त होनेकूं करे है। अर वीतरागी मुनिकै समस्त पदार्थनिमैं साम्यभाव प्रकट भया, तातैं वीतरागी मुनिनिकै समस्तपदार्थही ध्यानके अवलंवन है ॥ गाथा—

इच्चेवमदिक्कंतो। धम्मज्झाणं जदा हवइ खवउ ॥
सुक्कज्झाणं झायदि। तत्तो सुविसुद्धलेसाउ ॥ ७५ ॥

अर्थ— जिस अवसरविषैं वीतरागी क्षपक इसप्रकार धर्मध्यान वर्णन कीया तिसकूं उलंघन करै तदि लेश्याकी उज्वलताकूं प्राप्त भया संता शुक्लध्यानकूं ध्यावत है ॥ ऐसैं

एकसो सड़सठि गाथानिमैं धर्मध्यानका वर्णन कीया ॥ अब बारह गाथानिमैं शुक्ल-ध्यानका वर्णन करे हैं ॥ गाथा-

झाणं पुधत्तसविय- । क्कसवीचारं हवे पढमसुक्कं ॥
सवियक्के गत्तावी- । चारं झाणं विदियसुक्कं ॥ ७६ ॥
सुहुमकिरियं तु तदियं । सुक्कज्झाणं जिणेहि पण्णत्तं ॥
विंति चउत्थं सुक्कं । जिणा समुच्छिण्णकिरियं तु ॥ ७७ ॥

अर्थ— पहला ध्यान तो पृथक्त्ववितर्कवीचार प्रथम शुक्लध्यान है । एकत्ववितर्क अवीचार दूजा शुक्लध्यान है । सूक्ष्मक्रिय नामा तीसरा शुक्लध्यान है । समुच्छिन्नक्रिय नामा चोथा शुक्लध्यान है ॥ अब पृथक्त्वसवितर्क सवीचार नाम प्रथमध्यानकूं तीन गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा-

दव्वाइ अणेयाइं । तीहि वि जोगेहि जेण झायंति ॥
उवसंतमोहणिज्जा । तेण पुधत्तात्ति तं भणियं ॥ ७८ ॥

अर्थ— जातैं जिनकै मोहका उपशम होगया ते साधु अनेकद्रव्यनिमैं मनवचनका-यकरिकैं ध्यावत हैं, तिस कारणकरि तिस प्रथमध्यानकूं पृथक्त्व कह्या है । पृथक्त्व नाम नानाका है—अनेकका है । सो नानाप्रकारके योगनिकरि अनेक अर्थनिकूं

ध्यावै, तातैं तो पृथक्त्व कहिये हैं ॥ गाथा–

जह्मा सुदं वियक्कं। जह्मा पुव्वगदअत्थकुसलो य ॥
झायदि झाणं एदं। सविदक्कं तेण तं झाणं ॥ ७९ ॥

अर्थ— जातैं वितर्क नाम श्रुतका है। जातैं पूर्वगत अर्थमें कुशल होइ इस ध्यानकूं ध्यावै, तातैं इस ध्यानकूं सवितर्क कहिये हैं। पूर्वनिके अर्थका जाननेवालेकै आदिके दोय शुक्लध्यान होइये हैं ॥ गाथा–

अत्थाण वंजणाण य। जोगाण य संकमो हु वीचारो ॥
तस्स य भावेण तयं। सुत्ते उत्तं सवीचारं ॥ १८८० ॥

अर्थ— जातैं भावनिकरि अर्थनिका पलटना तथा अक्षरनिका पलटना तथा मनवचनकायके योगनिका पलटना, ताकूं वीचार कहिये हैं। तातैं सूत्रविषैं प्रथमशुक्लध्यानकूं सवीचार कहिये हैं। जातैं अनेकद्रव्यनिनैं अनेकयोगनिकरि ध्यावै, तातैं याकूं पृथक्त्व कहिये। अर वितर्क नाम श्रुतका है, श्रुतके अर्थसहित जो ध्यान, सो सवितर्क है। अर इस ध्यानमें अर्थ पलटे है, शब्द पलटे है, योग पलटे है, यातैं याकूं सवीचार कहिये हैं। तातैं पहला शुक्लध्यानकूं पृथक्त्ववितर्कविचार कहिये हैं ॥ ऐसैं प्रथमशुक्लध्यानका स्वरूप कह्या ॥ अब एकत्ववितर्क अवीचार नामा द्वितीय

शुक्लध्यानकूं तीन गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा–

जेणेगमेव दव्वं । जोगेणेगेण अण्णदरगेण ॥ खीणकसाउ झायदि । तेणेगत्तं तयं भणियं ॥ ८१ जह्मा सुदं वितक्कं । जह्मा पुव्वगदअत्थकुसलो य ॥ झायदि झाणं एयं । सवितक्कं तेण तं झाणं ॥ ८२ ॥ अत्थाण वंजणाण य । जोगाण य संकमो हु वीचारो ॥ तस्स अभावेण तयं । झाणं अविचारमिदि वुत्तं ॥ ८३ ॥

अर्थ— तीन योगनिमैंतैं एकयोगकरिकै एकद्रव्यकूं क्षीणकषाय जो समस्त मोहकर्मका नाश करि क्षीणकषाय नाम बारमा गुणस्थानका धारक ध्यावै, तिसकारणकरि इस ध्यानकूं एकत्व कहिये हैं। प्रथमध्यानकीनांई नानाद्रव्यनिका नानायोगनिकरि ध्यावना नाहीं है, इस ध्यानमें एकयोगकरि एकद्रव्यका ध्यावना है, तातैं इसकूं एकत्व कहिये। बहुरि वितर्क नाम श्रुतका है, जातैं पूर्वके अर्थका जाननेवाला इस ध्यानकूं ध्यावे है, तातैं याकूं सवितर्क कहिये हैं। जातैं अर्थनिका व्यंजननिका योगनिका पलटनेकूं वीचार कहिये हैं, इस ध्यानमें अर्थव्यंजनयोगनिका पलटना नाहीं है, तातैं इस ध्यानकूं अवीचार कहिये हैं ॥ भावार्थ– एकद्रव्यकूं एकयोगकरि श्रुतका ज्ञानी शब्द अर्थ योगनिका पलटनेविना ध्यावे है, तातैं एकत्ववितर्क अवी-

चार नामा दूजा शुक्लध्यान कह्या ॥ अब सूक्ष्मक्रिया नामा तीसरा शुक्लध्यानकूं दोय गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा–

अवितक्कमवीचारं । सुहुमकिरियबंधणं तदियसुक्कं ॥
सुहुमम्मि कायजोगे । भणिदं तं सव्वभावगदं ॥ ८४ ॥
सुहुमम्मि कायजोगे । वट्टंतो केवली तदियसुक्कं ॥
झायदि णिरुंभिदुं जे । सुहुमत्तं कायजोगं पि ॥ ८५ ॥

अर्थ— जिसमें श्रुतज्ञानका अवलंबन नहीं, अर अर्थव्यंजनयोगका पलटना नहीं, सूक्ष्मकाययोगमें समस्तपदार्थनिकूं एकैकाल जानता तिष्ठै, ताकूं सूक्ष्मक्रिय नाम ध्यान कहिये हैं। सूक्ष्मकाययोगमें तिष्ठता सूक्ष्मकाययोगकूं रोकिकरि जो केवली भगवान् निश्चल रहै, सो सूक्ष्मक्रियध्यान तीसरा है ॥ अब समुच्छिन्नक्रिय नाम चौथा ध्यानकूं दोय गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा–

अवियक्कमवीचारं । अणियट्टिमकिरियं च सीलेसिं ॥
झाणं णिरुध्दजोगं । अपच्छिमं उत्तमं सुक्कं ॥ ८६ ॥
तं पुण णिरुद्धजोगो । सरीरतियणासणं करेमाणो ॥
सव्वण्हू अपडिवादिं । झायदि झाणं चरिमसुक्कं ॥ ८७ ॥

अर्थ— कैसाक है चौथा शुक्लध्यान? अवितर्क कहिये श्रुतका अवलंबनरहित है, बहुरि अवीचार कहिये पदार्थ व्यंजन योग इनिका पलटनेकरि रहित है। जातैं ये दोऊ ध्यान भगवान् केवलीकै आयुका अंतर्मुहूर्त काल अवशेष रहे होइ हैं, तातैं केवलीकै समस्त आवरणके अभावतैं समस्तपदार्थनिका जानना एककालमें प्रकट भया तदि श्रुतका अवलंबन नहीं है, अर अर्थ व्यंजन योगनिका पलटनाभी नहीं है, इनका पलटना तो क्रमवर्ती ज्ञान जिनकै होय तिनकै होय है। बहुरि समस्तकर्मका नाश करेविना नहीं वाहुडे है, तातैं अनिवृत्ति कहिये हैं। बहुरि श्वासोश्वासादिक समस्त मनवचनकायके हलनचलनरहित है, तातैं समुच्छिन्नक्रिय कहो वा अक्रिय कहो। बहुरि समस्तशीलनिका अधिपति जो यथाख्यातचारित्र, ताका सहचारी ध्यान है, तातैं ध्यानकूं शैलेश्य कहिये हैं। बहुरि समस्तयोगनिका निरोधरूप है अर या पाछै और ध्यान नहीं, तातैं याकूं अपश्चिम कहिये हैं। ऐसा सर्वोत्कृष्ट उत्तमध्यान है। सो यो चतुर्थ ध्यान योगनिका अभाव करनेतैं निरुध्दयोग है। अर औदारिक तैजस कार्मण शरीरके नाश करनेवाला है। अर उलटा नहीं आवै तातैं अप्रतिपाति है। सौ चौथा शुक्लध्यान सर्वज्ञभगवान ध्यावै है ॥

भावार्थ ऐसा जानना— जो मोहनीयकर्मकी अठाईस प्रकृति हैं। तिनमें तीनप्रकार

दर्शनमोहनीय अर च्यारिप्रकार अनंतानुबंधी कषाय इन सप्त प्रकृतिनिका अविरत देशविरत प्रमत्त अप्रमत्त इनि च्यारि गुणस्थाननिमैंतें कोऊ एक गुणस्थानमें नाश करिकै अर क्षायिक सम्यग्दृष्टि होइकरिकै अर आठमें गुणस्थानमें इकईसप्रकार मोहनीयका नाशके अर्थि प्रथमशुक्लध्यानको प्रारंभ करि अर आठमें नवमें दशमें गुणस्थानमें समस्त इकईसप्रकार मोहनीयका नाश करि क्षीणकषायनाम बारमा गुणस्थानमें श्रुतज्ञानतैं एकपदार्थ ग्रहण करि अर योगनिके पलटनेकरि रहित एकत्ववितर्क नाम दूसरा शुक्लध्यानतैं ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतराय इनिका नाशकरि केवलज्ञान उपजावे है ॥

बहुरि भगवान् केवली आयुपर्यंत विहार करि अर जब आयुका अंतर्मुहूर्त अवशेष रहिजाय, तदि जोगनिकी हलनचलन क्रिया रुकै, ताकूं सूक्ष्मक्रियध्यान कहिये है। अर जोगनिका निरोधरूप व्युपरतक्रियनिवृत्ति नाम ध्यान है। जातें भगवान् केवलीकै समस्तपदार्थ अनंतगुणपर्यायसहित एकसमयमें साक्षात् प्रकट भये, अर अनंतसुखवीर्यादिक प्रकट भये, अब कोऊ पदार्थका ध्यान प्रकट होना रह्या नहीं, जिसका ध्यान करै। परंतु संसारमें ध्यान करनेवालेकै मनवचनकायके जोग तो रुके है अर कर्मनिकी निर्जरा होय है, सो भगवान् केवलीकैहू आयुका अंतर्मुहूर्त बाकी रहिजाय तदि आपैआप जोगनिका तो निरोध होय है अर कर्मनिकी निर्जरा होय है, सो भगवानकै ध्यानके

दोऊ कार्य देखि उपचारतैं ध्यान कह्या है। अर मुख्यपने केवलीकै ध्यावना कुछ रह्या है नही। आयुका अंत होइ तदि योगानिका अभाव होयही अर समस्त अघातिया कर्म झडैही। तातैं ध्यानकासा कार्य देखि ध्यान कह्या है॥ ऐसैं द्वादशगाथानिमैं शुक्लध्यानका वर्णन समास कीया॥ अब ग्यारह गाथानिमैं ध्यानका फल कहे हैं॥ गाथा—

इय सो खवउ झाणं। एयग्गमणो समणिदो सम्मं॥
विउलाए णिज्जराए। वट्टइ गुणसेढिमारूढो॥ ८८॥

अर्थ— ऐसैं एकाग्र है मन जाका ऐसा सम्यग्ध्यानकूं अंगीकार करता जो क्षपक सो गुणश्रेणीकूं आरूढ हुवा प्रचुर निर्जरामैं वर्ते है—अंतर्मुहूर्तपर्यंत समयसमय असंख्यातगुणी कर्मकी निर्जरा करे है॥ अब ध्यानका माहात्म्य वर्णन करे हैं॥ गाथा—

सुचिरं पि संकिलिट्ठं। विहरंतं झाणसंवरविहूणं॥
झाणेण संपुडप्पा। जिणइ य अंतो मुहुत्तेण॥ ८९॥

अर्थ— ध्यान नामा संवरकरि रहित पुरुष किंचित् ऊन कोटिपूर्वपर्यंत क्लेशसहित तपश्चरण करता जिस कर्मकूं जीतें है, तिस कर्मकूं ध्यानकरि संवररूप पुरुष अंतर्मुहूर्तसें जीते है॥ गाथा—

एवं कसायजुध्द-। म्मि होइ खवयस्स आउहं झाणं॥

झाणविहूणो खवउ । रंगे व अणाउहो मल्लो ॥ १८९० ॥

अर्थ— ऐसैं क्षपककै कषायनिके जुद्धमें ध्यान आयुध है, ध्यानरहित क्षपक आयुधरहित है। जैसैं रणभूमीमें आयुधरहित मल्ल वैरीके जीतनेकूं समर्थ नही होय है; तैसैं ध्यानरूप आयुधकरि रहित क्षपक कर्मरूप वैरीकै जीतनेकूं समर्थ नही होय है ॥

रणभूमीए कवचं । व कसायरणे तगं हवे कवयं ॥
जुद्धे व णिरावरणो । झाणेण विणा हवे खवउ ॥ ९१ ॥

अर्थ— जैसैं रणभूमीमैं योद्धाकी रक्षा वकतरके पहरनेतैं है; तैसें कषायनिके रणविषैं क्षपककै ध्यान है सो वकतर है। जैसैं रणभूमीविषैं वकतरादिक आवरणरहित जोद्धा है; तैसैं ध्यानरहित क्षपक है ॥ गाथा–

झाणं करेइ खवय- । स्सोवट्ठंभं खु हीणचेट्ठस्स ॥
थेरस्स जहा जंत- । स्स कुणदि जट्ठी उवट्ठंभं ॥ ९२ ॥

अर्थ— जैसैं गमन करता वृद्धपुरुषकै लाठी अवलंबनरूप है–गिरतेकूं थांबे है; तैसैं हीनचेष्टाका धारक क्षपककै ध्यान अवलंबनरूप है, रत्नत्रयतें चिगने नही देय है ॥

मल्लस्स णेहपाणं । व कुणइ खवयस्स दढवलं झाणं ॥
झाणविहीणो खवउ । रंगे व अपोसिउ मल्लो ॥ ९३ ॥

अर्थ— जैसैं मल्लकै दुग्ध घृतादिकका पीवना दृढ बल करे है; तैसैं क्षपककै यो ध्यान बलकी दृढता करे है। जैसैं रणभूमीमैं विना पोष्या मल्ल वैरीनिकूं नही जीति सके है; तैसैं संन्यासका अवसरमैं ध्यानरहित क्षपक कर्मवैरीनिकूं नही जीति सके है ॥

वयरं रदणेसु जहा। गोसीसं चंदणं व गंधेसु ॥
वेरुलियं व मणीणं। तह झाणं होइ खवयस्स ॥ ९४ ॥

अर्थ— जैसैं रत्ननिमैं हीरा प्रधान है, अर सुगंधद्रव्यनिमैं गोसीर चंदन प्रधान है, अर मणीनिमैं वैडूर्यमणि प्रधान है; तैसैं क्षपककै समस्त व्रततपनिमैं ध्यान प्रधान है ॥

झाणं किलेससावद-। रख्खा रख्खा व सावदभयम्मि ॥
झाणं किलेसवसणे। मित्तं मित्तं व वसणम्मि ॥ ९५ ॥

अर्थ— जैसैं दुष्ट तिर्यंचनिके भयमैं कोऊ योद्धा रक्षक होय है; तैसैं क्लेशरूप दुष्टतिर्यंचनिके भयमैं ध्यान रक्षक है। जैसैं क्लेशव्यसनकष्टमैं जो अपना मित्र होइ, सोही सहायी है; तैसैं कष्टनिमैं व्यसननिमैं ध्यानही मित्र है ॥ गाथा-

झाणं कसायवादे। गब्भघरं मारुए व गब्भहरं ॥
झाणं कसायउण्हे। छाही छाही व उण्हम्मि ॥ ९६ ॥

अर्थ— जैसैं प्रबल पवन चलती होय तहां कोई अनेक गृहनिके बीचि गर्भगृहमैं

जाय बैठ्या पुरुषकै पवनकी बाधा नही होय है; तैसैं कषायरूप प्रबल पवनतैं ध्यानरूप गर्भगृहमें तिष्ठता पुरुषकै बाधा नही होय है ॥ जैसैं ग्रीष्मकी आतापमें छाया आतापनिवारण करे है; तैसैं कषायनिकी आतापकूं ध्यान छायाकीनांई निवारण करे है ॥

झाणं कसायडाहे । होदि वरदहो व दाहम्मि ॥
झाणं कसायसीदे । अग्गी अग्गी व सीदम्मि ॥ ९७ ॥

अर्थ— जैसैं ग्रीष्मकी दाहमें श्रेष्ठ जलका भऱ्या हुवा दह दाहकूं दूरि करे है; तैसैं कषायनिके दाहके विषैं ध्यान आताप हरनेकूं दहसमान हैं ॥ तथा जैसैं शीतजनितवेदनामैं अग्नि उपकारक है; तैसैं कषायरूप शीतके दूरि करनेकूं ध्यान अग्निसमान है ॥ गाथा—

झाणं कसायपरच- । क्कभए वलवाहणड्ढउं राया ॥
परचक्कभए वलवा- । हणड्ढउं होइ जह राया ॥ ९८ ॥

अर्थ— जैसैं परचक्रका भयकूं होतैं बलवान् वाहनपरि चढ्या राजा रक्षा करे है; तैसैं कषायरूप परचक्रका भय होतैं बलवान् साम्यभावरूप वाहनउपरि चढ्या ध्यान रक्षा करे है ॥ गाथा—

झाणं कसायरोगे- । सु होइ विज्जो तिगिंछदो कुसलो ॥
रोगेसु जहा विज्जो । पुरिसस्स तिगिंछउं कुसलो ॥ ९९ ॥

अर्थ— जैसैं रोग होतै पुरुषकै रोगका इलाज करि नीरोग करनेवाला प्रवीण वैद्य है; तैसैं कषायरोगकूं होतै रोगकू नाश करनेकूं समर्थ यो ध्यान प्रवीण वैद्य है ॥ गाथा

झाणं विसयछुहाए। य होइ अछुहाइ अण्णं वा ॥
झाणं विसयतिसाए। उदयं उदयं व तण्हाए ॥ १९०० ॥

अर्थ— जैसैं क्षुधावेदनाकी पीडाकूं अन्न दूरि करे है; तैसैं विषयनिकी चाहनारूप क्षुधावेदनीके मेटनेकूं ध्यान समर्थ है ॥ जैसैं तृषाकी पीडा मेटनेकूं शीतल मिष्टजल समर्थ है; तैसैं विषयनिकी तृष्णा मेटनेकूं ध्यान समर्थ है ॥ गाथा—

इय झायंतो खवउ। जइया परिहीणवायिउ होइ ॥
आराधणाइं तइया। इमाणि लिंगाणि दंसेइ ॥ १ ॥

अर्थ— जैसैं ध्यानकूं करता क्षपकमुनि जिस अवसरमें वचनरहित होजाय रोगादिकके वशतैं जुबान थकि जाय, तो तिस अवसरमें आपके अंतःकरणमें च्यारि आराधनामें सावधानीके येते चिह्न वैयावृत्य करनेवालेनिकूं दिखावै, जिन चिह्ननितैं अपना मांहिला अभिप्राय परिणाम ऊपरले टहल करनेवालेनिकै प्रकट होजाय ॥ गाथा—

हुंकारंजलिभमुहं-। गुलिहि अच्छीहि वीरमुट्ठीहिं ॥
सिरचालणेण य तहा। सण्णं दावेइ सो खवउ ॥ २ ॥

अर्थ— हुंकार करनेकरि, अंजुली जोडनेकरि, भ्रकुटीका क्षेपण करिकै पंच अंगुलीनिकूं दिखावनेकरिकै, उपदेशदाताप्रति प्रसन्नदृष्टिकरि देखनेकरिकै, वीरकीनाई मुष्टीके बंधनकरिकै, मस्तकके चलावनेकरिकै इत्यादि अनेक संज्ञा-समस्या करिकैं अपना आराधनामैं दृढ अभिप्रायकूं दिखावै, अपना धैर्य दिखावै, धर्ममें सावधानी दिखावै, वेदनाका विजयकूं तथा निर्भयताकूं तथा स्वरूपकी सावधानीकूं तथा संजममें दृढता उपदेशकी ग्रहणताकूं दिखावै। जुबान थकि जाय बोलनेका सामर्थ्य घटि जाय, तोहू अपना धर्ममें लीनपणा समस्याकरि प्रकट दिखावै ॥ गाथा—

तो पडिचरया खवय- । स्स दिंति आराधणाए उवर्डगं ॥
जाणंति सुदरहस्सा । कदसण्णा कायखवएण ॥ ३ ॥

अर्थ— क्षपक संज्ञाकरि अपना संकेत जिनकूं जणाया ऐसे वैयावृत्य करनेवाले मुनि हैं ते क्षपकका आराधनामैं उपयोग दीया जाणत हैं; जो, हमारा परिश्रम सफल है, यह क्षपक धर्ममें सावधान है, परिणाम कायर नही है, उज्वल है, ऐसैं संज्ञा समस्यासूं जाणत हैं ॥ ऐसैं ध्यानका फलमहिमा सोलह गाथानिमैं वर्णन कीया ॥

इति भगवती आराधना नाम ग्रंथविषैं सविचारभक्तप्रत्याख्यान मरणके चालीस अधिकारनिविषैं ध्यान नामा सैंतीसमां अधिकार दोयसै सात गाथानिमैं समाप्त कीया ॥

३७ ॥ अब अष्टादश गाथानिमैं लेश्या नामा अडतीसमां अधिकार वर्णन करे हैं ॥

इय समभावमुवगदो । तह झायंतो पसत्थझाणं च ॥
लेस्साहि विसुज्झंतो । गुणसेढिं सो समारुहइ ॥ ४ ॥

अर्थ— ऐसैं समभावकूं प्राप्त भया अर प्रशस्तध्यानकूं ध्यावता जो मुनि, सो लेश्याकी उज्वलताकूं प्राप्त होय है, सो गुणनिकी श्रेणीकूं चढे है ॥ गाथा—

जह वाहिरलेस्साउ । किण्हादीउ हवंति पुरिसस्स ॥
अब्भंतरलेस्साउ । तह किण्हादी य पुरिसस्स ॥ ५ ॥

अर्थ— जैसैं पुरुषकै बाह्यलेश्या कृष्णादिक होय हैं; तैसैं कृष्णादिकलेश्या पुरुषकै अभ्यंतर होय हैं । बाह्यलेश्या तो शरीरका रंग, सो आत्माका उपकारक अपकारक नहीं है । अर कषायनिकरि मन-वचन-कायकी परिणतिके विषैं रंग सो अभ्यंतरलेश्या है ॥

किण्हा णीला काउ । तिण्णि लिस्साउ वि अप्पसत्थाउ ॥
पयहइ विरायकरणो । संवेगमणुत्तरं पत्तो ॥ ६ ॥

अर्थ— कृष्ण नील कापोत ये तीन लेश्या अप्रशस्त हैं बुरी हैं । जिसकै वीतरागपरिणाम है अर सर्वोत्कृष्ट धर्मानुरागकूं जो प्राप्त भया है, सो पुरुष इनि तीन लेश्यानिका त्याग करै ॥ गाथा—

तेऊ पउमा सुक्का । लेस्साउ तिण्णि वि दु पसत्थाउ ॥
पडिवज्जेइ य कमसो । संविग्गमणुत्तरं पत्तो ॥ ७ ॥

अर्थ— तेजोलेश्या पद्मलेश्या शुक्ललेश्या ये तीन लेश्या प्रशस्त हैं–सराहनेयोग्य हैं। जो उत्कृष्ट धर्मानुरागकूं प्राप्त होइ, सो इनि तीन लेश्यानिकूं क्रमकरि प्राप्त होय है॥ अब इहां प्रकरण पाय लेश्यानिका लक्षणादिक संक्षेपतैं श्रीगोमटसार नाम सिद्धांतग्रंथतैं लिखिये है। अर विशेष जाननेका इच्छक होय ते सोलह अधिकारकरि लेश्याका वर्णन श्रीगोमटसारतैं जानहु॥

ऐसा संक्षेप है– जो संसारी आत्माकी परिणति है, सो मन-वचन-कायके योगनिके द्वार है। अर कषायनिकरि लिप्त जे योगनिकी प्रवृत्ति, ते लेश्या जाननी। इन लेश्यानिकरिही प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध, ऐसैं च्यारि प्रकारका बंध होय है। कषायनिका उदयस्थान असंख्यात लोकमात्र हैं, तिनकै असंख्यातका भाग दीये बहुभागप्रमाण तो अशुभलेश्याके स्थान हैं अर एकभागप्रमाण शुभलेश्याके स्थान है। इन छह लेश्यावालेनिके जे कार्य हैं, तिनका ऐसा दृष्टांत जानना– षट् लेश्याके धारक छह पुरुष कोऊ देशांतरकूं गमन करै थे, सो मार्ग भूलि वनमें प्रवेश कीया, तिस वनमें फलनिका भऱ्या एक आम्रका वृक्ष देख्या, देखिकरि वृक्षके फल-

भक्षणका उपाय अपनी अपनी लेश्याके अनुसार चिंतवन करते भए। कृष्णलेश्याके
धारककै तो ऐसा चिंतवन भया– जो, इस वृक्षकूं मूल पेडमैंतैं काटि जमीमें पटकि
फलभक्षण करना। अर नीललेश्याका धारककै ऐसा परिणाम भया– जो, पेडकूं तो
नही काटना अर डाहलेनिकूं काटि फलभक्षण करना। अर कपोत लेश्यावालेकै ऐसा
परिणाम भया– जो, इसकी डाहली काटि फलभक्षण करना। अर पीतलेश्यावालेकै
ऐसा परिणाम भया– जो फलसहित है सो डालीया काटि फलभक्षण करना। अर
पद्मलेश्याके धारककै ऐसा परिणाम भया– जो अन्यवृक्षकूं काहेकूं बाधा करै? जो
फल खाइवेमें आवेगा, सोही तोडना। अर शुक्ललेश्याके धारककै ऐसा परिणाम भया–
जो, भूमीऊपरि स्वतैंही पडे फलभक्षण करना–वृक्षकूं बाधा नही होइ तैसें मोकूं फलभ-
क्षण करना ॥ ऐसें छह लेश्याके कर्म कहे ॥ अब छह लेश्याके लक्षण कहे हैं ॥

जिसकै ऐसा परिणाम होय, ताकै कृष्णलेश्या है। तीव्र क्रोधी होय, एकवार वैर
हुवा पाछै कोटि दानसन्मान करतेहू वैर नही छांडे है, भंडवचन बोलनेका स्वभाव
होय, युद्ध करनेका स्वभाव होय, धर्मदयारहित होय, दुष्ट होय, कोऊ उपायकरिहू
जो वश नही होय, जो भोजन धन स्थानादिक देतैंहू आदर सत्कार नम्रतादिक कर-
तैंहू मिष्टवचन कहतैंहू यशकीर्तन करतेहू वश नही होय–अधिकाधिक विपरीतता

धारै ये लक्षण कृष्णलेश्याके धारकके कहे। औरहू कृष्णलेश्याके धारकके लक्षण कहे हैं- मंद कहिये स्वच्छंद होय, वा क्रियामैं मंद होय, बुद्धिहीन होय, वर्तमानकार्यकूं नही जानता होय, विज्ञान जो हित अहितके ज्ञानरहित होय, विषयनिमैं लंपटी होय, मानी अहंकारी होय, मायाचारी होय, करनयोग्यमैं आलसी होय ये कृष्णलेश्याके धारकके लक्षण कहे॥

अब नीललेश्याके धारकके लक्षण कहे हैं बहुत निद्रा जाकै होय, मायाचारकी जाकै आधिक्यता होय, धनधान्यादिकमैं जाकै तीव्र वांछा होय ये नीललेश्याके धारक जीवके लक्षण कहे.

अब कापोतलेश्याके धारकके लक्षण कहे हैं- अन्यमैं कोप करै, बहुतप्रकार परकी निंदा करै, परकूं दूषण लगावै, शोक बहुत करै, भय बहुत राखै, परकूं नही सहि सकै, परका तिरस्कार करै, अपनी बहुतप्रकार प्रशंसा करै, अन्य कोईका विश्वास नही करै, परकूं आपसमान मानै-जाणै, कोई आपकी बडाई करै तिसऊपरि संतुष्ट होय, आपकै अन्यकै हानि वृद्धि होती नही जानै, रणविषैं अपना मरण चाहै, अपनी स्तुति करै तिसकूं बहुत धन देवै, करनेयोग्य नही करनेयोग्यका विचार नही करै ये कापोतलेश्याके धारक जीवके लक्षण होत हैं॥

अब तेजोलेश्याके लक्षण कहे हैं- जो करनेयोग्य नही करनेयोग्यकूं जानै, तथा सेवनेयोग्य नही सेवनेयोग्यकूं जानै, समस्तजीवानिमैं समदर्शी होय, दयाविषैं वा दानविषैं प्री-

तियुक्त होय, मन-वचन-कायमें कोमलता होय ये तेजोलेश्यावान् जीवके लक्षण होत हैं।

अब पद्मलेश्याके लक्षण कहे हैं- जो त्यागी होय, दानी होय, भद्रपरिणामी होय, शुभकार्य करनेका जाका स्वभाव होय, शुभकार्य करनेमें उद्यमी होय, कष्ट आवे वा उपद्रव आवै तिनकूं समभावतें सहनेका जाका स्वभाव होय, मुनिजन तथा गुरुजनकी पूजा प्रशंसा करनेमें जाकै प्रीति होय ये पद्मलेश्यावान् जीवके लक्षण हैं॥

अब शुक्ललेश्याके लक्षण कहे हैं- जो पक्षपात नहीं करै, आगामी चाहरूप निदान नहीं करै, समस्तलोकनिमैं समभावरूप होय, रागद्वेषरहित होय, पुत्र मित्र कलत्रादिकनिमैं स्नेहरहित होय सो शुक्ललेश्याके धारक जीवके लक्षण हैं॥ ऐसैं षट्लेश्या धारकनिके लक्षण कहे॥ औरहू गत्यादिक समस्त लेश्यानिकरिही बंधे हैं, जातैं कषायाधिकारमें कषायनिकी शक्तीके च्यारि स्थान कहे हैं॥

प्रथम तीव्रतर स्थान तो पाषाणकी लीकसमान है। दूजा पृथ्वीके भेदसमान तीव्र स्थान है। तीजा धूलीमैं भेदसमान मंद स्थान है। चौथा जलमें लीकसमान मंदतर स्थान है॥ ऐसैं तीव्रतर, तीव्र, मंद, मंदतर कषायनिके स्थान हैं। ते ये कषायनिके शक्तिस्थान असंख्यातलोकमात्र हैं। तिनकै असंख्यातका भाग दीजै, तहां बहुभाग-प्रमाण तो कषायनिके तीव्रतर शक्तिस्थान हैं। अर तिस एक भागकै असंख्यातका

भाग दीजे, तिनमें वहुभागप्रमाण कषायनिके तीव्र शक्तिस्थान हैं। वहुरि जो एक भाग रह्या, तिसकै फेरि असंख्यातका भाग दीजे, तिनमें वहुभागप्रमाण कषायनिके मंद शक्तिस्थान हैं। वहुरि जो एक भाग रह्या, तिसप्रमाण कषायनिके मंदतर स्थान हैं॥ तिनमैं जे कषायनिके पाषाणकी लीकसमान तीव्रतर स्थान हैं, तिनमैं तो एक कृष्णलेश्याही है। तिस कृष्णलेश्याके असंख्यात लोकप्रमाण परिणामनिके असंख्यातका भाग दीजिये, तिनमें वहुभागमात्र कृष्णलेश्याके परिणामनिमैं आयु नही वंधे है अर एक भागप्रमाण परिणामनिमैं जो आयु वंधै, तो एक नरकायु वंधै, और नही वंधै॥

भावार्थ— तीव्रतर कषायके स्थाननिविषै एक कृष्णलेश्याही है। तिस कृष्णलेश्याके वहुतस्थाननिमैं तो आयु वंधे नही अर अलपस्थाननिमैं आयु वंधै तो एक नरकहीकी वंधै॥ वहुरि पृथ्वीभेदसमान कषायनिके तीव्र स्थान तिनमें केते स्थान तो केवल एक कृष्णलेश्याहीकै हैं, तिनमें नरक आयुही वंधे है। अर केतेक कृष्ण नील दोय लेश्याके स्थान कहे, तिनमैंभी एक नरकका आयुही वंधे है। अर कितने कृष्ण नील कापोत इनि तीन लेश्याके स्थान हैं तिनमें कितने स्थान नरक आयुके वंधनेयोग्य हैं, कितने नरक तिर्यंच दोय आयुके वंधनके योग्य हैं, कितने स्थानक नरक तिर्यंच मनुष्य तीन आयुके वंधनके योग्य हैं॥ वहुरि इस भूभेदसमान

तीव्र कषायहीके शक्तिस्थान कृष्णादिक च्यारि लेश्याके योग्य हैं। तिनमैं नरक तिर्यंच मनुष्य देव च्यान्यूं आयूके बंधनेकी योग्यता है। कितने कृष्णादिक पंच-लेश्याकै योग्य स्थान हैं, तिनमैंहू च्यान्यूं आयु बंधनेकी योग्यता है। कितने कृष्णादिक छहू लेश्यायोग्य स्थान हैं, तिनमैंहू च्यान्यूं आयुके बंधनेकी योग्यता है॥ ऐसैं तीव्र भूमेदसमान कषायके शक्तिस्थाननिमैं लेश्याके स्थान छह अर आयुबंधके स्थान आठ कहे॥

धूलीभेदसमान कषायनिके मंदस्थान तिनमैं कितने शक्तिस्थान तो कृष्णादिक छह लेश्याके जोग्य हैं, तिन छै लेश्याके योग्य परिणामनिमैं केते परिणाम तो नरकादिक च्यारी आयूके बंधनके योग्य हैं। कितने परिणाम नरकविना तीन आयुके बंधनके योग्य हैं। कितने परिणाम मनुष्य आयु अर देव आयु दोय आयुके बंधनके योग्य हैं, कितने परिणाम देव आयुके बंधनके योग्य हैं॥ बहुरि कितने परिणाम नीलादिक पंच लेश्याके योग्य हैं, तिनमैं एक देव आयुहीका बंध है। कितने कपोतादिक च्यारि लेश्याके परिणाम हैं, तिनमैं एक देव आयुहीका बंधनेकी योग्यता है। कितने परिणाम पीतादिक तीन लेश्याके योग्य हैं, तिनमैं कितने परिणामनिमैं तो देव आयुका बंध है, कितनेमैं आयुबंध नहीं है। बहुरि

कितने परिणाम पद्मादि दोय लेश्याके योग्य हैं, तिनमैं आयुका बंध नही है। कितने परिणाम शुक्ललेश्याके योग्य हैं, तिनमैंभी आयुबंध नही है॥ ऐसैं धूलीभेदसमान कषायनिके मंदशक्तीके स्थाननिमैं लेश्याके स्थान छह कहे। अर आयुबंधके स्थानहू छह कहे। अर आयुबंधके अभावके तीन स्थान कहे॥

बहुरि मंदतर जलरेखासमान कषायनिके शक्तिस्थाननिविषैं एक शुक्ललेश्याही है अर इसमैं आयुका बंध नही है॥ ऐसैं कषायनिके शक्तिस्थान च्यारि कहे, तिनमैं तीव्रतर पाषाणकी लीकसमान कषायनिके असंख्यात स्थाननिमैं एक कृष्णलेश्याही है, तातैं लेश्यास्थान एक है। अर कितने स्थान आयुबंधनकै जोग्य नही। कितने नरकायुकै योग्य हैं। तातैं आयुबंधावबंधस्थान दोय हैं॥ बहुरि पृथ्वीभेदसमान कषायके तीव्र शक्तिस्थाननिमैं कितने कृष्णलेश्याके, कितने कृष्ण नील दोयके, कितने कृष्णादिक तीनके, कितने कृष्णादिक च्यारिके, कितने कृष्णादिक पांचके, कितने कृष्णादिक छहके स्थान छह भये। अर इसमैं आयुबंधके आठ स्थान हैं॥ केवल कृष्णाके परिणामनिमैं नरकायुका, कृष्णनीलकेमैं नरकायुका, कृष्णनीलकपोतकेमैं नरकायुका तथा नरकतिर्यक् आयुका, नरक तिर्यक् मनुष्य तीन आयुका ऐसैं तीन स्थान हैं। कृष्णादिक च्यारि लेश्याके स्थानमैं च्यारि आयुका एक स्थान है। कृष्णा

दि पंच लेश्याके स्थानमें च्यारि आयुका बंध है, कृष्णादि छह लेश्यानिके स्थानमें च्यारि आयुका एक स्थान है। ऐसे आयुबंधके आठ स्थान कहे ॥

बहुरि धूलीभेदसमान कषायनिके मंद शक्तिस्थाननिमें कितने कृष्णादि छह लेश्याके, कितने नीलादि पंच लेश्याके, कितने कपोतादि च्यारि लेश्याके, कितने पीतादि तीन लेश्याके, कितने पद्मादि दोय लेश्याके, कितने एक शुक्ललेश्याके ऐसे लेश्या-स्थान छह हैं ॥ बहुरि कृष्णादिक छह लेश्याके स्थानमें आयुबंधके योग्य तीन प्रकार हैं। कितने च्यारि आयुके बंधके योग्य हैं, कितने नरकविना तीन आयुके बंधके योग्य हैं, कितने मनुष्य देव दोय आयुके बंधके योग्य हैं ॥ बहुरि नीलादि पंच लेश्याका स्थानमें एक देवायुका बंध है। कपोतादि च्यारि लेश्याके स्थानमें एक देवायुका बंध है। पीतादि तीन लेश्याके स्थानविषैं कितनेकमें देवायुका बंध है। कितनेमें आयुबंध नही है। पद्मादि दोय लेश्याके स्थानमें आयुका बंध नही है। शुक्ललेश्याके स्थानविषैंहू आयुका बंध नही है। ऐसैं धूलीभेदसमान कषायनिके मंद शक्तिस्थाननिमें लेश्याके स्थान तो छह कहे। अर आयुका बंध अबंध स्थान नव कहे। अब जलरेखासमान कषायनिके मंदतर शक्तिस्थानमें एक शुक्ललेश्याही है। अर इस मंदतर शक्तिस्थानकी शुक्ललेश्यामैं आयुबंधकी योग्यता नही है ॥

कषायनिके चत्वारि शक्तिस्थानानि.	चतुर्दशलेश्यास्थान १४	विंशतिरायुबंधावबंधस्थान.
तीव्रतर शिलाभेद समान.	१ कृष्ण.	०
		नरकायु १.
तीव्र भूभेदसमान.	कृष्णादि १.	नरकायु १.
	कृष्णादि २.	नरकायु १.
	कृष्णादि ३.	नरकायु १.
		नरक तिर्यंच २.
		नरक तिर्यंच मनुष्य ३.
	कृष्णादि ४.	सर्वे ४.
	कृष्णादि ५.	सर्वे ४.
	कृष्णादि ६.	सर्वे ४.
मंद धूलीभेदसमान.	कृष्णादि ६.	सर्वे ४.
		नरकविना ३.
		मनुष्य देव. २
	नीलादि ५.	देवायु १.
	कपोतादि ४.	देवायु १.
	पीतादि ३.	देवायु १.
		०
मन्दतर जलरेखा-समान.	पद्मादि २.	०
	शुक्ल १.	०
	शुक्ल १.	०

लेश्याके आधीनही गति है ॥ तिनमैं कृष्णादिक तीन लेश्याके जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेदकरि नवप्रकार, तथा शुक्ललेश्यादिक शुभलेश्या तीनके जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेदकरि नवप्रकार, बहुरि कापोतलेश्याका उत्कृष्ट अंशतैं आगै तेजोलेश्याका उत्कृष्ट अंशतैं पहली कषायनिका उदयस्थानके विषैं आठ मध्यम अंश हैं, ऐसैं लेश्याके छवीस अंश भये ॥ तहां आयुकर्मके बंधके योग्य आठ मध्यम अंश जानने । ते आठ मध्यम अंश अपकर्ष काल आठ तिनविषैं संभवे हैं । वर्तमान जो भुज्यमान मनुष्य आयु ताकूं अपकर्ष्य अपकर्ष्य कहिये घटाय घटाय बांधै, सो अपकर्ष कहिये है । ताका उदाहरण कहे हैं–

किसी कर्मभूमीका मनुष्य वा तिर्यंचका भुज्यमान आयु पैंसाठिसै इकसाठि वर्षका है तिस आयूके तीन भाग करिये, तिनमैं दोय त्रिभागके तियालीससै चोवन वर्षपर्यंत तो परभवसंबंधी आयुबंध करनेकी योग्यताही नही है, अर आयूके दोय भाग गये इकईससै सत्यासी वर्ष रहे, तहां तीसरा भाग लागतैंही प्रथमसमयसूं लगाय अंतर्मुहूर्त पर्यंत कालविषैं परभवसंबंधी आयु बांधै, अर जो तिस अंतर्मुहूर्तमें नही बांधै तो तिस एकभागका २१८७ इकईससै सत्यासी वर्षके तीन भाग कीजे, तिनमैं चोदासै अठावन वर्षप्रमाण दोय त्रिभागमें तो परभवसंबंधी आयुबंध करनेकी योग्यता नही है, अर एक भाग जो ७२९ सातसैं गुणतीस वर्षप्रमाण त्रिभाग रह्या, तिसका पहला

सयमसूं लगाय अंतर्मुहूर्तपर्यंत परभवसंबंधी आयुबंध करनेकी योग्यता है, अर जो तहांभी नही बंधै तो तिस सातसै गुणतीसका दोय त्रिभाग जो च्यारिसै छियासी वर्षपर्यंत तो आयू नही बंधै, अर दोयसै तीयालीस वर्ष रह्या तिसकी आदिका अंतर्मुहूर्तमें आयू बांधै, अर जो तहां नही बंधै तौ १६२ एकसो बासठि वर्ष गये पाछै इक्यासी वर्ष रहे, तिसकी आदिका अंतर्मुहूर्तमें बांधै, अर तहांहू नही बंधै तो इक्यासीका दोय त्रिभाग जो चोवन वर्ष गये पाछै सत्ताईस वर्ष रहे, तिसकी आदिका अंतर्मुहूर्तमें बांधै, अर तहांभी नही बंधै तो सत्ताईसका दोय त्रिभाग जो अठारह वर्ष गये पाछै नव वर्ष रहे तिसकी आदिका अंतर्मुहूर्तमें बांधै, अर तहांभी नही बंधै तो नव वर्षके दोय त्रिभाग जो छ वर्ष गये तीन वर्षकी आदिका अन्तर्मुहूर्तमें बंधै, अर तहांभी नही बंधै तो तीन वर्षका दोय त्रिभाग जो दोय वर्ष गये पाछै एक वर्षकी आदिका अन्तर्मुहूर्तमें बंधै, ऐसैं आयूके आठ अपकर्ष होय हैं अर आठ अपकर्षमें आयुका बंध होयही ऐसा नियम नही है ॥

अर आठसिवाय नवमा अपकर्ष होय नही है, तो आयुबंध कहां होइ सो कहे हैं ॥ भुज्यमान आयूका आवलीके असंख्यातवे भागप्रमाण काल अवशेष रहिजाय तिसकै पहली अंतर्मुहूर्त कालमात्र समयप्रवद्धनिकरि परभवका आयुको बांधि पूर्ण करे है ।

सो यो नियम कर्मभूमीके मनुष्यतिर्यंचनिका है ॥ पूर्वै कहे जे आठ अपकर्षनिविषैं केई जीव आठवार, केई सातवार, केई छहवार, केई पांचवार, केई च्यारवार, केई तीनवार, केई दोयवार, केई एकवार आयूके बंध होनेयोग्य परिणाम तिनकरि परिणमे हैं ॥ आयुके बंध होनेयोग्य परिणाम अपकर्षनिविषैंही होइ ऐसा कोई स्वभावही है, अन्य कारण नही है। अर ऐसा कछू नियम नही है— जो इन अपकर्षनिविषैं आयुका बंध होयही होय। इन आठ त्रिभागनिविषैं आयुके बंध होनेकी योग्यता है, जो बंध होय तो होय, न होय तो नही होय। अर जाकै आठ त्रिभागनिमैंभी नही होइ, तिसके भुज्यमान आयुका अवशेष रह्या जो आवलीका असंख्यातवा भाग ताके पहली अंतर्मुहूर्तप्रमाण समयप्रबलद्धनिमैं आयुबंध होयही, ऐसा नियम है। अर आठ त्रिभागसिवाय त्रिभाग नही कह्या है ॥

बहुरि देवनारकीनिकै आयूका छह महिना अवशेष रहे, तब आयुबंध करनेकी योग्यता है। पहली आयुबंधकी योग्यताही नही है। तहां छह महीनामैंहू त्रिभाग त्रिभागकरि आठतांई अपकर्ष हो हैं, तिनविषैं आयुबंध करनेकी योग्यता है ॥ बहुरि एकसमय अधिक कोटिपूर्ववर्षतैं लगाय तीनपल्यपर्यंत असंख्यात वर्षमात्र आयुके धारक भोगभूमियां तिर्यंच मनुष्य ये निरुपक्रम आयू हैं, इनकी आयू विषशस्त्रादिकके

निमित्तसूं नही छिदे है, इनकै अपने आयूका नव महीना अवशेष रहे आठ अपकर्षनिकरि परभवके आयूका बंध होनेकी योग्यता है ॥

२
४
१
३
२७
८१
२४३
७२९
२१८७
६५६१

बहुरि इतना और विशेष जानना– जिस गतिसंबधी आयूबंध प्रथम अपकर्षविषैं होइ पीछैं जो द्वितीयादिक अपकर्षनिविषैं आयूका बंध होइ, तो तिस प्रथमादि अपकर्षमें आयूका बंध भया सोही होइ द्वितीयादिकनिमैं अन्य आयूका बंध नही होइ ॥ किसी जीवकै आयूका बंध एक अपकर्षहीविषैं होय, केईकै दोय करि, केईकै तीन वा च्यारि वा पांच वा छह वा सात वा आठ अपकर्षनिकरि आयूका बंध होय है ॥ तहां आठ अपकर्षनिकरि परभवकी आयूके बंध करनहारे जीव थोरे हैं; तिनतैं संख्यातगुणे सात अपकर्षनिकरि आयूके बंध करनेवाले हैं, तिनतैं संख्यातगुणे छह अपकर्षनिकरि बंध करनेवाले हैं। ऐसैं संख्यातगुणे संख्यातगुणे पांच च्यारि तीन दोय एक अपकर्षनिकरि आयूबंध करनेवाले जानने। ऐसैं आयूके बंधनेको योग्य लेश्यानिका मध्यम आठ अंश तिनकी आठ अपकर्षनिकरि उत्पत्तीका क्रम कह्या। तिन मध्यम अंशनितैं अवशेष रहे जे लेश्यानिके अठारह अंश ते च्यारि गतिविषैं गमनकूं कारण है, मरण इन

अठारह अंशनिकरि सहित होय, सो मरणकरि यथायोग्यगतिकूं जीव प्राप्त होय है ॥

शुक्लेश्याके उत्कृष्ट अंशसहित मरै, ते सर्वार्थसिद्धि नाम इंद्रकविमानमें प्राप्त होय हैं। शुक्लेश्याका जघन्य अंशकरि मरै, ते जीव शतार सहस्रार स्वर्गविषैं उपजे हैं। शुक्लेश्याके मध्यम अंशकरि मरै, ते जीव आनतस्वर्गके ऊपरि सर्वार्थसिद्धि इंद्रकका विजयादिक विमानपर्यंत यथासंभव उपजे हैं ॥

पद्मलेश्याके उत्कृष्ट अंशकरि मरे, ते जीव सहस्रार स्वर्गकूं प्राप्त होय हैं। पद्मलेश्याके जघन्य अंशकरि मरे, ते जीव सनत्कुमार माहेंद्रस्वर्गकूं प्राप्त होय हैं। पद्मलेश्याके मध्यम अंशकरि मरे, ते जीव सहस्रार स्वर्गके नीचे अर सनत्कुमार माहेंद्रके ऊपरि यथासंभव उपजे हैं ॥

बहुरि तेजोलेश्याका उत्कृष्ट अंशकरि मरे ते जीव सनत्कुमार माहेंद्रस्वर्गका अंतका पटलविषैं चक्र नामा इंद्रकसंबंधी श्रेणीबद्ध विमाननिविषैं उपजे हैं। तेजोलेश्याका जघन्य अंशकरि मरे, ते जीव सौधर्म ईशानका पहला ऋतु नामा इंद्रक वा श्रेणीबद्ध विमाननिविषैं उपजे हैं। बहुरि तेजोलेश्याके मध्यम अंशकरि मरे, ते जीव सौधर्म ईशानका दूसरा पटलका विमल इंद्रकतैं लगाय सनत्कुमार माहेंद्रका द्विचरम पटलका बलिभद्र नामा इंद्रकपर्यंत विमाननिविषैं उपजे हैं ॥

बहुरि कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट अंशकरि मरे, ते जीव सातवी नरकपृथ्वीका एकही पटल है ताका अवधिस्थानक नामा इंद्रकबिलविषैं उपजे हैं। कृष्णलेश्याके जघन्य अंशकरि मरे, ते जीव पंचम पृथ्वीका अंतपटलका तिमिस्र नामा इंद्रकविषैं उपजे हैं। कृष्णलेश्याका मध्यम अंशकरि मरे, ते जीव अवधिस्थान इंद्रकका च्यारि श्रेणी-बद्ध बिल तिनविषैं वा छठी पृथ्वीका तीनों पटलनिविषैं वा पंचम पृथ्वीका चरमप-टलविषैं यथायोग्य उपजे हैं ॥

बहुरि नीललेश्याके उत्कृष्ट अंशकरि मरे, ते जीव पंचमपृथ्वीका द्विचरमपटलका अंध नामा इंद्रकविषैं उपजे हैं, केई पांचमां पटलविषैंभी उपजे हैं। आरिष्टा पृथ्वीका अंतका पटलविषैं कृष्णलेश्याका जघन्य अंशकरि मरे हुयेभी केई जीव उपजे हैं इतना विशेष जानना। बहुरि नीललेश्याका जघन्य अंशकरि मरे, ते जीव वालुकाप्रभा पृथ्वीका अंतपटलविषैं संप्रज्वलित नाम इंद्रकविषैं उपजे हैं॥ बहुरि नीललेश्याका मध्यम अंशकरि मरे, ते जीव वालुकाप्रभा पृथ्वीका संप्रज्वलितइंद्रकतैं नीचै अर चोथी पृथ्वीका सातों पटल अर पंचम पृथ्वीका अंधक इंद्रकके ऊपरि यथायोग्य उपजे हैं॥

कापोतलेश्याके उत्कृष्ट अंशकरि मरे, ते जीव तीसरी पृथ्वीका आठवा द्विचरम पटल ताके संज्वलित नाम इंद्रकविषैं उपजे हैं। केई अंतका पटलसंबंधी संप्रज्वलित

नाम इंद्रकविषैंभी उपजे हैं। बहुरि कापोतलेश्याका जघन्य अंशकरि मरे, ते जीव घर्मा पहली पृथ्वीका पहला सीमंतक नाम इंद्रकविषैं उपजे हैं। कपोतलेश्याके मध्यम अंशकरि मरे, ते जीव पहली पृथ्वीका सीमंतक इंद्रकतैं नीचै बारह पटलनिविषैं बहुरि मेघा तीसरी पृथ्वीका द्विचरम संप्रज्वलित इंद्रकतैं ऊपरि सात पटलनिविषैं बहुरि दूसरी पृथ्वीका ग्यारह पटलनिविषैं यथायोग्य उपजे हैं॥

बहुरि इहां यहु विशेष है— कृष्ण नील कपोत तीन लेश्या तिनके मध्यम अंशकरि मरे ऐसे कर्मभूमीयां मिथ्यादृष्टि मनुष्य वा तिर्यंच अर तेजोलेश्याके मध्यम अंशकरि मरे ऐसे भोगभूमीयां मिथ्यादृष्टि तिर्यंच मनुष्य ते भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी देवनिविषैं उपजे हैं॥ कृष्ण नील कपोत पीत इनि च्यारि लेश्याके मध्यम अंशकरि मरे ऐसे तिर्यंच वा मनुष्य भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी वा सौधर्मस्वर्ग ईशानस्वर्गके वासी देव मिथ्यादृष्टि, ते बादर पर्याप्तक पृथ्वीकायिक अप्कायिक वनस्पतिकायिकविषैं उपजे हैं। भवनत्रयादिककी अपेक्षा इहां पीतलेश्या जाननी। तिर्यंचमनुष्यनिकी अपेक्षा कृष्णादिक तीन लेश्या जाननी॥ बहुरि कृष्ण नील कपोतके मध्यम अंशकरि मरे ऐसे तिर्यंच वा मनुष्य ते तेजस्कायिक वातकायिक विकलत्रय असंज्ञी पंचेंद्रिय साधारणवनस्पति इनिविषैं उपजे हैं॥ बहुरि भवनत्रय आदि सर्वार्थसिद्धिपर्यंत

देव अर घर्मादिक सातों पृथ्वीसंबंधी नारकी ते अपनी अपनी लेश्याके अनुसारि यथायोग्य मनुष्यगति वा तिर्यंचगतिकूं प्राप्त होय हैं ॥

इहां इतना जानना- जिस गतिसंबंधी पूर्वैं आयु बंध्या होय, तिसही गतिविषैं जो मरण होतैं लेश्या होइ, ताके अनुसारि उपजे हैं। जैसैं मनुष्यकै पूर्वैं देवायुबंध भया बहुरि मरण होतैं कृष्णादिक अशुभ लेश्या होइ तो भवनत्रिकविषैं उपजै, ऐसैंही अन्यत्र जानना ॥ ऐसैं लेश्याके आधीन गतिका वर्णन कीया ॥

अब गुणस्थाननिमैं कहे हैं- असंयतपर्यंत च्यारि गुणस्थानपर्यंत तो छहू लेश्या हैं। देशविरत आदि तीन गुणस्थाननिमैं पीतादिक तीन शुभलेश्याही हैं। तातैं उपरि अपूर्वकरणतैं लगाय सयोगीपर्यंत छह गुणस्थाननिविषैं एक शुक्ललेश्याही है। अयोगी-गुणस्थान लेश्यारहित है। जातैं तहां योगकषायका अभाव है। उपशांतकषायादिक जहां कषाय नष्ट होगये ऐसे तीन गुणस्थाननिमैं कषायका अभाव होतैंहूं लेश्या उपचार कहिये हैं ॥

एदेसिं लेस्साणं। विसोधणं पदि उवक्कमो इणमो ॥
सव्वेसिं संगाणं। विवज्जणं सव्वहा होइ ॥ ८ ॥

अर्थ— इन लेश्यानिकै उज्वल करनेप्रति यो इलाज है। जो, समस्त परिग्रहका

सर्वथा त्याग करना। परिग्रहधारीनिकै लेश्याकी शुद्धता नहीं होइ है॥ गाथा–

लिस्सासोधी अज्झव-॥ साणविसोधीए होइ जीवस्स॥
अज्झवसाणविसोधी॥ मंदकसायस्स णायव्वा॥ ९॥

अर्थ–– जीवकै लेश्याकी शुद्धता परिणामनिकी शुद्धताकरि होइ है। अर परिणामनिकी शुद्धता मंदकषायके धारककै होइ है॥ गाथा–

मंदा हुंति कसाया। वाहिरसंगविजढस्स सव्वस्स॥
गिण्हइ कसायवहुलो। चेव हु सव्वं पि गंथकलिं॥ १९१०॥

अर्थ— समस्त बाह्यपरिग्रहरहितके कषाय मंद होय हैं। जातैं तीव्रकषायका धारकही समस्त परिग्रहरूप कालिमाकूं ग्रहण करे है। तातैं बाह्यपरिग्रहका अभावतैंही कषायनिकी मंदता होइ है॥ गाथा–

जह इंधणेहिं अग्गी। वड्ढइ विज्झाइ इंधणेहिं विणा॥
गंथेहिं तह कसाउ। वड्ढइ विज्झाइ तेहिं विणा॥ ११॥

अर्थ— जैसैं अग्नि है सो इंधनकरि वधे है, इंधनविना बुझि जाय है; तैसैं कषाय हैं ते परिग्रहकरि वधे हैं, परिग्रहविना शांत होइ जाय है॥ गाथा–

जह पत्थरो पडंतो। खोभेइ दहे पसण्णमवि पंकं॥

खोभेइ पसण्णमवि क- । सायं जीवस्स तह गंथो ॥ १२ ॥

अर्थ— जैसें जलके दहविषैं पडता जो पत्थर, सो शांतहू कर्दमकूं क्षोभरूप करे है ; तैसें जीवकै दब्या हुवाहू कपायकूं परिग्रह है सो उदीरणाकूं प्राप्त करे है ॥ गाथा—

अब्भंतरसोधीए । गंथे णियमेण वाहिरे चयदि ॥
अब्भंतरमइलो चे- । व वाहिरे गिण्हदि हु गंथे ॥ १३ ॥

अर्थ— अभ्यंतरपरिणामनिकी शुद्धताकरिकै नियमतैं बाह्यपरिग्रहकूं त्यागे है । जाका अभ्यंतर परिणाम उज्वल होजाय तिसकै बाह्यपरिग्रहका त्याग होयही है । अर जिसके अभ्यंतरपरिणाम मलिन है, सो बाह्यपरिग्रहकूं ग्रहण करैही । जिसकै अभ्यंतर राग, सो परिग्रह ग्रहण करै । जिसका अभ्यंतर राग नष्ट होगया, सो बाह्यपरिग्रहमें ममत्व नहीं करे है ॥ गाथा—

अब्भंतरसोधीए । वाहिरसोधी वि होइ णियमेण ॥
अब्भंतरदोसेण हु । कुणइ णरो वाहिरे दोसे ॥ १४ ॥

अर्थ— अभ्यंतर शुद्धताकरिकै बाह्यशुद्धता नियमतैं होइ है । अर अभ्यंतर दोषकरिकैं पुरुष बाह्य दोषनिकूं करे है ॥ गाथा—

जह तंदुलस्स कुंडय- । सोधी सतुसस्स तीरदि ण काउं ॥

तह जीवस्स ण सक्का । लिस्सासोधी ससंगस्स ॥ १५

अर्थ— जैसें तुषसहित तंदुलकी अभ्यंतर लाली दूरि करि उज्वलता करनेकूं नही समर्थ होइये है; तैसें परिग्रहसहित जीवके लेश्याकी शुध्दता करनेकूं नही समर्थ होइए है ॥ अब लेश्याके भेदतें आराधनामें भेद होइ, तिनकूं निरूपण करे हैं ॥

सुक्काए लेस्साए । उक्कस्सं अंसयं परिणमित्ता ॥
जो मरदि सो हु णियमा । उक्कस्साराधउं होइ ॥ १६ ॥

अर्थ— शुक्लेश्याका उत्कृष्ट अंशरूप परिणमिकरिकै जो मरण करे है; सो नियमतें उत्कृष्ट आराधनाका धारक होय है ॥ गाथा–

खाइयदंसणचरणं । खवोवसमियं च णाणमिदि मग्गो ॥
तं होइ खीणमोहो । आराहित्ता य जो हु अरहंतो ॥ १७ ॥

अर्थ— उत्कृष्ट आराधनाका धारकके क्षायिक सम्यग्दर्शन, क्षायिकचारित्र, अर क्षायोपशमिक ज्ञान ये मोक्षका मार्ग है। सो बारमा गुणस्थानका धारक इनिकूं आराधिकरिकै अरहंत होइ हैं ॥ गाथा–

जे सेसा सुक्काए । दु अंसया जे य पोमलेसाए ॥
तल्लेसापरिणामो । दु मज्झिमाराधणा मरणे ॥ १८ ॥

अर्थ— बहुरि अवशेष जे शुक्ललेश्याके अंश अर पद्मलेश्याके बाकीके अंश हैं तिनके परिणाम मरणकालमें मध्यम आराधनाके हैं ॥ गाथा–

तेजाए लिस्साए । जे अंसा तेसु जो परिणमित्ता ॥
कालं करेइ तस्स हु । जहण्णियाराधणा भणिदा ॥ १९ ॥

अर्थ— बहुरि जे तेजोलेश्याके अंश हैं तिनरूप परिणमिकरिकै जो मरण करे है, तिसकै जघन्य आराधना परमागममें कही है ॥ गाथा–

जो जाए परिणमित्ता । लिस्साए संजदो कुणइ कालं ॥
तल्लेसो उववज्जइ । तल्लेसे चेव सो सग्गे ॥ १९२० ॥

अर्थ— जो संयमी जैसी लेश्यारूप अपना परिणमनकरि मरण करे है, सो तैसी लेश्यावाले स्वर्गमें तिस लेश्याका धारक देव होय है ॥ गाथा–

अह तेउपउमसुक्कं । अदिच्छिदो[1] णाणदंसणसमग्गो ॥
आउक्खयादु सुध्दो । गच्छदि सिध्दिं चुदकिलेसो ॥ २१ ॥

अर्थ— बहुरि जो तेजोलेश्या पद्मलेश्या शुक्ललेश्याकूं उलंघन करि लेश्याके अभावकूं प्राप्त भये हैं, ते ज्ञानदर्शनकरि पूर्णतानैं प्राप्त भये आयुका क्षय होतैं समस्तक्लेशरहित शुध्द हुवा निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं ॥

[1] अतिक्रान्तः ॥

इति सविचार भक्तप्रत्याख्यान मरणके चालीस अधिकारनिविषैं लेश्या नामा अडतीसमा अधिकार अठारह गाथानिमैं समाप्त कीया ॥ अब आराधनाके फलका गुणतालीसमा अधिकार इकतालीस गाथानिमैं वर्णन करे हैं ॥ गाथा—

एवं सुभाविदप्पा । झाणोवगउ पसत्थलेसाउ ॥
आराहणापडायं । हरइ अविग्घेण सो खवउ ॥ २२ ॥

अर्थ— ऐसैं भलैप्रकार आत्माकी भावना करता अर ध्यानकूं प्राप्त भया अर प्रशस्तलेश्याका धारक जो क्षपक सो निर्विघ्नताकरि आराधनापताकाकूं हरे है—ग्रहण करे है ॥

तेलोक्कसव्वसारं । चउगइसंसारदुक्खणासयरं ॥
अराहणं पवण्णो । सो भयवं मुक्खपडिमुल्लं ॥ २३ ॥

अर्थ— त्रैलोक्यका समस्तसार अर चतुर्गतिसंसारके दुःखके नाश करनेवाली अर मोक्षप्रति मोल ऐसी जो आराधना, ताहि प्राप्त होइ, सो भगवान् है ॥ गाथा—

एव जधाखादविधिं । संपत्ता सुध्ददंसणचरित्ता ॥
केई खवंति खवया । मोहावरणंतरायाणि ॥ २४ ॥

अर्थ— ऐसैं यथाख्यातचारित्रकी विधीकूं प्राप्त भये अर शुद्ध है सम्यग्दर्शन अर सम्यक्चारित्र जिनकै ऐसे केई क्षपक मोहनीय अर ज्ञानावरण दर्शनावरण अर

अंतराय कर्मका नाश करे है ॥ गाथा—

केवलकप्पं लोगं । संपुण्णं दव्वपज्जयविधीहिं ॥
झायंता एयमणा । जहंति आराहया देहं ॥ २५ ॥

अर्थ—— बहुरि केवलज्ञानके ज्ञेयपणाकरिकै योग्य ऐसा संपूर्ण लोककूं द्रव्यपर्यायके भेदनिकरि एकाग्र हुवा जाणता ऐसे आराधक जे भगवान् अरहंत ते देहकूं त्यागे हैं ॥

सुक्कस्सं जोगं । जुंजंता दंसणे चरित्ते य ॥
कम्मरयविप्पमुक्का । हवंति आराधया सिध्दा ॥ २६ ॥

अर्थ—— आराधनाके धारक सर्वोत्कृष्ट योगकूं दर्शनचारित्रमें युक्त करते कर्मरूप रजकरि रहित भये सिद्ध होत हैं ॥ गाथा—

इयमुक्किस्सयमारा- । धणमणुपालित्तु केवली भविया ॥
लोगग्गसिहरवासी । हवंति सिद्धा धुयकिलेसा ॥ २७ ॥

अर्थ—— ऐसें उत्कृष्ट अराधनाकूं अनुक्रमतैं पालिकरिकै अर केवलज्ञानी होइकरिकै अर समस्तकर्मबंधरूप क्लेशकूं उडायकरिकै लोकाग्रशिखरमें वसनेवाले सिध्द होय हैं ॥

अह सावसेसकम्मा । मलियकसाया पणट्ठमिच्छत्ता ॥
हासरइअरइभयसो- । गदुगुंछावेयणिम्महणा ॥ २८ ॥

पंचसमिदा तिगुत्ता । सुसंपुडा सवसंगउ मुक्का ॥
धीरा अदीणमणसा । समसुहदुक्खा असंमूढा ॥ २९ ॥
सवसमाधाणेण य । चरित्तजोगे अधिट्ठिदा सम्मं ॥
धम्मे वा उवउत्ता । झाणे तह पढमसुक्के वा ॥ १९३० ॥
इय मज्झिममाराधण- । मणुपालित्ता सरीरपयहित्ता ॥
हुंति अणुत्तरवासी । देवा सुविसुद्धलेसा य ॥ ३१ ॥

अर्थ— अथवा जिनके कर्म नहीं क्षिपे अवशेष रहि गये ऐसे; अर मथित भये हैं कषाय जिनके; अर नष्ट भया है मिथ्यात्व जिनका; अर हास्य, रति, अरति, शोक भय, जुगुप्सा अर वेद इनकूं मथन करि मंद करि दीये अर पंचसमितिकरि सहित अर तीन गुप्तिकरि सहित अर संवरकूं धारते अर समस्तसंगरहित अर धीरवीर अर परिणाममें दीनतारहित अर सुखदुःखमें समभावसहित अर देहमें वा रागादिकामें मूढतारहित; समस्त सावधानीकरि चारित्रकूं पालनेमें सम्यक् आरूढ भये; धर्मध्यानमें वा प्रथमशुक्लध्यानमें जे उपयुक्त ते पुरुष ऐसें मध्यम आराधनाकूं पालिकरिकैं अर शरीरकूं छांडिकरिकै शुक्लेश्याके धारक अनुत्तरविमाननिमें वसनेवाले अहमिंद्रदेव होय हैं ॥

दंसणणाणचरित्ते । उक्किट्ठा उत्तमा पहाणा य ॥

इरियावहपडिवण्णा । हवंति लवसत्तमा देवा ॥ ३२ ॥
कप्पोववा सुरा जं । अच्छरसहिया सुहं अणुहवंति ॥
तत्तो अणंतगुणियं । सुहं तु लवसत्तमसुराणं ॥ ३३ ॥

अर्थ— जे इहां दर्शनज्ञानचारित्रविषैं उत्कृष्ट हैं, उत्तम हैं, प्रधान हैं, ईर्यापथकूं प्राप्त भये हैं, ते लवसत्तमा देवाः कहिये अहमिंद्रदेव होय हैं। अप्सरांनिकरि सहित कल्पवासी देव जो सुख अनुभवे हैं, तातैं अनंतगुणितसुख अहमिंद्रदेव अनुभवे हैं–भोगे हैं ॥ गाथा–

णाणम्मि दंसणम्मि य । आउत्ता संजमे अधक्खादे ॥
वड्ढिदतउवधाणा । अवहियलिस्सा सददमेव ॥ ३४ ॥
पयहिय सम्मं देहं । सययं सवगुवड्ढियगुणड्ढं ॥
देविंदचरिमठाणं । लहंति आराधया खवया ॥ ३५ ॥

अर्थ— ज्ञानमें, दर्शनमें, यथाख्यातचारित्रमें जे अत्यंत युक्त हैं, अर तपके परिकरकूं वधावते हैं अर निरंतर लेश्याकी उज्वलताकूं प्राप्त भये हैं अर निरंतर सर्वगुणनिकरि वर्धितगुणनिकरि सहित हैं ऐसे आराधनाके धारक क्षपक देहका सम्यक् त्याग करिकै सोलमा स्वर्गका इंद्र होय हैं ॥ गाथा–

सुयभत्तीए विसुद्धा । उग्गतवा णियमजोगसंसुद्धा ॥
लोगंतिया सुरवरा । हवंति आराधया धीरा ॥ ३६ ॥

अर्थ— जे श्रुतज्ञानकी भक्तिकरि अति उज्वल हैं अर उग्रतपके करनेवाले हैं अर नियमध्यानकरि शुद्ध हैं, ते धीरवीर आराधनाके धारक मरणकरि लौकांतिकदेव होय हैं ॥ गाथा–

जावदिया रिद्धीउ । हवंति इंदियगदाणि य सुहाणि ॥
ताइं लहंति ते आ- । गमेसि भद्दासया खवया ॥ ३७ ॥

अर्थ— जेती जगतमें ऋद्धि हैं अर जेते इंद्रियजनित सुख हैं, तिन समस्त ऋद्धि अर सुखनिकूं आगामी कालविषैं भद्रपरिणामी क्षपक प्राप्त होयगे ॥ गाथा–

जे वि हु जहणिणयं ते- । उलेसमाराहणं उवणमंति ॥
ते वि हु सोहम्माइसु । हवंति देवा ण हेट्ठिल्ला ॥ ३८ ॥

अर्थ— जे जघन्य तेजोलेश्यामें आराधनाकूं प्राप्त होइ हैं, तेहू सौधर्मादिक स्वर्गनिविषैं देव होय हैं। नीचले भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी देवनिमैं जन्म नही धरे हैं, इन देवनिमैं मिथ्यादृष्टिकाही उत्पाद है। सम्यग्दृष्टि भवनत्रिकमें नही उपजे हैं ॥

किं जंपिएण वहुणा । जो सारो केवलस्स लोगस्स ॥

तं अचिरेण लहंते । फासित्ताराहणं णिहिलं ॥ ३९ ॥

अर्थ— बहुत कहनेकरि कहा? समस्त आराधनाकूं अंगीकार करिकै समस्त इस लोकका सारकूं अति थोरा कालमें प्राप्त होय हैं ॥ गाथा—

भोगे अणुत्तरे भुं- । जिऊण तत्तो चुदा सुमाणुस्से ॥
इड्ढिमतुलं चइत्ता । चरंति जिणदेसियं धम्मं ॥ १९४० ॥
सदिमंतो धिदिमंतो । सद्धासंवेगवीरियोवगया ॥
जेदा परीसहाणं । उवसग्गाणं व अभिभविय ॥ ४१ ॥
इय चरणमधक्खादं । पडिवण्णा सुद्धदंसणसुवेदा ॥
सोधिंति झाणजुत्ता । लेसाउ संकिलिट्ठाउ ॥ ४२ ॥
सुक्कं लेसमुवगदा । सुक्कज्झाणेण खविदसंसारा ॥
उम्मुक्ककम्मकवया । उविंति सिद्धिं धुदकिलेसा ॥ ४३ ॥

अर्थ— आराधनाके धारक जीव देवलोकनिमैं सर्वोत्कृष्ट भोगनिकूं भोगिकरिकैं, आयुके अंतमें देवलोकतैं चयकरि, उत्तम मनुष्यभवमें उत्पन्न होय । अर मनुष्यसंबंधी अतुल ऋद्धि पाय बहुरि समस्तकूं त्यागि जिनेंद्रका उपदेश्या धर्मकूं आचरण करे हैं । अर अपने स्वरूपकूं स्मरण करे हैं । अर धैर्यकूं धारत हैं । अर श्रद्धान वैराग्य वीर्यकूं

प्राप्त होत हैं। परीषहनिकूं जीतते अर उपसर्गनिका तिरस्कार करते उपसर्गनिकूं नही गिणे हैं॥ ऐसैं यथाख्यातचारित्रकूं प्राप्त होइ हैं। बहुरि शुद्धदर्शनकूं प्राप्त भये ध्यान-करि युक्त भये संक्लिष्टलेश्याकूं शुद्ध कहिये उज्वल करे हैं॥ बहुरि शुक्ललेश्याकूं प्राप्त भये शुक्लध्यानकरिकैं संसारका नाश करते दूरि उडाये हैं कर्मकृत क्लेश जिननैं ऐसे कर्मरूप कवचतैं छूटे हुये सिध्दीकूं प्राप्त होय हैं-निर्वाणगमन करे हैं॥ गाथा-

एवं संथारगदो। विसोधइत्ता वि दंसणचरित्तं॥
परिवडदि पुणो कोई। झायंतो अट्टरुद्दाणि॥ ४४॥

अर्थ— ऐसैं संस्तरकूं प्राप्त भयाहू कोऊ क्षपक दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी उज्वलता करिकैंहू आर्त रौद्र ध्यानकूं ध्यावता संता आराधनातैं पडे है-छूटे है॥ भावार्थ-रत्नत्रयका धारकहू जो आर्तरौद्रकूं प्राप्त होय है, सो आराधनातैं भ्रष्ट होइ रत्नत्रयका नाश करे है॥ गाथा-

झायंतो अणगारो। अट्टं रुद्दं च चरिमकालम्मि॥
जो जहइ सयं देहं। सो ण लहइ सुग्गइं खवउ॥ ४५॥

अर्थ— जो क्षपक समस्त जन्ममें आराधना धारिकरिकैंहू मरणके अवसरमें आर्त-रौद्रकूं ध्यावता संता मरण करे है-अपना देहकूं छांडे है, सो साधु सुगतिकूं नही प्राप्त

होय है। आर्तरौद्रमें मरण करै, तिसकूं सुगति कैसें होय? नहीं होय ॥ गाथा–
जदि दा सुभाविदप्पा । वि चरिमकालम्मि संकिलेसेण ॥ परिवडइ वेद-
णट्टो । खवउ संथारमारूढो ॥ ४६ ॥ किं पुण जे उसण्णा । णिच्चं जे
चावि णिच्चपासत्था ॥ जे वा सदा कुशीला । संसत्ता वा जहाछंदा ॥
४७ ॥ [गच्छं हि केइ पुरिसा । पक्खी इव पंजरंतरणिरुद्धा ॥ सारण-
पंजरचकिता । उसण्णागा पविहरंति ॥] अविसुद्धभावदोसा । कसा-
यवसगा य मंदसंवेगा ॥ अच्चासादणसीला । मायावहुला णिदाणक-
दा ॥ ४८ ॥ सुहसादा किंमज्झा । गुणसायी पावजुत्तपडिसेवी ॥ त्रिस-
यासापडिवध्दा । गारवगरुया पमाइल्ला ॥ ४९ ॥ समिदीसु य गुत्तीसु
य । अभाविदा सीलसंजमगुणेसु ॥ परतत्तीसु पसत्ता । अणाहिया
भावसुध्दीए ॥ १९५० ॥ गंथ अणियत्ततण्हा । वहुमोहा सवलसेवणा-
सेवी ॥ सद्दरसरूवगंधे । फासेसु य मुच्छिदाघाडिया ॥ ५१ ॥ परलोग-
णिप्पवासा । इहलोगे चेव जे सुपडिवद्धा ॥ सज्झायादीसु य जे ।
अणुट्ठिदा संकिलिट्ठमदी ॥ ५२ ॥ सव्वेसु य मूलुत्तर- । गुणेसु तह ते सदा
अइचरंता ॥ ५३ ॥ ण लहंति खउवसमं । चरित्तमोहस्स कम्मस्स ॥

अर्थ— जो वर्तमानमें भलेप्रकार भाया है आत्मा जानैं अर संस्तरमें आरूढ भया ऐसाहू क्षपक जो मरणके अवसरमें रोगादिककी वेदनाकरि पीडित हुवा संक्लेशकरिकै पतन करे है; तो जे नित्यही अवसन्न हैं, नित्यही पार्श्वस्थ हैं, सदाकाल कुशील हैं संसक्त हैं, स्वच्छंद हैं, ते नही पतन करै कहां? अपि तु पतन करैही ॥ जैसैं कर्दममें फंस्या वा मार्गमें थकि गया तिसकूं अवसन्न कहिये हैं; तैसैं जो उपकरणमें, वसतिकामैं, संस्तरके शोधनेमैं, स्वाध्यायमें, विहार करते भूमिके शोधनेमैं, गोचरीकी शुद्धतामैं, ईर्यासमित्यादिकनिमैं, स्वाध्यायके कालका अवलोकनमें, स्वाध्यायका विसर्जन जो समाप्ति इत्यादिकमें अनुद्यमी रहै—प्रवर्तनेमें उद्यमी नही रहै; छह आवश्यकनिमें आलसी वा आवश्यकमें हीनता करै वा अधिकता करै वा वचनकायतैं आवश्यक करै भावनितैं नही करै; चारित्रके पालनेमें खेदकूं प्राप्त होय, सो अवसन्नजातिका भ्रष्ट मुनि है ॥ १ ॥

बहुरि जैसैं कोऊ पुरुष शुद्धमार्गकूं देखताहू तिस मार्गके समीप अन्यमार्गकरिकै गमन करै; तैसैं कोऊ निरतिचार संयमका मार्गकूं जानताहू संयममें नही प्रवर्ते— संयमसाक दीखे ऐसा मार्गकरि प्रवर्ते, सो पार्श्वस्थ है ॥ भोजन देनेवाले दातारकी भोजन लीये पहली स्तुति करै वा भोजन कीयेपाछे स्तवन करै, तथा उत्पादनदोष एषणादोषकरि सहित दुष्टभोजन करै, एकवसतिकामैं नित्य वसै—मुनीश्वरनिका एकव-

सतिकामैं ममता बांधि रहना चारित्रकूं नाश करे है, तथा एकसंस्तरमें नित्य शयन करै, तथा एक क्षेत्रमें वसै, तथा गृहस्थनिके गृहके मध्य बैठना, गृहस्थनिके उपकरणकरि प्रवृत्ति करना, तथा दुष्टतातैं भूमीका प्रतिलेखन करना-शोधना, तथा मयूरपिच्छिका विना दुष्टप्रतिलेखनतैं शोधना, वा ओरहू कारणविना पादप्रक्षालनादि वारंवार करना, सो पार्श्वस्थ नाम भ्रष्ट मुनिके लक्षण हैं ॥ २ ॥

बहुरि जाका लोकमें प्रकट कुत्सित कहिये खोटा स्वभाव होइ, सो कुशील है। सो कुशील अनेकप्रकारे हैं। कोऊ तौ कौतुककुशील है। जो औषध लेपन विद्याके प्रयोगकरिकै सौभाग्यका कारण राजद्वारमें कौतुक दिखावै, सो कौतुककुशील है। कोऊ भूतिकर्मकुशील है। जो भूति जो धूली वा भस्म तथा सिरसूं वा फूल वा फल वा जलादिकनिकूं मंत्रकरि रक्षा करै, वशीकरण करै, सो भूतिकर्मकुशील है। बहुरि अंगुष्ठप्रसेनिका अक्षरप्रसेनी शशिप्रसेनी सूर्यप्रसेनी स्वप्नप्रसेनी इत्यादिकविद्यानिकरि लोकनिकूं रंजायमान करै, सो प्रसेनिकाकुशील है। बहुरि विद्यामंत्र औषध ओरलोकनिकूं रागी करनेवाले प्रयोगनिकरि वा असंयमीनिका इलाज करै, सो अप्रसेनिका-कुशील है। बहुरि जो अष्टांगनिमित्त जानि लोकनिकूं आज्ञा करै, सो निमित्तकुशील है। बहुरि अपनी जाति वा कुलका महिमाका प्रकाश करि जो भिक्षादिकनिकूं

उपजावै, सो आजीवकुशील है। बहुरि कोऊकरि उपद्रवकूं प्राप्त भया परके शरणानैं प्रवेश करै वा अनाथशालामैं प्रवेश करि आशाकूं करै, सोहू आजीवकुशील है बहुरि विद्याप्रयोगादिक करिकै परके द्रव्यहरणादिक डिंभ दिखावनेमें तत्पर वा इंद्रजालादिक करिकै जो लोककूं विस्मयरूप करै, सो कुहनकुशील है ॥ बहुरि जो वृक्षनिकी वा गुल्म जे छोटे वृक्षनिकी पुष्पनिकी फलनिकी उत्पत्ति दिखावै वा गर्भस्थापनादिक करै, सो संमूर्छनाकुशील है। जो कीटादिक त्रसजातिका अर वृक्षादिकनिका फलपुष्पादिकनिका गर्भका नाश करै वा शाप देवै, सो प्रपातनकुशील है। बहुरि जो क्षेत्र चतुष्पद सुवर्ण इत्यादिक परिग्रह ग्रहण करै, तथा हरित कंदफलका भोजन करै, उद्देश्या आहार करै, अशुद्धवसतिका ग्रहण करै, परस्त्रीनिकी कथानिमैं जाकै राग होइ, मैथुनसेवामैं तत्पर होइ, प्रमादी होइ विकाररूप जिनका वेष होय, ते समस्त कुशीलजातिके भ्रष्ट मुनि हैं। इनकी संगतितैं कुगतिमैं पतन होय है ॥ ३॥

अब संसक्तके लक्षण कहे हैं ॥ जो सुंदरचारित्रमें प्रीति नहीं करै, कुचारित्रमें प्रीतिका धारक होइ, नटकीनांई अनेक खोटे रूप भेषका ग्रहण करनेवाला होइ, पंचेंद्रियनिके विषयनिमैं आसक्त होइ, तीन गौरवतामैं आसक्त होइ स्त्रीनिके विषयनिमैं संकल्पकूं धारता होइ, गृहस्थजननिका संसर्ग जाकूं प्रिय होय, सो संसक्तजातिका भ्रष्टमुनि है ४

जो उन्मार्गचारी संघबाह्य प्रवर्तन एकाकी करता होइ, सो स्वच्छंद है। जिसके आहार विहार वेष उपदेश शयन आसन लोंच त्याग ग्रहण जिनसूत्रकी आज्ञारहित यथेच्छ होइ, सो स्वच्छंद है॥ ५॥ ऐसैं पंचजातिके भ्रष्ट तपस्वी कहे, इनकै आराधना स्वप्नमैं नही होय है॥

बहुरि जे भावनिमैंतैं शंकादिकदोष दूरि नही कीये होइ अर जे कषायनिके वशवर्ती हैं, अभिमानादिक कषायनिकूं त्यागनेकूं समर्थ नही हैं, अर जिनके धर्ममें अनुराग अति मंद है, अर जे सम्यग्दर्शनादिक गुण अर गुणनिके धारनेवाले पुरुषनिका अपमान करनेवाले हैं, अर प्रचुर मायाचारकूं प्राप्त भये हैं, अर निदान करनेवाले हैं, अर जे इंद्रियनिके सुखके स्वादमें लंपटी हैं, मोकूं कहा प्रयोजन है ऐसैं संघके कार्यमें अनादररूप प्रवर्ते हैं, बहुरि सम्यग्दर्शनादिक गुणनिमैं सूते हैं—उत्साहरहित हैं, "अर मिथ्यात्व असंयम कषायनिमैं प्रचुर प्रवृत्ति करावनेवाले जे वैद्यकशास्त्र, मायाचारके शिखावनेवाले कौटिल्यशास्त्र, स्त्रीपुरुषनिके लक्षणशास्त्र, धातुवाद काम लोभ विषय मायाचारके वधावनेवाले काव्य नाटकादिक शास्त्र, वा चोरविद्याके शास्त्र वा शस्त्रविद्याके जीवनिके मारनेपकडने दाव घाव करनेके शास्त्र, तथा चित्रकला गंधर्वकलाके तथा गंधादिक करनेके खोटे शास्त्र, तिनकूं पापसूत्र कहिये हैं" इनमें

जो अभ्यास आदर करवावाले हैं ते अर वांछित विषयनिके प्राप्तीके अर्थि जिननैं आशा बांधि राखी है, अर तीन गारवकरि आपकूं बडा मानि रहे हैं, अर जे विकथादिक पंचदशप्रमादनिमैं आसक्त हैं, अर जे पंचसमितिविषैं तीन गुप्तिविषैं अर शीलसंयम गुणनिविषैं भावनारहित हैं, अर जे परनिंदाविषैं आसक्त हैं, अर जिनकै भावनिकी शुध्दीमैं अनादर है, अर जिनकी परिग्रहमें तृष्णा नही घटै है, अर जो मोह अज्ञान ताकी आधिक्यतासहित हैं, अर जे सदोषवस्तूका सेवनमें तत्पर हैं, अर जे शब्द रस रूप गंध स्पर्शरूप जे इंद्रियनिके विषय तिनमैं मूर्छित हैं–अति आसक्त हैं, बहुरि जे परलोकके हितमें निर्वांछक हैं, अर जे इस लोकसंबंधी कार्यमें जाग्रत हैं, अर जे स्वाध्यायादिक धर्मकार्यनिमैं अनुद्यमी हैं–आलसी हैं, अर जे संक्लेशरूप बुध्दीके धारक हैं, बहुरि जे समस्त मूलगुण उत्तरगुणनिमैं सदाकाल अतिचारदोष लगावे हैं, ते चारित्रमोहके क्षयोपशमकूं नही प्राप्त होय हैं ॥ गाथा–

एवं मूढमदीया । अवंतदोसा करेंति जे कालं ॥
ते देवदुब्भगत्तं । मायामोसेण पावंति ॥ ५४ ॥

अर्थ— ऐसैं जे पूर्वोक्तप्रकार मूढबुध्दि नही वमन कीये हैं दोष जिननैं ऐसे दोषनिके धारक जे काल करे हैं, ते मायाचारकरिकैं असत्यवचनकरिकैं देवदुर्भगता जो

देवनिमैं नीचता ताकूं प्राप्त होय हैं ॥ गाथा–

किं मज्झ णिरुच्छाहा । भवंति ते सव्वसंघकज्जेसु ॥
ते देवसमिइवज्झा । कप्पंते हुंति सुरमिच्छा ॥ ५५ ॥

अर्थ— बहुरि जे समस्त संघके कार्यनिमैं उत्साहरहित हैं, "जो, मोकूं कहा? मैंही हूं कहा? मोसूं मेराही कार्य नही बणै! मै कौनका करूं?" ऐसैं समस्त संघके हितमें कार्यमें वैयावृत्यमें अनादरकरि सहित हैं, ते देवनिकी सभाके बाह्य वसनेवाले सुरम्लेंछ होय हैं, देवनिमैं म्लेंछसमान हैं ॥ गाथा–

कंदप्पभावणाए । देवा कंदप्पिया मदा होंति ॥
खिब्भिसियभावणाए । कालगदा होंति खिब्भिसिया ॥ ५६ ॥

अर्थ— जो असत्यवचन निंद्यवचन आप बोलै औरनिकूं बुलावै अर कामरतिमैं लीन, सो कंदर्प भावना है । सो कंदर्पभावनाकरिकैं कंदर्पदेवनिमैं उपजे है । बहुरि जो तीर्थंकरनिकी आज्ञातैं प्रतिकूल होइ अर संघका तथा चैत्य जो प्रतिमाका तथा जिनसूत्रका विनयरहित अविनयी होइ मायाचारी होय, सो किल्बिषभावना है । सो किल्बिषभावनाकरि जो मरण करे है, सो किल्बिषजातिके देवनिमैं उपजे हैं ॥ गाथा–

अभिजोगभावणाए । कालगदा आभिउगिया हुंति ॥

तह आसुरीयजुत्ता। हवंति देवा असुरकाया ॥ ५७ ॥

अर्थ— जो साधु तंत्रमंत्रादिक बहुत भावनिनैं 'अभियुंक्ते' नाम करे है, तथा हास्यादिक बहुत वाग्जालनिकूं करे है, सो अभियोगभावना है। अभियोगभावनाकरिकै वाहनजातिका आभियोग्यदेवनिमैं उपजे हैं। बहुरि जो क्रोधी मानी मायावी होइ तथा तपमें चारित्रमें संक्लेशसहित होइ अर दृढवैरमें जाकी रुचि होइ, सो आसुरी-भावनासहित है। सो जीव आसुरीभावनाकरि असुरदेवनिमैं उपजे है॥ गाथा—

सम्मोहणाए कालं। करित्तु दुंदुगासुरा हुंति ॥
अण्णं पि देवदुग्गइ। उवयंति विराधया मरणे ॥ ५८ ॥

अर्थ— उन्मार्गका उपदेश देना, अर मार्ग जो रत्नत्रय ताका नाश करना, अर सांचे मार्गकूं बिगाडि अपना नवीनमार्गका स्थापन करना, मिथ्यात्वके उपदेशकरि जगतकै मोह उपजावना ऐसी सम्मोहीभावनाकरि मरण करे हैं, ते संमोहजातीके स्वच्छंददेवनिमैं उपजे हैं। मरणकालमें दर्शन-ज्ञान-चारित्रके विराधक हैं ते अन्यहू देवदुर्गतिनिकूं प्राप्त होय हैं॥ गाथा—

इय जे विराधइत्ता। मरणे असमाधिणा मरिज्जण्हू ॥
तं तेसिं वालमरणं। होइ फलं तस्स पुव्वुत्तं ॥ ५९ ॥

अर्थ— इसप्रकार जे मरणकालमें रत्नत्रयकी विराधना करि असमाधि जो धर्ममें असावधानताकरि मरण करे हैं, तिनकै सो बालमरण होय है। अर बालमरणका फल पूर्वै ग्रंथकी आदिमें वर्णन कीया, सोही संसारमें भ्रमण करावनेवालां जानना ॥

जे सम्मत्तं खवया। विराधइत्ता पुणो मरेज्जण्हू ॥
ते भवणवासिजोदिस। भोमेज्जा वा सुरा हुंति ॥ १९६० ॥

अर्थ— बहुरि जे क्षपक सम्यक्त्वकी विराधना करि अर मरण करे हैं, ते भवनवासी वा ज्योतिष्कदेव वा व्यंतरदेव होय हैं ॥ गाथा–

दंसणणाणविहूणा। तदो चुदा दुक्खवेदणुम्मीए ॥
संसारमंडलगदा। भमंति भवसागरे मूढा ॥ ६१ ॥

अर्थ— बहुरि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानकरि हीन ऐसे मूढ मिथ्यादृष्टि भवन व्यंतर ज्योतिषी देवनितैं चयकरिकै संसारमंडलकूं प्राप्त भये संसाररूप समुद्रमें भ्रमण करे हैं। कैसाक है संसारसमुद्र? दुःखवेदनाही हैं लहरी जामैं ॥ भावार्थ– मिथ्यादृष्टि आराधनाका नाश करि देवदुर्गतिकूं प्राप्त होइ बहुरि संसारहीमैं अनंतानंतकाल परिभ्रमण करे हैं ॥

जो मिच्छत्तं गंतू। ण किण्हलिस्साइपरिणदो मरदि ॥
तल्लेसो सो जायइ। जल्लेसे कुणदि जो कालं ॥ ६२ ॥

अर्थ— जो मिथ्यात्वकूं प्राप्त होइकरिकैं कृष्णादिकलेश्यारूप परिणामनैं प्राप्त होइ जो मरे है, सो जिस लेश्याकूं धारण करि मरै तिसही लेश्याका धारक होय है ॥

इति सविचार भक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषैं आराधनाका फलका वर्णन इकतालीस गाथानिमैं करि, गुणतालीसमा अधिकार समाप्त कीया ॥ ३९ ॥

आराधनामरण करि परलोक जानेका वर्णन तो लेश्याके अनुसारि कह्या ॥ अब क्षपकका मृतकशरीर रह्या, तिसके क्षेपनेका विधानका है वर्णन जामैं ऐसा विजहना नामा चालीसमां अधिकार पैंतीस गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

एवं कालगदस्स दु। सरीरमंतो व होज्ज वाहिं वा ॥
विज्जावच्चकरा तं। सयं विकिंचंति जदणाए ॥ ६३ ॥

अर्थ— ऐसैं पूर्वोक्तप्रकार मरणकूं प्राप्त भया जो क्षपक, ताका शरीरके मांहि वा वारै कफमलादिक होइ, तो वैयावृत्यके करनेवाले यत्नाचारकरि तिसकूं दूरि करे हैं ॥

समणाणं ठिदिकप्पो। वासे वासे तहेव उडुवंधे ॥
पडिलिहिदव्वा णियमा। णिसीहिया सव्वसाधूहिं ॥ ६४ ॥

अर्थ— सर्वही साधूनिनैं वर्षवर्षमें वा ऋतुका आरंभमें निषीधिका नियमतैं प्रतिलेखन करनेयोग्य है, ऐसा मुनीश्वरनिका स्थितिकल्प है। इसका विशेष तो आगममें

जानेविना लिखनेमें आवै नही। जो आचारांगमें स्थितिकल्प है, सो प्रमाण है। परंतु सामान्य इसमें ऐसा है– जो, मुनीका शरीरके स्थापन करनेयोग्य स्थानकूं निषीधिका कहिये हैं ॥ अब निषीधिका कैसीक होय, ताहि कहे हैं ॥ गाथा–

एगंता सालोगा। णादिविकिट्ठा ण चावि आसण्णा ॥
विच्छिण्णा विद्धत्था। णिसीहिया दूरमोगाढा ॥ ६५ ॥
अइसुइ असुसिर अघसा। उज्जोवा वहुसमा असिणिद्धा ॥
णिज्जंतुका अरहिदा। अविला य तहा अणावाधा ॥ ६६ ॥

अर्थ— परकै अदृश्य ऐसी एकांत होइ, अर उद्योतकरि सहित होइ, अतिदूर नही होइ, अतिनिकट नही होइ, अर विस्तीर्ण होइ, अर विध्वस्त कहिये मर्दली हुई होइ, अर अतिशयकरि अत्यंत दृढ होइ ऐसी निषीधिका होइ, वहुरि अतिपवित्र होइ, बिलरहित होइ, घासरहित होइ, उद्योतसहित होइ, वहुतप्रकारकरि सम होइ, उच्चनीच नही होइ, सचिक्कणतारहित होइ, निर्जंतु होइ, रजरहित होइ, अविचल होइ, वाधारहित होइ ॥ गाथा–

जा अवरदक्खिणाए। व दक्खिणीए य अहव अवराए ॥
वसधीदो विरइज्जइ। णिसीधिया सा पसत्थात्ति ॥ ६७ ॥

अर्थ— जो निषीधिका होइ सो वसति जो नगर ग्राम तातैं पश्चिमदक्षिणके मध्य नैऋतविदिशामैं वा दक्षिणदिशाविषै अथवा पश्चिमदिशाविषैं वर्णन करी है। इनि तीन दिशामैं निषीधिका प्रशंसायोग्य कही है॥ गाथा–

सव्वसमाधी पढमा-। ए दक्खिणाए दु भत्त मो सुलभं॥
अवराए सुविहारो। होदि य से उवधिलाभो य॥ ६८॥

अर्थ— जो निषीधिकाका लाभमें कोऊ निमित्त विचारै तो ऐसा जानना– जो, वसतीकी नैऋतकोणमें पूर्वैं कही तैसी वसतिका होय तो समस्तसंघमें समाधि जो आराधनाका लाभ होसी। अर दक्षिणमैं प्राप्त होय तो आगै संघकूं भोजनका लाभ सुलभ होसी। अर पश्चिममैं प्राप्त होय तो जानिये संघका आगानै विहार सुखरूप होसी। तथा संघमें पीछी पुस्तक कमंडलादिकनिका लाभ होसी॥ गाथा–

जदि तेसिं वाघादो। दट्ठवा पुवदक्खिणा होइ॥
अवरुत्तरा वि पुवा। उदीचिपुव्वुत्तरा कमसो॥ ६९॥

अर्थ— जो पूर्वोक्तदिशामैं निषीधिका नहीं मिलै, तो पूर्वदक्षिण कहिये अग्नि-कोणमें वा वायुकोणमें वा पूर्वमैं वा उत्तरमैं वा ईशानमैं मिलै, तो, तिनका निमित्तज्ञानसूं ऐसा फल जाननां॥ गाथा–

एदासु फलं कमसो । जाणिज्ज तुमंतुमा य कलहो य ॥
भेदो य गिलाणं पि य । चरिमा पुण कड्ढदे अण्णं ॥ १९७० ॥

अर्थ— इनका फल क्रमतैं ऐसा जानना, अग्निदिशामैं वसतिका प्राप्त होइ तो आगानैं संघमैं ईर्षा होयगी। पवनादिदिशामैं प्राप्त होइ तो ऐसा जानना, जो, संघमैं कलह होसी। पूर्वदिशामैं प्राप्त होइ तो संघमैं भेद पडेगा ऐसा फल जानना। उत्तरमैं निषीधिका प्राप्त होइ तो, जानिये, संघमैं रोग व्याधि होनी है। ईशानविदिशामैं निषीधिका प्राप्त होइ तो संघमैं परस्पर पक्षपात वधसी ऐसा फल जानना ॥

जं वेलं कालगदो । भिक्खू तं वेलमेव णीहरणं ॥
जग्गणबंधणछेदण- । विधी अवेलाए कादवा ॥ ७१ ॥

अर्थ— जिस अवसरविषैं साधूका मरण होइ, तिस वेलाविषैंही उसका देहका निकासना–लेजावना है। अर जो लेजावनेका अवसर नही होय–रात्री इत्यादिकका अवसर होय; तो जागरण, बंधन, छेदन ये तीन विधि करै ॥ अत्र जागरण जो क्षपकके निर्जीवदेहके निकट जागना सो कैसेकसे मुनि तहां जागते रहै सो कहे हैं ॥

बाले वुड्ढ सीहे । तवस्सिभीरुग्गिलाणए दुहिदे ॥
आयरिए वि विकिंचिय । धीरा जग्गंति जिदणिद्दा ॥ ७२ ॥

अर्थ— बालमुनि, तथा वृद्धमुनि, नवीन शिक्षकमुनि, बहुत तपश्चरण करनेमें उद्यमी ऐसे तपस्वी मुनि, तथा कायरस्वभावके धारक भीरु मुनि, तथा व्याधिसहित रोगी मुनि, तथा वेदनाकरि दुःखित मुनि, बहुरि आचार्यमुनि इनकूं वर्जि करि धीर वीर मुनि, निद्राके जीतनेवाले क्षपकका मृतकशरीरके निकट जागरण करे हैं—जागे हैं ॥ अब कैसे मुनि बंधन करे हैं सो कहे हैं ॥ गाथा—

गीदत्था कदकरणा। महावलपरक्कमा महासंता ॥
वंधंति य छिंदंति य। करचरणंगुहुयपदेसे ॥ ७२ ॥

अर्थ— ग्रहण कीया है पदार्थनिका सत्यार्थस्वरूप जिननैं ऐसे, कीये है करण जिननैं, महान् है बल पराक्रम जिनमैं, अर महान् आत्मवीर्यके धारक ऐसे मुनि हैं ते क्षपकके शरीरके हस्त वा पादके अंगुष्ठका किंचित् प्रदेशनैं बांधै वा छेदै ॥ इहां कोऊ कहै— मृतक मुनिके अंगुष्ठके प्रदेशकूं कैसें बांधै? कैसें छेदै? तिसका उत्तर यह है— जो, ऐसा सामान्यही इहां लिख्या है। विशेष अन्यग्रंथनितैं जाननेमें आया नही, यातैं विशेष लिखना सूत्रकी आज्ञाविना होय नही। तातैं जैसैं भगवान् ज्ञानी देख्या तैसैं प्रमाण है॥ ऐसैं अंगुष्ठके प्रदेशकूं छेदन बंधन नही करे तो कहा दोष आवै? ऐसी शंका होतैं दोषकूं दिखावे हैं ॥ गागा—

जदि वा एस ण कीरि-। ज्ज विधी तो तत्थ देवदा कोइ ॥
आदाय तं कलेवर-। मुट्ठिज्ज रमिज्ज वाधिज्ज ॥ ७४ ॥

अर्थ— जो ऐसैं जागरण तथा अंगुष्ठप्रदेशमें छेदन बंधन नही करै अर कदाचित् कोई धर्मका द्रोही वा कौतुकी व्यंतरादिक देव तिस मृतककलेवरमें प्रवेश करि ऊठि खडा हुवा अनेक क्रीडा करै वा संघमें बाधा करै तो संघमें नवीन मुनि कायरमुनि मंद-ज्ञानी मुनिनके परिणाम दर्शन–ज्ञान–चारित्रमें शिथिल होजाय तो बडा अनर्थ प्रकट होइ धर्ममें उपद्रव होय! तातैं जागरण छेदन बंधन करे हैं ॥ इस लोकमें व्यंतर निरंतर भरे हैं। ग्राममें, नगरमें, वनमें, पर्वतमें, नदीमें, गुफामें, महल मठ मकानमें, वृक्ष कूप बावडी मार्ग समस्त क्षेत्रमें निरंतर विचरे हैं। तातैं जागरण छेदन बंधन करनेतें कोई धर्मतें पराङ्मुख देवता उपद्रव नही करि सके हैं ॥ गाथा—

उवसयपडिदावणं। उवणणगहिदं तु तत्थ उवकरणं ॥
सागारियं च दुविहं। परिहारियमपरिहरियं वा ॥ ७५ ॥

इस गाथाका अर्थ हमारे जाननेमें नही आया वा टीकाकारहू नही लिख्या है। बहुज्ञानी होइ, सो समझि अर्थ लिखियो ॥ गाथा—

जइ विखखादा भत्तप-। इण्णा अज्जा व हुज्ज कालगदा ॥

देउल सागारित्ति व। सिवियाकरणं पि तो होज्ज ॥ ७६ ॥

अर्थ— मुनीश्वरनिका मरण अनेक वनमें पर्वतनिमें, गुफानिमें, नदीनिके पुलिनमें, वृक्षनिके कोटरनिमें होइ है; सो वहां देहकूं कोन उठावै? कलेवर पड्या रहे है, वा जंतु भक्षण करे हैं, पवनादिकनितैं शुष्क होइ जाय है, अर कोऊ खबरिही नही पावे है। अर कदाचित् कोऊ जानै तोहू उनका कुछ उठावनेमें वा दग्ध करनेमें गृहस्थनिका धर्म है। ऐसा कोऊ श्रावकाचार यतीका आचारमें कथनकी विख्याततताहू नही है। बहुरि लोकमैंहू विख्यात है- कोऊकै अग्नितैं दग्ध करना है कोऊ देशमें जलमें नदीमें वहाय देना है, कोऊकै पर्वतनिमें मेलि आवना है, कोऊकै वृक्षनिकै बांधि आवना है, कोऊकै जमीमें गाडना है, कोऊकै भीतीमें चुनि देना है, कोऊकै समुद्रमें नाखना है, कोऊकै वनमें मेलि आवना है इत्यादिक अनेक रीति हैं। परंतु जो भक्तप्रत्याख्यान नामा समाधिमरण लोकनिमैं विख्यात होइ तथा समाधिमरणके धारीनिका अनेक लोक दर्शनकूं आवते होय सब गांवमें गृहस्थनिमें जिन मुनीश्वरनिका वा आर्यिकाका समाधिमरण प्रकट होइ, तो मुनिके समाधिमरण करनेकी उस वसतिकाका स्वामी वा अन्य गृहस्थजन आय मुनिके देहके लेजायवेकूं शिबिका जो पालकी रथी ताहि करै ॥ पाछै कहा करै सो कहे हैं ॥

तेण परं संठाविय । संथारगदं च तत्थ वंधित्ता ॥
उत्थिसुरक्खणट्ठं । गामं तत्तो सिरं किच्चा ॥ ७७ ॥
पुव्वाभोइयमग्गे- । ण आसु गच्छंति तं समादाय ॥
अट्ठिदमणियत्तंता । य पिट्ठदो अणिज्झंता ॥ ७८ ॥
कुसमुट्ठिं घित्तूण य । पुरदो एगेण होइ गंतव्वं ॥
अट्ठिद अणियत्तंते- । ण पिट्ठदो लोयणं मुच्चा ॥ ७९ ॥
तेण कुसमुट्ठिधारा- । ए अव्वोच्छिण्णाए समणियादाए ॥
संथारो कादव्वो । सव्वत्थ समो सगिं[1] तत्थ ॥ १९८० ॥

[1] सकृत

अर्थ-- संस्तरमें प्राप्त जो क्षपकका शरीर, ताही, गृहस्थजनकरि कीई जो शिबिका तिसमें स्थापन करि, अर तिसमें उछलनेकी रक्षाके अर्थि बंधन करि, अर ग्रामके सन्मुख मस्तक करि, तिस मृतककी शिबिकाकूं गृहस्थजन उठायकरिकै अर पूर्वें देख्या जो मार्ग तिसकरिकै शीघ्रही गमन करै। अर मार्गमें खडा नही रहे। अर उलटा वाहुडे नही। ऊठि पाछै अवलोकन छोडिकरि गमन करै, पाछा नही देखै। बहुरि एक पुरुष कुशमुष्टि जो डाभ घास तृणकी मूठी है ताहि ग्रहण करि शिबिकाके आगै गमन करै। अर मार्गमें खडा नही रहै। अर पाछा वाहुडे नही। अर पाछानैं अवलोकन छांडि गमन

करै। अर अगाऊ जाय पूर्वै देखी हुई जो निषीधिका ताकेविषैं डाभकी मूठी विच्छेद-रहित बराबरि पटकि अर मुनिका देह स्थापन करनेकी भूमीकूं सर्वत्र समान करै॥ अर जो तिस क्षेत्रमें डाभ तृण नही होइ, तो कैसैं भूमीकूं सम करै, सो कहे हैं॥ गाथा–

जत्थ ण होज्ज तणाइं। चुण्णेहिं वि तत्थ केसरेहिं वा॥
सत्थरिदव्वा लेहा। सव्वत्थ समा अवुच्छिण्णा॥ ८१॥

अर्थ— जहां भूमी सम करनेकूं डाभ नही होइ–तृण नही होइ, तो ईंटनिके चूर्णकरिकै वा वृक्षनिकी शुष्ककेसरिकरिकै सर्वत्र समान विच्छेदरहित भूमि करै। अर जो भूमि सम नही होय, तो निमित्तज्ञानीतैं ऐसा आगै होना दीखे है॥ गाथा–

जदि विसमो संथारो। उवरिं मज्झे वहिज्ज हिट्ठा वा॥
मरणं गिलाणयं वा। गणिवसभजदीण णायव्वा॥ ८२॥

अर्थ— जो संस्तर ऊपरि विषम होइ–सम नही होइ तो ऐसा जानिये– जो, संघमें आचार्यका मरण होसी वा आचार्यनिकै रोग आवसी। अर जो मध्यमें विषम होइ तो जानिये– संघमें कोऊ प्रधानमुनिकै मरण वा व्याधि–रोग होसी। अर जो नीचै विषम होइ तो जानिये– कोऊ यतिका मरण होसी वा रोग आवसी। ऐसा निमित्ततैं जानिये हैं॥ अब क्षपकके शरीरकूं कैसैं स्थापन करै सो कहे हैं॥ गाथा–

जत्तो दिसाए गामो । तत्तो सीसं करित्तु सोवधियं ॥
उट्ठंतरक्खणट्ठं । वोसरिदव्वं सरीरं तं ॥ ८३ ॥

अर्थ— जिस दिशामैं ग्राम होई तिस दिशाविषैं क्षपकका मस्तक करि पिच्छिका-सहित शरीरकूं स्थापन करै । मृतकका व्यंतरादिकरि ऊठनेकी रक्षाके अर्थि ग्रामकी घोडी मस्तक करि उपकरण निकट धरै ॥ मृतकके निकट मयूरपिच्छिकादिक उपकरण स्थापनेमें गुण दिखावे हैं ॥ गाथा—

जो वि विराधिय दंसण । अंते कालं करित्तु होज्ज सुरो ॥
सो वि विवुज्झइ दट्ठू । ण सदेहं सोवधिं सज्जो ॥ ८४ ॥

अर्थ— जो कदाचित् कोऊ क्षपक संक्लेशपरिणामनिमैं अंतकालमें सम्यग्दर्शनकी विराधना करिकै अर व्यंतर असुरादिक देव जाय उपज्या होय अर उस स्थानकमैं आवै तो अपना शरीरकूं पीछीसहित देखै तो फेरि ज्ञान उपजि सम्यक्त्व ग्रहण करै, जो, मै पूर्वं संममी था अब मै कैसैं विकारी भया हूं! ऐसैं धर्ममें दृढ होजाय। तातैं मृतकमुनिकै निकट उपकरण स्थापन करनेमें गुण कह्या है ॥ बहुरि आराधना समस्तमैं विख्यात होइ जिसका पार पडना बडी प्रभावना है ॥ इस आराधनाके धारकके मरणतैं निमित्त विचारिये तो संघमें आगानै भावीकाहू कितनाक निश्चय होय है, सो कहे हैं ॥

णत्ताभाए रिक्खे । जदि कालगदो सिवं तु सर्वेसिं ॥
एक्को दु समे खित्ते । दिवड्ढखित्ते मरंति दुवो ॥ ८५ ॥

अर्थ— जघन्यनक्षत्रमें आराधनाके धारकका मरण होइ तो जानिये- समस्त संघका कल्याण होसी। मध्यमनक्षत्रमें मरण होइ तो एकका मरण और होसी। महान नक्षत्रमें मरण करै तो दोयका मरण होना जानै ॥ गाथा-

गणरक्खणत्थं तह्मा । तणमयपडिबिंबयं तु कायव्वं ॥
एक्कं तु समे खित्ते । दिवड्ढखित्ते दुवे दिज्जा ॥ ८६ ॥

अर्थ— तातैं गणरक्षाके अर्थि मध्यमनक्षत्रमें तृणमय एक प्रतिबिंब जो एक पूलो सो वहां निकट मेलना योग्य है। अर उत्तम नक्षत्रमें तृणमय दोय मुष्टि धरै ॥ गाथा-

तट्ठाणसावणं चिय । तिक्खुत्तो ठविय मदयपासम्मि ॥
विदिय वियप्पियभिक्खू । कुज्जा तह विदियतिदियाणं ॥ ८७ ॥

अर्थ— तिस स्थानमें मृतकके निकट तृणमय पिंड स्थापना करि "द्वितीयोऽर्पितः" ऐसैं कहे। तथा द्वितीय स्थापन कीया ऐसैं कहि तृणमय पूला दोय मेलै ॥ गाथा-

असदि तणे चुण्णेहिं । व केसरिच्छारिट्ठिकादिचुण्णेहिं ॥
कादव्वो थ ककारो । उवरे हिट्ठा तकारो से ॥ ८८ ॥

उवगंहिदं उवकरणं । हविज्ज जं पाडिहारियं किंचि ॥
पडिवोधित्ता सम्मं । अप्पेदवं तयं तेसिं ॥ ८९ ॥

अर्थ— अर उस क्षेत्रमें तृण नहीं होइ तो पुष्पनिकी केसरी वा भस्म वा ईंटनिका चूर्णकरिकै उपरि ककार लिखि नीचे तकार लिखै। अर जो पींछी कमंडल उपकरण होइ तो तिसकूं सम्यक् प्रतिलेखन करि अर्पण करि दे–स्थापन करि दे॥ ऐसैं मृतकक्षपकके स्थापनकी विधि कही॥ अब संघके मुनि तहां क्षपककी समाधिमरण करनेकी वसतिकामैं कहा करै सो कहे हैं॥ गाथा–

आराधणपत्तीयं। काउंसग्गं करेइ तो संघो॥
अधिउत्ताए इच्छा-। गारं खवयस्स वसधीए॥ ११९० ॥

अर्थ— तीठापाछैं समस्त संघ आपकै आराधनाके अर्थि कायोत्सर्ग करै। जैसैं इनकै आराधना हुई, तैसैं हमारैहू आराधना होहू। इस अभिप्रायकूं धारि कायोत्सर्ग समस्त संघके साधु करै॥ बहुरि जिस वसतिकामैं क्षपककै आराधना भई, तिस वसतिकाके अधिपतिदेवताकूं समस्त मुनि इच्छाकार करै– भो, स्थानके स्वामी हो! तिहारी इच्छाकरिकै इस क्षेत्रमें संघ तिष्ठनेकी इच्छा करे है। जातैं मुनीश्वरनिका ऐसा सदाकालही आचार है– जिस वसतिकादिस्थानमें प्रवेश करै तहां तो ऐसा वचन

कहि प्रवेश करे " युष्माकमिच्छया अत्रासितुमिच्छामि-भो, स्थानके स्वामी हो ! तुमारी इच्छाकरि इस क्षेत्रमें स्थिति रहनेकी इच्छा करूं हूं " अर स्थान छांडि जाय तदि आशीर्वाद देजाय। ऐसा नित्यही नियोग है॥ नाथा-

सगणत्थे कालगदे। खमणमसज्झाइयं च तद्दिवसं॥
ण ज्झाइ परगणत्थे। भयणिज्जं खमणकरणं वि॥ ९१॥

अर्थ— अपने गणमें तिष्ठता मुनि कालकूं प्राप्त होतैं तिस दिनविषैं समस्त संघ उपवास करै अर तिस दिन स्वाध्याय नही करै। अर परगणमें तिष्ठता मुनि मरणकूं प्राप्त होइ तो स्वाध्याय नही करै अर उपवास करै वा नही करै॥ गाथा-

एवं पदिट्ठवित्ता। पुणो वि तदीयदिवसे उविक्खंति॥
संघस्स सुहविहारं। तस्स गदी चेव णादुं जे॥ ९२॥

अर्थ— ऐसैं क्षपकके शरीरकूं स्थापन करिकै बहुरि तृतीय दिवसविषैं कोऊ निमित्तके जाननेवाला संघका सुखरूप विहार जाननेकूं अर क्षपककी गति जाननेकूं तृतीय दिनविषैं क्षपकके शरीरकूं अवलोकन करै॥ गाथा-

जदि दिवसे संचिट्ठइ। तमणालद्धं च अक्खयं मडयं॥
तदि वासाणि सुभिक्खं। खेमसिवं तम्मि रज्जम्मि॥ ९३॥

अर्थ— जितने दिन क्षपकका मृतकशरीर वनके जीवनिकरि अखंड तिष्ठै–वनके जीव भक्षण नही करै, तितने वर्ष तिस राज्यमें सुभिक्ष क्षेम कल्याण रहे है। ऐसैं निमित्ततैं जानै ॥ गाथा–

जं वा दिससुवणीदं । सरीरयं खगचदुप्पदगणेहिं ॥
खेमं सिवं सुभिक्खं । विहरिज्जो तद्दिसं संघो ॥ ९४ ॥

अर्थ— पक्षी तथा चतुष्पादनिके समूह क्षपकका शरीरका खंड जिस दिशामैं लेगया होइ, तिस दिशामैं क्षेम शिव सुभिक्ष जाणिकरि तिस दिशामैं संघ विहार करै ॥ भावार्थ– क्षपकका कलेवरकूं तीसरे दिन कोऊ निमित्त ज्ञाननेवाला देखै। जिस दिशामैं उसके अंगका खंड पक्षी चतुष्पादकरि लेगया देखै तिस दिशामैं क्षेम सुभिक्ष ज्ञाणि विहार करै ॥ गाथा—

ज्ञदि तस्स उत्तमंगं । दिस्सदि दंता च उवरि गिरिसिहरे ॥
कम्ममलविप्पमुक्को । सिध्दिं पत्तोत्ति णादव्वो ॥ ९५ ॥
वेमाणिउं थलगदो । समम्मि जोदिसिय वाणविंतरिउं ॥
गड्डाए भवणवासी । एस गदी से समासेण ॥ ९६ ॥

अर्थ— क्षपककी गतिभी संक्षेपकरि ऐसी जानी जाइ है– जो, क्षपकका मस्तक

वा दंत पर्वतके शिखरउपरि दीखै तो ऐसा जानना– जो, कर्ममलरहित सिद्ध भया। अर मस्तक स्थलगत उन्नतभूमीमैं तिष्ठता दीखै, तो ऐसा जान्या जाय– जो, वैमानिक देव भया। अर समभूमीमैं दीखै, तो ज्योतिष्कदेवनिमैं वा व्यंतरदेवनिमैं प्राप्त भया। अर खाडेमैं दीखै, तो भवनवासीनिमैं प्राप्त भया। ऐसैं निमित्ततैं स्थूलपणाकरि गति जानी जाइ है॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिमैं चोतीस गाथानिकरि विजहन नामा चालीसमा अधिकार समाप्त कीया॥ ४०॥ अब सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणकी महिमा नव गाथानिकरि कहे हैं॥ गाथा–

ते सूरा भयवंता। आईच्चइऊण संघमज्झम्मि॥ प्रतिज्ञां कृत्वा।
आराधणापडाया। चउप्पयारा धिदा जेहिं॥ ९७॥

अर्थ— जे शूरवीर ज्ञानवंत संघके मध्य प्रतिज्ञा करि च्यारिप्रकार आराधनापताका ग्रहण करि, ते जगतमें धन्य हैं॥ गाथा–

ते धण्णा ते णाणी। लद्धो लाभो य तेहि सव्वेहिं॥
आराधणा भयवदी। पडिवण्णा जेहि संपुण्णा॥ ९८॥

अर्थ— जिनूंनैं ए भगवान्‌संबंधी आराधना पाई, ते धन्य हैं, ते ज्ञानवंत हैं, तिनूंनैं

समस्त लाभ पाया। जे आराधना अनंतकालहूमें प्राप्त नही भई ते प्राप्त भई, इससिवाय कोऊ तीन लोकमें लाभ नही है ॥ गाथा—

किं णाम तेहिं लोगे। महाणुभावेहिं हुज्ज ण य पत्तं ॥
आराधणा भयवदी। सयला आराधिदा जेहिं ॥ ९९ ॥

अर्थ— इस लोकके विषें जिन आराधनानिकूं महाप्रभाववान् पुरुषहू नही प्राप्त भये ऐसी भगवान् सर्वज्ञकरि आराधना करी जो भगवती आराधनाकूं जे समस्तप्रकारकरि आराधना करी, तिनका कहा महिमा कहूं? ॥ गाथा—

ते च्चिय महाणुभावा। धण्णा जेहिं च तस्स खवयस्स ॥
सव्वादरसत्तीए। उवविहिदाराधणा सयला ॥ २००० ॥

अर्थ— ते महानुभाव निर्यापकहू धन्य हैं, जिनूंनें खर्व आदरकरिकै समस्त शक्ति करिकै तिस क्षपकके समस्त आराधना कराई ॥ गाथा—

जो उवविधेदि सव्वा-। दरेण आराधणं खु अण्णस्स ॥
संपज्जदि णिव्विग्घा। सयला आराधणा तस्स ॥ १ ॥

अर्थ— जो पुरुष अन्य धर्मात्मा पुरुषकै समस्तप्रकार आदर करि, शरीरकी वैयावृत्य करि, धर्मोपदेश करि, धर्ममें दृढता करि, आहार पान औपध स्थानके दान

नेका जंघामैं बल घटि गया होई, परसंघमें जायवेकूं असमर्थ होई, तिस मुनिके निरुध्दभक्तप्रत्याख्यान कह्या। जितनैं बल वीर्य देहमें रहै, तितनैं परकरि इलाज टहल वैयावृत्त्य नही करावै। आहारके अर्थि जानेमें, निहार करनेमें, विहार करनेमें, परका सहाय नही चाहै। अर जब शरीर थकिजाय, तदि अपने संघके मुनीश्वरनिके सहायकरि प्रवृत्ति करै॥ गाथा-

इय संणिरुध्दमरणं। भणियं अणिहारिमं अवीचारं॥
सो चेव जधाजोग्गं। पुव्वुत्तविधी हवदि तस्स॥ ११॥

अर्थ— ऐसैं जंघामैं बलकी हीनताकरिकै तथा शरीरमें रोग व्याधिकरि पीडित होनेकरि अपने संघमें निरुध्द होगया-परगणमें जानेकूं समर्थ नही भया, तातैं याकूं निरुद्ध कहिये। बहुरि सविचार भक्तप्रत्याख्यानमें कही जो विधि तिसके अभावतैं याकूं अनिहारित कहिये। बहुरि अनियतविहारादिक विधि आचरणके अभावतैं अवीचार कहिये। अपने संघहीमैं आचार्यनिके समीपविषैं अवीचार कहिये शुध्द होइ करिकैं अर अपनी निंदा गर्हा करता ऐसा जितनैं आपमें शक्ति रहै तितनैं परसूं प्रतीकार नही करावता विहार करै-प्रवर्तन करै। जदि समस्तचेष्टाहीन होजाय, तादि परकरि अनुग्रह कीया संता विहार करै॥ गाथा-

समस्त लाभ पाया । जे आराधना अनंतकालहूमें प्राप्त नही भई ते प्राप्त भई, इससिवाय कोऊ तीन लोकमें लाभ नही है ॥ गाथा—

किं णाम तेहिं लोगे । महाणुभावेहिं हुज्ज ण य पत्तं ॥
आराधणा भयवदी । सयला आराधिदा जेहिं ॥ ९९ ॥

अर्थ— इस लोकके विषैं जिन आराधनानिकूं महाप्रभाववान् पुरुषहू नही प्राप्त भये ऐसी भगवान् सर्वज्ञकरि आराधना करी जो भगवती आराधनाकूं जे समस्तप्रकारकरि आराधना करी, तिनका कहा महिमा कहूं? ॥ गाथा—

ते च्चिय महाणुभावा । धण्णा जेहिं च तस्स खवयस्स ॥
सव्वादरसत्तीए । उवविहिदाराधणा सयला ॥ २००० ॥

अर्थ— ते महानुभाव निर्यापकहू धन्य हैं, जिनूंनें सर्व आदरकरिकै समस्त शक्तिकरिकै तिस क्षपकके समस्त आराधना कराई ॥ गाथा—

जो उवविधेदि सव्वा- । दरेण आराधणं खु अण्णस्स ॥
संपज्जदि णिव्विग्घा । सयला आराधणा तस्स ॥ १ ॥

अर्थ— जो पुरुष अन्य धर्मातमा पुरुषकै समस्तप्रकार आदर करि, शरीरकी वैयावृत्य करि, धर्मोपदेश करि, धर्ममें दृढता करि, आहार पान औषध स्थानके दान

करि, आराधना करावे है; तिस पुरुषकै निर्विघ्न समस्त आराधना परिपूर्ण होइ है ॥ अन्य धर्मात्मा पुरुषकूं आराधनामरण करायनेमें जे सहायी होय हैं, ते च्यारि आराधनाकी पूर्णता पाय लोकाग्रस्थानमें निवास करे हैं ॥ बहुरि जे आराधना करनेवालेके दर्शनकूं जाय हैं, तिनकी महिमा कहे हैं ॥ गाथा–

ते वि कदत्था धण्णा । य हुंति जे पावकम्ममलहरणे ॥
ण्हायंति खवयतित्थे । सव्वादरभत्तिसंजुत्ता ॥ २ ॥

अर्थ— ते पुरुषहू जगतमें धन्य हैं, कृतार्थ हैं। जे पापकर्मरूप मैलके हरनेवाले क्षपकरूप तीर्थमें समस्त आदरभक्तिकरि संयुक्त स्नान करे हैं। अर जे भक्तिसंयुक्त भये क्षपकके दर्शनमें प्रवर्ते हैं, ते धन्य हैं—कृतार्थ हैं॥ अब क्षपककै तीर्थपणा दिखावे हैं॥

गिरिणादियादिपदेसा । तित्थाणि तवोधणेहि जदि उसिदा ॥
तित्थं कधं ण हुज्जो । तवगुणरासी सयं खवउ ॥ ३ ॥

अर्थ— जो तपस्वीजन जिस पर्वत इत्यादिकके प्रदेशनिकूं प्राप्त होइ हैं, ते पर्वत नद्यादिक जगतमें तीर्थ मानि सेवन करिये हैं; तो तपगुणकी राशि ऐसा क्षपक आप तीर्थ कैसें नहीं होय?॥ गाथा–

पुव्वरिसीणं पडिमा- । उ वंदमाणस्स होइ जदि पुण्णं ॥

खवयस्स वंदउं किह । पुण्णं विउलं ण पाविज्ज ॥ ४ ॥

अर्थ— जो पूर्वे ऋषि मुनि भये, तिनकी प्रतिमानिकूं वंदना करते पुरुषकै पुण्य होय है; तो साक्षात् क्षपककूं वंदना करता पुरुष प्रचुरपुण्यकूं कैसें नहीं प्राप्त होय? ॥

जो उंलग्गदि आरा- । धयं सदा तिव्वभत्तिसंजुत्तो ॥
संपज्जदि णिव्विग्घा । तस्स वि आराधणा सयला ॥ ५ ॥

अर्थ— जो तीव्र भक्तिसंयुक्त होइ आराधनाके धारककी सदाकाल सेवन करे है, तिस पुरुषकै निर्विघ्न आराधना प्राप्त होय है, अर तिसकी आराधना सफल होय है॥

इति भगवती आराधना नाम ग्रंथविषें पंडितमरणके तीन भेदनिमें सविचारभक्तप्रत्याख्यान–मरणका वर्णनके चालीस अधिकार उगणीससै गाथानिमें समाप्त कीये ॥ अब पंडितमरणका दूजा भेद जो अविचारभक्तप्रत्याख्यान ताकूं उगणीस गाथानिमें वर्णन करे हैं ॥ तिनमें तीन गाथानिमें अविचारभक्तप्रत्याख्यानका सामान्य भेद वर्णन करे हैं ॥ गाथा–

सविचारभत्तवोसर- । णमेवमुववण्णिदं सवित्थारं ॥
अविचारभत्तपच्च- । क्खाणं एत्तो परं वुच्छं ॥ ६ ॥

अर्थ— ऐसें सविचार भक्तप्रत्याख्यानकूं विस्तारसहित वर्णन कीया ॥ अब आगै

अविचार भक्तप्रत्याख्यानकूं कहूंगा ॥ गाथा-

तत्थ अविचारभत्त- । प्पइण्णमरणम्मि होइ आगाढे ॥
अपरक्कमस्स मुणिणो । कालम्मि असंपहुत्तम्मि ॥ ७ ॥

अर्थ— अल्पशक्तिका धारक जो मुनि ताकै आयुका बहुतकाल नही अवशेष रहै अर मरण शीघ्र आजाय तदि अविचार भक्तप्रत्याख्यानका अवसर जानना ॥ गाथा-

तत्थ पढमं णिरुद्धं । णिरुद्धतरयं तहा हवे विदियं ॥
तदियं परमणिरुद्धं । एवं तिविहं अवीचारं ॥ ८ ॥

अर्थ— तहां अविचारभक्तप्रत्याख्यान ऐसैं तीनप्रकार है। प्रथम निरुद्ध, द्वितीय निरुद्धतर, तृतीय परमनिरुद्ध । ऐसैं तीन नाम कहे ॥ अब निरुद्ध भक्तप्रत्याख्यान पंच गाथानिकरि कहे हैं ॥ तिनमैं निरुद्ध ऐसे मुनिकै होइ है—

तस्स णिरुध्दं भणिदं । रोगादंकेहिं जो समभिभूदो ॥
जंघावलपरिहीणो । परगणगमणम्मि ण समत्थो ॥ ९ ॥
जावय वलविरियं से । सो विहरदि ताव णिप्पडीयारो ॥
पच्छा विहरदि पडिज- । ग्गीयंतो तेण सगणेण ॥ २०१० ॥

अर्थ— जो मुनि रोगकी पीडाकरि पीडित होइ, अर परगणादिकमैं विहार कर-

नेका जंघामें बल घटि गया होई, परसंघमें जायवेकूं असमर्थ होई, तिस मुनिकै निरुध्दभक्तप्रत्याख्यान कह्या। जितनैं बल वीर्य देहमें रहै, तितनैं परकरि इलाज टहल वैयावृत्त्य नही करावै। आहारके अर्थि जानेमें, निहार करनेमें, विहार करनेमें, परका सहाय नही चाहै। अर जब शरीर थकिजाय, तदि अपने संघके मुनीश्वरनिके सहायकरि प्रवृत्ति करै ॥ गाथा–

इय संणिरुध्दमरणं। भणियं अणिहारिमं अवीचारं ॥
सो चेव जधाजोग्गं। पुव्वुत्तविधी हवदि तस्स ॥ ११ ॥

अर्थ— ऐसैं जंघामें बलकी हीनताकरिकै तथा शरीरमें रोग व्याधिकरि पीडित होनेकरि अपने संघमें निरुध्द होगया–परगणमें जानेकूं समर्थ नही भया, तातैं याकूं निरुद्ध कहिये। बहुरि सविचार भक्तप्रत्याख्यानमें कही जो विधि तिसके अभावतैं याकूं अनिहारित कहिये। बहुरि अनियतविहारादिक विधि आचरणके अभावतैं अवीचार कहिये। अपने संघहीमें आचार्यनिके समीपविषैं अवीचार कहिये शुध्द होइ करिकैं अर अपनी निंदा गर्हा करता ऐसा जितनैं आपमें शक्ति रहै तितनैं परसूं प्रतीकार नही करावता विहार करै–प्रवर्तन करै। जदि समस्तचेष्टाहीन होजाय, तादि परकरि अनुग्रह कीया संता विहार करै ॥ गाथा–

करिकै अपने मनमेंही अरहंत सिध्द आचार्य उपाध्याय साधु इनिकूं अलोचना करै ॥

आराधणाविधी जो । पुव्वं उववण्णिदो सवित्थारो ॥
सो चेव जुज्जमाणो । इत्थ विही होइ णादव्वो ॥ २०२० ॥

अर्थ— जो पूर्वें आराधनाकी विधि विस्तारसहित वर्णन करी, सोही विधि अवसरकै योग्य इहांहू जाणवो जोग्य है ॥ गाथा--

एवं आसुक्कारम- । रणे वि सिज्झंति केइ धुदकम्मा ॥
आराधयित्तु केई । देवा वि विमाणिया होंति ॥ २१ ॥

अर्थ— इसप्रकार शीघ्र मरण होतैंहू केते महामुनि शुक्लध्यानकरि कर्मनिकूं उडाय सिध्दिकूं प्राप्त होय हैं। अर केई आराधनाकूं आराधिकारि वैमानिक देव होई है ॥ अब कोऊ आशंका करै-- जो, अल्पकालकरि निर्वाण कैसैं होइ? सो शंका दूरि करिवेके अर्थि कहे हैं ॥ गाथा---

आराधणाए तत्थ दु । कालस्स वहुत्तणं ण हु पमाणं ॥
वहवो मुहुत्तमत्ता । संसारमहण्णवं तिण्णा ॥ २२ ॥

अर्थ— तिस आराधनाविषैं कालका बहुतपणेका प्रमाण नही है। बहुत जीव अंतर्मुहूर्तमात्र आराधनामैं तिष्ठि संसारसमुद्रकूं तिरि गये हैं। जातैं क्षायिकसम्यक्त्व

नेका जंघामैं वल घटि गया होई, परसंघमें जायवेकूं असमर्थ होई, तिस मुनिकै निरुध्दभक्तप्रत्याख्यान कह्या। जितनैं वल वीर्य देहमें रहै, तितनैं परकरि इलाज टहल वैयावृत्त्य नही करावै। आहारके अर्थि जानेमें, निहार करनेमें, विहार करनेमें, परका सहाय नही चाहै। अर जव शरीर थकिजाय, तदि अपने संघके मुनीश्वरनिके सहायकरि प्रवृत्ति करै ॥ गाथा–

इय संणिरुध्दमरणं। भणियं अणिहारिमं अवीचारं ॥
सो चेव जधाजोग्गं। पुव्वुत्तविधी हवदि तस्स ॥ ११ ॥

अर्थ— ऐसैं जंघामैं वलकी हीनताकरिकै तथा शरीरमें रोग व्याधिकरि पीडित होनेकरि अपने संघमें निरुध्द होगया–परगणमें जानेकूं समर्थ नही भया, तातैं याकूं निरुद्ध कहिये। वहुरि सविचार भक्तप्रत्याख्यानमें कही जो विधि तिसके अभावतैं याकूं अनिहारित कहिये। वहुरि अनियतविहारादिक विधि आचरणके अभावतैं अवीचार कहिये। अपने संघहीमैं आचार्यनिके समीपविषैं अवीचार कहिये शुध्द होइ करिकैं अर अपनी निंदा गर्हा करता ऐसा जितनैं आपमें शक्ति रहै तितनैं परसूं प्रतीकार नही करावता विहार करै–प्रवर्तन करै। जदि समस्तचेष्टाहीन होजाय, तादि परकरि अनुग्रह कीया संता विहार करै ॥ गाथा–

दुविधं तं पि अणीहा- । रिमं पगासं च अप्पगासं च

जणणादं च पगासं । इदरं च जणेण अणादं ॥ १२ ॥

अर्थ— अवीचार भक्तप्रत्याख्यान दोयप्रकार है। एक प्रकाश, एक अप्रकाश। तिनमैं जो लोकनिके जाननेमें होइ, सो प्रकाश है। अर जो लोकनिमैं विख्यात नही होइ, सो अप्रकाश है॥ भावार्थ– लोकनिमैं कोऊका समाधिमरण विख्यात होइ, सो प्रकाश है। विख्यात नही होइ, सो अप्रकाश है॥ गाथा–

खवयस्स चित्तसारं । खित्तं कालं पडुच्च सजणं वा ॥

अण्णाम्मि व तारिसय- । म्मि कारणे अप्पगासं तु ॥ १३ ॥

अर्थ— बहुरि क्षपककी बुद्धीके बलकूं तथा क्षेत्रकूं तथा कालकूं तथा स्वजननिकूं तथा औरहू कारणनिकूं प्रकाशके योग्य नही होतै समाधिमरणकी प्रकटता नही होइ है, तातैं अप्रकाश कहिये हैं। जो क्षपक क्षुधादिक परिषह सहनेमें असमर्थ होइ तथा वसतिका एकांतमें नही होइ वा अज्ञानी धर्ममें विघ्न करनेवाला होइ, तहां समाधिमरण तो करावै; परंतु देश-काल-द्रव्य-भावकी योग्यताविना प्रकट नही करै, सो अविचारभक्तप्रत्याख्यानका निरुद्ध नाम भेदमें अप्रकाश वर्णन कीया॥ अब निरुद्धतर नामा दूजा भेदकूं च्यारि गाथानिकरि वर्णन करे हैं॥ गाथा–

वालग्गिवग्घमहिसग- । यरिंछपडिणीगतेणामिच्छेहिं ॥
मुच्छाविसूचियादी- । हि हुज्ज सज्जो हु वावत्ती ॥ १४ ॥
जाव ण वाया अक्खिय- । दि वलं विरियं तु जाव कायम्मि ॥
तिव्वाए वेदणाए । जाव य चित्तं ण विक्खित्तं ॥ १५ ॥
णच्चा संवट्टिज्जं । तमाउगं सिग्घमेव तो भिक्खू ॥
गणियादीणं सण्णिहि- । दाणं आलोचए सम्मं ॥ १६ ॥

अर्थ— सर्पकरिकै तथा अग्निकरिकै तथा व्याघ्रकरिकै तथा महिषकरिकै तथा गजकरिकै तथा रीछकरिकै तथा शत्रुकरिकै तथा चोरनिकरिकै तथा म्लेंछनिकरिकै तथा मूर्छाकरिकै तथा विसूचिकादिककरिकै जो तत्काल शीघ्रतातैं आपत्ति आजाय तो, जितनैं वाणी नही थकै-वचन नही विनसै, तथा जितनैं कायमें वल वीर्य नही विनसै, तथा जितनैं तीव्रवेदनाकरिकै चित्त विक्षिप्त नही होइ, तितनैं सो साधु अपना आयुकूं संकुचित होता जानि शीघ्रही आपके निकट कोई आचार्यादिक तिनकूं सम्यक् आलोचना करै अर आराधनाका शरणा ग्रहण करिकै मरण करै, सो अवीचार भक्तप्रत्याख्यानका निरुध्दतर नामा दूजा भेद है ॥ गाथा—

एवं णिरुध्ददरयं । विदियं अणिहारिमं अवीचारं ॥

सो चेव जधाजोग्गं । पुव्वुत्तविधी हवदि तस्स ॥ १७ ॥

अर्थ— ऐसैं विहाररहित अत्यंतनिरोधरूप अविचारभक्तप्रत्याख्यानका निरुध्दतर नामा दूसरा भेद कह्या । इसविषैंहू जो पूर्वैं भक्तप्रत्याख्यानमें विधि कही, सोही यथायोग्य जाननी ॥ जो सिंह व्याघ्र अग्नि जलादिककरि अचानक शीघ्रही मरण आजाय, तो तहां आचार्यादिकनिसैं आलोचनादिकहू नही होइ सकै, जो निकटवर्ती साधु होइ तिसहीसैं आलोचना करि शीघ्र मरण करै, तिसकै निरुध्दतर नामा मरण होइ है ॥ ऐसैं च्यारि गाथानिमैं निरुध्दतरका वर्णन कीया ॥ अब परमनिरुध्दभेदकूं सप्तगाथानिकरि वर्णन करे हैं ॥ गाथा—

वालादिएहि जइया । अक्खित्ता होज्ज भिक्खुणो वाया ॥
तइया परमणिरुद्धं । भणिदं मरणं अवीचारं ॥ १८ ॥

अर्थ— सर्प व्याघ्र सिंह अग्नि चौरादिककरि उपद्रवतैं जो क्षपककी वाणी नष्ट होजाइ—जुबान बंद होजाइ, तदि साधूकै परमनिरुद्ध नामा अविचारभक्तप्रत्याख्यान होय है ॥

णच्चा संवट्टिज्जं । तमाउगं सिग्घमेव तो भिक्खू ॥
अरहंतसिद्धसाहू- । ण अंतियं सिग्घमालोचे ॥ १९ ॥

अर्थ— तीठापाछे भिक्षु जो साधु सो अपना आयु शीघ्र संकुचित होता जाणि-

करिकै अपने मनमेंही अरहंत सिध्द आचार्य उपाध्याय साधु इनिकूं अलोचना करै ॥

आराधणाविधी जो । पुव्वं उववण्णिदो सवित्थारो ॥
सो चेव जुज्जमाणो । इत्थ विही होइ णादव्वो ॥ २०२० ॥

अर्थ— जो पूर्वे आराधनाकी विधि विस्तारसहित वर्णन करी, सोही विधि अवसरकै योग्य इहांहू जाणवो जोग्य है ॥ गाथा--

एवं आसुकारम- । रणे वि सिज्झंति केइ धुदकम्मा ॥
आराधयित्तु केई । देवा वि विमाणिया होंति ॥ २१ ॥

अर्थ— इसप्रकार शीघ्र मरण होतैंहू केते महामुनि शुक्लध्यानकरि कर्मनिकूं उडाय सिध्दिकूं प्राप्त होय हैं। अर केई आराधनाकूं आराधिकारि वैमानिक देव होई हैं ॥ अब कोऊ आशंका करै-- जो, अल्पकालकरि निर्वाण कैसें होइ? सो शंका दूरि करिवेके अर्थि कहे हैं ॥ गाथा---

आराधणाए तत्थ दु । कालस्स वहुत्तणं ण हु पमाणं ॥
वहवो मुहुत्तमत्ता । संसारमहण्णवं तिण्णा ॥ २२ ॥

अर्थ— तिस आराधनाविषैं कालका बहुतपणेका प्रमाण नही है। बहुत जीव अंतर्मुहूर्तमात्र आराधनामैं तिष्ठि संसारसमुद्रकूं तिरि गये हैं। जातैं क्षायिकसम्यक्त्व

कहिये चौडे सम उन्नत जीवरहित योग्यस्थानमें शुद्धपृथ्वीमें वा शिलामय संस्तरविषै आपकूं एकाकी असहाय स्थापन करै ॥ गाथा—

पुव्वुत्ताणि तणाणि य । जाइत्ता थंडिलम्मि पुव्वुत्ते ॥ जदणाए संथरित्ता । उत्तरसिरमध व पुव्वसिरं ॥ ३२ ॥ पाचीणाभिमुहो वा । उदीचिजुत्तो व तत्थ सो ठिच्चा ॥ सीसे कदंजलिपुडो । भावेण विसुद्धलिस्सेण ॥ ३३ ॥ अरिहादिअंतियं तो । किच्चा आलोचणं सुपरिसुध्दं ॥ दंसणणाणचरित्तं । पंडिसारेदूण णिस्सेसं ॥ ३४ ॥ सव्वं आहारविधिं । जावज्जीवाय वोसरित्ताणं ॥ वोसरिदूण असेसं । अब्भंतरवाहिरे गंथे ॥ ३५ ॥ सव्वे वि णिज्जिणंतो । परीसहे धिदिवलेण संजुत्तो ॥ लेसाए विसुज्झंतो । धम्मं झाणं उवेणमित्ता ॥ ३६ ॥ ठिच्चा णिसिदित्ता वा । वट्टेदूण व सकायपडिचरणं ॥ सयमेव णिरुवसग्गे । कुणदि विहारम्मि सो भयवं ॥ ३७ ॥

[1] संस्कृत

[1] प्रतिपद्य

अर्थ— पूर्वोक्त तृण जे हैं तिनकूं याचना करिकै अर पूर्वोक्त स्थंडिलस्थानविषैं तृणनिका यत्नाचारकरि संस्तर करिकै अर उत्तराशिर अथवा पूर्वशिर संस्तर करै । बहुरि तिस संस्तरमें पूर्वदिशाकै सन्मुख वा उत्तरकै सन्मुख तिष्ठिकरिकै विशुद्ध लेश्यारूप भावकरिकै, अर मस्तकविषैं अंजुली करि अर अरहंतादिकनिकै समीप उज्वल आलो-

करिकै अपने मनमेंही अरहंत सिध्द आचार्य उपाध्याय साधु इनिकूं अलोचना करै ॥

आराधणाविधी जो । पुव्वं उववण्णिदो सवित्थारो ॥
सो चेव जुज्जमाणो । इत्थ विही होइ णादव्वो ॥ २०२० ॥

अर्थ— जो पूर्वं आराधनाकी विधि विस्तारसहित वर्णन करी, सोही विधि अवसरकै योग्य इहांहू जाणवो जोग्य है ॥ गाथा--

एवं आसुक्कारम- । रणे वि सिज्झंति केइ धुदकम्मा ॥
आराधयित्तु केई । देवा वि विमाणिया होंति ॥ २१ ॥

अर्थ— इसप्रकार शीघ्र मरण होतेंहू केते महामुनि शुक्लध्यानकरि कर्मनिकूं उडाय सिध्दिकूं प्राप्त होय हैं । अर केई आराधनाकूं आराधिकारि वैमानिक देव होई हैं ॥ अव कोऊ आशंका करै- जो, अल्पकालकरि निर्वाण कैसैं होइ? सो शंका दूरि करिवेके अर्थि कहे हैं ॥ गाथा--

आराधणाए तत्थ दु । कालस्स वहुत्तणं ण हु पमाणं ॥
वहवो मुहुत्तमत्ता । संसारमहण्णवं तिण्णा ॥ २२ ॥

अर्थ— तिस आराधनाविषैं कालका वहुतपणेका प्रमाण नहीं है । वहुत जीव अंतर्मुहूर्तमात्र आराधनामैं तिष्ठि संसारसमुद्रकूं तिरि गये हैं । जातैं क्षायिकसम्यक्त्व

क्षायिकज्ञान जो केवलज्ञान, क्षायिकचारित्र जो यथाख्यातचारित्र, तप जो शुक्लध्यान ये अंतर्मुहूर्तमें उपजे हैं। अर इनि च्यारि आराधनाकूं हुयेपीछे अंतर्मुहूर्तमें सिद्धि होइ है ॥

खणमित्तेण अणादिय । मिच्छादिट्ठी वि वद्धणो राया ॥
उसहस्स पादमूले । संवुज्झित्ता गदो सिद्धिं ॥ २३ ॥

अर्थ— अनादिमिथ्यादृष्टिहू वर्ध्दन नामा राजा वृषभदेवस्वामीका चरणनिके निकट प्रबोधकूं प्राप्त होइकरि क्षणमात्रकरि सिध्दिकूं प्राप्त भया ॥ गाथा-

सोलसतित्थयराणं । तित्थुप्पण्णस्स पढमदिवसम्मि ॥
सामण्णणाणसिध्दी । भिण्णमुहुत्तेण संपण्णा ॥ २४ ॥

अर्थ— षोडश तीर्थंकरनिका तीर्थमें उत्पन्न भये साधूकै दीक्षा लीनि तिसका प्रथम दिवसके विषैं अंतर्मुहूर्तकरिकै सामान्यज्ञानकी सिद्धि होत भई ॥ ऐसैं परमनिरुद्धमरणका वर्णन सप्त गाथानिमैं कीया ॥

इति भगवती आराधना नाम ग्रंथविषैं पंडितमरणका वर्णनमें भक्तप्रत्याख्यानका वर्णन समाप्त कीया ॥ अब पंडितमरणका दूसरा भेद जो इंगिनीमरण ताहि चौतीस गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा-

एसा भत्तपइण्णा । वाससमासेण वण्णिदा विधिणा ॥

इत्तो इंगिणिमरणं । वोसससमासेण वण्णेसिं ॥ २५ ॥ [1]

अर्थ— या भक्तप्रतिज्ञा विस्तारसंक्षेपरूप विधिकरिकैं वर्णन करी । यातैं आगै इंगिनीमरणकूं संक्षेपविस्तारकरिकै वर्णन करिस्यूं । ऐसैं इंगिनीमरण कहनेकी शिवकोटिस्वामी प्रतिज्ञा करी ॥ गाथा–

जो भत्तपदिण्णाए । उवक्कमो वण्णिदो सवित्थारो ॥
सो चेव जधाजोग्गं । उवक्कमो इंगिणीए वि ॥ २६ ॥

अर्थ— जो भक्तप्रत्याख्यानको क्रमविस्तारसहित वर्णन कीयो, सोही यथायोग्य इंगिनीमरणविषैंहू आरंभ जानना ॥ गाथा–

पव्वज्जाए सुद्धो । उवसंपज्जित्तु लिंगकप्पं च ॥ पवयणमोगाहित्ता । विणयसमाधीए विहरित्ता ॥ २७ ॥ णिप्पादित्ता सगणं । इंगिणिविधिसाधणाए परिणमिया ॥ सिदिमारुहित्तु भाविय । अप्पाणं सल्लिहित्ताणं ॥ २८ ॥ परियाइगमालोचिय । अणुजाणित्ता दिसं महज्जणस्स ॥ तिविधेण खमावित्ता । सवालउड्ढावुलं गच्छं ॥ २९ ॥ अणुसिट्ठिं दादूण य । जावज्जीवाय विप्पउंगत्थी ॥ अब्भादिगजादहासो । णीदि गणादो गुणसमग्गो ॥ २०३० ॥

[1] व्यासः

१ कृतार्थोऽस्मीति जातदर्पः

अर्थ— इंगिनीमरण कैसैं होइ? किसकै होइ? सो कहे हैं– जो दीक्षाग्रहणाविषैं योग्य होय, शुद्ध होय, अर आचारांगके अनुकूल, योग्य वीतरागलिंग ग्रहण करिकै, अर जिनेंद्रका प्ररूप्या आचारांगादिकका अवगाहन करिकै, अर विनयमें तथा समाधिके परिणामनिकी सावधानीसैं प्रवर्तन करिकै, अर अपने संघकूं रत्नत्रयमें दृढतानैं प्राप्त करिकै, अर इंगिनीमरणकी विधिका साधनके अर्थि परिणमन करिकै, अर परिणामनिकी विशुद्धतारूप श्रेणी चढिकरिकै, अर अपने आत्माकूं शोधनकरिकै, अर रत्नत्रयमें जे अतीचार लागे होय तिनकूं शोधिकरिकै, अर जो आपपाछैं नवीन आचार्य होइगे तिनकूं जणायकरिकै, अर च्यारिप्रकारका संयमीनिका बालवृद्धसहित समस्तसंघतैं मन–वचन–काय–करिकै क्षमा ग्रहण करायकरिकै, अर संघकूं हितरूप शिक्षा देइकरिकै, अर यावज्जीव समस्तसंघतैं वियोगका अर्थी हुवा, तथा संघमैंतैं निकसि एकाकी होइ परम आराधनाके पालनेमैं उपज्या है परम हर्ष जाकै ऐसा, गुणनिकरि परिपूर्ण हुवा संघतैं एकाकी निकलै ॥ गाथा–

एवं च णिक्खमित्ता । अंतो वाहिं व थंडिले जोगे ॥
पुढवीसिलामए वा । अप्पाणं णिजवे एक्को ॥ २१ ॥

अर्थ— ऐसैं संघवारै निकसिकरिकै अर गुफादिकनिकै मांहि वा बाहिर स्थंडिल

सयमेव अप्पणो सो । करेदि आउंटणादिकिरियाउ ॥
उच्चारादीणि तधा । सयमेव विकिंचदे विधिणा ॥ ३८ ॥

अर्थ— बहुरि सो क्षपक हस्तपादादिक अंगनिका पसारना, खैंचना, पलटना इत्यादिक अपने देहमें आपही क्रिया करै—परका तहां करनेका संबंधही नही । तथा मलमूत्रका मोचन यथाविधि शुद्धभूमीमैं आपका आपही करै ॥ गाथा—

जाधे पुण उवसग्गा । देवा माणुस्सिया व तेरिच्छा ॥
ताधे णिप्पडियम्मो । ते अधियासेदि विगदभउ ॥ ३९ ॥

अर्थ— बहुरि जिसकालमें देवनिकरि कीया वा मनुष्यनिकरि कीया वा तिर्यंचनिकरि कीया उपसर्ग आजाय तो तिसकाल भयरहित हुवा तिन उपसर्गनिकूं सहै—उपसर्गमें समभाव नही छांडै—कायरता नही करै ॥ गाथा—

आदितियसुसंघदणो । सुहसंठाणो अभिज्जाधिदिकवचो ॥
जिदकरणो जिदणिद्दो । उघवलो उघसूरो य ॥ २०४० ॥

अर्थ— कैसाक है इंगिनीमरणका धारक क्षपक? आदिका तीन संहननका धारक है । वज्रर्षभनाराच, वज्रनाराच, नाराच ये आदिके तीन संहनन हैं । बहुरि सुंदर जाका संस्थान होय, बहुरि उपसर्ग परीषहनिकरि नही भेद्या जाय ऐसा, धैर्यरूप जाके

वकतर होय, बहुरि इंद्रियनिकूं जीतनेवाला होइ, बहुरि निद्राकूं जीत लई होय, बहुरि महान् बलवान् होय, बहुरि अत्यंत शूरवीर होय, कायर नहीं होय, तिसकै एकविहारी-पणा होइ इंगिनीमरण होय है ॥ गाथा-

वीभच्छभीमदारिसण- । विगुव्विदा भूदरक्खसपिसाया ॥
खोभिज्ज जदि वि तयं । तदि वि ण सो संभमं कुणइ ॥ ४१ ॥

अर्थ— यद्यपि भयानक है दर्शन जिनका महाभयंकर अनेक विक्रिया करते भूत-राक्षस-पिशाच क्षपककै क्षोभ करै-चलायमान कीया चाहै; तोहू संभ्रम-भयकूं प्राप्त नहीं होय ॥ गाथा-

इड्ढिमतुलं विउविय । किण्णरकिंपुरिसदेवकण्णाउ ॥
लोलंते जदि वि तगं । तध वि ण सो विब्भयं जाइ ॥ ४२ ॥

अर्थ— जो कदाचित् किन्नर किंपुरुष देवकन्या मिलिकरिकै असदृश ऋद्धिकूं विक्रियाकरिकै नानाप्रकार हावभाव विलास विभ्रम रूप लावण्य प्रीति प्रेमकरि ललचावे, तोहू ते विस्मयकूं प्राप्त नहीं होय है ॥ गाथा-

सव्वो पुग्गलजाउ । दुक्खतए जदि वि तमुवणमिज्ज ॥
तध वि य तस्स ण जायदि । झाणस्स विसुत्तिया केई ॥ ४३ ॥

अर्थ— समस्त जगतके पुद्गलनिकी जाति जो दुःखरूप होय तिसका तिरस्कार करै तोहू तिस क्षपककै किंचितहू ध्यानकै विपरीतपणा नही करि सके है ॥ गाथा–

सव्वो पुग्गलकाउं । सोक्खत्ताए जदि वि तमुवणमिज्ज ॥
तध वि हु तस्स ण जायदि । झाणस्स विसुत्तिया केई ॥ ४४ ॥

अर्थ— समस्त जगतके पुद्गलसमूह जो सुख देनेरूप परिणमै, तोहू तिस क्षपकका ध्यानकै चलायमानपणा किंचितहू नही उपजे है ॥ गाथा–

सच्चित्ते साहरिदो । तत्थ उविक्खदिं वियत्तसव्वंगो ॥
उवसग्गे य पसंते । जदणाए थंडिलमुवेदि ॥ ४५ ॥

अर्थ— जो व्याघ्र सिंह दुष्टमनुष्यादिक क्षपककूं उठाय सचित्तभूमीमैं पटकि दे तो समस्त अंगतैं ममता छांडि उदासीन हुवा जिस भूमीमैं लेजाय तहांही तिष्ठै। बहुरि उपसर्ग मिटि जाय तो यत्नाचारपूर्वक सचित्तभूमीकूं छांडि सुंदर जंतुरहित निर्दोषभूमीमैं जाय तिष्ठै–उपसर्ग दूरि भये पीछै कर्दम हरितभूम्यादिक सचित्तभूमीमैं नही तिष्ठै ॥

एवं उवसग्गविधिं । परीसहविधिं च सोऽधियासंतो ॥
मणवयणकायगुत्तो । सुणिच्छिदो णिज्जिदकसाउं ॥ ४६ ॥
इहलोए परलोए । जीविदमरणे सुहे य दुक्खे य ॥

णिप्पडिवद्धो विहरदि । जिददुक्खपरिस्समो धिदिमं ॥ ४७ ॥

अर्थ— ऐसैं उपसर्गकी विधि अर परीषहनिकी विधीकूं सहता, अर मन-वचन-कायकूं गुप्तिरूप करता, अर सत्यार्थका निश्चय करता, अर कषायनिकूं जीतता, अर जीत्या है दुःखका परिश्रम जानै, अर धैर्यवान् ऐसा क्षपक है सो इसलोकके पदार्थनिमैं अर परलोकमें तथा जीवनेमें, मरणमें, सुखमें, दुःखमें कहाहू परिणामकरि नही बंधे है-आप अलिप्त रहे है ॥ गाथा-

वायणपरियट्टणपु- । च्छणाउ मोत्तूण तध य धम्मथुदिं ॥
सुत्तत्थपोरिसीसु वि । सरेदि सुत्तत्थमेयमणो ॥ ४८ ॥

अर्थ— तिस अवसरमें वाचना, परिवर्तन, पृच्छना, तथा धर्मस्तुतिकूं त्यागिकरिकै वाचना धर्मोपदेशरूप सूत्रका अर अर्थका चिंतवन करै। मरण नजीक आवते संते वाचना पृच्छना परिवर्तनका अवसर नही है। एक धर्मरूप उपदेशहीकूं स्मरण करे है॥ गाथा-

एवं अट्ठ वि जामे । अणुवट्ठो तत्थ झादि एयमणो ॥ [1]
जदि आहच्चा णिद्दा । हविज्ज सो तत्थ अपडिण्णो ॥ ४९ ॥

अर्थ— ऐसैं अष्टप्रहर शयनक्रियारहित एकाग्रमन हुवा तहां ध्यान करै। अर ज हटकरिकै निद्रा आय प्राप्त होइ तो तहां प्रतिज्ञा नही जाननी ॥ गाथा-

[1] निरस्तशयनक्रियः ॥

सज्झायकालपडिले- । हणादिकाउ ण संति किरियाउ ॥
जह्मा मसाणमज्झे । तस्स य झाणं अपडिसिध्दं ॥ २०५० ॥

अर्थ— इनि इंगिनीमरण करनेवालेके स्वाध्यायकालमें प्रतिलेखना जो भूमिशोधनादि क्रिया नही हैं। यातैं याकै स्मशानभूमीमैंहू ध्यानका निषेध नही है ॥ गाथा—

आवासयं च कुणदे । उवधोकालम्मि जं जहिं कमदि ॥ [1]
उवकरणं पडिलेहइ । उवधोकालम्मि जदणाए ॥ २०५१ ॥

अर्थ— बहुरि दोऊ कालविषैं आवश्यकक्रिया करे है। जो उपकरण पीछी है सोहू यत्नाचारकरि दोऊ कालमें सोधै—देखै—प्रतिलेखन करै ॥ गाथा—

सहसा चुक्कक्खलिदे । णिसीधियादीसु मिच्छकारो सो ॥
आसिअणिसीधियाउ । णिग्गमणपवेसणे कुणइ ॥ ५२ ॥

अर्थ— बहुरि इंगिनी नाम मरणके धारक चूकिर शीघ्रतातैं जो स्खलित होजाय गिरिजाय तो मै मिथ्या करि ऐसैं मिथ्याकार करै। बहुरि स्थान वसतिका गुफा इनमैंतैं निकसतैं तो आशिका जो आशीर्वाद देर जाय अर प्रवेश करै जब निषेधिका करै। जो, "भो स्थानके स्वामी हो! तुमारी इच्छाकरि इहां स्थिति रह्यो चाहूं हूं" ऐसैं निषेधिका करै। सो साधुका समाचारमें मिथ्याकार आशिका निषेधिका जो कही है, सो

[1] कालद्वयेऽपि ॥

समस्त क्रिया करै ॥ गाथा-

पादे कंटयमादिं । अच्छिम्मि रजादियं जदा होज्ज ॥
अच्छदि अधावधिं सो । परणीहरणे य तुण्हिक्को ॥ ५३ ॥

अर्थ— चरणनिमैं कंटकादिक प्रवेश करिजाय तथा नेत्रनिमैं रज तृणादिक जो प्रवेश करै तो आप जैसेके तैसे तिष्ठै, अन्य कोऊ आय कंटकादिक निकासै तो आप मौनी हुवा तिष्ठै-कछू कहे नही ॥ गाथा-

वेउव्वणमाहारय- । चारणखीरासवादिलद्धीसु ॥
तवसा उप्पण्णासु वि । विरागभावो ण सेवदि सो ॥ ५४ ॥

अर्थ— वैक्रियक ऋद्धि, आहारक ऋद्धि, चारण ऋद्धि, क्षीरास्रावी इत्यादिक ऋद्धि तपके प्रभावकरि उत्पन्न होतेहू ये वीतरागभावके धारक ऋद्धिनिकूं नही सेवन करे हैं ॥

मोणाविग्गहणिरदो । रोगादंकादिवेदणाहेदुं ॥
ण कुणदि पडिकारं सो । तहेव तण्हाछुहादीणं ॥ ५५ ॥

अर्थ— मौनव्रतकूं धारता साधु जो रोगकी वेदना मेटनेके अर्थि तथा तृष्णा क्षुधादिकके मेटनेके अर्थि प्रतीकार जो इलाज सो नही करे है ॥ गाथा-

उवएसो पुण आयरि- । याणं इंगिणिगदोऽवि छिण्णकधो ॥

देवेहिं माणुसेहिं व। पुट्ठो धम्मं कधेदित्ति ॥ ५६ ॥

अर्थ— वहुरि आचार्यनिको यो उपदेश है। जो इंगिनी नाम संन्यासकूं प्राप्त भया मुनि कथा आलाप नहीं करै, तोहू देव मनुष्य धर्मकथा पूछे तो धर्म कहे है ॥

एवसधक्खादविधिं। साधित्ता इंगिणिं धुदकिलेसा ॥
सिज्झंति केइ केई। हवंति देवा विमाणेसु ॥ ५७ ॥

अर्थ— केई मुनि तो ऐसैं यथाख्यातचारित्रविधिकरि इंगिनीमरणकूं साधिकरिकै उडाये हैं क्लेश जिनूनैं ऐसे सिद्ध होय हैं। अर केई मुनि विमाननिमैं कल्पवासी तथा अहमिंद्र होय हैं। गाथा—

एवं इंगिणिमरणं। वाससमासेण वण्णिदं विधिणा ॥
पाउवगमणमित्तो। समासदो चेव वण्णेसिं ॥ ५८ ॥

अर्थ— ऐसैं इंगिनीमरणकूं। विधिकरिकैं विस्तारकरिकैं तथा संक्षेपकरिकैं वर्णन कीया ॥ अब आगैं संक्षेपतैं प्रायोपगमनमरणकूं वर्णन करूंगा ॥

इति भगवती आराधनाग्रंथविषैं पंडितमरणका दूसरा भेद जो इंगिनी, ताहि चोतीस गाथानिमैं वर्णन कीया ॥ अब पंडितमरणका तीजा भेद जो प्रायोपगमन, ताहि नव गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

पाउँवगमणमरण- । स्स होदि सो चेव उक्कमो सव्वो ॥
वुत्तो इंगिणिमरण- । स्स उक्कमो जो सवित्थारो ॥ ५९ ॥

अर्थ-- इंगिनीमरणकी जो विधि विस्तारसहित कही, सोही समस्तविधि प्रायोपगमन मरणकी होइ है गाथा-

णवरिं तणसंथारो । पाउँवगदस्स होदि पडिसिद्धं ॥
आदपरपउँगेण य । पडिसिद्धं सव्वपरियम्मं ॥ २०६० ॥

अर्थ— प्रायोपगमनमें इंगिनीतैं इतना विशेष है- इंगिनीमरणमें तो तृणनिका संस्तर है अर अपना वैयावृत्य उठना बैठना सोवना चालना आपका आप करे है। अर प्रायोपगमनमें तृणमय संस्तरहू नही अर अपना समस्त प्रतीकार आप करै नहीं, अन्यकरि करावे नही है ॥ गाथा-

सो सल्लेहिददेहो । जम्हा पाउँवगमणमुवयादि ॥
उच्चारादिविकिंचण- । मवि णत्थि पउँगदो तम्हा ॥ ६१ ॥

अर्थ— जातैं सम्यक् कीया है शरीरका कृशपणा जानै ऐसा साधु प्रायोपगमनसंन्यासकूं प्राप्त होय है, तातैं अपने प्रयोगतैं मलमूत्रादिकहू नही करे है ॥ गाथा-

पुढवीआऊतेउँ- । पणप्फदितसेसु जदि वि साहरिदो ॥

वोसट्टचत्तदेहो । अधाउगं पालए तत्थ ॥ ६२ ॥

अर्थ-- जो कोऊ दुष्ट खैंचिकरि पृथ्वीमैं जलमैं अग्नीमैं वनस्पतिमैं त्रसनिमैं पटाकि दे तो वहांही छोड्या है देहमैं ममता जिननैं ऐसा तहांही मरणपर्यंत तिष्ठि आयुकूं तहांही पूर्ण करै ॥ गाथा-

मज्जणयगंधपुप्फो- । वयारपडिचारणा विकीरंतो ॥
वोसट्टचत्तदेहो । अधाउगं पालए तध वि ॥ ६३ ॥

अर्थ— जो कोऊ अभिषेक करै वा सुगंधपुष्पादिककरि पूजा स्तवन करै तोहू त्याग्या है देहतैं ममता जानैं ऐसा रागी द्वेषी नही होय है-आयुपर्यंत तैसैंही पूर्ण करै है॥ गाथा-

वोसट्टचत्तदेहो । दु णिखेविज्ज जहिं जधा अंगं ॥
जावज्जीवं तु सयं । तहिं तमंगं न चालेदि ॥ ६४ ॥

अर्थ— छोड्या है देह जानैं ऐसा प्रायोपगमनका धारी जिस क्षेत्रमैं जैसैं अंग पडि गया, तैसैं यावज्जीव पड्या रहै-स्वयं अपने अंगकूं चलावै हलावै नही है। जैसैं कोऊ सूका काठ वा मृतकका शरीर तैसैं अचल तिष्ठै ॥ गाथा-

एवं णिप्पडियम्मं । भणंति पाउंवगमणमरहंता ॥
णियमा अणिहारं तं । सिया य णीहारमुवसग्गे ॥ ६५ ॥

अर्थ— ऐसैं स्वपरकृत प्रतीकाररहित प्रायोपगमनकूं अरहंत भगवान् कह्या है सो शरीर नियमतैं उपसर्गविना तो अनाहार कहिये अचल है अर उपसर्गविषैं मनुष्य तिर्यंच देवादिक चलायमान करे हैं तदि चल होय है ॥ गाथा--

उवसग्गेण वि साहरि- । दो सो अण्णत्थ कुणदि जं कालं ॥
तह्मा वुत्तं णीहा- । रमदो अण्णं अणीहारं ॥ ६६ ॥

अर्थ— उपसर्गकरिकै हरण कीया हुवा सो साधु अन्यक्षेत्रमें काल करे है, तातैं याकूं नीहार कहिये हैं । यातैं अन्यरीति उपसर्गविना चलायमान नही होय तातैं अनाहार है

पडिमापडिवण्णा वि हु । करंति पाउँवगमणमप्पेगे ॥
दीहध्दं विहरंता । इंगिणिमरणं च अप्पेगे ॥ ६७ ॥

अर्थ— जिनके आयुका अवशेषकाल अति अल्प रहि गया ऐसे केतेक साधु तो प्रतिमायोग धारण करता प्रायोपगमनसंन्यासकूं करे हैं । कितने वहुतकाल प्रवर्तन करते इंगिनीमरणकूं प्राप्त होय हैं

इति भगवती आराधनाविषैं पंडितमरणके तीन भेदनिमैं प्रायोपगमन नाम तीसरे मरणका नव गाथानिमैं वर्णन कीया ॥ अब पंडितमरणमें प्रायोपगमनमरणकरि जे आत्मकल्याण कीया, तिनका छह गाथानिमैं वर्णन करे हैं ॥ गाथा--

आगाढे उवसग्गे । दुब्भिक्खे सव्वदोऽवि दुत्तारे ॥
कदजोगिसमधियासिय । कारणजादेहि वि मरंति ॥ ६८ ॥

अर्थ---- समस्तप्रकारतैं दुस्तर कहिये पार नहीं हुया जाय ऐसा दृढ महान् उपसर्ग आवतै तथा दुर्भिक्ष आवतै तथा ओरहू मरणका कारण होतें कीया है ध्यान जानैं ऐसा योगी प्रायोपगमनसंन्यासकरि मरण करे है ॥ तिनहीका उदाहरण कहे हैं ॥ गाथा--

कोसलय धम्मसीहो । अट्ठं साधेदि गिद्धपुच्छेण ॥
णयरम्मि य कुल्लगिरिं । चंदसिरिं विप्पजहिदूण ॥ ६९ ॥

अर्थ---- कोशलनगरविषैं कुलगिरिपर्वतमें धर्मसिंह नामा चंद्रश्री नाम स्त्रीकूं त्यागि-करिकै गृद्धपिच्छकरिकै अपना आत्म अर्थ साध्या ॥ गाथा--

पाडलिपुत्ते धूदा- । हेदुं मामयकदम्मि उवसग्गे ॥
साधेदि उसभसेणो । अट्ठं वेघाणसं किच्चा ॥ २०७० ॥

अर्थ---- पटना नाम नगरविषैं पुत्रीके अर्थि मामाका कीया उपसर्ग सहिकरि, वृष-भसेन नामा अपना आतमका अर्थ जो आराधनाकी पूर्णता, ताहि करी ॥ गाथा--

अहिमा(सा)रएण णिव्वदि- । म्मि मारिदे गहिदसमणलिंगेण ॥
उड्डाहपसमणत्थं । सत्थग्गहणं अकासि गणी ॥ ७१ ॥

अर्थ— अहिमारक नाम चोर मुनिका लिंग धारणकरि राजाकूं मारते संते संघका स्वामी गणी जो आचार्य सो समस्तसंघका उपद्रव दूरि करनेके अर्थि वा संघका तथा धर्मका अपवाद दूरि करनेके अर्थि आप शस्त्रग्रहण करत भया ॥ गाथा—

सगडालएण वि तधा । सत्थग्गहणेण साधिदो अत्थो ॥
वररुइपउगहेदुं । रुट्ठे णंदे महापउगे[1] ॥ ७२ ॥

अर्थ— वररुचिका प्रयोगके अर्थि नंद नामा राजाकूं रोषरूप होते शकडाल नामाभी शस्त्रग्रहणकरिकैंहू अपना आराधनारूप अर्थकूं साध्या ॥ गाथा—

एवं पंडिदमरणं । सवियप्पं वण्णिदं सवित्थारं ॥
वुच्छामि वालपंडिद- । मरणं एत्तो समासेण ॥ ७३ ॥

अर्थ— ऐसैं पंडितमरण अपने भेद जे भक्तप्रत्याख्यान इंगिनी प्रायोपगमन तिनकरि सहित विस्तारकरि वर्णन कीया ॥ अब आगै संक्षेपकरि वालपंडितमरणकूं कहूं ॥ इति भगवती आराधना नाम ग्रंथविषैं पंडितमरणका वर्णन कीया ॥ ८ ॥ अब वालपंडितमरण देशव्रती श्रावककै होय है तिसकूं दश गाथानिमैं वर्णन करिये हैं ॥

देसिक्कदेसविरदो । सम्मादिट्ठी मरिज्ज जो जीवो ॥
तं होदि वालपंडिद- । मरणं जिणसासणे दिट्ठं ॥ ७४ ॥

[1] महापउमो इत्यपि

अर्थ— जो एकदेशविरत सम्यग्दृष्टि जीव मरण करे है, सो जिनेंद्रका शासनमें बालपंडितमरण कह्या हैं ॥ इहां ऐसा विशेष जानना– जो सम्यग्दर्शन ग्रहण करिकै पंचपापनिका एकदेश त्याग करे है, सो देशव्रती नाम पावे है । तिस देशव्रतमें ग्यारह स्थान हैं, तिनका ऐसा संक्षेप जानना– प्रथम तो सम्यग्दृष्टि होइ । मिथ्यादृष्टि जीवकै देशव्रत नही होइ है । सो सम्यग्दर्शन तीनप्रकार है । उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक । तिनमैं अनादिमिथ्यादृष्टि जीवकै पहली उपशमसम्यक्त्वही होय है, अर मिथ्यात्व छूटि उपशमसम्यक्त्व होइ, ताकूं प्रथमोपशमसम्यक्त्व कहिये हैं । सोही लब्धिसार नामा सिद्धांतमैं कह्या है ॥ गाथा–

चदुगदिमिच्छो सण्णी । पुण्णो गब्भजविसुद्धसागारो ॥
पढमुवसम्मं गिण्हदि । पंचमवरलद्धिचरिमम्मि ॥ १ ॥

अर्थ— सम्यग्दर्शन होय है सो च्यारों गतिहीमैं अनादिमिथ्यादृष्टि वा सादिमिथ्यादृष्टि संज्ञी पर्याप्त गर्भज मंदकषायी गुणदोषका विचाररूप साकार जो ज्ञानोपयोगयुक्तकै पंचमी करणलब्धीका उत्कृष्ट जो अनिवृत्तिकरण तिसका अंतसमयविषैं प्रथमोपशमसम्यक्त्व होय है, बहुरि जागृतकै होय है तथा भव्यहीकै होय है । जातैं मिथ्यात्वगुणस्थानतैं छूटि उपशमसम्यक्त्वग्रहण होइ, ताका नाम प्रथमोपशम है । अर

उपशमश्रेणीकी आदिमैं क्षयोपशमसम्यक्त्वतैं उपशमसम्यक्त्व होइ, सो द्वितीयोपशम है। तातैं प्रथमोपशमसम्यक्त्वकूं मिथ्यादृष्टिहि ग्रहण करे है। अर प्रथमोपशमसम्यक्त्व असंज्ञी अपर्याप्त सन्मूर्छनकै नहीं होय है, सूतेकै नहीं होय है ॥ बहुरि प्रथमोपशम सम्यक्त्व होनेतैं पहलै मिथ्यादृष्टिगुणस्थानविषैं पंचलब्धि होइ हैं, तिनका संक्षेपतैं वर्णन करिये हैं ॥ गाथा—

> खयउवसमियविसोही। देसणपाउँगकरणलद्धी य ॥
> चत्तारि वि सामण्णा। करणं सम्मत्तचारित्ते ॥ २ ॥

अर्थ— १ क्षयोपशम, २ विशुद्धि, ३ देशना, ४ प्रायोग्य, ५ करण ये पंच लब्धि हैं। तिनमैं आदिकी च्यारि लब्धि तो सामान्य हैं—भव्य अभव्य दोऊनिकै होजाइ हैं। अर करणलब्धि भव्यहीकै सम्यक्चारित्रकूं साध्य होत संतै होइ है ॥ गाथा—

> कम्ममळपडळसत्ती-। पडिसमयमणंतगुणविहीणकमा ॥
> होदूणुदीरदि जदा। तदा खउँवसमियलद्धी दु ॥ ३ ॥

अर्थ— कर्मनिविषैं मल जो अप्रशस्त ज्ञानावरणादिक तिनका समूहकी शक्ति जो अनुभाग, सो जिस कालविषैं समयसमयप्रति अनंतगुणा घटता अनुक्रमकरि उदय होइ, तिस कालविषैं क्षयोपशमलब्धि हो है। जातैं उत्कृष्ट अनुभागका अनंतवा

भागमात्र जे देशघातिस्पर्द्धक तिनका उदय होतें भी उत्कृष्ट अनुभागका अनंत बहुभागमात्र जे सर्वघातिस्पर्द्धक तिनके उदयका अभाव सो तो क्षय, अर तेई सर्वघातिस्पर्द्धक जे उदय अवस्थाकूं नही प्राप्त भये, तिनकी सत्तामें अवस्था सो उपशम तिनकी प्राप्ति सो क्षयोपशमलब्धि जाननी ॥ गाथा-

आदिमलद्धिभवो जो। भावो जीवस्स सादपहुदीणं ॥
सत्ताणं पयडीणं। बंधणजोग्गो विसुद्धिलध्दी सो ॥ ४ ॥

अर्थ— पहली जो क्षयोपशमलब्धि तातें उपज्या जो जीवके सातादिक प्रशस्त बंध करनेको कारण धर्मानुरागरूप शुभपरिणाम होइ, ताकी जो प्राप्ति सो विशुद्धि लब्धि है, सो ठीकही है, अशुभकर्मका अनुभाग घटै संक्लेशताकी हानि अर ताका प्रतिपक्षी विशुद्धि ताकी वृद्धि होनी युक्तही है ॥ गाथा-

छद्दवणवपयत्थो-। वदेसयरसूरिपहुदिलाहो जो ॥
देसिदपदत्थधारण-। लाहो वा तदियलद्धी दु ॥ ५ ॥

अर्थ— छह द्रव्य नव पदार्थनिकूं उपदेश करनेवाले आचार्यादिकका लाभ तिनके उपदेशकी प्राप्ति अथवा उपदेशित पदार्थके धारनेकी प्राप्ति, सो तीसरी देशनालब्धि है। तु शब्दकरि नरकादिकविषैं जहां उपदेश देनेवाला नही तहां पूर्वभवविषैं

धाऱ्या हुवा तत्त्वार्थके संस्कारका बलतैं सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति जाननी ॥ गाथा—

अंतोकोडाकोडी-। विट्ठाणे ठिदिरसाण जं करणं ॥
पाउग्गलद्धि णामा। भव्वाभव्वेसु सामण्णा ॥ ६ ॥

अर्थ— पूर्वोक्त तीन लब्धिसंयुक्त जे जीव समयसमय विशुद्धताकरि वर्द्धमान होत संते आयुविना सात कर्मनिकी अंतःकोटाकोटी सागरमात्र स्थिति अवशेष राखै तिस कालविषैं जो पूर्वैं स्थिति थी, ताको एक कांडक घातकरि छेदि तिस कांडकके द्रव्यको अवशेष रही स्थितिविषैं निक्षेपण करे है। बहुरि घातियानिका लता-दारुरूप अघातियानिका निंब-कांजीररूप द्विस्थानगत अनुभाग इहां अवशेष रहे है। पूर्वैं अनुभाग था ताकै अनंतका भाग दीये बहुभागमात्र अनुभागकूं छेदि अवशेष रह्या अनुभागविषैं प्राप्त करे है तिस कार्य करनेकी योग्यता (प्रायोग्य) लब्धि है। सो भव्यकै वा अभव्यकैभी समान होहै ॥ गाथा—

जेट्ठवरट्ठिदिबंधो। जेट्ठवरट्ठिदितियाण सत्ते य ॥
ण य पडिवज्जदि पढमुव-। समसम्मं मिच्छजीवो हु ॥ ७ ॥

अर्थ— संक्लेशी संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्तकै संभवता ऐसा उत्कृष्ट स्थितिबंध अर उत्कृष्ट स्थिति-अनुभाग-प्रदेशका सत्त्व बहुरि विशुद्ध क्षपकश्रेणीके माँहि संभवता ऐसा जघन्य

स्थितिबंध अर जघन्य स्थिति–अनुभाग–प्रदेशका सत्त्व इनको होतैं जीव प्रथमोपशम-सम्यक्त्वकूं नहीं ग्रहण करे है ॥ गाथा–

सम्मत्ताहिमुहमिच्छो । विसोहिवड्ढीहि वड्ढमाणो हु ॥
अंतोकोडाकोडिं । सत्तण्हं बंधणं कुणइ ॥ ८ ॥

अर्थ— प्रथमोपशमसम्यक्त्वकै सन्मुख भया मिथ्यादृष्टि जीव सो विशुद्धिताकी वृद्धिकरि वर्द्धमान होत संतै प्रायोग्यलब्धिका प्रथमसमयतैं लगाय पूर्वस्थितिके संख्यातवैं भागमात्र अंतःकोटाकोटी सागरप्रमाण आयुविना सातकर्मकी स्थितिबंध करे है ॥

तत्तो उदधिसदस्स य । पुधत्तमेत्तं पुणो पुणोदरिय ॥
बंधम्मि पयडिबंधु- । च्छेदपदा होंति चोत्तीसा ॥ ९ ॥

अर्थ— तिस अंतःकोटाकोटीसागर स्थितिबंधतैं पल्यका संख्यातवा भागमात्र घटता स्थितिबंध अंतर्मुहूर्तपर्यंत समानता लीए करै। बहुरि तातैं पल्यका संख्यातवा भागमात्र घटता स्थितिबंध अंतर्मुहूर्तपर्यंत करै। ऐसैं क्रमतैं संख्यात स्थितिबंधापसरणनिकरि पृथक्त्व सौ सागर घटे पहला प्रकृतिबंधापसरणस्थान होइ। बहुरि तिसही क्रमतैं तिसतैंभी पृथक्त्व सौ सागर घटै दूसरा प्रकृतिबंधापसरणस्थान होइ। ऐसैंही इसही क्रमतैं इतना स्थितिबंध घटै एक एक स्थान होइ। ऐसैं प्रकृतिबंधापसरणके चोतीस स्थान

कसमयमें एकही परिणाम होय है। नानाजीवनिकी अपेक्षा एकसमयके योग्य संख्यातपरिणाम हैं। ते अपूर्वकरणके परिणामभी समयसमय सदृश चयकरि वर्द्धमान हैं। जातैं उपरले समयसंबंधी परिणाम हैं ते नीचले समयसंबंधी परिणामनितैं समान नही हैं। प्रथमसमयकी उत्कृष्टविशुद्धतातैंहू द्वितीय समयसमयसंबंधी जघन्यविशुद्धताभी अनंतगुणी है। ऐसैं परिणामनिका अपूर्वपणा है, तातैं दूसरा करणकूं अपूर्वकरण कह्या है ॥

दूसरे करणका प्रथमसमयतैं लगाय अंतसमयपर्यंत अपने जघन्यतैं अपना उत्कृष्ट अर पूर्वसमयके उत्कृष्टतैं उत्तरसमयका जघन्यपरिणाम क्रमतैं अनंतगुणी विशुद्धता लीये सर्पकी चालवत् जानने। इहां अनुकृष्टि नाही है। अपूर्वकरणके पहले समयतैं लगाय यावत्सम्यक्त्वमोहनी मिश्रमोहनीका पूर्ण काल जो जिस कालविषैं गुणसंक्रमण करि मिथ्यात्वको सम्यक्त्वमोहनी मिश्रमोहनीरूप परिणमावे है, तिस कालका अंतसमयपर्यंत १ गुणश्रेणी, २ गुणसंक्रमण, ३ स्थितिखंडन, ४ अनुभागखंडन ये च्यारि आवश्यक होहैं ॥ बहुरि स्थितिबंधापसरण है सो अधःकरणका प्रथमसमयतैं लगाय तिस गुणसंक्रमण पूर्ण होनेका कालपर्यंत होहै ॥

यद्यपि प्रायोग्यलब्धितैंही स्थितिबंधापसरण होय है, तथापि प्रायोग्यलब्धीके

अधःप्रवृत्तिकरण है। अधःकरण मांडें कोई जीवको स्तोक काल भया कोईको बहुत काल भया, तिनके परिणाम इस करणविषैं संख्या वा विशुद्धताकरि समानभी होहै ऐसा जानना, तातैं याको अधःकरण कहिये हैं ॥

वहुरि अधःप्रवृत्तिकरणके परिणामनिके प्रभावतैं समयसमयप्रति अनंतगुणी विशुद्धिताकी वृद्धि होय है। वहुरि स्थितिबंधापसरण होय है। पूर्वै जेता प्रमाण लीये कर्मनिका स्थितिबंध होता था, तातैं घटाइ घटाइ स्थितिबंध करे है। वहुरि सातावेदनीयको आदि देकरि प्रशस्त कर्मप्रकृतिनिका समयसमय अनंतगुणां अनंतगुणां वधता गुड खंड शर्करा अमृतसमान चतुःस्थान लीए अनुभागबंध होहै ॥ वहुरि असातावेदनीय आदि अप्रशस्त कर्मप्रकृतिनिका अनंतगुणां अनंतगुणां घटता निंब·कांजीरसमान द्विस्थान लीये अनुभागबंध होहै। विषहलाहलरूप नही होइ है। ऐसैं अधःकरणके परिणामनितैं च्यारी आवश्यक होइ हैं। अधःकरणका अंतर्मुहूर्त काल व्यतीत भये दूसरा अपूर्वकरण होइ है। अधःकरणके परिणामनितैं अपूर्वकरणके परिणाम असंख्यातलोकगुणे हैं, सो नानाजीवनिकी अपेक्षा है। एकजीवकी अपेक्षा एकसमयमें एकही परिणाम होइ है। तातैं एकजीवकी अपेक्षा जेते अपूर्वकरणके अंतर्मुहूर्तकालके समय हैं तेते परिणाम हैं। ऐसैंही अधःकरणके भी एकजीवके

एकसमयमें एकही परिणाम होय है। नानाजीवनिकी अपेक्षा एकसमयके योग्य असंख्यातपरिणाम हैं। ते अपूर्वकरणके परिणामभी समयसमय सदृश चयकरि-वर्द्धमान हैं। जातैं उपरले समयसंबंधी परिणाम हैं ते नीचले समयसंबंधी परिणा मनितैं समान नही हैं। प्रथमसमयकी उत्कृष्टविशुद्धतातैंहू द्वितीय समयसमयसंबंधी जघन्यविशुद्धताभी अनंतगुणी है। ऐसैं परिणामनिका अपूर्वपणा है, तातैं दूसरा करणकूं अपूर्वकरण कह्या है ॥

दूसरे करणका प्रथमसमयतैं लगाय अंतसमयपर्यंत अपने जघन्यतैं अपना उत्कृष्ट अर पूर्वसमयके उत्कृष्टतैं उत्तरसमयका जघन्यपरिणाम क्रमतैं अनंतगुणी विशुद्धता लीये सर्पकी चालवत् जानने। इहां अनुकृष्टि नाही है। अपूर्वकरणके पहले समयतैं लगाय यावत्सम्यक्त्वमोहनी मिश्रमोहनीका पूर्ण काल जो जिस कालविषैं गुणसंक्रमण करि मिथ्यात्वको सम्यक्त्वमोहनी मिश्रमोहनीरूप परिणमावे है, तिस कालका अंतसमयपर्यंत १ गुणश्रेणी, २ गुणसंक्रमण, ३ स्थितिखंडन, ४ अनुभागखंडन ये च्यारि आवश्यक होहैं ॥ बहुरि स्थितिबंधापसरण है सो अधःकरणका प्रथमसमयतैं लगाय तिस गुणसंक्रमण पूर्ण होनेका कालपर्यंत होहै ॥

यद्यपि प्रायोग्यलब्धितैंही स्थितिबंधापसरण होय है, तथापि प्रायोग्यलब्धीके

सम्यक्त्व होनेका अनवस्थितपना है, नियम नांही, तातैं नही ग्रहण कीया। बहुरि स्थितिबंधापसरण काल अर स्थितिकांडकोत्करणकाल ये दोऊ समान अंतर्मुहूर्तमात्र हैं। तहां पूर्वैं बांध्या था ऐसा सत्तामैं कर्मपरमाणुरूप द्रव्य तामैंसूं काटि जो द्रव्य गुणश्रेणी-विषैं दीया ताका गुणश्रेणीका कालमैं समयसमयप्रति असंख्यातगुणां असंख्यातगुणां अनुक्रम लीए पंक्तिबंध जो निर्जराका होना, सो गुणश्रेणिनिर्जरा है ॥ १ ॥

बहुरि समयसमयप्रति गुणकारका अनुक्रमतैं विवक्षितप्रकृतिके परमाणू पलटिकरि अन्यप्रकृतिरूप होइ परिणमे, सो गुणसंक्रमण है ॥ २ ॥ बहुरि पूर्वैं बांधी थी सत्तारूप कर्मप्रकृतिनिकी स्थिति तिसका घटावना, सो स्थितिखंडन है ॥ ३ ॥ बहुरि पूर्वैं बांध्या था ऐसा सत्तारूप अप्रशस्त कर्मप्रकृतिनिका अनुभाग ताका घटावना, सो अनुभाग-खंडन कहिये ॥ ४ ॥ ऐसैं च्यारि कार्य अपूर्वकरणविषैं अवश्य होइ हैं ॥ अपूर्वकरणके प्रथमसमयसंबंधी प्रशस्तअप्रशस्त प्रकृतिनिका जो अनुभागसत्त्व है, तातैं ताके अंतस-मयविषैं प्रशस्तनिका अनंतगुणां वधता अर अप्रशस्तनिका अनंतगुणां घटता अनुभा-गसत्त्व होहै ॥ इहां समयसमयप्रति अनंतगुणी विशुद्धता होनेतैं प्रशस्तप्रकृतिनिका अनंतगुणां अर अनुभागकांडकघातका माहात्म्यकरि अप्रशस्तप्रकृतिनिका अनंतवै भाग अनुभाग अंतसमयविषैं संभवे है। इन स्थितिखंडादिक होनेके विधानका कथन

बहुतविस्तारसहित लब्धिसार ग्रंथतैं जानना। इहा नाममात्र प्रकरणके वशतैं जनाया है॥

बहुरि दूसरा अपूर्वकरणविषैं कहे स्थितिखंडादिक कार्यविशेषतैं तीसरा अनिवृत्तिकरणविषैंभी जानने। विशेष इतना– इहां समानसमयवर्ती नानाजीवके सदृश परिणाम हैं। जातैं जितने अनिवृत्तिकरणके अंतर्मुहूर्तके समय हैं, तितनेही अनिवृत्तिकरणके परिणाम हैं। तातैं नाहीं है निवृत्ति कहिये परस्पर परिणामनिमैं भेद जिनकै ते अनिवृत्तिकरण हैं। तातैं समयसमयप्रति एकएक परिणामही है॥ बहुरि इहां औरही प्रमाण लीए स्थितिखंड अनुभागखंड स्थितिबंधका प्रारंभ हो है। जातैं अपूर्वकरणसंबंधी जे स्थितिखंडादिक तिनका ताके अंतसमयविषैंही समाप्तपना भया। इहां अंतरकरणादिक विधि है सो श्रीलब्धिसारग्रंथमें है। इहां प्रयोजन ऐसा है– जो, अनिवृत्तिकरणके अंतसमयविषैं दर्शनमोह अर अनंतानुबंधी चतुष्क इनके प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभागनिका समस्तपनै उदय होनेके अयोग्यरूप उपशम होनेतैं तत्त्वार्थके श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शनकूं पाय औपशमिक सम्यग्दृष्टि होइ है। तहां प्रथमसमयविषैं द्वितीयस्थितिविषैं तिष्ठता मिथ्यात्वद्रव्यकूं स्थितिकांडक अनुभागकांडक घातविना गुणसंक्रमणका भाग देइ मिथ्यात्व मिश्र सम्यक्त्वमोहनीयरूपकरि तीन प्रकार करे है। एक दर्शनमोहका द्रव्य तीन शक्तिरूप न्यारे न्यारे होई तिष्ठै है॥ ऐसैं मिथ्यादृष्टीके

सम्यक्त्व होनेका कारण पंच लब्धिनिका संक्षेपतें वर्णन जनाया ॥

इस उपशमसम्यक्त्वका जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त काल है। उपशमसम्यक्त्वका काल पूर्ण भये पीछे नियमतें तीन दर्शनमोहकी प्रकृतिनिविषें एकका उदय होइ। तहां जो सम्यक्त्वमोहनीयका उदय होतें उपशमसम्यक्त्वतें छूटि जीव वेदकसम्यग्दृष्टि होय है, सो सम्यक्त्वमोहनीयका उदयतें वेदकसम्यग्दृष्टि चल-मल-अगाढरूप तत्वको श्रद्धान करे है। सम्यक्त्वमोहनीयके उदयतें श्रध्दानविषें चलपना होय है, तथा मल जो अतिचार सो लागे है, वा शिथिल श्रध्दान रहे है, इस वेदकसम्यक्त्वहीकूं क्षयोपशमसम्यक्त्व कहिये है। जातें दर्शनमोहके सर्वघातिस्पर्धकनिका उदयका अभावरूप है लक्षण जाका ऐसा क्षय होतें अर देशघातिस्पर्द्धकरूप सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होतें बहुरि तिस सम्यक्त्वमोहनीयके वर्तमानसमयसंबंधीतें ऊपरिके निषेक उदयकूं न प्राप्त भये तिनसंबंधी स्पर्धकनिका सत्तामें अवस्थारूप है लक्षण जाका ऐसा उपशम होतें वेदकसम्यक्त्व होय है। तातें याहीका दूसरा नाम क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है, भिन्न नहीं है। बहुरि उपशमसम्यक्त्वका अंतर्मुहूर्तकाल वीते पाछे मिश्र जो सम्यङ्मिथ्यात्वप्रकृतिका उदय होइ जाय तो तत्व अतत्व दोऊनिकूं एककाल श्रद्धान करता मिश्रगुणस्थानी होय है। अर मिथ्यात्वका उदय होय जाय तो मिथ्यादृष्टि-विपरीतश्रध्दानी होय है॥

जैसैं ज्वरकरि पीडित पुरुषकूं मिष्टभोजन नहीं रुचै, तैसैं ताकूं धर्म जो अनेकांतरूप वस्तूका स्वभाव तथा रत्नत्रयरूप मोक्षका मार्ग सो रुचै नहीं है ॥

अर जो उपशमसम्यक्त्वके अंतर्मुहूर्तकालमें जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली अवशेष रहे च्यारिप्रकार अनंतानुबंधीमैंतैं कोई एक क्रोधको वा मानको वा मायाको वा लोभको उदय होय तो सम्यक्त्वतैं छूटि सासादन नाम पावै, सो जघन्य एकसमय उत्कृष्ट छह आवलीप्रमाण काल सासादन नाम पाइ नियमतैं मिथ्यादृष्टि होय है। ऐसैं उपशमसम्यक्त्वका अंतर्मुहूर्तकाल पूर्ण भये पीछे सम्यक्त्वमोहनीयका उदय होय तो क्षायोपशमसम्यक्त्वी होय, अर मिश्रप्रकृतिका उदय होय तो मिश्रगुणस्थानी होय अर मिथ्यात्वका उदय होतैं मिथ्यात्वी नियमतैं होइ है ॥

अब क्षायिकसम्यक्त्व होनेका संक्षेप कहे हैं। जातैं दर्शनमोहकी क्षपणाका आरंभ करै सो कर्मभूमीका मनुष्य करै—भोगभूमीका मनुष्य नहीं करै, वा समस्त देव नारकी तिर्यंचनिकै क्षायिकसम्यक्त्वका प्रारंभ नहीं होय। अर जो कर्मभूमीका मनुष्य आरंभ करै सो तीर्थंकर वा अन्य केवली वा श्रुतकेवलीके पादमूलविषैं तिष्ठता होइ सो दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका आरंभ करे है। जातैं केवली श्रुतकेवलीकी निकटताविना ऐसी विशुद्धता नहीं होइ है। अधःकरणका प्रथमसमयसूं लगाय यावत् मिथ्यात्व मिश्र

मोहनीयका द्रव्य सम्यक्त्वप्रकृतिरूप होइ संक्रमण करै तावत् अंतर्मुहूर्तकालपर्यंत दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारंभक कहिये तिस प्रारंभक कालके अनंतरवर्ती समयतैं लगाय क्षायिकसम्यक्त्व ग्रहणके प्रथमसमयतैं पहलै निष्ठापक हो है। सो जहां प्रारंभ कीया था तहांही वा सौधर्मादिकल्प वा कल्पातीतविषैं वा भोगभूमीके मनुष्यतिर्यंचविषैं वा धर्मा नाम नरकपृथ्वीविषैं निष्ठापक होइ है। जातैं पूर्वै बांधी है आयु जानै ऐसा कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टि मरि च्यारयों गतिविषैं उपजे है, तहां क्षपणाकूं पूर्ण करे है ॥

अब अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ अर दर्शनमोहनीय इनकी कैसी क्षपणा होइ सो कहे हैं– कोऊ वेदकसम्यग्दृष्टि असंयत वा देशसंयत वा प्रमत्त वा अप्रमत्त इनिमैंतैं एक गुणस्थानमें तिष्ठता पूर्वै तीन करणकी विधिकरिकै अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभके उदयावलीमें तिष्ठते निषेकनिकूं छोडि अर उदयावलीवारै उपरितन स्थितिमैं तिष्ठते समस्त निषेकनिकूं विसंयोजन करता अनिवृत्तिकरणके अंतके समयविषैं समस्त अनंतानुबंधीके द्रव्यकूं द्वादश कषाय अर नव नोकषायरूप परिणमन करावे है, सो अनंतानुबंधीका विसंयोजन है। इहांहू विसंयोजनमें गुणश्रेणी अर स्थितिकांडघातादिक बहुत विधि हैं। अनंतानुबंधीका विसंयोजन कीये पीछै अंतर्मुहूर्त काल विश्राम करि अन्यक्रिया नहीं करी। ता पीछै बहुरि तीन करणनिकरि

अनिवृत्तिकरणका कालविषैं मिथ्यात्व मिश्र सम्यक्त्वमोहनीयको क्रमतैं नष्ट करे है ॥ सो इन करणनिके सामर्थ्यतैं जो जो कर्मनिका स्थिति–अनुभागनिका घात होनेका विधान है, सो श्रीलब्धिसारतैं जानहू ॥ ऐसैं सप्तप्रकृतिनिकूं नष्ट करि क्षायिकसम्यक्त्वी होय है। ऐसैं तीनप्रकार सम्यक्त्व होनेका विधान अतिसंक्षेपतैं वर्णन कीया ॥

अनंतानुबंधी ४, मिथ्यात्व १, सम्यङ्मिथ्यात्व १, सम्यक्त्व १ इन सात प्रकृतिनिका उपशमतैं उपशमसम्यक्त्व होइ अर इन सप्तप्रकृतिनिके क्षयतैं क्षायिकसम्यक्त्व होय है ॥ बहुरि अनंतानुबंधी कषायनिका अप्रशस्त उपशमको होतैं अथवा विसंयोजन होतैं बहुरि दर्शनमोहका भेद जो मिथ्यात्वकर्म अर सम्यङ्मिथ्यात्वकर्म इन दोऊनिकूं प्रशस्त उपशमरूप होतैं वा अप्रशस्त उपशम होतैं वा क्षय होनेके सन्मुख होतैं बहुरि सम्यक्त्वप्रकृतिरूप देशघातिस्पर्द्धकनिका उदय होतैंही जो तत्त्वार्थका श्रद्धान है लक्षण जाका ऐसा सम्यक्त्व होइ सो वेदक ऐसा नाम धारक है। जहां विवक्षित प्रकृति उदय आवनेजोग्य नहीं होइ अर स्थिति अनुभाग घटने वधने वा संक्रमण होनेयोग्य होइ तहां अप्रशस्तोपशम जानना। बहुरि जहां उदय आवनेयोग्य नहीं होइ अर स्थिति अनुभाग घटने वधने वा संक्रमण होनेयोग्यभी नहीं होइ तहां प्रशस्तोपशम जानना। बहुरि तिहां सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होतैं देशघातिस्पर्धकनिके

तत्त्वार्थश्रद्धान नष्ट करनेकी सामर्थ्यका अभाव है, अर श्रद्धानकूं चल मल अगाढ दोषकरि दूषित करे है। जातैं सम्यक्त्वप्रकृतिका उदयकै तत्त्वार्थश्रद्धानकै मल उपजावनेमात्रहीका सामर्थ्य है। तिह कारणतैं तिस सम्यक्त्वप्रकृतिकै देशघातिपना है। तिस सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयकूं अनुभव करता जीवकै उत्पन्न भया जो तत्त्वार्थश्रद्धान, सो वेदकसम्यक्त्व है, इसहीकूं क्षायोपशमिकसम्यक्त्व कहिये हैं। जातैं दर्शनमोहके सर्वघातिस्पर्द्धकनिका उदयका अभाव है लक्षण जाका ऐसा क्षय होतैं वहुरि देशघातिस्पर्द्धकरूप सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय होतैं वहुरि तिसहीका वर्तमानसमयसंबंधीतैं उपरिके निषेक उदयकूं नहीं प्राप्त भये तिनसंबंधी स्पर्द्धकनिका सत्ता अवस्थारूप है लक्षण जाका ऐसा उपशम होतैं वेदकसम्यक्त्व हो है, तातैं याहीका दूसरा नाम क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है ॥

अव इस सम्यक्त्वप्रकृतिका उदयतैं जो श्रद्धानकै चलादिक दोष लागे हैं तिनिका लक्षण कहे हैं ॥ अपनेही "जे आप्त आगम पदार्थरूप" श्रध्दानके भेदनिविषैं चलायमान होइ, सो चल है। जैसैं अपना कराया हुवा अर्हत्प्रतिविम्बादिकविषैं "यहू मेरा देव है" ऐसैं ममता करि वहुरि अन्यका कराया अर्हत्प्रतिविम्बादिकविषैं "यहू अन्यका है" ऐसैं परका मानि परिणाममें भेद करे है, तातैं चल कह्या है। इहां

दृष्टांत कहे हैं– जैसैं नानाप्रकार कल्लोलनिकी पंक्तिविषैं जल एकही तिष्ठे है, तथापि भी नानारूप होइ चले हैं; तैसैं सम्यक्त्वप्रकृतिका उदयतैं श्रध्दान है सा भ्रमणरूप चेष्टा करे है ॥ भावार्थ— जैसैं जल तरंगनिविषैं चंचल होइ परंतु अन्यभावकूं न भजै; तैसैं वेदकसम्यग्दृष्टिहू अपना वा अन्यका कराया जिनबिम्बादिकाविषैं " यहु मेरा है, यहु अन्यका है" इत्यादिक विकल्प करे है, परंतु अन्य रागी द्वेषी देवादिककूं नाहीं भजे है॥ अब मलिनपणा कहे हैं ॥ जैसैं शुद्ध सोनाहू मलका संयोगतैं मैला होइ है; तैसैं सम्यक्त्वहू सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयतैं शंकादिक मलदोषका संयोगतैं मलिन होय है ॥ अब अगाढ कहे हैं ॥ जैसैं वृद्धका हस्तकी लाठी स्थानमें तिष्ठतीहू कंपायमान रहे है–गिरै नही, तोहू दृढ नही है, तैसैं आप्त आगम पदार्थनिका श्रध्दानरूप अवस्था तिसविषैं तिष्ठता हुवाभी परिणाममें कांपे है, दृढ नही रहै, ताकूं अगाढ कहिये है। ताका उदाहरण ऐसा– समस्त अरहंत परमेष्ठीनिकै अनंतशक्तिपना समान होतैंहू जाकै ऐसा विचार होइ इस शांतिक्रियाविषैं शांतिनाथस्वामीही समर्थ है, बहुरि इस विघ्नना-शन आदि क्रियाविषैं पार्श्वनाथस्वामीही समर्थ हैं इत्यादि प्रकारकरि रुचि–प्रतीतीकी शिथिलता है, तातैं बूढेका हाथविषैं लाठीका शिथिलसंबंधपनाकरि अगाढका दृष्टांत है ॥ ऐसैं सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयकरि श्रध्दानमें चल मल अगाढ दोष क्षयोपशमसम्य-

क्त्वमें आवे हैं अर कर्मका नाश करनेकूं समर्थ हैं ॥

बहुरि अनंतानुबंधी ४ दर्शनमोहनीय ३ इन सातप्रकृतिनिका सर्व उपशम होनेकरि औपशमिकसम्यक्त्व होय है। अर इन सात प्रकृतिनिका क्षयतैं क्षायिक सम्यक्त्व होय है। इन दोऊ सम्यक्त्वमें शंकादिक मलनिका अंशभी नाही, तातैं निर्मल है। अर परमागममें कहे पदार्थनिके श्रद्धानमें कहूंभी नही स्खलित होइ है, तातैं दोऊ सम्यक्त्व निश्चल है। अर आप्त आगम पदार्थ भगवान्के कहे तिनमें तीव्र रुचि धारे हैं। तातैं दोऊही सम्यक्त्व गाढरूप हैं। जातैं चल मल अगाढ दोष उत्पन्न करनेवाली सम्यक्त्व-प्रकृतिके उदयका अभाव है; तातैं ये दोऊ सम्यक्त्व निर्दोष हैं ॥ अब व्यवहार-सम्यक्त्वका विषेश कहे हैं ॥ जो सत्यार्थ आप्त आगम गुरूका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है ॥ आप्तका स्वरूप ऐसा है– जो क्षुधा, तृषा, जन्म, जरा, मरण, राग, द्वेष, शोक, भय, विस्मय, मद, मोह, निद्रा, रोग, अरति, चिंता, स्वेद, खेद ये अठारह दोषरहित होय; अर समस्त पदार्थनिके भूत भविष्यत् वर्तमान त्रिकालवर्ती समस्त गुणपर्यायनिकूं क्रमरहित एकैकाल प्रत्यक्ष जानता ऐसा सर्वज्ञ होय; बहुरि परमहितरूप उपदेशका कर्ता होय सो आप्त अंगीकार करना ॥ जातैं जो रागी द्वेषी होइ सो सत्यार्थवस्तुका नही कहे। अर जो आपही काम क्रोध मोह क्षुधा तृषादिक दोषसहित होइ, सो

अन्यकूं निर्दोष कैसैं करै? अर जाकै इंद्रियांके आधीन ज्ञान होय अर क्रमवर्ती होय सो समस्तपदार्थनिकूं अनंतानंतपरिणातिसहित कैसैं जानै? अर दूरवर्ती स्वर्ग नरक मेरु कुलाचलादिनिकूं अर पूर्वै भये जे भरतादिक तथा रामरावणादिक अर सूक्ष्म परमाणु आदिक सर्वज्ञविना कोन जाने? बहुरि परमहितोपदेशकविना जगतके जीवनिका उपकार कैसैं होय? तातैं वीतराग सर्वज्ञ परमहितोपदेशकविना आप्तपणा नही संभवे है।

जिनकै शस्त्रादिक ग्रहण करना तो असमर्थता अर भयभीतपणा प्रकट दिखावे है, अर स्त्रीनिका संग वा आभरणादिक प्रकट कामीपणा रागीपणा दिखावे है, तिनकै आप्तपणा कदाचित् नही संभवे है। तातैं परीक्षा करि जाकै सर्वज्ञता अर वीतरागता अर परमहितोपदेशकता ये तीन गुण होइ, सो आप्त है। जाकै वीतरागताही होइ अर सर्वज्ञपणा नही होइ तो वीतरागता तो घटपटादिक अचेतनद्रव्यनिकैहू क्षुधा तृषा राग द्वेषादिकके अभावतैं पाइये है, तिनकै आप्तपणा प्राप्त होइ वा सर्वज्ञत्व विशेषण आप्तका नही होय तो इंद्रियनिके आधीन किंचित् किंचित् मूर्तिक स्थूल निकटवर्ती वर्तमान वस्तूके जाननेवालेके वचनकी प्रमाणता होइ, सो अल्पज्ञके कहे वचन प्रमाण नही। तातैं अल्पज्ञानीकै आप्तपणा नही संभवे है, तातैं वीतराग "सर्वज्ञ" ऐसा कह्या। अर वीतरागता अर सर्वज्ञपणा दोय विशेषणही आप्तकै कहिये

तो वीतरागसर्वज्ञपणा तो मोक्षस्थानमें सिद्धनिकैहू पाइये है, यातें परमहितोपदेशकपणाविना आप्तपणा नही बने है। तातैं सर्वज्ञता वीतरागता परमहितोपदेशकता अरहंतहीकै संभवे है ॥

बहुरि श्रुत जो आगम, ताका लक्षण श्रीरत्नकरण्ड नाम परमागममें ऐसा कह्या है ॥ श्लोक ॥ आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकं ॥ तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥ १ ॥ अर्थ- एते गुणसहित होय सो शास्त्र है ॥ आप्त जो सर्वज्ञवीतराग, ताकी दिव्यध्वनिकरि प्रकट कीया होय अर जाका अर्थ तथा शब्द वादिप्रतिवादीकरि तिरस्कारकूं नही प्राप्त होइ, एकांतीनिकी मिथ्यायुक्तिकरि छेद्या नही जाय, बहुरि प्रत्यक्ष अनुमानकरि जामैं विरोध नही आवै, अर वस्तुका जैसा स्वभाव है तैसा तत्त्वभूत उपदेशका करनेवाला होइ बहुरि समस्तजीवनिका हितरूप होइ, किसही जीवका अहितकूं नहीं करता होय, अर कुमार्गका दूरि करनेवाला होय सो शास्त्र है ॥ जातैं अल्पज्ञानीका कह्या तथा रागी द्वेषीका कह्या तो प्रमाणही नही है। तातैं आप्तका उपदेश्या आगम है सोही प्रमाण है। अर जाका अर्थ परवादीनिकरि बाधाकूं प्राप्त होइ प्रमाणकरि बाधित होइ सो काहेका आगम? बहुरि जामैं प्रत्यक्षप्रमाणसूं बाधा आजाय वा अनुमानसूं बाधा आजाय, सो काहेका आगम? बहुरि जामैं सारभूत

जीवका कल्याणरूप उपदेश नही, सो काहेका आगम? बहुरि जो जीवनिका घा[illegible]
करनेवाला दुःखदायी होय, सो शास्त्र शस्त्र है, बुद्धिवानोंनिकै आदरनेजोग्य नही
है। अर जो संसारके कुमार्गकूं प्रवर्तन करावै, सो खोटा आगम है॥

अब गुरूका लक्षण ऐसा है॥ श्लोक॥ विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः॥
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते॥ १॥ अर्थ— जो पंच इंद्रियनिके विषयनिकी
आशाकरि रहित होय, जाकै इंद्रियनिके विषयनिमैं वांछा नष्ट होगई होइ, बहुरि जाकै
किंचिन्मात्रहू आरंभ नही होय, अर जाकै तिलतुषमात्र परिग्रह नही होय, अर जो ज्ञान
ध्यान तपमें लीन होय-रक्त होय, सो तपस्वी प्रशंसायोग्य है॥ ऐसें आप्त आगम
गुरुमैं जाकै दृढ श्रद्धान होइ सो सम्यग्दृष्टि है॥ जातैं कार्तिकेयस्वामीहू स्वामिकार्ति-
केयानुप्रेक्षाविषैं सम्यक्त्वका लक्षण ऐसा कह्या है- जो अनेकांतस्वरूप तत्त्वकूं निश्चय-
करि सप्तभंगकरि सहित श्रुतज्ञानकरि वा नयनिकरि जीव अजीवादिक नवप्रकारके पदार्थ-
निकूं श्रध्दान करे है, सो शुद्ध सम्यग्दृष्टि है। तथा जो जीव पुत्रकलत्रादिक समस्त
अर्थनिमैं मद गर्व नही करे है-उपशमभाव जे मंदकषायरूप भाव तिनकूं भावनारूप
करे है अर आपकूं तृणवत् लघु माने है अर विषयनिकूं सेवन करे है अर समस्त
आरंभमें वर्ते है, तोहू जाकै मोहका ऐसा विलास है सो समस्तविषयनिकूं हेय माने

है-त्यागनेयोग्य माने है, चारित्रमोहकी प्रबलतातैं विषयनिमैं आरंभमें प्रवर्तताहू अतिविरक्त है-नही राचे है, जो उत्तम सम्यक् गुणनिके ग्रहणमें आसक्त है, अर उत्तम साधुजननिमैं विनयसंयुक्त जाकी प्रवृत्ति है, अर साधर्मीनिमैं जाकै अत्यंत अनुराग है, अर देहसूं मिली रह्याहू अपने आत्माकूं अपना ज्ञानगुणकरि भिन्न जाने है, अर जीवसूं मिल्या देहकूं कंचुक जो वस्त्र वा वकतरसमान भिन्न जाने है, सो शुद्धसम्यग्दृष्टि है ॥

णिज्जियदोसं देवं । सव्वजीवाण दयावरं धम्मं ॥
वज्जियगंथं च गुरुं । जो मण्णदि सो हु सद्दिठी ॥ १ ॥

अर्थ— जो अठरा दोषरहित सर्वज्ञकूं तो देव माने है, अर समस्त जीवनिकी दयामैं तत्पर, ताकूं धर्म माने है, अर समस्तपरिग्रहरहितकूं गुरु माने है, सो सम्यग्दृष्टि है ॥

दोससहियं पि देवं । जीवहिंसाइसंजुदं धम्मं ॥
गंथासत्तं च गुरुं । जो मण्णदि सो हु कुद्दिठी ॥ २ ॥

अर्थ— जो रागद्वेषादिक दोषसहितकूं देव माने है, अर जीवहिंसासहित धर्म माने है, अर परिग्रहमें आसक्तकूं गुरु माने है, सो मिथ्यादृष्टि है ॥ कोऊ देव मनुष्यादिक इस जीवकूं लक्ष्मी नही दे है ॥ अर इस जीवका कोऊ उपकार नही करे है। उपकार अर अपकारकूं अपना उपार्जन कीया पुण्यपापरूप कर्म करे है।

कोऊकूं कोऊ अशुभकर्म हरनेको अर शुभकर्म देनेको तीन लोकमें देव दानव इं अहमिंद्र जिनेंद्र समर्थ नहीं है। कर्म तो अपने शुभ अशुभ परिणामके अनुकूल बंधे है। अर द्रव्य क्षेत्र काल भावका निमित्तकूं पाय अपना रस देय निर्जरे है। तातैं पर तो निमित्तमात्र है। जो भक्तिकरि पूजे हुये व्यंतर योगिनी यक्ष क्षेत्रपाला-दिकही लक्ष्मी देवै तो धर्म करना व्यर्थ होजाय। समस्तव्यंतरनिहीकूं पूजि अपना हित करै, पूजा दान ध्यान शील संयमादिक निष्फल होजाइ। जातैं सुख आवै सो साता-वेदनीयकर्मके उदयतैं आवै अर दुःख आवै सो असातावेदनीयकर्मके उदयतैं आवै। अर कर्म कोऊकूं कोऊ देनेकूं समर्थ नही है। तातैं अन्यकूं दूषण देना वा राग करना मिथ्या है। जो हितके इच्छक हो तो परमधर्ममें प्रवर्तन करो॥

बहुरि जिस जीवके जिस देशमें जिस कालमें जिस विधानकरिकै जन्म वा मरण, सुख, दुःख, लाभ, अलाभ, संयोग वियोग होना जिनेंद्रभगवान् केवलज्ञानकरि निश्चित जान्या है—देख्या है; तिस जीवकै तिस देशमें, तिस कालमें, तिस विधान-करिकै तैसैंही होयगा। इसकूं अन्यथा करनेकूं चलायमान करनेकूं इंद्र वा अहमिंद्र वा जिनेंद्र समर्थ नही है। ऐसैं जो निश्चयनयतैं समस्तद्रव्यनिके समस्तपर्यायगुण-निके परिणमनकूं जाने है, सो शुद्ध सम्यग्दृष्टि है। अर जो इसमें शंका करै सो

मिथ्यादृष्टि है। बहुरि जो तत्त्व जाननेकूं समर्थ नहीं है सो जिनेंद्रके वचननिहीमें श्रद्धान करे है। जो जिनेंद्रभगवान् दिव्यज्ञानतैं देखिकरि कह्या है, सो समस्त मैं सम्यक् इच्छा करूं हूं-प्रमाण करूं हूं ग्रहण करूं हूं ऐसा जाकै दृढ निश्चय है, सो मंदज्ञानीहू सम्यग्दृष्टि है ॥

सम्यग्दर्शनके पचीस दोष हैं तिनकूं टारि श्रद्धानकूं उज्वल करना ॥ तिनमैं मूढता तीन ३, अष्ट मद ८, शंकादिक दोष आठ ८, अनायतन छह ये पचीस दोष हैं ॥ तिनमैं मूढताकूं वर्णन करे हैं- नदीस्नानमें धर्म मानै, समुद्रकी लहरीनिके स्नानमें धर्म मानै, पाषाणका वालूका पूंज करनेमें धर्म मानै, पर्वततैं पडनेमें अग्निमें प्रवेश करनेमें धर्म मानै, संक्रांतिमैं दान करनेमें ग्रहणमें स्नानकरनेमें धर्म मानै, सो लौकिकमूढ है ॥ बहुरि हमारा वांछित देव देगा ऐसी आशा करि रागद्वेषकरि मलिनदेवनिकी सेवा करना; तथा ग्रह, भूत, पिशाच, योगिनी, यक्ष, क्षेत्रपाल, सूर्य, चंद्रमा, शनैश्चरादिकनिकूं वांछितकी सिद्धीके अर्थि पूजा करना दान करना; सो देवमूढता है ॥ तथा जे च्यारि निकायके देवनिके स्वरूपकरि रहित अर देवाधिदेव सर्वज्ञपणाकरि रहित जिनका विकारी रूप वा तिर्यंचनिकेसे मुख जिनका हस्तीकासा मुख सिंहकासा मुख गर्दभमुख वानराकेसे मुख सूरकेसे मुख पूंछ सींग इत्यादिसहितकूं देव

माननाा, तथा त्रिमुख चतुर्मुख पंचमुख चतुर्भुज इत्यादिक प्रकट दिव्य देवके रूपरहित विकराल जिनके रूप तथा लिंग योनि इत्यादिक विपरीत रूप जिनकूं देखे लज्जा उपजै तिनमैं देवत्वबुद्धि करै अर देव मानि पूजा वंदना करै, देवनिके अर्थि बकरा भैसा इत्यादिकनिकूं मारि चढावै, तथा देवतानै मद्यमांसके भक्षक जानै, सो समस्त तीव्र मिथ्यात्वके उदयतैं देवमूढता कहिये हैं ॥

जे आरंभ परिग्रह हिंसाकरि सहित, पाखंडी, कुलिंगी, विषयनिके लोलपी, अभिमानीनिकूं गुरु मानि सत्कार वंदना पूजादिक करै; सो गुरुमूढता जाननी ॥ बहुरि ज्ञानका मद, कुलमद, जातिमद, बलमद, ऐश्वर्यमद, तपोमद, रूपमद, शिल्पिमद, ये आठ मद सम्यक्त्वके घातक हैं ॥ इंद्रियजनित विनाशिक ज्ञानमें अहंकार करना तथा जाति, कुल, रूप, बल, ऐश्वर्य ये कर्मके उदयजनित हैं, तथा पर हैं, विनाशिक हैं, इनमें आपा धरना सो अष्ट मद मिथ्यात्वके उदयतैं हैं ॥ तथा कुदेव, कुधर्म, कुगुरु, अर इनके सेवक तिनकूं अनायतन कहे हैं। रागी द्वेषी मोही तथा जे देवपणारहित ये कुदेव, अर जामैं तीव्र हिंसाकी प्रवृत्ति दयारहित सो कुधर्म, अर परिग्रहधारी विषयकषायांकै वशीभूत सो कुगुरु, तीन तो ये भये। अर कुदेव कुधर्म कुगुरु इनि तीननिके सेवन करनेवाले ये छहूही 'आयतन' कहिये धर्मके स्थान नही हैं, तातैं इनकूं

अनायतन कहिये हैं। इनकी प्रशंसा करना, इनमें भले गुण जानना मिथ्यात्वके उदयतैं हैं ॥

बहुरि शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढदृष्टिता, अनुपगूहन, अस्थितीकरण, अवात्सल्य, अप्रभावना ये आठ दोष सम्यक्त्वके हैं। इनिके अभावतैं इनिके प्रतिपक्षी अष्टगुण हैं। तिनमैं जो सर्वज्ञभाषित धर्ममें संशयका अभाव, सो निःशङ्कित है। सर्वज्ञ वीतरागही आराधनायोग्य देव है–अन्य रागी द्वेषी नही, रत्नत्रयके धारक विषयकषायनिके जीतनेवाले निर्ग्रंथही गुरु हैं–अन्य आरंभी परिग्रही नही, दयाभावही धर्म है–हिंसाभाव धर्म नही, देवगुरुके निमित्तकरि हुई हिंसा पापही फले है धर्मकूं नही उपजावे है। ऐसैं देव-गुरु-धर्मके स्वरूपमें संशयरहित निःशंक प्रवर्तै; ताकै निःशंङ्कित गुण होय है॥ बहुरि इहलोकभय, परलोकभय, मरणभय, वेदनाभय, अनारक्षाभय, अगुप्तिभय, अकस्माद्भय इनि सप्तभयनिकरि रहित निःशंकित गुण होय है॥ दशप्रकारके परिग्रहके वियोग होनेका भय, सो इस लोकका भय है। अर दुर्गति जानेका भय, सो परलोकका भय है। प्राणनिका नाश होनेका भय, सो मरणका भय है। रोगका भय, सो वेदनाभय है। कोऊ हमारा रक्षक नही ऐसा अनारक्षाभय होय है। चोरनिका भय, सो अगुप्तिभय है। अचानक कोऊ आपत्ति दुःख आवै ताका भय, सो अकस्माद्भय है। इनि सप्तभयनिका अभाव जाकै होय,

सो निःशंकितगुणका धारक नियमतैं सम्यग्दृष्टि होय है ॥

सम्यग्दृष्टि इस लोकके भयके जीतनेकूं ऐसैं चिंतवन करे है— नखतैं लगाय शिखा-पर्यंत समस्त देहकूं अवगाहन करि जो ज्ञान तिष्ठै है, सो मेरा अविनाशी निज धन है, अनादिनिधन है, नवीन उत्पन्न नहीं, अर अनंतकालमें विनसे नहीं, यह मेरै निश्चय है, अर जो धन धान्य स्त्री पुत्र परिवार कुटुंब राज्य संपदा हैं ते परद्रव्य हैं, विनाशीक हैं, जहां उत्पत्ति है तहां प्रलय है, अर जिसका संयोग है तिसका वियोग है, इनका मेरै अनेकवार संयोग भया अर वियोग भया, जातैं परिग्रहके नाश होतैं मेरा नाश नहीं अर परिग्रहका उत्पाद होतैं मेरा उत्पाद नहीं—उत्पादविनाश दोऊ पर-द्रव्यनिमें हैं तातैं परद्रव्यका नाश होतैं स्वभाव अचल है—नाश नहीं, ऐसैं सम्यग्दृष्टि अपना रूपकूं अखंड अविनाशी ज्ञाता द्रष्टा देखे है—अनुभवे है । तातैं दशप्रकारका परिग्रह विनशनेका भय—जो मेरी धनसंपदा, मेरा स्त्रीपुत्र कुटुंब, मेरा ऐश्वर्य मति कदाचित् विनशि जाय ऐसैं परिणाममें शंका, सो इसलोकका भय—ताकूं सम्यग्ज्ञानी नहीं प्राप्त होय है ॥

परलोकमें दुर्गति जानेका भय, सो परलोकभय है, सो सम्यग्दृष्टीकै नहीं है । सम्य-ग्दृष्टि ऐसा विचार करे है— ज्ञान है सो मेरा वसनेका लोक है, इस अविनाशी ज्ञान-

लोकहीमैं मेरा निश्चल वसना है, अर जे नरक स्वर्ग मनुष्य तिर्यंच महादुःखनिके भरे लोक है सो मेरा लोक नही है–पुण्यपापातैं उपज्या है, पुण्यका उदय होइ तदि जीव शुभगतिकूं प्राप्त होय है, पापका उदय होइ तदि दुर्गतिकूं प्राप्त होय है, सुगति दुर्गति दोऊ विनाशिक हैं कर्मकृत हैं, मै चिदानंद चैतन्य ज्ञाता द्रष्टा अखंड शिवनायक कर्मतैं भिन्न अपने ज्ञानलोकमें रहूं ज्ञानलोकविना अन्य मेरा लोकही नही, ऐसैं चिंतन करतै परलोकका भय नही होय है ॥ जो सुगतिदुर्गतिसंबंधी इंद्रियजनित सुखदुःखमें आपा धारे है, ताकै परलोकका भय है। अर जो निःशंक कर्मकलंकरहित अपना स्वरूपकूं अविनाशिक अखंड अनुभवे है, ताकै परलोकका भय नही होय है ॥

अब रोगकी वेदनाका भयकूं निराकरण करे है ॥ जो अचल निजज्ञानकूं वेदे है–अनुभवे है, सो वेदना है, सो अनुभव करनेवाला जीव अर जिस भावकूं वेदे है–अनुभवे है सोहू जीव है, जो अपने स्वभावकूं वेदना–अनुभवना सो वेदना तो अविनाशीक है, मेरा रूप है, सो देहमें नही है। अर जो कर्मकरि करी हुई सुखदुःखरूप वेदना है सो मोहका विकार है, पुद्गलमें है, विनाशिक है, देहमें जाकै ममता है ताकै है। अर देहका घात करनेवाले रोगादिक ते देहमें हैं, देहका नाश करेगा। मै ज्ञाता द्रष्टा अमूर्तिक अविनाशी ताका एकप्रदेशकूं चलायमान करनेकूं समर्थ नही है। ऐसैं

देहतैं अर देहमें उपजी वेदनातैं अपने स्वरूपकूं अखंड अविनाशी अनुभवे है, ताकै वेदनाभय नही प्राप्त होय है ॥

अब मरणभयका निराकरण करे हैं ॥ प्राणनिके नाशकूं मरण कहिये हैं। सो पंच इंद्रिय, मनोबल, वचनबल, कायबल, आयु, श्वासोश्वास ये दश प्राण हैं, सो देहकै हैं। इनका विनाश होतैं देहका विनाश होय है। ज्ञानप्राणसंयुक्त अमूर्त अखंड ऐसा मै आत्मा, तिसका नाश नही है। ऐसैं देहतैं अर देहजानित मूर्तिक विनाशिक दश-प्राणनितैं आपकूं भिन्न अनुभवे है, ताकै मरणका भय नही होय है। जो मूढ देहका मरणकूं आत्माका मरण होना अनुभवे है, ताकै मरणका भय होइ। यातैं सम्यग्दृष्टि अपने आत्माकूं ज्ञान दर्शन सुख सत्ता इत्यादि भवप्राणरूप अनुभवै, ताकै मरणभय नही होय है ॥

अब कोऊ हमारा रक्षक नही ऐसा अनारक्षा भयकूं कहे हैं ॥ जगतविषैं जो सत् है तिसका विनाश नही है, ऐसैं वस्तुकी स्थिति प्रकट है। सत्का विनाश नही असत्का उत्पाद नही। मेरा ज्ञान सत् है, सो तीन कालमें इसका नाश है नही, ऐसा मेरै निश्चय है। यातैं मेरा चैतन्यस्वभावका अन्य कोऊ रक्षक नही, अर अन्य कोऊ भक्षक नही, पर्याय उपजे हैं पर्याय विनसे हैं। मेरा स्वभाव पुद्गलपर्यायतैं भिन्न

अविनाशी ज्ञानमय है, याका रक्षक भक्षक कोऊ है नही। तातै सम्यग्दृष्टि निःशंक निर्भय अपना ज्ञानमय निजस्वभावकूं वेदे है–अनुभवे है ॥

चोरका भय सो अगुप्तिभय है, ताहि जनावे है,। जो वस्तूका निजस्वरूप है सोही सर्वोत्कृष्ट गुप्ति है। अपना निजस्वरूपविषैं कोऊ परद्रव्य प्रवेश करनेकूं अशक्त है, मेरा सर्वोत्कृष्ट चैतन्य स्वरूप है, अन्य कोऊ इसमें प्रवेश नही करि सके है। अर मेरा चैतन्य रूप कोऊ हरनेकूं समर्थ नही है, मेरा स्वरूप अक्षय अनंतज्ञानस्वरूप अविनाशी धन है, तिसकूं चोर कैसें ग्रहण करै? इसमें कोऊ अन्यद्रव्यका प्रवेशही नही, ज्ञान–दर्शन–सुख– वीर्यरूप मेरा अविनाशी धन कोऊ हरनेकूं समर्थ नही। ऐसें अनुभव करता निःशंक निर्भय अपने ज्ञानस्वभावमें तिष्ठते सम्यग्दृष्टीकै अगुप्तिभय नहीं होय है ॥

अब अकस्माद्भयकूं निराकरण करे हैं ॥ मेरा स्वरूप स्वभावहीतैं शुद्ध है, ज्ञानस्वरूप है, अनादिका है, अविनाशी है, अचल है, सिद्ध है, एक है, इसमें दूजेका प्रवेश नही है, चैतन्यका विलासरूप समस्तद्रव्यनिका जामें प्रकाश हो रह्या है, अर समस्त-विकल्परहित अनंतसुखका स्थान है, तिसमैं अचानक कुछ होना नही है। तातैं ज्ञानी सम्यग्दृष्टि अपना स्वरूपमें अनंतानंत काल होतैंहू द्रव्यकृत क्षेत्रकृत कालकृत

भावकृत कुछहू उपद्रव होना नही माने है। केवल ऐसा साहस सम्यग्दृष्टि जीवही करनेकूं समर्थ है। जो भयकरिकैं चलायमान जो त्रैलोक्य तानैं छांडी है प्रवृत्ति जातैं ऐसा वज्रपातकूं पडतैंहू अपने स्वभावकी निश्चलताकरिकै समस्तही शंकाकूं त्यागिकरिकै अर अपना स्वरूपकूं अविनाशी ज्ञानमय जानत है अर ज्ञानतैं नही च्युत होय है ॥ भावार्थ— ऐसा वज्रपात पडै! जो लोक चालते हालते खाते पीते जैसेके तैसे अचल रहिजाय ऐसा भयंकर कारण होतैंहू जो अपना ज्ञानमय आत्माकूं अविनाशी जानता भयकूं नही प्राप्त होय, तिसकै निःशंकित अंग होय है ॥

बहुरि इंद्रियजनित सुखमें जाकै अभिलाष नही, धर्मसेवनकरि धर्मके फलकूं नही चाहै, सो निष्कांक्षित गुण है। जातैं सम्यग्दृष्टीकूं इंद्रियनिके विषयजनित सुख दुःखरूप भासे हैं। कैसे हैं विषयनिके सुख? कर्मके परवशी हैं, पुण्यकर्मका उदय होइ तदि विषय मिले हैं, बहुरि मिलै तोहू थिर नही हैं–अंतसहित हैं, बहुरि बीचिबीचि इष्टवियोगादिक अनेकदुःखनिके उदयकरि सहित हैं, पापका बीज हैं। ऐसैं इंद्रियजनितसुखमें वांछाका अभाव सो निष्कांक्षित अंग है ॥

बहुरि रोगी दरिद्री देखि ग्लानि नही करै, तथा आपकै अशुभकर्मका उदय देखि ग्लानि नही करै, तथा पुद्गलनिकी मलिनता देखि ग्लानि नही करै, जातैं देह तो

रोगमय है अर कर्मके उदयकी अनेक परिणति हैं, पुद्गलनिके नाना परिणमन हैं, इनके परिणमन देखि रागद्वेषकरि परिणामकूं मलिन नही करै, ताकै निर्विचिकित्सा अंग होइ·

बहुरि जो भयतैं लज्जातैं लाभतैं हिंसाके आरंभकूं धर्म नही मानै अर जिनेंद्रकी आज्ञामैं लीन हुवा मिथ्यादृष्टि एकांतीनिका चलायमान कीया तत्त्वतैं नही चलै, सो अमूढदृष्टि नामा अंग है ॥ तथा मिथ्यादृष्टीनिका प्ररूप्या एकांतरूप कुमार्ग तथा कुमार्गीनिका आचरण कुमार्गीनिका ज्ञान ध्यान तप त्याग देखि मन–वचन–कायकरि प्रशंसा नही करै। तथा मंत्र यंत्र तंत्र पूजा मंडल होम यज्ञादिककरि तथा व्यंतरादिक-देवनिकी पूजाकरि तथा गृहादिकनिकी पूजदिककरि अशुभकर्मका अभाव होना अर साताका उदय होनेका श्रद्धान नही करै। जातैं अशुभकर्मके उदय दूरि करनेकूं अर शुभकर्मके देनेकूं त्रैलोक्यमें कोऊ समर्थ नही है। अपने परिणामनिकरि बांध्या हुवा कर्म आपके शुद्धपरिणामकरिही निर्जरै, और कोऊ दूरि करनेकूं समर्थ नही है। ऐसा दृढश्रद्धान सो अमूढदृष्टि है ॥

बहुरि जो परके दोषकूं आच्छादन करै–ढाकै अर अपना भला कर्तव्य तिसका प्रकाश नही करै। जातैं संसारी जीव रागद्वेषके वशीभूत हैं, अपना आपा भूलि रहे हैं, परमार्थतैं पराङ्मुख हैं, स्वरूपका अवलोकनरहित हैं, ज्ञानावरणकरि आच्छादित

हैं, तातैं परवश हुवा दोषरूप प्रवर्ते हैं, इनका दोष प्रकट कीये अवज्ञा होयगी; तथा यो धर्ममें प्रवर्ते हैं, धर्मकी हास्य होयगी; तातैं परके दोषकूं ढाकै अर अपनी बडाई नहीं करै "जो मै केवलज्ञानरूप परमातमरूप होइ विषयकषायनिमैं फसि रह्या हूं!" ऐसैं आत्मनिंदा करै, अर जैसैं सर्वज्ञभगवान् देख्या है तैसैं होयगा ऐसैं भवितव्यभावनामैं रत होइ, ताकै उपगूहन अंग होइ है ॥

कोऊ पुरुष रोगकरि वा उपसर्गकरि वा क्षुधातृषाकी वेदनाकरि वा व्रत पालनेमें शिथिलताकरि तथा असहायताकरि तथा निर्धनताकरि मुनिधर्मतैं वा श्रावकधर्मतैं चलायमान होता होय ताकूं धर्मोपदेश देनेकरि तथा शरीरकी टहल चाकरी करि वा औषध भोजनपान देनेकरि वा निराकुल वसतिका वा गृहादिक देनेकरि वा उपद्रवादिक दूरि करनेकरि धर्ममें स्तंभन करै, धर्मतैं चलवा नहीं दे, ताकै स्थितीकरण अंग है॥

बहुरि जो धर्मविषैं वा धर्मात्मा पुरुषविषैं वा धर्मायतन कहिये जिनमंदिर जिनप्रतिमाविषैं वा सत्यार्थधर्मके प्ररूपक जिनेंद्रका आगमके पठनविषैं श्रवणविषैं उपदेश देनेविषैं जिनकै अत्यंत प्रीति होय ताकै वात्सल्य अंग होय है ॥

संसारी जीवनिकै अपनी स्त्रीविषैं वा पुत्रादिककुटुंबविषैं वा धनपरिग्रहादिकविषैं तीव्र अनुराग लगि रह्या है, धर्ममें धर्मात्मापुरुषनिमैं राग नहीं है, सत्यार्थ स्वपरका

निर्णय करि जो परमधर्मकूं जाणै चतुर्गतिका दुःखसूं भयभीत होय, अर जाकूं विषय विषसमान भासै अर आत्मिकसुख जाकूं सुख दीखै, ताकै धर्ममें वात्सल्य होय है ॥

बहुरि अपने आत्माके मांहि अनादिके मिथ्यात्वादिक मल रागादिक कामादिक मल तिनकूं दूरि करि अपने आत्माका प्रभाव रत्नत्रय धारणकरि प्रकट करना, सो प्रभावना नाम अंग है ॥ तथा दान तप जिनपूजा त्याग इत्यादिकरि जिनधर्मका प्रभाव जगतमें प्रकट करै, मिथ्यादृष्टीहू देखि प्रशंसा करै "जो, ऐसा शील जैनीहीकै होय, जिनका निर्लोभपणा, दयालुपणा, दातारपणा, क्षमावान्पणा, तथा त्याग, वैराग्य, शील, संयम, सत्य इत्यादिक देखि बालगोपालहू महिमा करै," ताकै प्रभावना अंग होइ है ॥ जो महाव्रत अणुव्रत धारै, सो प्राण जातैंहू हिंसा, झूठ, परधनहरण, कुशील, परिग्रहमें नहीं प्रवृत्ति करै ऐसा धर्मका महिमा प्रकट दिखावै, अपनी मन-वचन-कायकी प्रवृत्तिकरि धर्मकी निंदा नहीं करावै, अर अभ्यंतर अपने आत्माकूं मिथ्यात्वादिकनितैं मलिन नहीं होने देवै, ताकै प्रभावना नाम अंग होय है ॥ ऐसैं सम्यक्त्वके अष्ट गुण कहे ॥ कार्तिकेयस्वामी ऐसैं कह्या है—

> जो ण कुणदि परतत्तिं । पुणुपुणु भावेदि सुद्धमप्पाणं ॥
> इंदियसुहणिरवेक्खो । णिस्संकाई गुणा तस्स ॥ १ ॥

अर्थ— जो जीव परकी निंदा नहीं करे है, अर वारंवार रागादिरहित शुद्ध आत्माकूं भावे है–अनुभवे है, अर इंद्रियजनितसुखमें जिनकै वांछाका अभाव है, तिनकै निःशंकितादि गुण जानिये है ॥

औरहू प्रशम, संवेग, अनुकंपा, आस्तिक्य ये सम्यक्त्वके लक्षण हैं ॥ संवेग, निर्वेग, निंदा, गर्हा, उपशम, भक्ति, वात्सल्य, अनुकंपा ये सम्यक्त्वके अष्टगुण हैं ॥ धर्ममें अत्यंत अनुराग होना, सो संवेग है ॥ संसार देह भोगनितैं विरक्तता, सो निर्वेग है ॥ आपका दोष चिंतवन करि अंतःकरणमें आपकी निंदा करनी, अपना प्रमादीपणा विषयानुरागीपणा कषायनिके आधीनपणा संयमरहितपणा देखि आपाकूं निंदना, सो निंदा है ॥ गुरुनिके निकट अपने दोष प्रकट करि आपकी निंदा करना, सो गर्हा है ॥ बहुरि क्रोध मान माया लोभका मंद होना, सो उपशमभाव है ॥ बहुरि पंचपरमेष्ठीके गुणनिमैं वा सम्यग्दृष्टि व्रतीनिके गुणनिमैं अनुराग करना, सो भक्ति है ॥ बहुरि धर्मात्मा जीवनिमैं प्रीति करना, सो वात्सल्य है ॥ बहुरि समस्तजीवनिमैं दुःख देखि अंतरंगमें कंपायमान होना, सो अनुकंपा है ॥ जाकै सम्यग्दर्शन होइ ताकै ये अष्टगुण प्रकट होयही हैं ॥ ऐसैं सम्यक्त्वका संक्षेप वर्णन कीया ॥ सम्यग्दर्शनसहित एकदेशव्रतकूं धारण करि मरण करे है, सो बालपंडितमरण है ॥ अब गृहस्थकै

देशव्रत कैसें है, सो कहे हैं ॥ गाथा—

पंच य अणुव्वयाइं । सत्त य सिक्खाउ देसजदिधम्मो ॥
सव्वेण य देसेण य । तेण जुदो होदि देसजदी ॥ २०७५ ॥

अर्थ — पंच अणुव्रत अर सप्त शिक्षाव्रत ये बारा व्रत देशयति जो एकदेशव्रती ताका धर्म है। जो श्रावक ये बारा व्रत समस्तपणाकरि वा इनिका एकदेशकरि जो युक्त होय, सो श्रावक एकदेश यति वा एकदेश संयमी वा व्रती होइ है ॥ अब पंच अणुव्रत तिनके नाम कहे हैं ॥ गाथा—

पाणिवधमुसावादा- । दत्तादाणपरदारगमणेहिं ॥
अपरिमिदिच्छादो वि य । अणुव्वयाइं विरमणाइं ॥ ७६ ॥

अर्थ — हिंसा, असत्य, अदत्तादान, परदारागमन, परिमाणरहित परिग्रह इनि पंच पापनिका एकदेशत्याग, सो पंच अणुव्रत है ॥ अब तीनप्रकार गुणव्रतके नाम कहे हैं ॥ गाथा—

जं च दिसावेरमणं । अणत्थदंडेहि जं च वेरमणं ॥
देसावगासियं पि य । गुणव्वयाइं भवे ताइं ॥ ७८ ॥

अर्थ— जो मरणपर्यंत दश दिशानिमैं गमनादिककी मर्यादा करना, सो दिग्विरति

व्रत है। अर अनर्थदंडनिका त्याग, सो अनर्थदंडविरति व्रत है। अर कालकी मर्याद करि क्षेत्रमें गमन करनेकी मर्यादा, सो देशावकाशिक है। ऐसैं तीन गुणव्रत हैं ॥ अब च्यारिप्रकार शिक्षाव्रतनिकूं कहे हैं ॥ गाथा–

भोगाणं परिसंखा। सामाइयमतिहिसंविभागो य ॥
पोसहविधी य सव्वो। चदुरो सिक्खाउ वुत्ताउ ॥ ७८ ॥

अर्थ— भोगोपभोगकी मर्यादा, सो भोगोपभोगपरिमाणव्रत है। सामायिककी प्रतिज्ञा करना, सो सामायिक नाम शिक्षाव्रत है। च्यारि पर्वनिमैं उपवासादिक प्रोषध विधि करना, सो प्रोषधोपवास नामा शिक्षाव्रत है। ऐसैं च्यारि शिक्षाव्रत कहे ॥ पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, च्यारि शिक्षाव्रत ऐसैं ये बारह व्रत गृहस्थ अवस्थामैं श्रावककै कहे ॥

इहां ऐसा विशेष जानना– सम्यग्दर्शनका धारक जीवकै समस्त व्रतादिक होइ हैं। तातैं जो पहली जिनेंद्रभाषितसूलकी आज्ञाप्रमाण तत्त्वार्थनिका श्रद्धानस्वरूप सम्यग्दर्शन धारण करिकै; अर जो जूवा, मांस, मद्य, वेश्या, शिकार, चोरी, परस्त्री इन सात व्यसनका त्याग; अर पंच उदुंबरफलादिकका त्याग; तथा जिनमैं त्रसजीवनिकी उत्पत्ति ऐसा बीजफलादिकका त्याग करे है; सो दर्शनप्रतिमाका धारक श्रावक है ॥

बहुरि जो विशुद्धता वधि जाय तो व्रत नामा दूसरी प्रतिमा, तिसमैं बारा व्रत

धारण करे है। तिन व्रतनिका ऐसा संक्षेप है– जो अपनी बुद्धिपूर्वक नियम करना, सो व्रत है। तिनमैं जो अपने संकल्पतैं त्रसजीवनिकी हिंसा करनेका त्याग करै; मन वचन कायके संकल्पकरि त्रसजीवनिका घात नही करै; अन्यतैं मन वचन काय-करिकैं नही करावै; अन्य करता होय तिसकूं मन वचन कायकरि भला नही जानै–प्रशंसा नही करै; रोगादिककी पीडाकरि वा धनके लोभकरि वा भयकरि, वा लज्जाकरि, कदाचित् अपना प्राण जाय तोहू बे इंद्रियादिक त्रसका घात नही करै; जातैं गृहस्थकै एकेंद्रियकी हिंसाका त्याग तो बणि सकै नहीं; चाकी, चूला उखणी, भुवारी, परीडा, अर द्रव्यका उपार्जन ये छ कर्म पापहीके हैं; तातैं पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, पवनकाय, वनस्पतिकाय इनिके आरंभमें तो अत्यंत घटाय यत्नाचारपूर्वक प्रवर्तन करै; अर संकल्पी त्रसहिंसाका त्याग करै; अर आरंभमें यत्नाचारपूर्वक प्रवर्ततेहू जो कदाचित् विराधना होइ तो आपकै संकल्प है नही, कोऊ लाख धन देकरि एक कीडीकूं मरावै, वा भयकरि मरावै, तो प्राण जावो! वा धन जावो! परंतु अपने संकल्पतैं एक जीवकूं नही मारै; ताकै अहिंसा नामा अणुव्रत होय है॥ जातैं रागादिकनिकी उत्पत्ति सो हिंसा है, अर रागादिकनिकी उत्पत्तिका अभाव, सो अहिंसा है। जो वीतरागताकूं नही विस्मरण होता निरंतर

यत्नाचाररूप प्रवर्तै अर दयाधर्मकूं एक क्षण विस्मरण नही होय, ताकै अहिंसा नाम अणुव्रत है ॥

बहुरि जो हिंसाके करनेवाले वचन नही बोलै, वा कर्कश वचन नही कहै, वा अन्यकै दुःख उत्पन्न करनेवाला सत्यवचनहू नही कहै, अन्यकूं असत्यवचन नही बुलावै, तथा जो वचन कहै सो समस्त छकायके जीवनिके हितरूप कहै अर प्रमाणीक कहै, अर समस्त जीवनिकै संतोष करनेवाला वचन कहै, अर धर्मका प्रकाश करनेवाले वचन कहै, ताकै सत्य नामा अणुव्रत होइ है ॥

बहुरि विनादिया धनका ग्रहण करना, सो चोरी है । यातैं कोऊ आपमैं धन स्थाप्या होइ, वा कोऊ नगर ग्राम वन उपवनमें पड्या होइ, वा जमीमैं पड्या होइ, वा कोऊ भूमीमैं पटकि गया होइ, वा आपकूं सोंपि भूलि गया होइ, ऐसा परधनका जो त्याग करै, सो अचौर्य नामा अणुव्रत है । तथा बहुतमोलकी वस्तु अल्पमोलमें नही ग्रहण करै, अर गिऱ्या, पड्या, भूल्या, विस्मरण हुवा परके वस्तूको नही ग्रहण करै तथा अल्पलाभमें संतोष करै, ताकै अचौर्य नामा अणुव्रत है ॥

बहुरि जो अपनी विवाहिता स्त्रीविना अन्य समस्त स्त्रीनिका त्याग करै, ताकै ब्रह्मचर्य नाम अणुव्रत है ॥ बहुरि जो धनधान्यादिक समस्त परिग्रहका परिणाम करि

तिसतैं अधिकमें तृष्णाका अभाव करि संतोष धारण करै, ताकै परिग्रहपरिणाम नामा अणुव्रत होय है ॥ ऐसैं पंच अणुव्रत कहे ॥

बहुरि लोभके नाशके अर्थि जो यावज्जीव दश दिशानिका परिमाण, सो दिग्विरतिव्रत है ॥ बहुरि जिसतैं आपका कार्य तो कुछहू सिद्ध नहीं होय अर जातैं नित्य पापकर्मका बंध होइ, सो अनर्थदंड होय है । सो अनर्थदंड अनेकप्रकार है । तथापि सामान्यपणाकरि पंच भेद कहे हैं । पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुतिसेवन, प्रमादचर्या ये पंचप्रकार अनर्थदंडके नाम हैं । तिनमें जो खेती करनेका, पशु पालनेका, पापके विणजका, तिर्यंच मनुष्यनिकूं मारनेका, दृढ बांधनेका, पुरुषस्त्रीनिके संयोगका, तथा छहकायके जीवनिका घात जातैं होइ ऐसा उपदेश करना, सो पापोपदेश नामा अनर्थदंड है ॥

बहुरि हिंसाके उपकरण जे खड्ग, वाण, छुरी, कटारी, फावडा, खुरपा, कुंदाल, विष, अग्नि, रस, जेवडा, वेडी, सांकल, चाबका, जाल, पींजरा इत्यादिकका देना, सो हिंसादान नामा अनर्थदंड है । तथा मार्जार, कूकरा, तीतर, कूकडा इत्यादिक मांसभक्षी जीवनिका पालना तथा आयुधनिका वेचना, लोहका विणज करना, तथा लाख खलि इत्यादिक " जीवनिकी हिंसा जिनतैं प्रवर्तै तिनका " विणज व्यवहार

करना, सोहू हिंसादान नामा अनर्थदंड है ॥

बहुरि जो रागी द्वेषी हुवा अन्यजीवनिके स्त्रीपुत्रादिकनिका मरण चाहना; तथा अन्यजीवनिकै राजाकरि कीया तीव्रदंड, वा सर्वस्वहरण, वा चौरादिककरि धनका नाश, तथा जगतमैं अपवाद, कलंक इत्यादिककी वांछा करना; तथा अन्य-जीवनिका अंगका छेद, बुद्धीका नाश, मारण, ताडनकी चाह करना; परका उदय देखि क्लेशित होना; अन्यकै आपदा आजाय वा अपमानादिक होय तदि आनंद मानना; सो अपध्यान नामा अनर्थदंड है॥ तथा अन्य मनुष्य तिर्यंचनिकी राडि कलह देखना वा देखिकरि हर्ष मानना, अन्यजीवनिके दोष ग्रहण करना, परकी धन संपदा देखि वांछा करना, अन्यकी स्त्रीका देखनेमें अनुराग करना, आपका अभि-मानकी वृद्धि चाहना, परका अपमान चाहना इत्यादिक अपध्यान नामा अनर्थदंड है॥

बहुरि जिस शास्त्रमें हिंसामैं धर्म कह्या; तथा जिनमैं भंडकथा, कामकथा, वशीकरण, कपट, छलवर्णन, तथा युद्धशास्त्र तथा रागद्वेष मिथ्यात्वके वधावनेवारे खोटे शास्त्रनिका श्रवण करना; सो दुःश्रुति नाम अनर्थदंड है ॥ बहुरि जो प्रयोजन-विना दोडना, कूटना, जलकूं सींचना, काटना, विनाप्रयोजन अग्निका बधावना पवनका उडावना, वनस्पतीका छेदना इत्यादिक निष्फलव्यापार-प्रवृत्ति करना, सो

प्रमादचर्या नामा अनर्थदंड हैं ॥ ऐसें पंचप्रकारके अनर्थदंडनिका छोडना सो अनर्थदंडत्याग नामा दूसरा गुणव्रत है ॥

बहुरि जो यावज्जीव दशदिशामैं गमनका प्रमाण कीया, सो तो दिग्विरतिव्रत है। तिसमैं जो दिनप्रति मर्याद करै—जो मै आजि इतनी दूरही गमन करूंगा ऐसें जो कालकी मर्याद करि गमनका परिमाण निति करै—ताकै देशावकाशिकव्रत कहिये हैं ॥ बहुरि अपनी भोगोपभोगसंपदाकूं जाणिकरिकै अर रागभावके घटावनेकूं जो इंद्रियनिके विषयनिका परिमाण करै, ताकै भोगोपभोग नामा शिक्षाव्रत है ॥ तिनमैं मद्य, मांस, मधु, नवनीत जो लूण्यो, कंद, मूल, हलद, आदो, निंब, केवडा, केतकी इत्यादिकनिके पुष्प इनिमैं तो नियम नही; ये तो बहुत त्रसजीवनिका स्थान कहे, तातैं यावज्जीव त्याग करना उचित है। अर जो आपके उदरशूलादिक दुःख करनेवाला जो प्रकृतिविरुद्ध है, ताका त्याग करै। जातैं जो अपनै दुःख होना, रोगका बधना, मरण होना, इनकूं नही गिणता जिव्हा इंद्रियका लोलपी होइ प्रकृतिविरुद्ध आहार करे है, ताकै तीव्ररागजनित अशुभकर्मका बंध होय है ॥

बहुरि जिसमैं जीवनिकी विराधना तो नही, परंतु उत्तमकुलमें ग्रहणयोग्य नहीं, ते अनुपसेव्य हैं। जातैं शंखचूर्ण, गजके दंत, औरहू हाड, गायका मूत्र, उंटका

दुग्ध, तांबूलका उद्गाल, मुखकी लाल, मूत्र, मल, कफ, तथा उच्छिष्ट भोजन, तथा अशुद्धभूमीमें पड्या भोजन, तथा म्लेंछादिकनिकरि स्पर्श्या भोजन, पान, तथा अस्पृश्य शूद्रका ल्याया जल, तथा शूद्रादिकका कीया भोजन, तथा अयोग्य क्षेत्रमें धऱ्या भोजन, तथा मांसभोजन करनेवालेका भोजन, तथा नीचकुलके गृहनिमैं प्राप्त भया भोजन जलादिक अनुपसेव्य हैं। यद्यपि प्रासुक होइ हिंसारहित होइ तथापि अनुपसेव्यपणातैं अंगीकार करनेयोग्य नही है। बहुरि विकार करनेवाला भेष, वस्त्र, आभरण, नीच पुरुषनिकै योग्य, रागकारी कामादिकके वधावनेवाले चित्राम, गीत, नृत्य, भंडवचनश्रवण इत्यादिहू अनुपसेव्य हैं॥ तातैं अनिष्ट अर अनुपसेव्यकूं वर्जन करिकै जो न्यायोपार्जित त्रसजीवनिकी विराधनारहित भोजनादिक भोग अर वस्त्रादिक उपभोग, तिनमैं प्रमाण करि अंगीकार करै, तिसकै भोगोपभोगपरिमाण नाम व्रत है.

जो एकवार भोगनेमें आवै, सो तो भोजन, जल, पुष्प, गंधविलेपनादिकनिकूं भोग कहिये हैं। अर जे वस्त्र, आभरण, स्त्री, शयन, आसन, असवारी, महल, इत्यादिक वारंवार भोगनेयोग्य ते उपभोग हैं। तिन भोगोपभोगका यावज्जीव त्याग करना, ताकूं यम कहिये हैं। अर जो एकदिन, दोयदिन, वा रात्रि, वा पक्ष, मास, चतुर्मास, एक वर्ष इत्यादिक कालकी मर्यादारूप त्याग करना, सो नियम है। तिनमें

अयोग्य अनुपसेव्य त्रसनिका घात करनेवाले भोजनका तो यावज्जीव त्याग करि यमही करै। अर योग्यविषयनिमैं कालकी मर्यादपूर्वक त्याग करि नियम धारै ॥ ऐसैं समस्त पंच इंद्रियनिके विषयनिमैं यमनियम करै, सो भोगोपभोगपरिमाण नामा शिक्षाव्रत है॥

बहुरि जिनकै पुण्यके उदयतैं नानाप्रकारकी भोगोपभोगसामग्री घरमें मौजूद तिष्ठै है, तिनमैंतैं अल्प ग्रहण करि वहुतका त्याग करे हैं अर आगामी कालमें भोगोपभोगकी वांछारहित हैं अर वर्तमानकालमें जे कर्मके उदयतैं भोगनेमें आवे हैं, तिनमैं अति उदासीन हुवा मंदरागसहित भोगे हैं, तिनके व्रत इंद्रनिकरि प्रशंसायोग्य समस्तकर्मकी स्थितिका छेद करे हैं॥

बहुरि समस्त चेतन अचेतन द्रव्यनिविषैं रागद्वेषको त्याग करि साम्यभावकूं आलंबनकरिकै अर प्रातःकाल अर संध्याकालके विषैं अविचल मन-वचन-कायकूं करि अवश्य नित्यही सामायिकका अवलंबन करना, सो सामायिक नामा शिक्षाव्रत है। सो सामायिक करनेके अर्थि क्षेत्रशुद्धता देखनी। जहां कलकलाट शब्द नही होय, अर जहां स्त्रीनिका आगमन नही होय, नपुंसकनिका प्रचार नही होय, तिर्यंचनिका संचार नही होय, वा गीत नृत्य वादित्रादिकनिका शब्दरहित कलह विसंवादरहित होय, तथा जहां डांस मांछर मांखी बीछू सर्पादिकनिकी बाधारहित,

प्रोषधस्थान है ॥ याका विशेष ऐसा—

जो सप्तमी वा त्रयोदशीके दिन मध्याह्नकालपहली भोजन करिकै, अर पाछै अपराह्नकालविषैं जिनेंद्रके मंदिरमें जायकरिकै, अर मध्याह्नसंबंधी क्रिया करिकै, च्यारिप्रकारके आहारका त्याग करि उपवास ग्रहण करै, अर समस्त ग्रहके आरंभका त्याग करि जिनमंदिरमें वा प्रोषधोपवासके गृहमें वा वनके चैत्यालयमें वा साधुनिके निवासमें समस्त विषयकषायका त्याग करिकै सोलह प्रहरपर्यंत नियम करै, तहां सप्तमी त्रयोदशीका अर्धदिन धर्मध्यान स्वाध्यायतैं व्यतीत करि अर संध्याकालसंबंधी सामायिक वंदनादिक करि रात्रिनैं धर्मचिंतन धर्मकथा पंचपरमगुरुके गुणनिका स्मरणादिककरि पूर्ण करिकै, अर अष्टमीचतुर्दशीके प्रातःकालमें प्रभातसंबंधी क्रिया करिकै, अर समस्तदिवसकूं शास्त्रके अभ्यासतैं व्यतीत करिकै, बहुरि संध्याकालमें देववंदना करिकै, अर रात्रिकूं तैसैंही धर्मध्यानतैं व्यतीत करिकै, प्रातःकाल देववंदनादिक करिकै, अर पश्चात् पूजनविधिकरि अर पात्रकूं भोजन कराय करिकै जो पारणा करै, ताकै प्रोषधोपवास होय है ॥ एकहू निरारंभ उपवास उपशांत भया जो करै है, सो बहुतप्रकारका चिरकालतैं संचय कीया कर्मकी लीलामात्रकरिकै निर्जरा करै है। अर जो पुरुष उपवासके दिनहू आरंभ करै है, सो केवल अपने देहकूं शोषण करै है अर कर्मका लेशहू

अयोग्य अनुपसेव्य त्रसनिका घात करनेवाले भोजनका तो यावज्जीव त्याग करि यमही करै। अर योग्यविषयनिमैं कालकी मर्यादपूर्वक त्याग करि नियम धारै ॥ ऐसैं समस्त पंच इंद्रियनिके विषयनिमैं यमनियम करै, सो भोगोपभोगपरिमाण नामा शिक्षाव्रत है ॥

वहुरि जिनकै पुण्यके उदयतैं नानाप्रकारकी भोगोपभोगसामग्री घरमें मौजूद तिष्ठै है, तिनमैंतैं अल्प ग्रहण करि वहुतका त्याग करे हैं अर आगामी कालमें भोगोपभोगकी वांछारहित हैं अर वर्तमानकालमें जे कर्मके उदयतैं भोगनेमें आवे हैं, तिनमैं अति उदासीन हुवा मंदरागसहित भोगे हैं, तिनके व्रत इंद्रनिकरि प्रशंसायोग्य समस्तकर्मकी स्थितिका छेद करे हैं ॥

वहुरि समस्त चेतन अचेतन द्रव्यनिविषैं रागद्वेषको त्याग करि साम्यभावकूं आलंवनकरिकै अर प्रातःकाल अर संध्याकालके विषैं अविचल मन–वचन–कायकूं करि अवश्य नित्यही सामायिकका अवलंवन करना, सो सामायिक नामा शिक्षाव्रत है। सो सामायिक करनेके अर्थि क्षेत्रशुद्धता देखनी। जहां कलकलाट शब्द नही होय, अर जहां स्त्रीनिका आगमन नही होय, नपुंसकनिका प्रचार नही होय, तिर्यंचनिका संचार नही होय, वा गीत नृत्य वादित्रादिकनिका शब्दरहित कलह विसंवादरहित होय, तथा जहां डांस मांछर मांखी वीछू सर्पादिकनिकी वाधारहित,

शीत उष्ण वर्षा पवनादिकके उपद्रवरहित, एकांत अपने गृहमें निराला प्रोषधोपवास करनेका स्थान होइ, वा जिनमंदिरमें वा नगरग्रामबाह्य वनका मंदिर वा मठ मकान सूना गृह गुफा बाग इत्यादिक बाधारहित क्षेत्र होइ तहां सामायिक करनेकूं तिष्ठै॥

बहुरि प्रातःकाल वा मध्याह्नकाल तथा संध्याकाल इन तीन कालनिमैं समस्त पापक्रियाको त्याग करिकै सामायिक करै। इतनैं कालपर्यंत मैं समस्त सावद्ययोगका त्यागी हूं; इनि कालनिविषैं भोजन, पान, विणज, सेवा, द्रव्योपार्जनके कारण लेण देण, विकथा आरंभ, विसंवादादिक समस्तका त्याग करै; सामायिकके अर्थि काल दे देवै तिन कालनिमैं अन्यकार्यका त्याग करै॥ बहुरि सामायिकके अवसरमें आसनकी दृढता करै। जो पूर्वै अपनै स्थिर आसनका अभ्यास नही करि राख्या होय तासूं लौकिक कार्यही नही होय तो परमार्थका कार्य कैसैं बनै? तातैं आसनकरि अचल होइ तिसहीकै सामायिक होय है॥

बहुरि सामायिकका पाठ वा देववंदना वा प्रतिक्रमणादिकके पाठके अक्षरनिमैं, वा इनके अर्थमें, वा अपने स्वरूपमें, वा जिनेंद्रके प्रतिबिंबमें, वा कर्मनिके उदयादिक-स्वभावमें चित्तकूं लगाय, अर इंद्रियनिका विषयनिमैं प्रवृत्तिकूं रोकिकरिकै मन-वचन-कायकी शुद्धता करि सामायिक करै; तथा शीत उष्ण पवनकी बाधा, डांस, मांछर,

मक्षिका, कीडा, कीडी, बीछू, सर्पादिककरि आया परीषहतैं चलायमान नहीं होइ; तथा दुष्ट व्यंतरदेवादिक अर अनुष्य अर तिर्यंच अर अचेतनकृत उपसर्गकूं समभावनिकरि सहै चलायमान नहीं होइ—परिणाममैं सकंप नहीं होइ—देह चल जाय तोहू जिनका परिणाम क्षोभकूं नहीं प्राप्त होइ; ताकै सामायिक नाम शिक्षाव्रत होय है ॥

वहुरि जो अष्टमी चतुर्दशी एकमासमें च्यारि पर्व तिनमैं उपवास ग्रहण करै; च्यारिप्रकारका आहारका त्याग, अर स्नान, विलेपन, आभूषण, स्त्रीनिका संसर्ग, अत्तर, फुलेल, पुष्प, धूप, दीप, अंजन, नाशिकामैं सूंघनेकी नाश, तथा विणज व्यवहार, सेवा, आरंभ, कामकथा इत्यादिकानिका त्याग करि धर्मध्यानसहित रहै अर च्यारिप्रकारका आहारका त्याग करै; ताकै प्रोपधोपवास होय है ॥

तथा स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा नाम ग्रंथमैं ऐसैं कह्या है– जो एकवार भोजन करै वा नीरस आहार वा कांजिका करै, ताकैहू प्रोपधोपवास नामा शिक्षाव्रत है ॥ वहुरि जो उत्तमपात्र जो मुनि अर मध्यमपात्र अणुव्रती गृहस्थ अर जघन्यपात्र अव्रतसम्यग्दृष्टि गृहस्थ तिनके अर्थि जो भक्तिसहित दान करै है, ताकै अतिथिसंविभाग व्रत है ॥ आहारदान, औषधदान, ज्ञानदान, वसतिकादान ये च्यारिप्रकार दान करना, सो भक्तिपूर्वक करना । राग, द्वेष, असंयम, मद, दुःख, भयादिक जिस वस्तुतैं नहीं होइ;

सो वस्तु संयमीनिके अर्थि दान देनेयोग्य है ॥ वैयावृत्य अर दान एक अर्थ है । जो तपस्वीनिका शरीरका टहल करना, सो वैयावृत्य है; तथा अरहंत भगवानका पूजन सो अर्हद्वैयावृत्य है; जिनमंदिरकी उपासना करना वा उपकरण चमर छत्र सिंहासन कलशादिक जिनमंदिरके अर्थि देना, सो समस्त जिनमंदिरका वैयावृत्य है; सो महान् दान है । सो बडा आदरपूर्वक करना । ऐसैं दानका प्रकार समस्तही वैयावृत्यमें जानना ॥ ऐसैं संक्षेपकरि श्रावकके बारह व्रत कहे वा इनके अतीचार कहे सो श्रावकाचारादिक ग्रंथनिमैं प्रसिद्ध है । इनि बारहप्रकार व्रतनिकूं धारै सो दूसरी पैडीका धारक व्रती श्रावक है ॥

जातैं जो सम्यग्दर्शनकरि शुद्ध हुवा संसार देह भोगनितैं विरक्त, अर पंचपरमगुरुका शरण ग्रहण करता, सप्तव्यसनका त्याग करि समस्त रात्रिभोजनादिक अभक्ष्यका त्याग करै, ताकै दर्शन नामा प्रथम स्थान है ॥ बहुरि पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, च्यारि शिक्षाव्रत इनि बारहव्रतनिकूं धारण करै सो व्रती श्रावक दूसरा पदका धारक है ॥ बहुरि तीनकाल साम्यभाव धारण करि सामायिकका नियम करै, सो सामायिक पदवीका धारक तीजा भेद है ॥ बहुरि एकएक मासविषैं च्यारिच्यारि पर्वविषैं जो अपनी शक्तीकूं नहीं छिपाय करिकै जो प्रोषधोपवास धारण करै, ताकै चोथा

प्रोषधस्थान है ॥ याका विशेष ऐसा–

जो सप्तमी वा त्रयोदशीके दिन मध्याह्नकालपहली भोजन करिकै, अर पाछै अपराह्णकालविषैं जिनेंद्रके मंदिरमें जायकरिकै, अर मध्याह्नसंबंधी क्रिया करिकै, च्यारिप्रकारके आहारका त्याग करि उपवास ग्रहण करै, अर समस्त ग्रहके आरंभका त्याग करि जिनमंदिरमें वा प्रोषधोपवासके गृहमें वा वनके चैत्यालयमें वा साधुनिके निवासमें समस्त विषयकषायका त्याग करिकै सोलह प्रहरपर्यंत नियम करै, तहां सप्तमी त्रयोदशीका अर्धदिन धर्मध्यान स्वाध्यायतैं व्यतीत करि अर संध्याकालसंबंधी सामायिक वंदनादिक करि रात्रिनैं धर्मचिंतन धर्मकथा पंचपरमगुरुके गुणनिका स्मरणादिककरि पूर्ण करिकै, अर अष्टमीचतुर्दशीके प्रातःकालमें प्रभातसंबंधी क्रिया करिकै, अर समस्तदिवसकूं शास्त्रके अभ्यासतैं व्यतीत करिकै, बहुरि संध्याकालमें देववंदना करिकै, अर रात्रिकूं तैसैंही धर्मध्यानतैं व्यतीत करिकै, प्रातःकाल देववंदनादिक करिकै, अर पश्चात् पूजनविधिकरि अर पात्रकूं भोजन कराय करिकै जो पारणा करै, ताकै प्रोषधोपवास होय है ॥ एकहू निरारंभ उपवास उपशांत भया जो करे है, सो बहुतप्रकारका चिरकालतैं संचय कीया कर्मकी लीलामात्रकरिकै निर्जरा करे है। अर जो पुरुष उपवासके दिनहू आरंभ करे है, सो केवल अपने देहकूं शोषण करे है अर कर्मका लेशहू

नहीं नष्ट करे है ॥ ऐसें प्रोषध नामा चौथा स्थान है ॥

बहुरि जो मूल फल पत्र शाक शाखा पुष्प कंद बीज कूंपल इत्यादि अपक्व सचित्त नही भक्षण करै, सो सचित्तका त्याग नामा पंचम स्थान है। जातैं अग्निमैं तप्त कीया, तथा अग्निकरि पकाया, तथा शुष्क भया, तथा आंमिली लूणकरि मिल्या हुवा द्रव्य, तथा जंत्र जो काष्ठपाषाणादिकके अनेकप्रकारके उपकरण तिनिकरि छेद्या जे समस्त द्रव्य, ते प्राशुक हैं, सो भक्षण करनेयोग्य हैं ॥ जो त्यागी आप सचित्त भक्षण नही करै, ताकूं अन्यके अर्थि सचित्त भोजन करावना युक्त नही है। जातैं भक्षण अरनेमें अर करावनेमें कुछभी विशेष नही है। जो पुरुष सचित्तवस्तुका त्याग करे है, सो बहुत जीवनिकी दया धारण करे है। अर जो सचित्तका त्याग कीया, सो कापुरुषनिकरि नही जीती जाय ऐसी जिव्हाकूं जीते है अर जिनेंद्रका वचन पालत है ॥ ऐसें सचित्तके त्यागीका पंचम स्थान कह्या ॥

बहुरि जो अन्न पान खाद्य स्वाद्य ऐसें च्यारिप्रकारका भोजन रात्रिविषैं करै नही, करावै नही, अन्य भोजन करै ताकी प्रशंसा करै नही, तिसकै रात्रिभोजनत्याग नामा छट्ठा स्थान है ॥ जो रात्रिभोजनका त्याग करिकै अर रात्रिके विषैं आरंभकाहू त्याग करे है, सो एकवर्षमें छह महीनेके उपवास करे है ॥ बहुरि जो अपनी विवाही

स्त्रीकाहू त्याग करि स्त्रीमात्रतैं विरक्त हुवा गृहमें तिष्ठै है अर अपनी स्त्रीतैं रागरूप कथा तथा पूर्वें भोगे भोगनिकी कथाकूं वर्जिकरिकै कोमलशय्या आसन विकाररूप वस्त्र आभरणके त्याग करिकै स्त्रीनितैं भिन्नस्थानमें शय्या आसन करता ब्रह्मचर्यव्रत पाले है, ताकै ब्रह्मचर्य नामा सातवा स्थान होइ है ॥

बहुरि जो सेवा कृषि वाणिज्य शिल्पि इत्यादिक धन उपार्जन करनेके कारण तथा हिंसाके कारण आरंभकूं त्यागिकरि, अर अपने गृहमें द्रव्य होय तिनका स्त्रीपुत्र-कुटुंबादिकनिका विभाग करि, अर अपनेयोग्यकूं आप ग्रहण करि, अन्यमें ममता त्यागि नवीन उपार्जनका त्याग करि, अपने परिग्रहमें संतोष करि, जो अपने निकट द्रव्य राखि लीया ताकूं अन्न वा वस्त्रादिक भोगनिमैं वा पूजा दान इत्यादिकमैं व्यतीत करता वा सज्जनादिकनिकूं देता वांछारहित काल व्यतीत करै, ताकै आरंभत्याग नामा अष्टमस्थान होय है ॥ इहां इतना विशेष जानना– जो आप अल्प धन अपने खाने पीने दानपूजादिकके निमित्त राख्या था, ताकूं कदाचित् चोर वा दुष्ट राजा वा दायियादार वा कपूतपुत्रादिक हरण करै, तो नींचा नही उतरै, "जो, मेरा जीवनेका निमित्त धन था, सो जाता रह्या, नवीन उपार्जनका मेरै त्याग है, अब मैं कहां करूं? कैसैं जीवूं! ऐसैं अरतिकूं नही प्राप्त होय है, धैर्यका धारक धर्मात्मा

विचारे है– यह परिग्रह दोऊ लोकमें दुःखका देनेवाला है, सो मै अज्ञानी मोहकरि अंध हुवा ग्रहणकरि राख्या था, सो अब दैवनैं मेरा बडा उपकार कीया, जो, ऐसैं बंधनतें सहज छूट्या" ऐसा चिंतन करता परिग्रहत्याग नामा नवमी पयडीकूं प्राप्त होय है, उलटा आरंभ करि परिग्रहग्रहणमें चित्त नही करे है, ताकै आरंभत्याग नामा आठमा स्थान होय.

बहुरि जो राग द्वेष काम क्रोधादिक अभ्यंतर परिग्रहकूं अत्यंत मंदकरिकै, अर धनधान्यादिक परिग्रहकूं अनर्थ करनेवाले जानि, बाह्यपरिग्रहतें विरक्त होइकरिकै, शीत उष्णादिककी वेदना निवारणेके कारण प्रमाणीक वस्त्र तथा पीतल तामाका जलका पात्र वा भोजनका एक पात्र इनिविना अन्य सुवर्ण रूपा वस्त्र आभरण शय्या यान वाहन गृहादिक अपने पुत्रादिकनिकूं समर्पण करि, अपने गृहमें भोजन करताहू अपनी स्त्रीपुत्रादिक ऊपरि कोऊ प्रकार उजर नही करता, परमसंतोषी हुवा, धर्मध्यानतें काल व्यतीत करै, ताकै परिग्रहत्याग नामा नवमा स्थान है ॥

बहुरि गृहके कार्य जे धनउपार्जन वा विवाहादिक वा मिष्टभोजनादिक स्त्रीपुत्रादिकनिकरि कीये तिनकी अनुमोदनाका त्याग करै वा कडवा खाटा खाये अलूणा भोजन जो भक्षण करनेमें आवै ताकूं खाये अलूणा बुरा भला नही कहै, ताकै अनुमतित्याग नाम दशमा स्थान है ॥

बहुरि जो गृहकूं त्यागि मुनिनके निकटि जाय व्रत ग्रहण करि, समस्त परिग्रहका त्याग करि, कमंडलु पीछी ग्रहण करै, अर एक कौपीन राखै, तथा शीतादिकके परीषह निवारण करनेकूं एक वस्त्र राखै–जिसतैं समस्त अंग नही आच्छादन होय ऐसा वोछा वस्त्र राखै, वा अपने उद्देश्य कहिये आपके निमित्त कीया भोजनकूं नही ग्रहण करता समितिगुप्तीकूं पालता मुनीश्वरनिकीनांई भिक्षा भोजन करै, मौनतैं जाय याचनारहित लालसारहित रस नीरस कडवा मीठा जो मिलै तामैं मलिनतारहित शुद्ध भोजन करै, ताकै उद्दिष्ट आहारत्याग नामा ग्यारमा स्थान है ॥ ऐसैं ये ग्यारह प्रतिमा वर्णन करी, इनमैं जो जो स्थान होय सो सो पूर्वपूर्वसहित होय। इनि एकादशस्थाननिमैंतैं कोऊ स्थान धारि जो सल्लेखनामरण करै, सो बालपंडितमरण है ॥ सो अब कहे हैं ॥ गाथा–

आसुक्कारे मरणे। अव्वोछिण्णाए जीविदासाए ॥
णादीहि वा अमुक्को। पच्छिमसल्लेहणमकासी ॥ २०७९ ॥

अर्थ— श्रावकव्रतके धारकका शीघ्र मरण आवता संता अर जीवितकी आशा नही छूटता संता वा अपने कुटुंबीनिकरि नही छूटते पश्चिम सल्लेखनाकूं करै॥ भावार्थ– अणुव्रतीका मरण तो नजीक आजाय अर आपके जीवनेमें आशा घटी नही अर स्त्री

अर्थ— ऐसा कौन बुद्धिवान् है? जो किंचिन्मात्रकाल आहारका अल्पसुखके निमित्त बहुतसुखतैं चलायमान होय! तैसैं आहारके स्वादनेका अल्पकालका सुख तिसके निमित्त संक्लेशकरिकै अर स्वर्गमुक्तिके सुखनितैं कौन मुनि चिगै? भावार्थ— किंचित्कालमात्र भोजनके स्वादका सुखके अर्थि स्वर्गमुक्तिका कारण सम्यक्चारित्र ताहि कौन मुनि बिगाडै? ॥ गाथा—

महुलित्तं असिधारं । लेहइ भुंजइ य सो सविसमण्णं ॥
जो मरणदेसयाले । पत्थिज्ज अकप्पियाहारं ॥ ६५ ॥

अर्थ— जो पुरुष मरणके देशकालमें अयोग्य आहारकी वांछा करे है, तथा आहारकूं प्रार्थना करे है, सो पुरुष सहतकरि लिप्त खड्गकी धाराका आस्वादन करे है तथा विषसहित अन्नका भोजन करे है ॥ गाथा—

असिधारं च विसं वा । दोसं पुरिसस्स कुणइ एयभवे ॥
कुणइ हु मुणिणो दोसं । अकप्पसेवा भवसएसु ॥ ६६ ॥

अर्थ— सहतलपेटी खड्गकी धाराका आस्वादन तथा विषसहित अन्नका भोजन ये तो पुरुषकै एकभवमें दोष करे है अर अयोग्य आहारादिकनिका सेवन मुनीश्वरनिकै तथा श्रावकनिकै बहुत सैंकडां हजारां भवनिमैं दोष करे है। तातैं अयोग्यव-

स्तूका सेवन योग्य नहीं है, आगामी कालमें बहुत दुःखदायी है ॥ गाथा–

जावं तु किंचि दुक्खं । सारीरं माणसं च संसारे ॥

पत्तो अणंतखुत्तं । कायस्स ममत्तिदोसेण ॥ ६७ ॥

अर्थ— हे मुने! संसारमें जितने केई शरीरसंबंधी तथा मनःसंबंधी दुःख अनंतवार प्राप्त भये हो, ते सर्वदुःख एक देहमें ममत्वके दोषकरि प्राप्त भये हो। संसारमें जितने दुःख हैं ते शरीरके ममत्वकरिकै प्राणी भोगे हैं ॥ गाथा–

इण्हिं पि जदि ममत्तिं । कुणासि सरीरे तहेव ताणि तुमं ॥

दुक्खाणि संसरंतो । पाविहसि अणंतयं कालं ॥ ६८ ॥

अर्थ— हे मुने! अबभी जो शरीरमें तुम ममत्व करोगे तो अनंतकालपर्यंत संसारमें परिभ्रमण करते दुःखनिकूं प्राप्त होहुगे ॥ गाथा–

णत्थि भयं मरणसमं । जम्मणसमयं ण विज्जदे दुक्खं ॥

जम्मणमरणादंकं । छिण्ण ममत्तिं सरीरादो ॥ ६९ ॥

अर्थ— इस संसारमें मरणसमान भय नहीं है अर जन्मसमान दुःख नहीं है। तातैं जन्ममरणकरि व्याप्त जो शरीर तातैं ममताकूं छांडहू ॥ गाथा–

अण्णं इमं सरीरं । अण्णो जीउ त्ति णिच्छिदमदीउ ॥

दुहभयकिलेसयारी । मा हु ममत्तिं कुण सरीरे ॥ १६७० ॥

अर्थ— यो शरीर अन्य है अर जीव अन्य है इसप्रकार निश्चयरूप है बुद्धि जाकी ऐसे तुम, सो अब दुःख अर भय अर क्लेश इनिका करनेवाला शरीरविषैं ममता मति करो ॥ भावार्थ- शरीर तो अनेक पुद्गलपरमाणूनिका समूहरूप पुद्गलमय है जड है, अचेतन है, विनाशीक है; अर आत्मा अमूर्तिक है, ज्ञाता है चेतन है, अविनाशिक है, तातैं पुद्गल अन्य है अर आत्मा अन्य है, इन दोऊनिकूं प्रकट भिन्न अनुभव करतेहू तुम शरीरविषैं ममत्व मति करो । कैसाक है शरीर? क्षुधा तृषा रोग शोक वियोगादि करि आत्माकै महान् दुःख उपजावनेवाला है अर सक्लेशका उपजावनेवाला है, तातैं ज्ञानभावनाकूं पायकरिकैहू अब शरीरमें ममता करना योग्य नहीं है ॥ गाथा-

सव्वं अधियासंतो । उवसग्गविधिं परीसहविधिं च ॥
णिस्संगदाए सहिह । असंकिलेसेण तं मोहं ॥ ७१ ॥

अर्थ— हे मुने! समस्त उपसर्गके प्रकारनिकूं अर समस्त क्षुधा तृषा रोगादिकतैं उपजै परीषहनिके भेदनिकूं निःसंगपणाकरि सहते जो तुम, सो अब संक्लेशपरिणाम-रहित होयकरिकै मोहकूं कृश करो ॥ गाथा ॥

ण वि कारणं तणादी । संथारो ण वि य संघसमवाउ ॥

साधुस्स संकिलेसं- । तस्स य मरणावसाणम्मि ॥ ७२ ॥

अर्थ— मरणके अवसरमें संक्लेश करता साधूकै सल्लेखनाको कारण तृणादिकनिका संस्तर नहीं है अर समस्तसंघका समूहभी नहीं है, संक्लेशपरिणामका धारक जीवकै तृणादिकनिका संस्तर वृथा है, संघका संबंधहू कार्यकारी नाहीं । संक्लेशरहित मंदकषायी वीतरागीविना सल्लेखनामरण नहीं होय है ॥ गाथा—

जह वाणियआ सागर- । जलम्मि णावाहिं रयणपुण्णाहिं ॥
पट्टणमासण्णा वि हु । पमादमूढा विवज्जंति ॥ ७३ ॥
सल्लेहणाविसुद्धा । केई तह चेव विविहसंगेहिं ॥
संथारे विहरंता । वि संकिलिट्ठा विवज्जंति ॥ ७४ ॥

अर्थ— जैसैं वणिक् समुद्रके जलके मध्य रत्ननिकरि भरी नांवकरिकै गमन करि पत्तनके समीप प्राप्त भयाहू प्रमादतैं समुद्रमें डूबि नाशकूं प्राप्त होय है; तैसैं केई जीव उज्वल सल्लेखना धारण करतेहू नाना प्रकारके रागद्वेष मोहादिक भावरूप परिग्रह करिकै संक्लेशपरिणामी भये संते संस्तरमें प्रवर्ततेहू संसारसमुद्रमें डूबे हैं ॥ गाथा—

सल्लेहणापरिस्सम- । मिमं कयं दुक्करं च सामण्णं ॥
मा अप्पसोक्खहेदुं । तिलोगसारं विणासेहि ॥ ७५ ॥

अर्थ— हे मुने! अनशनादि तपकरि कीया जो सलेखनाका परिश्रम तथा तीन लोकमें सार स्वर्गमोक्षका देनेवाला जो दुःखकरिकैहू करनेकूं अशक्य ऐसा साधुपणा ताहि अल्प जो आहारका सुख ताके निमित्त विनाश मति करो ॥ भावार्थ— आहारका अत्यंत अल्प सुख तिसके निमित्त आहारकी वांछाकरिकै तीन लोकमें उत्कृष्ट ऐसा साधुपणा अर सलेखना इनिका नाश करना योग्य नही, तातैं अलपकाल जीवन रह्या है, सो अब आहारकी वांछा त्यागि परमसंयमभावमें यत्न करो ॥ गाथा—

धीरपुरिसपण्णत्तं । सप्पुरिसणिसेवियं उवणमित्ता ॥
धण्णा णिरावयक्खा । संथारगया णिसंज्जंति[1] ॥ ७६ ॥

[1] शेरते

अर्थ— उपसर्ग अर परीषहनिकूं प्राप्त होतेहू जिनका धैर्य नही छूट्या ऐसे धीरपुरुषनिकरि उपदेश्या अर सत्पुरुषनिकरि सेवन कीया ऐसा रत्नत्रयमार्गकूं प्राप्त होयकरिकै अर धन्यपुरुष आहारादिक शरीरादिकमें वांछारहित भये संस्तरमें प्राप्त हुये शुद्ध होय हैं.

तह्मा कलेवरकुडिं । पव्वोढवत्ति णिम्ममो दुक्खं ॥
कम्मफळमुवेक्खंतो । विसहसु णिव्वेदणो चेव ॥ ७७ ॥

अर्थ— तातैं भो कल्याणके अर्थी हो! इस कलेवरकुटीकूं अत्यंत त्यागनेयोग्य है ऐसैं जानहू। अर यो देहकलेवर हमारा नही है ऐसैं ममतारहित भये तिष्ठो।

बहुरि कर्मके फलमैं उदासीन भये वेदनारहितकीनाईं दुःखकूं सहना योग्य है ॥ गाथा—

इय पण्णविज्जमाणो । सो पुव्वं जायसंकिलेसादो ॥
विणियत्तंतो दुक्खं । पस्सइ परदेहदुक्खं वा ॥ ७८ ॥

अर्थ— निर्यापकाचार्यनिकरि इसप्रकार भेदविज्ञानकूं प्राप्त कीया जो क्षपक, सो पूर्वैं अज्ञानभावतैं उपज्या जो संक्लेश, तातैं निवृत्त हुवा, जैसैं परके देहमें उपज्या दुःख आपकूं नहीं प्राप्त होय; तैसैं अपनी देहमें उपज्या दुःखकूंहू परके देहका दुःखकीनाईं देखे है ॥ गाथा—

रायादिमहड्ढियया- । गमणपउंगेण चावि माणिस्स ॥
माणजणणेण कवयं । कायव्वं तस्स खवयस्स ॥ ७९ ॥

अर्थ— जैसैं राजादिक महान् ऋद्धिके धारकनिके आगमनकरिकै अभिमानी शूरवीर होय सो वक्तर पहरिकरिकै युद्धकूं तयार होय है; तैसैं क्षपकहू ऐसैं चिंतवन करे है— हमारी धीरता देखनेकूं ये महान ऋद्धिके धारक वीतराग मुनि मेरे निकट आये हैं, अब जो इनके अग्रभागविषैं प्राण जाय है तो यथेच्छ जावो, परंतु धैर्यकूं त्यागि व्रतभंग करि धर्मकूं लज्जित नहीं करूंगा। ऐसैं उत्तमपुरुषनिके संसर्गतैं कायरहू धैर्यरूप वक्तर धारणकरि कर्मनितैं जुध्द करनेकूं उद्यमी होय है ॥ गाथा—

इच्चेवमाइकवचं। भणियं उस्सग्गियं जिणमदम्मि ॥
अववादियं च कवचं। आगाढे होइ कायवं ॥ १६८० ॥

अर्थ— जिनेंद्रके मतविषैं इत्यादिक उत्सर्गिक कवच कह्यो अर अपवादिक कवच (विशेषरूप कवच) आगाढ जो निश्चितमरण तिसविषैं करना योग्य है ॥ गाथा–

जह कवचेण अभिज्जे-। ण कवचिउ रणमुहम्मि सत्तूणं ॥
जायइ अलंघणिज्जो। कम्मसमत्थो य जिणदि य ते ॥ ८१ ॥

अर्थ— जैसैं अभेद्य वकतरकरिकै सज्या हुवा जोध्दा संग्रामके अग्रभागविषैं वैरीनिकै अलंघ्य होय है–वैरीनिके शस्त्रनिकरि नही घात्या जाय है, प्रहरणादि क्रियामैं समर्थ होय है; तैसैं कवच वर्णन कीया तिसकूं हृदयमें धारण करता पुरुषहू कर्मवैरीनिकरि घात्या नही जाय है अर कर्मके मारनेमें प्रहरणादिक्रिया करनेमें समर्थ होय है अर कर्मवैरीनिकूं जीतत है ॥ गाथा–

एवं खवउ कवचे-। ण कवचिउ तह परीसहरिऊणं ॥
जायइ अलंघणिज्जो। झाणसमत्थो य जिणदि य ते ॥ ८२ ॥

अर्थ— ऐसैं क्षपक कवचकरिकै सहित हुवो परीषहरूप वैरीनिकै अलंघ्य होय है अर ध्यानमें समर्थ होय है अर कर्मवैरीनिकूं जीतत है ॥ गाथा–

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषैं कवच नामा पैंतीस
अधिकार एकसो चहोत्तरि गाथानिमैं समास कीया ॥ अत्र चोदह गाथानिकरि समत
नामा छत्तीसमां अधिकारनैं वर्णन करे हैं ॥ गाथा—

एवं अधियासंतो । सम्मं खवउं परीसहे एदे ॥
सव्वत्थ अपडिबद्धो । उवेदि सव्वत्थ समभावं ॥ ८३ ॥

अर्थ— ऐसैं वीतरागगुरुनिकरि धारण कराया जो कवच तिसका प्रभावकरिकै
क्षुधा तृषा रोग वेदनादिक परीषहनिकूं संक्लेशरहित परमसमताकरि सहता जो क्षपक
सो शरीविषैं वसतिकाविषैं सकलसंघविषैं वैयावृत्य करनेवालेनिविषैं और समस्त
क्षेत्रकालादिविषैं रागद्वेषरहित हुवा कोऊमैंहू परिणामनिकरि नही बंधनरूप होता
परमसमताकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा—

सव्वेसु दव्वपज्जय- । विधीसु णिच्चं ममत्तिदो विजढो ॥
णिप्पणयदोसमोहो । उवेदि सव्वत्थ समभावं ॥ ८४ ॥

अर्थ— जो साधु समस्त द्रव्यपर्यायनिके विकल्पनिविषैं शाश्वत ममत्वरहित है,
अर स्नेह द्वेष मोहकरि रहित है, सो सर्वत्र समभावकूं प्राप्त होय है ॥ भावार्थ— संसारमें
जितने वस्तु ग्रहणमें आवे हैं, तितने सर्व मोतैं अन्य हैं—मेरा नाहीं ऐसैं निर्मम होय

जिसकै कछू चेतन अचेतन पदार्थमैं राग द्वेष मोह नही होय है, सोही समभावकूं प्राप्त होय है ॥ गाथा—

संजोगविप्पउगे- । सु जहदि इट्ठेसु वा अणिट्ठेसु ॥
रादि अरदि उस्सुगत्तं । हरिसं दीणत्तणं च तहा ॥ ८५ ॥

अर्थ— बहुरि जो कवचकरिकै धैर्य धारण कीया जो साधु सो संयोगमें तो रति नही करे है, अर वियोगमें अरति नही करे है, इष्टवस्तुके संयोगमें उत्सुकता तथा हर्ष नही करे है अर अनिष्टवस्तुके संयोगविषैं दीनपणाकूं तथा विषादकूं त्यागत है ॥

मित्तेसु य णादीसु य । सिस्से साधम्मिए कुळे चावि ॥
रागं वा दोसं वा । पुव्वं जायं पि सो जहइ ॥ ८६ ॥

अर्थ— मित्रनिविषैं तथा स्वजनादिकनिविषैं तथा शिष्यनिविषैं साधर्मीनिविषैं कुलविषैं पूर्वैं उपज्याहू रागद्वेष ताहि कवच धारण करता साधु त्यागे है ॥ गाथा—

भोगेसु देवमाणु- । स्सगेसु ण करेइ पत्थणं खवउ ॥
मग्गो विराधणाए । भणिउ विसयाभिलासोत्ति ॥ ८७ ॥

अर्थ— कवचकरिकै दृढ भया जो साधु सो देवमनुष्यनिके भोगनिविषैं वांछा नही करे है । जातैं विषयनिमैं अभिलाप है सो मार्ग जो रत्नत्रयधर्म तथा दशलक्षण-

धर्मकी विराधनाका कारण है, ऐसैं जिनेंद्रभगवान् कह्या है ॥ गाथा—

इट्ठेसु अणिट्ठेसु य । सद्दफरिसरसरूवगंधेसु ॥
इहपरलोए जीविद- । मरणे माणावमाणे च ॥ ८८ ॥
सव्वत्थ णिव्विसेसो । होदि तदो रागदोसरहिदप्पा ॥
खवयस्स रागदोसा । हु उत्तमट्ठं विणासंति ८९ ॥

अर्थ— जो वीतरागकवच धारण करे है सो मुनि इष्ट अनिष्ट जे शब्द स्पर्श रस रूप गंध पंचेंद्रियनिके विषय तिनाविषैं तथा इसलोक परलोकविषैं तथा जीवन-मरणविषैं तथा मानापमानविषैं रागद्वेषरहित हुवा सर्वविषैं समान होय है। जातैं इस जगतमें जेते इंद्रियनिके विषय हैं, तेते पुद्गलद्रव्यके पर्याय हैं अर ज्ञानानंदस्वरूप जो मैं तातैं भिन्न हैं, अब मैं कौनसैं रागद्वेष करूं? यातैं जैनका यति समस्त पर-द्रव्यनिमैं अर इंद्रियनिके विषयनिमैं रागद्वेषरहित होय है। ये रागद्वेष हैं ते साधूका उत्तमार्थ जो आराधनामरण ताका विनाश करे हैं ॥ गाथा—

जदि वि य से चरिमंते । समुदीरदि मारणंतियमसायं ॥
सो तह वि असंमूढो । उवेदि सव्वत्थ समभावं ॥ १६९० ॥

अर्थ— यद्यपि जो क्षपकके अंतकालविषैं मरणपर्यंत दुःख उदीरणाकूं प्राप्त होय,

तोहू मोहरहित हुवा समस्तदुःखमें तथा दुःखसुखकी सामग्रीमैं समभावकूं प्राप्त होय है ॥

एवं सुभाविदप्पा । विहरइ सो जाव वीरियं काए ॥
उट्ठाणे सयणे वा । णिसीयणे वा अपरिदंतो ॥ ९१ ॥

अर्थ— ऐसैं आचार्यनिके निकट भलैप्रकार भाया है आतमा जानैं, ऐसा क्षपक, सो जितनैं अपनी शक्ति बणी रहै, तितनैं शरीरमें तथा उठनेमें शयनमें आसनमें खेदरहित हुवा प्रवर्त्तन करै ॥ भावार्थ— जितनैं अपनी शक्ति रहै, तितनैं गमनमें आगमनमें शयनमें आसनमें परका सहाय नही चाहै, आपनैं करनेयोग्य कार्य आपही करै ॥ गाथा—

जाहे सरीरचिट्ठा । विगदत्थामस्स से पदणुभूदा ॥
देहादिविउसग्गं । सवत्तो कुणइ णिरवेक्खो ॥ ९२ ॥
सेज्जं संथारं पा- । णयं च उवधिं तहा सरीरं च ॥
विज्जाविच्चकरा वि य- । वोसरइ समत्तमारूढो ॥ ९३ ॥

अर्थ— क्षपककै जिसकालमें शरीरका बल नष्ट होवै—शरीरकी चेष्टा गमन आगमन तथा उठनेमें बैठनेमें अति अल्प रहि जाय, तिस कालमें समस्तमें वांछारहित हुवा देहादिकनिका त्याग करै, अर समस्तरत्नत्रयमें आरूढ हुवा संता शय्या संस्तर

पानक उपकरण तथा शरीर अर वैयावृत्यके करनेवालेनिकाहू त्याग करै ॥ भावार्थ– शरीरकी चेष्टा घटिजाय तदि शय्या संस्तर देहादिकमें ममताभाव छांडिकरिकै अर वैयावृत्य करनेवालेनिमैंहू त्यागरूप होय है, इनका संयोगमें राग नहीं करै, वैयावृत्य करावनेमैंहू राग त्यागे है ॥ गाथा–

अवहट्ट कायजोगे। व विप्पउंगे य तत्थ सो सब्वे ॥
सुद्धे मणप्पउंगे। होइ णिरुद्धस्स वसियप्पा ॥ ९४ ॥

अर्थ— तिस अवसरमें समस्त कायके योगनिनैं अर वचनके प्रयोगनिनैं निराकरण करिकै रोक्या है अन्यविषयनिमैं प्रचार जानैं, ऐसा मनकूं शुद्ध होत संते समस्तपर-द्रव्यनिमें प्रवृत्ति त्यागि चित्तकूं अपने वशि करि एकाग्र चित्तनिरोधरूप होय है ॥

एवं सव्वत्थेसु वि। समभावं उवगउं विसुद्धप्पा ॥
मित्ती करुणं मुदिद-। मुविखं खवउं पुण उवेदि ॥ ९५ ॥
जीवेसु मित्तचिंता। मित्ती करुणा य होइ अणुकंपा ॥
मुदिदा जदि गुणाचिंता। सुहदुक्खवियासणसुविक्खा ॥ ९६ ॥

अर्थ— इसप्रकार समस्तपदार्थनिमैं समभावकूं प्राप्त भया अर उज्वल है चित्त जाका ऐसा जो क्षपक, सो मैत्री अर करुणा अर मुदित अर अपेक्षा कहिये मध्यस्थता

इनक प्राप्त होय है। सो ये च्यारि भावना कौन कौन स्थानमें करिये सो कहे हैं- चतुर्गतिमें अनादिके परिभ्रमण करते अर अनंतानंत दुःख कर्मके वशी होय भोगते ये संसारी जीव, इनकै दुःखका अभाव होहू, कोऊ प्राणीमात्रकै दुःख मति होहू, ऐसें समस्त एकेंद्रियादिक प्राणीनिके विषैं मनवचनकायकरिकै दुःखकी उत्पत्तीका अभाव चिंतवन करना, सो मैत्रीभावना है ॥ बहुरि शारीर-मानस दुःखादिककरिकै पीडित जे रोगी जन वा बंदिगृहमें बंधनमें पडे तथा क्षुधा तृष्णा शीत उष्णकरिकै पीडित तथा निर्दयनिकरि ताडनारूप कीये तथा अपने जीवितकूं इच्छा करते वा दीन जन तिनविषैं जो उपकार करनेका वा अनुग्रह करनेका वा दुःख हरनेका परिणाम, सो करुणाभावना है ॥ अथवा ये संसारी जीव मिथ्यात्व अविरति कषाय अशुभयोगनिकरि अशुभकर्म उपार्जन कीये हैं तिनके वशतैं अनंत जन्म मरण जरा रोग शोक इष्टवियोग अनिष्टसंयोग दारिद्र्य विषयानुराग तीव्रकषायनिकरि दुःख भोगे हैं; इनका मिथ्यात्वरागादिक दूरि करनेमें उपकारबुद्धिका प्रवर्तन होना, सो करुणा है ॥ बहुरि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र सम्यक्तप दानशीलादिक गुणानिके धारकनिकूं देखि तथा चिंतवन करि मनवचनकायमें आनंद-रूप होना, दर्शनस्पर्शनकी वांछा करना; गुणनिमें अनुराग करना, सो मुदितभावना

है ॥ बहुरि तीव्रकषायी जीवानिमैं तथा व्यसनी हटग्राही मिथ्यादृष्टि आपथापी पापमें प्रवीण दुष्ट धर्मके द्रोही जीव तिनविषैं रागद्वेषरहित होय उनकै सुखदुःख नही चाहना मध्यस्थ रहना राग प्रीती नही करना अर द्वेष वैरहू नही करना, सो उपेक्षा भावना है ॥

इति सविचारभक्तप्रत्याख्यानमरणके चालीस अधिकारनिविषैं समता नामा छत्तीसमां अधिकार चौदह गाथानिकरि समाप्त कीया ॥ अब ध्यान नामा सैंतीसमां अधिकार दोयसै सात गाथानिकरि कहे हैं ॥ तिनमैं शुभध्यानसामान्यकूं बारह गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

दंसणणाणचरित्तं । तवं च विरियं समाधिजोगं च ॥
तिविहेणुवसंपज्जि य । सव्वुवरिल्लं कमं कुणइ ॥ ९७ ॥

अर्थ— दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, अपनी शक्तीको नही छिपावना सो वीर्य, चित्तकूं एकाग्र विकल्परहित करना सो समाधियोग इनकूं जो मुनि मनवचनकायकरि अंगीकार करे है, सो सर्वोत्कृष्ट क्रियाकूं करे है ॥ अब शुभध्यानमें प्रवर्तनेका इच्छक ताकै परिकर दिखावे हैं ॥ गाथा—

जिदरागो जिददोसो । जिदिंदिउ जिदभउ जिदकसाउ ॥
रदिअरदिमोहमहणो । झाणोवगउ सदा होइ ॥ ९८

अर्थ— जीते है पांचूं इंद्रियनिके विषयमें राग जानैं, अर जीते है समस्त चेतन अचेतन पदार्थनिमें द्वेष जानैं, अर जैसैं पांचूं इंद्रिय अपने अपने विषयनिमैं नही जाय सके तैसैं जीते हैं पंच इंद्रिय जानैं, अर जीते है इसलोकका तथा परलोकका मरणका वेदनाका अनारक्षाका अगुप्तिका अकस्मातका सातप्रकार भय जानैं, अर जीते हैं क्रोध मान माया लोभ कषाय जानैं, अर रतिभाव तथा अरतिभाव अर मोहभाव इनका कीया है नाश जानैं, सो पुरुष ध्यानमें सदाकाल प्राप्त होय हैं ॥ गाथा–

धम्मं चउप्पयारं । सुक्कं च चदुविधं किलेसहरं ॥
संसारदुख्खभीउ । दुण्णि वि झाणाणि सो झादि ॥ ९९ ॥

अर्थ— संसारके दुःखानितैं भयभीत जो क्षपक, सो क्लेशका नाश करनेवाला जो च्यारिप्रकारका धर्मध्यान तिसकूं तथा च्यारिप्रकारका शुक्लध्यान ताकूं ऐसैं दोयप्रकार ध्यान ध्यावत है ॥ गाथा–

ण परीसहेहिं संता- । विउ वि सो झाइ अट्टरुद्दाणि ॥
सुट्ठुवहाणे सुध्दं । पि अट्टरुद्दा विणासंति ॥ १७०० ॥

अर्थ-- अनेकप्रकारके क्षुधा तृषा रोगादिक परिषह तिनकरि बाधा कीया हुवाहू क्षपक आर्त रौद्र दोऊ जे अशुभध्यान तिनकूं नहीं ध्यावे है। जातैं आर्त रौ

ये दोऊ जे अशुभध्यान, ते सम्यक् उपयोगमैं प्राप्त होय शुद्धहू जो क्षपक ताका नाश करे है! तातैं प्राणनिके हरनेवालाहू परीषह उपसर्गनिका संताप आवते संते क्षपक आर्त रौद्र दुर्ध्यानकूं नही प्राप्त होय है ॥ गाथा—

अट्टं चउप्पयारे। रुद्दे य चउव्विधे य जे भेदा ॥
ते सव्वे परियाणइ। संथारगउ तउ खवउ ॥ १ ॥
अमणुण्णसंपउगे। इट्ठविउए परीसहणिदाणे ॥
अट्टं कसायसहियं। झाणं भणियं समासेण ॥ २ ॥

अर्थ— संस्तरकूं प्राप्त भया जो क्षपक, सो च्यारिप्रकारके अर्तध्यानकूं तथा च्यारिप्रकारके रौद्रध्यानकूं अर तिनके समस्तभेदनिकूं जाने है, जानेविना अनादिकालके दोऊ दुर्ध्यान आत्मगुणके घात करे हैं, इनतैं छूटना कैसैं होय? इनमें आर्तध्यानके भेदनिकूं ऐसैं जानना—

अमनोज्ञवस्तुका संयोगतैं उपज्या जो परिणाममें संक्लेश, सो अनिष्टसंयोगज नामा आर्तध्यानका भेद है ॥ १ ॥ बहुरि इष्टवस्तूके वियोगतैं उत्पन्न भया जो संक्लेश, सो इष्टवियोगज नामा आर्तध्यानका भेद है ॥ २ ॥ बहुरि क्षुधा तृषा रोगादिककी वेदनातैं उत्पन्न भया जो संक्लेश, सो वेदनाजनित आर्तध्यानका भेद

है ॥ ३ ॥ बहुरि भोगनिकी अभिलाषाकरि उपज्या जो संक्लेश, सो निदान नामा आर्तध्यानका चौथा भेद है ॥ ४ ॥ सो कषायसहित आर्तध्यान संक्षेपतैं वर्णन कीया ॥ इहां ऐसें जानना– जो ऋत जो दुःख, तातैं उपज्या ध्यान, तिसकूं आर्तध्यान कहिये हैं ॥

अब अनिष्टसंयोगज नामा आर्तध्यानका किंचित् विशेष ऐसैं जानना– जे अपना स्वजन, धन, शरीरकूं नाश करनेवाले जे अग्नि, जल, पवन, विष, शस्त्र, सर्प, हस्ती, सिंह, व्याघ्र, दुष्ट राक्षस, तथा स्थलके जीव जे क्रूर महिषादिक, जलके जीव जे दुष्ट मत्स्यादिक, अर बिलके जीव जे मूषकादिक, तथा दुष्ट राजा, तथा वैरी, तथा भील, चोर, लुटेरे, तथा दुष्ट स्त्री, कपूतपुत्र, दुष्टबांधवादिक इनके संयोगतैं, तथा देखनेतैं, श्रवण करनेतैं, तथा चिंतवन करनेतैं, तथा निकट प्राप्त होनेतैं उपज्या जो मनकै संक्लेश सो अनिष्टसंयोगज प्रथम आर्तध्यान है ॥

अनिष्टसंयोग होय है, तब परिणाममें बडा संक्लेशदुःख उपजे है अर यहही चिंतवन लग्या रहे है " जो, मेरै इसका वियोग कैसें होय? कदि होयगा? कहा करूं? कोनसूं कहूं? कहां जाऊं? ऐसा विकल्प पापबंधका कारण तिसकूं अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान कह्या है। सो सम्यग्दृष्टीकै अनिष्टसंयोग होय, तब ऐसैं चिंतवन करै– हे आत्मन्! पदार्थका सत्यार्थस्वरूप चिंतवन करो, इस जगतमें कोऊ वस्तूहू अनिष्ट

नहीं है, अपना किया पापकर्म एक अनिष्ट है, सो पापकर्म उदय आय अनिष्ट-संयोगरूप रस दे है, नरकनिमैं असंख्यातकालपर्यंत अनिष्टकाही संयोग रह्या, तथा तिर्यंचगतिमैं परस्पर कलह तथा मारण तथा वध बंधन लादन वाहन अंगच्छे-दनादिककरि अनिष्टसंयोग बहुत अनंतकाल भोगे, तथा विकलत्रयनिकी बाधा भोगी, अब तुमारै नवीन अनिष्ट कहा प्राप्त भया है? तातैं अब परमसमताभाव अंगीकार करो-जो, संसारमें वास करैगा, तिसकै तो अनिष्टसामग्री प्रगट हुयाई करेगी, तातैं अन्य-पदार्थनिमैं द्वेषबुद्धि छांडि एक दुष्टकर्मके नाश करनेमें परम उद्यम करो, तुमारै पुण्यका उदय आवता तो ये स्त्रीपुत्रबांधवादिक दुष्ट कैसे होते? तातैं संसारमें समस्त पुण्यपापकी रचना है। पाप उदय आवै तादि अपना इष्ट, मित्र, प्यारी स्त्री, सपूत पुत्र, हितकारी बांधव ये समस्त वैरीरूप होय महादुःखकूं देइ मारे है! तातैं कोऊ जगतमें अनिष्ट इष्ट नहीं है। ये दुष्टकर्म वैरि हैं इनको अनिष्ट जानहू। वृथा पर-पदार्थमें अनिष्टका संकल्प करि वैर बांधि दुर्गतिका कारण अशुभकर्मका बंध मति करो

बहुरि अपने प्यारे पुत्रका, स्त्रीका, मित्रका, बांधवका, तथा चित्तकूं प्रीति करनेवाला राज्यका, तथा ऐश्वर्य तथा भोग उपभोगका, तथा नगर ग्राम महल मकान धन वस्त्र परिग्रहका वियोग होतैं जो शोक क्लेश भ्रम भयका उपजना सो इष्टवियोगज आर्तध्यान

है ॥ ३ ॥ बहुरि भोगनिकी अभिलाषाकरि उपज्या जो संक्लेश, सो निदान नामा आर्तध्यानका चौथा भेद है ॥ ४ ॥ सो कषायसहित आर्तध्यान संक्षेपतैं वर्णन कीया ॥ इहां ऐसैं जानना— जो ऋत जो दुःख, तातैं उपज्या ध्यान, तिसकूं आर्तध्यान कहिये हैं ॥

अब अनिष्टसंयोगज नामा आर्तध्यानका किंचित् विशेष ऐसैं जानना— जे अपना स्वजन, धन, शरीरकूं नाश करनेवाले जे अग्नि, जल, पवन, विष, शस्त्र, सर्प, हस्ती, सिंह, व्याघ्र, दुष्ट राक्षस, तथा स्थलके जीव जे क्रूर माहिषादिक, जलके जीव जे दुष्ट मत्स्यादिक, अर बिलके जीव जे मूषकादिक, तथा दुष्ट राजा, तथा वैरी, तथा भील, चोर, लुटेरे, तथा दुष्ट स्त्री, कपूतपुत्र, दुष्टबांधवादिक इनके संयोगतैं, तथा देखनेतैं, श्रवण करनेतैं, तथा चिंतवन करनेतैं, तथा निकट प्राप्त होनेतैं उपज्या जो मनकै संक्लेश सो अनिष्टसंयोगज प्रथम आर्तध्यान है ॥

अनिष्टसंयोग होय है, तब परिणाममें वडा संक्लेशदुःख उपजे है अर यहही चिंतवन लग्या रहे है " जो, मेरै इसका वियोग कैसैं होय? कदि होयगा? कहा करूं? कोनसूं कहूं? कहां जाऊं? ऐसा विकल्प पापबंधका कारण तिसकूं अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान कह्या है । सो सम्यग्दृष्टीकै अनिष्टसंयोग होय, तब ऐसैं चिंतवन करै— हे आत्मन्! पदार्थका सत्यार्थस्वरूप चिंतवन करो, इस जगतमें कोऊ वस्तूहू अनिष्ट

नहीं है, अपना किया पापकर्म एक अनिष्ट है, सो पापकर्म उदय आय अनिष्ट-संयोगरूप रस दे है, नरकनिमें असंख्यातकालपर्यंत अनिष्टकाही संयोग रह्या, तथा तिर्यंचगतिमें परस्पर कलह तथा मारण तथा वध बंधन लादन वाहन अंगच्छेदनादिककरि अनिष्टसंयोग बहुत अनंतकाल भोगे, तथा विकलत्रयनिकी बाधा भोगी, अब तुमारै नवीन अनिष्ट कहा प्राप्त भया है? तातैं अब परमसमताभाव अंगीकार करो. जो, संसारमें वास करैगा, तिसकै तो अनिष्टसामग्री प्रगट हुयाई करेगी, तातैं अन्य-पदार्थनिमैं द्वेषबुद्धि छांडि एक दुष्टकर्मके नाश करनेमें परम उद्यम करो, तुमारै पुण्यका उदय आवता तो ये स्त्रीपुत्रबांधवादिक दुष्ट कैसे होते? तातैं संसारमें समस्त पुण्यपापकी रचना है। पाप उदय आवै तदि अपना इष्ट, मित्र, प्यारी स्त्री, सपूत पुत्र, हितकारी बांधव ये समस्त वैरीरूप होय महादुःखकूं देइ मारे है! तातैं कोऊ जगतमें अनिष्ट इष्ट नहीं है। ये दुष्टकर्म वैरि हैं इनको अनिष्ट जानहू। वृथा पर-पदार्थमें अनिष्टका संकल्प करि वैर बांधि दुर्गतिका कारण अशुभकर्मका बंध माति करो

बहुरि अपने प्यारे पुत्रका, स्त्रीका, मित्रका, बांधवका, तथा चित्तकूं प्रीति करनेवाला राज्यका, तथा ऐश्वर्य तथा भोग उपभोगका, तथा नगर ग्राम महल मकान धन वस्त्र परिग्रहका वियोग होतैं जो शोक क्लेश भ्रम भयका उपजना सो इष्टवियोगज आर्तध्यान

है ॥ हाय! अब मेरा इष्ट कैसैं प्राप्त होय? कहा देखूं? कौनसूं कहूं? कहां जाऊं? कैसैं जीऊं? मेरा आधार कोन रह्या! कोनका सरणा लेऊं? वडा दुःसहदुःखकूं कैसैं भुगतूं? इत्यादिक संक्लेश इष्टके वियोगतैं होय है ॥ वडे वडे ज्ञानवान् शूर वीर धैर्यके धारकनिके हृदय इष्टके वियोगतैं फाटिजाय है! धैर्य छूटि जाय है! ऐसैं इष्टवियोगज आर्तध्यानकूं एक सम्यग्ज्ञानीही जीते है ॥

सो सम्यग्ज्ञानी इष्टका वियोग होतैं ऐसैं चिंतवन करे है— इस जगतमें कोऊ वस्तु इष्ट अनिष्ट है नही, अपने रागभावतैं इष्ट माने है, द्वेषभावतैं अनिष्ट माने है, पुण्य उदय आवै तदि समस्त इष्ट होय परिणमे है, पाप उदय आवै तदि अनिष्ट होय परिणमे है, संसारमें जितने इष्टनिके संबंध भये हैं तितनेका वियोग अवश्य होयगा। तातैं अब इष्टके वियोगमें शोच करना पापबंधका कारण है, अर समस्त चेतन अचेतन वस्तूमैं मेरा अनेकवार संयोग होय होय वियोग भया है, अनेकवार मित्रके शत्रु भये, शत्रूके मित्र भये, कोऊ मेरा अनादिका शत्रु मित्र है नही, समस्त अपने अपने मुतलबके विषयकषायके निमित्त शत्रुमित्रपणा करे हैं। वहुरि समस्तवस्तु पर्यायार्थिकनयकरि विनाशिक हैं, मै अज्ञानी परद्रव्यनिमैं मोहकरि वृथा ममता करि राखी है। जो मेरी दीर्घ आयु है, तदि तो अनुक्रमकरि वियोग होयगा।

आजि माताका, आजि पिताका, आजि स्त्रीका, आजि पुत्रका, आजि मित्रका, बांधवका ऐसैं समस्तनिके अपने अपने आयूके अनुसार निश्चयकरि वियोग होयगा। अर मेरी अल्प आयु है तो समस्तनिसूं एकैकाल वियोग होयगा। जातैं मेरा मरण होई तदि समस्तका वियोग एक क्षणहीमैं होय, तातैं परवस्तुमैं ममताभावकरि संसारमें परिभ्रमण करनेका कारण जो कर्मबंध ताकरि दुःखकूं अंगीकार करना उचित नही है। मै अनादिका एकाकी हूं, एकाकी आया हूं, एकाकी जाऊंगा, तातैं इष्टवस्तूका वियोगमें पश्चात्ताप करनेवरोवरि अन्य मूर्खता नही है॥

बहुरि कास, श्वास, ज्वर, उदर, भगंदर, उदरशूल, शिरःशूल, नेत्रशूल, अतिसार कोढ, वात, पित्त, कफ इत्यादिक क्षणक्षणमैं वृद्धीनैं प्राप्त होते जे रोग तिनकरिकैं परिणाममें जो व्याकुलताका उपजना, सो रोगार्त्त नामा आर्त्तध्यान है। तथा मेरै यो रोग कैसैं मिटै! कहा करूं! कोनसूं इलाज कराऊं! कोन वैद्य मेरा दुःख मेटै! तथा कोऊ देवता मेरी सहाय करै! वा मंत्रतंत्र औषधि मणि मुद्रा मंडलादिककरि मेरा दुःख हरनेवाला कोऊ प्राप्त होजाय! ऐसा निरंतर संक्लेशरूप परिणामनिका होना सो वेदनाजनित आर्त्तध्यान दुर्गतिका कारण है॥ सम्यग्दृष्टि रोगादिकनिकूं उपजतैं ऐसैं चिंतवन करे है– जो, मेरै तो बडा रोग ज्ञानावरणादिककर्म है! सो मेरा स्वरूपकूं

पराधीन करि राख्या है! अर संसारमें अनंतानंतकालतें जन्ममरणादिक करावे है! अर यो शरीरही रोग है, जिसमैं शाश्वती क्षुधावेदना तृषावेदना शीतवेदना उष्णवेदना रोगवेदना निरंतर उपजे हैं। कैसाक है शरीर? सात धातु सात उपधातूका पिंड है, अर महादुर्गंधमय अनेकरोगनिकरि भरया है, ऐसा देहमें, वसिकरि नीरोगपणा चाहना वडी मूर्खता है! अर एक रोग मिट्या तो दूसरा और उपजेगा, मेरा पूर्वकर्मजनित उदय है, कायर होय भोगूंगा तो रोग नही छोडेगा धैर्यधारण करूंगा तो नही छांडेगा, कर्मके उदयकूं मेटनेकूं कोन समर्थ है? जगतमें देव, दानव, इंद्र, धरणेंद्र, जिनेंद्र कर्मके उदयकूं टालनेकूं समर्थ नही है! कर्म हरनेकूं अर कर्म देनेकूं कोऊ जगतमें समर्थ है नही; तातैं रोगमें आकुलता करि अशुभ तिर्यंचगतिका कारण कर्मका दृढबंध करना उचित नही। जैसैं भगवान् ज्ञानी मेरै होना देख्या है, तैसैं होयगा। यो रोग है सो देहमें है, देहका घात करैगा, मेरा रूप अविनाशी ज्ञानदर्शनमय आत्मा तिसका नाश करनेमें समर्थ नही; तातैं रोगमें आर्तध्यान करना तिर्यंचगतिका कारण है ॥

वहुरि जो भोगनिके अर्थि देवपणा, इंद्रपणा, तथा राजापणा श्रेष्ठीपणी चाहना; सो निदान नामा आर्तध्यान है। तथा आपकै भोगसामग्रीकी वांछा करना, तथा

रूपकी वांछा करना, ऐश्वर्य चाहना, जगतमें अतिविख्यात कीर्ति चाहना, तथा जिनेंद्र चक्रवर्त्ती नारायणपदकूं चाहना, तथा वैरीनिकरी रहित राज्य चाहना, तथा रूपवती स्त्रीनिकूं चाहना, तथा आपका सत्कार पूजा चाहना, तथा वैरीनिका दुष्टनिका नाश चाहना, तथा शत्रुनिके घातके अर्थि बलवीर्यादिककी वांछा तथा दीर्घकाल जीवनेकी इच्छा सो निदान नामा आर्त्तध्यान है॥

सो सम्यग्ज्ञानी परवस्तूकी वांछा नही करे है, भोगनिके सुख हैं, ते सुखाभास हैं, अज्ञानी जीवनिकूं सुख भासे हैं। ये भोग हैं, राज्य हैं, धन हैं, ते कर्मके आधीन हैं; पुण्य उदय होय तो प्राप्त होय, पूर्वजन्मकृत पुण्यका उदय नही होय तो कोटि कष्ट करै तोहू लेशमात्रभी प्राप्त नही होय हैं। अर ये भोग प्राप्त भयेहू अतितृष्णा आकुलताके बधावनहारे हैं, तथा विनाशीक हैं, अंतरंगमें चाहकी अति दाह उपजे है तादि इनकूं ग्रहण करे है। ये भोग असातावेदनीयजनित उपज्या दुःख तिसका किञ्चिन्मात्र काल उपशमन करनेका इलाज हैं। जिमकूं गरमी व्यापे है, तिसकूं शीत पवन भली भासे है। जिसकै क्षुधावेदना पीडा करै, तिसकूं भोजन सुखकारी भासे है। जिसकै तृषावेदना पीडा करै, तिसकूं शीतल जल सुख भासे है। जिसकूं शीतवेदना कामवेदना पीडा करेगी, तिसकूं अग्नीका तपना रुईके वस्त्र पहरना स्त्रीसंगम करना

सुख भासे है। जाकै वेदनाही नही ताकै यह भोगरूप इलाज कैसैं सुख करे? तातैं पांच इंद्रियनिके विषय सुखरूप नही हैं॥

जिसनैं निराकुलतालक्षण वेदनारहित स्वाधीन अविनाशी अंतररहित अप्रमाण आत्मिकसुखका अनुभव नही कीया, सो पुरुष विषयनिके अर्थि दीन हुवा दुःखहीकूं सुख माने है। यह भोगसंपदा अभिमान वधावे है, मद उपजावे है, अपना रूपकूं भुलावे है, दीनता करावे है, तातैं दुःखही है, ऐसैं वस्तूका स्वरूपकूं यथार्थ जानता जो सम्यग्दृष्टि सो याप्रकार चिंतवे है- जो, परद्रव्य मेरा कदाचित्‌ही होय नही, मै चेतन, ये विषय जडरूप, मेरै इन दुःखकारी विषयनिसूं कहा संबंध? मै अनंतज्ञान अनंतसुखरूप हूं, मैरै इनकरि अनादिकालसूं दुःखही उपज्या, तातैं मोकूं इंद्र अहमिंद्रलोककी संपदाहू महादुःखरूप बंधनरूप भासे है, ऐसैं चिंतवन करते सम्यग्दृष्टि आगामी वांछारूप निदान नही करे है॥ ऐसैं च्यारिप्रकारकरिकै आर्त्तध्यान संक्षेपकरि वर्णन कीया। अर जीवनिके अभिप्राय असंख्यात हैं तथा अनंतजीवनिकी अपेक्षा अनंते परिणाम हैं, तिस अपेक्षा आर्त्तध्यानके असंख्यात अनंत भेद हैं, तिनकूं जाननेकूं कहनेकूं भगवान्‌ केवलीही समर्थ है, अन्य समर्थ नही है॥

यो आर्त्तध्यान कहूं रागी द्वेषी मोही जीवनिकूं रमणीक भासे है, तथापि परिपाककालमें

अपथ्य भोजनकीनाई महादुःख उपजावनेवाला है, अर कृष्णादिक अशुभलेश्यानिके बलकरि उत्पन्न होय है ॥ पंचमगुणस्थानताईं तो च्यारि भेद होय हैं, अर प्रमत्तगुणस्थानके धारककै निदान नही होय है । तीन भेद छट्ठे गुणस्थानपर्यंत कदाचित होय हैं; परंतु सम्यग्दृष्टीकै अपना तथा परपदार्थका सम्यग्ज्ञान है, तातैं अर कषायनिकी मंदतातैं कदाचित् किंचिन्मात्र होय है; परंतु जैसैं विपरीतग्राही मिथ्यादृष्टीकै तिर्यंचगतिका कारण होय, तैसैं नही होय है । अनादिकालका संक्लेशपरिणामनिके संस्कारतैं प्राणीनिकै विनायत्नही आर्तध्यान उपजे है, अर अनंतदुःखनिकरि सहित तिर्यंचगतिमैं परिभ्रमण होना याका फल है, अर याका अंतर्मुहूर्तकाल है, अंतर्मुहूर्तपाछै अन्य आर्त्त रौद्र पलट्या करे है! अर याके बाह्यचिह्न ऐसे जानने— भयवान् होना, शोकमैं मग्न होना, चिंता करना, शंका करना, प्रमादी होना, कलह करना, भ्रमरूप होना, वारंवार निद्राका आवना, आलस्य लेना, विषयांमैं उत्कंठित होना, अचानक अबुद्धिपूर्वक वचन बोलि ऊठना, शरीरमैं जाड्यता होना, खेदरूप रहना, दीर्घनिश्वास नाखना, हाहाकारकरि ऊठना, वेखबरि होई जाना इत्यादिक अनेक संतापक्लेशरूप चिह्न आर्त्तध्यानके भगवान् परमागममें वर्णन कीये हैं; तातैं भगवान् वीतरागका धर्म धारण करि आर्त्तध्यानके परिणामनिकूं प्राप्त मति होहू ॥ अब रौद्र-

ध्यानका स्वरूप संक्षेपकरि कहे हैं ॥ गाथा–

तेणिक्कमोससार- । रक्खणेसु तह चेव छव्विधारंभे ॥
रुद्दं कसायसहियं । झाणं भणियं समासेण ॥ ३ ॥

अर्थ— परधन हरण करनेमें, असत्यप्रवृत्ति करावनेमें, तथा परिग्रहका रक्षणमें, तथा छकायके जीवनिकी विराधनेमें रौद्र कषायसहित परिणाम होय, सो संक्षेपकरि रौद्रध्यान भगवान् कह्या है ॥ अब इहां किंचित् विशेष ऐसा जानना– रौद्र जो तीव्र कषायके परिणामनिकरि उपज्या जो चिंतवन, सो रौद्रध्यान है । सो हिंसानंद, मृषानंद, चौर्यानंद, परिग्रहानंद ये च्यारि भेदकरि संयुक्त है ॥ तिनमें हिंसानंदकूं कहे हैं ॥

जिसका निरंतर निर्दयी स्वभाव होय; स्वभावहीतें क्रोधाग्निकरि तप्तायमान होय; तथा धनका, बलका, ऐश्वर्यका, ज्ञानका, कुलका, जातिका, रूपका, कलाविज्ञान, पूज्यता इत्यादिकनिके मदकरि उद्धत होयकरिकैं जगतकूं तृणसमान लघु देखता होय; तथा जिसकी बुद्धि पाप करनेमें प्रवीण होय; महाकुशीली खोटे स्वभावका धारक होय; धर्मका, पापका, पुण्यका, जीवका, परलोकका अभाव मानता होय; नास्तिकमार्गी होय; तथा एकब्रह्मरूप समस्तकूं श्रद्धानकरि परलोकका अभाव माननेवाला होय; तथा जीवका अभाव कहनेवाला ऐसा ब्रह्माद्वैतवादी होय; तथा बाह्य समस्तपदार्थ ग्रहणमें

आवे हैं, तिनका अभाव कहनेवाला; ज्ञानाद्वैतवादी होय; एक ज्ञानविना अन्य सर्व अपने आत्माका, तथा परके आत्माका, तथा स्वर्ग, नरक, नगर, ग्राम, पृथ्वी, आकाश, काल, पुद्गलके अभावकूं कहनेवाला ज्ञानाद्वैतवादी कहे हैं– समस्तवस्तु जगतमें दीखे हैं, सो भ्रम है, एक ज्ञानमात्रही है, बाह्यवस्तु भ्रमसौं जान्या जाय है, वस्तुत्वकरि ज्ञानविना कोऊही पदार्थ नांहीं; तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, पवनरूप जे भूतचतुष्टय, तातैं आत्माकी उत्पत्ति मानि परलोकका तथा पापपुण्यका अभाव माननेवाला चार्वाकमतके धारकहू नास्तिकही हैं; ये ब्रह्माद्वैतवादी, तथा ज्ञानाद्वैतवादी, तथा चार्वाक नास्तिक परलोकका अभाव कहनेवाले जीवके घातमें, मांसका भक्षण करनेमें पाप नहीं सरधान करे हैं! ये हिंसामैं आनंद मानते हिंसानंद नामा रौद्रध्यानमें प्रवर्ते हैं ॥

तथा आपकरिकै वा परकरिकै प्राणीनिका समूह नाशकूं प्राप्त होतैं वा पीडाकूं प्राप्त होतैं विध्वंस होतैं जो हर्षका करना, सो हिंसानंद नामा रौद्रध्यान है ॥ जिसकै हिंसाके कर्ममें प्रवीणता होय, तथा पापरूप उपदेश देनेमें निपुणता होय, तथा नास्तिकमतमें निपुणता होय, अर दिनदिन प्रति हिंसामैं आसक्तता, अर निर्दयीनिके संगमें वसना, अर स्वाभाविक क्रूरताकूं प्राप्त होना, सो हिंसानंद नामा रौद्रध्यान है ॥ बहुरि जाकै ऐसा विचार रह्या करै— जो, ये मेरे वैरी दाइयादार दुष्ट

मनुष्यनिका मरना कोन उपायकरि होय? इनकूं मारनेमें कौन समर्थ है? इनके मारनेमें कौनकै राग है? इनसैं कौनका वैर है? ये कदि मारे जायगे? ऐसें कोऊ निमित्तके जाननेवाला ज्योतिषीनिकूं पूछनेका चिंतवन करना, तथा ये मरि जायगे वा इनकूं कोऊ मारि नाखै तो हम बहुत ब्राह्मणनिकूं भोजन करावै तथा अनेक-देवतानिका बडा उत्सवसहित पूजन करै वा बडा दान देवै ऐसैं चिंतवन करना, सो हिंसानंद नामा रौद्रध्यान है ॥

तथा जिसकै जलके जीव मारनेमें कौतुक होय–हर्ष होय; तथा आकाशमें गमन करनेवाले काक, चोल, चिंडी, शूवा इत्यादिक अनेकपक्षीनिके मारनेमें उत्साह होय; तथा जाकै पृथ्वीमें विचरनेवाले मृग, सूकर, सिंहव्याघ्रादिकनिके मारनेमें उपाय तथा उत्साह तथा चिंतवन होय; तथा जीवनिकूं शस्त्रतैं मारनेमें, बाणनितैं वेधनेमें, परस्पर लडायनेमें, चामके उपाडनेमें जीवनिके नेत्र उपाडनेमें, नख उपाडनिमें, जिह्वा निकालि लेनेमें, इंद्रिय उपाडनेमें, अग्निमें दग्ध करनेमें, जलमें डबोय देनेमें, पर्वतादिकनितैं गरेनेमें, नासिका छेदनेमें, हस्तपाद काटनेमें, समस्तकुटुंबकूं मारनेमें, नानाप्रकारकी ताडन मारण छेदनादिककरि त्रास देनेमें हर्ष होय कौतुक होय उपाय होय सो समस्त हिंसानंद नामा रौद्रध्यान है ॥

बहुरि संग्राममें इसकी जीति होहू इसकी हारि होहू इत्यादिक हिंसाननंद नामा रौद्रध्यान है ॥ बहुरि प्राणीनिका मरण, तथा तिरस्कार, तथा नानाप्रकारकी ताडना देखिकरिकै वा श्रवण करिकै वा चिंतवन करिकै जो आनंद होय है, सो नरकके ले जावनेवाला हिंसानंद नामा रौद्रध्यान है ॥ इस वैरीनैं मेरा अपमान कऱ्या है, धन हऱ्या है, मेरे मित्रनिकूं तथा कुटुंबकेनिका घात कीया है, तथा मेरी आजीविका हरी है—बिगाडी है, मेरी जमीजायगा बलात्कारकरि हरी है, मेरी हास्य करी है, गाली दीई है, मेरी निंदा अपवाद कीया है, अब कोऊ दैवका सानुकूलपणातैं मेरा अवसर आवतैं वा कोई मेरा सहायी होजाय; तो इसकूं नानाप्रकारकी त्रास देई मारि मेरा बदला लेऊं तदि मेरा जीवना सफल है, वै दिन धन्य है ऐसैं चिंतवन करता रहै; तिसकै हिंसानंद नामा रौद्रध्यान होय है ॥ कहा करूं? मेरी शक्ति बिगडि गई! कोऊ मेरा सहायी रह्या नहीं, धन भी नहीं रह्या, अवसर बिगडि गया, तातैं ये मेरे वैरी जीवे हैं! इनका नाम सुणूं हूं अर इनका उदय देखूंहूं तदि मेरे हृदयमें अग्नि बले है! दाह उपजे है! अब मेरा अवसर नहीं, अवसर आवै तो इसकूं ऐसैं कैसैं रहने द्यूं? परलोकताईं मारूंगा ऐसा चिंतवन सो हिंसानंद है ॥

इस दुष्टवैरीका नाश होहू! इसका स्त्रीपुत्र मरि जावो! इसका मूलसूं विनाश

होजावो? इसनैं मोकूं दुःख दीया है, इसकूं भगवान् ईश्वर दुःख देवैगा ऐसा चिंतवन करना सो हिंसानंद नामा रौद्रध्यान है ॥ बहुरि अन्यजीवनिकै दुःख आपदा अपमान अपकार देखिकरिकैं मनमें आनंद मानना, तथा अन्यजीवांकै विघ्न आवता आनंद मानना सो हिंसानंद नामा रौद्रध्यान है ॥ बहुरि अन्यजीवांकै सुख देखि, तथा गुण देखि, तथा अन्यजीवांका जस श्रवणकरि, वा उच्चता देखिकरि परिणाममें संक्लेश करना ईर्षा करना सो हिंसानंद नामा रौद्रध्यान है ॥ बहुरि पृथ्वीका आरंभ करि हर्ष करना; तथा जलके आरंभ, जलका छिडकनेरि, तथा जलमें मग्न होना, तिरना इत्यादिकरि आनंद मानना; तथा अग्नीका आरंभ, पवनका आरंभ, वनस्पतिका आरंभ छेदन-काटनकरि आनंद मानना: तथा अनेक बागवननिमैं विहार करिकैं आनंद मानना; तथा अत्तर फुलेल पुष्पमालादिकनिके आरंभकरि हर्षित होना; तथा कामसेवनकरि हर्षित होना; तथा अभक्ष्यभक्षण करि हर्षित होना; तथा विवाहादिक महाहिंसाके आरंभादिकका आरंभकरि आनंद मानना; तथा सुंदर भोजन, वाहन, गमन आगमनकरि आनंद मानना; सो समस्त हिंसानंद नामा रौद्रध्यान है ॥ बहुत कहनेकरि कहा? संसारी जीवनिकै जे हिंसाके विकल्प हैं, तितने हिंसानंद नामा रौद्रध्यान हैं ॥ बहुरि हिंसाके कारण आयुधादिक उपकरण ग्रहण करना, तथा हिंसक जीव

जे श्वान, मार्जार, चिता, सिंह, व्याघ्र, वाज, सिकरा, चिडी, काक, चील, शूवा, मैना, तीतर, कूकडा इत्यादिक दुष्टजीवनिकूं पालना रक्षा करना; लढावना; प्रीति करना; सो समस्त हिंसानंद नामा दुर्ध्यान है ॥

अब मृषानंद नामा दूसरा रौद्रध्यानकूं कहे हैं ॥ असत्यकी कल्पना करि जिसका चित्त मलिन है तिसकै मृषानंद नामा रौद्रध्यान होय है ॥ मेरे माहि ऐसा सामर्थ्य है, जो, लोकनिकूं कपटके शास्त्रनिकरि अनेक हिंसादिकनिके मार्गनिमैं लगाय बहुत धन उपार्जन करि इंद्रियजनित सुख भोगने; तथा मेरी वचनकलाके प्रभावकरि सांचेकूं झूंठा करूंगा अर झूंटेकूं सांचा करूंगा; अर वचनकी चातुर्यताके बलकरि लोकनितैं धन, तथा हस्ती, घोडे, वस्त्र, सुवर्ण, आभरण, ग्राम, रूपवती कन्या ग्रहण करूंगा, ऐसा चिंतवन जाकै होय; सो मृषानंद रौद्रध्यानका धारक है ॥ तथा असत्यके सामर्थ्यतैं राजनिकरि तथा चोरनिकरि मेरे वैरी हैं तिनका घात कराऊंगा; निर्दोष हैं तिनके दोष प्रकट करदयूंगा; चोरीकरि रहित है तिनमैं चोरी प्रकट करवूंगा; शीलवंतनिकूं जगतमें कुशीली दिखाय द्यूंगा; धनका नाश कराय द्यूंगा; बंदिगृहमें नानाबंधननिकरि मारणकरि त्रास भुगताऊंगा; इत्यादि चिंतवन करना सो मृषानंद नामा रौद्रध्यान है ॥

बहुरि झूंट बोलि आनंद मानना, सत्यार्थधर्मके तथा धर्मके धारीनिके दोष कहि-करि आनंद मानना; तथा झूंट हिंसाके पुष्ट करनेवाले शास्त्र वणाय आनंद मानना; तथा कामकी कथाकरि आनंद मानना; भोजन कथाकरि, स्त्रीनिकी कथाकरि, तथा पापी जीवनिका सामर्थ्य वर्णन करि, तथा हिंसाके आरंभकी प्रशंसा करिकै आनंद मानना; तथा पापरूप कथाके श्रवणकरि आनंद मानना; तथा परनिंदा परकी चुगलीकी वार्ताके कहनेकरि, तथा श्रवणकरि आनंद मानना; तथा चोर दुष्ट म्लेछनिकी कथा करनी, तथा तिनकी कला चतुराई सामर्थ्यकी प्रशंसा करना सो समस्त मृषानंद नामा रौद्रध्यान है ॥ ये मनुष्य मूर्ख हैं, ज्ञानरहित हैं, हेय उपादेयका विचाररहित हैं, इनकूं मेरे वचनकी चातुर्यताकरि नवीन कुमार्गमें प्रवर्तन करावस्यूं इत्यादिक अनेक असत्यके संकल्पकरि जो आनंद उपजे है, सो दुर्गतिमें बहुतकाल परिभ्रमण करनेका कारण मृषानंद नामा रौद्रध्यान जानना ॥ जे संसारके दुःखनितें भयभीत हैं, ते अयोग्यवचनका स्वप्नेहूमें चिंतवन नही करे हैं ॥

अब चौर्यानंद नामा रौद्रध्यानकूं कहे हैं ॥ जो चोरीका उपदेश देनेमें निपुणपणा, तथा चोरी करनेमें प्रबलपणा, तथा चोरी करनेके उपायमें चित्तका रहना, सो चौर्यानंद रौद्रध्यान है ॥ बहुरि चोरीके अर्थि वारंवार चिंतवन करना, अर चोरी करि बहुत हर्षित

हर्षित होना, अर चोरी करि अन्य कोऊ अन्यका धन हरण कीया होय तिसमैं हर्षित होना, सो चौर्यानंद है ॥ बहुरि जिसकै ऐसा चिंतवन लग्या रहै- अब मै कोऊ शूरवीर पुरुषका सहाय पायकरिकैं तथा नानाप्रकारके उपायनिकरिकैं लोकनिका बहुतकालतैं संचय कीया धनकूं ग्रहण करस्यूं, बहुरि ऐसैं चिंतवन करै- जो, मेरे इसका धन कैसैं हाथि लगै? कैसैं ये अचेत गाफिल होय? वा कोई मर्मका जाननेवाला मेरै सामिल होय तदि मेरे हाथि प्रचुर धन आवै, ऐसा चिंतवन सो चौर्यानंद है ॥ बहुरि कोईप्रकार मेरै गाड्या धन हाथि लगिजाय, वा भूल्या पऱ्या किसीप्रकार परधन आवै, तदि मेरा जीवना बुद्धि कलादिक समस्त सफल है, जगतमैं न्यायका धन कोऊकै आवै नही, जगतमैं जो सुख देखिये है सो तो परके धनहीतैं है, बहुरि अन्यायतैं धन आवै जिसमैं बडा पुरषार्थ वा भाग्य वा बुद्धीकी तीव्रता मानि आनंद करना; तथा बहुमोलकी वस्तु थोडे मोलमैं लेय आनंद मानना इत्यादिक समस्त चौर्यानंद रौद्रध्यान साक्षात् नरकगतिका कारण है ॥

अब परिग्रहानंद रौद्रध्यानका विशेष कहे हैं ॥ जो पुरुष बहुत आरंभमैं तथा बहुत-परिग्रहमैं रक्षाके अर्थि उद्यम करै, अर बहुत परिग्रह होय तदि आपकूं धन्य मानै-कृतार्थ मानै, मै राजा हूं प्रधान हूं ऐसैं मानना सो परिग्रहानंद रौद्रध्यान है ॥ बहुरि ऐसैं

चिंतवन करै, जो, मै पुरुषनिमैं प्रधानपुरुष हूं, जैसा मेरा ऐश्वर्य है तैसा औरनिकै नाही, मै बडे पुरुषार्थकरि अनेकवैरीनिका मारण करि यह विभव उत्पन्न कीया है, तथा अपने गृहमें तिष्ठती नानाप्रकारकी सामग्री तथा महल उद्यान रत्न सुवर्ण स्त्री पुत्र वस्त्र शय्या आसन असवारी पयादे सेवक इनकूं देखि चिंतवन करि आनंद मानना सो परिग्रहानंद है ॥ जो परिग्रह वधाय आनंद मानना, सो दुर्गतिका कारण परिग्रहानंद दुर्ध्यान है ॥ इसका विशेष परिग्रहत्याग महाव्रतमें कहेही है। इहां विशेष लिख्ये कथन वधि जाय ॥

ये च्यारि प्रकारके रौद्रध्यान कृष्णलेश्याकरि सहित हैं, इनका फल नरकमें गमन करना है। क्रोधकी तीव्रता, क्रूरवचनका बोलना, पैलेकूं ठिगनेमें कुशलता, कठोरता, निर्दयता ये रौद्रध्यानके चिह्न हैं। तथा अग्नीके फुलिंगेसमान नेत्रका होना, तथा भ्रकुटीकी वक्रता करना, भयानक आकृतिकरि शरीरका कंप होना, पसेवनिका आवना इत्यादिक रौद्रध्यानतैं देहमें चिह्न प्रकट होय हैं ॥ यो रौद्रध्यान क्षायोपशमिक भाव है, इसका अंतर्मुहूर्त काल है, दुष्ट अभिप्रायके वशतैं होय है, खोटे अवलंबनतैं उपजे है, धर्मरूप वृक्षकूं दग्ध करनेवाला है, जिसका अंतःकरण परिग्रह आरंभ कषायादिककरि मलिन होय ताकै उपजे है, देशविरतगुणस्थानपर्यंत होय है ॥ ऐसैं संसारप-

रिभ्रमणके कारण आर्त्तरौद्रकूं जानि इनका त्याग करि परिणाम उज्वल करना श्रेष्ठ है ॥

अवहट्ट अट्टरुद्दे । महाभए सुग्गदीए पच्चूहे ॥
धम्मे सुक्के य सदा । होदि समण्णागदमदीउं ॥ ४ ॥

अर्थ— नरकादिकमैं प्राप्ति करनेतैं महान् भयके करनेवाले अर शुभगतिके नष्ट करनेकूं महाविघ्नके कारण ऐसे आर्त्तरौद्र दोऊ दुर्ध्याननिकूं त्यागिकरिकै; अर धर्मध्यान शुक्लध्यानमें सम्यग्बुध्दीकूं प्राप्त करनेवाला सदाकाल होहू ॥ गाथा—

इंदियकसायजोगणि- । रोधं इच्छं च णिज्जरं विउलं ॥ चित्तस्स य वसियत्तं । मग्गादु अविप्पणासं च ॥ ५ ॥ किंचिवि दिट्ठिमुपाव- । त्तइत्तु झाणे णिरुध्ददिट्ठीउं ॥ अप्पाणं हि सदिं स- । छित्ता संसारमोक्खट्ठं ॥ ६ ॥ पच्चाहरित्तु विसए- । हिं इंदियाइं मणं च तेहिंतो ॥ अप्पाणम्मि मणं तं । जोगं पणिधाय धारेदि ॥ ७ ॥ एयग्गेण मणं रुं- । भिऊण धम्मं चउव्विहं झादि ॥ आणापायविवाग- । विचयं संठाणविचयं च ॥ ८ ॥

अर्थ— जो इंद्रियनिकूं वश करना, अर कषायका निग्रह करना, अर योगनिका निरोधकी इच्छा करत है, तथा प्रचुरनिर्जराकी इच्छा करत है, तथा चित्तकूं आपके

वशी कीया चाहे है, तथा रत्नत्रयमार्गतैं नही छूट्या चाहे है; तो, किंचित् बाह्यपदार्थनितैं दृष्टिसंकोच करिकै, अर शुभध्यानमें अंतर्दृष्टिकूं रोकिकरिकै, अर संसारका अभावके अर्थि आत्माविषैं स्मरण जोडिकरिकै, अर विषयनितैं इंद्रियनिकूं रोकिकरिकै अर इंद्रियनितैं मनकूं रोकिकरिकै, अर योग्य वीर्यांतरायका क्षयोपशम विचारिकरिकै, अर मनकूं आत्मामैं धारण करै; सो मनकूं एकाग्र रोकिकरिकैं, अर आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय च्यारिप्रकार धर्मध्यानकूं ध्यावत है ॥ भावार्थ–जो इंद्रियनिका तथा कषायनिका निग्रह चाहै, तथा प्रचुरनिर्जरा चाहे, तथा चित्तका वशीकरण चाहै, तथा रत्नत्रयमार्गतैं नही छूट्या चाहै, सो अभ्यंतर आत्मदृष्टिकरिकै अर इंद्रियनिकूं विषयनितैं रोकिकरिकैं अर इंद्रियनितैं मनकूं रोकिकरिकै अर धर्मध्यानमें चित्तकूं रोकै ॥ गाथा–

धम्मस्स लक्खणं से । अज्जवलहुगत्तमद्दवोवसमो ॥
सुत्तस्सुवदेसेण । णिसग्गउं अत्थरुचिगो से ॥ ९ ॥

अर्थ— तिस धर्मध्यानका लक्षण आर्जव कहिये कपटरहित सरलता है, तथा निष्परिग्रहता ताकूं लघुत्व कहिये भाररहितपणा कहिये है, तथा जात्यादिक अष्टप्रकार मदका अभाव सो मार्दवधर्मका लक्षण है, तथा उपशमभाव कहिये कषा-

यनिकी मंदता है, तथा जिनेंद्रके सूत्रका उपदेश करना, तथा स्वभावतैंही पदार्थनिमैं
सत्यार्थ रुचि ये धर्मके लक्षण जानने ॥ भावार्थ- जो कपटका अभावकरि सरलताका
प्रकट होना, तथा परिग्रहरहित होई आत्मामैं लघुत्वगुण प्रकट करना, तथा अष्टम-
दरहित होई मार्दव अंग धरना, कषायनिकी मंदता करना, जिनसूत्रका उपदेश
करना, तथा जिनेंद्रके उपदेशे सत्यार्थपदार्थनिमैं श्रद्धान करना ये धर्मके लक्षण हैं,
इनतैं धर्म जाण्या जाय है, इन गुणनिविना धर्म नही होय है ॥ गाथा-

आलंवणं च वायण- । पुच्छणपरिवट्टणाणुवेहाउ ॥
धम्मस तेण अविरु- । ध्दाउ सव्वाणुपेहाउ ॥ १७१० ॥

अर्थ— धर्मध्यानका आलंबन पंचप्रकारका स्वाध्याय है- वाचना, पृच्छना, परिव-
र्त्तन, अनुप्रेक्षा अर इनतैं अविरुध्द समस्त अनुप्रेक्षानिका भावना ये धर्मध्यान
करनेका बाह्य अभ्यंतर अवलंबन है ॥ भावार्थ- धर्मध्यानका प्रधान अवलंबन
पंचप्रकारका स्वाध्याय है । तिनमैं निर्दोष ग्रंथ अर निर्दोष अर्थका धर्मानुरागी होइ
पठनपाठन करना, सो वाचना है ॥ अर अपने संशयके दूरि करनेके अर्थि, तथा
पदार्थनिका निश्चय होनेके अर्थि, वा विशेष जाननेके अर्थि, तत्त्वका निर्णयके अर्थि,
उद्धततारहित विसंवादरहित महाविनयसंयुक्त वात्सल्ययुक्त अंजुली जोडिकरि बहुश्रुती-

निकूं प्रश्न करना, सो पृच्छना नाम स्वाध्याय जानना ॥ वहुरि जिनसूत्रकी ज्ञातातें सम्यक् ज्ञानवान गुरुनिके संयोगतैं परमार्थभूत जान्या हुवा अर्थका मनकरि वारंवार अभ्यास करना-चिंतवन करना, सो अनुप्रेक्षा नाम स्वाध्याय है ॥

वहुरि शब्द अर अर्थ गुरुनिकी परिपाटीतैं शुद्ध उच्चार करना, पाठ करना, सो आम्नाय नामा स्वाध्याय है ॥ वहुरि अपनी विख्याततानूं नहीं इच्छा करता धर्मोपदेश करे, तथा धर्मका उपदेश देइ भोजनका लाभ धन संपदा वसतिकादिकाका लाभ नहीं इच्छा करता तथा अपनी पूजा मान्यता नहीं इच्छा करता केवल अपना अर परका कल्याणके अर्थि समस्त जीवनिका हित करनेवाली जे धर्मकथा तिनका उपदेश करना, सो धर्मोपदेश नाम स्वाध्याय है ॥

ऐसैं पंचप्रकारका स्वाध्याय धर्मध्यानका अवलंबन है, सो ग्रहण करना योग्य है ॥ अव च्यारिप्रकारका धर्मध्यानमें आज्ञाविचय नामा धर्मध्यानकूं कहे हैं ॥ गाथा—

पंचेव अत्थिकाया । छज्जीवणिकाये दव्वमण्णो य ॥
आणागेज्झे भावे । आणाविचयेण विचिणादि ॥ ११ ॥

अर्थ— पंच अस्तिकाय- जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश इनिकूं अस्तिकाय कहिये हैं ॥ जातैं उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीनपरिणतिकरि युक्त होइ, सो अस्ति है,

ताकूंही सत् कहिये हैं। जामैं उत्पाद व्यय ध्रौव्य नही सो सत्‌ही नही। समस्तवस्तु
सर्वथा नित्य नही है सर्वथा क्षणिक नही है। सर्वथा नित्य वस्तुकै अनुक्रमतैं वर्तते जे
पर्याय, तिनका अभावतैं विकारवान्‌पणाका अभाव होई-परिणतिरहित होइ। अर
सर्वथा क्षणविनाशिकही मानिये तो प्रत्यभिज्ञानका अभाव होय है, या वस्तु वाही है
ऐसैं कहना नही बणै। तथा कोऊकूं बालक अवस्थामैं देखि बहुरि दशवर्षपाछैं देख्या
तादि जाण्या, जो, "वै दशवर्ष पहली बाल्य अवस्थामैं देख्या था, सोही यह है."
क्षणविनाशीकमैं ऐसा प्रत्यभिज्ञान नही होय है। तातैं प्रत्यभिज्ञानका कारण
कोऊस्वरूपकरिकै ध्रौव्यपणाकूं अवलंबन करता अर कितने पर्याय क्रमकरिकै प्रवर्तते
तिनकरिकै विनाश अर उत्पाद एककाल अवलंबन करता ऐसैं एकसमयमें उत्पाद व्यय
ध्रौव्य तीन परिणतिकूं धारण करते वस्तूकूं 'सत्' ऐसा जानना योग्य है। जैसैं
घटपर्यायका नाश होना, सोही कपालपर्यायका उत्पाद है; अर कपालका उत्पाद होना,
सोही घटपर्यायका नाश है; अर मृत्तिका दोऊ पर्यायनिमैं ध्रुव है। तातैं घटका नाश
होनेका अर कपालका उत्पाद होनेका अर मांटीकी ध्रुवताका काल भिन्न नही है॥
बहुरि घटमें समयसमय सूक्ष्मपरिणति उपजे है अर विनशे है, अर मृत्तिकाकरिकै
ध्रौव्य है। जो पर्यायार्थिक नयकरिकैंहू नही उपजे है अर नही विनसे है, तो नवीन

घट था सो पुराणा कैसें होइ? तातैं अर्थपर्याय तो समयसमयमें उपजे है अर विनसे है। अर व्यंजनपर्याय जो स्थूलपर्याय सो बहुतकालमें विनसे है। जैसैं घटपर्याय तो व्यंजनपर्याय है, सो बहुतकालमें विनसै, परंतु अर्थपर्याय तो घटमें समयसमय उपजे विनसे है। जैसैं मनुष्यपर्याय तो व्यंजनपर्याय है सो आयुपर्यंत एक रहे है अर व्यंजनपर्याय समयसयमयविषैं भिन्नभिन्न उपजती निरंतर असंख्यात उत्पन्न होइहोइ विनसे है अर द्रव्य ध्रुव रहे है॥ यातैं समस्त जे जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश इनि पांचनिमैं उत्पाद व्यय ध्रौव्य है, तातैं इनकूं 'अस्ति' कहिये हैं। अर जाका प्रदेश बहुत होय, ताकूं काय कहिये। सो एक जीवके असंख्यात प्रदेश हैं अर पुद्गल संख्यातप्रदेश तथा असंख्यातप्रदेश तथा अनंतप्रदेशकूं धारण करे है। अर धर्मद्रव्य तथा अधर्मद्रव्यके असंख्यात असंख्यात प्रदेश हैं। आकाशके अनंत प्रदेश हैं। अर बहुप्रदेशीकूं काय कहिये हैं। अर जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश ये बहुप्रदेशी हैं तातैं इनकूं अस्तिकाय कहिये हैं। इनकै उत्पादव्ययध्रौव्यपणातैं तो अस्तिपणा है अर बहुप्रदेशीपणातैं कायपणा है, तातैं इनकूं अस्तिकाय कहिये हैं। अर कालाणूनिकै उत्पादव्ययध्रौव्यतातैं अस्तिपणा तो है, परंतु बहुत प्रदेश नहीं, तातैं कायपणा नहीं, यातैं कालकूं अस्तिपणातैं द्रव्यनिमैं तो कह्या अर कायनिमैं नहीं कह्या। जातैं

जे अपनेअपने गुणपर्यायनिकूं समयसमय प्राप्त होइ, तिनकूं द्रव्य कहिये । अर जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये छहूही समयसमय एकपरिणतिकूं छांडे हैं अर नवीन ग्रहण करे हैं अर आप ध्रुव रहे हैं; तातैं इनकूं द्रव्य कहिये हैं । अर कालकै द्रव्यपणा तो है, परंतु एकप्रदेशी है–बहुतप्रदेशी नही तातैं कायपणा नही । यातैं द्रव्य तो छहप्रकार है अर अस्तिकाय पांचही हैं, तिनकूं भगवान सर्वज्ञ वीतरागकी आज्ञातैं 'आज्ञाविचय' धर्मध्यानकरिकैं चिंतवन करै ॥

बहुरि पृथ्वीही है काय जिनकै ऐसे पृथ्वीकाय, अर जलही है काय जिनकै ते अप्कायिक, अर अग्नि है काय जिनकै ऐसे अग्निकायिक जीव, अर पवन है काय जिनकै ते जीव पवनकायिक, अर वनस्पति है काय जिनकै ते वनस्पतिकायिक ये तो पंचप्रकार स्थावर अर द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय इनकूं त्रस कहिये हैं । इन छकायनिमैं जिनेंद्रकरि देख्या हुवा जीव है । तातैं जीवनिकी छकाय अर जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये षड्द्रव्य, ये सर्वज्ञकी आज्ञाकरि ग्रहण करनेयोग्य 'आज्ञाविचय' धर्मध्यानमैं चिंतवन करै ॥ गाथा–

कल्लाणपावगाणो- । पाए विचिणादि जिणमदमुवेज्ज ॥
विचिणादि वा अवाए । जीवाण सुभे य असुभे य ॥ १२ ॥

अर्थ— जिनेंद्रमतकूं प्राप्त होयकरिकै अर आपकै कल्याणप्राप्ति होनेके उपायनिकूं चिंतवन करै. सो उपायविचय धर्मध्यान है ॥ भावार्थ- मेरा कल्याण कैसैं होय? जिनेंद्रभगवान् मेरा हित होनेका उपाय कैसा कह्या है? मेरा राग द्वेष मोह कैसैं मंद होय? मेरा शुद्ध वीतरागभाव कैसैं प्रकट होय? ऐसैं चिंतवन करना, सो उपायविचय धर्मध्यान है ॥ अथवा मेरे अशुभ मनवचनकायका अभाव कैसैं होय, तथा जीवनिके शुभ अशुभ बंधका नाश चाहना, सो अपायविचय धर्मध्यान है। मेरे अशुभकर्मका नाश जिस अवसर होइ, तिस अवसर मेरा कल्याण है। ऐसैं कर्मका नाश होनेमें उद्यम परिणाम संगति चारित्रकूं अभिलाष करना, सो अपायविचय धर्मध्यान है ॥ गाथा—

एयाणेयभवगदं। जीवाणं पुण्णपावकम्मफळं ॥
उदउदीरणसंकम-। बंधे मोख्खे य विचिणादि ॥ १३ ॥

अर्थ— बहुरि विपाकविचय धर्मध्यानविषैं जीवानिकै एकभवतैं तथा अनेकभवनितैं प्राप्त भया पुण्यपापकर्मका फल तथा उदय उदीरणा संक्रमण बंध मोक्ष इनिकूं चिंतवन करै.

अह तिरियउड्ढलोए। विचिणादि सपज्जए ससंठाणे ॥
इत्थेव अणुगदाउ। अणुपेहाउ वि विचिणादि ॥ १४ ॥

अर्थ— संस्थानविचयधर्मध्यानमें अधोलोक तिर्यग्लोक ऊर्ध्वलोक पर्यायनिकरि
सहित तथा संस्थानकरि सहित तिनकूं चिंतवन करै। अर संस्थानविचय धर्मध्यान-
हीमैं द्वादशभावनाका चिंतवन करै॥

अब द्वादशभावनाका कथन एकसो सत्तावन गाथानिमैं कहे हैं॥ गाथा—

अद्धुवमसरणमेग-। त्तमण्णसंसारलोयमसुइत्तं॥
आसवसंवरणिज्जर-। धम्मं बोधिं च चिंतिज्ज॥ १५॥

अर्थ— १ अध्रुव, २ अशरण, ३ एकत्व, ४ अन्यत्व, ५ संसार, ६ लोक,
७ अशुचित्व, ८ आस्रव, ९ संवर, १० निर्जरा, ११ धर्म, १२ बोधि ये द्वादश
भावना वारंवार चिंतवन करै॥ भावार्थ— ये द्वादश भावना वैराग्यकी माता भग-
वान् तीर्थंकरदेवनिकरि चिंतवन करी हुई समस्त जीवनिके हित करनेवाली, दुःखित
जीवनिकूं शरणभूत, आनंद करनेवाली, परमार्थमार्गकूं दिखावनेवाली, तत्त्वनिका
निश्चय करावनेवाली, सम्यक्त्व उपार्जन करावनेवाली, अशुभध्यानकूं नष्ट करने-
वाली, कल्याणके अर्थीनिकूं नित्यही चिंतवन करना श्रेष्ठ है॥ गाथा—

लोगो विलीयइ इमो। फेणो व सदेवमाणुसतिरिक्खो॥
रिद्धीउ सव्वाउ। सुविणयसंदंसणसमाउ[1]॥ १६॥

१ स्वप्नसंदर्शनसमाः॥

अर्थ— देव मनुष्य तिर्यंचनिकरि सहित यो लोक फेन जो झाग तिसकीनाईं विलय होय है । अर समस्त ऋद्धि हैं ते स्वप्नके दर्शनसमान हैं ॥ भावार्थ— जैसैं जलके झाग वा बुदबुदा देखतें देखतें विलाय जाय है; तैसैं देवनिका देह तथा मनुष्यतिर्यंचनिके देहहू क्षणमात्रमें विलय होय हैं । अर समस्त ऋद्धि संपदा राज्य विभव एक क्षणमें ऐसैं विनसे हैं, जैसैं स्वप्नमें देख्या हुवा बहुरि नही दीखै ॥ गाथा—

विज्जूव चंचलाइं । दिट्ठपणट्ठाइं सव्वसोक्खाइं ॥
जलबुब्बुदंव अधुवा- । णि हुंति सव्वाणि ठाणाणि ॥ १७ ॥

अर्थ— समस्त इंद्रियजनित सौख्य विजुलीवत् चंचल है । जैसैं विजुली पूर्वें दीखै बहुरि नष्ट होजाइ, फिर नही दीखै; तैसैं इंद्रियनिके विषयजनित सुख नष्ट हुवा पाछै बहुरि नही दीखे है । अर समस्त ग्राम नगर गृह मकान जलके बुदबुदेकीनाईं अस्थिर हैं । यातें यह मेरा स्थान है, यह मेरा गृह है, मै इहां वसूं हूं, ये मेरे विषय हैं इंद्रिय हैं, ऐसा संकल्प मति करो । समस्त इंद्रपणा चक्रीपणा विनाशीक जाणि अपना ज्ञानदर्शनस्वरूपमें आपा धारण करो ॥ गाथा—

णावागदा व बहुगइ- । पधाविदा हुंति सव्वसंबंधा ॥
सव्वेसि आसया वि य । अणिच्च जह अब्भसंघायं ॥ १८ ॥

अर्थ— समस्त संबंध कैसे हैं? जैसैं एक नावमैं अनेकदेश अनेकग्रामके पुरुष सामिल होइ बैठे, बहुरि नाव तीरां लागै तदि उतरि नानामार्गकूं प्राप्त होय हैं, तैसैं समस्त कुटुंबके एककुलरूप नावमें सामिल होइ बहुरि आयुके अंतविषैं नानागतिनिकूं प्राप्त होय हैं! बहुरि जिस स्वामी, सेवक, पुत्र, स्त्री, भ्रातानिकै आश्रय होयकरिकै जीवना चाहे है, ते समस्त आश्रय बादलेनिके समूहकीनांई अनित्य हैं—विनाशीक हैं.

संवासो वि अणिच्चो । पहियाणं पिंडणं व छाहीए ॥
पीदी वि अस्थि रागो । व अणिच्चा सव्वजीवाणं ॥ १९ ॥

अर्थ— बंधुजन तथा मित्र तथा परिवारके जननिकरि सहित वसना है सो अनित्य है। जैसैं मार्गमें पथिकनिका समूह एक वृक्षकी छायाकूं प्राप्त होइ बहुरि अपने अपने ग्रामकूं वा अपने अपने मार्गकूं उठि जाय है—बहुरि मिलना नहीं होय है; तैसैं कुटुंबके जन मित्रजनहू एककुलमें एकगृहमें आइ वसे हैं बहुरि अपनी अपनी गतिनिकूं प्राप्त होय हैं—बहुरि नहीं मिले हैं। बहुरि समस्तजनांकी प्रीतिहू नेत्रनिका रागकीनांई अनित्य है॥ भावार्थ- समस्तलोकनिकी प्रीति एक मुतलबकी है, क्षणमात्रमें पलटै है। जैसैं नेत्रनिमें रक्तता एकक्षणमात्रमें पलटै है, तैसी संसारकी प्रीति जाननी ॥ गाथा—

रत्तिं एकम्मि दुमे । सउणाणं पिंडणं व संजोगो ॥

परिवेसो व अणिच्चो। इस्सरियाणाधणारोग्गं ॥ १७२० ॥

अर्थ— जैसैं सूर्यके अस्तसमयविषैं एकवृक्षविषैं अनेक पक्षी इकट्ठे होइ वसे हैं, उनका ऐसा संकेत परस्पर नहीं है— जो, "अपनेतांई इस वृक्षविषैं सामिल रहना" विनासंकेतही अनेकदेशनिके आइ प्राप्त होय हैं, प्रातःकाल नानादेशनिकूं गमन करे हैं; तैसैं संकेतविनाही अनेकगतिनितैं आया कुटुंबीनिका संयोग होय है, वहुरि मरणकूं प्राप्त होइ त्रसस्थावरादि अनेक योनिस्थानकूं प्राप्त होय हैं॥ बहुरि जैसैं चंद्रमासूर्यका कुंडाला होइ विनासि जाय है; तैसैं ऐश्वर्य तथा आज्ञा तथा धन तथा नीरोगपणा विनासि जाय है ॥ गाथा—

इंदियसामग्गी वि अ-। णिच्चा संझा व होइ जीवाणं ॥
मज्झण्णं व णराणं। जोव्वणमणवट्ठियं लोए ॥ २१ ॥

अर्थ— जीवनिके इंद्रियनिकी सामग्रीहू संध्याकालकी लालीकीनांई अनित्य है। क्षणमात्रमें नेत्र नष्ट होइ अंधा होय है, कर्ण नष्ट होइ बधिर होय है, जिव्हा थकि जाय है, हस्तपाद रुकि जाय है। अर लोकविषैं जैसैं मध्यान्हकी छाया टलि जाय है; तैसैं यौवन मनुष्यनिकै थिर नहीं है ॥ गाथा—

चंदो हीणो व पुणो। वड्ढदि एदि य उदू अदीदो वि ॥

ण दु जोव्वणं णियत्तइ । णदीजलमदच्छिदं चेव ॥ २२ ॥

अर्थ— जगतमें कृष्णपक्षमें हीन भया जंद्रमा तो शुक्लपक्षमें बहुरि वृद्धिकूं प्राप्त होय है; अर नक्षत्र अस्त भयाहू बहुरि उदय होय है; अथवा हिम शिशिर वसंत ऋतु इत्यादिक गई हुईहू बहुरि आवत हैं; परंतु यौवन गया हुवा "जैसें नदीका जल गया हुवा नही बाहुडै तैसें" नहीं आवे है ॥ गाथा—

धावदि गिरिणदिसोदं । व आउगं सव्वजीवलोगम्मि ॥
सुकुमालदा वि हायदि । लोगे पुव्वण्हछाही व ॥ २३ ॥

अर्थ— समस्त जीवलोकमें आयु ऐसें निरंतर जाय है– जैसें पर्वतकी नदीका प्रवाह दौडे है । अर देहकी सुकुमारताहू ऐसें नष्ट होय है– जैसें पूर्वाह्णकालकी छाया क्षणमें घटे है ॥ गाथा—

अवरण्हरुक्खछाही । व अहिदं वड्ढदे जरा लोगे ॥
रूवं पि णासइ लहुं । जले व णिहिदल्लयं रूवं ॥ २४ ॥

अर्थ— जैसें अपराह्णकालमें वृक्षकी छाया अथिर जैसें होय तैसें लोकमें वृद्धिनैं प्राप्त होय है; तैसें जरा क्षणक्षणमें वृद्धिनैं प्राप्त होय है ॥ बहुरि कैसी है जरा? जिसनैं आवते संते जैसें जलमें लिख्या रूप शीघ्र विनशि जाय है; तैसें पुरुषका

रूप शीघ्र विनसे है॥ भावार्थ— कैसीक है जरा ? सुंदररूपही जो कूंपल तिनकूं दग्ध करनेकूं दावाग्निसमान है। अर सौभाग्यरूप पुष्पनिके नष्ट करनेकूं गडेनकी वृष्टिसमान है। अर स्त्रीनिकी प्रीतिरूप हरिणीके भक्षण करनेकूं व्याघ्रसमान है। ज्ञाननेत्रके मुद्रित करनेकूं धूलीकी वृष्टिसमान है। अर तपरूप कमलनिके वनकूं नष्ट करनेके अर्थि हिमानीका पतनसमान है। दीनता उत्पन्न करनेकी माता है। तिरस्कारके वधावनेकूं धाईसमान है। अर मृत्युकी दूती है। भयकी प्यारी सखी है। ऐसी जरा लोकनिके मध्य विस्तरे है॥ गाथा—

तेउं वि इंदधणुते- । जसण्णिहो होइ सव्वजीवाणं ॥
दिट्ठपणट्ठा बुद्धी । वि होइ उक्का व जीवाणं ॥ २५ ॥

अर्थ— समस्तजीवनिका तेज है सो इंद्रधनुष्यका तेजसमान है। जैसैं इंद्रधनुष्यका नानारंगनिका तेज प्रकट होइ क्षणमात्रमें विनसे है; तैसैं जीवनिका तेज विनासीक जानना। जीवनिकी बुद्धि है सो बीजलीकीनांई प्रकट होयकरि नष्ट होय है॥ गाथा—

आदिवडइ वलं खिप्पं । रूवं धूलीकदं व रत्थाए ॥
वीची व अद्धुवं वी- । रियं पि लोगम्मि जीवाणं ॥ २६ ॥

अर्थ— बहुरि बल है सोहू जैसैं नगरकी गलीमें धूलीकरिकैं बणाया पुरुषका आकार

सो विनसि जाय; तैसैं शीघ्र पतननैं प्राप्त होय है। अर लोकविषैं जीवोंका वीर्य
जलमें लहरीकीनांईं अथिर है ॥ गाथा—

हिमणिचउ विव गिहसय- । णासणभंडाणि होंति अधुवाणि ॥
जसकित्ती वि अणिच्चा । लोए संज्झब्भरागो व ॥ २७ ॥

अर्थ— लोकके विषैं गृह, शय्या, आसन, भांड, आभरणादिक समस्त हिमनिचय
जो पालका समूह ताकीनांईं अथिर हैं ॥ अर लोकमें पसरी कीर्ति है सोहू संध्याकी
लालीकीनांईं विनाशीक है ॥ गाथा—

किह दा सत्ता कम्मव- । सत्ता सारदियमेहसरिसमिणं ॥
ण मुणंति जगमणिच्चं । मरणभयसमुच्छिया संता ॥ २८ ॥

अर्थ— मरणके भयतैं व्याप्त भये संते अर कर्मके वशकरिकै पीडित ऐसे संसारी
प्राणी इस जगतकूं शरत्का मेघसमान कैसैं अनित्य नही जाणत हैं? इहां औरहू
विशेष कहिये हैं— इस जगतमें जेते पदार्थ नेत्रनिकै गोचर देखीये हैं, ते समस्त वि-
नसेगे। शरीर है सो रोगनिकरि व्याप्त है, ऐश्वर्य विनाशकरि सहित है, इस संसा-
रमें बलभद्र-नारायणका ऐश्वर्य क्षणमात्रमें नष्ट होगया, जिनकी देवनिकरि रची
द्वारावती नगरी नष्ट होती भई, औरनिकी कहा कथा? लक्ष्मी विनाशकरि सहित

जानहू, जीवन मरणकरि सहित है, अर स्त्री पुत्र मित्र कुटुंबादिकनिके जेते संयोग हैं तिनका वियोग निश्चयतैं होयगा, जैसैं इंद्रधनुष्य तथा विजुलीका चमत्कार क्षणभंगुर है तैसैं समस्तसंबंध क्षणभंगुर जानहू ॥ देह बण्या नही रहेगा, बल वीर्य नष्ट होयगे, इंद्रिय विनाशकूं प्राप्त होयगी, तातैं जितनैं इंद्रियबल नष्ट नही होइ अर जरा देहकूं जर्जरा नही करै, तितनैं परमधर्ममें यत्नकरि अपना हित करना श्रेष्ठ है ॥

या लक्ष्मी बडे पुण्यवान् चक्रवर्त्ती तिनकै स्थिर नही रही, तो अन्य रंकनिकी कहा कथा? अतिबलवान्हू मरणरहित नही होय है। नानाप्रकारके भोजनकरि पोषतैं पोषतैंहू शरीर नष्ट होयहीगा। अर ये भोग हैं ते काले नागके फणसमान भयंकर दुर्गतिके दुःख उपजावनेवाले हैं, तोहू थिर नही हैं। अर यो देह स्त्री, पुत्र, मित्र, बांधव अवश्य नष्ट होयगे; तो इनके अर्थि इस लोकमें वृथा पापबंधकरि नरकमें गमन करना श्रेष्ठ नही। स्त्री पुत्र मित्रादिक किसीके लार परलोक जाय नही, अपने उपार्जन कीये शुभाशुभ कर्म साथी हैं, तातैं अनित्यभावना भावहू ॥

अर ये जाति कुल देश नगर देहकी लारही वियोगनैं प्राप्त होयगे, जातिकुलमें आपा धारो सो पर्यायकी लैरही विनसे है। इस मनुष्यशरीरकै दोऊ लोकमें कल्याण-कार्य करो, अर लक्ष्मी परके उपकारनिमित्त लगावो। या लक्ष्मी कोई कुलवानमें

रूपवानमें, बलवानमें, शूरवीरमें, कृपणमें, कायरमें, अकुलीनमें, पूज्यमें, धर्मा त्मामें, पराक्रमीमें, अधर्मीमें कहूँमें नही रमे है, पूर्वजन्ममें जे पुण्य कीये तिनकै प्राप्त होई, बहुरि मद उपजाय पापनिमें प्रवृत्ति कराय दुर्गतिगमन करावनेवाली है। तातैं उत्तम मध्यम जघन्य पात्रनिके दानतैं तथा सप्तक्षेत्रनिमें लगाईकै सफल करहू। अर यौवन रूप पायकरिकैं दृढ शीलव्रत पालहू। बल पाइकरिकैं क्षमा ग्रहण करो। ऐश्वर्य पायकरिकै मदरहित होई विनयवान् होहू। संयोग पाइ वैराग्यभावना भावहू ॥ ऐसैं अनिमित्यभावना वर्णन करी ॥ अब अशरण भावना अठारह गाथानिकरि कहे हैं ॥ गाथा—

णासदि मदी उदिण्णे। कम्मे ण य तस्स दीसदि उवाउ ॥
अमदं पि विसं सत्थं। तणं पि णीया वि हुंति अरी ॥ २९ ॥

अर्थ— अशुभकर्मकी उदीरणा होता संता बुद्धि नष्ट होय है, कर्मका उदयकूं आवतैं एकहू कोऊ उपाय नही दीखे है, अमृतहू विष होई परिणमे है, तृणहू शस्त्र होई परिणमें है, अर अपने निजमित्रहू वैरी होई परिणमे हैं, प्रबल उदय होतैं बुद्धि विपर्यय होई आपही अपने घातके कर्म करे है ॥ गाथा—

मुक्खस्स वि होदि मदी। कम्मोवसमे य दीसदि उवाऊ ॥

णीया अरी वि सत्थं । पि तणं अमयं च होदि विसं ॥ १७३० ॥

अर्थ— बहुरि जब अशुभकर्मका उपशम होइ तब मूर्खकैहू प्रबल बुद्धि प्रकट होइ है अर अनेक उपाय सुखकारी दीखे हैं, अर वैरीहू अपना मित्र होय है, अर शस्त्रहू तृणसमान होय है, अर विषहू अमृत होइ परिणमे है–अशुभकर्मका उपशम होय तदि समस्त उपद्रवकारी वस्तुहू सुखकारी होइ परिणमे हैं ॥ गाथा–

पावोदएण अत्थो । हत्थं पत्तो वि णस्सदि णरस्स ॥
दूरादो वि सपुण्ण- । स्स एदि अत्थो अयत्तेण ॥ ३१ ॥

अर्थ— इस जगतमें मनुष्यकै पापका उदयकरि हस्तमें प्राप्त भयाहू जो अर्थ कहिये धन, सो नाशकूं प्राप्त होय है। अर पुण्यवान् पुरुषकै पुण्यकर्मके उदयकरि विनायत्नही अतिदूरतैं धन आय प्राप्त होय है ॥ भावार्थ– लाभांतरायका क्षयोपशम होय तदि जतनविनाही अनेक दूरि क्षेत्रतैंहू अचिंत्य धन आय प्राप्त होय है। अर जब लाभांतराय तथा असाताकर्मका तीव्र उदय होय, तब बडे जतनकरि रक्षा करतै करतैहू हस्तमें धऱ्या धनहू नष्ट होय है ॥ गाथा–

पावोदयेण सुट्ठु वि । चिट्ठंतो कोइ पाउणदि दोसं ॥
पुण्णोदएण दुट्ठु वि । चिट्ठंतो कोवि लहदि गुणं ॥ ३२ ॥

कोऊ रोकनेवाला नही है। कर्मके सहकारीकारण बाह्यनिमित्त प्राप्त भये पीछे कर्मके उदयकूं करनेमें कोऊ देव दानव मनुष्यादिक समर्थ नही है ॥ गाथा–

रोगाणं पडिगारो । दिट्ठो कम्मस्स णत्थि पडिगारो ॥
कम्मं मलेदि हु जगं । हत्थी व णिरंकुसो मत्तो ॥ ४१ ॥

अर्थ— रोगनिका प्रतीकार जो इलाज सो जगतमें देखिये है अर कर्म उदय आया ताका इलाज नही देखिये है ॥ भावार्थ– रोगनिका इलाज तौ औषधादिक जगतमें बहुत हैं। परंतु कर्मके उदयकूं रोकनेवाला कोऊ औषध मंत्रतंत्रादिक जगतमें नही है ॥ जैसैं निरंकुश मदोन्मत्त हस्ती कमलिनीके वनकूं दलमले है; तैसैं कर्मका उदय जगतके जीवनिकूं दलमले है ॥ गाथा–

रोगाणं पडिगारो । णत्थि य कम्मे णरस्स समुदिण्णे ॥
रोगाणं पडिगारो । होदि हु कम्मे उवसमंते ॥ ४२ ॥

अर्थ— मनुष्यकै असातावेदनीयकर्मकी उदीरणा होय तदि रोगनिका इलाज नही होय है, जिसकाल असातावेदनीयकर्मका उपशम होय, तिसकाल औषधादिकनिकरि रोगका इलाज होय है ॥ गाथा–

विज्जाधरा य बलदे- ॥ ववासुदेवा य चक्कवट्टी वा ॥

अर्थ— पापकर्मका उदयकरि सुंदर प्रवृत्ति करताहू कोऊ पुरुष दोषकूं प्राप्त होय है। अर पुण्यउदयकरि कोऊ पुरुष दुष्ट चेष्टा करतोहू गुणनिकूं प्राप्त होय है ॥ भावार्थ— अयशस्कीर्ति नामा कर्मका उदय आवै तदि सुंदरचेष्टा करताहू अपवादकूं प्राप्त होय है। अर यशस्कीर्तिकर्मका उदय होय तदि दुष्टताके कार्य करतेहू जगतमें गुण विख्यात होय हैं ॥ गाथा—

पुण्णोदएण कस्सइ। गुणे असंते वि होइ जसकित्ती ॥
पाउदएण कस्सइ। सगुणस्स वि होइ जसघाउ ॥ ३३ ॥

अर्थ— पुण्यके उदयकरिकै कोऊकै गुण नही होतेहू जगतमें जसकीर्ति प्रकट होय है अर गुणसहितहू कोईकै पापके उदयकरिकै जसका नाश होइ अपजस प्रकट होय है॥

णिरुवक्कमस्स कम्म-। स्स फले समुवट्ठिदंमि दुक्खंमि ॥
जादिजरामरणरुजा-। चिंताभयवेदणादीए ॥ ३४ ॥
जीवाण णत्थि कोई। ताणं सरणं च जो हविज्ज इदं ॥
पायालमदिगदो वि य। ण मुच्चइ सकम्मउदयम्मि ॥ ३५ ॥

अर्थ— उदय आयेपाछे जिसका इलाज नही ऐसा कर्मका फल जो जन्म जरा मरण रोग चिंता भय वेदना दुःख इनकूं प्राप्त होतै जीवनिकै कोऊ रक्षा करनेवाला

देविंदा वि ण सरणं । कस्सइ कम्मोदए होंति ॥ ४३ ॥

अर्थ—अशुभकर्मका उदय होइ तब विद्याधर बलदेव वासुदेव चक्रवर्ती तथा देवेंद्रहू कोऊकै शरण नही हैं–रक्षक नही हैं । अशुभकर्मका उपशम होइ तथा पुण्यकर्मका उदय होइ तदि समस्त रक्षक होइ हैं ॥ गाथा–

वोलिज्ज चंकमंतो । भूमिं उदधिं तरिज्ज पवमाणो ॥
ण पुणो तीरदि कम्म- । स्स फलमुदिण्णस्स वोलेदुं ॥ ४४ ॥

अर्थ— गमन करता पुरुष भूमीकूं उलंघन करै अर तिरनेवाला पुरुष समुद्रकूं उलंघन करै; परंतु उदीरणाकूं प्राप्त भया जो कर्मका फल, ताहि तिरिवेकूं वा उलंघन करनेकूं कोऊ नही समर्थ होय है ॥ भावार्थ– जगतमें पृथ्वी अर समुद्र दोइ वडे हैं, सो जगतमें ऐसेऐसे पुरुषार्थी हैं, जो समुद्रपर्यंत पृथ्वीके अंतकूं प्राप्त होय हैं अर समुद्रकूं तिरि पैलीपार होजानेवालेभी हैं; परंतु कर्मके उदयकूं उलंघन करनेवाले नही हैं ॥

सीहतिमिंगिलगिलिद- । स्स मउे मच्छो व णत्थि जह सरणं ॥
कम्मोदयेण जीव- । स्स णत्थि सरणं तहा कोइ ॥ ४५ ॥

अर्थ— जैसें वनकेविषैं सिंहकरि गिल्या जो हरिण अर जलविषैं तिमिंगिलमत्स्य-करि गिल्या जो छोटा मत्स्य, तिनकूं कोऊ शरण नही है, तैसें कर्मके उदयकरि

ऐसा जीवकै कोऊ शरण नही है ॥ गाथा—

दंसणणाणचरित्तं । तवो य ताणं च होइ सरणं च ॥
जीवस्स कम्मणासण- । हेदुं कम्मे उदिण्णम्मि ॥ ४६ ॥

अर्थ— इस जीवकै कर्मकी उदीरणा होतै कर्मका नाश करनेकूं कारण दर्शन ज्ञान चारित्र तप रक्षक-शरण होय है, और कोऊ शरण नही है। जातैं इस संसारमें स्वर्गलोकका इंद्रका नाश होइ औरनिकी कहा कथा है? जो अणिमादिक ऋद्धीनिके धारक समस्तस्वर्गलोकके असंख्यात देव मिलिकरिकै अपना स्वामी इंद्रकूंही रक्षा नही करिसके, तदि अन्य अधम व्यंतरादिक देव ग्रह यक्ष भूत योगिनी क्षेत्रपाल चंडी भवानी इत्यादिक असमर्थ देव जीवकी रक्षा करनेमें कैसे समर्थ होयगे? जो मनुष्यनिकी रक्षा करनेमें कुलदेवी मंत्र तंत्र क्षेत्रपालादिक समर्थ होइ, तो जगतमें मनुष्य अक्षय होइ जाय। तातैं जो अपनी रक्षा करनेमें शरण ग्रह भूत पिशाच योगिनी यक्षनिकूं मानै हो, सो दृढ मिथ्यात्वकरि मोहित हैं। जातैं आयुका क्षयकरिकैं मरण होय है अर आयु देनेमें कोऊ देव दानव समर्थ नही, तातैं मरणकी रक्षा करनेमें कोऊकूं सहायी माने है सो मिथ्यादर्शनका प्रभाव है। जो देवही मनुष्यनिकी रक्षा करनेमें समर्थ होइ, तो आपही देवलोककूं कैसैं छांडे? तातैं परमश्रद्धानकरिकैं ज्ञान दर्शन चारित्र तपका परम शरण

ग्रहण करो। संसारमें भ्रमण करतेकै कोऊ शरण नही है। इस जगतमें आपही आ-
पका रक्षक है अर उत्तम क्षमादिकरूप आपके आत्माकूं परिणमावता आपही आपका
रक्षक होय है। अर क्रोध मान माया लोभरूप परिणमन करता आपकूं आप घाते
है। तातैं अपना रक्षक अर नाशक अपना आपही है॥ ऐसें अशरणभावना वर्णन
करी॥ अब एकत्वभावना सात गाथानिकरि कहे हैं॥ गाथा-

पावं करेदि जीवो। वंधवहेदुं सरीरहेदुं च॥
णिरयादिसु तस्स फलं। एक्को सो चेव वेदेदि॥ ४७॥

अर्थ— यो जीव बांधव जो कुटुंब ताके निमित्त वा शरीरकी पालनाके निमित्त
पापकर्म करे है, बहु आरंभ बहुपरिग्रहमें लीन होइ ऐसा पापबंध करे है। तिसका
फल नरकादिक कुगतिमें एकाकी महादुःख आप भोगे है॥ गाथा-

रोगादिवेदणाउं। वेदयमाणस्स णियथकम्मफलं॥
पेच्छंता वि समक्खं। किंचिवि ण करंति से णियया॥ ४८॥

अर्थ— अपने कर्मका फल जो रोगादिक वेदना तिनकूं भोगता जीवकै अपना
निजमित्र कुटुंबादिक प्रत्यक्ष देखताहू किंचित् दुःख दूरि नहीं करिसके हैं! तो परलो-
कमें कोन सहायी होयगा? एकाकी नरकादिकनिमें कर्मका फलकूं भोगेगा॥ गाथा-

तह मरइ एक्कई चे-। व तस्स ण वि विज्जई हवइ कोई ॥
भोगे भोत्तुं णियया। विंदिज्जया ण पुण्णकम्मफलं ॥ ४९ ॥

अर्थ— अपने आयुका अंत होते एकाकी मरण करे है, मरणकूं रोकि मरणतें रक्षा करनेवाला कोऊ दूजा सहायी नही होय है, भोगनिनैं भोगवेकूं कुटुंबके तथा स्त्री पुत्र मित्रादिक सहायी होय हैं, अर अशुभकर्मके फल भोगनेमैं कोऊ अपना सहायी नही होय है ॥ गाथा—

णीया अत्था देहा-। दिया य संगा ण कस्स इह होंति ॥
परलोगं मुण्णिता। जदि वि दइत्तंति ते सुट्ठु ॥ १७५० ॥

अर्थ— परलोकप्रति गमन करते जीवके स्त्री पुत्र मित्र धन देहादिक परिग्रह कोईहू अपना नही होय हैं। यद्यपि ते स्त्रीपुत्रादिक आपकूं अत्यंत चाहे हैं-संबंधकी अत्यंत वांछा करे हैं, तथापि निरर्थक हैं ॥ गाथा—

इहलोगबंधवा ते। णियया ण परम्मि होंति लोगम्मि ॥
तह चेव धणं देहो। संगा सयणासणादी य ॥ ५१ ॥

अर्थ— इस लोकमें जे बांधव मित्रादिक हैं, ते परलोकविषैं बांधव मित्रादिक नही होइ हैं; तैसैंही धन, शरीर, परिग्रह, शय्या, आसन, महल, मकान परलोकमें अपना

नहीं होइगे। इस देहके संबंधी इस देहका नाश होतैं समस्त संबंध छूटैगे। परलोकप्रति कोऊ स्त्री पुत्र मित्र सेवकादिक संबंधी परलोकमें संबंध करनेकूं नहीं जायगे। महल मकान राज्य संपदाका संबंध इहांही है। पुण्यपाप लीये परलोकप्रति एकाकी गमन करेगा। तातैं संबंधीनितैं ममता करि परलोक बिगाडना महान् अनर्थ है॥ गाथा–

जो पुण धम्मो जीवे-। ण कदो सम्मत्तचरणसुदमइउं॥
सो परलोए जीव-। स्स होइ गुणकारकसहाउं॥ ५२॥

अर्थ— बहुरि इस जीवनैं जो सम्यक्त्व चारित्र श्रुतज्ञानका अभ्यासमय धर्म कीया है, सो परलोकमें जीवकै गुणकारक सहायी होय है। इस धर्मविना कोऊही अपना सहायी हितू नहीं है। धर्मके सहायतैं स्वर्गके महर्द्धिक देव, तथा अहमिंद्रपणा, इंद्रपणा, तीर्थंकरपणा, चक्रीपणा, सुंदरकुल, जाति, रूप, बल, विद्या, जगतमें पूज्यता ये समस्त धर्मके प्रसादतैं प्राप्त होय हैं॥ गाथा–

वद्धस्स वंधणे ण व। राउं देहम्मि होइ णाणिस्स॥
विससरिसेसु ण रागो। अत्थेसु महाभएसु तहा॥ ५३॥

अर्थ— जैसैं बंधननिकरि बंध्या पुरुषकै बंधनमें बंदिगृहमें राग नहीं है; तैसैं ज्ञानवंत पुरुषकै देहमें राग नहीं है। अर तैसैंही संसारमें अनंतवार मरण करावनेवाले तथा महाभ-

यके कारणतैं विषसमान जे धनसंपदा परिग्रहादिकनिमैं ज्ञानीकै राग नही होय है। अनंतदुःखनिकरि भत्या जो संसाररूप वन तिसविषैं यो जीव एकाकी परिभ्रमण करे है अर अपना भावनिकरि उत्पन्न कीये कर्मनिका फल चतुर्गतिमैं एकाकी भोगे है, एकाकी नरकगमन करे है, एकाकी संकल्पके अनंतर उपजे दिव्यस्वर्गके सुखरूप अमृतकूं अनुभवे है। संयोगमें, वियोगमें, उत्पत्तीमैं, मरणमें, सुखमें, दुःखमें कोई इस जीवका मित्र नही है। अपना कीया आप एकाकी भोगे है। अर जो धन स्त्री पुत्र मित्र कुटुंबादिकके अर्थि निंद्यकर्म करे है, तिनका फल नरकादिकगतिनिमैं एकाकी आप दुःख भोगे है। इसके धनादिक भोगनेमें सहायी होय हैं अर पापकर्मतैं उत्पन्न भये कष्ट तिनके भोगनेमें कोऊ सहायी नही होय है। तातैं भो आत्मन्! अपना एकाकीपना कैसैं नही देखो हो? जो जन्ममरणादिक प्रत्यक्ष अनुभवमें आवे है। अर जो मोहतैं चेतन अचेतन पदार्थनिकरि अपनी एकता माने है सो अपने आत्माकूं दृढकर्मबंधनतैं अपना भूलिकरि बांधे है। जिसकाल भ्रमरहित हुवा अपना एकाकीपणा अवलोकन करेगा; तिसकाल कर्मबंधका अभावकरि शुद्धस्वरूपकूं प्राप्त होयगा। अर अपना स्वरूपके भूलनेतैं जिसका ज्ञाननेत्र मुद्रित भया, सो कर्मनिके वशि पड्या हुवा दीर्घकाल संसारमें परिभ्रमण करे है। एकाकी उपजे है, एकाकी विनसे है, एकाकी गर्भके

दुःख भोगे है, एकाकी निर्धनपणा बालपणा वृद्धपणा नीचपणा समस्त भोगे है। समस्त स्वजन देखे हैं, तोहू कोऊ दुःखका लेशहू नही वटाइ सके हैं। ऐसें जानताहू देहकुटुंबादिकनिमें मूढ ममत्व नही छांडे है। इस जीवका रक्षक सहायी एक दशलक्षण धर्म जानहु और नाहि॥ ऐसें एकत्वभावना वर्णन करी॥

अब अन्यत्वभावना चौदह गाथानिकरि कहे हैं॥ गाथा—

किह दा जीवो अप्पणो। अप्पणं सोयदि हु दुक्खियं णीयं॥
ण य वहुदुक्खपुरक्कड-। मप्पाणं सोयदि अवुद्धी॥ ५४॥

अर्थ— परपदार्थनितैं भिन्न जो जीव, सो अन्य जो अपनी जातिके दुःखित कुटुंबी जन तिनकूं कैसें शोच करे है? इसभांति अपना शोच नही करे है। जो, मैं अनादिकालतैं शरीरसंबंधी अर मनसंबंधी अनंतदुःख भोगे अर आगानैं द्रव्य क्षेत्र काल भावका सहायतैं उदय आवता असातावेदनीय कर्म तिसकरि अनंतकाल अनंतदुःख भोगऊंगा! मेरा दुःख दूरि होनेका कहा इलाज है?॥ भावार्थ— अज्ञानी अन्य जे स्त्री पुत्र कुटुंबादिक तिनकूं दुःखी देखि रागभावतैं अतिशोच करे है, अर अपना नरक तिर्यंच गतिमें पतन नजीक आया तिसका शोच नही करे है, जो, मोकूं अब कहा करना? कैसें संसारके दुःखनितैं दूरि होय आत्माधीन निराकुलतालक्षण

सुखकूं प्राप्त होहूं? ऐसा विचार अज्ञानी नहीं करे हैं ॥ गाथा—

संसारम्मि अणंते१ सगेण कम्मेण हीरमाणोणं ॥

को कस्स होइ सयणो। सज्जइ मोहा जणम्मि जणो ॥ ५५ ॥

१ आकृष्यमाणानां

अर्थ— पंचपरिवर्तनरूप जो अनंतसंसार तिस संसारमें अपने कर्मके वशतें परिभ्रमण करते जीवनिके मध्य कोऊका कोऊ स्वजन नहीं है। मोह जो मिथ्यात्वभाव तिसकरिकै लोकनिमैं लोक आसक्त होइ रहे हैं। जो, यह मेरा पुत्र है, भ्राता है, स्त्री है, मित्र है, स्वामी है, सेवक है। कोऊ कोऊका नहीं, समस्त अन्य अन्य हैं, समस्त संबंध कर्मजनित हैं, विषयकषायके पुष्ट करनेकूं हैं, विनाशीक हैं, अपने अपने रागद्वेष पुष्ट करनेकूं हैं ॥ गाथा—

सव्वो वि जणो सयणो। सव्वस्स वि आसि तीदकालम्मि ॥

एंते य तहा काले। होहदि सयणो जणस्स जणो ॥ ५६ ॥

अर्थ— अनंतकाल व्यतीत भया, तिसमें समस्त जीवनिका समस्त जीव अनंतवार स्वजन भये हैं अर आगानैं अनंतवार जनांकै जन स्वजन होइगे। तातैं कोन कोनमें स्वजनपणाका संकल्प करेगा? जे अबार स्वजन मित्र दीखे हैं, ते पूर्वें अनंतवार तेरे घात करनेवाले शत्रुपणाकूं प्राप्त भये हैं अर जे अबार शत्रु दीखे हैं, ते अनेकवार

तेरे हितकारी मित्र भये हैं अर आगै ऐसेही होयगे । तातैं इनमें रागद्वेष बुद्धि करि आपका घात मति करो । समस्त अन्य अन्य हैं ॥

रत्तिं रत्तिं रुक्खे । रुक्खे जह सउणयाणं संगमणं ॥
जादीए जादीए । जणस्स तह संगमो होइ ॥ ५७ ॥

अर्थ— जैसैं रात्रिरात्रिविषैं वृक्षवृक्षमें अनेक पक्षीनिका संयोग होय है; तैसैं लोककै जन्मजन्ममें अनेक प्राणीनिका संयोग होय है । जैसैं पक्षी रात्रि होइ तब वृक्षका आश्रयविना तिष्ठवेकूं असमर्थ हैं, अपने योग्य वृक्षकूं प्राप्त होइ रात्रि व्यतीत करि प्रातःकाल देशांतरनैं गमन करे हैं; तैसैं संसारी प्राणीहू समस्त आयुके निषेक गलि जाय तदि पूर्वशरीरकूं त्यागि अन्यशरीरकूं ग्रहण करि नवीन नवीन स्वजन संबंधीनिकूं ग्रहण करे हैं ॥ गाथा—

पहिया उवासइ जह । तहिं तहिं अल्लियंति ते य पुणो ॥
छंडित्ता जंति णरा । तह णीयसमागमा सव्वे ॥ ५८ ॥

अर्थ— जैसैं अनेक देश अनेक ग्रामनगरके निवासी पथिकजन एक आश्रमस्थानमें रात्रि आय वसे हैं, पश्चात् प्रात भये आश्रमकूं त्यागि नानादेशनिकूं गमन करे हैं; तैसैं अनेक योनीनितैं आया प्राणी एक कुलरूप आश्रममें सामिल होय हैं,

पाछे अपनी अपनी आयु पूर्ण करि अनेकगतीनिकूं प्राप्त होय हैं ॥ गाथा-

भिण्णपयडिम्मि लोए । को कस्स सभावदो पिओ होज्ज ॥
कज्जं पडि संबंधं । वालुयमुट्ठी व जगमिणमो ॥ ५९ ॥

अर्थ— भिन्नभिन्न प्रकृतीके धारक जे लोक तिनमें कोनका कोन स्वभावतैं प्रिय होय ? नानास्वभावरूप लोकनिमैं स्वभाव मिल्याविना प्रीति होय नही अर स्वभाव मिलै नही । नानाजीवनिके नानाप्रकारके भिन्नभिन्न स्वभाव हैं । यातैं कोऊभी कोऊकै प्रिय नही होय है । समस्त जीवनिकै प्रयोजनप्रति संबंध है, कार्यके निमित्त-करिही संबंध है—कार्य नही होतैं कोऊ कोऊतैं प्रीतिका संबंध नही करे है । यो लोक वालूरेतकी मुठीकीनांई संबंधकूं प्राप्त होय रह्या है । जैसैं भिन्नभिन्न है स्वभाव जिनके ऐसे वालूरेतके कण जलादिक द्रवरूप द्रव्यके मिलापतैं संबंधकूं प्राप्त होय हैं, जलादिक द्रव्यका संयोग दूरि होतैं भिन्नभिन्न होइ विखरि जाय हैं; तैसैं संसारी जीवहू अपने अपने मुतलबके अर्थि कार्य विचारि प्रीति करे हैं, जिससैं आपना कुछहू कार्य सधता नही दीखै तिससैं प्रीति नही करे हैं, अपना अभिमान जिसतैं वधता जानै तो प्रीति करै । तथा धनके अर्थि, तथा धनवानतैं आदर पावनेके अर्थि, तथा अपनी विख्याततता होनेके अर्थि, अथवा कोई वस्तूका लाभके अर्थि, वा अपनी बडाईके

अर्थि, अथवा अपना पूज्यपणा होनेके अर्थि, अथवा जसकीर्तीके अर्थि कोऊसूं प्रीति करे हैं। विनाकार्य कोऊकै स्वभावतैं प्रीति नही जाननी, समस्त अन्य अन्य हैं, कोऊका संबंधी कोऊही नही है, यह निश्चय करि परमैं प्रीति त्यागि अपना आत्महितमें प्रीति करना उचित है॥ गाथा-

माया पोसेइ सुयं। आधारो मे भविस्सदि इमुत्ति॥
पोसेदि सुदो मादं। गब्भे धरिउं इमा इत्ति॥ १७६०॥

अर्थ— यो पुत्र मेरा आधार है, इसविना दुःख दरदमें तथा वृद्धअवस्थामैं अन्य कोऊ सहायी नहीं, इस अभिप्रायतैं पुत्रका पालन पोषण करे है। अर इस मातानैं मोकूं गर्भमैं धाऱ्या है, इस अभिप्रायतैं पुत्र माताकी पोषणा करे है। अथवा माताकी पोषणा नही करूंगा तो जगतमें कृतघ्न कहाऊंगा, जगत निंदेगा, इस हेतुतैं पोषणा करे है॥

होऊण अरी वि पुणो। मित्तं उवकारकारणा होइ॥
पुत्तो वि खणेण अरी। जायदि अवयारकरणेण॥ ६१॥
तह्मा ण कोइ कस्सइ। सयणो व जणो व अत्थि संसारे॥
कज्जं पडि हुंति जगे। णीया व अरी व जीवाणं॥ ६२॥

अर्थ— वैरी होइकरिकैहू बहुरि उपकार करनेतैं मित्र होय है, जातैं जिसका

दानसन्मानादिक करियेगा, सो शत्रुहू अपना अत्यंत प्रियमित्र होयगा। बहुरि पुत्रहू वांछितभोग रोकनेकरि अपमान तिरस्कारादिक करनेकरि अपना क्षणमात्रमें शत्रु होयगा। तातैं कोऊ पुरुष कोऊका संसारमें शत्रु नही है वा वैरी नही है, कार्यमाति शत्रुता मित्रता प्रकट होय है। स्वजनपणा, परजनपणा, शत्रुपणा, मित्रपणा, जीवनिकै स्वभावतैंही नही है; उपकार अपकारकी अपेक्षा मित्रपणा शत्रुपणा जानना। जातैं जगतके जीव विषयकषायके वशीभूत हैं। जिसतैं आपके पंचेंद्रियनिके विषय पुष्ट होता जानै, तथा अभिमान सधता जानै, परिग्रहकी धनकी वृध्दि जानै, तिसकूं मित्र जाने है। जिसतैं अपने विषय रुकता जानै, बिगडता जानै, अभिमान घटता जानै, ताहि वैरी जानि तीव्रवैर करै है। और वस्तुत्वकरि कोऊ शत्रुमित्र हैं नही। तातैं कौऊमैंही रागद्वेष करना उचित नही है ॥ अब शत्रुमित्रका लक्षण कहे हैं ॥ गाथा–

जो जस्स वट्टदि हिदे। पुरिसो सो तस्स बंधवो होदि ॥
जो जस्स कुणदि अहिदं। सो तस्स रिवुत्ति णायव्वो ॥ ६३ ॥

अर्थ— जिसका हितमें उपकारमें जो प्रवर्तै, सो तिसका बांधव है; अर जो जिसका अहित करे है, सो तिसका वैरी है; ऐसी जगतकी प्रवृत्ति है ॥ अब वीतराग गुरु बांधवनिविषैं शत्रुपणा दिखावे हैं ॥ गाथा–

णीया करिंति विग्घं । मुक्खब्भुदयावहस्स धम्मस्स ॥
कारिंति य अइबहुगं । असंजमं तिव्वदुक्खकरं ॥ ६४ ॥
णीया सत्तू पुरिस- । स्स हुंति जदि धम्मविग्घकरणेण ॥
कारेंति य अतिबहुगं । असंजमं तिव्वदुक्खयरं ॥ ६५ ॥

अर्थ— निज जे बांधव मित्रादिक हैं ते स्वर्गमोक्षके उदयकूं प्राप्त करनेवाले धर्ममें
विघ्न करे हैं । अर हिंसा, झूंट, चोरी, कुशील, परिग्रहमें, आसक्तनारूप असंयमकूं
करावे हैं । कैसाक है असंजम? जो अतिमहान तीव्रदुःखका करनेवाला संसारमें
डबोवनेवाला है; अभक्ष्यभक्षणमें रात्रिभोजनमें, कुशील सेवनेमें, बहु आरंभमें,
बहुपरिग्रहमें प्रवृत्ति कराय अभिमान लोभादिकमें प्रवृत्ति कराय नरकादिकनिमें प्राप्त करे
है । तातैं जे अपने निज हैं, ते शत्रु हैं, जो पुरुषके धर्ममें विघ्न करनेकरि अर अति-
दुःख देनेवाला असंयम करावनेकरि अपने निजबांधव पुत्रमित्रादिक शत्रुपणाही प्रकट
कीया, इससिवाय अन्य शत्रुपणा कहा होय है? ॥ गाथा—

पुरिसस्स पुणो साधू । उज्जोगं संजणंति जदि धम्मे ॥
तह दिव्वदुक्खकरणं । असंजमं परिहरावेंति ॥ ६६ ॥
तह्मा णीया पुरिस- । स्स होंति साहू अणेयसुहहेदुं ॥

दकूं जाइ प्राप्त होय है। कैसीक है निगोद? जिसतैं अनंतकालपर्यंत निकलना कठिन है.

वहुतिव्वदुक्खसलिलं। अणंतकायप्पवेसपादालं ॥
चदुपरियट्टावत्तं। चदुगदिवहुपट्टणमणंतं ॥ ६९ ॥
हिंसादिदोसमगरा-। दिसावदं दुविहजीववहुमच्छं ॥
जाइजरामरणोदय-। मणेयजादीसदुम्मीयं ॥ १७७० ॥
दुविहपरिणामवादं। संसारमहोदधिं परमभीमं ॥
अदिगम्म जीवपोदो। भमइ चिरं कम्मभंडभरो ॥ ७१ ॥

अर्थ— ज्ञानावरणादिक कर्मरूप भांड वस्तु तिनकरि भऱ्या जे जीवरूप जिहाज, सो संसाररूप समुद्रकूं प्राप्त होइ, चिरकाल जो अनंतकालपर्यंत परिभ्रमण करे है। कैसाक है संसारसमुद्र? बहुत तीव्रदुःखही है जळ जामैं, अर अनंतकाय जो निगोदमैं प्रवेश करनाही है पाताला जामैं, द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप जे च्यारि परिवर्तन वा भवसहित पंचपरिवर्तनही है भवग जामैं, अर च्यारि गतिरूप है बहुत पट्टण जामैं, अर नही है अंत जाका, अर हिंसादिक दोषही हैं मगरादिक दुष्टजीव जामैं, अर त्रस स्थावर जीवही हैं मत्स्य जामैं, अर जन्म जरा मरणही है जल जामैं, अर अनेक जीतीनिके सैंकडेही हैं लहरी जामैं, अर दोयप्रकार परिणामही है पवन जामैं, अर

महाभयानक है हृदय जाका ऐसा संसारसमुद्रमें जीव अनंतकालपर्यंत भ्रमण करे है ॥

एगविगतियचउपंचिं- । दियाण जाउ हवंति जोणीउ ॥
सव्वाउ ताउ पत्तो । अणंतखुत्तो इमो जीवो ॥ ७२ ॥

अर्थ— एकेंद्रिय, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय जीवनिकी ये योनि हैं, ते समस्तयोनि संसारी जीव अनंतवार प्राप्त भया है ॥ गाथा–

अण्णं गिण्हदि देहं । तं पुण मुत्तूण गिण्हदे अण्णं ॥
घडिजंतो व य जीवो । भमदि इमो दव्वसंसारे ॥ ७३ ॥

अर्थ— यो जीव अन्यदेह ग्रहण करि बहुरि तिस देहकूं छांडिकरि अन्यदेह ग्रहण करे है। जैसें अरहटमें घटीजल रीता होइ बहुरि भरे है अर बहुरि रीता होइ बहुरि भरे है; तैसें द्रव्यसंसारविषैं एकदेह त्यागि अन्यदेह ग्रहण करे है, अन्यकूं त्यागि अन्य ग्रहण करे है ॥ ऐसें नवीन नवीन ग्रहण करते अर त्यागतैं अनंतानंतकालमें अनंतानंतदेह ग्रहण कीये हैं अर त्यागे हैं ॥ गाथा–

रंगगदणडो व इमो । बहुविहसंठाणरूववण्णाणि ॥
गिण्हदि मुच्चदि य ठियं । जीवो संसारमावण्णो ॥ ७४ ॥

अर्थ— संसारकूं प्राप्त भयो यो जीव नृत्यके अखाडेकूं प्राप्त भया नटकीनांई बहुत-

प्रकार संस्थान वर्ण रूप स्थिरतारहित निरंतर ग्रहण करे है अर छांडे है ॥ गाथा-

जत्थ ण जादो ण मदो । ण होदि जीवो अणंतसो चेव ॥
कालत्तीदम्मि इमो । ण सो पदेसो जए अत्थि ॥ ७५ ॥

अर्थ— जिस क्षेत्रका प्रदेशमें यो जीव नही उत्पन्न भयो अर अनंतवार नही मर्यो ऐसो जगतमैं एकहू प्रदेश नही है । अतीतकालमें तीनसैं तीयालीस राजूमात्र लोकके समस्तप्रदेशनिमैं अनंतानंतवार जन्म लीया है अर मरण कीया है ॥ गाथा-

तक्कालतद्दाकालस- । मएसु जीवो अणंतसो चेव ॥
जादो मदो य सव्वे- । सु इमोऽतीदम्मि कालम्मि ॥ ७६ ॥

अर्थ— यो जीव उत्सर्पिणी अर अवसर्पिणीके समस्तसमयनिविषै अतीतकालमें अनंतवार जन्म लीया है अर अनंतवार मरण कीया है । ऐसा कोई कालका समय बाकी नही रह्या है, जिसमैं इस जीवनैं जन्ममरण नही कीया है ॥ गाथा-

अट्ठपएसे मुत्तू- । ण इमो सेसेसु सगपदेसेसु ॥
तत्तम्मि व अद्दहणं । उव्वत्तपरत्तयं कुणदि ॥ ७७ ॥

अर्थ— यो जीव मध्यके अष्टप्रदेशनिकूं छांडिकरिकै शेष अपने आत्मप्रदेशानिविषैं तप्तजलरूप आधणके मध्य तिष्ठते तंदुलकीनांई उद्वर्तन परावर्तन करे है ॥ भावार्थ-

जीवके अष्टमध्यप्रदेशनिविना अन्य समस्तप्रदेश संकोचविस्तारनैं प्राप्त होइ ॥ गाथा—

लोगागासपएसा । असंखगुणिदा हवंति जावदिया ॥
तावदियाणि दु अज्झव- । साणाणि इमस्स जीवस्स ॥ ७८ ॥
अज्झवसाणट्ठाणं । तराणि जीवो वि कुवइ इमो हु ॥
णिच्चं पि जहा सरडो । गिण्हदि णाणाविधे वण्णे ॥ ७९ ॥

अर्थ— जितने असंख्यातगुणे लोकाकाशके प्रदेश हैं, तितने इस जीवके कर्मके बंध होनेजोग्य कषायनिके अर अनुभागके परिणामनिके स्थान हैं ॥ जैसें करकांट्या नानाप्रकारके रंग ग्रहण करे है; तैसें समयसमय परिणाम पलटे हैं, तातैं नवीननवीन अध्यवसाय जो परिणाम सो होय है ॥ गाथा—

आयासम्मि वि पक्खी । जले वि मच्छा थले वि थलचारी ॥
हिंसंति एक्कमिक्कं । सव्वत्थ भयं खु संसारे ॥ १७८० ॥

अर्थ— आकाशविषैं गमन करते पक्षीकूं तो अन्य पक्षी मारे हैं । जलमें गमन करते मत्स्यादिकनिकूं अन्यजलचर मत्स्यादिक मारे हैं । अर स्थलमें विचरते तिर्यंच-मनुष्यनिकूं स्थलचारी दुष्ट तिर्यंचमनुष्य मारे हैं । एक एककूं मारे हैं, तातैं संसारविषैं सर्वत्र समस्त स्थाननिविषैं निरंतर भय जानना ॥ गाथा—

ससगो वाहपरद्धो । विलत्ति णाऊण अजगरस्स मुहं ॥
सरणत्ति मण्णमाणो । मच्चुस्स मुहं जह अदीदि ॥ ८१ ॥
तह अण्णाणी जीवा । परिद्धमाणा छुधादिवाहेहिं ॥
अदिगच्छंति महादुह- । हेदुं संसारसप्पमुहं ॥ ८२ ॥

अर्थ— जैसैं व्याध जो सिकारी मनुष्य तिसकरी उपद्रवकूं प्राप्त भया जो सुसा, सो फाड्या हुवा अजगरका मुखकूं बिल जाणि अर आपकै सरण मानता मृत्युका मुखमें प्रवेश करे है! तैसैं अज्ञानी जीव क्षुधा तृषा काम कोपादिककरि बाधाकूं प्राप्त भया महादुःखका कारण संसाररूप सर्पके मुखमें प्रवेश करे है। मिथ्यात्व विषयकषायनिमें प्रवेश करे है, सोही संसाररूप सर्पका मुख है, संसारमें निगोद प्रधान है, सो निगोदमें प्राप्त होइ अपने ज्ञान दर्शन सुख सत्तादिक भावप्राणनिका लोप करि जडरूप हुवा अनंतानंत काल व्यतीत करे है ॥ गाथा–

जावदियाइं सुहाइं । होंति लोगम्मि सव्वजीवेसु ॥
ताइं पि वहुविधाइं । अणंतखुत्तो इमो पत्तो ॥ ८३ ॥

अर्थ— लोकके विषैं समस्त चतुर्गतिके जीवनिविषैं जितने दुःख होय हैं, तितने बहुतप्रकारके दुःख अनंतवार यो जीव प्राप्त भया है। जगतमें ऐसा कोऊ दुःख